अन्तर्पंथ के यात्री आचार्य श्री नानेश

□

पं. र. श्री शान्ति मुनि

□

प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग,

बीकानेर–३३४००१ (राजस्थान)

□

प्रकाशन वर्ष : १९८२

संस्करण : प्रथम

मूल्य : ८०) रुपये

□

मुद्रक :

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स

जौहरी बाजार, जयपुर–३०२ ००३

समर्पण

युग-चेतना के जाज्वल्यमान नक्षत्र
युग-दृष्टि के उन्नायक
युग-पौरुष के धारक
अन्तर्पथ के सजग यात्री
समता दर्शन के सर्जक

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

के

पाद-पद्मों में समर्पित

शान्ति मुनि

द्वारा

महिमा मण्डित जीवन-वृत्त का
यह तुतला वृत्तान्त आयोजन।

प्रकाशकीय

भारतीय सत-परम्परा मे निर्ग्रंथ-परम्परा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। निर्ग्रंथ का अर्थ है—जो सब प्रकार की ग्रन्थियो (गाँठो), मोह, परिग्रह आदि से रहित है। भगवान् महावीर की शासन-परम्परा इस निर्ग्रंथ सन्त-धारा का प्रतिनिधित्व करती है। इस धारा के सन्तो का तप-त्याग सर्वोपरि है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य जैसे महाव्रतों की परिपालना ये बडी कठोरता के साथ करते हैं। एक ओर ये अपने स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन आदि आत्मकल्याणक कार्यों मे निरत रहते हैं तो दूसरी ओर ससार के प्राणियो के कल्याणार्थ धर्मोपदेश देते हुए ग्रामानुग्राम पदयात्रा करते है। ऐसे ही आत्मधर्मी लोकोपकारक सन्तो के सच्चे प्रतिनिधि हैं—समताविभूति, जिनशासन-प्रद्योतक, धर्मपाल—प्रतिबोधक, चारित्रचूडामणि, परमश्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म० सा०।

आज से ६२ वर्ष पूर्व ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया स० १९७७ को मेवाड के दाता ग्राम मे आपका जन्म हुआ। १९ वर्ष की अवस्था मे आपने सासारिक मोह-माया से विरत होकर जैन भागवती दीक्षा अगीकृत कर ली। तब से आप अपनी उत्कृष्ट ज्ञान-आराधना, विशिष्ट ध्यान-साधना और विचक्षण प्रवचन-प्रभावना से जिन-शासन की निरन्तर महान् सेवा करते आ रहे हैं। आश्विन शुक्ला द्वितीया स० २०१९ को आप युवाचार्य पद पर तथा माघ कृष्णा द्वितीया को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। अपने आचार्यत्व काल मे आपने धर्म और अध्यात्म, जीवन और समाज के नानाविध क्षेत्रो मे समतादर्शन के रूप मे युगान्तर कारी चिन्तन प्रस्तुत किया। समतादर्शन का ही क्रियात्मक रूप प्रतिफलित हुआ है धर्मपाल प्रवृत्ति के पल्लवन व प्रसरण मे। इस प्रवृत्ति के माध्यम से मालवा-क्षेत्र के अस्पृश्य कहे जाने वाले बलाई जाति के हजारो लोगो को व्यसन मुक्त और सुसंस्कारी बनाया गया है। आपकी अपार करुणा और विशेष प्रेरणा के फलस्वरूप ही मानव कल्याण का यह जीवन उन्नयनकारी ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न हो पा रहा है।

आज जीवन मे विलासिता और विषमता तेजी से बढती जा रही है। लोग बेभान होकर दौडे जा रहे है भौतिकता और पदार्थवादिता के पीछे। ऐसे समय में आप अपने लगभग २२५ साधु-साध्वियो के समुदाय के सहयोग से समदर्शिता, सात्विकता और आध्यात्मिकता का आलोक जन-जन मे विकीर्ण कर रहे हैं। आपका यह आलोक पु ज महनीय व्यक्तित्व हम सबके लिए वदनीय, पूजनीय और प्रेरणादायी है।

नैतिक भावना और चरित्र निर्माणकारी चेतना उद्बुद्ध करने में महापुरुषों की प्रेरणादायी जीवनियो के अध्ययन का विशेष महत्त्व होता है। महान् पुरुषों के जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ जीवन-निर्माण के जिन सूत्रो की छाप छोडती है, वह बडे-बडे धार्मिक और सैद्धान्तिक ग्रन्थो का अध्ययन करके भी नही प्राप्त की जा सकती। अन्तर्पथ के यात्री आचार्य श्री नानालालजी म० सा० का जीवन नानाविध प्रेरणादायी घटनाओ और महत्त्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों से परिपूर्ण है। अतः यह आवश्यक समझा गया कि आचार्य श्री का प्रामाणिक जीवनवृत्त सर्वजन हिताय समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाय।

जीवनी-लेखन का कार्य बहुत ही नाजुक है। अपने चरितनायक के प्रति जो तन्मय होकर भी तटस्थ रह सके और तटस्थ रहकर भी तन्मय हो सके, वही व्यक्ति सच्चा और प्रामाणिक जीवनवृत्त लिख सकता है। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के वरिष्ठ सदस्यो ने आचार्य श्री के सरदार शहर चातुर्मास (सवत् २०३१) के पश्चात् देशनोक दीक्षा के प्रसग पर इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने का निवेदन, आचार्य श्री के अन्तेवासी विद्वान् शिष्य पण्डित रत्न श्री शान्ति मुनिजी से किया। हमे इस बात की परम प्रसन्नता एवं सन्तोष है कि श्री शाति मुनिजी ने उस गुरुतर कार्य को वहन कर अपने ४-५ वर्ष के अनवरत परिश्रम, सतत अध्यवसाय और निष्काम समर्पण भाव से यह साहित्यिक दस्तावेज समाज के सामने प्रस्तुत किया है जिसका जीवनी-साहित्य मे अपना विशिष्ट महत्त्व है।

यह जीवन चरित दो खंडो में विभक्त है। प्रथम खड **"जीवन दर्शन"** में आचार्य श्री के जन्म, बचपन, वैराग्य, दीक्षा और आत्मकल्याण के साथ-साथ सम्पन्न विविध लोकोपकारी कार्यों का एवं चातुर्मासिक उपलब्धियो का क्रमबद्ध रोचक विवरण प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय खड **"विचार दर्शन"** में समतादर्शन, समीक्षण ध्यान, प्रवचन मीमासा तथा समसामयिक स्थितियों पर आचार्य श्री के समय-समय पर व्यक्त किये गये विचारबिन्दुओ को सकलित कर उन्हे व्यवस्थित रूप दिया गया है। अन्त मे तीन परिशिष्ट दिये गए है जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

सरदारशहर चातुर्मास के बाद पंडित रत्न श्री शाति मुनिजी का छत्तीसगढ (मध्यप्रदेश) क्षेत्र की ओर बिहार हो गया और ४-५ वर्ष तक आप उधर ही विचरण करते रहे। क्षेत्र की दृष्टि से दूर होते हुए भी चरितनायक के प्रति आपका भावात्मक सम्बन्ध निरन्तर बना रहा और आपने परिष्कृत पर रोचक, प्राजल पर सरस भाषा शैली में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। उसके लिए साधुमार्गी जैन सघ और समग्र साहित्य जगत् आपका चिर ऋणी है। इस ग्रथ के सम्पादन— परिष्कार मे प्रोफेसर शिवाशकर जी त्रिवेदी कलकत्ता का, सुझाव-संशोधन मे डॉ० नरेन्द्र भानावत प्रोफेसर हिन्दी-विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर का एवं सामग्री– सस्मरण-प्रेषण आदि मे पडित श्री लालचन्द जी मुणोत का विशेष सहयोग रहा है, अतः सघ इनका आभारी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष एव अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक शिक्षाविद् डॉ० डी. एस कोठारी ने प्राक्कथन लिखकर ग्रन्थ की गरिमा मे वृद्धि की है, उसके लिए हम उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते है।

इसके प्रकाशन मे अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री दीपचन्द जी भूरा ने अपने पूज्य पिताजी स्वर्गीय श्री भीखमचन्द जी भूरा की पुण्य स्मृति मे बडी उदारतापूर्वक आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, इसके लिए हम सघ की ओर से आपके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते है। साहित्य समिति के सयोजक एवं सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री गुमानमल जी चौरडिया की त्वरित कार्य-क्षमता एव सतत जागरुकता के परिणामस्वरूप यह प्रकाशन पाठको के समक्ष यथासमय प्रस्तुत हो सका है। अतः सघ उनका आभारी है। इसके मुद्रण मे फ्रैण्डस प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स जयपुर ने विशेष अभिरुचि लेकर सक्रिय सहयोग प्रदान किया, उसके लिये हम सघ की ओर से धन्यवाद ज्ञापित करते है।

इस ग्रथ को लिखते समय छोटी-छोटी घटनाओ, समकालीन आचार्यों, मुनियो, श्रावको आदि के प्रसगो तथा सामाजिक-धार्मिक स्थितियो को यथातथ्य रूप मे प्रस्तुत करने का लक्ष्य रहा है। किसी के प्रति कोई दुराग्रह या पूर्वाग्रह की भावना नही रही है। आशा है, इस ग्रथ के पठन-पाठन, चिन्तन-मनन से व्यक्तित्व-निर्माण और समाजोत्थान से विशेष प्रेरणा और प्रकाश मिलेगा। इसी भावना के साथ—

विनीत

जुगराज सेठिया
अध्यक्ष

पीरदान पारख
मन्त्री

चम्पालाल डागा
हस्तीमल नाहटा

समीरमल कांठेड़
बिनयचन्द कांकरिया

सहमन्त्री

श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर।

FOREWORD

It is an uncommon book It describes the life, unrelenting tapascharya, and life-long padayatras of the widely esteemed and deeply inspiring Jain Saint, Acharya Pujya Shree Nanalalji Maharaj Sahib. I have been fortunate and privileged to have enjoyed the kindness, and benefitted by the **pravachans** and meetings with the Acharya Shree for the past several decades. I feel honoured to write in all humility a few words by way of a foreword, though the book needs none.

The life of the Acharya Shree is devoted entirely to the practice and promotion of Ahimsa, compassion and love for all beings, as taught by Lord Mahavira, the incomparable, luminous embodiment of Ahimsa–its theory and practice The explorations and adventures in the realm of Ahimsa and love for all beings–a realm of infinite dimensions–and the journey **within** cannot be easily put into words. In some essential respects, it is beyond words. All the same, the present book is a commendable attempt. We are deeply indebted to Muni Shree Shantilalji Maharaj for his valuable addition to the literature on Ahimsa

At no time in man's history the place and role of Ahimsa in our life and actions has been more important than in the Atomic Age To-day man's very survival, not to speak of progress, depends on man's learning and practising Ahimsa, in thought, word and deed

The soul stirring words of Mahatma Gandhi convey the loftiest serenity of truth "My uniform experience has convinced me that there is no other God than Truth And....... the only means for the realization of Truth is Ahimsa ... So long, as a man does not of his own free will put himself last among his fellow creatures, there is no salvation for him Ahimsa is the farthest limit of humility"

The book should be of great interest and value to any one interested in Ahimsa, its theory and practice. Special mention may be

made of the illuminating contribution to Samata Darshan by the Acharya Shree. The exposition of the complementarity and mutual reinforcement, of Dharma and Science is particularly interesting. The basic philosophy of the principle of complementarity in physics, is very close to the Jain Philosophy of Syadvada, *propounded* about 2000 years ago.

In the context of the present world, permeated on the one hand by Science and Technology and on the other by violence, greed and hatred, it is imperative that Ahimsa (its theory and practice) find an important place in the scheme of education. It is essential to character formation, and promotion of morality and human values It reminds us of Albert Einstein's statement (1950) : "The most important human endeavour is the striving for morality in our actions Our inner balance and even our very existence depend on it Only morality in our actions can give beauty and dignity to life To make this a living force and bring it to clear consciousness is perhaps the foremost task of education".

Man's future belongs to Ahimsa and Science. The religion of Ahimsa is the religion of fearlessness, compassion and love for all living beings. It includes non-violent struggle–non-violent in thought, word and deed–against oppresssion and injustice, as vividly demonstrated by Gandhiji in our time It is a universal religion. It is a secularised religion, if one may use such a term.

A 3, Chhatra Marg
Delhi University Campus
DELHI 110 007
April 29, 1982.

D S. Kothari
Professor Emeritus
University of Delhi
And
Ex Chairman
University Grant Commission

प्राक्कथन

[हिन्दी अनुवाद]

यह एक असाधारण ग्रथ है। प्रेरणा के प्रखर पुज, बहुजन-वन्दित जैन सन्त पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म. सा का जीवन, उनकी अनवरत तपश्चर्या एव जीवन पर्यन्त की पद-यात्राओ का इतिवृत्त इसकी विषय-सामग्री है। आचार्य श्री की कृपा के सौभाग्य एव सुयोग के साथ ही मुझे कई दशाब्दियो से उनके प्रवचनो एव उपाश्रय का लाभ उठाने का भी अवसर मिलता रहा है। इस ग्रथ को तो यद्यपि आवश्यकता नही है, तथापि इसके लिए प्राक्कथन-लेखन का अवसर पाकर मैं स्वय को सम्मानित अनुभव करता हूँ।

अहिंसा के सिद्धात और उसकी व्यावहारिकता के अप्रतिम द्रष्टा भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट अहिंसा, करुणा एव जीवमात्र के प्रति प्रेम के प्रयोगो तथा प्रसार के प्रति आचार्य श्री का जीवन समग्रत समर्पित रहा है। अहिंसा एव प्राणिमात्र के प्रति प्रेम का विस्तार जहा अपरिमेय है, वही इनका क्षेत्र अन्तर्यात्रा का है। अत इस क्षेत्र के प्रयोगो एव यात्राओ का प्रसग शब्दातीत है। तथमपि प्रस्तुत कृति एक स्तुत्य प्रयास है। अहिंसा-विषयक साहित्यागार मे श्री-वृद्धि करने के नाते हम मुनि श्री शातिलाल जी महाराज के प्रति अत्यन्त आभारी हैं।

मानव-जाति के इतिहास के किसी भी काल मे हमारे जीवन एव कार्यकलापो मे अहिंसा का स्थान एव भूमिका इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण नही रही जितनी कि इस आणविक युग मे। इस बार मनुष्य के विकास-चरणो को चुनौती नही मिली है, बल्कि उसका अस्तित्व ही इस बात पर अवलम्बित हो गया है कि वह अपने चिन्तन, वचन और कर्म मे अहिंसा को कितना अधिक उतारता है।

महात्मा गाधी के ये शब्द वस्तुत अन्तस्थल को झकृत कर देने वाले हैं, "सतत अनुभवो ने मेरी धारणा को बद्धमूलता दे दी है कि ईश्वर का यदि कोई प्रकट अस्तित्व है, तो वह 'सत्य' ही है · · और कि उस सत्य से साक्षात्कार का एकमेव माध्यम अहिंसा है। जब तक इन्सान सन्मन से अपने समस्त सहजीवियो की श्रेष्ठता को स्वीकृति नही प्रदान करता, उसके उद्धार के उपाय निश्शेष रहते हैं। अहिंसा विनय का चरमोत्कर्ष है।"

जिन लोगो की अभिरुचि अहिंसा मे — उसके सिद्धान्त और व्यावहारिकता मे होगी, यह ग्रन्थ उनके लिए महत्त्वपूर्ण होगा। समता दर्शन के विकास के लिये किये

गये आचार्य श्री के जीवन्त प्रयास इस बिन्दु पर विशेष रूप से उल्लेखनीय होगे। विज्ञान और धर्म की पारस्परिक सम्पूरकता एव एक-दूसरे के लिए सशक्त आधार तैयार करने सम्बन्धी उपादेयता महत्त्वपूर्ण है और सुरुचिपूर्ण भी। भौतिक विज्ञान के सम्पूरकता-विषयक दर्शन एव सिद्धान्त तथा दो हजार वर्ष पूर्व प्रतिपादित जैन दर्शन के स्याद्वाद के बीच एक निकट साम्य है।

वर्तमान जगत जहा एक ओर विज्ञान और तकनीक के विकास से सुसज्ज है, वही हिंसा लोभ और घृणा से उद्वेलित भी है। अतः अनिवार्य हो गया है कि आज की शैक्षिक योजनाओ मे अहिंसा के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक शिक्षण को प्रमुखता दी जाय। चरित्र-निर्माण, नैतिक अभ्युदय तथा मानवीय मूल्यो के उन्नयन के लिये तो यह अपरिहार्य है। यह बात बरबस ही हमारा ध्यान अल्बर्ट आइन्स्टीन की उक्ति (१९५०) की ओर आकर्पित करती है—"मानवीय पुरुषार्थ के समक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौती का कार्य यही है कि हमारी क्रियाओ मे नैतिकता की प्राण प्रतिष्ठा का प्रयास किया जाय। हमारा आन्तरिक सन्तुलन और अस्तित्व भी इसी पर आधारित है। कार्यों मे नैतिकता की प्रतिष्ठा से ही हमारे जीवन मे सौन्दर्य एव सम्मान की प्रतिष्ठा हो सकती है। शिक्षा के समक्ष आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यही है कि मानवीय चेतना के स्तर तक उठाकर उसे एक जागृत शक्ति का स्थान प्रदान करे।"

मानव जाति का भविष्य अब विज्ञान औह अहिंसा के हाथो मे सन्निहित है। अहिंसानिष्ठ धर्म ही निर्भयता करुणा और सबके प्रति आत्मीयता का धर्म है। दमन और अन्याय के विरुद्ध विचार, वाणी और क्रिया मे व्यक्त अहिंसक सघर्ष का व्यवहार-सम्मत प्रयोग महात्मा गाँधी ने हमारे युग के समक्ष कर दिखाया है। यही शाश्वत धर्म है। यदि कहना सगत रहे, तो सम्प्रदायमुक्त अहिंसा धर्म है।

—डी. एस. कोठारी
प्रोफेसर इमेरिटस
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
एव
भूतपूर्व अध्यक्ष,
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

ए-3, छात्र मार्ग,
दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर,
दिल्ली — 110007
अप्रैल 29, 1982

आतम-निवेदन

छः वर्ष से भी अधिक ही बीत गये । सघ के वरिष्ठ, प्रबुद्ध कार्यकर्ताओ की ओर से प्रेरणा मिली कि मैं आचार्य प्रवर के जीवन का इतिवृत्त प्रस्तुत करने की दिशा में अपना श्रम, समय और योग्यता सन्नद्ध करू । प्रेरणा अथवा निर्देश के इस अपेक्षा-वृत्त मे मैं ही क्यो समेटा गया, यह बात वे सज्जन, जो इसकी आवश्यकता अनुभव करते थे, ही जानें । क्योकि इससे पूर्व मेरा लेखकीय अनुभव अपरिदृष्ट था । मेरी प्रसन्नता की सीमा नही रही । इतना पावन सुयोग हाथ लगा, जैसे किसी गू गे भिक्षुक के पात्र मे अयाचित ही मधुर प्रसाद आ पडा हो । केवल उत्साह, केवल उल्लास, केवल उमग और केवल सुयोग का गर्व । इस उत्साह ने एक ही प्रतीति पर अपना पाल तान दिया—यह कार्य मेरे लिए सर्वथा अनुकूल और सुगम रहेगा । मन आचार्य प्रवर से निकटता के व्यामोह मे सराबोर था, अत कार्य को पूर्ण कर डालने के लिए विश्वास डोरी तुडा रहा था । किन्तु अब, जब कार्य अपनी तथाकथित पूर्णता को प्राप्त हो चुका है, अनुभव करने लगा हूँ कि इतिवृत्त नही बन सका; एक अधूरा-सा अथवृत्त उकेर पाया हूँ । इस माध्यम से अथ की एक सामान्य परिक्रमा हो पाई है, इति की अवस्थिति अछोर पर है ।

श्रद्धा के नाते अनेक लोगो को आचार्यवर की निकटता प्राप्त है । मुझे भी इस सौभाग्य से वचित नही माना जाता, किन्तु लेखन-प्रयास की मनोभूमि गढते समय ही निकटता के व्यामोह के शृ ग ध्वस्त होने लगे । दूरियो के नये आयाम उभरने लगे । गति की नई दिशाओ मे परिचय होने लगा । प्रयास के स्वरूप-ग्रहण के प्रथम चरण मे ही निकटता का व्यामोह उपहास का विषय बन गया ।

हम जीवन के केन्द्रीयसत्य पर अवलम्बित है । वह सत्य ही हमारा शुद्ध स्वरूप है, किन्तु हम अपने स्वरूप और केन्द्रीय सत्य से ही बहुत दूर है । उस सत्य से परिचय के लिए, उसके उदय के लिए सुदीर्घ साधना अपेक्षित है । आचार्य प्रवर जीवन के उस केन्द्रीय सत्य के प्रतीक तथा स्वरूप है । उन्होने वे दूरियाँ तय कर ली है, जिन पर विजय के लिए जन्म-जन्मान्तर की अकूत साधना होमनी पडती है । हम उनके परिपार्श्व मे बैठते है, किन्तु वस्तुत. वे हम से बहुत दूर स्थित है । अत प्रत्यक्ष होने लगा कि उनके निकट पहुँचने के लिए मुझे अपने केन्द्रीय सत्य के निकट पहुँचना होगा । उसके लिए अजोख तप, अडिग पौरुष और असीम गुरु-कृपा का साधन अपेक्षित होगा । कितनी साधना होमनी

पड़ेगी और समय की कौन-सी राशि समर्पित करनी होगी, यह सहज रूप में कल्पनीय भी नही है। स्वाभाविक ही है कि मै उनके अथ की परिक्रमा कर सका। अत: उनके जीवन का यह अथवृत्त बना, इतिवृत नही। शायद मुझसे अथवृत्त की ही अपेक्षा की गई थी और निर्देश देने वालो की भावना भी यही रही होगी। जीवन-वृत्त आलेखन के इस आयोजन मे गरिमामय व्यक्तित्व की एक परिक्रमा पूरी हो गई और अब मुझे भरोसा हो गया है कि इस प्रयास ने आचार्य प्रवर के निकट पहुँचने की एक बुनियाद अवश्य रख दी है।

सरदार शहर (राजस्थान) वर्षावास के उपरान्त आचार्य देव के निर्देशानुसार अन्य मुनि-पु गवो के साथ मुझे देशनोक (राजस्थान) से छत्तीसगढ (मध्यप्रदेश) प्रान्त के लिए प्रस्थान करना था। जीवन वृत्त के आलेखन की प्रेरणा ने सकल्प का रूप धारण कर लिया था और मानस-पटल पर कार्य की रूपरेखा भी उभरने लगी थी। प्रस्थान के पूर्व दिवस की बात है। रात्रि के नौ वजे ज्ञानचर्चा के उपरान्त मै आचार्यदेव के चरणाश्रय मे उपविष्ट था मैने पूज्यपाद के समक्ष विनम्र जिज्ञासा प्रस्तुत की –"भन्ते, मै पूज्य चरण के विगत जीवन-प्रसगो के कुछ सस्मरण सुनना चाहता हू।" प्रारम्भ मे आचार्यदेव ने अनिच्छावश कुछ टालने का प्रयास किया, किन्तु अन्तत: मेरी विनम्र प्रार्थना सफल हुई। उन्होने तटस्थ भाव से ही, किन्तु सावधानीपूर्वक-छाट-बीनकर अपने सस्मरण प्रस्तुत किये। न आग्रह, न अलकरण; न झिझक, न दार्शनिक पिष्टपेषण उन्होने सीधे-सपाट तरीके से स्मृति-चित्रो को वाणी दी। लगभग डेढ घन्टे तक वे धाराप्रवाह बोलते गए। मै मन्त्र-मुग्ध सा सुनता और स्मृतिसात् करता गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो नीरव निशा का समग्र गात ही उन्ही चित्रो से भर गया हो प्रात:काल मैने उन प्रसगो को सकेत बद्ध कर लिया।

अब मेरे पास अपने कार्य को स्वरूप देने के लिए पर्याप्त सामग्री थी। प्रारम्भ मे एक सामान्य परिचायिका की योजना थी, किन्तु कार्य ने जब इस ठाठ को सजोना-भरना प्रारम्भ किया, तब पता लगा कि वस्तुत: यह सुगम नही; वरन् अति श्रमसाध्य था। फिर भी सहयोग जुटाना नही पडा, उसकी तो वाढ-सी आ गई। मैंने तो प्राय. बीनबरकाकर शब्द-योजना भर दी है।

वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार हाइड्रोजन परमाणु का एक इलेक्ट्रोन अपने केन्द्र के चारो ओर एक सैकिण्ड मे 6000 खरब चक्कर काटता है। आगमिक सिद्धान्तानुसार एक परमाणु एक समय (काल के सूक्ष्मतम अ श) मे लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक गति कर सकता है। गगन मे दीप्तिमन्त चॉद-सितारे अविरल गतिमत्ता से अपने यात्रा-पथ पर अनवरत धावमान है। चिरकाल से प्रवहमान सिलिलाओ की गति किसी से छिपी नही है। सृष्टि के समस्त चराचर गतिशील है। यही नही, निरलस प्रकृति का अणु-अणु गतिशीलता का

सन्देश दे रहा है। गतिमत्ता का यह क्रम जड,चेतन एवं चराचर सभी को अपनी मर्यादा मे बाधे हुए है। जड की गति निसर्गज होती है, तो चेतन की निसर्गज एव प्रयोगज, उभयरूपा। महावीर-दर्शन ने पदार्थ मात्र के लक्षण के रूप मे गतिमत्ता को स्वीकार किया है। कैवल्य ज्योति से प्रभासित होते ही प्रभु महावीर का प्रथम उपदेश "उपन्नेइवा विगमेइवा धुवेइवा" के रूप मे प्रस्फुटित हुआ था, जिसे वाचक मुख्य उमास्वाति ने वस्तु-द्रव्य के लक्षण के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया "उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तसत्।" इस रूप मे गतिशीलता पदार्थ का अनिवार्य गण है। चाहे वह पदार्थ चिति सम्पन्न हो या अचित।

शरीर का प्रत्येक कोशाणु तीव्रवेग से अनवरत धावमान है। जब तक यह गति है, जीवन जीवन की सज्ञा पाता है। कोशाणुओ मे गत्यवरोध जीवन को संकटापन्न बना देता है, तो गति का स्थगन जीवन को मृत। इस आपेक्षिक दृष्टि से गति जीवन है और स्थिति मृत्यु।

जीवन सक्रियता अर्थात् गतिशीलता का प्रतीक है। यह सक्रियता एव गतिशीलता ही जीवन को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करती है। गति यदि क्रमबद्ध एव व्यवस्थित हो और लक्ष्य सुस्थिर हो, तो जीवन अपनी चरम स्थिति का साक्षात्कार कर सकता है। वही गतिक्रम एक यात्रा की सज्ञा पा लेता है।

चू कि सृष्टि का सर्वोच्च विचारशील प्राणी मानव है, अत उसकी जीवन-यात्रा अधिक क्रमबद्ध एव व्यवस्थित होती है। वह यात्रा विविध आयामी होती है, क्योकि लक्ष्यभेद के कारण दिशा भेद का होना स्वाभाविक है।

कुछ यात्री बाह्य यात्रा पथ पर गति करते हैं। वे प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्यो की खोज करते है। वे दिशान्तो तक व्याप्त जड तत्त्व के उद्गम तथा स्थिति के रहस्यो की बोधगम्यता के लिए समर्पित होते हैं। दूसरी ओर कुछ यात्री बाह्य जगत से ऊपर उठकर अन्तर्पथ की यात्रा करते हैं। इसे हम अध्यात्म-साधना कहते है। अध्यात्म-साधना का अर्थ है – भीतर की यात्रा। सृष्टिक्रम मे अगणित यात्री इस यात्रा पथ पर गति आरम्भ करते हैं। वे अगणित पडावो को पार करते हुए द्रुतगति से बढते जाते है। किन्तु महत् आश्चर्य है कि इन सख्यातीत यात्रियो मे से अपने चरम केन्द्र बिन्दु तक विरले यात्री ही पहुँच पाते हैं। अन्य अगणित यात्री पड़ाव-दर-पडाव ही रेंगते रहते है। न उनका कोई निश्चित गन्तव्य होता है, न कोई अन्त्य केन्द्र।

इसका प्रमुख कारण है, जन साधारण का अन्तस्तत्व से अपरिचय। उसके जीवन की पूरी यात्रा बाहर की ओर हो रही है। शिक्षा भी उसे बाहर की ओर ही ले जाती है। वर्तमान के अधिकाश अनुसधान एव प्रयत्न भी बाहर की ओर ही भटकाने वाले हैं। भीतर की यात्रा की न कोई तीव्र प्यास है, न उसके लिए कुछ अवकाश ही। व्यक्ति बाहर मे इतना व्यस्त है कि उसे इस चिंतन का भी अवकाश नही कि उसे भीतर की भी यात्रा करनी चाहिये।

वास्तविकता यह है कि बाहर जितना दृग्गोचर होता है, उससे बहुत अधिक उपलब्ध होता है भीतर । जो भीतर की यात्रा कर लेता है, उसे बाहर का सत्य असत्य प्रतिभासित होने लगता है । अन्तर्यात्रा से परिदृष्ट सूक्ष्म रहस्यो के समक्ष बाहर का स्थूल जगत् निष्प्रभ एवं सत्वहीन ही भासित होता है । जब तक भीतर की यात्रा प्रारम्भ नही होती, यह ज्ञात नही हो पाता कि भीतर भी कुछ अन्वेषणीय है और उसी के द्वारा अमाप आनन्द के द्वार उद्घाटित किये जा सकते है ।

अध्यात्म-साधना की अनिवार्यता इसीलिए निर्विवाद है कि उसके द्वारा चेतन के सूक्ष्मतम रहस्यो का उद्घाटन कर चरम एव परम सत्य के द्वार तक पहुँचा जा सकता है । जैसे दिन भर का थका हुआ पक्षी नीड के आश्रय मे विश्राम पा लेता है, वैसे ही बहिर्मुखी प्रवृत्तियो से त्रस्त या थका हुआ व्यक्ति कही विश्राम ले सके, कही शाति का अनुभव कर सके, वह स्थान है केवल अध्यात्म, केवल भीतर मे प्रवेश । जो बाहर से थका हुआ है, उसे बाहर की कोई भी वस्तु विश्राम अथवा शान्ति नही दे सकती है । बाहर की थकान का प्रतिकार अन्त प्रवेश के द्वारा ही सम्भव है ।

अध्यात्म मे ही जीवन के चरम पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति होती है । विकसित मानवीय चेतना के स्तर पर आकर ही आत्म-ज्ञान साधना का विषय बनता है । बाह्य सघर्षो मे व्यस्त मानव-समाज इस दिशा मे बढने का अवकाश नही पाता और व्यस्तताओ तथा सघर्षों के भी दर्शन खडे हो गये है, किन्तु यह स्पष्ट है कि यह सघर्ष-जाल जीवन का लक्ष्य नही है । बाधाओ पर विजय के लिए सघर्ष खडे होते है, किन्तु मानव चेतना इन सघर्षों पर भी विजय प्राप्त करना चाहती है । सघर्षो पर विजय की दशा जीवन के लिए अवकाश उपार्जित करने की दिशा है । यह अवकाश ही जीवन की सही दिशा है । जब भी सभव हो सकेगा, मानव उस अवकाश का उपयोग आत्म साक्षात्कार के लिए ही करेगा । समय-समय पर अवतरित विराट् चेतनाओ ने अध्यात्म की दिशा मे महती उपलब्धियाँ अर्जित की है । वे उपलब्धियाँ ही हमे प्रेरणा व पथ देती है । जीवन का सघर्ष आज अपनी चरम स्थिति मे है, अत. जीवन के शाश्वत मूल्यो की माग भी तीव्रतम है । अत यह तय है कि ये सघर्ष हमे अध्यात्म की दिशा में तेजी से बढने को प्रेरित कर रहे है ।

किन्तु अन्त प्रवेश की इस यात्रा मे कोई अलौकिक जीवट का धारक व्यक्तित्व ही कदम बढा सकता है और वही उस यात्रा के चरमान्त का स्पर्श भी कर सकता है । यहाँ अन्तर्पथ के एक ऐसे ही महान् यात्री का जीवन वृत्त उपस्थित है । उस महान् एव सफल यात्री मे अ तश्चेतना मे प्रवेश की कितनी प्रचण्ड जिज्ञासा है, उसका कितना जीवटपूर्ण सकल्प है और वह उस सकल्प के प्रति अपने सारे जीवन को किस प्रकार दाव पर लगा देता है, सत्यान्वेपण के प्रति

। कितनी जीवन्त प्यास है और उसके द्वारा वह आत्म-साक्षात्कार के अनि-
ोय आनन्द मे किस प्रकार डूब जाता है, आदि जिज्ञासाओ का समाधान
कृति के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

आचार्य प्रवर का जीवन साधना का जीवन है । उनकी साधना सत्य-
ा की साधना है तथा सत्य-दर्शन के विषय मे उनकी यह सुनिश्चित अव-
ःणा है कि "तमेव सच्च-निसक जिणेहि पवेइय ।" वही सत्य और सशया-
। है, जिसे जिनेश्वर भगवन्तो ने प्रतिपादित किया है ।

सत्य सत्य है, उसे तर्क की कसौटी पर कसते रहना बेतुका है । सत्य
ाकर्य एव अविभाज्य है, सत्य को जाना नही, जीया जाता है । यह तत्त्व द्रष्टा
नेश्वरो का शाश्वत प्रतिपादन है । वर्तमान का युग तर्क का युग है, अत सत्य
। यात्रा दुरुह होती जा रही है । यद्यपि महावीर के दर्शन मे "पण्णा समिक्खए
म्म" के द्वारा तर्क की प्रतिष्ठा भी की गई है तथापि पूर्ण सत्य के दर्शन मे
तक्का तत्थ न विज्जई, मइ तत्थ न गाहिया" सूक्तो द्वारा तर्क एव प्रज्ञा को
किंचित् कर घोषित कर दिया गया है ।

इसी तर्कणातीत सत्य का साक्षात्कार आचार्य देव की साधना का पुनीत
क्ष्य है । वे अपने इस लक्ष्य मे किस सीमा तक सफल हुए है, यह हमारे चिन्तन
ा विषय नही है । किन्तु इतना मै विश्वास के साथ कह सकता हू कि आचार्य
ेव अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण सजगता के साथ समर्पित है तथा चरम केन्द्र
ंवन्दु तक पहुँचने के लिए अनवरत सावचेत एव गतिशील हैं । उनकी समत्व
प्रज्ञा अपने अन्त शोध के पथ पर द्रुतगति से धावमान है । उनके चेतना के
केन्द्र मे सत्य दर्शन अथवा समत्व दर्शन का व्यापक विस्फोट हुआ है इसीलिए
उसमे स्वात्मलीनता के साथ समाज को कुछ दे देने की बेचैनी भी है । वे समाज
मे चली आ रही रूढ-धारणाओ एवं मिथ्या मान्यताओ पर अपने प्रवचनो के
माध्यम से करारा प्रहार करते हैं । इसी प्रकार निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के विकास
मे अपने आपको समिधा के रूप में प्रस्तुत करते हैं । इसी आधार पर वे अपने
सघ के बहुमुखी विकास हेतु सतत प्रयत्नशील रहते है ।

साधना के क्षेत्र मे वे अपने शिष्य-समुदाय के समक्ष नित नूतन आयाम
उद्घाटित करते हुए अपनी पुरातन मर्यादाओ के प्रति सतत जागृति का सकेत
भी प्रस्तुत करते रहते हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ रूढिगत धारणाओ से ऊपर उठकर आचार्य श्री ने
परीक्षाप्रणाली का शुभारम्भ किया । फलस्वरूप एक क्रमवद्ध शिक्षा का
विस्तार सघ के श्रमण-श्रमणियो मे होता जा रहा है । अपने शिष्य समुदाय
वे निरन्तर तल-स्पर्शी अध्ययन हेतु प्रेरणा प्रदान करते रहते है ।

आचार्य देव के व्यक्तित्व की महत्तम विशेषता यह है कि वे

साधु-साध्वियों की सुव्यवस्थित सेवा-सयोजना के प्रतीक है। चूंकि मैं आ
देव के आचार्यत्व काल की अधिसंख्य घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं, अत
अनुभव है कि रुग्ण-सन्तों की सेवा के लिए उनमे जीवन्त तत्परता है। वे
प्रसगो पर रात-रात भर सजगवृत्या सेवा साधना मे सलग्न हो जाते हैं।

सघीय व्यवस्थाओ मे इतनी अधिक तत्परता के उपरान्त भी आचार्य
"भावणा जोग सुद्धप्पा जले नावा व आहिया" आगम वाक्य के अनुसार
कमलवत् इन सबसे अपने को असपृक्त रखने के भी पूर्ण अभ्यासी है। अ
आचार्य देव निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के परम पावन अग्रदूत हैं। उनका जी
त्याग, तप और वैराग्य का प्रतिबिम्ब है। विशुद्ध चरित्र-निष्ठा मे उनका अ
विश्वास है। आचार्यश्री क्या है ? ज्ञान और कृति के सुन्दर समन्वय। वि
और आचार के बिम्ब-प्रतिबिम्ब। सैद्धान्तिक विचार-विमर्श मे किचित् म
भी लाग-लपेट एव सकोच नही रखते हुए विचारों को खुली अभिव्यक्ति देने
कला उनका स्वभाव है। उनकी अतलग्राही मेधा सूक्ष्म प्रज्ञा, विलक्षण प्रति
अद्‌भुत विचारणा, अपूर्व तर्कणा शक्ति से सुसज्ज है।

आचार्य देव द्वारा ही प्रस्तुत परिभाषा "सम्यग् निर्णायकं समता मयञ्
यत्तजीवनम्" के अनुसार आचार्यश्री का जीवन दर्शन समता का साकार प्रति
बिम्ब है।

यहा पाठक यह कल्पना कर सकते है, और मेरा विश्वास है, उनकी
कल्पना होगी भी कि यहाँ एक गुरु-भक्त विनय ने अपने गुरु की निरी प्रशसा
के पुल बाँधे है। किन्तु ग्रन्थ का अद्यन्त अवलोकन उनकी इस भ्रान्ति को स्वत.
निर्मूल कर देगा।

आचार्य देव का जीवन विराट् जलधि सा है। उस अथाह महोदधि से
मे कितनी दिव्य मुक्ता निकाल पाया हूं, यह कह पाना मेरे लिए कठिन है।
महासागर मे अगणित एवं अमित रत्न राशि होती है। गोताखोर उनमे से
कितने निकाल पाता है, बस इतना ही काम मैं कर पाया हूं।

इस संक्रान्ति वेला मे मानव को अध्यात्म-साधना के जीवन्त केन्द्रों का
परिचय मिलना चाहिए। पुस्तक का प्रयोजन इस अर्थ मे बहुत बढ़ जाता है।
यह विज्ञापन नही, बल्कि मानव-जीवन के विकास की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण
कार्य होगा।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रारम्भ मे एक परिचयिका का ही लक्ष्य
स्थिर हुआ था, किन्तु यह कार्य बढता गया, सहयोग उपलब्ध होते गये और यह
कृति एक विशालकाय ग्रन्थ के रूप मे परिणित होती गई। अतः यह अनिवार्य
हो गया कि इसे दो खण्डो मे विभक्त किया जाय।

अस्तु, ग्रन्थ के प्रथम खण्ड मे आचार्य प्रवर के "जीवन-दर्शन" को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है प्रथम खण्ड 'जीवन-दर्शन' को सात प्रकरणो मे विभक्त किया गया है—

1– प्रथम प्रकरण 'जीवन का उष काल' में जन्म एव पारिवारिक परिवेश से लेकर प्रव्रज्या स्वीकार तक का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

2– द्वितीय प्रकरण 'साधना के पथ पर' मे मुनि जीवन के साधना काल–ज्ञान-ध्यान, सेवा एव तपश्चर्या आदि प्रसगो का उल्लेख है।

3– तृतीय प्रकरण 'यात्रा पथ' मे मुनि जीवन के विभिन्न यात्रा-प्रसगो एव उल्लेखनीय घटनाओ को अभिव्यक्ति दी गई है ।

4– चतुर्थ प्रकरण 'युवाचार्य' मे युताचार्य पद प्राप्ति तथा आराध्य गुरुदेव की सेवाओ का वर्णन हुआ है।

5– पचम प्रकरण 'आचार्यत्व के पावन पथ पर' मे आचार्य पद प्राप्ति, प्रथम वर्षावास एव प्रारम्भिक दिक्षा-प्रसगो को उल्लेखित किया गया है।

6– षष्ठ प्रकरण 'सामाजिक उत्क्राति का सूत्रपात' मे युगान्तरकारी प्रवृति धर्मपाल-जागरण का उल्लेख है।

7– सप्तम प्रकरण 'चातुर्मासिक उपलब्धियाँ' मे विभिन्न वर्षावासो के उल्लेखनीय घटना-प्रसगो को विवेचित किया गया है।

प्रथम खण्ड मे व्यक्तित्व-निरूपण को प्रस्तुत करने के पश्चात् द्वितीय खण्ढ 'विचार-दर्शन' को भी पाच प्रकरणो मे विभक्त किया गया है।

1– प्रथम प्रकरण 'समता-दर्शन' में आचार्यश्री की राष्ट्र के लिए अमूल्य देन समता-दर्शन को विवेचित किया गया है।

2– द्वितीय प्रकरण 'समीक्षण ध्यान' युग की ज्वलन्त समस्या को समाहित करने का उपक्रम है।

3– तृतीय प्रकरण 'प्रवचन-मीमासा' मे आचार्यप्रवर के प्रवचनो की विषय-वस्तु का दिग्दर्शन कराया गया है।

4– चतुर्थ प्रकरण 'प्रश्न मेरे–उत्तर आचार्यश्री के' मे आज की कुछ ज्वलन्त जिज्ञासाओ का विस्तृत समाधान है।

5– पचम प्रकरण 'चिन्तन-कण' मे आचार्यप्रवर के कतिपय मौलिक चिन्तन-कणो को सकलित किया गया है ।

आलेखन का आयोजन यो प्राय. पूर्ण हो गया, किन्तु यह पूर्णता विषय की नही है। ग्रन्थ की पूर्णता ने मुझे बौनेपन का अहसास दिया है । यदि यह कार्य किसी समर्थ शिल्पी के हाथो से सम्पन्न होता, तो आचार्यवर के

गरिमामय जीवन को अधिक सही अभिव्यक्ति मिल पाती। मेरे पास भाषा, शिल्प और सम्प्रेषण की वह योग्यता नही है जो, विषय का न्यायसम्मत निर्वाह कर सके। अत: इस ग्रन्थ मे दो समानान्तर धाराए प्रवाहित है।—एक आचार्य देव के महिमामय जीवन प्रसगो की और दूसरी मेरी क्षमतागत दुर्बलताओ की। सुधी और श्रद्धावान् पाठको से यही निवेदन है कि वे अभिव्यक्ति की अकुशलता के लिए मुझे क्षमा करते हुए श्रद्धेय गुरुदेव के जीवन प्रसगो से ही प्रेरणा ले। यदि कही त्रुटियाँ रह गई हो, तो उनके लिए मै ही उत्तरदायी हूँ।

इस ग्रन्थ लेखन मे आचार्य महाप्रभु की परोक्ष अनुकम्पा के अतिरिक्त सर्वतो महत् सहकार मुझे मुनि मण्डल-का प्राप्त हुआ। चूँकि इस लेखनावधि मे महातपोधनो, सेवा की साकार प्रतिमा श्री अमरचन्दजी म. सा., तपस्वी श्री रतन मुनिजी, सेवा समर्पित श्री भूपेन्द्र मुनिजी एवं महान् तपस्वी श्री बलभद्र मुनिजी का सहवास 3–4 वर्ष रहा, अत: इन सभी महामुनियो का सहकार अविस्मरणीय है। विशेषतया घोर तपस्वी द्वय एव सेवाभावी श्री भूपेन्द्र मुनि जी का कृपापूर्ण सहयोग विस्मृत नही किया जा सकता, जिन्होने मुझे प्राय: सभी अन्तरग कार्यो से मुक्त कर इस कार्य हेतु समर्पित होने का अवकाश प्रदान किया।

विश्रुत विद्वान् महामान्य श्री शिवशकरजी त्रिवेदी का ग्रन्थ का आद्यन्त अवलोकन कर सम्पादन सम्बन्धी परिष्कार किसी भी कीमत पर उपेक्षणीय नही हो सकता है। उनके अमूल्य सहयोग से ही कृति को पूर्णता प्राप्त हुई, यह कहना वास्तविकता से बहुत करीब है। हिन्दी के प्रमुख समीक्षक और जैन दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नरेन्द्र भानावत, प्रोफेसर राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के सशोधनात्मक सुझावो का भी यथास्थान उपयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त वर्षो से सघसेवा मे समर्पित अनन्य आस्था पुञ्ज पण्डित श्री लालचन्दजी मुणोत की सेवाओं को भी कैसे विस्मृत किया जा सकता है? उन्होने समय-समय पर सस्मरण सगृहीत कर मुझ तक पहुँचाने का कार्य बड़ी तत्परता के साथ किया।

अन्य सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोगियों की संस्मृति के साथ अपने इस विरल, किन्तु विपुल प्रयास को "त्वदीय योगीन्द्र, तुभ्यमेव समर्पयेत्" की भावना के साथ महामहिम आचार्य महा प्रभु के चरणों मे विनम्राञ्जलि रूप मे प्रस्तुत कर देता हूं।

श्रेयो भूयात्। —शान्ति मुनि ★

* अनुक्रमणिका *

प्रकाशकीय

Forword — Dr. D S. Kothari

प्राक्कथन (हिन्दी अनुवाद)

आत्म-निवेदन — श्री शांति मुनि

अनुक्रमणिका —

प्रथम खण्ड

जीवन–दर्शन

जीवन–दर्शन १ से ६६६

जीवन का उष काल १ से ६४

युग चेतना १, अरुणोदय ५, कल्पना के दिव्य शिखर पर ८, वज्राघात १३, व्यापार की ओर १८, निमित्त की चिनगारी २२, काल-दिग्दर्शन और वैराग्य २७, प्रयाण सत्य के द्वार तक ३०, विरक्ति की देहरी पर ३२, सघर्ष की ओर ३४, गुरु की खोज मे ४२, कठोर तप साधना का वज्र सकल्प ४६, दीक्षा एक पर्यवेक्षण ५५, सागार से अणगार ५८।

साधना के पथ पर ६५ से १२८

साधना के पथ पर ६५, आत्म-सयम-साधना ७७, देह-तितिक्षा ८०, विनय और विवेक ८२, वाणी-सयम ८७, तप : अनुभूति वोध का पथ ९२, ध्यान व्याख्या एव मीमासा १०३, श्वासानुसधान ११९, भावातीत ध्यान १२३।

यात्रा-पथ १२९ से २०४

यात्रा-पथ १२९, ज्योतिर्धर आचार्य के चरणो मे १३३, परीक्षा और जागरण १३८, अटवी के मध्य १४४, क्या हमें पैर छूने देंगे १४९, चरित नायक की सैद्धान्तिक दक्षता १५९, स्वास्थ्य : अपना या आचार्य देव का १७१, श्रमण–मर्यादा के एकाकी निर्भीक प्रहरी १७७, श्रमण सस्कृति के पोषक निर्भीक प्रवक्ता १९०, आत्म-पुकार का साक्षी भाव २०१।

युवाचार्य २०५ से [illegible]

सघ के भावी आधार २०५, युवाचार्य पद-समर्पण का दृश्य २२३, माँ का हृदय २३८, आचार्य पद की महत्ता २४०, मरण आत्मा का अलकरण २४६, आचार्य श्री का समाधि मरण २५३, नवोदित आचार्य का अभिषेक २५९, श्रद्धांजलि-समर्पण २६१।

आचार्यत्व के पावन पथ पर २७३ से ३४६

आचार्य जीवन का शुभारम्भ २७३, विदाई-वेला २७५, प्रथम शिष्य-शिष्या २८०, चातुर्मासार्थ रतलाम नगर प्रवेश २६६, दैनन्दिन-क्रम २९९, विशेष प्रसग ३०४, क्षमा का अपूर्व आदर्श ३०८, अनुभूति का आलोक और ज्योतिष ज्ञान ३११, विदाई के क्षण ३१४, ग्रामीण अचलो मे ३१६, इन्दौर मे ३३४।

सामाजिक उत्क्रांति का सूत्रपात ३४७ से ३७६

सामाजिक उत्काति की पृष्ठभूमि ३४७, इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ ३५२, बलाई से धर्मपाल ३५६, विस्मय और समाधान ३६२, जहा पुण्णस्स-तहा तुच्छस्स ३६८।

चातुर्मासिक उपलब्धियाँ ३७७ से ६६६

इन्दौर चातुर्मास ३७७, रायपुर चातुर्मास ४०५, अनार्थ देश : आर्य सन्देश ४२२, राजनांद गाँव चातुर्मास ४४२, दुर्ग चातुर्मास ४५५, अमरावती चातुर्मास ४८३, मन्दसौर चातुर्मास ५०६, बड़ी सादडी चातुर्मास ५२६, ब्यावर चातुर्मास ५४५, जयपुर चातुर्मास ५५३, बीकानेर चातुर्मास ५५८, सरदार शहर चातुर्मास ५७३, देशनोक चातुर्मास ५८०, नोखा मण्डी चातुर्मास ५८३, गगाशहर—भीनासर चातुर्मास ५९२, जोधपुर चातुर्मास ६०२, अजमेर चातुर्मास ६११, राणावास चातुर्मास ६२२, उदयपुर चातुर्मास ६३४, अहमदाबाद-प्रवास, ६५०, उपसहार ६६४।

द्वितीय खण्ड

विचार-दर्शन ६६७ से ८८०

वैचारिक परिवेश ६६७, समता-दर्शन ६६९, समीक्षण ध्यान ७०७, प्रवचन-मीमासा ७४३, प्रश्न मेरे : उत्तर आचार्य श्री के ७१९, चिन्तन-कण ८५१।

परिशिष्ट ८८१

१. अष्टाचार्यों की जीवन-झांकी
२. आचार्य श्री के गुरु भ्राता एवं शिष्य
३ आचार्य श्री की आज्ञानुवर्तिनी महासतियाँ

अर्थ-सहयोगी भूरा परिवार

बीकानेर जिले के देशनोक मे जन्मे और शिक्षित हुए स्व० सेठ श्री भीखमचन्दजी भूरा सफल व्यवसायी होने के साथ ही साथ अग्रगण्य समाजसेवी थे। धर्म साधना और स्वाध्याय के प्रति आप आजीवन जिज्ञासु बने रहे। जैन बीसा ओसवाल कुल मे विक्रम सम्वत् १९४७ कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन जन्मे सेठ श्री चाँदमलजी भूरा के इकलौते पुत्र, दानवीर सेठ स्व० श्री भीखम चन्दजी भूरा ने ७ वर्ष की आयु मे श्री मगनीरामजी गुरांसा से शिक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ किया और केवल १४ वर्ष की आयु मे आपने करीमगज असम की यात्रा कर कपडे की दुकान खोली। आपने अध्यवसाय और प्रामाणिकता से काम कर अपने व्यवसाय की चहुँमुखी प्रगति की, साथ ही हिन्दी, बगला, बहीखाता और व्यवहार ज्ञान भी प्राप्त किया। नवीन ज्ञान-अर्जन करने की लगन आप मे जीवन भर जागती रही।

स्व० श्री सेठ भीखमचन्दजी ने सिलचर और कलकत्ता मे अपनी फर्में स्थापित की। आपने सन् १९४७ मे आसाम एल्यूमीनियम कारखाने का आसाम के तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी से शुभारम्भ करवाया। आपने १९५९ मे करीमगज मे "भीखमचन्द बालिका विद्यालय" का शुभारम्भ स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी के कर कमलो से सम्पन्न कराया। आज इस शाला मे १००० छात्रायें अध्ययनरत हैं।

आपने अनेक सस्थाओ को उदारता पूर्वक दान दिया है, जिनमे श्री सुरेन्द्र-कुमार साड शिक्षा सोसायटी विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो कि वैरागी भाई-बहिनो एव सन्त-सतियो के उच्चस्तरीय अध्ययन की व्यवस्था करती है। आपने जन-जन की सेवा हेतु देशनोक मे "भीखमचन्द भूरा सेवा सदन" नामक होम्योपैथिक औषधालय भी प्रारम्भ किया, जिससे प्रति वर्ष १५ हजार रोगी लाभान्वित होते हैं। देशनोक मे गौ-सेवा सघ द्वारा गायो को चूरी-वितरण मे भी आपके परिवार का पूरा सहयोग मिलता रहा है।

स्व० श्री भीखमचन्दजी भूरा ने जीवन पर्यन्त अपने गहन शास्त्रीय ज्ञान का उपयोग जिन-शासन की प्रतिष्ठा वृद्धि मे किया। आपकी सेवाओ तथा सादे जीवन और उच्च विचारो का आदर करने हेतु श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ ने अपने देशनोक अधिवेशन मे आपका अभिनन्दन कर सम्मान-पत्र भेंट किया था।

आपका विवाह भीनासर निवासी श्री बुधमलजी दफ्तरी की बडी कन्या सोनादेवी के साथ हुआ। श्रीमती सोनादेवी धर्मपरायणा, सेवा भावी, सरलमना महिला थी। इस धर्मनिष्ठ दम्पती से समाज को ५ यशस्वी पुत्र सर्वश्री तोलारामजी, चम्पालालजी, दीपचन्दजी, डालचन्दजी एव बालचन्दजी और एक कन्या रत्न श्रीमती सरस्वती बाई का दान मिला। आपके सभी पुत्र सफल व्यवसायी और समाजसेवक है। आपके पुत्रो के व्यापार का जाल असम, त्रिपुरा, बगाल, उडीसा, कर्नाटक, दिल्ली व राजस्थान आदि क्षेत्रो मे फैला हुआ है। सबसे बडे पुत्र श्री तोलारामजी का परिपक्व आयु प्राप्त करने से पूर्व ही निधन हो गया। स्व० श्री तोलारामजी समाज के अनन्य सेवक थे। पूरे असम क्षेत्र मे वे समादृत थे। बाढ हो या अन्य कोई दैवी-प्राकृतिक प्रकोप, वे समाज-सेवा मे अग्रेसर रहते थे। समाज को उनसे अपरिमित आशाये थी। श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ ने उनसे अध्यक्ष पद स्वीकार करने का आग्रह किया था, किन्तु पदो से दूर रह कर सेवा करने की भावना ही उनके जीवन का आदर्श था। अत उन्होने नम्रता पूर्वक अध्यक्ष पद स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। उनके असामयिक निधन से समाज की गहरी क्षति हुई है।

आपके द्वितीय पुत्र श्री चम्पालालजी भूरा देशनोक श्री सघ के अध्यक्ष रहे है। चतुर्थ पुत्र श्री डालचन्दजी भूरा सामाजिक तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मठ कार्यकर्ता है और सबसे छोटे पुत्र श्री बालचन्दजी भूरा भी एक होनहार युवक हैं। आपका पूरा परिवार जिन शासन प्रद्योतक आचार्य श्री नानालालजी म० सा० का परम भक्त है।

स्व० श्री भीखमचन्दजी भूरा के तृतीय पुत्र सौभाग्यशाली श्री दीपचन्दजी भूरा श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ के नव निर्वाचित अध्यक्ष है तथा समाज और सघ सेवा के कार्यो मे अहोरात्र सलग्न हैं। श्री दीपचन्दजी भूरा का देशनोक की नगरपालिका का सर्वसम्मत अध्यक्ष चुना जाना राजस्थान की नगरपालिकाओ के चुनाव-इतिहास की एक स्वर्णिम और आदर्श घटना है। साहसी और कुशाग्र व्यवसायी, निर्णय क्षमता, सगठन शक्ति और अदम्य उत्साह तथा असाधारण सूझ-बूझ के धनी श्री भूरा सा० ने लोक-कल्याण और सत्साहित्य प्रकाशन की उदात्त भावना से प्रेरित होकर "श्री भीखमचन्द दीपचन्द भूरा साहित्य प्रकाशन निधि" की स्थापना की है। सत् साहित्य प्रकाशन आज राष्ट्रीय माग है, जिसे इस निधि के माध्यम से पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे भी इस निधि से कुल व्यय का ५०% धन प्रदान किया गया है। उदारवेत्ता श्री दीपचन्दजी भूरा का यह यशस्वी योगदान पीढियो तक स्मरण किया जाता रहेगा।

प्रस्तावना

व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विलय के उपरान्त ही कोई साधक महात्मा की स्थिति प्राप्त करता है। व्यक्ति ससीमता का अभिवाचक है, माहात्म्य मे निस्सीमता व्यक्त होती है। सीमा का विकास निस्सीमता तक नही पहुँचता; सीमा का ह्रास ही निस्सीमता की सही दिशा है। अत. व्यक्तित्व का विकास माहात्म्य की दिशा नही है—व्यक्तित्व का समग्र विलय ही उसकी एकमेव शर्त है। व्यक्तित्व का निरूपण क्रियाशीलता से होता है, जबकि शिवत्व अखिल निस्पन्दता है। निस्पन्दता का सम्बन्ध जडत्व से जोडना प्रमाद का सूचक है। यह तो गति की पराकाष्ठा अथवा चिन्मयन की चरम स्थिति है। जडापेक्षी गति अवरोध की पराजय मे ही व्यक्त होती है। चेतना के तल पर गति को अवरोध के सापेक्ष्य मे नही समझा जा सकता। अत: निस्पन्दता को भी क्रियाशीलता के परिप्रेक्ष्य मे रखकर नही समझा जा सकता।

आध्यात्मिक साधन के जीवन मे क्रियाशीलता और निस्पन्दता का आशय अधिक बोधगम्य हो जाता है। जब तक साधक अह-वेष्टित विकारो के जडत्व से जूझता रहता है, तब तक वह क्रियाशील रहता है। जब वह अन्त.स्तर पर देह और मन के सघर्षो से तटस्थता प्राप्त कर लेता है, तब उसकी चिन्मयी निस्पन्दता का उदय होता है और उसे महात्मा कहा जाता है। तपस्या भी सघर्ष की स्थिति है, महात्मा के जीवन मे तपस्या का समग्र तिरोभाव हो जाता है।

भगवान् महावीर के आयुष्य के अन्तिम तीस वर्ष कर्त्तव्यनिश्शेषता अथवा निस्पन्दता के वर्ष थे। वहाँ व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति के प्रयोजन का सर्वथा विलय हो चुका था। काम और सकल्प की शून्यता के कारण उनका जीवन घटना-शून्य हो चुका था। बिना काम और सकल्प के जीवन की कोई इकाई किसी घटना से संयुक्त नही हो सकती। अत: भगवान के विषय मे जिन घटना-प्रसगो को मानव-मेधा ने अनुस्यूत कर रखा है, वे पार्श्ववर्ती, अवान्तर और आरोपित हैं। उनके जीवन मे निस्पन्दता थी। निस्पन्दता निरपेक्ष चेतना का स्वभाव है।

आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के विषय मे कुछ कहने का सुयोग मेरे जैसे व्यक्ति के लिये असमजस मे पड़ने का ही सयोग है। माहात्म्य अथवा महिमा का कोई उद्गाता नही होता। यह मेधा-सभव कार्य नही है। उनके घटनापरक व्यक्तित्व को उनका जीवन-चित्र नही कहा जा सकता। आचार्यवर मात्र एक साधक, तपस्वी तथा आचार्य नही है, उनकी विराटता उनके आध्यात्मिक पौरुष की बुनियाद पर खडी है। इस स्तर पर वे महात्मा है। उनके व्यक्तित्व का कथन उनके व्यतीत का कथन होगा।

एक बात और भी। आचार और व्यवहार, वाणी और कर्म, चिन्तन और लेखन शैलीबद्ध होते है। बन्धन की ग्रथियाँ सर्वत्र ही शैलीबद्ध होती है, मुक्ति मे शैली का लोप हो जाता है। शैली अभिव्यक्ति की होती है, आत्मानुभूति का शैली से कोई सरोकार नही। ऐसा इसलिये है कि शैली का केन्द्रक अह भाव है। अत अह के विसर्जन के साथ ही शैली का विलोप हो जाना स्वाभाविक है। इस बिन्दु पर आकर जीवनी-लेखक एक बेचारा प्राणी बन जाता है। लेखक का सर्वोच्च पाथेय शैली है और व्यक्तित्व की पकड़ मे केवल शैली ही आती है। अतः शैली के शीश पर केवल घटनापरकता ही उठ पाती है। मुझे विश्वास रहा है कि आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के जीवन मे कथ्य की अपेक्षा अकथ्य प्रधान रहा है, व्यक्तित्व की अपेक्षा माहात्म्य विशेष है। वहाँ सवेग कम, निस्पन्दता अधिक है। उनका जीवन सागर मे तैरते हिमशैल की भाँति प्रतीत हुआ है, जिसका बहुलाश तल मे समाधिमग्न और अल्पाश ही दृष्टि तक उभरा हुआ है। हिमशैल का दृष्टिगोचर भी विराट् हो सकता है, किन्तु वह उनकी पूर्णता का अभिवाचक नही कहा जा सकता। घटना समुच्चय के मणिभीय यौगिक को भी एक इतने महिमाशाली सन्त का अभिमूर्तन नही कहा जा सकता। व्यक्तित्व तो उनका बाह्य अथवा व्यतीत पक्ष है। उस व्यक्तित्व से उनका लगाव प्रायः छूट चुका है। वह तो हम जागतिक मनुष्यो के लिये ही वन्दनीय और अनुप्रेरक है।

आचार्य प्रवर के मेधावी शिष्य पण्डित रत्न श्री शाति मुनि ने उनके व्यक्तित्व-वृत्त को उकेरने का स्तुत्य एवं भव्य आयोजन किया है। किन्तु व्यक्तित्व के हर पक्ष को छू लेने का यह विराट् आयोजन भी आचार्य प्रवर के जीवन-वृत्त की आधी-अधूरी परिधि को ही अकित कर सका है। परिधि द्वारा वृत्त निर्देशित अथवा सकेतित तो हो जाता है, किन्तु परिधि को ही वृत्त नही कहा जा सकता। इस महिमामयी विराटता के परिचय-अकन का यह बडा कार्य मुनि श्री शान्तिलाल जी जैसे अडिग निष्ठावान साधक की प्रतीक्षा मे था। इसकी आवश्यकता युग को है।

मुनि प्रवर श्री शान्तिलाल जी ने इतना पर्याप्त और इतने समीप से कहा है कि पुस्तक की प्रस्तावना मे आचार्य भगवन् के विषय मे कुछ कहने के लिये

साहस सचय करना पडेगा। किन्तु आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व से केवल दो बिन्दुओ को छाटकर दो-चार वाक्य लिख देने की इच्छा हो रही है।

ध्रुवनैष्ठिक क्रान्ति के उद्गाता

बीसवी शती के पूर्वार्द्ध से ही भारतीय मानस विज्ञान की चकाचौध, भौतिकता के प्रसार और आधुनिकता के समावेश से आन्दोलित हो उठा था। इस प्रवाह ने चिन्तन को झकझोरा और लालसाओ की पेचीदी झझाए उत्थित की। जीवन के बाहरी आयाम पर चक्रवाती गतिशीलता आई। इस चक्रवात का सारा दबाव केन्द्र पर ही पडना स्वाभाविक था, अतः भारतीय अध्यात्म और सस्कृति के समक्ष भी एक बड़ी भारी चुनौती आ गई। देश के स्वाधीन होने के बाद तो यह चक्रवाती गति और भी तीव्र हुई। नई दृष्टि और नये चिन्तन के नये-नये उद्गाता आये। पूरब को पश्चिम से और अध्यात्म को विज्ञान से समन्वित करने के नारे उभरे। आधुनिक युग की दृष्टि से अध्यात्म को आँका जाने लगा।

भारतीय चिन्तन तो हजारो वर्षों से आध्यात्मिक चिन्तन और साधना को ही केन्द्र मानकर चलता आया था। कई केन्द्र इस वैचारिक झझा का दबाव सहन नही कर सके। वर्तमान में कुछ चिन्तक साधक भी इससे बहु प्रभावित हुए। युग को स्वय मे समाहित करने के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टि के समक्ष उन्होने अपनी स्थिति की सफाई देनी शुरू की। कई सघो एव साधको को इस शंका ने विचलित कर दिया कि कही विकास की इस तीव्रता मे उनके केन्द्रीय स्तम्भ ही उल्हा (आउट) न कर दिये जाय। मार्क्स, फ्रायड और डार्विन के विचारो की तुलना की जाने लगी। तुलना करना बुरा नही है, किन्तु इसमे भगवान् महावीर के विचारो की आहूति देकर उन्हे आधुनिक चिन्तन की हू-ब-हू तथ्यता घोषित करने की व्यग्रता परिलक्षित हुई। इन विचारकों को यह भ्रम सवार हो गया कि यदि मार्क्स, फ्रायड, डार्विन और आइन्सटाइन से मेल नही खा सको, तो महावीर की विचारधारा पिछड़ जायेगी।

बहुतो को भय हुआ कि कही वे सही अर्थों में संन्यासी न बना दिये जांय और दुनिया उन्हे अनावश्यक बोझ समझकर पीछे न छोड़ दे। बड़ी सजधज से नारे लगे कि विज्ञान, आधुनिकता और भौतिकता को आध्यात्मिक नेतृत्व और नियन्त्रण की आवश्यकता है। इस नेतृत्व-दान की होड़ में बहुतों ने मूल सिद्धांतों को छोडकर आधुनिक सस्कार के पीछे चलना प्रारम्भ कर दिया। तपस्या तथा आचार-व्यवहार मे कटौतियाँ की जाने लगी। जागतिक राग के अनेक अंशो को वैराग्य का अपरिहार्य बोल दिया गया। आधुनिक सुविधाओं के लिये वैराग्य और तपस्या के द्वार खोल दिये। जगत् के उद्धार और धार्मिक सन्देश के व्यापक प्रवाह के बहाने अनेक साधक जगत् के जाल मे आ घुसे। साधना के तेजस के

लिये जो कठोर अनुशासन स्थापित थे, उन्हे लोकतन्त्रीय विचार स्वातन्त्र्य से बदल लिया गया।

किन्तु जगत् तो आंशिक समझौते पर रुकता नहीं। वह तो खण्डग्रासी न होकर सर्वग्रासी ही होता है। जगत् ने भी तपस्या को परिमार्जन देना प्रारम्भ कर दिया। आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति समर्पित साधकों की उपहासास्पद स्थिति बनी।

किन्तु सत्यद्रष्टा आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० अपने वैराग्य की सुदृढ भूमि पर हिमानी की भाँति अविचल और अकम्प रहे। उन्होने कहा कि वैराग्य जीवन साधना के विराट् सकल्प पर आरूढ़ होता है। वैराग्य इसलिये ग्राह्य नही किया जाता कि जगत् मे सुविधाओ और वैज्ञानिक उपकरणों की कमी है। वैराग्य स्वाधीनता की चरम स्थिति है, परवशता नही है। भगवान् महावीर ने भी सुविधा-साधनों की कमी के कारण जगत को अयोग्य घोषित करके वैराग्य धारण नही किया। विश्व आधुनिक विस्तारीकरण की ओर बढने लगा तो कुछ साधक भी धर्म-प्रचार, के लुभावने आकर्षण मे सम्मोहित होते हुए शाश्वत सिद्धान्तों का आधुनिकता के परिवेश मे रूपान्तरण कर चिन्तानुकूल आचरण की परिधि मे बढने लगे। हिंसा युक्त साधनो का उपयोग करने लगे। किन्तु वैराग्य जगत् की अपेक्षा पर खड़ा नही होता। अतः तपस्या एव साधना को नये जगत् के अनुरूप साज-संवारने की आवश्यकता नही रहती। जगत् सर्वग्रासी होता है तो तप को सर्व त्यागी होना चाहिये।

आचार्य प्रवर का विचार था कि जगत् के प्रति जो सन्देश है, उनकी शैली में परिवर्तन किया जा सकता है। जगत् के परिवर्तनों से साधुचर्या नही बदली जा सकती।

समय ने सिद्ध कर दिया कि आचार्य प्रवर जैसे सन्तों ने ही अध्यात्म और तपस्या की रक्षा करली। भगदड को एक बार क्रान्ति कहा गया था, किन्तु वस्तुतः क्रान्ति का सही स्वरूप भिन्न था। भारतीय-अध्यात्म साधना के इतिहास मे यह ध्रुवाश्रिता क्रान्ति का काल था। आचार्य प्रवर इस ध्रुवनैष्ठिक क्रान्ति के उद्गाता सिद्ध हुए। प्रवाह को क्रान्ति मानने वाले कई साधक मौलिक सिद्धान्तो से पीछे हटकर मात्र भौतिकता की चकाचौंध मे ही जीवन का सन्तुलन तलाश रहे हैं। उधर विज्ञान ने ज्यो-ज्यो अपना क्षेत्र विस्तार किया है तथा परिपक्वता प्राप्त की है, त्यों-त्यो यह भारतीय मनीषियो की महिमा से चमत्कृत होता जा रहा है।

वस्तुतः विज्ञान की चरम परिणति अध्यात्म मे होती है, जबकि विज्ञान की इकाई-दहाई की चकाचौंध पर ही हतप्रभ होकर कई साधको ने अपनी

मर्यादाओ की भी कुर्बानी करदी। आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म० सा० को स्वय की स्थिति ही इतनी सुदृढ थी कि इनके लिये अविचलित रहना ही स्वाभाविक था।

समता दर्शन

सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे आज एक मसीहा की आतुर प्रतीक्षा है। धर्म और अध्यात्म, सभ्यता और चिन्तन, राजनीति और समाज सर्वत्र मसीहा चाहिये, किन्तु इस बार के मसीहा के लिये मानदण्ड निर्धारित हैं। इस बार मसीहा मानवता के परित्राण तथा दुष्कृतो के विनाश के लिये नही चाहिये। मसीहा चाहिये, जो हमारे भोगवाद, आचारध्वस, नैतिक शैथिल्य, पेचीदी-स्वागममता, विजडित पाषण्ड, आत्म-प्रवचन, खोखलापन और जडता को ही सत्य, शिवं, सुन्दर प्रमाणित कर दे। मसोहा आये, जिसका जामा धार्मिक हो, उद्देश्य अधर्ममय हो। अनुभूत है कि धार्मिक जामा शैतान के शरीर पर ही अधिक फबता है (A holy garb suits the devil best)। आग्रह तो घोर जागतिकता की ओर से है, किन्तु देखा जा रहा है कि अनेक पीठाधीश भी जागतिकता की परिक्रमा करने लगे हैं। भोगवाद और शिथिलाचार को चेतना का चरम साधन स्वीकार कराने के लिये कई मसीहाओ ने तर्क-राशि जुटा भी दी हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि अब सत्य की तलाश और चेतना की उपासना से जगत का प्रयोजन कम है। भौतिकता के चूने से समाज के जोड इतने जकड गये हैं कि स्वय को मोड पाना उसके लिये असम्भव हो गया है।

और ऐसी घडी मे एक समत्व योगी उद्घोष करता है—"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" अर्थात् परिग्रह का समस्त आयोजन मूर्च्छा है। जब तक मनुष्य की चेतना मूर्च्छित नही हो जाती, जब तक जीवन के जीवन्त मूल्यो के प्रति उसकी आस्था ध्वस्त नही हो जाती, वह परिग्रह के प्रति अपने को समर्पित नही करता। परिग्रह मूर्च्छना है, जडता है, मृत्यु है, विनाश और विनाश की भूमिका है। भावनात्मक अधोगति ही जडता और मूर्च्छना है। चेतना से पलायन ही परिग्रह है। तो क्या हमारे समाज के प्रत्येक आयाम पर बैठी विषमता, हमारा विषयाभिमुख जीवन, हमारा जटिल सघर्ष-जाल, हमारी प्रतिष्ठा और उस प्रतिष्ठा के समस्त मानदण्ड, हमारी गरिमा, हमारे सिंहासन और हमारे नारे ये सब मूर्च्छा, मृत्यु और जडता का आराधन हैं? उत्तर एक ही है। सन्त का उद्घोष ही सत्य है। वही वास्तविकता है। सन्त का यह उद्घोष हमारे अह के दूह को ही झकझोर देता है।

जड़ता की शृ गता जीवन नहीं है, उसका सर्वोच्च अम्बार भी मूर्च्छना ही है। एक समत्वदर्शी, एक समत्व योगी के इस स्वर ने हमारे समस्त

आयोजनों के चेहरे पर शंका की सलवटे उभार दी है। प्रश्न है कि क्या हम सचेतन है ? चेतना तो चेतना का सम्मान करती है। जहाँ चेतना के सम्मान का उल्लास नही है, वहाँ केवल मूर्च्छा ही है। जड़ता की अभ्यर्थना तो जडता ही करती है। सन्त ने सही समय पर कहा है—जब तक चेतना जीवन्त रहती है, उसका आयोजन सचेतन होता है। जब वहाँ मूर्च्छा और जडता आती है, तभी केवल परिग्रह की रुझान आती है। जडता ही जडता को प्रतिष्ठा देती है।

यह एक प्रश्न है, लेकिन हम इस प्रश्न को छूने का साहस नही जुटा पा रहे है। स्पर्श से हमारी उच्चता के समस्त मानदण्डो और विकास के दम्भ के चकनाचूर हो जाने का भय है। तथ्य है कि—ऊँचाई और नीचाई, सभ्यता और असभ्यता, सबलता और दुर्बलता, सम्मान और अपमान, उत्थान और पतन के मानदण्ड के रूप मे हमने विषमता और परिग्रह को ही पकड रखा है। चेतना के प्रति इतनी उपेक्षा कभी नही थी, विषमता का इतना प्रभाव कभी नही था। यदि समत्व की दिशा मे चलना है, यदि परमात्मा की ओर उन्मुख होना है, यदि चेतना का उद्घाटन होने देना है, तो इस विषमता को तोडना होगा। विषमता व्यक्ति-व्यक्ति के बीच हो अथवा राष्ट्र-राष्ट्र के बीच हो, उसकी अहमियत शैतानियत है। वह स्वर उद्घोष करता है कि परमात्मा की प्रार्थना शैतान के उत्तरीय मे बाँधने का समारोह रोकना होगा।

जीवन को परिभाषित करते समय आचार्य श्री नानालालजी ने एक ही अकाट्य बिन्दु पर उंगली रख दी है, "अत. जीवन की कसौटी यही होगी कि किसी को जड पदार्थो पर कितना व्यामोह है और चेतन शक्ति के प्रति कितनी क्रियाशील निष्ठा और आस्था है।" वस्तुत समत्व ही जीवन का केन्द्रक और उसकी अकलुष सत्ता है। चेतना के प्रति न्याय और सम्मान के इसी बिन्दु को कसौटी मानकर उन्होने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सास्कृतिक और नैतिक क्रान्ति का आह्वान किया है। विषमता और मूर्च्छा सर्वत्र है, अत· समग्र जीवन में क्रान्ति की आवश्यकता होगी। एकागी सघर्षों को क्रान्ति मानकर उनमे उलझने से अब काम नही चलेगा। आवश्यकता है, सर्वांगीण क्रान्ति की और "समत्व" से भिन्न कोई भी क्रान्ति सर्वांगीण नही हो सकती। व्यक्ति को, समाज को, क्रान्ति को, कार्य के नारे को अथवा विचार को परखने की सही कसौटी यही होगी कि समत्व से उसका कितना मेल बैठता है, उसके द्वारा चेतना को कितना न्याय और सम्मान प्राप्त होता है। समत्व क्रान्ति के सामाजिक पक्ष की ओर इगित करते हुए आचार्यश्री ने कहा है, "समता के सिद्धान्त-दर्शन का निचोड यह होगा कि वर्तमान समाज व्यवस्था मे आमूलचूल परिवर्तन हो और उस परिवर्तन का उद्देश्य यह हो कि जड का नही, चेतना का शासन स्थापित हो, सत्ता या सम्पत्ति की शक्ति से प्रभुता न मिले, बल्कि मानवीय गुणो की

उपलब्धि से समाज का नेतृत्व प्राप्त हो।" इस क्रम मे उन्होने सम्पत्ति और सत्ता की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले प्रयास को पुरुषार्थ के अन्तर्गत न स्वीकार करके, इसे "घिनौनी होड" की सज्ञा दी है।

आचार्यश्री का जीवन समग्रत समताभिमुख है। उनके योग और प्रयोग, चिन्तन और ध्यान, साधना और वैराग्य, वाणी और कर्म, आचार और व्यवहार सबका आधार समत्व है। उनका साहित्य समताभिमुख है, सान्निध्य समत्वानुगु जित है, वाणी मे समत्व घोष है, ध्यान समत्वग्रही है। जीवन के अतल से वे समत्व का ही रस ग्रहण करते है और व्यावहारिक जीवन मे उसी रस की वृष्टि करते हैं। पिछली कई शताब्दियो मे समत्व का इतना गहन, जीवन्त, सुदीर्घ, अविचल और नैष्ठिक प्रयोग सभवत. आचार्यश्री के अतिरिक्त अन्य किसी ने नही किया है। वे समग्रतः समत्व एव चेतनानुवर्ती न्याय के मूर्त्त स्वरूप है। उनके जीवन को खण्डित रूप मे देखना, समत्व के खण्ड-खण्ड करने के समान है।

समता दर्शन केवल विचार-सामग्री नही, विचार-क्रान्ति भी नही है, यह तत्त्वत आचार-क्रान्ति है। अत इसके विस्फोट की पहली आवश्यकता है कि चेतन जागृत होकर अपने स्वत्व के प्रति सावधान हो जाय। इस क्रान्ति को आगे तभी बढाया जा सकता है जब हम अपनी सचेतनता के प्रति आश्वस्त और निष्ठावान हो जायँ। जडत्व, परिग्रह और विषमता के प्रति हम व्यामोहवश समर्पित है। इस व्यामोह का टूटना समत्व क्रान्ति की पहली शर्त और उसका अन्तिम चरण है। समत्व सर्व आयामी है। इसके विकास मे जहाँ विश्व का चरम मगल सन्निहित है, वही यह मानव-जीवन का परम पद भी है। यह एक ऐसा दर्शन है, जिसे क्रियान्वित करने के लिये सघर्ष और हिसा की आवश्यकता नही है। हिसक सघर्ष चेतनता का अपमान है। हिसा का भाव हमारी मूर्च्छना का प्रमाण है। समत्व मे तो क्रमिक जागृति और विकास ही सन्निहित है। इसके पहले सोपान पर वैचारिक जागृति, दूसरे पर सदाचार और सत्साधना, तीसरे पर विश्व मगल का उन्नयन और चौथे पर परम सत्ता का विलास है। यह वैचारिक पिष्टपेषण कम, व्यावहारिक कार्यक्रम विशेष है।

मानव सभ्यता के इतिहास ने "समत्व" से अधिक मगलमय, सर्व आयामी तथा अनुकूल क्रान्ति-सूत्र कभी भी प्राप्त नही किया। मानव, समाज और व्यक्ति की चेतना को आज विषमता का जितना दबाव झेलना पड़ रहा है, जीवन परिग्रह-प्रमत्तता से आज जितना झुलस रहा है, वह अभूतपूर्व है। मूर्च्छा और व्यामोह ने मानव-चेतना को इस प्रकार कुण्डलित कर लिया है कि मानव स्वय भी इनसे अगीभूत वना हुआ प्रतीत होता है। मानव की विमूर्च्छित चेतना आज अपनी शक्ति और जागृति को भूलकर इस मूर्च्छना, व्यामोह, विषमता

और पाषण्ड-सृष्टि की सुरक्षा के लिये प्रमत्त संघर्ष करने लगी है। अधोगति के प्रति यह मोह अभूतपूर्व ही है। व्यामाहो का क्षय हमे जीवन का क्षय प्रतीत होने लगा है। समत्व क्रान्ति का उद्घोष हमारी पाषण्ड-सृष्टि पर करारा प्रहार है। किन्तु समत्व क्रान्ति केवल सृजनात्मक ही होगी, क्योकि सजग जीवन सृजन के अतिरिक्त और कुछ नही जानता। सृजन ही उसका स्वभाव और स्वरूप है।

हमारी जडता और मूर्च्छना का एक प्रमाण यह भी है कि हम इस मंगल-अंकुर को अपने परिगृहीत पौरुष द्वारा, पाषण्ड एव भोगवादी चट्टानो द्वारा ढककर आँख मूँद लेना चाहते है। किन्तु यह आने वाले कल का यथार्थ है कि अन्ततः हमारी जडता को काल की भट्टी मे जल कर उस अकुर के पोषण-परिवर्द्धन के लिये खाद बनना है। जीवन-चेतना अब और अधिक अधोगति स्वीकार नही करेगी। सृष्टि के लिये जीवन-चेतना ही उत्तरदायी है, परिग्रह का विकार नही। अतः सृजन-सकल्प की यह सर्वोत्तम घडी है। आचार्य श्री नानालालजी म. सा. द्वारा सकेतित समत्व क्रान्ति अब केवल सवाहको की प्रतीक्षा मे है। हम पाषण्ड और स्वागवाही जीव अभी सत्य के सवहन को अनुकूल नही मान रहे है। ऐसा करने से हमारे नैतिक शैथिल्य के ढह जाने का खतरा है। अत हम उस प्रश्न और उद्घोष से आँख चुरा रहे है।

किसी स्थापित दर्शन का भाष्य प्रस्तुत कर देने अथवा विचारों के स्तूप निर्मित करके नया दर्शन खडा कर लेने का कार्य कालक्रम से होता आया है। संसार के सम्मान्य दर्शनो को चिन्तन और समझ से जोडने की चेष्टा विपुल परिमाण में हुई है। समझाने और समझने का प्रयास मानवीय पौरुष की शीर्ष साधना रहा है। जीवन के चिन्ताकाश को चिन्तन और विचारो की तारा-मालाओ से जटित करने का कार्य प्रचुर मात्रा मे हुआ है और बौद्धिकता की आकाश-गगा सुस्थापित हो चुकी है। किन्तु आकाश-गगा और तारा-मालाओ के इस मेले मे ध्रुवतारा की अनुपस्थिति सदैव से खटकती रही है।

प्रकाश के इन प्रेरक पुजो मे से कोई भी जीवन-यात्रा का सबल बन पाने की अहमियत हासिल नही कर सका। मानसिक सत्ता सदैव से मानव के लिये गौरव की सामग्री रही। हम मन के कारण ही मानव हैं। किन्तु हमारी मानसिकता भी एकागी है, उसमे जीवन की समग्रता और सर्व आयामिता की सामर्थ्य नही है। इसी कारण हमारी मानसिक उपलब्धियाँ हमारे लिये व्यामोह एव परिग्रह की सामग्री बन गईं। इसी कारण "महत्त्वपूर्ण", "विशेष महत्त्वपूर्ण" और "अतीव महत्त्वपूर्ण" के चिह्न ढोती जिल्दो से भरे हमारे पुस्तकालय केवल परिग्रहालय ही रह सके। इसीलिये इन उपलब्धियो ने हमारे अन्तस् को आलोकित करने के बदले हमारे सर पर उद्धरणो का पाण्डित्य लादकर केवल अधिकाधिक बौना बनाया।

एकांगिकता तथा आत्म श्रेष्ठता की अहन्ता को केन्द्र मानकर गतिशील होने के कारण ही हमारे समस्त दर्शनो ने आपस मे पीठ दरेरते बगुलो का रूप धारण कर लिया है। उनका सम्बन्ध प्राण-प्रसरण से न हो कर एकान्त आग्रह से रहा, अतः वे आँधियो का रूप भी धारण नही कर सके। कार्ल मार्क्स के समाज-दर्शन मे सपाट आँधी की गति है और विषमता को तोडने का आग्रह उसका मूल सकल्प है, अतः इसने जीवन को बहुत प्रभावित किया है। किन्तु मार्क्स का दर्शन जहाँ सामाजिक दर्शन है और अपने प्रयाण एव परिणाम मे आर्थिक सघर्ष से जुडा हुआ है, वहाँ समत्व-दर्शन, जीवन-दर्शन है और आत्मन् का सम उसकी इकाई एव परिणति है। अतः इसकी श्रेष्ठता निर्विवाद है। समत्व के साथ जीवन से निकटता का प्रश्न नही, वह स्वय ही जीवन है। मार्क्स का कथन परिग्रहात्मक स्वत्व का सघर्ष है, जबकि समता दर्शन मे मूर्च्छा एव तन्द्रा तोडकर बन्धन मुक्त होने का आग्रह है। परिग्रहात्मक स्वत्व का हस्तान्तरण एक सामयिक न्याय हो सकता है, किन्तु मानवता का जागरण ही शाश्वत एव सार्वभौमिक समाधान बन पाने की अहमियत रखता है। निरी आसक्ति मूलक जागतिकता से हटकर निस्सगता की ओर खिसकने के लिये हिंसा, उग्रता तथा टकराव की नही, बल्कि आत्म-जागृति की आवश्यकता है।

आचार्य श्री नानालालजी म सा. ने समता-दर्शन को व्यापक एवं व्यावहारिक बनाकर प्रस्तुत किया है। उन्होने कर्मासक्ति से कर्म-समृद्धि की ओर बढने का आह्वान किया है। कर्मासक्ति मे आसक्ति प्रधान होती है। उसमे आसक्ति का स्वामित्व होता है—कर्म परवश होता है, व्यक्ति परवश होता है, जीवन परवश होता है। व्यक्ति अपने कर्मों का स्वामी नही, बल्कि आसक्ति का दास होता है। आचार्य श्री नानालालजी का समता-दर्शन व्यक्ति तक उसका स्वामित्व, उसका पौरुष, उसकी तेजस्विता पहुँचाने का प्रयास है, अभियान है। उनका विश्वास है कि व्यक्ति के आसक्ति ग्रस्त जीवन मे ही उसके स्वातन्त्र्य एव स्वामित्व बोध का बीजारोपण किया जा सकता है। परिग्रह जहाँ घोर दासता और अध.पतन का सूचक है, त्याग स्वामित्व के उदय का सकेत है। ग्रहण और संग्रह की सनक मे केवल परवशता का ही भाव है। त्याग का भाव ही परिग्रह पर स्वामित्व की एकमात्र परख है। कर्मासक्ति और परिग्रह की बुनियाद ही स्वामित्व एव स्वाधीनता की शक्तियो से अपरिचय अथवा इनका अप्रकाशन है। समत्व दर्शन इसी आधार पर स्वत्व का दर्शन न होकर स्वामित्व का दर्शन है। स्वत्व का हस्तान्तरण सम्भव है, स्वामित्व को हस्तान्तरित नही किया जा सकता। स्वत्व मूर्च्छना का प्रथम लक्षण है, स्वामित्व-बोध जागृति की पहली किरण है।

समता-दर्शन के विषय मे दो एक बातें प्रसंगतः ही कह देनी पडी। आज आचार्य श्री नानालालजी म. सा. का समता-सिद्ध जीवन हमारे समक्ष है।

उनका साहित्य और सान्निध्य सहज सुलभ है। वे समत्व की ठोस प्रतिमा है। मानवता के कल्याण के लिये हमे उनके समता-दर्शन को अपनाना चाहिये। समता मे मानव-कल्याण के समस्त साधन सन्निहित हैं। जागतिक साधनों से जगत का उतना मगल नही हो सकता, जितना समत्व को साधन मानकर चलने से हो सकता है। अपेक्षा है कि हम जागे। जागना ही समत्व है।

अन्त मे एक निवेदन कर देना चाहूँगा कि ग्रन्थ का आद्यन्त अवलोकन कर सम्पादन-परिष्कार में भी मैंने कुछ परामर्श प्रस्तुत किया है, अत. ग्रन्थ के समस्त तारतम्य एवं भावो की प्रस्तुति मे आगत चर्चनीय विषयो का दायित्व भी मैं अपना ही मानता हूँ। मुनि श्री की गति अपनी सयमीय मर्यादा में ही रही है।

अस्तु।

—प्रो० शिवाशंकर त्रिवेदी

१

पूज्यपाद जीवन-दर्शन

युग - चेतना

भारतीय सस्कृति की गौरव-गरिमा, सन्त, महात्मा एव ऋषि-महर्षियो के त्याग के उपादानो से रही है । सस्कृति के ऐतिहासिक पृष्ठों से एकबारगी यदि सन्त, महात्मा एव ऋषि-महर्षियो के जीवन वृत्तो को पृथक् कर दिया जाय तो निश्चित रूपेण सस्कृति की चेतना लुप्त हो जायेगी, सस्कृति मात्र एक जड ढाचा रह जायेगी । दूसरे शब्दो मे हम यो कह सकते है कि हमारी सस्कृति त्याग पर ही आधारित है । हमारा इतिहास बताता है कि जितने भी पूजनीय हुए है, अपने त्याग के बल से ही हुए हैं । महावीर, राम, कृष्ण और बुद्ध की पूज्यता का कारण उनका राजकीय वैभव न होकर यथोचित मात्रा मे लौकिक वैभव आदि का त्याग ही रहा है । भारतीय सास्कृतिक हिमालय से प्रवाहित मूल दो (श्रमण एव वैदिक) धाराओ मे श्रमण (निर्ग्रन्थ श्रमण) सस्कृति की धारा तो विशेषतया निवृत्ति प्रधान होने के कारण त्याग से ही ओतप्रोत रही है ।

इस त्याग प्रधान सस्कृति की लौ को अनवरत प्रज्वलित रखने हेतु प्रत्येक युग मे कोई-न-कोई चेतना, प्रकाश-स्तम्भ बनकर अवनितल पर उत्तरित होती है और अपने जीवन-स्नेह द्वारा सस्कृति की परम्परागत चली आ रही लौ को अक्षुण्ण रूप से प्रज्वलित बनाये रखती है । इसे हम साहित्य की भाषा मे युग-चेतना किंवा युग पुरुष की सज्ञा से अभिहित कर सकते है ।

पारिभाषिक अर्थों मे युग पुरुष वह होता है, जो अपने युग को तत्कालीन सदर्भो मे नूतन सदेश द्वारा आलोकित एव आन्दोलित करता है । उसकी वैचारिकता मे युग का विचार मुखरित होता है, उसकी वाणी मे युग बोलता है और उसकी प्रत्येक क्रियान्विति से युग को नवीन चेतना, नई स्फूर्ति एवं नूतन प्रेरणा मिलती है । वह युगीन चेतना का सफल एव सबल प्रतिनिधित्व करता है । वह अपनी महत्ता एव दिव्यता से समस्त मानव जाति को ही नही, अपितु सपूर्ण वायु मडल को महत्तम एव दिव्यतम रूप मे आलोकित एवं अनु-प्राणित करता है । वह अपनी क्रातिकारी प्रेरक विचार-रश्मियो से समाज मे चले आ रहे सड गले विश्वास एव मिथ्या आचार के अन्धकार को निरस्त करता हुआ उसमे सम्यग् नूतनता का स्नेह सिंचन कर उसे दिव्य आलोक से भर देता है । सीधे एव स्पष्ट शब्दो मे कहे तो जो स्व-पर कल्याण की गहरी

निष्ठा, अविचल आस्था एव प्रगाढ श्रद्धा के साथ समाज को विकृति के गर्त से निकाल कर सस्कृति की ओर गति देता है, वही महापुरुष, किवा युग-पुरुष कहलाता है।

युग-पुरुष अपने सामर्थ्य एव पौरुष बल से दुर्गम एव बीहड कण्टकाकीर्ण गन्तव्य पथ को सुगम एव सरल (कोमल) पुष्प शय्या के रूप मे परिवर्तित कर देता है। वह जन मुख पर होने वाली अपनी निन्दा-स्तुति, मान एव अपमान से सर्वथा ऊपर उठकर निश्चित, अपनी मजिल की ओर निरन्तर अग्रसर रहता है। वह तत्कालीन जन-जीवन का अनुसरण नही करता, अपितु जन-चेतना स्वय ही उसका अनुसरण करती है, क्योकि उसकी हर मानसिक, वाचिक एव कायिक क्रिया लोक-मंगल एवं जन-कल्याण के लिए होती है, अत उसके जीवन के कण-कण से एक ही स्वर झकृत होता है—

अर्पित है मेरा मनुज काय,
सब जन–हिताय, सब जन–सुखाय।

युग-पुरुष अपने युग का प्रतिनिधि तो होता है किन्तु सामान्य जन से ऊपर। वह अपनी विचार-क्रान्ति से तत्कालीन विचार, वाणी और कर्म को नया मोड़ देता है, नूतन मार्ग-दर्शन देता है। सक्षेप मे हम यो कह सकते है कि जब सामान्य जन-चेतना समस्याओ एव परिस्थितियो के सकुल पथ मे दिग्भ्रमित होने लगती है, तब उसका अन्तर स्वर एक युग-पुरुष का आह्वान करता है जो आकर उसे दिशा-बोध एवं समाधान देकर हैरानी एव परेशानी की विडम्बना से मुक्त कर दे, तत्कालीन समस्त बोझिल रूढियो को ध्वस्त कर दे। जो चेतना ऐसी क्षमता एव ऊर्जा की धारक एव सवाहक हो, वही युगीन-चेतना युग-पुरुष के रूप मे विश्रुत हो जाती है।

प्रस्तुत है, ऐसे ही निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति किवा जैन सस्कृति के दिव्य नक्षत्र, युग-पुरुष की जीवन-रेखा, जो कि अपने अध्यात्म आलोक से भौतिकता के गहन अन्धकार मे भटकते हुए जन-मानस को आलोकित कर रही है, जो समता की पवित्र सरित धारा मे स्वयं अवगाहन करती हुई जन-जन के लिए समता धारा मे अवगाहन का प्रेरणा स्रोत बनी हुई है, जिसने श्रमण सस्कृति के उत्थान हेतु सर्वतोभावेन अपने आपको समर्पित कर दिया है।

ज्योति–पुञ्ज

उपर्युक्त शब्दावली मे आगत "समता धारा" शब्द को पढते ही, मैं सोचता हूँ, सुज्ञों की दृष्टि मे वह ज्योति-पुञ्ज उजागर हो चुका होगा, क्योकि आधुनिक सन्दर्भ मे समता-दर्शन और वह ज्योति-पुञ्ज प्राय. एक अर्थ के दो

पर्याय बन चुके है। फिर भी शब्द चित्र के द्वारा यत्किञ्चित् अकन आवश्यक प्रतीत होता है।

नि सीम ससीम मे

ससीम शब्दो के सीमा-बन्धन मे विराट् एव नि स्सीम व्यक्तित्व को आबद्ध करना गागर मे सागर भरने के समान दु साध्य अवश्य है, फिर भी आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर के शब्दो मे--

"बालोऽपि किं न निज बाहुयुग वितत्य।
विस्तीर्णता कथयति स्व धियाऽम्बुराशे. ।।"

के अनुसार अपने श्रद्धेय के प्रति, जिन्होने कच्ची मिट्टी को एक घट का रूप दिया, आन्तरिक सहज श्रद्धा की अभिव्यक्ति के रूप मे कुछ लिखने के लिए मन का प्रेरित होना, निजी सौभाग्य मानता हूँ। एतदर्थमेव श्रद्धा के दो शब्द, शब्द-चित्र के रूप मे प्रस्तुत है —

शब्द चित्र

मझला कद, भरी-पूरी एव सुडौल, किन्तु कोमल देह, कान्तिमय गेहुँआ वर्ण, गभीर-मधुरस्मित युक्त प्रसन्न वदन, अमिताभ-तेज मडित विशाल भाल, चौडा वक्ष स्थल, प्रलम्ब बाहु, अति एव कोमल हल्की लालिमा लिये हुए सामुद्रिक सुलक्षणो युक्त हस्त युगल। सिर पर बिखरी हुई विरल, धवल एव श्यामल मिश्रित केश राशि। उपनेत्र मे से झाकते हुए दिव्य तेजोमय चक्षु जो समुखस्थ व्यक्ति को चुम्बकीय शक्ति से प्रभावित करते हुए उसके अन्तरग भावो के परीक्षण मे परम प्रवीण हैं। गुदगुदी भरी कोमलता एव सुकुमारता से रजित लघु पादागुलिया एव तदनुरूप पद्मरेखादि सुलक्षणो युक्त अत्यन्त सुकोमल रक्ताभ, चरण-सरोज। श्वेत, नाति-स्वच्छ खद्दर से समावृत साध्वोचित सादगी का प्रतिरूप जादू भरा परम प्रभावक यह बाहरी व्यक्तित्व, आन्तरिक विशुद्धता "सादा जीवन उच्च विचार" का स्पप्ट अभिव्यजक है।

सीधा-सादा रहन-सहन एव जैन श्रमणोचित अति सीमित उपकरण। धार्मिक एव दार्शनिक विचार एव चर्या मे निष्णात कतिपय शिष्य समुदाय से परिवृद्ध एव हजारो हजार उपासको के श्रद्धाभाजन। यही है परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म सा का बाहरी व्यक्तित्व।

व्यक्तित्व—अंकन

सरस और स्पप्ट मानस, सहज स्फूर्त, तर्क-पटु, तीक्ष्ण प्रज्ञा तथा वात्सल्यमयी कोमल, किन्तु सुस्पष्ट वाणी की अभिव्यजना, जिस तेजोमय व्यक्तित्व मे इन तीनो की समष्टि है उस महामहनीय व्यक्तित्व का परिचय

है—परमश्रद्धेय, समता दर्शन प्रणेता, धर्मपाल-प्रतिबोधक, आचार्य श्री नानालालजी म. सा , जिन्हे हम सक्षेप मे आचार्य श्री नानालालजी म. सा. और अति सक्षेप मे आचार्य श्री नानेश कहकर सम्बोधित करते है ।

आपकी वाणी मे छोटे, बडे एव समवयस्क सभी के प्रति नवनीत-सी मृदुता एव कुसुम सी कोमलता झलकती है, किन्तु तार्किक विचार-मथन मे आप वज्रादपि कठोर एव हिमालय से भी अधिक निष्प्रकप है। व्यवहार-पटु होने के साथ ही अपनी वैचारिक एव व्यावहारिक चारित्रमय आचरण पद्धति में मेरूवत् अचल, निष्कप एव अडोल है । आधुनिक सदर्भ मे विज्ञान की चका-चौध से पराभूत जन-चेतना मे विज्ञान, दर्शन एव संस्कृति के समन्वय-सूत्र प्रस्तुत कर जन-जागृति करने वालो मे आप सर्वाधिक अग्रगामी, सर्वाधिक सजग एव सर्वतोभावेन लोकप्रिय है ।

आचार्य देव सौजन्य, सौहार्द, स्नेह, सद्भाव एवं समत्वयोग के अद्भुत एव ध्रुव अपने आप मे एक विशिष्ट साधक हे, और है इस नूतनता के द्वन्द्व-पीडित युग मे दोनो चिन्तन-धाराओ मे समन्वय प्रस्तुत करने वाले स्नेह के नये सूत्रधार । पद की दृष्टि से सर्व-ज्येष्ठ होते हुए भी पर्याय-ज्येष्ठो के प्रति अप्रतिम विनम्र । छोटो एव समवयस्को के प्रति भावपूर्ण एव स्नेहिल ।

निष्कर्ष की भाषा मे आचार्य देव का विराट् व्यक्तित्व उस इन्द्र धनुष की तरह सुनहला और मोहक है, जिसकी रमणीयता को अनेकानेक बार देख कर भी नेत्र कभी तृप्ति का अनुभव नही कर पाते ।

उनका व्यक्तित्व अति रमणीय, अद्भुत एव क्रियाशील है । जहाँ वह दर्शन के समान तर्कशील एवं गूढ है, वहाँ काव्य के समान सरस एव सुबोध भी । अध्यात्मनिष्ठ योगी की विशुद्ध व्यक्तिवादी दृष्टि उनमे झलकती है, तो एक समाज-संगठक का समूहवादी चिन्तन भी उनमें निखरता-सा लगता है । साधुत्व की दृष्टि से वे साधना के उच्च शिखर को छू रहे है, तो अनुशासनात्मक विचार-क्रान्ति की दृष्टि से वे समाज की जडता को झकझोर कर उसको गति-शील योग्य नेतृत्व भी देते है । सचमुच आचार्य देव के व्यक्तित्व मे इन्द्र धनुष की तरह विभिन्न रग एक विलक्षण छटा लिये एक साथ उभरते दिखाई देते है ।

यह हुआ आचार्य देव का अधुनातन जीवन वृत्त । किन्तु किसी भी व्यक्तित्व की गहराई मे पहु चने के लिये उसके परिपार्श्विक वातावरण के साथ-साथ जीवन के अरुणोदय एवं बसन्त-काल पर भी दृष्टि डालना नितान्त आवश्यक हो जाता है अन्यथा उस व्यक्तित्व किंवा युग-चेतना को समझने में कभी-कभी भारी भूल हो सकती है । अस्तु ।

• • •

जीवन का उषःकाल

अरुणोदय

महापुरुषो किवा युग पुरुषो का जीवन वृत्त निरन्तर प्रवहमान उस निर्मल एव पवित्र सरित् धारा-सा होता है, जो अपने प्रारम्भिक उष काल मे अति लघु और मध्य मे विराट् से विराट्तम होती हुई, अन्त मे महासमुद्र की अनन्तता मे परिणत हो जाती है।

आचार्य देव की जीवन-सरिता भी, चू कि एक युग पुरुष की जीवन-सरिता है, अत अपने उद्गम काल मे अति लघु होते हुए विशाल और विराट्तम अनन्त गहराई का अनुसरण करने वाली है।

जन्म-भूमि

भारत मे पश्चिमी प्रदेश राजस्थान के दक्षिण पूर्व मे वीरत्व की गौरव-गरिमा से मण्डित तत्कालीन मेदपाट (मेवाड) की राजधानी सुरम्य उपवनो एव अरावली श्र`णियो से सुरक्षित अपनी प्राकृतिक छटा सुषमा के लिए विश्व प्रसिद्ध है, जहाँ हजारो किलो मीटर से पर्यटक अपनी नेत्र-क्षुधा-तृप्ति के लिए आते रहते है, उस झीलों की नगरी उदयपुर से पूर्व दिशा की ओर तत्कालीन उदयपुर राज्यान्तर्गत एक छोटा-सा गाँव जिसे लोग दाता (दाता) कहते है, जो नदी नालो एव छोटी-छोटी टेकडियो से उपशोभित, चतुर्दिक हरियाली की मनोरम छटा बिखेरता हुआ करीब पाँच सौ की अल्प जन-सख्या वाला है, जो आज भी यातायात के सामान्य साधनो से वचित प्राचीन भारत की स्मृति ताजी कर देता है, जहाँ ओसवालो-जैनो के केवल तीन परिवार हैं। बस यही पवित्र भूमि अपनी लघुता मे विराटता को गर्भित किये हुए उस तप पूत युग पुरुष की जन्म-स्थली है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य एव वैज्ञानिक सत्य है कि आज विश्व विराटता से सूक्ष्मता की ओर अधिक गतिशील है। एक छोटे से अणु-परमाणु मे जो क्षमता है, वह वडी-वडी पर्वत श्रृ खलाओ मे नही। वृक्ष का छोटा-सा बीज अपने आप मे कितनी विराटता छिपाये हुए है, यह किसी से छिपा हुआ नही है।

यही स्थिति हमारे श्रद्धेय चरित नायक की है। कौन जानता था कि छोटे गाव का छोटे से नाम वाला (राजस्थानी भाषा मे "नाना" छोटे वच्चे के अर्थ मे व्यवहृत होता है) यह छोटा-सा लाल अपने आप मे इतनी विराट् क्रांति-

कारी क्षमता लिए हुए है। इसे ही तो मुहावरे की भाषा मे "गुदड़ी के लाल" कहते है।

पारिवारिक परिवेश

उपर्युक्त इन्ही तीन श्रेष्ठी परिवारो मे अपनी गौरवशाली नैतिकता से सुसमृद्ध एक सामान्य परिवार के प्रमुख थे स्वनाम धन्य श्रीमान् मोडीलालजी पोखरना, जो तत्कालीन उदयपुर रियासत के जागीरदारी के इस छोटे से गाव के गौरवशाली प्रमुखो मे थे। आपका प्रमुख व्यवसाय ग्राम्यजन योग्य-भोग्य वस्तुओ (किराना, वस्त्र, अनाज आदि) का क्रय-विक्रय करना एव अपनी पैतृक भूमि पर कृषि करवाना था। आप उस समय एक कूप और करीब ३० बीघा (१८ एकड) अच्छी उपजाऊ भूमि के स्वामी थे। पशुधन भी आपके पास पर्याप्त मात्रा मे था—करीब १५-२० गाये-भैसे आदि थी।

आपकी धर्म सहायिका थी रत्न कुक्षि धारिणी श्रीमती श्रृगार कुवरबाई, जो गृह कर्त्तव्यो की कुशल सचालिका के साथ एक सुश्रद्धा सम्पन्न धर्मपरायणा महिला रत्न थी। चूकि आपका पीहर (पितृपक्ष) एक ऐसे धर्म-निष्ठ (भदेसर) ग्राम मे था, जहॉ जैन साधु-साध्वियो का चातुर्मास आदि प्रसगो पर आवागमन होता ही रहता था, अत आपको श्रद्धानिष्ठ धार्मिक सस्कार धरोहर के रूप मे अपने माता-पिता से मिले थे। फलस्वरूप आपका धार्मिक जीवन अतीव समुन्नत था।

इसी रत्नगर्भा पुण्यशीला माता की कुक्षि से सम्वत् १९७७ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को श्रद्धेय आचार्य देव का जन्म हुआ, जिससे जननी और जन्म-भूमि दोनो ही गौरवान्वित हो, चमक उठी।

जनक और जननी अति मृदुल एव सरल होते हुए भी अपनी धार्मिक वृत्ति मे सजग एव दृढ चित्त थे। मातु श्री केवल नाम से ही श्रृगार नही थी, अपितु अपनी सज्जनता एव मृदुलता के कारण सम्पूर्ण ग्रामवासियो के लिए उत्कृष्ट श्रृगार (अलकार) स्वरूपा थी।

आचार्य देव के अग्रज दो भ्राता एव अग्रजा पॉच-भगिनियाँ थी। भ्रातृ तत्कालीन उच्च आदर्शो की छाया मे पलने वाले थे एव बहिने अन्य उच्च कुलो की शोभा बढाने वाली थी। आचार्य देव की दो भगिनियाँ महासतीजी श्री धापूकवरजी एव महासतीजी श्री छगनकवरजी ने आपश्री का ही पदानुसरण कर सयम पथ स्वीकार कर लिया। उनमे से महासतीजी श्री धापूकवरजी तो सरलता, सात्विकता एव सादगी की प्रतिमूर्ति प्रभु ऋषभदेव कालीन साधुत्व का स्मरण कराने वाली भद्रमना साध्वी रूप मे अभी विद्यमान है जो वास्तव मे साधुत्व के रूप मे साध्वी रत्न ही है तथा महासतीजी श्री छगनकवरजी अपनी

अल्पकालीन दीक्षा पर्याय मे ही जन-जन की श्रद्धा भाजन बन स्वर्गवासी बन गयी ।

इसके अतिरिक्त आपके अग्रज श्री मीठूलालजी का पूरा परिवार अर्थात् आपकी भौजाई, रतनलालजी, दीपचदजी, रूपलालजी आदि भतीजे अपने-अपने क्षेत्रो मे कुशलता पूर्वक व्यवसायरत है ।

उष काल

चू कि आचार्य देव अपने सब भाइयो-बहिनो मे सबसे छोटे थे, अत आपका नाम प्यार से "नाना" रख दिया गया, अन्यथा आपका जन्म नाम कर्मवीर आदर्श पुरुष श्री कृष्ण की याद दिलाने वाला अचलता एव सरक्षणता का प्रतीक "गोवर्धनलाल" था ।

आचार्य देव को अपने जीवन के सुषमामय उष काल मे विचार एव आचार की दृष्टि से एक समुन्नत एव धार्मिक गौरवशाली परिवार का सौहार्द-पूर्ण लालन-पालन मिला । माता के ममतामय दुलार, पिता के हार्दिक स्नेह, भगिनी-बन्धुओ के अप्रतिम प्रेम एव परिजनो के प्यार मे पलने वाला यह लाल अपने जीवन के उष काल का आनन्द लेने लगा ।

आचार्य देव मे रूप की एक आकर्षक सुन्दरता, बुद्धि की चमत्कारिक पटुता एव सभी भाइयो मे वय की लघुता थी । अत आपका वह सुषमामय जीवन सुखद एव शान्त था । सहज-सरल प्रकृति, रूप और बुद्धि की विशेषता के कारण आप अपनी अल्प वय मे ही ग्रामवासियो की भूरि-भूरि प्रशसा एव समादर के पात्र वन गए थे । आपकी निष्काम भाव से की जाने वाली सेवाओ से तो समस्त ग्रामवासी अप्रतिम प्रभावित थे, क्योकि आपका नैसर्गिक रूप से कारुणिक हृदय किसी भी दु खित व्यक्ति को देखकर शीघ्र द्रवित हो उठता था ।

एक तेली परिवार की वृद्ध महिला की तो आप प्रतिदिन सेवा करते थे । महिला के चार-पॉच जवान लडके थे, किन्तु फिर भी वृद्ध महिला (बुढिया) को काम करना ही पडता था । वह महिला जव प्रतिदिन पानी लेने कुए पर जाती तो आप प्राय उस समय वहॉ पहुँच जाते और उसका घडा स्वय लेकर उसके घर तक पहुँचा देते । वूढी माजी के मु ह से अपने गाँव के इस "नाना" के प्रति सहज ही अगणित आशीर्वाद के स्वर फूट पडते ।

विचारणीय है कि नागरिक सभ्यता से कोसो दूर, उस लघु ग्राम मे चरितनायक को दयालुता की शिक्षा देने कौन पहुँचा होगा ? किन्तु महापुरुष जन्मना ही वे सस्कार लेकर आते हैं, जो वाह्य शिक्षा से वहुत भिन्न और उच्च आदर्शात्मक होते हैं । वे ही सस्कार थे हमारे श्रद्धा केन्द्र चरित नायक मे । •

कल्पना के दिव्य शिखर पर

मानव एक चिन्तनशील प्राणी है। चिन्तन एवं मनन करना उसका व्युत्पत्ति मूलक सहज स्वभाव है। जैसा कि महर्षि मनु ने कहा है—"मननात् मनु. तस्यापत्यम् मनुष्य:" अर्थात् पारिभाषिक अर्थो मे मनन का ही दूसरा नाम मनुष्य है। शिशु जब अपने पारिपार्श्विक वातावरण को देखने मे सक्षम हो जाता है, तो विचारो के सख्यातीत महल खड कर लेता है। कभी शून्य आकाश की ओर दृष्टि दौडाता है, तो कभी शैलमालाओ पर। कभी निशा मे चमकने वाले सितारो को निहारता है, तो कभी टिमटिमाते दीपक की लौ पर दृष्टि केन्द्रित कर देता है। कभी झरनो, कभी नदियो, कभी लहलहाते खेतो और कभी महकते पुष्पो को अपलक निहारता हुआ कल्पना के पखो पर सख्यातीत उडाने भरता है।

उपर्युक्त कल्पनाओ की दिव्यता और अदिव्यता, शिशु को मिलने वाले तत्कालीन वातावरण, उसकी बहुमुखी प्रतिभा एव किसी सीमा तक जन्मजात सस्कारो पर आधारित है। पारिपार्श्विक वातावरण सौम्य, सु-मधुर एव उदात्त होगा और बालक प्रतिभा सम्पन्न होगा, तो उसके विचारो मे दिव्यता की सृष्टि अनिवार्यत: सहज होगी और यदि इसके विपरीत शिशु के समक्ष वातावरण दूषित होगा, तो निश्चित रूपेण वह बालक विचारो के उच्च शिखर पर नही पहुँच सकेगा।

आचार्य देव के लिये भी जैसा कि हम पहले लिख आए है, पारिपार्श्विक वातावरण सु-समृद्ध एव सु-मधुर था और साथ ही बचपन मे ही आपकी प्रतिभा बहुमुखी विकासोन्मुख थी। अत. स्वाभाविक है कि विचारो मे दिव्यता एव उदात्तता का संचार हो।

एक दिन आचार्य देव के उपपात मे जीवन के सुषमामय बाल्य काल की विविध घटनाओं एव कल्पनाओ के विषय मे विचार-विमर्श चल रहा था। मै पूछ बैठा, भन्ते, आपके वर्तमान को देखते हुए सहज कल्पना उठती है कि इतने सुन्दर एव समुन्नत जीवन का आधार बाल्य काल किस रूप मे एव किस सुनहले कल्पना-वितान वाला रहा होगा ?

आचार्य देव ने सहज स्मिति के साथ उत्तर दिया—भाई, मेरी बाल्य-

कालीन कल्पनाएँ कुछ अजीव-सी थी । वर्तमान-सा चिन्तन तो उस समय नही था, किन्तु चिन्तन का आदी मैं वचपन से ही रहा हूँ ।

आमोद की वेला में

आध्यात्मिक किंवा परम्परागत चली आ रही धार्मिक क्रियाओ से तो मैं उस समय सर्वथा अपरिचित था और मेरी उनमे रुचि भी नही थी । यहाँ तक कि सामायिक आदि क्रियाओ को एव त्याग-प्रत्याख्यानो को मैं एक तरह से ढोग ही समझता था । कारण स्पष्ट था कि मैं सदा से चिन्तन का अभ्यस्त रहा हूँ और जव तक मेरा चिन्तन किसी क्रिया की तात्त्विकता को नही जान लेता और जिज्ञासाओ का उचित समाधान नही हो जाता, मैं उसके अन्धानुकरण का पथिक वनना नही चाहता ।

एक प्रसग है, मेरी पूजनीय मातु श्री साध्वियो से कुछ त्याग-प्रत्याख्यान लेकर लौटी और तद् विषयक चर्चा मेरे समक्ष करने लगी, तो मैंने स्पष्ट कह दिया, मैं ऐसे त्याग-वाग को नही मानता और न आपको ही इनका पालन करने दू गा । मातु श्री अत्यन्त भावनाशील एव सरल हृदया थी । उन्होने मुझे समझाने का वहुत प्रयास किया, किन्तु जितना ही समझाने का प्रयास किया, 'ज्यो-ज्यो उपचार किया, मर्ज वढता ही गया' के अनुसार मेरा रोष वढता ही गया । यहाँ तक कि मेरी समझ मे उस ज्ञान शून्य क्रिया की प्रतिक्रिया ने इतना उग्र रूप ले लिया कि मैं उन साध्वियो के प्रति भी अपशव्दो का प्रयोग करने लगा और जव मातु श्री सामायिक लेकर वैठी तो मैं जिस माता के प्रति सदा अप्रतिम विनम्र रहा हूँ, उनकी सामायिक भग करने को उद्यत हो गया और वैसा नही करने की हालत मे अपना आवेश समीप मे पडी रेत घडी पर उतारना चाहा अर्थात् घडी फोडने का प्रयत्न करने लगा । यद्यपि स्नेहमयी माता ने मुझे वैसा नही करने दिया, किन्तु मैं उस समय आपे से वाहर था । मुझे कुछ भी भान नही था कि मैं क्या करने जा रहा हूँ । जिस जननी का अनादर तो दूर रहा, कभी वचन का उल्लघन तक नही करता था, उन्ही के प्रति इतना कठोर कैसे वन गया, इसका चिन्तन जव कभी करता हूँ, तो लगता है उस समय मुझ मे तद्विषयक ज्ञान का प्राय: अभाव था और कोई उचित समाधानदाता भी नही मिला ।

वैसे किसी भी क्रिया की तह तक पहुँचना वाल्यकाल से ही मेरा स्वभाव रहा है । आमतौर पर माना जाता है कि शैशव काल, आमोद-प्रमोद एवं वाल-सुलभ क्रीडाओ के लिये है और होता भी ऐसा ही है । शिशु सदा हमजोली साथियो की खोज मे रहता है तथा विविध प्रकार के मनोरजक साधनो-खेलो मे व्यस्त रहता है, किन्तु मेरा स्वभाव नैसर्गिक रूप से कुछ भिन्न था । मैं

प्रारम्भ से ही इन वाल क्रीडाओं से सर्वथा दूर रहने का प्रयास करता और समवयस्क साथियो के हजार प्रयत्न करने पर भी मैं उनसे बचने का ही प्रयत्न करता। कभी कुछ मनोरजन भी करना होता, तो उस प्रकार का, जिसमे कार्य-निष्पत्ति, समय की सार्थकता एवं मन का रजन तीनो का सपुट हो। वह था कृषि। नौकरों से, जो अपने खेत पर काम किया करते, चडस ले लेना और उसी के द्वारा कुछ मनोरजन कर लेना अर्थात् कुछ समय तक चडस हाकने का आनन्द लेना। ताकि उन कृषको को भी विश्रान्ति का अवसर मिल जाय, समय सार्थक हो और मनोरंजन की भी पूर्ति हो जाए।

इसके अतिरिक्त अधिकाश समय मैं चिन्तन मे ही व्यस्त रहता और सदा वैसे अवसर की खोज मे रहता। उसके लिये स्थान एकान्तविजन ही हो सकता था। अत. मै सदा एकान्त प्रिय ही रहा हूँ। समय मिलते ही मै एकान्त का अन्वेषण करता और प्राय. अपने निवास स्थान के समक्ष पीछेवाली गली मे स्थित एक देवालय के बाहर किसी एक प्रस्तर-खण्ड पर बैठ जाता अथवा अधिक अवकाश की बेला मे दो-चार फर्लाग दूर खेतो की मनमोहक हरियाली से घिरे प्राकृतिक रम्य छटा के मध्य कूप के समीप स्थित एक लघुकाय टेकरी (कुए के मलवे से वनी हुई) पर बैठ जाता और जीवन और जगत् के विषय मे विविध आयामी, गभीर चिन्तन मे उतर जाता। मेरे चिन्तन का विषय नैतिकता, सामाजिक कर्त्तव्य एव मानव जीवन की सार्थकता एव महत्ता रहता। वैसे सामान्यतया जो कुछ जगद् दृश्यावली सम्मुख आती, मै विविध रूपो मे उस पर सोचना प्रारम्भ कर देता।

(१) ऊँचे आकाश में :

जव मै वहुत छोटा था, सृष्टि की प्राकृतिक रचनाओ पर अधिक चिन्तन किया करता। कभी-कभी पक्षियो को गगन की निर्वाध सैर करते हुए देखकर कल्पना किया करता, क्या मै आकाश मे नही उड़ सकता ? पक्षी से तो मुझमे अधिक शक्ति और सामर्थ्य है। मेरी तत्कालीन कल्पना होती थी कि मुझे सभी मनुष्यो से ऊपर उठकर चलना है। ऊर्ध्वगामी वनने की इस कल्पना को साकार रूप देने हेतु कई वार दो लम्वे वासो (लकडियों) पर चढ़ कर चलता और अपनी ऊर्ध्व उड़ानी भावनाओ को पोपित करता।

(२) संचालक :

उसी वाल्यकाल में, जव मैंने प्रथम वार ट्रेन देखी, विविध कल्पनाओ के साथ मुझे सवसे वड़ा आश्चर्य हुआ उसके सचालक पर। मै सोचने लगा— इस पर घोड़े, वैल कुछ भी तो नही जुड़े है। फिर एक ही आदमी इतनी वडी

दैत्याकार गाडी को कैसे खीचता होगा ? मैने बाहर से इजन को देखा और कल्पना की—दोनो ओर लोहे की रॉड आगे-पीछे जाती है और इससे पहिये घूमते हैं, गाडी चलती है। कितनी शक्ति से ये घूमते हैं, कितना वजन खीचते है, इन्हे आगे-पीछे चलाने वाला कितना बलशाली होगा। मै चिन्तन-सरिता के प्रवाह मे वहने लगा और निष्कर्ष पर पहुँचा, मुझे भी ऐसा ही सचालक बनना है।

(३) परमात्मा की खोज ·

हमारे गावो मे सामान्यतया लोग कहा करते, "परमात्मा ज्योति-ज्योति मे विराजमान हैं।" यद्यपि परमात्मा अथवा भगवान् शब्द मुझे वहुत प्रिय लगते, किन्तु मै इसके गूढार्थ को नही समझ पाता, फिर भी इस पर मै विविध आयामी चिन्तन अवश्य करता और दीपक की लौ के साथ इस उपमेय को घटित करता। मै सोचता दीपक की लौ मे परमात्मा विद्यमान है और वह उसी रूप मे प्राणियो के कर्त्तव्यो का निरीक्षण किया करता है। मै सोचता था कि ससार की सभी दीपो की लौ मिलकर एक परमात्मा का रूप वनता है।

और आज हम प्रत्यक्ष रूपेण देख रहे है कि आचार्य श्री का वह गुलावी वचपन अपने सुषमामय अरुणोदय मे ही एक गभीर सृजनशील चिन्तक की भूमिका रहा है। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" के अनुसार आचार्य देव का वह बाल्यकालीन कल्पनालोक आज वास्तविकता की सिद्धि मे परिणत हो चुका है।

अपनी ऊर्ध्वगमन की कल्पना के अनुसार, शारीरिक दृष्टि से नही, जिसका कि कोई महत्त्व भी नही है, तो आध्यात्मिक दृष्टि से आप उस कल्पनातीत ऊँचाई पर पहुँच चुके हैं, उच्चता का कोई मापदण्ड नही हो सकता।

ट्रेन सचालन की कल्पना एक सामान्य कल्पना ही मानी जायगी, किन्तु प्रतिभासम्पन्न महान् आत्माओ के लिये सामान्य निमित्त भी वहुत वडा आदर्श सिद्ध हो जाता है। जिन अर्थो मे आचार्य श्री ने उस "सचालन" की कल्पना को लिया और जिस निष्ठा के साथ उसे आत्मसात् किया, हम उसके फलित रूप के विपय मे कल्पना नही कर सकते कि ग्राम्य सभ्यता मे पलने वाला वह वालक ट्रेन-सचालक वनने की कल्पना के फलित मे इतने विराट् सघ का सचालक, नायक अथवा नियन्ता वन जाएगा।

इतने विराट् सघ का उत्तरदायित्वपूर्ण सचालन करना सामान्य व्यक्तित्व के वूते की वात नही है। आचार्य देव अपने इस उत्तरदायित्व का

वर्तमान सदर्भ मे किस विलक्षण पद्धति से निर्वहन कर रहे है, इसका परिचय तो उनके सघ का प्रत्येक अग (सदस्य) अपने श्रद्धेय के प्रति अविचल आस्था और प्रगाढ निष्ठा के द्वारा दे रहा है।

वास्तव मे बीज रूप मे रही हुई कल्पना ही उचित पोषण प्राप्त कर लहलहाते वृक्ष का रूप ले लेती है।

और ज्योति मे परमात्मा की खोज तो उनके अपने जीवन का अभिन्न अग बनकर आज तक लगातार चल रही है। अन्तर केवल इतना ही हुआ है कि वह खोज दीपक की ज्योति मे न होकर अन्तर की ज्योति मे होने लगी है।

• • •

वज्राघात

मनुष्य अपने जीवन मे किंवा जीवन के प्रत्येक क्षण मे कल्पनाओ की सख्यातीत उडाने भरता है। स्वय के विषय मे ही नही, अपने परिपार्श्व के विषय मे और उसमे भी वर्तमान को छोडकर, अनागत के विषय मे न जाने कितने कल्पना-ससार के ताने-वाने अथवा महल खडे कर लेता है, मै अतिशीघ्र इन महलो मे निवास का आनन्द लेने लगू गा। किन्तु उसके वे सुनहले स्वप्न कितने अधूरे रह जाते हैं। उसका वुना हुआ वह काल्पनिक जाल एव उसकी उस रगीन दुनिया के महल कितने शीघ्र अर्थात् निर्माण के पूर्व ही ढह जाते हैं।

मानव की अवस्था उस मधुकर सी है, जो सध्या-वेला मे कमल पर वैठा है। मन्द-मन्द सुरभि से मोहित होता हुआ मकरन्द ले रहा है। सूर्य की अस्तगत अवस्था को देखकर भी अनदेखा करता हुआ सोच रहा है, क्या जल्दी है, थोडा और मकरन्द ले ले। सुरिभ का थोडा आनन्द और ले ले, फिर तो उडकर जाना ही है। परन्तु सन्ध्याकालीन सूर्य की गति त्वरित होती है। वह अस्ताचल के नीचे छिप जाता है और कमल का पुष्प वन्द हो जाता है। भौरा फिर भी आशालता पर चढता हुआ सोचता है—क्या वात है। हो जाने दो वन्द। पुन प्रात काल होगा ही। सहस्त्ररश्मि भी उदयाचल पर निकलेगा ही। फूल भी खिलेगा। उस समय उड चलेगे। वह वेचारा नादान, क्या जाने कि इतनी दीर्घ कालावधि मे तो क्या का क्या हो जाएगा। उसकी समस्त आशावल्लरियाँ कुम्हला जाती है, जिस समय मत्त गजराज आता है और उस कमल-पुष्प को जड सहित उखाड फेकता है और वह मधुकर उस मकरन्द की आसक्ति मे ही सदा सदा के लिये सो जाता है। इन्ही भावो का मार्मिक चित्रण नीतिमर्मज्ञ आचार्य भर्तृहरि ने खीचा है :—

> "रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्।
> भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पद्म जालम्।
> इत्थ विचिन्तयति कोश गते द्विरेफे।
> हा! हन्त-हन्त! नलिनी गज उज्जहार।।"

ऐसी ही कल्पनाओ की उधेड़ वुन मे मानव-मन लगा रहता है और वीच

में ही काल अपना ताण्डव नृत्य दिखाकर चला जाता है। काल की गति बडी विचित्र है। "कालस्य कुटिलागति" वाली उक्ति कितनी सत्य है। दैनन्दिन अनुभूतियाँ इसकी साक्षी है।

श्रद्धेय चरित नायक का मन भी आशाओ एव कल्पनाओ के विविध रगी तानो-बानो मे काल की प्रवाहशीलता का अनुसरण कर रहा था कि अचानक एक वज्र प्रहार आपके हृदय पर हुआ।

आपके एक सहोदर भाई का वियोग तो उस समय ही हो गया था जब आप जन्म, जीवन और मृत्यु की घटनाओ से सर्वथा अपरिचित थे। अर्थात् आपको उस वियोग का कुछ भी अहसास नही हुआ, किन्तु जब आपकी उम्र लगभग आठ वर्ष की थी, अचानक आपके पूज्य पिताश्री की वात्सल्यपूर्ण छत्र-छाया आपके सिर से उठ गयी। इससे आपके लक्ष्य को एक गहरा आघात लगा। अभी तक आपने जीवन की सुषमा एव बसन्त का ही अनुभव किया था, आज उससे विपरीत क्रूर मृत्यु का भी साक्षात्कार कर लिया। इस हृदय-विदारक दारुण प्रक्रिया से आपके सारे सुनहले स्वप्न-महल एक-एक कर ढहने लगे। परन्तु इसकी प्रतिक्रिया मे आपके जीवन ने अचानक एक नया मोड लिया और चिन्तन का नया स्रोत आप मे खुल गया।

चूकि पिताश्री के दुखद अवसान के समय आपके बडे भ्राता श्री मिठूलालजी और आप दो भाई ही थे, अत. कुछ पारिवारिक एव आर्थिक जिम्मेदारियो ने स्वत. प्रभावित करना आरम्भ कर दिया अर्थात् परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारियाँ आप दोनो लघु वयस्क भ्राताओ पर आ पडी।

बाल्यकालीन अध्ययन-क्षेत्र

अब तक आपका जीवन स्नेह एव वात्सल्य के सौरभमय वातावरण में ही गुजर रहा था। चिन्ता एव व्यथा किस चिडिया का नाम है, न तो जाना था, न उसके विषय मे कभी सोचा था। किन्तु ज्यो ही पिताश्री के वियोग से कुछ जिम्मेदारियो का प्रादुर्भाव हुआ, उनके सफलतापूर्वक निर्वहन के लिये आपको कुछ अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

सामान्यतया बाल्यकाल जीवन-निर्माण की भूमिका माना जाता है। "यन्नवे भाजने लग्न सस्कारो नान्यथा भवेत्" के अनुसार बाल्यकालीन शिक्षा के संस्कार जीवन मे अमिट लेख बन जाते है। मनोवैज्ञानिको का सिद्धान्त है कि "बालक अपने प्रारम्भिक पाच-सात वर्षो मे जो कुछ सीख जाता है, वही उसके जीवन मे स्थायी रहता है।" इस कथन के अनुसार आचार्य देव के स्थायी सस्कार अपनी माता की पाठशाला मे ही बने है। फिर भी अक्षरी ज्ञान के लिये

किसी पाठाशाला की अपेक्षा रहा करती है। वैसे महान् आत्माओ के लिये किसी पाठशाला का सकुचित घेरा उनकी विराट् प्रतिभा को सकुचित करने वाला ही होता है। जीवन का प्रतिक्षण उनके लिये अध्ययन काल और प्रत्येक स्थान उनके लिये पाठशाला है। साधारण प्राणी पुस्तको के आधार पर ही केन्द्रित हो जाता है, किन्तु महान् चेतनाओ के लिये सम्पूर्ण ससार ही एक खुली पुस्तक किंवा पाठशाला है, जहाँ प्रतिपल घटने वाली प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिवर्तन एव प्रत्येक स्पन्दन उनके समक्ष एक नया अध्याय लेकर उपस्थित होता है और उन्हे नया वोध देकर चला जाता है। उन्ही कुछ विशिष्ट आत्माओ मे हैं हमारे श्रद्धेय चरित नायक, जिनके लिये किसी परिधि की आवश्यकता नही थी, फिर भी सामान्य अक्षरी ज्ञान हेतु तत्कालीन ग्राम्य सस्कृति मे जितने कुछ विद्या के स्रोत उपलब्ध थे, वे ही आपको भी मिले। यद्यपि वे आपश्री की अद्भुत प्रतिभा की क्षुधा तृप्ति के लिये अपूर्ण थे, फिर भी उसके लिये उस साधनो के अभाव वाले युग मे—"कुछ नही" की अपेक्षा "कुछ" वरणीय था। उसी वातावरण और शिक्षा की ओर आपने पद-सचरण किया।

यदा-कदा आचार्य देव के पाद्-पद्मो मे वैठकर कुछ शिक्षा ग्रहण करने का अवसर आता है। तव आचार्य देव स्नेहमयी मधुरगिरा मे फरमाया करते हैं—"भाई! तुमको तो अध्ययन के समुचित साधन एवं पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध है, किन्तु जब हम अध्ययन करते थे, कहाँ इतने अध्यापक थे, कहाँ इतनी पुस्तके, कापियाँ, पेन, पेन्सिल की साधन-सामग्री थी और कहाँ था अध्ययन का उचित वातावरण ही? गाँव से पाँच-दस मील दूर कहीं—एक छोटी-सी पाठशाला होती थी। जहाँ तीस-चालीस बालक होते और एक ब्राह्मण पण्डितजी आते और लकडी की पट्टी (स्लेट) पर [illegible] एकाध के पास होती थी, "क" क्को केवरियो. '[illegible] गाय एव सिद्धो वर्णा समा मनाया [illegible] कुछ सिखाते और कुछ वाणिज्य हेतु पहाड़े, (गिनती) [illegible] सिखा देते थे। इससे कुछ आगे का मेरा [illegible] एवं चिकारडा मे अपनी दोनो वहिनो के यहाँ हुआ। [illegible] अत्यन्त छोटा ग्राम था, अत वहाँ पाठशाला आदि का कोई [illegible] नहीं था। किन्तु एक बात अवश्य है, उस समय की पढाई (शिक्षा पद्धति) से जो [illegible] ज्ञान एवं आनन्द आता था, आज की [illegible] हुई शिक्षा-पद्धति से वह नही आ सकता।"

तात्पर्य यह है कि [illegible] परिस्थितियों के [illegible] अध्ययन का जो कुछ वातावरण था वह बहुत [illegible] था और वह [illegible]

देव को भी मिला। चूं कि आचार्य देव की प्रतिभा बहुमुखी-विकासोन्मुखी थी, अतः आप उस सीमित अध्ययन के अतिरिक्त अपनी मेधा के अनुरूप अन्यान्य कई विषयो पर चिन्तन किया करते, और अध्ययन के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति करते रहते। फलस्वरूप जो गुरुजी आपको अध्यापन कराते, आपको उनकी अत्यधिक कृपा प्राप्त थी। आप अपने समय के सब छात्रो मे प्रामाणिकता एव मेधा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ छात्र माने जाते थे। आपकी प्रामाणिकता के सम्वन्ध मे एक लघु घटना प्रस्तुत है :--

प्रामाणिकता के शिखर पर

आचार्य श्री के जीवन का उष.काल चूं कि एक ऊर्जस्विल सात्विक ग्राम्य-सस्कृति मे पल्लवित हुआ था, अतः प्रामाणिकता आपका सहज स्वाभाविक गुण था। आपके जीवन के कण-कण मे निश्चल प्रामाणिकता परिव्याप्त थी।

जब आचार्य देव उपर्युक्त पाठशाला मे अध्ययनरत थे, तत्कालीन रीति-नीति के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी अवकाश के दिन गुरुजी के लिये एक पैसा लाया करता था। वह पैसा गुरुजी, आचार्य देव-तत्कालीन छोटे-से बालक "नानालाल" के पास, जमा करने के लिए सभी छात्रो को सकेत कर चुके थे। जब गुरुजी अपने कृत्यों से निवृत्त होकर लौटते तब आचार्यश्री अपनी ऋजुता पूर्ण तीक्ष्ण प्रज्ञा से स्मरण करते हुए एक पैसे को उठा कर कहते "यह पैसा अमुक का है, यह अमुक का है।" गुरुजी उनकी उस बाल्यकालीन ऋजुता एवं सहज प्रामाणिकता को देख गद्गद् हो उठते और सिर सहलाते हुए कहते— "बेटा, तुम तो सीधा यह बता दो कि कितने छात्रो के पैसे आये है और कितने के नही ? अलग-अलग गिनाने की आवश्यकता नही।"

एक लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना और है। एक दिन की बात है। पाठशाला से सभी विद्यार्थी अवकाश प्राप्त होने पर अपने-अपने घर चले गए, और अकेला बालक नानालाल पीछे रह गया। सहसा उसकी दृष्टि स्याही की एक दवात पर पड़ी जिसे कोई बालक भूल गया था। बालक नानालाल ने दवात उठा ली और अपनी कमीज की जेब मे रख ली। दवात तो जेब मे स्थिर हो गई किन्तु मन की अस्थिरता द्विगुणित-वेगवती हो गई। अन्तर्मन मे द्वन्द्व चलने लगा, सात्विक एव तामसिक विचारो का। ऊपरी प्रज्ञा कहती, कि कोई लडका भूल गया है, अपने को तो सहज मिली है, रख लेना चाहिये। किन्तु पुनः अन्त.स्वर झंकृत होते, यह तो चोरी होगी। बहुत बड़ा पाप होगा। उस बालक की घर पर पिटाई होगी। उसकी आत्मा को कितना धक्का लगेगा। अतः यह अपने को नही रखना चाहिये। आदि।

कुछ काल तक यही द्वन्द्व चलता रहा और अन्ततोगत्वा अन्तरग आवाज किंवा प्रामाणिकता की विजय हुई। वालक नानालाल उस दवात को नही रख सका। कारण स्पष्ट है कि उसका हृदय भवभीरु और प्रामाणिक जो ठहरा।

उपर्युक्त उदाहरण वैसे वहुत छोटे लगते हैं, किन्तु वाल्यकालीन छोटी-छोटी घटनाएँ जीवन मे परिवर्तन ला देती हैं और वे ही जीवन की सर्वतोभावेन प्रकाशक भी वन जाती हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, यह अनुभूति का विषय है, शव्द-व्यजना का नही।

आज्ञाकारिता एवं मातृ-भक्ति

जैसा कि हम पहले सकेत कर चुके हैं कि आचार्यश्री के सिर से पूज्य पिताश्री का वरद हस्त उनके शैशव काल (लगभग ८ वर्ष की उम्र) मे ही उठ गया था। अत अव उनके लिये श्रद्धा-समर्पण का एक ही आधार रह गया था—वह थी पूजनीया मातुश्री।

शिशु का सर्वस्व समर्पण है। शिशु सदा अपने अभिभावको के प्रति समर्पित रहता है। वह अपने गुलावी वचपन मे अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के विषय मे विचार करना तो दूर रहा, कल्पना तक नही करता। उसकी समस्त क्रियाओ का केन्द्र उसके माता-पिता होते हैं।

आचार्य देव भी अपने शैशवकाल मे अपनी पूजनीया मातुश्री के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित थे। उनकी अपनी मातुश्री के प्रति अप्रतिम श्रद्धा, अगाध निष्ठा एव निश्चल भक्ति थी। "मातृ देवो भव" का सूक्त उनके जीवन के साथ ओतप्रोत था। वास्तव मे आपश्री की माता शृ गार देवी भी अत्यन्त भद्रा, देवी प्रकृति की महिला थी। अत आचार्य देव भी उन्हे देवी-भगवती ही मानकर चलते थे। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति नैसर्गिक वृत्ति के अनुसार मातुश्री के निर्देश एव इगित के अनुसार ही होती थी। यहाँ तक कि लघु से लघुतम एव वृहत् से वृहत्तम प्रत्येक कार्य मातुश्री को पूछे विना करना आप वहुत वडा अपराध समझते थे। शीघ्र हो या विलम्व से, आचार्यश्री प्रतिदिन प्राय मातुश्री के साथ ही एक ही थाली मे भोजन करते। आराधनीया माता को पूछे विना घर के वाहर पैर तक नही रखते थे। सक्षिप्त मे आचार्यश्री का प्रत्येक कार्यकलाप माता के प्रति इतना समर्पित होता कि मातृ हृदय गद्गद् हो जाता था।

• • •

व्यापार की ओर

इन्ही सब नैसर्गिक पाठशालाओ मे जीवन का वास्तविक अध्ययन करते हुए आचार्यश्री अपने लक्ष्य की ओर बढ रहे थे कि विधि की विडम्बना ने कुछ परिस्थितियो का बोझ डालना आरम्भ कर दिया।

आठ वर्ष की अल्पायु मे ही पिताश्री अथवा अनुभवी सरक्षक का अभाव शिशु को किस दर्दनाक स्थिति मे उलझा देता है और उस समय बालक किन अनहोनी घटनाओ का शिकार बन जाता है, यह कल्पना का ही विषय है। ऐसी परिस्थिति मे बालक या तो स्वच्छन्द या गतानुगतिक बन जाता है अथवा उचित वातावरण मिलने पर परिस्थितियो से सग्राम करने के लिये पूर्ण शौर्य के साथ कर्त्तव्य क्षेत्र मे जुट पडता है। फलत. वह बचपन मे ही प्रौढ कर्म क्षेत्र मे उतर कर शीघ्र ही कर्मवीर बन जाता है।

श्रद्धेय आचार्य देव के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। आपने शैशव काल मे ही अर्थात् लगभग ग्यारह वर्ष की अल्प उम्र मे सामान्य कक्षा दो या तीन तक का अध्ययन करके, अपने बडे भ्राता मिठूलालजी को, जो अपना पैतृक व्यवसाय चला रहे थे, पारिवारिक एव आर्थिक जिम्मेदारियो मे सहयोग देने हेतु कर्म क्षेत्र मे पद-न्यास कर दिया।

प्रारम्भ मे आपका भी व्यवसाय पूज्य पिताश्री का पदानुगामी, ग्राम्य जन-भोग्य वस्तुओ का क्रय-विक्रय ही रहा, किन्तु शनै -शनै. आपने चन्द दिनो मे प्रगति की ओर बढते हुए अपने एक घनिष्ठ मित्र (जो आपके चचेरे भाई भी थे) कन्हैयालालजी के साथ कपडे का व्यवसाय आरम्भ कर दिया। फर्म का नाम था "कन्हैयालाल नानालाल"।

अनोखी सूझ

व्यवसाय के दौरान कही मित्रता मे व्यवधान न पड जाए, एतदर्थ अपने मित्र से एक प्रतिज्ञा करवा ली, जो आपकी तत्कालीन मेधा शक्ति और बुद्धिमत्ता की परिचायक ही नही, प्रबल प्रमाणभूत भी है और खासकर श्रामण्य जीवन का तो प्राण ही।

आपने अपने मित्र से कहा, "देखिये—व्यवसाय के दौरान कई प्रसग ऐसे आते है, जहाँ मतभेद के साथ मनोभेद भी खडे हो जाते है। ऐसी स्थिति मे व्यवसाय ही नही, जीवन भी सघर्षमय वन जाता है। अत यह आवश्यक है कि यदि किसी प्रकरण को लेकर मुझे (आवेश) क्रोध आ जाए तो कुछ समय के लिए आप मौन कर लेवे और आपको आ जाने पर मैं वैसा कर लूगा। आवेश शान्त हो जाने पर हम शान्त वातावरण मे, शान्त मस्तिष्क से सदर्भित विषय पर विचार-विनिमय कर लेगे, ताकि हमारे व्यवसाय के कारण मित्रता एव भ्रातृत्व-भावना मे कभी स्खलना न होने पावे।"

कितनी सूझ-बूझ थी, उस तेरह वर्षीय वालक मे ! इसे हम लाक्षणिक भाषा मे "पूत के पग पालणे मे" कहते है। इसका प्रत्यक्षीकरण हम उस समय करते है—जव आचार्य देव अपने परिपार्श्ववर्ती सन्त समुदाय को अपने ही जीवन के उपर्युक्त उदाहरण द्वारा क्रोध-विजय की मार्मिक एव तात्त्विक पद्धति का निर्देशन करते है और सभवत उसी का प्रतिफल है कि आचार्य देव को कभी कोई क्रोध करते नही देख सकता है।

इस प्रकार व्यावसायिक कर्म-क्षेत्र मे प्रगति द्रुत गति से वढने लगी और "जहा लाहो तहा लोहो" की शास्त्रीय उक्ति के अनुसार स्वभावत दोनो मित्र अपने व्यवसाय को विस्तृत वनाने की होड मे लग गए।

एक रोज दोनो मित्र सान्ध्य वेला मे प्रतिदिन की भाति आय-व्यय की चर्चा कर रहे थे। प्रशान्त वातावरण मे चिन्तन के नए द्वार उद्घाटित होते ही है। चिन्तन एव विचार-मन्थन के दौरान दोनों ने विचार किया, अव इस व्यवसाय से कुछ आगे वढकर रूई की गाठो का थोक व्यापार किसी समीप के कस्वे मे चल कर प्रारम्भ कर देना चाहिये। वहाँ से रूई की गाठे वम्वई भेज देगे। इसके लिए सुन्दर मनोभूमि की निर्मिति के साथ स्थान "भोपाल सागर" का भी निर्धारण कर लिया गया और वही प्लाट खरीदने के लिये कपासन भी चले गए। क्योकि कपासन मे ही प्लाट की भूमि का वितरण-पत्र मिलता था।

किन्तु प्रकृति को किस प्रगति का [illegible] इष्ट है और नियति मनुष्य को कहाँ ले जाकर खडी कर देती है, यह हमारे चिन्तन के वाहर का विषय है।

अनजाने सम्यक्त्व

जैन संस्कृति मे सम्यक्त्व का [illegible] महत्त्व माना जाता है। सम्यक्त्व जैन दर्शन मे प्रयुक्त होने वाला [illegible] शब्द है, जिसका अर्थ [illegible]

अथवा दार्शनिक भाषा मे सम्यग् दर्शन, आत्म दर्शन होता है। इसकी सम्पूर्ण विवेचना यहाँ अभीप्सित भी नही है और प्रासगिक भी नही। किन्तु प्रसगोपात सामान्य दृक्पात करना चाह रहा हूँ—

सम्यग्दर्शन के दो मौलिक भेद किए गए है—(१) नैश्चयिक सम्यग्-दर्शन और (२) व्यावहारिक सम्यग्दर्शन। नैश्चयिक सम्यग्दर्शन का अर्थ है आत्मादि तत्त्वो पर सम्यग्ज्ञान पूर्वक सुविश्वास पैदा होना अर्थात् अन्तरग दृष्टि से भेद-विज्ञान-जड-चेतन की भिन्नता का परिबोध हो जाना। व्यावहारिक सम्यक्त्व जीवन के क्रिया पक्ष मे सुदेव-सुगरु और सुधर्म पर सम्यग् प्रतीति होना है। इसके लिये किसी योग्य मार्गद्रष्टा गुरु की आवश्यकता होती है। शास्त्रकारो ने कहा है—

"जहा सूई, ससुत्ता पडिया ण विणस्सइ
तहा जीवे ससुत्ते संसारे ण विणस्सइ"

अर्थात् जैसे सूत्र-धागे सहित सूई यकायक गुम नहीं होती उसी प्रकार सम्यक्त्व सहित जीव ससार मे अनिश्चित नही भटकता। इसी अवधारणा के अनुसार जैन समाज मे सम्यक्त्व ग्रहण (गुरु बनाने) की परिपाटी चली आ रही है। इसमे कुछ गुरु-मत्रोच्चार के साथ जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य-निर्धारण पर बल दिया जाता है और गुणात्मक दृष्टि से परम वीतरागी आत्मा को ही देव (ईश्वर) मानना, कनक-कामिनी आदि समस्त बन्धनों से मुक्त ३६-२५-२७ गुणों से युक्त मुनियो को गुरु मानना, जिसमे सर्वोपरि स्थान आचार्य का होता है और शुद्ध रक्षात्मक अहिसा मूलक दृष्टि को धर्म मानना, समझाया जाता है।

इसी प्रचलित परिपाटी के अनुसार श्रद्धेय आचार्य देव को भी सुयोग्य गुरु के द्वारा बाल्य जीवन मे ही गुरु मत्र सुनने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

बात यो बनी कि आप और आपके अभिन्न मित्र एवं पार्टनर (साझीदार) श्री कन्हैयालालजी मे शैशव काल से ही भ्रातृत्व भाव से कही अधिक गहरी मित्रता थी। दोनो प्रायः साथ ही रहा करते थे। एक समय जैन जगत् के दिव्य नक्षत्र उद्भट् व्याख्याता ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्य (श्री जवाहरलालजी म० सा०) का शुभागमन भोपाल सागर (दाता से छ. मील दूर) मे हुआ। आचार्यश्री के गाँव के कुछ भाई-बहिन दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए। आचार्य देव के तेजोपुञ्ज व्यक्तित्व का उन पर गहरा प्रभाव पडा। फलस्वरूप दोनो

मित्रो (आचार्य देव और श्री कन्हैयालाल) को उनके अभिभावको ने शैशवकाल मे ही गुरु धारणा दिलवा दी।

उस समय मेवाड के कुछ क्षेत्रो मे मेवाडी पूज्य श्री मोतीलालजी म० सा० का अधिक विचरना होता था और चरितनायक के परिवार वालो का सम्यक्त्व भी उन्ही का था, किन्तु ज्योतिर्धर जवाहर के व्यक्तित्व एव चरित्र ने उन सवको आकर्पित कर लिया। यद्यपि यह कई लोगो को अखरा और पुन सम्यक्त्व वदलवाई भी गई, किन्तु आन्तरिक भावनाएँ नही वदली जा सकती है। अत अन्तर मे पूर्व सम्यक्त्व का वीज, जो गहरा वैठ चुका था, नही वदलाया जा सका। अस्तु—

• • •

निमित्त की चिनगारी

अग्नि का छोटा-सा कण भी वृहत्काय घास के ढेर को क्षण भर मे भस्मसात् कर देता है और अमृत का एक लघुकाय विन्दु अथवा आज की भापा मे होम्योपैथिक की एक छोटी-सी पुडिया भी अमूल्य जीवनदाता वन जाती है। हिरोशिमा और नागासाकी की वह दर्द भरी कहानी हम भूले नही हो, तो सहज जान सकते है कि एक छोटा-सा अरगु-परमारगु कितना भयकर प्रलय ढा सकता है। ठीक वैसे ही, जीवन के प्रवाह मे सख्यातीत घटनाओ मे से कभी-कभी एकाध साधारण-सी घटना सम्पूर्ण जीवन-क्रम को आन्दोलित कर सर्वतोभावेन परिवर्तन का निमित्त बन जाती है।

श्रद्धेय चरितनायक के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। आपके सोये हुए देवत्व को अपेक्षा थी किसी ऐसे निमित्त की, जो उपादान का सहयोगी वन, उसे पूर्णता प्रदान करे।

उस समय तक आप तथाकथित धार्मिक अनुष्ठानो से सर्वथा अपरिचित थे और जितनी मात्रा मे परिचय प्राप्त हुआ, वह अत्यन्त अल्प था। अत आपका गहन चिन्तन उचित समाधान के अभाव मे उन सब क्रियाओ मे रुचि नही लेता था। इसके विपरीत आप धर्म क्रियाओ को ढकोसला समझते थे और साधु-सन्तो के प्रति भी आपके मन मे कुछ विपरीत ही धारणा थी। फिर भी आपकी सदा से ही निसर्गजा भवभीरु एव नैतिक प्रवृत्ति सदैव आपको अधिक आरम्भक प्रवृत्तियो से बचाए रहती थी। एक सामान्य से उपदेश पर कि बेर मे कीट होते है, अत्यत बाल्यकाल मे तुरन्त बेर खाने का त्याग कर लेना, आपकी भवभीरुता का प्रबल प्रमाण है।

एक समय की घटना है। आपके बडे भाई साहब मिठूलालजी, जो कुछ व्यवसाय के साथ-साथ अपनी निजी भूमि पर कृषको से कृषि का कार्य करवाया करते और कृषि की देख-भाल किया करते थे—ने आपसे कहा "कुए का ऊपरी भाग अधिक पानी बरसने के कारण ढह गया है। अत उसके पुन निर्माण के लिये चूने की आवश्यकता होगी। अत तुम चूना पडवाने की व्यवस्था करो।"

बौद्धिक प्रतिभा एव कर्त्तव्य-क्षमता मे बडे भाई साहब से आप अधिक कुशल थे, फिर भी आप उनका पिता की तरह हृदय से सम्मान करते थे और

यथासाध्य उनकी आज्ञाओ का पूर्णरूपेण पालन करने का प्रयास करते थे। अत आपके लिये यह आवश्यक हो गया कि कूप के पुन निर्माण के लिए सामग्री जुटाई जाए। उसके लिये आपने पत्थर फुडवाए, कुछ हरे वृक्ष भी कटवाए और चूना तैयार करवाकर कूप-निर्माण का कार्य सम्पन्न करा दिया।

इस प्रकार आपका व्यावसायिक दौर क्रमश विकासोन्मुख होता रहा और तद्द्वारा आप अपनी पारिवारिक एव सामाजिक समस्याओ के समुचित समाधान मे सफलता प्राप्त करते जा रहे थे। किन्तु हम पूर्व मे सूचित कर आए है कि नियति को आपके लिए कुछ अन्य ही इष्ट था। वह आपको इस परिवार के लघुतम घेरे से वहुत दूर विराटता की ओर ले जाना चाहती थी, जिसकी भूमिका तो नियति आप मे पूर्व ही निर्मित कर चुकी थी। अव आवश्यकता थी केवल एक छोटे से निमित्त की जो आपको मिल गया अपने गाव से करीव आठ मील दूर "भादसोडा" ग्राम मे।

वात असल मे यो वनी—"होनहार विरवान के होत चीकने पात" के अनुसार एक प्रसग आ गया। आपकी एक अग्रजा भगिनी थी श्रीमती मोतीवाई जिनका पाणिग्रहण भादसोडा निवासी श्रीमान् सवाईलालजी साहव लोढा से हुआ था।

प्रसग उस समय का है जव मेवाडी मुनि चौथमलजी म० सा० का चातुर्मासिक वर्षावास सम्वत् १९९४ मे भादसोडा मे था। आपकी (आचार्य देव की) वहिन श्रीमती मोतीवाई ने (पचोले) पाच दिन तक निराहार रहने का तपश्चरण किया। तत्कालीन प्रचलित परिपाटी के अनुसार तपस्विनी वहिन के लिये ऐसे प्रसगो पर उसके पितृगृह से वस्त्रादि (पोशाक) भेजे जाते थे। तदनुसार आपके लिये भी यह आवश्यक हो गया कि भादसोड़ा वहिन के लिये अपने परिवार से पोशाक आदि उचित सामग्री पहुँचाई जाय। चूँकि ऐसे पावन अनुष्ठान प्राय गृह-प्रमुखो के करकमलो द्वारा ही सम्पन्न हुआ करते है, साथ ही आप इस प्रकार की धार्मिक अनुष्ठानो की क्रियाओं से अपरिचित भी थे और आपकी इनमे रुचि भी नही थी अत. अपने अनुज श्रीमान् मिठूलालजी को ही आपने वहाँ जाने के लिये सम्प्रेरित किया। किन्तु मिठूलालजी उस समय किसी अन्य कार्य मे व्यस्त थे अत. वे नहीं जा सके। फलस्वरूप आपको ही उपर्युक्त प्रसग पर जाने का आदेश मिला। अत उचित पोशाक-सामग्री लेकर इच्छा नही होते हुए भी अनायास ही चल पड़े अपने लक्ष्य की ओर।

[illegible]

वास्तव मे [illegible] लक्ष्य की ओर [illegible]
प्रकृति आपको [illegible] लक्ष्य की [illegible] के लिये ही [illegible]

लाई थी। भादसोड़ा अपनी बहिन के यहाँ पहुँचकर यथायोग्य व्यवहार के साथ रात्रि-विश्राम वही पर किया। साथ मे लाई हुई सामग्री भेट कर प्रातःकाल पुनः लौटने की तैयारी करने लगे, किन्तु आपके बहनोईजी ने किसी तरह समझाया कि अभी पर्युषणो के दिन चल रहे है और कल तो सवत्सरी महापर्व है। कल का दिन पवित्र धार्मिक अनुष्ठानो मे व्यतीत होना चाहिये। किसी भी प्रकार की सवारी आदि का उपयोग नही करना चाहिये, और आप आज ही घोडे को परेशान करना चाह रहे है। इस प्रकार कुछ मान-मनुहार के पश्चात् आपको अनिच्छापूर्वक वहाँ रुक जाना पडा।

जैसा कि पहले लिख आए है, इस वर्ष वहाँ मेवाडी मुनि श्री चौथमलजी म० सा० का चातुर्मास था। अत प्राय· समस्त जैन समाज उनके पर्युषण प्रवचनो का लाभ लेने पहुँच रहा था। हमारे चरित नायक को भी बहनोईजी आग्रहपूर्वक प्रवचन-स्थल पर ले गए। आप प्रवचन-स्थल से कुछ दूर बैठ कर प्रवचन श्रवण करने लगे। प्रवचन कुछ भी समझ मे नही आ रहा था, फिर भी लोक-लज्जा से बैठे रहे। व्याख्यान समाप्ति के प्रसग पर मुनिजी ने कहा कि कल एक ऐसी बात सुनाऊँगा जिससे ससार की दशा का ज्ञान होगा। हमारे चरित नायक को कहानी रूप बाते सुनने का अधिक शौक था, अत सोचा कि कल की कहानी सुन लेनी चाहिए। तदनुसार दूसरे दिन भी प्रवचन सुनने गये। जब कुछ रस आने लगा, तो उठकर कुछ आगे समीप जाकर बैठ गए।

सावत्सरिक प्रवचन होने के कारण प्रवचन का विषय वैराग्योत्पादक एवं धार्मिक अनुष्ठानो के प्रति प्रेरणाप्रद था। ससार की असारता एव हिसा-कारी आरम्भिक प्रवृत्तियों के निषेध पर बल दिया जा रहा था। चूकि तत्कालीन वातावरण के अनुसार ग्रामीण सभ्यता मे पलने वाले अधिकाश जैन धर्मावलम्बी भी कृषि कार्य किया एव करवाया करते थे, अत उनको उद्बोधन देने हेतु मुनि श्री तत्कालीन भाषा-शैली के माध्यम से कह रहे थे, "बडे-बडे वृक्ष कटवाने से बहुत पाप लगता है क्योकि इस क्रिया से असख्य अथवा अनन्त वनस्पति कायिक जीवो की हिंसा तो होती ही है, साथ ही अन्य अनेक तदाश्रित पशु-पक्षी आदि (चलते-फिरते) प्राणियो की भी हिसा होती है। हिंसा, असत्य, चोरी आदि पाप-वृत्तियो मे रत रहने वाला व्यक्ति मर कर दुर्गति मे जाता है, कभी कुछ पुण्य कर्मों से मानव तन भी प्राप्त कर लेता है तो कभी पूरी इन्द्रियाँ नही मिलती अर्थात् बहरा, गूगा, लगडा आदि विकलाग बन जाता है, तो कभी दर-दर का भिखारी बन जाता है। और उचित धार्मिक वातावरण मिलना भी कठिन हो जाता है। इसी शृखला मे महाराजश्री ने फरमाया—

"यह ह्रास काल है अत. पचम एव षष्ठ आरक (काल विशेष) मे इन्द्रिय शक्ति, शारीरिक सगठन आदि क्षीण होते जाएँगे। यहाँ तक कि छठे आरे में

उत्पन्न होने वाला मानव तो वहुत लघुकाय अर्थात् एक हस्त प्रमाण ऊँचाई वाला होगा। वहुत लघु वय मे पितृ-पद भोक्ता वन जायगा। २० वर्ष की उम्र तक तो वृद्ध वन १०-१२ सन्तान का पिता वन जाएगा, इस प्रकार आरो का आद्योपान्त विस्तृत विवेचन किया।

प्रवचन तत्कालीन पर्षदा के लिये भावप्रवाही, हृदयग्राही एव वैराग्योत्पादक था। किन्तु यथा "आम्र वृक्ष पर आने वाली सभी मजरियाँ फलवती नही होती", ठीक उसी प्रकार उपदेष्टा द्वारा उपदिष्ट वाणी सभी श्रोताओ के सुप्त मानस को जागृत कर दे, यह आवश्यक नही। कोई विशिष्ट श्रोता ही उस वाणी को कर्ण-कुहरो तक ही सीमित न रखकर हृदय-तन्त्री तक पहुँचा पाता है और उनमे भी कोई विरल ही उसे सर्वतोभावेन जीवन-परिवर्तन का आधार वना लेता है।

उन विरल चेतनाओ मे ही हमारे श्रद्धेय चरितनायक भी रहे है, जिन्होने प्रवचन के एक-एक शब्द को एकाग्रतापूर्वक सुना एव उसे मन-मस्तिष्क पर नियोजित कर लिया। व्याख्यान श्रवण करते समय तक उसका नूतन परिवर्तनकारी कोई स्थायी प्रभाव आप पर नही पडा। प्रवचन समाप्ति पर अन्य श्रोताओ की तरह आप भी अन्यमनस्कवत् चलते वने। वहिन के निवास स्थान पर पहुँचे और अपना अश्व सजाने लगे। वहिन एव वहनोईजी आदि ने वहुत निषेध किया एव समझाया कि आज सवत्सरी महापर्व है, आज सवारी आदि नही करनी चाहिए। कल प्रात काल होते ही चले जाना, आदि। किन्तु अपनी धुन के पक्के चरितनायक पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। आप अश्वारूढ हो चल पडे एक अद्भुत गन्तव्य की ओर, चू कि उस समय आपकी मातुश्री अपने एक भाई, जो भदेसर मे रहते थे, के यहाँ थी। आपने अपनी मातेश्वरी से मिलने हेतु भदेसर की ओर प्रयाण किया, जो भादसोडा से लगभग दस मील पडता है। उस समय तक आपकी धार्मिक आस्था सुदृढ नही हुई थी अत आपने उस रोज सवत्सरी होने से लोकलज्जावश भोजन नही किया किन्तु उपवास-व्रत का प्रत्याख्यान भी नही लिया।

चिन्तन का मन्थन

श्रद्धेय आचार्य देव मे अपने शैशव काल से ही चिन्तन की प्रवृत्ति रही है। आप जीवन की किसी भी सामान्य-असामान्य घटना की गहराई मे पहुँचने का प्रयास करते और चिन्तन के मन्थन से निष्कर्ष का नवनीत निकाल लेते।

वातावरण कुछ ऐसा ही मिला। एकान्त विजन, सुरम्य वनस्थली वन की नीरवता को भग करने वाला पक्षियों का कलरव जो मानव को मस्त

चिन्तन के लिये उत्प्रेरित करता है, के मध्य सजग-चेता चरित नायक अश्वारूढ हो चले जा रहे थे । वन की मन्द बयार चतुर्दिग् भाद्रपदीय हरियाली की रम्य छटा एव शान्त वातावरण (जो आचार्यश्री का सदा से ही चिन्तन-क्षेत्र रहा है), का समुचित सुयोग पाकर आचार्य देव के चिन्तन ने एक नूतन अगडाई ली प्रवचन मे अनुश्रुत विषय पर गम्भीर चिन्तन के साथ मन्थन होने लगा ।

जो कुछ श्रवण किया, उसमे से जितना मानस-पटल पर अकित रहा, उसी पर धारा प्रवाही चिन्तन चला, जिसने आपकी आपेक्षिक सुपुप्त चेतना को एक झटके के साथ उद्बोधित कर दिया । विजली की चमक के सदृश आपको एक दिव्य प्रकाश की अनुभूति हुई । चारो तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल गया । तात्पर्य यह है कि ज्ञान की एक दिव्य रश्मि का प्रकाश आपके अन्त करण में प्रस्फुटित हुआ, जिसने आपकी समग्र चेतना को एकाएक आलोकित कर दिया, आनन्द से भर दिया । तथाकथित धर्म विद्रोही मन धर्माभिमुख वन धर्म की गहनता एव सूक्ष्मता के परीक्षण मे तत्पर बनने लगा ।

• • •

काल-दिग्दर्शन और वैराग्य

आपके चिन्तन का प्रकरण था—काल (आरा) का वर्णन एव वनस्पति-विज्ञान।

मुनिश्री द्वारा उपदिष्ट प्रवचन के काल-सम्वन्धी वर्णन पर जव आपने चिन्तन करना प्रारम्भ किया, तो करीव दो मील के मार्ग तक आप उसी में खो गये। छोटे से सूत्र पर मन-ही-मन वडे-वडे भाष्यो का निर्माण होने लगा। सख्यातीत प्रश्न मानस पटल पर उभरते और मन ही उनका समाधान ढूढता। नीतिकारो की "कालो हि दुरतिक्रम" वाली उक्ति सत्य प्रमाणित होती जा रही थी। क्या वास्तव मे काल इतना दुरुह है। हमे भी इस सुनहले स्वप्निल जीवन के अन्त मे काल के गह्वर मे खो जाना होगा। अपने शुभाशुभ के अनुसार दुर्गतिगामी वनना पडेगा। क्या छठे आरे के अत्यन्त क्लेशमय कृच्छ मानवीय तन मे आना पडेगा? क्या अनन्त काल तक यही भटकन चलती रहेगी?

इस प्रकार सख्यातीत प्रश्नो से जूझता हुआ आचार्यश्री का चिन्तन द्रुतगति से, अश्व की गति से भी तीव्रगामी हो, वढता रहा सत्य की किंवा स्वय की खोज मे। प्रश्नो की सीमा प्रश्नो तक ही नही रह गयी थी। ये प्रश्न जीवनगत यथार्थ के साक्षी वन चुके थे। मुनिश्री ने जो कुछ कहा था, वह जागतिक जीवन की यथार्थ परिणति थी। किन्तु जीव परवश-सा सव कुछ झेल रहा था। भय और भीति से नही, पौरुष की चिनगारियो से जीवन के तार-तार जगमगा उठे। विराट् सकल्प ने अगडाई ली, समग्र चेतना ही सकल्प वन उठी। सकल्प के महासागर मे करुणा, अहिंसा और सहानुभूति की तरगे थी।

सहसा आपश्री की दृष्टि परिपार्श्व मे फैली हुई दीर्घ काय वृक्षावली पर पडी और चिन्तन प्रवचन के दूसरे पहलू पर पहुँच गया, ओह! इन वृक्षो को छेदन-भेदन और कटवाने मे कितनी हिंसा है! कितने जीवो का सहार! मुनिश्री ने ठीक ही तो कहा था, कि एक वृक्ष के कटवाने पर वनस्पति कायिक असख्यात एव अनन्त सूक्ष्म प्राणियो की हिंसा तो प्रत्यक्ष है ही, किन्तु परोक्ष रूप मे तदाश्रित कितने जीवो का सहार होता एव आश्रय छिन जाता है। हजारो पशु-पक्षी उनके आश्रय मे पलने वाले अपने गृहो (नीडो) से वचित-निराश्रित हो जाते हैं। इन वृक्षावली के अभाव मे ये पक्षियो के कलरव कैसे मुखरित

होगे ! आखिर इन प्राणियो मे भी तो हमारे जैसी ही चेतना है ! उनके वे घोसले भी तो उनके लिए हमारे महलो से कम नही है । हमे क्या अधिकार है कि हम किसी के आवासो को नष्ट करे ! चिन्तनशील मानस, कल्पना के पखो पर द्रुतगामी उडाने भरता रहा और अन्ततोगत्वा स्वय पर केन्द्रित हो स्वय के ही अतीत के घटना-चक्रो पर मण्डराने लगा ।

मै आज दिन तक अनभिज्ञतावश कितना अधार्मिक और हिसक बना रहा । माताजी के धार्मिक अनुष्ठानो मे किस प्रकार व्यवधान बना । उनकी सामायिक लूटने का प्रयास करता था । साधु-साध्वियों को ढोगी समझता था । कूप-निर्माण हेतु चूना वनवाने के लिए कितने हरे वृक्ष कटवाये । हन्त ! धिक्कार है अपने आपको....पश्चात्ताप की ज्वाला अन्दर-ही-अन्दर पूरे वेग के साथ धधकने लगी । उस ज्वाला से आन्तरिक मैल, पिघल-पिघल, पानी बनकर आँखो के द्वारा वाहर निकलने लगा । अन्तरात्मा से होने वाला पश्चात्ताप इतना वेगवान वन गया कि आप उस विजन वन मे मानो अपनी सारी कालिमा को एकान्त-परमात्मा के चरणो मे पहुँचा देने के लिए उच्च स्वर मे आक्रन्दन करने लग गये । करीव ३ मील तक कातर स्वर मे पश्चात्तापपूर्ण आक्रन्दन चलता रहा और मिथ्या तत्त्व एव अज्ञान पानी बनकर बहता रहा । चिन्तन गम्भीर से गम्भीरतम होने लगा था । हृदय मे कई तूफान उठने लगे, एक नई चेतना का जन्म हुआ । विजली की चमक के समान एक दिव्य प्रकाश की अनुभूति हुई और चारो ओर प्रकाश-ही-प्रकाश फैल गया । इस प्रकार यह यात्रा अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, सुषुप्ति से जागृति की ओर ले जाने वाली एक यात्रा ही नही, महायात्रा रही ।

भदेसर ग्राम अर्थात् अपने ननिहाल के निकट पहुँचे, तो लोकलज्जा से अभिभूत हो रुदन करना वन्द कर कन्धे पर पडे हुए अगोछे (टॉवेल) से नेत्र एव मुँह पोछकर एक शीतल छायादार वृक्ष के नीचे कुछ विश्रान्ति के लिए अश्व को एक तरफ वाधकर, वैठ गये और मन को सान्त्वना देते हुए मन-ही-मन दृढ सकल्प कर लिया कि अव मानव जीवन के पवित्र लक्ष्य की ओर वढना है । सत्य की खोज करनी है, स्वय धार्मिक वनना है और मातुश्री, भाभीजी आदि परिजनो को धर्म मे, आत्मोत्थान के मार्ग मे अग्रसर करना है । वस, यही आचार्य देव के धार्मिक जीवन का वीजारोपण—काल अथवा उषाकाल है, जिसमे सहस्रो चिन्तनधारा रूपी कमल, जो अज्ञान की निशा मे वन्द थे, प्रफुल्ल हो उठे ।

इस प्रकार चिन्तनात्मक अल्पकालीन विश्रान्ति के पश्चात् मातेश्वरी की सेवा मे पहुँचकर चरणो मे गिर पडे और हार्दिक पश्चात्ताप युक्त रुदन के

साथ निवेदन करने लगे "मैंने आपको वहुत कष्ट दिये। धर्म ध्यान मे वाधक वना। मैंने वहुत पाप वाध लिए है। आज जगल मे मेरा जीवन वदल गया। अव मैं आपकी धार्मिक आराधना मे कभी भी अन्तराय नही दूँगा। इतना ही नही, अव मै स्वय आपको म० सा० के दर्शन करवाने ले जाऊँगा। मैं समझ गया हूँ कि उनके प्रवचन आत्मकल्याणकारी होते हैं। जीवन की क्षण भगुरता का वोध भी मुझे हो गया है। अत· जितनी अधिक धर्म साधना हो सके, शीघ्र कर लेना चाहिये। मैंने आरो का वर्णन भी सुना है। अव हमे "छठवे" आरे मे उत्पन्न नही होना है। अत पूरा जीवन धर्ममय वनाना चाहिये। आदि।"

• • •

प्रयाण : सत्य के द्वार तक

नीतिकारो का कथन है कि "क्षण भर सज्जन संगति रे का, भवति भवार्णव तरणे नौका" सज्जनो की क्षण मात्र की सगति कभी-कभी जीवन को सर्वतोभावेन बदल देती है। सगति के माहात्म्य का विवेचन करते हुए कहा गया है—"ससर्गजा दोष गुणा भवन्ति"। मानव मन पर सगति का बहुत गहरा एव अमिट प्रभाव पडता है। जड और चेतन दोनो ही ससर्ग से समान रूप से प्रभावित होते है। लोहा पारस के सस्पर्श मात्र से कुन्दन बन जाता है, तो मानव का तो कहना ही क्या? वह तो चेतना एव प्रज्ञा से युक्त है। उसका रग बदलते क्या समय लगता है? क्या क्रूर नर-सहारी ग्यारह सौ इकतालीस मनुष्यों का संहार करने वाला अर्जुन माली श्रद्धाशील सुदर्शन एव तपोधनी महावीर के चन्द क्षणो के सम्पर्क से सहारक से तारक और ज्वाला से बदल कर हिम नही बन गया था? व्यसनी, शराबी और जुआरी के ससर्ग से व्यक्ति को दुर्व्यसनी बनते, समय नही लगता। इसीलिये तो कवि ने कहा है—

> जेहि जैसी सगति करी, तिही तैसो फल लीन।
>
> कदली–सीप–भुजग मुख, बून्द एक गुण तीन॥

स्वर्ग और नरक के मार्गों के निर्माण की आधार सत्सगति एवं कुसगति ही तो है।

यही प्रभाव श्रद्धेय चरित नायक पर भी हुआ। उनका जीवन-क्रम अब सर्वतोभावेन वदल चुका था। वीतराग वचनो की चन्द क्षणो की सगति ने चरितनायक के सोए हुए देवत्व को उद्बोधित कर दिया था। निमित्त की एक छोटी चिनगारी ने अज्ञान एव मोह का समस्त कूड़ा-कचरा ध्वस्त कर दिया और ज्ञान की सतत प्रवाही लौ प्रज्वलित हो उठी।

चरित नायक अव सत्य के द्वार तक पहुँच चुके थे। द्वार उद्घाटन के पूर्व अनेकानेक प्रश्न मानस-पटल पर उभरने लगे। सयमित अहिसक जीवन कैसा होना चाहिये? क्या मानव पूर्ण अहिसक वनकर जी सकता है? सन्त जीवन क्या है? साधु-सन्तो का जीवन किस प्रकार का होता है? दीक्षा क्या होती है? और क्यों ली जाती है? समस्त दु खो से मुक्ति हेतु क्या करना पड़ता है? मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है? किन अनुष्ठानो मे इसकी सफलता

निहित है ? सहस्रो प्रश्न मानस-सरोवर मे तरगित होने लगे । कभी-कभी तो आपका सम्पूर्ण चिन्तन इन्ही पर केन्द्रित हो जाता ।

आज लक्ष-लक्ष मानवो को समस्याओ के सकुल पथ से उबारने वाले का मन, उस समय स्वय समस्या-सकुल वन गया ।

गृह-कार्यों से अव सहज विरक्ति होने लगी । व्यवसाय आदि समस्त हिंसा एव छल-कपट युक्त कार्यो से मन ऊव गया । सुयोग्य समाधानदाता के अभाव मे मन उद्विग्न सा रहने लगा स्वय चिन्तन की जितनी गहराई मे पहुँचने मे सक्षम होते, पहुँच कर समाधान खोजने का प्रयास करते । यदा-कदा अपने परम सहयोगी मित्र व भागीदार श्री कन्हैयालालजी से भी इस विपय मे विचार-विनिमय करने लगे । अपने भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति के द्वारा आपने कन्हैयालालजी को कह दिया कि मैं आरम्भक प्रवृत्तियो से दूर हटकर कुछ दिन किन्ही सन्तो की सेवा मे रहकर साधु-जीवन की सूक्ष्मता को समझना चाहता हूँ । प्राय धर्म का मर्म न जानने वाले गृहस्थ शुभ कार्यो के लिये, धार्मिक कार्यो के लिये इन्कार करते है, प्रतिरोध करते है । भले ही पुत्र या पुत्री शरावी, जुआरी या व्यभिचारी हो जाय, इसकी उन्हे इतनी चिन्ता नही, परन्तु यदि वह सत्य की राह पर, पूर्ण स्वतत्रता की राह पर चलना आरम्भ करे अर्थात् दीक्षा लेना चाहे तो सभी प्रकार के अवरोध खडे करते हैं । परन्तु श्री कन्हैयालालजी विचक्षण एव कुछ हद तक धर्मनिष्ठ थे । अत आपने कुछ समझाने के प्रसाय के पश्चात् आध्यात्मिक विकास मे सहयोग देना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझा ।

अभी मार्ग निश्चित नही वन पाया था । आप समाधानदाता की खोज मे थे ही कि "जिन खोजा तिन पाइया" के अनुसार श्री कन्हैयालालजी के द्वारा आपको ज्ञात हुआ कि इस वर्ष आकोला (दाता से लगभग ६ मील दूर) मे मेवाडी पूज्य श्री मोतीलालजी म० सा० का सवत् १९९४ का वर्षावास है । यह समाचार आपको वडा सुखद लगा और दर्शनार्थ जाने का निर्णय किया । साथ ही माताजी को भी धर्म लाभ हेतु ले जाना अपना कर्त्तव्य समझा । इस प्रकार आकोला जाने-आने, प्रवचन सुनने और समाधान खोजने का दौर प्रारम्भ हो गया ।

• • •

विरक्ति की देहरी पर

वैराग्य का विश्लेषण

वैराग्य का विश्लेषण विभिन्न दार्शनिको एव चिन्तको ने विविध रूपो मे प्रस्तुत किया है। वैराग्य का सीधा शाब्दिक अर्थ है "विगतोरागो यस्मात स विराग. तस्य भाव वैराग्यम्" अर्थात् समस्त जागतिक पदार्थो के प्रति अनासक्ति भाव का जागरण। सम्पूर्ण रूपेण रागात्मक प्रवृत्ति का उच्छेद। दार्शनिको की भाषा मे जड-चेतन का अन्त करण पूर्वक भेद-विज्ञान हो जाना ही वैराग्य है। अध्यात्म की परिभाषा मे जीवन और जगत् के विश्लेषण मे सत्य के द्वार तक पहुँच जाना वैराग्य है।

जैनाचार्यो ने वैराग्योत्पत्ति के विभिन्न कारण बताए है। उनमे एक आचार्य ने उन सभी कारणों को वर्गीकृत कर, प्रमुख तौर पर तीन भागो मे निम्न प्रकार से रखा है—

(१) दुःख गर्भित वैराग्य :

कई बार अशुभ कर्मो के उदय स्वरूप मानव-जीवन दु ख के बादलो से घिर जाता है। उसके चारो तरफ दु ख मण्डराने लगते है। आर्थिक अभावो से घिर जाने पर मन के किसी कोने मे वैराग्य का उदय होता है। चू कि इस वैराग्योदय का कारण दु ख, सकट, पीडा अथवा अभाव होता है, अत. इसे दु ख गर्भित वैराग्य की कोटि मे लिया जाता है। ऐसे वैराग्य धारक व्यक्तियो के लिए कहा जाता है—

"नारि मुई घर सम्पत्ति नासी।
मुण्ड मुण्डाय भए सन्यासी ।।"

दु.ख के कारणो के विलीन होने पर यह वैरान्य छूमन्तर भी हो सकता है। अत· यह वैराग्य स्थायी नही होता है। इसे आजकल की ग्रामीण भाषा मे "खिचड़िया वैराग्य अथवा मसाणिया वैराग्य" कह सकते है।

(२) मोह गर्भित वैराग्य :

माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि परिजनों का वियोग हो जाने पर उन पर होने वाले सहज ममत्व-बन्धन एवं मोह के कारण जो विरक्ति उत्पन्न होती है,

मन सूना-सूना हो उठता है, मागने पर भी मृत्यु दूर-दूर भागती है और व्यक्ति, सन्यासी बन बैठता है। किसी पुत्र-पुत्री आदि के सयमी होते समय इच्छा नही होते हुए भी ममता वश सयम स्वीकार कर लेना भी मोह गर्भित वैराग्य है। यह विरक्ति मध्यम कोटि की होती है। न साधारण, न असाधारण।

(३) ज्ञान गर्भित वैराग्य

जब चेतना जीव और जगत् के सामान्य ज्ञान से लाभान्वित स्वरूपोन्मुख बनती है अथवा ज्ञानावरण कर्मो से अनावृत्त होने पर ज्ञान की एक दिव्य रश्मि आत्माकाश पर उदित होती है और फलस्वरूप जो सहज विरक्ति उत्पन्न होती है, उसे ज्ञान गर्भित वैराग्य की सज्ञा दी जाती है। जैनागमो मे इस विरक्ति के दो हेतु माने गए है—एक नैसर्गिक और दूसरा आधिगमिक।

जिस वैराग्य मे सत्समागम, गुरु-दर्शन, अध्ययन-अध्यापन अथवा अन्य किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा न हो, जो कर्मो के स्वाभाविक क्षयोपशम से उद्भूत होता हो, उसे "नैसर्गिक वैराग्य" शब्द से अभिसज्ञित किया जाता है और उसके विपरीत जिस वैराग्य मे उपदेश-श्रवण, गुरु-दर्शन, सत्सगति आदि कोई निमित्त अपेक्षित हो, उसे आधिगमिक वैराग्य कहा जाता है।

उक्त तीनो वैराग्य-कोटियो मे तृतीय, ज्ञान गर्भित वैराग्य, चू कि सहजतया चिन्तन के धरातल पर उत्पन्न होता है, अत इसे ही वैराग्य का सर्वश्रेष्ठ रूप माना जाता है।

श्रद्धेय चरित नायक के जीवन मे भी अब शनै शनै अन्दर-ही-अन्दर वैराग्य-सागर तरगित होने लगा। चू कि आपका वैराग्य तृतीय कोटि का था, अत उसमे सहज स्थिरत्व होना स्वाभाविक ही था।

जैसा कि हम पूर्व मे सूचित कर आए हैं, चरित नायक का जीवन अब आमूलचूल बदल चुका था। भावनाओ मे विरक्ति घर कर चुकी थी और उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति दैनन्दिन क्रियाओ से होने लगी थी। समस्त क्रिया-कलापो मे परिवर्तन हो चुका था। व्यवसाय-सम्बन्धी कार्यक्रमो से अब आपका मन उचट चुका था। आपने अपने ध्येय के अनुरूप कार्य खोज लिया। आसपास के कुछ बच्चो को एकत्र करना, और अपने सामान्य अध्ययन के आधार पर ही उन्हे पढाना, धार्मिक हित शिक्षा देना अथवा एकान्त स्थल पर बैठकर जीवन के विषय मे विविध आयामी चिन्तन करना ही, अब आपका प्रमुख कार्य रह गया।

• • •

संघर्ष की ओर

काल का पक्षी समय (क्षणो) के सुनहले पखो पर अपनी चचल वृत्ति के अनुसार अबाधगति से उडता रहा और इधर हमारे चरित नायक विविध आयामी, चिन्तनात्मक कल्पनाओ के दिव्य पखो पर अन्तर गगन की सैर के लिए उड़ाने भरने लगे ।

इधर मेवाडी पूज्य श्री मोतीलालजी म० सा० अपना आकोले का चातुर्मास समाप्त कर आसपास के क्षेत्र मे विचरने हेतु पधार गए । अब तो आपश्री के चिन्तन को जो भी कुछ सहयोग एव अवलम्बन मिला करता था, दूभर हो गया । अब आपने दृढ निश्चय कर लिया कि मुझे किन्ही अच्छे सन्तो के साथ रहकर अपना अध्ययन-क्रम आरम्भ कर देना चाहिये । एतदर्थ आपने वातावरण बनाना प्रारम्भ कर दिया और एक रोज महाराजश्री की सेवा मे उपस्थित हो, कच्चा (सचित) पानी नही पीना, चौविहार (रात्रि अन्न-जल आदि का निषेध) का पालन, पादत्राण (जूते) नही पहनना एव हरी सब्जी नही खाना, आदि कई त्याग-प्रत्याख्यान कुछ समयोचित आगारो (अपवादो) के साथ ग्रहण कर लिये और उनका निष्ठापूर्वक पालन करने लगे ।

इस बात की जानकारी जब आपकी पूजनीया मातुश्री एव बडे भ्राता मीठूलालजी को हुई, तो उन्हे समझते देर नही लगी कि यह इनका विरक्ति के लिए प्रथम पद-चरण है । वैसे तो विगत कुछ महीनो से उनकी गम्भीर मुद्रा, रहन-सहन की पद्धति एवं व्यापार आदि के प्रति रुक्ष व्यवहार देखकर वे आशकित तो थे ही, किन्तु ज्यो ही इन त्याग-प्रत्याख्यानो की बात प्रगट हुई, उन्हे एक गहरा आघात लगा । वे कहने लगे, "तुमने किसे पूछकर ये त्याग लिये और महाराज ने भी किसी को पूछे बिना कैसे करवा दिये । हम नही मानते इन त्योगो को", आदि ।

काल की गति बडी विचित्र है । नीतिकारो ने ठीक ही कहा है "कालस्य चित्रा गति" कालक्रम के अनुसार मानव की अवस्था रथ नेमिचक्रवत्-सदा बदलती रहती है । एक समय वह था, जब माताजी कुछ प्रत्याख्यान लेकर आई थी तो पुत्र कहने लगा "मैं नही मानता त्याग-वाग, मै इसे ढोग मानता हूँ ।

और आज पुत्र सत्य के द्वार तक पहुँचकर कुछ सत्य-सूत्र पकडकर ले आया, तो माता कहने लगी "मैं नही मानती इन त्यागो को ।"

अब वातावरण कुछ सघर्षमय बन गया । और चरित नायक पर सन्तो के सम्पर्क मे आने-जाने के लिए प्रतिबन्ध लगने लगा । परिणामस्वरूप आपको बिना किसी को पूछे, चुपके से कई बार रात्रि मे घर से निकलना पडता । आपकी अपने गन्तव्य के प्रति इतनी सुदृढ आस्था उत्पन्न हो चुकी थी कि एक बार तो आप घर से क्षुधित-तृषित ही चुपचाप पलायन कर सन्तो की सेवा मे चले गए । परिवार वालो को ज्ञात हुआ तो आपके बहनोईजी के भ्राता छगनलालजी लोढा एव चचेरे भ्राता बोथलालजी पोखरणा ने आपको उल्लाई ग्राम मे जा पकडा, और आपको भोजन करते हुए ही पकडकर अश्व पर चढा कर रस्सी से बाध दिया तथा दाता ले आए । इसी प्रकार अनेक बार आप घर से चुपचाप पलायन कर जाते और फिर परिवार वालो मे भगदड मचती और पुन पकड कर लाए जाते । परिवार वाले किसी भी तरह से वैराग्य उतारने का प्रयास करने लगे । तत्कालीन ग्रामीण धारणाओ के अनुसार जादू-टोने, तावीज आदि प्रयोग, जो उचित लगे, किये गये । एक बार आपकी मातुश्री को किसी ने बताया कि सिर मुण्डवा कर चमार (चर्मकार) की कुण्डी का पानी छिटकने से वैराग्य उतर जाता है मा की ममता इस प्रयोग मे भी पीछे कहाँ रहने वाली थी । वह तो हर प्रयत्न अपने लाडले को अपने से अलग नहीं होने देने के लिए करना चाहती थी ।

हमारे चरित नायक को अपनी मन स्थिति एव सकल्प शक्ति पर इतना सुदृढ विश्वास था कि वे प्रत्येक परीक्षण हेतु सहज तत्पर हो जाते । जब मातुश्री ने सिर मुण्डन के लिये कहा तो आप तत्काल यह कहते हुए सिर मुण्डन हेतु उपस्थित हो गये कि "आप चाहे जैसे परीक्षण कर ले. मेरा वैराग्य कपूर की टिकिया जैसा नही है, जो हवा लगते ही उड जाए । मैंने बहुत चिन्तनपूर्वक वैराग्य पथ स्वीकार किया है । आप जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र आदि सभी परीक्षणों की मुराद पूरी करले ।' अन्त मे चरित नायक का सिर मुण्डन करवा दिया और आप पर चर्मकार की कुण्डी का पानी छिड़क दिया गया । इसी प्रकार किसी के कहने पर मूत्र एव शौच से बचे हुए पानी से भी स्नान करवाया गया । तात्पर्य यह कि जो प्रयोग जिस किसी ने बताए, किए गए । यहाँ तक कि एक दो बार ३-४ दिन के लिये आपश्री को ताले में भी बन्द कर दिया गया । लेकिन अपनी धुन के पक्के चरित नायक कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम् के दृढीभूत सिद्धान्त को लेकर चल रहे थे । अत. जितने भी प्रयोग किये गये वे सभी निष्फल गये और उनका आप पर विपरीत ही प्रभाव पडा । उनका वैराग्य उन कसौटियो पर चढकर शुद्ध स्वर्ण का रूप लेता गया ।

इसी अन्तराल मे एक दिन सहसा आपके समक्ष किन्ही सन्तों ने ज्योतिर्धर श्री जवाहर का परिचय प्रस्तुत करते हुए कह दिया कि आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० विगत कुछ वर्षो से अन्न बिल्कुल ही नही ले रहे है। केवल साधुता की शुद्धिपूर्वक उपलब्ध दूध-दही पर ही रहते है, आदि।" आपने उस प्रसग को बहुत गहराई से पकड़ लिया और तत्कालीन विचारणा शक्ति के अनुसार उस उद्भट दार्शनिक योगी पुरुष के पदानुसरण मे उतर गए।

आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर के शब्दों मे—

जल्पन्ति वा निज गिरा ननु पक्षिणोऽपि।

के दृष्टि बिन्दु को ध्यान मे रखकर आपने भी प्रतिस्पर्द्धनीय भावो मे बहते हुए एक वज्र सकल्प कर लिया। आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० यदि केवल दुग्धादि पर रह सकते है तो क्या मै केवल पानी के आधार पर नही रह सकता ? इस कठोर तप.साधना के वज्र सकल्प को क्रियान्वित करते हेतु आपने उसी दिन से अपने भोजन की मात्रा घटाना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनो तक आप केवल एक रोटी पर रहे। फिर कई दिनो तक आधी रोटी सुबह और पाव रोटी शाम को और दीक्षा से पूर्व अतिम कुछ दिनो तक केवल एक चौथाई रोटी खाकर पानी पीकर रहने लगे। कुछ महीनों की इस कठोर तप·साधना ने आपके शरीर को एकदम कृश बना दिया। शरीर की दुर्बलता के साथ तप:साधना की जो सहज उपलब्धि, आपके अन्तरग जीवन को हुई, वह अवर्णनीय है। शरीर भले ही अस्थि पजर मात्र रह गया हो, भीतर आपकी आत्मा चमक उठी। यहाँ तप की आनुषगिक फल श्रुति है। आपके आनन पर एक तपस्वी की दिव्य आभा चमकने लगी। "घोर तवे, उग्गतवे दित तवे" की शास्त्रीय वाणी आपका जीवन-दर्शन बन गई।

आपके इस तपश्चरण का प्रभाव सामान्य जनता पर तो पड़ता ही किन्तु आपकी पूजनीया मातुश्री भी अपने लाल की शारीरिक दुर्बलता एव मुख मण्डल की तेजस्विता से विभोर हो उठी और साथ ही अपने सभी प्रयासो की निष्फलता को देख एक दिन कह उठी—"तुम्हे दीक्षा लेनी है तो हम देगे, किन्तु इतनी जल्दी मत करो। समय की परिपक्वता पर सभी कार्य सुन्दर होते है। अत ससार की कुछ अनुभूतियाँ प्राप्त करो और उचित उम्र होने पर सयम स्वीकार कर लेना। यदि इतना भी नही मानते हो, तो कम-से-कम इतना तो सोचो कि मेरी अवस्था भी ढल रही है, मेरी सेवा करने का भी तुम्हारा कर्त्तव्य है, अत' जैसे भगवान् महावीर ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक माता-पिता जीवित रहेगे, मैं दीक्षा नही लूगा। वैसे ही तुम, जब तक मैं जीवित हूँ, यह हठ छोड दो। मेरे चले जाने के वाद जैसा सुख हो वैसा करना।" आदि।

चरितनायक के समक्ष एक जटिल समस्या खडी हो गई । माँ की ममता युक्त अश्रु पूरित आँखे मोती छलका रही थी । चरितनायक अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार करने मे लीन हो गए । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अन्य स्थानो को तोडना आसान हो सकता है, किन्तु माँ की ममता का बन्धन सहज ही नही तोडा जा सकता । वह अन्तर का अदृश्य बन्धन होता है । माँ की आँखो का खारा पानी बडी ताकत रखता है । अच्छे-अच्छे वीर एव धीर योद्धा भी उस खारे पानी से पिघल जाते है । किन्तु ममत्वजयी सूक्ष्म प्रज्ञा के धनी हमारे चरित नायक के लिए यह समस्या कोई वजन नही रखती थी । उन्होने सहज चिन्तन-मुद्रा मे उत्तर दिया, "माताजी, क्या यह मालूम है कि आप पहले जायेगी या मैं ? काल बालक, युवा एव वृद्ध किसी को भी तो नही छोडता है । आप तो जानती हो और कई बार कहा करती हो । मेरा एक भाई कितनी अल्प वय मे ही आपको छोडकर चला गया । आपकी सेवा का जहाँ तक सवाल है, मै गृहस्थावस्था मे रहता हुआ सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य मानता हू और मुझे सेवा करनी भी चाहिये, किन्तु मैं जिस मार्ग पर अग्रसर हो रहा हू, वह मार्ग इससे भी महत्त्वपूर्ण है । यहाँ पर तो मैं केवल आपकी ही सेवा कर पाऊँगा किन्तु सयम स्वीकार करके अन्य अनेक माताओ की सेवा करूँगा । उस रोज मुनिजी बता रहे थे कि पानी की एक बूँद मे असख्यात जीव है, जो कई बार अपने माता-पिता बन चुके है । मैं उन सभी प्राणियो की भी सेवा करना चाहता हू । दूसरी बात आपकी सेवा के लिए तो बड भाई साहब है ही, फिर आपको इतना अधिक मोह नही रखना चाहिये । यद्यपि मैं ससार मे रहना नही चाहता हू, पर सहज साधु बनने के लिए भी तत्पर नही हू । मैं अभी खोज करना चाहता हू कि ससार मे जो कुछ भी मत, पथ दीख रहे है, उनमे कौन-सा सही एव अभीष्ट है । उसकी खोज मे हू । जिस रोज भी मेरे अन्तर करण मे जँच जावेगा कि अमुक स्थल मेरे आत्म-कल्याण मे सहायक है, उस रोज मैं साधु बनने के लिए अनुमति मागू गा । अत मेरे कार्य मे बाधक न होवे और मुझे सतो के सम्पर्क मे जाने दे । किसी ने बहका दिया, भुरकी डाल दी, आदि भ्रमित बातो को छोड दे । जो भ्रमित होता है, वह न तो किसी बात की खोज कर सकता है और न इस प्रकार के परीक्षणो मे अपने ध्येय पर स्थिर रह सकता है । लेकिन मैं तो आपके द्वारा इतने परीक्षण होने पर भी होश-हवास पूर्वक अपने ध्येय पर स्थित हू ।

दूसरी बात जब आपने यह कही कि मैं चली जाऊँ तब इच्छानुसार करना । इस पर जरा विचार करो कि मैं आपकी इस रुकावट से कितने पाप-कर्म बाँध लूँगा । आप जानती हो कि मैं ससार के बन्धनो मे हर्गिज उलझने वाला नही हू, मेरी भावना एव लगन अब सयम के प्रति दृढ हो चुके है । ऐसी स्थिति मे मेरे मन मे यही भावना बनती रहेगी कि कब माताजी का स्वर्गवास

हो और कब मैं दीक्षा लूँ। अत: अब आपको मेरे इस मार्ग मे बाधा डालना उचित नही है।"

इस सघर्ष के फलस्वरूप आपको अध्ययन करने की कुछ छूट मिल गई और आपके बडे भ्राता उन्हे स्टेशन तक पहुँचाने के लिए साथ हो गये। ज्योही गाँव के बाहर निकले कि एकदम बादल घिर आये और झिरमिर वर्षा प्रारम्भ हो गई। तब भाई साहब कहने लगे कि "यहाँ से नजदीक का स्टेशन भी छः मील दूर करेडा (भोपाल सागर) है और ऐसे मौसम मे कही वर्षा बढ गयी और मार्ग पर नाला आ गया तो कैसे पहुँचेगे ? अत आज यही रुक जाओ"। तब चरित नायक ने कहा "हम अच्छे कार्य के लिये जा रहे है, हमारे मार्ग मे कोई रुकावट नही आयेगी। यह तो हमारे लिये शुभ शकुन है कि इन्द्रदेव समता और शाति के मार्ग पर बढने के लिए आशीर्वाद की बौछार कर रहे है। यह छिडकाव तो आशीर्वाद देकर अभी रुक जायेगा"। और वास्तव मे चद क्षणों मे बादल बिखर गये। चरित नायक मन-ही-मन पुलकित होते हुए चिन्तन करने लगे कि मेरा उद्देश्य शीघ्र ही सफल होगा अत. अब मुझे योग्य गुरु की खोज कर लेनी चाहिये। तदनुसार वहाँ से चल कर भोपाल सागर स्टेशन से ट्रेन पकड कर उदयपुर पहुँचे। उस समय उदयपुर मे पजाब केसरी आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० व युवाचार्य श्री शुक्लचंदजी म० सा० आदि ठाणा चातुर्मास मे विराज रहे थे। चरितनायक दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे। व्याख्यान श्रवण किया और प्रवचन समाप्ति पर अन्यान्य मुनियो से सम्पर्क साधते हुए मुनि श्री जवरीलालजी म० सा० के समक्ष अपनी ज्ञानार्जन की भावना व्यक्त की। तब मुनिश्री "तुमको यहाँ ज्ञान ध्यान सिखाने वाले बहुत है" कहते हुए धर्म स्थान (पचायती नोहरे) के पीछे भाग मे ले गये जहाँ युवाचार्य श्री शुक्लचदजी म० सा० ग्रन्थावलोकन की तल्लीनता मे विराज रहे थे। मुनिश्री ने चरित नायक का परिचय देते हुए कहा—"यह भाई जिज्ञासु है। दीक्षा लेने की भावना व्यक्त कर रहा है। योग्य संतो का आश्रय ढूँढ रहा है।" युवाचार्य श्री उस समय किसी ग्रन्थ के अवलोकन मे दत्तचित्त थे, अत. सामान्यतया बात सुन ली किन्तु विशेष रुचि नही ली। मुनिश्री जवरीलालजी म० सा० पुन: अपने स्थान पर चले आये और चरित नायक को समीप बिठा कर समझाते हुए कहने लगे—"पहले तुम आचार्य श्री काशीरामजी म० सा० के पास चलकर प्रतिज्ञा करो कि मैं दीक्षा आप ही के पास लूँगा, आपका ही शिष्य बनूँगा।"

हमारे चरित नायक को ये विचार उचित नही लगे और आप वहाँ से सामान्य शिष्टाचारपूर्वक वार्तालाप कर, वन्दन-नमस्कार कर चल पडे खोज के मार्ग पर। उसी समय वहाँ उदयपुर मे सिघीजी की हवेली मे मेवाडी पूज्य

श्री मोतीलालजी म० सा० के सम्प्रदाय की कुछ सतियाँ विराज रही थी। ज्ञात होने पर आप वहाँ दर्शनार्थ पहुँचे। विधिवत् वन्दन के पश्चात् सामान्य परिचय हुआ तो वे कहने लगी "आपको जगह-जगह घूमने की आवश्यकता नही है। आप सीधे बदनौर चले जाइये, वहाँ मेवाडी पूज्य श्री मोतीलालजी म० सा० विराज रहे है। वहाँ आपको ज्ञान-ध्यान सीखने का अच्छा अवसर मिल जावेगा।" चू कि आप किसी अन्य सम्प्रदाय के सन्तो से विशेष परिचित नही थे और मेवाडी पूज्य श्री से पूर्व मे आकोला मे सामान्य परिचय हो चुका था, अत वही जाना उपयुक्त लगा। तदनुसार महासतीजी से मगल पाठ श्रवण कर वदनोर के लिए प्रस्थान कर दिया।

चू कि आपकी जिज्ञासावृत्ति खोजपूर्ण थी, अत मार्ग के क्षेत्रो मे भी जानकारी प्राप्त करते जा रहे थे कि यहाँ कोई सत तो नही विराज रहे है। भीम पहुँचने पर आपको ज्ञात हुआ कि यहाँ मेवाडी श्री चौथमलजी म० सा० विराज रहे हैं। आप सध्या-प्रतिक्रमण के समय उनकी सेवा मे पहुँचे और वन्दन-नमस्कार किया। चरितनायक की सादगीपूर्ण वेशभूषा एव वन्दन आदि प्रक्रिया को देखकर मुनिजी ने अनुमान लगा लिया कि यह कोई दीक्षार्थी है। चर्चावार्ता के प्रसग पर भादसोडा का वह प्रसग छिड़ गया, जहाँ चरित नायक ने मुनिश्री का प्रथम सावत्सरिक प्रवचन सुना था। चरित नायक के विचारो को सुनकर मुनिश्री कहने लगे, "क्या करोगे साधु बनकर ? मैं तुमको आक (फीचर नम्बर) बता देता हू और बम्बई का पता देता हू। वही चले जाओ और खूब पैसा कमाओ और मौज करो। आनन्द के साथ घर पर रहो।"

एक जैन मुनिजी से पैसे कमाने की बात सुनकर चरित नायक को बडा विस्मय हुआ। क्योकि इतना बोध तो आपको हो ही चुका था कि जैन श्रमण पैसो के प्रपच से सर्वथा दूर रहते है। चरित नायक ने विनयपूर्वक सरस किन्तु स्पष्ट शब्दो मे कहा—"महाराज श्रीजी, मैं आत्म-कल्याण की अभिलाषा लेकर यहाँ उपस्थित हुआ हू और सोचता हू कि आत्म-कल्याण के मार्ग मे पैसा ही सबसे बडी बाधा है। आप आत्मसाधक होकर धन कमाने की सलाह दे रहे है। यह सब मुझे अजीब-सा लग रहा है। मुझे धन के पीछे दौडकर इस अमूल्य जीवन को नष्ट नही करना है। मैं तो आत्म-कल्याण मे सहयोग हेतु योग्य गुरु की खोज मे हू।"

चरित नायक के मुख से निकलने वाले सरल-स्पष्ट शब्दो को सुनकर मुनिजी समझ गये कि यह कोई अद्भुत खोजी साधक है और सामान्य साधुचर्या का भी जानकार दिखता है। अत वे बात बदलते हुए बोले कि वैरागीजी, मैं तो आपकी परीक्षा ले रहा था कि आपकी वैराग्य भावना अन्त.करण की है

या आप किसी आर्थिक सकट से घबराये हुए है ? अब मैं समझ गया कि आपका वैराग्य अन्त करण का सच्चा वैराग्य है। आप मे आत्म-कल्याण की सच्ची लगन है। रहा सवाल योग्य गुरु का, तो देखो, जहाँ अधिक साधु होते है वहाँ विशेष कद्र नही होती और इधर मै अकेला हूँ, अत यदि आप मेरे पास दीक्षा ले लेते है तो मेरा अकेले नही रहने का शास्त्रीय कल्प (मर्यादा) भी पूरा हो जाता है और मै आपको बड़े प्रेम से रखूँगा, किसी भी प्रकार का कष्ट नही होने दूगा।" इस प्रकार अनेक आकर्षणात्मक एव प्रलोभनात्मक विचार सामने आये। किन्तु चरित नायक की विवेक दृष्टि एव विचक्षण प्रज्ञा ने तुरन्त ही निर्णय ले लिया कि मुझे सुख-सुविधा के लिए अथवा आराम करने के लिए सयम स्वीकार नही करना है और इस प्रकार सुख-सुविधा का प्रलोभन देने वाला सच्चा गुरु भी नही हो सकता। साथ ही इनमे शुद्ध साधुत्व पर आस्था होती तो ये बिना मुझे परखे, आते ही क्यो आक (फीचर) की बाते करते और क्यो मर्यादा विहीन अकेले विचरते ? अत औपचारिक उत्तर देते हुए अन्वेपण के प्रगति–पथ पर निकल पडे और कच्चे मार्ग से ही बदनोर की ओर प्रस्थान कर दिया। और पुन मेवाडी पूज्य श्री मोतीलालजी म० सा० के पास पहुँचे। उस समय बदनोर मे उनका स० १९९५ का चातुर्मास था। उस चातुर्मास मे आप करीब ३-३½ महीने लगातार वहाँ रहे और प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, दशवैकालिक, आदि के अध्ययन के साथ श्रामण्य जीवन की क्रिया का अध्ययन एव अनुशीलन करने लगे। इस वर्षावास मे आपकी एक चौथाई रोटी वाली तपश्चर्या यथावत् चलती रही और उसकी अनूठी छाप जन-जन के हृदय को आकर्षित करती रही। किन्तु शरीर की कृशता सीमा लाघ गई थी। तत्रस्थ मुनिवरो ने आपको बहुत समझाया कि "अब आप यह उग्र तपश्चरण छोड दे। सामान्य ढग से आहार करना प्रारम्भ कर दे। क्योकि आपका शरीर एकदम अशक्त हो रहा है और इस प्रकार अध्ययन भी यथावत् नही चल सकेगा।"

किन्तु अपने सकल्प के धनी चरित नायक उस कठोर आत्म सयम एव इच्छा निरोध रूप तप से किंचित् भी विचलित नही हुए, प्रत्युत अत्यधिक सजग-वृत्या वहाँ की श्रमणचर्या का अध्ययन करने लगे।

दीर्घकालीन निरीक्षण-परीक्षण के उपरान्त भी वहाँ के श्रामण्य जीवन की आचार पद्धति मे आपको सतुष्टि का अनुभव नही हो रहा था। "दशवैकालिक" सूत्र के कुछ अध्ययन के पश्चात् तो आपका मन रह-रहकर भीतर-ही-भीतर कचोटता था कि साधुचर्या की भिक्षा आदि विधियो मे शास्त्र क्या कहते है और सन्त-परम्परा क्या कर रही आदि। अन्ततोगत्वा आपको वहाँ अपने आत्म-विकास के पूरे स्रोत उपलब्ध होते परिलक्षित नही हुए।

फलस्वरूप आप लौटकर पुन. दाता आने लगे, किन्तु वहाँ आपको ज्ञात हुआ कि ब्यावर मे भी कुछ सन्त विराज रहे है। अत आप वहाँ से ब्यावर चले गए। वहाँ जैन-दर्शन के उद्भट् मनीषी आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की सम्प्रदाय के कुछ वृद्ध स्थविर सन्त और प० मुनि श्री जौहरीमल म० सा० आदि विराज रहे थे। आपने उनके दर्शन किये और अपना परिचय देते हुए आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की सघीय व्यवस्था की कुछ जानकारी प्राप्त की। वहाँ जो कुछ आपने सुना, उससे आपके मन को सहज ही कुछ सन्तुष्टि मिली।

आपको वहाँ ज्ञात हुआ कि जैन जगत् के दिव्य नक्षत्र ज्योतिर्धर जवाहर के विशाल पाण्डित्य, उनकी सूक्ष्म प्रज्ञा, विलक्षण प्रतिभा, गम्भीर विचारणा, अद्भुत अध्ययनशीलता, अपूर्व तर्कणा शक्ति एव अगाध चारित्राराधना से जैन समाज ही नही, अपितु अच्छे-अच्छे राष्ट्र नेता भी प्रभावित है। उन्होने अल्पारम्भ एव महारम्य की व्याख्या के विषय मे समाज को विलक्षण देन दी है। वे स्वय एक समृद्ध धार्मिक-राष्ट्रीय विचार-धारा के युग-पुरुष हैं। स्थानकवासी समाज मे उन्होने क्रान्ति के कुछ मौलिक सूत्र प्रस्तुत किये हैं। वे स्वय शुद्ध स्वदेशी खादी के वस्त्रो का उपयोग करते है और उनकी सन्त-परम्परा भी प्राय खादी ही धारण करती है। वर्तमान मे आपकी श्रमण सस्था के नायक शान्त मूर्ति क्रान्तिद्रष्टा युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० है, आदि।

उक्त सक्षिप्त परिचय उस समय आपको सर्वतोभावेन तो हृदयगम नही हो सका, किन्तु खादी पहनना आदि एक दो बातो ने आपके ऊपर गहरा प्रभाव जमा दिया। आप तत्कालीन अपनी बुद्धि से सोचने लगे, जो खादी के सादगी-पूर्ण एव स्वतन्त्रता के प्रतीक वस्त्र पहनते हैं, वे निश्चय ही युग पुरुष एव उच्च कोटि के श्रमण होगे। उस समय तक खादी का आन्दोलन गाँवो तक पहुँच चुका था, और आपने अन्य कुछ सन्तो को अच्छे वस्त्र पहने देखा था। इस प्रकार कुछ दृढ विचार वना कर आप वहाँ से एक वार दाता के लिए प्रस्थान कर गए।

• • •

गुरु की खोज में

दाता पहुँचकर आप पुन. आगे की योजनाएँ बनाने लगे—किसी भी तरह मुझे दीक्षा अवश्य लेनी है। प्रश्न था कि किस आदर्श श्रमण शिरोमणि के सान्निध्य मे सात्विक रूप से आत्मोत्कर्ष हो सकता है ?

कुछ दिन गाँव मे रहकर आप पुन: योग्य गुरु की खोज मे निकल पडे। वहाँ से पैदल ही कपासन (दाता से ७ मील) पहुँचे और स्थानीय प्रमुख श्रावक श्री मीठालालजी उगमलालजी चण्डालिया से मिलकर अपनी आन्तरिक भावनाओ को उनके समक्ष प्रकट करते हुए कहने लगे—"मुझे ज्ञान-ध्यान सीखना है। वैसे मैने व्यावर मे पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० एव युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० का परिचय प्राप्त किया है, किन्तु वे कहाँ विराज रहे है, यह भी मुझे ज्ञात नही है। इस बीच कुछ अन्य सन्तो की चर्या भी देख लेने का विचार है ताकि योग्यतम गुरु का चयन किया जा सके।"

उस समय वहाँ श्री इन्द्रमलजी म० सा० (प० श्री समर्थमलजी म० सा० से सम्बन्धित सत) विराज रहे थे, अत: श्री मीठालालजी ने कहा—"कुछ दिन आप यहाँ इन सन्तो के पास रह कर देखे, तब तक हम युवाचार्यश्री कहाँ विराज रहे है, इसका पता लगा लेते है।" लगभग ७-८ दिन तक चरित नायक मुनि श्री इन्द्रमलजी म० सा० के पास रहे। उनकी साधुचर्या को निकट से देखा-परखा। वहाँ भी आपको पूर्ण सन्तुष्टि नही हुई।

खोज के इस सिलसिले मे आप कई सन्तो के सम्पर्क मे आए, परन्तु कही भी आपको आत्म-तुष्टि नही हुई। इसी बीच आपको यह ज्ञात हुआ कि युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० कोटा विराज रहे है। आप वहाँ जाने की तैयारी करने लगे। इतने मे आपके भाई सा० श्री मीठूलालजी किसी कार्य-वश कपासन आये और आपको किसी तरह पुन: दांता ले गए।

जिन खोजा तिन पाइया

एक कहावत है "जहाँ चाह है, वहाँ राह"। हमारे चरित नायक भी सत्य की राह को ढूँढते हुए निरन्तर वढते जा रहे थे। अन्दर मे द्वार की खटखटाहट चालू थी। एक ही धुन, एक ही निष्ठा और एक ही अवधारणा थी

कि योग्य मार्ग-द्रष्टा गुरु को पाकर कृतार्थ होना है। अब समय पक चुका था, द्वार-उद्घाटन की बेला आ चुकी थी। आपको यह ज्ञात हो ही चुका था कि युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० कोटा मे विराजमान है। अब आपने अधिक समय गँवाना ठीक नही समझा। कुछ दिन दाता रहकर, एक दिन पुन निकल पडे—बिना किसी को कुछ कहे। सात मील का पादविहार कर कपासन पहुँचे कडकडाती सर्दी मे। सिर्फ एक खादी की चद्दर ओढे श्री मीठालालजी चण्डालिया के यहाँ सोए रहे। उन्होने ओढने को शीत-निवारणार्थ गर्म कम्बल अथवा रजाई देना चाहा, किन्तु साधना मे गतिशील एव अभ्यासरत आपके मानस ने उसे लेने की अनुमति नही दी। एक रात्रि और दूसरे दिन तक वही अर्थात् श्री मीठालालजी के नोहरे मे छिपे रहे, दूसरे दिन कोटा का टिकट लेकर ट्रेन मे जा बैठे।

प्रथम दर्शन

इस प्रकार कोटा स्थानक (धर्म-स्थान) मे पहुँच कर प्रथम बार आपने एक अलौकिक महापुरुष के दर्शन किये। प्रवचन, श्रवण और विचार-चर्चा तो दूर, केवल मुख-मण्डल की दिव्य एव शान्त आभा देखकर ही आप पर एक जादू-सा असर हो गया। आपका हृदय अभिभूत होने लगा। अन्दर-ही-अन्दर उस महापुरुष के प्रति अडिग आस्थावान् बनकर सर्वतोभावेन समर्पित हो गये। वे महापुरुष थे शान्त क्रान्ति के अग्रदूत, निर्ग्रंथ श्रमण सस्कृति के सजग प्रहरी, तत्कालीन युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा०। वैसे युवाचार्यश्री के विषय मे आपको कुछ परिचय पूर्व मे ब्यावर एव कपासन मे मिल ही चुका था, किन्तु वह केवल श्रुति मात्र थी, अनुभूति नही। आज आपने उनके दर्शन कर प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर ली। युवाचार्यश्री के दर्शन से आपके हृदय मे गहरा प्रभाव अकित हो गया, लेकिन उससे भी गहरा असर आप पर हुआ युवाचार्यश्री की नि स्पृहता का।

गहरे पानी पैठ

बात असल मे यो बनी, जब चरित नायक युवाचार्यश्री के समक्ष उपस्थित हुए और विनम्रता पूर्वक अपना परिचय देते हुए अन्तर निवेदना करने लगे—"भगवन्! शिष्य सेवा मे उपस्थित है। मुझे अपनाने की महती कृपा करे। मैं आपश्री के चरणो मे सयम-आराधना करता हुआ आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ।"

युवाचार्यश्री ने सहज स्मिति के साथ सुस्पष्ट किन्तु गम्भीर उत्तर दिया—"भाई! साधु बनना कोई हँसी-खेल नही है। साधु बनने से पूर्व साधुता को समझने का प्रयास करो। कुछ ज्ञान-ध्यान सीखो। त्याग एव वैराग्य क

स्थायी एवं सबल बनाते हुए सत जीवन को सूक्ष्मता पूर्वक परखो। चित्त की चचलता के साथ भावावेश मे किसी भी मार्ग पर बढ जाना श्रेयस्कर नही माना जा सकता है। यदि कल्याण मार्ग का अनुकरण करना है तो गुरु का भी परीक्षण कर लो। इसके पश्चात् साधु-दीक्षा स्वीकार करके आत्मा को तप की भट्ठी पर चढा दो। अभी तो आए ही हो। न तुमने हमको ठीक से देखा है, और न हमने तुमको।"

यह निःस्पृहतापूर्ण अनासक्त योग-सा उत्तर सुनकर चरित नायक अवाक्-से रह गए, उनका मन चिन्तन-सरिता मे बहने लगा। "एक तरफ तो शिष्य–व्यामोह में आसक्त साधु, और कहाँ यह अनासक्त योगी! उनके मन पर अतीत के अनेक घटना-चित्र एक-एक कर अवतरित होने लगे—मैं कितने ही सन्तों के पास पहुँचा, किन्तु इतना नि स्पृह एव यथार्थ उत्तर मुझे कही नही मिला।

एक ने कहा था—"बच्चा, हमारे पास साधु बनेगा, तो तुझे किसी प्रकार का कष्ट नही होगा, खूब आराम से रखेंगे।"

दूसरे ने कहा था—"हमारा चेला बनेगा, तो हम तुम्हे अपनी सब विद्याएँ सीखा देंगे।"

तीसरे ने प्रलोभन दिया था, "मेरा शिष्य बनेगा, तो तुझे सम्प्रदाय का प्रमुख बना दूँगा।"

चौथे ने अपनी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करते हुए कहा था—"अधिक दौड़-धूप और सोच–विचार की आवश्यकता नही है। हमारे जैसे सन्त और सम्प्रदाय तुझे अन्यत्र नही मिलेंगे, हमारे यहाँ सयमी जीवन की क्रियाओ का कठोरता से पालन होता है।" आदि। शिष्य बनने के उपर्युक्त सुझावो मे मुझे कही आश्वासन मिला था, कही आकर्षण मिला था, कही प्रलोभन मिला था, कही सब्ज बाग दिखाए गए थे, और कही चेला बनने की प्रतिज्ञा करने पर ही ज्ञान-ध्यान सिखाने की शर्त रखी गयी थी, किन्तु एक महाराज ये है, जो पहले साधुत्व को एवं गुरु को समझने एव परीक्षण करने का संकेत दे रहे है।"

चरित नायक बहुत पुलकित हुए। श्रद्धा से अभिभूत हो द्रवित हो उठे और कहने लगे—"भगवन्! मैं तो बहुत सतो के पास घूम-फिर कर यहाँ श्री चरणो मे उपस्थित हुआ हूँ, किन्तु, यदि सभी दीक्षार्थियों के समक्ष ऐसी कठोर शर्त रखेंगे, तो आपकी शिष्य-परम्परा कैसे बढेगी? कैसे कोई आपका शिष्य बनेगा?"

युवाचार्य श्री ने पुनः गम्भीर मुद्रा मे कहा—"यदि मेरा कोई शिष्य

नही बनेगा, तो मेरे आत्म-कल्याण मे कौन-सी बाधा उपस्थित हो जायेगी। मुझे जमात नही बढानी है। आत्म-साधना के पथ पर वही चल सकता है, जो वास्तविक वैराग्य-भावना से विभूषित हो, तप पूत हो। जिसकी ज्ञान-दर्शन चारित्र के प्रति अविचल आस्था होगी, जो परिपक्व होगा, वही आगे बढ सकेगा। भाई, मुझे सख्या नही, साधना चाहिये। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सेव्य-सेवक भाव का ही सम्बन्ध नही है, उसमे सयम-साधना मे पारस्परिक सहकार की भावना भी अपेक्षित है। जहाँ इस सम्बन्ध की पूर्ति न होती हो, वहाँ वह सम्बन्ध निरर्थक ही नही, हानिकारक भी सिद्ध होता है। अत गुरु-शिष्य का सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि एक दूसरे को अच्छी तरह परख ले।"

युवाचार्यश्री की यह मार्मिक विवेचना चरित नायक के हृदय मे गहरी बैठ गयी। वे समझ गए कि यही एक विभूति है, जिसे पाकर मैं अपना साधना-जीवन धन्य बना सकूँगा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्ही से प्रशस्त होगा। ऐसे नि स्पृह-नि स्वार्थ एव विरक्त महापुरुष ही मेरे जीवनोन्नायक हो सकते हैं।

आपने मन-ही-मन सकल्प कर लिया उक्त महापुरुष की चरण-सेवा का। सर्वात्मना उन्हे स्वीकार कर वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना मे उसी दिन से तल्लीन हो गए। परीक्षा ले तो चुके थे, अब परीक्षा देना ही शेष था। उन्हे योग्य गुरु का सान्निध्य एव सामीप्य प्राप्त हो चुका था।

• • •

कठोर तप:साधना का वज्र संकल्प

समस्या और समाधान, समाधान और समस्या—यही जीवन है। जीवन मे सख्यातीत समस्याएँ उठती है और उनका समाधान भी होता है। यदि किसी एकाध भी समस्या का समाधान नही होता, तो मानव, जीवन की इतनी लम्बी यात्रा तय नही कर पाता। यह ठीक है कि कुछ व्यक्ति समस्याओ की गलियो मे भटक कर रह जाते है और कुछ समाधान खोजने के लिए प्रकाश की ओर बढते जाते है। वे अपना भी समाधान करते है और समष्टि का भी। किन्तु सर्वथा समस्याओ से मुक्ति इस क्षुद्र जीवन के परिक्षेत्र मे नही हो सकती है। एक समस्या के समाहित होते ही दूसरी मुँह बाए खडी हो जाती है।

हमारे चरित नायक के जीवन का दौर भी समस्या और समाधान की परिधि मे घूम रहा था।

मार्ग द्रष्टा गुरु की उपलब्धि की एक जटिल समस्या आपके समक्ष थी, वह कोटा पहुँचकर हल हो गई। किन्तु अब एक दूसरी समस्या खडी हो गई—आज्ञा-पत्र की। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की एक यह भी मौलिक विशेषता रही है कि वह बिना माता-पिता, अभिभावक अथवा सरक्षक की अनुमति के आत्म-साधना (दीक्षा) जैसे पवित्रतम कार्य की भी अनुमति नही देती। वहाँ प्रत्येक प्रवृत्ति मे स्नेह-वात्सल्य-प्रेम और अहिसा की व्याप्ति आवश्यक है। जो विश्व बन्धुत्व की भावनाओ की ओर अग्रसर हो रहा हो, वह अपने अभिभावको को अप्रसन्न करे, यह वाच्छनीय कैसे माना जा सकता है ? तात्पर्य यह कि हमारे चरित नायक विश्व बन्धुत्व की भावना लेकर साधना-पथिक बन रहे थे। अत. उनके लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे अपने अभिभावको को साधना पथ पर बढने हेतु अनुमति देने के लिए प्रसन्न करे। साधना के अभ्यास के साथ-ही-साथ इस समस्या के समाधान के लिए भी अब आपका मानस अधिक गतिशील रहने लगा।

इसी चिन्तन के साथ कोटा मे युवाचार्यश्री के सान्निध्य मे अब आप अध्ययन के अतिरिक्त जीवन-निर्माण की कला भी सीखने लगे। युवाचार्यश्री के साथ ही पादविहार कर नगे पाँवो गाँव-गाँव घूमते। अत्यन्त सादगी पूर्ण एव न्यूनतम वस्त्र रखते। शीत, आतप आदि परीषहो-कठिनाइयो को सहते।

कई वार गाँवो मे श्रावको के घर नही होने पर अथवा होते हुए भी निमन्त्रण देना भूल जाने पर भूखे रह जाते अथवा चने आदि खाकर अचित्त पानी पी लेते, किन्तु स्वय को वैरागी घोषित कर कभी भी किसी से कुछ मागने की प्रवृत्ति नही रखते। इधर युवाचार्यश्री भी नि स्पृह योगी थे। उन्हे गृहस्थो के प्रपच से क्या प्रयोजन! वह अर्थात् वैरागी भूखा है, ऐसा सोचकर किसी गृहस्थी से यह कहना कि इसका कुछ प्रवन्ध कर दो, तो दूर, "यह क्षुधित है" यह वाक्य भी कभी उच्चरित नही होता था। शिष्य की योग्यता-अयोग्यता का परीक्षण भी तो इसी प्रकार होता है।

इस प्रकार युवाचार्यश्री के साथ ही आपने भी कोटा से उदयपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग की सारी कठिनाइयो को पार करते हुए आप निरन्तर अपने स्वाध्याय मे तल्लीन रहते।

अपने आराध्य के अल्पतम सान्निध्य मे ही चरित नायक के हृदय मे पूज्य चरणो के प्रति इतनी प्रगाढ अनुरक्ति उत्पन्न हो गई कि अव वे श्री चरणो से क्षण मात्र भी विलग होने को तत्पर नही थे।

कोटा वर्षावास के अनन्तर युवाचार्यश्री का वर्षावास व्यावर का स्वीकृत हो गया तो कुछ समय पूर्व ही चरित नायक को अध्ययन हेतु व्यावर वृद्ध सन्तो की सन्निधि मे रहने का निर्देश प्राप्त हुआ। तदनुसार आप व्यावर पहुँच गए और अध्ययन मे अनुरक्त हो गए, किन्तु इधर कुछ दिनो के पश्चात् तत्कालीन आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० ने युवाचार्यश्री का स्वीकृत वर्षावास अपने आगारो के आधार पर व्यावर से वदल कर उदयपुर घोषित कर दिया। जव चरित नायक को यह ज्ञात हुआ कि आराध्य देव श्री गणेशीलालजी म० सा० का पदार्पण व्यावर नही हो रहा है तो आप गुरु चरणो के आकर्षण मे वधे हुए त्वरित वहाँ से उदयपुर चले गए। ऐसा अदम्य आकर्षण था आपका वैराग्यावस्था से ही गुरु चरणो के प्रति।

इस प्रकार ज्ञान-साधना एव तपाराधना ने आपके शरीर को और अधिक कृश वना दिया। एक वार तो इस कमजोरी के कारण आपको चक्कर आ गये और आप गिर पडे। कई दिनो तक तो युवाचर्यश्री को भी ज्ञात नही हुआ कि ये ऐसी कठिन तपश्चर्या कर रहे हैं। धीरे-धीरे यह तप.साधना जन श्रुति के रूप मे विश्रुत होने लगी और जनता पर भी आपके त्याग-वैराग्य की अमिट छाप पडने लगी।

आप अपने वज्र सकल्प पर, शरीर की कृशता का कुछ भी ध्यान नही करते हुए, निरन्तर वढते रहे।

जब युवाचार्यश्री को यह ज्ञात हुआ कि नवागन्तुक वैरागी बन्धु सगुप्त रूप से तपाराधना कर रहा है और उसका प्रभाव शरीर की कृशता पर पड़ रहा है। तब युवाचार्यश्री ने चरित नायक से इस विषय मे कुछ चर्चा की। चरित नायक ने सहज किन्तु गम्भीर मुद्रा मे कहा—"जब से मैंने पूज्य जवाहराचार्य के विषय मे सुना कि वे दुग्धादि के अतिरिक्त कुछ नही लेते है, तभी से मैंने भी अल्पाहार करने का सकल्प कर लिया और अभी दिन भर मे एक चौथाई रोटी पर रहने के अभ्यास पर पहुँच गया हूँ।"

युवाचार्यश्री ने ज्योही यह सुना, वे अपनी हँसी रोक नही सके। एक तरफ इस युवक का प्रतिस्पर्द्धनीय भाव युवाचार्यश्री को पुलकित कर रहा था तो दूसरी ओर युवक की भावुकता ने उन्हे उन्मुक्त हँसी के लिये बाध्य कर दिया।

युवाचार्यश्री ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—"अरे भाई, आचार्य प्रवर को तो मधुमेह (सुगर) की बीमारी है, अतः उन्हे चिकित्सको ने दुग्धादि पर ही रहने का परामर्श दिया है। तुम्हे तो कोई बीमारी नही है। तुम अभी अपने स्वास्थ्य और भोजन आदि की ओर व्यवस्थित ध्यान दो।"

युवाचार्यश्री द्वारा इतने स्पष्टीकरण के उपरान्त चरित नायक ने पुनः स्वास्थ्य रक्षा हेतु समुचित आहार प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच युवाचार्यश्री कोटा से विहार कर छोटे-छोटे गाँवों मे धर्म की परम पावनी भागीरथी प्रवाहित करते हुए सवत् १९९६ के चातुर्मास हेतु उदयपुर पधारे। हमारे चरित नायक भी साथ ही थे। उनकी ज्ञान एव सामान्य तप साधना निरन्तर गतिशील थी। आपके त्याग-वैराग्यमय जीवन का प्रभाव उदयपुर सघ के तत्कालीन प्रबुद्ध प्रमुखो पर बहुत गहरा अकित हो रहा था। फलस्वरूप अब उन सघ प्रमुखो के मनो मे विचार उठने लगे कि—"ये वैरागीजी अपने विचारो मे दृढीभूत है। इनका जीवन त्याग-वैराग्य का जीता-जागता उदाहरण है। अतः हमे इनके आज्ञा-पत्र के लिए धर्म दलाली का प्रयास करना चाहिए।" आदि।

परीक्षण की वेला में

एक दिन उदयपुर के एक अच्छे स्वाध्यायनिष्ठ श्रावक श्री गेरीलालजी खीवसरा, जो कई थोकडों के जानकार, उदयपुर के प्रमुख श्रावक एव तत्कालीन उदयपुर नरेश के खजाची (कोषाध्यक्ष) थे, ने आपको भोजन के लिए निमन्त्रण दिया और खाना खाने हेतु अपने मकान पर ले गए। वहाँ भोजन के पूर्व हाथ धोने के लिए धोवन (अचित्त) पानी का गिलास देते हुए कहने लगे—"उधर उस मोहरी (नालदे) में हाथ धो लीजिये।" किन्तु चरित नायक मे हिंसा-

अहिंसा का विवेक जग चुका था। उन्होने कहा—"नाली मे सम्मूर्च्छिम (सूक्ष्म) जीवो की उत्पत्ति होती है, अत मैं नाली मे हाथ नही धोता। आप कोई दूसरा सूखा स्थान वता दीजिये।" तव उन श्रावकजी ने एक झरोखा (गोखडा) वताया और कहा—"इसमे बैठकर धो लीजिये, नीचे सूखा रास्ता है, किन्तु आने-जाने वालो का थोडा ध्यान रखना।" चरित नायक की पैनी दृष्टि और विवेकी प्रज्ञा यह करने को भी तैयार नही हुई। वे कहने लगे—"श्रावकजी, इतने ऊपर से पानी गिराना कैसे उचित होगा? नीचे कीडी आदि कई जन्तुओ की हिंसा हो सकती है, कदाचित् कोई प्राणी न भी हो, तो वायु काय की अयतना तो होगी ही, साथ ही असभ्यता भी।" अन्त मे आप हाथ धोने के लिए दूसरी मजिल से नीचे उतर कर आए और आपने रास्ते के किनारे एकान्त मे सूखी जगह देख कर हाथ धोकर पुन ऊपर जाकर भोजन किया।

चरित नायक की इस विवेक पूर्ण प्रज्ञा को देखकर वे श्रावकजी मन-ही-मन अत्यन्त गद्गद् हो रहे थे। चरित नायक के प्रति आपके मन मे सहस्रो शुभ भावनाएँ उठने लगी। किन्तु उनका मन एक परीक्षण और करना चाहता था। अत भोजन करने के पश्चात् जब चरित नायक धर्म स्थान को जाने लगे, तो श्रावकजी ने कहा—"जल्दी क्या है, दस वीस मिनिट बैठो, कुछ वात करो।" तव चरित नायक ने कहा—"मुझे निर्धारित समयानुसार सब कार्य करना है, अत मैं अधिक विलम्व नही कर सकता। आपको कुछ पूछना हो तो वही पूज्यश्री की सेवा मे पूछ लीजियेगा। मैं गृहस्थी के घर पर अधिक समय तक रुकना उचित नही समझता।" हमारे चरित नायक के मुख से निकलने वाला एक-एक शव्द गम्भीर अर्थ लिए हुए था और श्रावकजी पर चुम्वकीय आकर्पण सा प्रभाव डाल रहा था। अपने वैराग्य का गहरा प्रभाव डाल कर चरित नायक धर्म स्थान पर लौट आये। इसके वाद फिर एक दिन उदयपुर के ही ५०० शास्त्रीय थोकडो के जानकार श्री राजमलजी वाफना के भाई सा० चरितनायक को अपने घर ले गए और भोजन कराने के पश्चात् उन श्रावकजी ने एक वहुमूल्य वस्त्रो की पेटी खोल कर आपके समक्ष रख दी और कहा कि "इसमे से जैसी पसन्द हो, शेरवानी और मोटडा (पगडी) ले लो। यह टोपी ठीक नही लगती।" तव चरितनायक का सहज, किन्तु दार्शनिक उत्तर था, "मुझे मेरे गुरुदेव का पदानुसरण करना है। वे खादी के वस्त्र पहने और मैं शेरवानियाँ पहनूँ, यह कैसे शोभित होगा? दूसरी वात, मेरा जीवन वैराग्यमय है। मुझे फैशनेवल वस्त्रो से क्या प्रयोजन? मुझे खादी के वस्त्र चाहिये।" यह वात श्रावको मे काफी फैल चुकी थी कि वैरागीजी किसी प्रकार के प्रलोभन मे न आकर खादी के वस्त्र ही पहनते हैं। कुछ दिनो वाद श्री चन्दनमलजी वरडिया जो कि प्राय खादी ही पहनते थे, वैरागीजी को अपने घर पर भोजन कराने ले गए और अपने पास वढिया खादी के जो वस्त्र थे, पेटी खोलकर

दिखाते हुए कहने लगे कि आपको जो चाहिये, ले लो। चरितनायक ने कहा—"अभी मेरे पास पर्याप्त वस्त्र है। अतः मुझे कुछ नही चाहिये। बस आप तो मुझ पर कृपा बनाये रखे और साधना के मार्ग मे बढने के लिए शुभाशीर्वाद प्रदान करे।" ऐसा कह कर चरितनायक तो अपने स्थान पर लौट आए, किन्तु त्याग, वैराग्य एव विवेक की एक गहरी छाप उन श्रावकजी पर छोड़ आये।

इसके पूर्व श्री हितेच्छु श्रावक मडल, रतलाम के प्रमुख कार्यकर्त्ता शास्त्रज्ञ श्री बालचन्दजी श्रीश्रीमाल युवाचार्य श्रीजी के दर्शन करने आये, तब उनको विदित हुआ कि युवाचार्य श्रीजी के साथ एक वैरागी है। उनको रास्ते मे कोई पूछने वाला नही मिला तो वे कई बार भूखे तक रह गये। अतः उनको कुछ रुपये दे देना चाहिये। ऐसा सोच अपनी जेब से कुछ रुपये निकाल कर देने लगे, तो चरितनायक ने इन्कार करते हुए कहा, "मुझे रुपयों की क्या आवश्यकता ? मुझे ये नही चाहिये।"

कुछ कालोपरान्त वे तीनो श्रावक युवाचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुए, तो चरितनायक की मुक्त कठ से प्रशसा करते हुए कहने लगे—"महाराजश्री, यह वैरागी खरा सोना है। हमने इनकी आज अच्छी तरह परीक्षा कर ली है। यह एक उत्कृष्ट कोटि का महापुरुष निकलेगा।"

दीक्षार्थ अनुमति के प्रयास

मानव-जीवन एक यात्रा है। हम किसी एक बिन्दु से चलते है और किसी बिन्दु तक हमे पहुँचना है। किन्तु यह यात्रा कही रुकने वाली नही, निरन्तर प्रवहमान होती है। जब तक जीवन मे पूर्णता है, प्रवहमानता होनी ही चाहिये। जो यात्री अधूरे गन्तव्य पर ही उतर पड़ता है, वह उद्देश्य तक नही पहुँच सकता। यही स्थिति जीवन-यात्रा की है। इसी दृष्टिकोण मे दार्शनिकों की भाषा में गतिशीलता को जीवन कहा गया है। हमारे चरित नायक की जीवन-यात्रा भी अपूर्णता को पूर्णता मे परिवर्तित करने हेतु तपोसाधना एवं स्वाध्याय-आराधना मे गतिशील बनी हुई थी।

जैसा कि हम पहले लिख आए है कि गुरु के अन्वेषण की एक समस्या समाहित होते ही दूसरी समस्या खड़ी हो गयी अभिभावकों के दीक्षार्थ अनुमति प्राप्त करने की। अब आपने भी अपने आराध्य के सामीप्य मे रहकर उन्हे अच्छी तरह परख लिया था और आराध्य देव युवाचार्यश्री ने भी आपका अच्छी तरह परीक्षण कर लिया था। अतः अब एक कार्य शेष रह गया था कि किसी तरह आपकी मातुश्री और भ्राता मीठूलालजी को समझा कर

आज्ञा-पत्र के लिए प्रसन्न किया जाय। उदयपुर सघ के कुछ प्रमुख श्रावको ने यह उचित समझा कि एक वार वैरागीजी (चरितनायक) स्वयं जाकर प्रयास करे। फिर यदि हमारा सहयोग आवश्यक होगा, तो हम भी चलेगे। ऐसी स्थिति मे चरितनायक अकेले ही उदयपुर से दाता पहुँचे। अचानक आपके वहाँ पहुँचने से परिवार मे हर्ष का वातावरण बनना स्वाभाविक था।

विचार-विमर्श के दौरान आपने नम्रतापूर्वक माताजी से निवेदन किया—"आप जानती हैं, अव मैं गृहस्थी मे रहने वाला नही हूँ। वर्ष—छ महीना आगे-पीछे मुझे आप अनुमति देगी ही। किन्तु अभी सुनहला मौका है। गुरुदेव युवाचार्यश्री निकट उदयपुर ही विराज रहे हैं, फिर न मालूम किधर विहार हो जावे। अत. आप अभी अनुमति प्रदान कर देती है तो निकट होने से उदयपुर मे अथवा कपासन आदि किसी क्षेत्र मे जहाँ आप उचित समझे, दीक्षा हो सकती है।"

यह वात सुनते ही एक वार तो मातुश्री विकल हो उठी और अश्रुपूरित नेत्रो से अपने लाडले को अपलक निहारने लगी, किन्तु क्षणोपरान्त सावधान हो कहने लगी, "नाना, मैं तुझे सभी तरह समझा चुकी हूँ। तू अपनी जिद पर अडा हुआ है। इतनी जिद करना अच्छा नही है। प्रथम तो मेरी वृद्धावस्था की ओर भी तुझे देखना चाहिये और दूसरे दीक्षा कोई ढुल्ला-ढुल्ली (गुड्डा-गुडिया) का खेल नही है, जो जोश मे आकर बच्चे की तरह उस पर मचल उठता है। जैन दीक्षा की आराधना तलवार की धार पर चलने से भी दुष्कर है। पैदल चलना, माग कर खाना, केश लोच करना, शीत-उष्ण आदि के परीषह सहना, आदि साधु जीवन के कष्टो का लम्बा चिट्ठा है। ये साधु लोग तो चेले के लोभ मे मीठी-मीठी वाते करते है। साधु वनने के वाद कोई पूछता तक नही। उल्टा अपना सारा वोझा चेले के कन्धे पर डाल देते हैं और खुद खाली हाथ चलते हैं मस्ती से। अत पहले घर मे रहकर ससार का अनुभव करो, कष्ट सहिष्णु वनो, फिर आगे जैसा होगा, देखा जायेगा। अभी जल्दी मत करो।"

चरितनायक विनय से सिर नीचा किये गम्भीरता पूर्वक मातुश्री का उपदेश सुनते रहे। जव मातुश्री ने विराम लिया तो आपने सहज किन्तु गम्भीर उत्तर दिया —

"आपका कथन यथार्थ है। साधु जीवन उतना ही कठिन है, जितना कि आप कह रही हैं, किन्तु मैने इसका पूरा अभ्यास कर लिया है। महाराजश्री के साथ रहकर मैंने सयमी जीवन की सभी कठिनाइयो को देख लिया है। दूसरी वात मैं आपका पुत्र हूँ, कायर नही, वीर हूँ। आपके आशीर्वाद से वे परीषह

मेरे लिए कष्टदायक नही होगे । आपके शुभाशीर्वाद से तीक्षण काटे भी कोमल पुष्प बन सकते है । कुछ समय और ठहरने के लिए आपने कहा, इसके लिये मैं आपको पहले ही निवेदन कर चुका हूँ और अभी भी आप देख रही है, मेरी तमन्ना कितनी गहरी हो रही है । मेरी भावना की असफलता के कारण शरीर कितना कृश हो गया है । अत. अब आपको अनुमति देने मे विलम्ब नही करना चाहिये । साधुओं की मीठी-मीठी बातो के विषय मे इतना ही कहना है कि मैं कोई छोटा सा बच्चा तो नही हूँ, जो मुझे खिलौना दिखाकर आकर्षित करले । मै झूठे प्रलोभन देने वालो और धर्म के नाम पर दुकानदारी चलाने वालो को तो कभी का छोड चुका हूँ । मुझे इन सन्तो ने कुछ नही कहा । मुझे स्वय ससार से विरक्ति हुई और मै अपनी आन्तरिक इच्छा से इस मार्ग पर जा रहा हूँ, किसी के बहकाने से नही ।"

इस प्रकार माता और पुत्र मे काफी सवाद हुआ, किन्तु माता अभी तक अपनी ममता के बन्धनो को तोडने के लिये तैयार नही थी ।

जब अनुनय विनय का कोई प्रभाव होता दिखाई नही दिया, तो हमारे चरितनायक को विवश होकर अहिंसात्मक सत्याग्रह करना पडा । आपने पारिवारिक जनो के समक्ष उद्घोषणा कर दी कि "जब तक आप आज्ञा प्रदान नही करेगे, मै भोजन ग्रहण नही करूँगा ।" एक, दो, तीन दिन निकल गए अर्थात् चरितनायक को तेले का तप हो गया । तीन दिन तक अचित्त जल के अतिरिक्त सभी खाद्य एव पेय पदार्थो का उपयोग नही हुआ । शरीर तो पहले से ही कृश था । सिर्फ आत्मबल के आधार पर ही यह तप आरम्भ हुआ । तीसरे दिन तक तो शरीर की हालत बहुत कमजोर हो गई ।

दृढ निश्चय, तपस्या एवं आत्म-बल का प्रभाव परिवार वालो पर हुआ और अग्रजा मोती बाई एव कुछ अन्य रिश्तेदारो श्री उदयलालजी, कन्हैयालालजी पोखरना आदि ने भी आपकी माताजी एव भाई सा० को समझाया । अन्त मे आज्ञा पत्र का प्रारूप तैयार करके सभी पारिवारिक जनो ने हस्ताक्षर कर दिये । (बाद मे ज्ञात हुआ कि वे हस्ताक्षर जाली (नकली) थे और अगूठे की निशानी भी जाली थी) जब चरितनायक को आज्ञा पत्र मिल गया, तो अपने उद्देश्य के अनुसार उन्होने पारणा करने की स्वीकृति दे दी । आप तेले का पारणा करने बैठे ही थे, अभी एकाध घूँट दूध ही लिया होगा कि आपके भाई सा० ने चुपके से आज्ञा-पत्र जेब से निकाल लिया । आपने पिता तुल्य अग्रज से छीना झपटी का सघर्ष करना उचित नही समझा । आपने अपने आप पर नियंत्रण करना ही योग्य समझा । आप उसी समय दूध की गिलास छोड कर यह कहते हुए उठ खडे हुए कि "अब मेरे लिये सभी घर समान है । आपने मेरे साथ धोखा किया है । अत. अब मेरा दृढ निश्चय है कि जब तक मुझे आज्ञा-

पत्र नही मिलेगा, मैं आपके यहाँ भोजन नही करूँगा। गाँव मे किसी भी घर कर सकता हूँ, वह भी इच्छा होने पर।" शारीरिक शक्ति नही होने पर भी आप वहाँ से उठकर श्री वक्तावरमलजी के यहाँ चले गए और वही पारणा किया। आपने घर पर भोजन नही किया तथा उसी स्थिति मे चरितनायक पुन. उदयपुर चले आए और पूर्ववत् अपनी ज्ञानाराधना और तप साधना मे लीन रहने लगे।

अव उदयपुर सघ के कुछ प्रमुख सज्जन श्री गेरीलालजी खीवसरा आदि आज्ञा-पत्र की दलाली कर, उदयपुर दीक्षा करवाने के विचार से वैरागीजी (चरितनायक) को साथ ले, कपासन पहुँचे और कपासन के श्री छगनलालजी, श्री मीठालालजी उगमलालजी चण्डालिया, श्री विलासीरामजी पलोड (माहेश्वरी जो पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित थे और उनके सवत् १९९१ के चातुर्मास मे सेवा का वहुत लाभ ले चुके थे।) आदि कतिपय सज्जन को साथ लेकर चरितनायक की माताजी एव भाई सा० आदि को समझाने के लिये दाता गए। माताजी, भाई सा० एव भाभी एक वार तो काफी क्रुद्ध हुए और कहने लगे—"ये आने वाले धर्म के धोरी अपने वेटो को निकाल कर क्यो नही दे देते ? खुद क्यो नही ले लेते दीक्षा। दूसरो के मा-वापो को रुलाने मे इन्हे क्या आनन्द आता है" आदि। आगन्तुक सज्जन एक वार तो निरुत्तर हो गए, वोलने का साहस भी खो वैठे। हताश होकर चरितनायक के चचेरे वडे भ्राता श्री उदयलालजी सा० पोखरना को, जो गाँव के अच्छे समझदार व्यक्ति थे, वुलवा कर कहा—"हम तो उनसे परिचित भी नही है, फिर भी वे इतने कठोर वोल रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि माँ की ममता के वन्धन वहुत गहरे होते हैं। जिनका लाल निकलता है, उन्हे ही पता लगता है। किन्तु अव यह निश्चित है कि "नानालालजी" घर मे रहने वाले नही है। आगे-पीछे उन्हे दीक्षा देनी ही पडेगी। तो फिर ऐसा सुन्दर अवसर क्यो खोया जाए ? युवाचार्यश्री का वार-वार यहाँ आना नही होगा। अत आप वैरागीजी की माताजी, भाभीजी एव भाई सा० को थोडा समझाइए।"

श्री उदयलालजी सा० आगन्तुको के विचार सुनकर उन्हे समझाने के लिये पहुँचे, किन्तु वहाँ जाकर वोलने का साहस उनका भी नही हुआ। वहाँ तो कुहराम मच रहा था। माँ की ममता, भाई का वात्सल्य और भाभी का प्यार आँखो से वरस रहा था। घर के तीनो प्रमुख सदस्य अविरल अश्रुधारा वहा रहे थे। ऐसी स्थिति मे वोलने का साहस हो भी कैसे ? श्री उदयलालजी सा० लौटकर चले आए और कहा—अभी वातावरण ठीक नही है। फिर मैं कभी शान्ति के क्षणो मे उन्हे समझाने का प्रयत्न करूँगा।

सभी सदस्य निराश हो वैठे। अव चरितनायक ने विचार किया। यह

कार्य दूसरों के बल-बूते पर नही होने का। मुझे अपना काम स्वय ही करना होगा। इस प्रकार विचार कर आपने मातुश्री के चरणो मे अनुनय पूर्वक निवेदन किया। माताजी के विचारो में कुछ मोड़ आता दिखाई दिया। वे अपने आग्रह के प्रति कुछ शिथिल हो रही थी। इसी बीच कपासन से आये हुए सज्जनो ने पुनः भाई सा० और माताजी को समझाया। फलस्वरूप वे अब प्रन्नतापूर्वक अनुमति देने को तैयार हो गए। श्री उदयलालजी, कन्हैयालालजी एव चरितनायक के बड़े भ्राता श्री मीठूलालजी अनुमति पत्र एव वैरागीजी (चरितनायक) को लेकर उदयपुर युवाचार्यश्री के सेवा मे पहुँचे और निवेदन किया—"वैरागीजी का परीक्षण तो आपश्री ने अच्छी तरह कर लिया होगा। हमने भी उन्हे समझाने का पूरा प्रयास किया, किन्तु वे अपने पथ से किञ्चित भी विचलित नही हुए। हमारी परीक्षा मे तो वे पूरे उत्तीर्ण हुए है। अत· अब उन्हे अधिक रोके रहना ठीक नही समझकर आपश्री के चरणो मे भेट कर रहे है। हम उन्हे आपश्री के चरणों मे दीक्षित करना चाहते है।"

उपर्युक्त वातावरण मे उदयपुर संघ का आग्रह होना स्वाभाविक था कि दीक्षा इसी चातुर्मास मे उदयपुर में ही सम्पन्न हो, किन्तु कपासन सघ इसे कब स्वीकार करने वाला था ? कपासन सघ के प्रमुखो ने अत्यन्त आग्रह किया कि दाता कपासन के बहुत नजदीक है और वहाँ दीक्षार्थी के परिवार वालो को भी सुविधा रहेगी। अत· दीक्षा कपासन मे ही हो। कपासन वाले परिवारवालो को भी साथ ले गये थे, और निवेदन करवाया कि—"वैसे हमारी भावना हमारे गाँव दाता मे ही दीक्षा देने की थी, किन्तु गाँव बहुत छोटा है और आने-जाने वालो के लिये भी कोई साधन नही है, अतः आप कृपा कर चातुर्मास समाप्ति पर कपासन पधारे। हमने पौष शुक्ला अष्टमी का दिन दीक्षा के लिए निश्चित किया है।"

युवाचार्यश्री तो शिष्य को अच्छी तरह तपा चुके थे। उनका परीक्षण अपने ढग का अलग ही परीक्षण था। उन्होने सहज स्मिति के साथ कहा—"आप और हम क्या परीक्षण करे ? परीक्षण तो प्रकृति से होता है। हमारी परीक्षा तो असफल भी हो सकती है किन्तु जीवन के नैसर्गिक परीक्षण कभी असफल नही हो सकते। वैरागीजी की प्रकृति को एव प्रवृत्ति को मैने सूक्ष्मता-पूर्वक देखा है। मेरी दृष्टि मे वे दीक्षा के लिये योग्य है। रहा सवाल कपासन आने का, सो वैसे भी कपासन सघ का आग्रह हो रहा है और फिर दीक्षा जैसे पवित्र कार्य के लिये तो शास्त्रीय दृष्टि से सैकडो मील चल कर आया जा सकता है, अतः चातुर्मास समाप्ति पर जैसा अवसर होगा, देखा जायेगा।" आगन्तुक सतुष्ट एव आनदित होते हुए दाता एव कपासन लौट गए और दीक्षा की तैयारी मे जुट गए।

• • •

दीक्षा एक पर्यवेक्षण

'दीक्षा' शब्द भारतीय सस्कृति की प्रत्येक धारा मे व्यवहृत हुआ है। सभी धाराओ ने अपने-अपने ढग से अपने मान्य रूढ अर्थो मे इस शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु जैन सस्कृति मे 'दीक्षा' शब्द बहुत मौलिक अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। वहाँ दीक्षा का अर्थ है—सत्य की खोज। मानव जाति के अब तक के इतिहास मे सत्य के खोज की दो दिशाएँ रही हैं। एक दिशा बाहर मे है, तो दूसरी दिशा भीतर मे। एक बहिर्मुख है तो दूसरी अन्तर्मुख।

जब मानव मस्तिष्क ने बाहर मे सत्य को खोजना आरम्भ किया, तो उसने जड प्रकृति-तत्त्व को देखा, वह उसकी गहराई मे पहुँचा और परमाणु और उसकी विराट् शक्ति को खोज निकाला।

जब अन्दर मे खोज प्रारम्भ हुई, तो परमात्म-तत्त्व को खोज निकाला। बाहर के विश्व से भी बडा एक विश्व मानव के भीतर है। "अणोरणीयान, महतो महीयान्" की एक अनन्त ज्योति इस देह के मृत पिण्ड मे समाई हुई है, जिसे हम आत्मा कहते हैं। उसी का अनन्त विशुद्ध रूप ही तो परमात्म-तत्त्व है।

दोनो प्रकार के अन्वेषण अपने-अपने परिक्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु बहिर्जगत् का परिबोध शब्द अभिव्यजना और भौतिक क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता है, जबकि अन्तर्जगत् मे परमात्म तत्त्व का बोध अनुभूति-बोध के क्षेत्र मे आता है, शब्द बोध के क्षेत्र मे नही।

अनन्त सौर मण्डल मे उन्मुक्त उडाने भरने वाले पक्षियो की भाति परम तत्त्व की खोज मे निकले हुए यात्रियो के मार्ग भी भिन्न-भिन्न रहे हैं। चाहे वे अपनी पूर्णता पर भले ही एक रूप हो जाएँ पर वस्तुत. इस यात्रा मे जितने यात्री हैं, उतने ही पथ हैं। इसकी कभी कोई एक नियत परम्परा नही रही है। "विधना के मारग है तेते, सरग नखत तन रोओ जेते।"

विश्व इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि परमात्म-तत्त्व की खोज की कोई एक परम्परा नही रही है। फिर भी परम्पराओ मे एकत्व अवश्य परिलक्षित होता है। अनेक मे एक का दर्शन, यहाँ भी प्रतिभासित होता है, और वह है दीक्षा का। हर धर्म और हर दर्शन की परम्पराओ मे दीक्षा है। साधना का मूल स्रोत दीक्षा से ही प्रवाहित होता है। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति मे दीक्षा के कुछ मौलिक अर्थ अभिव्यक्त हुए है। वस्तुत: वहाँ दीक्षा शब्द को पारिभाषित करना निश्चय ही कठिन है। स्थूल दृष्टि से चचल चित्त की एकाग्रता को साधने की प्रक्रिया का नाम ही दीक्षा अथवा प्रव्रज्या है। भोगमय पथ पर चलते-चलते शाति और समाधि नही मिली, तो आवश्यक हो गया कि पथ बदला जाए। पथ के इस परिवर्तन को, जीवन की इस प्रक्रिया को और जीवन के हीन सस्कारो को बदल डालने की साधना को ही दीक्षा कहा गया है।

दीक्षा का अर्थ कुछ बँधी बँधाई व्रतावली को अपना लेना ही नही है, अमुक सम्प्रदाय विशेष की परम्परागत किन्ही क्रियाओ एव वेश भूषाओ मे अपने आपको आबद्ध कर लेना भर नही है। हाँ, यह भी प्रारम्भ मे नितान्त आवश्यक होता है, इसकी भी अपेक्षा होती है। हर सस्था का अपना कोई गणवेश होता है। परन्तु महावीर कहते है, यह सब तो बाहर की बाते हैं। अन्तर की अभिव्यक्ति के साधन तथा प्रतीक है। "लोगे लिंगप्पआयाण"। अत· दीक्षा का मूल उद्देश्य यही नही, इससे कुछ गहरा है और वह है, परम-तत्त्व की खोज—बाहर से अन्दर पैठना। अपने स्वरूप को खोजना-बाहर के आवरणो को हटाकर अपना अन्वेषण और सही रूप मे अपने की उपलब्धि।

दीक्षार्थी अपने विशुद्ध चैतन्य देव की खोज मे निकला हुआ एक अन्तर्यात्री है। अन्तर्यात्री इसलिए कि उसकी यात्रा बाहर मे नही, अन्तर मे होती है। साधक अन्दर मे गहरा और गहरा उतरता जाता है और आवरणो को तोडता हुआ निरन्तर मृत्यु के अमरत्व की ओर, असत् से सत् की ओर गतिशील होता है। अन्त मे अपने परम चैतन्य चिदानन्द स्वरूप परमात्म-तत्त्व के अधिकाधिक निकट होता जाता है। शरीर, इन्द्रिय और मन आदि की अनेकानेक सूक्ष्म एव साथ ही सघन परतो के नीचे दबा अनन्त चेतना का जो अस्तित्व है, उसकी उपलब्धि एव अभिव्यक्ति ही साधक-जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। उसकी खोज दीक्षार्थी प्रशान्त मन-मस्तिष्क से ही कर सकता है। यह वह स्थिति है, जहाँ परिवार या समाज को छोडने या उनके छूट जाने का अच्छा या बुरा कोई भी प्रभाव नही पडता। उसके प्रति अच्छा-बुरा का विकल्प ही मन मे नही रहता

परम चेतना की खोज के लिए साधु जीवन एक अवसर है। वाह्य जगत् की दृष्टि से साधु जीवन का उद्देश्य जनता मे अशुभ की निवृत्ति एव शुभ की स्थापना है। जनता को हर प्रकार के अन्धविश्वासो से मुक्त करना और उसे यथार्थ सत्य का परिवोध कराना साधु जीवन का सामाजिक कर्त्तव्य है। साधु अन्धकार का नही, प्रकाश का प्रतीक है, अशान्ति का नही, शान्ति का सन्देश वाहक है, भ्रान्ति का नही, सत्य का पक्षधर है। वह समाज का निर्माता है।

निष्कर्प की भापा मे जीवन की क्षुद्र विकृतियो से ऊपर उठ कर "वसुधैव कुटुम्वकम्" की उदात्त भावना के साथ अन्दर मे परमात्म-तत्त्व की खोज और उसके अग स्वरूप विश्व मानवता का आत्मोपम्य दृष्टि से नव-निर्माण, यही है मुनि दीक्षा का किंवा साधुता का मगल आदर्श।

• • •

सागार से अणगार

इसी मगल आदर्श की ओर पदार्पण करने को वर्षों से उत्सुक थे हमारे श्रद्धेय चरितनायक। सत्य की खोज के लिये उनका मन छटपटा रहा था। अव काल पक चुका था। दीक्षार्थ अनुमति मिल चुकी थी। इधर चरितनायक, उनके भाई, बहिन, माताजी आदि पारिवारिक जन पुन. आग्रह करने लगे कि दीक्षा दाता मे ही हो। लेकिन उन्हे समझाया गया कि दाता मे सत-सतियो को व दर्शनार्थ आये आगन्तुको को ठहराने के लिये मकानो की व्यवस्था होनी कठिन है। दाता एक छोटा-सा गॉव है। अत. दीक्षा कपासन मे होनी ही उचित है। तब अपने ही घर से दीक्षा देने की एवं दीक्षा सम्बन्धी सारा खर्च अपनी ओर से ही करने की शर्त पर कपासन पहुँचे और एक स्वतन्त्र मकान लेकर रह गये और दीक्षा के कार्य मे जुट गये। तदनुसार सभी पारिवारिक सदस्यो को निमन्त्रण दिया गया। आध्यात्मिक प्रयाण के गीत गाये जाने लगे। मगल तूर्य निनादो की घडघडाहट मे जुलूस निकलने लगे। तत्कालीन प्रथानुसार रात्रि मे भी शोभा-यात्राएँ निकाली जाती थी। तदनुसार कपासन संघ ने रात्रि कालीन जुलूस निकालने की तैयारी की। चरितनायक इसके लिये तैयार नही थे। उनका भवभीरु मन आरम्भिक वृत्ति को स्वीकार नही कर रहा था। इधर मास्टर साहब मागीलालजी बागमार के माध्यम से युवाचार्यश्री को ज्ञात हुआ कि रात्रि कालीन जुलूस निकाला जाने वाला है। तब युवाचार्य श्रीजी ने कहा— "धर्म प्रभावना आपका उद्देश्य है, उसकी पूर्ति दैनिक कार्यक्रमो मे भी हो सकती है। फिर रात्रि मे आरम्भ-समारम्भ करना उचित नही है।" उपर्युक्त वातचीत के समय वैरागी (चरितनायक) पास मे खड़े थे। वे कहने लगे, "गुरुदेव ! ये जुलूस किसका निकालेगे ? मैं जाऊँगा तब तो, मैने तो सामायिक पच्चक्ख ली है !" इस पर श्री मागीलालजी साहब सघ प्रमुखो के पास पहुँचे और कहा आप किसके जुलूस की तैयारी कर रहे है ? वैरागीजी तो सामायिक मे वैठे है। उनको मेंहदी लगाने का आग्रह किया, वह भी उन्होने अस्वीकार कर दिया। अर्थात् वहुत आग्रह करने पर भी उन्होने मेहदी नही लगवाई। फिर वे जुलूस जैसी आरम्भिक वृत्ति में कैसे भाग लेगे ? और उनकी वह सारी तैयारी धरी रह गई।

दीक्षा महोत्सव पर निकट परिचितों के अतिरिक्त मेवाड के आसपास के क्षेत्र से सहस्त्रों की संख्या मे दर्शनार्थी उपस्थित हुए। उनके आवास एवं

भोजन की व्यवस्था कपासन सघ की ओर से थी। अचानक दीक्षा-तिथि से एक दिन पूर्व अर्थात् पौप शुक्ला सप्तमी को रात्रि मे इतनी जोरो से वर्षा होने लगी कि सघ मे थोडी खलवली मच गई कि अगर मौसम ऐसा ही बना रहा, तो प्रात काल दीक्षा सुसम्पन्न होनी कठिन है। किन्तु प्रात काल होते-होते मौसम बडा सुहावना बन गया, मानो जल छिडकाव के लिये मेघ वृष्टि हुई हो। शान्त-प्रशान्त वातावरण मे निर्धारित दीक्षा तिथि सम्वत् १९९६ पौष शुक्ला अष्टमी को विशाल जन समूह एक जुलूस के रूप मे कपासन शहर के बाहर एक सुरम्य सरोवर के किनारे आम्र वृक्षो के निकु ज के मध्य स्थित विशाल आम्र वृक्ष के नीचे एकत्र हो गया। हजारो की उस जन-मेदनी के समक्ष युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने दीक्षा का मौलिक स्वरूप हृदय को छूने वाली मार्मिक शैली मे प्रस्तुत किया। उसकी सैद्धान्तिक प्ररूपणा करते हुए, दीक्षा क्यो, किस लिये और कैसे ली जाती है, आदि का विवेचन किया। विशाल प्रवचन मडप खचाखच भरा हुआ था। चरितनायक विराट् शोभा यात्रा के साथ प्रवचन मडप मे पहुँचे, युवाचार्यश्री को विधिवत् वन्दन कर उन्होने मगल पाठ सुना और युवाचार्यश्री और जन-मेदनी के सहस्रो सद्भावनात्मक आशीर्वाद प्राप्त कर पोशाक परिवर्तन के लिये निर्धारित स्थान, छतरियो मे पधार गये। वस्त्राभूषणो को अलग कर आतरिक उल्लास के साथ केश मुण्डन करवाकर मुनिवेप धारण किया। मुख पर केशर के द्वारा रजित नन्दावर्त स्वस्तिकवाली मुखवस्त्रिका, केशर रजित श्वेत खद्दर की चादर, चोलपट्टक, हाथ मे झोली और बगल (काख) मे रजोहरण इस प्रकार साध्वोचित सभी उपकरण यथा-स्थान धारण कर मदमाते यौवन की देहरी पर पैर धरते ही वैराग्य सागर मे डुबकी लगाने वाले चरितनायक मुनिवेश मे दीक्षा मडप मे युवाचार्यश्री के समक्ष आ उपस्थित हुए।

अहिंसा के अवतार भगवान् महावीर स्वामी की जय, क्रान्तद्रष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की जय, शान्त क्रान्ति के अग्रदूत युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की जय, वैरागी श्री नानालालजी की जय, आदि की जयजयकारो से गगन मण्डल गू ज उठा। बडा मनभावन समय था वह। हजारो नेत्र चरितनायक की वैराग्य-रजित शोभा यात्रा को बडी उत्सुकता से निहार रहे थे। शरीर पर केशर-रजित पोशाक, केशर के रग से रजित मुखवस्त्रिका, भगवती अहिंसा का पवित्र सदेश दे रही थी। किं बहुना, चरितनायक के देह का कण-कण वैराग्य के प्रति अप्रितम अभिवन्दन एव अभिनन्दन व्यक्त कर रहा था।

मनमोहक हरियाली से भरे हुए अपने खेतो को देखकर जैसे कृषक का रोम-रोम पुलकित हो उठता है, वैसे ही अपने आपको इस चिर अभीप्सित

पवित्र विन्यास मे पाकर चरितनायक का हृदय बल्लियो उछल रहा था आपकी उस समय की आनन्दानुभूति शब्द-अभिव्यंजना का विषय नही है। आपश्री के मुख मण्डल पर उछलने वाली उस समय की प्रसन्नता आन्तरिक हर्षानुभूति की ससूचक थी। वास्तव मे चरितनायक को जीवन-परिवर्तन का यह अवसर बड़े परिश्रम, कठोर साधना एवं घोर तपश्चरण के अनन्तर प्राप्त हुआ था। अत: चेहरे पर दिव्य आनन्द झलक रहा था।

चरितनायक युवाचार्यश्री को एव विराजित अन्य संत सती वर्ग को विधिवत् वन्दन कर एक ऊँचे स्थान पर खडे होकर अपार जनमेदनी के समक्ष क्षमायाचना की मुद्रा मे उपस्थित हुए और फिर युवाचार्यश्री के सम्मुख खडे हो गये। युवाचार्यश्री ने मुनि वेषधारी वैरागीजी को सम्बोधित करते हुए सयमी जीवन की कठिनाइयो पर प्रकाश डाला और सक्षेप मे साध्वाचार के सम्बन्ध मे फरमाया।

साधना की कठोरता

जैन श्रमण की आचार पद्धति मुक्ति साधना की कठोरतम प्रणाली है। केश लुंचन, भूमि शय्या, पैदल विहार, अनियत वास अर्थात् वर्षाकाल को छोडकर ग्राम या नगर मे एक मास अथवा सात दिन से अधिक न ठहरना, सम्पत्ति के नाम से कुछ भी पास न रखना, साथ ही इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिये सतत जागृत रहना, अन्त.करण मे कालुष्य न आने देना, भूख, प्यास, सर्दी, डॉस, मच्छर आदि के कष्टो को धैर्य के साथ सहन करना, हमेशा प्रत्येक वस्तु को याचना करके ही ग्रहण करना, आहार-पानी का लाभ न होने पर विषाद न करके उसे तपस्या का लाभ मान लेना, आदि ऐसी चर्या है जिसके लिये जीवन को एक खास तरह के साचे मे ढालने की आवश्यकता होती है।

ससार के समस्त आकर्षणो से विरक्त होकर, शरीर सम्बन्धी ममत्व का भी परित्याग करके जो आत्म-साधना मे सलग्न होने का इच्छुक है, वही मुनि-धर्म स्वीकार कर सकता है। समाज का रक्षक, राष्ट्र का सैनिक और परिवार का पोषक बनकर ही मनुष्य पूर्णता प्राप्त नही कर सकता है, उसे इन कर्त्तव्यो मे भी पार होकर जीवन के अतिम मार्ग को अकेले ही होकर पार करना पडता है। तभी आत्मा को सर्वोच्च सिद्धि का लाभ होता है। चरम साधना के बीहड पथ पर एकाकी चल पड़ने वाला साधक, श्रमण, साधु, भिक्षु या त्यागी कहलाता है।

श्रमणत्व की उच्च भूमिका स्पर्श करने के लिये गृह, परिवार, धन-सम्पत्ति आदि बाह्य पदार्थो का त्याग करना पड़ता है। मगर यही पर्याप्त नही

है। सच्चा श्रमण वही है जो जीवन मे गहरी जड़ जमाये हुए आन्तरिक विकारो पर विजय प्राप्त करता है। उसके लिए, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति और जीवन-मरण एकाकार हो जाते है। वह तिरस्कार के जहर को अमृत मानकर पी जाता है, मगर कटुक वचन बोलकर किसी का तिरस्कार नही करता। वह अनीह और अनासक्त रहकर भी सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना मानता है और ससार के जीवो को मैत्री और करुणा प्रदान करता है। वह चलती-फिरती सस्था बनकर जगत् मे आध्यामित्कता की ज्योति प्रज्वलित रखता है।

वैराग्य की क्षणिक तरग मे बहकर साधु बन जाने से काम नही चलता। ऐसा करने वाला व्यक्ति न इधर का रहता है, न उधर का। जिस श्रद्धा और विरक्ति से प्रेरित होकर मनुष्य श्रमणत्व अगीकार करता है, जीवन पर्यन्त उसको स्थायी बनाये रखना साधारण बात नही है। उसके लिए श्रमण को क्षण भर का भी प्रमाद न करके निरन्तर जागृत रहना पडता है। भगवान् ने कहा है—"सुता अमुणी-मुणिणो सया जागरन्ति" अर्थात् जो प्रमाद मे पड जाता है, वह मुनि पद से च्युत हो जाता है, अतएव मुनिजन सदैव जागते रहते हैं। सतत जागृति को बनाये रखने के लिए जैन शास्त्रो मे साधुओ के लिये विविध उपायो का निर्देश किया गया है, जिसका समय की अल्पता से यहाँ उल्लेख नही किया जा रहा है, किन्तु पाच महाव्रत, जो साधुत्व की बुनियाद है, उन पर मैं थोडा-सा प्रकाश डालना आवश्यक समझ रहा हूँ।

अहिंसा महाव्रत

प्रथम अहिसा महाव्रत के अनुसार जैन श्रमण (साधु) "आत्मवत् सव भूतेषु" की उद्घोषणा को जीवन के व्यवहार मे साकार रूप देते हुए लघुतम (छोटे-से-छोटे) प्राणी की भी हिंसा किसी भी उद्देश्य से मनसा-वाचा-कर्मणा न स्वय करता है, न अन्य के द्वारा करवाता है। वह किसी भी हिंसक प्रवृत्ति का अनुमोदन (अच्छा—समझना) भी नही करता है।

जैन दर्शन पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा एवं वनस्पति सभी मे स्वतन्त्र रूप से जीव का अस्तित्व स्वीकार करता है अत अहिंसा का पूर्ण साधक इन प्राणियो की भी हिंसा नही करता। इसी आधार पर जैन साधु मकान, मदिर, मठ, धर्म स्थान आदि बनवाने की किसी भी हिंसक प्रवृत्ति मे भाग नही लेता क्योंकि वहाँ स्पष्ट रूप से पृथ्वी कायादि की हिंसा होती है।

इसी प्रकार कच्चे पानी का उपयोग, आतापना एव भोजन आदि के लिए अग्नि का उपयोग एव गर्मी की उपशान्ति के लिए पखे का उपयोग भी वह नही करता। यहा तक कि बोलते वक्त मुख से निकलने वाली गर्म हवा से

बाहर रहने वाले वायु कायिक जीवो के रक्षार्थ वह खुले मुँह भी नही बोल सकता। इसलिए अहिंसा की पूर्ण साधना के उद्देश्य से अपने मुख पर मुख वस्त्रिका (आठ पट की करीब-करीब सम चौरस कपडे की) रखता ही है ताकि बोलते वक्त निकलने वाली वह हवा उसमे से ठडी होकर छन कर निकले। जिससे किसी प्राणी की हिसा न हो। इसी प्रकार कच्ची (हरी) वनस्पति का स्पर्श भी साधु के लिए वर्जित माना गया है। तात्पर्य यह है कि हिसा जनक सूक्ष्म प्रवृत्ति का भी जैन मुनि के लिए निषेध किया गया है।

सत्य महाव्रत

मन से सत्य सोचना, वाणी से सत्य बोलना तथा काया (शरीर) से सत्य का आचरण करना और मनसा-वाचा-कर्मणा सूक्ष्म असत्य का भी कभी प्रयोग नही करना, न करवाना, न करते हुए का अनुमोदन करना, "सत्य महाव्रत" है। आत्म-साधक पुरुष सत्य को भगवान् मानता है। वह मन-वचन-काया से कदापि असत्य का आचरण नही करता। वह प्रयोजन होने पर परिमित, हितकर, मधुर और निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है। बिना सोचे-विचारे, कठोर, पीड़ा-कारी, मर्मकारी, भेदकारी शब्दो का वह प्रयोग नही करता।

अचौर्य महाव्रत

वैसे ही मनसा-वाचा-कर्मणा अचौर्यव्रत का आराधन है। उसे किसी पत्थर अथवा तिनके की भी आवश्यकता हो, तो वह बिना किसी की अनुमति के ग्रहण नही करता। मकान मालिक अधिकारी की अनुमति के बिना किसी भी मकान में नही ठहरता। यहाँ तक कि बिना अभिभावको की अनुमति के किसी को (दीक्षित) शिष्य नही बना सकता।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

साधक काम वृत्ति और भोगवासना का पूर्ण नियमन करके पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस दुर्धर महाव्रत का पालन करने के लिए अनेक नियमो का कठोरता से पालन करना आवश्यक होता है। इनमे से कुछ इस प्रकार है :—(१) जिस मकान मे स्त्री का निवास हो, उसमे न ठहरना, (२) स्त्री के हाव-भाव-विलास आदि का वर्णन न करना, (३) स्त्री पुरुष का एक आसन पर न बैठना, छोटी-से-छोटी बच्ची का भी स्पर्श न करना, (४) स्त्री के अंगउपागों को स्थिर दृष्टि से न देखना, (५) स्त्री-पुरुष के कामुकता पूर्ण शब्द न सुनना, (६) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जैन श्रमण को शास्त्रकारो ने यहाँ तक निर्देश दिया है कि चाहे सौ या पाँच सौ बहने क्यो न हो, अगर एक

पति	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
भवरलालजी सेठिया	स० २०२६ फा शुक्ला ११	बीकानेर
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३० वै शुक्ला ६	नोखामडी
	" "	"
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३० का शुक्ला १३	बीकानेर
वालचन्दजी जारोली	" २०३० मि शुक्ला ६	भीनासर
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३० मि. शुक्ला ६	भीनासर
" "	" २०३० मा शुक्ला ५	सरदारशहर
तिलोकचन्दजी वरडिया	" २०३० मा शुक्ला ५	सरदारशहर
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३१ जे शुक्ला ५	गोगोलाव
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" २०३१ आ शुक्ला ३	सरदारशहर
" "	" "	"
" "	" "	"
सागरमलजी सहलोत	" २०३१ मा शुक्ला १२	देशनोक
वाल ब्रह्मचारिणी	" "	"
" "	" २०३१ मा शुक्ला १२	देशनोक
" "	" "	"
भवरलालजी मूरा	" २०३२ वै. कृष्णा १३	भीनासर
वाल ब्रह्मचारिणी	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" २०३२ आ शुक्ला ५	देशनोक
लालचन्दजी सुराणा	" २०३२ मि शुक्ला ८	जावरा
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३३ आ शुक्ला ५	नोखामडी
सम्पतलालजी धाडीवाल	" २०३३ आसो. शुक्ला १५	नोखामडी
रतनलालजी ललवाणी	" २०३३ मि शुक्ला १३	नोखामडी
वाल ब्रह्मचारिणी	" २०३४ वै कृष्णा ७	भीनासर
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" २०३४ वै शुक्ला १५	"
शातिलालजी रामेचा	" २०३४ भा कृष्णा ११	मुंबई

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
१२८	श्री मनोरमाजी	रतलाम	चन्दाबाई	कातिलालजी मेहता
१२९.	,, चचलकवरजी	काकेर	रमकूबाई	सूरजमलजी गाधी
१३०.	,, कुसुमकवरजी	निवारी	लक्ष्मीबाई	केवलचन्दजी नाहटा
१३१	,, सुप्रतिभाजी	उदयपुर	लीलाबाई	कन्हैयालालजी बाफना
१३२	,, शान्ताप्रभाजी	बीकानेर	जेठीबाई	पूनमचन्दजी सिरोहिया
१३३	,, मुक्तिप्रभाजी	मोड़ी	सौभागबाई	सूरजमलजी नपावलिया
१३४	,, गुलाबजी	उदासर	घूडीबाई	सम्पतलालजी सेठिया
१३५	,, मधुप्रभाजी	छोटीसादड़ी	सोसरबाई	शान्तिलालजी नागौरी
१३६	,, राजश्रीजी	उदयपुर	सीतादेवी	जीवनसिंहजी कोठारी
१३७.	,, शशिकानाजी	,,	कमलादेवी	मदनलालजी गदिया
१३८.	,, कनकश्रीजी	रतलाम	चन्दाबाई	गौतमचन्दजी फिरोदिया
१३९.	,, सुलभाश्रीजी	नोखामडी	पानबाई	गणेशमलजी बोथरा
१४०	,, निर्मलाश्रीजी	देशनोक	बीराबाई	माणकचन्दजी
१४१	,, चेतनाश्रीजी	कानोड़	मोहनीबाई	मोहनसिंहजी बावेल
१४२.	,, कुमुदश्रीजी	गंगाशहर	सुन्दरदेवी	धूलमलजी बोथरा
१४३.	,, कमलश्रीजी	उदयपुर	बदामबाई	मोतीलालजी कोठारी
१४४.	,, पद्मश्रीजी	महीदपुर	कचनबाई	सौभागमलजी बुरड
१४५	,, अरुणाश्रीजी	पीपलिया	पुष्पाबाई	पारसमलजी छिंगावत
१४६	,, कल्पनाश्रीजी	देशनोक	तुलसीबाई	आनन्दमलजी चूरा
१४७	,, ज्योत्स्नाश्रीजी	गगाशहर	बालादेवी	रामलालजी सेठिया
१४८	,, पकजश्रीजी	बीकानेर	कचनदेवी	लूणकरणजी सुखाणी
१४९.	,, मधुश्रीजी	इन्दौर	पारसबाई	सोहनलालजी सुराणा
१५०	,, पूर्णिमाश्रीजी	बडीसादड़ी	चोसरबाई	ख्यालीलालजी मुणोत
१५१	,, प्रवीणाश्रीजी	मन्दसौर	कलावतीबाई	सागरमलजी पोरवाड
१५२	,, दर्शनाश्रीजी	देशनोक	कमलादेवी	जयचन्दजी छल्लाणी
१५३.	,, वन्दनाश्रीजी	गंगाशहर	आशादेवी	किशनमलजी सोनावत
१५४	,, प्रमोदश्रीजी	ब्यावर	नजरादेवी	रतनलालजी कोठारी
१५५.	,, उर्मिलाश्रीजी	रायपुर	सोनीबाई	नथमलजी झावक
१५६.	,, कांताश्रीजी-सुभद्राजी	बीकानेर	ममालदेवी	किशनचदजी पुंगलिया
१५७.	,, हेमप्रभाश्रीजी	केसिगा	मानीबाई	हुकमीचदजी बरडिया
१५८	,, ललितप्रभाजी	विनोता		भवरलालजी डोसी
१५९	,, बनुमतीजी	अलाय	रतनबाई	पूनमचन्दजी सुकलेचा
१६०.	,, इन्दुप्रभाश्रीजी	बीकानेर	कमलादेवी	केशरीचंदजी बोथरा
१६१	,, ज्योतिप्रभाश्रीजी	गंगाशहर	धापूदेवी	सूरजमलजी छाजेड

पति	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
बालब्रह्मचारिणी	म० २०३८ कार्तिक शुक्ला १२	उदयपुर
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" २०३८ मि शुक्ला १०	हिरण मगरी सै ११
" "	" २०३८ माघ कृष्णा ६	बम्बोरा
" "	" २०३८ चैं कृष्णा ३	अहमदाबाद
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"
" "	" "	"

• • •

निरन्तर ज्ञान एवं संयम की ज्योति प्रज्वलित करना तथा तप की भट्टी मे आत्मा को तपाना होता है।

दीक्षा की सार्थकता का मूल मंत्र है, ज्ञान-आराधना की अदम्य अभीप्सा। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् साधक यदि ज्ञान-साधना मे तल्लीन हो जाता है, तो उसकी साधना का वह कठोर मार्ग अत्यन्त सुगम बन जाता है। मन की उच्छृंखल वृत्तियो का सम्यग् नियोजन करना ही "सयम" है। ज्ञानाराधना मे सम्पूर्ण वृत्तियाँ अपने आप एकाग्र बन जाती है। इस दृष्टि से प्राय: सभी भारतीय दर्शनो मे साधना के अन्यान्य आयामो मे ज्ञान को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ है। दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर ने तो ज्ञान की महत्ता का विवेचन करते हुए आगम के पृष्ठो पर कई बार कहा है, "पढमं नाण तओ दया", "णाण नरस्स सारं"। अर्थात् पहले ज्ञान फिर दया। मानव-जीवन का सार ज्ञान है।

मानव जीवन की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अग ज्ञान है। ज्ञान के अभाव मे चारित्र की अशोभनीयता बताते हुए कहा है—

"नाणेण विणा ण हुन्ति चरण गुणा।"

साधना के क्षेत्र मे ही नही, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे ज्ञान की वैसी ही उपयोगिता है, जैसी जीने के लिए पानी की अथवा प्रकाश की। कदाचित् प्रकाश के बिना तो फिर भी जीवन-क्षेत्र मे कुछ किया जा सकता है, किन्तु ज्ञान-प्रकाश के अभाव मे जीवन का विकास की ओर अग्रसर होना असम्भव है।

ज्ञान शब्द का सीधा-सा अर्थ है—बोध-जानकारीरूप व्यापार। अन्यान्य क्रियाओ की अपेक्षा जीवन मे ज्ञान का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान-दीप के प्रकाश से ही मानव अपने हित-अहित एवं हानि-लाभ की गुत्थियाँ सुलझाता है। अहितकर एव दु खजनक प्रवृत्तियो को छोडकर हितकर एवं कल्याण-प्रद वृत्तियो के सम्पादन की क्षमता अर्जित करता है। जीवन को अन्तरग और वहिरग रूप से पवित्र वनाने की दिव्य प्रेरणा एव दिशा बोध भी तो ज्ञान से उपलव्ध होता है। इसी वात को स्पष्ट करते हुए गीता मे श्रीकृष्ण ने एक बार अर्जु न के समक्ष कहा था—

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (अ० ४-३८) अर्थात् ससार मे ज्ञान के सदृश और कोई पवित्र वस्तु नही है।

ज्ञान की उपादेयता को सर्वोत्तम सिद्ध करते हुए उसी अध्याय मे कहा गया है—

समझदार (भाई) पुरुष वहाँ नही है, तो उन महिलाओ से जैन साधु धर्मचर्चा भी नही कर सकता। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए अन्यान्य भी अति सूक्ष्मतम मर्यादाएँ बनाई गई है जिसकी विस्तृत विवेचना यहाँ आवश्यक नही है।

अपरिग्रह महाव्रत

जैन साधु अपरिग्रह का पूर्ण आदर्श होता है। परिग्रह तथा ममत्व से वह सर्वदा अलिप्त रहता है। सयम निर्वाहार्थ मर्यादित अल्पतम वस्त्र, पात्रादि उपकरण के अतिरिक्त सभी परिग्रहात्मक पदार्थो को त्याग देता है। रुपये, पैसे, टिकिट, लिफाफा, पोस्ट कार्ड आदि अर्थ सम्बन्धी मुद्राएँ न वह स्वय रख सकता है न अपनी निश्रिति मे किसी से रखवाता है और न रखने वाले का अनुमोदन करता है। वह किसी भी प्रकार के चन्दे-चिट्ठे आदि मे भाग नही लेता। सोना, चादी, तावा, पीतल, लोहा आदि धातुओ से निर्मित उपकरण भी नही रखता। तात्पर्य यह है कि अपरिग्रह के पूर्ण आदर्श के लिए जैन श्रमण (साधु) ऐसी किसी भी प्रवृत्ति मे भाग नही लेता, जिससे अर्थ-सम्बन्धी समस्याओ मे उलझना पडे।

इस प्रकार की विवेचना के अनन्तर अभिभावको, उपस्थिति जन-मेदनी एव सघ प्रमुखो से अनुमति प्राप्त कर विधि पूर्वक दीक्षा मन्त्रोच्चार के साथ वैरागीजी को भागवती दीक्षा (निर्ग्रन्थ प्रवज्या) प्रदान की गई। अब वैरागी श्री नानालालजी "मुनि श्री नानालालजी" के रूप मे बदल गए और युवाचार्यश्री के पुनीत कर कमलो द्वारा प्रथम शिष्यत्व का गौरव प्राप्त कर धन्य-धन्य हो गये। जैन सस्कृति के अनुसार वे द्वितीय जीवन मे प्रविष्ट हो गये, जहाँ सारा दृष्टि-बिन्दु ही बदल जाता है। ससार वही, देह भी वही, जीवन भी वही, किन्तु दृष्टि-बिन्दु मे आमूल परिवर्तन हो जाता है। अब उनकी सारी दृष्टि साधना पर केन्द्रित हो जाती है।

इस प्रकार उदीयमान यौवन के उष काल मे ही अर्थात् अठारह वर्ष की आयु मे ही बालब्रह्मचारी व्रत मे सुशोभित होते हुए आपने युगप्रवर्तक, आत्म ज्ञाननिधि ज्योतिर्धर पूज्य प्रवर श्री जवाहरलालजी म० सा० के शासन मे प्रशान्त आत्मा, जिन शासन "भिक्खु" जीवन, अणगार धर्म दीक्षा अगीकार की और दीर्घ तपस्वी भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित "भिक्खु" धर्म के अधिष्ठाता बन गये।

• • •

आपकी ज्ञान-आराधना का प्रारम्भ सर्व प्रथम थोकडो से हुआ, अर्थात् अध्ययन के प्रथम चरण मे थोकडो एव शास्त्रो को कण्ठस्थ करना प्रारम्भ कर दिया गया। राजस्थानी कहावत "नाणो अण्टे—ज्ञान कण्ठे" के अनुसार तत्कालीन शिक्षा–पद्धति कण्ठाग्र शिक्षा पद्धति थी। पूरे शास्त्र के शास्त्र कण्ठाग्र कर लिए जाते थे। यही कारण है कि उस समय कण्ठाग्र शक्ति बडी तीव्र होती थी। इसके लिए तीव्र मेधा एवं तीक्ष्ण प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। आज मुद्रण व्यवस्था के बढ जाने से मेधा पगु बन गई है। एक वाक्य भी कण्ठस्थ करना दुरुह सा हो गया है।

हमारे चरितनायक ने उस समय अपनी तीव्र मेधा से अल्प समय मे ही लगभग १५०-२०० थोकडे (विशाल शास्त्रीय ज्ञान का सक्षिप्त वर्गीकरण) कण्ठस्थ कर लिए एव सम्पूर्ण "दर्शवैकालिक" व "सुख विपाक सूत्र" और "उत्तराध्ययन" के कुछ अध्ययन एव "तत्त्वार्थ सूत्र" जैसे गूढ ग्रन्थो को कण्ठाग्रता पूर्वक हृदयगम कर लिया। उसी कालावधि मे भक्तामर, चिन्तामणि पार्श्वनाथ, आदि कई स्रोत कण्ठस्थ कर उनका दैनिक पाठ प्रारम्भ कर दिया गया, जो आज तक आपके जीवन की दिनचर्या का अभिन्न अग बना हुआ है।

चू कि आपका व्यावहारिक (स्कूली) अध्ययन तत्कालीन साधनाभाव वाले युग मे द्वितीय-तृतीय श्रेणी तक ही हुआ था, अत. कुछ सैद्धातिक अध्ययन के उपरान्त शिक्षा के द्वितीय चरण मे व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। अपने प्रबुद्ध एव मेधावी शिष्य की विशेष योग्यता एव क्षमता को देखते हुए युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० के लिए यह आवश्यक हो गया कि उसकी बौद्धिक ऊर्जस्विता का सही उपयोग किया जावे। तदनुसार हिन्दी के प्रारम्भिक व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान के पश्चात् सस्कृत के उद्भट् विद्वान् श्री अम्बिकादत्तजी ओझा के सान्निध्य मे आपका सस्कृत व्याकरण एव साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम आपने सस्कृत व्याकरण मे प्रवेश किया और तत्कालीन अध्ययन-पद्धति के अनुसार कई वर्षो तक उसकी सूक्ष्मता मे गहरे पैठकर उसे हृदयगम करते रहे। लघु सिद्धान्त कौमुदी से प्रारम्भ कर मध्य सिद्धान्त कौमुदी, सिद्धान्त कौमुदी, प्रौढ मनोरमा एव फक्किका रत्न मजूसा, जैसे गूढ टीका-ग्रन्थो को कण्ठाग्रता पूर्वक हृदयगम किया अर्थात् पाणिनी की अष्टाध्यायी को कण्ठस्थ कर उसकी अधिकाश टीकाओ मे सूक्ष्मतापूर्वक अवगाहन कर साहित्य के क्षेत्र मे पदन्यास किया और हितोपदेश, रघुवंश-महाकाव्य से लेकर भट्टिकाव्य, अभिज्ञान शाकुन्तल, कादम्बरी, साहित्य-दर्पण, काव्यानुशासन, आदि कई साहित्यिक ग्रन्थो का अध्ययन कर कतिपय छन्द शास्त्रो मे प्रावीण्य प्राप्त कर लिया।

तक नही गई थी । वह तो अध्ययन काल था, किन्तु आज इतनी उच्च गरिमामय स्थिति पर पहुँच जाने के बाद भी उनका अन्त:करण प्रसिद्धि की कामना से कोसो दूर रहता है । यश और कीर्ति रूपी मधुकर उनके चरण-सरोजों की मकरन्द लेने के लिए स्वय लालायित रहते है । अर्थात् एक तरफ जहाँ दिग्गज सतवर्ग प्रसिद्धि की कामना के लिए राजनेताओ और मत्रियो के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते है, वहाँ आचार्य देव के चरणो मे वे स्वय भागे आते है । मुझे ऐसे कई प्रसग स्मरण आ रहे है, जहाँ राजनेताओ के मध्य प्रवचनों के लिए आपको निमन्त्रण मिले, किन्तु आपने स्पष्ट एवं सचोट उत्तर दिया कि वे यहाँ पहुँच कर भी तो हमारे विचार सुन सकते है, आदि ।

सरदार शहर के एक निपुण राजनीतिज्ञ एव गहरे चितक श्री त्रिवेदीजी की वह चर्चा बरबस मुझे स्मरण हो आती है, जिसमे उन्होने कहा था कि आज "धर्म नीति" हारती हुई और "राजनीति" जीतती हुई परिलक्षित हो रही है, क्योकि एक युग था जब राजा-महाराजा, सन्त-महात्माओ एव धर्म-गुरुओ के इर्द-गिर्द घूमते थे किन्तु आज धर्माचार्य स्वयं राजनेताओ के बगलो पर चक्कर लगा रहे है ।

इस प्रकार चरितनायक का वह अध्ययन काल पूर्ण एकाग्रता का काल रहा है । "उत्तराध्ययन सूत्र" मे उल्लिखित अध्ययन के बाधक शत्रुओ को तो आपने कभी पास मे फटकने भी नही दिया । शिक्षा के बाधक अथवा अवरोधक तत्त्वो का विवेचन करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—

"अह पचेहि ठाणेहिं जेहि सिक्खा न लब्भइ ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सेण य ।।

पाँच ऐसे प्रमुख कारण है, जिनके द्वारा कोई शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति नही कर सकता है । सबसे पहला कारण है स्तम्भ अर्थात् अभिमान अथवा अहकार । यह एक ऐसा शत्रु है, जो शिक्षा-द्वार के लिए अर्गला का कार्य करता है । जब कुछ ही अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी मे यह "अह" पैदा होने लग जाता है कि उसने बहुत पढ लिया है तो आगे के अध्ययन के द्वार उसके लिए स्वत. ही अवरुद्ध हो जाते है । जब स्वय का अहकार गलता है तभी कुछ सीखा जा सकता है ।

ज्ञान-उपलब्धि का बाधक दूसरा कारण है "क्रोध ।" क्रोध के लिए तो ज्ञानियो ने कहा है कि यह व्यक्ति को अन्धा बना देता है और जब व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से अन्धा हो जाता है तो ज्ञान के द्वार तो स्वत. ही बन्द हो जाते हैं, क्योकि क्रोध करने वाले व्यक्ति का मानस हर समय तनावपूर्ण स्थिति मे रहता है और ज्ञान-अर्जन जैसी उसकी मन.स्थिति बन ही नही पाती है ।

साधना के पथ पर

जैसा कि पूर्व मे सकेत किया जा चुका है यहाँ निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या का अर्थ परिवेश-परिवर्तन ही नही है। यहाँ दीक्षा से तात्पर्य जीवन परिवर्तन से है। निश्चय ही दीक्षा प्रक्रिया मे वेश परिवर्तन, सिर-मुण्डन, गृह-परित्याग सव कुछ होता है, किन्तु दीक्षा का सर्वस्व यही नही है, ये तो कुछ वाह्य क्रियाये मात्र है, जो आभ्यन्तरिक परिवर्तन की परिचायिका हैं। केश-मुन्डन अथवा परिधान-परिवर्तन तभी सार्थक होता है, जव राग-द्वेष की जटाये भी मुण्डित हो, तृष्णा की अदम्य लिप्सा और भोगो के प्रति आसक्ति के भाव निर्मूल हो जावे। भोगेच्छु कभी भी दीक्षा जैसे पवित्र मार्ग का पथिक नही वन सकता। जो अन्तर्मन से मुमुक्षु हो और साधना मे निरन्तर गतिशील रहने के दृढतर सकल्प लिए हुए हो, वे ही व्यक्ति दीक्षा को सवल वनाकर लक्ष्य-सिद्धि तक पहुँच सकते है। दीक्षा का अर्थ है अचचल मन से मुक्ति-मार्ग पर सतत गति का शुभारम्भ। दीक्षा की सार्थकता इसी मे निहित है कि वह साधना के पथ को ज्योतिर्मय कर दे। दीक्षा की सार्थकता तभी है जव उसमे वैराग्य की वाती हो और विवेक का तेज हो और तभी दीक्षा के प्रदीप से ससार को भी आलोकित किया जा सकता है।

श्रद्धेय चरितनायक दीक्षा के इसी रूप का साक्षात्कार करना चाहते थे। ऐसी दीक्षा प्राप्ति के लिए उनका मन छटपटा रहा था, किन्तु "अवश्य भाविनो भावा भवति महतामपि" अर्थात् जो होने का है वह होकर रहता है, इस तथ्य के अनुसार उन्होंने अपनी अन्वेषणीय तीक्ष्ण प्रज्ञा से योग्यतम गुरु को प्राप्त कर लिया और उनका साधना-जीवन, निरन्तर प्रवहमान सरिता की तरह अवाध गति से वढने लगा। उनकी चेतना "ज्ञान, दर्शन, चारित्र" की आराधना की समुचित मन स्थिति प्राप्त कर, आनन्दानुभूति करने लगी। प्रमादजन्य आलस्य का परित्याग कर पूरी शक्ति के साथ वे ज्ञान-आराधना, सयम-साधना एव तप-आराधना मे सलीन हो गये।

ज्ञानाराधना

जैसा कि पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है, निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या, जैन दीक्षा, केवल परिवेश परिवर्तन नही है, वल्कि सम्पूर्ण जीवन का परिवर्तन है। इसमे

तक नही गई थी । वह तो अध्ययन काल था, किन्तु आज इतनी उच्च गरिमा-मय स्थिति पर पहुँच जाने के बाद भी उनका अन्त करण प्रसिद्धि की कामना से कोसो दूर रहता है । यश और कीर्ति रूपी मधुकर उनके चरण-सरोजो की मकरन्द लेने के लिए स्वय लालायित रहते है । अर्थात् एक तरफ जहाँ दिग्गज सतवर्ग प्रसिद्धि की कामना के लिए राजनेताओ और मत्रियो के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते है, वहाँ आचार्य देव के चरणो मे वे स्वय भागे आते है । मुझे ऐसे कई प्रसग स्मरण आ रहे है, जहाँ राजनेताओ के मध्य प्रवचनो के लिए आपको निमन्त्रण मिले, किन्तु आपने स्पष्ट एवं सचोट उत्तर दिया कि वे यहाँ पहुँच कर भी तो हमारे विचार सुन सकते है, आदि ।

सरदार शहर के एक निपुण राजनीतिज्ञ एव गहरे चितक श्री त्रिवेदीजी की वह चर्चा बरबस मुझे स्मरण हो आती है, जिसमे उन्होने कहा था कि आज "धर्म नीति" हारती हुई और "राजनीति" जीतती हुई परिलक्षित हो रही है, क्योकि एक युग था जब राजा-महाराजा, सन्त-महात्माओ एव धर्म-गुरुओ के इर्द-गिर्द घूमते थे किन्तु आज धर्माचार्य स्वय राजनेताओ के बगलो पर चक्कर लगा रहे है ।

इस प्रकार चरितनायक का वह अध्ययन काल पूर्ण एकाग्रता का काल रहा है । "उत्तराध्ययन सूत्र" मे उल्लिखित अध्ययन के बाधक शत्रुओ को तो आपने कभी पास मे फटकने भी नही दिया । शिक्षा के बाधक अथवा अवरोधक तत्त्वो का विवेचन करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—

"अह पचेहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्भइ ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सेण य ।।

पाँच ऐसे प्रमुख कारण है, जिनके द्वारा कोई शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति नही कर सकता है । सबसे पहला कारण है स्तम्भ अर्थात् अभिमान अथवा अहकार । यह एक ऐसा शत्रु है, जो शिक्षा-द्वार के लिए अर्गला का कार्य करता है । जब कुछ ही अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी मे यह "अह" पैदा होने लग जाता है कि उसने बहुत पढ लिया है तो आगे के अध्ययन के द्वार उसके लिए स्वत ही अवरुद्ध हो जाते है । जब स्वय का अहकार गलता है तभी कुछ सीखा जा सकता है ।

ज्ञान-उपलब्धि का बाधक दूसरा कारण है "क्रोध ।" क्रोध के लिए तो ज्ञानियो ने कहा है कि यह व्यक्ति को अन्धा बना देता है और जब व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से अन्धा हो जाता है तो ज्ञान के द्वार तो स्वत. ही बन्द हो जाते है, क्योकि क्रोध करने वाले व्यक्ति का मानस हर समय तनावपूर्ण स्थिति मे रहता है और ज्ञान-अर्जन जैसी उसकी मन स्थिति बन ही नही पाती है ।

यथैधासि समिद्धो अग्नि भस्मसात्कुरुते अर्जुन ।
ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा ।।४/३७।।

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण ईंधनो को भस्ममय बना देती है, वैसे ही ज्ञान-अग्नि सर्व कर्मों को भस्मीभूत कर देती है । इस तथ्य को जैनाचार्यों ने बड़े मौलिक रूप मे कहा है—

"ज अन्नाणि कम्म खवेई बहूहिं वासकोडिहिं,
त नाणी तिहिं गुतो खवेई उसासमितेहिं ।"

अर्थात् जिन कर्मों को अज्ञानी आत्मा करोडो वर्षों मे भी क्षय नही कर पाती, उसे ज्ञानी आत्मा क्षण मात्र मे समाप्त कर सकती है ।

तात्पर्य यह है कि ज्ञान एक ऐसा प्रकाश है, जिसके अभाव मे आँख होने पर भी व्यक्ति चक्षुहीन ही रहता है ।

ज्ञान-वारिधि 'श्री भगवती सूत्र' मे तो प्रभु महावीर ने यहाँ तक कह दिया कि ज्ञान के अभाव मे किए गए प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही, दुष्प्रत्याख्यान कहलाते हैं । इसी बात को बहुत आगे बढाकर 'उतराध्ययन सूत्र' मे यहाँ तक कह दिया गया कि—

"मासे-मासे तु जो बालो कुसग्गेण तु भु जए ।
न सो सुअक्खाय धम्मस्स कल अग्घई सोलसिं ।"

अर्थात् एक साधक एक महीने तक निराहार रहकर पारणक के दिन कुशाग्र जितना अन्न ग्रहण कर पुन महीने भर का निराहार तप कर लेता है और उसकी इस उग्र साधना का क्रम वर्षों तक भी चलता रहे, किन्तु यदि वह "बाल" अर्थात् अज्ञानी है, तो ज्ञान के अभाव वाला उसका वह आचरण उसे मोक्ष मार्ग मे एक कदम भी आगे नही बढाता है । 'भगवती सूत्र' एवं 'उत्तराध्ययन सूत्र" के इस दृष्टिकोण को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि साधक को जब तक जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर आदि तत्त्वों का परिबोध नही हो जाता, तब तक उसकी साधना सम्यक् नहीं कहलाती ।

ज्ञान की इस अलौकिक महत्ता को लक्ष्य मे रखते हुए, श्रद्धेय चरितनायक ने भी अपनी साधना के तीन कोण निश्चित कर लिए । ज्ञान-आराधना, संयम-साधना एव सेवा-भावना । संयम-पथ पर पद-चरण करते ही तीनों ही प्रवृत्तियाँ इनके जीवन का अभिन्न अग बन गईं ।

तक नही गई थी । वह तो अध्ययन काल था, किन्तु आज इतनी उच्च गरिमा-मय स्थिति पर पहुँच जाने के वाद भी उनका अन्त करण प्रसिद्धि की कामना से कोसो दूर रहता है । यश और कीर्ति रूपी मधुकर उनके चरण-सरोजों की मकरन्द लेने के लिए स्वय लालायित रहते है । अर्थात् एक तरफ जहाँ दिग्गज सतवर्ग प्रसिद्धि की कामना के लिए राजनेताओ और मत्रियो के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते है, वहाँ आचार्य देव के चरणो मे वे स्वय भागे आते है । मुझे ऐसे कई प्रसग स्मरण आ रहे है, जहाँ राजनेताओ के मध्य प्रवचनो के लिए आपको निमन्त्रण मिले, किन्तु आपने स्पष्ट एव सचोट उत्तर दिया कि वे यहाँ पहुँच कर भी तो हमारे विचार सुन सकते है, आदि ।

सरदार शहर के एक निपुण राजनीतिज्ञ एव गहरे चितक श्री त्रिवेदीजी की वह चर्चा बरबस मुझे स्मरण हो आती है, जिसमे उन्होने कहा था कि आज "धर्म नीति" हारती हुई और "राजनीति" जीतती हुई परिलक्षित हो रही है, क्योकि एक युग था जब राजा-महाराजा, सन्त-महात्माओ एव धर्म-गुरुओ के इर्द-गिर्द घूमते थे किन्तु आज धर्माचार्य स्वय राजनेताओ के वगलो पर चक्कर लगा रहे है ।

इस प्रकार चरितनायक का वह अध्ययन काल पूर्ण एकाग्रता का काल रहा है । "उत्तराध्ययन सूत्र" मे उल्लिखित अध्ययन के वाधक शत्रुओ को तो आपने कभी पास मे फटकने भी नही दिया । शिक्षा के वाधक अथवा अवरोधक तत्त्वो का विवेचन करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—

"अह पचेहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्भइ ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सेण य ।।

पाँच ऐसे प्रमुख कारण है, जिनके द्वारा कोई शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति नही कर सकता है । सबसे पहला कारण है स्तम्भ अर्थात् अभिमान अथवा अहकार । यह एक ऐसा शत्रु है, जो शिक्षा-द्वार के लिए अर्गला का कार्य करता है । जब कुछ ही अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी मे यह "अह" पैदा होने लग जाता है कि उसने बहुत पढ लिया है तो आगे के अध्ययन के द्वार उसके लिए स्वतः ही अवरुद्ध हो जाते है । जब स्वय का अहकार गलता है तभी कुछ सीखा जा सकता है ।

ज्ञान-उपलब्धि का बाधक दूसरा कारण है "क्रोध ।" क्रोध के लिए तो ज्ञानियो ने कहा है कि यह व्यक्ति को अन्धा बना देता है और जब व्यक्ति वौद्धिक दृष्टि से अन्धा हो जाता है तो ज्ञान के द्वार तो स्वत. ही बन्द हो जाते है, क्योकि क्रोध करने वाले व्यक्ति का मानस हर समय तनावपूर्ण स्थिति मे रहता है और ज्ञान-अर्जन जैसी उसकी मन स्थिति बन ही नही पाती है ।

अध्ययन की एकाग्रता

अध्ययन-क्षेत्र मे व्याकरण और उसमे भी सिद्धान्त-कौमुदी और फक्किकाओं का अध्ययन अत्यन्त दुरुह माना गया है। उसमे चित्त का स्थिर होना नितान्त कठिन है एव लोहे के चने चवाने के समान दुष्कर है। किन्तु हमारे चरितनायक विना किसी ऊब के वर्षो तक उसकी जटिलताओ को चीरते हुए प्रगति की ओर वढते रहे। यही कारण है कि आपकी तत्कालीन अध्ययन-एकाग्रता वहुत अधिक प्रसिद्ध हो गई थी।

उस अध्ययन-काल मे जहाँ-जहाँ भी आपका प्रवास एव चातुर्मास रहा, वहाँ-वहाँ के प्रमुख-प्रमुख लोग आज भी कहते हैं कि स्वर्गीय आचार्य देव के साथ आपश्री (चरितनायक) के विराजने का हमे कुछ भी पता नही लगता था। आप प्राय एकान्त मे अध्ययन निरत ही पाये जाते। वडी कठिनाई से कोई भाई ढूंढकर यदि पहुँच जाता तो आप "दया पालो" कहकर फिर अध्ययन मे रत हो जाते। यदि कोई कुछ समय के लिए समीप वैठ जाता तो "और कुछ पूछना है" इतने शब्द और उच्चरित कर पुन अध्ययन मे तल्लीन हो जाते। इस अध्ययन सम्बन्धी एकाग्रता के कारण तत्कालीन श्रावक वर्ग मे प्राय. एक धारणा सी वन गई कि "ये महाराज तो कुछ वोलते ही नही हैं, आगे क्या करेंगे ?" किन्तु लोग प्रभु महावीर की दिव्य ज्ञान की उपलब्धि के पूर्व की मौन साधना को भूल जाते है। किसी ज्ञानी ने कहा "अज्ञान मुखर है, ज्ञान मौन है।" साधारणतया होता भी यही है। आज हम देखते हैं, इधर-उधर की कुछ पुस्तके पढकर अथवा कुछ छन्दावलियाँ कण्ठस्थ करके लोग ज्ञानार्जन से विरत होकर प्रसिद्धि की प्रतिस्पर्धा मे उतर जाते है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानव मन की गहरी भूख भी है कि वह येनकेन प्रकारेण प्रसिद्धि के लिए दौड लगाये। मेरा कई ऐसे मुनियों से मिलने का प्रसग आया है जो प्रसिद्ध साहित्यकार एव दिग्गज विद्वान् कहलाते हैं किन्तु दो-चार सैद्धान्तिक प्रश्न पूछ लेने पर विद्वत्ता न जाने कहाँ छू-मन्तर हो जाती है। २-४ ग्रन्थो के नाम लिये और उनके अध्ययन के विषय में कुछ पूछा तो उत्तर मिला—"इन ग्रथो को देखने का अभी काम नही पडा है". आदि।

तात्पर्य यह है कि आज अधिकाश श्रमण वर्ग १-२ वर्ष की अल्प दीक्षा-पर्याय एव लघु वय मे ही प्रसिद्धि की धुन मे लग जाता है। फलस्वरूप वहाँ ठोस सैद्धान्तिक अध्ययन प्राय. नहीं बन पाता है और 'थोथा चना वाजे घणा' की कहावत ही चरितार्थ होती है।

किन्तु श्रद्धेय चरितनायक इसके एकदम अपवाद रहे हैं। उनकी की सम्पूर्ण एकाग्रता अध्ययन मे ही केन्द्रित थी। प्रसिद्धि की भूख

पहले जो भी साधु मेरे साथ रहते, मेरे क्रोध करने पर वे भी क्रोधित हो उठते, फलत: मेरी क्रोधाग्नि ईंधन पाकर द्विगुणित भभक उठती। किन्तु इसके साथ मैने कई बार क्रोध किया, यह कभी उत्तेजित नही हुआ। इसके विपरीत शान्ति से कहता "गुरुदेव, गलती हो गई होगी, अब ध्यान रखू गा, आदि।"

शास्त्र मे वर्णित—

चिताणुया लहुदक्खो ववेया,
पसायए तेहु दुरासयपि। उ० १–१३

चतुर एव विनीत शिष्य क्रोधी प्रकृति के गुरु को भी प्रसन्न करके बदल देता है। यह वाणी इन पर अक्षरशः घटित होती है।

युवाचार्यश्री अपने प्रथम एव अल्प दीक्षा पर्याय वाले शिष्य की भूरि-भूरि प्रशसा सुनकर कितने आनदित एव पुलकित हुए होगे, यह कल्पना के बाहर, अनुभूति का ही विषय है।

तात्पर्य यह है कि क्रोध को हमारे चरितनायक ने यौवनावस्था तक पहुँचने के पूर्व ही इस प्रकार परास्त कर दिया, जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट् सेना की एक सामान्य टुकडी को, एक हुँकार से ही परास्त कर देता है। यही कारण है कि आज इतने बडे शासन की बागडोर सम्भालते हुए कितने ही सन्त-सतियों एव श्रावक-श्राविकाओ के कई प्रकार के प्रसग सामने आने पर भी, आपके चेहरे पर कोई आवेश अथवा क्रोध की शिकन भी नही देख सकता है।

एक प्रसंग

एक प्रसग स्मृति-पटल पर उभर रहा है। घटना उस समय की है जब चरितनायक आचार्य पद पर आसीन हो रतलाम एव इन्दौर के गौरवशाली ऐतिहासिक चातुर्मास पूर्ण कर छत्तीसगढ सघ की आग्रह भरी विनती पर छतीसगढ प्रान्त की ओर पधार रहे थे। मार्ग मे कुछ दिन बैतूल विराजना हुआ। वहाँ अमरावती (बैतूल से ११० मील) से समाज के प्रतिष्ठित श्रावक श्री जवाहरलालजी मुणोत अपने कुछ साथियो के साथ दर्शनार्थ उपस्थित हुए। आचार्य श्री बैतूल गज मे गोठीजी के मकान की दूसरी मजिल पर ठहरे हुए थे। रात्रि मे नित्य प्रति की तरह ज्ञान-चर्चा का दौर आरम्भ हुआ। एक बन्धु ने, ध्वनिवर्धक यंत्र साधुमर्यादा के अनुकूल है या प्रतिकूल, इस सदर्भ मे प्रश्न प्रस्तुत किया। इस पर श्री मुणोतजी खुलकर चर्चा करने लगे। लगभग तीन घण्टे तक तर्क-वितर्क चलता रहा। मुणोतजी आचार्य देव के समक्ष कुछ उत्तेजनापूर्ण शब्दावली का भी प्रयोग करते चले जा रहे थे। समीपस्थ हम सन्तो एव श्रावको को भी उत्तेजना आ रही थी कि एक आचार्य के समक्ष कैसे

तीसरा किन्तु महत्त्वपूर्ण कारण है "प्रमाद"। प्रमाद, व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में गति नहीं करने देता है। प्रमाद का वैसे सीधा सा अर्थ होता है "आलस्य" किन्तु यही अर्थ यहाँ अपेक्षित नहीं है। शास्त्रकारों ने इसकी बड़ी सूक्ष्म विवेचना करते हुए इसे पाँच भेदों में विभक्त किया है—मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। इन पाँचों दुर्गुणों की उपस्थिति, मात्र ज्ञान के ही नहीं, अपितु जीवन-विकास के सभी मार्गों को रोक देती है।

चौथे और पाँचवे कारण क्रमश. रोग एवं आलस्य कहे गये हैं। मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से रुग्ण व्यक्ति चाहते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता है और आलस्य तो जीवन-विकास का शत्रु है ही। आलसी व्यक्ति तो न कुछ अर्जन कर सकता है और न सुखपूर्वक जी ही सकता है।

हमारे चरितनायक वैसे तो बचपन से ही इन दुर्गुणों से दूर रहे हैं, किन्तु संयम अंगीकार करने के पश्चात् तो इसकी हेयता को उन्होंने पूरा आत्मसात कर लिया। रोग का तो जहाँ तक प्रश्न है वह कर्म की स्थिति पर आधारित है, किन्तु अन्य अहंकार आदि चार दुर्गुणों पर तो व्यक्ति का अपना नियन्त्रण हो सकता है।

विनयशीलता और विनम्रता की स्रोतस्विनी ने तो आचार्यश्री के व्यावहारिक जीवन को इस भाँति धोया और सींचा है कि वहाँ अहंकार के इतिहास की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। क्रोध पर नियन्त्रण करने के विषय में वे अपने जीवन के शैशव में ही कितने सचेष्ट थे, यह उनके भागीदार के साथ हुई विचारणा के उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है।

साधना में प्रवेश पाने के पश्चात् तो क्रोध पर विजय के लिए उनका जीवन कसौटी ही बन गया था। दीक्षा लेते ही गुरुदेव युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने आपको कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने जब आपको प्रथम बार स्वतन्त्र चातुर्मास एवं विचरण के लिए अपने से अलग किया, तो ऐसे सन्तों की सेवा में भेज दिया, जहाँ उनकी क्रोध-प्रकृति के कारण अन्य सन्तों का निभना ही कठिन था। आपश्री ने उनकी अनन्य भाव से सेवा की और उनके स्वभाव को ही बदल दिया। आप अपनी उस परीक्षा में पूर्ण रूपेण उत्तीर्ण हुए और जब पुन. युवाचार्यश्री की सेवा में पहुँचे तो वे सन्त जो चरितनायक की सेवा भावना एवं अक्रोध वृत्ति के कारण अपने पूर्व स्वभाव से बदल चुके थे युवाचार्यश्री से कहने लगे "गुरुदेव, इतनी बड़ी दीक्षा पर्याय में मैंने ऐसा साधु कहीं देखा नहीं। यह साधु क्या है, शासन का होनहार रत्न है। दीक्षा की इस अल्प अवधि में ही इसने कितना बड़ा चमत्कार कर दिखाया, मेरे जैसे क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति से सम्यक् निर्वाह करके इसकी शान्त प्रकृति ने मुझे बहुत कुछ सोचने को बाध्य कर दिया है।'

ज्ञान-अवरोधक तीसरा शत्रु है—"प्रमाद"। प्रमाद के विषय मे कहा जा चुका है कि वह मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा के भेद से पाँच प्रकार का है। एक अच्छा विद्यार्थी जब तक इन दुर्गुणों से बचकर अप्रमत्त नही बन जाता, विद्यार्जन के क्षेत्र में गति नही कर सकता है। महान् नीति ग्रन्थ "हितोपदेश" मे कहा गया है कि—

काकचेष्टा बको ध्यान, श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थिनः पञ्च लक्षणम्॥

अर्थात् जो काक की तरह सतत चेष्टावान, बक के समान एकाग्रचित्त, श्वान की तरह कम निद्रावाला, अल्पाहारी एवं स्वादिष्ट तथा गरिष्ठ खान-पान, रहन-सहन आदि सुख का त्याग करने वाला है, वही विद्यार्थी जीवन मे कुछ अर्जन कर सकता है।

हमारे श्रद्धेय चरितनायक उक्त शात्रोक्त प्रमाद के भेद-रूप दुर्गुणो से कितने दूर थे, एव "हितोपदेश" मे प्रदर्शित विद्यार्थी के लक्षणो का उनमे कितना समन्वय था, उनके जीवन की सतत जागरूकता इसे स्पष्ट कर देती है।

मद, विषय एव कषाय के विषय मे तो पहले कुछ लिखा ही जा चुका है। निद्रा और विकथा का जहाँ तक प्रश्न है वे प्रारम्भ से ही अल्प निद्रा एव चमक निद्रा वृत्ति वाले रहे है। आज भी जरासी किसी के पैरो की आहट हुई नही कि उठ खडे होते है। विकथा एव हँसी मजाको से ये कितने दूर थे, यह अल्प-भाषिता के प्रकरण से ज्ञात हो ही जाएगा। अल्पाहारित्व की प्रवृत्ति का बोध तो पाठको को पूर्वोल्लिखित आपके द्वारा आचार्यवर्य श्रीमज्जवाहर के साथ की गई प्रतिस्पर्धा से ही हो जाना चाहिये। सुख-त्यागी का गुण तो वैसे ही जैन श्रमण का अभिन्न अग होता है। किन्तु आप मे तो यह गुण उस समय इतना प्रसिद्ध रहा है कि आप अपने पूरे विद्यार्थी जीवन मे इतने अल्प वस्त्रो से ही अपना निर्वाह करते थे कि अच्छे-अच्छे श्रावक आज भी कहा करते है कि आचार्यश्री (चरितनायक) उस समय एक तप्पड़ बिछा लेते और कपडे धोते समय अल्प वस्त्र होने के कारण उसी तप्पड को शरीर पर लपेट लेते, अर्थात् कठोरतम शीतकाल मे भी एक चोल पट्टक, तप्पड एवं १–२ चादरो मे ही अपना निर्वाह कर लेते थे।

शास्त्रोल्लिखित शिक्षा के बाधक तत्त्वो मे चौथा और पाँचवा है, रोग और आलस्य। रोग के विषय मे तो लिखा ही जा चुका है कि वह अधिकाशतः अपने-अपने कर्मो पर आधारित है, किन्तु आलस्य का जहाँ तक प्रश्न है, वह अपने द्वारा पोषित वृत्ति होती है।

चरितनायक के जीवनगत उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही

तीसरा किन्तु महत्त्वपूर्ण कारण है "प्रमाद"। प्रमाद, व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में गति नहीं करने देता है। प्रमाद का वैसे सीधा सा अर्थ होता है "आलस्य" किन्तु यही अर्थ यहाँ अपेक्षित नहीं है। शास्त्रकारों ने इसकी बड़ी सूक्ष्म विवेचना करते हुए इसे पाँच भेदों में विभक्त किया है मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। इन पाँचों दुर्गुणों की उपस्थिति, मात्र ज्ञान में ही नहीं, अपितु जीवन-विकास के सभी मार्गों को रोक देती है।

चौथे और पाँचवें कारण क्रमशः रोग व आलस्य कहे गये हैं। मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से रुग्ण व्यक्ति चाहने पर भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता है और आलस्य तो जीवन-विकास का शत्रु है ही। आलसी व्यक्ति तो न कुछ अर्जन कर सकता है और न सुरक्षित रख ही सकता है।

हमारे चरित्रनायक वैसे तो बचपन से ही इन दुर्गुणों से दूर रहे थे, किन्तु संयम अंगीकार करने के पश्चात् तो इस शिक्षा को उन्होंने पूर्ण आत्मसात् कर लिया। रोग का तो जहाँ तक प्रश्न है वह कर्मों की स्थिति पर आधारित है किन्तु अन्य अहंकार आदि चार दुर्गुणों पर तो व्यक्ति का अपना नियन्त्रण हो सकता है।

विनयशीलता और विनम्रता की स्रोतस्विनी से तो आचार्यश्री के व्यावहारिक जीवन को इस भाँति पोसा और सींचा है कि वहाँ अहंकार के उत्थान की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। क्रोध पर नियन्त्रण करने के विषय में वे अपने जीवन के शैशव में ही कितने सचेष्ट थे, यह उनके भागीदार के साथ हुई विचारणा के उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है।

साधना मे प्रवेश पाने के पश्चात तो क्रोध पर विजय के लिए उनका जीवन कसौटी ही बन गया था। दीक्षा लेते ही गुरुदेव युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने आपको कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने जब आपको प्रथम बार स्वतन्त्र चातुर्मास एव विचरण के लिए अपने से अलग किया, तो ऐसे सन्तो की सेवा मे भेज दिया, जहाँ उनकी रोष-प्रकृति के कारण अन्य सन्तो का निभना ही कठिन था। आपश्री ने उनकी अनन्य भाव से सेवा की और उनके स्वभाव को ही बदल दिया। आप अपनी इस परीक्षा मे पूर्ण रूपेण उत्तीर्ण हुए और जब पुन युवाचार्यश्री की सेवा मे पहुँचे तो वे सन्त जो चरित्रनायक की सेवा भावना एव अक्रोध वृत्ति के कारण अपने पूर्व स्वभाव से बदल चुके थे, युवाचार्यश्री से कहने लगे "गुरुदेव, इतनी बडी दीक्षा पर्याय मे मैंने ऐसा साधु कही देखा नही। यह साधु क्या है, शासन का होनहार रत्न है। दीक्षा की इस अल्प अवधि मे ही इसने कितना बडा चमत्कार कर दिखाया, मेरे जैसे क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति से सम्यक् निर्वाह करके इसकी शान्त प्रकृति ने मुझे बहुत कुछ सोचने को बाध्य कर दिया है।"

इस प्रकार समस्त भारतीय दर्शनो के समुन्नत कोटि के अधिकृत तत्त्ववेत्ता बन गए। इसकी रसानुभूति आज भी आपके प्रवचनो मे की जा सकती है। आगम ग्रन्थो मे निहित सूक्ष्म तत्त्वो की अनुभूतिमूलक गम्भीर व्याख्या जब आपके मुख-कमल से प्रवाहित होती है, तब ऐसा विदित होता है मानो एक महान् वाग्मी एवं श्रुतधर स्थविर महात्मा द्रव्यानुयोग की चिन्तनपूर्ण मौलिक मीमासा प्रस्तुत कर रहे हो। आगम के गूढ सूत्रो का स्फुटार्थ श्रोताओ के हृदय कमलो को रवि की प्रात कालीन किरणो की तरह प्रफुल्लित कर देता है।

साध्वोचित प्राजल भाषा मे सुशोभित होती हुई आपकी व्याख्यान-पद्धति, खण्डन-मण्डन के कालिख से दूर, पूर्णरूपेण स्याद्वाद सिद्धान्त पर आधारित होती है। शास्त्रीय गम्भीर भावों को भी सरल एव सुबोध भाषा मे व्यक्त कर देना आपकी आगमज्ञता की विशेष अनुभूति का द्योतक है। जिस समय आपकी प्रवचन-धारा अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही हो, उस समय भी आपका ध्यान "भाषा समिति" के प्रति अति सजग रहता है। मधुर, निर्दोष एव सुबोध शब्दो का चयन करना आपकी अपनी विशेषता है। आपत्तिजनक एव तुच्छ शब्दो के प्रति आपका पूरा-पूरा नियन्त्रण रहता है। अतएव आपके व्याख्यान के विषयो मे मुख्यत. आधुनिक विज्ञानवाद के साथ जैन-दर्शन मे वर्णित पुद्गलवाद की विवेचना जहाॅ विद्वानो एव मनीषियो के अन्तर्चक्षु खोलने वाली होती है, वहाॅ जन-साधारण के लिए परम आह्लादक, रोचक एव ज्ञानवर्द्धक होती है।

जैन दर्शन की तत्त्व-विवेचना मे पुद्गल व परमाणु तत्त्व की गरिमा एव शक्ति-सीमा असाधारण रूप से कितनी गम्भीर है, इसकी अर्थ पूर्ण अनुभूति यदि किसी को करनी हो, तो वह परम श्रद्धेय आचार्यश्री के गम्भीर प्रवचनो को सुनकर आज भी अपनी अतृप्त ज्ञान-पिपासा को शान्त कर सकता है।

सक्षेप मे ज्ञान-साधना मे आपने श्रुत देवता की आराधना अप्रमत्त होकर इतनी तन्मयता एव निष्ठा से की है कि आज भी सरस्वती आपके जीवन के कण-कण से मुखरित होती हुई परिलक्षित होती है।

• • •

तीसरा किन्तु महत्त्वपूर्ण कारण है "प्रमाद"। प्रमाद, व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में गति नहीं करने देता है। प्रमाद का वैसे मोटा सा अर्थ होता है "आलस्य" किन्तु यही अर्थ यहाँ अपेक्षित नहीं है। शास्त्रकारों ने इसकी बड़ी सूक्ष्म विवेचना करते हुए इसे पाँच भेदों में विभक्त किया है मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। इन पाँचों दुर्गुणों की उपस्थिति, मात्र ज्ञान में ही नहीं, अपितु जीवन-विकास के सभी मार्गों को रोक देती है।

चौथे और पाँचवें कारण क्रमशः रोग एवं आलस्य कहे गये हैं। मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से रुग्ण व्यक्ति चाहते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता है और आलस्य तो जीवन-विकास का शत्रु है ही। आलसी व्यक्ति तो न कुछ अर्जन कर सकता है और न सुखपूर्वक जी ही सकता है।

हमारे चरित्रनायक वैसे तो बचपन से ही इन दुर्गुणों से दूर रहे हैं, किन्तु संयम अंगीकार करने के पश्चात् तो इसकी रेखा तो उन्होंने पूर्ण आत्मसात् कर लिया। रोग का तो जहाँ तक प्रश्न है वह कर्मों की स्थिति पर आधारित है, किन्तु अन्य अहंकार आदि चार दुर्गुणों पर तो व्यक्ति का अपना नियन्त्रण हो सकता है।

विनयशीलता और विनम्रता की प्रतिमूर्ति ने तो आचार्यश्री के व्यावहारिक जीवन को इस भाँति पोसा और सींचा है कि यहाँ अहंकार के अस्तित्व की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। क्रोध पर नियन्त्रण करने के विषय में वे अपने जीवन के शैशव से ही कितने सचेष्ट थे, यह उनके आचार्यदेव के साथ हुई विचारणा के उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है।

साधना में प्रवेश पाने के पश्चात् तो क्रोध पर विजय के लिए उनका जीवन कसौटी ही बन गया था। दीक्षा लेते ही गुरुदेव युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने आपको कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने जब आपको प्रथम बार स्वतन्त्र चातुर्मास एवं विचरण के लिए अपने से अलग किया, तो ऐसे सन्तों की सेवा में भेज दिया, जहाँ उनकी क्रोध-प्रकृति के कारण अन्य सन्तों का निभना ही कठिन था। आपश्री ने उनकी अनन्य भाव से सेवा की और उनके स्वभाव को ही बदल दिया। आप अपनी इस परीक्षा में पूर्ण रूपेण उत्तीर्ण हुए और जब पुनः युवाचार्यश्री की सेवा में पहुँचे तो वे सन्त जो चरित्रनायक की सेवा भावना एवं अक्रोध वृत्ति के कारण अपने पूर्व स्वभाव से बदल चुके थे, युवाचार्यश्री से कहने लगे "गुरुदेव, इतनी बड़ी दीक्षा पर्याय में मैंने ऐसा साधु कहीं देखा नहीं। यह साधु क्या है, शासन का होनहार रत्न है। दीक्षा की इस अल्प अवधि में ही इसने कितना बड़ा चमत्कार कर दिखाया, मेरे जैसे क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति से सम्यक् निर्वाह करके इसकी शान्त प्रकृति ने मुझे बहुत कुछ सोचने को बाध्य कर दिया है।"

अतएव ज्ञान एवं तदनुरूप आचरण दोनो मिलकर ही साधना को सिद्धि मे परिवर्तित कर सकते है। इसी दृष्टि-बिन्दु से "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष." और वाचक मुख्य उमास्वाति के शब्दो मे "सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्ग:" जैसे गूढ़ सूत्र प्रचलित हुए है।

यह कहा जा चुका है कि सयम स्वीकार करते ही हमारे चरितनायक ने अपनी साधना के तीन आयाम निश्चित कर लिये थे। ज्ञान-आराधना, संयम-साधना एव तपाराधना (सेवा भावना)। तदनुसार अपनी जितनी शक्ति उन्होने ज्ञानार्जन मे लगाई, उतनी ही शक्ति, बल्कि उससे भी बढकर संयम-साधना मे नियोजित कर दी और जैन श्रमण के लिए यह स्वाभाविक भी है। क्योकि वह चाहे ज्ञानाराधना अथवा दर्शनाराधना मे सलग्न हो, सयम-साधना तो उसके जीवन का अभिन्न अग ही बन जाती है। जैन-श्रमण-दीक्षा का अर्थ ही है, संयम की कठोर साधना अथवा सयमी-जीवन। ज्ञानोपार्जन जैन-श्रमण-जीवन का दूसरा अग है। उसका पहला अग है सयम-आराधना।

चरितनायक मुनिश्री ने भी सयम स्वीकार कर ज्ञानाराधना-पूर्वक साधना के कठोरतम दिव्य महापथ पर पद न्यास कर दिया और क्रमश: साधना-सिद्धि के सोपानो पर" मुणिणो सया जागरन्ति" के अर्थात् मुनि वही है जो सदा जागृत है, के आगम वाक्य को आत्मसात् करते हुए सतत जागरूक बन कर अग्रसर होने लगे।

सम्पूर्ण साधना के दो मार्ग है, एक समर्पण का मार्ग, दूसरा श्रम का मार्ग। समर्पण के मार्ग पर चलने वाला ईश्वर की कल्पना भी अपनी बुद्धि के अनुसार करता है। उसे अपनी पसद के अनुसार रूप देता है, रग देता है, वस्त्र पहनाता है और पूजा पाठ करता है—भक्ति करता है। स्वय को कुछ भी न मान कर अपने को आराध्य के प्रति समर्पित करता है। लेकिन यह मार्ग महावीर का नही है। वीर पुरुषो का मार्ग तो सकल्प का होता है। समर्पण के मार्ग पर किसी कवि ने कहा है—

> मेरी पूजा आराधना को
> मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
> मेरी ही कमजोरी कहकर
> मेरा पूजित पाषाण हसा।

महावीर का मार्ग श्रम का है, सकल्प का है, आत्म शक्ति जगाने का है। इस लिये महावीर ने धर्म को युवा के साथ जोड़ा है। युवोच्चित्त-श्रम साध्य व्यक्तित्व ही धर्म को उपलब्ध कर सकता है। अध्यात्म कोई साधारण बात

बोलना चाहिए, इसका भी विवेक नहीं है। समय अधिक हो जाने के कारण हमने दो-तीन बार इतना ही निवेदन किया कि समय हो गया है। उत्तेजनापूर्ण वातावरण होते हुए भी आचार्यश्री अपनी इसी गम्भीर एवं शान्त मुद्रा में कहते जा रहे थे "मुणोतजी! जरा गहरा उतर कर चिन्तन कीजिये। किसी बात का आग्रह हो सकता है, किन्तु दुराग्रह नहीं। आप आज जिन विचारों को श्रमण जीवन के लिए उपयोगी मान रहे हैं, किन्तु ऐतिहासिक एवं आगमिक आधार के बल पर यदि आप गम्भीरता से सोचेंगे तो स्पष्ट हो जायेगा कि यह बात हमें अभी मामूली सी लग रही है, किन्तु आगे चलकर श्रमण संस्कृति को ही नष्ट करने वाली बन जायेगी", आदि। किन्तु मुणोतजी उस समय आवेश पूर्ण स्थिति में थे अतः वे किसी भी तर्क को मानने को तैयार नहीं थे।

समय अधिक हो जाने से चर्चा बीच में ही समाप्त कर दी गई। मुणोतजी उसी समय सामायिक पूरी कर चले गये। दूसरे दिन पुनः अमरावती से लौटकर चले आये और चरणों में सिर रखकर क्षमा याचना करने लगे। आचार्यश्री के पूछने पर कि रात्रि में ही जाकर प्रातःकाल ही वापिस चले आने का क्या कारण हुआ? उनके साथी कहने लगे - "महाराजश्री! यहाँ से रात में ज्योंही रवाना हुए, मैंने मुणोतजी से कहा, यदि ऐसी उत्तेजना पूर्ण चर्चा होने की सम्भावना होती तो मैं प्रश्न ही नहीं छेड़ता, किन्तु एक लाभ अवश्य हुआ है कि इस प्रसंग से एक जैनाचार्य को पहचानने का मौका मिला। मैंने देखा, तुम अधिक आवेशशील बनते चले गए, उत्तेजना दिखाते चले गए, किन्तु महाराजश्री के चेहरे, पर क्रोध की रेखा पैदा होना तो दूर रहा, आवाज में भी तेजी नहीं आई। वे अद्भुत योगी साधक हैं।" मेरा इतना कहना हुआ कि मुणोतजी में पश्चात्ताप की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और यह पश्चात्ताप अमरावती तक चलता रहा। प्रातःकाल उठकर कहने लगे "मैंने उन महापुरुष की बहुत आशातना की है, उनकी इस शान्ति ने मेरा हृदय बदल दिया है। मैं अभी पुनः जाकर क्षमा याचना करूँगा" और हम सब पुनः सेवा में उपस्थित हो गए। आचार्य देव ने कहा, "ऐसी कोई अवज्ञा की बात नहीं थी, जहाँ चर्चा-विचर्चा होती है, स्वर कुछ तेज हो ही जाता है। इसमें अपराध और क्षमा याचना की क्या बात है?" आदि।

ऐसी एक नहीं, अनेक घटनाएँ हमारे चरितनायक के जीवन में घटी हैं, जिनके द्वारा कई व्यक्तियों ने आपकी शान्ति, निष्क्रोध वृत्ति से प्रभावित होकर सदा-सदा के लिए क्रोध के प्रत्याख्यान ले लिए हैं।

इस प्रकार अपने विद्यार्थी-जीवन में आपने क्रोध की भयंकरता और क्रोध को शिक्षा में बाधक समझकर, उसे निकट नहीं आने दिया।

देह-तितिक्षा

ध्यान की साधना के लिए प्रथम आवश्यकता है, देह के प्रति अनासक्ति भाव का पैदा होना। यही कारण है कि जैन-साधुओ की देह-तितिक्षा अत्यधिक प्रसिद्ध हो गई है और जहाँ देह-तितिक्षा होगी, वहाँ भावनाओ मे "आत्मवत् सवभूतेषु" का जागरण अवश्यमेव ही होगा। जैन साधक का जीवन त्याग और तपस्या की दृष्टि से बडा कठोर जीवन माना जाता है। महावीर के "अप्प सम्म मन्निज्ज छप्पिकाए" के स्वर के अनुसार मनसा, वाचा, कर्मणा भगवती अहिंसा की आराधना की दृष्टि से नगे सिर, नगे पाँव, हजारो मील की यात्राएँ कर, धर्म जागरण की दुन्दुभि का घोष जन-जन तक पहुँचाना, किसी भी दशा मे रेल, मोटर, गाडी आदि यातायात के साधनो का उपयोग नही करना, कठोर-से-कठोर सर्दी एव गर्मी मे अग्नि, पखे और विद्युच्चालित यन्त्रो का उपयोग नही करना, क्षुधा-पिपासा की उपशाति हेतु कच्चा (सचित) पानी एव फलादि का उपयोग नही करना, किसी प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन नही करना, सदा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह के सूक्ष्मतम नियमो के अनुसार जीवन-यापन करना तथा सर्वदा स्वावलम्बन के आदर्श हेतु पैसा आदि मुद्राओ के प्रपच से सर्वथा दूर रहते हुए गृहस्थी के रजाई, पलग, आदि का उपयोग नही करके सादगी के प्रतिरूप यथाशक्य खद्दर के वस्त्रो का उपयोग करना, अपने भार को स्वय वहन करना एव हाथो से केश लु चन करना, रात्रि मे किसी प्रकार का खाना-पीना नही करना एव न किसी खाद्य एव पेय पदार्थ को रात्रि मे अपने पास ही रखना, आदि ऐसे कुछ कठोर नियम जैन साधको के होते है—जो सहसा ही अन्य समाज के लोगो पर भी अपना गहरा प्रभाव छोड देते है।

सक्षेप मे जैन साधक का आध्यात्मिक जीवन, त्याग और वैराग्य का इतना कठोर एव व्यवस्थित रूप से समुज्ज्वल जीवन है कि उसकी सानी के साधक का अन्य सस्कृतियो मे उपलब्ध होना ही कठिन है। आज जो जैन साधक अल्प सख्या मे उपलब्ध होते है, इसका कारण भी जैन साधनागत कठोरता ही है।

कई बार तो इस साधना की सूक्ष्मताओ एव कठोरताओ को सुनकर व्यक्ति सहसा अज्ञता के कारण इस पर विश्वास ही नही करता। एक प्रसग

जाता है कि वे "सुणिणो सया जागरन्ति" के शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार कितने जागरूक थे। वे अपनी दुःसाध्य रुग्णावस्था में भी "पुस्तक के कीड़े" ही माने जाते रहे हैं। उन्हें खाली बैठे हुए अथवा निरर्थक बातों में समय व्यतीत करते हुए तो कभी कोई पा ही नहीं सकता था। यही कारण है कि इतना व्यस्त जीवन होते हुए आज भी ५ मिनिट का भी समय मिला नहीं कि आप नवीन उपलब्धि हेतु किसी-न-किसी साहित्य का अवलोकन करने ही लगते हैं। इस सतत जागरूकता ने ही आपको इतनी विद्वत्ता एवं इतने उच्च पद तक पहुँचा दिया है। इस प्रकार एक सच्चे विनीत शिक्षार्थी में जिन दुर्गुणों का अभाव एवं जिन सद्गुणों का सद्भाव होना चाहिये, वे आपमें जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में ही प्राप्त थे।

इस प्रकार अप्रमत्त भाव से व्याकरण एवं साहित्य की जटिल पगडण्डियों को पार कर आपने शिक्षा के तृतीय चरण न्याय एवं दर्शन शास्त्र में प्रवेश किया और अल्पतम अवधि में ही अपनी प्रकाण्ड बौद्धिक ऊर्जा से न्याय बोधिनी जैसी नव्य न्याय की गूढ़ टीकाओं से युक्त तर्क संग्रह से प्रारम्भ कर न्याय मुक्तावली, सांख्य कौमुदी (टीका सहित) ब्रह्म सूत्र, शांकर भाष्यभामति टीका से युक्त आदि विविध दर्शनों के गूढ़ ग्रन्थों के साथ प्रमाण नय तत्त्वालोक, स्याद्वाद मञ्जरी, प्रमाण मीमांसा, षड्दर्शन समुच्चय सटीक, आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर जैन न्याय एवं दर्शन के तलस्पर्शी विद्वान् बन गए।

अध्ययन के चतुर्थ चरण में भाषा ज्ञान को अधिक परिपुष्ट करने के लिए आपने प्राकृत, शौरसेनी, अर्ध मागधी आदि भाषाओं के व्याकरण एवं साहित्य के गहरे अध्ययन की ओर पदन्यास कर दिया।

तुलनात्मक अध्ययन में कर्म ग्रन्थ एवं तत्त्वार्थ सूत्र सटीक, प्रमेय कमल मार्तण्ड (दिगम्बर न्याय ग्रन्थों) विशेषावश्यक भाष्य, आचारांग, सूत्र कृतांग, स्थानांग, आदि आगमों और उनकी टीकाओं का आद्योपान्त अवलोकन करते हुए गीता, रामायण, पुराण एवं छान्दोग्य आदि कई उपनिषदों का [illegible] दृष्टि एवं सूक्ष्म प्रज्ञा से सिंहावलोकन किया।

इस प्रकार ज्ञान-साधना में अपनी समस्त शक्तियों को नियोजित कर आप शीघ्र ही सैद्धान्तिक मौलिक ज्ञान के साथ व्याकरण, न्याय, दर्शन, [illegible] आगम (चूर्णि भाष्य टीका-ग्रन्थ) तथा, कोश, छन्द, अलंकार आदि विभिन्न आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक विषयों के विशिष्ट ज्ञाता [illegible] व्याख्याता हो गए। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एवं गुजराती आदि कतिपय प्रांतीय भाषाओं के निष्णात विद्वान् [illegible] भाषाओं में उपलब्ध हजारों उपयोगी ग्रन्थों का आपने मनन कर [illegible]

विनय और विवेक

साधना की पगडण्डी पर चलते हुए जिन-जिन सावधानियो अथवा गुणो की अपेक्षा होती है, उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है—विनय । सीधे शब्दो मे कहे तो साधना का प्रथम सूत्र (अग) ही विनय है । साधक के जीवन मे यदि विनय नही है, तो वह साधना मे किचित् मात्र भी गतिशीलता नही ला सकता ।

अपने अतिम एव महत्त्वपूर्ण उपदेश का प्रारम्भ ही प्रभु महावीर ने साधक के विनय का प्रतिपादन करने के लिए किया है—

"विणयं पाउ करिस्सामि ।"

विनय के अभाव मे साधक, साधक नही रह जाता है । ज्ञान-उपलब्धि का प्रवेश द्वार ही विनय है । विनय की महत्ता के प्रतिपादन मे तो आगम के हजारो पृष्ठ भरे गए है ।

"विनय" शब्द की निर्युक्ति करे, तो उसका सीधा-सा अर्थ होगा—

"विशेषेण नयति, इति विनय: ।"

जो साधना मे विशेष गति ला देता है, वह है विनय । नम्रता, निराभिमानता, गुरुजनो एव वडो के प्रति भक्ति एव आदर भावना की अभिव्यक्ति ही विनय है ।

अध्यात्म साहित्य मे विनय की महिमा का बड़ा विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । जैनाचार्यो ने तो धर्म का मूल ही विनय बताया है । आचार्यश्री शय्यभव "दशवैकालिक" सूत्र मे विनय की धर्ममूलकता अभिव्यक्त करते हुए कहते है—

एव धम्मस्स विणओ,
मूल परमो से मुक्खो ।
जेण कित्ति सुअं सिग्ध,
निसेस चाभिगच्छइ ।।

—दशवैकालिक ९-२-२

आत्म-संयम-साधना

ज्ञान और क्रिया

ज्ञान की फलवत्ता का आधार तदनुरूप क्रियाशीलता ही है। इसीलिये महावीर-दर्शन में जहाँ एक ओर ज्ञान की महत्ता को व्याख्यायित करते हुए आगम के हजारों पृष्ठ रंजित करके कहा गया "णाणेण विणा ण हुंति चरण गुणा" (ज्ञान के बिना चारित्रिक समुत्कर्ष नहीं हो सकता है) वहाँ साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि—

"ज्ञानं भारः क्रियां विना"

अर्थात् क्रिया (अनुशीलन) के अभाव में ज्ञान भार रूप ही होता है। ज्ञान सार्थक तभी कहलाता है जब वह आचरण के पथ पर हो। आचरण हीन ज्ञान का आध्यात्मिक दृष्टि से उतना ही महत्त्व है, जितना कि बुभुक्षित व्यक्ति के समक्ष मिष्ठान्न की चर्चा का। मिष्ठान्न सामने पड़े हैं, उनकी पुरजोर चर्चा की जा रही है, किन्तु जब तक उन्हें क्षुधा पीड़ित व्यक्ति के मुखार्पित नहीं करेंगे, उनकी कोई उपयोगिता नहीं होगी।

आगम के उद्भट् व्याख्याता श्री जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

"जहा खरो चन्दन भार वाही,
भारस्स भागी नहु चन्दणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो,
नाणस्स भागी नहु सोग्गईए॥"

चन्दन के भार को ढोने वाले (गधे) के लिए भार के अतिरिक्त उस चन्दन की कोई उपयोगिता नहीं है। उसकी सुवास-सौरभ एवं दाह क्षमता का उसके लिए कोई अर्थ नहीं है। ठीक इसी प्रकार चारित्रिक अनुशीलन के अभाव में केवल ज्ञान भार रूप ही है। उस ज्ञान के द्वारा आत्मबोध अथवा सद्गति-लाभ तक नहीं पहुँचा जा सकता है।

यदि ज्ञानहीन क्रिया अंधी है, तो क्रियाहीन ज्ञान भी पंगु ही होगा।

दूसरे सूत्र-पद मे कहा गया है कि वह सदा गुरु के उपपात-समीप में रहने वाला है, अर्थात् शारीरिक दृष्टि से सेवा-भावना के लक्ष्य को समक्ष रखते हुए गुरुजनो का समीपवासी बनकर भावात्मक दृष्टि से अपने विवेक, माधुर्य, सरलता, सहिष्णुता, दूरदर्शिता, सरसता, आज्ञापालन तथा अनुकूल व्यवहार से अपने आराध्य के पूज्य चरण मे निवास करता हुआ, उन्हे सदा प्रसन्न रखकर उनका हार्दिक अनुराग प्राप्त कर लेता है। विनीत शिष्य, जो द्रव्य एव भाव दोनों दृष्टियो से गुरु के समीप रहता है, श्रुत एव चारित्र धर्म की सम्यग् उपासना मे सफलता प्राप्त कर सकता है और निश्चित लक्ष्य-सिद्धि तक पहुँच सकता है।

गाथा के तृतीय चरण मे कहा गया है कि शिष्य गुरु के इगित एव आकार से सम्पन्न अर्थात् उन्हे समझने वाला हो, गुरु महाराज नेत्र, हाथ आदि से क्या इगित (इशारा) कर रहे है एव उनकी मुखाकृति इस समय क्या सकेत कर रही है, इस समय उसे क्या करना चाहिये, आदि भावो को समझकर तदनुसार ही प्रवृत्ति करने वाला हो। पैनी दृष्टि से इस सूक्ष्मता की पहचान कर सदा गुरु के अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला शिष्य, जो कहने की आवश्यकता नही रखकर केवल इशारे पर चलता है, जीवन भर विनय की प्रवृत्ति का आराधक होता है। ऐसा विनीत शिष्य अल्प काल मे ही गुरु की असीम कृपा का पात्र बन जाता है।

विनय की प्रतिमूर्ति

एक विनीत विनेय (शिष्य) मे जिन गुणो का अस्तित्व होना चाहिये, वे सभी आगमोल्लिखित गुण हमारे चरितनायक मे विद्यमान थे। उनके जीवन के हर कोण से एव हर क्रिया से विनय की अभिव्यक्ति ही परिलक्षित होती थी। सीधे शब्दो मे कहे तो उनका जीवन विनय की साक्षात् प्रतिमा ही था। अपने आराध्य महामहिम शान्त क्रान्ति के अग्रदूत, श्रद्धेय आचार्य देव श्री गणेशीलालजी म० सा० के प्रति तो वे अप्रतिम विनम्र थे ही, तत्कालीन छोटे-बड़े सभी सन्तो के साथ भी ऐसी विनम्रता से पेश आते कि सभी सन्तो के मुख पर "मुनि नानालालजी" ही बस गये।

वैसे तो विनय का गुण आपको निसर्ग से ही मिला था, जैसा कि हम पूर्व मे पढ चुके हैं, आप बचपन मे ही श्रद्धेया मातुश्री एवं अपने अग्रज के प्रति ही नही, बल्कि गाँव के प्रत्येक जाति के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति अतीव विनम्र रहे है। साधना मे पैर धरने के पश्चात् तो उस गुण मे इतना निखार आ गया कि तत्कालीन बड़े-बडे सन्त आपके विनय गुण की प्रशसा करते हुए नही अघाते थे।

नही है। अध्यात्म की उपलब्धि हेतु ऊर्जा चाहिये, सघन ध्यान चाहिये। महावीर १२ वर्ष घने जंगलो मे ध्यान साधना करते रहे, अडिग, अकम्प। तब वर्धमान से महावीर को उपलब्ध हुए। एव अन्त मे उद्घोषणा की—

अज्झत्थमेव परस

अर्थात् अपने ही भीतर झाको।

वहां ज्योति की जगमगाहट है। अनन्त सूर्यो के समवेत प्रकाश से भी अधिक तेजपूर्ण है अन्त.स्थित चिति का प्रकाश। बात पास और दूर की नही, तुम स्वय ही अगाप्य आनन्द, निर्विकल्प शान्ति और अनन्त शक्ति हो। परमात्मा तुम्हारा अपना ही स्वरूप है। किन्तु भ्रान्तिवश तुम उसे उपलब्ध नही कर पा रहे हो, जबकि उसकी उपलब्धि का आसान-सीधा उपाय है "ध्यान"।

तात्पर्य यह है कि जैन श्रमण (साधु) की साधना, ध्यान की साधना है और उसके माध्यम से अन्त.तत्व के अन्वेषण की आराधना है।

• • •

प्रकरण मे ही की जा सकेगी। आचार्य देव इतना योग्य शिष्य पाकर परम सन्तुष्ट थे। योग्य गुरु के योग्य शिष्य की उक्ति आप पर पूर्ण रूपेण चरितार्थ होती थी।

अपने चरम समय में आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के समक्ष प्रमुख श्रावको के द्वारा जब यह प्रश्न रखा जाता था कि "गुरुदेव, अब आपके पीछे सघ-नैया का खेवनहार कौन होगा? (क्योकि उस समय तक हमारे चरितनायक जन-सम्पर्क से बहुत दूर रहा करते थे) सघ के लिए कोई आधार नही दिखता है।" तब आचार्य श्रीजी बड़े गर्व और गम्भीरता से फरमाया करते थे—"देखा करो, ऐसी हस्ती छोड जाऊँगा कि आप चन्द श्रावक ही नही, दुनिया देखा करेगी।"

आज हम प्रत्यक्ष देख रहे है कि आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की उक्त घोषणा एव महामहनीय अगाध चरित्रनिष्ठ स्वर्गीय आचार्य देव श्री श्रीलालजी म० सा० की महासतीजी श्री तेजकवरजी के समक्ष की गई वह भविष्य वाणी कितनी सत्य एव तथ्य पूर्ण परिलक्षित हो रही है—"शासन प्रभावना एव आचार्यत्व के प्रभाव को अभी क्या देख रहे हो? इस महान् तपोमूर्ति तेजपुञ्ज श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की गौरवशाली पाट-परम्परा के आठवे पाट को देखना। वह कितना निर्मल एव उज्ज्वल यश-परिमल वायु-मण्डल मे प्रसृत करेगा।"

मेरी तो यह ध्रुव मान्यता है कि हमारे चरितनायक के विकास के इतने उच्च शिखर तक पहुँचने मे उनकी साधना-वृत्ति मे समाविष्ट विनय एव अल्प-भाषिता ही मुख्य कारण है।

• • •

मुझे याद आ रहा है, जब आचार्यश्री (चरितनायक) उदयपुर (दुर्ग) में विराज रहे थे। देशनोक से आदर्श श्रावक श्री सोहनलालजी भूरा दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उस समय उन्होंने बताया कि रेल में भिवानी इस्पात कारखाने को जाने वाले कुछ रसियन व्यक्तियों से परिचय हो गया। उनके पूछने पर मैंने उनसे कहा—"मैं अपने धर्म गुरु के दर्शनार्थ जा रहा हूँ।" धर्म गुरु के नियमों की मैंने उन्हें जानकारी दी कि वे कच्चे पानी, वनस्पति, अग्नि आदि का स्पर्श तक नहीं है, वायुकायिक सूक्ष्म जीवों की भी रक्षा हेतु मुख पर मुख वस्त्रिका लगाते हैं, आदि। यह सुनकर वे कहने लगे—"ऐसा हो ही नहीं सकता। ऐसे कोई जीवित ही नहीं रह सकता है।" तब मैंने कहा "जीवित है और मैं दर्शनार्थ जा रहा हूँ। आपको भी प्रत्यक्ष अनुभूति करना हो तो चलकर देख सकते हैं।" फिर उस समय तो नहीं, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् वे आचार्य देव के समक्ष उपस्थित हुए और कुछ चर्चा करके बड़ा आश्चर्य व्यक्त करने लगे। तात्पर्य यह है कि जैन श्रमण की कठोर संयम-साधना एवं देह-तितिक्षा अनुपम एवं अनूठी होती है।

इसी कठोर संयम-साधना के पथ पर हमारे चरितनायक भी निर्बाध गति से बढ़ने लगे एवं ध्यान के माध्यम से अन्तर चेतना की इसी खोज में निःसीम आनन्द की रसानुभूति करने लगे। पाठक यह सोचेंगे कि एक तरफ तो साधना की कठोरताओं का विवेचन किया जा रहा है और दूसरी ओर यह कहा जा रहा है कि चरितनायक साधना में अन्तर जगत की खोज का निःसीम आनन्द लेने लगे। किन्तु यह मनोवैज्ञानिक तथ्य नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी क्रिया में सुखानुभूति एवं दुःखानुभूति का आधार अपना मन [illegible] इसीलिए कहा गया है कि—

"मनसा कल्प्यते बन्ध, मोक्षस्तेनैव [illegible]

इसी तथ्य के अनुसार हमारे चरितनायक [illegible] कठोरताएँ भी कोमल पुष्प-शय्या के रूप में [illegible]। प्रभु महावीर की दृष्टि में तो संयम की कठोरताओं में [illegible] आनन्द की अनुभूति की जा सकती है। अतएव आगम के [illegible] महीने की शुद्ध संयम-साधना में व्यन्तर जातीय देवों [illegible] ९ महीने की साधना में सर्वार्थ सिद्धि विमान [illegible] की जा सकती है। इसी अलौकिक आनन्द [illegible] करने लगे। ज्ञान-उपासना एवं संयम-[illegible] गोता लगाने लगा।

• • •

गई थी और कई सन्त आपको अनेक शास्त्रीय उपमाओं से उपमित करते रहते थे ।

महान् अध्यात्म-साधक स्थविर पद विभूषित खरवा वाले श्री घासीलालजी म० सा० तो अल्पभाषिता के कारण आपको कई बार घटा-घर की उपमा से उपमित करते हुए फरमाया करते थे—"मुनिश्री, हम तो मदिर की झालर के समान है जो कितनी बार अनवरत बोलती रहती है, जिसका कोई मूल्य नही । अर्थात् हम बिना कारण बार-बार बोलते रहते है । हमारी वाणी की कोई कीमत नही है, किन्तु तुम तो घटाघर की घडी के समान हो, जो समय पर नियमित-परिमित बोलते हो, तुम्हारी वाणी सुनने के लिए छोटे-बडे सभी सन्त लालायित रहते है, आदि ।"

इस प्रकार श्रद्धेय चरितनायक मे विनय-वृत्ति इतनी कूट-कूट कर भरी हुई थी कि आप अत्यल्प दीक्षा पर्याय मे ही अपने आराध्य गुरुदेव के प्रधान अन्तेवासी-अनन्य, शिष्य-बन गए । गुरुदेव की प्रत्येक इच्छा को पूरी करना और उनके इगित के अनुकूल ही सदा प्रवृत्ति करना आपका स्वभाव था । गुरुदेव की इच्छा के प्रतिकूल प्रवृत्ति करने का तो आपमे कभी भाव ही पैदा नही हुआ । यही कारण है कि गुरुदेव एव सम्पूर्ण सत-वर्ग की कृपा दृष्टि आपको प्राप्त थी । आपसे केवल दो मिनिट बात हो जाने मे ही हर व्यक्ति अपने को गौरवशाली समझता था ।

इस उपर्युक्त विवेचना से आज के पाठक, जिनमे विनय-भावना नाम मात्र शेष रह गई है, अवश्य सोच सकते है और जैसा कि मेरा विश्वास है, वे सोचेगे भी की एक गुरु-भक्त शिष्य ने अपने गुरु की निरी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा की है, किन्तु उन्हे यह नही भूलना चाहिये कि—"बहुरत्ना वसुन्धरा" वाली उक्ति निरर्थक नही है । जो महामुनि २१ वर्षो मे कभी भी अपने आराध्य के चरणो से अलग नही हुए और अनन्य भावना से सेवा-साधना मे रत रहे, उनके लिए नैसर्गिक रूप से इतना विनम्र एव अल्प-भाषी होना कोई अतिश-योक्ति नही हो सकती है ।

आजकल हम देखते है कि वर्ष, दो वर्ष की दीक्षा पर्याय हुई नही और थोडा-सा व्याख्यान देना सीखे नही कि शिष्य गुरु से अलग भागने के लिए तत्पर हो जाते है । वहाँ एक साधक अपनी कीर्ति-कामना की सम्पूर्ण इच्छाओ को तिरोहित कर अनन्य भाव से इतनी लम्बी अवधि तक बिना किसी हिचक के सेवा-रत रह सकता हो, उसमे इतनी विनय-वृत्ति का होना आश्चर्य जैसी बात नही होगी । एक कूप मण्डूक का अगाध समुद्र के मण्डूक की बात पर अविश्वास होना स्वाभाविक भी है । हाँ, आज कल हम मे इतनी विनय वृत्ति का अभाव हो गया है कि हम उपर्युक्त विनय वार्ता पर अविश्वास प्रकट कर सकते है ।

विनय धर्म का मूल है, विनय के द्वारा ही साधक कीर्ति, गुरु-चरणो से परिपूर्ण श्रुत शास्त्र ज्ञान एव मोक्ष-फल आदि प्राप्त कर सकता है।

आगमकारो ने कहा है कि जैसे नीव के अभाव मे बडा भवन नही टिक सकता, जैसे मूल के अभाव मे वृक्ष का अस्तित्व ही नही रहता है, वैसे ही विनय के बिना धर्म भी नही ठहरता है इसीलिये कहा है "विणयमूलो धम्मो"। वास्तव मे धर्म भी, वही स्थायी रह सकता है, जो विनयमूलक हो। साधक के हृदय मे यदि विनय का अकुर ही नही है, तो धर्म-वृक्ष की सम्भावना नही रहेगी।

विनय-धर्म की आवश्यकता पारिवारिक, सामाजिक एव आध्यात्मिक सभी क्षेत्रो मे होती है। किन्तु अध्यात्म-साधना के पथिक के लिए तो यह नितान्त वाछनीय है कि वह अपने श्रद्धेय गुरु के प्रति अति विनम्र हो, क्योकि विनीत शिष्य ही गुरु-चरणो की उपासना से कुछ अर्जित कर सकता है। आगम के गूढ व्याख्याता जिन भद्र गणि क्षमाश्रमण ने "विशेषावश्यक भाष्य" मे तो यहाँ तक कह दिया है कि—"विणयाउविप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कओ तवो" अर्थात् विनय से रहित व्यक्ति मे कहाँ तो धर्म होगा और कहाँ तप ?

विनीत विनेय के लक्षण

विनीत शिष्य के लक्षण बताते हुए "उत्तराध्ययन सूत्र" मे कहा गया है—

"आणा निद्देस करे, गुरूणमुववाय कारए।
इगियागार सपन्ने से विणीए त्ति वुच्चइ ॥" (उ० १–२)

गुरुओ की आज्ञा की आराधना करने वाला, सदा गुरु के समीप रहने वाला, इगित एव आकार से सम्पन्न शिष्य विनीत विनेय कहलाता है।

उक्त सक्षिप्त सूत्र मे दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर ने विनय धर्म की [illegible] को प्रकाशित करते हुए कहा है, जैसे राष्ट्र भक्त सैनिक अपने सेनापति के निर्देश का यथावत् अनुसरण करता है, उससे किचित मात्र भी विरुद्ध प्रवृत्ति नही करता है, उसी प्रकार विनीत विनेय के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह अपने श्रुत देवता की आराधना हेतु अविचल श्रद्धा के साथ गुरुदेव की आज्ञाओ का अक्षरश अनुशीलन करता हुआ किचित् मात्र भी इधर-उधर न हो। जो शिष्य गुरु के निर्देश के विरुद्ध कुछ भी प्रवृत्ति कर गुजरता है, वह विनय धर्म का विराधक बनकर अपने स्वय के भविष्य को नुकसान कर लेता है। अत विनीत शिष्य का प्रथम कर्तव्य है कि वह गुरु की आज्ञा का [illegible] आराधक बने।

(५) पाप परिक्षेपी-अर्थात् गुरुजनो से अल्प-सी भूल हो जाने पर ढिढोरा पीटना अथवा अपने अपराधो को दूसरों पर थोपना ।

(६) मित्रो पर क्रोधित होते रहना—जो कोई शुभ कामना से प्रेरित होकर हित-शिक्षा देने वाला मित्र हो, उस पर क्रोधित होकर बार-बार झुँझला उठना ।

(७) सुप्रिय मित्र की प्रत्यक्ष मे प्रशसा करते हुए भी परोक्ष मे उसकी निन्दा-बुराई करते रहना ।

(८) हित-मित भाषा के प्रयोग के महत्त्व को न समझकर निरर्थक एव कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग करते रहना ।

(९) गुरुजनो-सहयोगियों आदि के साथ द्रोह करना अर्थात् निरन्तर उनका अनिष्ट करने की भावना रखना ।

(१०) जाति, कुल, लाभ, ऐश्वर्य, बल, तप, रूप एव अपनी विद्वत्ता का अभिमान करना, अपने को महान् एवं दूसरे को तुच्छ या नगण्य समझना ।

(११) लुब्ध होना, अर्थात् इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त होना । अभिलषित विषयो की प्राप्ति हेतु निरन्तर छटपटाना ।

(१२) अनिग्रह अर्थात् इन्द्रियो पर नियन्त्रण नही करना । इन्द्रियरागी बन इच्छित विषयो की कामना करना ।

(१३) असविभागी होना—प्राप्त हुई भोजन आदि सामग्री का सहयोगियो मे सविभाग न कर, अच्छे-अच्छे पदार्थो का उपयोग स्वय ही कर जाना ।

(१४) अव्यक्त अर्थात् अस्पष्टवादी होना । किसी के कुछ पूछने पर उसका कोई स्पष्ट उत्तर नही देना ।

उपर्युक्त चौदह प्रकार के लक्षणो से युक्त साधु अविनीत कहलाता है। आज हम देखते है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज की शिष्य-परम्परा मे कौन-से लक्षण अधिक पाये जाते है ।

हमारे श्रद्धेय चरितनायक का साधना-जीवन "आणाए धम्मो" के अनुसार अपने गुरुदेव की महती कृपा एव वरद हस्त के नीचे आज्ञा-पालना एव विनय आराधना के साथ दिन-प्रति-दिन प्रगति के पथ पर बढने लगा ।

जितने महान् उतने विनम्र

आपकी इस प्रगति की एक अद्भुत विशेषता यह रही है कि आप प्रगति

जिस समय युगद्रष्टा एव युगस्रष्टा ज्योतिर्धर स्वनाम धन्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० भीनासर विराज रहे थे, उस समय की एक घटना है। आचार्य देव श्री जवाहरलालजी म० सा०, युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा०, सेवाभावी धायमाता श्री मोतीलालजी म० सा०, बडे चांदमलजी म० सा०, प० श्री सिरेमलजी म० सा०, प० श्री जवरीमलजी म० सा० आदि बडे-बडे दिग्गज सन्त आहार कर रहे थे। उस समय कुछ सन्त उच्च स्वर से बोल रहे थे। तब लगभग दो-तीन वर्ष के दीक्षित छोटे मुनि हमारे चरितनायक ने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक निवेदन किया, "आवाज बाहर श्रावको तक पहुँच रही है।" नम्रतापूर्वक निवेदन की गई, इस छोटी-सी बात का, आचार्यश्री, युवाचार्यश्री आदि सभी सन्तो पर इतना गहरा असर हुआ कि सभी की दृष्टि उनकी ओर केन्द्रित हो गई और श्रद्धेय बडे श्री चान्दमलजी म० सा० ने तो हमारे चरितनायक के नाम से अन्य सभी अच्छे-अच्छे विद्वान् सन्तो को शिक्षा देते हुए कहा कि -"देखो, ये छोटे मुनि श्री नानालालजी कितने शान्त, विनम्र एव समय मे जागरूक है। इतनी अल्पकालीन दीक्षा होते हुए भी इनकी विनम्र-विवेकी प्रवृत्ति ने सबके हृदय मे स्थान प्राप्त कर लिया है। "उपसन्ते अविहेडए जे स भिक्खु (जो उपशान्त, कषायी और अकलहकारी होता है, वही भिक्षु साधक कहलाता है।" (दशवैकालिक १०-१०) "भारण्डपक्खीव चरेऽप्पमत्ते।" (उत्त० ४-६) साधक, भारण्ड पक्षी की तरह सदा अप्रमत्त रहता है। ये शास्त्रीय वाक्य इनके जीवन मे ओतप्रोत हो गए है। हमे इन छोटे मुनिजी से भी शिक्षा लेनी चाहिये।"

तात्पर्य यह है कि हमारे चरितनायक के विनय गुण से उस समय के बडे-बडे सन्त प्रभावित थे।

योग्य गुरु के योग्य शिष्य

"उत्तराध्ययन" सूत्र मे शिक्षार्ह शिष्य के लक्षण बताते हुए कहा है—

"वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियकरे पियवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहइ॥"

सदा गुरु के समीप रहने वाला, सतत जागरूक एव प्रत्येक को प्रियकारी प्रवृत्ति एव प्रियकारी भाषा से प्रसन्न रखने वाला शिष्य ही शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होता है। ये गुण हमारे चरितनायक के जीवन के अभिन्न अग बन गए थे। यही कारण है कि, अपने आराध्य, पूज्य-चरण, आचार्य देव श्री गणेशीलालजी म० सा० की विद्यमानता के २८ वर्षो मे आपने लगभग २१ वर्ष उनकी सेवा मे ही व्यतीत किये एव तीन वर्ष वृद्ध एव रुग्ण सन्तो की सेवा मे रहे। स्व० आचार्य देव को समर्पित अनूठी सेवाओ की विवेचना तो एक स्वतन्त्र

तपःअनुभूति बोध का पथ

भारतीय दर्शनो मे तप शब्द बडे मौलिक अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। सभी दर्शनो ने किसी-न-किसी रूप मे तप को साधना के अग के रूप मे स्वीकार किया है। भारतीय वाङ्मय का परिशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उसका अधिकाश भाग तप की विवेचना से भरा पडा है। वेदो, उपनिषदो, बौद्ध त्रिपिटको, धम्मपद, आदि ग्रन्थो मे यत्र-तत्र तपोमाहात्म्य वर्णित हुआ है।

जैनागमो मे तो ज्ञान-दर्शन, आदि अन्य साधनो की तरह ही तप को भी आन्तरिक ज्योति की अभिव्यक्ति का एक साधन मान लिया गया है।

"तवो जोइ जीवो जोइठाण।' (उत्तराध्ययन १२-४४) ये आगमिक वाक्य इस बात के प्रबल साक्षी है कि अनुभूति-बोध के अन्धकाराच्छन्न पथ को पार करने के लिए तप ज्योति-प्रकाश का कार्य करता है। अतएव साधक के लिए कहा जाता है कि—

"जुतो सया तव समाहिए" (दश० ९-४-४)

अर्थात् साधक सदा तप समाधि से युक्त रहे। उसकी चेतना सदा तप मे रममाण हो।

"तप" शब्द 'तप सतापे' धातु से निष्पन्न हुआ है। अत तप शब्द की निर्युक्ति करते हुए आचार्यो ने कहा है—"तप्पते इति तप" अर्थात् जो तपता हो अथवा जिसके माध्यम से तपाया जाता है, वह तप है। प्रश्न हो सकता है कि क्या आग्नेय, उष्मा एवं रवि की तप्यमान रश्मियो को भी उपर्युक्त व्युत्पत्ति के आधार पर "तप" शब्द के अन्तर्गत समाहित करना होगा ?

नि सन्देह। अग्नि एवं सूर्य का आतप भी तप ही है, किन्तु आगमिक पृष्ठो पर वर्णित तप शब्द यौगिक (व्युत्पत्ति मूलक) ही न होकर, किन्ही रूढ-विशेष अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। महान् दार्शनिक आचार्य हेमचन्द्राचार्य अपने 'योग शास्त्र' मे तप की विवेचना करते हुए कहते है—

सदोपमपि दीप्तेन सुवर्ण वह्निना यथा
तपोऽग्निना तप्यमानस्तथा जीवो विशुद्ध यति।।

वाणी - संयम

साधक मे विनय गुण की जितनी आवश्यकता होती है, विनय गुण के पोषण के लिये उतनी ही अल्पभाषिता की भी आवश्यकता होती है। अधिक वाचाल व्यक्ति न विनीत बन सकता है, न साधना मे ही गति ला सकता है। इस दृष्टि से साधक के लिए कहा गया है कि—"अप्प भासिज्ज संजए" अर्थात्—संयत साधक बहुत अल्प भाषी हो और जो कुछ साधना काल मे उसे बोलना पड़े वह भी "हियमाणु लोमिय" हित, मित एव अनुकूल वचन हो। अधिक बोलने वाले व्यक्ति के मुँह से कई बार ऐसे शब्द निकल जाते है जो अनर्थकर होते है और साधक को साध्य तक पहुँचने मे बाधक बन जाते है। अत यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि जो जितना विनम्र होगा, निश्चित ही अल्प भाषी भी होगा। और यह तथ्य पूर्ण सत्य भी है। हमारे श्रद्धेय चरित-नायक अपने उस साधना-काल मे इतने अधिक मौन साधक एव अल्पभाषी रहे है कि उस समय कई श्रावको की तो यह धारणा बन गई कि मुनि श्री नानालालजी विकास नही कर सकेंगे। एकदम एकान्त मे मौन लेकर गूंगे की तरह बैठे रहते है, न किसी से परिचय साधते है और न किसी से कुछ बात-चीत ही करते हैं, किन्तु उनकी वह अल्पभाषिता एव मौन साधना कितनी गूढ थी, हम अपनी सामान्य बुद्धि से उसके लिए इतना ही सोच सकते है। हमारी बुद्धि महावीर-दर्शन की उस गहराई तक नही पहुँच पाती है, जहाँ प्रभु महावीर ने कहा है—साधक साधना की उच्च कोटि पर तभी पहुँच सकता है, जबकि वह "अहिस्सरे सया दन्ते" अल्प हसनशील एव इन्द्रिय दान्त हो। आभ्यन्तर तप के तपस्वी धाय मातृपद विभूषित कर्मठ सेवाभावी मुनि श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० कई बार फरमाया करते है कि "सम्मेलन आदि के अवसरो पर कई बडे-बडे दिग्गज आचार्य एव मुनियो के दर्शनो का अवसर मिला और अधिकाश मे मैंने पाया कि वे किसी-न-किसी रूप मे हँसी-मजाक कर ही लेते थे, किन्तु अपने बडे गुरु भ्राता मुनि श्री नानालालजी (चरितनायक) मे मैंने कभी भी किसी भी प्रकार की हँसी-मजाक और बढ चढ कर बोलने की वृत्ति नही देखी और मैं इसी से तथा इनकी अगाध चरित्र-निष्ठा से, बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ।" कहने का अर्थ यह है कि जैसे हमारे चरितनायक की विनय-वृत्ति प्रसिद्ध रही थी, वैसे ही इनकी हँसी-मजाक से दूर रहने और अल्प भाषण के गुणो की सौरभ भी तत्कालीन समस्त सन्त-मण्डली पर

घडियो मे देह एव देह पोषक पदार्थो का त्याग करना अनशन तप है, जिसे शास्त्रीय शब्दो मे क्रमश· इत्वरिक अथवा यावत्कथिक तप कहते है ।

(२) **ऊनोदरी** .—साधना एव आत्म शुद्धि की दृष्टि से भूख से कम खाना, वस्त्र पात्रादि उपकरण आवश्यकता से कम रखना, ऊनोदरी तप कहा गया है । इसके द्रव्य और भाव दो भेद किए गए है । आहार-उपकरण आदि की न्यूनता द्रव्य-ऊनोदरी है एव क्रोध, अहकार, असूया आदि जीवनगत दोषो को कम करते जाना भाव-ऊनोदरी तप माना गया है ।

(४) **भिक्षाचरी** :—पूर्ण अहिसक वृत्ति के निर्वहन के लिए मधुकर वृत्ति के अनुसार साध्वोचित्त मर्यादा मे भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करना । विशेष रूप से इसका सम्बन्ध श्रमण जीवन के साथ है । अदीनवृत्ति के साथ भिक्षाचर्या अह पर विजय प्राप्त करने का आध्यात्मिक प्रयास (अनुष्ठान) है ।

(४) **रस-परित्याग** .—रसनेन्द्रिय का निग्रह करना । घृत, दुग्ध, मिष्ठान्न आदि गरिष्ठ पदार्थो का यथाशक्ति परित्याग करना । राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के द्वारा इस पर विशेष बल दिया गया है । उन्होने इसे अस्वाद नामक व्रत के रूप मे स्वीकारा है ।

(५) **कायाक्लेश** :—कायाक्लेश-देह तितिक्षा के रूप मे शरीर को साधना, शीत-उष्ण आदि कष्टो को सहना, पद्मासन-वीरासन आदि विशेष आसनो से देह को ज्ञान पूर्वक अनासक्ति योग की उपलब्धि के लिए तितिक्षित करना । शरीर–शृ गार, आदि का परित्याग एव केश-लु चन आदि सभी काया-क्लेश के अन्तर्गत आते है ।

(६) **प्रतिसंलीनता** .—इन्द्रियो को निगृहीत करना । उन्हे अभीष्ट शब्द, रूप, गध, रस एव स्पर्श आदि विषयो से रोकना । क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कापायिक विकारो का शमन करना । मन, वाणी एव शरीर की अप्रशस्त प्रवृत्ति को रोकना तथा निर्विकार एव एकान्त साधना-योग्य स्थान मे निवास करना प्रतिसलीनता अर्थात्— आत्म तल्लीनता तप है ।

बाह्य तप के समान ही आभ्यन्तर तप के भी ६ प्रकार है, जिनकी सामान्य विवेचना इस प्रकार है—

(१) प्रायश्चित (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान (६) कायोत्सर्ग-व्युत्सर्ग

हम न तो अपनी उद्दाम यशोलिप्सा का दमन कर उतनी लम्बी अवधि तक गुरु चरणों के समीप रह सकते है, और न अनन्य भाव से आज्ञा-आराधना पूर्वक गुरु-सेवा ही कर सकते है।

अधुनातन शिष्य समुदाय की ओर यदि हमारी दृष्टि जाती है तो अधिकाशत परिलक्षित होता है कि उनमे आगम-कथित विनय के लक्षणों के विपरीत अविनय के लक्षण ही अधिक पाए जाते है। प्रभु महावीर ने अविनीत शिष्य के लक्षणो का भी स्पष्ट सकेत किया है। वे आगम वाक्य इस प्रकार है—

"अह चोद्दसहि ठाणेहि वट्टमाणेउ सजए।
अविणीए वुच्चइ सो उ निव्वाण च न गच्छइ॥"

अभिक्खण कोही हवइ, पबन्ध च पकुव्वइ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुय लद्धूण मज्जइ।
अवि पाव-परिक्खेवी, अविमित्तेसु कुप्पइ।
सुप्पिय स्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावय॥
पइण्णवाई दुहिल्ले, थद्धे, लुद्धे अणिग्गहे।
असविभागी अवियत्ते, अवणीए त्ति वुच्चइ।

अर्थात् निम्नोक्त चतुर्दश स्थानो मे वर्तमान सयत अविनीत कहलाता है जो विनय धर्म की आराधना के अभाव मे मोक्ष मार्ग का आराधक होना तो दूर रहा, नैतिक-व्यावहारिक शिक्षा का भी अधिकारी नही बन सकता है। अविनीत के वे चौदह भेद इस प्रकार है—

(१) अभिक्षण क्रोध—अर्थात् बात-बात पर क्रोध करना, नाक-भौह सिकोडना, सहयोगी साथी की छोटी-छोटी बातो पर झुंझला उठना एव दिन भर जलते-कुढते रहना।

(२) क्लेशोत्पादक वचनो का प्रयोग कर सघ, परिवार, समाज एव राष्ट्र मे सघर्ष उत्पन्न करना एव लडाई-झगडा उत्पन्न करने वाली बाते करते रहना।

(३) मैत्री भावना का वमन करना अर्थात् तुच्छ स्वार्थो के पीछे मैत्री भावनाओ को तिलाजलि देकर मित्रता को छिन्न-भिन्न कर देना।

(४) थोडा-सा श्रुत-ज्ञान उपलब्ध हो जाने पर अहकार मे फूल उठना कि मेरे समान कौन आगमवेत्ता है, अर्थात् पल्लवग्राही ज्ञान से अपने-आपको बहुत बडा पण्डित मानना।

"इच्छा निरोधस्तप"

अर्थात् सम्पूर्ण इच्छाओ, दुर्दान्त कामनाओ एवं दहकती हुई वासनाओ का निरोध करना ही तप है। मानव जीवन की कठिनाइयो एव दुर्वलताओ का यदि गभीरता पूर्वक अध्ययन किया जाय, तो इस सत्य से इन्कार नही किया जा सकता है कि असीम इच्छा, कामना एव वासना ही मानव मन की सब से वडी दुर्बलता है। इस दुर्बलता के कारण ही अनन्त शक्तियो का पुञ्ज होते हुए भी मानव अपने आपको दीन, हीन एव दरिद्र मान रहा है। मणि-रत्नो एव धन के आडम्बर पर बैठा हुआ भी यदि व्यक्ति अपने को अकिचन (भिखारी) मान रहा हो, तो इससे बढकर जीवन की और क्षुद्र वृत्ति एव विडम्वना क्या हो सकती है? इस विडम्बना का कारण एक ही है—मानव-मन की दुर्दान्त, नि:-सीम एव अपूरणीय इच्छाएँ। तप का सूर्य उस इच्छा रूपी तमिस्रा को निरस्त कर देता है। इच्छाओ की इस सम्पूर्ण विडम्वना को तप की अग्नि भस्मसात कर देती है, और इन्ही अर्थो मे इच्छा निरोधस्तप की परिभाषा सार्थक होती है। तप की उपर्युक्त भावना की विवेचना का फलित यह है कि प्रभु महावीर के दर्शन मे ज्ञान-दर्शन एव चारित्र की तरह तप को भी साधना का एक महत्त्वपूर्ण अग माना गया है। किन्तु यह केवल अनशन रूप ही नही है, जैसा कि आज रूढ हो गया है। अनशन भी एक प्रकार का तप है, किन्तु वही तप है, ऐसा मानना समुचित नही। आज के परिवेश मे तप सिर्फ अनशन मात्र रह गया है। आज जहा-कही भी तप का किवा तपोत्सव का नाम आता है, हमारी दृष्टि शीघ्र ही किसी मासखमण आदि लम्बे अनशन तप की ओर चली जाती है। शेष एकादश तप के भेद हमारी दृष्टि से ओझल हो रहे है। श्रमण परम्परा मे तो फिर भी अन्य तपो-भेदो की ओर कुछ रुचि रही है, किन्तु श्रावक साधको मे उनका अनुशीलन तो दूर रहा, परिवोध भी नाम शेष रह गया है।

हमारे श्रद्धेय चरितनायक के विषय मे पूर्व मे लिखा जा चुका है कि उन्होने सयम स्वीकार करते ही अपनी साधना के तीन उद्देश्य निश्चित किये थे। ज्ञान-आराधना, सयम-साधना एव तपोभावना। दो दृष्टि बिन्दुओ पर तो विवेचना प्रस्तुत की जा चुकी है। तीसरी तपो भावना का विवेचन भी विनय, विवेक, आदि कुछ प्रकरणो मे आ ही चुका है। फिर भी इस प्रकरण को स्वतत्र रूप से छूने का मेरा उद्देश्य यह है कि तप के मौलिक अर्थो से हम अनभिज्ञ न रहे।

हमारे चरितनायक के जीवन-वृत्त मे न्यूनाधिक रूप मे तप के सभी भेदो की आराधना यत्र-तत्र परिलक्षित होती है, किन्तु कुछ ऐसी विशेष आराधनाए है, जिनके प्रति आपकी विशेष रुचि होने के कारण आप उनकी गहराई मे पहुचे है।

की ओर अग्रसर होते हुए, जितने महान् बनते गए, उतने ही अधिकाधिक विनम्र भी बनते गए। बहुधा होता यह है कि व्यक्ति विद्वता, पद, प्रतिष्ठा आदि मे जितना ऊँचा उठता जाता है, उतना अह उसके भीतर पल्लवित होता जाता है और धीरे-धीरे उसकी विनम्रता छूमन्तर हो जाती है। किन्तु आपके विकास का पथ इसका अपवाद रहा है। आप वृक्ष के विकास की तरह ऊपर मे ज्यो-ज्यो महान्, यशस्वी, प्रख्यात एव प्रतिष्ठित होते गए त्यो-त्यो आपकी विनम्रता, वृक्ष की भीतर की जडो की तरह पूरे विकास की ओर बढती गई और उसकी फलश्रुति तो आज भी हम उस समय देख सकते है, जब आप अपने ही एक छोटे-से-छोटे शिष्य के समक्ष किस सुजनता का व्यवहार करते है, और किस सौहार्दपूर्ण मधुर गिरा मे उसकी अन्तर्चेतना को छू जाते है।

कहने की अपेक्षा करने मे आनन्द

हमारे श्रद्धेय चरितनायक की विनम्रता की अतिशयता की अभिव्यक्ति एक और गुण की ओर इगित करती है, और वह है—कोई भी कार्य किसी से कहकर करवाने की अपेक्षा खुद करने मे आनन्द की अनुभूति मानना।

आज भी इतने ऊँचे आचार्यत्व के गौरवमय पद से विभूषित एव इतनी इर्द-गिर्द बैठी हुई शिष्य सम्पदा के होते हुए भी सदा अप्रमत्त भाव की साधना मे रत रहते हुए कोई पुस्तक भी समीप की आलमारी आदि से उठाना हो तो किसी को सूचित नही करते हुए, स्वय ही उठकर ले आने का प्रयत्न करेंगे।

इस बात पर मेरा कई बार विनम्र तर्क [illegible] मे होता रहा है कि हम लोग इतने समीप बैठे रहते हैं और [illegible] के बीच आसन से उठ खडे होते है तो क्या यह [illegible] अपमान नही होगा? दूसरी ओर, आपके उठने पर हम [illegible] ही पडेगा, तो फिर आपके उठने से हम सभी को [illegible] कष्ट हुआ। आचार्य देव मधुर स्मिति के साथ [illegible] मधुर हास्य बिखेर देते हैं कि—"मैं भी तुम्हारा [illegible] प्रमादी (आलसी) बनाना चाहते हो? [illegible] आवश्यक भी नही है और होना पडे तो [illegible]।

• • •

स्पर्श) की ओर जाने से रोकना अर्थात् इन्द्रियानुकूल विषयों में आसक्ति, राग-भाव एव प्रतिकूल विषयो मे घृणा-द्वेषभाव का आविर्भाव न होने देने की साधना।

(२) **६-६ कषाय प्रतिसंलीनता** :—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारो काषायिक दुर्गुणो के प्रति सतत जागरूक रहना, इनकी उत्पत्ति को निरस्त करने का प्रयास करना।

(३) **१०-१२ योग प्रतिसंलीनता** :—मन, वचन एव शरीर के अशुभ व्यापारो पर नियन्त्रण रखना। अपनी मानसिक एव कायिक दुष्प्रवृत्तियो के प्रति सजग रहते हुए इन तीनो योगो को निरन्तर सद्विचार, निर्दोप, निरवद्य सत्य भाषा एव सदनुष्ठान मे सलग्न रखना क्रमश. मनोवाचकाय प्रति सलीनता है।

(४) **१३ विविक्त शयनासन सेवनता** .—साधना के लिए सर्वथा उपयुक्त, एकान्त स्थान, जहा विपरीत लिगी का आवागमन न हो, मे रहना।

प्रतिसलीनता की उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रति-सलीनता तप का साधक बाहर से सिमटकर अपनी भीतर की यात्रा प्रारम्भ कर देता है। इन्द्रियो के विषय, कषायो की उद्दामता एव योगो की दुष्प्रवृत्ति से ऊपर उठकर आत्मानुसधान मे सचेष्ट होता है।

यदि ससार की समस्त विषमताओ, सघर्षो एव विवादो की जडो का गभीरता से अवलोकन करे, तो वे है हमारी इन्द्रियासक्ति एव काषायिक प्रचण्डता। मनोनुकूल इन्द्रिय- विषयो, मौज, शौक, आराम के साधनो की उपलब्धि हेतु ही राग-द्वेष की ज्वालाए सुलगती है और उन्ही के द्वारा सारे सघर्ष पैदा होते है। यदि इन्द्रियजय का तप स्वीकार कर लिया जाय तो बाहर की सभी अभीप्साए समाप्त हो जाती है। और साधक तज्जनित सघर्षों से उपराम पाकर स्वय को पहचानने मे सक्षम हो जाता है। वहा पहुचकर तप की परिभाषा सार्थक हो जाती है।

हमारे श्रद्धेय चरितनायक ने तपोजन्य अनुभूति के माध्यम से अन्तर्जगत की सैर करने हेतु प्रतिसलीनता तप को अपने जीवन का अभिन्न अग बना लिया। आज इन्द्रियाकर्षण के इतने साधन-स्रोत उपलब्ध है कि ऐसे युग मे इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखना लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर है। किन्तु चरितनायक ने साधना मे पैर धरते ही अपने को इस ओर ढालने का पूर्ण प्रयास प्रारम्भ कर दिया।

पाठक यह पढ चुके है कि चरितनायक अपने जीवन के उष काल से ही एकान्त प्रिय रहे है। और यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि इन्द्रियासक्ति पर विजय

अग्नि की तपनशीलता स्वर्ण को तपा कर उसे शुद्ध कुन्दन रूप मे परिणित कर देती है। ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक अर्थों मे प्रयुक्त "तप" आत्मा को तपा कर उसकी समस्त मलिनता को दग्ध कर देता है।

इसी विषय को स्पष्ट करते हुए जैन दर्शन के उद्भट दार्शनिक आचार्य शय्यभव ने 'दशवैकालिक' सूत्र मे कहा है—

"तवसा धुणइ पुराण-पावग"

अर्थात्—तप एक ऐसी उष्मा है, जिसके द्वारा आत्मा पर लगा हुआ सम्पूर्ण कलमष ध्वस्त हो जाता है। तप की इस अलौकिक महत्ता एव क्षमता को सभी ने स्वीकार किया है। किन्तु आज के परिवेश मे तप की जो एक सामान्य अवधारणा वन गई है उसने तप की मौलिक विशेषताओ को वहुत सीमित कर दिया है। किन्ही-किन्ही चिन्तको ने तो यहा तक कह दिया है कि "तपो नानशनात्परम्" अर्थात् अनशन (अन्नादि का परित्याग) से वढकर कोई तप नही है, किन्तु प्रभु महावीर के दर्शन मे तप की वहुत गूट विवेचना हुई है। वहाँ तप को अन्तरात्मा की गहराई तक पहुँचने का मार्ग कहा गया है। अतएव प्रभु महावीर की दार्शनिक विवेचना मे "तवेसु वा उत्तम वभचेर" (सूत्रकृताग अ० ६-२३) के सूक्तो द्वारा ब्रह्मचर्य को सव तपो मे श्रेष्ठ तप माना है। यदि हम तप का सक्षिप्त विवेचन करे तो वह होगा—अन्तर्जगत की यात्रा का पथ। जैसे स्वर्ण तपकर अपने शुद्ध रूप मे उपस्थित हो जाता है, उसी प्रकार तप की भट्टी मे तपकर आत्मा भी अपने मौलिक शुद्ध रूप मे तल्लीन हो जाती है। किन्तु वह तप अनशन तक ही सीमित न होकर, विविध विधाओ मे प्रस्तुत हुआ है। अनशन भी तप की एक विधा है। जैनागमो के परिशोलन से ज्ञात होता है कि तप शब्द का क्षेत्र वडा विस्तृत है। वहा तप को १२ भेदो मे विभक्त किया है। औपपातिक (उपाग सूत्र) एव उत्तराध्ययन सूत्र मे तप को सक्षेप मे दो भागो आभ्यन्तर एव वाह्य मे विभक्त कर, पुन एक-एक को छ छ भागो मे विभाजित किया गया है। इस प्रकार तप के वारह मौलिक भेद हो जाते है।

वाह्य तप के ६ प्रकार है, जिनकी सामान्य विवेचना इस प्रकार है—

(१) अनशन (२) ऊनोदरी (३) भिक्षाचरी (४) रस–परित्याग (५) कायाक्लेश (६) प्रतिसलीनता।

(१) **अनशन** —मर्यादित समय अथवा मरणासन्न स्थिति होने पर सपूर्ण जीवन के लिये आहार-पानी (अन्न-जल) का त्याग कर देना। अर्थात् उपवास, वेले, तेले आदि का तपोनुष्ठान करना एव जीवन की चरम

भी हम चरितनायक की जीवनचर्या को निकट से देखकर लगा सकते है। इस प्रकार बाह्य तप मे प्रतिसलीनता के आप विशिष्ट साधक रहे हैं।

पूर्व सकेतानुसार आभ्यन्तर तप मे आपने विनय, वैयावृत्य और ध्यान को अपनी साधना का अग बनाया। विनय का विवेचन विनय–विवेक प्रकरण मे पाठको ने पढा ही है।

वैयावृत्य-सेवा भावना

"वैयावृत्य" जैन दर्शन का एक मौलिक एव पारिभाषिक शब्द है, जो सेवा के विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। वैसे वैयावृत्य का सीधा शाब्दिक अर्थ होता है—हाथ-पाव आदि दबाकर शारीरिक सेवा करना। किन्तु व्यापक अर्थों मे इसे शारीरिक सीमा मे नही बाधा जा सकता है। मनसा, वाचा, कर्मणा सेव्य के प्रति समर्पित हो जाना सेवा का आन्तरिक रूप है। सेव्य और सेवक का सबध गुरु-शिष्य एव भगवान् और भक्त के सबध से अधिक गहरा होता है। भगवान् के प्रति समर्पणा मे केवल समर्पण रहता है, सामर्थ्य नही। अत वहाँ केवल भावेन समर्पणा होगी, वाचा और कर्मणा की वहा अनिवार्यता नही है। किन्तु सेव्य सेवक समुपस्थित होते है, अत वहा मन, वाणी, और कर्म तीनो का समन्वय होता है। वैयावृत्य–सेवा के पात्रो की विवेचना करते हुए आगमकारो ने कहा है कि वैसे तो सेवा के कई पात्र हो सकते है, किन्तु गुरु, रोगी, वृद्ध, ग्लान, शैक्ष, (नव दीक्षित) आचार्य एव उपाध्याय सेवा के मुख्य पात्र है। मनसा, वाचा, कर्मणा अनन्य भाव से इनकी सेवा करने वाला व्यक्ति सेवा-धर्म का आराधक उपासक होता है, किन्तु सेवा धर्म की आराधना सामान्य बात नही है। अच्छे-अच्छे योगी और तपस्वी भी सेवा वृत्ति पर स्थिर नही रह पाते है। केवल शरीर से गुरु, ग्लान आदि की सेवा कर लेना अलग बात है और मन से उस सेवा-साधना पर स्थिर रहना दूसरी बात है। धर्म की महानता एव दुरुहता का विवेचन करते हुए सेवक की दु स्थिति का नीतिकारो ने अति सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है—

मौनान्मूक. प्रवचन पटुर्वातुलो जल्पको वा,
धृष्ट पार्श्वेवसति नियत दूरतश्चाप्रगलभ .
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते, प्रायशो नाभिजात .,
सेवा धर्म परम गहनो, योगिनामप्यगम्य ॥

सेवक पर सेव्य द्वारा किस-किस प्रकार से शब्दो की बौछार होती है और उसके जीवन की हर क्रिया की प्रतिक्रिया किस प्रकार दु खद बन जाती है, यह उपर्युक्त नीति श्लोक का प्रतिपादन है। उसे शब्द बाणो से बिधते रहना पडता है. उसकी प्रत्येक क्रिया दुरतिक्रम ही पुकारी जाती है। उसका मौन गूगापन

(१) **प्रायश्चित :**—आत्म-विशुद्धि के लिए, की गई भूलो के प्रति पश्चाताप पूर्वक आलोचन एव तदनुरूप कोई दण्ड ग्रहण करना प्रायश्चित है। भूलो एव दोषो की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए सचेष्ट होना इसका आशय है।

(२) **विनय** —अहभाव के त्याग के साथ गुरुजनो एव गुण श्रेष्ठो का सम्मान-सत्कार करना, आसन-प्रदान आदि के द्वारा उनकी शुश्रूषा करना, उनकी आज्ञाओ की आराधना करना, आदि विनय है। जैन दर्शन मे विनय को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसकी विशेष विवेचना "विनय-विवेक" प्रकरण मे देखे।

(३) **वैयावृत्य** —निष्काम भावना से गुरुजनो, वृद्धो, नवदीक्षित, तपस्वी, रुग्ण, आदि साधको की सेवा मे तल्लीन रहना अर्थात् उन्हे हाथ-पाव दबाने एव औषधि आदि के द्वारा सहयोग करना। सयम की आराधना मे उनका यथाशक्ति सहयोगी बनना, वैयावृत्य कहा जाता है।

(४) **स्वाध्याय** —आगमो (शास्त्रो) के अध्ययन-अध्यापन मे तल्लीन रहना और तत् द्वारा आत्मानुलक्षी अध्ययन, स्वरूप-बोध के प्रति जागरूक होना। स्वाध्याय पाच प्रकार का कहा गया है —(१) वाचना-स्वय पढना एव शिष्यादि को पढाना, (२) पृच्छना–किसी भी प्रकार की जिज्ञासा होने पर तन्निवृत्यर्थ प्रश्न पूछना। (३) परिवर्तना–अर्थात् ग्रन्थो का पुनरावर्तन करना, (४) अनुप्रेक्षा–किसी भी एक सूत्र को लेकर उस पर चिन्तन-मनन करना, और (५) धर्म कथा, धर्म प्रभावना हेतु उपदेश देना। ये स्वाध्याय के पाच अवान्तर भेद माने गए है।

(५) **ध्यान** —किसी भी विषय पर चित्त की एकाग्रता को अर्थात् चिन्तन मे निरन्तर एक ही प्रकार के विचारो को प्रवाहित होने को ध्यान कहा गया है। ध्यान के आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये चार भेद है। दु ख प्रधान एकाग्रता आर्त्त ध्यान, हिसा प्रधान एकाग्रता रौद्र ध्यान, धर्म चिन्तन-प्रधान एकाग्रता धर्म ध्यान तथा आत्म-चिन्तन प्रधान एकाग्रता शुक्ल ध्यान है।

(६) **व्युत्सर्ग** —ममत्व भाव का परित्याग। कायिक निश्चलता के साथ आहार, शरीर और उपकरण, आदि के ममत्व का परित्याग द्रव्य-व्युत्सर्ग और क्रोधादि विकारो को छोडना भाव-व्युत्सर्ग कहलाता है।

इस प्रकार तप के बारह भेद होते हुए भी यदि हम उनकी वस्तुनिष्ठ गभीर सक्षिप्त परिभाषा करना चाहे तो वह होगी—

अग था "ध्यान" । साधना-क्षेत्र मे प्रवेश करने के पश्चात् उनकी सभी दैनदिन क्रियाए ध्यान से अनुप्राणित होती थी । उनकी सयमानुष्ठान की हर क्रिया मे एकावधानता होती थी अथवा यो कहे कि उनका सपूर्ण जीवन ध्यान योग का जीवन वन गया था । उनकी चिन्तन धारा सदा प्रशस्त ध्यान मे प्रवाहित रहती थी । साधना की विभिन्न विधियो मे श्रद्धेय चरितनायक ने ध्यान साधना को सबसे अधिक सबल एव सफल विधि माना और उसी के आधार पर उन्होने अपने सयम मार्ग मे समुत्कर्ष प्राप्त किया । उनकी प्रारम्भिक ध्यान-साधना श्वासानुसन्धान और प्राणायाम से गुजरती हुई आज्ञाचक्र की दुरुहता को लाघ-कर सहज योग मे स्थिर हुई है, जो आज तक अबाधगति से विकासमान है । वैसे साधना काल के शैशव और यौवन मे अभ्यास के रूप मे आप श्री ने ध्यान की अनेक विधियो को हृदयगम किया और क्रमश विकास की ओर अग्रसर होते हुए आगमोक्त पदस्थ, पिण्डस्थ, आदि ध्यान-विधियो के द्वारा ध्यान साधना की प्रौढ अवस्था को प्राप्त किया । आज तो आपकी ध्यान साधना इतनी सूक्षम एव गहरी बन गई है कि जब ध्यान-साधना मे तल्लीन होते है तो देखनेवाले की निष्कम्प सुस्थिर महायोगी की ध्यान मुद्रा सम्बन्धी कल्पनाए ही साकार फलीभूत दिखती है ।

यद्यपि विभिन्न साधनागो मे ध्यानाग को अत्यन्त दु साध्य साधन माना जाता है, किन्तु श्रद्धेय चरितनायक का जीवन इसका ज्वलत प्रमाण है कि ध्यान-साधना क्रमश. शनै -शनै कितनी सुगम और सुबोध बनायी जा सकती है । चु कि ध्यान-साधना प्रयोगात्मक अनुभूतिमूलक साधना है, अत· किसी भी महान् पुरुप की ध्यान-प्रक्रिया को कोई लेखक अभिव्यजना का विषय नही वना सकता । प्रकाश अनुभूति का विषय है, उसे शब्दोल्लेख से किसी को हृदयगम नही कराया जा सकता । एक जन्मान्ध को लाख प्रयास करने पर भी प्रकाश के रूप, रग अथवा आकृति का बोध नही कराया जा सकता । ठीक इसी प्रकार किसी महा चेतना की ध्यानगत अनुभूति का रसास्वादन किसी भिन्न व्यक्ति को कराना, शब्द की सामर्थ्य के बाहर है, अस्तु । चरितनायक की ध्यान साधना का अनुभूतिमूलक चिन्तन हमारी शब्द शृ खला मे वधने से अतीत है । फिर भी ध्यान की एक सामान्य आगमोक्त क्रिया-प्रक्रिया विधि एव भेद-प्रभेदो का निदर्शन हम यहाँ सक्षेप मे प्रस्तुत कर रहे है, जिससे ध्यान-साधक को साधना का सुगम दिशाबोध प्राप्त हो सके ।

• • •

अनशन एव ऊनोदरी तप के तो आप दीक्षा के पूर्व मे ही साधक रहे है। आधी-आधी एव एक चौथाई रोटी पर पूरा दिन व्यतीत कर देना, यह तो आपके वैराग्य जीवन की साधना रही है। किन्तु सयम स्वीकार करने के पश्चात् आपने एक दूसरा प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। आपने एक दृढ धारणा सी बना ली कि साधु मर्यादा के अनुसार १२ ३० बजे तक गोचरी (भिक्षा) आ जावे तो भोजन कर लेना, अन्यथा नही। तदनुसार प्रात काल दुग्धादि कुछ भी नही लिया जाता और निर्धारित समय पर भिक्षा नही आने पर आपको कई बार अपनी प्रतिज्ञानुसार सायकाल लगभग ५ बजे तक निराहार ही रहना पडता था। इधर ध्यान, सेवा आदि कार्यों मे शारीरिकि, मानसिक श्रम तो करना ही पडता था। फलस्वरूप शारीरिक दुर्बलता का बढ जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु आप शारीरिक दुर्बलता का कुछ भी विचार नही करते हुए, अपनी तप साधना मे तल्लीन रहते।

यह तप साधना तो आपकी देहातितिक्षा की सामान्य साधना ही रही है। किन्तु अनुभूति बोध तक पहुचने के लिए आपकी महत्त्वपूर्ण साधना रही है बाह्य तप मे प्रतिसलीनता एव आभ्यन्तर तप मे विनय, वैयावृत्य एव ध्यान।

यह कहा जा चुका है कि महावीर के दर्शन मे तप का मौलिक अर्थ होता है अन्तर्जगत् की यात्रा अर्थात् एक सच्चा तपस्वी अन्तर्गगन का पथिक होता है। अन्तर्जगत् की यात्रा के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पथिक अपनी ऊपरी दृष्टि एवं बाह्य वृत्तियो को नियत्रित कर भीतर से झाकने का प्रयास करे। आगम के पृष्ठो पर कहा गया है कि—

"नो इन्दिय गेज्झ अमुत्त भावा" उत्त० १४-१९

आत्मा की सत्ता इन्द्रिय ग्राह्य नही है। अत आत्मा को पाने के लिए यह नितान्त वाच्छनीय है कि साधक इन्द्रियो से ऊपर उठकर अनभूति के तल तक पहुचने का प्रयास करे।

इस अभ्यास हेतु प्रतिसलीनता को तप के भेदो मे गर्भित किया गया है। इसका सीधा-सा अर्थ होता है इन्द्रिय, कषाय एव योगो की प्रवृत्तियो को बहिर्मुखता से मोडकर अन्तर्मुखी बनाना।

प्रतिसलीनता को प्रमुख चार भेदो मे विभाजित कर उसके अवान्तर १३ भेदो का विवेचन आगमिक पृष्ठो पर उपलब्ध होता है, यथा—

(१) **१-५ इन्द्रिय प्रतिसलीनता** '—श्रोत्र इन्द्रिय (कान), चक्षुरिन्द्रिय (आख), घ्राणेन्द्रिय (नाक), रसनेन्द्रिय (जिह्वा) एव स्पर्शनेन्द्रिय इन पाचो इन्द्रियो को अपने-अपने विषयो (शब्द, रूप, गध, रस और

नही, वल्कि महीनो ध्यान-साधना मे बिताये और तद्द्वारा ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि का साक्षात्कार किया।

आधुनिक युग के महान् दार्शनिक एव भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्व पल्ली डॉ० राधाकृष्णन ने ध्यान के विषय मे कहा—"ध्यान चेतना की वह अवस्था है, जहाँ समस्त अनुभूतियाँ एक अनुभूति मे विलीन हो जाती है, विचारो मे सामजस्य आ जाता है, परिधियाँ टूट जाती है और भेद-रेखाएँ मिट जाती है। जीवन और स्वतन्त्रता की इस अखण्ड अनुभूति मे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नही रह जाता तथा जीवात्मा परमात्मा बन जाता है।"

ध्यान मस्तिष्क की रिक्तता अथवा सम्पूर्ण विचारो का अभाव नही है वरन् इसमे हम जगत् की जिम्मेदारियों एव कल्पनाओ से अपने मन को हटा लेते है, उसे चिन्तन मे गहरा डूबने देते है और जीवन तथा कार्य के बोझ से शातिदायी मुक्ति की भावना तक ले जाते है, और उसका स्वाद लेते है। केवल प्रवल प्रयत्न से ही ध्यान की यह स्थिति प्राप्त होती है।

ध्यान की परिभाषा

यह कहा जा चुका है कि साधना मे ध्यान की उपादेयता को प्रायः सभी दर्शनो मे निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है, किन्तु इसकी परिभाषाएँ एव व्याख्याएँ विभिन्न रूपो मे प्रस्तुत की गई है। आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने ध्यान की परिभाषा निश्चित करते हुए कहा है—अपनी जागृत अवस्था में भाव-मन विभिन्न प्रकार के बोध प्राप्त करता रहता है। उनमे से कुछ वस्तुएँ चेतना-केन्द्र के अधिक निकट होती है, कुछ उसके आसपास घूमती है और कुछ उसके किनारे पर घूमती रहती है। जिस वस्तु पर चेतना का प्रकाश केन्द्रित हो जाता है वह वस्तु ध्यान का विषय (ध्येय) बन जाती है। अत· किसी भी पदार्थ या विपय पर चेतना के प्रकाश का केन्द्रित हो जाना "ध्यान" कहलाता है। इस प्रकार ध्यान का अर्थ हुआ वस्तु (ध्येय) पर चेतना-प्रकाश का केन्द्रित हो जाना। जैन तत्त्व-दृष्टि से इसे ही, एक पुद्गल निविष्ट दृष्टि कहा गया है। वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने ध्यान को पारिभाषित करते हुए कहा है—

"उत्तम सहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्।"

अर्थात् उत्तम शारीरिक सगठन पूर्वक चित्त का किसी एक विषय पर केन्द्रित होना "ध्यान" है। इसे थोडी सरल भापा मे कहे तो मन का किसी एक विपय पर स्थिर हो जाना, एकाग्र हो जाना ध्यान है।

योग दर्शन के प्रणेता महर्पि पतजलि ने चित्त वृत्तियो के निरोध सम्वन्धी पुरुषार्थ को योग कहा है—"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।" जीवन-शोधियो ने

प्राप्त किये विना व्यक्ति एकान्त प्रिय नही हो सकता है। अत प्रतिसलीनता तप की आराधना चरितनायक मे शैशव काल से ही नैसर्गिक रूप से रही है। इसके अतिरिक्त अपनी साधना के समुज्ज्वल अतीत मे मन एव इन्द्रियो को इतना अधिक नियन्त्रित कर लिया कि आपकी प्रत्येक सयमीय प्रवृत्ति मे सहज योग की साधना झलकती है। उदाहरण के लिए हम भोजन की प्रवृत्ति को ही ले ले। यदा-कदा विना नमक की कोई सब्जी आ गई और विना किसी आस्वाद के आपने उसका उपयोग कर लिया और वाद मे हमने जव चखा तो लगा कि इसमे नमक नही है। जव आचार्य देव से इसके विपय मे पूछा जाता तो सहज छोटा सा उत्तर मिल जाता "भाई, उपयोग नही रखा"। इसी प्रकार कई वार ऐसा प्रसग आया कि, दूध पीने के पश्चात् हम लोग पूछ लेते, भगवन्! इसमे मीठा था कि नही ? तो वही छोटा सा उत्तर देते "उपयोग नही रक्खा, मैं तो पी गया।" ये कुछ तथ्यपूर्ण सत्य है जो चरितनायक की इन्द्रिय विजय के परिचायक हैं। मेरी अपनी दृष्टि मे सवसे महत्त्वपूर्ण साधना तो आपकी "दृष्टि विजय" की रही। साधक के लिए यही सवसे कठोर किन्तु महत्त्वपूर्ण साधना है कि रूप-सौन्दर्य समक्ष हो, पर दृष्टि मे किंचित मात्र भी विकार न आने देना। अध्यात्मयोगी श्रीमद् राजचन्द्र जी ने तो यहा तक कह दिया कि—

> निरखीने नव यौवना, लेश न विपय निदान
> गणे काठनी पूतली, ते भगवान् समान।"

अखण्ड ब्रह्मचर्य की परिपूर्ण आराधना के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि व्यक्ति दृष्टि-राग का समूलोच्छेदन कर दे। नीतिकारो के अनुसार "दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेद्योसतामपि" प्राय दृष्टि राग ही ब्रह्मचर्य साधना मे पतन का कारण वनता है। पुराण, आगम एव इतिहास के पृष्ठो को उठाकर देखे तो ज्ञात होगा कि अनेकानेक ऋपि-महर्पि दृष्टि-दोप से दूपित हो पथ से विचलित हो गये। विश्वामित्र जैसे तपस्वी मेनका को देखते ही चिरकाल से सचित साधना को खो वैठे। चरम शरीरी महापुरुप रथनेमी राजीमति के अवलोकन मात्र से अपने आपको भूल जाते है। यही नही, इतिहास के वडे-वडे युद्ध सौन्दर्य-लोलुपता के कारण ही हुए है। दृष्टिराग को जीत पाना सहज नही है, किन्तु अन्य विशेपताओ की तरह श्रद्धेय चरितनायक मे यह गुण भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। आपकी दृष्टि पूर्णरूपेण अपने नियन्त्रण मे रहती है। आपकी आखो मे कभी कोई वैकारिकता नही पा सकता। आपकी साधना के इतनी समुज्ज्वल स्थिति तक पहुचने मे यह "दृष्टि विजय" भी एक मौलिक कारण रहा है।

तप का उपर्युक्त विवेचन, मैं सोचता हू, पाठको को अवश्य अतिशयोक्ति पूर्ण भासित हो सकता है, किन्तु यह तथ्यपूर्ण सत्य है और इसका अनुमान आज

मन्थनपूर्वक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आपने योग को निवृत्ति के सकुचित घेरे से निकाल कर विधि का परिवेश प्रदान किया है, "योगश्चित्त वृत्ति सशोध" योग का अर्थ है चित्त वृत्तियो का संशोधन। जहा सशोधन होगा, दुश्चिन्तन का अवरोध स्वत. सिद्ध हो जाएगा।

वास्तव मे योग की यह परिभाषा अपने आप मे सर्वांगपूर्ण सघटित होती है। क्योकि जैन दर्शन की ही नही, प्रत्येक दर्शन की साधना चित्त शुद्धि एव तद् द्वारा आत्म शुद्धि पर ही बल देती है और योग की इस परिभाषा मे सशुद्धि को केन्द्र माना गया है। सशुद्ध आत्मा ही परमात्म भाव का द्रष्टा एव अनुभोक्ता वनता है। अत. योग की विशुद्धतम परिभाषा "योगश्चित्त वृत्ति सशोध." ही समीचीन सिद्ध होती है।

मन जब तक मन रूप मे है गतिशील रहेगा, सर्वथा शून्य नही हो सकता, क्योकि मनन करना—गतिशीलता उसका अस्तित्वगत गुण है। इस तथ्य को आज का मनोविज्ञान भी स्वीकार कर चुका है, अतः प्राथमिक साधना मे ध्यान अथवा मनोनिग्रह का अर्थ मन की गति को परिवर्तित करना, चिन्तन की दिशा को अन्तर्मुखी एव ऊर्ध्वगामी बनाना, मन को दुर्वृत्ति से हटाकर सद्वृत्तियो मे नियोजित करना, मन को सच्चितन में नियुक्त करना तथा शास्त्रीय भाषा मे मन को अशुभत्व से हटा कर शुभत्व की ओर उन्मुख करना है। इसी दृष्टिकोण से जैन दर्शन की साधना सहज योग की साधना कही जाती है। यहाँ देह के साथ भी कोई हठ की प्रवृत्ति नही होती है। जिस किसी भी आत्म साधक क्रिया मे सलग्न हो, उसी मे एकावधानता ले आना सहज योग की पृष्ठभूमि है। अति सक्षेप मे कहे तो चित्त वृत्तियो का परिशोधन, उदात्तीकरण तथा चेतना-प्रकाश का केन्द्रीकरण सभी ध्यान साधनाओ के अन्तर्गत आ सकता है।

इस प्रकार ध्यान न तो विमुखता है न उन्मुखता है, वह तो सन्मुखता है। चित्त वृत्तियो का स्वचेतना के अभिमुख होना और उसी मे समा जाना ध्यान की चरम उपलब्धि है।

ध्यान के भेद

परिभाषा के अनुसार ही ध्यान के भेद-प्रभेदो के विषय मे भी कोई एक निश्चित परम्परा नही है। विभिन्न दर्शनो मे ध्यान को भिन्न-भिन्न रूपो मे व्याख्यायित एवं विभाजित किया गया है। जैन तत्त्व ज्ञान के अनुसार स्थानाग सूत्र आदि प्राचीन आगमो मे ध्यान के अनेक भेद-प्रभेदो का विविध आयामी विवेचन मिलता है।

है, तो मौन भग वाचालता से कम नही होता। पार्श्व मे बैठना धृष्टता है, निकट आना बाधा है, और दूर रहना निर्लज्जता और काम से जी चुराना है। सहनशीलता और क्षमा तो सीधे भीरुता तथा कुल-पोषित हीनता है। वास्तव मे सेवा-धर्म इतना गहन है कि उस पर योगियो का स्थिर रहना दुरुह है। प्राणायाम, आदि योग-साधना तो, चू कि एकाश्रित है, अत सहज ही की जा सकती है किन्तु सेवा-साधना पर स्थिर रहना अत्यन्त कठिन है। अध्यात्मयोगी-महात्मा श्री आनन्दघन जी ने तो यहा तक कह दिया है कि—

> धार तरवार नी सोयली, दोयली
> चवदवा जिण तणी चरण सेवा।
> धार पर नाचता देख बाजीगरा,
> सेवना धार पर रहे न देवा ॥

अर्थात्—तलवार की धार पर चल पाना एक बार शक्य हो सकता है, किन्तु सेवा की धार पर चल पाना बहुत कठिन है। बाजीघर (नट) तलवार की उस तीक्ष्ण नोक पर चल सकते है, किन्तु सेवा की असि-धारा पर चल पाना अच्छे-अच्छे योगियो के लिये भी सहज नही है।

सेवा की इस असिधारा पर हमारे श्रद्धेय चरितनायक वैसे ही गतिशील रहे हैं, जैसे किसी कोमल पुष्प शय्या का आनन्द ले रहे हो अथवा रेगिस्तान की सुखद बालुका राशि पर पद-सचार कर रहे हो।

जैसा उज्ज्वल पक्ष आपकी ज्ञान कोटि का रहा है, वैसा ही समुज्ज्वल पक्ष आपकी सेवा साधना का भी रहा है। शान्त क्रांति के अग्रदूत सप्तम पट्टधर सम्पूर्ण स्थानकवासी जैन समाज के अप्रतिम आराध्य, जैनाचार्य स्व० श्री गणेशीलालजी म सा की जैसी अनन्य भक्ति पूर्ण सेवा आपने की है, उसे सीमित शब्दो की शृखला मे नही बाधा जा सकता है। उन सेवाओं का यदि संक्षिप्त उल्लेख भी किया जाय तो एक विशालकाय ग्रन्थ तैयार हो सकता है। आपने अपने आराध्य गुरुदेव की सेवा-सुश्रूषा मे अपनी आत्मा की सम्पूर्ण मानसिक और शारीरिक शक्तियो को एक साथ सयोजित कर दिया था और सेवा-साधन मे ही आत्मलीनता की अनुभूति करने लगे थे। स्वर्गीय आचार्य देव की रुग्णावस्था मे की गई अमूल्य एव अनूठी सेवाओ की विवेचना के लिए मैं स्वतन्त्र ग्रन्थ नही तो कम-से-कम स्वतन्त्र प्रकरण का लोभ सवरण नहीं कर पा रहा हूँ। अस्तु, श्रद्धेय चरितनायक द्वारा सेवा की उस असिधारा पर गमनप्रक्रिया का विवेचन हम आगे चलकर करने का प्रयास करेंगे।

ध्यान : अन्तर्जगत् की यात्रा

श्रद्धेय चरितनायक की

आर्त्तध्यान कहते है । दु:ख की उत्पत्ति के मुख्य चार कारण है । अत: आर्त्तध्यान जो दु ख निमित्तक है, स्वभावत: चार कारणो पर अवलबित हो जाता है ।

(१) अनिष्ट वस्तु का संयोग । (२) इष्ट वस्तु का वियोग ।
(३) प्रतिकूल वेदना । (४) काम-भोग अवियोग चिन्ता ।

(१) **अनिष्ट वस्तु का संयोग**—जब अनिष्ट वस्तु का सयोग हो तब तद्भव दु:ख से व्याकुल आत्मा उसे दूर करने के लिये जो निरन्तर चिन्ता करती है, वह अनिष्ट वस्तु सयोग आर्त्तध्यान है ।

(२) **इष्ट वस्तु का वियोग**—उक्तरीत्या किसी प्रिय पदार्थ के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति हेतु अनवरत चिन्ता करना इष्ट वियोग आर्त्त-ध्यान है ।

(३) **प्रतिकूल वेदना**—किसी भी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के उत्पन्न होने पर पीडा से व्याकुल होना एव उससे मुक्त होने के लिए सतत चिन्ता करना, रोग-चिन्ता प्रतिकूल वेदना आर्त्त-ध्यान है ।

(४) **कामभोग अवियोग चिन्ता**—इन्द्रियजनित विषय सुख सदाकाल बने रहे, इनका कभी भी वियोग न हो । किन-किन उपायो से ये स्थायी बने रहे, इस विषयक चिन्ता तथा भोगो की उत्कृष्ट लालसा के कारण अप्राप्य भोग्य सामग्री को प्राप्त करने की तीव्र अभीप्सा अथवा अपने शुद्ध चारित्रिक अनुष्ठान को भोग प्राप्ति के दाव पर लगा देना, निदान अथवा कामभोग अवियोग चिन्ता आर्त्तध्यान है ।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण :—आर्त्तध्यान के उपर्युक्त भेदो की तरह ही जैनागमो मे तत्तद् चिन्ता के समय होने वाले दैहिक परिवर्तन रूप लक्षणो का भी विवेचन मिलता है, तदनुसार आर्त्तध्यान के चार लक्षण बताये गये है :—

(१) आक्रन्दन करना । (२) शोचन ।
(३) अश्रुपात करना । (४) क्लेशयुक्त वचन ।

(१) **आक्रन्दन करना**—तीव्र स्वर से रोना, चीखना, चिल्लाना आदि ।

(२) **शोचन**—शोकाकुल होकर चेहरे पर दीनभाव प्रकट करना, किसी चिन्ता मे अत्यन्त व्यग्र हो जाना आदि ।

(३) **अश्रुपात करना**—किसी कष्ट के आ पडने पर आँखो से आँसू ढलकाना ।

ध्यान : व्याख्या एवं मीमांसा

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि समुद्र तल मे छिपी हुई रत्न-राशि को हस्तगत करने के लिए बहुत गहराई मे डुबकी लगानी पडती है। गोताखोर जितनी अधिक गहराई मे जाता है, उपलभ्य सामग्री उतनी ही मूल्यवान एव महत्त्वपूर्ण बनती चली जाती है।

साधना का उद्देश्य भी जीवन-सागर की गहराई मे पैठकर भीतर छिपी हुई अनन्त निधि को हस्तगत करना है। साधक अपने ही भीतर छिपी हुई अक्षय निधि प्राप्त करने के लिए साधना के क्षेत्र मे चरण बढाता है और ध्यान के माध्यम से निकटतर अन्तर की गहराई मे जितना अधिक उतरता जाता है, आत्म निधि के निकटतर होता चला जाता है। साधक की सबसे बडी प्यास है, अपने साध्य (परमात्मा) को प्राप्त करने की, जिसकी तृप्ति के लिए वह विविध प्रकार के साधना-मार्गो का अवलम्बन लेता है।

आत्मा की अनन्त गहराई मे पहुँचने का सबसे अधिक सबल एव सफल साधन है—"ध्यान"।

"ध्यान" अन्तर्मुख होने की साधना है। ध्यान का अर्थ है—ध्येय के प्रति तल्लीनता, अथवा ध्यान का अर्थ उस अवस्था से है जिसमे ध्याता और ध्येय एकाकार हो जाते है। आपेक्षिक दृष्टि से चेतना का द्वैत से सिमट कर अद्वैत मे प्रवेश करना ध्यान की चरम उपलब्धि है।

भारतीय सस्कृति की प्राय सभी साधना-पद्धतियो मे "ध्यान" शब्द का प्रयोग हुआ है और उसकी विभिन्न परिभाषाएँ भी निश्चित हुई है। साध्य की सिद्धि हेतु विभिन्न साधनागो मे ध्यान को सशक्त एव सफल साधन स्वीकार किया गया है, किन्तु जैन सस्कृति किंवा जैन साधना-पद्धति तो मूलत: ध्यान की ही साधना है, वहाँ साधक का प्रत्येक अनुष्ठान ध्यान से अनुप्राणित होता है। साधना के विभिन्न अगो मे जैन दर्शन मे "ध्यान" पर जितना अधिक बल दिया गया है, सभवत उतना अन्य अगो पर नही। वहाँ साधक की साधना को कालापेक्षा विभिन्न विभागो मे विभाजित किया गया है। रात्रि-दिवस के चौबीस घटो मे एक चौथाई अर्थात् छ घटे केवल ध्यान साधना के लिए नियोजित किए गए है। जैन तत्त्व दर्शन के उद्गाता प्रभु महावीर ने स्वयं कई घटो एव दिनो

(४) **संरक्षणानुबन्धी**—भौतिक सुख एव विषय-भोग के साधन-धन, सम्पत्ति आदि भौतिक पदार्थ तथा मान, पद प्रतिष्ठा आदि की रक्षा का सतत चिन्तन तथा उपर्युक्त साधनो की उपलब्धि मे वाधक तत्त्वो को दबाने, अलग हटाने तथा मारने आदि का चिन्तन सरक्षणानुबन्धी रौद्र ध्यान है ।

रौद्रध्यान के चार लक्षण —आर्त्तध्यान के समान ही रौद्र ध्यान के भी दैहिक प्रवृत्ति अथवा अभिव्यक्ति रूप चार लक्षणो का विधान है :—

(१) ओसन्न दोष । (२) बहुल दोष ।
(३) अज्ञान दोष । (४) आमरणान्त दोष ।

(१) **ओसन्न दोष**—हिसा, मृषा आदि दुष्प्रवृत्तियो मे से किसी एक प्रवृत्ति मे अत्यधिक तल्लीन रहना ।

(२) **बहुल दोष**—हिसादि चारो दुष्प्रवृत्तियो मे मानसिक एव शारीरिक दृष्टि से दत्तचित रहना ।

(३) **अज्ञान दोष**—स्वय की अज्ञानता अथवा असत् शास्त्रो के अभिकथो के आधार पर हिंसादि अधार्मिक वृत्तियो की उत्तरोत्तर वृद्धि मे सलग्न रहना ।

(४) **आमरणान्त दोष**—जीवन पर्यन्त क्रूर, रौद्र तथा अनिष्टकारी विचारो मे ही प्रवृत्त रहना ।

संक्षेप मे रौद्र ध्यान वह चिन्तन विशेष है, जिसमे दूसरो के सुख-दु ख की अपेक्षा नही रखते हुए सदा अनिष्ट का ही चिन्तन होता है । यद्यपि रौद्र शब्द क्रूरता का अभिव्यजक है, फिर भी रौद्र ध्यान-चारो कषायो से सम्बन्धित है । रौद्र ध्यान की भयकरता आर्त्तध्यान से अधिक है । आर्त्तध्यान की निमित्तता भी रौद्र ध्यान मे हो सकती है । अनिष्ट सयोग के होने पर अनिष्ट निमित्तक पर रौद्र ध्यान हो सकता है । साथ ही आर्त्तध्यान प्रशस्त भावो मे भी पाया जाता है, जबकि रौद्र ध्यान अप्रशस्त भावों में ही पाया जाता है । रौद्र ध्यान मे सक्लिष्ट भावो का प्राबल्य होता है अतएव आर्त्तध्यान के धारक प्राणी आगम की भाषा मे छठवे गुणस्थान तक हो सकते है, जबकि रौद्र ध्यान पाँचवे गुणस्थान तक ही पाया जाता है ।

उपर्युक्त दोनो प्रकार के ध्यान, चूँकि कषायानुबन्धित तथा ससार हेतुक है, अतएव हेय है, त्याज्य है । किन्तु आर्त्तध्यान के अभिव्यजक लक्षण, रोना आदि आध्यात्मिक भूमिका की प्रारम्भिक स्थिति से ऊपर चढने मे कुछ-कुछ

महर्षि पतजलि की इस परिभाषा को सम्मानपूर्वक अनुमोदन दिया है। चित्त की वृत्तियाँ दो हैं—राग और द्वेष। आजकल कई साधको ने मन को विचार-शून्य करने और गतिहीन बनाने का नारा दिया है। गीता मे वर्णित द्रष्टाभाव को उन्होने योग की प्रारम्भिक कडी मान लिया है। उनकी राय है कि मन की स्वैच्छिकता तथा गतिशीलता को नियत्रित करने का प्रयास अथवा उसे छेडना सर्वथा अवैज्ञानिक है। उत्तम यह है कि मन की स्वैच्छिकता को यथावत् चलने दिया जाय और हम केवल साक्षी बने रहे। परिणाम यह होगा कि मन स्वत ही शान्त और विचार शून्य होकर नियत्रण के लिए समर्पित हो जायगा। बात बडी सम्मोहक और तर्कपूर्ण लगती है, किन्तु इसमे व्यावहारिकता का अभाव है। द्रष्टाभाव तो राग-द्वेष पर नियत्रण की प्राथमिक स्थिति है। वह तो साधना के विकास पथ मे एक परिणामी स्थिति है। जो साधक साधना के प्रवेश द्वार पर खडे हैं, उनके लिए यह सम्मोहक भले ही हो, व्यावहारिक नही है। यह शिक्षा तो ठीक उसी प्रकार की है जैसे गोताखोरी सीखने आये हुए व्यक्ति को एक थैला देकर समझा दिया जाय—"कुछ चिन्ता नही करनी है, तल पर पहुँचकर मोती उठा लेने है और इस थैले मे हिफाजत से रखते जाना है।" जब तक सृष्टि के कर्मजाल से वैराग्य नही होगा, जब तक इन्द्रियो के वेग पर नियत्रण नही होगा, जब तक मन की वृत्तियो का वैज्ञानिक ढग से शमन नही होगा, तब तक द्रष्टाभाव, स्थितिप्रज्ञता अथवा समत्व तक कैसे पहुँचा जा सकता है ? वैराग्य का रस्सा पकड कर उतरे बगैर समत्व तक पहुचेंगे कैसे ?

भगवान् महावीर ने मन को अश्व (घोडे) की उपमा दी है[1]। गीता ने उसकी गति को पवमान (झझावात) से समरूपित किया है[2]। अप्रशिक्षित घोडा अडियल होता है, निरकुशता उसकी प्रवृत्ति है। मन को पहले उसी के किसी विषय पर केन्द्रित करना अनिवार्य है। केन्द्रीकरण की इस साधना को ही ध्यान कहा जाता है।

इसी दृष्टिकोण से जैन साधना पद्धति मन को गति शून्य करने की अपेक्षा मन की गति को बदलने, उसे सही दिशा देने पर बल देती है। अतएव एक जैनाचार्य ने योग का अर्थ "योगो दुश्चित्त वृत्ति निरोध.[3]" किया है, जो कि योगश्चित्त वृत्ति निरोध का परिष्कृत रूप है। किन्तु उपर्युक्त दोनो परिभाषाएँ निषेधपरक है। केवल निषेध मे योग की सर्वांगीणता का दर्शन नही हो सकता है। इस पर आचार्य श्री नानेश (चरित्रनायक) ने अतलस्पर्शी

---

१ उत्तराध्ययन २३-२५।

२ चचल हि मन कृष्ण वायोरिव सुदुष्करम्। (गीता)

३ उपाध्याय यशोविजयजी कृत योग दर्शन की टीका १-२।

बचने के उपायो का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करना अपाय विचय धर्म ध्यान है।

(३) **विपाक विचय**—कर्म के शुभाशुभ फल को विपाक कहते है और तत्सम्बन्धी चिन्तन विपाक विचय धर्म ध्यान है। किस कर्म का क्या फल होता है। आत्मा कभी अपने शुभ कर्मो के फलस्वरूप दैनिक ऐश्वर्य एव भौतिक सुख मे किस प्रकार आसक्त हो जाता है तथा कभी वही (आत्मा) जीव अशुभ कर्मोदय के कारण नारकीय आदि हीन अवस्थाओ को पाकर कितने भयकर दु खो के दल-दल मे फस जाता है, कैसी विचित्र कर्म परिणति है ? यद्यपि आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप शुद्ध एव निर्मल है, फिर भी अनादि काल से कर्म रूपी मल से मलीन बनी हुई चेतना भी कैसी विकृति मे उलझकर सुख-दु खो का अनुभव करती है, आदि कर्म गति पर चिन्तन करना तथा कर्म विपाक से कैसे मुक्ति मिल सकती है, आदि और आत्मिक सहजानन्द की उपलब्धि कैसे हो सकती है, आदि विषयो का चिन्तन विपाक विचय धर्म ध्यान के अन्तर्गत आता है।

(४) **संस्थान विचय**--सस्थान का अर्थ है "आकृति"। जो चिन्तन दैहिक एव सम्पूर्ण लोक (ब्रह्माण्ड) की आकृति विशेष की ओर गतिशील हो, वह सस्थान विचय है।

चेतना के परिपूर्ण विकासार्थ नश्वर और अविनाशी तत्त्व की विश्लेषणा के लिये अपनी देहाकृति के साथ लोकाकृति की तुलना करना, अधो, ऊर्ध्व तथा तिर्यक् लोक सम्बन्धी द्वीप, समुद्र, नरकादि के आकृतिगत स्वरूप का चिन्तन करते हुए इसमे जीव की गति, अगति, परिभ्रमणशीलता का विचार सम्पूर्ण लोक को अगाध समुद्र के रूप मे मानकर धर्म को उत्तरणीय नौका के रूप मे कल्पित कर चितन एव तदनुरूप आचरण रूपी जलयान की सहायता से ससार-समुद्र से पार अर्थात् मुक्ति नगर तक पहुँचा जा सकता है, इस प्रकार का तात्त्विक गूढ चिन्तन सस्थान विचय धर्म ध्यान है।

धर्म ध्यान के चार लक्षण

(१) **आज्ञा रुचि**—जिनागमो के विधि-निषेध परक विविध विधानो पर रुचि होना।

(२) **निसर्ग रुचि**—बिना किसी उपदेश के स्वभाव से ही वीतराग सिद्धान्त एव धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न होना।

(३) **सूत्र रुचि**—आगमो मे प्रतिपादित सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्त्व पर श्रद्धा का जागृत होना।

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, विचारो का आत्मान्तर्गामी प्रवाह अथवा विचारो का किसी एक विषय मे केन्द्रीकृत होना ध्यान है। तदनुसार ध्यान को सक्षेप मे दो भागो मे बाटा जा सकता है—प्रशस्त-शुभ एव अप्रशस्त-अशुभ। विचारो का जो प्रवाह आत्मानुलक्षी अथवा अध्यात्म से अनुप्राणित हो, उसे प्रशस्त ध्यान की कोटि मे और जो विचार-शृ खला ससारानुलक्षी अथवा राग-द्वेषादि निम्न वृत्तियो से अनुप्राणित हो, उसे अप्रशस्त ध्यान की कोटि मे लिया जाता है। मुखवृत्या विचार दो ही प्रकार के होते है—सत्-असत्, अच्छे-बुरे अथवा शुभ-अशुभ। स्पष्ट शब्दो मे कहे तो विचार ऊर्जा का अध्यात्म-उन्नायक अन्तर्मु खी प्रवाह प्रशस्त ध्यान है, और भौतिकतानुबन्धी बहिर्मु खी प्रवाह अप्रशस्त।

अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर ने ध्यान विवेचना की इन दो वृहत् शाखाओ को चार भागो मे विभक्त कर पुन एक-एक को अनेकानेक टहनियो के रूप मे विस्तार दिया है—

"चउविहे झाणे पण्णते तजहा अट्टज्झाणे।
रुद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे।।"

अर्थात् ध्यान के चार प्रकार है —

(१) आर्त्तध्यान। (२) रौद्रध्यान।
(३) धर्म ध्यान। (४) शुक्ल ध्यान।

आपेक्षिक दृष्ट्या आदि के दो अप्रशस्त एवं शेष दो प्रशस्त ध्यान की कोटि मे आते है।

उपर्यु क्त चारो प्रकार के ध्यानो की विस्तृत विवेचना अनेक टीका-ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है, जिसका सक्षेप-सार इस प्रकार है—

(१) आर्त्तध्यान

आर्त्तध्यान का स्वरूप-निरूपण करते हुए [illegible] श्री उमास्वाति ने कहा है—

आर्त्तम मनोज्ञाना [illegible]
स्मृति समन्वाहार। [illegible]

आर्त्ति का अर्थ है पीडा, [illegible] "आर्त्त"। दु ख जनित [illegible]

(४) **संसार भावना**—ससार कैसा विचित्र है ? यहाँ प्रत्येक आत्मा दूसरे आत्माओ के साथ अनन्त बार सम्बन्ध कर चुका है। कभी भाई पुत्र बन जाता है, तो कभी पुत्र पिता की सज्ञा ले लेता है, बहिन-माँ बन जाती है तो कभी पत्नी-माँ का रूप ले लेती है। जो आज प्रिय पुत्र दिखाई दे रहा है, वह कभी जानी दुश्मन भी रह चुका है। यही नही, जो आज सृष्टि की सुन्दरतम मानवाकृति मे दिखाई दे रहा है वही अनेक बार कीट, पतग और निगोद-कायिक निकृष्टतम योनियो मे उत्पन्न हो चुका है। इस प्रकार ससार की विचित्रता का धारा प्रवाही चितन और मोक्ष की एकरूपता का चितन "ससार भावना" के अन्तर्गत आता है।

इस प्रकार धर्म ध्यान को आगम के पृष्ठो पर विविध रूपो मे विविध दृष्टिकोणो से व्याख्यायित किया गया है, चूँकि-चेतना के ऊर्ध्वमुखी प्रवाह का यह प्रमुख सोपान है, अत. मुमुक्षु-साधक के लिए यह नितान्त उपादेय है। धर्म ध्यान की उपादेयता ध्येय के प्रति तदाकारता के लिये भी नितान्त वाछनीय है। साधक धर्म ध्यान को जितनी गहराई मे पहुँचता है, वह आत्मा के उतना ही सन्निकट होता हुआ अपने भीतर मे प्रवेश पाता हुआ चला जाता है। इसके लिये आवश्यक है ध्येय के प्रति तल्लीनता।

ध्यये के प्रति तद्रूप तदाकार हो जाना सहज नही है। न तद्रूप होने के लिये कोई एक निश्चित विधि ही अपनाई जा सकती है। क्योकि ध्यान का किया जाना उतना सगत नही है जितना होना। अर्थात् चेतना की इस अनुभूति जन्य अवस्था मे चित्त वृत्तियो का लीन हो जाना ध्यान है न कि हम जबरन चित्त वृत्तियो को एक विषय से हटाकर किसी अन्य विषय मे लगा ले। हाँ, यह सत्य है कि प्रारम्भ मे पर भाव मे अभ्यस्त बिखरी हुई वृत्तियो को इस ओर मोडने मे कुछ हद तक बल भी लगाना पडता है। यदि प्रारम्भ मे वैसा बल न लगाया जाय तो वे वृत्तियाँ अनादिकालीन व्यसनो मे लगी रहने के कारण व्यसनो को ही अपना स्वभाव बना चुकी होती है। यदि उस वक्त बल-पूर्वक नही मोडा गया तो वही तल्लीनता की स्थिति चलती रहेगी जो कि अनादिकाल से चलती आई है। सद्विज्ञान के साथ आवश्यकतानुसार बलपूर्वक विकृत वृत्तियो को मोडने मे पुरुषार्थ बल अधिक सफल बनता है। जब ये वृत्तियाँ सही स्वरूप की ओर तीव्र रूप से प्रवाहित हो जाती है, तब फिर ध्यान का होना सहज बन जाता है। उसके पूर्व उतनी सहजता नही आ सकती। इसी दृष्टि से प्राथमिक "ध्यान साधक" के लिये योग शास्त्र, तत्त्वानुशासन तथा ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थो मे पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ एव रूपातीत आदि अनेक ध्यान की सुगम विधियो का निर्देश किया गया है। ये प्रारम्भिक ध्यान-साधक के लिये सुयोग्य मार्ग-दर्शक के निर्देशन मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

(४) **क्लेश युक्त वचन**—अपने अथवा दूसरे के चित्त मे सक्लेश एव अशान्ति उत्पन्न हो, इस प्रकार के वचनो का प्रयोग करना आर्त्तध्यान का लक्षण है।

इस प्रकार सक्षेप मे इन्द्रियजनित सुख ही आर्त्तध्यान का मुख्य कारण बनता है। वैसे आर्त्तध्यान का विषय-क्षेत्र वहुत विस्तृत है। केवल रोना या चिंतन करना ही आर्त्तध्यान नही है, अपितु भौतिक सुखो के प्रति अति उत्कट लालसा एव मनोज्ञ वस्त्राभूषण आदि पदार्थों पर मोह, आसक्ति भाव का प्रादुर्भाव भी आर्त्तध्यान ही है।

(२) रौद्र ध्यान

रौद्र ध्यान को पारिभाषित करते हुए तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है।

"हिसा अनृतस्तेयविषयसरक्षणेभ्योरौद्रमवरितदेशविरतयो"।

जिसका चित्त क्रूर एव कठोर हो, वह रुद्र और उस व्यक्ति का ध्यान रौद्र है। जिस विचार परिणति मे क्रोध अथवा क्रूरता का प्रावल्य हो अथवा दूसरों को मारने, पीटने, लूटने, ठगने एवं सत्रस्त करने की भावना जिस चितन के मूल मे हो, ऐसे कुविचार युक्त ध्यान को रौद्र ध्यान कहते हैं। आर्त्तध्यान की तरह ही उसके कारणो के आधार पर रौद्र ध्यान के भी चार भेद किये गये हैं। हिंसा करने, असत्य बोलने, चोरी करने व प्राप्त विषयो को सभाल कर रखने की वृत्ति से क्रूरता व कठोरता उत्पन्न होती है तथा इन्ही कारणो से जो अनवरत चिंता होती है, उसे क्रमश, (१) हिसानुवन्धी, (२) मृषानुवन्धी, (३) स्तेयानुबन्धी तथा (४) सरक्षणानुबन्धी रौद्र ध्यान कहते है।

(१) **हिंसानुबन्धी**—किसी प्राणी को मारने, पीटने, क्रोधावेश मे वाधने, जलाने आदि किसी भी प्रकार से किसी प्राणी को सत्रस्त करने के क्रूर परिणामो का समावेश हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान मे होता है।

(२) **मृषानुबन्धी**—कठोर व मर्मवेधक वचनो के प्रयोग द्वारा किसी को अपमानित करना तथा किसी के हृदय को चोट पहुँचाना, सत्य का, वस्तु का अपलाप करना अर्थात् सत्य एवं उत्तम सिद्धान्तो को झुठलाने के लिये निरन्तर मिथ्या-भाषण-सम्बन्धी चिन्तन करना तथा असत्य योजनाओ के निर्माण मे विचारो को संलग्न रखना मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान कहलाता है।

(३) **स्तेयानुबन्धी**—तीव्र आसक्ति अथवा लोभ के वशीभूत होकर किसी की वस्तु को अपहरण करने, चुराने अथवा किसी को लूटकर दु खी करने सम्बन्धी विचार स्तेयानुवन्धी रौद्र ध्यान के अन्तर्गत आते हैं।

रहे । यह पदस्थ ध्यान की एक काल्पनिक रूपरेखा है । इसका प्रयोजन मन के केन्द्रीकरण तक ही सीमित है ।

उपर्युक्त सिद्ध चक्र को निम्नाकित चित्र के माध्यम से भली प्रकार समझा जा सकता है ।



सिद्ध-चक्र

पिण्डस्थ ध्यान विधि

पिण्ड का अर्थ है शरीर, चैतन्य युक्त शरीर पिण्ड, अतः पिण्डस्थ ध्यान का अर्थ हुआ पिण्ड अर्थात् देह के प्रमुख अग–ललाट, आज्ञा चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, नासिकाग्र भाग, कण्ठ तथा नाभि कमल आदि सस्थानो पर मन को केन्द्रित करना ।

अन्य साधना–विधियों की तरह पिण्डस्थ ध्यान को किसी शान्त-प्रशान्त एकान्त स्थान मे पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी उत्तम आसन से स्थिर होकर किया जाता है ।

आध्यात्मिक भूमिकाओ तक अपेक्षया उपादेय भी है। जैसे कि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति जो प्रशस्त राग है, वह उनके सुख और कुशल-क्षेम के लिये है और आत्मा को ऊर्ध्वगामिता की ओर आकर्षित करता है। इसी दृष्टिकोण से श्रावको के विशेषणो मे भी कई स्थानो पर जैनागमो मे "धम्म पेमाणुरागरता, आदिमिंजा अट्ठिमिंजा" विशेषण उपलब्ध होते है।

(३) धर्म–ध्यान

आत्म-धर्म सम्बन्धी एकाग्र चिन्तन धर्म ध्यान है। वस्तु के स्वरूप-सम्बन्धी तत्त्व विचारण, वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की आज्ञा तथा आत्म-उत्थान सम्वन्धी गूढ चिन्तन धर्म ध्यान है। जिस चिन्तन मे श्रुत धर्म व चारित्र धर्म से अनुगत विचारणा हो, आस्रव, वन्ध, सवर, निर्जरा तथा मोक्ष-सम्वन्धी सच्चितन हो तथा हेय, ज्ञेय एव उपादेय का सम्यक् मनन हो, वह धर्म ध्यान है। अपने अनन्त आराध्य देव और गुरु के गुण-चिन्तन का समावेश भी धर्म ध्यान मे ही हो जाता है।

अध्यात्मोन्मुख चिन्तन-धाराओ की अपेक्षा धर्म ध्यान को भी चार भागो मे विभक्त किया गया है —

(१) आज्ञा विचय। (२) अपाय विचय।
(३) विपाक विचय। (४) सस्थान विचय।

(१) **आज्ञा विचय**—इसका आशय है वीतराग प्रभु द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तो की आत्मिक उत्थान के लिये जो अनुमति है उन अनुमति को यथातथ्य उपादेय मानकर उसके प्रति बहुमान की भावना रखना तथा यह मानना कि जिनदेव द्वारा कथित तत्त्व विवेचन परम सत्य है। जिनेश्वर प्रभु ने आत्म-साधना के लिये जो कल्याणी वाणी का प्रणयन किया, वह पूर्णतया सत्य है। [illegible] विवेचना अन्य शास्त्रो मे नहीं [illegible] जिनागमो मे उपलब्ध है। अत यह [illegible] है, इस प्रकार का निरन्तर [illegible] आज्ञा विचय धर्म ध्यान है।

(२) **अपाय विचय**—[illegible] उनकी उत्पत्ति [illegible] कपाय, [illegible] वाले [illegible] सेवन से होने [illegible]

"आज्ञा चक्र" की ध्यान-विधि मे सिद्धासन आदि किसी दृढ आसन से मेरु दण्ड (रीढ की हड्डी) को सीधा करके बैठा जाता है और ध्यान मुद्रा स्थिर की जाती है। फिर मानस चक्षु अर्थात् मनोनेत्र से भ्रू-मध्य अर्थात् दोनो भृकुटियो के बीच मे देखने का प्रयास किया जाता है। इस मानस-दर्शन मे नेत्र बन्द होने चाहिये और केवल कल्पना से ही भ्रू-मध्य को देखना चाहिये। ध्यान की अधिक स्थिरता की दृष्टि से भ्रू-मध्य केन्द्र मे "अर्ह" अथवा "ॐ" की आकृति को समक्ष रखकर इसके स्वरूप का चिन्तन किया जा सकता है।

"आज्ञा चक्र" की साधना आरम्भ मे कुछ दुरुह प्रतीत होती है, किन्तु सतत अभ्यास इसे सुबोध एव सरल बना देता है। अनुभूति के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ दिनो की निरन्तर साधना के पश्चात् मन की वृत्तियाँ बहुत कुछ स्थिर होने लगती है और वैकारिक संकल्प-विकल्पो से रहित अवस्था प्राप्त होने लगती है। मन सहज ही स्थिर होने लगता है। इस मानसिक स्थिरत्व के द्वारा आतरिक प्रसन्नता, आनन्द एव उल्लास वृद्धिगत होते है। हाँ, एक बात अवश्य इस विषय मे ध्यान देने योग्य है कि इसमे हठयोग की प्रवृत्ति अर्थात् चित्तवृत्तियो के साथ शीघ्रता का हठ नही होना चाहिये।

(४) **अवगाढ रुचि**—जैनागमो के तलस्पर्शी अध्ययन के साथ उस पर प्रगाढ श्रद्धा का उत्पन्न होना।

धर्म ध्यान की चार भावना

स्वरूपोन्मुख चेतना का ध्यान "धर्म ध्यान" होता है। अत आत्म-विकास मे इसकी प्रारम्भिक भूमिका रहती है। धर्म ध्यान की विविध धाराओ व भावनाओ मे वहती हुई चेतना आत्म-सिद्धि के सोपान तक पहुँच जाती है। अतएव धर्म ध्यान के विश्लेषण मे उच्च भावनाओ का सहज ही महत्त्वपूर्ण स्थान हो जाता है। धर्म ध्यान मे प्रवाहित विचार-शृ खला को चार भागो मे विभक्त किया गया है, जिन्हे चार भावनाओ के नाम से पुकारा गया है —

(१) अनित्य भावना। (२) अशरण भावना।
(३) एकत्व भावना। (४) ससार भावना।

(१) **अनित्य भावना**—ससार के समस्त पदार्थ, गृह, कुटुम्व, पारिवारिक जन, शरीर एव सम्पत्ति आदि की अनित्यता-नश्वरशीलता का चिन्तन करना। समस्त सयोग, वियोगमूलक होते है, अत जो कुछ उपलब्ध है, उसका वियोग अवश्यभावी है, फिर इन पर ममत्व एव आसक्ति क्यो की जाय, इस प्रकार की भावना के माध्यम से धर्म क्षेत्र मे प्रगति करना "अनित्य भावना" है।

(२) **अशरण भावना**—ससार का कोई भी पदार्थ आत्मा के लिये शरणभूत नही हो सकता है। जन्म, जरा और मृत्यु से भयभीत तथा शारीरिक एव मानसिक रोगो से पीडित प्राणी को इस ससार मे धर्म के अतिरिक्त और कोई आश्रय अथवा शरण नही हो सकता। अत ससार रूपी समुद्र मे भटकते प्राणी के लिये धर्म ही परित्राता हो सकता है, इस प्रकार धर्म-शरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ को आश्रय न मानना ही "अशरण भावना" है।

(३) **एकत्व भावना**—"एगोह नत्थि मे कोई" इस आगम वाक्य के आधार पर अपने एकत्व का अनुचिन्तन तथा इस सम्पूर्ण जगत् मे अपने परिपूर्ण विकास मे मुख्यतया अपने आपका योगदान आदि से अन्त तक साथ रहता है। अन्य चैतन्य आत्माओ का अमुक अवस्थान मे अमुक सीमा तक सहयोग होने पर भी अतिम परिणति की उपलब्धि स्वय की आत्म जागृति पर ही निर्भर है। इस अपेक्षा से मै अपना आश्रय अकेला ही हूँ, यहाँ मेरा कोई नही है, न मै किसी का हूँ। इस प्रकार पर भाव से ऊपर उठकर स्वभाव मे रमण करना "एकत्व भावना" है।

श्वासानुसधान की एक सुगम विधि और भी है। उसमे किसी भी आसन विशेष का आग्रह नही होता है। किसी भी मुद्रा मे सुखासन से बैठकर अथवा शवासन से सोकर ध्यान को श्वास पर केन्द्रित किया जाता है। शरीर को ढीला, तनाव रहित बनाकर सहजवृत्या केवल श्वास के गमनागमन का अवलोकन भर किया जाता है। इसमे श्वास को रोकना और गणना करना भी आवश्यक नही, क्योकि गणना करने और श्वास को रोकने मे भी कुछ-न-कुछ तनाव बनता ही है, अत. तनाव से सर्वथा मुक्त होकर इस प्रक्रिया मे एक ही अनुभूति शेष बच जाती है कि श्वास आ रहा है, और श्वास जा रहा है। पूरा ध्यान श्वास पर ही केन्द्रित किया जाता है। प्रारम्भिक साधक के लिए यह प्रक्रिया उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

रूपस्थ ध्यान विधि

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है कि ध्यान की इस प्रक्रिया मे साधक किसी दिव्य रूप पर चित्त को स्थिर करता है। इस साधना मे आगे बढता हुआ साधक अपने प्राणवान देहपिण्ड मे ही परमात्मा को चित्रित कर दिव्यता की कल्पना करने लगता है। कभी आगमोल्लिखित तीर्थंकर के स्वरूप की साकार कल्पना करता हुआ उसके विविध आयामी चितन मे खो जाता है। तीर्थंकर के स्वरूप चितन मे अरिहन्त महाप्रभु के अतिशयो पर अध्यात्मोन्मुख भाव प्रवाही चिन्तन किया जा सकता है। यथा-अरिहन्त महाप्रभु ने किस प्रकार अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र एव अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय की सर्वोच्च सत्ता प्राप्त कर ली। इन आध्यात्मिक उपलब्धियो का प्रभाव उनकी दैहिक क्रान्ति पर भी कितना अनूठा पडता है, कितनी भावपूर्ण अनुपम मुद्रा है तीर्थंकर महाप्रभु की। अत्यन्त मनोहर, शान्त, गम्भीर, एक हजार आठ उत्तम लक्षणो से विभूषित परम दीप्तिमान् मुद्रा का दर्शन कर सुरेन्द्रादि भी स्तुति मुखर हो उठते हैं, आदि सोपानो पर ध्यान उत्तरोत्तर दृढीभूत बनता जाता है।

इतनी भौतिक एव अभौतिक सम्पदा से घिरे हुए भी कितना अपूर्व वैराग्य रस टपक रहा है, महाप्रभु के अणु-अणु से। कैसा शाति का निर्भर फूट रहा है, इस महाचेतना के अन्तस्तल से। इसी प्रकार कभी गुरु, आदि किसी लोकोत्तर महापुरुष के दृष्टिगम अथवा श्रुतानुगत रूपो को अपने मानस-चक्षु के समक्ष कल्पना-लोक मे अकित किया जा सकता है।

सक्षेप मे रूपस्थ ध्यान मे चक्षु का पदार्थ के साथ और मन का चक्षु के साथ केन्द्रीकरण का अभ्यास किया जाता है अथवा कल्पना-जगत् मे किसी चेतना युक्त देह-पिण्ड मे परमात्मा के दिव्य रूप को कल्पित कर उस पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। इस विधि मे तीर्थंकर प्रभु की समवसरण रचना, उसमे उन्हे अमृतोपदेश देते हुए देखना तथा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के मार्ग की

ध्यान की सागोपाग विवेचना के लिये यहाँ उपयुक्त विधियो का सक्षिप्त विवेचन अप्रासगिक नही होगा ।

पदस्थ ध्यान विधि

पदस्थ ध्यान का अर्थ है किसी भी मत्र विशेष के पदो पर मन को केन्द्रित करना । जैनाचार्यों ने पदस्थ ध्यान के लिए अनेक पदो का चयन किया है जिनमे सर्वोत्कृष्ट स्थान नमस्कार महामत्र को दिया गया है । नमस्कार महामत्र के "णमो अरिहताण" आदि पदो पर मन को केन्द्रित करने के लिए कई विधियो का निर्माण हुआ है । नमस्कार मत्र के पाँचो पदो का अनुक्रम, व्युत्क्रम एव अननुक्रम से प्रयोग करते हुए उस पर मन को केन्द्रित किया जाता है जिसे "अननुपूर्वी ध्यान" की सज्ञा दी जाती है ।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र (८ ३३,३४) मे एक अन्य विधि का निर्देश किया है, जिसे जैन-योग-साधना मे "सिद्ध चक्र" के नाम से पुकारा जाता है । ध्यान की इस विधि मे सर्व प्रथम एकान्त, निरवद्य, शान्त स्थान मे ध्यान-योग्य किसी आसन से स्थिर बैठकर हृदय-सरोवर पर अष्ट दल श्वेत कमल की कल्पना की जाती है । जव हृदय के केन्द्र पर अष्टमुखी कमल स्पष्ट झलकने लगे, और मन उस पर स्थिर हो जाये तब कमल के मध्य देश (कर्णिका) बीज कोप पर "णमो अरिहन्ताण" की कल्पना को स्थिर किया जाता है। तत्पश्चात् कमल की पूर्वादि चारो दिशाओ की पखुडियो पर क्रमश णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो, उवज्झायाण एव णमो लोए सव्व साहूण की कल्पना करते हुए चित्त को उस पर केन्द्रित किया जाता है । चारो दिशाओ मे ध्यान के कुछ क्षणो तक सक्रिय होने पर मन को ईशान कोण आदि चार विदिशाओ को चार पखुडियो पर घुमाया जाता है और वहाँ क्रमश एसो पच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मगलाणच सव्वेसिं, पढम हवई मगल आदि चूलिका पदो की कल्पना करते हुए ध्यान को केन्द्रित किया जाता है । कुछ विद्वान् साधक एसो पच णमुक्कारो आदि पदो के स्थान पर क्रमश "णमो नाणस्स", "णमो दसणस्स", "णमो चरित्तस्स" एव "णमो तवस्स" की निर्धारणा भी करते है ।

कहा जा चुका है कि पदस्थ ध्यान की कई विधियाँ प्रचलित है । केवल उदाहरण स्वरूप दो विधियो का सकेत ऊपर किया गया है । उपर्युक्त प्रक्रिया का मुख्य प्रयोजन यही है कि मन अपने मुख्य-कमल केन्द्र से नही हटता हुआ उपकेन्द्रो मे पुन -पुन आवर्तन-प्रत्यावर्तन करता रहे जिससे मन की गति अन्य विषयो पर न जाये अर्थात् अन्य विषयो के प्रति उसकी पकड कुछ शिथिल हो और मन स्वचालित चक्र की भाँति केवल निश्चित केन्द्रो पर ही गति करता

स्वरूप की खोज मे लीन हो जाता है। यह आत्मलीनता अगर कुछ गहरी हो जाये, तो विचारातीत-सी लगती है, किन्तु इसे विचारातीत अवस्था नही मान लेना चाहिये। इसमे मन की सक्रियता बराबर बनी रहती है और जब तक मन सक्रिय रहता है विचारातीत अथवा विचार शून्य अवस्था नही आ सकती। वह तो ध्यान की चरम एव परम अवस्था होती है, जहाँ द्रव्य मन की वृत्तियो का समूल विलय हो जाता है। लीनता और विलीनता अथवा लय और विलय मे यही अन्तर है। लय अवस्था मन के अस्तित्व पूर्वक केन्द्रीकरण की अवस्था है, किन्तु विलय अवस्था मे असद् मनोवृत्तियो को पूर्णत अवरुद्ध कर मन को ध्यान की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया जाता है। रूपातीत ध्यान के साधको के लिये लय अवस्था को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है अत उनके लिये मन को लय अर्थात् किसी अमूर्त सत्ता पर केन्द्रित करने की साधना ही उपादेय मानी गयी है ताकि वे साकार ध्यान की स्थूल प्रक्रिया से ऊपर उठकर निराकार मे लीन हो सके।

———

शरीर के विभिन्न उत्तमागो पर मन की स्थिरता के कुछ बढने पर "यत्पिडे तत् ब्रह्माण्डे" के अनुसार देह के पिण्ड मे ही यत्पिडे तत् ब्रह्माण्डे की साकार कल्पना की जाती है। कटि प्रदेश पर हाथ स्थिर करके नृत्य करते हुए मानव की आकृति ही सम्पूर्ण लोक ब्रह्माण्ड की आकृति है। अत देह के साथ ब्रह्माण्ड की तुलना मे क्षुद्रता एव विराटता की कल्पना की जाती है।

कुछ प्राचीन आचार्यों ने पिण्डस्थ ध्यान के क्रम मे पाँच धारणाओ का विवेचन भी किया है, जिनके माध्यम से लोक स्थित महत् तत्त्वो का चिन्तन करते हुए उत्तरोत्तर मन को आत्म केन्द्र के निकट लाया जाता है। वे पॉच धारणाएँ है, पार्थिवी, आग्नेयी, मारुति, वारुणी एव तत्त्ववती।

इन धारणाओ के प्रयोग मे साधक अपने आपको सर्वप्रथम पार्थिवी धारणा मे कमल पर समासीन देखता हुआ पृथ्वीवत् निश्चलता एव अचलता की कल्पना करता है, फिर आग्नेयी धारणा मे उसी निश्चलता पूर्वक स्थिर रहते हुए अपने चारो ओर अग्नि ज्वालाएँ दहकने की कल्पना करता है जिसमे आत्मा के बाहरी आवरण-कर्म, देह आदि के दहन होने की कल्पना करते हुए आत्मा को देहादि, आवरण-आकृति से रहित केवल घन पिण्ड के रूप मे अनुभव किया जाता है। तदनन्तर वायवी धारणा मे वायु के प्रबल झोको से कर्म-रज के उड जाने की और फिर वारुणी धारणा मे सघन समता-जल की वर्षा से आत्मा के अपने निर्मल रूप मे झलकने की कल्पना की जाती है। अन्त मे तत्त्ववती धारणा के द्वारा साधक आत्मा के अभौतिक स्वरूप का चितन करता है और इस प्रकार साधक निरन्तर आत्म स्वरूप के सन्निकट पहुँचने का प्रयत्न करता है।

यह बताया जा चुका है कि पिण्डस्थ मे साधक देह के उत्तमागो पर ध्यान केन्द्रित करता है और देह के विभिन्न उत्तमागो मे साधना के लिये "आज्ञा चक्र" का विशेष महत्त्व होता है, अत. यहाँ आज्ञा चक्र का सक्षिप्त प्रतिपादन अप्रासगित नही होगा।

आज्ञा चक्र

मन की एकाग्रता की साधना के लिये साधना-विधि मे "आज्ञा चक्र" का अपना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। "आज्ञा चक्र" एक ऐसा सबल साधन है कि मन के सारे भटकाव अल्प समय मे ही अवरुद्ध हो जाते है और मन एक निश्चित चिन्तन-धारा में प्रवहमान हो जाता है।

भ्रूमध्य को ही योग की भाषा मे आज्ञा चक्र, दिव्यचक्षु अथवा तृतीय नेत्र के नाम से पुकारा जाता है।

वास्तव मे मन तो अनादिकाल से उन्मुक्त है। उसे दुबारा उन्मुक्त क्या किया जाए ? अगर स्वत ही बिना किसी साधना के निर्विकल्प बनना सम्भव और स्वभाविक होता, तो वह कभी का हो गया होता। किन्तु यह असम्भव है। इसीलिये ध्यान के अधुनातन साधक ध्यान के उद्देश्य एव फलश्रुति के विषय प्रतिपादन मे जितने सफल रहे है, उतने उसकी विधि समझाने मे नही। यही कारण है कि आज का साधक अपने लक्ष्य तक नही पहुँच कर, पथ भ्रष्टता की स्थिति मे पहुँचता जा रहा है।

तथ्य यह है कि भावातीत ध्यान, ध्यान की चरम एव परम अवस्था अवश्य है, किन्तु वह साधना की पराकोटि पर पहुँचने पर स्वत उपलब्ध होती है। अत वह प्रारम्भिक ध्यान-साधक के लिए उपयोगी नही हो सकता। इसके विपरीत प्रारम्भिक ध्यान-साधक निर्विकल्प, निर्विचार, विचार शून्य और विचारातीत आदि अभावात्मक शब्दो के चक्कर मे पडकर उलझ जाता है, अथवा अपने ध्येय को ही नही चुन पाता। अत साधक को चाहिये कि वह साधना की भूमिका को सोपान-क्रम मे ही अपनाये। साधक पहले यम-नियम-सयम और सदाचार की सुगम एव सहज विधि से मन के विचारो मे शुद्धता का सचार करे, फिर ध्यान की विविध प्रक्रियाओ से उसे किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करने का अभ्यास करते हुए उसकी पराकाष्ठा पर पहुँचे। इस प्रक्रिया मे पहले मन का शुद्धिकरण और फिर स्थिरीकरण होता है। वस्तुत. विशुद्ध मन की स्थिरता व एकाग्रता ही ध्यान कहलाती है।

इस प्रकार धर्म-ध्यान मे प्रवेश की विभिन्न विधियो का निर्देश जैनागमो मे उपलब्ध होता है। यहाँ इनका सक्षिप्त विवेचन इसलिए किया गया है कि साधक आर्त्त-ध्यान व रौद्र-ध्यान की भयकरता से बचकर धर्म-ध्यान मे गतिशील बने।

(४) शुक्ल ध्यान

जो ध्यान आत्मा की शुक्लता या निर्मलता का प्रतीक हो, अर्थात् आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल को नष्ट करके आत्मा को निर्मल बनाता हो, वह शुक्ल ध्यान कहलाता है। शुक्ल ध्यान का प्रारम्भ चेतना के केन्द्रीकरण से होता है। जब चित्तवृत्तियाँ ध्यान मे मुख्यवृत्या बाहर के सभी अवलम्बनो को छोडकर केवल आत्मानुलक्षी बनती है और स्वात्मलीनता का स्थिरत्व बढने लगता है, उस समय की ध्यान-धारा शुक्ल ध्यान की सज्ञा पाती है।

शुक्ल-ध्यान के भी अन्य ध्यानो की तरह चार भेद किये गये है, जो इसके चार पाये भी कहलाते हैं :

(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार।

श्वासानुसंधान

"आज्ञा चक्र" की साधना-विधि की तरह ही श्वासानुसधान की ध्यान-विधि का भी अनूठा महत्त्व है। आज्ञा चक्र की साधना मे प्रारम्भिक साधक के लिये "श्वासानुसधान" अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। श्वासानुसधान की ध्यान-विधि के द्वारा आज्ञा चक्र की दुरुह ध्यान-विधि को सुगम बनाया जा सकता है और पिण्डस्थ ध्यान की गहराई मे पहुँचा जा सकता है।

श्वासानुसधान की ध्यान-प्रक्रिया मे मन को अपने श्वासोच्छ्वास पर केन्द्रित किया जाता है। आसन की स्थिरता पूर्वक साधक अपनी मनोवृत्तियो एवं समस्त कल्पनाओ को श्वास पर केन्द्रित करके उसी मे लीनता प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया मे प्राणायाम की भाति खूब गहरे सास लिये जाते है। सास इतने गहरे हो कि वे सीधे नाभिमडल पर चोट करे। इससे पहला लाभ तो यह होगा कि प्राण वायु अधिक मात्रा मे देह के भीतर जायेगी और भीतर से दूषित वायु बाहर निकलेगी, फलत कुछ ताजगी का अनुभव होगा। इस प्रक्रिया मे कुछ स्थिरत्व लाने के लिए श्वासो की गणना भी की जा सकती है और कुछ समय श्वास को भीतर रोके रखकर धीरे-धीरे छोडा जा सकता है। कुछ अधिक प्रगति के लिये गहरे श्वास भीतर लेने और बाहर निकालने मे मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से श्वास का सम्बन्ध जोडा जा सकता है, अर्थात् यह कल्पना की जा सकती है कि श्वास मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से प्रवल वेग के साथ उठ रहा है और ऊर्ध्वगामी बनकर ऊपर के सभी चक्रो को पार करता हुआ मेरु दण्ड (रीढ की हड्डी) के माध्यम से आज्ञा चक्र तक पहुँच रहा है और आज्ञा चक्र के इर्द-गिर्द उद्दीपक, तेज अथवा वहुत अधिक मात्रा मे प्राण वायु का सचार अथवा सग्रह हो रहा है। श्वास की ऊर्ध्वमुखी अवस्था मे मूलाधार से मेरुदण्ड मे होकर आज्ञा चक्र के निकट शक्ति के ऊर्ध्वगमन की कल्पना भी की जा सकती है। इस प्रक्रिया द्वारा आज्ञा चक्र की साधना भी सबल एव सशक्त बनती है। अनुभूति जन्य आलोक से कहा जा सकता है कि इस विधि के द्वारा मन को वहुत अधिक समय तक एक विपय पर स्थिर किया जा सकता है। इस स्थिरत्व से सकल्प वल तीव्र होता है और एकाग्रता की साधना सुगम व दृढ हो जाती है।

उक्त दोनो ध्यानो मे चेतना के प्रथम भेद प्रधान मे अभ्यस्त हो जाने पर ही द्वितीय अभेद प्रधान की योग्यता आती है। जैसे मत्र प्रयोग से मत्रवाद, शरीर के विभिन्न भागो मे फैले हुए विष को एकत्र कर पहले डक वाले मुख्य केन्द्र पर ले जाता है, वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के विभिन्न विषयो मे भटकते हुए मन को पहले ध्यान के द्वारा एक केन्द्र पर स्थिर किया जाता है। स्थिरता के दृढ हो जाने पर मन की समस्त चचल वृत्तियाँ एवं विचार स्वतः ही शान्त हो जाते हैं और मन एकदम निष्प्रकम्प बन जाता है, जिसका चरम परिणाम होता है, ज्ञान के सम्पूर्ण आवरणो का विलय और चेतना के अनन्त ज्ञान-गुण का प्राकट्य अर्थात् सर्वज्ञता की उपलब्धि।

३ सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति :

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त दोनो प्रक्रियाएँ सर्वज्ञता की उपलब्धि के पूर्व की है, जबकि अन्तिम दोनो विधिया सर्वज्ञता (केवलज्ञान) की उपलब्धि के पश्चात् ही पायी जाती है। जब सर्वज्ञ प्रभु का निर्वाण काल निकट होता है, तब अन्तर्मुहूर्त पूर्व अर्थात् तेहरवे गुण स्थान के अन्तिम क्षणों मे ध्यान का तीसरा भेद प्राप्त होता है। ध्यान की इसी धारा मे योग-निरोध की क्रिया होती है। वस्तुत जब सर्वज्ञ भगवान् योग निरुन्धन क्रम के अन्त मे सूक्ष्म शरीर का आश्रय लेकर शेष अन्य योगो का पूर्ण निरोध कर देते है, उस समय की वह ध्यान धारा ही सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति ध्यान कहलाती है। चूँकि, उसमे केवल श्वासप्रश्वास जैसी सूक्ष्म योग क्रिया ही शेष रहती है तथा इस ध्यान-धारा से पुन निवृत्ति-पतन सम्भव नही है, अत· इसका गुण मूलक सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति नाम सार्थक हो जाता है।

४ समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति .

शैलेशी अर्थात् पर्वत के समान निष्प्रकम्प अवस्था के प्राप्त होने पर जब श्वास-प्रश्वास आदि दैहिक क्रियाएँ भी अवरुद्ध हो जाती है और आत्म प्रदेश अकम्प बन जाते है, तत्कालीन सहज ध्यान धारा "समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति" ध्यान कहलाती है। इस ध्यान मे मानसिक, वाचिक एव कायिक योग सम्बन्धी स्थूल एव सूक्ष्म सभी क्रियाओ का उच्छेद हो जाता है। अत इसमे सभी आस्रवो का निरोध होकर सर्व कर्मो का क्षय हो जाता है और सर्व सवर रूप निवृत्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उक्त शुक्ल ध्यान के तृतीय और चतुर्थ भेद मे किसी भी प्रकार के श्रुत ज्ञान का अवलम्बन नही लिया जाता अत ये दोनो निरालम्बन भी कहलाते है।

वस्तु तत्त्व मे शुक्ल ध्यान आत्मा की विशुद्ध्यमान परिणति मे होने वाली सहज धारा है, जिसमे चेतना स्वत ही विकासमान होती है।

आगमोक्त विधि की कल्पना की जा सकती है [illegible]
आगमोल्लिखित अरण्यो मे की जाने वाली [illegible]
मुद्रा का चिन्तन और उस मानसिक चित्र पर [illegible]
भी किया जा सकता है।

इस प्रकार विराट् व्यक्तित्व के जीवन [illegible]
चिन्तन मन के भटकाव को प्रतिबंधित कर [illegible]
फलत वह एक विशुद्धतम केन्द्र पर [illegible]
शुभत्व से शुद्धत्व की ओर गतिमान होता है [illegible]
लब्धियो के साथ सकल्प-शक्ति की [illegible]

रूपातीत ध्यान

रूपातीत ध्यान का अर्थ है— [illegible]
से अतीत निराकार, शुद्ध चेतन्य [illegible]

पदस्थ एव पिण्डस्थ ध्यान मे [illegible]
(साकार पदार्थ) की कल्पना [illegible]
रूपातीत ध्यान विधि मे [illegible]
केन्द्रित होने की साधना की जाती है [illegible]
पदार्थो पर केन्द्रित हो जाता है। [illegible]
का कोई रूप नही होता, न [illegible]

न सद्दे, न [illegible]

अर्थात् न शब्द आत्मा [illegible]
आपेक्षिक दृष्टि से चेतना [illegible]
ये सब भौतिक पदार्थो के [illegible]
अभौतिक एव अमूर्त है। [illegible]
मयोहि आत्मा" के अनुसार [illegible]
दृश्यो का द्रष्टा है। [illegible]
के साथ इस द्रष्टा एव [illegible]
विविध पर्यायो का चिन्तन [illegible]
एव सर्वोत्कृष्ट अवस्था [illegible]
अत सिद्धो के अनन्त [illegible]
ध्यान कहा जाता है।

अन्य ध्यानो [illegible]
इसमे सभी प्रकार [illegible]
बाहर से सिमटकर [illegible]

(३) अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा :

अनन्त काल से ससार मे विविध स्थानो पर होने वाले अनन्त जन्म-मरण एव भव-भ्रमण का चिन्तन करना अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा अथवा लोक स्वरूप भावना कहलाती है ।

(४) विपरिणामानुप्रेक्षा :

ससार की समस्त वस्तुओ के विविध परिणमन, शुभ से अशुभ, संयोग से वियोग तथा सम्पूर्ण भौतिक सुखो को नश्वरशीलता-अस्थिरता का विचार करना विपरिणामानुप्रेक्षा या अनित्य भावना कहलाती है ।

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त चारो भावनाओ के माध्यम से विचारो की उच्च श्रेणी मे आरूढ आत्मा कर्म मालिन्य को नष्ट करती चली जाय, तो मुहूर्त मात्र मे आराधक से आराध्य, आत्मा से परमात्मा की स्थिति मे परिणत हो, परम आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन कर लेती है ।

ध्यान की उपर्युक्त नाति विस्तृत विवेचना का यहा एक ही प्रयोजन है कि आज का मुमुक्षु साधक, साधना की विभिन्न विधियो मे दिग्भ्रान्त न होकर सही दिग्बोध प्राप्त करे । आज अधिकाश साधक साधना के अनेकानेक मार्गो मे से किसी एक समुचित मार्ग के चयन के अभाव मे दिग्मूढ होकर इतस्तत भटक रहे है । ऐसी स्थिति में अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर द्वारा प्रदत्त अनुभूतिमूलक ध्यान मार्ग साधको की दृष्टि-पथावतारी बने तो साधक तद्द्वारा साध्य के सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो, आर्त्त-ध्यान, रौद्र ध्यान जैसे अप्रशस्त ध्यानो से बचकर धर्म, शुक्ल जैसे प्रशस्त ध्यानो की ओर उन्मुख बने तथा यह बोध हो कि प्रशस्त ध्यान मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा साधक अपनी परम उपलब्धि के द्वार तक यथाशीघ्र पहुँच सकता है ।

ध्यान मार्ग की दुरुहता को देखकर बहुत बार साधक कह उठता है—क्या करे ? ध्यान मे मन स्थिर नही होता, आदि । उसी दृष्टि-बिन्दु को समक्ष रखते हुए उपर्युक्त विवेचन मे हमने ध्यान मे मन को केन्द्रित करने की कुछ सुगम विधियो का निर्देश भी यथास्थान किया है ।

मेरा विश्वास है कि उक्त विवेचन के आधार पर साधक यदि विवेचित वर्णना को हृदयगम करके उसे आत्मसात् करता हुआ अनुभूति बोध तक पहुँचे तो मनोनिग्रह का दुरुह मार्ग भी उसके लिये सुगम बन सकता है ।

इस प्रकार हमारे चरितनायक की तप साधना प्रतिसलीनता, वैयावृत्य एव ध्यान आदि तपानुष्ठानो से अनुप्राणित बहुआयामी साधना रही है ।

• • •

भावातीत ध्यान

आधुनिक ध्यान-पद्धतियो मे "भावातीत" ध्यान-विधि कुछ अधिक प्रचलित हुई है। उस विधि मे मन को निर्विकल्प अवस्था मे ले जाने की कल्पना की जाती है, जो वास्तव मे असम्भव है।

कुछ आधुनिक चिन्तको ने उपर्युक्त भावातीत ध्यान पर अधिक बल दिया है। वे मन को विचारशून्य बना देना चाहते हैं। उनके विचारो के अनुसार "मन को किसी विशेष केन्द्र पर स्थिर करने का मतलब है उसकी विविध दिग्गामिनी गति को अवरुद्ध कर, एक विषय पर उसकी पकड को दृढ बना देना, उसे चचल अथवा शिथिल नही होने देना और मन की इस प्रकार दृढ पकड से सघर्ष एव तनाव पैदा होना स्वाभाविक है। मन के साथ तनाव पैदा करना उसके साथ हठ करना है और हठ के द्वारा ध्यान की स्थिति मे नही पहुँचा जा सकता है। अत मन को बिल्कुल उन्मुक्त छोड देना चाहिये, वह अच्छा-बुरा जैसा भी विकल्प करे, करने देना चाहिये। मन की दौड को रोकने का कुछ भी प्रयत्न नही करना चाहिये। आखिर वह कब तक दौडता रहेगा? वह थक कर अपने आप शनै शनै शान्त होता हुआ निर्विचार स्थिति मे पहुँच जाएगा।" उनका यहाँ तक कथन है कि मन पर जप, तप, योग, सयम आदि के माध्यम से कुछ भी दबाव नही डालना चाहिये। यम-नियम आदि की कोई आवश्यकता नही है। मन को अपने अनन्त विषय मे रमण करने दो। वह स्वत ही अपनी हेयता को समझकर निर्विषय होकर विचार शून्य एव भावातीत बन जायेगा। उसकी इस निर्विचार स्थिति से ही अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति प्रस्फुटित होगी, जो एकदम नूतन होगी, किन्तु उक्त विचार अथवा शब्दावली ठीक वैसी ही लगती है जैसे, ईन्धन का स्रोत अनवरत कायम रहते हुए यह सोचना कि समय आने पर अग्नि स्वत शान्त हो जाएगी। विचारणीय है कि यम-नियम के माध्यम से जब तक मन की गतिशीलता के ईंधन को नष्ट नही किया जाएगा, स्वत उसकी निर्विषयता कैसे बन सकती है? अत आधुनिक विचारको की उपर्युक्त शब्दावली साधको के मन मे एक उलझन ही पैदा करती है। मन को निर्विचार एव निर्विकल्प बनाने की सम्मोहक शब्दावली का प्रयोग तो आज तक बहुत हुआ है, किन्तु व्यावहारिक धरातल पर इसे फिस-फिसाकर फूटते हुए ही देखा गया है। अभ्यासार्थियो को इस पथ पर मोहक तर्कजाल से अधिक उपलब्धि नही हो पाई है।

(२) एकत्व वितर्क अविचार ।

(३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति ।

(४) व्युपरत त्रिया निवृत्ति या समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति ।

आदि के दो ध्यानो का आधार एक है, अर्थात् प्रथम दो शुक्ल भेदो के आरम्भक पूर्व ज्ञान धर (श्रुतज्ञान विशेष) आत्माएँ होती है। अत ये दोनो ध्यान वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान सहित होते है। वितर्क की समानता होते हुए भी दोनो मे कुछ वैषम्य भी है। वह यह कि पहले मे पृथक्त्व-भेद है, जबकि दूसरे मे एकत्व-अभेद । इसी प्रकार पहला सविचार है, जबकि दूसरा निर्विचार । इसी दृष्टि से इन दोनो के व्युत्पत्तिमूलक नामो मे भी अन्तर पड गया है ।

१. पृथकत्व वितर्क सविचार[1] :

"जब कोई ध्यान करने वाला पूर्वधर हो, तब पूर्वगत श्रुत के आधार पर और जब पूर्वधर नही हो तो अपने मे सम्भावित श्रुत के आधार पर किसी भी परमाणु, आदि जड या आत्मरूप-चेतन, ऐसे एक द्रव्य मे उत्पत्ति, स्थिति, नाश, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, आदि अनेक पर्यायो का द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, आदि नयो से भेद-प्रधान चिन्तन करता है और सम्भव श्रुतज्ञान के आधार पर एक द्रव्य रूप अर्थ पर से दूसरे द्रव्य रूप अर्थ पर या द्रव्यरूप, अर्थ पर और शब्द पर से अर्थ पर चिन्तन की प्रवृत्ति करता है, तथा मन, आदि किसी भी एक योग को छोडकर अन्य योग का अवलम्बन ग्रहण करता है, तब यह ध्यान पृथक्त्व वितर्क सविचार कहलाता है। कारण यह है कि इसमे वितर्क-श्रुतज्ञान का अवलम्बन लेकर किसी भी एक द्रव्य मे उसके पर्यायो का भेद (पृथकत्व) विविध दृष्टियों से चिन्तन किया जाता है और श्रुतज्ञान को अवलम्वित करके एक अर्थ पर से दूसरे अर्थ पर, एक शब्द पर से दूसरे शब्द पर, अर्थ पर से शब्द पर, शब्द पर से अर्थ पर तथा एक योग से दूसरे योग पर स मित-सचारित किया जाता है।"

२ एकत्व वितर्क अविचार :

उपर्युक्त विवेचन से विपरीत किसी भी पर्याय एव द्रव्य मे अथवा योग मे परिवर्तन के बिना किसी एक द्रव्य अथवा पर्याय का स्थिरता पूर्वक चिन्तन करना एकत्व वितर्क अविचार "शुक्ल ध्यान" है। इसमे शब्द, अर्थ, व्यजन अथवा योगो से सक्रमण नही होता है। इसमे एकत्व, अभेद प्रधान चिन्तन होता है। एकत्व वितर्क अविचार में प्रवेश के वाद आत्मा मे स्थिरत्व आ जाता है, और फलस्वरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन की उपलब्धि होती है।

---

१ तत्त्वार्थ विवेचन–अ ए.सू ३९–४५

"आगारेन गृहेन सहवर्तते तद् सागारः,
तेन-गृह विशेषेण रहितो अनगारः ।
न विद्यते अगार (गृह) द्रव्यतो भावनतश्च,
यस्यासावणगारः ।।"

अर्थात् जिसका कोई अपना गृह-मकान, मठ आदि स्थान विशेष न हो, वह "अनगार" (अणगार) कहलाता है । तात्पर्य यह है कि जैन मुनि का अपना कोई मकान, मठ या डेरा नही होता ।

प्रत्येक मुमुक्षु साधक के लिए यह नितान्त वाछनीय है कि वह विराटता की अनुभूति मूलक यात्रा के लिए क्षेत्र विशेष के आसक्ति मूलक बन्धनो को तोडे और "अप्रतिबद्ध विहारी" बनकर भूमण्डल व्यापी अपनत्व स्थापित कर ले । वीतरागता के समुपासक साधक के लिए तो अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि मुनि-जीवन की साधना परिव्राजक की साधना है। मुनि का जीवन परिव्राजक का जीवन है और परिव्रजन जैन श्रमण का शाश्वत धर्म है । जैन मुनि के अन्य अनेक विशेषणो मे एक विशेषण "अनिकेत" भी आता है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है कि जैन मुनि किसी स्थान विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नही होता । उसकी जीवन-चर्या परिभ्रमणमयी होती है ।

उपनिषदकार ऋषियों के अनुसार—
"चरैवेति चरैवेति चरन् वैमधुविन्दति ।।"

अर्थात् साधक निर्बाध गति से चरन्—परिव्रजन करता हुआ ही तत्त्व साक्षात्कार करता है । अतः साधना का अर्थ हुआ निरन्तर गतिशीलता ।

चरन् की इस प्रकिया से ही साधक नित नूतन उपलब्धियो के द्वार पार करता चला जाता है । अतएव बौद्धिक एव आध्यात्मिक विकासोन्मुख गतिशीलता के साथ ही क्षेत्र-जनित अवरोधो से ऊपर उठने के लिए भगवान् महावीर ने भ्रमण-विचरण अथवा अनियत विहार को भी महत्त्व प्रदान किया है । श्रमणचर्या का निर्देश करते हुए आगमिक पृष्ठो पर कहा गया है कि— मुनि, चातुर्मास-प्रावृट् काल के अतिरिक्त आठ महीनो मे विचरण करता रहे, ताकि उसकी चर्या मे छोटे-छोटे ग्रामो की जनता भी लाभान्वित हो और स्वय का जीवन चरित्र भी निरन्तर प्रवहमान सरिता के जल की तरह निर्मल रहे। भगवान् महावीर के उक्त उपदेश को राजस्थानी भाषा मे इस प्रकार अभिव्यक्ति दी गई है—

"बहता पानी निरमळा, पडा गन्दला होय ।
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय ।।"

उक्त शुक्ल ध्यान के प्रथम भेद मे मानसिक, वाचिक एव कायिक तीनो योग पाये जाते हैं। द्वितीय भेद मे कोई एक योग पाया जाता है। तृतीय मे केवल काय योग और चतुर्थ मे योग का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण

अन्य ध्यानो की तरह शुक्ल ध्यान के अभिव्यजक लक्षणो का निर्देश भी आगमो मे मिलता है। शुक्ल ध्यान का प्रमुख लक्षण है—अविच्युति अर्थात् किसी भी प्रकार के उपसर्गों के आने पर भी ध्यान से विचलित नही होना। चार विशिष्ट अवस्थाओ के आधार पर ध्यान के चार लक्षण बनते है।

(१) विवेक (२) व्युत्सर्ग (३) अव्यथा और (४) असम्मोह।

(१) **विवेक :** आत्मा को देहादि समस्त सासारिक जड सम्बन्धो से भिन्न मानने रूप विवेक की अभिव्यक्ति।

(२) **व्युत्सर्ग** शरीर, आदि सभी उपाधि का भावात्मक दृष्टि से सर्वथा त्याग रूप लक्षण का प्राकट्य।

(३) **अव्यथा** मानुषिक अथवा दैविक किसी भी प्रकार के परीषह या उपसर्गों के आने पर अविचल अनुद्विग्नता का प्रादुर्भाव।

(४) **असम्मोह .** गहन विषयो मे अथवा देवादि के द्वारा की जाने वाली छलना मे भी सम्मोहित नही होना।

शुक्ल ध्यान की चार भावनाएँ

धर्म ध्यान की तरह ही शुक्ल ध्यान मे प्रावीण्य प्राप्त करने के लिए उसकी चार भावनाओ का निर्देश किया गया है—

(१) अपायानुप्रेक्षा (२) अशुभानुप्रेक्षा
(३) अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा (४) विपरिणामानुप्रेक्षा

(१) अपायानुप्रेक्षा :

कषाय एव आस्रव के दुष्परिणाम तथा उनसे होने वाले दु खो का चिन्तन करना तथा ससार-वृद्धि की कारणभूत पाप वृत्तियो के विपय मे चिन्तन करना अपायानुप्रेक्षा अथवा आस्रव भावना कहलाती है।

(२) अशुभानुप्रेक्षा .

ससार के अशुभ परिणामो एवं पदार्थों की नि सत्वता एव मलीनता का विचार करना अशुभानुप्रेक्षा या अशुचि भावना कहलाती है।

सत्य का खोजी परिव्राट्

यह कहा जा चुका है कि जैन मुनि का जीवन परिव्राजक का जीवन है और परिव्रजन जैन मुनि का शाश्वत धर्म है। उनकी यह परिव्रजन यात्रा "असतो मा सद्गमय" के अनुसार असत् से सत् की ओर तथा "मृत्योर्मामृत गमय" के अनुसार मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने वाली यात्रा है। इस यात्रा का यात्री सदा सत्य का खोजी-अन्वेषक होता है और जब तक उसकी सत्य को पाने की अभीप्सा प्रपूरित नही होती, वह निरन्तर गतिशील रहता है।

श्रद्धेय चरितनायक का यात्रा-पथ भी शाश्वत सत्य को पाने की अभीप्सा से प्रारम्भ होता है। मुनि दीक्षा स्वीकार करने के पश्चात् अपने आराध्य गुरुदेव के साथ जन्म-भूमि के सीमित क्षेत्र को छोड़कर विराट् विश्व मे अपनत्व कायम करने के उद्देश्य से उनका प्रथम यात्रा प्रवास प्रारम्भ होता है।

परम आराध्य तत्कालीन युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने अपने कर-कमलो से प्रथम दीक्षित, प्रथम होनहार सुयोग्य सुशिष्य को लेकर दीक्षा भूमि कपासन से विहार कर हथियाना आदि निकटवर्ती छोटे-छोटे ग्रामों मे परम पावनी धर्म गंगा के द्वारा ग्राम्य जनो के हृदयो को सरसब्ज बनाते हुए जावद (मध्यप्रदेश) की ओर प्रस्थान किया और चरितनायक की दीक्षा के कुछ दिनो पश्चात् ही जावद-निवासी युवक श्री मगनलालजी को प्रव्रजित किया।

• • •

यात्रा-पथ

सुअवसर चरितनायक को मिला। वहाँ से ज्योतिर्धर आचार्य देव का वर्षावास हेतु वगडी की ओर तथा युवाचार्यश्री का फलौदी की ओर भिन्न-भिन्न दिशाओ मे प्रस्थान हो गया। चू कि चरितनायक युवाचार्यश्री की सेवा मे ही थे, अत आपश्री भी फलौदी पधारे, जहाँ आपका प्रथम वर्षावास-अध्ययन तल्लीनता के साथ सम्पन्न हुआ। इसी चातुर्मास मे आपका प्रथम केश लुन्चन हुआ, जो जैन मुनि-साधना की कठोरतम जीवनचर्या का प्रतीक है अथवा देह के प्रति अनासक्ति योग-साधना का अद्भुत परीक्षण है।

यह बताया जा चुका है कि चरितनायक का जन्म अवश्य ग्राम्य सभ्यता मे हुआ, किन्तु उनकी दैहिक सुकोमलता राजकीय वैभव मे पलने वाले राजकुमार से कही अधिक थी। इसका दर्शन हम आज भी प्रत्यक्ष कर सकते है। उस सुकोमल मस्तिष्क पर से बालो का लुन्चन किया गया तब सहज ही रक्त की बू दे छलछला आई और पूरे सिर मे बडे-बडे फफोले हो गए जो कई दिनो के पश्चात् उपशमित हुए। किन्तु उस परीक्षण बेला मे, आपकी मानसिक दृढता एव कष्ट सहिष्णुता अतुलनीय रही। "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" के अनुसार जहाँ आपका शारीरिक सगठन कुसुम से भी कोमल था, वही आपका मानसिक सगठन (बल) वज्र से भी कठोर था। उसी के आधार पर तो आपने कठोरतम श्रमणाचर्या का अनुशीलन स्वीकृत किया।

याता - पथ

भारतीय सस्कृति के हिमालय से प्रवाहित होने वाली विभिन्न साधना-सरिताओ का मूल उद्देश्य रहा है प्रकृति-विभाव से आत्म-स्वभाव की ओर गमन, अथवा यो कहे कि आत्मा की क्षुद्रता-लघुता से निकल कर परमात्मा की विराटता को उपलब्ध होना। यही साधना का मौलिक उद्देश्य है। जैसे सरिता अपने मूल उद्गम पर अत्यन्त संकीर्ण (लघु) जल-प्रवाह मात्र होती है, किन्तु उसकी निरन्तर विकासमान गतिशीलता उसे एक रोज विराट् सागर मे रूपान्तरित कर देती है—सरिता सागर बन जाती है, उसी प्रकार साधक साधना-सरिता के रूप मे निरन्तर प्रवहमान रहता हुआ एक दिन सागर की अतल गहराई एव गम्भीर स्थिति को उपलब्ध हो जाता है।

"अहता ममता भाव. त्यक्तु यदि न शक्यये।
अहता ममता भाव: सर्वत्रेव विधीयताम् ॥"

इस नीति वाक्य के अनुसार लघुता से विराटता की इस यात्रा मे अहम् एव ममत्व की क्षुद्र परिधि मिट जाती है, ये अपना सार्वत्रिक (व्यापक) रूप ले लेते है। विभाव से स्वभाव की ओर गति के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि साधक अपने सकुचित ममत्व के घेरे को छोडकर विराटता की ओर गतिशील हो। स्वभाव-गमन मे सबसे बडी बाधाएँ है विचार-व्यामोह एव ममत्व के सकुचित घेरे। जब तक साधक-चेतना इन क्षुद्र परिधियो को मिटा नही लेती, उसका यात्रा-पथ निर्बाध नही बन पाता और वह स्वभावोपलब्धि के द्वार तक नही पहुँच पाती।

साधक-चेतना को परिवार, समाज आदि के वैयक्तिक-व्यामोह एव ममत्व के सकुचित घेरे जितने प्रतिबधित करते हैं, उतने ही भौगोलिक क्षेत्र से सम्बन्धित घेरे भी उसकी चेतना को सीमित-परिधि मे अवरुद्ध कर लेते हैं। इसी दृष्टि से साधक जहाँ परिवार आदि ममत्ववर्धक घेरो का परित्याग करता है, वही अपने वैयक्तिक अधिकार पूर्ण क्षेत्रीय घेरो से भी अतिक्रान्त हो जाता है। उसका ममत्व किसी एक गृह या स्थान विशेष मे अवरुद्ध ही नही होता। अत जैन श्रमण को आगम की भाषा मे "अणगार" कहा गया है। "अणगार" शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए निर्युक्तिकार ने कहा है—

अपने आराध्यो से विलग होने के लिये तैयार नही थे। अत साथ ही विहार करते हुए गंगा शहर—भीनासर पहुँचे। वहाँ एक वैद्य रामरतनजी स्वास्थ्य परीक्षण हेतु पहुँचे तो आपकी सौम्य मुखाकृति पर दृग्पात करते ही अत्यधिक प्रभावित हो उठे—"प्रथमे वयसि य. शान्त. स शान्त एव तिष्ठति"—इस तरुणाई मे आपकी मुख मुद्रा इतनी सौम्य एव शान्त है तो इसे आगे तो निश्चित रूप से सौम्यतम रहना ही है।"

श्री वैद्यराजजी सामान्य परीक्षण के उपरान्त चरितनायक से प्रभावित हो चले गए। इधर परिस्थिति वश चरितनायक को बीकानेर जाना पडा, तब वहाँ भगवत राम जी का उपचार चलने लगा। चू कि बुखार को काफी लम्बा समय हो गया था, अत. उपचार भी लम्बे समय तक चला। उपचार मे दुग्ध के अतिरिक्त अन्नादि बिल्कुल बन्द कर दिया गया और उसी स्थिति मे कुछ महीनो तक उपचार चलता रहा, फलस्वरूप शारीरिक स्थिति अत्यन्त कमजोर हो गई, जिससे आपके अध्ययन मे भी व्यवधान पड़ने लगा।

इधर अगले चातुर्मास का काल निकट होने से युवाचार्यश्री का विहार वर्षावास हेतु थली प्रान्त (सरदार शहर) की ओर हो रहा था। यद्यपि आचार्य देव ने अन्य अनेक सन्तो को भी सकेत किया था कि कोई अन्य सत उधर चले जाए तो युवाचार्यश्री यहाँ सेवा का कार्य करते हुए बीकानेर आदि क्षेत्रो के चातुर्मास का कार्य सभाल ले, किन्तु कुछ तो थली प्रान्त की भयकर गर्मी का डर, चातुर्मास लगने मे अल्प दिन शेष रह जाना और सरदार शहर क्षेत्र की क्षेत्रीय भूमि का युवाचार्यश्री जैसे कर्मठ ज्ञान-निष्ठ तपोमूर्ति महात्माओ के लिये प्यासा होना ऐसे कारण थे जिन्होने आचार्य देव का ध्यान युवाचार्यश्री की ओर खीचा। आचार्य देव ने युवाचार्यश्री की ओर सकेत की आँख उठाई कि युवाचार्यश्री के मुह से सहसा "तथास्तु" (जो आज्ञा) का स्वर मुखरित हुआ। फलस्वरूप युवाचार्यश्री का कुछ सन्त मण्डली के साथ थली प्रान्त की ओर विहार हो गया। चू कि चरितनायक का उस समय तक स्वास्थ्य थली प्रान्त की उष्मा सहन करने के योग्य नही बना था और न उनमे इतने अल्प समय मे इतनी दूरी पार करने की सामर्थ्य थी, अत आपश्री को स० १९९ का वर्षावास बीकानेर मे ही व्यतीत करना पडा।

नव दीक्षित से प्रेरणा

बीकानेर मे उस समय वृद्ध प्रज्ञाचक्षु श्री श्रीचन्दजी म० सा० आदि स्थविरवास विराज रहे थे। अपने आराध्य गुरुदेव से प्रथम वार आपको नई नई दीक्षा पर्याय मे इतनी लम्बी अवधि के लिए अस्वस्थता के कारण विलग रहना पडा, किन्तु इस चातुर्मास मे भी आपने स्वय शारीरिक दृष्टि से रुग्ण होते हुए भी वृद्ध संतो की जो अनन्य सेवाएँ की, वे अनूठी और अनुकरणीय रही।

अर्थात् जैसे प्रवाहित जल निर्मल एव पवित्र बना रहता है, उसी प्रकार मुनि जीवन भी निरन्तर प्रवहमानता मे निर्मल एव पवित्र बना रहता है। स्थान विशेष की क्षेत्रीय आसक्ति उसके जीवन को स्थिर पानी की तरह मलीन वना देती है। यदि साधक एक ही स्थान पर प्रतिबधित रहता है तो सहजतया स्थानीय व्यक्तियो के सकुचित व्यामोह मे उसका चित्त आसक्त बन जाता है और यह अति परिचयात्मक आसक्ति एक दिन उसके सयम-साधना-पथ के लिये व्याघातक भी बन जाती है। फलत वह आत्म-केन्द्र से भटक कर एक छोटी-सी परिधि मे अवरुद्ध होकर विराटता के यात्रा-पथ से विचलित हो जाता है और स्वभाव-परमात्म प्राप्ति का उसका लक्ष्य छिन्न-भिन्न हो जाता है। अस्तु साधु जीवन की निर्मलता विचरण से सुदृढ ही बनती है। स्वय के जीवन की निर्मलता के साथ परिभ्रमण—पाद विहार मे एक दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ होता है, जन-जागृति का। राजस्थानी भाषा की ही एक कहावत है—

"साधू सलिला बादळी, चले भुजगी चाल।
जिण-जिण सेहरी नीसरे, तिण-तिण करे निहाल॥"

अर्थात् साधनारत साधु, जल-सम्पन्न मेघो की भाति ही जिस क्षेत्र से गुजरते है, उस क्षेत्र मे आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की सरसता एव सरसब्जता उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार साधु की भ्रमण-वृत्ति से अनेको क्षेत्र लाभान्वित होते है। इसी दृष्टि से श्रमण सस्कृति मे पाद-विहार पर बल दिया है जिससे मुनि की अहिंसक आराधना भी चले और ग्राम्य सस्कृति मे पलने वाले विभिन्न विचारो के लोगो से उसका सम्पर्क स्थापित होता रहे, उन्हे आध्यात्मिक मार्ग दर्शन मिल सके।

साधु-जीवन की उपर्युक्त चर्या के अनुसार हमारे श्रद्धेय चरितनायक भी विराटता की यात्रा के पथिक रहे हैं। अपने साधना-काल मे उन्होने आज तक हजारो मील की पद यात्रा की है और तद् द्वारा स्वय के आध्यात्मिक उत्थान के साथ हजारो, लाखो श्रद्धालुओ मे नूतन जागृति का सचार किया है।

साधना-पथ अगीकार करने के पश्चात् चरितनायक की विविध क्षेत्रो मे पद-यात्राएँ हुई हैं, जो अद्भुत सस्मरणो से सयुक्त अपने ढग की अनूठी यात्राएँ रही हैं।

चूकि किसी भी व्यक्तित्व की गरिमा की तह तक पहुँचना उसकी सम्पूर्ण जीवनचर्या के अवलोकन के बिना नही हो सकता, अत चरितनायक के जीवन-दर्शन को सर्वतोभावेन हृदयगम करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उनके यात्रा-पथ का एक विहगम विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय अस्तु, प्रस्तुत है इस प्रकरण मे क्रमश सक्षिप्त प्रासगिक पद-विहार वर्णन।

परीक्षा और जागरण

ब्यावर चातुर्मास की मुख्य उपलब्धियो मे सेवा के सम्पूर्ण दायित्व का निर्वहन करते हुए 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन करना था। दोनो वृद्ध सन्तो का एव अपना सम्पूर्ण कार्य करते हुए आप अपना अध्ययन भी बराबर करते रहे। आपके अध्यापन का सम्पूर्ण दायित्व प० मुनि श्री जौहरीलालजी म० सा० पर था।

यह कहा जा चुका है कि आपकी आरम्भ से ही अध्ययन के प्रति गहरी रुचि रही है। सेवा का कार्य करते हुए जब भी अवकाश मिलता, आप अध्ययन मे तल्लीन हो जाते। जब आपका 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन १० गण तक पूर्ण हो गया, तो उतने ग्रन्थ की परीक्षा लेने का निश्चय किया गया और परीक्षक पडित दुग्धनारायणजी शास्त्री को नियुक्त किया गया। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि परीक्षा, वह चाहे किसी भी विषय की हो, मन मे एक गम्भीर, प्रेरणाप्रद हल-चल मचा देती है। चरितनायक की भी यही स्थिति बनी। जिस दिन परीक्षा होने वाली थी, उसकी पूर्व रात्रि को चरितनायक ने रात्रि भर जागरण किया और 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' जैसे विशालकाय ग्रन्थ का स्मृति के बल पर दस ही गण तक आद्योपान्त साधनिका सहित परावर्तन किया। परिणाम मे उत्तीर्णता तो प्रथम श्रेणी से प्राप्त कर ली, किन्तु सम्पूर्ण रात्रि जागरण और इतने विशालकाय ग्रन्थ के आवर्तन से मस्तिष्क मे बहुत गहरा तनाव पैदा हो गया। उस समय आपको ऐसा अनुभव होने लगा कि मस्तिष्क मे जैसे कोई गहरा गड्ढा पड़ गया हो अथवा कोई गहरा घाव हो गया हो। दिमाग विचार-शून्य-सा लगने लगा।

इस विषय की जानकारी जब प० मुनि श्री जौहरीलालजी को हुई, तो उन्होने शिक्षा के रूप मे चरितनायक को सकेत किया—"मस्तिष्क पर ऐसा तनाव कभी नही डालना चाहिए। बिना अभ्यास के इस प्रकार रात्रि-जागरण से स्वास्थ्य पर एव दिमाग पर बुरा प्रभाव पडता है, आगे से ऐसा कभी नही करना, आदि।"

इसी चातुर्मास मे आपने कुछ-कुछ प्रवचन देना भी प्रारम्भ कर दिया। पर्यु षण पर्व के दिनो मे आपने प्रवचन मे 'अतगड़सूत्र' का वाचन कर अपने जीवन मे एक नये आयाम का प्रारम्भ किया।

ज्योतिर्धर आचार्य के चरणों में

चूंकि बीसवी सदी के जैन-धर्मोन्नायक ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० का पदार्पण गुजरात (अहमदाबाद) का चातुर्मास पूर्ण कर घाणेराव सादडी की ओर हो रहा था, उस समय चरितनायक आदि शिष्य मण्डली को साथ लेकर युवाचार्यश्री ने भी अपने अप्रतिम आराध्य आचार्य देव के दर्शन हेतु मालव भूमि से पुन चित्तौडगढ आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए मारवाड की ओर प्रस्थान किया और घाणेराव सादडी मे आचार्य देव के चरणो मे पहुँचे। वहाँ चरितनायक को तत्कालीन युग-द्रष्टा, युग-स्रष्टा, धर्म-क्रान्ति के अग्रदूत ज्योतिर्धर आचार्य देव श्री जवाहरलालजी म० सा० के पवित्र पावन दर्शन एव पद-रज स्पर्श का प्रथम स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

आचार्य देव श्रीमद् जवाहर की सुडोल–गौरवर्णी सुलम्ब देहयष्टि एव प्रशस्त विशाल दिव्य भाल की दीप्ति आगन्तुक को सहसा ही भाव-विभोर एव नत-मस्तक कर गई। उस जादू भरे व्यक्तित्व का अप्रतिम प्रभाव चरितनायक पर भी पडा। चरितनायक ने अपने जीवन मे प्रथम बार ऐसे विमल व्यक्तित्व का बोधपूर्वक साक्षात्कार किया था। आचार्य देव की चरणोपासना का सौभाग्य उस समय अल्पावधि तक ही मिला, क्योकि घाणेराव सादड़ी से यथाशीघ्र विहार कर आचार्य देव एव युवाचार्यश्री चरितनायक आदि शिष्य-समुदाय सहित बगडी पधार गए और वहाँ से अजमेर होते हुए अलग-अलग चातुर्मास हेतु विहार कर गये। उस समय आचार्य देव का स्वास्थ्य अनुकूल नही रहता था, अत विशेष प्रवचन देने का प्रसग नही आता था, किन्तु बगड़ी संघ का अत्याग्रह होने से कभी-कभी दस-बीस मिनट का प्रवचन होता था, जिसे सुनने का सौभाग्य चरितनायक को भी मिला, किन्तु आचार्य देव की उस स्वल्पकालीन चरणोपासना से उनकी ज्ञान-गरिमा एवं अगाध मेधा-शक्ति का एक अनूठा प्रभाव चरितनायक के हृदय-कमल पर अंकित हो गया, और एक बिजली के करेन्ट सा झटका आपकी प्रज्ञा को बेध गया कि ऐसे महामहिम व्यक्तित्व का स्वल्प ससर्ग भी प्रत्येक आगन्तुक की चेतना में ज्ञान का प्रकाश जागृत कर सकता है। उसकी परिचर्चा यदा-कदा आज भी चरितनायक के श्रीमुख से सुनी जाती है, अस्तु।

प्रथम चुम्बन

अजमेर तक श्रद्धेय आचार्य देव के सान्निध्य मे लाभान्वित होते

कौमुदी' जैसे दुरुह ग्रन्थो के अध्यापन हेतु योग्य विद्वानो का सयोग न होने से चरितनायक को इस चातुर्मास मे भी अपने आराध्य गुरुदेव की चरण-सेवा से विलग रहना पडा । चू कि बीकानेर मे अध्यापन हेतु योग्य विद्वान् पडितो का सयोग था, अत आपश्री सवत् २००० के चातुर्मास के समय बीकानेर मे वृद्ध-स्थविर सन्तो की निश्रिति मे 'सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन करने लगे ।

इसके पश्चात् शान्त क्रान्ति के अग्रदूत आचार्य प्रवर के सवत् २००१-२-३-४ एव ५ के चातुर्मास क्रमश सरदार शहर, ब्यावर, बगडी, बडी सादडी एव रतलाम मे हुए । चरितनायक भी बीकानेर चातुर्मास उठने पर श्री चरणो मे पहुँच गए और उक्त सभी वर्षावासो मे सेवा समर्पिति के साथ अध्ययन-निरत रहने लगे ।

साधु-मर्यादा एव आत्म-पुकार

जब बगडी का २००३ का चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य देव का विचरण मेवाड़ के छोटे-छोटे क्षेत्रो मे हो रहा था, उस समय की चरितनायक के जीवन की एक मुनि-मर्यादा की कसौटीपूर्ण घटना है ।

हुआ यह कि आचार्य देव छोटे-छोटे ग्रामो मे विचरण कर रहे थे और साथ मे कुछ विद्यार्थी सन्त थे, जिनका सस्कृत आदि का अध्ययन चल रहा था । छोटे-छोटे ग्रामो मे भ्रमण मे प्राय प्रतिदिन लघु विहार होते रहते हैं, जिससे अध्ययनशील मुनियो के अध्ययन मे व्यवधान पड़ता है, अत आचार्य देव ने एक वयोवृद्ध सन्त श्री मोहनलालजी म० सा० को साथ देकर हमारे चरितनायक आदि ३-४ मुनियो को उदयपुर से करीब ३० मील दूर बवोरा ग्राम मे पहुँचने का आदेश दिया—"तुम लोग वहाँ पहुँच कर अध्ययन करते रहो, मै कुछ ग्रामो मे विचरण कर फिर वहाँ पहुँचता हूँ ।" तदनुसार वे विद्यार्थी मुनिवर वहाँ पहुँचकर अपने अध्ययन-कार्य मे सलग्न हो गए ।

अध्ययन के लिये अधिक-से-अधिक समय मिले, इस दृष्टि से भिक्षावृत्ति (गोचरी) लाने का कार्य सध्या को न रखकर प्रात.काल एक ही समय रखा और जो कुछ वच जाता, उसे तृतीय प्रहर मे उपभोग कर, बाद मे शौच निवृत्ति हेतु जगल मे चले जाते ।

ऐसा ही प्रसग एक दिन वना कि चरितनायक सन्ध्या वेला मे शौच निवृत्ति हेतु ग्राम के वाहर निकटवर्ती पहाड की खाइयो मे गए । शौच से निवृत्त हो लौटने लगे तो अचानक किसी पशु के कराहने की आहट सुनाई पडी । आपने इधर-उधर देखा तो पाया कि नाले मे फैली वृक्ष की जडो मे एक भेड फसी हुई है । निकलने के लिए छटपटा रही है, पर निकल नही पा रही

चरितनायक की इस अक्रोध वृत्ति का मुनि श्री रतनलालजी पर इतना गहरा एव अमिट प्रभाव पडा कि वे चरितनायक के प्रति अनन्य स्नेह रखने लगे और आहार आदि के माध्यम से अपनी अदृश्य सेवाएँ नये मुनिजी के प्रति समर्पित करने लगे ।

आहार-व्यवहार मे स्पष्टभाषी बनो

किन्तु "अति सर्वत्र हि वर्जयेत्" के अनुसार मुनिश्री का वह अति प्रेम नये मुनिजी के लिये व्याधि बन गया । होता यह था कि भोजन-सामग्री के सभी सतो मे विभाजन के समय मुनि श्री रतनलालजी अपने हिस्से मे आयी हुई उचित एव श्रेष्ठ सामग्री नये मुनिजी के पात्र मे रख देते और नये मुनिजी सकोचवश, यह सोचकर कि बडो का सम्मान रखना चाहिये, उनकी दी हुई वस्तु का अनादर नही करना चाहिये, आवश्यकता के अतिरिक्त भी कभी-कभी उस आहार का उपयोग कर लेते । उधर सेवाभावी मुनिजी उन्हे खाते हुए देखकर यह सोचते कि ये मुनिजी नये-नये होने से सकोच कर जाते है, पूरा पेट भर नही खाते है, अत वे और अधिक-अधिक रखते जाते । उस सकोच वृत्ति का परिणाम यह हुआ कि नये मुनिजी को पेचिश की शिकायत हो गई और दुर्वल शरीर पर मलेरिया बुखार ने आक्रमण कर दिया । जब युवाचार्यश्री को वस्तु-स्थिति का बोध हुआ, तब एक मीठे उपालम्भ के साथ नये मुनिजी को शिक्षा देते हुए कहा—"ऐसा सकोच कभी नही रखना चाहिए, यह नीति वाक्य याद रक्खो—"आहारे खलु व्यवहारे स्पष्ट वक्ता सुखी भवेत्" अर्थात् आहार और व्यवहार मे जो स्पष्ट भाषी होते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । ऐसा संकोच कभी-कभी भारी सकट मे उलझा देता है । चरितनायक ने युवाचार्यश्री की उस अनुभूति मूलक शिक्षा को हृदयगम कर लिया और वह संस्कृत सूक्त तो उनके मस्तिष्क मे अमिट रेखा की तरह अकित हो गया । प्रत्येक नये शिष्य को सामान्य व्यावहारिक शिक्षा देते समय यह सूक्त सहसा उच्चरित हो जाता है । पच्चीसो बार तो इस वाक्य को मैं स्वय श्रीमुख से सुन चुका हूँ ।

फलौदी का ऐतिहासिक चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर युवाचार्यश्री ने पुन श्रद्धेय आचार्य श्रीमद् जवाहर के पवित्र पाद-पद्मो की सेवा हेतु बगड़ी की ओर प्रस्थान किया । मार्ग मे चरितनायक का बुखार बराबर चलता रहा । टेम्परेचर कम ज्यादा होता रहता, किन्तु बुखार पूर्ण रूप से नहीं गया । मार्ग मे उपचार के जितने साधन साधु मर्यादानुसार उपलब्ध होते, उनके अनुसार सामान्य उपचार चलता रहा । बगडी मे पूज्य आचार्य देव के दर्शन कर उसी शारीरिक स्थिति मे आत्म-बल के आधार पर आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के साथ बगडी से भीनासर (बीकानेर) की ओर विहार कर दिया । यद्यपि आचार्य देव ने वही रहकर कुछ औषधोपचार करवा लेने का संकेत किया, किन्तु

शिष्य-मण्डली के साथ इन्दौर की ओर प्रस्थान किया और मार्ग के क्षेत्रो को पावन करते हुए आपश्री का इन्दौर नगर मे पदार्पण हुआ जहाँ सर्वोदय सिद्धान्त के प्रणेता विनोबा भावे से मिलन हुआ और कुछ सैद्धातिक एव सामाजिक विषयो पर परिचर्चा हुई। विनोबा भावे के स्वर मुखरित हुए थे—"आचार्यश्री, आप सोचते होगे कि जैनियो की सख्या अति स्वल्प है, किन्तु मेरी अपनी धारणा के अनुसार "जैन" नाम धराने वालो की सख्या भले ही कम हो, किन्तु जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्त दूध मे मिश्री की तरह दुनिया मे घुलते चले जा रहे है।" उस परिचर्चा मे चरितनायक ने भी भाग लिया और एक बार सुनी हुई विनोवा भावे की उक्त शब्दावली का अकन आपके दिमाग मे अमिट रेखा के रूप मे हो गया, जो आज भी प्रसंगत. श्री मुख से मुखरित होता रहता है।

इन्दौर मे धर्म की परम पावनी गगा प्रवाहित कर आचार्यश्री उज्जैन पधारे। वहाँ फाल्गुनी (होली) चातुर्मासी पर जयपुर सघ के प्रमुख सदस्य चातुर्मासार्थ विनती लेकर उपस्थित हुए और अति आग्रह पर अड गए कि स० २००६ के चातुर्मास की स्वीकृति आपको जयपुर के लिए देनी पडेगी। यद्यपि जयपुर उज्जैन से काफी दूर पड़ता था और मौसम गर्मी का था, किन्तु जयपुर सघ की परिस्थितियो एव आग्रह को दृष्टि मे रखते हुए आचार्य देव ने जयपुर चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान कर दी और उज्जैन से जयपुर की ओर प्रस्थान किया। भवानी मण्डी पहुँचने पर विचार किया गया कि मार्ग लम्बा एव कठिन है, गर्मी की ऋतु है और मार्ग मे ग्राम भी छोटे-छोटे पडते है, अतः २-३ अलग-अलग सघाडो मे विहार करने से आहार-पानी आदि की सुविधा रहेगी।

वृक्ष-तले

तदनुसार मुनि श्री नानालालजी (चरितनायक), मुनि श्री सुन्दरलालजी, आदि कुछ सन्तो को जयपुर की ओर आगे विहार करवाने का विचार किया गया। भवानी मण्डी से आगे के मार्ग की जानकारी ली गई तो ज्ञात हुआ कि यहाँ से चार मील की दूरी पर जगल मे एक चौकी है, जहाँ रात्रि विश्राम के लिए स्थान मिल सकता है। तदनुसार चरितनायक ने अपने सहयोगी गुरु भ्राताओ के साथ आगे प्रस्थान कर दिया। जव चार मील चलकर उस चौकी के समीप पहुँचे और तत्रस्थित मकान को देखा तो उस पर ताला लगा हुआ था। आस-पास कोई व्यक्ति नही था। इधर सूर्य अस्ताचल की ओर त्वरित गति से धावमान था, निकट मे कोई ग्राम भी नही दिखाई दे रहा था। कुछ विचार-विमर्श करने के पश्चात् निश्चय किया गया कि आज रात्रि यही कही वृक्ष के नीचे बिताई जाय। तदनुसार समीपस्थ एक वृहत् वृक्ष के नीचे गए, किन्तु वहा हरी दूब आदि थी, अतः वह स्थान भी साधु मर्यादा के अनुसार

फलस्वरूप आप सभी सन्तो के अधिक-से-अधिक कृपा एव प्रशसा के पात्र बनते चले गए। जब कभी भीनासर से आचार्यश्री की सेवा मे रहने वाले सन्त सेवा-कार्य हेतु बीकानेर उपस्थित होते, तो आपकी भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए अन्य सन्तो को शिक्षा देते हुए कहा करते कि "देखो, यह नव दीक्षित मुनि स्वय रुग्ण होते हुए भी बिना किसी प्रेरणा के, कैसी अनन्य भाव से सेवाएँ कर रहा है और साथ मे अपना अध्ययन भी करता रहता है। हमे इस नव दीक्षित से प्रेरणा लेनी चाहिये।"

इस प्रकार सेवा-साधना, ज्ञानाराधना एव स्वास्थ्य-सुधार की प्रक्रिया मे आपका यह द्वितीय चातुर्मास सम्पन्न हुआ। लम्बे समय तक अन्न का परित्याग रहने से ज्वर तो टूट गया, किन्तु शारीरिक कमजोरी विशेष हो गई। अत चातुर्मास उठने के पश्चात् भी कुछ समय और आपको वहाँ रहना पडा।

इस रुग्णावस्था मे अध्ययन के प्रति आपकी इतनी तीव्रतम अभिरुचि थी कि प्रतिदिन अध्यापन हेतु आने वाले प० श्री इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री चार दिन तक नही आए तो इस चिन्तना मे आपके नेत्र छलक आए कि—"मेरे ये कैसे अन्तराय कर्म उदित हुए है कि मैं ज्ञानाराधना का सहयोग भी पूर्णत प्राप्त नही कर पा रहा हूँ।" जिन ज्ञान साधक मे इतनी तीव्र पिपासा एव अभिरुचि हो अपने अध्ययन के प्रति, उसके लिये ज्ञान गरिमा की ऊँचाइयो के शिखर पर पहुँचना कोई आश्चर्यजनक नही है, अस्तु।

जब युवाचार्यश्री को स्वास्थ्य-सुधार की जानकारी मिली तो आपश्री ने चरितनायक को प० मुनि श्री जौहरीलालजी के साथ स्थविर पद विभूपित श्री प्यारचन्दजी म० सा०, श्री बोथलालजी म० सा० आदि सन्तो की सेवा मे ब्यावर पहुँचने का आदेश भिजवा दिया। तदनुसार चरितनायक प० मुनि श्री जौहरीलालजी म० सा० के साथ बीकानेर से विहार कर लाडनूँ युवाचार्यश्री की सेवा मे पहुँचे। वहाँ कुछ दिन सेवा का लाभ लेकर ब्यावर पहुँचे और सम्वत् १९९९ का वर्षावास वही वृद्ध सन्तो की सेवा मे व्यतीत हुआ। वहाँ भी आपने बहुत दीर्घ दीक्षा पर्याय वाले उन वृद्ध सन्तो के हृदय को अपनी सेवा, विनय एव सहिष्णु वृत्ति से इस प्रकार जीत लिया कि सहसा उनके मुखारविन्द से अनेकानेक शुभ आशीर्वाद निकल पडते—"ऐसा विनीत अल्प भाषी और सहिष्णु साधु हमने इतनी बडी दीक्षा पर्याय मे नही देखा, यह शासन का होनहार सितारा है", आदि।

• • •

अटवी के मध्य

इसी तरह ग्रामानुग्राम पार करते हुए निरन्तर आगे वढते जा रहे थे कि अचानक एक दिन विकट मार्ग मे उलझ गये। हुआ यो कि राजमार्ग से चलते हुए एक लघु मार्ग (पगडण्डी) दिखाई दिया और सीधा मार्ग समझ कर कि यह आगे मिल जाएगा, उस पर चल पडे। आगे वढने पर मार्ग भटक गये और विकट जगल में पहाडियो के वीच उलझ गये। इधर भयकर गर्मी से आसमान और धरती दोनो ही सतप्त थे। पानी जो कुछ पास मे था, चार मील पर पूरा हो चुका था, अत. प्यास से कण्ठ सूखने लगे, फिर भी एक छोटी-सी पगडण्डी के सहारे आगे बढते रहे। किन्तु एक पहाडी पर तलहटी मे पहुँचकर वह छोटा मार्ग भी समाप्त हो गया। वस्तुत जिस पगडण्डी पर आप चल पडे थे, वह पशुओ के जगल मे चरने जाने का मार्ग था, अत. पहाड की तलहटी मे जाकर बन्द हो गया। चरितनायक आदि मुनिगण असमजस मे पड गये कि अब किधर जाया जाये। आप अपनी समस्याओ मे खोये हुए इधर-उघर देख ही रहे थे, कि सहसा दो ग्रामीण व्यक्ति दूर से आते हुए दिखाई दिये। उनके निकट आने पर चरितनायक ने उनसे पूछा कि "अमुक ग्राम का मार्ग कौन सा है ? हम तो इस पगडण्डी के सहारे चले आये किन्तु आगे मार्ग दिखाई नही दे रहा है।" इस पर उन व्यक्तियो ने उत्तर दिया, "महाराज ! हम भी रास्ता भूल गये है, शायद आपके दर्शनो का सौभाग्य मिलना था—हम भी उसी ओर जा रहे है। रास्ता तो हमे भी ज्ञात नही है, किन्तु दिशा ध्यान मे है, अत दिशा के आधार पर जा रहे है। आप भी हमारे साथ चलिये, हम आपको उस गाँव मे छोड देगे।" तदनुसार चरितनायक आदि सत उनके साथ हो लिये। चलते हुए एक टेकरी पर पहुँचे। जब दूर से एक गाँव दिखाई दिया, तो वे दोनो व्यक्ति यह कहकर कि "सामने जो गाँव दिखाई दे रहा है, आप वहाँ चले जाइये" आगे वढ गये। मुनिगण ने उस गाँव मे पहुँचकर विश्राम किया। दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान कर जयपुर पधारे और शहर के बाहर दूसरे रास्ते से आगत आचार्य देव के साथ हो गये। वहाँ से स० २००६ के वर्षावास हेतु आचार्य देव का नगर-प्रवेश हुआ।

अध्ययन का द्वितीय अध्याय

स्वर्गीय आचार्य श्री का यह जयपुर चातुर्मास सैद्धान्तिक चर्चा-विमर्श की दृष्टि से अनूठा एवं ऐतिहासिक चातुर्मास रहा।

सजग प्रहरी

चातुर्मास की समाप्ति पर जब स्थविर सन्तो की सेवा हेतु अन्य मुनियो का आगमन हो गया, तो युवाचार्यश्री के निर्देशानुसार प० मुनि श्री जौहरीलालजी म० सा० एव चरितनायक का विहार पुन भीनासर की ओर आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की सेवा हेतु हो गया और यथा शीघ्र आप आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री के श्री चरणो मे पहुँच कर आचार्य देव की सेवा मे जुट गए।

चूं कि उस समय आचार्य देव का स्वास्थ्य अत्यन्त कमजोर चल रहा था, अत चौबीसो घण्टे आपश्री की सेवा मे सजगता की आवश्यकता थी। तदनुसार सभी मुनियो का २४ घण्टो का क्रमश समय निर्धारित कर दिया गया। हमारे चरितनायक को रात्रि १० बजे से १२ बजे तक की सेवा और सजगता का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। लगभग ३ वर्षो की अल्प दीक्षा पर्याय मे भी आपकी जागरुकता अनूठी थी और वह भी रात्रि-जागरण ही नही, सयमाराधन की प्रत्येक प्रवृत्ति मे आपकी अप्रमत्तता का बडे-बडे सन्त लोहा मानते थे।

एक दिन आप अपनी सेवा नियुक्ति की वेला मे आचार्य देव के समीप सचेष्ट खडे थे कि रात्रि को ग्यारह बजे करीब अचानक आपको आभास हुआ कि आचार्य देव के श्वास की गति वेगवती हो गई है। श्वास अति ही तीव्र गति से चल रहा था। आप तख्ते के समीप मे निद्रालीन युवाचार्यश्री के चरणो मे पहुँचे और वस्तुस्थिति से अवगत कराया। युवाचार्यश्री ने आचार्य देव के समीप आकर नाडी सस्थान का अवलोकन किया और तत्काल सागारी सथारा करवा दिया। प्रात काल तक चरितनायक एव युवाचार्यश्री, आचार्य देव के समीप ही सजगता पूर्वक स्थिर रहे। प्रात काल डॉक्टरो ने आकर निरीक्षण किया, बारह बजे यावज्जीवन के लिए सलेखनापूर्वक सथारा करवा दिया गया। सन्ध्या के पाँच बजे आचार्य देव नश्वर देह का त्याग कर स्वर्गारोही हुए और युवाचार्यश्री जन-जन के अभिवन्द्य आचार्य पद पर समासीन हुए।

इस प्रकार चरितनायक को युग-द्रष्टा आचार्य श्री जवाहर की चरम घडियो मे सेवा का सुअवसर भी प्राप्त हुआ और आपने सतत सजगतापूर्वक अप्रमत्त भाव से उस अवसर का लाभ भी लिया। सेवा-वृत्ति के साथ ही यहाँ आपका अध्ययन-चरण भी आगे बढा। 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' मे पूर्ण प्रावीण्य प्राप्त कर आपने 'सिद्धान्त कौमुदी' के अध्ययन मे प्रवेश किया।

आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० का स० २००० का प्रथम वर्षावास देशनोक मे हुआ। वहाँ 'सिद्धान्त

चरितनायक के उपर्युक्त मौलिक एव सैद्धान्तिक प्रश्न को सुनकर पडित साहब ने तटस्थ दृष्टि से गम्भीर एव स्पष्ट उत्तर दिया—"मुनिजी, आपका प्रश्न बहुत तर्क पूर्ण है और मै स्वय इस विषय पर कई बार चिंतन कर चुका हूँ। इस विषय मे मेरे कुछ अधिकार पूर्ण विचार है। वास्तव मे आपकी तार्किकता के अनुसार ग्रहण करने मात्र को परिग्रह नही कहा जा सकता है। मोक्ष शास्त्र (तत्त्वार्थ सूत्र) जो श्वेताम्बर एव दिगम्बर दोनो परम्पराओ मे सामान्य रूप से मान्य है, उसके सातवे अध्याय का बारहवाँ सूत्र परिग्रह की स्पष्ट परिभाषा दे रहा है। वहाँ "मूर्छा परिग्रहः" से स्पष्ट सूचित किया गया है कि परिग्रह, परिग्रहण मात्र नही है, अपितु ग्राह्य-पदार्थ पर मूर्छा-ममत्व अथवा आसक्ति-भाव का प्रादुर्भाव होना परिग्रह है। इस परिभाषा को दोनो सम्प्रदाये मान्य करती है। अत पष्ठ, आदि गुणस्थानो मे स्थित मुनिजन शरीरादि उपाधि को ग्रहण करते हुए भी मूर्छा-रहित होने से अपरिग्रही कहलाते है।

चरितनायक ने बात के मर्म को छूते हुए पुन प्रश्न किया "यदि मूर्छा-आसक्ति का होना परिग्रह है तो फिर वस्त्र के प्रति ही इतना परिग्रह का आग्रह क्यो होता है ? जैसे मोर-पिच्छी, कमण्डल आदि बाह्योपधि एव शरीर, कर्मादि आन्तरिक उपधि के प्रति निर्ममत्व रहने पर परिग्रही नही माने जाते, उसी प्रकार सयम निर्वाहार्थ मर्यादित वस्त्र अनासक्तिपूर्वक रक्खे जाएँ, तो क्या आपत्ति है ? इतनी-सी अल्प उपधि के द्वारा हम स्वावलम्बनपूर्वक सयमाराधाना कर सकते है, अन्यथा वस्त्रो के अभाव मे यह देखा जाता है कि दिगम्बर मुनियो के साथ बैलगाडियो अथवा ट्रको में घास आदि की व्यवस्था करनी पडती है और मुनि-जीवन परावलम्बी बन जाता है। अत थोडा सूक्ष्म चिन्तन करे, तो अपरिग्रह का आदर्श उपस्थित करते-करते हम अधिक आरम्भिक प्रवृत्तियो मे पड़कर अधिक परिग्रही बन जाते है।"

पडितजी—"मुनिजी, आपका दृष्टिकोण यथार्थ है, किन्तु आप कुछ आगे बढ गये है। आपने दिगम्बर मुनियो को अधिक परिग्रही और अपने आपको अपरिग्रही सिद्ध कर दिया है यह मुझे यौक्तिक नही लगा। यह तो मैं कह चुका हूँ कि परिग्रह का अर्थ है मूर्छा-ममत्व। अगर दिगम्बर मुनियो की भी अपने मोर-पिच्छी एव कमण्डल पर मूर्छा है, तो वे अपरिग्रही नही बन सकते हैं और यदि श्वेताम्बर मुनियो की वस्त्रादि के प्रति मूर्छा-आसक्ति नही है, तो वे भी अपरिग्रही कहला सकते है। किन्तु आपने दिगम्बर मुनियो को जो अति परिग्रही बताने का प्रयत्न किया, वह कहाँ तक सगत है ?"

मुनिजी—"पडित साहब, मैने किसी को महापरिग्रही बताने या सिद्ध करने का प्रयास नही किया है। अगर तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करे, तो स्वत

है। तव चरितनायक ने विचार किया कि आस-पास कोई व्यक्ति हो, तो उसे सूचित किया जाय, ताकि इसके प्राण बच सके। इधर-उधर कुछ देखने पर जब कोई दिखाई नही दिया तो सोचा शीघ्रतापूर्वक गाँव मे पहुँचकर किसी भाई को सूचित किया जाय, किन्तु पुन चिन्तन बदला कि गाँव मे पहुँचकर वापस स्थान बताने को आना पडेगा और तब तक सूर्यास्त हो जायेगा तथा तब तक यह भी तडपती रहेगी। कुछ समय तक अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा कि मुनि-मर्यादा के अनुसार किसी पशु को छूना अकल्पनीय है और इधर इसके प्राण जाने की स्थिति है। चरितनायक की अतर्चेतना द्रवित हो उठी और चितन किया—एक चीटी की रक्षा हेतु रजोहरण रखा जाता है—मर्यादाएँ अहिसा की आराधना के लिए होती है, यहाँ प्रत्यक्ष हिसा दिखाई दे रही है। मैं अन्तरात्मा की आवाज को कैसे दबा दूँ ? आप उसके निकट पहुँच गए और उसे सहारा देकर बाहर निकालकर गाँव तक अपने साथ ले आये और गाँव वाले भाइयो को वस्तुस्थिति का बोध कराया।

सच्चा चिन्तक अथवा साधक केवल अहिसा के रूढ अर्थ को ही नही पकडता। वह उसकी गहराई पूर्ण आत्मा का स्पर्श करता है और वही चरितनायक की अन्तरात्मा ने किया।

हमारे चरितनायक साधना के प्रति जितने सजग थे, अन्तरात्मा की आवाज-पुकार के प्रति उससे भी अधिक सजग थे।

इस प्रकार साधना, सेवा एव स्वाध्याय-अध्ययन के दौर मे आपकी जीवन-यात्रा गतिमान रही। इसी त्रिपुटी मे उक्त चारो चातुर्मास का काल व्यतीत हुआ। इन वर्षावासो मे मुख्यवृत्या आपका 'सिद्धान्त कौमुदी' आदि व्याकरण एव साहित्य का अध्ययन चलता रहा।

आपके व्याकरण-अध्यापन का अधिकाश श्रेय तत्कालीन व्याकरण शास्त्र के अधिकृत एव उद्भट विद्वान् प० श्री अम्बिकादत्तजी ओझा को रहा। पण्डितजी अपने विषय के धुरन्धर विद्वान् थे—तो उन्हे विद्यार्थी भी सजग एव परिश्रमी मिले। जिस समय हमारे चरितनायक आपके पास अध्ययन रत थे, पाँच दिनों के पुरातन एव पाँच दिनो के सद्य स्मृत पाठाशो का प्रतिदिन पुनरावर्तन करके ही शयनोन्मुख होते थे। आपकी इस अध्ययनशीलता एव सजग परिश्रम ने पण्डितजी को भी अप्रभावित नही छोडा।

विनोबा जी के वाक्य

रतलाम का ऐतिहासिक एव गौरवशाली चातुर्मास सम्पन्न कर इन्दौर सघ की अत्यन्त आग्रह भरी विनती होने से आचार्य देव ने चरितनायक आदि

और मेरे कुछ साथियो ने अपने मुनिवरो को कई बार संकेत किया कि आपको अपने आग्रह पर अड़े नही रहकर उन्मुक्त चिन्तन करना चाहिये और बराबर वस्त्रो का उपयोग करना चाहिए। यदि आपको वस्त्र धारण करना अनुचित लगता है तो फिर जगलों मे ही रहना चाहिए। शहरादि (बस्ती) के बीच आना शोभा नही देता। किन्तु उन लोगो की आग्रही दृष्टि उन्हे ऐसा नही करने देती। तो हमने भी उन्हे इस पद पर मानना छोड दिया। हमारा "बाबू पार्टी" के नाम से एक स्वतन्त्र संगठन है, जिसमे स्वाध्यायादि, प्रवृत्तियो के आधार पर चलते है। दस लक्षरगी पर्व (पर्यु षरग) के अवसर पर मोक्ष शास्त्र (तत्त्वार्थ-सूत्र) का वाचन कर लेते है।"

इस प्रकार जयपुर चातुर्मास मे स्नेह-सौजन्य के साथ अध्ययन के समय मे ही मधुर विचार-विमर्श चलता रहता था। चरितनायक की स्पष्टवादिता का पडित सा० पर बड़ा गहरा प्रभाव अकित हुआ और पण्डित साहब की अनाग्रही दृष्टि ने चरितनायक को अप्रभावित नही छोड़ा।

◆ ◆ ◆ ◆

सोने योग्य प्रासुक नही था । स्थान का निरीक्षण कर तुरन्त वहाँ से आगे बढ गए और रेल्वे लाइन के सहारे कुछ आगे चलने पर एक बडा सा वृक्ष दिखाई दिया—सूर्य की गति के साथ गति मिलाते हुए मुनिगण उस वृक्ष के समीप पहुँचे और प्रासुक स्थान देखकर वही अपनी सारी उपधि रखकर, स्थान साफ कर, अपने वस्त्रो का प्रतिलेखन कर प्रतिक्रमण आदि चर्याओ से निवृत्त हो शयनोन्मुख हुए और रात्रि वृक्ष-तले बिताई ।

यह तथ्य है कि महापुरुषो के जीवन मे सहज ही अद्‌भुत सयोग मिलते जाते है । श्रद्धेय चरितनायक के जीवन का भी यह अद्‌भुत सयोग ही था कि प्रथम बार अग्रगण्य (सघाडे के नायक) बन कर चले और प्रथम ही विहार मे प्रभु महावीरकालीन श्रमण—चर्या के अनुसार अरण्यवास का सुअवसर मिला ।

इस प्रकार चरितनायक ने अपने अग्रगण्य (सघाडा प्रमुख) बनने की प्रथम रात्रि वृक्ष-तले विताई और अरण्यवास की साधना का अनुभूति मूलक वोध पाया । प्रात काल वहाँ से प्रस्थान कर करीब चार मील की मजिल तय कर अगले ग्राम मे पहुँचे ।

• • •

"नही महाराज, मै आपको अनुमति नही दे सकता ।" उस व्यक्ति ने कुछ सकोचपूर्वक उत्तर दिया ।

"क्यो भाई, क्या कारण है अनुमति नही देने का ? हम तो केवल इस बाहर के बराण्डे मे ही अपना निर्वाह कर लेगे और तुम पर स्थान के अतिरिक्त अन्य वस्त्र बिछौनादि का भार नही डालेगे । हम अपने मर्यादित वस्त्रो के अतिरिक्त आपके वस्त्र, बिछौनादि काम मे नही लेते । केवल बराण्डे मे रात्रि-विश्राम करके आगे बढ जायेगे" कहते हुए चरितनायक प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे ।

"नही महाराज, भार-वार से मै नही डर रहा हूँ । वैसे बरामदा ही नही, पूरा मकान ही आपके लिए खाली है । ओढने-बिछाने का प्रबन्ध भी मैं कर सकता हूँ किन्तु..... ....." कहते हुए वह कुछ रुक गया ।

चरितनायक ने जिज्ञासा भरे स्वर मे कहा—"क्यो, क्या बात है ? कहते-कहते रुक क्यो गये ?"

उसने अति सकोच के साथ कहा—"महाराज, और कोई बाधा नही है, किन्तु मैं हरिजन हूँ ।"

चरितनायक ने साश्चर्य पूछा—"तुम हरिजन हो, इससे क्या मतलब ?"

"तो आप हरिजन की अनुमति से भी ठहर सकेगे क्या ?" उस व्यक्ति ने विस्मय के साथ पूछा ।

"क्यो नही भाई, हम लोग जातिवाद को जन्मना नही मानते, कर्मणा मानते है और उसमे भी छुआछूत मे कतई विश्वास नही रखते ।" चरितनायक ने कुछ स्पष्ट किया ।

"तो क्या आप मुझे अपने पैर छूने देगे ?" उसने आश्चर्य-मिश्रित जिज्ञासा व्यक्त की ।

"वैसे हम पैर छूने को नही कहते । लेकिन कोई भी व्यक्ति पैर छू सकता है । इसमे हमे कोई एतराज नही है । मैने पहले ही कहा है कि हम छुआछूत को बिल्कुल नही मानते । हम तो इसका घोर विरोध करते है । इन्सान ही नहीं ससार के प्रत्येक प्राणी को हम आत्मवत् मानते हैं । मनुष्य की दृष्टि से आप भी हमारे भाई है । भगवान् महावीर ने तो अपने अन्तिम उपदेश मे स्पष्ट कहा है—

इस चातुर्मास तक चरितनायक का व्याकरण सम्बन्धी सिद्धान्त कौमुदी-फक्किका, रत्न मजूषा आदि गूढ अध्ययन परिपूर्ण हो चुका था। अत. इस वर्षावास मे आपके अध्ययन के द्वितीय चरण मे न्यायग्रन्थो का अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ मे "प्रमाण नय तत्त्वालोक" जैसे सूत्र ग्रन्थ के माध्यम से न्याय मे प्रवेश किया और बहुत ही शीघ्र उसे सम्पन्न कर "स्याद्वाद मजरी" एव "प्रमाण मीमासा" जैसे न्याय के गूढ एव मौलिक ग्रन्थो का अध्ययन प्रारम्भ किया। "स्याद्वाद मजरी" के अध्यापन का कार्य तत्कालीन जैन विद्वान् पण्डित श्री पूर्णचन्द्रजी दक करवाते तथा "प्रमाण मीमासा" के अध्यापन का कार्यभार तत्कालीन दिगम्बर समाज के लब्धप्रतिष्ठ प्रौढ विद्वान् प० श्री चैनसुखदासजी के ऊपर था। दोनो ग्रन्थ दार्शनिक चर्चाओ से ओतप्रोत थे, अत. समय-समय पर तर्क-वितर्क के साथ दार्शनिक चर्चाएँ भी चल पडती थी।

परिग्रह-परिभाषा

यद्यपि महामना पडित श्री चैनसुखदासजी साम्प्रदायिक दृष्टि से दिगम्बर से सम्बन्धित थे, किन्तु वैचारिक दृष्टि से अनाग्रही एव उन्मुक्त चिन्तक थे। अत किसी भी प्रकार के तर्क-वितर्क मे बहुत सौजन्यता के साथ समाधान करते थे।

'प्रमाण मीमासा' के अध्ययन काल मे ही एक दिन परिग्रह-परिभाषा पर विमर्श चल पडा। चरितनायक ने सहज प्रश्न कर लिया—

"पण्डित साहब, आपने दिगम्बर एव श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायो के ग्रन्थो का अवलोकन किया है और यह सुविदित है कि दोनो सम्प्रदायो मे परिग्रह की परिभाषा को लेकर ही मुख्य विवाद है। अत भगवान् महावीर की दृष्टि से परिग्रह की परिभाषा के सम्बन्ध मे आपके क्या विचार है, जरा निष्पक्ष दृष्टि से स्पष्ट करेंगे ? क्योकि जैसा देखा एव सुना जाता है कि दिगम्बर मान्यता के अनुसार "परिगृह्यते इति परिग्रह" इस व्युत्पत्ति के आधार पर, ग्रहण करने योग्य वस्तु मात्र को परिग्रह कहते हैं, किन्तु यह परिभाषा लाक्षणिक नही मानी जा सकती है। यदि ग्रहण करने को ही परिग्रह के अन्तर्गत लिया जाय, तो फिर तेरहवे गुणस्थान (केवली) तक भी कोई अपरिग्रही नही बन सकता है, क्योकि तेरहवे गुणस्थान तक स्वय केवली आहार, पानी, पाट, शय्या, शरीर एव साता-वेदनीय कर्मादि का ग्रहण तो करते ही हैं। फिर उन्हे अपरिग्रही कैसे कहा जाएगा ? ऐसी स्थिति मे षष्ठ गुणस्थानवर्ती मुनि तो अपरिग्रही हो ही नही सकते हैं, जबकि भगवान् महावीर ने षष्ठ आदि गुणस्थानो को अपरिग्रही ही कहा है। अत ग्रहण करने मात्र को परिग्रह मानना न तो यौक्तिक है और न सिद्धान्तानुमोदित।"

जाति विशेष का धर्म है । वह तो मानव मात्र का ही नही, प्राणिमात्र का धर्म है । जैसे सूर्य सबका है, वैसे ही धर्म अथवा मुनि सबके होते है । आप यह न समझे कि, ये महाराज जैनियो के ही है । जैन धर्म तो लाक्षणिक धर्म है। "जिन" शब्द से ही "जैन" बना है । जो व्यक्ति राग-द्वेप को जीतने का प्रयास करता है और दुर्व्यसनो से दूर रहता है, वह जैन कहला सकता है । चाहे वह जाति से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अग्रवाल, माहेश्वरी, आदि हो अथवा शूद्र हो। जिस मुनि-पोशाक मे हम बैठे है, उसी मे भगवान् महावीर के समय गौतम स्वामी जैसे प्रकाण्ड विद्वान् पुरुष थे, जो जाति से ब्राह्मण थे । इसी पोशाक मे "हरिकेशी" जैसे हरिजन मुनि भी थे । आज भी इस पोशाक (मुनि वेप) मे ब्राह्मण, अग्रवाल, स्वर्णकार, कुम्हार, अहीर, आदि कई जाति के लोग है । अत यह नही समझना चाहिए कि "जैन" कोई जाति है । जैन जाति नही, धर्म है, और वह प्राणिमात्र का धर्म है ।"

"महाराज जी, आप ईश्वर-परमात्मा को मानते है कि नही ? मैंने सुना है कि जैन धर्म मे परमात्मा को नही माना जाता है ।" वैद्य जी ने सहज जिज्ञासु स्वर मे प्रश्न किया ।

"आपने बहुत सुन्दर जिज्ञासा की है । वास्तव मे जैन धर्म के विषय मे यह एक बहुत बडी गलतफहमी फैली हुई है या यो कहे कि फैलाई गई है । जैन धर्म, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक-पुनर्जन्म, आदि की तरह परमात्मा मे भी अटूट विश्वास रखता है । सही शब्दो मे कहे तो जैन धर्म मे ईश्वर के प्रति जो आस्था मिलती है, वह अन्यत्र कही नही मिलेगी ।

हाँ, यह सत्य है कि जैन दर्शन अन्य वैदिक दर्शनो की तरह एक किसी विशेष ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-हर्ता-नियन्ता नही मानता । ससार की सभी आत्माओ मे अपना-अपना कर्तृत्व भार है । इस दृष्टि से ससार की प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र इकाई के रूप मे, अपना ईश्वर स्वय है । जैनाचार्यो ने इस व्याख्या की दृष्टि से ईश्वर की तीन रूपो मे कल्पना की है ।

(१) बद्ध ईश्वर (२) मुक्त ईश्वर और (३) सिद्ध ईश्वर

बद्ध ईश्वर :

ससार की प्रत्येक आत्मा ईश्वर है । उसका ईश्वरत्व कर्म माया के आवरण मे छिपा हुआ है । अगर वह चाहे तो कर्म बन्धनो को तोडकर ईश्वर-परमात्मा बन सकता है । चूँकि सब ससारी प्राणी ससार के कर्म-बन्धनो से बन्धे हुए है, अत सब "बद्ध ईश्वर" की गणना मे आते है ।

मुक्त ईश्वर :

जो चेतना राग-द्वेपादि आन्तरिक बन्धनो को काट चुकी है और वीतराग,

सिद्ध हो जाता है। आप खुद सोचे। मुनियो के साथ उनकी व्यवस्था हेतु वाहनो से घास आदि का प्रबन्ध होता है कि नही ? यह व्यवस्था क्या श्रमण-मर्यादा के अनुकूल है ? क्या मर्यादित नगण्य-सा वस्त्र रखने की अपेक्षा इतने सारे प्रबन्ध की व्यवस्था करवाना अधिक परिग्रह का कारण नही होगा ?"

पडित जी—"मुनिजी, एक बात स्पष्ट करेगे ? किसी व्यक्ति विशेष के गलत होने पर क्या सिद्धान्त गलत हो जाता है ?"

"नही, ऐसा मैं कहाँ कह रहा हूँ।" चरितनायक ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"वही मैं स्पष्ट कर रहा हूँ। आपने दिगम्बर मुनियो के साथ होने वाली व्यवस्था का जो निर्देश किया, वह सैद्धान्तिक नही है। वह व्यक्ति विशेष की कमजोरी पूर्ण त्रुटि हो सकती है, इतने मात्र से दिगम्बर सिद्धान्त दूषित नही माना जा सकता है," पण्डित साहब ने विषय को स्पष्ट किया।

चरितनायक ने विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए पूछा—"मै भी यह नही मान रहा हूँ कि ऐसी दिगम्बर सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यता है। मेरा तात्पर्य इतना ही है कि आज प्राय मुनियो के साथ उपर्युक्त व्यवस्था होती है। यदि होती है, तो उस सिद्धान्त-विपरीत आचरण को आप लोग सम्मानित करके बढावा क्यो देते है ?"

"मुनिजी, मैं स्पष्ट विचारो का व्यक्ति हूँ। कमजोरी को कमजोरी मानने मे मुझे कोई सकोच नही है। आपका कथन यथार्थ है। आज प्राय सभी दिगम्बर मुनियो के लिये यात्रा व्यवस्थाएँ की जाती है, जिनमे अधिक आरम्भ-समारम्भ होता है। इसे मै उचित नही मानता हूँ और अपनी व्यक्तिगत धारणा के अनुसार उक्त स्थिति मे उन मुनियो के प्रति मन मे सम्मान के भाव भी जागृत नही होते है। फिर बढावा देने का प्रश्न ही नही रहता।"

विषय की गम्भीरता तक पहुँचने के लिए चरितनायक ने एक प्रश्न और कर दिया "आपके उपर्युक्त विचारो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आपकी वस्त्र के प्रति कोई परिग्रह धारणा नही है। जिस किसी भी पदार्थ पर मूर्च्छा होगी, वही परिग्रह होगा। तो फिर आप अपने मुनियो को क्यो नही सचेष्ट करते कि लज्जा-निवारणार्थ वस्त्रो का उपयोग करना परिग्रह नही है ? बिना वस्त्र के शहरो मे घूमना और स्त्री-परिषद् मे बैठना कहाँ तक ठीक लगता है ?"

पण्डित जी ने मधुर स्मिति के साथ कहा—"मुनि-प्रवर, आप तो आज मेरे विचारो की पूरी तह लेना चाह रहे हैं। मेरे विचार आपके विचारो से भिन्न नही है और मैं सोचता हूँ प्रत्येक प्रगतिशील चिन्तक के यही विचार होंगे—मैंने

"तो मै अपने जाति-भाइयो को लेकर आता हूँ। आप कृपा कर उन्हे उपदेश देकर दुर्व्यसनो से मुक्त करें और जैन वना दे।" प्रार्थना भरे स्वर मे उन वैद्यजी (हरिजन भाई) ने निवेदन किया।

"अभी हमारा सध्या पाठ का समय आ रहा है। अत: अभी तो हम प्रतिक्रमण (सध्या पाठ) मे वैठेगे, घटा भर वाद यदि भाई लोग आएँगे तो उपदेश सुनाया जा सकता है।" चरितनायक ने स्पष्ट किया।

"अच्छा महाराज, मै घटा भर वाद सभी को लेकर आता हूँ। आप वडी कृपा करेंगे।" कहकर वह भाई चला गया और चरितनायक आदि मुनिवृन्द भी अपने प्रतिक्रमण-कार्य मे सलग्न हो गये।

प्रतिक्रमण की समाप्ति तक ग्राम पंचायत भवन के सामने मैदान मे काफी सख्या मे ग्राम्य जन एकत्र हो गये। प्रतिक्रमण से निवृत्त हो हमारे चरितनायक ने एक-दो प्रभु गीत सुनाकर जैन धर्म के कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए नमस्कार महामत्र की महत्ता पर सारगर्भित प्रवचन दिया।

आपके प्रवचन का विषय था—जैन धर्म की मौलिक एवं कल्याणप्रद विशेषताएँ। आपने नमस्कार महामत्र को ही मुख्य लेकर बताया कि अन्य किसी भी सस्कृति के वन्दना मत्र को ले, वहाॅ किसी न किसी व्यक्ति रूप महापुरुष को नमस्कार किया गया होगा, किन्तु जैन दर्शन का वन्दना-मत्र जो महामत्र नवकार के नाम से प्रसिद्ध है, वह इस बात का प्रतीक है कि उसमे व्यक्तिश: किसी को स्थान नही। स्पष्टतया गुणो की ओर ससूचन है, देखिये वह महामंत्र—

णमो अरिहंताणं :

उन महान् चेतनाओ को नमस्कार हो, जिन्होने सम्पूर्ण राग, द्वेष, कामादि, आतरिक शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर वीतरागता प्राप्त कर ली है। जो सर्वतोभावेन समद्रष्टा एव सर्वज्ञ बन चुके है। इसमे शातिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर किसी व्यक्ति विशेष का नामोल्लेख नही है। वह आत्मविजेता महावीर, राम या पवनपुत्र कोई भी हो, वीतरागी हो सकता है।

णमो सिद्धाणं :

उन महापुरुषो को नमस्कार हो जिन्होने सब कुछ साध लिया है और कृतकृत्य बन मुक्ति लाभ कर लिया है।

णमो आयरियाणं :

उन सभी आचार्यो को नमस्कार हो जो महाव्रतादिक ३६ गुणों के धारक

क्या हमें पैर छूने देंगे ?

जयपुर का स्वर्णिम वर्षावास न्याय के तलस्पर्शी अनुशीलन के साथ सम्पन्न कर चरितनायक ने आचार्य देव के साथ ही गगापुर, हिण्डौन, आदि क्षेत्रो की ओर प्रस्थान कर दिया। चूँकि उन क्षेत्रो मे अधिकाश पल्लीवाल समाज के घर थे, जो छोटे-छोटे गाँवो मे दो-दो चार-चार के रूप मे बिखरे हुए थे, अत अधिक सन्तो का एक साथ आहारादि की दृष्टि से निर्वाह होना कठिन था। ऐसी परिस्थिति मे सन्त-मण्डली को दो विभागो मे विभक्त करना उचित समझ कर, आचार्य देव ने चरितनायक को निर्देश दिया "मै आस-पास के छोटे-छोटे क्षेत्रो को स्पर्शित करता हुआ हिण्डौन पहुँचता हूँ। तब तक तुम करौली आदि दूसरे मार्ग के गाँवो को लाभान्वित करते हुए हिण्डौन पहुँचो, जिससे छोटे-छोटे क्षेत्रो मे आहार-पानी की भी कठिनाई नही हो और ग्रामीण लोगो की अति प्रवल धर्म भावना की दृष्टि से उन्हे भी अधिक लाभ मिल सके।"

तदनुसार चरितनायक ने "तथास्तु" की स्वीकारोक्ति के साथ कुछ सन्तो को साथ लेकर करौली आदि क्षेत्रो की ओर प्रस्थान कर दिया।

हिण्डौन के मार्ग मे ही करौली के आसपास आप एक छोटे से ग्राम मे पहुँचे, जहाँ न कोई परिचित व्यक्ति ही था और न कोई मार्ग बताने वाला भाई ही साथ था। इधर सूर्यास्त होने मे इतना समय नही था कि किसी अन्य गाँव तक पहुँचा जा सके। अत. चरितनायक उस गाँव के वाहर ही दूर से एक मकान के दृष्टिगत होने पर सहयोगी मुनियो से विमर्श करने लगे कि यह मकान ग्राम पचायत भवन-सा लगता है, अत. आगे नही वढकर यही रुक जाना उपयुक्त है। आप विमर्श कर ही रहे थे कि मकान के निकट पहुँचकर देखा तो एक व्यक्ति वरामदे मे वैठा हुआ दिखाई दिया। आप सीधे उसी के समीप चले गये और पूछा—"क्यो भाई, यह मकान ग्राम पचायत का है या किसी व्यक्ति विशेष का ?" उस व्यक्ति ने वड़े सौजन्यपूर्ण शव्दो मे उत्तर दिया—"महाराज, यह ग्राम पचायत का मकान ही है और इसकी देखरेख मैं ही करता हूँ।"

चरितनायक ने पुन प्रश्न किया "क्या हम यहाँ रात्रि विश्राम कर सकते हैं ? हम जैन मुनि हैं, रात्रि को भ्रमण नही करते हैं और अव इतना समय नही है कि अगले गाँव तक पहुँच सके। अत यदि आपकी अनुमति हो, तो हम यहाँ रात्रि विश्राम कर प्रात आगे वढ जायेंगे ?"

मैंने आपको बताया कि मै वैद्य का कार्य करता हूँ, मुझसे कोई भी व्यक्ति घृणा-परहेज नही करता है। मै ब्राह्मणो तक के घरो मे निर्बाध प्रवेश करता हूँ, किन्तु मेरे जाति-भाइयो के प्रति समाज मे अभी भी घृणा का भाव है। हमारे इस इलाके मे चारो तरफ हरिजनो के घर बिखरे हुए है। करीब ७०० गाँवो के हरिजनो ने मुझे अपना अध्यक्ष (मुखिया) बना रखा है। वे सभी चाहते हैं कि हमारे सिर से हीन भावना का टीका हटे और हमारा उद्धार हो। आप जैसे उदारमना पुरुष ही हमारा कल्याण कर सकते है। यदि आप दया करके अपने भक्त सेठ लोगों को इस प्रकार की शिक्षा दे कि वे छुआछूत की भावना से ऊपर उठकर हमारे भाइयो से घृणा अथवा भेदभाव का व्यवहार न करे, तो हमारा उद्धार हो सकता है। हम और कुछ नही माँगते है, केवल मानवीय अधिकार हमे मिले और हमारे साथ मानवता का व्यवहार हो।"

"मैने आपसे कहा कि घृणा का भाव जितना आपकी हरिजन जाति के कारण नही है, उतना आपके खान-पान, आदि आचरणो के कारण है। यदि आपके जाति-भाई अपने आचरणो को थोडा सुधार ले, तो धीरे-धीरे घृणा का भाव अपने आप नष्ट हो जाएगा। आप अपने जीवन पर ही विचार करे, लोग आपसे घृणा क्यो नही करते है। इसका कारण है कि आपने अपने आचरणो को सुधार लिया है।" चरितनायक ने बात को कुछ स्पष्ट किया।

"महाराज जी, मैं भी यह नही कह रहा हूँ कि हमारे आचरण बुरे रहे और लोग हमसे घृणा न करे। मै इसीलिये आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि आप कृपा कर हमारे इन छोटे-छोटे गाँवो मे घूमे और हमारे भाइयो को दुर्व्यसनो से मुक्त करे। मुझे विश्वास है कि आपकी वाणी का असर मेरे भाइयो पर जादू जैसा होगा, क्योकि जो धर्म हमे चाहिए और जिससे समस्त प्राणियो का कल्याण हो सकता है, वही तो आप बता रहे है। आप इस क्षेत्र (इलाके) मे चलिए। मै आपके साथ रहूँगा और आप मेरे सभी भाइयो को अपने पक्के अनुयायी (जैन) बना लीजिये।" करुण स्वर में वैद्यजी ने कहा।

हमारे चरितनायक कुछ क्षणो के लिए चिन्तन मे खो गए। "मैं एक अध्ययनरत छोटा-सा साधु इतना बडा समाज-सुधार का दायित्व अपने पर कैसे ले सकता हूँ ? क्या समाज अभी सहसा इस कार्य मे सहयोग कर सकेगा ?" कुछ सकल्प-विकल्प के पश्चात् चरितनायक ने कहा—"वैद्यजी, आपकी भावना बहुत पवित्र है, किन्तु इसके लिए अभी कुछ भूमिका की आवश्यकता है। अभी हमे गुरु महाराज के पास पहुँचना आवश्यक है। गुरु महाराज ने हमे यथाशीघ्र हिण्डौन पहुँचने का निर्देश दिया है। हाँ, आपकी भावना एव विचारों को मैं अपने गुरुदेव तक पहुँचाने की भावना रखता हूँ। वे हमारे पूरी समाज के आचार्य है। वे इस विषय मे कुछ प्रयास कर सकते है।"

"कम्मुणा बम्मणो होइ, कम्मुणा होई खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।"

उत्तरा० सूत्र, २५-३३

अर्थात् जन्म से कोई जाति नही होती । जन्म के समय किसी के ललाट पर कुछ लिखा हुआ नही आता है कि मैं अमुक जाति का हूँ । अत कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है । एक व्यक्ति जन्म से शूद्र कुलोत्पन्न होकर ब्राह्मण के पवित्र कर्म अध्ययन-अध्यापन, आदि कर रहा है और आचरण से पवित्र है, तो वह ब्राह्मण कहला सकता है । इसके विपरीत एक जन्मना ब्राह्मण होकर यदि आचरण एव कर्म से भ्रष्ट है, तो वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नही है ।"

वह हरिजन भाई, जो तल्लीनतापूर्वक हमारे चरितनायक की बात सुन रहा था, सहसा उठा और चरितनायक आदि मुनियो के चरण-स्पर्श कर भाव-विभोर हो कहने लगा "मुनिजी, आज तो आपने मेरी ऑखे खोल दी । मैंने तो जैन धर्म के विषय मे और ही कुछ सुन रखा था । मैं अब अपना वास्तविक परिचय आपको देता हूँ, मैं जन्म से हरिजन अवश्य हूँ, किन्तु खान-पान की दृष्टि से शाकाहारी हूँ और वैद्यगिरी का कार्य करता हूँ । आपके बडे-बडे सेठ, ब्राह्मण आदि लोगो के घरो मे बेरोकटोक जाता हूँ और उपचार करता हूँ । मुझसे कोई परहेज अथवा घृणा नही करता है । मैं आर्य समाज का सक्रिय सदस्य हूँ । आर्य समाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियो से मैंने जैन धर्म के विषय मे कुछ और ही सुन रखा था, उसकी वास्तविकता को मानने के लिए ही मैंने आपके साथ ऐसी धृष्टता का व्यवहार किया । क्षमा करे, महाराज जी ! आप आराम से यहा ठहरे, यह पूरा मकान खाली है ।"

अनुमति मिल जाने पर चरितनायक आदि मुनिवरो ने अपने भण्डोपकरण (उपधि) बरामदे मे रख दिये और प्रतिलेखन से निवृत्त हो पुनः उस भाई से बात करने लगे ।

चरितनायक ने ही बात प्रारम्भ करते हुए कहा—"आप सेठ लोगो के घरो मे आते-जाते हो, तो फिर उनसे कभी जैन धर्म के विषय में जानकारी नही ली ?"

"महाराज श्री, मैं अपने कार्य से जाता हूँ और उतना कार्य करके लौट आता हूँ । दूसरी बात कि आर्य समाज के व्यक्तियो ने जो मुझे जानकारी मिली, मैं उसे ही सही मानकर चल रहा था । यह तो आज सहसा आपके दर्शन हुए और मेरी भ्रान्ति दूर हुई ।"

चरितनायक ने जैन धर्म को कुछ स्पष्ट करते हुए कहा—"वैद्य जी, आपने कुछ भी सुना हो, किन्तु जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता है, न वह किसे

मद्य, मास के हजारो भक्षको को आपने उच्च व आदर्श जीवन-यापन की ओर आकृष्ट किया है, जिसका सागोपाग विवेचन हम आगे पृथक् प्रकरण द्वारा करने का प्रयास करेगे।

हिण्डौन से आचार्य देव का विहार भरतपुर एव वहाँ से कवि श्री अमर-चन्द्रजी म० सा० एव श्री पृथ्वीचन्द्र जी म० सा० के आग्रह से आगरा की ओर हुआ। आगरा के स्नेह-सौजन्यपूर्ण वातावरण मे कुछ दिवस विराज कर पुन. भरतपुर पधारे। उस विचरण-वेला मे चरितनायक भी पूज्य चरणो की सेवा मे ही थे।

• • • •

सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा वन चुकी है, किन्तु अभी देह के बन्धन मे है—सिद्ध गति लाभ नही कर सकी, वह चेतना ममत्व-बन्धनो से मुक्त होकर "जल कमलवत्" अनासक्त रहकर, जन-कल्याण का मार्ग-दर्शन करती है। वह "मुक्त ईश्वर" की सज्ञा से अभिसज्ञित होती है।

सिद्ध ईश्वर :

जिस आत्मा ने कर्म-जनित सम्पूर्ण देहादि वन्धनो से मुक्ति प्राप्त कर ली है, जो कृतकृत्य हो गई है, जिसको अव कुछ भी करना शेष नही रहा तथा जिसने सर्व आवरण विलय रूप, सिद्ध गति-परम धाम प्राप्त कर लिया है, वह सिद्ध ईश्वर की कोटि मे आती है।

इस प्रकार जैन धर्म अथवा दर्शन मे ईश्वर को एक विराट मौलिक शक्ति सम्पन्नता के रूप मे स्वीकार किया गया है। अत. यह जो एक भ्रान्त धारणा फैलाई जा रही है, नितान्त मिथ्या है। जैन-सिद्धान्त तो आपको भी स्वतन्त्र ईश्वर मानता है और एक चीटी को भी ईश्वर मानता है। यदि हम विकास करे, तो उस पराकाष्ठा तक पहुँच सकते है। जैसे प्रजातन्त्रीय पद्धति मे कोई भी व्यक्ति चुनाव लडकर राष्ट्रपति पद तक पहुँच सकता है, उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा प्रयत्न द्वारा कर्म-शत्रुओ को नष्ट कर ईश्वर वन सकती है।"

चरितनायक का गुरु-गभीर उत्तर सुनकर वह व्यक्ति गद्‌गद् होकर कहने लगा—"महाराज जी, मेरी आज बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ समाप्त होती जा रही हैं। वास्तव मे मैंने जो कुछ सुना, उसमे और आपके प्रतिपादन मे तो अन्धकार और प्रकाश जितना अतर है। मुझे तो आज ऐसा लग रहा है कि आज जैन धर्म के विषय मे आपके मुख से ज्ञान प्राप्त कर मैं सघन अन्धकार मे से निकल कर प्रकाश मे आ गया हूँ। जैन धर्म तो प्राणिमात्र के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता हैं। यद्यपि आर्य समाज भी छुआछूत मे विश्वास नही करता है, किन्तु वह एक समाज है, धर्म नही। अत. धर्म की दृष्टि से तो जैन धर्म सर्व ग्राह्य धर्म है। जिस धर्म-सिद्धान्त की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा था, वह आज सहसा ही मिल गया। क्या आप हमे जैन धर्म मे दीक्षित कर सकते हैं।"

"क्यो नही, कोई भी और किसी भी जाति का व्यक्ति जैन वन सकता है, वशर्ते उसका अहिंसा और अनेकान्त मे पूरा विश्वास हो और जीवन दुर्व्यसनों से दूर हो। जैन धर्म मे मानवीय ऊँच-नीच की व्यवस्था गुण-कर्म के आधार पर की गई है। यदि कोई हेय गुणो—दुर्गुणो को छोडकर अपना जीवन पवित्र वनाता है तो जैन धर्म उसे निश्चित सहयोग करेगा।' चरितनायक ने गम्भीर स्वर मे स्पष्ट किया।

"हमे आप दिन मे कुछ समय देने की कृपा करे"—वन्धुओ ने कुछ नम्र स्वर में कहा।

"क्यों ? आप रात्रि मे ही क्यो नही पूछ लेते ?" आचार्यश्री ने पुनः स्पष्ट किया।

रात्रि मे भी पूछ सकते है, किन्तु आप शीघ्र विहार करने वाले हैं और रात्रि मे समय भी कम रहता है।" श्रावक वन्धुओ ने स्पष्ट किया।

"अच्छा, कल मध्याह्न दो वजे के वाद आप आ सकते है।" आचार्यश्री ने समय दे दिया।

तदनुसार द्वितीय दिवस निश्चित समय पर कुछ वन्धु आचार्य श्री तुलसी के समक्ष पहुँचे और दान-दया सम्वन्धी चर्चा चली। प्रश्न के कुछ गहराई मे पहुॅचने पर श्रावक बन्धुओ ने निवेदन किया—"आपका सहज ही यहाॅ पदार्पण हो गया है और सयोगत हमारे (साधुमार्गी जैन) मुनिवर भी यहाँ विराजमान हैं, क्या ही अच्छा हो, आपकी और उनकी कुछ आपस मे चर्चा हो जाय ताकि दया-दान सम्बन्धी सम्यग् निर्णय हो जाय और जनता को सत्य स्वरूप का परिबोध हो सके तथा चली आ रही भ्रान्तियाॅ भी समाप्त हो सके।"

आचार्य श्री तुलसी ने कहा– "मुनियो से क्या निर्णय कराना है ? शास्त्रो में परिभाषा एव व्याख्याएँ स्पष्ट उपलब्ध है। निर्णय मेरे से और आप से नही होता है, वह तो शास्त्रो के आधार पर होता है।"

"तो आपने अभी दान की जो परिभाषा एव व्याख्या की वह किस शास्त्र मे है ? आप वह मूल पाठ हमे बता सकते है क्या ?" श्रावको ने पुनः जिज्ञासा की।

आचार्यश्री ने समीपस्थ मुनि प्रवर को इंगित कर भगवती सूत्र—ग्रन्थ मगवाया और दक्षता पूर्वक एक शब्द (तहारूव) को आवृत्त करके निम्न पाठ दिखलाया—

"समणो वासएण भन्ते ! तहारूव असजय अविरय अपडिहय पच्चक्खाय पाव-कम्मं फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण असण-पाण जाव कि कज्जइ ?

गोयमा ! एगत सो से पाव कम्मे कज्जइ नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ।"

—भगवती सूत्र ८, ६, ३३१

बनकर आचार्यत्व पद की गौरव-गरिमा बढाते हुए धर्म नेता के पद से सुशोभित होते हैं।

णमो उवज्झायाणं :

उन उपाध्यायो को नमस्कार हो जो श्रमण-चरित्र-निष्ठा-पूर्वक वीतराग निर्देशित शास्त्रो के अध्यापन मे सलग्न रहते हैं।

णमो लोए सव्व साहूणं :

लोक (समस्त ससार) मे विद्यमान सभी साधुओ को नमस्कार हो, जो शुद्ध साधुत्व और साधना के गुणो से युक्त हो।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि जैन-दर्शन किसी व्यक्ति, जाति, या पार्टी का नही, अपितु गुणात्मक एव गुणाधारित दर्शन है। इस प्रकार जैन धर्म मे जातीयता के आधार पर ऊँच-नीच की भावना को प्रश्रय नही दिया गया है। वहाँ गुणो के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ एव अश्रेष्ठ माना गया है। अभी मैंने जो आपके समक्ष भजन का उच्चारण किया उसमे भी स्पष्ट है कि—

ऊँच नीच का भेद ना मानूँ,
गुण पूजा का महत्त्व पहचानूँ।

अर्थात् ऊँच-नीच का भेद गुणो के आधार पर ही माना जा सकता है। एक नाम से जैन है किन्तु कर्म से अगर बुरे आचरण वाला है, तो जैन धर्म उसे जैन नही मानता। इसके विपरीत एक हरिजन यदि अपने आचरणो को सुधार ले और जीवन को पवित्र बनाले, तो जैन धर्म उसे सहर्ष "जैन" स्वीकार करेगा। आप लोगो के प्रति जो समाज मे हीन भावना फैली हुई है, उसका एक कारण आपके खान-पान की अशुद्धि भी है। यदि आप अपने खान-पान को सुधार लें, और शुद्ध शाकाहारी बन जाएँ, तो आपके प्रति समाज मे जो घृणा के भाव हैं, वे, बहुत अशो मे समाप्त हो सकते हैं। आपका जीवन पवित्र बन सकता है। मानव-तन की दृष्टि से आप मे और एक ब्राह्मण में कोई अन्तर नही है। अन्तर है तो गुण और आचरण का हो सकता है। आप अपने आचरणो को शुद्ध बनालें तो आप भी महान् बन सकते हैं। कुछ दृष्टान्तो के द्वारा चरितनायक ने अपने विषय को स्पष्ट किया। इनके परिणामत: कई व्यक्तियो ने शराब, मास आदि दुर्व्यसनो का त्याग किया।

प्रवचन समाप्ति पर वह हरिजनो का मुखिया (वैद्यजी) चरितनायक के समीप आकर कहने लगा—"महाराज जी, आपके विचारो ने तो मेरे मन मे हलचल मचा दी है।"

बरड़ियाजी कुछ बोले, उसके पूर्व ही साथ मे जाने वाले श्रावको ने कहा—"महाराजजी, हम जो पाठ अभी नोट करके ले गए थे, उसे बरडियाजी देखना चाहते है तथा हम भगवती सूत्र की एक प्रति साथ में लाए हैं, उससे उसका मिलान भी करना चाहते है। अतः आप कृपा कर वह पाठ पुनः बता दे।"

तब आचार्यश्री ने कहा, "पाठ तो आप अभी नोट करके ले गए थे ना, बार-बार क्या देखना है ?"

जाने वाले श्रावक कुछ बोले, उसके पूर्व ही वहाँ बैठे हुए कुछ तेरहपन्थी भाई थोड़े उत्तेजित होकर कहने लगे—"अभी हमारी बातचीत चल रही है। आप जरा शान्ति से बैठ जाइए।"

आगन्तुक श्रावक एव श्री मोतीलालजी बरडिया बहुत समय तक बैठे रहे और अन्त मे आचार्यश्री के श्रावको ने ही कह दिया, "अभी तो समय बहुत हो गया है। महाराज साहब को अन्य कार्य करना है···" वे सभी उठ खड़े हुए और सभा भग कर दी गई। अर्थात् अन्तिम समय तक वे श्रावक बैठे रहे, किन्तु दुबारा उन्हे वह पाठ नही बताया। इससे वे सहज ही समझ गए कि हमारे साथ शब्द छिपाने का प्रयत्न किया गया है, अन्यथा ये दुबारा पाठ बताने से क्यो कतराते ? अतः इस तथ्य को जनता के सामने स्पष्ट कर देना चाहिये अन्यथा जनता भ्रम मे रहेगी। ऐसा विचार करके उन आगन्तुको ने श्री मोतीलालजी बरडिया से मिलकर उसी समय एक विज्ञप्ति छपवाकर प्रचारित कर दी। जिसका मूल आशय था—"आचार्य श्री तुलसी हमारे प्रश्नो का उत्तर शास्त्रीय उद्धरणो के द्वारा दे।" किन्तु दूसरे दिन प्रात.काल तक तो वे विना ही उत्तर दिये, वहाँ से विहार कर गये।

इस प्रकार दस वर्ष की अल्प दीक्षा पर्याय मे ही हमारे चरितनायक ने आगमो मे विशेष निपुणता प्राप्त कर ली थी।

कुछ दिनो के पश्चात् आचार्य देव श्री गणेशीलाल म० सा० भी अलवर पधार गए। अलवर प्रवास ने जनता मे अभूतपूर्व जागृति की लहर उत्पन्न कर दी। परिणामतः अलवर सघ सं० २००७ के वर्षावास हेतु अत्यन्त आग्रह भरी विनती करने लगा और कुछ श्रावक तो आचार्य देव के चरण पकड कर बैठ गए कि इस वर्षावास की स्वीकृति आपको अलवर के लिए देनी ही पडेगी।

अलवर सघ के इस आग्रह को आचार्य देव नही टाल सके और सं० २००७ के चातुर्मास की स्वीकृति शास्त्रीय आगारो के साथ अलवर संघ को मिल गई। अलवर सघ मे उत्साह की एक नई लहर दौड़ गई।

चरितनायक की विवशता को सुनकर वैद्यजी ने कहा, "महाराज, यह एक महान् उपकार का कार्य है और आप इस विषय मे अवश्य विचार करे। हमारे समाज का उद्धार हो जायेगा, ऐसा उच्च आदर्शयुक्त पवित्र धर्म प्राप्त करके। हजारो आदमी मद्य, मास का त्याग करेगे। कितनी हिसा बचेगी। यदि आप यहाँ नही पहुँच सके तो कम से कम मुझे कुछ ऐसा साहित्य अवश्य बता दे, जिससे मैं जैन धर्म के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त कर सकूँ और उसकी महत्ता का प्रतिपादन अपने भाइयो के मध्य कर सकूँ।"

चरितनायक ने उन्हे 'जवाहर किरणावलियो' के कुछ नाम लिखवाए और कहा कि "यह प्रवचन साहित्य है, इसके माध्यम से आपको जैन धर्म के विषय मे कुछ जानकारी मिल सकेगी।"

रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात काल प्रस्थान के समय पुन वह भाई उपस्थित होकर कहने लगा "महाराज जी, आप मेरी प्रार्थना को भूल नही जाएँ। हमारे समाज का उद्धार आप श्री के हाथ मे है। सात सौ गाँवो मे हजारो की सख्या मे लोग दुर्व्यसनो का त्यागकर आपके अनुयायी बनने को तैयार हैं।"

चरितनायक ने उसके विचारो को आचार्य गुरुदेव तक पहुँचाने का आश्वासन देकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। आसपास के कुछ छोटे-छोटे ग्रामो को लाभान्वित कर, आप श्री हिण्डौन आचार्य श्री के चरणो मे पहुँचे और समय मिलने पर आपने उपर्युक्त प्रसग को सविस्तार पूज्य चरणो मे निवेदित किया।

आचार्य देव ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए चरितनायक से कहा, "अभी समाज की इतनी भूमिका परिलक्षित नही हो रही है। धीरे-धीरे समाज मे वातावरण बनाने का प्रयास करो, ताकि समाज-प्रमुखो के दिमाग मे इस विषय का महत्त्व अकित हो और वे स्वय कुछ जागरूक बनकर आगे आएँ। मानलो, बिना भूमिका-निर्माण के हमने यह मिशन प्रारम्भ किया और समाज का पूर्ण सहयोग नही मिला, तो कार्य मे पूर्ण सफलता नही मिल सकेगी। दूसरा हम साधु-मर्यादा मे रहकर ही कुछ कर सकते है। उसके आगे का कार्य समाज का है, अत. कुछ वातावरण बनाने का प्रयास किया जाय तो महत्त्वपूर्ण कार्य बहुत सुन्दर ढग से सम्पन्न किया जा सकता है।"

चरितनायक ने तत्काल आचार्य देव के उन विचारो को "तथास्तु" कह कर स्वीकार कर लिया, किन्तु आपके मानस मे यह विचार बहुत गहरा पैठ गया कि समाज मे वातावरण निर्मित कर इस महत्त्वपूर्ण कार्य को अवश्य सम्पन्न करना है। उस विचार-बीज का अकुरण आपने अपने आचार्य काल मे प्रवेश करते ही कर दिया और वह आज एक विशाल वटवृक्ष का रूप ले चुका है।

दिल्ली मे जमना पार के क्षेत्रीय लोगो के अति आग्रह के कारण आचार्यश्री का विहार हिलवाडी आदि क्षेत्रो की ओर हुआ। हिलवाडी से कान्दला की ओर जाने हेतु भी मार्ग की दुविधा को दृष्टिगत रखते हुए चरित-नायक को अन्य दो मुनियो के साथ एक भिन्न मार्ग से विहार की अनुमति मिली।

हमारा आधार जवाहर-साहित्य

हमारे चरितनायक अपने अन्य सहयोगी मुनियो के साथ जब कान्दला की ओर जा रहे थे, तो मार्ग मे एक "खट्टा" नामक ग्राम आया, जिसमे स्थानकवासी अग्रवाल बन्धुओ के लगभग दस-बारह परिवार रहते थे और एक छोटा-सा दो मजिल वाला धर्म स्थानक था। चरितनायक ने स्थानक मे निवास हेतु अनुमति प्राप्त कर अपने वस्त्रपात्रादि व्यवस्थित किये। इतने मे एक अग्रवाल भाई ने आलमारी खोलते हुए कहा, "महाराजजी, आपको कुछ साहित्यादि देखना हो तो यहाँ रखा हुआ है, आप देख सकते है।" चरितनायक ने अनुमति लेकर कुछ पुस्तको को इधर-उधर करके देखा तो आपको आश्चर्य हुआ कि इस क्षेत्र मे न तो अधिक सन्तो का आगमन होता है और न विशेष सामाजिक परिचय ही है, फिर यहाँ तक "जवाहर साहित्य" कैसे पहुँच गया। साश्चर्य आपने उन श्रावक बन्धुओ से पूछा कि—"आपका जवाहर साहित्य से लगाव कैसे है ?"

एक बन्धु ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्यो, क्या जवाहर साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर है ? हम उसे नही पढ सकते है क्या ?"

"नही, मेरा यह मतलब नही था। साहित्य यदि किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर हो, तो वह साहित्य सज्ञा ही नही पा सकता है। मेरा तात्पर्य यह था कि आपको इस साहित्य से परिचय कैसे प्राप्त हुआ ? इस क्षेत्र मे पूज्य जवाहाराचार्य के सम्प्रदाय के मुनियो का विशेष आवागमन भी नही होता है और उनके प्रति श्रद्धानिष्ठ बन्धुओ का यह प्रवास क्षेत्र भी नही है।"

"महाराजजी, वह तो मैने यो ही विनोद किया है। वस्तु स्थिति यह है कि हमारे इधर कोई अच्छे क्रियापात्र सन्त तो विशेष पधारते नही, एक बार पूज्य योगिराज आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० दिल्ली चातुर्मास के पूर्व इधर पधारे थे। अब करीब बीस वर्ष बाद आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० का इस क्षेत्र मे पदार्पण हुआ, तो उनके चरण स्पर्श का सौभाग्य भी इस ग्राम की भूमि को नही मिला और आपश्री को इधर प्रस्थान करवा दिया गया। इधर विचरने वाले कुछ सयम मे शिथिल प्रवृत्ति वाले सन्तो को तो हम मानते नही है और आप जैसे कठोर सयमी महापुरुष इधर पधारते नही। तो फिर हम

चरितनायक की सैद्धान्तिक दक्षता

भरतपुर के उस प्रवासकाल मे अलवर का एक शिष्ट-मण्डल विनन्त्यर्थ उपस्थित हुआ और अत्यन्त आग्रह पूर्ण प्रार्थना करने लगा—"अब आपश्री को अतिशीघ्र ही अलवर क्षेत्र को पावन करना चाहिये। वहाँ समस्त जनता आपश्री के दर्शनो के लिए उत्कण्ठित है।

"साथ ही हमारा एक निवेदन और है—आपश्री मार्ग की सुविधा के अनुसार तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से शीघ्र नही पधार सके तो कुछ सन्तो का एक सिघाडा आगे बढ़ जाए तो श्रेष्ठ रहेगा तथा अलवर सघ को कुछ अधिक लाभ मिल सकेगा।"

आचार्य देव ने आग्रहपूर्ण विनती को साध्वोचित भाषा मे स्वीकृति प्रदान करते हुए चरितनायक आदि तीन मुनियो को भिन्न मार्ग से शीघ्र प्रस्थान का निर्देश दे दिया। आराध्य देव का निर्देश प्राप्त कर चरितनायक आदि मुनि त्रय ने उग्र विहार के द्वारा शीघ्र ही अलवर पदार्पण किया। अलवर की धर्म प्राण जनता धर्म साधना की परम पावनी गगा मे डुबकियाँ लगाने लगी।

सयोगत एक दिवस के उपरान्त ही वहाँ तेरापन्थ सघ के आचार्यश्री तुलसी का भी आगमन हो गया। धार्मिक वातावरण का निर्माण हुआ, जनता मे उत्साह की लहर थी।

जब आचार्य श्री तुलसी ने अपना कार्यक्रम सूचित किया तो कुछ स्थानकवासी बन्धु भी ज्ञान चर्चा के समय वहाँ पहुँचे। प्रश्नोत्तर-ज्ञान चर्चा के दौरान जब दान-दया सम्बन्धी चर्चा चल पडी तो कुछ स्थानकवासी बन्धुओ ने आचार्य श्री तुलसी से नम्र निवेदन किया—"दान के सम्बन्ध मे अभी आपने जो प्रतिपादन किया, उस विषय मे हमारी कुछ जिज्ञासा है। यदि आप कुछ समय दे तो हम कुछ समाधान चाहते है।"

आचार्य श्री तुलसी ने कहा—"अभी प्रश्नोत्तर का समय चल ही रहा था, अब तो समय अधिक हो गया है। आप कल इसी समय रात्रि मे और प्रश्न कर सकते है।"

उपचार का कोई साधन नही था। निकट के एक गाँव से एक कम्पाउण्डर आया और नली के द्वारा पेशाब करवाया गया, तब शान्ति मिली। किसी तरह विहार करके पुन चाँदनी चौक बारहदरी (दिल्ली) पधारे और उपचार-हेतु डॉक्टरो की राय ली गई। डॉक्टरों की राय तो यही थी कि आपको ऑपरेशन करवा लेना चाहिए, किन्तु आचार्यश्री ऑपरेशन के पक्ष मे नही थे। अत प्राकृतिक उपचार प्रारम्भ किया गया।

उस समय चरितनायक तल्लीनता पूर्वक सेवा मे जुट गए। यह कहा जा चुका है कि अपनी साधना के प्रमुख अगो मे आपने सेवा को भी अग्रिम स्थान दिया था। सेवा की उस साधना के साथ-साथ उस समय व्याख्यान आदि की जिम्मेदारी भी आप पर ही आ गई थी, क्योकि आचार्य देव को प्राकृतिक चिकित्सा मे पूर्ण विश्रान्ति की आवश्यकता थी।

उस समय आपके प्रवचन का विषय सूत्रकृताग जैसे गूढ एव दार्शनिक ग्रन्थ को सुबोध बनाकर बुद्धिगम्य बनाना था। दिल्ली की धर्म-प्राण जनता पर आपने उस समय अपने प्रवचन मे दार्शनिक विषयो के प्रतिपादन के माध्यम से अनूठी छाप अकित कर दी थी।

सेवा एव प्रवचन के अतिरिक्त समय मिलने पर आप उस समय 'प्रमेय कमल मार्तण्ड' जैसे गूढ, दार्शनिक, दिगम्बर-न्याय-ग्रन्थ का मननपूर्वक अवलोकन किया करते थे। अब आपका अध्ययन प्राय. स्वयं की मेधा से ही बिना पडितो के सहयोग के होता था। चू कि व्याकरण एव न्याय के उच्च कोटि के ग्रन्थो का अध्ययन आप कर चुके थे, अत. अब न्याय, दर्शन आदि के ग्रन्थ जैसे भी हो, उनको आप स्वय ही हृदयगम कर लेते थे।

यद्यपि आचार्यश्री के सम्वत् २००७ के चातुर्मास की स्वीकृति शास्त्रीय आगारो के साथ अलवर के लिए दी जा चुकी थी, किन्तु सहसा स्वास्थ्य खराब हो जाने से आपको दिल्ली ही रुकना पडा और बारहदरी मे ही आपका वह चातुर्मास सम्पन्न हुआ। वर्षावास के समाप्त होते-होते आपके स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हुआ, अत: वर्षावास के समाप्त होने पर वहाँ से विहार कर आप सब्जी मडी पधार गए।

इधर आचार्यश्री के स्वास्थ्य मे सुधार के चिह्न दिखाई देने लगे, उधर चरितनायक के स्वास्थ्य मे अत्यधिक कमजोरी परिलक्षित होने लगी। कारण यो वना कि आचार्य देव की सेवा-सयोजना एव व्याख्यान-अध्ययन आदि मे आपको शारीरिक एवं मानसिक श्रम अधिक करना पडता था और इधर अनुकूल भोज्य पदार्थ उचित मात्रा मे नही ले पाते थे। यह कहा जा चुका है कि आपने दीक्षा लेने के कुछ दिनो पश्चात् यह प्रयोग प्रारम्भ किया था कि साढे

उपर्युक्त उद्धरण-पाठ की प्रतिलिपि लेकर श्रावक वन्धु चरितनायक के समीप पहुँचे और निवेदन किया—"महाराजश्री ! आचार्यश्री तुलसी ने भगवती सूत्र के आधार पर उनके द्वारा मान्य दान की परिभाषा सिद्ध कर दी है।"

चरितनायक ने पूछा—"किस पाठ के आधार पर ?"

जव उन्होने उद्धरण-पाठ निकाल कर वताया तो चरितनायक ने कहा—"यह पाठ गलत है। इसमे से एक शव्द सम्भवत छिपा लिया गया है—वह आपको नही लिखाया गया है। देखिये भगवती सूत्र का यह पाठ है।" उसी समय भगवती सूत्र निकालकर चरितनायक ने शुद्ध पाठ दिखाया और कहा—"देखिये, इस पाठ से उसका मिलान करिये, इसमे "तहारूव" शव्द है, जो उन्होने नही लिखवाया है। आप जानते हैं—एक शव्द के द्वारा अर्थ मे कितना अन्तर पड जाता है। कई वार एक शव्द वाक्य का पूरा अर्थ वदल कर अर्थ का अनर्थ कर देता है।

प्रस्तुत पाठ के आधार पर उन्होने असयति दान मे एकान्त पाप होना सिद्ध किया है, जवकि यहाँ पर तथारूप के असयतियो को—जो कि संयति नही होकर सयति का रूप धारण किये है, गुरु वुद्धि से दान देने मे एकान्त पाप कहा है। सभी असयतियो को दान देना इस पाठ से किसी भी आधार पर पाप सिद्ध नही होता है।"

शुद्ध सूत्र पाठ को देखकर आगन्तुक श्रावक चकित रह गए और आपस मे कहने लगे—"अपनी गलत पकडी हुई मान्यता को सिद्ध करने के लिए कितना उत्सूत्र प्ररूपण किया जाता है। हमे आज इसका ज्ञान हुआ है।" उन्होने निवेदन किया—"महाराजजी, हम अभी फिर जाकर उनसे वह पाठ देखेगे।"

इतने मे सयोग से सरदार शहर निवासी प्रवुद्ध श्री मोतीलालजी वरड़िया आ गए। तव चरितनायक ने वरडियाजी को सम्बोधित करते हुए कहा—"आप भी ठीक प्रसग पर पहुँच गए। ये श्रावक लोग अभी आचार्यश्री तुलसीजी के पास से आ रहे है, उन्होंने भगवती सूत्र का एक पाठ नोट करवाया, किन्तु ये समझ नही पाए। लगता है उन्होंने एक शब्द छिपाकर रख लिया। ये अव वापस जा रहे हैं। आप उनकी सैद्धान्तिक मान्यताओं को जानते हैं, अतः आप भी इनके साथ दया पालें।"

श्री मोतीलालजी वरड़िया उन श्रावकों के साथ आचार्य श्री तुलसी के पास पहुँचे तो सहसा आचार्य श्री चौंक पड़े—वरड़ियाजी आप कहाँ कैसे ?

औषधि चली, जिसमे केवल मट्ठा ही लिया जाता था । अन्य पदार्थो की बात तो दूर रही, नौ महीने तक पानी की एकबूँद भी ग्रहण नही की गई । रसना इन्द्रिय पर इतना संयम रख लेना सहज नही है । रुग्णता के समय जहाँ जिह्वा खाने पर अधिक ललचाती है, वहाँ चरितनायक ने स्वेच्छया आयुर्वेदिक उपचार लिया और अपनी जिह्वा पर पूर्ण नियंत्रय रखा। यह उनकी साधना की उच्चता का प्रतीक है । आपके इस जिह्वा-सयमन का स्वयं वैद्यराजजी पर इतना अनूठा प्रभाव पडा कि वे कहने लगे—"महाराज, इतना सयमी मरीज मुझे कभी नही मिला । आपने स्वय पर वहुत नियन्त्रण साध लिया है । 'वैद्य भक्तो जितेन्द्रिय.' की उक्ति आप पर पूर्णत· घटित होती है ।"

जिह्वा के इस उग्र सयमन से कुछ दिनो मे आपका स्वास्थ्य सुधर कर सामान्य स्तर पर रहने लगा, तो आचार्य देव मुनि श्री सुन्दरलालजी को आपकी सेवा का दायित्व सौपकर स० २००८ के चातुर्मास हेतु अलवर के लिए प्रस्थान कर गये ।

चू कि चरितनायक का स्वास्थ्य अभी तक विहार के अनुकूल नही होने से आपका सं० २००८ का वर्षावास-प्रवास दिल्ली सब्जी मण्डी मे ही हुआ। चातुर्मास की समाप्ति तक चरितनायक का स्वास्थ्य ठीक हो चुका था, अत: चातुर्मास उठते ही आपश्री दिल्ली से विहार कर अलवर आचार्य देव की सेवा मे पधार गए । चातुर्मास के समाप्त होने पर भी कारण विशेष से आचार्यश्री अलवर ही विराज रहे थे ।

कुछ दिन तक आचार्य देव की अस्वस्थता के कारण अलवर ही रहकर वहाँ से आचार्य देव के साथ ही आपश्री जयपुर पधारे और जयपुर से अजमेर, ब्यावर आदि क्षेत्रो मे धर्म जागृति का बिगुल बजाते हुए घाणेराव सादडी पधारे, क्योकि वहाँ सं० २००९ का वृहत् साधु-सम्मेलन होने वाला था ।

सामाजिक जिम्मेदारी

वृहत् साधु-सम्मेलन सादडी मे आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय से पाँच प्रतिनिधियो का चयन किया गया था, उनमे प० मुनि श्री नानालालजी (चरितनायक) भी एक थे । यही से सामाजिक गतिविधियो के परिप्रेक्ष्य मे आपका प्रवेश हुआ और आपने प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मेलन मे भाग लिया । आचार्य देव का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक नही होने से उन्हे मानसिक एव शारीरिक शान्ति प्रदान करने हेतु सम्मेलन के अधिकाश कार्यो को आपश्री ही देखते थे । प्रारम्भ मे सम्मेलन की सभी सभाओ मे आप प्राय: तटस्थ द्रष्टा वनकर सभी प्रतिनिधियो के मनोभावों को समझने का प्रयास

अलवर के इसी काल के प्रवास मे दिल्ली सघ भी दिल्ली स्पर्शने हेतु विनती लेकर उपस्थित हुआ तथा निवेदन करने लगा कि "हमे आने मे थोडा विलम्ब हो गया और आपश्री ने चातुर्मास की स्वीकृति अलवर सघ को प्रदान कर दी। अब हम कम-से-कम शेष काल से तो वचित न रहे। इसलिये शेष काल दिल्ली पधारने और विराजने का आश्वासन हमे प्रदान करे।" दिल्ली सघ के आग्रह को सम्मान देकर आचार्यश्री ने उन्हे शेष काल की स्वीकृति प्रदान कर दी और पुन मार्ग मे छोटे-छोटे ग्राम होने से सन्तो को दो विभागो मे विभक्त कर चरितनायक के एक सिघाडे को आगे विहार करवा दिया।

अनूठा आकर्षण

तदनुसार चरितनायक ने अपने सहयोगी मुनियो के साथ पुन. आचार्य देव से आगे विहार कर दिया। चू कि विहार मार्ग मे जैन परिवारो की सख्या प्राय नगण्य थी और मार्ग भी अपरिचित था तथा मार्ग दर्शन हेतु कोई भाई भी नही था, इस कारण मार्ग मे भिक्षा आदि मे बहुत कठिनाई का सामना करना पडता था। फिर भी चरितनायक गाँव मे पहुँचकर वहाँ के किसी प्रमुख भाई से परिचय करते और अपनी भिक्षा-विधि का परिचय देकर शाकाहारी गृहो का परिचय प्राप्त कर गोचरी लाते। इस प्रकार स्वावलम्बनपूर्वक परीषहो से जूझते हुए आप आचार्यश्री से कुछ दिन पूर्व दिल्ली पहुँच कर बारहदरी (चाँदनी चौक) मे विराजित व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० सा० के प्रवुद्ध शिष्य श्री जग्गुमलजी म० सा० एव श्री सुर्दशन मुनिजी म० सा० के साथ ही ठहर गए और अपने स्नेह-सौजन्य का परिचय दिया।

इधर आचार्य देव भी छोटे-छोटे ग्रामो मे धर्म-जागृति करते हुए कुछ दिनोपरात दिल्ली से लगभग २० मील दूर गुडगाव पधारे। आचार्य देव के पदार्पण की यह जानकारी जब चरितनायक को मिली तो अपने आराध्य के स्वागतार्थ आप प्रात प्रतिलेखन से निवृत्त हो निकल पडे और दर्शन की तीव्र लालसा लिये द्रुत गति मे लगभग १२, १२½ बजे २० मील पहुँच गए। यह है अपने आराध्य के प्रति अनन्त श्रद्धा एव आकर्षण का नमूना।

गुडगाँव से आचार्यश्री के साथ ही विहार करते हुए आप पुन दिल्ली पधारे। आचार्य देव का तत्कालीन दिल्ली प्रवेश ऐतिहासिक एव अनूठा प्रवेश था। दिल्ली की धर्म प्राण जनता के दिलो मे आपके प्रति कितनी अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्वागतार्थ आने वाली अपार जन-मेदिनी के कारण वहाँ ट्राम गाडियो को भी रुक जाना पडा। उस समय की दिल्ली प्रवास की विशेष उल्लेखनीय घटनाओ का सम्बन्ध स्व० आचार्य देव के जीवन से है, अत हम उन अप्रासगिक विस्तार मे नही जाना चाहेगे।

चरितनायक ने नम्र निवेदन किया कि—"भगवन्! आपका स्वास्थ्य भी ठीक नही चल रहा है और शूगर नापने एव इन्जेक्शन लगाने मे दिक्कत आएगी। अतः मेरा आपश्री की सेवा मे रहना ही आवश्यक लग रहा है। फिर आपश्री जैसा आदेश दे।"

तब आचार्य देव ने कहा—"मेरा ध्यान रखने वाले तो बहुत हैं, तुम सेवाभावी मुनि श्री इन्द्रचन्द्रजी की सेवा का कार्य देखो।"

तदनुसार चरितनायक कर्मठ सेवाभावी मुनि श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० की सेवा मे नाथद्वारा ही रुक गए तथा आचार्य देव अन्य मुनियो के साथ सोजत के लिये प्रस्थान कर गये।

• • •

धर्म-ध्यान आदि आत्म-साधना कैसे करे ? उसके लिए अवलम्बन तो चाहिये ही । अत. सन्तो के अवलम्बन के अभाव मे हमने इस जवाहर साहित्य को ही अपना आधार वना लिया ।"

"तो आपके इधर व्याख्यान वाचस्पतिजी म० सा० के सन्त भी नही पधारते क्या ?" चरितनायक ने सहज जिज्ञासा की ।

"महाराजजी, यद्यपि वे उच्च सयमशील एव क्रिया-पात्र है, किन्तु उनका प्रवास भी इधर वहुत कम होता है । एक-दो वार किसी दूसरे सम्प्रदाय के सन्त आए थे, किन्तु चन्दे चिट्ठे की वात करने लगे, तो हमे अच्छा नही लगा । दूसरे इधर दिगम्वर समाज के घर अधिक हैं, अत वे फिर हमे चिढाते है कि "ये कैसे सन्त, जो रुपये-पैसे के चक्कर मे पडते है ।" अत हमने उनकी विनती करना छोड दिया । उन शिथिल सन्तो की विनती की अपेक्षा हमने जवाहर साहित्य को ही अधिक श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर समझा है। प्रतिदिन हम सभी परिवार वाले (सभी घरो के) सदस्य एक निश्चित समय पर एकत्र हो जाते हैं और एक कोई अच्छी हिन्दी पढने वाला "जवाहर किरणावली" के प्रवचनो को पढकर सुनाता है । हम तो यह समझते हैं कि हमे प्रतिदिन पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० के अमृत प्रवचन ही मिल रहे हैं । वाचन करने वाले व्यक्ति भी क्रमशः वदलते रहते है ताकि सभी को शुद्ध हिन्दी पढने का अभ्यास हो ।

हमारे यहाँ साधुमार्गी समाज मे आपको एक परम्परा और विशेष मिलेगी कि हम लोग विवाह आदि सभी सामाजिक प्रसगो पर जो कुछ चढाना हो, वह स्थानक को ही चढाते है, मन्दिर आदि मे नही । जिससे स्थानक की व्यवस्था मे कोई व्यवधान उत्पन्न नही होता है ।"

उनकी वह धर्मनिष्ठा देखकर हमारे चरितनायक अत्यन्त प्रभावित हुए और कहने लगे—"आपके क्षेत्र-जैसी जागरुकता सभी क्षेत्रो मे आ जाये, तो सयम मे शिथिल वने हुए सन्त भी सुधर सकते है, और समाज का कायाकल्प हो सकता है । आपका क्षेत्र मेरे लिए एक आदर्श क्षेत्र वन जाएगा.. ।" मैंने स्वय अनेक वार आपश्री मुख से "खट्टा" गाँव को उदाहरण के रूप मे सुना है । आज भी जिस किसी गाँव को आचार्यश्री स्वाध्याय के लिये प्रेरित करना चाहते हैं, सहसा उनके मुखारविन्द से "खट्टा" गाँव का उदाहरण आ जाता है ।

खट्टा गाँव मे कुछ दिन धर्म जागृति करने के पश्चात् वहा से विहार कर चरितनायक टिट्री मण्डी के आस-पास पुन· आचार्य गुरुदेव के श्री चरणों मे पहुँच गए । उन दिनो सहसा आचार्यश्री को पेशाव की तकलीफ हो गई और पेशाव के अवरुद्ध हो जाने से वेचैनी वहुत वढ गई । गाँव वहुत छोटा था, अत.

वहाँ उपलब्ध नही थे, अतः विवश होकर वहाँ से विहार कर आठ मील पर स्थित अन्य गाँव मे पधारे। वहाँ थर्मामीटर के लिए पूछताछ की। किन्तु छोटा गाँव होने से कही उपलब्ध नही हुआ अतः उस दिन लघन कर लिया और रात्रि विश्राम कर प्रात.काल ७ मील पर स्थित सरदारगढ के लिए प्रस्थान कर दिया।

आहार का लघन और ज्वर के कारण शारीरिक कमजोरी अत्यधिक बढ गई, और गति बहुत मन्थर हो गयी थी इसलिए सात मील के मार्ग को तय करने मे बहुत समय लग गया। सरदारगढ़ पहुँचकर थर्मामीटर का अन्वेषण कर उससे ज्वर का नाप लिया तो उस समय वह १०२½ डिग्री था। वहाँ पर भी उपचार का साधन तो उपलब्ध नही था, किन्तु इतने तीव्र ज्वर की स्थिति मे विहार करना अनुपयुक्त समझ कर कुछ दिन वही विश्राम लेने हेतु रुक कर आहार का लघन कर दिया। लगभग चार दिन तक ज्वर तो कुछ न्यूनाधिक होता रहा, किन्तु रात्रि मे खासी का प्रकोप बढ जाता था। पाँचवे दिन एक स्थानीय बन्धु के पास, जिनकी दूकान कस्बे से कुछ दूर स्टेशन पर थी "सल्फा-डाइजिन" की एक गोली उपलब्ध हो गई। सेवाभावी मुनि जी वहाँ से याचना करके उसे ले आये तथा आधी-आधी गोली सुबह-शाम ली। किन्तु स्वास्थ्य मे कोई सुधार दृष्टिगत नही हुआ। एक दिन मध्याह्न सहसा बहुत जोरो से खासी का दौर चला जिससे वमन (कै) हो गया। उसमे बहुत चिकना कफ एक साथ निकल गया। फलस्वरूप जुकाम कुछ कम हो गया।

चरितनायक के स्वास्थ्य की उपर्युक्त जानकारी सयोगतः तत्र स्थित एक अजैन महिला, जो योग-साधना किया करती थी, को हुई। वे मुनि श्री के पास दर्शन हेतु उपस्थित हुई और पूछा, "अभी आपको कितना ज्वर है ?"

चरितनायक ने थर्मामीटर से टेम्परेचर नाप कर बताया कि अभी १०० डिग्री ज्वर है। जब उस बहिन ने कहा "मेरे पास बसन्तमालती है। आप उसकी कुछ मात्रा लेकर देखे।" तदनुसार कुछ मात्रा बसन्तमालती की भी ली गई, किन्तु स्वास्थ्य मे विशेष अन्तर नही आया। ज्वर कुछ जमावट पर आ गया और लगातार ९९–१०० डिग्री के आस-पास रहने लगा। इधर आपको आचार्य देव के स्वास्थ्य की चिन्ता थी। आचार्य देव के वहाँ से ऐसे समाचार मिले कि आचार्य देव का स्वास्थ्य कुछ ठीक नही है। आप अपने स्वास्थ्य के विचार को गौण कर उस दुर्बल स्थिति मे ही आगे बढ गए और उग्र विहार करते हुए नेवाज ग्राम मे पूज्य आचार्य देव के चरणो मे पहुँचे।

आभ्यन्तर सेवा

पूज्य चरणों मे पहुँचने पर आपको विदित हुआ कि नाथद्वारा के पश्चात्

बारह बजे तक गोचरी आ जाए तो ठीक, अन्यथा सध्या को एक समय ही भोजन किया जायेगा। तदनुसार दिल्ली जैसे शहर मे भिक्षा-वृत्ति मे प्राय: सहज ही विलम्ब हो जाता। कभी जल्दी भिक्षा आ भी जाती तो, विकाल मे उष्ण दुग्धादि पदार्थों का सयोग नही मिल पाता। अत प्राय. सन्ध्या को एक समय ही भोजन करते थे। फलस्वरूप परिश्रम की अधिकता एव खुराक की कमी ने हमारे चरितनायक के स्वास्थ्य को दुर्बल बना दिया। फिर भी आपश्री अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देकर सदा सेवा मे तल्लीन रहते थे।

जब आचार्यश्री का बारहदरी से विहार हुआ, तो चरितनायक को अत्यधिक कमजोरी महसूस होने लगी। तब आचार्य देव ने चरितनायक को प्रथम प्रहर मे दुग्धादि लेने तथा मध्याह्न एव सायकाल नियमित आहार लेने का निर्देश दिया। आचार्य देव के आदेश को शिरोधार्य कर अपनी मानसिक सकल्पना को गौण करके चरितनायक ने प्रात काल दुग्धादि लेना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इतने समय तक रुक्ष आहार लेने से आँतो मे रुक्षता का आ जाना स्वाभाविक था परिणामत. प्रात जो कुछ लिया जाता, वह पचता नही था और दस्त लगना प्रारम्भ हो गया। फलस्वरूप कुछ ही दिनो मे अत्यधिक कमजोरी का अनुभव होने लगा और आपको विवशत भिक्षा-वृत्ति के लिए जाना, व्याख्यान देना एव अध्ययन आदि सभी कार्य स्थगित कर देने पड़े।

नौ महीने तक मट्ठे पर

इस बात की जानकारी जब श्रावक समुदाय को हुई, तो स्थानीय प्रमुख श्रावक श्री आनन्दराजजी सुराना आदि ने कहा कि किसी बडे डॉक्टर को दिखाकर यथाशीघ्र इलाज करवा लेना उचित है, किन्तु चरितनायक ने स्पष्ट कह दिया कि "मैं अभी ऐलोपैथिक उपचार नही लेना चाहता। हा, यदि कोई वैद्यराजजी हो, तो उपचार ले सकता हूँ। जब तक वैद्यराजजी जवाब न दे दे कि अब रोग हमारी पकड से बाहर है, मैं डॉक्टरी इलाज नही करवाना चाहता।"

तदनुसार वही किनारी बाजार मे रहने वाले एक अच्छे प्रसिद्ध वैद्यराजजी को दिखाया गया। वैद्यराजजी ने बताया कि बीमारी पुरानी है, अत उपचार भी कुछ लम्बे समय तक चलेगा। खान-पान आदि के पथ्य-परहेज मे, मेरे निर्देशानुसार चलना पडेगा अन्यथा मैं इसमे हाथ नही डालता। तब चरितनायक ने कहा—"इसकी चिन्ता आप न करें। आप कहे तो मैं केवल पानी पर भी रह सकता हूँ।" तब वैद्यराजजी ने प्रसन्न होकर कहा—"नही, पानी पर तो नही किन्तु जब तक उपचार चले आपको केवल मट्ठे पर रहना होगा। पानी की तो एक बूंद भी नही मिलेगी।" चरितनायक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और लगभग नौ महीने तक

क्योकि उनकी यह मान्यता थी कि यदि आप श्री इस गौरवपूर्ण पद को अलंकृत नही करेंगे तो श्रमण सघीय एकता शायद ही बन सकेगी। क्योंकि वर्तमान श्रमण समाज मे आप श्री के प्रति अटल एव अनन्य आस्था है। अतएव क्या बुजुर्ग, क्या युवक सभी मुनिप्रवरो ने एक स्वर से आपको अपना अनुशास्ता स्वीकार किया है। उन प्रमुख मुनिवरो के स्वर तो यहाँ तक मुखरित हुए थे कि यदि आप श्री ने इस पद को नही सम्भाला, तो सघ ऐक्य योजना का सफल होना असम्भव-सा ही है और यदि ऐसा हुआ तो सबको उपहास का पात्र बनना पड़ेगा। इस अभिप्राय से विनयपूर्वक आप श्री को यह गौरवपूर्ण दायित्व समर्पित किया गया था। अत केवल अस्वस्थता के कारण इस पद का त्याग-पत्र मेरी दृष्टि से तत्काल उचित नही लगता। इसके अतिरिक्त अभी आपके त्यागपत्र देने से श्रमण सघ भी छिन्न-भिन्न हो जाएगा और जिन प्रमुख मुनिवरो ने आप श्री से नम्र प्रार्थना की थी, उनकी भावनाओ को भी बहुत आघात पहुँचेगा।"

चरितनायक के गम्भीर विचारो पर आचार्य देव ने कुछ मनन किया और इधर जिन प्रमुख श्रावको के पत्र आये थे, उनका अभिमत भी चरितनायक के विचारो के अनुकूल ही था। अतः तत्काल त्यागपत्र देने के विचार को स्थगित कर दिया गया। यह कहा जा चुका है कि चरितनायक प्रारम्भ से ही किसी विषय की गम्भीरता तक पहुँच कर ही उसका निर्णय लेते थे। उपर्युक्त विषय मे भी उन्ही की चिन्तनशील दीर्घ दृष्टि ने इतने बड़े निर्णय मे समुचित योग दिया।

सेवाज से विहार कर चरितनायक अपने आराध्य देव के साथ ही सोजत पधारे। मार्ग मे जहाँ कही सिरीन्ज आदि का सयोग मिल जाता, आप आचार्य देव के मधुमेह को नियत्रित करने हेतु इन्जेक्शन, उपचार आदि का पूर्णतया ध्यान रखते। फलत. आचार्य देव का स्वास्थ्य कुछ ही दिनो मे सुधरने लगा और आचार्य देव शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार से शान्ति का अनुभव करने लगे।

सोजत मन्त्रिमण्डल की मीटिंग मे अन्य अनेक निर्णयो के साथ एक महत्त्वपूर्ण निर्णय यह भी लिया गया कि सगठन का स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रमुख मुनिवरो का एक वर्षावास सयुक्त रूप से एक ही स्थान पर हो, ताकि पूरे चार मास की अवधि मे चिन्तन का अवसर मिले और सगठन की भूमिका सुदृढ बन सके। तदनुसार स० २०१० का वर्षावास सयुक्त रूप से जोधपुर के लिए निश्चित किया गया और सभी प्रमुख मुनिवरो ने सोजत से जोधपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। चरितनायक भी उस वर्षावास मे आचार्य देव की सेवा मे ही निरत रहे।

यद्यपि चरितनायक का स्वास्थ्य जो जलाशय की शीत लहर के प्रकोप से

करते और प्रतिनिधि की हैसियत से वोलने का प्रसग आता, तभी वोलते। इस प्रकार इस सम्मेलन के पश्चात् श्रमण-सघ सम्बन्धी पत्राचार का कार्य भी आप ही सम्भालने लगे।

इन्ही दिनो सादडी-सम्मेलन मे वम्वई से एक डॉक्टर सा० का आगमन हुआ। उन्होने आचार्यश्री के स्वास्थ्य को देखकर प० मुनिश्री (चरितनायक) से सकेत किया—"आचार्यश्री को शूगर की वीमारी है। चू कि रोग पुराना हो गया है तत्काल इस पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योकि इसका ध्यान नही रखने पर शूगर के साथ-साथ अन्य वीमारियाँ भी खडी हो सकती हैं। आपको मैं इन्जेक्शन लगाना सिखा देता हूँ। आप आपनी मर्यादानुसार कही से सिरिंज याचना करके ला सकते है और स्प्रिट से उसे साफ कर इन्जेक्शन लगा सकते है। शूगर नापने का चार्ट भी मैं आपको वता देता हूँ। उसके अनुसार आप विधि सीख ले तो आप शूगर की जाच करके आवश्यक मात्रा मे इन्जेक्शन लगा सकते हैं। छोटे-छोटे ग्रामो मे डॉक्टरो का सयोग नही मिलता है और इस प्रकार शूगर वढती जाती है। आप उपयुक्त विधि सीख ले, तो आचार्यश्री को रोग के वढते हुए प्रकोप से कुछ विश्रान्ति मिल सकती है। तदनुसार आपने वह विधि जो मुनि मर्यादा के अनुकूल थी, सीखकर पूज्य चरणो की एक विशेष सेवा का दायित्व भी अपने ऊपर ले लिया और विहार मे इन्जेक्शन हाथो से लगाना प्रारम्भ कर दिया।

सम्मेलन के पश्चात् स० २००६ के वर्षावास हेतु आचार्यश्री का उदयपुर पदार्पण हुआ। उदयपुर के इस वर्षावास मे चरितनायक भी सेवा मे ही थे। अव आपने अध्ययन को गौण कर आचार्यश्री की सेवा मे अपना अधिक-से-अधिक समय लगाना प्रारम्भ कर दिया तथा सघीय व्यवस्था का निरीक्षण भी करने लगे ताकि आचार्य देव पर मानसिक श्रम का भी भार कम पडे।

उदयपुर के चातुर्मास मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति की दुन्दुभि वजाकर आचार्यश्री ने सोजत की ओर प्रस्थान किया, क्योकि चातुर्मास के पश्चात् सोजत मे मन्त्री-मुनियो के सम्मेलन का निश्चय किया गया था। सोजत जाते वक्त मार्ग मे नाथद्वारा मे कर्मठ सेवा व्रती श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० को निमोनिया हो गया। उनके स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए आचार्यश्री के लिए यह आवश्यक हो गया कि उनकी व्यवस्था होने के उपरान्त ही आगे विहार किया जाय। चू कि आचार्य देव का सोजत सम्मेलन मे पहुँचना आवश्यक था, अत: आपका वहाँ रुकना शक्य नही था और अन्य मुनि कर्मठ सेवाभावी मुनिजी के स्वास्थ्य एव सेवा का पूर्णतया ध्यान रख ले, ऐसी स्थिति नही थी। अत: आचार्य देव ने अपने "इगियागार सम्पन्ने" शिष्य चरितनायक को ही सकेत किया—"जब तक मुनिजी का स्वास्थ्य विहार के अनुकूल नही वन जावे, तुम यही रहो।"

लगभग शेष काल अर्थात् उन्तीस दिन महामन्दिर मे ठहरना पडा। तब तक हमारे चरितनायक के स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार हो चुका था, अतः फिर वहाँ से आचार्य देव के साथ ही मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया। स० २०११ का चातुर्मास कुचेरा मे हुआ। वहाँ भी चरितनायक का अधिकांश समय पूज्य चरणों की सेवा मे ही व्यतीत होता था।

कुचेरा वर्षावास सानन्द सम्पन्न कर आप श्री आराध्य गुरुदेव के साथ ही बीकानेर क्षेत्र की ओर पधारे तथा सं० २०१२ का चातुर्मास बीकानेर किया।

• • •

स्वास्थ्य : अपना या आचार्य देव का

चरितनायक रुके तो थे सेवा के लिये, किन्तु कुछ ही दिनो मे आप स्वय रुग्ण हो गये, क्योंकि सेवा का सम्पूर्ण दायित्व सम्भालते हुए आप श्री को रात्रि की कठोर सर्दी मे दो-तीन बार परठने की दृष्टि से नीचे आना पडता था। वस्त्र की अल्पता के कारण रात्रिकालीन शीत हवा के प्रकोप ने आपके शरीर को जकड लिया। फलस्वरूप आपको अत्यधिक सर्दी जुकाम ने आ घेरा। सेवाभावी मुनिजी का स्वास्थ्य ठीक होने पर आप श्री ने वहाँ से प्रस्थान की योजना बनायी, तो सेवाभावी मुनिजी ने निवेदन किया, "अभी आपका स्वास्थ्य ठीक नही है। आपको सर्दी-जुकाम बहुत गहरा हो रहा है। अत कुछ दिन यहाँ रुक कर उपचार करवा ले।" किन्तु आपका मन तो आचार्य देव के स्वास्थ्य पर टिका हुआ था, अपने शरीर पर नही। अत आपने कहा कि "मेरा स्वास्थ्य तो मार्ग मे ठीक होता रहेगा, एक बार आचार्य भगवन् की सेवा मे पहुँचना आवश्यक है। आचार्य भगवन् का स्वास्थ्य भी बराबर अनुत्तम चल रहा है, अत एक बार किसी प्रकार श्री चरणो मे पहुँच जाऊँ, उसके पश्चात् मेरे स्वास्थ्य के लिये, जैसा होगा, देखेगे।"

इस प्रकार अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह नही करके आपने नाथद्वारा से मोजत पहुँचने हेतु प्रस्थान कर दिया। चूँकि आपका चित्त तो चातक की तरह पूज्य चरणो मे लगा हुआ था, अत सुबह, शाम लगातार उग्र विहार करते हुए आगे बढने लगे। मार्ग मे काकरोली के समीप "राजसमन्द" नामक एक बहुत बडा तालाब आया। भोजन करने के पश्चात् मध्याह्न मे आपने विहार कर दिया। लगभग तीन मील तक तालाब की पाल के ऊपर चलना पडा। चरित-नायक को जुकाम तो पहले था ही, फिर इधर चलने के श्रम के कारण स्वेद (पसीना) होता रहा और इधर तालाब की शीत हवा लगती रही। जुकाम ने उग्र रूप ले लिया और कुछ ज्वर भी हो गया। उधर जिस ग्राम मे पहुँचे वहाँ किसी भक्त बन्धु ने भिक्षा मे कुछ तरल गरिष्ठ पदार्थ डाल दिया। इसका उपयोग भी आप श्री को ही करना पडा, क्योकि कर्मठ सेवाभावी मुनि श्री इन्द्र चन्द्र जी तो अभी निमोनिया से उठे ही थे, दुर्बल शरीर मे उन्हे गरिष्ठ पदार्थ देना उचित नही था। परिणाम यह हुआ कि कुछ ज्वर तो पहले से था ही और ऊपर से भारी पदार्थ का उपयोग होने से सीने मे दर्द होने लगा, खासी चलने लगी तथा ज्वर भी बढ गया। चूँकि गाँव बहुत छोटा था, उपचार के साधन

तथा संघर्ष के द्वारा ही दुग्ध से नवनीत उपलब्ध होता है। तदनुसार इस सैद्धान्तिक सघर्ष का भी एक हल खोजा गया। ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग कर्त्ताओ की ओर से एक प्रस्ताव रखा गया कि "ध्वनि वर्धक यन्त्र में वोलना मुनि-धर्म की परम्पराओ मे नही है। अपवाद मे वोलना पडे तो उसका प्रायश्चित लेना होगा। स्वच्छन्दता से इसका प्रयोग न किया जाय।"

इस प्रस्ताव पर एक-दो को छोडकर अधिकाश मुनि सहमत हो गए। इस प्रस्ताव में शास्त्रीय शब्दो का सकलन मात्र हुआ था, न कि यन्त्र का समर्थन। जब तक मुनि-धर्म, उत्सर्ग एव अपवाद मार्ग आदि प्रस्तावित शब्दो की व्याख्या न हो जाए, इसका उपयोग नही हो सकता है और ज्यो ही इन शब्दो की व्याख्या प्रस्तुत होगी, सहज ही यह अनुपादेय सिद्ध हो जाएगा। "मुनि धर्म" आचाराग आदि शास्त्रो मे प्रतिपादित है। इसलिए उसकी व्याख्या तदनुसार होती है तथा उत्सर्ग से गिरने की स्थिति मे अपवाद की ओर गमन होता है। यथा 'उत्सर्गात् प्ररिभष्टस्यापवादगमनम्' चूँकि यन्त्र के अभाव मे उत्सर्ग से गिरावट का प्रसग नही होता है। अत. सहज ही इसे अपवाद-मार्ग की सज्ञा प्राप्त नही होगी। फलस्वरूप यन्त्र अपने आप मुनि परम्परा में स्थान नही प्राप्त कर सकेगा। फिर भी यदि उपयोग होगा, तो वह स्वच्छन्द माना जाएगा, जिसका निषेध प्रस्ताव मे ही कर दिया गया था। जिन मुनियो ने इस प्रस्ताव पर अपना समर्थन दिया, उनके विचार थे कि जब भी प्रस्तावगत आगमिक शब्दावली को विवेचित किया जाएगा, ध्वनिवर्धक यन्त्र मुनि मर्यादा की परम्परा से अपने आप निष्कासित हो जाएगा। क्योकि अपवाद शब्द से यह तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रस्तावको ने भी अनिवार्य प्रायश्चित की घोषणा करके विद्युत को सचित्त तो मान ही लिया है। प्रायश्चित सचित्त का होता है, अचित का नही। ऐसी स्थिति मे भी चरितनायक का दीर्घ-द्रष्टा चिन्तन उक्त प्रस्ताव को समर्थन देने के लिए तत्पर नही था। आपका सूक्ष्म चिन्तन स्पष्ट सकेत कर रहा था "यह प्रस्ताव तो शब्द सकलन मात्र है। आगमिक शब्दावली उत्सर्ग-अपवाद की व्याख्या कही रह जाएगी और खुले आम प्रस्ताव पारित होने की आड़ मे यन्त्रोपयोग प्रारम्भ हो जाएगा।" और हुआ भी वही।

प० मुनि श्री लालचन्दजी म० सा० एव चरितनायक के दो वोट (क्योकि प० रत्न श्री पन्नालालजी म० सा० का प्रतिनिधित्व भी चरितनायक ही कर रहे थे अत. आपके पास दो मत थे) इस प्रकार कुल तीन मतो का विरोध करते हुए वह प्रस्ताव बहुमत से पारित हो गया। शास्त्रीय शब्दो की व्याख्या अभी शेष थी, किन्तु उस प्रस्ताव के पारित होते ही मध्याह्न मे होने वाली कान्फ्रेन्स की जनरल मीटिग मे कान्फ्रेन्स के कुछ प्रमुख नेताओ ने, जो मुनियो की बैठक मे उपस्थित थे, श्रावक समाज की बैठक मे घोषणा कर दी "ध्वनि वर्धक यन्त्र का प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित हो गया है।" शास्त्रीय शब्दो की व्याख्या क्या

वहुत लम्वी अवधि तक आचार्य देव की न तो शूगर की जाँच की गई और न इन्जेक्शन ही लगाया गया। फलत शूगर वढ गई तथा अत्यधिक दैहिक अशक्तता का अनुभव होने लगा। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि आपके (आचार्य देव के) स्वास्थ्य को देखते हुए कुछ सहवर्ती सन्तो ने यहाँ तक परामर्श दे दिया कि आप श्री का स्वास्थ्य अव अनुकूल नही रहता है और इधर श्रमण-सघ की परि-स्थितियाँ भी विगड रही हैं, अत. आप श्री को श्रमण सघ के "उपाचार्य" पद मे त्याग पत्र दे देना चाहिए, क्योंकि इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद से मस्तिष्क पर वहुत जोर पडता है। स्वास्थ्य पर इसका अच्छा प्रभाव नही पडता। कुछ प्रमुख श्रावको ने तद्विपयक अभिप्रायो की जानकारी हेतु पत्राचार भी प्रारम्भ कर दिया।

जव चरितनायक को इस सम्पूर्ण घटना-चक्र की जानकारी मिली और स्वय आचार्य देव ने अपने अनन्य अन्तेवासी शिष्य (चरितनायक) को सूचित किया कि "कुछ सन्तो का ऐसा अभिप्राय है कि स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर सामान्य मुनि की हैसियत से ही श्रमण संघ मे रहा जाय, ऐसी स्थिति मे क्या करना चाहिए ?"

चरितनायक ने गम्भीर एव विनम्र स्वर मे निवेदन किया—"भगवन् ! स्वास्थ्य का जहाँ तक प्रश्न है वह तो शर्करा (शूगर) वढ जाने के कारण से कमजोर वन गया है। लेकिन कुछ दिनो मे उसमे सुधार आ जाएगा। वैसे मैंने शर्करा (शूगर) की आज जाच की है और उचित मात्रा मे कुछ दिन इन्जेक्शन लगाता रहूँगा, जिससे सव ठीक हो जायेगा। आप इस विपय मे चिन्ता न करे और इस दृष्टि मे उपाचार्य पद से त्याग पत्र देने की भी आवश्यकता नही है। रहा सवाल श्रमण सघीय परिस्थितियो का, सो जहाँ तक मेरी जानकारी है, श्रमण सघ की स्थिति जैसी पूर्व मे थी, प्राय वैसी ही अभी भी वनी हुई है। त्यागपत्र देने अथवा न देने से स्वास्थ्य का सम्वन्ध विशेप नही है। अत इस विपय मे सोचने का प्रश्न भी नही उठता है।"

"भन्ते ! जिस समय आपको उपाचार्य पद से अलकृत किया गया था, उस समय का सम्पूर्ण चित्रण मेरी आँखो के समक्ष आज भी घूम रहा है। श्रमण सघ के सभी दिग्गज प्रतिनिधियो ने एक स्वर मे अर्थात् सर्वानुमति से आचार्य पद की चादर प्रदान की थी, तथा सभी प्रतिनिधियो ने सर्वस्व समर्पण के समान अपने प्रतिज्ञा पत्र आप श्री के चरणो मे समर्पित किये थे। श्रमण सघ का सर्वतोभावेन सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पूर्ण अधिकारो के साथ आप श्री के चरणो मे समर्पित किया गया था।"

"मुझे यह भी स्मरण है कि इस उत्तरदायित्व पूर्ण पद को आप श्री से स्वीकार करवाने के लिए प्रमुख सन्तो के नेत्रो मे वरवस पानी आ गया था,

किन्तु मै केवल न्यायिक दृष्टि से यह सब कुछ कह गया हूँ। होना तो यह चाहिये था कि आप सब महापुरुप ही, मेरे विना कहे, इस मिथ्या लेख पर ध्यान देते। किन्तु जब ऐसा होते हुए मुझे नही दिखाई दिया, तो विवश होकर मुझे इतना बोलना पड़ा। आप धृष्टता के लिए क्षमा करे।"

चरितनायक ने जब अपने विचार निर्भीकतापूर्वक स्पष्ट किये, तो एक बार तो सभा मे सन्नाटा छा गया। सभी सदस्यो की दृष्टि चरितनायक पर केन्द्रित हो गई। चरितनायक ने अपना वक्तव्य समाप्त किया ही था कि कान्फ्रेन्स के कुछ नेता लोग उठकर चतिरनायक के निकट आकर कहने लगे "महाराज श्री, जो प्रस्ताव जिस रूप मे लिपिवद्ध हो गया, उसे उसी रूप में रहने दे। अब उसमे परिवर्तन नही हो सकता। आप उस विपय मे कुछ भी नही बोले। आप उससे सहमत हो जाएँ, यही श्रेयस्कर है। उन नेताओ के साथ कुछ सन्तगण भी कहने लगे—"नानालालजी महाराज, आप क्या कर रहे है ? जो हो रहा है, होने दे, और तटस्थ द्रष्टा बनकर समभाव से देखते रहे।"

चरितनायक ने पुन स्पष्ट किया—"मै कुछ नही कर रहा हूँ। मैं केवल सत्य-तथ्य प्रकट कर रहा हूँ। आप चाहे जो देखते रहे, मै जब तक इस सभा का सदस्य हूँ, असत्य का मूक समर्थक नही बन सकता। आप लोगो के कहने से मै सत्य का अपलापी बन अपनी आत्मा को धोखा नही दे सकता। मेरी बुद्धि जिस बात के लिए साक्षी नही दे, उसे मै स्वीकार नही कर सकता। भगवान् महावीर के स्पष्ट स्वर है—"पन्ना समिक्खए धम्म" बुद्धि को बेचकर समझौता करना मै समभाव नही मानता। वह निरी कायरता ही हो सकती है। बिना सहमति के सर्वानुमत लिखना एकदम घोर अन्याय है। मेरी अन्तर्चेतना इसे स्वीकार नही कर सकती। एक मत भी यदि प्रस्ताव के विरोध मे हो, तो सर्वानुमत नही लिखा जाता है। इस प्रस्ताव मे तो तीन मत विरोध मे है और आप उसे सर्वानुमत घोषित कर रहे है। यह अत्यन्त विचारणीय है। जब तक प्रस्ताव मे यथातथ्य परिष्कार नही हो जाता, सभा की कार्यवाही आगे नही बढ सकती।

चरितनायक की स्पष्ट एवं निर्भीक विचार-अभिव्यक्ति को अच्छे-अच्छे दिग्गज विद्वान् तल्लीनता पूर्वक सुनते रहे। किसी ने कल्पना भी नही की थी कि यह एकदम मौनी साधक विचारो की इतनी स्पष्ट अभिव्यजना भी कर सकता है। अन्त मे सभी दिग्गज मुनिप्रवरो को इस विषय पर पुन गम्भीर चिन्तन करना पडा कि वास्तव मे मुनिजी जो कुछ कह रहे है, वह उनकी न्यायपूर्ण माग है। विचार-विमर्श के पश्चात् प्रस्ताव की लिपि मे बहुमत का सशोधन किया गया और सभा की गतिविधि आगे बढी।

इसे कहते है, विचारो की निर्भीक अभिव्यक्ति एव सत्य सिद्धान्त के प्रति अटल निष्ठा। इतनी बडी सभा मे, जहाँ दिग्गज एव धुरन्धर आचार्यादि मुनि-

बिगड गया था और अभी तक पूर्णरूपेण सुधार पर नही आया था, फिर भी आप श्री ने अपने स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देना गौण कर दिया तथा सदा आचार्य देव की सेवा मे ही तल्लीन रहने लगे। जोधपुर चातुर्मास मे आचार्य देव ने आपको प्रेरित किया, "अपने स्वास्थ्य का भी कुछ ध्यान रखा करो, तुम्हारा स्वास्थ्य काफी कमजोर चल रहा है।" जब आपने विशेष ध्यान नही किया, तब आचार्य देव ने डाक्टर श्री मेहता को दिखाकर उपचार प्रारम्भ करवाया। उपचार मे डॉ० मेहता ने कहा "गोलियो के साथ-साथ इन्जेक्शन प्रतिदिन लगेगा। मैं कम्पाउण्डर को भिजवा दिया करूँगा।" तो चरितनायक ने कहा, "कम्पाउण्डर को प्रतिदिन कष्ट देने की आवश्यकता नही है, अपना इन्जेक्शन मैं खुद ही लगा लूँगा।" तदनुसार सिरीन्ज की कही से याचना करके आप अपना इन्जेक्शन भी स्वय ही लगा लिया करते थे और सन्ध्या को पुन सिरीन्ज आदि यथास्थान लौटा देते थे। यह है स्वालम्बन-वृत्ति का उत्कृष्ट उदाहरण।

हाँ, ये हमारे महन्त हैं

आपकी अस्वस्थता दीर्घावधि तक स्थिर रह गयी थी, अत इतने उपचार के बावजूद भी शमित नही हुई और इसी बीच आपको टाइफाइड (मोती ज्वर) ने आ घेरा। इस रोग ने लगभग एक महीने से अधिक समय ले लिया और शरीर पुन अत्यधिक अशक्त हो गया। इधर वर्षावास समाप्ति पर था, अत जोधपुर से विहार भी करना था। ऐसी परिस्थिति मे डाक्टरो से राय ली गई कि "क्या इन मुनिजी को विहार करवाकर महामन्दिर ले जाया जा सकता है?" डाक्टरो ने स्पष्ट निषेध कर दिया और कहा कि "इनकी शारीरिक स्थिति पाद-विहार जैसी नही है।" तदनुसार सन्त वृन्द कही से आप श्री को उठा सकने जैसी एक कुर्सी उठा कर लाये और उसके दोनो तरफ रस्सी से लकडियाँ बाधकर उठाई जाने वाली डोली के समान उसे बना लिया। फिर मुनिश्री (चरितनायक) को उसमे बिठाकर उस डोली को कन्धे पर उठाकर ले जाया गया। डोली को उठाने मे प्रमुख सन्त थे प० श्री मिश्रीमल जी म०सा० एव श्री विजयमुनि शास्त्री आदि।

जब डोली को उठाकर बाजार के मध्य से ले जाया जा रहा था तब कुछ अजैन बन्धुओ ने सहसा प्रश्न किया कि "क्या ये तुम्हारे महन्त हैं, जिन्हे उठाकर ले जा रहे हो?" उठाने वाले मुनियो ने भी विनोद मे मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "हाँ, ये हमारे महन्त हैं।' वह एक सरल विनोद था। कौन जानता था कि विनोद मे कही गई बात एक दिन अक्षरश सत्य सिद्ध हो जायेगी और यह सामान्य साधु बडी-बडी दीक्षा पर्याय वाले साधुओं का महन्त (आचार्य) बन जायेगा। वास्तव मे महापुरुषो के व्यक्तित्व के लिए प्रयुक्त लघु से लघुतम शब्द भी चमत्कारिक अर्थ वाला हो जाता है।

को श्री आत्मारामजी म० सा० के पत्रो से गहरी चोट पहुँची है। परिणामत: उन्होने प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया है। इसके अतिरिक्त एक और शर्मनाक घटना का अनावरण पाली मे हुआ है, जिससे पूरा जैन समाज लाञ्छित हो रहा है। अत. जब तक उक्त विवादास्पद विषयो का निर्णय नही हो जाए, सगठन की योजना मूर्त्त रूप नही ले सकती। इस प्रकार के शिथिलाचार एव स्वच्छन्दाचार के होने से निश्चित ही श्रमण सघ मे छिन्न-भिन्नता उत्पन्न होगी और ऐसी स्थिति मे हम भी श्रमण सघ मे रहना नही चाहेगे। हम सभी ने श्रमण सघ के वैधानिक सर्वाधिकार सम्पन्न आचार्य पद का कार्यभार आपश्री (उपाचार्यश्री) की सशक्त भुजाओ पर डाला है। श्री आत्मारामजी म० सा० को तो केवल सम्मान हेतु आचार्य पद दिया गया है, वह उत्तरदायित्व पूर्ण नही है। अत यह नितान्त वाछनीय है कि आपश्री इस दिशा मे ठोस कदम उठाएँ। आपश्री जो भी कदम उठाएँगे, उसमे हम सभी पूर्णत: सहयोगी रहेगे। सघ की अखण्डता तभी सुदृढ रह सकती है, जब सघ का प्रत्येक सदस्य संयमीय मर्यादाओ का पूर्ण पालन करते हुए अनुशासनवद्ध होकर चले। हमने आपश्री को अपना अनुशास्ता चुना है। अत हमे पूर्ण विश्वास है कि आपश्री उपर्युक्त विवादो का सन्तोषजनक समाधान प्रस्तुत करेगे।"

उपर्युक्त चिन्तनात्मक प्रश्न भरे पत्रो के उत्तर उपाचार्यश्री के निर्देशानुसार हमारे चरितनायक ने धैर्यपूर्वक गम्भीर चितन के साथ, निम्न आशय के रूप मे दिये।

"सघीय स्थिति अवश्य गम्भीर है। किन्तु जिस अथक परिश्रम के द्वारा आप सभी मुनि-पुगवो ने मिलकर सगठन को मूर्त्त रूप दिया, उसको चिरस्थायी बनाए रखने के लिए कुछ साहस एव धैर्य की आवश्यकता है। मैं स्वय यह नही चाहता था कि यह उत्तरदायित्व मुझ पर डाला जाए, किन्तु आप लोगो के आन्तरिक प्रेम को ठुकराना मैने उचित नही समझ कर इस दायित्व को सम्भाला है। अब इस सामान्य-सी स्थिति मे हमे अधीर होना उचित नही है। जिस सुन्दर भवन को आप सभी ने अपनी ईट से ईट मिलाकर खडा किया है, उसकी यथा शक्ति सुरक्षा का दायित्व भी हम लोगो पर ही है। हो सकता है, भवन मे कही दरार पड जाए अथवा कोई दीवार ढह जाए तो पलस्तर एव नवीन खम्भा आदि लगाकर उसे पुन. सुदृढ बनाया जा सकता है। इससे आप यह न समझे कि मै श्रमण-सघ मे प्रविष्ट शिथिलाचार को प्रश्रय देना चाहता हूँ। शिथिलाचार का विरोधी मै किसी से कम नही हूँ, किन्तु हम यथाशक्य यथासाध्य जितना सुधार कर सके, उतना हमारा प्रयास होना चाहिये। इसी दृष्टि से यहाँ से वस्तुस्थिति की जानकारी हेतु आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० को पत्र दिलवाए जा रहे है कि उन्ही की उपस्थिति मे उनके प्रमुख शिष्य श्री ज्ञानमुनिजी ने ध्वनिवर्धक यन्त्र मे बोलकर श्रमण-सघ के विधान का

श्रमण-मर्यादा के एकाक निर्भीक प्रहरी

बीकानेर चातुर्मास के पश्चात् कुछ निकटवर्ती क्षेत्रो को लाभान्वित कर पुन बीकानेर (भीनासर) पधार गए, क्योकि उस समय भीनासर मे वृहत् साधु सम्मेलन होने वाला था।

इस सम्मेलन मे भी चरितनायक ने सादडी सम्मेलन के सदृश्य एक विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया था। यहाँ सगठन को पूर्ण रूप से मूर्त्त रूप दिया गया तथा समाचारी-निर्धारण के अनेकानेक विवादास्पद विषयो पर गम्भीर चर्चाओ के द्वारा सर्वमान्य हल निकालने के प्रयास किये गये।

उन विवादास्पद विषयो मे ध्वनिवर्धक यन्त्र भी था। इस विषय को लेकर समाज मे (साधु-समाज मे भी) स्पष्टतया दो मत बन चुके थे। कुछ मुनि-गण ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग को श्रमण परम्परा के प्रतिकूल मानते हुए भी अधिक उपकार को दृष्टिगत रखते हुए उसमे बोलने के पक्ष मे थे तथा कुछ मुनि प्रवर उसे मुनि-मर्यादा के प्रतिकूल मानकर नही बोलने के पक्ष मे थे। अत. इस विषय को लेकर सम्मेलन मे बहुत विचार-विमर्श हुआ।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जहाँ पक्ष-विपक्ष के पहलू उत्पन्न होते है, वहाँ सघर्ष का प्रादुर्भाव होता है। तदनुसार ध्वनिवर्धक यन्त्र के पक्षधरो का दृष्टिकोण था कि जैसे हम औषधि, उपचार, आपरेशन आदि का सहारा अपवाद रूप मे लेते है, उसी प्रकार अधिक उपकार को दृष्टि मे रखते हुए ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग को वैधानिक रूप मिलना चाहिए।

इसके विपरीत विपक्षकारो का यह कथन था कि अपवाद मार्ग मे गमन सयम की सुरक्षा के हेतु होता है, न कि सयम से च्युत होने के लिये। ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नही करने पर व्यक्ति सयम से च्युत नही होता है। इसके विपरीत उसका उपयोग करके सयम-पथ से विचलित होना है। अत ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग अपवाद की स्थिति मे भी उपादेय नही माना जा सकता है।

इस सघर्ष से उपराम पाने के लिए यह आवश्यक हो गया कि कोई ऐसा मार्ग खोजा जाये, जिससे दोनो पक्षो का उचित समाधान एव सम्मान हो जाये।

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि सघर्ष के द्वारा ही ऊर्जा का विस्फोट होता है

उपाचार्यश्री ने थावला की ओर प्रस्थान किया और उधर अन्य क्षेत्रों से उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म० सा० एव पाली काण्ड से सम्बन्धित रूप मुनिजी को शुद्धिकरण हेतु लेकर मरुधर केशरी श्री मिश्रीमलजी म० सा० भी थावला पहुँच गए।

थावला मे मरुधर केशरीजी महाराज के साथ श्रमण सघीय साम्भोगिक सम्बन्ध नही रखे गए, अत. उन्होने रूप मुनिजी की आलोचना सुनकर उचित निर्णय एवं प्रायश्चित देने हेतु उपाचार्यश्री से प्रार्थना की, क्योकि उनके विरुद्ध मे पत्रो के माध्यम से चारित्रिक स्खलना के दोप प्रमाणित हो चुके थे। तव उपाचार्यश्री, उपाध्यायश्री एव चरितनायक तीनो श्रमण पु गवो ने विस्तृत रूप से तर्क-वितर्क के साथ उनकी आलोचना सुनी तथा उनके पकडे गए पत्रो के साथ मिलान हेतु उन्हे उन्ही की हस्तलिपि मे आवद्ध करके रख लिया।

रूप मुनिजी की आलोचना सुनने के पश्चात् थावले से विहार कर उपाचार्यश्री एव उपाध्यायश्री अजमेर पधारे, जहाँ पाली-काण्ड से सम्बन्धित साध्वियो से आलोचना की गई। उसमें भी उपाचार्यश्री आदि तीनो महामुनियो की उपस्थिति थी। इसी अवधि मे पाली-काण्ड से सम्बन्धित हीरा मुनि भी वहाँ पहुँच गए थे। उनकी आलोचना सुनने का सम्पूर्ण दायित्व चरितनायक पर ही डाला गया। तदनुसार आपने प्रश्न-प्रति-प्रश्न के साथ उक्त मुनिजी की आलोचना सुनी।

इस अन्तराल मे सम्बन्धित मुनियो के एवं मन्त्रीगणों के साथ पत्राचार के माध्यम से परामर्श चलता रहा।

कान्फ्रेन्स के कुछ वरिष्ठ अधिकारी, श्री कुन्दमलजी फिरोदिया, श्री विनयचन्द भाई आदि भी अजमेर उपस्थित हुए तथा उपाचार्यश्री से निवेदन करने लगे—"आपश्री को श्रमण सघ के सर्वाधिकार प्राप्त हैं, अतः आपश्री इन विवादास्पद विषयों को यथाशीघ्र हल करने की कृपा करे।"

"यद्यपि श्रमण सघ में कुछ मुनिवरो की मत्री पद पर भी नियुक्ति हुई है तथा उनका भी यह दायित्व है कि अपने-अपने क्षेत्र की समस्याओं का समाधान वे खुद कर ले, किन्तु न मालूम वे इस विषय में क्यो नही हाथ वढा रहे है। सम्भवत. कोई भीति या हिचक उनके मन मे बैठी हुई है। अत आपश्री ही इस विवाद को अपने हाथो मे ले, और यथा शीघ्र समाधान देने की कृपा करे, तथा साधु-समाज पर लगे हुए इस कलक को धोकर पूरे जैन समाज को गौरवान्वित करे। पाली काण्ड के कारण सम्पूर्ण समाज मे खलबली मच गई है, "एक मछली पूरे तालाव को गन्दा कर देती है" कहावत के अनुसार जनता

होती है, इस विषय मे उन्होंने कुछ नही बताया। परिणामत श्रावक समाज मे बहुत खलबली मच गई कि यह सर्वानुमति मे निर्णय कैसे हो गया ? ऐसा हो नही सकता। जब वहाँ सघर्ष बढने लगा और इसकी जानकारी प्रमुख मुनियो को मिली तो तत्काल कुछ प्रमुख सन्त कान्फ्रेन्स के मीटिंग हाल मे गए और उन्हे वास्तविक स्थिति मे अवगत कराया कि इस प्रस्ताव से ध्वनि वर्धक यन्त्र का उपयोग मान्य नही हुआ है, यह तो केवल शब्द-सकलना है। जब तक प्रस्ताव मे आगत शब्दो की व्याख्या नही हो जाएगी, कोई बोल नही सकता तथा अपवाद, उत्सर्ग आदि शब्दो की व्याख्या होने पर ही यह समझा जा सकेगा कि यन्त्रोपयोग खुला या नही ?

यदि इस प्रस्ताव मात्र मे यन्त्र खुल गया होता, तो आज इस विशाल जन-मेदनी मे सन्त स्वय बोलना प्रारम्भ कर देते। किन्तु इतनी विशाल जनसख्या मे भी कोई नही बोल रहा है और नही बोलेगा। अत आप यह न समझे कि यन्त्र खुला हो गया है। इस प्रकार उस उत्तेजित जन समुदाय को किसी तरह शान्त किया गया।

तब चरितनायक ने कुछ स्वाभिमान पूर्वक कहा "यद्यपि प्रस्ताव मे तो कुछ भी नही था, किन्तु मैं जान रहा था कि शब्द-व्याख्या पर सामान्य जन ध्यान नही देगा और भावावेश मे यन्त्र स्वीकृति माना जाएगा। इसलिए मैंने अपने दोनो मत तटस्थ विरोध मे दिये थे।"

इसी बीच एक विचित्र राजनैतिक घटना चक्र और चल गया। प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् जब उसकी प्रतिलिपि की स्पष्ट जानकारी चरितनायक को मिली तो उसमे प्रस्ताव के सर्वानुमति से पारित होने का उल्लेख था, जो कि एकदम मिथ्या था।

दूसरे दिन जब मीटिंग (बैठक) प्रारम्भ हुई तो मीटिंग के प्रारम्भ मे ही हमारे चरितनायक ने अपने विचार स्पष्ट किये—"सुना है कि ध्वनि वर्धक यन्त्र के विषय मे जो प्रस्ताव पारित किया गया है, उसमे उसके सर्वानुमति से पारित होने का उल्लेख है। यदि यह सत्य है, तो अत्यन्त ही विचारणीय है। सुना जाता है कि राजनैतिक पार्टियो मे भी सर्वानुमति से पारित प्रस्ताव को सर्वानुमत एव बहुमत से पारित प्रस्ताव को बहुमत लिखा जाता है। इतनी नैतिकता का निर्वहन तो राजनीति मे भी किया जाता है। यह तो धर्म सभा है, और जहाँ हम सत्य, अहिंसा के कर्मठ पुजारी बैठे हुए है, वहाँ बहुमत से पारित प्रस्ताव को सर्वानुमत करार देना कहाँ तक योग्य है ? क्या इसमे हमारी नैतिकता भी कायम रहती है ? जहाँ कहा कुछ जाता है और किया कुछ जाता है कम से कम उसे धर्म सभा कभी नही कहा जा सकता। यहाँ आप बडे एव न्यायप्रिय महापुरुष विराजमान है। ऐसी स्थिति मे मेरा बोलना नादानी भी मानी जा सकती है,

जागरूकता के साथ वर्षो से सघ की सेवा मे उपाचार्यश्री के सामीप्य मे कार्यरत थे) को लिपिबद्ध करवा दिया। निर्णय के प्रत्युत्तर मे सम्बन्धित स्थलो से स्वीकृतियाँ भी उपाचार्यश्री के पास पहुँच गई। अब केवल अमली रूप देने की प्रतिज्ञा थी, किन्तु जब अमली रूप देने मे पक्षपात एव राजनैतिक दाव-पेच खेले जाने लगे, तो उपाचार्यश्री ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की दृष्टि से सम्बन्धित व्यक्तियो के अभिप्रायपूर्वक एक निवेदन प्रसारित कर सघ को सूचित किया कि जो इस निर्णय के आधार पर आत्म-शुद्धि पूर्वक चलेगा, उसी के साथ श्रमणोचित सम्बन्ध रहेगा।

इसी वातावरण मे आपश्री अजमेर से प्रस्थान कर विजय नगर आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए गुलाबपुरा पधारे। इधर आगामी वर्षावास की घोषणा का समय निकट आ गया था। उपाचार्यश्री ने कुछ परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले आगामी स० २०१४ के चातुर्मास की घोषणा नही करने का आश्वासन दिया था, अत. ज्यो-ज्यो उक्त तिथि निकट आ रही थी, त्यो-त्यो विभिन्न श्री सघो के शिष्ट-मण्डल गुलाबपुरा आ रहे थे। विनती के लिये आगत अनेक सघो मे कानोड़ एवं अजमेर सघ का प्रतिस्पर्धात्मक आग्रह अनूठा था। दोनो सघो मे अपने यहाँ ही चातुर्मास कराने की होड सी लग गई थी। कोई भी सघ अपने अधिकार को छोडने को तत्पर नही था। कानोड सघ की अपनी दलील थी कि अजमेर सघ धनाधीशो का सघ है, वे चाहे जब चातुर्मास का लाभ ले सकते है, किन्तु कानोड सघ तो एक छोटा-सा सघ है और जो उत्साह की एक लहर कानोड सघ मे पैदा हो गई है, विश्वास नही कि वह बिना समुचित प्रोत्साहन के अधिक कालावधि तक स्थिर रह सके। आज कानोड़ सघ के बच्चे-बच्चे मे एक उमग एव जोश भरा उत्साह है, अत हमे इसी वर्ष चातुर्मास का अवसर मिलना चाहिये।

दूसरी ओर अजमेर सघ की प्रार्थना थी कि यद्यपि अजमेर सघ नाम की दृष्टि से बडा संघ है, किन्तु आज तक वह ऐसा सौभाग्य प्राप्त नही कर सका है और उपाचार्यश्री अभी इतने निकट पधार गए है। अत· यह स्वर्णावसर हम हाथ से खोना नही चाहते है। किसी भी स्थिति मे इस चातुर्मास का लाभ अजमेर सघ को ही मिलना चाहिये। जब आचार्यश्री मेवाड़ क्षेत्र मे पधारे, तब कानोड़ वाले लाभ ले।

दोनो सघो के आग्रह एवं तर्क एक दूसरे से बढकर थे। कोई भी इस आध्यात्मिक लाभ से वचित नही रहना चाहता था और इधर आचार्यश्री का स्वास्थ्य विवादास्पद चर्चाओ मे भाग लेने के अनुकूल नही था। अत दोनो संघो का सतोषप्रद समाधान करना हमारे चरितनायक के लिये आवश्यक हो गया। उपाचार्यश्री के अभिप्रायो को, संघ-व्यवस्था के व्यापक हित को तथा

गण सभासीन हो, वहाँ किंचित् मात्र भी सकोच नही रखकर अपने सैद्धान्तिक विचारों को खुलकर अभिव्यक्ति देना कोई सामान्य बात नही। जिसका सजग एव सतेज व्यक्तित्व होता है, वही निर्भीक एव स्पष्ट वक्ता बन सकता है और वही सत्य द्रष्टा महावीर अनुरागी सिद्धान्तों का सजग प्रहरी बन सकता है। चरितनायक का व्यक्तित्व कुछ ऐसे ही अनूठे ओज से परिपूर्ण है। सिद्धान्त विरुद्ध बात को मूक दर्शक रहकर सहन कर लेना आपकी दृष्टि मे अहिंसा नही, कायरता है अतएव "मेरुव्व वाएण अकम्पमाणो" के सैद्धान्तिक अटलता के प्रतीक आगमिक वाक्य आपके जीवन के अभिन्न अग बन गए हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रस्तावो, सशोधनो एव मर्यादाओ के दौर-दौरे मे भीनासर सम्मेलन समाप्त हुआ तथा सभी मुनि प्रवर अलग-अलग क्षेत्रो मे प्रस्थान कर गए। चूकि आचार्य (तत्कालीन उपाचार्य) श्री गणेशीलालजी म० सा० का स० २०१३ का वर्षावास गोगोलाव मे होना निश्चित हुआ था, अत उपाचार्यश्री ने चरितनायक आदि शिष्य-समुदाय के साथ गोगोलाव के लिये प्रस्थान किया तथा वह वर्षावास गोगोलाव मे हुआ।

उस वर्षावास मे उपाचार्यश्री की आभ्यन्तरिक सेवाओ के साथ चरितनायक पर श्रमण सघ की विशेष जिम्मेदारियाँ भी आ गई थी। उपाचार्यश्री का स्वास्थ्य अब इतना अनुकूल नही रह गया था कि इतने विशाल श्रमण सघ के पत्र-व्यवहार आदि कार्यों को वे कर सके। अत श्रमण सघ सम्बन्धी अधिकाश पत्राचार का कार्य चरितनायक को ही देखना पड़ता था।

इधर प्रधानमत्री व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी म० सा० ने उनके एव आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० के पत्र-व्यवहार से उत्पन्न विवादास्पद परिस्थितियो के कारण श्रमण सघ के प्रधानमत्री पद से त्याग-पत्र दे दिया। अत प्रधानमत्री पद से सम्बन्धित जितना कार्य था, वह भी उपाचार्यश्री के पास ही आने लगा और इस कार्य का निर्वहन भी उपाचार्यश्री के निर्देशानुसार हमारे चरितनायक को ही करना होता था।

कुछ ही दिनो मे एक घटना क्रम और चल पड़ा। पाली मे एक अति मर्मनाक घटना का पर्दाफाश हो गया। इन सभी घटना-चक्रो की जानकारी ज्यो-ज्यो मुनि मण्डलो मे प्रसृत हुई, त्यो-त्यो उपाचार्यश्री के पास पत्रो के आगमन की भरमार होने लगी। इन सभी पत्रो मे प्राय सभी मुनिवरो के इसी आशय के विचार मुख्य होते थे कि—'जिस स्वच्छन्दता—निवारण हेतु सघ ऐक्य योजना बनी थी, वह उद्देश्य पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है। ज्ञान मुनिजी ने आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० के सामीप्य मे रहते हुए भी स्वच्छन्दतापूर्वक सम्भोगपयोग प्रारम्भ कर दिया है एवं श्री वाचस्पतिजी म० सा० के

जागरूकता के साथ वर्षों से संघ की सेवा में उपाचार्यश्री के सामीप्य मे कार्यरत थे) को लिपिबद्ध करवा दिया। निर्णय के प्रत्युत्तर मे सम्बन्धित स्थलो से स्वीकृतियाँ भी उपाचार्यश्री के पास पहुँच गईं। अब केवल अमली रूप देने की प्रतिज्ञा थी, किन्तु जब अमली रूप देने मे पक्षपात एव राजनैतिक दाव-पेच खेले जाने लगे, तो उपाचार्यश्री ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की दृष्टि से सम्बन्धित व्यक्तियो के अभिप्रायपूर्वक एक निवेदन प्रसारित कर संघ को सूचित किया कि जो इस निर्णय के आधार पर आत्म-शुद्धि पूर्वक चलेगा, उसी के साथ श्रमणोचित सम्बन्ध रहेगा।

इसी वातावरण मे आपश्री अजमेर से प्रस्थान कर विजय नगर आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए गुलाबपुरा पधारे। इधर आगामी वर्षावास की घोषणा का समय निकट आ गया था। उपाचार्यश्री ने कुछ परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले आगामी स० २०१४ के चातुर्मास की घोषणा नही करने का आश्वासन दिया था, अत: ज्यो-ज्यो उक्त तिथि निकट आ रही थी, त्यो-त्यो विभिन्न श्री सघो के शिष्ट-मण्डल गुलाबपुरा आ रहे थे। विनती के लिये आगत अनेक सघो में कानोड़ एव अजमेर सघ का प्रतिस्पर्धात्मक आग्रह अनूठा था। दोनो सघों में अपने यहाँ ही चातुर्मास कराने की होड़ सी लग गई थी। कोई भी सघ अपने अधिकार को छोडने को तत्पर नही था। कानोड सघ की अपनी दलील थी कि अजमेर सघ धनाधीशों का संघ है, वे चाहे जब चातुर्मास का लाभ ले सकते है, किन्तु कानोड सघ तो एक छोटा-सा सघ है और जो उत्साह की एक लहर कानोड सघ मे पैदा हो गई है, विश्वास नही कि वह बिना समुचित प्रोत्साहन के अधिक कालावधि तक स्थिर रह सके। आज कानोड संघ के बच्चे-बच्चे मे एक उमंग एव जोश भरा उत्साह है, अत· हमे इसी वर्ष चातुर्मास का अवसर मिलना चाहिये।

दूसरी ओर अजमेर सघ की प्रार्थना थी कि यद्यपि अजमेर सघ नाम की दृष्टि से वडा सघ है, किन्तु आज तक वह ऐसा सौभाग्य प्राप्त नही कर सका है और उपाचार्यश्री अभी इतने निकट पधार गए है। अत: यह स्वर्णावसर हम हाथ से खोना नही चाहते है। किसी भी स्थिति मे इस चातुर्मास का लाभ अजमेर संघ को ही मिलना चाहिये। जब आचार्यश्री मेवाड क्षेत्र मे पधारे, तब कानोड वाले लाभ ले।

दोनो सघो के आग्रह एव तर्क एक दूसरे से वढकर थे। कोई भी इस आध्यात्मिक लाभ मे वचित नही रहना चाहता था और इधर आचार्यश्री का स्वास्थ्य विवादास्पद चर्चाओ मे भाग लेने के अनुकूल नही था। अत दोनों सघो का मनोपप्रद समाधान करना हमारे चरितनायक के लिये आवश्यक हो गया। उपाचार्यश्री के अभिप्रायो को, सघ-व्यवस्था के व्यापक हित को तथा

उल्लघन क्यो किया तथा उनके एव वाचस्पति श्री मदनलालजी म० सा० के पत्र व्यवहार मे क्या घटना बनी जिससे कि उन्हे प्रधानमत्री पद से त्याग-पत्र देना पडा । इनके साथ ही प्रान्तीय मत्री मुनिवरो को भी सूचित किया जा रहा है कि किस-किस क्षेत्र मे किस-किस प्रकार के शिथिलाचार का अनावरण हुआ है, यह जानकारी करके सूचित करावे । अत जब तक वैधानिक कार्यवाही होती है, आप सभी धैर्य के साथ मेरे कार्यो मे सहयोग करेगे, ऐसी आशा है । मैं यह चाहता हूँ कि हमारा सगठन शुद्ध चरित्र निष्ठा के साथ सुदृढ बने और हम सभी शिथिलाचार को दूर करते हुए श्रमण सघ के सभी नियमोपनियमो का अनुशासन बद्ध होकर पालन करे ।"

इस प्रकार श्रमण सघ से पृथक् होने वाले मुनिवरो को कुछ और धैर्य रखने को सचेष्ट किया गया ।

इससे यह दिवालोक की तरह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्यश्री के हृदय मे सुसगठन के प्रति कितनी निष्ठा थी और वे सुसगठन के कितने हिमायती थे ।

श्रमण-सघ मे प्रविष्ट होते समय श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० ने जिस प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर किये, उसमे उन्होने एक शर्त रखी थी— "जब तक सघ-ऐक्य योजना अखण्ड रहे, तभी तक के लिये मैं बाध्य हूँ । अर्थात् सघ ऐक्य की योजना एव गठित श्रमण-सघ यदि विघटित हो जाए, तो मैं स्वतन्त्र हूँ ।"

उपर्युक्त सघीय परिस्थितियो मे गोगोलाव के चातुर्मास काल मे ही श्री मदनलालजी म० सा० के सघ से पृथक् हो जाने से एव ज्ञान मुनिजी द्वारा स्वच्छन्दता के प्रयोग द्वारा सघीय विधान के भग कर देने से उपाचार्यश्री चाहते, तो अपनी शर्त के अनुसार स्वत अपनी पूर्व स्थिति मे पहुँच जाते, किन्तु यह उन्हे अभीष्ट नहीं था । वे यथासाध्य सगठन को सुदृढ बनाने एव उसे स्थायित्व देने की भावना के साथ निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे । साथ-ही-साथ श्रमण सघीय विकृत परिस्थिति के सामने आने पर भी आपश्री ने विचलित होने वाले अन्य सन्तो को भी साहस का सबल दिया तथा आप स्वय भी सगठन की सुरक्षा हेतु पूर्ण प्रयास करने लगे ।

गोगोलाव चातुर्मास की समाप्ति पर सम्बन्धित मुनि प्रवरो के पत्रोत्तर आने लगे तथा समाज की ओर से भी उचित निर्णय की माग होने लगी । तदनुसार सगठन के पश्चात् कुछ प्रमुख मुनिवरो के किसी एक स्थान पर मिलन की अपेक्षा दर्शाई तदनुसार गोगोलाव का चातुर्मास सम्पन्न कर

जागरूकता के साथ वर्षो से सघ की सेवा में उपाचार्यश्री के सामीप्य मे कार्यरत थे) को लिपिबद्ध करवा दिया। निर्णय के प्रत्युत्तर मे सम्बन्धित स्थलो से स्वीकृतियाँ भी उपाचार्यश्री के पास पहुँच गई। अब केवल अमली रूप देने की प्रतिज्ञा थी, किन्तु जब अमली रूप देने मे पक्षपात एव राजनैतिक दाव-पेच खेले जाने लगे, तो उपाचार्यश्री ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की दृष्टि से सम्बन्धित व्यक्तियो के अभिप्रायपूर्वक एक निवेदन प्रसारित कर संघ को सूचित किया कि जो इस निर्णय के आधार पर आत्म-शुद्धि पूर्वक चलेगा, उसी के साथ श्रमणोचित सम्बन्ध रहेगा।

इसी वातावरण मे आपश्री अजमेर से प्रस्थान कर विजय नगर आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए गुलाबपुरा पधारे। इधर आगामी वर्षावास की घोषणा का समय निकट आ गया था। उपाचार्यश्री ने कुछ परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले आगामी स० २०१४ के चातुर्मास की घोषणा नही करने का आश्वासन दिया था, अत: ज्यो-ज्यो उक्त तिथि निकट आ रही थी, त्यो-त्यो विभिन्न श्री सघो के शिष्ट-मण्डल गुलाबपुरा आ रहे थे। विनती के लिये आगत अनेक सघो मे कानोड़ एव अजमेर सघ का प्रतिस्पर्धात्मक आग्रह अनूठा था। दोनो सघो मे अपने यहाँ ही चातुर्मास कराने की होड़ सी लग गई थी। कोई भी सघ अपने अधिकार को छोडने को तत्पर नही था। कानोड सघ की अपनी दलील थी कि अजमेर सघ धनाधीशो का सघ है, वे चाहे जब चातुर्मास का लाभ ले सकते है, किन्तु कानोड संघ तो एक छोटा-सा सघ है और जो उत्साह की एक लहर कानोड सघ मे पैदा हो गई है, विश्वास नही कि वह बिना समुचित प्रोत्साहन के अधिक कालावधि तक स्थिर रह सके। आज कानोड सघ के बच्चे-बच्चे मे एक उमंग एवं जोश भरा उत्साह है, अत· हमे इसी वर्ष चातुर्मास का अवसर मिलना चाहिये।

दूसरी ओर अजमेर सघ की प्रार्थना थी कि यद्यपि अजमेर सघ नाम की दृष्टि से वडा संघ है, किन्तु आज तक वह ऐसा सौभाग्य प्राप्त नही कर सका है और उपाचार्यश्री अभी इतने निकट पधार गए है। अत: यह स्वर्णावसर हम हाथ से खोना नही चाहते है। किसी भी स्थिति मे इस चातुर्मास का लाभ अजमेर सघ को ही मिलना चाहिये। जब आचार्यश्री मेवाड़ क्षेत्र मे पधारे, तव कानोड वाले लाभ ले।

दोनों सघो के आग्रह एवं तर्क एक दूसरे से बढकर थे। कोई भी इस आध्यात्मिक लाभ से वचित नही रहना चाहता था और इधर आचार्यश्री का स्वास्थ्य विवादास्पद चर्चाओ मे भाग लेने के अनुकूल नही था। अत दोनों सघो का संतोषप्रद समाधान करना हमारे चरितनायक के लिये आवश्यक हो गया। उपाचार्यश्री के अभिप्रायो को, संघ-व्यवस्था के व्यापक हित को तथा

का साधु-समाज पर से ही विश्वास उठने का प्रसंग आ रहा है। जनता श्रमण-संघ को इस नहीं है कि अच्छा श्रमण-संघ बनाया।"

उत्तर मे आचार्यश्री ने फरमाया—"यद्यपि मुझे सब अधिकार प्राप्त है, किन्तु मैं समाज का मानस भी देखना चाहता हूँ। समाज मे ऐसी भूमिका तैयार हो कि वह स्पष्ट द्रष्टा एवं सत्य पक्ष का हिमायती बने। इस भूमिका-निर्माण हेतु मैंने प्रमुख अधिकारी मुनिवरो से भी पत्र-व्यवहार किया है। अधिकांश मुनिवरों की ओर से आश्वासन प्राप्त हुए हैं। किन्तु श्रावक-समाज की भूमिका का निरीक्षण कर रहा हूँ। आप मेरी प्रकृति से परिचित है। मुझे अनुशासन की अवहेलना सहन नहीं होती। इसी दृष्टि से मैंने अनुशासन की कार्यवाही अपने ही शिष्यों पर करने मे पहल की है। प्रस्तुत विषय मे मैं यह चाहता हूँ कि मेरी अन्तर्चेतना की साक्षी से जो निर्णय हो, उसे बिना ननुनच के समाज स्वीकार करे। मेरे इस निर्णय को झेलने की क्षमता आप लोगो मे होनी चाहिए। इतनी तैयारी आप लोगो मे हो, तो मुझसे निर्णय करवाइये, अन्यथा इन विषयों के निर्णय हेतु अन्य किन्हीं महामुनि को अधिकार दिया जा सकता है।"

उपाचार्यश्री के सचोट एवं स्पष्ट विचारो को कॉन्फ्रेन्स के मूर्धन्य नेता श्री फिरोदियाजी, श्री विनयचन्द भाई आदि सभी ने एक स्वर से कहा, "आप जो कुछ भी निर्णय देंगे, वह बिना किसी ननुनच एवं तर्क-वितर्क के सभी को स्वीकार होगा। जो आप श्रीजी की अन्तरात्मा की आवाज हो, उसे आप नि संकोच प्रकाशित करें।" इस प्रकार श्रावक-समाज के मूर्धन्य कर्णधारो की सम्मिलित ध्वनि भी स्पष्ट थी और इधर प्रमुख-प्रमुख मुनिवरो के भी इसी आशय के भाव थे कि आप जो कुछ भी निर्णय देंगे, वह हमें पूर्ण मान्य होगा। हम सब आपश्री के साथ है।

यद्यपि उपाचार्यश्री को सर्वाधिकार प्राप्त था। वे स्वेच्छया जैसा भी चाहते निर्णय दे सकते थे, किन्तु जनतन्त्रीय पद्धति के अनुसार आपने जिन-जिन से उचित समझा उन-उन प्रमुख मुनियों से परामर्श लेकर अपने विचारो को उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म० सा० एवं पण्डित मुनि श्री नानालालजी म० सा० (चरितनायक) के समक्ष प्रकट करते हुए कहा कि आप इन भावों के आधार पर एक प्रारूप तैयार करें।

तदनुसार उपाचार्यश्री के अभिप्रायों को हृदयंगम करके उपाध्यायश्री एवं हमारे चरितनायक ने प्रारूप तैयार कर उपाचार्यश्री को बताया और उपाचार्यश्री ने इस निर्णय को सम्बन्धित व्यक्तियों तक प्रेषित करने हेतु म० सा० श्री [illegible] (जो सामाजिकता अति. गम्भीर [illegible] [illegible]

का पक्ष ले रहा हूँ। मेरा तो तात्पर्य यह है कि उपाचार्यश्री को पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक शान्ति की आवश्यकता है और स्वास्थ्य की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए चातुर्मासिक क्षेत्र का भी चयन हो जाय, वह मेरा प्रयास है। फिर भी दोनों सघ अपने-अपने लाभ को छोड़ने को बिल्कुल तैयार नही हुए।

मध्याह्न के समय पुनः दोनो संघ उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए। उपाचार्यश्री के संकेतानुसार दोनो सघो के प्रमुख आपस मे ही विचार विमर्श करने लगे। कानोड़ सघ के सदस्यो ने अपनी नम्रता एव लघुता प्रकट करते हुए अजमेर संघ के वरिष्ठ सदस्यो के समक्ष झोली फैलाते हुए अपनी पगड़ियाँ उनके चरणो मे रख दी—और कहने लगे, "आप दाता बनकर इस अवसर का दान करे। हम आपसे भिक्षा माग रहे है।" इस पर अजमेर सघ कहाँ पीछे रहने वाला था। उन्होने भी अपनी टोपियाँ और पगडियाँ तडातड उतार कर कानोड़ वालो के समक्ष फैला दी और कहने लगे—"इतनी उदारता की क्षमता हममे कहाँ है ? उदारता एव आतिथ्य-सत्कार की भावना तो मेवाड़ मे और उसमें भी गाँवो मे सर्वाधिक होती है, अतः आप ही उदार बनेंगे ऐसी आशा है।" उस समय का वह दृश्य बडा अनूठा था। उपाचार्यश्री एव चरित नायक आदि सन्तगण भी मुस्करा रहे थे।

किन्तु इतने मात्र से समस्या का समाधान नही हुआ, समस्या जटिल-सी बनती जा रही थी।

सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् अपने-अपने क्षेत्र के प्रति आग्रह प्रदर्शन हेतु दोनों संघो के प्रतिनिधि पुनः उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए। तब चरितनायक ने कुछ सशक्त शब्दो मे कहा—"आप सभी का भक्तिपूर्ण आग्रह है, किन्तु यह आग्रह उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं डालेगा। अत. आप पूज्यश्री को अधिक कष्ट न दे। जहाँ उनकी अन्तरात्मा साक्षी देगी, वे वहाँ के लिये घोषणा कर देगे। आपने अपनी सामान्य बुद्धि के अनुसार गरीब और धनवान की भ्रान्तियाँ पाल ली है। उपाचार्यश्री की दृष्टि मे तो धनवान और गरीब सब समान है उनकी दृष्टि स्वास्थ्य–साधना एवं सघहित के अभ्युदय की है। जहाँ भी आपश्री को इस वर्ष अधिक अभ्युदय दृष्टिगत होगा, वहाँ के लिये आपश्री घोषणा कर देंगे, इसका अर्थ यह नहीं कि आप लोग विनती न करे। विनती करना आपका कर्त्तव्य है, किन्तु निर्णय के प्रति हठपूर्ण आग्रह न रखकर, आप निर्णय उपाचार्यश्री पर छोड दे।"

इतना समझाने पर भी वे लोग नही माने और कुछ समय तक चर्चा करते रहे। शयन का समय होने पर वे उठकर अपने-अपने गए और इधर उपाचार्यश्री ध्यानादि से निवृत्त हो शयनोन्मुख

श्रमण सघीय विविध प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए चरितनायक ने दोनो सघों के आगत सदस्यों को भिन्न-भिन्न तथा सामूहिक रूप से स्नेहपूर्वक समझाने का प्रयास किया और सुझाव दिया कि उपाचार्यश्री को मानसिक एव शारीरिक विश्राम आवश्यक है, अत अच्छा तो यह रहेगा कि आप आपस मे बैठकर निर्णय कर ले।

किन्तु दोनो सघ अपने आग्रह से किंचित् मात्र भी हटने को तैयार नही थे। दोनों अपने तर्कों द्वारा अपने पक्ष को ही प्रबल रूप से पुष्ट करने मे लगे हुए थे। इसी दौरान जब उन्हे यह आभास हुआ कि सम्भवतया कल के प्रवचन के समय उपाचार्यश्री अपने आगामी चातुर्मास की घोषणा करेगे तो उस दिन प्रवचन के समय दोनो सघो की ओर से अत्यन्त आग्रह भरी भाषा मे विनतियाँ हुई। दोनो सघ अपने-अपने तर्क के आधार पर अपने को अधिक अधिकार युक्त घोषित कर रहे थे। अजमेर सघ के बुद्धिजीवी कार्यकर्ता कविश्री जीतमलजी ने तो कविता के माध्यम से भावातिरेक मे मेवाड के खान-पान का उल्लेख करते हुए--"मक्का री रोटी और छाछ" आदि का उल्लेख भी कर दिया।

यद्यपि वह उल्लेख विनोद की भाषा मे ही परिगणित हो रहा था, किन्तु कानोड सघ के सदस्यो के हृदयो को वह चुभ गया। परिणामस्वरूप वे गम्भीर चिन्तन एव स्पष्टीकरण के बिना ही उस कथन को अन्यथा लेकर प्रवचन के पश्चात् अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए बिना भोजन किये ही प्रस्थान कर गए। स्थानीय सघ के कुछ प्रमुख सदस्यो को ज्ञात हुआ तो वे तुरन्त उनके पीछे-पीछे स्टेशन पहुँचे और किसी प्रकार उन्हे समझाकर वापस लाए।

भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् हमारे चरितनायक ने दोनो सघो को पुन समझाने का प्रयास किया कि आपकी इस तनातनी का उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नही पडेगा, अत आप गम्भीरता से विचार करे। आखिर चातुर्मास तो एक जगह ही होगा। दोनो मे से एक को तो अपने आग्रह को कुछ शिथिल करना ही पडेगा। जब चरितनायक ने कानोड वालो को कुछ समझाने का प्रयास किया तो वे भावुकतावश चरितनायक पर ही आरोप लगाने लगे "आप भी धनवानो का पक्ष ले रहे है। आपको मेवाड की मक्की की रोटी पसन्द नही है, आदि।" दूसरी ओर अजमेर सघ के सदस्यो को समझाने का प्रयास हुआ तो उनका सीधा आरोप था कि—"आपश्री मेवाड के है, अत उन्ही की पैरवी कर रहे है।'

चरितनायक का दृष्टिकोण तटस्थ भावनात्मक था, उन्हें किसी के पक्ष-विपक्ष से सरोकार ही नहीं था। चरितनायक ने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि आप मेरे विचारों को भावुकता के कारण ठीक तरह से समझ नहीं पा रहे हैं। मैं न मेवाड़ की पैरवी कर रहा हूँ और न खान-पान का विचार अथवा ...

का पक्ष ले रहा हूँ । मेरा तो तात्पर्य यह है कि उपाचार्यश्री को पूर्ण मानसिक एव शारीरिक शान्ति की आवश्यकता है और स्वास्थ्य की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए चातुर्मासिक क्षेत्र का भी चयन हो जाय, वह मेरा प्रयास है। फिर भी दोनो सघ अपने-अपने लाभ को छोड़ने को बिल्कुल तैयार नही हुए ।

मध्याह्न के समय पुन. दोनो सघ उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए । उपाचार्यश्री के सकेतानुसार दोनो सघो के प्रमुख आपस मे ही विचार-विमर्श करने लगे । कानोड सघ के सदस्यो ने अपनी नम्रता एव लघुता प्रकट करते हुए अजमेर सघ के वरिष्ठ सदस्यो के समक्ष झोली फैलाते हुए अपनी पगडियाँ उनके चरणो मे रख दी—और कहने लगे, "आप दाता बनकर इस अवसर का दान करे । हम आपसे भिक्षा माग रहे है ।" इस पर अजमेर सघ कहाँ पीछे रहने वाला था । उन्होने भी अपनी टोपियाँ और पगडियाँ तडातड उतार कर कानोड वालो के समक्ष फैला दी और कहने लगे—"इतनी उदारता की क्षमता हममे कहाँ है ? उदारता एव आतिथ्य-सत्कार की भावना तो मेवाड मे और उसमे भी गाँवो मे सर्वाधिक होती है, अतः आप ही उदार बनेंगे ऐसी आशा है ।" उस समय का वह दृश्य बड़ा अनूठा था । उपाचार्यश्री एवं चरित-नायक आदि सन्तगण भी मुस्करा रहे थे ।

किन्तु इतने मात्र से समस्या का समाधान नही हुआ, समस्या जटिल-सी वनती जा रही थी ।

सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् अपने-अपने क्षेत्र के प्रति आग्रह प्रदर्शन हेतु दोनो सघो के प्रतिनिधि पुनः उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए । तव चरितनायक ने कुछ सशक्त शब्दो मे कहा—"आप सभी का भक्तिपूर्ण आग्रह है, किन्तु यह आग्रह उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नही डालेगा । अत. आप पूज्यश्री को अधिक कष्ट न दे । जहाँ उनकी अन्तरात्मा साक्षी देगी, वे वहाँ के लिये घोषणा कर देगे । आपने अपनी सामान्य बुद्धि के अनुसार गरीव और धनवान की भ्रान्तियाँ पाल ली है । उपाचार्यश्री की दृष्टि तो धनवान और गरीव सव समान है उनकी दृष्टि स्वास्थ्य—साधना एवं हित के अभ्युदय की है । जहाँ भी आपश्री को इस वर्ष अधिक अभ्युदय [illegible]त होगा, वहाँ के लिये आपश्री घोषणा कर देगे, इसका अर्थ यह नही कि [illegible]ाप लोग विनती न करे । विनती करना आपका कर्त्तव्य है, किन्तु निर्णय के [illegible]ति हठपूर्ण आग्रह न रखकर, आप निर्णय उपाचार्यश्री पर छोड दे ।"

[illegible]तना समझाने पर भी वे लोग नही माने और कुछ समय तक [illegible] चर्चा करते रहे । शयन का समय होने पर वे उठकर अपने-अपने [illegible] गए और इधर उपाचार्यश्री ध्यानादि से निवृत्त हो शयनोन्मुख

श्रमण संघीय विविध प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए चरितनायक ने दोनों संघो के आगत सदस्यों को भिन्न-भिन्न तथा सामूहिक रूप से स्नेहपूर्वक समझाने का प्रयास किया और सुझाव दिया कि उपाचार्यश्री को मानसिक एवं शारीरिक विश्राम आवश्यक है, अतः अच्छा तो यह रहेगा कि आप आपस में बैठकर निर्णय कर ले।

किन्तु दोनों संघ अपने आग्रह से किंचित् मात्र भी हटने को तैयार नहीं थे। दोनों अपने तर्कों द्वारा अपने पक्ष को ही प्रबल रूप से पुष्ट करने में लगे हुए थे। इसी दौरान जब उन्हें यह आभास हुआ कि सम्भवतया कल के प्रवचन के समय उपाचार्यश्री अपने आगामी चातुर्मास की घोषणा करेंगे तो उस दिन प्रवचन के समय दोनों संघो की ओर से अत्यन्त आग्रह भरी भाषा में विनतियां हुई। दोनों संघ अपने-अपने तर्क के आधार पर अपने को अधिक अधिकार युक्त घोषित कर रहे थे। अजमेर संघ के बुद्धिजीवी कार्यकर्ता कविश्री जीतमलजी ने तो कविता के माध्यम से भावातिरेक में मेवाड़ के खान-पान का उल्लेख करते हुए--"मक्का की रोटी और छाछ" आदि का उल्लेख भी कर दिया।

यद्यपि वह उल्लेख विनोद की भाषा में ही परिगणित हो रहा था, किन्तु कानोड संघ के सदस्यों के हृदयों को यह चुभ गया। परिणामस्वरूप वे गम्भीर चिन्तन एवं स्पष्टीकरण के बिना ही उस कथन को अन्यथा लेकर प्रवचन के पश्चात् अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए बिना भोजन किये ही प्रस्थान कर गए। स्थानीय संघ के कुछ प्रमुख सदस्यों को ज्ञात हुआ तो वे तुरन्त उनके पीछे-पीछे स्टेशन पहुँचे और किसी प्रकार उन्हें समझाकर वापस लाए।

भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् हमारे चरितनायक ने दोनों संघो को पुनः समझाने का प्रयास किया कि आपकी इस तनातनी का उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, अतः आप गम्भीरता से विचार करें। आखिर चातुर्मास तो एक जगह ही होगा। दोनों में से एक को तो अपने आग्रह को कुछ शिथिल करना ही पड़ेगा। जब चरितनायक ने कानोड वालों को कुछ समझाने का प्रयास किया तो वे भावुकतावश चरितनायक पर ही आरोप लगाने लगे--"आप भी धनवानों का पक्ष ले रहे हैं। आपको मेवाड की मक्की की रोटी पसन्द नहीं है, आदि।" दूसरी ओर अजमेर संघ के सदस्यों को समझाने का प्रयास हुआ तो उनका सीधा आरोप था कि--"आपश्री मेवाड के हैं, अतः उन्हीं की पैरवी कर रहे हैं।"

चरितनायक का दृष्टिकोण तटस्थ भावनात्मक था, वहाँ किसी के पक्ष-विपक्ष के विचार ही नहीं थे। चरितनायक ने इन्हें समझाने का प्रयास किया कि आप मेरे विचारों को भावुकता वश ठीक तरह से समझ नहीं पा रहे हैं। मैं न मेवाड की पैरवी कर रहा हूँ और न खान-पान का विचार अथवा धनवानों

का पक्ष ले रहा हूँ । मेरा तो तात्पर्य यह है कि उपाचार्यश्री को पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक शान्ति की आवश्यकता है और स्वास्थ्य की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए चातुर्मासिक क्षेत्र का भी चयन हो जाय, वह मेरा प्रयास है। फिर भी दोनो सघ अपने-अपने लाभ को छोड़ने को बिल्कुल तैयार नही हुए ।

मध्याह्न के समय पुन: दोनो सघ उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए । उपाचार्यश्री के सकेतानुसार दोनो सघो के प्रमुख आपस मे ही विचार-विमर्श करने लगे । कानोड सघ के सदस्यो ने अपनी नम्रता एव लघुता प्रकट करते हुए अजमेर सघ के वरिष्ठ सदस्यो के समक्ष झोली फैलाते हुए अपनी पगडियाँ उनके चरणो मे रख दी—और कहने लगे, "आप दाता बनकर इस अवसर का दान करे। हम आपसे भिक्षा माग रहे है।" इस पर अजमेर सघ कहाँ पीछे रहने वाला था । उन्होने भी अपनी टोपियाँ और पगडियाँ तड़ातड उतार कर कानोड वालो के समक्ष फैला दी और कहने लगे—"इतनी उदारता की क्षमता हममे कहाँ है ? उदारता एव आतिथ्य-सत्कार की भावना तो मेवाड मे और उसमे भी गाँवो मे सर्वाधिक होती है, अत· आप ही उदार बनेगे ऐसी आशा है।" उस समय का वह दृश्य बडा अनूठा था । उपाचार्यश्री एव चरित-नायक आदि सन्तगण भी मुस्करा रहे थे ।

किन्तु इतने मात्र से समस्या का समाधान नही हुआ, समस्या जटिल-सी वनती जा रही थी ।

सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् अपने-अपने क्षेत्र के प्रति आग्रह प्रदर्शन हेतु दोनो संघो के प्रतिनिधि पुन: उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए । तव चरितनायक ने कुछ सशक्त शब्दो मे कहा—"आप सभी का भक्तिपूर्ण आग्रह है, किन्तु यह आग्रह उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नही डालेगा । अत आप पूज्यश्री को अधिक कष्ट न दे । जहाँ उनकी अन्तरात्मा साक्षी देगी, वे वहाँ के लिये घोषणा कर देगे । आपने अपनी सामान्य बुद्धि के अनुसार गरीव और धनवान की भ्रान्तियाँ पाल ली हैं । उपाचार्यश्री की दृष्टि मे तो धनवान और गरीब सब समान है उनकी दृष्टि स्वास्थ्य—साधना एवं सघहित के अभ्युदय की है । जहाँ भी आपश्री को इस वर्ष अधिक अभ्युदय दृष्टिगत होगा, वहाँ के लिये आपश्री घोषणा कर देगे, इसका अर्थ यह नही कि आप लोग विनती न करे । विनती करना आपका कर्त्तव्य है, किन्तु निर्णय के प्रति हठपूर्ण आग्रह न रखकर, आप निर्णय उपाचार्यश्री पर छोड दे ।"

इतना समझाने पर भी वे लोग नही माने और कुछ समय तक आग्रहात्मक चर्चा करते रहे । शयन का समय होने पर वे उठकर अपने-अपने स्थान पर चले गए और इधर उपाचार्यश्री ध्यानादि से निवृत्त हो शयनोन्मुख

श्रमण संघीय विविध प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए चरितनायक ने दोनों संघों के आगत सदस्यों को भिन्न-भिन्न तथा सामूहिक रूप से स्नेहपूर्वक समझाने का प्रयास किया और सुझाव दिया कि उपाचार्यश्री को मानसिक एवं शारीरिक विश्राम आवश्यक है, अतः अच्छा तो यह रहेगा कि आप आपस में बैठकर निर्णय कर लें।

किन्तु दोनों संघ अपने आग्रह से किंचित् मात्र भी हटने को तैयार नहीं थे। दोनों अपने तर्कों द्वारा अपने पक्ष को ही प्रबल रूप से पुष्ट करने में लगे हुए थे। इसी दौरान जब उन्हें यह आभास हुआ कि सम्भवतया कल के प्रवचन के समय उपाचार्यश्री अपने आगामी चातुर्मास की घोषणा करेंगे तो उस दिन प्रवचन के समय दोनों संघों की ओर से अत्यन्त आग्रह भरी भाषा में विनतियाँ हुईं। दोनों संघ अपने-अपने तर्क के आधार पर अपने को अधिक अधिकार युक्त घोषित कर रहे थे। अजमेर संघ के बुद्धिजीवी कार्यकर्ता कविश्री जीतमलजी ने तो कविता के माध्यम से भावातिरेक में मेवाड़ के खान-पान का उल्लेख करते हुए---"मक्का की रोटी और छाछ" आदि का उल्लेख भी कर दिया।

यद्यपि वह उल्लेख विनोद की भाषा में ही परिगणित हो रहा था, किन्तु कानोड़ संघ के सदस्यों के हृदयों को वह चुभ गया। परिणामस्वरूप वे गम्भीर चिन्तन एवं स्पष्टीकरण के बिना ही उस कथन को अन्यथा लेकर प्रवचन के पश्चात् अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए बिना भोजन किये ही प्रस्थान कर गए। स्थानीय संघ के कुछ प्रमुख सदस्यों को ज्ञात हुआ तो वे तुरन्त उनके पीछे-पीछे स्टेशन पहुँचे और किसी प्रकार उन्हें समझाकर वापस लाए।

भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् हमारे चरितनायक ने दोनों संघों को पुनः समझाने का प्रयास किया कि आपकी इस तनातनी का उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, अतः आप गम्भीरता से विचार करें। आखिर चातुर्मास तो एक जगह ही होगा। दोनों में से एक को तो अपने आग्रह को कुछ शिथिल करना ही पड़ेगा। जब चरितनायक ने कानोड़ वालों को कुछ समझाने का प्रयास किया तो वे भावुकतावश चरितनायक पर ही आरोप लगाने लगे—"आप भी धनवानों का पक्ष ले रहे हैं। आपको मेवाड़ की मक्की की रोटी पसन्द नहीं है, आदि।" दूसरी ओर अजमेर संघ के सदस्यों को समझाने का प्रयास हुआ तो उनका सीधा आरोप था कि—"आपश्री मेवाड़ के हैं, अतः उन्हीं की पैरवी कर रहे हैं।"

चरितनायक का दृष्टिकोण तटस्थ भावनात्मक था, वहाँ किसी के पक्ष-विपक्ष के विचार ही नहीं थे। चरितनायक ने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि आप मेरे विचारों को भावुकता वश ठीक तरह से समझ नहीं पा रहे हैं। मैं न मेवाड़ की पैरवी कर रहा हूँ और न खान-पान का विचार अथवा धनवानों

श्रमण-संस्कृति के पोषक निर्भीक प्रवक्ता

कानोड़ का यह वर्षावास भी श्रमण सघीय समस्याओ का विश्लेषण एवं निराकरण के दौर-दौरे मे ही व्यतीत हुआ। यह कहा जा चुका है कि श्रमण-परम्परा मे व्याप्त शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु उपाचार्यश्री ने व्यवस्थाएँ दी, किन्तु उन्हे अमली रूप देने मे आनाकानी हो रही थी। साथ ही सवत्सरी, सुत्तागमे एव ध्वनिवर्धक यन्त्र सम्बन्धी चर्चाएँ भी अपना उग्र रूप लेती जा रही थी। अत तत्सम्बन्धी समस्याओ का समाधान भी आवश्यक हो गया था।

उपाचार्यश्री का स्वास्थ्य भी अधिक मानसिक श्रम के अनुकूल नही होने से उपर्युक्त सभी विषयो का अधिकाश कार्यभार हमारे चरितनायक पर ही रहता था। इस प्रकार सघीय गतिविधियो का भी विशेष भार आप ही पर आ गया था। श्रमण सघीय व्यवस्थाओ के सदर्भ मे कान्फ्रेन्स के कुछ प्रमुख नेताओ का सहयोग भी अपेक्षित था, लेकिन कान्फ्रेन्स के कुछ कार्यकर्ता अपने इच्छित ढग से समस्याओ को सुलझाने का प्रयास करते हुए उपाचार्यश्री से भी तदनुरूप सहमति चाहते, जो श्रमण संघीय विधि-विधान और शास्त्रीय दृष्टि से समुचित नही होती थी। इसी सन्दर्भ मे कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्ता श्री धीरजभाई तुरखिया कानोड उपस्थित हुए और उपाचार्यश्री से श्रमण-सघीय समस्याओ पर विशद विमर्श करना चाहा, किन्तु उपाचार्यश्री ने अपनी अस्वस्थता के कारण चर्चा का सम्पूर्ण दायित्व चरितनायक को सौप दिया।

कुछ सघीय एव सैद्धान्तिक तत्त्व विषयो पर तुरखियाजी की हमारे चरितनायक से चर्चा हुई। विचार-विमर्श के दौरान जब चरितनायक को लगा कि श्री तुरखिया साहब को सिद्धान्त की परवाह नही है, वे येन-केन प्रकारेण स्व-निर्धारित नीति मे ही सहमति चाहते है, तब चरितनायक ने कुछ स्पष्ट किन्तु सचोट शब्दो मे कहा—"धीरज भाई, आप अपनी मनमानी नीति से ही [illegible] न ले, सैद्धान्तिक नीति एव श्रमण-सघीय विधि-विधानो को भी सम्मुख रखकर गहनता पूर्वक विचार करे। आप इस सघीय व्यवस्था मे नैतिक स्तर से भी नीचे उतरते जा रहे है। मेरे विचार मे एक दूसरे के अभिप्रायो को पूर्ण रूप से समझकर उन्हे उसी रूप मे प्रस्तुत करना चाहिये, किन्तु आप शब्दो एव

हुए तथा चरित्रनायक भी उपाचार्यश्री के पाट के समीप सो गए। कुछ समय पश्चात् कुछ आहट पाकर चरित्रनायक उठ बैठे और देखा कि अजमेर संघ के प्रमुख सदस्य उपाचार्यश्री के पाट के आस-पास बैठे हुए माला फिरा रहे हैं। चरित्रनायक ने उनसे मन्द स्वर में कहा—"उपाचार्यश्री को आराम मिलना आवश्यक है। अभी कुछ आंख लगी हुई है, किन्तु आपकी जरा सी आहट और उसके साथ ही यहां की उपस्थिति उन्हें सोने नहीं देगी। यह आपकी भक्ति का अतिरेक उचित नहीं है। आप अपनी भावनाओं के साथ पूज्यश्री के स्वास्थ्य का भी कुछ विचार करें।"

इस पर वे लोग शान्तिपूर्वक उठकर चले गए और कहीं अन्यत्र जाकर प्रायः रात्रि भर जाप करते रहे।

इस प्रकार स्थिति कुछ संघर्षमय बनती जा रही थी। उपाचार्यश्री भी कुछ असमंजस में थे कि क्या किया जाय? गम्भीर चिन्तन के पश्चात् दूसरे दिन प्रातः प्रवचन के समय उपाचार्यश्री ने कुछ स्पष्ट शब्दों में फरमाया कि "मैं चाह रहा था कि आज चातुर्मास की घोषणा कर दी जाए, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए मुझे इस समय चातुर्मास का निर्णय लेना उपयुक्त नहीं लग रहा है। अतः आप लोगों में से अब विनती हेतु यहां कोई भी रुकने का प्रयास न करें। विनती करने वालों में यदि एक भी भाई मेरी दृष्टि में रह गया तो मैं चातुर्मास के निर्धारण का निर्णय नहीं कर सकूँगा। साथ ही अब विनती हेतु किसी को आवागमन की क्रिया करने की भी आवश्यकता नहीं है। मेरी आत्मा जहां के लिए साक्षी देगी, वहां के लिए मैं स्वीकृति दे सकूँगा और उसकी सूचना पं० श्री लालचन्दजी मुणोत के द्वारा आपको प्राप्त हो सकेगी।"

तदनुसार सभी आगत सज्जन विचित्र आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए अपने-अपने क्षेत्रों को लौट गए और उपाचार्यश्री भी वहां से प्रस्थान कर एक दो मंजिल (पड़ाव) दूर रूपाहेली गांव में पहुँचे। वहां कुछ मन्थन के पश्चात् आगामी चातुर्मास कानोड़ करने हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी। इसकी सूचना दोनों संघों को शासनसेवी पं० श्री लालचन्दजी मुणोत ने दे दी। चातुर्मास स्वीकृति की सूचना मिलने पर कानोड़ संघ का हर्षातिरेक अकल्पनीय था। सम्पूर्ण संघ में अनूठी प्रसन्नता व्याप्त हो गई। हृदय में नहीं समाती हुई उस प्रसन्नता की अभिव्यक्ति पूरे गाँव में गुड़ की प्रभावना वितरित करके की गई।

अनन्तर मार्गवर्ती छोटे-छोटे गामों को धार्मिक उद्बोधना से लाभान्वित करते हुए उपाचार्यश्री शिष्य-समुदाय से परिवृत्त चातुर्मास हेतु कानोड़ पधार गए। चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश मेवाड़ प्रान्त की धर्मभीरु व भावनाशील जनता के अदम्य उत्साहमय वातावरण में हुआ। • •

श्रमण-संस्कृति के पोषक निर्भीक प्रवक्ता

कानोड का यह वर्षावास भी श्रमण सघीय समस्याओ का विश्लेपण एवं निराकरण के दौर-दौरे मे ही व्यतीत हुआ। यह कहा जा चुका है कि श्रमण-परम्परा मे व्याप्त शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु उपाचार्यश्री ने व्यवस्थाएँ दी, किन्तु उन्हे अमली रूप देने मे आनाकानी हो रही थी। साथ ही सवत्सरी, सुत्तागमे एव ध्वनिवर्धक यन्त्र सम्बन्धी चर्चाएँ भी अपना उग्र रूप लेती जा रही थी। अत तत्सम्बन्धी समस्याओ का समाधान भी आवश्यक हो गया था।

उपाचार्यश्री का स्वास्थ्य भी अधिक मानसिक श्रम के अनुकूल नही होने से उपर्युक्त सभी विषयो का अधिकाश कार्यभार हमारे चरितनायक पर ही रहता था। इस प्रकार सघीय गतिविधियो का भी विशेष भार आप ही पर आ गया था। श्रमण सघीय व्यवस्थाओ के सदर्भ मे कान्फ्रेन्स के कुछ प्रमुख नेताओ का सहयोग भी अपेक्षित था, लेकिन कान्फ्रेन्स के कुछ कार्यकर्ता अपने इच्छित ढग से समस्याओ को सुलझाने का प्रयास करते हुए उपाचार्यश्री से भी तदनुरूप सहमति चाहते, जो श्रमण सघीय विधि-विधान और शास्त्रीय दृष्टि से समुचित नही होती थी। इसी सन्दर्भ मे कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्ता श्री धीरजभाई तुरखिया कानोड उपस्थित हुए और उपाचार्यश्री से श्रमण-सघीय समस्याओ पर विशद विमर्श करना चाहा, किन्तु उपाचार्यश्री ने अपनी अस्वस्थता के कारण चर्चा का सम्पूर्ण दायित्व चरितनायक को सौप दिया।

कुछ सघीय एव सैद्धान्तिक तत्त्व विषयो पर तुरखियाजी की हमारे चरितनायक से चर्चा हुई। विचार-विमर्श के दौरान जब चरितनायक को लगा कि श्री तुरखिया साहब को सिद्धान्त की परवाह नही है, वे येन-केन प्रकारेण स्व-निर्धारित नीति से ही सहमति चाहते है, तब चरितनायक ने कुछ स्पष्ट किन्तु सचोट शब्दो मे कहा—"धीरज भाई, आप अपनी मनमानी नीति से ही काम न ले, सैद्धान्तिक नीति एव श्रमण-सघीय विधि-विधानो को भी सम्मुख रखकर तटस्थता पूर्वक विचार करे। आप इस सघीय व्यवस्था मे नैतिक स्तर से भी नीचे उतरते जा रहे है। मेरे विचार से एक दूसरे के अभिप्रायो को पूर्ण रूप से समझकर उन्हे उसी रूप मे प्रस्तुत करना चाहिये, किन्तु आप शब्दो एव

हुए तथा चरित्रनायक भी उपाचार्यश्री के पाट के समीप सो गए। कुछ समय पश्चात् कुछ आहट पाकर चरित्रनायक उठ बैठे और देखा कि अजमेर संघ के प्रमुख सदस्य उपाचार्यश्री के पाट के आस-पास बैठे हुए माला फिरा रहे है। चरित्रनायक ने उनसे मन्द स्वर मे कहा —"उपाचार्यश्री को आराम मिलना आवश्यक है। अभी कुछ आंख लगी हुई है, किन्तु आपकी जरा सी आहट और उसके साथ ही यहाँ की उपस्थिति उन्हे सोने नही देगी। यह आपकी भक्ति का अतिरेक उचित नही है। आप अपनी भावनाओ के साथ पूज्यश्री के स्वास्थ्य का भी कुछ विचार करे।"

इस पर वे लोग शान्तिपूर्वक उठकर चले गए और कही अन्यत्र जाकर प्राय रात्रि भर जाप करते रहे।

इस प्रकार स्थिति कुछ संघर्षमय बनती जा रही थी। उपाचार्यश्री भी कुछ असमंजस मे थे कि क्या किया जाय ? गम्भीर चिन्तन के पश्चात् दूसरे दिन प्रात प्रवचन के समय उपाचार्यश्री ने कुछ स्पष्ट शब्दो मे फरमाया कि "मैं चाह रहा था कि आज चातुर्मास की घोषणा कर दी जाए, किन्तु वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए मुझे इस समय चातुर्मास का निर्णय लेना उपयुक्त नही लग रहा है। अत आप लोगो मे से अब विनती हेतु यहाँ कोई भी रुकने का प्रयास न करें। विनती करने वालो मे यदि एक भी भाई मेरी दृष्टि मे रह गया तो मैं चातुर्मास के निर्धारण का निर्णय नही कर सकूँगा। साथ ही अब विनती हेतु किसी को आवागमन की क्रिया करने की भी आवश्यकता नही है। मेरी आत्मा जहाँ के लिए साक्षी देगी, वहाँ के लिए मैं स्वीकृति दे सकूँगा और उसकी सूचना प० श्री लालचन्दजी मुणोत के द्वारा आपको प्राप्त हो सकेगी।"

तदनुसार सभी आगत सज्जन विचित्र आशा-निराशा के झूले मे झूलते हुए अपने-अपने क्षेत्रो को लौट गए और उपाचार्यश्री भी वहाँ से प्रस्थान कर एक दो मंजिल (पडाव) दूर रूपाहेली गाँव मे पहुँचे। वहा कुछ मन्थन के पश्चात् आगामी चातुर्मास कानोड करने हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी। उसकी सूचना दोनो संघो को शासनसेवी प० श्री लालचन्दजी मुणोत ने दे दी। चातुर्मास स्वीकृति की सूचना मिलने पर कानोड संघ का हर्षातिरेक अकल्पनीय था। सम्पूर्ण संघ मे अनूठी प्रसन्नता व्याप्त हो गई। हृदय मे नही समाती हुई उस प्रसन्नता की अभिव्यक्ति पूरे गाँव मे गुड की प्रभावना वितरित करके की गई।

अनन्तर मार्गावर्ती छोटे-छोटे ग्रामो को धार्मिक उद्बोधना से लाभान्वित करते हुए उपाचार्यश्री शिष्य-समुदाय से परिवृत्त चातुर्मास हेतु कानोड पधार गए। चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश मेवाड प्रान्त की धर्मभीरु व भावनाशील जनता के अदम्य उत्साहमय वातावरण मे हुआ। • •

द्रष्टा महापुरुष है, आपकी बातो का वे जैसा उचित समझेंगे, समाधान कर सकेंगे। मेरा अधिकार जहाँ तक है, वहाँ तक की चर्चा मैंने की है। इसके आगे मुझे पूज्यश्री की आज्ञाओ को शिरोधार्य करना है। साथ ही इस परिचर्चा के दौरान मैंने जो कुछ कटु सत्य कहा, इसके पीछे मेरी भावना सघहित एवं निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा की ही रही है, अतः इसे आप अन्यथा न ले तथा मेरे शब्दो से आपको कुछ बुरा लगा हो तो मैं हार्दिक क्षमत क्षमापना करता हूँ।"

श्रद्धेय चरितनायक की सचोट वाणी इतनी मर्मस्पर्शी एव यथार्थ थी कि धीरज भाई उसके समक्ष कुछ भी बोलने का साहस नही कर सके। वे उपाचार्यश्री से भी बात करने का साहस नही कर पाए। परिणामतः वे उस चर्चा को वही छोडकर चले गये।

इस प्रकार कानोड का यह वर्षावास भी सामाजिक सगठनात्मक सु-व्यवस्थाओ की उपलब्धि मे सानद सम्पन्न हुआ।

कानोड़ वर्षावास सम्पन्न कर उपाचार्यश्री मेवाड़ एव मालवा प्रान्त के ग्रामीण अचलो मे धार्मिक उत्क्रान्ति की दुन्दुभि वजाते हुए स० २०१५ के चातुर्मास हेतु जावरा पधारे।

इधर जो निवेदन प्रसारित किया गया था, उस पर समाज का ध्यान आकर्षित हुआ, तो कान्फ्रेन्स के अग्रगण्यो ने पुन. उचित समाधान हेतु उपाचार्यश्री की सेवा मे जावरा मे ही अपनी आम सभा रखना निश्चित किया और उस बैठक मे प्रमुख एव साधारण सभी सदस्य उपस्थित हुए।

यद्यपि उस समय उपाचार्यश्री का स्वास्थ्य अनुकूल नही था तथा डॉक्टरो ने विशेष बोलने का निषेध भी किया था, फिर भी व्यवस्था को सुदृढ बनाने हेतु आपश्री ने कान्फ्रेन्स के प्रमुख व्यक्तियो के समक्ष अपने सक्षिप्त उद्गार व्यक्त किये, "श्रमण सघ को व्यवस्थित रूप से स्थायित्व देने एव सुदृढ बनाने के लिए ही आप लोगो की प्रार्थना पर ध्यान देकर निर्णय एव व्यवस्था दी गई, किन्तु निर्णय को अमली रूप देने मे जब राजनीति खेली जाने लगी, तो मैंने "निवेदन" द्वारा समाज को सावधान किया था। इस पर आप लोगो को भी गम्भीरता पूर्वक विचार करना है तथा यहाँ से प्रसारित व्यवस्था सम्बन्धी कार्यवाही की जानकारी लेनी है। इस जानकारी मे यदि आपको यह लगे कि मेरे निवेदन एवं निर्णय मे कोई त्रुटि रह गई है तो आप सूचित करे। मैं अभी भी विचार कर सर्व प्रथम अपनी त्रुटि का परिमार्जन करूँगा। किन्तु यदि यहाँ से दी गई व्यवस्था मे कोई त्रुटि ज्ञात न हो और अन्यत्र कही त्रुटि परिलक्षित होती हो, तो वहाँ उनको सूचित करके अनुशासन को सुदृढ बनावे।

हुए तथा चरितनायक भी उपाचार्यश्री के पाट के समीप सो गए। कुछ समय पश्चात् कुछ आहट पाकर चरितनायक उठ बैठे और देखा कि अजमेर संघ के प्रमुख सदस्य उपाचार्यश्री के पाट के आस-पास बैठे हुए माला फिरा रहे है। चरितनायक ने उनसे मन्द स्वर मे कहा—"उपाचार्यश्री को आराम मिलना आवश्यक है। अभी कुछ आंख लगी हुई है, किन्तु आपकी जरा सी आहट और उसके साथ ही यहां की उपस्थिति उन्हे सोने नही देगी। यह आपकी भक्ति का अतिरेक उचित नही है। आप अपनी भावनाओ के साथ पूज्यश्री के स्वास्थ्य का भी कुछ विचार करे।"

इस पर वे लोग शान्तिपूर्वक उठकर चले गए और [illegible] प्राय रात्रि भर जाप करते रहे।

इस प्रकार स्थिति कुछ सघर्षमय बनती जा रही थी। उपाचार्यश्री भी कुछ असमजस मे थे कि क्या किया जाय ? गम्भीर चिन्तन [illegible] दिन प्रात प्रवचन के समय उपाचार्यश्री ने कुछ स्पष्ट शब्दो मे [illegible] "मै चाह रहा था कि आज चातुर्मास की घोषणा कर दी जाय [illegible] परिस्थितियो को देखते हुए मुझे इस समय चातुर्मास का [illegible] नही लग रहा है। अत आप लोगो मे से अब विनती हेतु [illegible] का प्रयास न करे। विनती करने वालो मे यदि [illegible] गया तो मै चातुर्मास के निर्धारण का निर्णय नही [illegible] विनती हेतु किसी को आवागमन की क्रिया करने [illegible] मेरी आत्मा जहां के लिए साक्षी देगी, वहा [illegible] उसकी सूचना प० श्री [illegible]चन्दजी सुराणा के द्वारा [illegible]

तदनुसार सभी आगत सज्जन [illegible] हुए अपने-अपने क्षेत्रो को लौट गए और उपाचार्य [illegible] एक दो मजिल (पड़ाव) दूर [illegible] पश्चात् आगामी चातुर्मास कानोड़ करने हेतु [illegible] सूचना दोनो सघो को [illegible] चातुर्मास स्वीकृति की सूचना मिलने पर [illegible] था। सम्पूर्ण सघ मे अनूठी प्रसन्नता [illegible] हुई उस प्रसन्नता की अभिव्यक्ति [illegible] की गई।

अनन्तर मार्गवर्ती छोटे-[illegible] करते हुए उपाचार्यश्री [illegible] गए। चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश [illegible] के अदम्य उत्साहमय वातावरण [illegible]

एक साथ हो जाए, इसलिए हम पुनः आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुए है। चू कि आपका स्वास्थ्य अभी पूर्णतया अनुकूल नही है। इसलिये आपश्री को कष्ट देना हम उचित नही समझ रहे है। परन्तु सभी समस्याओ के समाधान हेतु कुछ विस्तृत चर्चा करना आवश्यक है, अत आपश्री अपना प्रतिनिधित्व किसी मुनिवर को दे दे, ताकि हम उनसे कुछ विस्तृत विचार-विमर्श कर सके। हाँ, आप अपना प्रतिनिधि ऐसे मुनि प्रवर को बनावे कि उनसे होने वाली सम्पूर्ण चर्चा का दायित्व आपका हो, अर्थात् उनके विचार एव वाक्य आपश्री के ही माने जाएँ।" तब उपाचार्यश्री ने अपने अनन्य अन्तेवासी एव अचल निष्ठा-सम्पन्न प० मुनि श्री नानालालजी म० सा० का नाम निर्दिष्ट कर कहा—"मै आपके साथ इस वार्ता हेतु समस्त अधिकार प० मुनि श्री नानालालजी को सौपता हूँ।"

उपाचार्यश्री की हैसियत से नहीं

उपाचार्यश्री से वार्तालाप करके शिष्ट-मण्डल के सदस्य चरितनायक के समीप आकर कहने लगे कि "हम आपसे विस्तृत विचार-विमर्श करना चाहते है, किन्तु आप मे उपाचार्यश्री का प्रतिनिधित्व मानकर ही हमारी चर्चा होगी, अर्थात् आप यह समझे कि आप उपाचार्यश्री की हैसियत से बात कर रहे है। आपका एक-एक शब्द उपाचार्यश्री का शब्द माना जाएगा। इस विषय की अनुमति एव अधिकार हमने उपाचार्यश्री से प्राप्त कर लिये है।"

शिष्ट-मण्डल के उपर्युक्त कथन के उत्तर मे सुदीर्घ द्रष्टा हमारे चरित-नायक ने गम्भीर किन्तु स्पष्ट शब्दो मे कहा—"उपाचार्यश्री की हैसियत का प्रतिनिधित्व लेकर बात करने को मैं तैयार नही हूँ। मै क्या, सम्पूर्ण वर्तमान साधु-समाज का कोई भी व्यक्ति उपाचार्यश्री की हैसियत का धारक नही बन सकता। कहाँ उन महापुरुष की विचार-साधना और कहाँ हमारे जैसे तुच्छ साधक ? ऐसी स्थिति मे मेरे विचार एव मेरे शब्द मेरे होगे, उपाचार्यश्री के नही। इस स्थिति मे यदि आप बात करना चाहे, तो उपाचार्य श्रीजी के चरणो मे रहकर उनके अभिप्रायो के आधार पर जो भी कार्य करने का प्रसग आवेगा और जितना विषय मेरी जानकारी मे है, उसको व्यक्तिगत हैसियत से आपके समक्ष प्रस्तुत कर सकता हूँ। उसके पश्चात् आपके और मेरे मध्य जो कुछ भी परामर्श होगा तथा हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचेगे, उस निष्कर्ष को उपाचार्यश्री के चरणो मे निवेदन कर देंगे और वे जो निर्णय देंगे, वह हमे मान्य होगा।"

इस पर शिष्ट-मण्डल के अधिकारीगण कहने लगे कि आपको प्रतिनिधि के रूप मे ही बात करनी होगी। तब चरितनायक ने दृढता पूर्वक पुनः स्पष्ट

भावो को तोड-मरोड कर रखने का प्रयास करते है, जो किसी भी दृष्टि से सघ-हित मे नही है। आपकी यह मनोवृत्ति अत्यन्त भयानक श्रमण-सघ के सगठन को सैद्धान्तिक धरातल पर सुव्यवस्थित नही बनने देगी, दुधारी नीति समस्याओ को और भी जटिल बना देती है।

यह ठीक है कि आप समाज के लिये इतना समय एव आत्मभोग देते है, जितना अन्य श्रावक कम दे पाते है, किन्तु आप अपनी ढुलमुल नीति मे कुछ सशोधन कर ले तो श्रमण-सघ के शुद्ध चारित्रिक सगठन मे आपका बहुत कुछ योगदान हो सकता है। यद्यपि मै आपको कुछ सचोट, नग्न सत्य कह रहा हूँ, पर आप इसे अन्यथा नही ले।"

उपर्युक्त भावो मे जब चरितनायक ने धीरज भाई को सबोधित किया, तो तत्क्षण एक बार धीरज भाई हत-प्रभ से रह गए। वे समझ नही पा रहे थे कि इतना धीर, गम्भीर एव प्रशान्त मुनि सैद्धान्तिक एव चारित्रिक शुद्धता के प्रति इतना सचोट भी बोल सकता है, वह भी उनके जैसे समाज के वरिष्ठ जाने माने सगठक के समक्ष। धीरज भाई ने चरितनायक के अन्तरग से नि सृत एक-एक शब्द को गम्भीरता पूर्वक सुना। सुनते समय वे किंचित् भी उत्तेजित नही हुए, किन्तु चरितनायक के बोलने के पश्चात् वे थोडे तिलमिला से गए और जोश से बोल पडे—"मुनिजी, मै इतना अपना आत्म भोग दे रहा हूँ, इसकी ओर तो आपका ध्यान ही नही गया और आप उल्टे मेरी सही नीति पर ही प्रहार करने लगे। मुझे कोई मतलब नही है, इस श्रमण-सघ से। मै इस श्रमण-संघ को लाल झडी दिखा दूँगा।"

चरितनायक ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"तुरखियाजी, ऐसे उत्तेजित होने से किसी समस्या का समाधान नही होता। आप अपनी त्रुटि को मजूर क्यो नही करते। अपने आग्रह पर और वह भी शिथिलाचार पोषक, मिथ्या आग्रह पर अड़े रहना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? यदि अपनी मिथ्या बात को मनवाने के लिये आप श्रमण-सघ को लाल झडी भी दिखा सकते है, तो क्या समझा जाए ? क्या इससे यह अर्थ नही निकलता कि आप अपनी इच्छानुसार सन्तो को चलाकर सुसगठन नही, केवल अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने हेतु, चाहे जैसा सगठन बनाना चाहते है ? लाल झडी दिखाने तक की चुनौती जो व्यक्ति दे सकता है, क्या उसके प्रति यह विश्वास किया जाए कि उसके मन मे निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा एव अभ्युदय के प्रति कुछ निष्ठा भी है ? आपके इन शब्दो से क्या यह स्पष्ट नही झलक रहा है कि आपके विचारो मे सुसगठन के प्रति जितनी उत्कण्ठा नही है, उतनी अपनी बात मनवाने की है ? किन्तु मै सिद्धान्त-विरोधी बात को किसी भी स्थिति मे मानने को तैयार नही हूँ। आप स्वतत्र है, जैसा चाहे, सोच सकते है। फिर भी, उपाचार्यश्री दीर्घ-

अनुसार साधना के नियम बनते है, अपितु साधना के नियम के अनुसार साधक को चलना होता है, अन्यथा साधना का एक स्थिर स्वरूप नही रह सकता। साधना, साध्य की सिद्धि के लिये है न कि व्यक्तिगत विचार-पोषण के लिए। अत मेरी व्यक्तिगत दृष्टि से मैं छूट के पक्ष मे नही हूँ। फिर भी यह अधिकार मेरा नही है। उपाचार्यश्री विराजमान है, उनके विचार महान् एवं ठोस है। वे हमसे कही अधिक तत्त्व की गम्भीरता तक पहुँच सकते है। अत. वे द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव को देखकर यदि कुछ विचार करे, तो मुझे कोई आपत्ति नही है।"

इस प्रकार बहुत गहरी चर्चा–विचर्चा के पश्चात् चरितनायक के साथ शिष्ट-मण्डल के सदस्य उपाचार्यश्री के चरणो मे पहुँचे और वार्तालाप के सक्षिप्त सार को श्री चरणो मे प्रस्तुत करते हुए बोले—"हम प्राय: सभी तत्त्व विषयो पर प० मुनि श्री नानालालजी म० सा० से सहमत हो गए है क्योकि आपश्री (चरितनायक) ने बहुत वैधानिक ढग से हमारे तर्को का समाधान किया है। आपश्री के द्वारा दी गई व्यवस्था से हमे पूर्ण सतोष है, किन्तु एकाध विषय कुछ ऐसे बच गये है, जिन पर हम एकमत नही हुए है। उन्ही को स्पष्ट करने के लिए आपश्री को अस्वस्थता की स्थिति में भी कुछ कष्ट देने आए है।

"शिष्ट-मण्डल यह चाहता है कि वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए अमुक विषय मे कुछ समय के लिए छूट दी जाए, किन्तु मुनि श्री नानालालजी म० सा० इस विषय मे सहमत नही हुए है। अत: आपश्री इस विषय में कुछ उदारता करेंगे, इस आशा से हम श्री चरणो मे उपस्थित हुए है।"

शिष्ट-मण्डल की प्रार्थना को सुनकर उपाचार्यश्री ने अपने सक्षिप्त विचार स्पष्ट किये कि—"यद्यपि पं० मुनि श्री नानालालजी का कथन यथार्थ है, किन्तु आप अभी उस बात की गहराई तक नही पहुँच पा रहे हैं, एकता की दृष्टि से अल्प-सी छूट भी साधु जीवन की मर्यादा को विकृत कर सकती है। चूंकि आप जिस विषय मे कुछ समय के लिए ढील देने की बात कर रहे है, उसमे अधिक विकृति की सभावना भी नही है, और न महाव्रतो मे ही शैथिल्य आता है, अत: यदि इतनी सी सामयिक ढील से सगठन सुदृढ बनता है तथा ध्वनिवर्धक यंत्र सम्बन्धी सम्पूर्ण स्थिति वैधानिक ढग से व्यवस्थित बनती हो, तो मैं कुछ समय के लिए इस विषय को गौण कर सकता हूँ।"

उपाचार्यश्री का विशाल एव व्यापक दृष्टिकोण तथा सुसंगठन के प्रति अगाध भावना को उपर्युक्त शब्दावली के रूप मे सुनकर शिष्ट-मण्डल के हर्ष का पार न रहा। उन्हे आशा नही थी कि उपाचार्यश्री इतनी उदारता के साथ

भावो को तोड़-मरोड़ कर रखने का प्रयास करते है, जो किसी भी दृष्टि से सघ-हित मे नही है। आपकी यह मनोवृत्ति अत्यन्त श्रमसाध्य श्रमण-सघ के सगठन को सैद्धान्तिक धरातल पर सुव्यवस्थित नही बनने देगी, दुधारी नीति समस्याओं को और भी जटिल बना देती है।

यह ठीक है कि आप समाज के लिये इतना समय एव आत्मभोग देते है, जितना अन्य श्रावक कम दे पाते है, किन्तु आप अपनी ढुलमुल नीति मे कुछ सशोधन कर ले तो श्रमण-सघ के सुदृढ चारित्रिक सगठन मे आपका बहुत कुछ योगदान हो सकता है। यद्यपि मै आपको कुछ कठोर, नग्न सत्य कह गया हूँ, पर आप इसे अन्यथा नही ले।"

उपर्युक्त भावो मे जब चरित्रनायक ने धीरज भाई को सबोधित किया, तो तत्क्षण एक बार धीरज भाई हत-प्रभ से रह गए। वे समझ नही पा रहे थे कि इतना धीर, गम्भीर एव प्रशान्त मुनि सैद्धान्तिक एव चारित्रिक शुद्धता के प्रति इतना कठोर भी बोल सकता है, वह भी उनके जैसे समाज के वरिष्ठ जाने माने सगठक के समक्ष। धीरज भाई ने चरित्रनायक के अन्तरग से नि सृत एक-एक शब्द को गम्भीरता पूर्वक सुना। सुनते समय वे किंचित् भी उत्तेजित नही हुए, किन्तु चरित्रनायक के बोलने के पश्चात् वे थोड़े तिलमिला से गए और जोश से बोलने लगे--"मुनिजी, मै इतना अपना आत्म भोग दे रहा हूँ, उसकी ओर तो आपका ध्यान ही नही गया और आप उल्टे मेरी सही नीति पर ही प्रहार करने लगे। मुझे कोई मतलब नही है, इस श्रमण-सघ से। मै इस श्रमण-सघ को लाल झडी दिखा दूँगा।"

चरित्रनायक ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"तुरखियाजी, ऐसे उत्तेजित होने से किसी समस्या का समाधान नही होता। आप अपनी त्रुटि को मजूर क्यो नही करते। अपने आग्रह पर और वह भी शिथिलाचार पोषक, मिथ्या आग्रह पर अटे रहना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? यदि अपनी मिथ्या बात को मनवाने के लिये आप श्रमण-सघ को लाल झडी भी दिखा सकते है, तो क्या समझा जाए ? क्या इससे यह अर्थ नही निकलता कि आप अपनी इच्छानुसार सन्तो को चलाकर सुसगठन नही, केवल अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने हेतु, चाहे जैसा सगठन बनाना चाहते है ? लाल झडी दिखाने तक की चुनौती जो व्यक्ति दे सकता है, क्या उसके प्रति यह विश्वास किया जाए कि उसके मन मे निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा एव अभ्युदय के प्रति कुछ निष्ठा भी है ? आपके इन शब्दो से क्या यह स्पष्ट नही झलक रहा है कि आपके विचारो मे सुसगठन के प्रति जितनी उत्कण्ठा नही है, उतनी अपनी बात मनवाने की है ? किन्तु मैं सिद्धान्त-विरोधी बात को किसी भी स्थिति मे मानने को तैयार नही हूँ। आप स्वतन्त्र है, जैसा चाहे, सोच सकते है। फिर भी, उपाचार्यश्री दीर्घ-

गम्भीरता पूर्वक निर्वहन किया, जिससे उपाचार्यश्री के दायित्व बहुत कम हो गए। फलत. उनको अत्यधिक मानसिक शाति की अनुभूति हुई।

इधर उपाचार्यश्री की शारीरिक स्थिति अत्यधिक अशक्त थी तथा आपकी स्थिति पाद-विहार के अनुकूल नही थी, किन्तु उपचार आदि की दृष्टि से स्थानान्तरण भी आवश्यक था। अतः चातुर्मास समाप्त होने पर आपश्री को सेवानिष्ठ मुनि प्रवर अपनी भुजाओ पर उठाकर रतलाम ले गए। किन्तु रतलाम मे भी रोग के अनुसार उपचार के पर्याप्त साधनों की अनुकूलता उपलब्ध नही हुई। रतलाम सघ का वही रुकने हेतु अत्यन्त एव भावभीना आग्रह होने पर भी वहाँ नही रुक कर सेवाभावी महामुनियो के सहारे मन्दसौर की ओर प्रस्थान कर दिया। साधनो की पूर्ण सयोजना के अभाव मे चातुर्मास हेतु प्रवल विनती होते हुए भी आपश्री ने मन्दसौर से नीमच की ओर प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँचने पर छोटी सादडी आदि कई सघो का अपने-अपने क्षेत्रो मे वर्षावास करवाने का आग्रह था तथा आगामी चातुर्मास के निर्णय का अवसर भी आ गया था। किन्तु प्रबल प्रश्न यह था कि उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य सुरक्षा की दृष्टि से चातुर्मासार्थ कौन-सा क्षेत्र अनुकूल रह सकेगा ?

इसी प्रसग पर उदयपुर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉक्टर श्री शूरवीरसिहजी उदयपुर संघ के साथ नीमच उपस्थित हो गए। इधर मन्दसौर, नीमच आदि इक्कीस स्थान के सघ भी अत्यन्त आग्रह भरी विनतियाँ लेकर उपस्थित हुए तथा अपने-अपने क्षेत्रीय डॉक्टरो को भी साथ ले आए। अन्त मे सभी चिकित्सको का परामर्श यहाँ आकर स्थिर हो गया कि उपचार के उचित साधनो का सयोग जितना उदयपुर मे मिल सकेगा, उतना निकटवर्ती किसी भी क्षेत्र मे नही। ऐसी स्थिति मे सभी चिकित्सको ने अपना परामर्श उपाचार्यश्री के चरणो मे निवेदित कर दिया। उस पर उपाचार्यश्री ने चरितनायक को किसी उचित स्थान हेतु चातुर्मास स्वीकृति का दायित्व सौपते हुए आगत श्री सघो से इतना ही कहा—"मै अभी अधिक बोलने मे अशक्त हूँ, अत. पण्डित मुनि श्री नानालालजी जो कुछ चिन्तन पूर्वक विनतियो का प्रत्युत्तर दे, आप उसे गम्भीरता पूर्वक स्वीकार करे।"

तदनुसार उपाचार्यश्री के भावो को दृष्टिगत रखते हुए चरितनायक ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए विनन्त्यर्थं आगत सघो को सबोधित किया—'बन्धुओ, आप सभी की भावना है कि उपाचार्यश्री की सेवा का अधिक-से-अधिक लाभ हमे प्राप्त हो और यही भावना होनी भी चाहिए। किन्तु यह सुस्पष्ट है कि वर्षावास कहीं एक जगह ही हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे अच्छा तो यह होता कि आप सभी एक स्वर हो जाते कि आप जहाँ भी अपेक्षित समझें चातुर्मास करावें, किन्तु आप सब की भावना—अपने-अपने क्षेत्रीय आग्रह

त्रुटि कही भी हो, उसका परिमार्जन होना नितान्त आवश्यक है। मेरा विशेष बोलना डॉक्टरो द्वारा निषिद्ध है, अत मै अधिक चर्चा-विचर्चा मे नही पड सकूँगा। अन्य कोई भी विषय जो भी आपको समझना हो, आप प० मुनि श्री नानालालजी (चरितनायक) से समझ लेवे।"

तदनुसार कान्फ्रेन्स के नेताओ ने बैठक मे अधिक भाग न लेकर उपाचार्यश्री द्वारा दी गई व्यवस्था को समझने मे अधिक मनोयोग एव समय लगाया और अन्त मे उपाचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन किया कि हमने प० मुनि श्री नानालालजी से समस्त कार्यवाही एव व्यवस्था समझ ली है। हमे यहाँ पर कोई त्रुटि परिलक्षित नही हुई है। आपश्री के यहाँ से सम्पूर्ण व्यवस्था वैधानिक एव व्यवस्थित रूप से दी गई है। वास्तव मे इस विषय मे श्री आत्मारामजी म० सा० को नही बोलना चाहिए था। यही सबसे बडी गडबडी वहाँ से उत्पन्न हुई है, जिससे सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। श्री आत्मारामजी म० सा० को तो केवल सम्मान के लिए ही आचार्य पद दिया गया था। व्यवस्था का सूत्र उनके हाथ मे नही, आपश्री के सशक्त हाथो मे सौंपा गया था। ऐसी स्थिति मे व्यवस्था मे उनका हस्तक्षेप करना उचित नही माना जा सकता है। अत उनके द्वारा किये जाने वाले पत्र-व्यवहार से व्यवस्था बिगाडने एव अनुशासन भग करने वालो को जो प्रोत्साहन मिला, उस विषय मे उनसे विचार-विमर्श करना आवश्यक है अत आपश्री द्वारा किए गए पत्र-व्यवहार मे कुछ पत्रो की प्रतिलिपि हमे उपलब्ध हो, ताकि यथास्थान उन्हे दिखाकर वस्तु-स्थिति स्पष्ट की जा सके। तब उपाचार्यश्री ने फरमाया कि यहाँ वैसे ही कोई गोपनीयता की बात नही है। सारी स्थिति स्पष्ट है। फिर भी आप तो समाज के मुखिया है। आप जिन पत्रो की प्रतिलिपि चाहे, श्री लालचन्द्रजी मुणोत से प्राप्त कर सकते है।

तदनुसार पत्रो की प्रतिलिपियाँ प्राप्त कर उसी आम सभा मे श्री फिरोदियाजी के नेतृत्व मे एक शिष्ट-मण्डल का गठन किया गया, जो यथा-समय यथा-स्थान पहुँच कर उचित कार्यवाही करे।

लगभग एक मास के पश्चात् शिष्ट-मण्डल ने लुधियाना आदि स्थानो पर जाने की योजना बनाई। तदनुसार सम्पूर्ण विषय को आद्योपात समझने एव भविष्य के लिए सुदृढ भूमिका-निर्माण हेतु सर्व प्रथम पुन जावरा उपाचार्यश्री के श्रीचरणो मे उपस्थित हो निवेदन किया कि "जो व्यवस्था आपश्री ने दी है, वह वैधानिक एव सुस्पष्ट है। इसका स्पष्टीकरण हम जहाँ भी जाएँगे, करेंगे और जिन-जिन व्यक्तियो ने इस व्यवस्था मे व्यवधान उत्पन्न किया है, उन्हे सचेत करने का प्रयास करेगे। किन्तु भूतकालीन त्रुटियो का परि-मार्जन, वर्तमान स्थिति का स्पष्टीकरण एव भविष्य की समस्याओ का हल

तो करवा सकते है ।" इस प्रकार डॉक्टर सा० के होश के विषय मे तटस्थ भाव होने पर भी सघ की प्रबल भावना थी कि सथारा करवा देना चाहिए अन्यथा पूज्यश्री खाली हाथ चले जाएँगे । किन्तु चरितनायक के स्वर पूर्ण निषेध पर ही टिके हुए थे । उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था—"नाडी की गति सथारे के योग्य नही है । अत: मैं अभी सम्पूर्ण सथारा नही कराता ।" सभी की प्रबल भावना सथारे के पक्ष मे होते हुए भी चरितनायक की इच्छा के विना कोई सथारा नही करवा सकता था, अत. तीन दिन सागारी सथारे के दौर मे ही बेहोशी मे निकल गये । तीन दिन के पश्चात् उपाचार्यश्री की सचेतना पुन लौट आयी । इस प्रकार चरितनायक की अन्तर-ध्वनि एव सूझ-बूझ के कारण पूर्ण सथारा नही पचखाया गया और उपाचार्यश्री इसके बाद लगभग तीन वर्ष तक अपनी विमल-धवल कान्ति का प्रकाश भू-मण्डल पर प्रसारित करते रहे । सघ के सभी सदस्य जो सथारे का आग्रह कर रहे थे, चरितनायक की अनुभव मूलक दीर्घ दृष्टि के समक्ष नतमस्तक, अवनत हो गये ।

मूर्च्छा की उसी अवधि मे एक चमत्कारिक घटना और घटित हो गई, जिसे चरितनायक की अनन्य आस्थापूर्ण सेवा भावना का आनुषगिक प्रतिफलन कह सकते है ।

हुआ यो कि कुछ वर्षों से चरितनायक के पजो के तले मे आइठाण (चमडी का अत्यन्त सख्त हो जाना) हो गए थे । अनेक उपचारो के उपरान्त भी वे दूर होने का नाम नही ले रहे थे । अनेको बार चाकू आदि के काट देने पर भी पुन· वे अपने मूल रूप मे उपस्थित हो जाते । सभी उपचार निरर्थक सिद्ध हो रहे थे । परिणामत चरितनायक को सेवा-सयोजना मे भी इस अस्वस्थता के कारण कुछ व्यवधान ही उपस्थित होता । किन्तु इसे हम चमत्कार ही कह सकते है कि मूर्च्छा की इस कालावधि मे ही एक दिन चरितनायक शौच निवृत्यर्थ कुछ दूर खेतो मे गये । कुछ समय पूर्व ही वर्षा होने से खेतो की मिट्टी गीली हो गई थी । मिट्टी का कुछ स्पर्श चरितनायक के पजे मे हुआ और बाहर आकर देखा तो वे आइठाण सहसा गायब हो गए और पुन· अकुरित भी नही हुए । स्मरण रहे, इसके पूर्व भी अनेक बार प्राकृतिक चिकित्सा हेतु मिट्टी का प्रयोग किया जा चुका था, अस्तु ।

सचेतना लौटने के पश्चात् चरितनायक ने अन्य सभी कार्यों को गौण कर केवल उपाचार्यश्री की सेवा-सयोजना मे ही अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को केन्द्रित कर दिया । शूगर (शर्करा) नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य तो आप (इन्जेक्शन लगाना एव शूगर का नाप लेना आदि के माध्यम से) प्रारभ से ही करते आए थे, अब अन्य उपचार आहारादि गतिविधियो को भी आपने अपने हाथो मे ले लिया तथा तीन वर्ष तक निरन्तर तन्मयतापूर्वक सेवा के असि पथ पर पदचरण करते रहे ।

कर दिया कि "आप चर्चा करना चाहे तो करे, मै प्रतिनिधि की हैसियत मे बात करने को तैयार नही हू । उपाचार्यश्री महान् है, वे मुझे इतना बडा गौरव प्रदान कर सकते है, किन्तु मै अपने आपको उस योग्य नही समझता । साथ ही मेरे विनय धर्म की भी माग है कि मै अपनी मर्यादा मे रहकर ही चर्चा करू । हो सकता है, मेरे शब्दो मे कुछ असामजस्य भी रहे, तो उसे उपाचार्यश्री ही स्पष्ट कर सकेगे । अत उपाचार्यश्री की महत्ता को आप उन्ही तक सुरक्षित रहने दे और मुझसे व्यक्तिगत हैसियत मे ही चर्चा करे, यही श्रेष्ठ रहेगा ।"

अन्ततोगत्वा व्यक्तिगत रूप मे विचार-विमर्श करने के लिए शिष्ट-मण्डल तैयार हो गया, तब एक अलग स्वतन्त्र कमरे मे शिष्ट-मण्डल के सभी सदस्य, जिनमे बम्बई धारा सभा के अध्यक्ष श्री फिरोदियाजी, एक दो वकील, धीरजभाई तुरखिया, विनयचन्द भाई आदि मुख्य सज्जन प्रश्नकर्ता के रूप मे बैठे और उत्तरदाता के रूप मे केवल "एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति" के रूप मे हमारे चरितनायक समासीन थे ।

सर्व प्रथम शिष्ट-मण्डल ने उपाचार्यश्री की ओर से दी गई व्यवस्था को विधान आदि के माध्यम से वकीली दावपेच के साथ प्रबल तर्क-वितर्क द्वारा समझा, जिससे उपाचार्यश्री द्वारा दी गई व्यवस्था मे जिन-जिन व्यक्तियो ने अनधिकार चेष्टा की, उनका स्पष्ट परिबोध शिष्ट-मण्डल को हो गया । रहा प्रश्न भविष्य की व्यवस्था का, सो उस विषय मे भी प्राय सभी विषयो पर शिष्ट-मण्डल एव चरितनायक एक मत हो गये, एकाध प्रश्न ऐसे थे, जिन पर शिष्ट-मण्डल चाहता था कि अभी कुछ छूट दे दी जाय और बाद मे इन विषयो मे भी सुदृढ व्यवस्था कर ली जाएगी । किन्तु इस पर चरितनायक सहमत नही थे । क्योकि चरितनायक की ध्रुव मान्यता थी कि नौका मे होने वाले लघुतम सूराख की तरह चारित्राराधना-सयमीय मर्यादा मे दी गई अल्पतम छूट भविष्य के लिए घातक बन जाती है । अस्तु, चरितनायक ने इस विषय में स्पष्ट विचार दिये कि मैं छोटी-से-छोटी भी छूट देने के पक्ष मे नही हू । जो बात हमें अभी छोटी लग रही है, उसका भविष्य मे विस्तार हो जाता है और उसके परिणाम बडे भयकर होते है । शिष्ट-मण्डल के सदस्यो ने पुन: निवेदन किया । "महाराजश्री, आपका कथन यथार्थ है, किन्तु सगठन को सुदृढ बनाने हेतु तत्काल आपको कुछ उदारता रखनी होगी, इसके बिना सगठन पुन शिथिल पड जाएगा । आप जानते हैं कि सभी का मानस समान नही होता और न सभी आप जैसे नम्र व दृढ व्रती बन सकते हैं । साधको की भूमिका को देखकर ही साधना के नियम बनाए जाते हैं ।"

श्री चरितनायक ने फरमाया "मैं यह नही मानता कि साधको के

सहज-स्वाभाविक है, किन्तु चरितनायक के प्रवचनो के आकर्षण ने सघ-सदस्यो मे सदा-सदा समुत्साह बनाए रखा ।

उन चार वर्षों मे आपके धाराप्रवाही प्रवचन उदयपुर के बुद्धिजीवियो को दृष्टि मे रखते हुए तत्त्व-विवेचना के सन्दर्भ मे ही अधिक होते थे । एक वर्षावास मे तो आपने चार माह तक केवल चार ध्यान का ही विवेचन प्रस्तुत किया । ध्यान की इतनी गूढ विश्लेषणात्मक व्याख्या सुनकर एक बार तो आचार्य प्रवर श्री गणेशीलालजी म० सा० के श्रीमुख से भी स्वर फूट पडे कि "इतनी तलस्पर्शी सूक्ष्म विवेचना ध्यान के सन्दर्भ मे मैं प्रथम बार सुन रहा हूँ । ऐसा विश्लेषण मैने न कभी सुना और न पढा ।"

ध्यान के दुरुह विषय को सुगम बोधगम्य बनाने के लिए इन्ही चार वर्षो मे आपने जैन महाभारत की काव्य रचना भी की, जिसे आप प्रतिदिन स्वत. रचकर प्रवचन मे विश्लेषित-विवेचित करते थे । वह आज एक विशालकाय काव्य बन गया है ।

चूँ कि तत्काल आपको सेवा-सुश्रूषा के प्रति अधिक सजग रहना होता था, अत: प्रवचन से समय के प्रति आप अधिक प्रतिबन्धित रहते । अनेक बार तो आप रिक्त प्रवचन हाल में प्रवचन प्रारम्भ कर देते, तब सहसा इतस्तत खडे श्रोता त्वरित आकर हॉल मे बैठ जाते ।

• • •

विशाल दृष्टिकोण से सोचेंगे। अपनी सफलता की मन-ही-मन सराहना करते हुए सभी एक स्वर से कहने लगे—"यहाँ हमे पूर्ण सफलता मिल गई है और हमारी सभी समस्याएँ समाहित हो गई है। अब हम लुधियाना आदि सम्बन्धित स्थानो पर पहुँचकर व्यवस्था मे उत्पन्न विप्रतिपत्तियो को भी समाहित कर सकेंगे।" इतना कहते हुए उन्होंने अपने एक सहवर्ती बन्धु से कहा, "शीघ्रता से जो व्यक्ति लुधियाना के टिकिट वापस लौटाने गया है, उसे रोक दो। अब हमें लुधियाना जाना ही है।"

इस प्रकार एक व्यक्ति को टिकिट लाने हेतु प्रेषित कर उपाचार्यश्री से निवेदन करने लगे कि—"वास्तव मे प० मुनि श्री नानालालजी के साथ हुई चर्चा मे जो एक विषय विचारणीय रह गया था, उससे हमारी आशा टूट गई थी कि अब यहाँ हमे सफलता नही मिलेगी, क्योंकि मुनिजी की बात को उपाचार्य श्रीजी भी मान्यता देंगे ही और अपने विचारो से सहमत नही होंगे, साथ ही आपश्री जी का स्वास्थ्य भी अनुकूल नही है, अत. आपके साथ खुलकर वार्ता नही हो सकेगी। ऐसी स्थिति मे सम्पूर्ण विषयो के स्पष्टीकरण बिना लुधियाना जाना उचित नही था। यह सोचकर हमने लुधियाना जाने का विचार स्थगित कर दिया और मुनिश्री से चर्चा करके इधर आते समय ही एक आदमी को भेज दिया कि लुधियाना जाने हेतु जो टिकिट मगवाए है, उन्हे वापस लौटा दो किन्तु आपश्री के निकट आकर ज्ञात हुआ कि हमारा वह चिन्तन क्षुद्र मानस का चिन्तन था। हमे ऐसी आशा बिल्कुल नही थी कि आपश्री इतना उदार दृष्टिकोण अपनाएँगे। आपश्री की इस उदारता एव सुसगठन मे निष्ठा को देखकर हमारा हृदय गद्गद् हो रहा है। अब हम इसी समय लुधियाना जा रहे है, अतएव टिकिट नही लौटाने हेतु अभी एक भाई को भेज दिया है।"

"आपकी इस सहज व महान् कृपा के लिए हम सदा आपके ऋणी रहेंगे" आदि कहते हुए "उपाचार्यश्री की जय", "शिष्ट-मण्डल की सफलता की जय" आदि नारे लगाते हुए शिष्ट-मण्डल ने मागलिक श्रवण कर वहाँ से लुधियाना हेतु प्रस्थान किया। लुधियाना पहुँचने पर उन्हे वहाँ सफलता नही मिली। और वही से शिष्ट-मण्डल बिखर गया तथा घोषणा कर दी कि हम अपने कार्य मे असफल रहे है। उसके बाद श्रमण-सघ की स्थिति मे कई उतार-चढाव आए, जिनकी विवेचना हम यहाँ अनपेक्षित समझ रहे हैं, अस्तु।

उपाचार्यश्री का यह जावरा चातुर्मास अस्वस्थता के दौर-दौरे मे ही सम्पन्न हुआ और शारीरिक एव सामाजिक सम्पूर्ण सेवा-सयोजना का दायित्व हमारे चरितनायक पर ही था। आपने सभी सामाजिक जिम्मेदारियो का अति-

की है। इधर पूज्य भगवन् के स्वास्थ्य की ओर भी हमे ध्यान देना है कि उपचार की अधिक अनुकूलता कहाँ मिलती है। मेरी अपनी तो धारणा एवं डॉक्टरों के परामर्श से भी निकटवर्ती सभी क्षेत्रों में उदयपुर ही उपचार की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक है। अतः सं० २०१६ का आगामी चातुर्मास उदयपुर मे होना अधिक उपयुक्त लग रहा है।"

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि लॉटरी टिकट जिस व्यक्ति के नाम से खुलता है, उसका मन मयूर नाच ही उठता है तथा अन्य व्यक्ति समाचार-पत्रों को देख-देखकर सहसा निःश्वास भर छोड़ देते हैं। यही स्थिति चरितनायक के उपर्युक्त उदयपुर चातुर्मास हेतु घोषणा करने पर हुई। उदयपुर संघ के सदस्यों का हृदय बल्लियों उछाल भरने लगा। उनकी सफलता जन्य प्रसन्नता अतुलनीय थी। उन्होंने जय-जयकारों से दिग्मण्डल को गुंजा दिया। इसके विपरीत जो क्षेत्र श्री चरणों की सेवा से वंचित रह गए, उनमें एक गहरी उदासी छा गई, मानो मुँह से लगते हुए उनके हाथ से किसी ने मिठाई का कौर छीन लिया हो। वे अपनी हृदय-वेदना को छिपा नहीं पा रहे थे। अनेक व्यक्तियों के तो नेत्रों से बरबस ही अश्रुधारा फूट पड़ी। बहुत से भावुक एवं श्रद्धातिरेकी व्यक्ति तो चरितनायक पर ही बरसने लगे—"श्री नानालालजी को तो उदयपुर की रोटियाँ अच्छी लगती हैं। वे छोटे गाँवों मे क्यों रुकेंगे?" अनेक प्रकार के शब्द-प्रयोगों से वे अपनी असफलता का खेद व्यक्त करने लगे।

इस प्रकार संघर्षमय वातावरण मे ही नीमच से उदयपुर के लिए प्रस्थान हुआ। उपाचार्यश्री को कर्मठ सेवाभावी मुनि प्रवर कंधों पर ही लेकर चलते थे। उदयपुर से डॉक्टर सूरवीरसिंहजी प्रायः मार्ग मे उपाचार्यश्री के स्वास्थ्य निरीक्षण हेतु आते रहते थे। इस प्रकार सामान्य उपचार बराबर चलता रहा।

उदयपुर पहुँचने पर डॉक्टर सूरवीरसिंहजी एवं डॉक्टर बी० एन० शर्मा के कुशल नेतृत्व मे उपाचार्यश्री का व्यवस्थित उपचार चलने लगा। उसी अन्तराल मे डॉक्टर बी० एन० शर्मा के सधे हुए हाथों के द्वारा उपाचार्यश्री का किडनी (गुर्दा) का ऑपरेशन हुआ। यद्यपि ऑपरेशन के पूर्व गणमान्य ज्योतिषियों ने उपाचार्य प्रवर की कुण्डली देखकर यह घोषित कर दिया कि "अब उपाचार्यश्री की कुण्डली आगे नही चलती है अर्थात् अब आचार्य प्रवर की आयु अधिक शेष नही है, अत ऑपरेशन का दोष क्यों लगाया जाए।" किन्तु चरितनायक की अन्तरध्वनि का साक्षी भाव यहाँ भी अपना चमत्कार दिखा गया। स्वास्थ्य मे क्रमिक सुधार आने लगा और जब इस बात की जानकारी उन लोगों को हुई, जो चातुर्मास के निर्णय के समय चरितनायक पर कुछ असन्तुष्ट हुए थे, वे आकर चरितनायक से क्षमायाचना करते

जिस अनन्य भक्ति, अटल श्रद्धा, अगाध चारित्रनिष्ठा तथा अप्रतिम सैद्धान्तिक दृढता का कर्मठतापूर्ण परिचय हमारे चरितनायक ने स्वय के साधना-काल मे अपने आराध्य के समक्ष प्रस्तुत किया था, उससे सहसा ही ऐसे विमल व्यक्तित्व के प्रति अनुल्लेख्य विश्वास केन्द्रित हो जाता है। आपकी अनोखी सूझ-बूझपूर्ण दृष्टि-चितना से कई बार स्वय उपाचार्य श्री आश्चर्यचकित रह जाते थे। चरितनायक की उपर्युक्त गम्भीर एव गरिमापूर्ण वृत्तियो ने शनै -शनै. श्रद्धेय उपाचार्य श्री के हृदय मे गहरा स्थान प्राप्त कर लिया तथा अतुलनीय सेवा-समर्पणा मे आपने जो सर्वस्व समर्पण का अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया, उसमे अनन्य अन्तेवासी के रूप मे उपाचार्य श्री की दृष्टि चरितनायक की बहुमुखी प्रतिभा पर केन्द्रित होती चली गई थी। अब तक उपाचार्य श्री के मानस-केन्द्र मे यह सुस्पष्ट विचार अकुरित हो चुके थे कि "प० मुनि श्री नानालाल जी" ही शासन के उज्ज्वल भविष्य के प्रतीक है।

केवल समय की प्रतीक्षा थी कि चतुर्विध सघ के मानस मे अपनी भावी व्यवस्था के विषय मे स्वत स्फुरणा जागृत हो।

समय की परिपक्वता एव चतुर्विध संघ के जागरूक सदस्यो की सामयिक प्रार्थना को दृष्टिगत रखते हुए श्रद्धेय उपाचार्य श्री (तत्कालीन आचार्य) श्री गणेशीलाल जी म० सा० ने गम्भीर चिन्तन के पश्चात् दीर्घ तपोधनी आचार्य श्री हुक्मीचन्द्र जी म० सा० के सघ की भावी व्यवस्था को सुदृढ करने हेतु चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था का सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व दिनाक १८ ४ ६१ तदनुसार स० २०१८ की अक्षय तृतीया को अक्षय यशस्वी, अपने अनन्य अन्ते-वासी शिष्य गूढ चिंतक एवं ब्रह्मचर्य के अखड साधक, प० रत्न श्री नानालालजी म० सा० (चरितनायक) के सशक्त कधो पर नियोजित करते हुए अपने प्रवचन मे निम्न घोषणात्मक आदेश प्रसारित किया।

सुसगठन प्रेमी चतुर्विध संघ को श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० का आदेश

चतुर्विध सघ की भावभीनी भक्ति को देखकर मेरे मन मे भी अनेक कल्पनाएँ उठ रही है। उन सभी कल्पनाओ को इस समय सविस्तार व्यक्त करूँ, इतना समय अभी नही है और मेरा स्वास्थ्य भी उसके अनुकूल नही है।

मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की जा रही है, उसको मै वीर प्रभु के शासनस्थ शुद्ध चारित्र व सिद्धान्त की समझकर, वीतराग भाव को अर्पण करता हूँ।

मै एक निश्चित उद्देश्य व कल्पना को लेकर सादडी साधु सम्मेलन मे सम्मिलित हुआ और उसकी पूर्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहा। फिर भी मेरी आशा पूरी नही हुई, साथ ही ऐसी कई परिस्थितियो का निर्माण भी हुआ कि जिनके कारण तारीख ३० ११ ६० को मुझे नवनिर्मित श्रमण सघ से पृथक् होने

उस रुग्णावस्था मे की जाने वाली आपकी अनन्य सेवाओ की विवेचना हमारी सीमित शब्द-शृंखला की सामर्थ्य से परे है। वैसे तो आपका जीवन ही सेवा और समर्पण का रहा है। सामाजिक दायित्व को अपने हाथो मे लेकर आपने उपाचार्यश्री को जो मानसिक एव शारीरिक सेवाएँ अर्पित की, वे अनुलेख्य है। अपने भोजनादि की चिन्ता नही करना तथा कभी-कभी सामान्य-सी पुकार पर भी अपने हाथ मे आया हुआ कौर भी पात्र मे छोड कर तुरन्त पूज्यश्री के चरणो मे उपस्थित हो जाना तो आपका सामान्य दैनन्दिन क्रम ही बन गया था। अनेक बार शारीरिक अस्वस्थता के बढ जाने पर रात-रात जागते हुए श्री चरणो की सेवा मे खडे-खडे निकाल देना तथा वैसे भी श्वान निद्रा के समान किंचित् सी आहट पाते ही अनेक बार उठ बैठना आपका सहज स्वभाव बन गया था। वहाँ तो पूज्य आराध्य की चरण-सेवा का प्रसग था, किन्तु आपकी (चरितनायक) इस सजगता का दर्शन तो अनेक बार मैं भी कर चुका हू कि एक लघु शिष्य के रुग्ण हो जाने पर भी आप कैसे पूरी निशा जागृत रहकर उनके परिपार्श्व मे समासीन रहते है, यह देखते ही बनता है। चरितनायक की सेवा-साधना गुरु-शिष्य के एक पक्षीय बन्धन को अतिक्रान्त कर सेव्य-सेवक के महान् आदर्श मे अनुप्राणित रही है।

यह कहा जा चुका है कि हमारे चरितनायक का जीवन अपने उप काल से ही सेवा-भावना से परिपूर्ण रहा है। ग्राम के किसी भी जाति विशेष के किसी भी व्यक्ति को उसकी दु खद घडियो मे सहयोग देना आपका सामान्य क्रम रहा है। अत यदि यो कहे कि आपका जीवन जन्म से ही सेवाव्रती रहा है, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

जो व्यक्ति एक सामान्य जन की भी परिपूर्ण निष्काम सेवा कर सकता है, वह अपने आराध्य के प्रति यदि सर्वस्व समर्पण करता है, तो उसमे आश्चर्य ही क्या है ?

आचार्य देव की उत्कृष्ट रुग्णावस्था की घडियो मे तथा अतिम वेला मे तो आपका वह सेवा-समर्पण चरम एव परम कोटि पर पहुँच गया था। उन घडियो मे आपका बस एक ही लक्ष्य बन गया था कि आराध्य देव के चित्त को किसी भी प्रकार शाति पहुँचाई जाए। इसी चिन्तना तथा उसी क्रियान्विति मे ही आप तल्लीन रहने लगे।

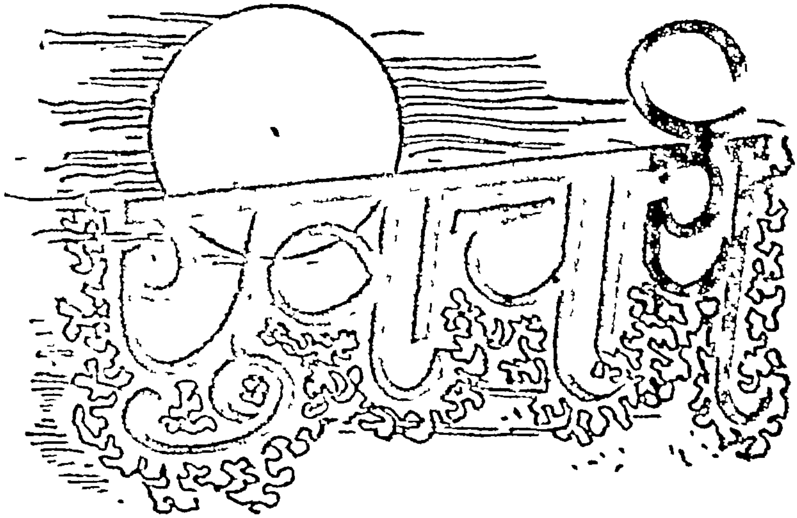
अपने आराध्यश्री की सेवा-समर्पणा के साथ प्रवचनो के माध्यम से स्थानीय सघ मे उत्साह एव सतत जागरुकता बनाए रखना भी तो आपका ही दायित्व था। अपने इस दायित्व निर्वहन मे भी आप पूर्णत सफल रहे। चार वर्ष की लम्बी अवधि मे सघ-सदस्यो की सेवा भावना मे उदासीनता का प्रवेश

उपर्युक्त घोषणा के पूर्व इस नाम निर्देश का परिज्ञान कुछ मुनिगण एव प्रमुख श्रावको के अतिरिक्त अन्य को नही हुआ था। अधिकाश श्रमण एव श्रावक-वर्ग की दृष्टि किन्ही अन्य मुनिप्रवर पर टिकी हुई थी। कारण स्पष्ट है कि अधिकाश सामान्य श्रावक वर्ग श्रद्धेय चरितनायक से परिचित भी नही था, क्योकि चरितनायक अधिक जन-परिचिति से सर्वथा दूर रहते थे। उन्हे अपने श्रद्धेय आराध्य देव की आभ्यन्तर सेवा-सयोजना से ही अवकाश नही मिल पाता था और कुछ अवकाश मिल भी जाता, तो आप उसका उपयोग जन-परिचय मे न करके नित-नूतन साहित्यावलोकन में ही कर लिया करते थे। अत. आपका नाम प्रसारित होते ही अधिकाश व्यक्ति आश्चर्यचकित रह गये। कई नासमझ भावुक एव श्रद्धातिरेकी व्यक्ति तो यहाँ तक कह उठे "नानालालजी म० सा० इस भार को कैसे सम्भालेगे ? न वे किसी से परिचय साधते है, न किसी से बातचीत करते है। या तो आचार्य श्री की सेवा मे लगे रहते है या एकान्त मे मूक बनकर अध्ययन करते रहते है। इतने बडे दायित्व को सम्भालने के लिए केवल सेवा ही नही, जन-परिचय भी तो आवश्यक होता है।"

किन्तु, आज वे सभी व्यक्ति दातो तले अगुली दबाते हुए कहने लगे हैं कि "हम ऐसा नही समझते थे कि गुरुदेव श्री नानालालजी म० सा० इतने गजब के पुण्य-प्रभावत अनुशास्ता सिद्ध हो जाएँगे।"

अस्तु, उपर्युक्त घोषणा की विभिन्न विचारको की दृष्टि से विभिन्न प्रति-क्रियाएँ हुई। जो आचार्य श्री के प्रति अनन्य निष्ठावान् थे, उनका एक स्वर था "आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० दीर्घ द्रष्टा एव पारखी चिन्तक है। आप श्री ने वर्षों की साधना के द्वारा जो परख की होगी, वह निश्चित बहुमूल्य होगी।"

उपर्युक्त प्रतिक्रियाओ के सदृश्य ही श्रद्धेय चरितनायक के मानस पर भी इस अप्रत्याशित घोषणा ने किकर्त्तव्य विमूढता का भाव उत्पन्न कर दिया। आज इस प्रकार की घोषणा होगी, इसकी न तो आपको कल्पना थी और न इस विषय की स्पष्टतया पूर्ण जानकारी ही। यह स्पष्ट है कि घोषणा के पूर्व अनेक व्यक्तियो के समान हमारे चरितनायक को भी इस विषय मे अनभिज्ञ रखा गया था। इस विषयक विचारणा जब कभी आप श्री के समक्ष चलती, तो अन्यान्य मुनिप्रवरो के नाम ही प्रमुख होते थे। यद्यपि कभी-कभी आपके विषय मे भी परिचर्चा चलती थी, किन्तु आप उसे आचार्य देव का विनोद समझ कर गौण कर जाते तथा आप स्वय भी अन्य महामुनियो के नाम सुझाते रहते। अत स्वप्न मे भी आपको यह कल्पना नही थी कि आचार्य देव इतना बडा उत्तरदायित्व सहसा उन (चरितनायक) पर डाल देगे, ऐसी स्थिति मे घोषणा के अन्तिम स्वरो मे जुडा हुआ, अपना नाम आपको अप्रत्याशित ही लगा। सहसा आपके विचारो मे



"उपर्युक्त परिस्थिति का पर्यवलोकन कर आचार्य देव को विवश हो, अपने उपाचार्य पद के साथ श्रमण सघ से सम्बन्ध विच्छेद करना पडा तथा पुन स्वभावतया पूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से महान् तपोधनी आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० के सघ की अनुशासन व्यवस्था को अपने हाथो मे ले, सघीय व्यवस्था को सुदृढ नेतृत्व प्रदान करना पडा ।

"विगत कुछ दिनो से पूज्य भगवन् का स्वास्थ्य अनुकूल नही चल रहा था। ऐसी स्थिति मे कुछ प्रमुख व्यक्तियो मे भावी व्यवस्था के विपय मे परिचर्चा चलने लगी और आज सहसा भगवन् ने मुझ बालक पर बहुत बडा दायित्व डालने की घोषणा कर दी । मै अत करण पूर्वक सबके समक्ष स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस गौरवशाली पद को ग्रहण करने मे मुझे किंचित् मात्र भी प्रसन्नता का अनुभव नही हो रहा है बल्कि आज मुझे ऐसा लग रहा है कि मै बहुत बडे भार से दबा जा रहा हूँ । चूँकि चतुर्विध सघ को शास्त्रकारो ने मातृ स्थान प्रदान किया है और एक माता अपने बच्चे को भार के नीचे दबने नही देना चाहेगी, अत. मेरा आप सभी से निवेदन है कि आप मुझे येन-केन-प्रकारेण इस गुरुतर भार से मुक्ति दिलाने का प्रयास करे । आप आचार्य देव से निवेदन कर मेरा सहयोग करे कि इस छोटे मुनि पर इतना बडा भार नही डाले ।"

इतने बडे जन-समूह मे चरितनायक का तद्विषयक सहयोगी एक भी व्यक्ति नही मिला । मिलता भी कैसे ? आचार्य देव के दीर्घ दृष्टिमूलक निर्णय के आगे, किस व्यक्ति को बोलने का साहस हो सकता था । अस्तु, प्रवचन वही समाप्त हो गया

प्रवचन समाप्ति के उपरान्त एकान्त मे पुन: चरितनायक पूज्य चरणो मे उपस्थित हो नम्र प्रार्थना करने लगे, "भगवन्, यहाँ ऊपर मे विचारणा किन्ही अन्य मुनियो के विषय मे चल रही थी और आप श्री ने प्रवचन मे मेरा नाम उद्घोषित कर दिया । आप कृपा कर इस पर पुनर्विचार करे । आपका जो भी आदेश होगा, वह शिरोधार्य होगा । आप किसी अन्य मुनि को यह पद दीजिये । मै तन-मन से सहयोग करने को तत्पर हूँ ।"

आचार्य देव ने पहले चरितनायक को कुछ अपने दायित्व का ध्यान दिलाया । किन्तु चरितनायक फिर भी जब विनम्र प्रार्थना करने लगे, तो आचार्य देव ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया "तुमको बीच मे तर्क-वितर्क (पचायत) करने की आवश्यकता नही है । तुम्हे अभी पूछ कौन रहा है ? जो मेरी अन्त-रात्मा को ठीक लगेगा, वह करूँगा । तुम्हे बीच में बोलने का अधिकार नही

संघ के भावी आधार

इसी अन्तराल मे शासन की भावी व्यवस्था के विषय मे भी चिन्तन होने लगा, क्योंकि श्रमण सघ की स्थिति अब तक बहुत कुछ विघटित हो चुकी थी। उपाचार्य श्री ने जावरा चातुर्मास के पूर्व ही निवेदन--प्रसारण के माध्यम से श्रमण सघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। अत यह आवश्यक हो गया कि एक ही आचार्य के नेतृत्व मे शिक्षा-दीक्षा एव प्रायश्चितादि के द्वारा अनुशासन-बद्ध होकर चलने वाले चरित्रनिष्ठ श्रमण वर्ग का सगठन सुव्यवस्थित बना रहे अर्थात् सम्पूर्ण सघ का एक ही अनुशास्ता हो। वैसे श्रमण सघ के विच्छेद के पश्चात् वैधानिक रूप से उपाचार्य श्री ही पुन चरित्रनिष्ठ श्रमण-परम्परा के अनुशास्ता रहे थे तथा सम्पूर्ण निर्देशन आप श्री के माध्यम से ही चल रहा था, किन्तु अब आप श्री के स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए भावी व्यवस्था हेतु विचार-विमर्श आवश्यक हो गया कि इतने बडे उत्तरदायित्व को किन सुयोग्य एव सशक्त कधो पर डाला जाय। प्रमुख मुनिवरो एव अटल श्रद्धाप्रवण धर्म-निष्ठ श्रावको से समय-समय पर इस विषय मे परामर्श किया जाता रहा। बहुत दिग्गज व वरिष्ठ महामुनियो के नाम भी सुझाये जाते रहे। उपाचार्य श्री के चरणो मे पुन साग्रह निवेदन किया जाता रहा कि आप श्री सघ की भावी सुरक्षा हेतु किसी सुयोग्य महामुनि को सघ के आधार के लिए नियुक्त कर देवे ताकि चतुर्विध सघ एक ही शास्ता के नेतृत्व मे अपनी ज्ञान, दर्शन-चारित्र सम्बन्धी प्रगति कर सके। श्रावक-समाज की ओर से कुछ प्रमुख मुनिवरो के नाम भी दिये जाने लगे, किन्तु तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ विघटनकारी तत्त्वो की बहुलता, शिथिलाचार पोषक तथाकथित श्रमण एव श्रावक वर्ग के सघर्षमय वातावरण की स्थिति मे कोई भी महामुनि दायित्व-निर्वहन के लिए तत्पर नही हो रहा था, क्योंकि तथाकथित श्रमण एव श्रावक वर्ग ने ऐसा जाल बिछा दिया था जिससे किसी के लिए भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि करवाना कठिन हो गया।

उपर्युक्त परिस्थिति एव वातावरण का पर्यवलोकन उपाचार्य श्री भी द्रष्टा बनकर कर ही रहे थे तथा प्रतीक्षा मे ही थे कि सघ स्वय जागृत होकर अपनी आकाक्षा प्रस्तुत करे।

उपाचार्य श्री की दृष्टि के विमल प्रकाश मे तो शासन का भावी नियन्ता एव प्रकाशक उज्ज्वल सूर्य वर्षों पूर्व ही प्रतिबिम्बित हो चुका था।

चला। यद्यपि नाम निर्देश की घोषणा पूर्व मे हो चुकी थी, जिससे सभी व्यक्तियो मे कुछ सन्तोप की लहर तो व्याप्त थी, किन्तु कुछ दीर्घ द्रष्टा मुनिप्रवर एव साध्वी श्री का तथा साथ ही श्रावक समुदाय का भी आग्रह होने लगा कि क्यो नही आचार्य भगवन् के वरदहस्त के द्वारा ही युवाचार्य पद की चादर जन-जन की आशा के केन्द्र प० रत्न मुनि श्री नानालाल जी म० सा० को प्रदान करवा दी जाय।

मुनि-वृंद मे विशेषकर स्थविर पद विभूषित वयोवृद्ध श्री सूरजमलजी म० सा०, कठोर साधनाप्रिय दीर्घ तपस्वी श्री ईश्वरचन्दजी म० सा०, कर्मठ सेवाव्रती धायमातृ पदालकृत सघीय व्यवस्था के प्रबलाकाक्षी तथा सम्पूर्ण नूतन मुनि मडल की सेवा भावना द्वारा ज्ञानवृद्धि के समर्थ अनन्य सहयोगी मुनि श्री इन्द्रचन्द जी म० सा० तथा प्रमुख साध्वी वृद का तो पूज्य आचार्य देव के पाद पद्मो मे पुनः-पुनः साग्रह निवेदन होता रहा कि आप श्री अपने परम पूत कर कमलो के द्वारा ही भविष्यकालीन व्यवस्था को सुदृढ आधार प्रदान करने हेतु श्रद्धेय पं० रत्न मुनि श्री नानालालजी म० सा० को चादर समर्पित कर दिरावे। हम आपके समान ही उन्हे अपना आराध्य मानकर उनकी प्रत्येक आज्ञा का अक्षरशः पालन करने का प्रयास करेगे। उपर्युक्त कथन के साथ ही कर्मठ सेवा-भावी मुनि श्री इन्द्रचद जी म० सा० ने तत्र विराजित समस्त साधु-साध्वी वृद से एक ही आचार्य श्री की नेश्राय (नेतृत्व) मे शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित, आदि स्वीकृत करने हेतु एक प्रार्थना पत्र साध्वी वर्ग से हस्ताक्षर करवा कर पूज्य चरणो मे समर्पित करवा दिया जो निम्न प्रकार है—

प्रार्थना पत्र

प्रातः स्मरणीय सघ शिरोमणि शासन नायक परम श्रद्धेय पूज्य श्री श्री १००८ श्री श्री श्री आचार्य गुरुदेव, आप श्री के चरण-युगल मे हम सतीवृन्द का भक्ति युक्त वन्दन अर्ज होवे। विशेष अर्ज यह है कि श्रमण सघ को सैद्धान्तिक रक्षण के साथ-साथ शुद्धिकरण पूर्वक टिकाये रखने के लिये आप श्री जी ने भरसक प्रयत्न किये, यहाँ तक कि रात-दिन इसके चिन्तन-मनन मे अपने शरीर की भी परवाह नही की।

भगवन् आप श्री ने श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिए ध्वनि-यन्त्र व शिथिलाचार आदि के विरुद्ध जो व्यवस्था की, उसका सारे श्रमण वर्ग की तरफ से सक्रिय अमली रूप देखने मे नही आ रहा है, बल्कि की गई व्यवस्था के विपरीत चलने वालो के साथ कतिपय सन्त-सतियो का सहयोग भी परिलक्षित हो रहा है। ऐसी स्थिति को देखते हुए हमारे हृदय मे सहसा कल्पना उठी और हम लोगो ने परस्पर परामर्श करके श्री चरणो मे उसे रखने का विचार किया।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दिनांक [illegible]

२९. द: धापु कुवर
३० द. सूरज कुंवर
३१. " छोट कुंवर
३२ " सरदार कुवर
३३. " पेप कुवर
३४. " फूल कुमारी
३५. " चम्पा कुवर
३६ " गटू कुवर
३७. " भूरा कुवर
३८ " पान कुवर
३९. " मनोहर कुंवर
४० " धापु कुवर आर्या
४१. " सायर कुवर आर्या
४२ " चन्दर कुवर आर्या
४३. " सुगन कुवर
४४ " धापु कुवर
४५ " गुलाब कुवर
४६ " शान्ति कुवर

इसी प्रकार श्रावक वर्ग की ओर से भी समाज के गणमान्य व्यक्तियो ने दिनाक २२.८.६२ को एक विनति पत्र पूज्य आचार्य देव के श्रीचरणो मे निवेदित किया :—

प्रात: स्मरणीय पूज्य आचार्य श्री १००८
श्री गणेशलाला जी म सा की
पवित्र सेवा मे

पूज्य आचार्य प्रवर,

पुनीत चरणो मे हमारा शत-शत वन्दन ।

सवत् २०१८ के ग्रीष्मकाल में आपश्री के शरीर मे असाता वेदनीय कर्मोदय हुआ था, तब सारा समाज एकदम चिन्ता-ग्रस्त हो गया था । उस स्थिति से हमारे मन मे नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए । तभी हमने अनुभव किया था कि हमारी समाज रूपी नौका डोलायमान हो रही है । उस समय जब एक ओर हमारे अन्तर मे आपके स्वास्थ्य-लाभ की शुभ भावनाएँ कार्यरत थी, तो दूसरी ओर हमे समाज के भविष्य की भी चिन्ता हो रही थी । हम जीवो को आत्म-कल्याण के लिए आपका मार्ग-दर्शन सुलभ था, इसलिये हमारे हृदय मे भावनाएँ उठ रही थी कि उसी प्रकार का मार्ग-दर्शन हमको आगे भी मिलता रहे, तो कितना अच्छा हो । उन्ही अन्तर भावनाओ से प्रेरित होकर उस समय आप की पवित्र सेवा मे प्रार्थना की थी—भगवन् ! आपके पश्चात् भी हमको वैसा ही मार्ग-दर्शन मिलता रहे । इसलिए चतुर्विध सघ किसका आज्ञानुवर्ती रहे, इसकी घोषणा करने की महती कृपा करे ।

आपने हमारी उस प्रार्थना पर विचार कर, प० मुनि श्री नानालालजी म० सा० को आपके पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिए सौपा था । उस घोषणा से हमारी चिन्ताएँ

उथल-पुथल सी मच गई। मस्तिष्क मे उठने वाली विचार-तरगो को आप रोक नही सके एव आचार्य देव की अनुमति ले तत्काल व्याख्यान स्थल पर ही घोषणा की प्रतिक्रिया स्वरूप अपने विचारो को अभिव्यक्ति देने हेतु खडे हो गए। उन्होने प्रार्थना भरे शब्दो मे आचार्य देव के चरणो मे निवेदन किया--

"भगवन्, अभी जो आप श्री ने आदेश प्रसारित किया, वह आपकी अस्वस्थता को देखते हुए सामयिक व महत्त्वपूर्ण है, किन्तु मेरे नाम की यह अप्रत्याशित घोषणा कुछ अटपटी सी लग रही है। श्री चरणो मे मेरी केवल एक विनम्र प्रार्थना है कि इस घोषणा मे मेरा नाम हटाकर इसमे किसी अन्य महामुनि का नाम सयोजित किया जाय। इतने विशाल सघ के सचालन का दायित्व मुझ अल्पज्ञ बालक के अशक्त कधो पर आरोपित न किया जाय। मुझे इस पद के ग्रहण करने मे किचित् मात्र भी प्रसन्नता नही होगी। रहा प्रश्न समाज-सम्बन्धी कार्यो के निर्वहन का, वह मैं यथाशक्ति जैसा श्री चरणो के सान्निध्य मे करता आ रहा हूँ, भविष्य मे भी जिस किसी भी मुनि पुगव को आप श्री दायित्व सौपेगे, उनके नेतृत्व मे रहकर करता रहूँगा। आप श्री चाहे किसी लघु दीक्षा-पर्याय वाले मुनि को भी इसके दायित्व के लिए नियोजित करेंगे, तो भी यथाशक्ति, यथासाध्य उन्हे सहयोग देने की पूर्णरूपेण भावना रखता हूँ। यदि अन्य कोई मुनि पुगव इसके लिए तत्पर न हो एव आप श्री उचित समझे तो महान् तपोधनी, धीर-वीर गम्भीर सेवाभावी गुरु श्री करणी-दानजी म० सा० के सशक्त एव सुसयमी कन्धो पर यह दायित्व डाल दे। मै उनके प्रति आप श्री के समान ही समर्पित रहने की भावना रखता हूँ। अथवा आप किसी भी अन्य प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति का चयन करके मुझ अकिंचन को इस बन्धन से मुक्त करने की कृपा करे, ऐसी मेरी कर-बद्ध सानुरोध प्रार्थना है।

"साथ ही मैं चतुर्विध श्री सघ से भी विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि वृहत् श्रमण सम्मेलन मे जिस उद्देश्य को स्वीकृत किया गया तथा जो शासन-सूत्र-सचालन के परिपूर्ण अधिकारी के रूप मे आचार्य श्री (उपाचार्य श्री) को समस्त प्रतिनिधियो ने एक स्वर से अपना अधिशास्ता स्वीकार किया, किन्तु सघ मे विघटनकारी तत्त्वो ने शिथिलाचार को सम्पोषित किया एव सघ व्यवस्था मे अव्यवस्था उत्पन्न की और आचार्य देव ने पुन जनतत्रीय पद्धति के अनुसार सुसगठन को बनाए रखने के लिए निवेदन, आदि के द्वारा अनुशासनात्मक कार्य-वाही की, वह सुसगठन के लिए नितान्त आवश्यक थी तथा हम सभी का कर्त्तव्य था कि हम उस व्यवस्था को सुदृढ सबल प्रदान कर आगे बढाते। किन्तु दु ख है कि सगठन के तथाकथित हिमायती कुछ विघटनकारी तत्त्वो ने सघ ऐक्य योजना को सफल नही होने दिया और समाज पुन विघटन के कगार पर खडा हो गया।

व्यवस्थित दिशा प्रदान करे, तब आपश्री ने गम्भीर चिन्तन किया कि सुसंगठन-प्रेमी चतुर्विध सघ की माग सामयिक एव महत्त्वपूर्ण है। सघ का सम्पूर्ण दायित्व किसी सुयोग्य अभियन्ता के हाथो नही सौपा जाए, तो सघ अनुशासनबद्ध नही रह सकता। अत. सघ को व्यवस्थित नेतृत्व प्रदान करने हेतु विधिवत–पद-समर्पण आवश्यक है। किन्तु साम्प्रदायिक अभिधा किस रूप मे हो, यह चिन्तन भी अपेक्षित है। यद्यपि इस सघ को 'वैधानिक श्रमण सघ' सज्ञा भी दी जा सकती है, क्योकि श्रमण सघ का सम्पूर्ण अधिकार आपश्री (उपाचार्य श्री) को था, और आपश्री ने ही सम्बन्ध विच्छेद किया। साथ ही श्रमण सघ के तत्त्वावधान मे गठित समाचारी का यथावत पालन भी आपश्री की निश्रिति मे रहने वाला श्रमण-श्रमणी वर्ग कर रहा है, किन्तु यह चिन्तन इसलिए गौण हो गया कि इस अभिधा से सघर्ष मे अभिवृद्धि ही होगी। दोनो वर्ग अपने-अपने को वैधानिक निरूपित करने का प्रयास करेगे। अस्तु यह चिन्तन स्थिर हुआ कि साम्प्रदायिक अभिधा का उल्लेख उस रूप मे हो, जिससे किसी लोकोत्तर महापुरुप की गरिमा का स्मरण अभिधा के साथ सयुक्त हो जाए।" तदनुसार गूढ चिन्तन के निष्कर्ष मे आचार्य देव ने सघ मे त्याग, वैराग्य एव तपोनुष्ठान की प्रेरणा का अविरल स्रोत निरन्तर प्रवहमान रखने हेतु महान् तपोधनी, त्याग, वैराग्य के अनूठे एव अप्रतिम आदर्श, चारित्रनिष्ठ आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म की ऐतिहासिक परम्परा के साथ पुनः सघ को नियोजित करते हुए तथा चरितनायक को पुन. निर्देश करते हुए "मेरी कल्पना के अनुसार श्रमण सघीय व्यवस्था होती हो, तो उसमे सम्मिलित होने हेतु तत्पर रहना तथा वैसी स्थिति के निर्माण हेतु सदा सचेष्ट रहना।" अपने प्रवचन मे समुपस्थित विशाल जन समुदाय के समक्ष निम्न सार्वजनिक घोषणा एव आदेश प्रसारित किया—

परम श्रद्धेय पूज्य श्री १००८ श्री गणेशीलालजी म सा. की घोषणा

लगभग डेढ वर्ष पूर्व जव अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और मेरा स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन-हितैषी, सुसगठन-प्रेमी चतुर्विध सघ मे चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के अधीन नही हो जाये, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो ?

समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध सघ के मन मे ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था। उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य वातो पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध सघ की चिन्ता निर्मूल नहीं है। अत मैंने दिनाक १८ अप्रैल, १९६१ को सुसगठन-सवधी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चूंकि आचार्य श्री ने अपने [illegible] में [illegible] मुनिगण के पुनः निर्माण के लिये [illegible] थे, [illegible] चाहते थे कि ऐसी वैधानिक [illegible] आरोपित हों तथा उनका समुचित [illegible] हो [illegible] संघ-संगठन को पुनः सुदृढ़ बनाया जा सकता है। आप स्वयं इसके लिये [illegible] करते रहे किन्तु सुदीर्घ अवधि के पश्चात् भी [illegible] अपनाया जाता हुआ परिलक्षित नहीं हुआ। इधर आचार्य श्री का स्वास्थ्य [illegible] होने लगा. ऐसी स्थिति में आचार्य श्री के [illegible] में चिन्ता व्याप्त होनी स्वाभाविक थी। [illegible] स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ता और दूसरे [illegible] से निराश होकर अपने भावी जीवन की समुचित व्यवस्था [illegible] चिन्ता [illegible]। जब आचार्य श्री का स्वास्थ्य कुछ अधिक गिरने लगा, तो [illegible] श्रमण-श्रमणी वर्ग मे भी अपने भावी [illegible] के विषय में विचार-विमर्श

लाकर एकीकरण, पारस्परिक प्रेममय ऐक्यवृद्धि एव सयम मार्ग मे उत्पन्न विकृतियो को निर्मूल करने की दृष्टि से एक आचार्य के नेतृत्व मे एक और अविभाज्य श्रमण सघ की स्थापना की थी। वहाँ एकत्र सब प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर सर्व सम्मत्ति से उपाचार्य पद पर मुझे आसीन कर श्रमण सघ-सचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौपा। तब मेरी इच्छा नही होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरो को मान देकर श्रमण सस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उस गुरुतर उत्तरदायित्व को सघ-सेवार्थ स्वीकार किया और जो भी समस्याएँ मेरे सामने आई अथवा मुझे सौपी गई उन पर न्याय-नीतिपूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी से निर्णय दिये। यद्यपि विधि-विधान के अनुसार ऐसी समस्याओ का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था, परन्तु मेरी दृष्टि सघ की मुख्य रही, एव जहाँ भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई मैने अधिकारी मुनिवरो, आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सब होते हुए भी ऐसे निर्णयो की न केवल मौन अवज्ञा ही की गयी, बल्कि विपरीत अध्यादेशो, आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गयी और करायी गई। आश्चर्य तो इस बात का रहा कि मेरे द्वारा दिये गये श्रमण सघीय ऐसे निर्णयो पर जब भी किसी ने मुझ से चर्चा की, तो जहाँ तक मुझे स्मरण है, किसी ने भी उन निर्णय मे मुख्य रूप से अमुक त्रुटियाँ या कमी रही, ऐसा नही कहा फिर भी उनकी पालना नही हुई। इस प्रकार न्याय, नीति और अनुशासन की अवहेलना होते हुए भी मैंने धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की, परन्तु जब मुझे लगा कि अब मेरे जैसे व्यक्ति का श्रमण सघ मे रहना व्यर्थ है तब मुझे विवश होकर उस नव निर्मित श्रमण-सघ से सकारण पृथक् होना पडा, परन्तु मार्ग खुला रखा।

बाद मे श्रमण सघीय अधिकारी मुनिवरो एव श्रावक सघो द्वारा मेरे त्यागपत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार करने के पत्र, प्रार्थना पत्र आदि आये। उनमे मैने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी, किन्तु जिन कारणो को लेकर मै श्रमण-सघ से पृथक् हुआ, उनके निराकरण का कोई सन्तोषजनक समाधान, आश्वासन नही दिखा। इसलिए मैने सधन्यवाद उनकी प्रेम-भावना की सराहना करते हुए, जब तक मेरा सन्तोषजनक समाधान नही हो जाय, तब तक क्या कहूँ ? ऐसा उत्तर दिया।

यद्यपि इन सब बातो को काफी समय हो गया फिर भी मुझे आशा थी कि सादड़ी-सम्मेलन मे स्वीकार किए हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कही से सक्रिय कदम उठेगा, परन्तु अभी पिछले दिनो जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आयी और मुनि रूपचन्द्रजी के विषय को, शास्त्रीय मर्यादाओ को भी अलग रखकर जिस ढग से निपटा हुआ मान लिया गया, तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावनानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व

'हे प्रभो ! आप सहस्र रश्मियो वाले सूर्य की भाति चिरकाल तक ससार के प्राणियो के अज्ञान रूपी अन्धकार का हरण करे। जगतोद्धारक प्रभु के शासन पथ-प्रदर्शक वनकर हमारी जीवन-नौका को ठीक अपवर्ग की ओर ले जाने वाले दीनवन्धु, हम यही मगल कामना करती है कि आप दीर्घायु वने।'

भगवन् ! हमारी यह भावना है कि आपके मस्तिष्क को शान्ति देने के लिए अथवा वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखते हुए, जिस प्रकार स्वर्गीय आचार्य श्री जी म० सा० ने अपनी उपस्थिति (मौजूदगी) मे ही अपना सारा कार्यभार आपश्री के ऊपर डाल दिया, उसी प्रकार भावी मे भी श्रमण-सस्कृति को टिकाये रखने के लिए व चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था हेतु आप श्री का उत्तराधिकारी वनाना परम आवश्यक है।

इस विपय मे हमे धीर, वीर, गम्भीर तथा योग्य सभी गुण सम्पन्न आप श्री के सुशिष्य पडित रत्न मुनि श्री नानालालजी म सा दृष्टिगत होते है। आप श्री की सभी के हृदयो पर अमिट छाप पडती है। इसलिए आप श्री से हमारी प्रार्थना है कि वे (प० मुनि श्री नानालालजी) आप की छत्र-छाया मे कार्यभार सम्भाले, जिससे आपके मस्तिष्क को आध्यात्मिक शान्ति के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य का लाभ भी प्राप्त हो।

भगवन् ! यद्यपि हम आप श्री जैसे महामनीपी को राय देने योग्य नही है, फिर भी जिस प्रकार पिता वच्चे को वोलावे या नही भी वोलावे किन्तु वच्चा अपने हृदय के भाव नि सकोच होकर दर्शा ही देता है, यही घटना वर्तमान मे हम साध्वी समाज पर घटित हो रही है। कृपया त्रुटियो के लिए क्षमा वक्षावे।

१ द चम्पा कुवर	२ द सूरज कुवर
३ ,, मोहन कुवर	४ ,, मान कुवर
५ ,, रसाल कुवर	६ ,, सुगन कुवर
७ ,, गुलाव कुवर	८ ,, प्यार कुवर
९ ,, केशर कुवर	१० ,, राजकुवर
११ ,, नानु आर्या	१२ ,, लाड कुवर
१३ ,, कचन कुवर	१४ ,, आनन्द कुवर
१५ ,, चाद कुवर	१६ ,, सूरज कुवर
१७ ,, इन्द्रा कुवर	१८ ,, विदाम कुवर
१९ ,, वल्लभ कुवर	२० ,, सरदार कुवर
२१ ,, भूर कुवर	२२ ,, तेज कुवर
२३ ,, सोभाग कुवर	२४ ,, वल्लभ कुवर
२५ ,, गुलाव कुवर	२६ ,, कस्तूर कुवर
२७ ,, पान कुवर	२८ ,, हगाम कुवर

प० मुनि श्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के पश्चात् भी जहाँ तक श्रमण वर्ग के साथ साभोगिक सम्बन्ध, आदि व्यवस्था का प्रश्न है उसके लिए मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ, तदनुसार जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा, वैसा सम्बन्ध, आदि रखा जा सकेगा।

मेरे मे श्रद्धा रखने वाले सन्त-सती-वर्ग एव श्रावक-श्राविकाएँ प० मुनि श्री नानालालजी की आज्ञाओ को शिरोधार्य करते हुए इनको पूर्ण सहयोग देवे और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करते रहे।

मै यहाँ पुनः निर्देश करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना, आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसगठन की) स्थिति का निर्माण हो, उसमे ये अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे और सुसगठन वनाने मे सदा प्रयत्नीशील रहे।

सघ सचालन के वृहत् कार्य मे सन्त, सतियाँ एव श्रावक, श्राविकाओ ने मुझे जो सहयोग दिया, उसके लिए मै उनका पूर्ण आभार मानता हूँ।

श्रमण सघ के कार्यकाल मे तथा उसके पश्चात् मेरे द्वारा किसी का भी दिल दुखा हो, तो मैं एक बार पुन अन्त करण से क्षमा-याचना करता हूँ।

इति शुभम्।

उदयपुर

दिनाक आसोज कृष्णा ९, सवत् २०१९

ता० २२ सितम्बर, १९६२

परम श्रद्धेय आचार्य देव की उपर्युक्त घोषणा हो जाने के पश्चात् चरित-नायक ने पुनः एक बार अपनी आन्तरिक भावना पूज्य चरणो मे तथा चतुर्विध सघ के समक्ष रखना उपयुक्त समझकर निम्न शब्दावली मे अपने भावो की अभिव्यक्ति दी।

युवाचार्य पदवी प्रदान की घोषणा पर पं० मुनि श्री नानालालजी महाराज साहब के उद्गार

आज जो कुछ हुआ, उससे मेरा चित्त प्रसन्न नही है, अपितु कुंठित ही है। मुझे इस समय कुछ बोलने का उत्साह नही है। अभी जो कुछ हुआ उसकी मै तो आवश्यकता अनुभव नही करता। फिर भी महापुरुषो के हृदय मे महान् आशय रहा हुआ होता है। इस आशय को हम समझने का प्रयत्न करे। यह हमारे लिए वरदान स्वरूप हो सकता है, इस भावना से मै दो शब्द बोल रहा हूँ।

दूर हो गई थी। इधर आपका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा तो हमारे आनन्द का ठिकाना नही रहा।

आपकी उक्त घोषणा से भविष्य के लिए जहाँ हम आश्वस्त हुए, वहाँ हमारा ध्यान प० मुनि श्री नानालालजी महाराज मे और अधिक केन्द्रित होता गया और हमारी भावनाएँ उनकी गतिविधि की परख मे भी चलने लगी।

परमश्रद्धेय! इस गतिविधि से हमने अनुभव किया कि आप न केवल शुभ सयमाराधक, उच्च निष्ठावान्, ज्ञान-गम्भीर महापुरुष है, वल्कि आप मे परखने की भी एक अद्‌भुत क्षमता है। आप द्वारा आपके उत्तराधिकारी के रूप मे प० श्री नानालालजी म० सा० का योग्य चयन आपकी परख का स्पष्ट उदाहरण है।

प० मुनि श्री नानालालजी म० सा० की सयमाराधन के प्रति उत्कृष्ट अभिरुचि और बडो के प्रति आदर भाव के विनीत गुण एव शास्त्रीय ज्ञान-गुण से हमको सन्तोष है। हम उनके प्रति अपनी भक्तिपूर्ण श्रद्धा व्यक्त करते है।

अभी असाता वेदनीय कर्मोदय ने आपके स्वास्थ्य को पुन झकझोर दिया है। इससे हमारे मन पर पुन भार है। यद्यपि प० मुनि श्री नानालालजी म सा को आपके योग्य उत्तराधिकारी के रूप मे पाकर हम गर्व अनुभव करते हैं, तथापि समाज की दिन-प्रतिदिन विगडती हुई स्थिति एव सयम मार्ग मे आई हुई विकृतियो को देखकर हमारी आप श्री से आन्तरिक प्रार्थना है कि समाज-सगठन को सुदृढ वनाने के लिए प० मुनि श्री नानालालजी म सा को, युवाचार्य घोषित कर आपके वरद हस्त द्वारा ही चादर प्रदान की जावे। आप श्री के लक्षानुरूप सगठन का यह वीज आप श्री के आशीर्वाद से पुष्पित व पल्लवित होकर समाज मे आत्मसाधना की अभिरुचि को और बढाता हुआ कल्याणदायक सिद्ध होगा। हमे विश्वास है कि आप श्री हमारी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेगे।

अन्त मे, आप श्री के अनुयायी श्रावक-श्राविका आपको विश्वास दिलाते है कि हम प० मुनि श्री नानालालजी म की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना कर्त्तव्य पालन करेगे।

हम है आपके श्रावक वृन्द

दिनाक : २२ ६ ६२

उदयपुर।

शात क्राति के अग्रदूत श्रद्धेय आचार्य देव के चरणो मे जव पुन -पुन चतुर्विध सघ के प्रार्थना पत्र पहुँचने लगे कि हमे अधकार मे नही रखकर

इसलिए एक दृष्टि से मैं चिन्ता जैसी कोई बात अनुभव नही करता हूँ, क्योकि मैं तो बालक विद्यार्थी हूँ। माता की गोद मे बालक जैसे सभी चिन्ताओ से मुक्त रहता है, उसी प्रकार मैं माता की गोद के समान चतुर्विध सघ और आचार्यश्री के सान्निध्य मे बैठा हूँ। चतुर्विध सघ मुझे ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उन्नति के लिए सहायक हो और आचार्यश्री का वरद हस्त मेरे सिर पर हमेशा बना रहे, जिससे मेरा व चतुर्विध सघ का जीवन मगलमय वातावरण मे चलता रहे, यही शुभ कामना है। समय अधिक हो गया है और आचार्यश्री को अस्वस्थता के कारण कष्ट हो रहा है, अत मैं अधिक बोलना नही चाहता।

जब सार्वजनिक रूप से युवाचार्य पद की उद्घोषणा का प्रसारण हो गया तो स्थान-स्थान से महामुनियो एव श्रावक सघों के सम्मत्ति स्वरूप शुभ सदेश आने लगे, जिनकी प्रतीक्षा हेतु घोषणा एव चादर महोत्सव के मध्य आठ दिवस का अन्तराल रखा गया था अर्थात् घोषणा के आठ दिन पश्चात् विधिवत चादर प्रदान कराने का निश्चय किया गया था, ताकि इसी बीच चारित्रनिष्ठ मुनिप्रवरो एव जागरूक श्रावक सघो की तद्विषयक प्रतिक्रिया से अवगत हो सके। तदनुसार आगत सदेशो से यह स्पष्ट हो जाता है कि चरितनायक के प्रति बड़े-बड़े दिग्गज मुनि-पु गवो के हृदय मे भी अदृश्य श्रद्धा के बीज अकुरित हो चुके थे तथा उन सभी चारित्रनिष्ठ श्रमण वर्ग की दृष्टि भविष्य के उज्ज्वल के रूप मे आप पर केन्द्रित हो चुकी थी।

आगत शुभकामना सन्देशो मे से कुछ अविकल रूप से यहाँ प्रस्तुत है –

युवाचार्य श्री को चादर प्रदान करने के शुभ अवसर पर आये हुए शुभ संदेश

बहुश्रुत पं० रत्न श्री समर्थमलजी म सा का सदेश। वर्धमान स्थानकवासी जैन बीकानेर श्रावक संघ लिखता है :–

प० रत्न श्री बहुश्रुतजी श्री समर्थमल जी म० सा० ने अपनी दिव्य बुद्धि से विचार करके फरमाया है कि मुनि श्री नानालालजी को सघ का भार सौंपकर युवाचार्य पद दिया, यह बहुत ही अच्छा कार्य है। मुझे आशा और विश्वास है कि मुनि श्री नानालालजी म० सा० इस पद के योग्य है और इसे भली-भाति निभावेगे। ऐसा मुझे पूरा विश्वास है। मैंने पहले भी यह सम्मति दी थी कि मुनि श्री नानालालजी म० सा० इस पद के योग्य है।

प० रत्न श्री समर्थमलजी म० सा० ने इस युवाचार्य पद प्रदान के शुभ अवसर पर अपनी जो सम्मति दी और विश्वास प्रकट किया उसी प्रकार प० रत्न श्री पन्नालालजी म० सा० व प० रत्न श्री बक्तावरमलजी म०सा० व दिगर मुनि मण्डल ने भी अपना विचार और विश्वास प्रकट किया है।

मन्त्री

श्री वर्ध० स्था० जैन बीकानेर श्रावक सघ, बीकानेर

निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि मै सुसगठन का किसी से कम हिमायती नही हूँ। मै अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा सन्तोपजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मै पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व मे श्रमण-सगठन साकार रूप होकर सुदृढ वने अथवा मेरे सन्तोपजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनि-मण्डल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृद शास्त्र सम्मत एक समाचारी मे आवद्ध होकर अपने मे से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान् एव चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य माने और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य-परम्परा आदि सव उन्ही आचार्य के आधीन रहे। यदि ऐसी स्थिति वनती हो तो मै सदैव तैयार हूँ, और अन्य सन्त-सतियो से भी मै यही अपेक्षा करता हूँ कि जव भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे। इन भावो को व्यक्त करते हुए चर्तुविध सघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके आदेश दिया था कि—

यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन मे न वन सके, तो मेरे पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिए पण्डित मुनि श्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासम्भव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसगठन वनाने मे सदैव प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध स घ उनकी आज्ञाओ को शिरोधार्य करता हुआ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

उक्त भावना एव निर्देशन मे सन्निहित भावो से सुज्ञ वर्ग को ज्ञात होना चाहिए कि चतुर्विध स घ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहाँ मैने एक व्यवस्था दी, वहाँ शास्त्रसम्मत एक समाचारी मे आवद्ध होकर सर्वाधिकार सम्पन्न एक के नेतृत्व मे श्रमण-स गठन वनता हो, तो उसमे विलीन होने के लिए भी मार्ग खुला रखा हैं। आज भी मेरे वही विचार है।

अभी गत ज्येष्ठ मास मे उपाध्याय प० रत्न श्री हस्तीमलजी म० उदयपुर पधारे तव श्रमण स घ सम्वन्धी उनसे वार्तालाप हुआ था। इसके पश्चात् पर्युषण पर्व से पूर्व, अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स का एक शिष्टमण्डल भी आया था। उससे भी श्रमण सघ सम्वन्धी चर्चा वार्ता हुई थी। सभी ने सुसगठन की मेरी उक्त भावना एवं विचारो को भगवान् महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षार्थ सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करने-कराने का कही से कोई चिह्न दृष्टिगोचर नही हो रहा है।

सवत् २००९ मे सादडी सम्मेलन मे स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी विभिन्न सम्प्रदायो के मुनिवरो ने मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी मे एकता

को सवेरे होने वाली है, सम्प्रदाय के चमकते सितारे बने। मैं इस स्वर्ण अवसर पर शामिल नही हो सकूँगा, इसका मुझे बहुत खेद है। इस महोत्सव की हृदय से कामयाबी चाहता हूँ।

श्रीमान् जवाहरलालजी सा० मुणोत मंत्री श्री अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेन्स लिखते हैं :–

आज मैने आपको तार भी भेजा है जो आशा है मिल गया होगा। प० मुनि श्री नानालालजी महाराज को युवाचार्य पद प्रदान करने के बारे मे, मैं तार मे आपको लिख चुका हूँ। मैं उन सब श्रावक-श्राविकाओ की श्रद्धा भरी भावना के सामने नत-शिर हूँ जो श्री उपाचार्य श्री को सम्यक् चारित्र का मूर्तिमान् प्रतीक पाते है। और उसी परम्परा और श्रद्धा को सुनियोजित करने के लिए युवाचार्य श्री की ओर से इसी आशा व विश्वास से देखते है। फिर भी आपसे विवेकशील और अनुभवी श्रावको की जिम्मेदारी और भी भारी है। हमारे सामने सारे स्थानकवासी समाज को छिन्न-भिन्न होने के डर से सघर्ष करने का सवाल है और कई प्रयत्नो के बाद श्रमण एकता और उससे मिलीजुली श्रावक एकता के पास हम आये। स्वप्न को यथार्थ मे परिवर्तित करने का सवाल है। भगवन् करे यह युवाचार्य पद समारोह भी एकता की शृखला मे एक कडी सिद्ध हो। मै मानता हूँ कि श्री उपाचार्यजी जिन कारणो से श्रमण सघ से अलग होने पर मजबूर हुए थे और जिन परिस्थितियो मे श्रमण सघ मे पुन प्रवेश हेतु तत्पर थे, वे ही स्थितियाँ श्री युवाचार्यजी को भी लागू होगी और इस सम्बन्ध मे सुस्पष्ट घोषणा हमारे समाज को सम्प्रदायवाद के पुराने अविवेकशील पथ की ओर न ले जाने मे सहायक होगी।

अमृतसर (पंजाब) से श्री हरजसरायजी जैन लिखते हैं :–

इसी अवस्था से प्रेरित होकर यह मेरा अनुमान है और यूँ भी उचित व्यवस्था समय पर कर लेने के अनुसार कल ३० ९ ६२ प्रात युवाचार्य पदवी की चादर का उत्सव आपके वहाँ हो रहा है, धन्यवाद। सारी खलबली मे से कोई मार्ग निकलना चाहिए, यही अभीष्ट है। सर्व-सघ को बधाई।

श्री संघ कानोड़ की ओर से श्री किशनलालजी धींग लिखते हैं :–

श्रमण-सगठन एव चरित्र-निर्माण के लिए जिस तरह आचार्यश्री ने त्याग एव कठोर आदर्श उपस्थित किया, उसी प्रकार प० श्री नानालालजी म० सा० भी एक आचार्य के नेतृत्व मे दृढ श्रमण-सगठन बनाने हेतु आचार्यश्री की भावना को मूर्त्त रूप देने हेतु सदैव उद्यत रहेगे एवं सफलता प्राप्त करेगे, ऐसी हार्दिक अभिलाषा है। इस पुनीत अवसर पर यह सघ अपनी सहमति एव हार्दिक शुभ

मे पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरो द्वारा कम-से-कम निकट भविष्य मे सम्भावना नही है।

इन दिनो मेरा स्वास्थ्य पुन: गडबडा गया है और शरीर मे अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराश्य से सुसगठन-प्रेमी महानुभाव भी विचलित है और चाहते हैं कि सघ-सचालन का कुछ ठोस निर्णय ले लिया जाय। मै भी अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिए पडित मुनि श्री नानालालजी को शुभेच्छु चतुर्विध श्री सघ की सम्मति से परम प्रतापी तपोधनी यशस्वी महान् सन्त पूज्य श्री १००८ हुक्मीचन्दजी म० सा० की पाट-परम्परा पर युवाचार्य घोषित करता हूँ। मेरे जीवन-काल मे ये इस पद से विभूषित रहेगे और मेरे वाद मे आचार्य पद के अष्टम पाट की शोभा बढावेगे। यही मेरी भावना है।

यदाकदा मेरे कान पर एक बात आती रहती है कि उपाचार्य पद से त्याग पत्र देकर श्रमण-सघ से पृथक् हो जाने के पश्चात् मेरे अगरूप श्रमण वर्ग सहित मेरी स्थिति क्या रहती है। अब अवसर आ गया है कि इस विन्दु पर भी प्रकाश डाल दूँ, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाय

सादडी मे निर्मित श्रमण-सघ मे प्रवेश इस शर्त के साथ था कि यह सघ ऐक्य योजना अखण्ड रहे, तब तक के लिए मै बाध्य हूँ।

श्रमण सघ-सचालन की अवधि मे, शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा मे तथा ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग नही करने के सम्बन्ध मे मैने विधिवत व्यव-स्थाएँ दी थी। परन्तु उन व्यवस्थाओ के विपरीत आचार्यश्री द्वारा अध्यादेश, आदि निकाले गये जिससे तत्काल तो दिल्ली मे विराजित पजाबी मुनिवरो मे और पश्चात् अन्यत्र भी साभोगिक सम्बन्ध विच्छेद हो गये। इस प्रकार विभेद पडकर योजना अखण्डित नही रही। मेरी उपर्युक्त शर्त के अनुसार मै उस नव-निर्मित श्रमण-सघ से पृथक् होने मे उसी समय से स्वतन्त्र था, परन्तु इधर समाज मे मेरी उक्त व्यवस्थाओ को पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे, इसलिए जावरा से निवेदन प्रकाशित कर मेरी साभोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए, मैने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नही देकर प्रतीक्षा करता रहा। इसके पश्चात् लम्बे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए साभोगिक सम्बन्ध मे सुधार नही हुआ और दूसरी-दूसरी बातो द्वारा व्यवस्था और बिगडने लगी, तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण-सघ से पृथक् होना पडा।

इस प्रकार श्रमण-सघ से पृथक् हो जाने के पश्चात् मै अपने अगरूप श्रमण वर्ग सहित अपने आप ही यथापूर्व स्थिति मे आ गया। इसमे और विशेष कुछ कहने का नही रहता।

यह तो स्पष्ट है कि उनका मार्ग सरल नही है, उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ खडी होगी जितनी वर्तमान पूज्य श्री और भूतपूर्व पूज्य श्री के सामने खडी नही हुइँ। उनकी प्रगति अवरुद्ध करने वाले, उनके प्रभाव को नष्ट करने और उनमे दोषो का आरोपण कर बदनाम करने वाले सजातीय महानुभाव भी मिलेगे—पराये और अपने भी। उपासको को बहका कर अपमान करवाने और मुकाबले मे अन्य चातुर्मासादि करा कर हृदय की आग को प्रकट करने वाले भी मैदान मे आ सकते है। इन सब बाधाओ के सामने युवाचार्य श्री को धीर, गम्भीर और शान्त रहकर दृढतापूर्वक आगे कदम बढाना होगा।

आपके साथी, प्रेमी एव उपासक-वर्ग का सहयोग एव भक्ति आपको प्राप्त होगी। वीर शासन प्रेमी जनता, आपकी निर्ग्रन्थ धर्म के प्रति कर्त्तव्यपरायणता देखकर आपके चरणो मे भक्ति अर्पण करेगी।

मुझे मालूम है कि युवाचार्य श्री इस पद के लिए प्रारम्भ से ही इन्कार करते रहे—सर्वथा इन्कार करते रहे, किन्तु अन्त मे गुरु आज्ञा पालने के प्रश्न ने उन्हे विवश किया और उन्हे स्वीकार करना पडा।

हमारी कामना है कि युवाचार्य श्री समर्थ, निवड और वीर शासन की सेवा करते हुए आदर्श सयती, आदर्श आचार्य और आदर्श प्रवचन-प्रभावक बने और निर्ग्रन्थ सस्कृति के रसिको के मन-मयूर को हर्षित करते हुए अपनी प्रभा से जग को प्रभावित करते रहे।

'सम्यग्दर्शन' से साभार उद्धृत

संघ-नियन्ता के पद पर

युवाचार्य पद की घोषणा के ठीक आठवे दिन अर्थात् २०१९, आसोज शुक्ला २, रविवार दिनाक ३० ९ १९६२ को परम प्रतापी महातपोधनी, त्याग वैराग्य की साक्षात् प्रतिमा, श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की गौरवशाली परम्परा के व निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के अडिग रक्षक शान्त क्रान्ति के अग्रदूत आचार्य देव श्री गणेशीलालजी म० सा० के अनुशासनात्मक कर कमलो द्वारा क्रान्त द्रष्टा, श्रमण सस्कृति के सजग प्रहरी हमारे श्रद्धेय चरितनायक को युवाचार्य पद की चादर विधिवत प्रदान की गई।

• • •

गत वर्ष अक्षय तृतीया के दिन मेरा नाम निर्देश किया था। उस समय मैंने चतुर्विध सघ के समक्ष प्रार्थना की थी कि मेरा नाम इस चित्र से हटा लिया जाकर किसी अन्य महामुनि को यह गुरुतर उत्तरदायित्व सौपा जाय एव चतुर्विध सघ मेरी ओर से पूज्य श्री के चरणो मे भी प्रार्थना कर मुझे मुक्त करावे। परन्तु उस समय मुझे प्रभाव डालकर मौन किया गया। गुरुदेव के सन्मुख विनय युक्त प्रार्थना ही तो कर सकता था। उसे स्वीकार करना, नही करना उनके हाथ मे था।

अभी पूज्य आचार्यश्री का स्वास्थ्य जब पुन निर्बल बना, तो हलचल मच गई। लोग नाना प्रकार की बाते करने लगे। मेरे कान पर भी शब्द आये, तो विनयपूर्वक मैंने आचार्यश्री के चरणो मे प्रार्थना की, कि आपश्री जो कुछ भी सोचे, किसी अन्य योग्य मुनिवर के लिए सोचे। परन्तु आचार्यश्री ने फरमाया कि बिना पूछे तुम्हारे बोलने की आवश्यकता नही। जब तुम से पूछा जाय, तब उत्तर देना, आदि। इतना फरमाते समय जब मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्री को इससे कुछ कष्ट हो रहा है, तो मैं मौन हो गया। परन्तु प्रमुख श्रावको से कहा कि आप लोग ही विनयपूर्वक आचार्यश्री के चरणो मे प्रार्थना कर इस उत्तरदायित्व पद से मेरा नाम हटवा दे। लेकिन समय की बात कहूँ, या अन्य कुछ, ये महानुभाव भी मेरे सहायक नही बने, बल्कि जो कुछ अभी हुआ, इसी के लिए मुझे कहते रहे।

अधिकाश प्रमुख श्रावक तो एक कदम और आगे बढकर किसी न किसी रूप मे मुझे यो भी कहते रहे कि आचार्यश्री की आज्ञा का आपको पालन करना होगा। आप मना कैसे कर रहे है। श्री जुगराजजी सेठिया, श्री सुन्दरलालजी तातेड, श्री हीरालालजी नान्देचा, आदि ने अपने-अपने ढग से एकान्त मे बहुत कुछ कहा। वे तो यहाँ तक कह बैठे कि क्या आचार्यश्री के चित्त को आप शान्ति देना नही चाहते, आदि। इस प्रकार मुझे चुप कर दिया। अन्य भी कई सज्जनो ने इसी प्रकार कुछ-न-कुछ कहा। किन्तु मेरे विचारो के समर्थन मे कोई नही बोला। अब मै इस प्रसग के उपस्थित होने पर नतमस्तक हो सुन रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा का मुख्य लक्ष्य और ही है। मै तो विद्यार्थी जीवन मे रहते हुए अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के साथ जिस उद्देश्य से निकला हूँ, उस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ। इसलिए मुझे उसी प्रकार की स्थिति मे रक्खा जाता तो बहुत आनन्दित रहता। एक बार और, चतुर्विध सघ ने आचार्य श्री के चरणो मे पहले भी प्रार्थना की थी और आज भी उन्ही श्री चरणो मे पुन प्रार्थना कर रहा है। लेकिन चतुर्विध सघ को यह तो विदित ही होगा कि ऐसा करके उसने अपने ऊपर एक महान् उत्तरदायित्व ले लिया है। इसलिए इस गुरुतर उत्तरदायित्व का परिवहन चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य को करना ही होगा। मुझे जो भार सौपा जा रहा है, उसमे चतुर्विध सघ की जवाबदारी है।

तलवार प्रलम्बित कर, समुपस्थित है तथा इनके परिपार्श्व मे विशिष्ट आमंत्रित सज्जन सिटी मजिस्ट्रेट एव अन्य न्यायाधीश आदि कतिपय कर्मचारीगण तथा मूक सेवी डॉक्टर श्री शूरवीरसिहजी आदि चिकित्सक वर्ग के साथ नगर के अन्य गणमान्य सज्जन विराजित है। उपर्युक्त सज्जनो के पीछे दो भागो मे विभक्त नर-नारियो का अपार जन-समूह समुद्र की लहरावलियो की तरह विविध परिधानो में लहरा रहा है। आमने-सामने की अट्टालिकाओ पर महिला एव बाल-समूह बैठे तथा खडे हुए है जिनकी दृष्टि मुख्य द्वार की ओर टकटकी लगाए श्रद्धेय आचार्य देव की प्रतीक्षा कर रही है।

दिगम्बर, मन्दिर मार्गी, तेरह पथी आदि सम्पूर्ण स्थानीय जैन समाज के अतिरिक्त हिन्दू, मुस्लिम, बोहरा समाज आदि जैनेतर बन्धु भी हजारो की सख्या मे उपस्थित है। स्थानीय नागरिक बन्धुओ के अतिरिक्त आचार्य देव के प्रति अनन्य श्रद्धा-निष्ठ लगभग १० (दस) हजार व्यक्ति बाहर सुदूर प्रान्तो से भी यहाँ पहुँच गए है। चू कि, आठ दिनो की अल्पावधि मे यथोचित सूचना सदेश भी प्रेपित नही किये जा सके, तथापि इतनी अपार जनमेदिनी का उपस्थित हो जाना अपने आप मे एक चमत्कार परिलक्षित हो रहा है।

आठ बजे के लगभग तक करीब २५-३० हजार की मानव-मेदिनी आँखे बिछाए मुख्य द्वार की ओर पुन पुनः झाक रही है। सहसा मुख्य द्वार पर "भगवान् महावीर की जय, युग प्रवर्तक, युगद्रष्टा, स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की जय, शात क्राति के अग्रदूत आचार्य पूज्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की जय" आदि गगनभेदी नारो के स्वर गु जायमान होने लगे। आचार्य देव पालकी मे विराजमान है एव मुनिप्रवर पालकी को अपने कधो पर उठाये हुए सभा-मण्डप की ओर बढ रहे है। अपने आराध्य के दर्शन हेतु आतुर भक्तजन अपने स्थान पर खडे हो—जय-विजय के नारो के गगनभेदी स्वरो के साथ वंदन कर रहे है, सभी के हृदयो मे भक्ति की लहरे तरगित हो रही हैं। आचार्य देव ने डोली से नीचे उतरकर रिक्त आसन को सुशोभित किया और जन समूह, शाति-रक्षक स्वयसेवको के निर्देशानुसार अपने-अपने स्थान पर बैठ जाता है। आचार्य देव का स्वास्थ्य अधिक समय तक विराजित रहने के अनुकूल नही होने से शीघ्र ही युवाचार्य पद की चादर समर्पण की विधि प्रारम्भ होती है। नमस्कार महामत्र के उच्चारणपूर्वक ज्ञान-विवेचना के अमूल्य कोप—नदी सूत्र का वाचन किया जाता है, जो श्रुत तथा श्रुतधर परम्परा का प्रतीक है। स्वाध्यायोपरान्त कुमकुम-केशर से चिह्नित श्वेत स्वच्छ सादगी—सयम की प्रतिरूप खद्दर की चादर तपस्वी श्री केशवलालजी म० सा० द्वारा आचार्य देव को ओढाई जाती है तथा वही चादर विधि-विधान के अनुसार सर्वाधिकार समर्पण के रूप मे आचार्य देव द्वारा युवाचार्य के रूप मे नवोदित भुवन-भास्कर श्रद्धेय प० रत्न मुनि श्री नानालालजी म० सा० को

पं० रत्न उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म०सा० का सन्देश सैलाना (म प्र) से। पं० शशिकान्तजी झा लिखते है :–

उपाध्याय श्री चाहते है कि आप श्री ने जिस सस्कृति वृक्ष का बीजारोपण किया, मुनि श्री नानालालजी म० अपने कुशल मति और सद्भावना से उसके मूल को सुस्थिर एव सुदृढ वनावे। वे समाचारी, आदि जो भी सघहित का कार्य करेगे, उपाध्याय श्री उसमे हार्दिक सहकार देने को सतत तत्पर रहेगे।

आशा ही नही, दृढ विश्वास भी है कि पूज्य श्री जवाहरलालजी म० ने सघ ऐक्य की जो वात उठायी और पूज्य श्री जी ने उसको मूर्त्त रूप दिया, निश्चय ही तरुण हृदय मुनि श्री उसको सफल करने मे प्रयत्नशील रहेगे, यही शुभेच्छा है।

तपस्वी प. मुनि श्री लालचन्दजी म सा. का सन्देश। सांचोर (मारवाड़) से श्री हर्षचन्दजी जैन (डोसी) लिखते है :–

पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी म० ने अपने पीछे अपने सुयोग्य सुशिष्य, धीर-वीर गम्भीर मुनि श्री १००७ श्री नानालालजी म० सा० को पट्टधर घोषित किया, यह जानकर सकल सयम प्रेमी श्री सघ को अत्यन्त हर्ष हुआ।

तपस्वी श्री लालचन्दजी म० सा० ने अपनी ओर से हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की और साचोर स्थानकवासी जैन श्रावक सघ भी इस घोषणा का हार्दिक स्वागत करता है।

भवानी मडी से श्री माणकचन्दजी वकील लिखते हैं :–

पडित रत्न श्री नानालालजी म० सा० युवाचार्य घोषित किये गये, यह पढते ही हृदय मे खुशी का पार नही रहा। प० रत्न धीर-वीर गम्भीर शान्त मूर्ति १००५ श्री नानालालजी म० जैसे योग्य युवाचार्य पाकर कौन अभागा अपने आपको धन्य नही समझेगा। धन्य है समाज की किस्मत जिसे ऐसा योग्य नेता मिला। युवाचार्य चादर ओढाई जावेगी, उस कल्पना से ही, हर्ष से हृदय विभोर होता है। किन्तु साक्षात् उस दृश्य को देखने वाले को क्या कहना, सतियाँ श्री (रामकुँवरजी आदि) ने फरमाया है कि हमने यह कल्पना तक नही की कि इस आनन्द से वचित रहना पडेगा, लेकिन क्या किया जाय, चातुर्मास है। खैर, यही प्रार्थना है कि आचार्यश्री की छत्र-छाया मे युवाचार्य श्री जी खूब चमके।

श्रीमान् चम्पालालजी सा० बांठिया, भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेन्स लिखते हैं :–

युवाचार्य श्री जी महाराज जिनकी (Ceremony) तारीख ३० ९ ६२

पालन करना आवश्यक है। उसमे से मुख्यतया विश्व मैत्री की एव विश्व-कल्याण की भावना प्रत्येक मानव के हृदय मे होनी ही चाहिए। यह भावना स्वार्थ आदि विकारो से रहित, निर्मल स्वच्छ चादर के समान पवित्र हो। ऐसी पवित्र भावना मे आबद्ध होने वाले प्राणी को अपना चरमोत्कर्ष साधने मे समाज का एक रूपक बनना भी आवश्यक होता है। धार्मिक दृष्टि से उसका रूपक चतुर्विध संघ है। सघ है, तो उसका सचालन भी होना आवश्यक है। अत. उसके अनुरूप सचालन के लिए आचार्य का पद बडा ही महत्त्वपूर्ण है एव उसका उत्तरदायित्व भी बडा गुरुतर है। यह जिसके कन्धो पर रहा होता है, उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि चतुर्विध सघ की प्रार्थना को ध्यान मे रखकर उस उत्तरदायित्व को किसी योग्य साधक के कन्धे पर रखे। तदनुसार मैं अपना सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व प० मुनि श्री नानालालजी को सौपता हूँ। ये मेरे युवाचार्य है। चतुर्विधश्री संघ का कर्त्तव्य है कि वह इनके वचनो को "सद्दहामि, पत्तयामि, रोययामि" के रूप मे स्वीकार करे। युवाचार्यजी का भी कर्त्तव्य है कि वे धर्म-मार्ग मे सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध सघ को धर्म-मार्ग मे प्रवृत्त करते रहे।

उदयपुर तारीख ३०-९-१९६२
आश्विन शुक्ला २
स० २०१९ प्रात: ८ (बजे)

तदुपरांत पं० रत्न श्री सत्येन्द्र मुनिजी अपने प्रासंगिक विचारों की निम्न रूप में अभिव्यक्ति देते है

आज इस विशाल चतुर्विध सघ के सामने पूज्य आचार्य देव ने अपनी चादर यानी अपना उत्तराधिकार और इस सघ का भार जो अपने कधो पर था, वह अपने से उतार कर पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० के आठवे पाट पर युवाचार्य श्री नानालालजी म० के कधो पर रखा है। मुझे आशा है कि जिस योग्यता से प्रेरित होकर आचार्यश्री ने इनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है, उसी योग्यना से युवाचार्य श्री नानालालजी म० यह भार वहन करते हुए यह पद ग्रहण करेगे।

आचार्य का जो पद है, वह वडा बोझिल है। चतुर्विध सघ का भार आज प० मुनि श्री नानालालजी म० पर आ रहा है। प० मुनि श्री नानालालजी बहुत कुशल एव ज्ञान-दर्शन, चारित्र सम्पन्न व साहसी है और कुशलता पूर्वक चारित्र तप से ठोस रूप से चल रहे है। आप इस भार को ग्रहण करेंगे। साथ-ही-साथ यह बात कह देना चाहता हूँ कि यह कार्य अकेले का नही है। सबके सहयोग की आवश्यकता है। अत: चतुर्विध संघ युवाचार्य प० मुनि

कामना अर्पित करता है। इनको दिव्य शक्ति प्राप्त हो, जिससे कि ये समाज की "चारित्रश्री" और "आत्मश्री" को विकसित करते हुए चिरायु प्राप्त करे।

निम्नलिखित सघों व महानुभावो की तरफ से तार, पत्रादि द्वारा शुभ-कामनाएँ –

(१) स्थानकवासी जैन श्री सघ जैतारण, (२) स्था. जैन सघ सैलाना से प्यारचन्दजी, (३) श्री हसराजजी जैन, अमृतसर, (४) श्री फूलचन्दजी मोहता, सिरोही, (५) श्री कन्हैयालालजी बोथरा बीकानेरी, कलकत्ता, (६) श्री रिद्ध-मलजी सेक्रेट्री श्री सघ, साचोर, (७) स्थानकवासी वर्धमान श्रावक सघ, बीकानेर, (८) जैन श्री सघ, कैडगाँव, (९) श्री जवाहरलालजी मुणोत, अमरावती, (१०) श्री तोतारामजी भूरा, करीमगज, (११) श्री मोतीलालजी मालू कल-कत्ता, (१२) श्री चम्पालालजी काकरिया, कलकत्ता, (१३) श्री बीजराजजी सुराणा, कलकत्ता, (१४) स्था श्वे जैन सभा, कलकत्ता, (१५) श्री कन्हैया-लालजी मालू, कलकत्ता, (१६) श्री हरकचन्दजी काकरिया, कलकत्ता, (१७) श्री अनराजजी जैन, बगलोर, (१८) श्री सुराना इन्दौर वाला, अहमदाबाद, (१९) श्री स्था जैन श्री सघ, पाली, (२०) श्री रतनलालजी डोसी, सैलाना, (२१) श्री उगमराजजी मेहता, जोधपुर, (२२) श्री जुगराजजी धोका, मद्रास, (२३) कपूरचन्द एण्ड कम्पनी, मद्रास, (२४) श्री हीरालालजी कोठारी, बुल-डाना, (२५) मत्री श्री सघ, रायपुर (म प्र), (२६) श्रावक सघ चित्तौड, (२७) मत्री श्री श्रावक सघ, उदयपुर, (२८) श्रावक सघ, ब्यावर, (२९) मत्री श्री श्रावक सघ, पाली, (३०) श्रावक सघ, देशनोक, (३१) श्रावक सघ, कपासन, (३२) श्रावक सघ, पीपल्या, (३३) श्रावक सघ, नारायण गढ, (३४) श्रावक संघ, सवाई माधोपुर, (३५) श्रावक सघ, नोखा, (३६) श्रावक सघ, रतलाम।

युवाचार्य श्री जयवन्त हों ('सम्यग्दर्शन', पाक्षिक पत्र, सैलाना)

३० सितम्बर १९६२ को प० मुनिराज श्री नानालालजी म० सा० परम प्रतापी पूज्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के उत्तराधिकारी बने। उन्हे विधिवत युवाचार्य पद प्रदान किया। हिन्दुआ सूर्य महाराणाजी के भव्य महल के विशाल प्रागण मे महाराणा साहब श्री भगवतसिंहजी और लगभग तीस हजार की जनता के समक्ष प्रतापी पूज्य श्री गणेशलालजी म० सा० ने अपनी चद्दर उन्हे प्रदान की अर्थात् भावी आचार्य बनाये।

युवाचार्य श्री सुयोग्य, सयमप्रिय और सस्कृति प्रेमी, गम्भीर एव सहन-शील हैं। हमारा विश्वास है कि उनके द्वारा वीर शासन की वास्तविक सेवा होगी। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति एव मर्यादा का रक्षण होगा। अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए वे जिनधर्म को दीपावेगे।

भी एक वहुत वडा खतरा उपस्थित हो गया। पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० इसको सहन नही कर सके और निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिए पूज्य आचार्यश्री के ये प्रयत्न समाज के सामने आ रहे है, अन्य भावना मे नही।

"पूज्य आचार्यश्री ने अब भी उपयुक्त लक्ष्य (उद्देश्य) की पूर्ति के लिए सव द्वार खुले रखे है। अत. निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षार्थ पूज्य आचार्यश्री का सतोपजनक समाधान होकर सादडी सम्मेलन मे निश्चित किये गये उद्देश्य की पूर्ति सही माने मे जिस समय भी होगी, उसी समय यह सुसगठन प्रेमी चतुर्विध सघ पीछे रहने वाला नही है, ऐसा मेरा विश्वास है।

"मै अपने आपको विद्यार्थी के रूप मे समझता हूँ और अपने अन्दर इस पद की योग्यता अनुभव नही कर रहा हूँ। मैने तो विद्यार्थी जीवन के अन्दर रहते हुए श्रावक पद से ऊपर उठकर गुरुदेव के चरणो मे मुनि पद ग्रहण किया। यह मुनि पद भी अपने आप मे एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यह भार भी कोई थोडा नही है। यदि यह भी ठीक ढग से वहन हो जाय, तो मै समझूँ कि मेरा जीवन ठीक ढग से आगे वढ रहा है। मै तो इसी भावना को लेकर चल रहा था, लेकिन आचार्यश्री की भावना और चतुर्विध सघ की इच्छा हुई कि इस महान् उत्तरादायित्व का यह भार इस विद्यार्थी पर डाला जाय। इसमे आचार्यश्री जैसे महापुरुप का क्या आशय रहा है, इसको हमे समझना है। मै इसमे हस्तक्षेप तो नही करता क्योकि यह चादर तो जो मुझे प्रदान की गई है, यह भारतीय सस्कृति मे अपूर्व त्याग एव तपस्या की द्योतक मानी गई है। जहाँ ससार मे अन्य पदवियाँ दी जाकर उनका पदक, आदि द्वारा महत्त्व आका जाता है, वहाँ यह चादर एक निराला ही महत्त्व रखती है।

"चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का द्योतन करने के लिए नवीन नही है, वल्कि यह तो विशिष्ट ज्ञानियो व पूर्वाचार्यो द्वारा चतुर्विध सघ के सामने चिरकाल से चली आ रही है। यद्यपि व्यक्ति अलग-अलग रूप मे रहकर विकास कर सकता है, लेकिन जहाँ सामूहिक रूप वनकर समाज वनता है, वहाँ व्यक्ति अलग न रहकर सामाजिक रूप मे प्रवेश करता है। तव उसका प्रतीक कोई-न-कोई चिह्न अवश्य होता है। यह जो चादर दी गई है, यह धार्मिक दृष्टि का एक चिह्न है।

"चादर के विपय मे पूज्य आचार्य श्रीजी ने मुझे फरमाया कि यह चादर सुधर्मा स्वामी आदि आचार्यो मे चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुप हुए हैं, उन्होने पाट-परम्परा पर चादर धारण की है। यह चादर श्वेत एव उज्ज्वल है, निष्कलक, पवित्र तथा धव्वो से रहित है। इसके समान

युवाचार्य पद-समर्पण का दृश्य

तत्कालीन दृश्य की अनोखी छटा का चित्रण हमारी शब्द-अभिव्यन्जना की शक्ति से परे है, तथापि साक्षात्कृत उस दृश्य को यत्किचित रूप से चित्रित करने का हास्यास्पद प्रयास यहाँ प्रस्तुत है।

चतुर्दिक अरावली की सुरम्य पर्वत श्रेणियो की सुरम्य पक्ति से आवेष्टित हजारो पर्यटको का आकर्षण केन्द्र उदयपुर नगर भीलो एव फव्वारो की नगरी (City of lakes and fountains) कहलाता है। नगर की शोभा को द्विगुणित करती हुई इतस्तत विस्तृत भीलो मे "पीछोला" भील का अनूठा महत्त्व है। पीछोला भील के मध्य स्थित "जग मन्दिर" एव "जग निवास" नामक दो भव्य प्रासाद वास्तुकला के अद्वितीय उदाहरण है। साथ ही चारो ओर फैली हुई अपार जल-राशि के बीच इतने विशालकाय भव्य भवनो का निर्माण अपने आप मे ऐतिहासिक काल एव वास्तुकला का वैज्ञानिक प्रारूप है, जो पीछोला भील की श्रीवृद्धि मे चार चाँद का कार्य कर रहा है। इसी भील के तट पर मेदपाट के एकछत्र सम्राट् अपनी आन पर मर-मिटने वाले महाराणाओ के विशाल काय उत्तग भव्य प्रासाद खडे है, जो महाराणाओ के अतुल वैभव एव महान् सत्ता के प्रतीक हैं। महलो के पूर्वाभिमुख सूर्य वश का प्रतीक सूर्य गोखडा याने भरोखा है, जो आज भी विशाल स्वर्ण सूर्य प्रभात बेला मे मरीचिमाली की रश्मियो का स्पर्श पाकर उद्दीप्त हो उठता है। उसी भरोखे मे समासीन हो हिन्दुआँ सूर्य महाराणा उत्तरोत्तर सदियो से न्याय का प्रसार करते आ रहे है। भरोखे के ठीक नीचे सामने की ओर विशाल काय चौक याने खुला मैदान है। आज इस मैदान की छटा अत्यन्त रमणीय परिलक्षित हो रही है, मानो महल, मैदान एव भरोखे के इतिहास मे आज एक स्वर्ण पृष्ठ अकित हो रहा है।

मैदान के एक पार्श्व सूर्य भरोखे के नीचे पूर्वाभिमुख जैन जगत् के दिव्य भास्कर, शात क्राति के अग्रदूत आचार्य देव श्री गणेशीलालजी म० सा० के विराजने हेतु एक बडे पाट पर चौकी (पीठिका) पडी हुई है, जो अभी रिक्त है। पाट पर कुछ मुनि-पु गव आसीन है। कुछ दूर पाट के पार्श्व मे साध्वी मण्डल श्वेत-नाति स्वच्छ परिधान मे सुशोभित हो रहा है। सामने विशाल मैदान मे नाति दूर तत्कालीन महाराणा श्री भगवतसिहजी अपने राजकीय परिधान मे अपने पूर्वजो द्वारा किए गए सत्य धर्म की रक्षा की प्रतीक कटि-प्रदेश पर

भाव से आचार्यश्री की सेवा की है। उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नही जा सकती।

"महाराणा साहब भी आज यहाँ उपस्थित हुए है। आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है, जिन्होने धर्म के लिये अनेक दु खो को सहते हुए अकेले रहना स्वीकार किया, घास की रोटियाँ खाई परन्तु धर्म से विमुख नही हुए। इसी महाराणा प्रताप की पुण्य भूमि उदयपुर मे पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है। ये महापुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि दुर्बल हैं, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें इतनी शक्ति है कि वह तरुणों मे भी नही है।

"निष्पक्ष भावना से जो चादर ओढाई गई है, इसमे ऊँचा-नीचा धागा नही है। सब धागे संगठित है, समान है। पतले अथवा मोटे नही है। ठीक इसी प्रकार, इस चादर को ओढाने मे सम्मिलित होने वाले चतुर्विध सघ को भी मन, वचन, काया से एकरूपता मे लाना है। श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना का भी एक रूप होना नितात आवश्यक है। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई, चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्बी हो, किसी भी सम्प्रदाय का नाम धराता हो, प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप मे समान है। मैं तो सम्प्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ।

"आज हम पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आया है। मैं चाहता हूँ कि आप और हम सब विद्यार्थी के रूप मे होकर मानव-जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभावे। बीच मे जो भी बाधाएँ आवे उनको सम्यक् रीति से पाटने का एव विश्व मे अशान्ति के जो बादल मडरा रहे है, उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करे।

"मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध सघ पर पूर्ण रूप से आ गया है। चतुर्विध सघ ने अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी ली है। मैं तो एक विद्यार्थी हूँ। आपका कर्त्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बने। मेरे मे रही त्रुटि को निकाल कर मेरे जीवन को उन्नत बनावें। मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। आचार्य देव के चरणो मे आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्य विहीन था। इन महापुरुष ने मुझ ग्रामीण छोटे से व्यक्ति को अपने चरणो मे स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया, उससे मैं जन्म-जन्मातर मे भी उऋण नही हो सकूगा। आज ये महापुरुष शरीर से अस्वस्थ है। आप हम सब यही चाहते हैं कि आचार्यश्री स्वास्थ्य लाभ कर दीर्घायु हो।

"मेरे अन्दर मे क्या-क्या भावनाएँ काम कर रही है, उनको शब्दो द्वारा

श्रोढाई जाती है। विराजित अन्य समस्त मुनि मण्डल अपने सहयोग-समर्पण के रूप मे स्व-कर-स्पर्श से चादर समर्पणा मे हाथ बढाते है। उपस्थित साध्वी समुदाय भी प्रसन्नतापूर्वक करबद्ध स्वीकृति व्यक्त कर रहा है एव आचार्यश्री की जय, नवोदित युवाचार्यश्री की जय आदि जय-जयकारो से दिङ् मण्डल को अनुगु जित करते हुए सम्मुख आसीन अपार जन-मेदिनी अपना समर्थन समर्पित करती है। चतुर्विध सघ अपने भावी अनुशास्ता के प्रति अप्रतिम श्रद्धा व्यक्त करता है।

विधि समाप्ति के अनन्तर आचार्य देव अस्वस्थ होते हुए भी अति सीमित निम्न शब्दो मे अपने भावो की अभिव्यक्ति देते हुए सघ के भावी अनुशास्ता युवाचार्यश्री हमारे चरितनायक को शुभाशीर्वाद तथा सघ को सदा जागरूक रहने हेतु प्रबोध प्रदान करते है।

चादर प्रदान के पश्चात् आचार्यश्री का प्रवचन

चादर प्रदान के पश्चात् परम श्रद्धेय आचार्य श्रीजी म० सा० ने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया, लेकिन शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपने पूरे भाव व्यक्त न कर सके। फिर भी उस वक्त जो कुछ फरमाया और बाद मे जो भाव मालूम हुए, उसका सार निम्न प्रकार है —

श्रमण-जीवन के लिए जिन आज्ञा ही मुख्यत: विधि-विधान है। उसकी सुरक्षा के लिये जो भी प्रवृत्ति की जावे, वह सब वैधानिक है। इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखकर मैंने समाज के अन्दर कार्य किया है और कर रहा हूँ। आज युवाचार्य चादर प्रदान का प्रसग है।

यह शुभ वर्णा सफेद चादर, जो मैंने युवाचार्य श्री नानालालजी को ओढाई है, वह सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी जैसे महापुरुषो की परम्परा के अनुसार है।

श्वेत वर्ण पवित्रता का द्योतक है और शुक्ल ध्यान की याद दिलाता है। जीवन मे निष्कलक रहने की सूचना करता है। यह चादर अनेक तन्तुओ से बनी हुई है। एक तार मे अनेक स्थूल तन्तु है। एक-एक तन्तु मे असख्य स्कन्ध है और एक-एक स्कन्ध मे अनन्त-अनन्त परमाणु भरे हैं। जिस प्रकार ये सारे अनन्त परमाणु एक चादर के रूप मे गठित हुए हैं, उसी प्रकार ससार मे व्याप्त सूक्ष्म और बादर सभी जीव आत्माएँ आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं लेकिन विकास की विभिन्नता एव तत्त्व की दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र पृथक् अस्तित्व रखती है। इतना होने पर भी एक-दूसरे का परस्पर अनेक प्रकार का सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध को ठीक प्रकार से समझ कर यथा योग्य सम्बन्ध का परस्पर

उत्तरदायित्व है। महाराणा सा० को भी मै तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रिय धर्म को अपनाकर भगवान् महावीर की तरह राज छोडकर धर्म का उपदेश दे तो जन-कल्याण की भावना के साथ-साथ भगवान् महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

"आप सेठिया लोग एव अन्य साधारण प्रजाजन जो यहाँ एकत्र हुए है, वे अपनी सम्पत्ति से चिपक कर न रहे। अपनी सेठाई की बात को अलग रखकर सम्पत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करे अथवा त्याग की भावना से कुछ उदारता धारण करके जन-शाति के लिए कुछ करके दिखावे। आप भी क्षत्रिय है। वीर है। आज बनिए हो गए तो क्या हुआ ? आपमे भी वह क्षात्र तेज है। आप अपने निज रूप को पहचाने और जन-मानस की भावनाओ को लक्ष्य मे रखकर कर्त्तव्य पर विशेष ध्यान देवे।

"यह चादर एक शुभ भावना की प्रतीक भी है। शुभ भावनाएँ उज्ज्वल होती है और यह चादर भी उज्ज्वल एव खादी की होकर सादी है। सादगी ही स्वतन्त्रता का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते है कि—सादगी ही स्वतन्त्रता है और फैशन ही फासी है। अत: भारत के अन्दर इस सादगी की ओर भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

"मै इस चादर पर पूरे विचार नही रख पाया हूँ। फिर कभी प्रसगोपात समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल, सादा, पवित्र, निर्मल एव मनसा-वाचा-कर्मणा को एकरूपता मे रखकर सहयोगी बनेंगे, तो यह संघ चिरकाल तक उन्नत दशा मे पहुँचेगा। इसी भावना को रखते हुए मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करता हूँ।"

युवाचार्यश्री के प्रवचन के पश्चात् बीकानेर श्री सघ की ओर से श्री जेठमलजी सेठिया तथा अन्य समस्त श्री सघो की तरफ से श्री कानमलजी नाहटा उपर्युक्त वैधानिक कृत्य मे अपना समर्थन सूचित करते है। उदयपुर श्री सघ के मत्रीजी आगत शुभ सदेशो का वाचन करते है।

चूकि आचार्य देव की अवस्था के कारण अधिक बैठने की शक्ति नही थी, अत आचार्य देव डोली पर आसीन हो वहाँ से प्रस्थान कर जाते है। आचार्य देव एव सत-सती-वर्ग के प्रस्थान करते ही वह मनमोहक दृश्य अभ्रपटल की तरह बिखर जाता है। किंतु जिन पिपासु नेत्रो ने इस धार्मिक दृश्य का रसपान स्वचक्षु से किया है, वे कभी इसे विस्मृत नही कर सकेंगे, ऐसा मेरा ध्रुव विश्वास है, क्योकि उस अपार जन-मेदनी मे एक सामान्य बालक के रूप मे मै भी उपस्थित था।

श्री नानालालजी म० को सहयोग देने को तैयार रहे व इनका सहयोग भी लेने को तत्पर रहे। यद्यपि आप साहसी है, फिर भी बिना सहयोग के काम नही चल सकता। हमारा आपके साथ सदा सहयोग रहेगा।

शास्त्र मे जम्बू वृक्ष का नाम आता है। जैसे यह जम्बू वृक्ष अन्य वृक्षो के साथ विशेष शोभायमान होता है, वैसे ही युवाचार्यश्री सत-सतियो एव श्रावक-श्राविका वर्ग से शोभायमान हो। मेरी हार्दिक इच्छा और कामना है कि इनके द्वारा सदैव शासन की उन्नति हो।

विशेष प्रसन्नता की बात है कि आचार्यश्री ने अस्वस्थ होते हुए भी आज अपने मध्य विराजकर युवाचार्य पद की चादर प्रदान की है। उदयपुर महाराणा सा० भी इस समारोह मे उपस्थित है, इससे आज के इस समारोह मे चार चाद लग गये है।

अन्त मे यही कहना है कि युवाचार्य श्रीजी परस्पर सहयोग से चतुर्विध सघ के भार को अच्छी तरह से वहन करते हुए शासन की शोभा बढावेगे, ऐसी आशा है।

तदन्तर उसी सूर्य झरोखे के नीचे नवोदित ज्ञान सूर्य युवाचार्यश्री अपनी गुरु गम्भीर गिरा मे अध्यात्म आलोक प्रसारित करते हुए अपना सामयिक तथा गाम्भीर्य युक्त प्रवचन फरमाते है।

चादर प्राप्त करने के पश्चात् परम श्रद्धेय प० रत्न युवाचार्यश्री नानालालजी महाराज साहब का प्रवचन

"मैं इस महती सभा मे अपने विचार रखने के लिए खडा हुआ हूँ। मेरी इच्छा भार ग्रहण करने की नही थी, क्योकि यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण एव गुरुतर दायित्व का है। मेरे विचार मे इस पद पर किसी योग्य महामुनि को नियुक्त करने की आवश्यकता थी, पर स्थिति की गम्भीरता ने इस प्रश्न को भी गम्भीर बना दिया और मुझको ही इसके लिए चुना गया।

"सादडी मे निर्मित श्रमण सघ ने एक आचार्य की अधीनता मे ही शिक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि होने का तथा साधु-सस्था मे उत्पन्न विकृतियो को दूर करने का जो लक्ष्य निर्धारित किया था, उनकी प्रमुख मुनिवरो द्वारा बाद मे, पुष्टि तो हुई, किन्तु तदनुसार वह अमल मे नही आया और अनुभव ऐसा हुआ कि उस लक्ष्य के प्रतिकूल दिशा मे ही प्रवृत्ति होने लगी। पूज्य श्रीजी ने समय-सयम पर समाज को एतद् विषयक सावधानी दिलाई, पर उस पर कोई ध्यान नही दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के ऊपर

माँ का हृदय

इसी मध्य एक चित्ताकर्षक, किन्तु मातृ-ममता की मनोमुग्धकारी घटना और घटित हुई ।

हुआ यो कि युवाचार्य-चादर प्रदान के प्रसग पर वीर प्रसविनी, चरित-नायक जैसे नर रत्न की जन्मदात्री, भावुकहृदया, सरलमना, माता श्रृ गार बाई भी अपने नयन-सितारे, सुन्दर संस्कारों से युक्त जन-जन के अभिवन्द्य नौ-निहाल लाल के तथा उनके आराध्य आचार्यश्री के दर्शनार्थ आज दाता से उदयपुर उपस्थित हुई थी ।

एक दिन प्रात·काल दर्शनार्थ आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हो वन्दनापूर्वक सुख-साता की पृच्छा कर रही थी, तब आचार्य देव ने मधुर हास्य बिखेरते हुए अपनी मातृ भाषा मे ही कहा—"कई, माजी, बेटा महाराज का दर्शन कर लीधा काई ?· · अबे ई "नाना" नी र्‌या घणा मोटा बेइग्या है ।" (क्यो मासा, अपने पुत्र मुनिजी के दर्शन कर लिए क्या ? अब ये छोटे नही रहे, बहुत बड़े हो गए है ।)

चेहरे पर भावुकता एव भद्रिकता बिखेरते हुए अक्षय पुण्यशालिनी माँ श्रृ गार ने उत्तर दिया—"अन्दाता, ई घणा भोला टाबर है, यापे अतरो मोटो बोझ मती नाखो ।"

मा का हृदय-माँ का हृदय ही है । पुत्र चाहे डॉक्टर, मजिस्ट्रेट अथवा बहुत बडा मिनिस्टर ही क्यो न बन जावे, माँ के लिए तो वह अपना लाडला बेटा ही है ।

माँ श्रृ गार का हृदय यह क्यो समझने लगा कि उसका नौ-निहाल जन-जन का आराध्य एव हृदय—सम्राट् बन चुका है । आदि तीर्थकर प्रभु ऋषभ देव भले ही महायोगी सर्वज्ञ सर्व-द्रष्टा बन गए हो, माँ मरुदेवी के लिए तो वे उसके सुकुमार लाल ही थे । और वह अपने तीर्थकर बेटे के लिए भी यही पुकारती है कि—"मेरा ऋषभ गया क्यो वन मे ?"

अपने जीवन मे स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एव उज्ज्वलता आदि रखने का जो सदेश चादर के रूप मे पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मै आप तक पहुँचा रहा हूँ।

"आज का यह चतुर्विध सघ जिस एक रूप मे यहाँ एकत्र हुआ है, उससे मुझे बडी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो भी घटनाएँ घटित होती है और उनमे जो धार्मिक सस्कार गतिमान है, उन सस्कारो को जीवन मे उतार कर उन्नत कराने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करना है।

"ससार मे जितने भी प्राणी है, सब एक हैं। आत्मीय दृष्टि से हममे कोई भेद नही है। हम सब विश्व-कल्याण की कामना लेकर चले। इसका प्रतीक कोई-न-कोई चाहिए ही। ससार मे अनेक तरह के रग हैं। जो अलग-अलग रूप मे आते हैं। राष्ट्रीय झडे मे तीन रग है। ये तीनो रग तीन भावनाओ को व्यक्त करने वाले हैं, लेकिन इस चादर का रग सफेद है, जो सात्विक गुण और शान्ति का प्रतीक है। यह बताता है कि इस भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई मे शान्ति, प्रेम एव सात्विक गुणो का सचार हो, हमारा जीवन ढग से चले और चतुर्विध सघ अपना कर्त्तव्य लेकर निरन्तर आगे बढे।

"पूज्य आचार्यश्री के साथ-साथ मुनि-वृन्द भी इस चादर के हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया मे सम्मिलित हुए हैं। दूसरे मुनियो व साध्वियो की भी शुभ कामनाएँ प्राप्त हुई हैं। पजाबी मुनिवर प० रत्न श्री सत्येन्द्र मुनिजी, प० श्री लखपतरायजी व प० मुनि श्री पदमशयनजी म० सुदूर पजाब भूमि से यहाँ पधारे हैं। तपस्वी श्री केशूलालजी म० जो बेले-बेले की तपस्या करते है, मुनि श्री सुन्दरलालजी म०, तपस्वी श्री ईश्वर मुनिजी म०, मुनि श्री इन्द्रमलजी म० व लघु मुनि श्री बाबूलालजी म० एवं साध्वी वृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त करते हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को आगे बढावेगे।

"आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणो मे बैठे है। पूज्य आचार्यश्री जी की सेवा का लाभ कई भाइयो ने लिया है और ले रहे हैं। यहाँ उपस्थित डॉक्टर शूरवीरसिंहजी, डॉक्टर एस० एल० न्यातीजी एव प्राकृतिक चिकित्सक डॉक्टर श्री हिम्मतसिंहजी और अनुपस्थित डॉक्टर बी० एन० शर्मा सा०, डॉक्टर पी० के० माथुर सा०, डॉक्टर पी० एम० ओ०, डॉक्टर ऋषि एव डॉक्टर ए० एस० गुप्ता सा० आदि महानुभाव तथा वैद्य बाबूभाई ने अनन्य

आचार्य पद की महत्ता

जैन-दर्शन की सघीय व्यवस्था मे आचार्य-पद को सर्वतो महान् गौरव प्राप्त हुआ है। चेतना की चरम एव परम अवस्था को उपलब्ध तीर्थंकर महाप्रभु की महिमा एव गरिमा का आगमिक पृष्ठो पर अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध है, किन्तु सघीय व्यवस्था के सदर्भ मे आचार्य पद की जो महत्ता वरिणत हुई है, वह अतुलनीय एव अपरिमेय है।

तीर्थंकर अनन्तद्रष्टा एव अनन्तस्रष्टा सहस्र रश्मि की भाति प्रकाशमान होते हुए भी अपनी तीर्थंकरत्व की परम्परा के निर्वाह हेतु किसी नूतन तीर्थंकर-रवि का निर्माण नही कर सकते है, जबकि एक आचार्य अपनी ज्ञान-ज्योति को अनवरत प्रज्वलित रखने हेतु तथा सघीय व्यवस्था को सुदृढ सबल देने के लिए स्नेह-सिचन के रूप मे नये ज्योति-पु ज आचार्य का निर्माण अपने उत्तराधिकारी के रूप मे अपने जीवन-काल मे ही कर जाते है।

अतएव आचार्य के स्वरूप-निरूपण मे आगम वाक्य मुखर हुए है—"दिवा समा आयरिया पण्णता", अर्थात् आचार्य उस दीप-ज्योति के समान होते है, जो अपनी ज्योति-शिखा से सहस्रो वर्तिकाओ को आलोकित कर देती है। दीपक-से-दीपक ज्योतित होता है, वैसे ही एक आचार्य का अनुभव मूलक ज्ञानालोक अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी मे सचरित अथवा अवतरित होता है।

जैन-दर्शन के सर्वतो महान् मौलिक महामान्य-वदना मत्र मे "आचार्य" को तुला-मध्य स्थानीय तृतीय स्थान प्राप्त हुआ है। आचार्य तीर्थंकर प्रभु से कर्ण परम्परा के रूप मे प्राप्त विरासत को अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित करने का दायित्व निभाते है।

सामान्यतया आचार्य शब्द की निर्यु क्ति होती है—"आचरन्ति इति आचार्या।" किन्तु यहा आचार्य का केवल यौगिक-रूढ अर्थ ही अभिप्रेत नही है, अपितु आचार्य का लाक्षणिक अर्थ होता है जो स्वय ज्ञानाचार, दर्शनाचार आदि आचारो का अनुशीलन करते है तथा अपने अनुवर्ती समस्त अनुयायियो को आचार-सहिता के पालन की सबल प्रेरणा प्रदान करते है। वे शास्ता नही, किन्तु अनुशास्ता होते हैं, जो सम्पूर्ण चतुर्विध सघ के अनुशासनात्मक नेतृत्व का कार्य करते हैं।

व्यक्त करना मेरे लिए कठिन हो रहा है। इनके श्री चरणो मे रहते हुए आज जो मैं सयम पालने मे अपने आपको थोडा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्ही के आशीर्वाद एव कृपा दृष्टि का प्रसाद है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत कुछ और प्राप्त करना है। इसलिए मेरे अतर्मन मे रह-रहकर यही भावना उठती है कि प्रभो! पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घ काल तक बना रहे, ताकि इनकी साधना के अनुभव द्वारा मैं अपनी साधना मे यत्किंचित वृद्धि करके अपने आपको धन्य मान सकूँ। आप लोगो की भावना का समूह विराट् एव महान् है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने मे सहायक होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

"आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है, वह चतुर्विध सघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानव-जीवन की उच्चता प्राप्त करने मे और इस पद का भार वहन करने मे शक्ति प्राप्त हो तथा शान्ति पूर्वक निर्बाध गति से प्रगति होती रहे, यही आचार्यश्री से मैं शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

"मैं इस पद को अपने आपके लिए महत्त्व नही दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतुर्विध सघ की सेवा मे मुझे रखा है अत मैं चतुर्विध सघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध सघ मेरे लिए माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध सघ के मध्य मुझे रखा है, तो बीच मे रहने वाले की सुरक्षा का दायित्व चतुर्विध सघ पर आ जाता है। यहाँ पर उपस्थित साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका तथा अन्य महानुभावो से भी मैं शुभ कामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जन-कल्याण, विश्व-मैत्री एव विश्व-शाति तथा निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सके, ऐसा शुभ सकल्प आप लोगो का हो।

"उदयपुर सघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उस कार्य को सारा चतुर्विध सघ कभी भूल नही सकता। यह सदा के लिए चिरस्मरणीय रहेगा। उदयपुर सघ का आभार इस रूप मे साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

"भगवान् महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिंहासन का परित्याग करके जन-पद के मध्य आये। जनता के दु खो की अनुभूति की। दु ख निवारण के उपायो को उन्होने घोर साधना करके ढूढ निकाला। कष्ट और बाधाओ को सहन किया। निर्मल ज्योति जगाई। उन्ही भगवान् महावीर की यह शासन-परम्परा चल रही है। इसमे क्षत्रिय वीरो को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

"यहाँ उपस्थित महाराणा सा० भी क्षत्रिय है। अत आपके ऊपर भी

भी आप अधिकाधिक विनम्र बनते गए एवं पूर्वापेक्षा अधिक मनोयोग पूर्वक अपने आराध्य की सेवा शुश्रूषा मे लीन रहने लगे। यह कहा जा चुका है कि आचार्य देव का स्वास्थ्य समय की गति के साथ अधिकाधिक क्षीण होता जा रहा था। उदयपुर के अपने अन्तिम वर्षावास अर्थात् युवाचार्य पद प्रदान के समय तक आपकी केसर सम्बन्धी वेदना अत्यधिक उग्र रूप ले चुकी थी। युवाचार्य चादर-प्रदान हेतु राजमहलो के प्रागण मे आपका पदार्पण केवल आत्मबल के आधार पर ही हो सका था।

एक ओर शारीरिक वेदना की उग्रता और दूसरी ओर आत्म ध्यान की अन्तर्मुखता, दोनो परस्पर विरोधी वृत्तिया निरन्तर बढती जा रही थी, अर्थात् ज्यो-ज्यो रोग उग्र रूप धारण करता गया त्यो-त्यों आप श्री देह-भाव से ऊपर उठते गये। परिणामस्वरूप आपने देहाध्यास को विसर्जित कर औषधोपचार लेना भी प्राय: वन्द कर दिया। चिकित्सको के अत्यन्त आग्रह के कारण मधुमेह के उपचार हेतु कुछ इजेक्शन लेना पडता था। वह भी इसलिए कि शूगर (शर्करा) की मात्रा के बढ जाने से किसी भी क्षण बेहोशी आ सकती थी और उस अवस्था मे अन्तिम समय आ जाने पर सावधानीपूर्वक सथारा की स्थिति नही वन पाती। अत अन्य उपचार के बन्द कर देने पर भी शूगर (शर्करा) सम्वन्धी उपचार के लिए चिकित्सको का अत्यन्त आग्रह रहा।

शूगर (शर्करा) पर नियत्रण पाने का कार्य वैसे सादडी सम्मेलन से ही चरितनायक अपनी श्रमण मर्यादानुसार कर ही रहे थे। अब डॉ शूरवीरसिहजी ने आपको और अधिक सचेष्ट कर दिया। तदनुसार युवाचार्यश्री अब अपनी समस्त सघ-व्यवस्था, आदि की प्रवृत्तियो को गौण करके केवल सेवा के कार्य मे ही लीन रहने लगे और नियमित समय पर इजेक्शन आदि का ध्यान रखने लगे। परिणामस्वरूप सथारे के कुछ दिनो पूर्व इजेक्शन बन्द कर देने पर भी जीवन की चरम घड़ियो तक कभी अचेतावस्था का प्रसग नही आया।

संघर्ष, अन्तर आवाज और संघ के बीच

अस्वस्थता के इसी दौर-दौरे में सं २०१६–१७–१८ एवं १९ के चार चातुर्मास उदयपुर की पावन भूमि पर व्यतीत हो गए। अन्तिम वर्षावास के पश्चात् तो आचार्यश्री की वेदना अति उग्र रूप ले चुकी थी। वेदना की उत्कटता को देखकर माने हुए सुयोग्य चिकित्सक डॉ रामावतार ने आचार्य देव से निवेदन किया कि "रोग अति उग्र रूप लेता जा रहा है, अत. इसके शमन हेतु कुछ उपचार लेना आवश्यक है। आप कुछ औषधि ले लेगे, तो वेदना कुछ कम होगी।"

आचार्यश्री ने सहज स्मिति के साथ गम्भीर स्वर मे उत्तर दिया—"डॉ

चू कि उदयपुर के इतिहास मे उपर्युक्त राज प्रागण मे इतने विराट् धार्मिक एव सार्वजनिक समारोह का प्रथम अवसर था, अत सघ सदस्य कुछ चिन्तित से थे कि इतनी बडी व्यवस्था हम कैसे कर पावेगे, किन्तु महान् चेतनाओ की आत्म-प्रभा का अदृश्य प्रभाव अबूझ एव अनोखा होता है। सभी व्यवस्थाएँ स्वचालित यत्रो की तरह स्वयमेव हो जाती है।

साथ ही अल्पावधि के कारण सीमित क्षेत्रो मे ही सूचना प्रेषित की जा सकी थी, अत इतने विराट् जन-समूह के एकत्र होने की सम्भावना नही थी, किन्तु महान् व्यक्तित्व का सौरभ अपने-आप प्रसृत हो जाता है। तदनुसार अनुमानित उपस्थिति की ही व्यवस्था की गई थी। किन्तु कल्पना से अत्यधिक जन-समूह के एकत्र हो जाने से उदयपुर सघ के वरिष्ठ कार्यकर्तागण चिंतित थे कि धूप से जनता घबरा उठेगी एव समारोह मे शान्ति नही रह पायेगी, किन्तु प्रकृति का सहयोग भी इस अवसर पर अतुलनीय रहा। सूर्योदय से समारोह की परिसमाप्ति तक सूर्य प्राय बादलो से ही आच्छादित रहा। केवल कुछ क्षणो के लिये अपने सहचर नवोदित अध्यात्म-सूर्य को आतरिक समर्थन प्रदान करने हेतु, आचार्यश्री द्वारा युवाचार्यश्री को चादर प्रदान करते समय अनावृत्त होकर यह अभिव्यक्ति देते हुए कि जिसे चादर प्रदान की जा रही है, वह अध्यात्म-सूर्य भी अपने अध्यात्म-आलोक से धर्मोद्योत कर दिग्दिगन्त को प्रकाशित करेगा, पुन शाति बनाए रखने हेतु बादलो की ओट मे जा छिपा।

यह प्रत्यक्षीकृत ऐसा प्रसग है, जिसमे विराट् चेतनाओ के प्रति प्रकृति के अतुलनीय सहयोग के साक्षात्कार मे अदृश्य श्रद्धा के अकुर फूट पडते है। अस्तु, चादर-समर्पण का वह उदयपुर के स्वर्णिम इतिहास का दृश्य आज भी सजीव बनकर आँखो मे घूम रहा-सा प्रतीत होता है।

• • •

महापुरुषों का ध्यान तो परमात्मा में लग चुका है। अब वे औषधि नही लेगे। जिस आत्म-साधना के पुनीत लक्ष्य को लेकर आचार्यश्री निकले, उनका ध्यान अब उधर ही केन्द्रित हो चुका है। इतना उच्चकोटि का सहनशील मानव मैने कभी नही देखा। कितनी भयकर वेदना ! पर चेहरे पर एक शिकन भी नही, और न कभी मु ह से उफ् शब्द ही निकलता है।

"ऐसा रोग अमरीका के बड़े पोप को हुआ था। उपचार के सभी साधन उपलब्ध होते हुए भी, वह शान्त नही रह पाता था। उसको मारफिया के इजेक्शन मूर्च्छित करने के लिए दिये जाते थे। भिर भी इतना चिल्लाता कि आसपास के लोगो को सोने नही देता था। इधर आचार्यश्री को देखता हू, तो साश्चर्य मेरा मस्तिष्क श्रद्धा से अवनत हो जाता है। हम लोगो को वैसे धर्म-कर्म मे कम विश्वास होता है, किन्तु यहा आकर मै पूरा हतप्रभ हू। आचार्यश्री इतनी उत्कट वेदना को बिना औषधि के सहारे कितनी शान्तिपूर्वक सहन कर रहे है, यह उनके आत्मबल एव तपोबल का ही परिणाम है। अब हमारा औषधि के लिए आग्रह करना व्यर्थ है।"

डॉक्टर साहब तो कहकर चले गये, किन्तु युवाचार्यश्री के मानस मे गहरी चिन्ता व्याप्त हो गई, क्योकि इस उपर्युक्त परिस्थिति मे स्वय आचार्यश्री एव चतुर्विध संघ के प्रमुख सदस्य सथारा पचखाने का आग्रह करने लग गये थे और युवाचार्यश्री की अन्तरआत्मा अभी इसके लिए साक्षी नही दे रही थी।

आग्रह-अनाग्रह मे ही समय गुजरता जा रहा था। डॉ. साहब भी प्राय· एक श्रद्धालु भक्त की भाति प्रतिदिन दर्शनार्थ उपस्थित होते रहते थे और अपनी थ्योरी (अपने चिकित्सा सिद्धान्त) के अनुसार परामर्श देते रहते। कभी कहते ७५ घटे निकलना मुश्किल है, कभी कहते ४८ घटे नही निकलेगे, आदि।

एक ओर डॉक्टरो के अभिप्रायानुसार आचार्यश्री एव चतुर्विध सघ का आग्रह और दूसरी ओर युवाचार्यश्री की अन्तर आवाज, दोनो का सघर्ष चलने लगा।

प्रमुख-प्रमुख साधु-साध्वी एव श्रावक-श्राविकाओ की ओर से पुनः-पुनः आग्रह होता रहा "आचार्यश्री स्वय यावज्जीवन का सथारा माग रहे है और डॉक्टरो की भी अनुमति हो चुकी है, फिर भी युवाचार्यश्री सथारा नही पचखा रहे है ? इतना मोह करना ठीक नही है।" आदि।

किन्तु युवाचार्यश्री एक छोटा-सा उत्तर फरमा देते कि "नाडी की गति को देखते हुए अभी मेरी अन्तरात्मा नही मान रही है।" इसी गतिविधि मे कितने ही ४८ घटे और कितने ही ७२ घटे निकल गये और आचार्य प्रवर का स्वास्थ्य यथावत चलता रहा। डॉक्टर लोग भी हैरान थे और साधु-साध्वी एव

माँ मरुदेवी समकक्ष ही माँ शृंगार की स्थिति थी। वह भी चतुर्थ आरे के मानवों जैसी भावुक, भद्रिक एव सरलहृदया थी।

वात्सल्य का इससे बढकर और क्या उदाहरण मिल सकता है कि सहस्र-सहस्र जन से अभिवन्दय आचार्य देव के लिए भी माँ के वही स्वर है, जो अपने सामान्य पुत्र के लिये होते है। इसी आदर्श के अनुसार उसी समय चरितनायक युवाचार्यश्री की ओर उन्मुख होकर माँ के ये ममतामयी स्वर फूट पडे।

"मारा धोरा दूधरी अणी चादर मे कालो दाग मत लगाइजो।"

• • •

मरण आत्मा का अलंकरण

पाठको को यह विषय अवश्य अटपटा लग रहा होगा कि जिस मरण से सारी दुनिया कापती है, उसी मरण को एक ओर आत्मा का अलकरण कहा जा रहा है और दूसरी ओर आचार्यश्री मृत्यु को आह्वान करने की शीघ्रता कर रहे है ?

किन्तु यह तथ्यपूर्ण सत्य है । मरण आत्मा का अलकरण, केवल आलकारिक भाषा नही है, अपितु यह प्रकृति का सनातन नियम है ।

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु : ध्रुव जन्म मृतस्य च" अर्थात् जन्म और मृत्यु दोनो ही ससार मे भावी आत्मा के अविनाभावी धर्म अर्थात् अवस्था विशेष है, जो आत्मा के दूषण भी बन सकते है और भूषण भी ।

जैन सस्कृति मे तो जन्म की तरह मरण को महोत्सव का रूप दिया गया है । इतना ही नही, वहाँ जन्म की अपेक्षा मृत्यु महोत्सव का अधिक महत्त्व माना गया है । उसके अनुसार जन्म का कारण मृत्यु है । मरण यदि पवित्र भावनाओ मे हुआ, तो तद कारणक जन्म उच्च स्थिति मे होगा और मरण अभद्र विचारो मे हुआ तो जन्म निम्न कोटि की कीट-पतग आदि योनियो मे होगा, अस्तु । जैन धर्म-सस्कृति ने मृत्यु की अति सुन्दर हृदयग्राही विवेचना प्रस्तुत की है ।

जैन दर्शन की यह ध्रुव मान्यता है कि जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू है । दोनो मे से एक का अभाव हो जाने पर जीवन रूपी सिक्के का सम्पूर्ण अभाव अवश्यम्भावी है, जिसे मुक्तावस्था कहा जाता है ।

मृत्यु के नाम मात्र से भयभीत व्यक्तियो के लिए जैन-दर्शन का यह स्वर अत्यन्त प्रेरणादायी है कि "मृत्यु जीवन का अन्त नही अपितु परिवेश-परिवर्तन मात्र है । अत: नवीन परिधान के सहर्ष स्वीकार के अनुसार मृत्यु का भी सानन्द स्वागत करना चाहिए । उससे भयाक्रान्त होने की क्या आवश्यकता है ? हम कितने ही वचने का उपाय करे, मृत्यु अवश्यभावी है । फिर उससे क्यो डरा जाए ? क्यो नही हंसते हुए उसका स्वागत किया जाय ।" हा, इसका यह अर्थ नही कि हम जन्मते ही आत्म-हत्या कर ले । आत्म-हत्या तो जीवन की

आचार्य का दायित्व

आचार्य का सर्वतोमहत् दायित्व होता है, अपनी विरासत के सुयोग्य भावी नियन्ता का निर्माण करना। शान्त-क्रान्ति के अग्रदूत चतुर्विध सघ के अप्रतिम आराध्य श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशलालजी म सा अपने इस दायित्व-निर्वाह मे पूर्णरूपेण सक्षम एव सफल रहे है।

अपने ही कर-कमलो द्वारा आपने एक ऐसी ज्योति-शिखा प्रज्वलित कर दी, जो युग-युग तक अपने धवल प्रकाश से भूमण्डल को धवलिमा प्रदान करती रहेगी। आचार्य श्री का सघ-नियन्ता का चयन इतना सूझ-बूझ पूर्ण एव अनुपम रहा कि सम्पूर्ण सघ आज उनकी पारखी दृष्टि की सराहना करता है।

अपने उत्तराधिकारी का सर्वतोभावेन समीचीन चयन कर आचार्य श्री कितने आनन्दित एव पुलकित हुए होगे, तथा अपने आपको कितना हलका अनुभव किया होगा, यह विषय शब्द-अभिव्यजना से परे है, किन्तु इतना अवश्य है कि आचार्यश्री ने अपने ज्ञान का विमल आलोक एव चरित्र की शीतल-धवल कान्ति की अनूठी प्रभा अपने उत्तराधिकारी मे छोड दी जो मणि-काचन सयोग की तरह युवाचार्य श्री (चरितनायक) मे द्विगुणित ज्योतित होने लगी।

आचार्यश्री की ज्ञान एव चारित्र की निर्मल एव कान्त प्रतिछाया युवाचार्यश्री मे उसी भाति उत्तरित्त हुई, जैसे एक दीपक की ज्योति दूसरे दीपक मे उत्तरित होती है।

अस्तु, आचार्यश्री ने अपना सम्पूर्ण दायित्व युवाचार्यश्री के सशक्त कन्धो पर डाल दिया और अब दोनो महामहनीय व्यक्तित्व उदयपुर की पूत धरा पर सूर्य और उसकी दीप्ति, चन्द्र और उसकी कान्ति, दीप और उसकी ज्योति एव दुग्ध और उसकी धवलिमा के समान सुशोभित होते हुए अपने धवल यश परिमल को दिग्दिगन्त तक प्रसृत करने लगे।

विनम्र सेवक

"नमन्ति फलिनो वृक्षा" के नीति वाक्य के अनुसार यह प्रकृति का सनातन नियम है कि वृक्ष जितना-जितना फलवान होता है, उतना-उतना अधिक विनम्र होता जाता है। ठीक उसी प्रकार महान् चेतनाए ज्यो-ज्यो विकास की सीढियो पर चढती जाती हैं, त्यो-त्यो अधिकाधिक विनम्र बनती जाती हैं।

चूकि श्रद्धेय चरितनायक की चेतना, विराटता एव महानता की अनुगामिनी चेतना है, अत आचार्यत्व जैसे गरिमामयपद पर प्रतिष्ठित होकर

द्विज-सस्कार एव विवाह आदि के ही स्वरूप एव विधि-विधानो का विवेचन उपलब्ध होता है, जबकि जैनागमो के परिशीलन से ज्ञात होता है कि वहा जन्म-महोत्सव से अधिक विवेचन-पूर्ण मृत्यु-महोत्सव का निरूपण मिलता है। "अकाम मरण एवं सकाम मरण" जैसे आगमो के पूरे-के-पूरे अध्याय मृत्यु के स्वरूप, विधि एव लक्षणो के प्रतिपादन से भरे पड़े है। यहा तक कि मृत्यु की अवश्यम्भाविता को सदा स्मरण रखने के लिए श्रावको के नित्य क्रम-प्रतिक्रमण विधि मे सलेखना, जो मृत्यु महोत्सव की पूर्व भूमिका है, का सयोजन किया गया है।

सक्षेप मे जैन-दर्शन का कथन है कि मरण ऐसा हो, जिसके पश्चात् पुनः जन्म-मरण की परम्परा मे न आना पडे, सदा-सदा के लिए अमरता प्राप्त हो जाए। इसी को वहा "पण्डित मरण" की सज्ञा दी गई है। पण्डित मरण की विधि-प्रक्रिया कितनी भी दुरुह एव विकट क्यो न हो, फिर भी पुनः पुनः जन्म-जरा और मृत्यु की महावेदना से तो वह श्रेयस्कर ही है। अनन्त जन्म-मरण के दु.खो की तुलना मे समाधि मरण का ममत्व-त्याग रूप कष्ट नगण्य ही होगा।

इसी पुनीत तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए, जैन श्रमण एव श्रमणोपासक यह नही चाहते कि उनका देह-त्याग रोते-कलपते, संक्लेश करते अथवा राग-द्वेष की अग्नि मे झुलसते हुए असावधान अवस्था मे हो। वे चाहते है कि शान्त एव स्वस्थ विचारो के साथ विवेकपूर्ण जागृति के क्षणों मे देह का विसर्जन हो।

जैन मनीषियो की यह मृत्यु-सम्बन्धी विवेचना मरण की विभीषिका को बहुत कुछ सरल कर देती है। नैतिक मर्यादा की स्थिरता के लिए तो इसे दर्शन शास्त्र का बहुमूल्य सिद्धान्त कह सकते है।

जैन धर्म की इस मान्यता का प्रभाव धीरे-धीरे परिपार्श्ववर्ती सभी धर्मो एव विचारको पर न्यूनाधिक रूप मे पडा है। यहा तक कि ईसाई एवं इस्लाम धर्म, जो कि पुनर्जन्म के अस्तित्व मे ही विश्वास नही करते, उन्होने भी मृत्यु के पूर्व बोध को स्वीकार किया है। बाइबिल का निम्न वाक्य मरण के माध्यम से जीवन की अमरता का सुन्दर बोध कराता है :—

"Learn to die so that you may begin life"

अर्थात् यदि तुझे शाश्वत जीवन पाना है, तो पहले मरना सीख।

इस्लाम के महामान्य ग्रन्थ कुरान शरीफ मे मृत्यु के विषय मे बहुत स्पष्ट कहा है—"मौत् किन लन्तु मौत्" अर्थात् मरने के पूर्व मरो।

साहव, आपकी औषधि तो अब तक मै बहुत ले चुका हू—अब मै परमात्मा की औषधि लेना चाह रहा हू। अपने ध्यान को शरीर से हटाकर परमात्मा मे लगाने का प्रयास कर रहा हू। हमारी अन्तिम औषधि परमात्मा का स्मरण ही है और मेरा विश्वास है कि वही औषधि हमे आत्मिक शान्ति प्रदान कर सकती है। आपका दृष्टिकोण अपनी एलोपैथिक थ्योरी पर है और वह किसी हद तक ठीक भी है, किन्तु एलोपैथिक थ्योरी एव सम्पूर्ण शरीर-विज्ञान जहा परास्त हो जाता है, वही हमारी आध्यात्मिक थ्योरी प्रभावजनक होती है। आप लोगो की प्रबल भावना के आधार पर ही मैने अब तक औषधोपचार लिया था। आपकी भावनाए अति श्रेष्ठ हैं। आप चाहते है कि मै मानसिक स्वस्थता की तरह शरीर से भी स्वस्थ रहू, किन्तु विगत कुछ दिनो से मेरी अन्तरात्मा अब परमात्मा की औषधि के लिए ही विवश कर रही है। अत मैने बाहर के सभी उपचार बन्द कर दिए।"

"आचार्य प्रवर, आप महायोगी है। आपकी साधना उच्चकोटि की अनूठी साधना है। आपकी अन्तर आवाज को हम नही पहुँच सकते हैं और न आपकी शक्ति की थाह हम पा सकते है। किन्तु शरीर-विज्ञान भी अपना कुछ महत्त्व तो रखता ही है। बाहर के पदार्थों का प्रभाव शरीर पर पडता है, जिसका अनुभव आपश्री भी कर रहे है। यह ठीक है कि कोई उस प्रभावजन्य वेदना को समभाव से सह जाता है और कोई चिल्ला-चिल्लाकर उसे प्रगट कर देता है। आपकी सहन-शक्ति निश्चित ही उच्चकोटि की है। किन्तु हमे आपकी यह वेदना असह्य प्रतीत हो रही है। अत आप हमारे सन्तोष के लिए ही कुछ औषधि ग्रहण कर लीजिये" डॉक्टर साहव ने पुन विनम्र शब्दो मे निवेदन किया।

"इतने समय तक मै आप लोगो के सतोष एव सम्मान के लिए ही उपचार, आदि ले रहा था। मेरी तो आपरेशन की भावना भी नही थी, किन्तु चतुर्विध सघ का आग्रह रहा और वह भी मुझे करवाना पडा, किन्तु अव आप अधिक आग्रह नही करे। मुझे कुछ अपनी औषधि ही लेने दे। अव यह शरीर अधिक टिकने वाला नही है।" आचार्यश्री ने पुन निषेध कर दिया।

डॉ रामावतार कुछ निराश एव उदासीन हो एक वार पुन प्रार्थना करने लगे, तव युवाचार्यश्री (चरितनायक) से नही रहा गया। आपश्री ने डॉक्टर साहव को अलग ले जाकर पूछा "डॉक्टर साहव, आचार्यश्री की शारीरिक स्थिति कैसी है ? कुछ समझ मे नही आ रहा है। वेदना कुछ अधिक ही लग रही है और आचार्यश्री औषधि लेना भी स्वीकार नही कर रहे हैं।"

डॉक्टर साहव ने अति गम्भीर स्वर मे उत्तर दिया "महाराजश्री, आप और हम क्या सोचे, हमारी दौड तो औषधियो तक ही सीमित है। किन्तु इन

संज्ञा दी गई है। दूसरा मरण वह है, जिसमें वर्तमान दृश्य देह का समूल विलय हो जाता है। आत्मा निकल कर किसी नूतन देह को अपना आधार वना लेती है। समूल विलय वाले इस मरण को आगम की भाषा मे "तद्भव" मरण कहा जाता है। नित्य-मरण, जो प्रतिक्षण होता रहता है, उसका विचारो पर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत नही होता। किन्तु तद्भव-मरण, परिणामो की उच्चता एव हीनता के आधार पर आगामी जीवन पर अपना पूरा-स्पष्ट प्रभाव छोडता है। "अन्त मति सो गति" वाली उक्ति इसी मरण को आश्रित कर चरितार्थ होती है।

तद्भव-मरण अर्थात् जीवन की दृश्यमान ऐहिक लीला की परिसमाप्ति की बेला मे यदि विचारो मे उच्चता एव ऊर्ध्वारोहण होगा, तो आगामी जीवन निश्चित भव्य होगा और यदि विचार निम्न कोटि के हुए, तो चेतना निश्चित अधोगामी होगी।

अन्तिम समय के विचारो के इस परिष्कार को ही सल्लेखना कहा जाता है। यह जीवन की आध्यात्मिक देहातीत भावना का अलौकिक प्रतीक है।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मरण ससार के किसी भी प्राणी को इष्ट नही है। इसीलिए दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर के स्वर मुखरित हुए है—

"सव्वे जीवा वि इच्छन्ति,
जीविउ न मरिज्जिऊ।
तम्हा पाणि वह धोर,
णिग्गन्था वज्जयन्तिण ॥"

अर्थात् संसार की प्रत्येक आत्मा, चाहे वह कीट-पतग की क्षुद्र योनि मे ही क्यो न हो, जीना चाहती है, मरना कोई नही चाहता। फिर भी मृत्यु किसी की मित्र नही बनती, वह सभी को अपना ग्रास बनाती ही है। ऐसी स्थिति मे साधक उस व्यापारीवत व्यवहार करता है, जिसके मकान मे स्वर्ण-रजत, मणि-मुक्ता आदि बहुमूल्य पदार्थ पडे हो और उसमे आग लग जाए तो वह भरसक प्रयत्न करता है, उस मकान की रक्षा का। कदाचित् मकान नही बच पाए, तो भी उन बहुमूल्य पदार्थो की रक्षा के तो प्रयास जी जान से करता ही है। ठीक उसी प्रकार नियम-व्रत-शीलादि आध्यात्मिक लक्ष्मी का धारक साधक गुण-रत्नो के आधारभूत शरीर की यथाशक्ति यथासाध्य आहार-औषधि आदि के द्वारा रक्षा करता है, उसका विनाश उसे अभीष्ट नही है। परन्तु समुचित आहार-विहार उपचार का सयोजन करते हुए भी जब वह यह देखता है कि अब इस देह की रक्षा अशक्य है, तो व्रत-शीलादि आत्म-गुणो की,

श्रावक समुदाय भी। साथ ही युवाचार्यश्री की सूक्ष्म प्रज्ञा पर सभी आश्चर्य चकित भी थे। इधर युवाचार्यश्री भी चिन्तन अवश्य करते रहते कि सभी का अभिप्राय एक स्वरात्मक है और मैं एकाकी एक ओर हू। कही ऐसा न हो जाए कि सथारे के बिना ही आचार्य प्रवर देह-त्याग कर दे। ऐसी स्थिति मे जीवन-पर्यन्त चतुर्विध सघ मुझे कोसेगा। किन्तु आत्म-पुकार के बिना आप सथारा पचखाना उचित नही मान रहे थे। अपनी ओर से आप पूर्ण सचेष्ट एव सावधान रहते हुए घटा-आध घटा मे बिना किसी निद्रा आदि व्यवधान के नाडी-सस्थान टटोल लेते तथा श्वसन क्रिया का परीक्षण कर लेते। इस प्रकार बहुत दिन इसी स्थिति मे व्यतीत हो गये। उन दिनो आपने अपनी निद्रा पर प्राय पूर्ण नियत्रण सा कर लिया था।

समय-चक्र निरन्तर गतिशील था और युवाचार्यश्री अप्रमत्त-सतत जागरूक बनकर अहर्निश आचार्यश्री के उपपात मे खडे रहते और शरीर की तथा श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्मतम गतिविधि का पर्यावलोकन करते रहते। उस समय न आपको खाने की चिन्ता थी न सोने की। बस, एक ही चिन्ता थी कि सावधानीपूर्वक आचार्यदेव की अन्तिम भत्ता अर्थात् सथारे का सुयोग जुटाना है और आचार्यश्री की आत्मा को मरण के अलकरण से सुसज्ज करना है।

• • •

मे प्रतिष्ठित किया जाता है और भेद-विज्ञान के दिव्य भावो मे मृत्यु-महोत्सव को सफल बनाया जाता है।

अस्तु, आत्म-साधना एवं परमात्म-लीनता की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित आचार्यश्री का मरण-महोत्सव के लिए अपने आपको प्रस्तुत करना तथा मृत्यु-महोत्सव के माहात्म्य को समझने वाले सघ-प्रमुखो का तदर्थ आग्रह होना जैन-दर्शन की मरण-व्यवस्था के सर्वथा अनुकूल ही था। साथ ही युवाचार्यश्री (चरितनायक) का विलम्ब करना भी उनकी अपनी पैनी दृष्टि एव सूक्ष्म प्रज्ञा के आधार पर उचित ही था। वह उनका मोह नही था, अपितु समुचित समय की प्रतीक्षा थी।

यह कहा जा चुका है कि सभी के आग्रह के उपरान्त विलम्ब करते हुए भी युवाचार्यश्री अपने कर्त्तव्य मे पूरे सजग थे। वे उन घडियो की प्रतीक्षा मे थे, जो वास्तव मे सथारा के लिए उपयुक्त हो।

और एक दिन वह घडी भी आ गई जब युवाचार्यश्री ने अपने आराध्य को मोह ममत्व सेनापति के साथ युद्ध हेतु केशरिया बाना पहनाकर सुसज्ज कर दिया, जो विगत पचासो वर्षों के इतिहास मे देखने और सुनने को नही मिलती।

एक आचार्य को इतना सुन्दर समाधि मरण, इतनी लम्बी अवधि का सथारा और वह भी परिपूर्ण सजगता के साथ इतिहास का अनूठा स्वर्ण पृष्ठ बन गया है।

• • •

कठिनाइयो एव सघर्षों से घबराकर भागने का ही दूसरा नाम है और वह सहर्ष नही, सक्लेश पूर्वक होती है ।

जैन-दर्शन मे मरण के सहर्ष वरण का अर्थ इतना ही है कि जब शारीरिक स्थिति साधना के अनुकूल न रहे, शरीर उत्तर देने लग जाए, मृत्यु की घडियाँ अत्यन्त सन्निकट दिखाई देने लगे, उस समय देहादि, भौतिक पदार्थो के प्रति आसक्त बनकर उनके वियोग जन्य दु ख से हाय-त्राहि मचाने की अपेक्षा मृत्यु की अवश्यम्भावी स्थिति को समझ कर समस्त भौतिक पदार्थों के प्रति अनासक्त बनकर प्रसन्नता पूर्वक प्राण-त्याग करना चाहिये ।

जैन धर्म मे मरण का आलकारिक भाषा मे अति सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

जैसे किसी पराक्रमी, शौर्य एव धैर्य सम्पन्न सम्राट् पर कोई रिपुदल कभी आक्रमण कर देता है, तो वह अपनी सभी सुख-सुविधाओ को नगण्य मानकर वीर रस के साथ शारीरिक कष्टो-प्रहारो से सामना करने को सुसज्ज हो जाता है और विजय श्री प्राप्त कर अति प्रसन्न हो उठता है । वैसे ही महान् आत्माएँ कालरूप शत्रु को रोगादि दूतो के द्वारा सन्निकट जानकर तत्काल उनके प्रतिकार हेतु सचेष्ट हो जाती है । चू कि मरण शत्रु का प्रतिकार अशक्य ही नही असम्भव है, अत धीर-धौरी पुरुष शारीरिक सुख-लिप्सा का परित्याग कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप चतुरगिणी सेना से सुसज्ज हो सकाम-पडित मरण रूप सग्राम के द्वारा काल रूप दुर्दान्त शत्रु को परास्त कर अनन्त एव अक्षय आत्मिक सुख रूप राज्य को प्राप्त क़र लेते है ।

जैन दर्शन की यह ध्रु व मान्यता है कि आत्मा अजर-अमर-अविनाशी तत्त्व है । उसकी कभी मृत्यु नही होती । मरण तो देह का धर्म है या यो कहे, मरण देह का रूपान्तरण भर है और वह अवश्यम्भावी भी है । फिर उसके लिए छटपटा कर क्यो राग द्वेषात्मक कुपरिणाम उत्पन्न किए जाएँ ? यह मानव का निरा अज्ञान ही है कि वह मृत्यु की घडियो मे, जो वास्तव मे नवजीवन मे प्रवेश की घडियाँ हैं, रोता-बिलखता है । पुरातन गृह को छोडकर किसी नूतन भव्य भवन मे प्रवेश करते हुए रुदन जैसा अमगल कार्य नही किया जाता। फिर जरा-जीर्ण देह-गृह को त्यागकर आगामी जीवन के भव्य प्रासाद मे प्रवेश करते हुए क्यो अमगल सूचक रोना रोया जाए ? इससे हमारा पूरा आगामी जीवन सक्लेशमय बन जाएगा ।

जैन संस्कृति और मरण-विधि

यही कारण है कि अन्यान्य सभी धार्मिक एव दार्शनिक ग्रथो मे जन्म,

साहब, वैसे विगत कई दिनो से मैंने औषधि एव अन्नादि बन्द कर रखे हैं। जो कुछ तरल पदार्थ लेता था, उन्हे भी अब बन्द करके जीवन-पर्यन्त के लिए त्याग कर देना चाहता हूँ अर्थात् अब जाव-जीव का सथारा लेना चाहता हूँ। आपकी क्या राय है ?"

डॉ० साहब ने अत्यन्त गम्भीर स्वर मे कहा—"महाराजश्री, आपकी अद्भुत एव दिव्य सहन-शक्ति के समक्ष हम ही नही, हमारी एलोपैथिक थ्योरी भी कभी की नत-मस्तक हो चुकी है। आपकी आत्म-शक्ति अलौकिक है। हमने कुछ महीनो पूर्व बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉक्टर रजस को सम्पूर्ण रिपोर्ट लिखकर उनसे परामर्श लिया, तो उनके समाचार भी यही आए थे। इन महात्माजी के समक्ष हमारी डॉक्टरी थ्योरी तो फेल हो चुकी है। महात्माजी अपने तपोबल के तेज से ही इतनी शान्त-प्रशान्त मुद्रा मे विराज रहे है। ऐसी स्थिति मे मैं क्या निवेदन करूँ ? आपश्री की अन्तरात्मा जैसा कहे, आप कर सकते है।" इतना कहकर डॉ० साहब वन्दन करके चले गए।

कुछ समयोपरान्त आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री से कहा—"अब मैं यावज्जीवन का सथारा ग्रहण करने के लिए तत्पर हूँ। मैने अपनी पूरी आलोचना पूर्व मे स्थविर श्री सूरजमलजी म० सा० के समक्ष कर ली है। अब मैं जिस विधि का सकेत करूँ, उसके अनुसार आप मुझे सथारा पचखावें। सथारे की विधि कराते समय बीच मे किसी से बातचीत न करे।"

युवाचार्यश्री ने "तहत्" के स्वर मे स्वीकृति दी और कुछ क्षणो के लिए विचार मग्न हो गए—"पूर्वाचार्यो की परम्परा के अनुसार आचार्यश्री एव सन्त-सती वर्ग को सथारा पचखाने के पूर्व प्रमुख-प्रमुख सन्त-सती एव श्रावक-वर्ग का परामर्श लेना आवश्यक है। किन्तु तुरन्त ही भीतर से उत्तर मिल गया कि चतुर्विध सघ तो इसके लिए अपना आग्रहात्मक परामर्श विगत कई दिनो से दे रहा है। केवल मैं ही अपनी अन्तरात्मा की आवाज से निषेध करता रहा हूँ। अब यदि परामर्श के चक्कर मे उलझा जाएगा, तो समय निकल जाएगा।" इस प्रकार चिन्तन कर आपश्री सथारा पचखाने को तत्पर हो गए।

चूंकि उस समय कमरे मे आचार्यश्री के अतिरिक्त और कोई नही था, अत: अन्य किसी से बात करने का प्रश्न ही नही था।

आचार्यश्री कुछ क्षणो के लिए ध्यान-मुद्रा मे लीन हो गए। और जब आँखे खोली तो एक अपूर्व तेज आपकी आँखो से निसृत हो रहा था। अनन्तर आपश्री ने सथारा-विधि का निर्देश करते हुए युवाचार्यश्री को अन्यान्य विधि-पाठो के साथ दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन सुनाने का सकेत किया और स्वय उक्त पाठो को सुनने मे तल्लीन हो गये।

इसी बात को मौलाना रूम साहब ने इस रूप मे अभिव्यक्ति दी है :—

"वमीर ए दोस्त पैश अज मर्ग ।
अगर भी जिन्दगी खाही ।।"

हे मित्र, यदि तू जीवन को पाना चाहता है, तो मरने से पहले मर ।

हिन्दू कुल-भूषण राजस्थानी अध्यात्म कवि महाराज चतुरसिंहजी ने निम्न शब्दो मे अपने विचार प्रस्तुत किये हैं—

"मरणो जाणो या मनखा मोटी बात ।
मरणो मरणो सारा केवे, मरे सभी नर-नारी रे ।
मरवा पेली जो मर जावे तो बलिहारी रे ।। मरणो० ।।"

अर्थात् मृत्यु का मौलिक स्वरूप समझ कर मरण के पूर्व ही उसका सहर्ष आह्वान करना वीरत्व का द्योतक है ।

संल्लेखना · एक विवेचन

इस प्रकार मृत्यु के सन्दर्भ मे विभिन्न विचारको ने अपने-अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं । किन्तु इसका प्रयोगात्मक (Practical) रूप जैन-दर्शन की ही विरासत है । वहा अन्य विचारको के समान मृत्यु-सम्बन्धी उपर्युक्त विचार, विचार तक ही सीमित नही हैं, अपितु साधक अन्य महोत्सवो के समान ही मरण महोत्सव को भी वडे उत्साह के साथ आत्मसात् करता है ।

जैसे दीपमालिका आदि अन्य उत्सवो के लिए गृह-सफाई आदि पूर्व तैयारियाँ की जाती हैं, वैसे ही मरण-महोत्सव की पूर्व तैयारी का जैनागमो मे अति समीचीत एव बोधगम्य चित्रण मिलता है । इसे जैनागमो मे सल्लेखना युक्त सथारा कहते है ।

"सल्लेखना" जैन धर्म का पारिभाषिक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—सम्यक् काय-कषाय लेखना सल्लेखना—सम्यक् प्रकार से काय (देह) और कषाय (राग द्वेषात्मक वृत्तियो) को कृश करना सल्लेखना है । तात्पर्य यह है कि जीवन की चरम घडियो मे वाह्य शरीरादि एव आभ्यन्तर राग-द्वेषादि वृत्तियो एव उनके कारणो को न्यून करते हुए, विना किसी दवाव के स्वेच्छया आहारादि, पदार्थों का परित्याग करने की इस पवित्र क्रिया विशेष को सल्लेखना, कहते हैं ।

वैसे मरण प्रतिपल घटित होने वाली क्रिया है । जवसे व्यक्ति जन्म लेता है, प्रतिक्षण मरण के सन्निकट होता जाता है । इसे जैनागमो मे नित्य मरण की

(शोर-गुल) न हो और आचार्यश्री की ध्यान-लीनता में कोई व्यवधान न पडे। वे इसमे बहुत अधिक सफल भी रहे। ऐसी व्यवस्था की गई थी कि दर्शनार्थी कुछ दूरी से मौनव्रत के साथ दर्शन कर-कर के लौटते रहे।

सजग चेता

एक तरफ दर्शनार्थियो की अपार भीड और दूसरी ओर परम शान्त, नीरव वातावरण। युवाचार्यश्री मधुर स्वर एवं लालित्यपूर्ण भाषा मे आचार्यश्री को अध्यात्म पद सुना रहे थे। आचार्यश्री अब गुरु-शिष्य और भक्त-भगवान् के नाते से ऊपर उठ चुके थे, अत भीड़ से उनको कोई सम्बन्ध नही था। वे अध्यात्म पदो को सुनने मे एकाग्र थे। सहसा युवाचार्यश्री का ध्यान कुछ दर्शनार्थियो की ओर चला गया और वे उच्चरित पदो का पुन. उच्चारण करने लगे तो आचार्यश्री ने तुरत सकेत करते हुए कहा—"ये तो बोल चुके हो। आगे बोलो।" कितनी सजगता है चरम घड़ियो मे भी। वास्तव मे उनका पूरा अवधान परम अध्यात्म मे ही केन्द्रित हो चुका था।

उसी दिन लगभग १२—१ बजे कुछ मूर्ति-पूजक साध्वियाॅ एव २ बजे के लगभग स्थानकवासी अन्य सम्प्रदाय की सोहनकंवरजी आदि साध्वियाँ लम्बा विहार कर पधारी। आचार्यश्री ने अति सजगता के साथ उनसे खमत-खामणा किया। आपश्री ने मध्याह्न १२ बजे के लगभग चौविहार सथारा कर लिया था।

श्वासोच्छ्वास की गति अवश्य कुछ तीव्र हो गई थी, फिर भी चेतना मे किसी भी प्रकार का व्यवधान नही था। समय के साथ शारीरिक परमाणुओ मे अवश्य शैथिल्य का सचार हो रहा था, किन्तु आत्मा अत्यत सजग थी, चेहरे का तेज प्रतिपल द्विगुणित होता जा रहा था। लगभग तीन बजे के आसपास आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री को सकेत किया—"अब यह कमरा खाली कर दो, मुझे एकान्त चाहिये।" तदनुसार जो सन्त समीप खडे थे, सभी बाहर हो गए। केवल प० श्री सूरजमलजी म० सा० एव युवाचार्यश्री ही भीतर रहे। अनन्तर आचार्यश्री बैठकर ध्यान के लिए आसन स्थिर करने लगे, किन्तु शारीरिक अशक्तता के कारण वैसा नही कर सके। परिणामत. सोये-सोये ही ध्यान की आगमोक्त विधि का अनुशीलन करने लगे। उस समय आपश्री के घुटने मे कुछ खाज चलने लगी, जिसका प्रतिकार आप स्वय अपने हाथ से ही कर रहे थे। जब युवाचार्यश्री ने खुजलाना चाहा तो आपश्री ने निषेध कर दिया।

इतनी सावधानी एव सजगता देखकर युवाचार्यश्री के मानस में अनेक तरह से सकल्प-विकल्प उठने लगे। आपश्री चिन्तन करने लगे—"मैंने बिना सघ-प्रमुखो की अनुमति से सथारा पचखा दिया और आचार्यश्री अभी तक इतने

सल्लेखना द्वारा नश्वर देह का वीतममत्व मूल्याकन करके, चिति की पावनता की रक्षा करता है।

सल्लेखना के काल-प्रयोजन एव विधि के विषय मे "रत्न-करण्डक श्रावकाचार" नामक ग्रन्थ मे स्पष्ट किया गया है—

"उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि, रूजाया च नि.प्रतिकारे।
धर्माय तनु विमोचन, माहु सल्लेखना मार्या।।"

अर्थात् प्राणान्तकारी अपरिहार्य उपसर्ग के कारण (ऐसा दुर्भिक्ष, जिसमे अन्न-पानी का भयकर अभाव हो) वृद्धावस्था के कारण देह के अत्यन्त जरा-जीर्ण हो जाने पर, असाध्य रोगोत्पत्ति हो जाने पर, अथवा अन्तर दृष्टि से आयु की समाप्ति एव मृत्यु की समीपता परिलक्षित होने पर धर्म रक्षार्थ देह-त्याग करना सल्लेखना का काल एव प्रयोजन है।

"भगवती आराधना" मे सल्लेखना को आभ्यन्तर एव बाह्य दो भागो मे विभक्त करते हुए कहा है—

"सलेहणाहि दुविहा अब्भन्तरिआयवाहिरा चेव।
अब्भन्तरा कसाएसु, बाहिरा होइह सरीरे।।"

क्रोधादि, आन्तरिक विकारो का सम्यक् परित्याग आभ्यन्तर सल्लेखना तथा देहादि बाह्य पदार्थों पर से आसक्ति का सपरित्याग बाह्य सल्लेखना है।

संल्लेखना आत्म-हत्या नहीं

एक बात यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा कि सल्लेखना की उपर्युक्त प्रक्रिया को आत्म-हत्या की कोटि मे लेने की भ्रान्त धारणा न बना ली जाए, क्योकि आत्म-घात तीव्र सक्लेश, क्रोधादि के आवेश एव परेशानियो के मारे हताश होकर अज्ञानवश शस्त्र-प्रयोग, विषभक्षण, अग्नि-प्रवेश, जल-प्रवेश, गिरिपतन आदि घातक क्रियाओ के द्वारा होता है, जवकि इन क्रियाओ तथा क्रोधादिक के आवेश का सल्लेखना मे सर्वथा अभाव होता है। सल्लेखना शान्ति एव विवेकपूर्वक देहादि पदार्थों के प्रति ममत्व का त्याग है, जो जीवन की सम्पूर्णता का अनिवार्य अग है। जीवन रूप सिक्के की परिपूर्णता जन्म रूप एक बाजू के साथ मरण रूप दूसरे पहलू को भी समझने मे है। निष्कर्ष की भाषा मे सल्लेखना, जीवन के आन्तरिक रागादि विकारो पर विजय-प्राप्ति के लिए की जाती है, अत यह एक आध्यात्मिक क्रिया है जो आत्म-सुधार एव आत्म-उत्थान का अन्तिम एंव सर्वोत्तम विचारपूर्ण प्रयत्न है। सल्लेखना मे आत्म-ध्यान मे रमण करते हुए आत्मा को पर-भावो से विलग कर स्व के द्वारा स्व

जब आचार्यश्री की आत्मा भौतिक देह से विलीन हो गई, तो कुछ क्षणो के लिए अगाध धैर्यधारी युवाचार्यश्री के धैर्य का बन्ध भी टूट गया। अन्तिम सहकार की दृष्टि से आपश्री ने प्रबल साहस एव धैर्य के साथ सब कुछ कर्त्तव्य कर लिया, किन्तु वियोग तो वियोग ही होता है और वह भी जीवन-निर्माता अपने सर्वस्व आराधक से आराध्य बना देने वाले "गुरु" से वियोग। सह्य हो भी कैसे सकता है ? फिर भी आपश्री ने अपनी अन्तर्वेदना को भीतर-ही-भीतर समाहित करते हुए सजल नेत्रो से, बाहर टकटकी लगाए शान्त नीरव खड़े हजारो भक्तो को प्रमुख श्रावको के माध्यम से सूचित किया, "आचार्यश्री की आत्मा अपनी अनत की यात्रा के लिए प्रस्थान कर चुकी है।"

• • •

आचार्यश्री का समाधि-मरण

हुआ यह कि युवाचार्यश्री निरन्तर सजगता के साथ अपने आराध्य के उपपात मे बने रहते। दिनाक ९-१-६३ की रात्रि मे आपश्री को आचार्य देव की नाडी-गति मे कुछ परिवर्तन परिलक्षित हुआ। आपने नि.सकोच आचार्य देव से निवेदन कर दिया कि "आपश्री बहुत लम्बी अवधि से संथारा पचखाने का आग्रह फरमा रहे थे, अब यदि आप इस विषय मे किसी से परामर्श करना चाहे, तो कर लिरावे।"

अपनी चेतना के विमल द्रष्टा आचार्यश्री ने मधुर स्मिति के साथ कहा— "तो अब आपकी आत्म-साक्षी तैयार है।"

"तहत् गुरुदेव, अब मुझे नाडी की गति मे परिवर्तन लग रहा है।" युवाचार्यश्री ने विनम्र उत्तर दिया।

"तो ठीक है, प्रात काल यदि डॉ० शूरवीरसिंहजी उपस्थित हो, तो आप ही उनसे परामर्श कर लेना।" आचार्यश्री ने गम्भीर उत्तर दिया।

आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री की उपर्युक्त सामान्य से वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो महान् चेतनाएँ अपने-अपने कर्त्तव्य के प्रति कितनी सजग थी। आचार्यश्री वैसा ही हास्य बिखेर रहे है, जैसे किसी महोत्सव की पूर्व तैयारी मे होता है, और युवाचार्यश्री वैसे ही निवेदन कर रहे हैं, जैसे महोत्सव मे जाने वाले के लिए साजो-सामान जुटा रहे हो।

दूसरे दिन अर्थात्—दिनाक १०-१-६३ माघ कृष्णा एकम प्रात काल सूर्योदय के पश्चात् जब डॉ० श्री शूरवीरसिंहजी प्रतिदिन की भाति दर्शनार्थ उपस्थित हुए और वन्दनपूर्वक सुखसाता की पृच्छा के पश्चात् लौटकर दरवाजे तक पहुँच गए, तो सजग चेता आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री से कहा— "तुमने डॉ० साहब को सथारे के लिए नही पूछा ?"

युवाचार्यश्री ने कहा—"मेरा ध्यान कुछ दूसरी ओर चला गया" और डॉ० साहब को पुन: पुकारा गया। वे सीढियो के पास से पुन: लौटकर आए और आचार्यश्री के समीप खडे हो गए। तब आचार्यश्री ने ही पूछा, "डॉक्टर

शव-यात्रा अपने आप मे अनूठी थी। लगभग ५० हजार की मानव-मेदनी से परिवृत्त वह दृश्य दर्शनीय ही था। शब्द चित्र के माध्यम से चक्षुदृष्ट उस अभूतपूर्व दृश्य को अकित करना, उसी की अनुपमता को सकुचित करना होगा।

मुमुक्षु साधक (वैरागी) के रूप मे मुझे भी उस महामानव के पवित्र पार्थिव परमाणुओ को सस्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इतना ही नही, बाल सुलभ चपलता के माध्यम से मैं उस हजारो की जन-मेदनी को चीरता हुआ रजत एव स्वर्ण से निर्मित विमान के सन्निकट पहुँच गया। फलत विमान मे कन्धा लगाने के सौभाग्य से भी वचित नही रहा। सौभाग्य को भी अहोभाग्य तक उठना था, अत. यात्रा-पथ के लगभग दो मील तक उस धन्य शरीर को, जो एक महा मनस्वी की विराट् साधना का मन्दिर रहकर पावन बन चुका था, कन्धा देने का अवसर मुझ अकिचन को उपलब्ध हो गया। सोचता हूँ तो आज भी आनन्द-स्फुरित हो जाता हूँ। आज भी आँखो के सामने वह दृश्यावली सजीव है।

• • •

जिस प्रकार एक स्वस्थ यात्री अपने प्रवास के लिए सूट केस (बस्ता, मजूषा) सजाने का कार्य करता है, ठीक उसी प्रकार आचार्यश्री अपने अगले जीवन के महाप्रयाण के लिए आत्मलीनता का ताजो-सामान जुटाने लगे। उस समय आपकी भाव-भगिमा दर्शनीय थी। आपके अणु-अणु से ऐसा मुखरित होतासा प्रतीत हो रहा था कि—

"जिस मरने से जग डरे, मुझ मन अति आनन्द।
मरने ही से पाइये, पूरण परमानन्द।"

इस आनन्दलीनता मे ही सथारे की विधि पूर्ण हुई। तब आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री के समक्ष अपने अन्तिम वाक्य कहे कि "मैंने तीन दिन पूर्व स्थविर प० मुनि श्री सूरजमलजी म० सा० के समक्ष अपनी सब आलोचना कर ली है और अभी पुन: आलोचना करके छह जीव निकाय (दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्याय) सुन लिया है। अब मुझे डॉक्टर, वैद्य या अन्य कोई गृहस्थ स्पर्श न करे। मैं अब अपने ध्यान मे लीन होना चाह रहा हूँ। इस प्रकार १० २० बजे तिविहार सथारा ग्रहण कर आचार्यश्री ध्यानस्थ हो, आत्मलीन हो गए।

विधि के समाप्त हो जाने पर युवाचार्यश्री ने बाहर चतुर्विध सघ को सूचित कर दिया कि—"आचार्य श्रीजी म० सा० ने यावज्जीवन का सथारा पचख लिया है। विद्युत् वेग की तरह सूचनाएँ पूरे शहर मे ही नही, अपितु आकाशवाणी के माध्यम से देश के कोने-कोने मे पहुँच गई। तत्र उपस्थित जन-समुदाय एव सन्त-सती वर्ग मे जो सथारा नही पचखाने पर एक खिन्नता एव असमजस की स्थिति थी कि कही युवाचार्यश्री, आचार्यश्री को खाली हाथ न भेज दे, समाप्त हो गई और मरण-महोत्सव के महत्त्व को समझने वाले व्यक्तियो मे कुछ आन्तरिक आह्लाद की स्थिति व्याप्त हो गई।

सथारे का काल सानन्द व्यतीत हो रहा था। माघ कृष्णा एकम, दिनाक १०-१-६३ का दिन इसी प्रकार आत्म-समाधि मे ही युवाचार्यश्री के मधुर स्वर से आगम पाठ सुनते हुए शान्ति-पूर्वक व्यतीत हो गया। दूसरे दिन प्रात काल आचार्य प्रवर आगमोक्त सथारे के आसन से स्थिर बैठकर ध्यान लीन थे। तत्कालीन चेहरे का तेज अपूर्व था, नेत्रो मे अलौकिक ओज टपक रहा था तथा मुख-मण्डल पर शान्ति का साम्राज्य अठखेलियाँ कर रहा था।

सूर्योदय के पश्चात् स्थानीय एव बाहर से आगत हजारो की जन-मेदनी अपने अप्रतिम आराध्य के दर्शनार्थ पौषध-शाला के भीतर एव बाहर सडको पर खडी छटपटा रही थी। उदयपुर के प्रबुद्ध एव कर्मठ कर्म-निष्ठ स्वय सेवक उनके दर्शनो का ऐसा समुचित प्रबन्ध करने मे व्यस्त थे कि किंचित् मात्र कोलाहल

जिन पर शासन का भार रखा है, सक्षम है तथा चारित्र-सम्पन्न, शान्त, दान्त एव गम्भीर है। उनको सभी सन्त-सतियो एव श्रावक-श्राविकाओ की ओर से पूरा सहयोग मिलता रहे, ताकि वे शासन को अधिक से अधिक दिपा सके।

"भगवान् महावीर की श्रमण-सस्कृति सदियो से चली आ रही है। उसे अक्षुण्ण एव पवित्र बनाये रखने के लिए आचार्यश्री साधना-पूर्वक सचाई पर चलते रहे है। उनके मार्ग मे अनेक बाधाये आई, पर वे शाति से सहन करते हुए मानापमान की ओर ध्यान न देकर उत्तरोत्तर आगे बढते रहे। उसी पथ पर हमे भी आगे बढना है। हमारे सामने कितनी भी चट्टाने या पर्वत आये, उनका डटकर सामना करना है। हमे विरोधियो से नही घबराना है। आचार्य श्री जी ने इसके लिए जो मार्ग निर्देश किया है, उस पर दृढता के साथ आगे बढते हुए पथ पार करना है।

"मैं पजाब सम्प्रदाय का था, परन्तु मुझे स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशीलाल जी म० सा० की गुण-गरिमा ने आकर्षित कर लिया। मै, अपना व अपने सभी साथियो का सौभाग्य समझता हूँ कि हमे छह महीने तक आचार्यश्री जी का पूर्ण सहयोग मिला, पर दुर्भाग्य है कि इन अन्तिम बेला के कुछ दिनो मे हम अलग रह गये।

"आचार्यश्री ने शान्त, क्रान्तिकारी कदम उठाकर भगवान् महावीर की श्रमण-सस्कृति को आगे बढाने के लिए जो आदेश, उपदेश, आदि दिये है, उन पर हमे चलना है। सकटो एव बाधाओ का सामना करना है। कोई भी भला-बुरा कैसा भी करे, तो हमें उसके उत्तर-प्रत्युत्तर मे नही पडना है। यदि हम उत्तर-प्रत्युत्तर के झगडे मे पड गए, तो हमारा मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा। हाँ, वास्तविकता को तो समाज के सामने रखना ही होगा।

"मै सन्त-सतियो को कहना चाहूँगा कि स्वर्गीय आचार्यश्री के आदेशो का पालन करने मे वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म० सा० को पूर्ण सहयोग देवे और उनके हाथो को सशक्त बनावे। स्वर्गीय आचार्यश्री के गुणो का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जो शास्त्र मैंने नही पढा, जिसकी मुझमे कमी थी, उसको आचार्यश्री ने रुग्णावस्था मे भी मुझे पढाया। मेरे प्रति आचार्यश्री का यह महान् उपकार है, इसे मैं भूल नही सकता। उन महान् आत्मा के प्रति मस्तक श्रद्धा से सदा नत रहा है और उनकी मधुर स्मृति आज भी ताजा है। उनके प्रति मैं श्रद्धा के यही पुष्प चढाता हूँ। हम गुडली मे थे। हमको सूचना मिली कि आचार्यश्री का स्वास्थ्य बहुत प्रतिकूल है। सूचना मिलते ही हमने उदयपुर की ओर विहार कर दिया। पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवास होने के पश्चात् पहुँचे।

सजग है। पहले कुछ लम्बी तपश्चर्या का परामर्श देकर वाद मे सथारा पचखाता तो श्रेष्ठ रहता। कैसी क्या स्थिति वनेगी ? मैंने किसी का कोई आगार (छूट) भी नही रखा।" विकल्पो के साथ पुन भीतर से ही मन को तुष्टि मिलती कि परामर्श तो डॉक्टरो आदि का पूर्व मे ही मिल चुका था तथा मैंने भी अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से अन्तरात्मा की साक्षी से कार्य किया है। अव जो कुछ होगा, सव अच्छा ही होगा, आदि।

इन्ही सकल्प–विकल्पो मे आप (युवाचार्यश्री) पाट के पास खडे-खडे आचार्यश्री को अरिहन्त प्रभु आदि के शरण का पाठ सुनाते रहे। इधर घडी की सूई आगे खिसकती जा रही थी। सहसा आपश्री को आचार्यश्री के मुख-मण्डल पर अपूर्व ओज-सा परिलक्षित हुआ। इस अपूर्व तेजस्विता का सूक्ष्मावलोकन करने की दृष्टि से आपश्री पाट पर वैठना चाह रहे थे। अत पर्याय ज्येष्ठ स्थविर श्री सूरजमलजी म० सा० से निवेदन किया कि आपश्री भी पाट पर विराज जाएँ तो उत्तम रहेगा। तदनुसार दोनो महामुनि पाट पर विराज गए और भावपूर्ण तन्मयता के साथ शरण-पाठ सुनाने लगे। घडी की सूई ३–२० पर पहुँच रही थी कि आपकी दृष्टि आचार्यश्री के नेत्रो पर चली गई। तत्कालीन अलौकिक छटा हमारी शब्द-अभिव्यजना की शक्ति से परे है। एक अभूतपूर्व दृष्ट चमकता हुआ दिव्य प्रकाश पुज आचार्यश्री के नेत्र युगल से निकलता हुआ परिलक्षित हो रहा था। जिह्वा और मुह की आकृति मे भी अपूर्व परिवर्तन दिखाई दे रहा था। वस, यही उस दिव्य द्रष्टा अलौकिक महा-चेतना के महा प्रयाण की वेला थी।

नेत्रो से दिव्य प्रकाश के निष्कासन के साथ आचार्यश्री की आत्मा पूर्ण सजगता के साथ समाधि-मरण पूर्वक अनन्त मे विलीन हो गई।

शिष्य का अन्तिम दायित्व

यह है जैन दर्शन का अनूठा मरण-महोत्सव जिसमे शिष्य अपने आराध्य गुरु के प्रति मोह भावना को तिलाजलि देकर उन्हे अतिम यात्रा के लिए सुसज्ज करता है।

श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने भी अपने आराध्य के महाप्रयाण की यात्रा मे अत्यन्त सजगता एव धैर्य के साथ कर्त्तव्य-निष्ठा एव दायित्व का पालन करते हुए योग्य शिष्य का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। अन्यथा होता यह है कि जीवन की चरम घडियो मे निकटवर्ती व्यक्ति मोहवश धैर्य खो वैठते हैं और क्रन्दन करते हुए मरणोन्मुख प्राणी को अपनी ध्यानलीनता से विचलित करने का प्रयास करते हैं। ऐसे प्रसगो पर साहस एव धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

मे यथार्थ रूप से उतारेगे और आपके बताये हुए मार्ग का प्रचार-प्रसार करेगे। यही हमारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धापूर्ण पुष्पाजलि है।"

स्थविर-पद-विभूषित पं० मुनि श्री सूरजमलजी म० सा०

तदुपरान्त स्थविर-पद-विभूषित महामहिम तत्रस्थ मुनि मण्डल मे पर्याय ज्येष्ठ प० रत्न श्री सूरजमलजी म० सा० ने अपनी अगाध श्रद्धा के शब्द-सुमन तथा शासन के प्रति प्रशस्त कामनाएँ निम्न शब्दो मे व्यक्त की—

"आप लोग बाहर से, बहुत दूर-दूर से यहाँ एकत्र हुए है। इसलिए नही कि यहाँ कोई नाटक, सिनेमा है, किन्तु इसलिए कि यहाँ पर जीवन है। अत: जीवन का उत्कर्ष करने के लिए ही आप यहाँ पर आये है। आचार्यश्री की साधना के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति है।

"आचार्यश्री गणेशीलालजी म० सा० ने उदयपुर मे जन्म लेकर मेवाड भूमि के शिखर को ऊँचा उठाया है। ससार पक्ष मे राणा प्रताप ने मेवाड का गौरव बढाया, वैसे ही आचार्यश्री ने आध्यात्मिक क्षेत्र मे मेवाड का ही नही, वलिक सारे देश का गौरव बढाया है। आचार्यश्री ने अपने जीवनकाल में भगवान् महावीर के शासन मे रहकर शासन को चमकाया और पूर्ण आत्मदशा मे रह कर अपना कल्याण किया है। आज वे आचार्यश्री हमारे सामने नही है। हमसे उनका भौतिक शरीर ओझल हो गया है। ससार का यह नियम है कि जिन्होने ससार मे जन्म लिया है, वे कोई आज, कोई कल, कोई घडी, पलक मे तो कोई कभी इस भौतिक शरीर को छोडेगे। काल सबके सिर पर घूम रहा है।

"मनुष्य को जीवन मिला है, तो खा-पीकर धीगामस्ती मे गवाने के लिए नही, वलिक धर्म कमाने के लिए मिला है। अत: आचार्यश्री ने धर्ममय जीवन विताने के लिए जो आदेश, आदि दिये है, उनको सच्चे हृदय से आचरण मे लाये। आचार्यश्री ने असह्य घोर वेदना के समय जिस प्रकार अपने जीवन को ऊपर उठाया, उस आदर्श को सामने रखकर हम भी अपने जीवन को साधनामय बनाये ताकि हमारा जीवन भी सफल हो।

"आचार्यश्री के तपोतेज से आकर्षित होकर गोडल सम्प्रदाय के जनक मुनिजी और जगदीश मुनिजी तो ७०० मील का लम्बा विहार कर आचार्यश्री के चरणो मे पधारे है। आचार्यश्री का मैं क्या गुण-गान करूँ? हमारे जैनाचार्य ने भगवान् महावीर के शासन को दीपाया है, मेवाड-भूमि मे जन्म लिया है, वीर चारित्र-चूड़ामणि है

इन्द्र मुकुट समान दर्शन से चित्त रहे प्रसन्न, वरते मगलाचार।

आचार्यश्री का जितना भी कीर्तन किया जाये, पूरा नही होता

नवोदित आचार्य का अभिषेक

तदनन्तर प्रमुख श्रावको ने आचार्यश्री के उस पूत देह के मृत्पिण्ड को अपने अधिकार मे ले लिया तथा सभी सन्तो ने मिलकर युवाचार्यश्री को आचार्यश्री के उसी पाट पर समासीन करवा कर आचार्यश्री की चादर समर्पित कर "आचार्य" के गौरवमय पद से विभूषित कर दिया । युवाचार्यश्री (चरितनायक) अव जन-जन के श्रद्धा-केन्द्र "आचार्य" के गरिमामय पद से अलकृत हो गए ।

स्व० गुरुदेव की अन्तिम यात्रा

इधर जो हजारो की जन-मेदनी मरण-महोत्सव की महनीयता के दर्शन हेतु पौषध शाला-भवन के विशाल चौक मे एव बाहर सडको पर नेत्र बिछाए खडी थी, आचार्यश्री के स्वर्गारोहण का सन्देश सुनते ही नेत्रो से श्रद्धा पयस्विनी की अमृत-धार प्रवाहित करने लगी ।

उदयपुर मे ही जन्म, विकास और विलय पाए, इन महामानव की देह विलय का समाचार विद्युत्-वेग की तरह उदयपुर शहर के कोने-कोने मे फैल गया । सभी सरकारी एव गैर सरकारी सस्थानो मे तत्काल अवकाश घोषित हो गया । बाजार बन्द हो गए । इस प्रकार जनता-जनार्दन ने अपनी श्रद्धा के पुष्प उन महामानव के प्रति समर्पित किये ।

उदयपुर सघ के द्वारा टेलिग्राम एव आकाशवाणी से देह-विलय के समाचारो का प्रसारण सम्पूर्ण देश भर मे हो गया था । द्वितीय दिन दिनाक १२-१-६३ को शव-यात्रा के समय तक तो वायुयान, रेल, कार आदि के माध्यम से दूर-दूर से हजारो की सख्या मे भक्तजन अपने आराध्य के अन्तिम दर्शनार्थ एकत्रित हो गए ।

अन्त्येष्टि-क्रिया-शव-यात्रा का विवेचन, चरितनायक के जीवन से असम्बद्ध होने से अप्रासागिक होगा, किन्तु इतना तो अवश्य कहना चाहूँगा कि शव-यात्रा की ऐसी अनूठी शोभा-यात्रा उदयपुर के इतिहास मे अद्वितीय एव सर्व प्रथम थी । यद्यपि उदयपुर मेवाड की राजधानी रहा है और यहाँ महाराणा प्रताप के यशस्वी वशधरो की सहस्रो शव यात्राएँ निकल चुकी है, किन्तु यह

आकर, प्रवाह मे बहकर जो ठीक नही है, उसमे हाँ मे हाँ मिला दी गयी, तो इस शासन की ही नही, अनन्त तीर्थकरो की आशातना का भागीदार हो जाऊँगा। यह सोचकर आचार्यश्री ने वही मार्ग अपनाया, जो उनके जैसे युगद्रष्टा महापुरुष के लिए श्रेय था। मान-सम्मान उनको अपने श्रेयमार्ग से विचलित नही कर सके। भगवान् की आज्ञा और उनका बताया हुआ मार्ग ही उनके लिए श्रेय था। इसीलिये अनेक विघ्न-बाधाओ के होते हुए भी आचार्यश्री श्रमण-सस्कृति की पवित्रता के पालन के लिए आचार-विचार मे दृढता लाते हुए अन्त समय तक प्रयत्नशील रहे।

"श्रमण सघ का जो रूपक बना, उसके लिए आचार्यश्री की यह भावना थी कि श्रमण-सस्कृति की पवित्रता के लिए एव उसके सरक्षण के लिए सभी साथियो को साथ लेकर चलूँ। तदनुसार आचार्यश्री ने लगभग ८-९ वर्ष तक अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उनके सतत प्रयत्न के उपरान्त भी उनको ऐसा अनुभव हुआ कि अनुशासन मे रहकर उचित मार्गदर्शन मे सबके चलने की तैयारी कम है, कुछ श्रमणो की तो बिल्कुल ही नही। इससे उनके विश्वास को धक्का लगा, किन्तु फिर भी प्रयत्नशील रहे और जो समस्याएँ सामने आई, उन पर आचार्य श्री ने श्रमण-सस्कृति के सरक्षणार्थ जो व्यवस्थाएँ आदि दी, वे आज भी समाज के सामने खुले रूप मे प्रकाशमान है। ऐसा करते समय आचार्यश्री ने सहयोग की अपेक्षा रखी, परन्तु रुके नही। उन्होने कभी यह नही सोचा कि मेरे पीछे कौन है, और कौन नही। उन्होने केवल यही देखा कि श्रमण-सस्कृति मेरे सामने है और चल पड़े उसकी रक्षा के लिए। आचार्यश्री के मार्ग का विरोध हुआ, कइयो ने भले-बुरे शब्द कहे, पर आचार्यश्री अपने सत्पथ से विचलित नही हुए। धैर्य के साथ सब कुछ सहन करते रहे।

"विरोधियो के विरोध द्वारा सत्य को ठुकराया हुआ देखकर हमारे मन मे तो कभी-कभी उत्तेजना आ जाती थी कि क्यो न सयम विपरीत दूषित प्रवृत्तियो को प्रगट कर दिया जाये, पर आचार्य देव फरमाया करते कि कोई कितना भी तिरस्कार करे, अनुचित शब्द कहे, उनका स्वागत करो और जिस प्रकार मै सहन करता हूँ, तुम भी सहन करना सीखो। अश्लीलतायुक्त सामग्री को प्रगट करने मे विशेष लाभ नही। इसलिए शात रहकर सयम-मार्ग पर दृढता से चलो, और शिथिलाचार को किसी भी प्रकार से प्रश्रय मत दो। इसके लिए आचार्यश्री ने अपने आदेश आदि द्वारा जो कुछ फरमाया, वह विद्यमान है। उन आदेशो को आचार्यश्री मेरे तुच्छ जीवन के साथ सम्बन्धित कर चुके हैं।

"मैं उनकी आज्ञाओ एव धारणाओ के अनुसार चलने को दृढ प्रतिज्ञ हूँ, इनके लिए कितने भी सकट उपस्थित हो, उन को झेलने के लिए कटिबद्ध हूँ, सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर हूँ। मै पहले कह चुका हूँ कि आचार्यश्री ने सहयोग की अपेक्षा अवश्य रखी, किन्तु सहयोग की स्थिति सामने नही आई, तो

श्रद्धांजलि-समर्पण

अन्त्येष्टि के दूसरे दिन, दिनाक १३ १.६३ को प्रात काल देश के कोने-कोने से समागत श्रावक-वर्ग एव स्थानीय सघ-प्रमुखो ने सघ के नवोदित अध्यात्म-भुवन-भास्कर, श्रद्धा के केन्द्र आचार्य श्री नानालालजी म० सा० (चरितनायक) से विनम्र निवेदन किया—"आप श्री सन्त-समुदाय-सहित पचायती नोहरे मे पधार कर, (पौषध शाला का क्षेत्र सीमित था) स्वर्गीय आचार्यश्री के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करे, जनता आपश्री के मुख से श्रद्धा के दो शब्द सुनने को लालायित है।"

सघ-प्रमुखो की सामयिक प्रार्थना पर ध्यान देकर आचार्यश्री सन्त-समुदाय सहित प्रवचन वेला मे आचार्य पद का प्रथम प्रवचन श्रद्धाजलि-समर्पण के रूप मे देने हेतु पचायती नोहरे मे पधार गये।

पं० रत्न मुनि श्री सत्येन्द्र मुनि जी म० सा०

श्रद्धा-समर्पणा के क्रम मे सर्व प्रथम प० रत्न मुनि श्री सत्येन्द्र मुनि जी ने अपने आन्तरिक भावो की निम्न शब्दो मे अभिव्यक्ति देते हुए नवोदित आचार्यश्री के उदीयमान शासन के प्रति अपनी सहयोगात्मक शुभकामनाएँ प्रस्तुत की –

"आज मैं आप लोगो के सामने क्या कहूँ ? लगभग ८-९ मास पूर्व जिस समय हम उदयपुर आये उस समय कुछ और ही भावना लेकर आये थे। पर इस समय कुछ और ही भावना चल रही है। हमे विश्वास था कि सब शुभ-जनक ही होगा, लेकिन आज हम जो कुछ बोल रहे हैं, एक दु खपूर्ण स्थिति मे बोल रहे हैं।

"हमारे ऊपर आचार्यश्री का हाथ था, वह उठ गया है। इससे चिन्ता होनी स्वाभाविक है, लेकिन चिन्तित होने की आवश्यकता नही है, क्योकि आचार्यश्री ने भावी शासन-व्यवस्था के लिए सुन्दर व्यवस्था कर दी है। जिस समय आचार्यश्री ने भावी शासन-व्यवस्था की थी, मैं श्री चरणो मे उपस्थित था। मैंने उस समय कहा था कि शासन का भार बोझिल होता है। उसको वहन करने की हर किसी मे क्षमता नही होती। आचार्यश्री नानालालजी म सा

है। जिसकी साधना जीवन भर अच्छी चलती है, उसका अन्तिम समय मे पडित मरण होकर जीवन सुधर जाता है।"

आचार्यश्री की जीवन-साधना कठोर थी, अद्‌भुत थी। यही कारण है कि उनका भव्य पडित-मरण हुआ। मै उनके अन्तिम समय का क्या वर्णन करूँ।

यह वात आप सव जानते है कि एक तरफ तो विरोध चल रहा था और इधर कैन्सर के कारण शारीरिक सघर्ष चल रहा था, जिसकी अत्यधिक वेदना थी, लेकिन आचार्यश्री ने कभी आह तक नही की। डाक्टर लोग यह देख कर चकित थे कि इस महापुरुष मे ऐसी कौन-सी शक्ति है जिससे इतनी दारुण वेदना होने पर भी ये ऊँह तक नही करते है। डॉक्टर कहते थे कि रोग की ऐसी भीषण स्थिति मे साधारण मनुष्य तो डाक्टरो से मृत्यु की माग करने लगता है, विष लेकर मर जाना चाहता है, परन्तु धन्य है ये महात्मा, जिन्होने देह पर एक प्रकार से विजय पा ली है।

"तपस्वी श्री लालचन्दजी म ने तो यहाँ तक कहा कि मुझे कभी-कभी ऐसा खयाल होता है कि आचार्यश्री की वेदना गज सुकमाल की वेदना का-सा दृश्य उपस्थित कर रही है, फिर भी जिस शान्ति और धैर्य के साथ वे सहन कर रहे है, यह हमारे लिए एक अपूर्व आदर्श है।

"जव अत्यन्त वेदना होती है, तव मनुष्य अपना भान भूल जाता है। फलत अन्त समय को बिगाड़ भी देता है, लेकिन आचार्यश्री शान्त चित्त से असहनीय वेदना को सहते रहे। आत्मा और शरीर के भेद को भली प्रकार समझकर चलते रहे।

"आचार्यश्री का सथारा सीझने के तीन दिन पूर्व डॉक्टर रामावतारजी श्री आचार्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और औषधि के लिए निवेदन किया। आचार्यश्री ने फरमाया "मुझे अव परमात्मा की दवा लेनी है, अन्य कोई दवाई नही।" इसी तरह डॉक्टर श्री शूरवीरसिहजी आदि को भी ऐसा ही उत्तर दिया।

"उसी समय डॉक्टर श्री रामावतारजी ने मुझे एकान्त मे लेकर यह कहा कि इन महापुरुष के लिए अपन क्या सोचे ? अपना सोचना सव व्यर्थ है। इन महापुरुष का ध्यान प्रभु मे लग चुका है। शरीर की ओर इनका ध्यान विल्कुल नही है। यह एक महान् दिव्य अलौकिक मूर्ति है।

"उन्ही दिनो की वात है कि एक दिन मै आचार्यश्री को 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे', आदि सुना रहा था। सुनाते-सुनाते दर्शनार्थियो की तरफ

"हम वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म० सा० को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जैसा भी सहयोग लेना चाहे, हम देने के लिए तत्पर है।

"भगवान् महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति मे आगे बढते ही चले जायें।"

पं० रत्न मुनि श्री जनक मुनि जी म० सा० (गोंडल सम्प्रदाय)

३८ दिनो मे ४२५ मील का उग्र विहार कर केवल उस महामहिम व्यक्तित्व के दर्शनार्थ सुदूर गुजरात प्रान्त से उदयपुर की पावन धरती पर पधारे श्री जनक मुनिजी ने अपने हार्दिक उद्गारो की निम्न शब्दावली मे अभिव्यक्ति दी—

"निर्मल, निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सरक्षक आचार्यश्री की निर्मल सुयश धारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है। हमे अनेक बार उनकी गुण-गाथाओ के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप दर्शन की आकाक्षा ने हमे यहाँ तक आने की प्रेरणा दी। अमलनेर से ४२५ मील भूमि कुल ३८ दिनो मे काटकर हम श्री चरणो मे उपस्थित हुए। थककर चूर-चूर हो चुके थे, पैर उठाना भी भारी हो रहा था, किन्तु आचार्यश्री के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया। हमने सुनी बातो का साक्षात् अनुभव किया।

"अहा! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्य भाव! कडक आचार-निष्ठा, सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पडे। २००० बिच्छु डक मारे, वैसे घोर वेदना मे आह तक का शब्द नही। तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए।

"आज उनका पार्थिव शरीर हमारे मध्य नही, किन्तु ज्ञानमय शरीर, चर्यामय भाव, निर्ग्रन्थ सस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख है। हमे इस निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति से पूर्ण प्रेम है। जब तक यह चोला है, मैं हृदय से इसे जीवन मे उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एव मैं यहाँ आये हुए प्रत्येक बन्धु (यानी चतुर्विध सघ) से निवेदन करूँगा कि वह सच्चे हृदय से इसका पालन करे। कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नही।

"नियमो के पालने की सुन्दरतम विधि यह है कि आचार्यश्री की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करें। निर्ग्रन्थ सस्कृति तभी सुरक्षित रह सकती है। स्वर्गीय आचार्यश्री ने तो विरोधो की चिन्ता न कर निर्ग्रन्थ सस्कृति को स्थायित्व देने मे बहुत बडा योग दिया है। आज उसी का उत्तरदायित्व इन भव्य आचार्यश्री नानालालजी म० सा० पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक का कर्त्तव्य है। हम भी आपकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन

उच्चारण किया। पाठ-उच्चारण मे आचार्यश्री ने यह भी फरमाया कि अब बीच मे किसी से बोलना मत। फिर कहा—ध्यान रखो। मैने तीन दिन पूर्व स्थविर प० मुनि श्री सूरजमलजी म सा के पास सब आलोचना कर ली है। अब फिर मैने आलोचना करके छह जीव निकाय सुन ली है। अब मुझे कोई डॉक्टर, वैद्य आदि गृहस्थ छुए नही। मै अपने जीवन को आगे बढाना चाहता हूँ।

"उसी दिन प्रात. १०-२० बजे तिविहार सथारा ग्रहण किया और फरमाया—"अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिए। सब अलग हो जाओ।" ऐसा कहकर आँखे बन्द कर ली। कुछ विलम्ब के पश्चात् जब आँख खुली तो मै देखता हूँ—आँखो मे अपूर्व प्रेम एव विश्व वात्सल्य की भावना टपक रही थी। उस समय श्वास की गति थोडी तेज अवश्य चल रही थी, किन्तु चेतना पूरी थी। ता० ११ को प्रात जब मै कुछ नित्य-नियम सुना रहा था, उस वक्त भी मै एक कडी-चूक गया, तो गुरुदेव ने फरमाया कि यह क्या करते हो। कहने का तात्पर्य यह है कि सथारा सीझने के दिन प्रात.काल तक भी इतनी स्मृति एव जागरूकता थी।

"प्रतिक्रमण के समय स्थविर प० मुनि श्री सूरजमलजी म ने मागलिक कुछ धीरे सुनाई, जिससे आचर्यश्री के कान मे न पडी तो फरमाया कि मागलिक क्यो नही सुनाते हो ? फिर मैने जोर से सुनाई। इतना ही नही, सथारा सीझने के अन्तिम समय तक दोपहर को लगभग २ बजे महासती श्री सोहनकवरजी पधारी तब श्री कान मुनिजी ने कहा कि महासतीजी खमतखामणा करती है, तो आचार्यश्री ने आँखे खोली और उनके सामने देखकर गर्दन हिलाई। तब भी आचार्यश्री जागरूक थे। इसके पूर्व लगभग १२ बजे आचार्यश्री म चौविहार सथारा पचख चुके थे। इस तरह २६ घटा सथारा काल व्यतीत होने के पश्चात् दि० ११ को ३ २० बजे अन्त तक जागरूक अवस्था मे संथारा सीझा। सथारा सीझने से पूर्व दर्शनार्थियो की भीड काफी सख्या मे जमा थी। दर्शन के लिए सभी आतुर थे। पर मै सोचता था कि अन्तिम समय मे समाधि के अन्दर किसी प्रकार का व्यवधान न पहुँचे, बिल्कुल शात वातारण रहे, तो अच्छा है। इसलिए दर्शनार्थियो को कुछ रुकना पडा। चौविहार सथारे के मध्य आचार्यश्री के शरीर मे जब खुजाल हुई, तो स्वय खुजाल करने लगे। मुझे मना कर दिया। शरीर के हाथ नही लगाने दिया। इसी जागरूक और पूर्ण चेतनावस्था मे ही मस्तिष्क और नेत्र आदि की ओर से अन्त मे इस भौतिक शरीर को छोड, दिव्य लोक सिधार गए।

"आचार्यश्री जी म० सा० का अन्तिम दृश्य अलौकिक था, अपूर्व था। मैने ऐसा दृश्य न कभी सुना और न देखा। आचार्चश्री ने जिस जागरूकता के साथ अपने जीवन का उत्कर्ष किया, वह उनकी साधना का प्रतीक है। आचार्य

"वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म सा भी पूर्ण गुणो के भण्डार हैं। स्वर्गीय आचार्यश्री ने अपना वरद हस्त इन पर रखा है। चतुर्विध सघ का कर्त्तव्य है कि इनकी आज्ञा का बराबर पालन करे। धर्म क्या है ? बडो की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। अत वर्तमान आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करे, इसी मे हमारा कल्याण है।"

इस प्रकार विदुषी महासती श्री नानूकु वरजी म सा., विदुषी महासती श्री मनोहर कु वरजी म सा विदुषी महासती श्री कौशल्याजी म सा ने भी सती-वृन्द की ओर से स्वर्गीय आचार्यश्री जी के गुणगान करते हुए फरमाया। "स्वर्गस्थ आचार्यश्री जी म सा ने श्रमण-सस्कृति की रक्षा के लिए जो आदेश, आदि दिये, उनका हम पूर्ण रूपेण पालन करेगी और वर्तमान आचार्यश्री हमे श्रमण-सस्कृति के उत्थान हेतु जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, उसको सहर्ष शिरोधार्य करती हुई पालन करने-कराने मे तत्पर है और रहेगी।"

नवोदित आचार्य प्रवर के उद्‌गार

अन्त मे सघ की आशा के केन्द्र, साधुमार्गीय परम्परा के अनुशास्ता, चतुर्विध सघ के नायक, हमारे चरितनायक, नवोदित आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म सा ने अपने अतुलनीय आराध्य, जीवन सृजक स्व आचार्यश्री के प्रति अपनी अप्रतिम श्रद्धा के सुरभित सुमन अर्पित करते हुए कहा –

"बन्धुओ ! मैं आज विशेष रूप से कहूँ, ऐसी मेरी स्थिति नही है। महामुनि श्री सत्येन्द्रजी म , श्री जनक मुनि जी म व स्थविर-पद विभूषित प श्री सूरजमलजी म ने तथा तीन महासतियो ने और बीच-बीच मे श्री कानमुनिजी ने स्वर्गीय आचार्यश्री के सम्बन्ध मे अपने हृदय के उद्‌गार सबके सामने रखे है।

"मेरे सामने स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन-चरित्र है। वह मैंने देखा व अनुभव किया है, परन्तु उसको मैं आप लोगो के सामने हूबहू रखूँ, यह मेरी क्षमता के बाहर है।

"आचार्यश्री जैसी दिव्य विभूति ने शात क्रान्ति को जन्म देकर जो आदर्श समाज के सामने रखा, अनेक संकटो व बाधाओ का सामना कर सत्य मार्ग पर अटल रहे, उसका वर्णन करना मेरे जैसे के लिए बहुत ही कठिन है। मेरी जिह्वा मे इतनी क्षमता नही है कि मैं उसका सागोपाग वर्णन कर सकूँ।

"आचार्यश्री को एक ओर तो सारे स्थानकवासी समाज से मान-सम्मान मिलने का अवसर था और दूसरी ओर अनन्त तीर्थकरो से आई हुई श्रमण-सस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न था। श्रमण वर्ग मे प्रवेश पाई हुई शिथिलता को देखकर स्वर्गीय आचार्यश्री ने अनुभव किया, यदि प्रभाव मे

वे लक्ष्य की ओर आगे बढते गये। उस समय किसी को स्वप्न मे यह ध्यान नही था कि दूर देशान्तर से भी कोई अन्य मुनि प्रहरी बनकर श्रमण-सस्कृति की रक्षा के लिए आयेगे, परन्तु महापुरुषो की शक्ति अदृश्य होती है। उनका प्रभाव कहाँ और किस ढग से काम करता है, इसका सहज ही अनुमान नही लग पाता है। ठीक यही बात आचार्यश्री के श्रमण-सस्कृति-रक्षा के कार्यो की हुई। उनके कार्यो की सुगन्ध दूर-दूर फैली, और जिस प्रकार सुगन्ध से आकर्षित होकर भ्रमर बिना आमन्त्रण-निमन्त्रण स्वय खिचा हुआ चला आता है, उसी प्रकार मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गुजरात, सौराष्ट्र जैसे दूरवर्ती प्रान्तो से लगभग ७०० मील का लम्बा विहार कर गोडल सम्प्रदाय के श्री जनक मुनिजी तथा श्री जगदीश मुनि जी आचार्यश्री जी के चरणो मे आये है। न, ये मुनिवर श्रमण-सघ के हैं और न इस सम्प्रदाय के, किन्तु गुणो के कारण ये उग्र विहार करके भी यहाँ आये है। श्री जनक मुनिजी ने कहा है कि हम यह विश्वास दिलाते है कि हम आचार्यश्री के आदेशो का पालन करेगे और जहाँ भी जायेगे, प्रचार करते हुए चलेगे।

"सयम प्रेमी प० श्री सत्येन्द्र मुनिजी ने भी फरमाया कि सत्पथ पर कितना भी विरोध हो, हमे उसका डटकर सामना करना है और आचार्यश्री ने हमारे लिए जो मार्ग दर्शन किया है, उस पर दृढता के साथ चलते हुए पार करना है।

"तपस्वी प० मुनि श्री सूरजमलजी म वृद्ध दीखते है, और हैं। पर इनमे इतनी स्फुरणा है कि हर काम को करने के लिए तैयार रहते हैं। इस अवस्था मे भी आप आदर्श सेवाभावी है। यह सब प्रेरणादायक है। उनके उद्गार भी आप सुन ही चुके है।

"हमारे लिए अत्यन्त दु ख का विषय है कि हमारे आचार्यश्री का भौतिक शरीर आज हमारे सामने नही है, वह हम से ओझल हो गया हैं, लेकिन उनका उपदेश-आदेश हमारे सामने है। आचार्यश्री ने प्रेरणा दी है कि श्रमण-सस्कृति की रक्षा का ठीक रूप से ध्यान रखना। किसी बात के मोह मे आकर सत्य मे विचलित न हो जाना। मैंने जो निर्ग्रन्थ श्रमण समाचारी बनाई है, उसके अनुसार चलने वाला कही भी, किसी भी देश मे विचरने वाला मुनि हो, उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध जोडकर चलना और यदि पास मे रहने वाला श्रमण-वर्ग भी विपरीत प्रवृत्ति करे, अनुशासन मे न रहे, श्रमण सस्कृति के रक्षार्थ जो आदेश आदि दिये गये हैं, उनका पालन न करे, तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नही रखना, आदि। आचार्यश्री ने अपने जीवन की साधना करते हुए जो समाचारी एव आदेश दिये हैं, उनका हमे अन्तर्हृदय से पालन करना है।

"मनुष्य जीवन की साधना का निष्कर्ष अन्तिम समय मे उपस्थित होना

मेरा ध्यान चले जाने से भूल से मै एक कडी का दुवारा उच्चारण कर गया, परन्तु आचार्यश्री तो आत्मरमण मे लीन एकचित्त से सुन रहे थे। उनको मेरी भूल मालूम हुई, और उसी समय चट से आचार्यश्री जी ने फरमाया, "यह कडी तो वोल गये हो, आगे चलो।" यह सुनकर मै सोचता हूँ कि आचार्यश्री को इस अत्यन्त वेदना मे भी कितना ध्यान था।

"जब मै चेहरे की तरफ देखता हूँ तो मुझे अपूर्व तेज नजर आता है, मानो आध्यात्मिक ज्योति-पुज जल रहा है। उस समय मैने सोचा, यह क्या ही अलौकिक विभूति है। मालूम होता है, आचार्यश्री ने अपने शरीर का ध्यान छोड दिया है और एकान्त समभाव मे लीन होकर आत्म-चिन्तन मे चल रहे है। आचार्यश्री ने उसी दिन यानी ता ६ की शाम को करीव ५-२० वजे से दूसरे दिन प्रात तक सागारी सथारा ग्रहण कर लिया और लेट गये। दि १० को प्रात काल आगन्तुक दर्शनार्थियो को दर्शन देने के पश्चात् शारीरिक चिन्ता से निवृत्त हुए। फिर मैने थोडा पानी पिलाया और उन्होने कुछ विश्रान्ति ली। इसके पश्चात् दूध के लिए पूछा, क्योकि अन्न तो ७-८ दिन से वन्द था। आचार्य श्री ने दूध के लिए भी मना कर दिया कि रुचि नही है।

"आचार्यश्री आत्म-ध्यान मे लीन थे। कुछ ही समय पश्चात् फरमाया कि अव मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पडता है। अत इस विषय मे मै अपने आप तो सावधान हूँ ही, तुम भी पूरी सावधानी रखना। डॉ० साहव आ जाएँ, तो उनसे भी कुछ वात करनी है।

"इतने मे डॉक्टर शूरवीरसिंहजी आ गये। डॉक्टर साहव ने पास खडे होकर स्वास्थ्य परीक्षण किया और हमेशा की भाति चले गये। आचार्यश्री ने डॉक्टर साहव को वापस सकेत कराया। डॉक्टर साहव वापस आये। आचार्यश्री ने डॉक्टर साहव को पूछा कि मै अव सथारा लेना चाहता हूँ। इसमे आप क्या कहते है ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से भी कुछ कहिये। डाक्टर साहव ने कहा कि हमारा सिद्धान्त तथा विज्ञान आप जैसे महापुरुषो के लिए अनुत्तीर्ण हो चुका है, फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है। डॉक्टर साहव ने मुझे कहा कि कैन्सर का वीमार जिसके सेकन्ड्रीज फार्म हो जाता है, वह डेढ वर्ष से अधिक जीवित नही रह सकता, परन्तु मै तीन साल से महाराजश्री के शरीर की शक्ति देख रहा हूँ, पर अव ब्लड प्रेशर व नाडी की गति मे काफी अन्तर आ गया है, अत सावधान तो रहना ही चाहिए।

"इसके पश्चात् आचार्यश्री ने मुझे फिर फरमाया कि निगरानी रखना। मै तो सावधान हूँ ही। मैने कहा, "गुरुदेव क्या आज्ञा है।" गुरुदेव ने फरमाया कि सथारा करने के लिए इच्छाकारेण आदि की पाटिये सुनाओ, फिर छह जीव निकाय (दशवैकालिक का चौथा अध्याय) सुनाओ। तब मैने उनमे से नवका

एक अनुशास्ता मे जो क्षमता तथा एक आचार्य मे जो योग्यता अपेक्षित है, उसका समुचित सयोजन हमारे श्रद्धेय चरितनायक को अपने आराध्य से विरासत मे मिला था। इसका अनुमान हम आज भी लगा सकते है। इतने विशाल सघ का, सयम-साधना के साथ अनुशासनात्मक सचालन आपकी योग्यता का सुस्पष्ट प्रत्यक्ष प्रमाण है।

स्व० आचार्यश्री का वरद हस्त अब आपके सिर पर से उठ गया था। अत महान् तपोधनी आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की गौरवशाली परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए तथा उसकी श्रीवृद्धि मे चार चाँद लगाते हुए, साधुमार्गीय चतुर्विध सघ के नेतृत्व का सम्पूर्ण दायित्व अब आपश्री के कन्धो पर आ पडा था। स्व० आचार्य देव की विद्यमानता मे तो सर्वाधिकार सम्पन्न युवाचार्य बन जाने पर भी प्रत्येक सघीय व्यवस्था आचार्य देव के अनुभूति मूलक महत्त्वपूर्ण सुझावो से अनुप्राणित रहती थी, अत· आपश्री के लिए उस पर एकाकी चिन्तन का प्रसग नही आता था, किन्तु अब प्रत्येक समस्या का समाधान आपश्री को अपनी तीव्र मेधा से ही खोजना था। कहा जा चुका है कि प्रारम्भ से ही आपश्री के निर्णय पर्याप्त चिन्तनपूर्ण होने से मौलिक एव ठोस होते थे। आपश्री की सुदीर्घ चिन्तना-शक्ति पर कई बार स्वय आचार्यश्री आश्चर्यचकित रह जाते थे।

इस प्रकार अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन मे समुचित क्षमता लिए हुए आपश्री ने सघ व्यवस्था की बागडोर अपने हाथो में ली तथा योग्यतापूर्ण उसका सचालन जिस अनूठी आत्म-शक्ति के द्वारा किया, इसका प्रत्यक्षीकरण आज हमारे समक्ष है। स्वर्गीय आचार्य श्री श्रीलालजी म० सा० की भविष्यवाणी को कि—"आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की गौरवशाली पाट-परम्परा के अष्टम पाट की दीप्ति, शोभा एव यशकीर्ति अनूठी एव दर्शनीय होगी" वास्तव मे आपश्री ने तथ्यात्मक स्वरूप से शब्दश साकार कर दिखाया है। इस भौतिकता प्रधान वातावरण मे, जहाँ समस्त युवा-जगत् इन्द्रियासक्ति एव वासना की अधी दौड मे लिप्त है, वहाँ आपश्री ने बहुसख्यक युवा वर्ग को आध्यात्मिकता की ओर आकृष्ट कर बहुत बडा चमत्कार कर दिखाया है। आज सम्पूर्ण साधुमार्गीय जैन परम्परा की दृष्टि आपश्री की अनुशासनबद्ध सघ-व्यवस्था पर केन्द्रित है। भारत के सुदूर प्रान्तो मे फैले लाखो उपासको के सघ का अनुशासनबद्ध उत्तरदायित्वपूर्ण नेतृत्व का निर्वहन कोई सामान्य बात नही है। जहाँ एक पिता अपने चार पुत्रो की व्यवस्था करने मे घबरा उठता है, वहाँ शतश. साधु—साध्वियो एव लाखो श्रावक-श्राविकाओ मे सज्जित सघ की सुदृढ व्यवस्था मे आचार्यश्री की कितनी अद्भुत क्षमता है, यह निश्चय ही आश्चर्यचकित कर देने वाला विषय है। •

श्री जी म० सा० के जीवन मे साधना का जो स्थान रहा, उसका वर्णन शब्दो द्वारा व्यक्त करना मेरे लिए बहुत ही कठिन है। इतना अवश्य कहता हूँ कि निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के सरक्षणार्थ आचार्यश्री ने आचार-विचार और उच्चार को दृढता के साथ समाज के सामने रखकर आदर्श उपस्थित किया। हमारा कर्त्तव्य है कि उसको हम श्रमण-वर्ग आगे बढाते हुए चले। श्रावक-श्राविकाओ का भी अपने आप मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत आप लोग भी कटिबद्ध होकर चलने की प्रतिज्ञा लेकर उठेगे, तो शिथिलाचार एव स्वेच्छाचार को दूर होने मे विलम्ब नही होगा। आचार्यश्री का भौतिक शरीर हमारे सामने नही है, लेकिन उनका आध्यात्मिक शरीर आज भी भुवन भास्कर के समान दैदीप्यमान है। उसको जीवन मे लाना है और जिस प्रकार उन्होने सथारा-सल्लेखना पूर्वक पडित मरण से अपने जीवन को सफल बनाया, उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास द्वारा हम भी अपने जीवन को आगे बढाते हुए अन्तिम समय मे उत्तम भावना द्वारा पाडित्य-मरण-पूर्वक जीवन को सफल बनायेगे। यही आचार्यश्री के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि है।

मै आचार्यश्री की आज्ञा धारणा-प्ररूपणा के अनुसार चलने को कटिबद्ध हूँ। इन महात्माओ ने मेरे प्रति जिन शब्दो का प्रयोग किया है, उसकी रक्षा आपके हाथ मे है। मै बच्चा हूँ, चतुर्विध सघ की गोद मे बैठा हूँ, मेरे ज्ञान-दर्शन चारित्र की रक्षा का ध्यान रखना आपका कर्त्तव्य है। आचार्यश्री के शुभाशीर्वाद से हम ज्ञान-दर्शन चारित्र मे उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहे और आचार्यश्री की दिव्य आत्मा स्थायी एव अखड-पूर्ण शाति के साथ शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष मे पधारे, इस भावना के साथ मै अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।"

• •

देनी ही होगी। मैं तो एक छोटी-सी प्रार्थना लेकरश्री चरणो में उपस्थित हुआ हूँ कि आपश्री के यहाँ से प्रस्थान की प्रथम मजिल हमारा बगला हो। स्वर्गीय गुरुदेव ने इसे कई महीनो तक विराजकर पवित्र किया है। अब आपश्री उदयपुर से प्रस्थान कर रहे है। न मालूम कब पुन. पदार्पण होगा। अत. प्रस्थान के पूर्व एक बार पुन: आपश्री का चरण स्पर्श उस भूमि को सुलभ होना चाहिये।"

चरितनायक ने सहज स्वर मे कहा—"ऐसी क्या बात है। विहार तो यहाँ से करना ही है और एकदम लम्बा विहार भी नही होगा, अत. यदि आपकी वैसी भावना है, तो देखा जायेगा। अभी कुछ निश्चित तो नही कहा जा सकता, फिर जैसा अवसर होगा।"

अध्यक्ष महोदय चरितनायक के साध्वोचित स्वीकारात्मक शब्द सुनकर प्रसन्न लौट गए।

मुहूर्त नहीं, मर्यादा

इस आश्वासन की जानकारी जब अन्यान्य संघ-सदस्यो को मिली, तो वे चरितनायक के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगे—"गुरुदेव, अध्यक्ष साहब को आपने यह आश्वासन कैसे दे दिया ? उनका बगला मधुवन मे है और वहाँ जाने के लिए हाथीपोल दरवाजे से निकलना होगा, किन्तु आज इस दिशा की ओर जाना बिल्कुल उपयुक्त नही है। वैसे आज विहार का मुहूर्त भी उपयुक्त नही है। फिर भी साधु मर्यादानुसार विहार तो करना ही होगा। किन्तु हाथी-पोल की ओर तो आज दिशाशूल भी है, अत: उस दिशा मे आज विहार नही हो सकता। हमने कुछ अच्छे ज्योतिषियो से जानकारी की है। अत. आपश्री, इतने वर्षो के स्थिरवास के पश्चात् यह पहला विहार अशुभ मुहूर्त और अशुभ दिशा मे न करे।"

आचार्यश्री ने आगत श्रावको को मधुर स्वर मे कहा—"आप अनुभवी बुजुर्ग श्रावक है, आपकी शासन-निष्ठा की भावना सराहनीय है। किन्तु एक बार साधु-भाषा मे जो आश्वासन दिया जा चुका है, मुहूर्त के चक्कर मे आकर उसे बदला नही जा सकता है। आप किसी तरह का विचार न करे, मेरे लिए सभी मुहूर्त एव सभी दिशाएँ अच्छी हैं। साधक के लिए तो भगवान् ने फरमाया है कि—"समय गोयम मा पमायए"। समय मात्र का प्रमाद न करो। उसके लिए सभी समय अच्छे होते है। ग्रह-नक्षत्र सदा साधक के अनुकूल ही रहते हैं। मैं मुहूर्त की अपेक्षा अपने दिए हुए वचनो का अधिक महत्त्व मानता हूँ। अत आप निश्चित रहे, दिशाशूल एव ग्रहगोचर अपना कुछ नही बिगाडेगे।"

आचार्यत्व के पावन पथ पर



बार जो मुख से निकल गया, उसे पूरा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। अस्तु, आप और कोई विचार न करे।"

"महाराजश्री, आपकी प्रतिभा एव तर्कणा शक्ति के समक्ष क्या निवेदन करे, वास्तव मे अति उत्साही के लिये सभी मुहुर्त श्रेष्ठ होते है। उच्चतम ज्योषित का फलित तो यही है। किन्तु हमारा विश्वास तो ज्योतिष मे बहुत गहरा है। अत. कोई ऐसा मार्ग निकलना चाहिये, जिसमे आपकी भाषा की रक्षा भी हो जाए तथा दिशाशूल तथा अशुभ मुहूर्त भी टल जाए। हमारी दृष्टि से आपको खमेसराजी के बगले पर मधुवन मे जाना है। यदि वहाँ आप "हाथीपोल" दरवाजे से नही जाकर पूर्व दिशा अर्थात् सूरजपोल गेट से निकले तो अधिक श्रेष्ठ रहेगा।"

पण्डितजी की विनम्र प्रार्थना पर आचार्यश्री ने पुन स्पष्ट कर दिया—"पूर्व के ही दरवाजे से निकल कर पुन· हाथीपोल तो जाना ही होगा, क्योकि मधुवन तो हाथीपोल के बाहर है। मुहूर्त के लिए शहर का इतना चक्कर लगाना मैं उचित नही समझता। आप निश्चित रहे, मेरे लिए सब अच्छा है। सयम-मर्यादा के पालन में दिशाशूल बाधक नही होते।"

ज्योतिषज्ञ आचार्यश्री के आत्म-बल भरे स्वर सुनकर वन्दन करके यह कहते हुए चले गये—"आपके लिए मुहूर्त नही, आत्म-बल अधिक महत्त्वपूर्ण है और यह ठीक भी है।"

परिणामत उसी पूर्व निर्धारित समय मे और पण्डितो द्वारा निषिद्ध दरवाजे से आत्म-पुकार के धनी आचार्य श्रीजी ने प्रस्थान किया। आज भी विहार, प्रवेश एव दीक्षा आदि के प्रसग पर मुहूर्त दिखाना आदि ज्योतिष-प्रवृत्तियो से आप सर्वथा निर्लिप्त रहते है। आपकी ध्रुव मान्यता आत्मसाक्षी भाव के प्रति है।

कारुणिक दृश्य

स्व-दृष्टया प्रत्यक्षीकृत उस विदाई वेला के कारुणिक दृश्य का चित्रण हमारी शब्द-सामर्थ्य की सीमा के परे है। हजारो नेत्र युगलो से श्रद्धा और विदाई जन्य वेदना की सरिता प्रवाहित हो रही थी। केवल आचार्यश्री मे अनन्य श्रद्धानिष्ठ जैन बन्धु ही नही, अपितु उस दिन पूरा उदयपुर गहरी उदासी मे निमग्न हो गया था। तागे वाले तथा पान की दुकान वाले तक अविरल अश्रुपात करते हुए कहते सुने जा रहे थे कि—"इस महापुरुष के चार वर्ष तक यहाँ विराजने मे हमारी जीवन-नैया बिना ही विशेष परिश्रम के चल रही थी। जैसे वृक्ष के सहारे सैकडो पक्षी पलते है, उसी प्रकार इस महावट से हमारे जीवन का गुजर-बसर चल रहा था। इस प्रकार उदयपुर सघ का बच्चा-बच्चा

आचार्य जीवन का शुभारम्भ

कहा जा चुका है कि जैन दर्शन की सघीय व्यवस्था मे आचार्य का स्थान सर्वोपरि है। वह सघ-नैया का सबल खवैया होता है। चतुर्विध सघ की सम्पूर्ण बागडोर आचार्य के सशक्त, सयमी, पुनीत हाथो मे होती है। श्रमण-सस्कृति के उत्थान का दायित्व निर्वहन करने हेतु आचार्य स्वय श्रमण मर्यादाओ का अनुशीलन करते हुए उनकी परिपालना के लिए अनुशासनबद्ध चतुर्विध सघ को अनुप्रेरित करता है।

'स्थानाग सूत्र' मे आचार्य के तीन प्रकार बताये गये है—शिक्षाचार्य, कलाचार्य एव धर्माचार्य। प्रारम्भ के दो आचार्यो का सम्बन्ध केवल वर्तमान जीवन की भौतिक समस्याओ के समाधान से है, किन्तु धर्माचार्य का सम्बन्ध जीवन के सार्वकालिक सर्वागीण आध्यात्मिक विकास से है। अत धर्माचार्य का महत्त्व सर्वतो महान् है। यह पद आगमो के तलस्पर्शी अध्येता एव अनुसर्ता को ही प्रदान किया जाता है। साथ ही आचार्यत्व के विशिष्ट गुणो से युक्त एव चतुर्विध सघ का अप्रतिम विश्वास पात्र होना भी आचार्य के लिए आवश्यक होता है।

आगमोल्लिखित निम्न तीन महत्त्वपूर्ण गुणो का सयोजन तो आचार्य की मौलिक विशेषता है। आचार्य गीतार्थ, अप्रमत्त एव सारणा-वारणा मे निपुण व्यक्ति ही बन सकता है अर्थात् सूत्रार्थ का ज्ञाता, अप्रमत्त भाव से साधना मे लीन रहने वाला तथा सघीय व्यवस्थाओ का सुन्दर एव समीचीन, वज्रादपि कठोर एव मृदूनि कुसुमादपि के अनुरूप निर्वहन करने वाला ही श्रेष्ठ आचार्य पद-भोक्ता बन सकता है।

आचार्य चतुर्विध सघ की आस्था का केन्द्र होता है, अत उसका निर्वाचन भी चतुर्विध सघ की आस्थाओ को दृष्टिगत रखते हुए पूर्वाचार्य के द्वारा होता है। कोई व्यक्ति स्वमत्या आचार्य पद का धारक नही बन सकता। इसके लिए चतुर्विध सघ का सहकार एव समर्थन आवश्यक होता है। जैसे विद्यार्थी के अभाव मे शिक्षक की कोई उपयोगिता नही, ठीक उसी प्रकार अनुशासन के अभाव मे अनुशासक निरुपयोगी ही रहता है। अत अनुशास्य-चतुर्विध सघ और अनुशास्ता-आचार्य का अविनाभावी सम्बन्ध माना जा सकता है। सक्षेप मे आचार्य सम्पूर्ण सघ का अनुशास्ता होता है। उसका सघ के प्रति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व होता है।

प्रथम शिष्य-शिष्या

यही पर आपश्री के आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् अल्पावधि मे ही प्रथम दीक्षा हेतु आज्ञा पत्र समर्पित किया गया। वैसे युवाचार्य-चादर-समर्पण के कुछ दिनो पश्चात् ही आपकी निश्रिति मे दीक्षा का शुभारम्भ हो गया था, अर्थात् आसोज शुक्ला द्वितीया को आपश्री युवाचार्य के गौरवमय पद से अलकृत हुए और कार्तिक शुक्ला तृतीया को मौनसाधक-अल्पभाषी-वैरागी श्री सेवन्त कुमारजी की दीक्षा-विधि का प्रथम मगल कार्य आपश्री के करकमलो द्वारा ही उदयपुर के प्रागण मे सम्पन्न हुआ। यद्यपि उस समय स्वर्गीय आचार्य श्री भी दीक्षा-स्थल पर विराज रहे थे, फिर भी युवाचार्य पद-समर्पण के पश्चात् वैधानिक रीति से शिष्य-शिष्याएँ युवाचार्य श्री के ही नेश्राय मे होते है। अत सेवन्त कुमारजी की दीक्षा-विधि का कार्य आपश्री के द्वारा सम्पन्न हुआ और उन्हे प्रथम शिष्य बनने का गौरवमय सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अस्तु, भोपालपुरा के प्रवचन मे ही उदयपुर के धर्मनिष्ठ श्रावक श्री मोतीलालजी कोठारी उपस्थित हो, आचार्यश्री से निवेदन करने लगे—"मेरी सुपुत्री सुशीला कुमारी विगत कुछ वर्षो से संयम-पथ पर अग्रसर होने की भावना व्यक्त कर रही है। मेरी इच्छा अभी कुछ समय और विलम्ब करके दीक्षा दिलाने की थी, किन्तु आपके विहार होने की स्थिति से मेरे विचार बदल गये है। सुश्री सुशीला सयम अगीकार करके रहेगी, ऐसी स्थिति मे आपश्री के करकमलो मे ही क्यो नही समर्पित करूँ। आपश्री का यहाँ से प्रस्थान होने के पश्चात् न मालूम कब पुन: आगमन होगा? अत: मेरा निवेदन है कि आप अपनी नेश्राय मे अपने ही करकमलो द्वारा सुश्री सुशीला को दीक्षा देकर फिर आगे के लिए प्रस्थान करे। मैं यह आज्ञापत्र आपश्री के चरणो मे प्रस्तुत कर रहा हूँ। दीक्षा-तिथि हमने माघ कृष्णा द्वादशी निश्चित की है। अत तब तक आपश्री यही उदयपुर के आसपास ही विराजे, ऐसी हमारी विनम्र प्रार्थना है।"

तदनुसार उदयपुर सघ एव कोठारीजी की विनती को दृष्टिगत रखते हुए भोपालपुरा मे दो दिन विराजकर विद्याभवन के अधिष्ठाता वरिष्ठ शिक्षाशास्त्री श्री दादाभाई बोरदिया के आग्रह से उदयपुर के अनुशासनबद्ध प्रमुख विद्याकेन्द्र 'विद्याभवन" में अध्यात्म विद्या के अधिकृत वेत्ता एवं अजस्र स्रोत आचार्यश्री का पदार्पण हुआ। वहाँ "विद्या के क्षेत्र मे जैन दर्शन का योगदान" विषय पर

विदाई-वेला

यह कहा जा चुका है कि श्रमण-जीवन परिव्राजक जीवन है, उसकी साधना परिव्रजन की साधना है। अतएव श्रमण-मर्यादा एव नियमोपनियम भी "चर्या" शब्द से अभिमज्ञित होने लगे है। इन्ही अर्थो मे श्रमण-मर्यादा को श्रमणचर्या कहा जाता है।

क्षेत्रीयस्थिरता के परिप्रेक्ष्य मे श्रमणचर्या का नियमन करते हुए साधक की साधना को निर्दोष रखने हेतु दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर के स्वर है कि वर्षावास मे चार मास एव शेष काल मे क्रमश. उन्तीस एव अट्ठावन दिनो से अधिक साधु एव साध्वी को कही भी निष्कारण स्थिरत्व नही रखना चाहिये।

उपर्युक्त मर्यादानुसार, श्रद्धेय चरितनायक को लगभग चार वर्षो तक आचार्य देव की रुग्ण अवस्था के कारण सेवा-सयोजना हेतु उदयपुर विराजना पडा। चू कि अब आचार्य देव अपनी महायात्रा हेतु प्रस्थान कर चुके थे, अत. दूसरे दिन दिनाक १३ १ ६३ को श्रद्धाजलि-समर्पण की कार्य-विधि के साथ ही विहार की हलचल प्रारम्भ हो गई।

साधु मर्यादानुसार विहार की अनिवार्यता एव रूपरेखा को देखकर तत्कालीन उदयपुर सघ के अध्यक्ष मूक सेवी श्री कुन्दनसिहजी खमेसरा आचार्यश्री (चरितनायक) के चरणो मे उपस्थित हो विनम्र निवेदन करने लगे—

"गुरुदेव आप प्रस्थान की तैयारी करने मे लगे है, किन्तु मैं एक छोटी-सी विनती लेकर आपश्री के चरणो मे उपस्थित हुआ हूँ। आशा है, सेवक की भावना पूरी होगी।"

आचार्यश्री ने सहज स्मिति के साथ पूछा—"ऐसी क्या बात है ? आप क्या कहना चाह रहे हैं। यह तो आप जानते ही है कि साधु मर्यादानुसार अब यहां ठहरने का अवसर नही है।"

"गुरुदेव, यह तो मैं भी जान रहा हूँ कि आप यहां नही ठहर सकते, आपश्री को यहां से प्रस्थान करना ही होगा और हमे सजल आंखो से विदाई

आचार्यश्री ने कहा "आप यह क्या कर रहे है ? ऐसे कोई दीक्षा पचखाई जाती है ? आपकी अवस्था भी वृद्ध है, और फिर आप का इतना वडा परिवार है। बिना किसी की अनुमति के दीक्षा नही पचखाई जा सकती।"

वृद्धिचन्दजी ने कहा, "परिवार वाले इस वृद्धावस्था मे आज्ञा नही देगे। इसीलिए तो मैंने कपडे पहन लिए है। अपने परिवार का मै मुखिया हूँ। आप तो मुझे दीक्षा पचखा दीजिये।"

आचार्यश्री ने स्पष्ट निषेध करते हुए कहा—"बिना पारिवारिक सदस्यो की अनुमति के मै दीक्षा नही पचखवाता।"

"आप नही पचखाते तो कोई सन्त पचखा देगे। आप किन्ही सन्त को बोल दीजिये।" वृद्धिचन्दजी ने पुन. आग्रह किया। तो आचार्यश्री ने स्पष्ट करते हुए कहा "बिना अनुमति के कोई भी सन्त आपको दीक्षा नही पचखा सकते है।"

"तो फिर आप मागलिक फरमाया दीजिये।" आचार्यश्री ने मगलपाठ सुना दिया और वृद्धिचन्दजी ने मागलिक सुनकर एक ओर जाकर स्वय "करेमि भन्ते" के आगम पाठ से दीक्षा पचख ली तथा भोपालपुरा स्थित मुनिवरो के समीप जाकर ठहर गये। उस समय वैरागी श्री अमरचन्दजी किसी कार्य से बाजार गये हुए थे। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि पिताश्री ने स्वय मुनिवेश पहनकर दीक्षा पचख ली है, तो कुछ वस्त्रादि लाकर देना चाहा। इधर उदयपुर सघ ने वृद्धिचन्दजी के अन्य सुपुत्रो को तार द्वारा पिपलिया मण्डी सूचित कर दिया।

दिनाक २२ जनवरी ६३ को भारतीय लोक कला मण्डल के विशाल दर्शक-गृह मे हजारों की उपस्थिति मे वैराग्यवती सुश्री सुशीला कुमारी की दीक्षा-विधि आचार्य देव के परमपूत करकमलो द्वारा सम्पन्न हुई और सुश्री सुशीला कुमारी जी को आचार्य देव की प्रथम शिष्या बनने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अभी तक आचार्यश्री उदयपुर के परिक्षेत्र मे ही विचरण कर रहे थे। दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् उदयपुर नगर से प्रस्थान कर दिया। अशोक नगर से आयड़, प्रतापनगर, देबारी आदि क्षेत्रो मे धर्मक्रान्ति की लहर फैलाते हुए गुड़ली पधारे। गुडली मे श्री वृद्धिचन्दजी के सुपुत्र जमनालालजी, माणकचन्दजी आदि पहुँचे और वृद्धिचन्दजी, जो कि साधुवेश मे अलग भिक्षावृत्ति, आदि करते हुए आचार्यश्री के साथ कर्मठ सेवाभावी मुनि श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० के निर्देशन मे भ्रमण कर रहे थे, को पुन. अपने घर ले जाने हेतु आग्रह किया और आचार्यश्री से निवेदन करने लगे कि—"पिताजी की वृद्धावस्था है, हम इन्हे दीक्षा नही देना चाहते। हम इन्हे अपने घर ले जायेगे।"

आचार्यश्री के सचोट एव स्पष्ट विचार सुनकर आगन्तुक सज्जन कुछ निराश से हो वन्दन करके चले गये, किन्तु उनके मन को सतुष्टि नहीं मिली। उनके मानस मे ग्रह-नक्षत्रो के प्रति गहरी आस्था बैठ गई थी। उसे यो कुछ शब्दो से नही हटाया जा सकता था। वे लोग वहाँ से सीधे अच्छे माने हुए ज्योतिषी पण्डितो के पास गए और उन्हे लेकर पुन श्री चरणो मे उपस्थित हुए और पण्डितो के माध्यम से निवेदन किया—"गुरुदेव, आप महान् है और आपका आत्म-बल भी महान् है, किन्तु हम छोटे-छोटे श्रावको मे उतना आत्म-बल नही है। हमारी आत्मा इसके लिए तैयार नही हो रही है कि आप हाथी-पोल की तरफ विहार करे। इसी दृष्टि से हम पण्डितजी को लेकर पुन श्री चरणो मे उपस्थित हुए है। आप हमारे और पण्डितजी के विचारो पर थोडा ध्यान देकर फरमायेगे।"

आचार्यश्री ने उसी प्रसन्न मुद्रा मे कहा—"आपने पण्डितजी को क्यो कष्ट दिया ? मैं कह चुका हूँ कि आप लोगो की भावना प्रशस्त है। आगे जैसी स्पर्शना होगी, देखा जायेगा।"

ज्योतिषियो ने कहा—"वैसे तो आपके लिए सभी मुहूर्त अच्छे है, किन्तु ज्योतिष शास्त्र का अपना कुछ महत्त्व तो है ही। उसके अनुसार गणित के फलाफल का जो निर्देश होता है, उसे नकारा तो नही जा सकता।"

"आपका कथन किसी अपेक्षा से यथार्थ है, मैं ज्योतिष विज्ञान को न तो असत्य कह रहा हूँ और न उसका निषेध या विरोध ही कर रहा हूँ।

"गणित शास्त्र का अपना महत्त्व है, उसके जो फल निर्देश होते है, वे किसी हद तक सत्य भी उतरते हैं, किन्तु यदि आपने ज्योतिष का कुछ गहरा अध्ययन किया हो, तो ज्योतिष ज्ञान का मुहूर्त के सम्बन्ध मे अन्तिम निष्कर्ष है—कार्यकर्ता का अत्युत्साह अर्थात् जब भी किसी कार्य के प्रति किसी का अत्यधिक उत्साह हो, वही उसके लिए शुभ मुहूर्त है। इससे आप यह नही समझे कि मैं ज्योतिष-ज्ञान का निषेध कर रहा हूँ। मैं कह चुका हूँ कि ज्योतिष-शास्त्र का महत्त्व निश्चित रूप से है, किन्तु केवल उसी के आधार पर मैं हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना उचित नही समझता। तीव्र पुरुषार्थ के द्वारा अशुभ मुहूर्त एव अशुभ घडियो को भी शुभ बनाया जा सकता है। जहाँ तक मेरे विहार का सवाल है, आप इस विषय मे निश्चिन्त रहे। मेरे लिए आप सब ग्रह-गोचर अनुकूल समझे। आप सबकी प्रशस्त भावना मेरे साथ है। आपकी सद्भावना का मैं सत्कार करता हूँ। आपके आग्रह पर कुछ विचार कर मैं कार्यक्रम बदल भी देता, किन्तु मैंने साधु-भाषा में कुछ आश्वासनसा दे दिया है, अत. मैं उसके लिए बाध्य हूँ। हमारी साधु-भाषा लोह-लकीर होती है। एक

इस चरण-चचरीक (लेखक) के पारिवारिक सदस्य श्री मीठालालजी एव श्री मदनलालजी सरुपरिया आदि आज्ञा पत्र लेकर आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे कि—"हम वैरागी शातिलाल को आज्ञापत्र के माध्यम से आपश्री के चरणो मे समर्पित करना चाहते है, किन्तु एक शर्त है।"

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—"भेट भी करना है और उसके पीछे शर्त भी। बात समझ मे नही आती।"

आगन्तुको ने भी हर्षित स्वर मे कहा—"नही गुरुदेव, ऐसी कोई शर्त नही है, केवल इतना ही निवेदन है कि आप वैरागी श्री कवरचन्दजी को दीक्षा देने हेतु बडी सादड़ी पधार रहे है और उनकी दीक्षा का मुहूर्त उनके पारिवारिक जनो के अनुसार फाल्गुन शुक्ला पचमी निश्चित हुआ है तो हमारी प्रार्थना इतनी ही है कि आप पहले फाल्गुन शुक्ला एकम को भदेसर मे शान्तिलाल को दीक्षित कर फिर बडी सादडी पधारे।"

आचार्यश्री ने मार्ग की व्यवस्था को समझकर भदेसर पहुँचने की साध्वोचित भाषा मे स्वीकृति दे दी और आगन्तुक हर्षित हो जय-जयकार के नारे लगाते हुए लौट गए।

आचार्यश्री भादसोडा, बानसेन, कन्नोज, नाहरगढ आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए भदेसर पधारे और फाल्गुन शुक्ला १, (प्रतिपदा) दि २४ २ ६३ को ससारोदधि मे निमग्न इस पामर बालक को अपने पावन कर-स्पर्श के अवलम्बन से बाहर खीच लिया।

दीक्षा के उन पावन-मगल क्षणो को एव उस वातावरण को शब्द शृ खला से आबद्ध करना मेरे लिए अशक्य ही है, क्योकि मेरी चेतना तो उस पुनीत वेला मे ऊर्ध्वमुखी चिन्तन मे गतिशील थी। अन्तर्मु खता मे बाहर के दृश्य स्मृत रहे भी कैसे ? तथापि इतनी मात्र स्मृति है कि आम्र निकु ज मे आम्र वृक्षी के नीचे हजारो मुमुक्षु मुखाकृतियो के मध्य से एक इस अदनी आकृति को आकृष्ट कर पूज्यपाद ने अपने पुनीत चरणाश्रय मे स्थान दे दिया।

यद्यपि उस समय मै नासमझ-नादान, १६ वर्ष का बालक ही था, किन्तु यह चिन्तन पुन -पुनः विभोर किये देता है कि यह परम पावन दिव्य चरणाश्रय इस नाकुछ चरण किकर को कोटि-कोटि जन्मो मे अर्जित सबल सुकृत के फलस्वरूप ही मिल सका है। इस ग्रामीण की क्या सामर्थ्य कि मुनिपद जैसे गरिमामय जीवन मे प्रवेश कर ले, किन्तु आचार्य देव की अनन्त अनन्त उपकृति का ही यह परिणाम है कि आज पैरो तले ठोकरे खाता मिट्टी का ढेला, महान् कलाकार की कलाकृति बन गया।

उस दिन शोक मग्न हो रहा था। चार वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक जिस धर्म कल्पतरु की शीतल शांतिदायिनी छाया मे आनन्द का अनुभव किया, आज वह चैतन्य कल्पतरु चला जा रहा है।

आचार्यश्री की विदाई का वह दृश्य अत्यन्त कारुणिक था। आचार्यश्री अपने गुरु-भ्राता एव नवदीक्षित सुशिष्य श्री सेवन्तमुनिजी से परिवृत तथा लगभग २०-२५ हजार आबाल वृद्ध, नर-नारियो से अनुसृत होते हुए पौषध-शाला भवन से प्रस्थान कर हाथीपोल से निकल कर "मधुवन" उदयपुर के एक उपनगर मे मूक सेवी डॉ० साहब श्री शूरवीरसिंहजी के बगले पर पधारे। यद्यपि ठहरने की व्यवस्था अध्यक्ष महोदय के बगले पर थी, किन्तु उस बगले के बाहर इतनी विशाल जन-मेदनी समा सके, ऐसा मैदान नही था। अत डॉ० साहब के आग्रह से निकटवर्ती डॉ० साहब के बगले पर पधारे। बगले के बाहर के विस्तृत मैदान मे पहुँचकर विदाई जुलूस विदाई-सभा-समारोह के रूप मे बदल गया।

विदाई समारोह की उन घडियो मे आचार्यश्री ने प्रासगिक क्षमायाचना आदि के सन्दर्भ मे दो शब्द कहे तथा उदयपुर सघ के वरिष्ठ कार्यकर्ताओ ने भी अश्रुपूरित नेत्रो से तथा सिसकते स्वरो से विदाई-श्रद्धा-समर्पण एव क्षमा-याचना की। तदनन्तर मगल पाठ श्रवण कर सभा विसर्जित हुई और आचार्यश्री सत-मण्डली के साथ खिमेसराजी के बगले पर पधार गए। द्वितीय दिन भोपालपुरा (उपनगर) मे पदार्पण हुआ जहाँ मोहन ज्ञान मदिर के निकट-वर्ती विशाल मैदान मे दो प्रवचन हुए।

• • •

लसडावन पधारे। वहाँ श्री चांदमलजी कोठारी ने अपने सुपुत्र श्री हरखचन्दजी, जो विगत कुछ समय से अध्ययनरत थे, का आज्ञापत्र प्रदान किया और निवेदन किया कि इस दीक्षा का सौभाग्य लसडावन को ही मिले।

लसडावन से आपश्री निम्बाहेडा पधारे, जहाँ महावीर जयन्ती के प्रसग पर आपका बाजार के मुख्य चौक मे मार्मिक–उद्‌बोधनात्मक प्रवचन हुआ। महावीर जयन्ती के प्रवचन मे स्थानीय जनता के अतिरिक्त लगभग ५०० व्यक्ति बाहर आसपास के (उदयपुर, बडी सादडी आदि) क्षेत्रों से आकर उपस्थित हुए। साथ ही रात्रिकालीन ज्ञान-चर्चा मे अनेकानेक शिक्षित वर्ग के व्यक्तियो की जिज्ञासाओ को समुचित समाधान दिया गया।

पीपलिया की आदर्श एवं भव्य दीक्षाएँ

चू कि अक्षय तृतीया को पीपलिया मण्डी मे आदर्श वैरागी श्री अमरचन्द जी पामेचा एव उनकी धर्मपत्नी वैराग्यवती श्रीमती कस्तूर बाई की भागवती दीक्षा सम्पन्न होने वाली थी, अत· निम्बाहेडा मे कुछ दिन धर्मोद्योत करके, जावद, नीमच, आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए आपश्री पीपल्या मण्डी पधारे।

वैरागी बन्धु श्री अमरचन्दजी एवं वैराग्यवती कस्तूरबाई की दीक्षा की वह छटा पीपल्या मण्डी के इतिहास मे अभूतपूर्व एव अनूठी थी। विशाल वट-वृक्ष के नीचे लगभग १५-२० हजार की जन मेदनी के समक्ष आचार्यश्री के कर-कमलो द्वारा दोनो की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। उस आदर्श पति-पत्नी का त्याग भी कम अनूठा नही था। उन्होने भरे यौवन मे ११, ९ एवं ३ वर्ष की सन्तानो एक लडकी एवं दो लडको को अन्य भ्राता, पारिवारिक जनो के सशक्त कन्धो पर सौपकर लाखों की सम्पत्ति को तिलाजलि दे दी।

दीक्षा की उसी बेला मे विरक्तात्मा श्री अमरचन्दजी की ग्यारह वर्षीय सुपुत्री श्री चन्दनाकुमारी जो स्वय दीक्षिता होने को आतुर हो रही थी, ने "मारे ज्ञान रग लागो, मारे मन को धोखो भागो" आदि सगीत-कडियो का सुमधुर कठ से गान कर वातावरण मे सरसता एव रमणीयता का सचार कर दिया। विशाल जन-मेदनी उस छोटी सी बालिका की सुमधुर किन्तु तार स्वर की सगीत लहरी को सुनकर भाव-विभोर हो गई। यद्यपि कुमारी चन्दना भी अपने आदर्श माता-पिता के चरण चिह्नो का अनुसरण कर, उन्ही के साथ उसी बेला मे सयम-पथ का अनुशीलन करना चाह रही थी, किन्तु वय की लघुता के कारण आचार्यश्री ने तत्काल उसे दीक्षा पचखवाने से अस्वीकृत कर दिया और समझाया "अभी तुम महासतियाँ जी के सान्निध्य मे धार्मिक अध्ययन करो। समय एव वय की परिपक्वता के साथ सयम-साधना में प्रवेश की बात करना।"

अध्यापको एव विद्यार्थियो के मध्य प्रभावक एव मार्मिक प्रवचन हुआ । अनन्तर जैन दर्शन के सम्बन्ध मे शिक्षको की जिज्ञासाओ का तर्क-सम्मत समाधान दिया गया ।

जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा

विद्याभवन से भुवाना स्पर्शते हुए आयड पधारे। आयड मे कुछ दिन धर्मोद्योत कर अशोक नगर पधारे, जहाँ दिगम्बर धर्मशाला के विशाल प्रागण मे प्रवचन हुआ । दूसरे दिन दिनाक २२ १ ६३ माघ कृष्णा १२, को वैराग्यवती श्री सुशीला कुमारी की दीक्षा सम्पन्न होने वाली थी । उसके एक दिन पूर्व एक अनोखी घटना घट गई । हुआ यह कि श्री अमरचन्दजी पामेचा कुछ अर्से से वैराग्यभाव मे चल रहे थे । उनके पिता श्री वृद्धिचन्दजी पामेचा आचार्यश्री की सेवा मे आये हुए थे और सन्तो की सेवा मे बैठे हुए थे । वार्तालाप के दौरान सन्तो ने कहा—"श्रावकजी, अमरचन्द को आज्ञा क्यो नही देते हो ?"

वृद्धिचन्दजी ने कहा—"उसे आज्ञा दूँ तो मुझे वन्दना करनी पडेगी ।"

"तो फिर आप पहले तैयार हो जाइये ।" सन्तो ने विनोद भरे स्वर मे कहा ।

"हाँ महाराजश्री, मैं भी यही सोच रहा हूँ । कल होने वाली दीक्षा के साथ मुनिवेश पहन लूँगा ।" वृद्धिचन्दजी ने गम्भीर स्वर मे कहा ।

मुनिश्री ने इसे विनोद समझा और कहने लगे—"जिसे आगे बढना है, वह कल नही देखता, लेना है तो आपके लिए आज का मुहूर्त ही अच्छा है ।"

"तो ठीक है, मैं अभी जाकर ओघा, पात्रा और वस्त्र ले आता हूँ ।" कहते हुए वृद्धिचन्दजी उठ खडे हुए । सन्त इसे विनोद ही समझ रहे थे कि ६७ वर्ष के वृद्ध आदमी क्या दीक्षा लेगे, किन्तु वृद्धिचन्दजी एक कर्मठ कर्मवीर व्यक्ति थे । उस वृद्धावस्था मे भी उनमे अद्भुत स्फूर्ति, साहस और जोश था । वे सीधे कोठारीजी की हवेली, जहाँ उनके सुपुत्र श्री अमरचन्दजी सपरिवार रहते थे, पहुँचे । "होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की लोकोक्ति के अनुसार राय-पुर वाली सेठानी श्री लक्ष्मीबाई की सन्दूक अमरचन्दजी के पास पडी थी । उसमे दीक्षा के सभी उपकरण विद्यमान थे । संयोगत वह आज खुली ही पडी थी । पुत्रवधू अर्थात् श्री अमरचन्दजी की पत्नी पेटी को ताला लगाना भूल गई । वृद्धिचन्दजी ने ओघा (रजोहरण) आदि उपकरण निकाले और चल पडे भोपालपुरा मे विराज रहे स्थविर श्री सूरजमलजी म. सा तथा ताराचन्दजी म सा की सेवा मे । कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म सा भी वही थे । वहा वस्त्र धारण कर अशोक नगर मे विराजित आचार्यश्री के समक्ष उपस्थित हो निवेदन करने लगे—"गुरुदेव, मुझे दीक्षा प्रदान करने की कृपा करे ।"

आचार्य पद के प्रथम वर्षावास की घोषणा संघर्षों पर विजय

पीपलिया मण्डी की उक्त दीक्षाओ के प्रसग पर ही विभिन्न क्षेत्रो के श्री सघ उपस्थित हुए और अपने-अपने क्षेत्रो मे अगले सवत् २०२० के चातुर्मास करने हेतु विनती करने लगे। विनती करने वाले सघो मे प्रमुख थे—व्यावर, वगडी, जावरा, रतलाम एव जावद आदि। सभी सघो की तीव्र उत्कंठा थी कि आचार्य पद के पश्चात् प्रथम चातुर्मास का सौभाग्य उन्हे प्राप्त हो। रतलाम, जावरा एव जावद संघ तो अत्यधिक हठ पर उतर गए कि इस चातुर्मास का लाभ उन्हे ही मिलना चाहिए।

उपर्युक्त तीनो क्षेत्रों का विशेष आग्रह देखकर आचार्यश्री ने फरमाया "आप सभी की धर्म-भावना सराहनीय है, किन्तु चिन्तन यह करना है कि चातुर्मास किसी एक स्थान पर ही हो सकता है, सब स्थानो पर नही। ऐसी परिस्थिति मे मैं स्वर्गीय आचार्य देव के पथ का अनुकरण कर लूँ तो सम्भवतः श्रेष्ठ रहेगा। आचार्य देव का दृष्टिकोण था कि यदि तनाव की स्थिति बनती है तो तत्काल निर्णय न लेकर कुछ समय के पश्चात् श्री सघो को सूचित करवा देना चाहिए कि चातुर्मास अमुक स्थान के लिए स्वीकृत किया गया है। यदि आप लोग उचित समझे तो मैं भी वही मार्ग अपना लूँ अन्यथा आप चातुर्मास का अभी निर्णय लिवाना चाहते हो, तो आपसी खिचाव को छोड़कर आपस मे मिलकर एक निर्णय पर पहुँच जावे या मुझ पर छोड देवे कि जहाँ मेरी अन्तरात्मा साक्षी दे, वहाँ की मैं स्वीकृति दे सकूँ।"

अन्त मे सभी ने मिलकर सन्ध्या को आचार्यश्री से निवेदन किया "आप जहाँ उचित समझे, चातुर्मास निर्धारण की कृपा करे, हम सभी इसे सहर्ष स्वीकार करेगे।"

इधर समाज-प्रमुखो का प्राय सर्वसम्मत स्वर था "दीक्षा लेने के पश्चात् आपका स्वतन्त्र रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण यह प्रथम चातुर्मास है और आचार्य पद का मगल-प्रवेश रूप प्रथम वर्षावास है। अत यह चातुर्मास किसी एक श्रद्धानिष्ठ क्षेत्र मे होना अधिक उपयुक्त एव शातिपूर्ण होगा। चूँकि व्यावर, जावरा एव रतलाम तनावपूर्ण क्षेत्र है अत. ऐसे क्षेत्रो मे संघर्ष की अधिक सम्भावना रहती है और हमे सघर्ष में नही उलझना है। विशेषकर रतलाम क्षेत्र मे तो सर्वाधिक सघर्षमय वातावरण है। वहाँ श्रमण-सघ की स्थिति को लेकर स्थानकवासी जैनो में तो तुमुल सघर्ष है ही, किसी मन्दिर को लेकर जैन-वैष्णव सघर्ष भी अपनी चरम सीमा पर है। वैष्णव समाज के कुछ सदस्य हिंसक वृत्ति पर भी उतरे हुए है। अत. ऐसी परिस्थिति मे आचार्य पद का प्रथम चातुर्मास रतलाम मे तो किसी भी स्थिति मे नही होना चाहिए।

आचार्यश्री ने स्पष्ट करते हुए कहा—"मैने तो इन्हे दीक्षा नही पचखाई है, वे स्वय साधु परिवेश मे मेरे पास आये थे और मुझसे दीक्षा पचखाने का आग्रह करने लगे। किन्तु मैने बिना आप लोगो की आज्ञा के दीक्षा पचखाने से स्पष्ट मना कर दिया। तब उन्होने स्वय दीक्षा पचख ली। अब आपको जैसा उचित लगे, करे। आपके पिताजी है। आप समझाएँ, मनाये या जिससे आप सबको शाति मिले, करे। आप स्वतन्त्र है।"

तब जमनालालजी एव माणकचन्दजी ने अपने पिताश्री श्री वृद्धिचन्दजी के समीप जाकर अत्यधिक विनम्र निवेदन किया, "आपकी अवस्था साधना योग्य नही है। आपश्री घर पर चले और वही पर धर्म-स्थान मे बैठे-बैठे धर्म-ध्यान करियेगा। आप हमारा कोई सासारिक कार्य न करे, किन्तु घर पर ही रहकर साधना करे।"

कर्मठ कर्मवीर, अपनी निष्ठा मे अडिग श्री वृद्धिचन्दजी ने बडे स्पष्ट शब्दो मे उत्तर दिया—"साधु का परिवेश कोई बच्चो का खेल नही है, जो आज पहना और कल फेक दिया। मैने बहुत सोच-समझकर यह परिवेश एव सयमी जीवन स्वीकार किया है। अब यह पोशाक देह मे प्राण रहते तो कोई नही उतार सकता। मैने परिवार के बन्धनो को तोड दिया है। अब सारा ससार ही मेरा परिवार है। अब तो साधु-जीवन एव साधु-वेश जीवन पर्यन्त रहेगा। सथारा सलेखना के साथ पण्डित-मरण होने पर ही अब यह परिवेश छूट सकता है।"

विवश होकर जमनालालजी एव माणकचन्दजी आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे—"हमने पिताजी से बहुत विनम्र प्रार्थना की, किन्तु वे अपने विचारो मे अटल है। ऐसी स्थिति मे आप कृपा कर अब उन्हे विधिवत दीक्षा देकर अपने साथ मिला लीजिये। हम सहर्ष अनुमति दे रहे है।"

"आप इन्हे वृद्धावस्था मे अपना मोह त्यागकर दीक्षा की अनुमति प्रदान कर रहे है और श्री वृद्धिचन्दजी भी बडे पराक्रम का परिचय दे रहे है। ऐसी स्थिति मे सयम साधना मे यथायोग्य सहयोग देना मै भी अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।" आचार्यश्री ने दीक्षा देने हेतु स्वीकृति प्रदान की। साथ ही वैरागी श्री अमरचन्दजी (वृद्धिचन्दजी के सुपुत्र) तथा कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी स० सा० ने भी पारिवारिक जनो को आश्वस्त किया, 'श्री वृद्धिचन्दजी की वृद्धावस्था मे सेवा के कार्य मे हम सहयोग देने की भावना रखते है। आप भी इन्हे निश्चित हो सयम-साधना मे सहयोग देने की कृपा करे।'

तदनुसार गुरुजी ने विहार कर आपश्री [illegible] ब्यावर पधारे। वहाँ श्री वृद्धिचन्द जी का समस्त परिवार उपस्थित हुआ और माघ सुदी [illegible] दिनांक [illegible] 63 को श्री वृद्धिचन्दजी की विधिवत भागवती-दीक्षा सम्पन्न हुई।

देगे । यदि हमे कोई पीट भी देगा तो हम क्षमाभाव से सहनकर दूसरा गाल सामने कर देगे और चातुर्मास काल मे रतलाम के एक वरिष्ठ स्वयसेवक कार्यकर्ता ने वैसा आदर्श उपस्थित भी कर दिखाया । एक सज्जन ने श्री कन्हैयालालजी बोथरा को व्यवस्था के सन्दर्भ मे प्रेरित करने पर उत्तेजित होकर व्याख्यान के मध्य ही चाटा मार दिया और उन्होने तुरन्त दूसरा गाल सामने कर उसे शर्मिन्दा कर दिया ।"

अस्तु, सभी आगन्तुकों की ओर से आश्वस्त हो आचार्यश्री ने सभी विनतियो एव परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन कर अक्षय तृतीया के दूसरे दिन प्रवचन मे चातुर्मास का निर्णय घोषित करते हुए फरमाया "सभी सघो की प्रबल भावना है कि यह चातुर्मास निर्बाध क्षेत्र मे हो । सभी पूर्ण आग्रह के साथ चातुर्मास की विनती कर रहे है, किन्तु मेरी अन्तरात्मा इस वर्ष के चातुर्मास के लिए सघर्षो का वरण करने की प्रबल प्रेरणा दे रही है और इसके पीछे यह उद्देश्य नही कि मै संघर्ष चाहता हूँ, अपितु उद्देश्य यह है कि यदि हम शाति बनाये रखे तो सघर्ष समाप्त हो जाएँगे । अत: दीक्षा, आदि विशिष्ट उपकार मेरी तथा सहयोगी सन्तो की शारीरिक परिस्थिति तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आदि शास्त्रीय आगारो के अतिरिक्त भी मेरी आत्मा को यह जच जाय कि इस वर्ष अमुक स्थान पर वर्षावास करना अधिक उपयोगी होगा, तो उसका भी आगार रखते हुए फिलहाल सुखे समाधे सं० २०२० का चातुर्मास रतलाम करने के भाव चल रहे है।"

उपर्युक्त शब्द सुनते ही रतलाम सघ की प्रसन्नता आकाश चूमने लगी, उनके हृदय वल्लियो उछलने लगे । जय-जयकार के गगनभेदी नारो से आसमान गूँज उठा ।

चातुर्मास स्वीकृति के पश्चात् लसड़ावन का कोठारी–परिवार आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगा, "हमारे परिवार का सदस्य कुछ अर्से से आपकी सेवा मे है और उसकी दीक्षित होने की उत्कट भावना है। उसका आज्ञा पत्र भी हमने श्री चरणो मे निवेदित कर दिया है । अब हमारी एक ही भावना है कि आपश्री यथाशीघ्र लसडावन पधार कर उन्हे दीक्षित कर श्री चरणो मे आश्रय दे ।"

कोठारी–परिवार की उत्कट भावना एव धर्मनिष्ठा को दृष्टिगत रखते हुए लसडावन पहुँचने की साधु-मर्यादा मे स्वीकृति दे दी । लसडावन के सदस्य भी प्रफुल्लित हो लौट गये ।

अनासक्त योगी

दीक्षा के उसी अवसर पर एक स्मरणीय प्रसग और बना । रावटी के

आचार्य देव की इस अनन्त-अनन्त उपकृति से यह किंकर जन्म-जन्म तक उऋण नही हो सकेगा।

धूल धूसरित, पद-दलित पाषाण-खण्ड को वास्तुकला का सुन्दर रूप देने हेतु इस बालक को चरणाश्रय मे लेकर आपश्री ने उसी दिन बडीसादडी के लिए प्रस्थान कर दिया, क्योंकि वहाँ चार दिन पश्चात् वैरागी श्री कवरलालजी की दीक्षा होने वाली थी।

बड़ी सादड़ी मे भव्य दीक्षोत्सव

दिनाक २८ २ ६३ को कृष्णवाटिका मे वट-वृक्ष के नीचे विशाल प्रागण मे लगभग ५–७ हजार की जन-मेदनी की उपस्थिति मे वैरागी श्री कवरचन्दजी की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के समय रतलाम, उदयपुर, आदि सुदूर क्षेत्रो से सैकडो की सख्या मे भक्तगण उपस्थित हुए और अपने-अपने क्षेत्रो को पावन करने हेतु भावभीनी प्रार्थना करने लगे।

आचार्यश्री कुछ दिन बडी सादडी मे धर्मामृत वर्षा करके डूँगला पधारे। वैसे मेवाड के ग्रामीण अचल मे जहाँ भी आपश्री का पदार्पण हुआ, आपके उज्ज्वल चरित्र एव निर्मल ज्ञान-प्रभा का अनूठा प्रभाव रहा। जनता मे धर्म-जागृति की लहर-सी दौड जाती, त्याग-प्रत्याख्यानो का ताता-सा लग जाता, किन्तु डूँगला क्षेत्र मे, जहाँ कि जैन-समाज के लगभग १२५ परिवार है, आपका प्रभाव अद्भुत रहा। वहाँ के वरिष्ठ राजनैतिक एव सामाजिक कार्यकर्ता, पचायत समिति के अध्यक्ष श्री भैरूलालजी तो इतने अधिक प्रभावित हुए कि नित्य प्रति सामायिक करने की प्रतिज्ञा ली तथा कहने लगे "आज दिन इतना आग्रह यहाँ रुकने हेतु हमने किसी का नही किया। आपश्री की चरित्र-निष्ठा से हम अत्यन्त प्रभावित है।" होली चातुर्मास वही करने हेतु डूँगला सघ ने अत्यन्त आग्रह किया और सभी प्रमुख व्यक्ति अपनी पगडियाँ आचार्यश्री के चरणो मे रखकर कहने लगे कि होली चातुर्मास की स्वीकृति मिलने पर ही हम भोजन करेंगे, किन्तु उसके पूर्व ही कानोड सघ को होली चातुर्मास हेतु आश्वासन दिया जा चुका था, अत उन्हे समझाया गया कि अब तो कानोड वाले यदि आपको स्वीकृति दे, तो हो सकता है। तदनुसार डूँगला सघ ने कानोड सघ से प्रार्थना की किन्तु कानोड सघ ऐसे अप्रत्याशित लाभ को कैसे छोडने वाला था अन्ततोगत्वा डूँगला कुछ दिन रुककर आचार्यश्री कानोड पधारे और होली चातुर्मास वही किया। कानोड मे धर्माराधना की अनूठी छटा रही। आचार्यश्री के प्रवचनो से प्रभावित होकर लगभग ५० व्यक्तियो ने दहेज न लेने की प्रतिज्ञा ली तथा एक वर्ष तक प्रतिमास २५ दया करने का नियम भी लिया।

कानोड से विहार कर आप श्री मध्यवर्ती ग्रामो को लाभान्वित करते हुए

कि अच्छे-अच्छे मुनिगण अपनी परम्परा-वृद्धि हेतु वैरागियो के लिए कितने लालायित रहते है तथा उन्हे अपने पास टिकाये रखने के लिए हजारो प्रयास करते है और दूसरी ओर आचार्यश्री शिष्यत्व की शुद्ध भूमिका के प्रति कितने सजग है, एव शिष्य-वृद्धि के व्यामोह के प्रति कितने अनासक्त एव नि.स्पृह है।

आचार्यश्री के गुरुभ्राता कर्मठ सेवाव्रती, धायमातृ पदालकृत श्री इन्दरचद जी म० सा० शिक्षा के प्रसग पर मुझे (लेखक) कई बार फरमाया करते— "तुम्हारे गुरुजी जैसा नि:स्पृह साधु मैंने कही नही देखा। बहुधा साधु लोग शिष्य के प्रति लालायित रहते है, किन्तु आचार्यश्री इसके सर्वदा अपवाद है।" जब उदयपुर मे श्री सेवन्तकुमारजी की दीक्षा की चर्चा चल रही थी, जो आचार्यश्री के प्रथम शिष्य होने वाले थे, मैंने एक रोज आचार्यश्री से कहा, "श्री सेवन्त कुमारजी की दीक्षा हेतु अभिभावको को समझाने का कुछ प्रयास आपकी ओर से भी होना चाहिए। उस समय आचार्यश्री का नि स्पृह उत्तर था "तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।" मुझे अच्छा नही लगा। इतने अनासक्त रहकर ये कैसे शासन-परम्परा को बढाएँगे। प्रथम शिष्य-प्राप्ति के समय तो कितना हर्ष और उत्साह होना चाहिये, किन्तु इतनी नि स्पृह वृत्ति है, जैसे कुछ हो ही नही रहा है।

उस समय मुझे वह उत्तर अवश्य अप्रिय लगा, किन्तु अब मै कई बार सोचता हूँ कि इस अनासक्त योगी की अनासक्ति का ही इतना प्रभाव है कि इतनी अल्पावधि मे सौ से ऊपर दीक्षाएँ आपके करकमलो द्वारा सम्पन्न हुई, इसे ऐतिहासिक चमत्कार ही माना जायेगा।

एक ओर तो हम देखते है कि कही-कही एक-एक शिष्य-शिष्या की उपलब्धि हेतु, सयम एव महाव्रतो को ताक मे रखकर कितना छल-फरेब असत्य-प्रपञ्च तक किया जाता है, और दूसरी ओर आए हुए शिष्य को अपनी कर्त्तव्य-गरिमा का बोध कराना आचार्यश्री की सैद्धान्तिक अनासक्ति एव सजगता का अनूठा उदाहरण है।

अपनी वैराग्य अवस्था मे मुझे भी श्रमण-परम्परा की ऐसी साध्वियो से पाला पडा, जो अपने आपको उत्कृष्ट क्रिया-पात्र कहती थी। मै उस समय लगभग १५ वर्ष की लघु वय मे ही था। मेरे साथ मेरे साथी श्री सेवन्त कुमार जी भी थे। कुछ साध्वियाँ हमे मिली और छलनामयी भाषा मे, साधु-मर्यादा को एक ओर रखकर हमे अपने सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के लिए बहुत प्रलोभित करती रही। एक बार तो रात्रि मे प्रतिक्रमण होने के पश्चात् बहुत समय तक वे हमसे इस प्रयास हेतु बातचीत करती रही। हमने इस बात की सूचना आचार्य श्री से की थी और आश्चर्य तो तब हुआ, जब आचार्यश्री ने उन्हे मिलने पर इस बात के लिए पूछा तो उन्होने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। अन्त मे आचार्यश्री

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अद्भुत चमत्कार

[illegible] १५ हजार की [illegible] एकत्रित हो गयी। [illegible] अद्भुत [illegible] माना जा रहा था।

कुल ४-५ हजार की जनसंख्या वाले गाँव में १५ हजार व्यक्तियों का बाहर से आ जाना, [illegible] एवं विरक्तात्माओं के अद्भुत त्याग का ज्वलन्त प्रमाण है।

इसी प्रसंग में एक अद्भुत चमत्कार रहा जो पीपलिया मण्डी का स्वर्ण-इतिहास बन गया और बन गया आचार्यश्री के प्रति अपरिमित श्रद्धा का कारण। [illegible]-परिवार को इतना अनुमान नहीं था कि इतनी विशाल जनमेदनी यहाँ एकत्रित हो जाएगी। अतः उन्होंने भोजन आदि की सीमित व्यवस्था की थी, किन्तु दीक्षा के विशाल प्रांगण में तथा समीपवर्ती जिनिंग फैक्ट्री की छतों पर दृष्टि दौड़ाते हुए वे स्वयं असमंजस में पड़ गए कि इतने जन-समुदाय के लिए किस प्रकार, कहाँ और कैसे भोजन-व्यवस्था की जायेगी। किन्तु चमत्कार उस समय सिद्ध हुआ कि उस सीमित भोज्य सामग्री में ही दीक्षा-स्थल के उसी खुले मैदान में बाहर से आगत सभी दर्शनार्थियों को तो संतृप्ति हुई ही, सामग्री जादू के चमत्कार के समान बढ़ती गई और पीपलिया मण्डी की जैन-अजैन, सम्पूर्ण जनता को भोजन करवा दिया गया। इसके अतिरिक्त समीपवर्ती गाँवों में भी टोकरे भर-भर कर मिठाइयाँ भिजवाई गईं। यह कैसे हुआ, इसे तो ज्ञानी ही जान सकते हैं।

चातुर्मासार्थ रतलाम नगर-प्रवेश

मन्दसौर से जावरा होते हुए आपश्री का आगमन चातुर्मासार्थ रतलाम हुआ। रतलाम नगर-प्रवेश की छटा कुछ अनोखी ही थी, क्योकि नगर-प्रवेश के एक दिन पूर्व आपश्री का रतलाम से कुछ दूर श्रम-शिविर मे पदार्पण हो गया था। यह समाचार विद्युत्-वेग के समान रतलाम की धर्म-प्राण जनता मे एव उनके माध्यम से परिपार्श्ववर्ती सभी क्षेत्रो मे फैल गया था अत दूसरे दिन प्रात काल तक अपार जन-मेदनी श्रम-शिविर मे ही एकत्रित हो गयी। नर-नारियो एव बालक-बालिकाओ के झुण्ड-के-झुण्ड विविध परिधानो मे श्रम-शिविर की ओर चले आ रहे थे। क्योकि सभी के हृदय मे एक प्यास थी, एक उमग थी अपने पूज्य के अभिनन्दन की। सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन आदि से निवृत्त हो आचार्यश्री ने सहवर्ती सन्तो के साथ ठाणा नौ से (श्रम-शिविर से) प्रस्थान किया। प्रस्थान के साथ ही आचार्यश्री के पीछे विशाल जन-मेदनी ने एक विराट् जुलूस का रूप धारण कर लिया। रतलाम के समीप पहुँचते-पहुँचते हजारो की भीड अभिनन्दनीय शोभा यात्रा मे सम्मिलित हो चुकी थी। सभी के हृदय, बल्लियो उछाले भर रहे थे। मुखो पर आज एक आनन्ददायक प्रसन्नता छलक रही थी, क्योकि आज वर्षो की अभिलाषा बडी तीव्र उत्कण्ठा के पश्चात् पूरी हो रही थी। गगन मण्डल "हु शि उ चौ श्री ज ग नाना, लाल चमकता भानु समाना, प्रेम से बोलो जयगुरुनाना, भगवान महावीर स्वामी की जय, आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की जय।" आदि जय घोषो से गू ज रहा था। लगभग पाच-सात हजार व्यक्तियो का तुमुल स्वर एक साथ उठ रहा था। रतलाम सघ के लगभग २०० स्वयसेवक शोभा यात्रा की व्यवस्था मे सन्नद्ध थे। शोभा यात्रा अपनी व्यवस्थित गति से नगर के प्रमुख मार्गो से होती हुई चौमुखी पुल पर स्थित पौषधशाला मे पहुँचकर विशाल सभा के रूप मे परिणित हो गयी। पौषधशाला के बाहर अर्ध राजमार्ग को घेरे हुए एक विशाल प्रवचन मण्डप बना हुआ था। आचार्यश्री एव सन्त-मण्डली अपनी साधु मर्यादानुसार नवनिर्मित प्रवचन-मडप मे नही बैठकर पौषधशाला भवन के बराण्डे मे ही विराजे। प्रवचन-मण्डप की तत्कालीन छटा भी अति रमणीय एव अनोखी परिलक्षित हो रही थी। आगमोल्लिखित समवसरण-रचना का भव्य दर्शन कर सभी के नेत्र कृतकृत्य हो रहे थे। सामने एक ऊँचे पाट पर आचार्य देव एवं स्थविर पद विभूषित श्री सूरजमलजी म० सा० विराजमान थे।

यहाँ तक कि रतलाम सघ के प्रमुख गणमान्य भी (कुछ उत्साही युवको के अतिरिक्त) ऊपर से विनती करते हुए भी अन्तरग मे रतलाम चातुर्मास करवाने के पक्ष मे नही थे ।

किन्तु आचार्यश्री की आत्म-पुकार स्पष्ट थी—"सघर्ष से ही नवनीत निकलता है और सघर्ष ही विपुल शक्ति का उत्पादक होता है। सघर्ष से भयभीत होकर कार्य-क्षेत्र को छोड देने वाला व्यक्ति प्रगति के पद चिह्नो पर नही चल सकता। इसके अतिरिक्त मुझे सघर्ष से क्या प्रयोजन ? अपने मार्ग से जाता हूँ और मार्ग से आता हूँ। दूसरी बात कि जिस समय स्वर्गीय आचार्यश्री की रुग्णता की स्थिति मे उन्हे रतलाम से उदयपुर ले जाया गया, उस समय का कारुणिक दृश्य आज भी आँखो मे घूम रहा है। उसका यह तकाजा है कि प्रथम चातुर्मास का अवसर रतलाम सघ को मिले।" विविध आयामी चिन्तन के द्वारा आपकी आत्म-पुकार रतलाम चातुर्मास की ही साक्षी दे रही थी और यह हम बता चुके है कि आचार्यश्री अपनी आत्म-साक्षी के धनी है। वे अपनी अन्तर्ध्वनि के द्वारा ही किसी निर्णय पर पहुँचते हैं और आपके वे निर्णय शत-प्रतिशत सफलता के ससूचक होते हैं।

चातुर्मास-निर्णय के सन्दर्भ मे भी आपश्री ने अपनी आत्म-पुकार को ही प्रमुखता दी और विनती लेकर आगत सभी सघो के समक्ष स्पष्ट किया—"आप सबकी भावना शासन-निष्ठा एव शासन-गौरव की है। आप चाहते हैं कि चातुर्मास अपने क्षेत्रो मे हो और अति शान्त वातावरण मे वर्षावास की सुमधुर घडियाँ व्यतीत हो। इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र कोई निष्ठावान ही हो सकता है, किन्तु मैं यह कहना चाह रहा हूँ कि सघर्ष हमेशा दो के द्वारा ही होता है, दोनो हाथो से ताली बजती है। ऋणात्मक एव धनात्मक शक्तियो के सघर्षण के बिना विद्युत् ऊर्जा उत्पन्न नही होती। ठीक उसी प्रकार यदि सामने वाला ही बोलता रहे और हमने कोई उत्तर नही दिया, तो सघर्ष कैसे उत्पन्न हो सकता है। अत सर्वप्रथम मैं सभी आगत सघ प्रमुखो से सकेत करना चाहूँगा कि मेरा चातुर्मास चाहे किसी भी स्थल पर हो, आप लोगो को पूर्ण शान्ति का परिचय देना होगा। यदि कोई अपशब्द कहे अथवा कोई थप्पड भी मार दे, तो भी दूसरा गाल सामने करने की क्षमता आप मे हो तो मेरे चातुर्मास की बात करे और ऐसी क्षमता होने पर मैं सोचता हूँ कभी सघर्ष की घडी नही आ सकती।

"मेरा चातुर्मास कही भी हो, आप सभी यह प्रतिज्ञा कर ले कि हम ईंट का जवाब पत्थर से नही, फूलो से देंगे। एक चपत पडने पर दूसरा गाल सामने कर देंगे। तो फिर मैं चातुर्मास विषयक अपना निर्णय सुनाता हूँ।"

आचार्यश्री के गम्भीर अर्थपूर्ण वाक्यो को सुनकर अनन्य श्रद्धानिष्ठ सभी श्रावको ने खडे होकर प्रतिज्ञा ले ली कि "हम सघर्ष बढाने मे कभी सहयोग नही

"आज चातुर्मास-प्रवास हेतु आपकी विश्रुत नगरी रत्नपुरी मे प्रवेश हुआ है। इस वर्षावास मे हमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करनी है। आराधना काल मे यह आवश्यक है कि हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति सयम से सुनियोजित हो। खान-पान, वाणी, व्यवहार एव व्यवस्था-सचालन सभी प्रवृत्तियो मे सयम का पुट होना आवश्यक है। मेरी यह ध्रुवमान्यता है कि जहाँ सयमपूर्वक प्रवृत्ति होगी, वहाँ अशाति, वैमनस्य एवं सघर्ष उपस्थित नही हो सकते। मैं अधिक विस्तार मे नही जाते हुए आप लोगों से आज एक ही संकेत करना चाहूँगा कि आप इस चातुर्मास काल मे सन्त-सतियो की सयम-साधना मे सहयोगी बनते हुए उनसे अधिक-से-अधिक लाभ ले। साथ ही कैसी भी परिस्थितियाँ सामने आये, अपने धैर्य को नही छोडे तथा सघर्ष के क्षणो मे भी अविचल शान्ति बनाए रखे। तभी यह चातुर्मास ज्ञान-दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि के साथ सम्पन्न होगा।

"वैसे रतलाम सघ अति गौरवशाली श्रद्धानिष्ठ कर्मठ सघ है। स्वर्गीय आचार्य देव फरमाया करते थे कि रतलाम, उदयपुर, ब्यावर, एव बीकानेर चारो सुविस्तृत क्षेत्रीय सघ मच के सुदृढ पाये है। तदनुसार रतलाम सघ को पूर्वाचार्यों द्वारा बहुत अधिक गौरव प्राप्त हुआ है। रतलाम संघ को दिग्गज आचार्यो एव महामुनियो की महान् सेवाओ का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है। अत रतलाम सघ विविध प्रकार के पुरुषो की सुगन्ध से सुवासित उद्यान है। मैं तो उन महापुरुषो का पदानुसरण करता हुआ इस उद्यान से कुछ सुवास लेने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। रतलाम सघ कितनी क्या सुवास देगा, यह तो भविष्य के गर्भ मे है, किन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ रतलाम संघ के कर्मठ कार्यकर्त्ता साधु-साध्वियो के ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि मे सहयोग देने मे कभी पीछे नही रहेगे और साथ ही अपने जीवन को भी साधना-मार्ग मे नियोजित करेंगे। इसी विश्वास के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।"

• • •

धर्मनिष्ठ बन्धु श्री मथुरालालजी भी आचार्यश्री के दर्शनार्थ तथा दीक्षा-महोत्सव मे सम्मिलित होने हेतु पहुँचे। दीक्षा के कार्यक्रम की समाप्ति पर वे आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगे मेरी भी विगत कुछ वर्षों से दीक्षा लेने की भावना चल रही है। मेरी धर्मपत्नी भी इसी मार्ग का अनुसरण करना चाहती है। हम दोनों की भावना विरक्ति में है। हम चाहते हैं कि यथाशीघ्र श्रीचरणों मे उपस्थित हो जाएँ और हमे चरणाश्रय का सुअवसर मिले। किन्तु मेरे दो सन्तानें हैं जो अभी बहुत छोटी हैं। मैं चाहता हूँ कि उन्हे माता-पिता के पास छोड़कर हम दोनो ही दीक्षित हो जाएँ। उन्हें हमारे माता-पिता अच्छी तरह सम्भाल लेंगे।"

श्री मथुरालालजी की उपर्युक्त भावना का संक्षिप्त उत्तर देते हुए आचार्य श्री ने फरमाया, "आपकी भावना उत्तम है, किन्तु बच्चे अभी अत्यन्त कोमल वय मे हैं। आपका उनके प्रति मोह भले कम हो गया हो, परन्तु उनका आकर्षण भी छूटना आवश्यक है। अत: आप उन्हे कुछ दिन अलग रखकर देख ले कि उनकी कैसी स्थिति बनती है। वे आपसे अलग रह सकते हैं या नहीं ?"

"गुरुदेव ! वे अपने आप रह जाएँगे और मोह भी धीरे-धीरे छूट जायेगा। आप तो हमे दीक्षा देने की कृपा करें।" मथुरालालजी ने अपनी अनासक्ति प्रदर्शित की।

आचार्यश्री ने पुन. स्पष्ट किया, "दीक्षा लेना सर्वोत्तम है, किन्तु इसकी कुछ पूर्व भूमिका होती है। छोटे-छोटे बच्चों की समुचित व्यवस्था हुए बिना दीक्षा देना मैं उचित नही समझता। हाँ, यदि वे अपने दादा-दादी के पास हिल-मिल जाएँ, उन्हे किसी प्रकार का आर्त्तध्यान न हो, तो फिर मैं उनको अनुमति-पूर्वक दीक्षा पचखा सकता हूँ।"

आचार्यश्री के विचारों से सहमत होते हुए मथुरालालजी ने कहा—"जो ठीक है, मैं वैसी व्यवस्था करने का प्रयास करूँगा किन्तु एक निवेदन है कि चातुर्मासकाल में यदि आपश्री के चरणों में रतलाम रहूँगा, तो [illegible] गाँव) समीप होने से मोह का तांता बना रहेगा और माता-पिता [illegible] वारिक जन बार-बार ज्ञान-ध्यान में अन्तराय डालेंगे। अत: [illegible] तो मैं इस चातुर्मास में श्री समरथमलजी म० सा० की सेवा में [illegible] सर ज्ञान-ध्यान सीखूँ।"

आचार्यश्री ने स्पष्ट करते हुए कहा, "आप वहाँ [illegible] ज्ञान-ध्यान सीख सकते हैं, किन्तु बच्चों को किसी का आर्त्तध्यान न हो, [illegible] भी आवश्यक है।"

उपर्युक्त घटना इस बात की प्रबल साक्षी है कि [illegible]

करारा प्रहार करते थे। आपकी आगम-सम्मत ध्रुव मान्यता है कि समाज की भूमिका शुद्धि के अभाव मे धर्म का कल्प-पादप नही लहरा सकता। अत. समाज सुधार के दृष्टिकोण को आपश्री प्रवचन का प्रमुख अग मानते है।

आपश्री के प्रवचन के आलकारिक चित्रण तथा उक्त विषयो की प्रतिपादन-प्रणाली को सर्वांग समझने के लिए उदाहरण स्वरूप दि० २६ ७ १९६३ के प्रवचन का साराश देना पर्याप्त होगा —

"मनुष्यो मे भावनाओ के तीन विभिन्न स्वरूप पाए जाते है, भावनाओ के आधार पर मनुष्यो की तुलना तीन प्रकार के घडो से की जाती है। पहला घडा शुद्ध छने हुए पानी से भरा हुआ है। ऐसे व्यक्ति किसी भी परिस्थिति मे दृढ विश्वास के कारण परमात्मा का सदा स्मरण करते हुए मार्ग पर चलते है। दूसरा घडा जिसमे कुछ गर्दा (कचरा) पानी मे मिला हुआ है। इस प्रकार के मनुष्य दु ख मे प्रभु स्मरण करते है, परन्तु सुख के समय प्रभु को भूल जाते है। तीसरा घडा, जो नितान्त अशुद्ध जल से भरा पडा है—इस प्रकार के मनुष्य अनर्थ-भावनाओ को रखते है। पहले व दूसरे घड़े के समान जीवन की स्थिति हितकर है। उसमे लोक-परलोक का ज्ञान होने से वह जीवन को उन्नत बनाने मे सहायक होती है।

"ससार एक नाट्यशाला के समान है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी पात्र का पार्ट अदा करता है। जो मनुष्य जिस मात्रा मे ईमानदारी से अपना भाग पूरा करता है, वह उसी मात्रा मे सफलता भी प्राप्त करता है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि जिस स्थान पर वह हो, वह अपना उस स्थान का कार्य-सम्पादन पूर्ण ईमानदारी और सच्चाई से करे।

"बुरे कार्य करने वाले दो प्रकार के होते है—एक तो वह जो अज्ञानता के कारण कुकर्म करता है और दूसरा जान-बूझकर, अर्थात् यह जानते हुए भी कि अमुक कृत्य अनाचार है, परन्तु प्रलोभन अथवा अन्य लोलुपता के कारण उसे करता है। बुरे मार्ग पर जाने वालो को सही मार्ग पर लाना इतना कठिन नहीं है जितना जान बूझकर बुरे मार्गो पर जाने वालो को उचित मार्ग पर लाना। सोए हुए को जगाना इतना कठिन नही हे, जितना कठिन जागते हुए सोने का बहना करने वाले मनुष्यो को जगाना।

"जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन-मार्ग को साधारण से श्रेष्ठ मार्ग की ओर मोड देता है, वह द्विजन्मा कहा जा सकता है। यदि कोई गृहस्थ मुनि बन जाता है तो वह अपने जीवन को नया मोड देता है एव नए प्रकार का जीवन-पथ स्वीकार करता है, वह द्विजन्म लेता है। वह इन्द्रियो की

ने हम दोनो मुनियो को साक्ष्य के रूप मे उपस्थित किया तो शर्मिन्दा हो कहने लगी "हमे प्रायश्चित दे दीजिये ।"

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि शिष्य-व्यामोह की प्रवृत्ति व्यक्ति को साधना से पतित कर देती है । आज भी श्रमण-परम्परा मे, मैं कहना चाहूँगा, कि आचार्यश्री का व्यक्तित्व इसका सर्वथा अपवाद है । यह इसलिए नही कि मैं उनका शिष्य हूँ, अपितु, इसलिए कि सचोट सत्य है, और इसका कारण है आचार्यश्री के साधना मे प्रवेश के समय आपके आराध्य का शिष्य के प्रति अनासक्ति भरा उत्तर जिसका उल्लेख हम पूर्व मे कर चुके हैं ।

मालव की शस्य श्यामला भूमि पीपलिया मण्डी से दो मुमुक्ष रत्नो को अपनी श्रमण-परम्परा मे नियोजित कर आचार्यश्री ने पुन वीर-वसुन्धरा मेवाड की ओर प्रस्थान किया, क्योकि निकट भविष्य मे ही ज्येष्ठ कृष्णा पचमी को लसडावन मे वैरागी श्री हरखचन्दजी की दीक्षा निश्चित हो चुकी थी । मार्गवर्ती ग्रामो मे धर्म-जागरण की दु दुभि बजाते हुए आपश्री ११ ५ ६३ को लसडावन पधारे जहाँ १३ ५ ६३ को धर्मनिष्ठ श्रावक श्री चान्दमलजी कोठारी के सुपुत्र श्री हरखचन्द जी की दीक्षा सम्पन्न हुई ।

स्मरणीय है कि पीपलिया मण्डी एव लसडावण की दीक्षाओ की मध्य अवधि अर्थात् स० २०२० वैशाख शुक्ला १० को आचार्य देव की विशेष अनुमति से चिकारडा (मेवाड) मे स्व श्री दीपचन्दजी धीग की धर्मपत्नी श्रीमती हुलास बाई की दीक्षा विदुषी महासतीजी श्री पानकवरजी, मनोहर कवरजी की सन्निधि मे सम्पन्न हुई ।

चूँकि चातुर्मास-काल समीप आ रहा था और रतलाम बहुत दूर था, अत दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न होने पर आचार्यश्री ने यथाशीघ्र पुन मालवा की ओर प्रस्थान कर दिया । मार्गवर्ती ग्रामो मे धार्मिक लहर उत्पन्न करते हुए आपश्री पीपलिया मण्डी और वहाँ से मन्दसौर पधारे । मन्दसौर मे नई आबादी स्थित कालेज मे आपके चार प्रवचन हुए, जिसमे प्रतिष्ठित विचारक एव विद्वत् समाज ने भाग लिया । जहाँ भी आपश्री का पदार्पण हुआ, चुम्बकीय आकर्षण की तरह परिपार्श्ववर्ती क्षेत्रो से सैकडो की सख्या मे धर्म-पिपासु उपस्थित हो जाते । यह एक सामान्य सी बात हो गयी थी । मन्दसौर मे भी रतलाम, जावरा, पीपलिया मण्डी आदि क्षेत्रो से सैकडो की सख्या मे दर्शनार्थी उपस्थित हुए । आपके ज्ञान एव चारित्र का सौरभ चतुर्दिश फैलता जा रहा था, जिसके प्यासे मधुकर भक्तजन अपने आप खिचे चले आते थे ।

• • •

होते हैं। यदि आप बहिनो के कार्य का महत्त्व समझना चाहते है, तो वह कार्य स्वयं करके समझो। भोजन बनाना, शिशु-पालन आदि गृह-कार्य कुछ समय तक करके देखे कि ये कार्य आसान है या कठिन व इनका जीवन मे कितना महत्त्व है।

"राजा शिशुपाल की अन्तर्ध्वनि उसको कुमार्ग पर जाने से रोकती थी, परन्तु उसकी काम-लोलुपता उसे कुमार्ग की ओर आकर्षित करती थी। सद्बुद्धि रूपी भावज आपको बुरा कार्य करने से रोककर अपनी बहिन रूपी सन्मति की ओर आकर्षित करती है। जो मनुष्य देवी अर्थात् शुभ शक्तियो द्वारा मार्ग अपनावेगा, वह अपना और विश्व का कल्याण करेगा। जो पाशविक अर्थात् बुरी वृत्तियो का दास बनकर कुमार्ग का अवलबन करेगा, वह अपना और विश्व का अकल्याण कर विनाशोन्मुखी होगा। अब आपमे से प्रत्येक व्यक्ति यह निर्णय करे कि कौन किस पथ को अपनाना चाहता है ?"

तात्पर्य यह है कि आचार्यश्री के प्रवचनो का विषय तत्कालीन सामाजिक बुराइयो के प्रति भी उतना ही सचोट होता है, जितना कि अध्यात्म के प्रति। प्रवचन की लोकप्रियता का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि प्रति-दिन आपके प्रवचन मे श्रोताओं की सख्या मे वृद्धि होती रहती थी। लगभग ४००० व्यक्तियो के बैठने जितना बड़ा विशाल प्रवचन-मण्डप अथ से इति तक भरा रहता। विशेपकर रविवार के प्रसगो पर तो स्वयसेवकगण पुन. पुन. पुकारते रहते—"आकाश मे विकास करिए" फिर भी कुछ श्रोतागण प्रवचन मण्डप के बाहर खडे-खडे सुना करते, जबकि रतलाम मे ही उस वर्ष स्थानकवासी अन्य सन्तो का तथा मूर्तिपूजक विदुषी साध्वी का चातुर्मास था। रविवार का प्रवचन किसी एक मौलिक विपय को स्पर्श करते हुए धारा-प्रवाही चलता था, जिसका समापन प्राय· ११ बजे के पश्चात् होता था।

दैनदिनी प्रवृत्तियो मे मध्याह्न मे आचार्यश्री "आचाराग सूत्र" की टीका के आधार पर तल-स्पर्शी विवेचन प्रस्तुत करते, जिसका रसपान आगम रसिक साधु-साध्वी एव श्रावक-श्राविका बड़ी तन्मयता से करते। इस अतराल मे कुछ समय निकालकर हम सभी नवदीक्षित मुनियो को—सैद्धातिक अध्ययन की प्रेरणा भी आचार्यश्री के द्वारा मिला करती। चूं कि स्थविर श्री सूरजमलजी म० सा०, कर्मठ सेवाभावी "धायमाता" पद विभूपित श्री इन्दरचन्दजी म० सा० एव तपस्वी श्री कवरलालजी म० सा० के अतिरिक्त हम सभी सन्त नव-दीक्षित ही थे, अत· उनके जीवन-निर्माण की बहुत बडी जिम्मेदारी आपश्री पर थी। वैसे नव-दीक्षित सन्तो की आतरिक सेवा-संयोजना उपयुक्त आहारादि का सयोजन, सयमीय क्रियाओ के प्रति सजगता के सस्कार आदि का निर्वहन तो कर्मठ सेवाभावी श्री इन्दरचन्दजी म० सा० बड़ी कुशलता पूर्वक कर लेते थे, किन्तु अध्ययन, अध्यापन एव साधनागत सस्कार निर्माण का कार्य

दोनो ओर परिपार्श्व मे उसी से कुछ नीचे पाट पर कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० तथा श्री कवरलालजी म० सा०, श्री सेवन्त मुनिजी म० सा०, श्री अमर मुनिजी म० सा०, श्री कवरचन्दजी म० सा० और मैं (शान्ति मुनि) एव श्री हरखमुनिजी विराजमान थे। पाट के कुछ दूर वराण्डे मे ही महासतीजी श्री तेजकवरजी, श्री गट्टूजी म० सा० आदि ठाणा ६ विराज रहे थे और सामने प्रवचन-मण्डप मे था अपार जन-समूह। सब मिलाकर समवसरण की अतुलनीय छटा के दर्शन से जन-जन के नेत्र परितृप्ति का अनुभव कर रहे थे।

मंगल प्रवचन

सर्व प्रथम आचार्यश्री ने सिद्ध स्तुति के माध्यम से प्रासगिक, किन्तु अत्यन्त मार्मिक एव ओजपूर्ण सक्षिप्त प्रवचन फरमाया, जिसका सार था— "सिद्ध प्रभु हम सभी के लिए चरम एव परम आदर्श हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हम किसी-न-किसी आदर्श को समक्ष रखकर ही गति करते हैं। जिस प्रकार व्यापार के क्षेत्र मे प्रवेश करने वाला व्यक्ति अपने से किसी बडे व्यापारी को आदर्श मानकर उसका अनुसरण करता है यही स्थिति जीवन-व्यवहार के अन्यान्य क्षेत्रो मे भी होती है। अध्यात्म का मार्ग, जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि का मार्ग होता है, अत· अध्यात्म पथिक का आदर्श भी तदनुकूल सर्वोच्च चेतना ही हो सकती है, और वह है सिद्ध परमात्मा। चूकि हमारी साधना का परम उद्देश्य है सिद्धावस्था की उपलब्धि, अत सिद्ध प्रभु को आदर्श मानकर हमे अपने मे और सिद्धात्मा मे निहित अन्तर को दूर करना होगा। यद्यपि यह अति कठिन एव श्रमसाध्य लक्ष्य है, तथापि यदि साधक दृढ आत्म-वल के साथ अपनी साधना मे गतिशील रहे तो—

"करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान,
रसरी आवत जात ते सिल पर पडत निशान।"

के अनुसार इस दुष्कर मार्ग को भी सुकर बनाया जा सकता है, किन्तु इतने विस्तृत अन्तर को पार करने के लिए पहले परिवार, समाज एव राष्ट्र मे व्याप्त विषमताओ के अन्तर को पाटना होगा। जो व्यक्ति समुद्र को लाघने की बात कर रहा है, उसके लिए आवश्यक है कि पहले वह कम-से-कम नगर की गन्दी नाली लाघने की क्षमता अर्जित करे। सिद्धावस्था तक पहुँचना सागर लाघने के समान है और पारिवारिक एव सामाजिक द्वन्द्वो-सघर्षो की खाई को पार करना, नाली लाघने के समान है। अत हमे पहले राग-द्वेष की प्रवृत्तियो को कम करते हुए पारिवारिक एव सामाजिक सघर्षो से ऊपर उठना है। विषमता की इस छोटी खाई को लाघते हुए हम क्रमश समता-सिद्धान्त-दर्शन से समता परमात्म-दर्शन तक पहुँच सकेंगे, जो कि हमारा चरम आदर्श है।

विशेष प्रसंग

इस प्रकार चातुर्मास काल सामान्यतया सुव्यवस्थित कार्यक्रमो मे व्यतीत हुआ, किन्तु कुछ ऐसी उल्लेखनीय घटनाएँ भी इस वर्षावास मे घटित हुई जिससे आचार्य प्रवर के विराट् व्यक्तित्व का एक रूप और प्रकट हुआ ।

संत-मिलन

श्रमण-सघ से सम्बन्ध-विच्छेद के पश्चात् कुछ अति साप्रदायिक तत्त्वो द्वारा आचार्यश्री पर यह आरोप लगाया जा रहा था—"नानालालजी म० सा० साम्प्रदायिक तत्त्वो को प्रेरित करते है, किसी से प्रेम सम्बन्ध नही रखते है तथा अन्य सम्प्रदायो की निन्दा करते है ।" किन्तु उनकी यह भ्रान्ति आपके चातुर्मास के मगल प्रवेश के दिन ही निर्मूल हो गयी । आचार्यश्री को जब यह ज्ञात हुआ कि नीम चौक के धर्म स्थान मे विराजित स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० सा० के शिष्य मुनि श्री चम्पलालजी म० सा० विगत कुछ दिनो से अधिक अस्वस्थ है तो आपश्री प्रवेश के दिन ही मध्याह्न मे सन्त-समुदाय के साथ नीम चौक स्थानक मे पधार गए और स्नेह-मिलन के साथ कुछ वार्तालाप हुआ । वही आपको यह ज्ञात हुआ कि दूसरी मजिल पर श्री मगनमलजी म० सा० भी अस्वस्थ है, तो आपश्री ऊपर पधार कर उनसे भी मिले । आपश्री के उस मधुर मिलन तथा मधुर सौजन्यतापूर्ण व्यवहार से जहाँ साधु-समुदाय मे स्नेहिल भाव उत्पन्न हुआ, वहाँ तथाकथित श्रावको की यह भ्रान्ति कि "नानालालजी कट्टर सम्प्रदायवादी है" निर्मूल सिद्ध हुई ।

आचार्यश्री के वहाँ पदार्पण से तथा सौजन्यतापूर्ण वार्तालाप से वहाँ विराजित प० र० श्री सौभाग्यमलजी म० सा० पर भी एक गहरा प्रभाव पडा । फलस्वरूप स्वय कुछ विस्तृत विचार–विनिमय हेतु पौषधशाला (जहाँ आचार्यश्री विराज रहे थे) पधारे । उस समय भी अत्यन्त स्नेह, सौजन्यतापूर्ण चर्चा हुई ।

वार्ता का प्रारम्भ करते हुए श्री मालवकेशरीजी ने कहा—"मैं आपको श्रमण सघ मे लेकर रहूँगा ।"

आचार्य प्रवर ने मधुर स्मित के साथ कहा—"मैं श्रमण सघ से बाहर कहाँ हूँ । भगवान् महावीर के चतुर्विध सघ के अगभूत श्रमण सघ मे मैं आज

दैनन्दिन - क्रम

चातुर्मास कालीन दैनन्दिन प्रवृत्तियो मे प्रात सूर्योदय के पश्चात् प्रार्थना, ८३/४ बजे से १०१/२ बजे तक प्रवचन । प्रवचन का प्रारम्भ स्थविर पद विभूषित तपस्वी श्री सूरजमलजी म० सा० करते थे जिसमे वैराग्य-रस से ओत-प्रोत काव्यमयी वाणी मुखरित होती थी । लगभग ९ बजे आचार्यश्री का प्रवचन प्रारम्भ होता था जो १०१/२ बजे तक तथा रविवार को करीब ११ बजे तक चलता था । आचार्यश्री का प्रवचन तात्त्विक, रोचक एव भाव प्रवाही होते हुए भी इतनी सुबोध-प्राजल भाषा मे होता था कि आवाल वृद्ध श्रोता तन्मय हो उसी मे खो जाते थे । प्रवचन का प्रमुख विषय आध्यात्मिक होता था, साथ ही सामाजिक एव पारिवारिक विषयो पर भी पूरा प्रकाश डाला जाता था ।

प्रार्थना और उसकी भाव-प्रवाही विवेचना मे जब आप अध्यात्म मे उतरते, तो ऐसा लगता जैसे एक वाग्मी द्रव्यानुयोग की अनुभूति मूलक मीमासा करता हुआ स्वय उसमे आकण्ठ निमज्जित हो श्रोताओ के समक्ष उसका सदोह उपस्थित कर रहा हो । अध्यात्म के किसी एक ही शब्द को आधार बनाकर लगभग १-११/२ घटे तक आप धारा प्रवाही विवेचन प्रस्तुत करते । इस वर्षावास मे अध्यात्म प्रतिपादन मे आपका विषय था—"स्वरूप-बोध के प्रति जागरण ।" अपने विषय को परिपुष्ट करने के लिए आपने कई दिनो तक केवल "सोऽह" की विद्वतापूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की । आपके प्रवचन की प्रमुख विशेषता यह रहती कि अध्यात्म का कितना ही नीरस विषय क्यो न हो, आपश्री उसमे वह सरसता ले आते कि श्रोता मत्रमुग्ध से नीरव शाति पूर्वक प्रवचन के साथ एकाकार हो जाते । यही कारण था कि प्रवचन मे निरन्तर जैनेतर लोगो की उपस्थिति भी अधिकाधिक होती रही ।

आपश्री के प्रवचन का दूसरा अग था—आगम-विवेचन । आगम के एक ही पद (गाथा) की महीनो तक विवेचना चलती रही, फलत. आगम के बोझिल सूत्र भी अत्यन्त स्फुट हो गये ।

प्रवचन के तीसरे अग मे "रुक्मणी विवाह" के पौराणिक प्रवचन को माध्यम बनाकर समाज-सुधार की दिशा मे आपश्री सचोट विवेचना प्रस्तुत करते थे । समाज मे चली आ रही जड रूढियो एव अध-विश्वासो के प्रति आप

है, किन्तु किसी सैद्धान्तिक भूमिका के निर्धारण का जहाँ तक प्रश्न है, वह हम दोनों के मिल लेने मात्र से नही बन सकती है। हाँ, मै अपने संघ के विषय मे विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि मै जो कुछ निर्णय लू गा, उसे स्वर्गीय आचार्य देव मे निष्ठा रखने वाला चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य स्वीकार कर सकता है, किन्तु क्या उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० के निर्णय को श्रमण सघ के सभी सन्त-सती वर्ग भी स्वीकृति देगे ?

"यदि पहले समस्त वरिष्ठ मुनियो से परामर्श कर लिया जाए और वे एकाधिकार उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० को समर्पित कर दे कि वे जो कुछ भी निर्णय-निर्धारण करे, उसे सभी सहर्ष स्वीकार करेगे तब तो मिलने मे कुछ सार है, अन्यथा हम दोनो ने कुछ भी निर्णय लिया और संघ के वरिष्ठ सन्तो ने उसे मान्यता नही दी तो फिर मिलने से क्या अर्थ रहेगा ? इसके विपरीत जनता मे एक भ्रान्त धारणा भी फैल सकती है। अतः आप उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० से निवेदन कर सकते है कि मिलन के पूर्व यह रूपरेखा बन सके तो उत्तम रहेगा।"

"श्रमण सघीय मुनि मण्डल की ओर से उपाध्यायश्री को सर्वाधिकार प्राप्त हो जाएँ, यह सम्भव नही है।" श्री शुक्लजी ने स्पष्ट किया और कुछ विचार-विमर्श के उपरान्त चले गये।

इसी प्रकार २ जुलाई, १९६३ को आचार्यश्री को ज्ञात हुआ कि मुनि श्री चम्पालालजी म० सा० का स्वर्गवास हो गया है तो आपश्री ने तपस्वी श्री सूरजमलजी म० सा० एव कर्मठ सेवाभावी श्री इन्दरचन्दजी म० सा० को वहाँ जाने का निर्देश दिया। यह एक प्रशस्ततम सयोग ही था कि चातुर्मास के मंगल प्रवेश के साथ ही मगलमय मधुर स्नेह मिलन का सुखद वायु मण्डल निर्मित हो गया।

हृदय–परिवर्तन

रतलाम चातुर्मास की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—हृदय परिवर्तन। यह कहा जा चुका है कि रतलाम मे उस समय जैन-जैनेतर का वर्ग-सघर्ष अपनी चरम सीमा पर था। वह सघर्ष केवल वैचारिक द्वन्द्व का ही नही, अपितु व्यावहारिक उत्तेजनाओ का भी केन्द्र बन चुका था। परिणामस्वरूप दोनो वर्गो मे अत्यन्त तनावपूर्ण स्थिति व्याप्त थी।

श्रद्धेय आचार्यश्री को इस विषय का परिज्ञान चातुर्मास स्वीकृति के पूर्व ही हो चुका था, तथापि आत्म-पुकार के साक्षित्व मे आपश्री ने रतलाम चातुर्मास की स्वीकृति दी थी।

दासता से स्वाधीनता प्राप्त कर परमात्मा की प्राप्ति के पथ की ओर अग्रसर होता है।

"जो मनुष्य अपनी करनी का शीघ्र फल चाहता है, वह अपनी करनी मे विश्वास नही रखता है। अविश्वासी मनुष्य उचित प्रकार से अपने कर्म का पालन न करके फल से वचित रहता है। एक सेठ के दो पुत्र जगल मे गए। यहाँ मोरनी के दो अण्डे मिले। घर पर जाकर दोनो ने बटवारे के फलस्वरूप एक-एक अण्डा ले लिया। एक लडके ने अपने अण्डे का उचित प्रकार से रक्षण किया फलस्वरूप उसने मोर का बच्चा पाया। दूसरा प्रति दिन उस अण्डे को निकाल कर देखता था कि वह कितना बडा हुआ। बार-बार अण्डे को देखने के कारण वह बिगड गया। इसी प्रकार व्यक्ति परमात्मा के पुत्रवत है। श्रद्धा और ज्ञान रूपी दो अण्डे उन्हे मिले है। नित्य यह देखना कि धार्मिक क्रिया का फल मिला या नही, यह श्रद्धा की कमी का द्योतक है और इस प्रकार की वृत्ति उचित व लाभप्रद फल से वचित कर देती है। यदि आप विश्वास व दृढ सकल्प के साथ धर्म-पथ पर चलते रहे, तो उसका शुभ फल अवश्य मिलेगा। आम लगाने वाला वर्षो बाद आम्र फल पाता है। परन्तु घास शीघ्र उत्पन्न होती है। महत्त्व रखने वाला फल अधिक समय पश्चात् प्राप्त होता है। सफलता श्रद्धा तथा विश्वास, के साथ है। ज्ञानमय श्रद्धा सम्यक्त्व का द्वार है। इसकी प्राप्ति जीवन-द्वार का पथ प्रदर्शित करती है। इसके द्वारा आत्मा जीवन का परिमार्जन कर मलीनता की तीनो श्रेणियो को पार कर अपना उद्धार करती है। यहाँ कवि, अजितनाथ प्रभु के गुणानुनाद करते हुए कहता है कि वह ज्ञानमय श्रद्धा को प्राप्त कर अपनी आत्मा के स्वरूप का दर्शन करता हुआ आत्म रमणता का अलौकिक सुख प्राप्त करता है।

"बहिनो मे भी विभिन्न शक्तियाँ तथा कार्य-प्रणाली विद्यमान है। कुछ भावुक होती है, जो प्रत्येक उत्सव मे बिना समझे भाग लेती है। मुट्ठी भर बताशो के लिए ६० वर्ष के वृद्ध के विवाह मे बालक बनडा गाती हैं। अकल्याणकारी उत्सव अन्याय के पोषक है। क्या आपकी पचायतो मे विवाह के लिए कल्याणकारी नियम है ? क्या पुरुष केवल अपने ही जीवन को महत्त्व-पूर्ण समझकर एक से अधिक विवाह या पत्नी के मरने पर दूसरा विवाह नही करते ? क्या आपमे ऐसे पुरुष मिलेगे, जो यह प्रतिज्ञा करे कि प्रथम पत्नी के अवसान पर दूसरा विवाह नही करेंगे।

'आप सब दूसरो के त्याग, उदारता, तपस्या, वैराग्य आदि की बाते सुनना चाहते हैं, परन्तु उन सद्गुणो को अपनाने को जब कहा जाता है, तो आप श्रोताओ को उतना रोचक नही लगता। पति-वियोग के बाद बहिनें पवित्र और उज्ज्वल जीवन बिताती हैं। बहिनो के चरित्र भाइयो से अधिक शक्तिशाली

क्षमा का अपूर्व आदर्श

यह वताया जा चुका है कि जैन-वैष्णव सघर्ष के समान ही रतलाम मे जैन-जैन (साधुमार्गी-स्थानकवासी) परम्परा का अन्त संघर्ष भी अपनी पराकाष्ठा पर था। चूंकि कुछ समय पूर्व ही चारित्रिक शैथिल्य के कारण श्रमण-संघ से सम्वन्ध विच्छेद हुआ था और आचार्यश्री प्रथम वर्षावास हेतु रतलाम पधारे थे, अत श्रमण सघ के कुछ तथाकथित अग्रगण्य आपश्री के प्रति अभद्र शब्दो का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार से चातुर्मास को असफल बनाने का प्रयास करते रहे। उनके इस प्रकार के षड्यत्र की प्रामाणिक जानकारी एक पत्र के माध्यम से आचार्यश्री को हुई। आपश्री ने विरोध को विनोद के रूप मे स्वीकार करते हुए मधुर हास्य के साथ कहा—"ये लोग तो मुझे सजग होकर सयम में दृढचित्त रहने के लिए सावधान कर रहे है।"

एक घटना—निम्बाहेडा से एक युवा सज्जन, जो आचार्यश्री मे अनन्य निष्ठा रखते थे, रतलाम दर्शनार्थ उपस्थित हुए और अपने सम्वन्धी, जो कि विरोधी पक्ष श्रमण-संघ के प्रमुख कार्यकर्ता थे, के यहाँ ठहरे। उन्होने उनके पत्रो की फाइल देखी। सहसा एक पत्र पर उनकी दृष्टि केन्द्रित हो गयी, जो कि मन्दसौर से आया था। वे उसको लेकर आचार्यश्री के समीप पहुँचे और सुनाने लगे कि आपश्री के विरोध मे ऐसे षड्यत्र चल रहे है। जिसका साराश है कि "नानालालजी रतलाम चातुर्मास करने आ रहे है, किन्तु ऐसा योजनाबद्ध षड्यत्र रचा जावे कि वे रतलाम आना भूल जावे।"

पत्र लाने वाले वन्धु को आचार्यश्री ने सक्षिप्त उत्तर दिया—"मै तो समता के मार्ग पर चलता हूँ। आप कोई चिन्ता न करे।" यह है सहनशीलता एव सुदृढ़ता का प्रत्यक्ष दर्शन। इस प्रकार प्रवलतम विरोधी के प्रति भी आचार्यश्री के विचार सौजन्य पूर्ण ही रहते है। आज भी आचार्यश्री के श्रीमुख से एक श्लोक मुखरित हुआ करता है, जो उनके जीवन मे साकार रूप ले चुका है—

"जीवन्तु मे शत्रुगणा सदैव,
यॆषा प्रसादात् सुविचक्षणोह।
ये येहिच मा प्रतिवाधयन्ति,
ते ते सदा मा प्रतिवोधयन्ति॥"

आचार्यश्री को ही करना होता था वैसे व्याकरण आदि के अध्यापन हेतु जैन-दर्शन के विश्रुत विद्वान् प० श्री रतनलालजी सघवी अपनी अमूल्य सेवाएँ दे रहे थे। अत आचार्यश्री का कार्य कुछ हल्का हो जाता था। आचार्यश्री पर केवल अनुभूति मूलक सैद्धान्तिक सस्कारार्पण का ही दायित्व रह जाता था।

दैनिक क्रिया-कलापो मे अन्तिम एव महत्त्वपूर्ण स्थान था रात्रिकालीन ज्ञान-चर्चा का। रात्रि को प्रतिक्रमणोपरात लगभग डेढ–दो घण्टे तक तत्त्व-चर्चा का कार्यक्रम रहता, जिसमे ज्ञान-विज्ञान, धर्म, पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा, तत्त्व-दर्शन आदि विविध आयामी जिज्ञासाओ का आपश्री सुविस्तृत बुद्धिगम्य समाधान प्रस्तुत करते।

• • •

की गरिमा का भान कराते हुए कहा—"सत्यपि साम्यर्थे अपकार सहन क्षमा" .

अर्थात् प्रतिकार की शक्ति होते हुए भी अपकार को समभावपूर्वक सह जाना ही तो क्षमा है ।

"ऐसे प्रसगो पर ही तो आप लोगों को क्षमा का आदर्श उपस्थित करना है । और इसीलिए मैने चातुर्मास का निर्धारण करते समय आप लोगो को सचेत किया था ।"

इस प्रकार कितने ही विघ्नोत्पादक प्रसग उपस्थित हुए, किन्तु आचार्यश्री की क्षमाशीलता सघर्षों की आग मे शीतल-जल का कार्य करती हुई प्रज्वलित अग्नि को वही उपशमित करती रही ।

• • •

भी हूँ। यदि आप नवनिर्मित श्रमण संघ की बात कर रहे हो तो भी मैं उससे विलग नही हूँ। मैं तो यहाँ तक भी कह सकता हूँ कि सादडी सम्मेलन मे जो एक आचार्य के नेतृत्व मे शिक्षा, दीक्षा एव प्रायश्चित आदि का विधान बना, उसका वैधानिक रूप आज भी हमारे सघ मे प्रतिष्ठित है। एक अनुशासन-बद्धता की स्थिति भी यहाँ सुदृढ है। ऐसी स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि वैधानिक श्रमण सघ तो हमारे सघ की चल रही व्यवस्था ही है। दूसरा, उस श्रमण सघीय व्यवस्था मे भी सशर्त ही प्रवेश हुआ तथा विच्छेद भी सशर्त ही किया गया है। अत यदि आज भी श्रमण सघ के उद्देश्यो के अनुरूप व्यवस्था बनती हो, तो मैं उससे दूर रहने वाला नही हूँ। आप अन्य प्रमुख मुनिवरो से मिलकर अनुशासनबद्ध व्यवस्था का प्रयत्न करिये, मै सदैव तत्पर हूँ।"

इस पर मालवकेशरीजी म० सा० ने फरमाया—"आपका कथन एकदम यथार्थ है। एक अनुशासन के अभाव मे ही तो यह सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। मैं वर्षावास के समाप्त होने पर आनन्द ऋषिजी म० सा० के चादर महोत्सव पर अजमेर जाने वाला हूँ। वहाँ बहुत सत-सती एकत्रित होगे। मैं उनसे इस विषय मे खुलकर विमर्श करूगा तथा प्रयास करूगा कि आपके सुदृढ आचार-निष्ठा के विचारो के अनुरूप व्यवस्था हो सके। पर यह बात आप अभी से गाठ बाध ले कि मैं आपको श्रमण सघ मे लेकर रहूँगा और आपको मेरी बात माननी पडेगी " इस औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् श्री मालवकेशरीजी म० सा० जाने लगे तब आचार्यश्री ने प्रवेश द्वार तक विदाई देते हुए कहा —

"आप चरित्र-निष्ठा की सुदृढ भूमिका बनाइये। यदि इस पर आप सब एकमत हो तो मन, वचन और काया से इसका स्वागत है। जहाँ चरित्र-निष्ठा है, प्रभु महावीर के मार्ग का अनुसरण है, मैं कदम-से-कदम मिलाकर शासन सेवा के लिये सदैव तत्पर हूँ।"

इसी कालावधि मे उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० के सान्निध्य मे पत्राचार आदि व्यवस्था मे सलग्न प० श्री बदरीनारायणजी शुक्ल भी उपस्थित हुए एव श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० के अभिप्रायो से अवगत कराते हुए आचार्यश्री से निवेदन किया—"वर्षावास समाप्ति के पश्चात् आपश्री एव उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० मिल ले तो श्रमण संघ के विघटन मे अवरोध आकर पुन सुदृढता की स्थिति बन सके। आप दोनो महापुरुष मिलकर किसी ठोस सैद्धान्तिक भूमिका का निर्धारण करले तो श्रेष्ठ रहेगा।"

आचार्य प्रवर ने विषय की गम्भीरता को स्पर्श करते हुए कहा—"शुक्लजी, आपके विचार अथवा उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० के अभिप्राय निश्चित ही मननीय है। मिलने से बहुत सी भ्रान्तियाँ स्वत निर्मूल हो जाती

उस बेहोशी की स्थिति मे हमने यावज्जीवन का सथारा पच्चखा दिया है, अत· अब उपचार आदि तो नही किया जा सकता है।"

आचार्यश्री ने गम्भीर स्वर मे कहा—"सथारा पच्चक्खाने के पूर्व आपको किसी योग्य डॉक्टर की राय ले लेना चाहिये थी। अभी मुझे सथारा जैसी परिस्थिति दिखाई नही दे रही है। बिना गम्भीर स्थिति के सथारा नही पच्चक्खाना चाहिये था। फिर भी अब यदि ये रुग्ण साध्वीजी समभाव पूर्वक रह सके, तो ठीक है, अन्यथा इन्हे अति रौद्र ध्यान नही होना चाहिये"—इतना सकेत कर आचार्यश्री पधार गये और प्राय· प्रतिदिन दर्शन देने हेतु पधारते रहे। लगभग नौ-दस दिन पश्चात् रुग्ण साध्वीजी कहने लगी "अब मुझसे नही रहा जाता है।"

आचार्यश्री कुछ स्पष्ट करने को ही थे कि सेवारत प्रमुख साध्वीजी ने कहा—"हमने कल नानकचन्दजी म० सा० से पूछा तो उन्होने यहाँ आकर सारी स्थिति का निरीक्षण करके, ज्योतिष के आधार पर फरमाया कि सतीजी एकादशी से आगे समय नही निकालेगी, अत सथारा चलने दीजिये।"

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—"ग्यारस भी कोई दूर नही, कल ही तो एकादशी है, किन्तु इन्हे आर्त्त-रौद्र ध्यान नही हो, इस बात का ध्यान रखे, क्योकि मुझे अभी ऐसा नही लग रहा है कि ये इतनी जल्दी देह छोड देगी। यदि इनको आर्त्त-ध्यान हो रहा हो और ये आहार मागे तो लाकर देना आपका कर्त्तव्य है, क्योकि इन्होने सथारा अपने होश-हवास मे नही पच्चखा है और कदाचित् होश-हवास मे भी पच्चखा हो, तो भी आर्त्त-रौद्र ध्यान की स्थिति उत्पन्न होती हो, तो ऐसी स्थिति मे सेवारत साध्वियो का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे आहारादि लाकर दे। इससे मेरा यह आशय नही है कि आप इनका सथारा भग करवा दे। मेरा अभिप्राय है कि जब तक इनकी क्षमता एव सहन शक्ति हो, आप इनकी तपस्या चलने दे तथा ज्योतिषाचार्यश्री म० सा० की एकादशी तक भी आप देख ले, तत्पश्चात् आगे का विचार करले।"

इस प्रकार आचार्यश्री अपनी अनुभवमूलक दीर्घ दृष्टि के आधार पर सुझाव देकर चले गए और वही स्थिति बनी जो आचार्यश्री के श्रीमुख से मुखरित हुई थी। निर्दिष्ट तिथि एकादशी भी निकल गयी, किन्तु महासतीजी का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता रहा और उन्होने स्पष्ट कह दिया कि अब मुझसे भूखा नही रहा जाता। परिणामत आहारादि दिया गया और एक नही, कितनी ही एकादशियाँ उसके पश्चात् निकल गयी।

इस लघुतम घटना के आलोक मे दो तथ्य स्पष्ट होते है--एक तो अनुभूति के आलोक मे ज्योतिष ज्ञान की निस्सारता और दूसरा सैद्धान्तिक

चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश के समय तथा उसके पश्चात् भी यह चर्चा स्वाभाविक थी कि कही विरोधी पक्ष किसी प्रकार की अभद्र हलचल उत्पन्न न कर दे, किन्तु इसे हम आचार्यश्री के जादू-भरे व्यक्तित्व का परोक्ष प्रभाव अथवा अलौकिक चमत्कार कहे तो अतिशयोक्ति नही होगी कि नगर-प्रवेश के पश्चात् ही वह सघर्ष शनै. शनैः उपशमित होता गया।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सामान्य भीड किसी अगुआ के नेतृत्व का ही अनुसरण करती है, तथा यह भी तथ्यपूर्ण है कि सत्य-प्रवृत्तियो की ओर भीड की गति विलम्ब से होती है, किन्तु असत्य प्रवृत्तियो के अनुसरण मे भीड वेतहाशा दौड पडती है। अध्यात्म, प्रवचन आदि के प्रसग पर अनेको बार उत्प्रेरित करने पर भी अति कठिनता से कुछ व्यक्ति एकत्रित हो पाते हैं, पर इसके विपरीत कही दो व्यक्तियो मे सघर्ष हो रहा है, तो देखने के लिए हजारो की भीड एकत्रित हो जाती है। इस तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार रतलाम के वर्ग-सघर्ष मे भी समस्त भीड कुछ प्रमुख नेताओ का अनुसरण कर रही थी। आचार्यश्री के व्यक्तित्व का, सघर्ष के उन प्रमुख सूत्रधार कुछ ब्राह्मणो एव पुरोहितो के मानस-तल पर ऐसा अज्ञात प्रभाव पडा, जिसके परिणामस्वरूप वे प्रमुख व्यक्ति चातुर्मास प्रारम्भ के कुछ दिन उपरान्त ही चुम्बकीय आकर्षण से प्रभावित एव आकर्षित हो स्वत प्रवचन मे आना प्रारम्भ कर, लगातार चार मास तक विना किसी व्यवधान के आचार्यश्री की पीयूष वाग्धारा का रसपान करते रहे। प्रवचन धारा का ऐसा अमिट प्रभाव उन कलुषित हृदयो पर अकित होता गया कि चिरकाल से सज्जित वह कालुष्य मैल गल-गल कर प्रक्षालित होता गया और सघर्ष की जडें शिथिल हो टूटने लगी। उन कुछ व्यक्तियो के हृदय-परिवर्तन के साथ ही आम सघर्ष स्नेह-सौजन्य के रूप मे परिवर्तित होता गया।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व मे वह अद्भुत प्रभाव है, जो विरोधी-से-विरोधी को भी भक्त वनने पर विवश कर देता है और वही अमिट प्रभाव उन जैनेतर वन्धुओ के हृदयो पर भी अकित हो गया। एक समय आचार्यश्री उस मुहल्ले मे भिक्षार्थ पधारे जिसमे वे पुरोहित एव ब्राह्मण वन्धु रहते थे, तो आचार्यश्री को देखते ही प्रसन्नतापूर्वक भाव विभोर होकर वडे आग्रह के साथ वे आचार्यश्री को अपने यहाँ भी भिक्षा हेतु ले गए। यह है आचार्यश्री के व्यक्तित्व का अलौकिक चमत्कार।

• • •

विदाई के क्षण

सयोग और वियोग दोनो अविनाभावी धर्म है अर्थात् सयोग, वियोग से जुडा हुआ ही होता है। सयोग शुभ का भी होता है और अशुभ का भी। ठीक उसी प्रकार वियोग भी। महात्मा तुलसीदासजी के शब्दो मे कहे तो—

"मिलत एक दारुण दु·ख देही।
बिछुरत एक प्राण हरि लेही।।"

अर्थात् कुछ सयोग ऐसे होते है, जो भयकर यातना एव संत्रास के कारण बन जाते है तो इसके विपरीत कुछ वियोग ऐसे होते है जो कष्ट ही नही देते, अपितु प्राणो तक का अपहरण कर लेते है। तात्पर्य यह है कि दुर्जनो का सयोग दु खदायी होता है तो सज्जनो का वियोग।

रतलाम का अनूठा एव ऐतिहासिक उपलब्धियो से परिपूर्ण वर्षावास समापन की ओर अग्रसर था। मंगलमूर्ति आचार्य देव के विहार का काल निकट आता जा रहा था। यह आभास रतलाम की धर्म-प्राण जनता के हृदयो को कुछ उद्वेलित-सा कर देता कि अब आचार्य देव कुछ ही दिनो मे यहाँ से प्रस्थान कर देगे। विगत चार मास से अनवरत प्रवाहित निर्मल अमृत-धारा के रस-पान से उन्हे वचित होना पडेगा।

यह स्पष्ट है कि सयोग एव वियोग एक ही स्थिति के दो पहलू हैं। तदनुसार रतलाम नगर का वातावरण वियोग की आशकाओ से कुछ व्याकुल-सा होता जा रहा था, दूसरी ओर परिपार्श्ववर्ती क्षेत्रो मे आचार्य देव के परम-पूत चरण-स्पर्श के सयोग की आशाएँ बलवती होती जा रही थी। अत: उनके भावनाशील हृदयो मे हर्षावेग का उमडना सहज था।

ज्यो-ज्यो चातुर्मास समापन का काल निकट आता गया, त्यो-त्यो आस-पास एव सुदूर क्षेत्रो (गावो एव नगरो) के श्रद्धालु सदस्य विनन्तयर्थ उपस्थित होने लगे और अपने-अपने क्षेत्रो को पावन करने हेतु आग्रह-पूर्ण विनती करने लगे। सुदूर क्षेत्रो मे राजस्थान से बडी सादडी, छोटी सादडी, निकुम्भ, ब्यावर, बीकानेर, पाली, देशनोक, सवाईमाधोपुर एव छत्तीसगढ प्रदेश एव रायपुर आदि सघो के समाज-वरिष्ठ सज्जन उपस्थित हुए तथा निकटवर्ती क्षेत्रो से उज्जैन,

अर्थात् मेरे शत्रु सदा जीवित रहे जिनकी कृपा से मैं सदा सजग रहता हूँ। वे मुझे जितना प्रतिबन्धित करते हैं, उतना ही प्रतिबोधित करते है। शत्रु अथवा विरोधी का एक बहुत बडा उपकार होता है कि उससे व्यक्ति सदा सावधान होकर चलता है।

इस सिद्धान्तानुसार आचार्यश्री का अपने प्रबल विरोधी के प्रति भी सौजन्यता का ऐसा व्यवहार होता है कि विवश होकर उसे अपने विचारो मे परिवर्तन करना पडता है।

ऐसी ही एक घटना उस समय हुई, जब अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ का प्रथम अधिवेशन रतलाम मे ही सम्पन्न होने जा रहा था। सघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री छगनलालजी वैद की विराट् स्वागत शोभा यात्रा नगर के प्रमुख मार्गों से गुजर रही थी कि भीड के पीछे कुछ विघ्न-सन्तोषी विरोधी पक्ष वाले व्यक्तियो ने ही सघर्ष उत्पन्न करने तथा शोभा यात्रा मे व्यवधान डालने का प्रयास किया, परन्तु अपने प्रयास मे असफल होने पर मिथ्या आरोप लगाया कि "श्रमण सघ का नाश हो" ऐसे नारे लगाये जा रहे है। इस प्रकार वाद-विवाद खडा हो गया और एक-दूसरे के प्रति अपशब्दो का प्रयोग भी होने लगा। फिर भी शोभायात्रा मे चलने वाली जनता बडी शान्ति से आगे बढती चली गयी। जब इस मार्ग से भी उन्हे अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिली, तो शोभा यात्रा के पीछे चले आ रहे पडित श्री लालचन्दजी मुणोत, जो सघ के वरिष्ठ एव अनन्य विश्वास-पात्र कार्यकर्ता होने के साथ विगत कुछ वर्षो से आचार्यश्री के सान्निध्य मे सघीय व्यवस्था सम्बन्धी पत्राचार का कार्य किया करते थे तथा उस समय ज्वर पीडित थे को कुछ विघ्न-सतोषी तत्त्वो ने घेर लिया और चिल्लाने लगे, "बस, यही सब कार्य करता है। श्रमण सघ मे विघटन का सारा पत्र-व्यवहार इसी के द्वारा किया गया है। इसे आज अच्छी तरह पीट दो।" आदि। कुछ व्यक्तियो ने उनका हाथ पकड लिया और कहने लगे—"श्रमण सघ का नाश हो । नारा क्यो लगाया जा रहा है ?" पण्डित श्री लालचन्दजी ने कहा—"न तो ऐसा नारा किसी ने लगाया है, और न कोई लगा सकता है। यदि किसी ने लगाया तो यह उसकी मूर्खता ही होगी—पर आप मुझसे क्यो उलझ रहे है, मैंने तो कुछ नही किया है।"

इतने मे उत्तेजनापूर्ण हलचल सुनकर जुलूस मे से जावरा के खारीवालजी एव बीकानेर के श्री भवरलालजी श्रीश्रीमाल पहुँच गए और पण्डितजी का हाथ छुडाते हुए कहा—"आप जाइये, हम इनसे निपटते हैं " पण्डितजी आगे बढे कि विघ्न पैदा करने वाले भाग गये।

इस विषय की जानकारी जब सघ-प्रमुखो को हुई, तो वातावरण कुछ विक्षुब्ध एव उत्तेजनापूर्ण हो गया, किन्तु आचार्यश्री ने उन्हे क्षमा के आदर्श

ग्रामीण अंचलों में

महामहिम आचार्य देव, स्थविर पद विभूषित प० श्री सूरजमलजी म.सा., कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म. सा आदि ठाणा ८ से रतलाम स्टेशन रोड से विहार कर त्रिवेणी तट पर धर्मशाला मे रात्रि विश्राम किया। मार्गवर्ती—गाँवो मे धर्मोपदेश देते हुए आपश्री रावटी पहुँचे। लगभग ५ दिन रावटी मे धर्म ध्यान चलता रहा। भारी सख्या मे रतलाम एवं आसपास के गाँवो से श्रावक-श्राविकाओ का आवागमन होता रहा। आपश्री के प्रवचन के प्रभाव से स्थानीय कटारिया परिवार के सात भाइयो के वर्षो से चल रहे वैमनस्य की इतिश्री हुई। कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। प्रात.कालीन प्रतिक्रमण के समय सन्तो ने विहार के बारे मे पूछा। आचार्यश्री ने कहा "आजका आहार यहाँ का करने का भाव नही है।" यह समाचार सघ सदस्यों को ज्ञात हुआ तो कुछ व्यक्ति बिना प्रवचन के नही जाने देना चाहते थे और कुछ व्यक्ति आचार्यश्री को धूप मे चलने का कष्ट भी नही देना चाहते थे। आपस मे दो दल की स्थिति बन गई। अत' आचार्यश्री ने मध्यम मार्ग अपनाया। प्रार्थना के साथ ही प्रवचन दिया और प्रवचन के पश्चात् बिना आहार लिए प्रस्थान किया। वहाँ से भैरोगढ पहुँचे। भैरोगढ मे पेय जल की बहुत कमी थी। अत ३ बजे लगभग उष्ण जल उपलब्ध हुआ। वहाँ स्टेशन मास्टर का ही मकान शाकाहारी था परन्तु वहाँ भी ऊपर से चम्मच गिर जाने के कारण अन्न ग्रहण योग्य नही रहा। रावटी के कुछ सज्जनो ने बताया कि यहाँ राजपूत, ब्राह्मण आदि के कुछ घर है। अत मुनिश्री अमरचन्दजी म० सा० दो सन्तो के साथ उक्त घरो मे पहुँचे। किन्तु उन गृहपतियो ने आहार देने से मना कर दिया। अमरचन्दजी म० सा० ने कहा, "भाई हम तो कोई बची-हुई भोजन सामग्री हो या आपकी आवश्यकता से अधिक हो तभी लेते है। हमारे निमित्त से बनाया पदार्थ ग्रहण नही करते।" साधु की भिक्षा की रीति बताई तो गृहपति सुनकर लज्जित सा हुआ और बोला, "कल रतलाम से दो सफेद टोपी वाले सभ्य व्यक्ति आए थे और कह गए थे कि कोई मुख पर कपडा बाधे आये तो उन्हे खाने को कोई वस्तु मत देना। महाराज सा० हमे क्षमा करे, हम समझते नही थे। कृपाकर जो कुछ ठडी बची सामग्री है, ग्रहण कीजिये।" अमरचन्दजी म० सा० अल्पतम आहार ग्रहण कर गुरुदेव के समक्ष पहुँचे और घटना का वृत्तात सुनाया। आचार्य प्रवर ने कहा, "हमे समता रखना चाहिये। इससे अपने कर्मों की निर्जरा ही होती है।"

अनुभूति का आलोक और ज्योतिष ज्ञान

वात उस समय की है, जवकि रतलाम वर्षावास का अन्तिम मास चल रहा था। यह वताया जा चुका है कि उस वर्ष रतलाम मे अनेक सम्प्रदायो के अनेक सन्त-सतियो के चातुर्मास थे। उनमे ऐतिहासिक महापुरुष श्री धर्मदासजी म० सा० के सम्प्रदाय की कुछ साध्वियो का वर्षावास भी वही एक अलग धर्म-स्थान मे था।

साध्वी वर्ग मे एक वृद्धा महासतीजी थी। उन दिनो उनका स्वास्थ्य अत्यधिक दुर्वल स्थिति मे चल रहा था। एक दिन उन्हे कुछ अचेतावस्था ने घेर लिया। परिणामस्वरूप सेवारत सहयोगिनी साध्वियो ने उन्हे सथारा पच्चखा दिया।

इधर कुछ श्रावक वन्धु आचार्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और निवेदन किया—"एक महासतीजी अचेतावस्था मे है। उन्हे सथारा तो पच्चखा दिया है। आप कृपा कर दर्शन देने का कष्ट करे।" आचार्य भगवन् शीघ्र ही दर्शन देने पधार गए। मगल पाठ सुनाने के पश्चात् तत्रस्थ महासतियाँजी ने निवेदन किया—"आपश्री प्रतिदिन दर्शन देने की कृपा करे।"

आचार्य प्रवर ने कहा—"मैं शौचादि निवृत्यर्थ प्रात इधर से जाता हूँ, उस समय यदि कोई भाई-वहन उपस्थित होगे तो मुझे ऊपर आने मे कोई आपत्ति नही है।" उस समय आचार्य प्रवर समय की अल्पता के कारण लौट आए। दूसरे दिन जव साध्वीजी की चेतना लौट आई तो कुछ साध्वियो ने आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन किया—"अव महासतीजी को होश आ गया है। हमने उन्हे वेहोशी का सथारा पच्चखाया है। अव आपश्री पधार कर होश-हवास की स्थिति मे अपने श्रीमुख से सथारा करवा दीजिये।"

आचार्यश्री उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर तुरन्त वहाँ पधार गए। रुग्ण महासतीजी के शारीरिक चिह्नो को देखकर आचार्यश्री ने फरमाया कि "ऐसी कोई घवराहट की वात नही है, आप उपचार आदि का ध्यान रखे।" तो सेवारत एक प्रमुख साध्वीजी ने कहा कि "कल इनको वेहोशी आ गई थी और

"हम क्या प्रश्न करे, हमे तो कुछ आता-जाता नही, आप ही कुछ बताइये" एक श्रावक बन्धु ने कहा।

तब आचार्यश्री ने लोकाशाह के क्रान्तिकारी जीवन पर कुछ प्रकाश डाला। चर्चा चल पडने पर स्थानीय सघ प्रमुख ने ही कुछ झिझकते हुए पूछा, "आपने श्रमण सघ क्यो छोडा ?"

आचार्यश्री ने कुछ विस्तार से श्रमण सघ की दशा का चित्रण प्रस्तुत किया और चारित्रिक शैथिल्य के कुछ उदाहरण देते हुए उन्ही बन्धु से पूछा कि—"अब आप अपनी तटस्थ बुद्धि से विचार करे कि ऐसी स्थिति मे श्रमण सघ मे रहना उचित है या नही ?"

तब कुछ खुलकर वे बन्धु बोले, "महाराज श्री, ऐसी दशा मे श्रमण सघ मे रहकर तो अपने आपको भी दोषी बनाना है। वास्तव मे श्रमण सघ की दशा का जो चित्रण आपने अभी खीचा, वह गलत नही है, हमारे यहाँ भी कई साधु आए और कैसी-कैसी घृणित प्रवृत्तियाँ हुई, कहते हुए लज्जा का अनुभव होता है।

"सही बात तो यह है कि हम लोगो पर साम्प्रदायिकता का उन्माद चढा हुआ है, जिससे हम आप जैसे महापुरुषो के लाभ से भी वचित रह जाते है। हम गाँव वालो से भी अधिक साम्प्रदायिकता का उन्माद शहरो के बडे कहलाने वाले श्रावको को होता है और वे ही हम भोले लोगो को भी गुमराह कर जाते है। पूज्य श्री, क्या कहे, कहने मे सकोच होता है, किन्तु आपश्री की चारित्र-निष्ठा के प्रति स्पष्ट विचार सुनकर मै सही स्थिति आपके समक्ष रख रहा हूँ।

"कल दो व्यक्ति यहाँ आए थे और आपके विषय मे अत्यधिक भ्रामक प्रचार करके गए। नानालालजी श्रमण सघ को तोडने वाले है, उनको स्थान, आदि का कोई सहयोग नही देना और न व्याख्यान, आदि ही सुनना। इस प्रकार का साम्प्रदायिक विद्वेष वे हमारे इन छोटे-छोटे गाँवो मे फैला रहे हैं और गाँवो की भावुक जनता को दिशा-भ्रमित कर रहे है।"

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—"मै श्रमण संघ को तोडने वाला हूँ या वे लोग, जो श्रमण सघ मे है और श्रमण सघीय मर्यादाओ को तोड रहे हैं, इसका निर्णय तो आप स्वय ही कर सकते है। जो व्यक्ति ऐसा भ्रान्तिपूर्ण प्रचार कर रहे है, वे दया के पात्र है। मेरी तो इनके प्रति भी यही भावना है कि वे व्यर्थ के कर्म-बन्धन से बचे और उन्हे सद्बुद्धि आए।"

विचारो के स्पष्ट हो जाने पर तो सभी स्थानीय बन्धु बहुत पश्चात्ताप के स्वर मे क्षमायाचना करने लगे, कि "महाराजश्री, हम भी उनके बहकावे में आ

सूक्ष्मता के प्रति सजगता। बहुधा होता यह है कि कभी-कभी सामान्य सी अस्वस्थता की स्थिति मे भी भावुकता वश शीघ्र सथारा पच्चक्खा दिया जाता है और जब रोगी स्वस्थता का अनुभव करने लगता है, तब उसे प्रत्याख्यान की स्मृति दिलाकर सथारे पर स्थित रहने के लिए बाध्य किया जाता है। परिणामत वह अनिच्छापूर्वक आर्त्त-रौद्र ध्यान के परिणामो मे रमण करने लगता है।

उपर्युक्त प्रसग मे आचार्यश्री ने इसकी गहराई का अध्ययन कर सैद्धान्तिक सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की कि—"सथारे के प्रत्याख्यान का भग होना उत्तर व्रत का भग है, जबकि आर्त्त-ध्यान मे मरण प्राप्त करना मूल व्रतो की हानि से भी बढकर है। साथ ही सेवारत व्यक्तियो द्वारा आहारादि रुग्ण व्यक्ति के मागने पर भी लाकर न देना स्वय के अहिंसा-व्रत मे दोष लगाना है। अस्तु, प्रथम तो यावज्जीवन सथारा अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ ही पच्चक्खाना चाहिये और दूसरे मे सथारे के प्रत्याख्यान करवा देने पर भी आर्त्त, रौद्र-ध्यान से बचाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त सथारे जैसी प्रक्रिया ज्योतिष-ज्ञान के आधार पर ही नही हो सकती। ज्योतिष-ज्ञान का अपना महत्त्व अवश्य है, किन्तु उसका फल निर्देश सहज नही है और वह भी मरण के सन्दर्भ मे तो अत्यन्त दु साध्य है। अपनी अनुभूतिमूलक दृष्टि से आचार्यश्री ने उक्त तथ्यो को स्पष्ट कर दिखाया।

इस प्रकार आचार्यश्री का आचार्य-पद-प्राप्ति के पश्चात् यह रतलाम का प्रथम वर्षावास एक अनूठा ऐतिहासिक चातुर्मास सिद्ध हुआ। बीच-बीच मे प्रबल विरोधो के थपेडो के विपरीत भी आचार्यश्री एक अडिग चट्टान की भाति निष्कम्प रहे। इस प्रकार परम शान्ति एव आनन्द के क्षणो मे चातुर्मास काल व्यतीत होता रहा। आचार्यश्री की आदर्श क्षमाशीलता एव अनुपम तितिक्षा-वृत्ति ने विरोधियो के हृदयो मे भी एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की लहर उत्पन्न कर दी।

• • •

प्रभाव अधिक नही पड सका और जो कुछ प्रभाव पडा वह भी आचार्य देव की वैचारिक एव चारित्रिक ओजस्विता से समाप्त हो गया ।

थादला के प्रवचनो मे जैनेतर बन्धुओ मे क्षेत्रीय आदिवासी (भील) लोगो का विशेष आगमन रहा और अनेक भील बन्धुओ ने शराव, मास, आदि दुर्व्यसनो का त्याग किया ।

आदिवासियो मे जागरण के कार्य का अधिक श्रेय आदिवासी (भील) समाज के नेता "श्री मामाजी" को है । श्री "मामाजी" ने इस जन-जागरण के पूर्व आचार्य प्रवर से अहिसा एव अन्न-समस्या पर विस्तृत चर्चा की । उनका दृष्टिकोण था कि मासाहार नही करने पर भारत मे अन्न-समस्या और अधिक बढ जाएगी । आज जो कुछ अल्पस्थिति मे सन्तुलन बना हुआ है, वह विगड जाएगा । अत अहिसा को आधार बना कर मासाहार का निषेध करना भारत जैसे गरीबी प्रधान देश मे आर्थिक दृष्टि से उचित नही माना जा सकता है ।

आचार्य प्रवर ने युक्ति पुरस्सर समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा - "देखिये, आपका यह चिन्तन एकागी दृष्टिकोण को लिए हुए है । मासाहार के द्वारा अन्न समस्या हल होती है, यह नितान्त भ्रान्त धारणा है । आप विचार करिये, जिन पशुओ के वध से मास प्राप्त होता है, उनके लिए कितना खर्च होता है । एक बकरे के पालन मे, उसके मूल्य से क्या अधिक खर्च नही होता है ? क्या लाखो टन अनाज प्रतिवर्ष समुद्रो मे नही फेक दिया जाता है ? मुर्गी-पालन एव मत्स्योत्पादन के लिए आज कितना व्यय किया जा रहा है ? इसके अतिरिक्त वह आहार हमारे विचारो को कितना करुणाहीन बना देता है ? सात्विक भावना पूर्णतया नष्ट प्राय· हो जाती है । अत· अन्न-समस्या के हल का आधार मान कर मासाहार को प्रश्रय देना किसी भी दृष्टि से उचित नही ठहराया जा सकता है ।

"अन्न समस्या का हल करना है तो इसका सहज अहिसात्मक प्रयोग मैं बताया करता हूँ । इस समय भारत की कुल जनसख्या कितनी होगी ?"

"लगभग ४५–५० करोड ।" मामाजी ने कहा ।

"उनमे १०-१५ करोड बच्चो को छोड दीजिए । ३०-३५ करोड व्यक्तियो पर एक दिन मे औसतन कितने किलो अनाज लगता होगा ?"

"अनुमानत. १५-२० करोड किलो ।"

"अब यदि ये सभी साप्ताहिक उपवास प्रारम्भ कर दे तो एक माह मे चार उपवास अर्थात् ६०-७० करोड किलो अनाज की बचत हो जाए । साथ ही स्वास्थ्य सुन्दर बना रहेगा तो औषधियो के व्यय की भी बचत होगी । इसके

धार, मेघनगर, वडावदा, मन्दसौर, रावटी, थादला आदि के सघ-सदस्य उपस्थित हुए। सभी का अपना आग्रह था। व्याख्यानो मे अथवा अलग से भी सभी आचार्य देव के चरणो मे प्रार्थना करते रहे और आचार्यश्री समय पर कैसी स्पर्शना वनती है, आदि शब्दो के साथ उन विनतियो को अपनी झोली मे स्थान देते रहे।

समय की प्रवाहशीलता मे आखिर विदाई का दिवस भी आ गया और मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को आचार्य देव ने शिष्य मण्डली से परिवृत्त होकर स्टेशन की ओर प्रस्थान कर दिया।

विदाई की वेला—जैसा कि मनोवैज्ञानिक तथ्य है, कारुणिक होती है, तदनुसार उस समय रतलाम सघ के अधिकाश उपासको के नेत्र विदाई एव विछोह-जनित वेदना से छलछला रहे थे। वडा कारुणिक वातावरण था उस समय रतलाम सघ का। कितने ही स्वयसेवको के नेत्रो से तो श्रद्धा की अविरल अश्रुधारा ही प्रवाहित हो रही थी।

स्थानीय तथा वाहर से आगत लगभग पाँच-सात हजार की जन-मेदनी अपने आराध्य को श्रद्धापूर्ण विदाई देने हेतु उपस्थित थी। "भगवान् महावीर स्वामी की जय, पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की जय, हु शि उ चौ श्री ज ग नाना, लाल चमता भानु समाना" आदि गगनभेदी नारो से दिग्मण्डल को गु जाते हुए रतलाम स्टेशन क्षेत्र की पौषध शाला पहुँचकर विहारमयी शोभा यात्रा प्रवचन-सभा के रूप मे परिवर्तित हो गयी और आचार्यश्री ने अपना सामयिक प्रवचन दिया और जनता विसर्जित हुई।

स्टेशन निवासी श्रद्धा प्रवण जनता के अति आग्रह से वहाँ आचार्यश्री का तीन दिन विराजना हुआ। तीनो दिन प्रवचनो मे रतलाम शहर की जनता भी वहुत वडी सख्या मे उपस्थित होती रही। वहुत से धर्मनिष्ठ वन्धुओ ने अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान लिए।

रावटी सघ के अत्यन्त आग्रह के कारण स्टेशन मे दिनाक ५.११ ६३ को आपश्री का रावटी की ओर विहार हुआ।

• • •

आचार्य प्रवर ने मधुर मुस्कान के साथ समाधान के स्वर मे कहा—"आपका यह प्रश्न, लगता है जैन तत्त्व विश्लेषण की अनभिज्ञता के कारण ही उपस्थित हुआ है। जैन धर्म अथवा दर्शन आत्मा, परमात्मा एव पुनर्जन्म के अस्तित्व को निश्चित रूप से स्वीकार करता है और मै तो यहाँ तक कहूँगा कि उपर्युक्त सिद्धान्तो मे जितनी सूक्ष्म पैठ जैन-दर्शन की है, उतनी गहरी अन्य दर्शनो की नही। हाँ जैन-दर्शन मे वर्णित परमात्म स्वरूप मे एव वैदिक सस्कृति मे मान्य परमात्म-स्वरूप मे अन्तर अवश्य है। जैन-दर्शन परमात्मा को एक कुम्भकार के समान सृष्टि का कर्त्ता नही मानता है। उसके द्वारा मान्य ईश्वर कोई एक ही वैयक्तिक चेतना नही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि का सचालन कार्य करे। प्रत्येक चेतना स्वय अपना ईश्वर है। हमारे मध्य से ही आत्म-विकास कर कुछ लोकोत्तर चेतनाएँ ईश्वर का रूप पा लेती है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की कर्ता नही है। वे धर्मतीर्थ रूप चतुर्विध संघ की सरचना करती है, जिन्हे जैन पारिभाषिक शब्दो मे अरिहन्त अथवा तीर्थकर पद से अभिसज्ञित किया गया है। उन्हे ही जैन-दर्शन जीवन-मुक्त ईश्वर के रूप मे स्वीकार करता है। जिन्होने आत्म-विकास मे बाधक सभी आवरणो को सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया है, अर्थात् राग-द्वेष, काम-क्रोध, मद-मत्सर, तृष्णा आदि समस्त आन्तरिक विकारो को शमित कर जो शत्रु-मित्र पर समद्रष्टा बन गये है, वे जीवन-सम्बन्धी समग्र जटिलताओ से विनिर्मुक्त हो जाते है। अत: वे राग-द्वेष से परिपूर्ण सृष्टि के कुम्भकारवत कर्ता कैसे हो सकते है? स्वय स्वाधीन, मुक्त रहकर इतर प्राणियो के बन्धन का सृजन करना नैतिकता की सीमा-रेखा का स्पष्ट उल्लघन है। अतः अरिहन्त किवा वीतरागी परमात्मा जगत्-रचना के कर्म से लिप्त नही हो सकते है।

"ऐसे मुक्त ईश्वर को जैन-दर्शन स्वीकार करता है और वे ही मुक्त ईश्वर आयुष्य आदि शरीर-सम्पृक्त अवशेष कर्मो से मुक्त होकर परम अचल सिद्धालय को प्राप्त कर लेते है तो उन्हे सिद्ध ईश्वर के रूप मे सम्बोधित किया जाता है, किन्तु सिद्धगति को प्राप्त वे परमात्मा ससार मे पुन लौटकर कभी नही आते है, क्योकि ससार-परिभ्रमण के कारण रूप राग-द्वेषात्मक कर्म उनके समूल नष्ट हो जाते है। ऐसे ईश्वर ही ससार के समस्त प्राणियो के लिए चरम एव परम आदर्श है।

"इसके अतिरिक्त जैनाचार्यो ने एक तीसरी कोटि के ईश्वर की कल्पना और दी और वह है आप, हम सभी सासारिक प्राणी। ससार की प्रत्येक आत्मा अपनी वर्तमान स्थिति मे कर्म-शृंखला से आबद्ध है, किन्तु उसमे स्वरूपत परमात्म-शक्ति विद्यमान है। अत ससार के प्रत्येक जीवात्मा को जैन-दर्शन बद्ध ईश्वर की सज्ञा देता है।

"इस प्रकार जैन दर्शन ने मुक्त ईश्वर, सिद्ध ईश्वर एव बद्ध ईश्वर के रूप

मार्गवर्ती क्षेत्रो को पावन करते हुए आचार्यश्री खवासा पधारे। यद्यपि खवासा मे जैन समाज के वहुत परिवार है, किन्तु भ्रामक प्रचारक वहाँ भी पहुँच चुके थे। अत किसी व्यक्ति का स्वागतार्थ आना तो दूर, आचार्यश्री गाँव मे पधार गये तथा वाजार के कोने से उस कोने तक निकल गए, किन्तु न तो कोई भाई अपनी दुकान से उठा और न ही किसी ने वन्दन ही किया। स्थिति का अवलोकन कर एक श्रावक वन्धु से, जो अपनी दुकान पर खडा था, आचार्यश्री ने पूछा—"क्यो भाई, यहाँ ठहरने के लिए स्थानक आदि कोई मकान है क्या ?"

वडे सकोच के साथ उस वन्धु ने एक छोटा-सा उत्तर दिया "हाँ, स्थानक उधर आगे है।"

आचार्यश्री ने पुन मृदुस्वर मे कहा "यदि आपको कष्ट न हो तो वता दे, हम अपरिचित हैं, हमे मालूम नही है।"

तव वह वन्धु साथ हो गया और जव स्थानक वताकर निकटस्थ किसी व्यक्ति को ठहरने की अनुमति देकर पुन लौटने लगा तो आचार्यश्री ने पूछा "मेरे साथ सन्त प्राय नए-नए है। उन्हे घर मालूम नही है, अत. आप उन्हे कुछ व्राह्मण, स्वर्णकार, अग्रवाल आदि के घर वता देंगे क्या ?"

कुछ सकोच करते हुए उस वन्धु ने कहा—"क्यो, व्राह्मण आदि के घरो से क्या करना है ? यहाँ ओसवालो के घर भी वहुत हैं।"

तव आचार्यश्री ने कुछ भिक्षा की विधि वताई कि "जो घर सुवह फरस लेते हैं, उनका आहार-पानी सन्ध्या को नही कल्पता है और जिन घरो से आज भोजन ले लिया, उनसे फिर कल भी नही लिया जाता है और अभी सुवह अन्य जाति के लोगो के घरो मे भोजन मिल सकता है। अत· आपकी इच्छा हो तो अभी कुछ अन्य लोगो के घर वता दे।"

वहुत कुछ समझाने पर कुछ घर तो उस वन्धु ने वताए और कुछ घरो की मुनिगण खुद ही जानकारी करते हुए, चले गए और गोचरी हो गयी। अजैन परिवारो मे गोचरी लाने से कुछ प्रभाव उन स्थानीय जैन वन्धुओ पर पडा और मध्याह्न को दो-चार वन्धु आए। चुपचाप मूक से खडे रहे, तो आचार्यश्री ने प्रेरित किया कि "कुछ जानकारी करना हो तो प्रश्न कर सकते हैं।" पुन प्रेरित करने पर एक वन्धु ने कहा—"सन्ध्या को हमारे सघ के अध्यक्ष आयेगे, वे पूछेगे।" और वे वन्धु भी चले गए।

साय प्रतिक्रमण के पश्चात् कुछ वन्धु आए और चुपचाप वैठ गए। तव आचार्यश्री ने ही प्रेरित किया कि "यह प्रश्नोत्तर का समय है, कुछ प्रश्न करना हो, तो कर सकते है।"

श्री सिद्धनाथजी—"गाधीजी एक सामान्य व्यक्ति से ऊपर उठे हुए थे। उनके व्यक्तित्व मे कुछ विलक्षणताएँ थी। उन्होने अपने अहिसात्मक समता दृष्टिकोण से शत्रु पर भी सदा प्रेम की ही वर्षा की। यहाँ तक कि अपने सहारक के प्रति भी उनके अन्तिम वाक्य थे "इसका भी भला हो।" इतनी उच्चकोटि की समता-साधना सासारिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे, अन्य किसी में परिलक्षित नही होती है। अतएव उन्हे सामान्यजन से ऊपर महात्मा शब्द से सम्बोधित किया गया है।"

आचार्यश्री—"बहुत समीचीन परिभाषा दी है आपने गाधीजी के साथ सयुक्त महात्मा शब्द की। समभाव की उच्चकोटि की साधना करने वाले को ही महात्मा शब्द से सम्बोधित किया जा सकता है। पर आप यह बताइये कि परमात्मा महान् है कि महात्मा ?"

"आचार्य प्रवर ! आप भी अजीब से प्रश्न कर रहे है। इसमे क्या पूछना, महात्मा बना ही इसलिए जाता है कि परमात्मतत्त्व की उपलब्धि हो जाए। महात्मा-जीवन एक माध्यम है परमात्म स्थिति तक पहुँचने के लिए। हमारा अन्तिम साध्य तो परमात्मा ही है। अत महात्मा से परमात्मा ही महान् होगे।" वकील साहब ने मुस्कराते हुए स्पष्ट किया।

आचार्यश्री—"घबराइये नही, मैं मूल प्रश्न पर ही आ रहा हूँ। मेरा प्रयास आपको उलझाने का नही है। अब आप जरा निष्पक्ष चिन्तन कीजिये। एक महात्मा के सामान्य पद पर वर्तमान व्यक्ति भी शत्रुत्व भाव को भूल कर प्राणघातक पर भी परम समता का भाव रखता है तो जिसने आत्मा की परमोच्च अवस्था परमात्म-भाव को उपलब्ध कर लिया, वह दुष्टो का दलन करे, यह कैसे सगत हो सकता है और इस प्रकार दुष्टो के संहार के लिए पुन पुन: अवतरित होना क्या एक सामान्य महात्मा की कोटि से भी नीचे उतर जाना नही होगा ? ऐसी चेतना को हम ईश्वर सज्ञा कैसे दे सकते है ? आप अपने स्वस्थ्य एव स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा उत्तर दीजिये।"

क्षण भर की चुप्पी के पश्चात् वकील साहब ने सहज एव सरल उत्तर दिया—"महाराजश्री, कथन तो आपका योक्तिक है, किन्तु गीताजी के उपर्युक्त श्लोको से इसकी सगति नही बैठती है। क्या आप गीता के उक्त कथन को असत्य मानते है।"

मुक्त ईश्वर पुन: लौट कर नहीं आते

आचार्यश्री—"मेरी अपनी क्या सैद्धान्तिक अवधारणा है, इस सन्दर्भ मे फिर चर्चा कर सकेगे। किन्तु अभी आपकी ही व्याख्या पर चिन्तन करिये। जिस गीता मे एक तरफ अवतारवाद का इतना स्पष्ट चिन्तन है, उसी गीता मे इसका लाक्षणिक निषेध भी तो किया गया है। देखिये गीता का ही उल्लेख—

गए और आपका कुछ भी स्वागत-सत्कार नही कर सके। प्रवचन का लाभ भी नही ले सके। हम तो इस भ्राति मे ही रहे, किन्तु मन मे विचार उठा कि कुछ जानकारी तो करनी चाहिए और इसी आशय से आपकी सेवा मे उपस्थित हुए। हमारी भ्राति मिटी। अब आप कृपा करके कल का व्याख्यान फरमा कर, फिर ही विहार का विचार करे।"

आचार्यश्री ने स्पष्ट किया "वैसे आज का दिन आपके लिए था और वह यो ही बीत गया। अब मुझे अधिक अवकाश नही है, क्योकि इधर के पूरे क्षेत्र को फरसने के भाव चल रहे हैं।"

श्रावको ने अत्यन्त आग्रह किया, अत. आचार्यश्री ने प्रवचन के पश्चात् विहार करने के भाव व्यक्त किये।

खवासा से विहार कर आचार्य प्रवर ब्रह्मणिया होते हुए पैटलावद पधारे। वहाँ भी और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो मे भी वे भ्रामक प्रचारक पहुँच चुके थे। अत प्रारम्भ मे तो लोग विरोध करते, किन्तु जब आचार्यश्री के विचारो से अवगत होते, तो पश्चात्ताप पूर्वक क्षमायाचना करते।

चूँकि, पैटलावद नगर प्रवेश के पूर्व मार्ग मे ही रतलाम सघ के २००-३०० व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित हो गए, अत नगर मे उत्साह का वातावरण फैल गया।

पैटलावद मे आचार्यश्री का दो दिन विराजने का विचार था, किन्तु कुछ स्वर्णकार बन्धुओ का अत्यन्त आग्रह होने से चार दिन विराजना हुआ। जनता के आग्रह से तीन प्रवचन बाजार मे सार्वजनिक रूप से हुए। उल्लेखनीय है कि स्वर्णकार बन्धु श्री फतहलालजी पर आचार्यश्री के विचारो का अत्यधिक गहरा प्रभाव पडा। उन्होने प्रवचन के पश्चात् अपनी ओर से दो दिन तक आगत सभी श्रोताओ को प्रभावना (भेट) वितरित की।

स्थानीय माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापकजी के आग्रह से एक दिन मध्याह्न को विद्यालय के कर्मचारी एव छात्रो के मध्य 'समता दर्शन' पर प्रवचन हुआ।

इसी प्रकार मार्गवर्ती छोटे-छोटे ग्रामो मे धर्मोपदेश की परम पावनी गगा प्रवाहित कर और तद् द्वारा भावुक, धर्मभीरु मनो मे व्याप्त भ्रान्तियो एव अन्ध श्रद्धाओ को प्रक्षालित करते हुए आचार्यश्री युगद्रष्टा ज्योतिपुन्ज स्वर्गीय आचार्य देव श्री जवाहरलालजी म० सा० की जन्मभूमि थादला पधारे।

यद्यपि यहाँ पर भी विघ्न-सन्तोषी साम्प्रदायिक दुराग्रही व्यक्ति भ्रामक प्रचार हेतु पहुँच चुके थे किन्तु स्थानीय बुद्धिजीवियो पर उनकी छलना का

जाता रहा है। इस सिद्धान्त के पीछे कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। विगत सन्निकट इतिहास पर दृष्टि डाले, तो ज्ञात होगा कि उस समय राजाज्ञाओं को ईश्वरीय आदेश माना जाता रहा तथा राजाओ एव उनके अधिकारियो को भी ईश्वर-प्रदत्त स्वीकार किया जाता रहा। परिणाम स्वरूप कई राजाओ ने अपने आपको ही पुन पुन· अवतरित होना घोषित कर दिया और यह एक सैद्धान्तिक रूप बनकर स्थिर हो गया।

"अस्तु, ईश्वर का अवतार न मानकर सामान्य चेतना का ही उतार विकास स्वीकार करना यौक्तिक है और यही जैन दर्शन को मान्य है। आप भी यदि तटस्थ एव अनाग्रही दृष्टि से चिन्तन करेगे, तो जैन-दर्शन मे वर्णित ईश्वर सम्बन्धित विवेचना से अवश्य सहमत होगे, जिसकी बद्ध, मुक्त एव सिद्ध ईश्वर के रूप मे ऊपर व्याख्या की जा चुकी है।"

आचार्यश्री द्वारा की गई गम्भीर एव तलस्पर्शी लाक्षणिक व्याख्या को सुनकर दोनो वकील साहब अवाक् रह गये। सहसा गद्गद् स्वर मे कहने लगे—"महाराजश्री! एक जैनाचार्य होकर आपने गीता का इतना तलस्पर्शी अध्ययन किया है, यह भी हमारे लिए महदाश्चर्य का विषय है और फिर आपकी समाधान की तर्क-पुरस्सर-पद्धति वास्तव मे हमारे लिए श्रद्धा का केन्द्र बन गई है। वस्तु-स्थिति मे हमे आज तक ऐसा तर्क-सम्मत समाधान नही मिला और हम अपने सामान्य अध्ययन के आधार पर ही जैन धर्म को नास्तिक धर्म कहते रहे, किन्तु आज ज्ञात हुआ कि आस्तिकता के जो लक्षण होते है, वे तो जैन-धर्म मे भी पाये जाते है। आपश्री ने ईश्वर की भी तीन रूपो मे जो व्याख्या की, वह अत्यन्त मौलिक एव हृदयस्पर्शी है और इस प्रकार बद्ध ईश्वर को ही सृष्टि का कर्त्ता मानना यौक्तिक है।

"क्षमा करे, आज आपका बहुत समय लिया, अब शेष जिज्ञासाओ के लिए फिर उपस्थित होगे।"

इस प्रकार धार-प्रवास की प्रथम सध्या तात्त्विक जिज्ञासा एव समाधान की पुनीत प्रवृत्ति मे व्यतीत हुई, फिर अगले दिन से तो महाविद्यालय एव विद्यालयो के अध्यापक तथा अन्य जिज्ञासुओ का ताता-सा लग गया। जैन-धर्म का मौलिक स्वरूप, उसकी अर्वाचीनता एव प्राचीनता, आदि अनेक जिज्ञासाओ से सन्दर्भित प्रश्न एव समाधान हुए, जो धार की आम जनता एवं विद्वद् वर्ग के लिए अत्यन्त आकर्षक रहे। धार-प्रवास की सर्वतोमहान् उपलब्धि थी जैनेतर विद्वानो का जैन-दर्शन के प्रति आस्थावान बनना एव अपनी बद्धमूल धारणाओ से मुक्त होना।

क्या स्याद्वाद संशयवाद है?

इसी क्रम मे धार के एक ख्यातिलब्ध विद्वान् श्री गजानन्दजी शास्त्री ने

अतिरिक्त स्वाद की दृष्टि से जो दुष्पाच्य एव रसीले पदार्थ खाए जाते हैं, उन पर प्रतिबन्ध लगे तो भी बहुत बचत हो, सकती है और अन्न समस्या का सहज समाधान हो सकता है।"

इस चर्चा से प्रसन्न हो स्वय मामाजी ने अनेक आदिवासियो को लाकर दुर्व्यसन मुक्त करवाया।

थादला से मेघ नगर, झाबुआ, राजगढ आदि ग्रामो को अपने अमृतोपदेशो से पावन करते हुए आपश्री मालव प्रान्त की ऐतिहासिक विश्रुत नगरी "धार" पधारे।

आपश्री का दस दिन का धार-प्रवास स्थानीय विद्वत् समाज के लिए अत्यन्त आकर्षक एव उपयोगी रहा। प्रात प्रवचन तथा रात्रि प्रश्नोत्तर काल मे प्रबुद्ध वर्ग की उपस्थिति आशातीत रहती। वकील, स्थानीय महाविद्यालय एव विद्यालय के आचार्य, प्राध्यापक, अध्यापक, आदि विद्वत् वर्ग आचार्यश्री के द्वारा अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर अत्यन्त प्रभावित हुआ।

विद्वत् समाज मे जागृति लाने का विशेष प्रयास प्रबुद्ध श्रावक वकील श्री माणकलालजी ने किया।

जिला कांग्रेस कमेटी के तत्कालीन अध्यक्ष वकील श्री सिद्धनाथजी उपाध्याय जो वैदिक दर्शनो के अधिकृत विद्वान् थे, ने ईश्वर-कर्तृत्व के सन्दर्भ मे खुलकर आचार्यश्री से चर्चा की। उनकी मान्यता वेदान्त के अनुसार सृष्टिकर्ता ईश्वर के रूप मे थी। प्राय धार्मिक कार्यक्रमो पर वे इसी विषय पर बल देते और अपने मित्र माणकलालजी का धार्मिक उपहास किया करते। आचार्यश्री के वहाँ पधारने पर वकील साहब माणकलालजी ने उपाध्यायजी से आग्रह किया, "अभी हमारे आचार्यश्री यहाँ पधारे हुए है। जैन दर्शन के विषय मे आपकी जो जिज्ञासाएँ हो, आप नि सकोच उनसे पूछ सकते हैं।"

क्या जैन धर्म नास्तिक धर्म है ?

तदनुसार सन्ध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् वकील साहब श्री माणकलालजी के साथ वकील श्री सिद्धनाथजी उपाध्याय अपने अन्य वकील साथी के साथ उपस्थित हुए और जिज्ञासा-समाधान की अनुमति प्राप्त कर प्रश्न किया—

"जैन धर्म नास्तिक धर्म है, क्योकि वह ईश्वर-कर्तृत्व मे आस्था नही रखता और जो धर्म ईश्वर मे आस्था नही रखता है, उसे धर्म सज्ञा देना भी हास्यास्पद है। ऐसे धर्म की भारतवर्ष मे क्या उपादेयता अथवा उपयोगिता हो सकती है ? मैंने सुना है कि आप एक उच्चकोटि के विद्वान् जैनाचार्य है, अत मैं आपसे अपनी शकाओ का विनम्र समाधान चाहता हूँ।"

पर–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का। इसी वाच्यार्थ को स्यान्नास्तयेव घट' के निषेध वाक्य द्वारा द्वितीय भग मे स्पष्ट किया गया है।

तात्पर्य यह है कि स्याद्वाद अथवा अनेकान्त दृष्टि से परस्पर विरुद्ध दिखाई देने वाले वस्तुगत धर्मों को भी एक पदार्थ में निश्चयात्मक दृष्टि से सिद्ध किया जा सकता है।

इसे और अधिक सरल रूप मे यदि समझना चाहे, तो "ही" और "भी" के प्रयोग द्वारा समझ सकते है। एक व्यक्ति मै पिता ही हूँ, ऐसा नही कहकर "स्यात्‌जनकएव" कहता है, तो इसका अर्थ होगा वह किसी दृष्टि से पिता ही है। किन्तु पुत्रत्व, भ्रातृत्व, भागिनेयत्व, आदि अनेक सम्वन्धो को अवकाश देने का कार्य स्यात् शब्द से होगा।

इस प्रकार आप तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करेंगे, तो स्पष्ट हो जायेगा कि स्याद्वाद सशयवाद नही, निश्चयात्मक स्थिति प्रतिपादक है।"

आचार्य देव के द्वारा निरूपित गहनतम व्याख्या का अवधानपूर्ण श्रवण कर श्री गजानन्दजी शास्त्री सहजतया बोल उठे, "महाराज श्री, यह व्याख्या तो अत्यन्त समीचीन व्याख्या है और ससार के परस्पर विरोधी धर्मो एव तत्त्वो का समन्वय इस सिद्धान्त के द्वारा साधा जा सकता है। यह वस्तु मे रहे हुए अनेक पहलुओ पर विचार करता है। पर आश्चर्य इस बात का है कि इतने उच्च कोटि के विद्वान् भी इस सिद्धान्त की गम्भीर व्याख्या को नही समझ पाये या साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण ऐसा लिख गये। कुछ समझ मे नही आया। आज मेरा समाधान हो गया, अन्यथा मैने भी पूर्ववत् उन्ही के समान धारणा बना ली थी।

अब मेरी एक जिज्ञासा और है—साधना मार्ग मे व्यवस्थित गति हेतु बाह्य अवलम्बन अपेक्षित है कि नही ? बिना अवलम्बन के साधना मे गति कैसे होगी ? सक्षिप्त उत्तर की अपेक्षा है।"

"शास्त्रीजी, आप ही बताइये हमारा साध्य विनश्वरता है कि अविनाशी?" आचार्य प्रवर ने प्रति प्रश्न किया।

"साध्य तो अविनाशी ही होगा।"

"तो फिर साधन विनश्वर पदार्थ कैसे बन सकते है ? अविनाशी की सिद्धि के लिए हमे विनश्वरशील बाह्य पदार्थों से ऊपर उठना पडता है, तो फिर उन्हे ही अवलम्बन कैसे बनाया जा सकता है ?"

"आचार्य प्रवर यह बात तो क्षण भर में गले उतर गई। क्षमा करे, आपका बहुत समय लिया।"

मे तीन रूपो मे ईश्वर को स्वीकार किया है। इनमे से बद्ध ईश्वर को ही अपने-अपने वैयक्तिक कर्मों का कर्त्ता एव तद्द्वारा घटादि पदार्थों का कर्त्ता माना जा सकता है, किन्तु एक ही किसी ईश्वर को सम्पूर्ण स्रष्टा के रूप मे जैन-दर्शन स्वीकार नही करता है।"

इसी मध्य वकील साहब ने अपने पक्ष को सैद्धातिक आधार प्रदान करते हुए कहा—"महाराजश्री, आपके इस सिद्धान्त की सगति गीता के इन श्लोको से कैसे होगी ?

गीता मे तो स्पष्ट कहा है—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत. ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ।।
> परित्राणाय साधूना विनाशायच दुष्कृताम् ।
> धर्म सस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।।

अर्थात् जब-जब धर्म का ह्रास एव अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब दुष्टो के दलन, सज्जनो के सरक्षण रूप धर्म के सस्थापन के लिए प्रभु अवतार लेते हैं।

गीता के इस सिद्धान्त के अनुसार तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईश्वर सृष्टि, सचालक एव सहार का कार्य करता है। आपके सिद्धान्त के अनुसार तो उपर्युक्त श्लोक असगत ठहरता है। क्या आप इस श्लोक की उपयोगिता को स्वीकार नही करते हैं ?"

आचार्यश्री ने पुन मधुर एव गम्भीर स्वर मे समाधान करते हुए कहा—"वकील साहब ! गीता के इन महत्त्वपूर्ण श्लोको की यौक्तिक व्याख्या से पूर्व मैं आपसे कुछ जिज्ञासा कर रहा हूँ। आप किसी सैद्धान्तिक बद्धमूल धारणा से नही, निजी अनुभवो से ही उत्तर दे। आप जिस काग्रेस पार्टी के अध्यक्ष हैं, वह काग्रेस किनके द्वारा सस्थापित है और किसके सिद्धान्त एव आत्मबल से हिन्दुस्तान ने स्वाधीनता प्राप्त की है ?"

श्री सिद्धनाथजी—"राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की प्रबल अहिंसात्मक आत्म-शक्ति के माध्यम से हमने स्वराज्य प्राप्त किया और उन्ही के सिद्धान्तो का अनुसरण करना हमारी सस्था का उद्देश्य है।"

महात्मा गांधी महान् या परमात्मा ?

आचार्यश्री—"एक बात स्पष्ट करिये। गाधीजी को महात्मा क्यो कहा गया ? नेहरूजी, आदि अन्य किसी को क्यो नही ?"

लाल जी वकील साहब अ० भा० सस्कृति रक्षक सघ के अध्यक्ष ने आराध्य स्व० आचार्य देव के प्रति जो श्रद्धा-सुमन समर्पित किये, वे अत्यन्त श्लाघनीय है।

श्रीमान् वकील साहब के उद्‌गारो का साराश निम्न प्रकार है –

"स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा० स्थानकवासी समाज मे एक महान् क्रान्तिकारी महापुरुष हो गये है। आज से एक वर्ष पूर्व उदयपुर मे उनका स्वर्गवास हुआ था। आज उस महापुरुष की पुण्यतिथि है।

"स्थानकवासी धर्म के लिए जो लोग ऐसा कहते है कि वह लोकाशाह के वक्त से चल रहा है, उनका ऐसा कहना भूल भरा है। शुद्ध सनातन स्थानकवासी जैन धर्म अनादिकाल से चला आ रहा है, लेकिन जब धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के बाह्य आडम्बर होने लगे, भगवान् महावीर के अनुयायी सन्त भी सावद्य प्रवृत्तियो मे भाग लेने लगे, तो उसके विरुद्ध लोकाशाह ने एक शखनाद किया, जिससे बहुतो ने भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित शुद्ध सनातन धर्म को वापस अपनाया और उन्हे स्थानकवासी कहा गया।

"भगवान् महावीर का धर्म सच्चे मोती के समान चमक-दमक वाला है। यदि धर्म के नाम पर सावद्य तथा आडम्बर से चमक-दमक मालूम पडे, तो समझना चाहिये कि वह कृत्रिम मोती के समान है, जो केवल अच्छा दिखता है, पर वास्तव मे सच्चा नही है।

"प्रभावना, धर्म और अधर्म दोनो की होती है, लेकिन अधर्म को धर्म की प्रभावना मान लेना ठीक नही है। लोकाशाह जयन्ती आदि विशेष अवसरो पर प्रभात-फेरियाँ निकालना व गाजे-बाजे के साथ शोभायात्रा निकालना वास्तव मे धर्म की प्रभावना नही है। यह धर्म के स्वरूप को नही समझता है। उस दिन सवर और निर्जरा का कार्य हो, ऐसी प्रवृत्ति करना धर्म के स्वरूप को समझना है।

"जब जनता बाह्य आडम्बर मे लुब्ध होकर एव भगवान् महावीर के सच्चे धर्म को भूलकर, सावद्य प्रवृत्तियो मे लग गई, साधुओ की स्थिति भी बहुत बिगडने लगी, तो उसके विरुद्ध लोकाशाह द्वारा उठाई आवाज से संवर और निर्जरा धर्म-तत्त्व की स्थिति दृढ होने लगी। प्रारम्भ मे लोकाशाह अकेले थे, परन्तु उसके पश्चात् धीरे-धीरे उनके अनुयायियो की सख्या लाखो की हो गई। यही कारण है कि हम लोकाशाह की जयन्ती मनाते है।

"भगवान् महावीर के बताये हुए शुद्ध सनातन स्थानकवासी जैन धर्म को सगठित रूप से फैलाने के लिए सन १९५२ मे सादडी मे साधु-सम्मेलन हुआ।

"यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम ।"

"अर्थात् जहाँ जाने के पश्चात् पुन लौट कर नही आया जाता, वही मेरा परम धाम है ।" यह गीता मे श्रीकृष्ण का ही कथन है । इस परस्पर विरोधी चिन्तन का आपके पास क्या समाधान है ? अवतार लेने वाली परम उच्च आत्मा-ईश्वर, मुक्ति परमधाम को प्राप्त हुए है अथवा नही ? यदि परमधाम को प्राप्त कर लिया, तो पुन अवतार कैसे ले सकते हैं ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका तर्क-सगत समाधान अपेक्षित है । जब तक परस्पर विरोध का परिहार नही हो जाता, किसी भी ग्रन्थ को सर्वमान्य नही किया जा सकता है ।"

आचार्यश्री की सूक्ष्म एव तर्क-मूलक विचारणा से वकील साहब एव उनके साथी कुछ असमजस मे पड गये और अन्त मे उन्होने स्वीकार किया कि "आचार्य श्री, हमने आज तक इतना गम्भीर चिन्तन गीता के इन श्लोको का नही किया है और न इस विरोध का परिहार भी प्रस्तुत कर पायेंगे । आपश्री ही कृपा कर हमे समाहित करे, तो अधिक उत्तम रहेगा ।"

आचार्यश्री—"इस प्रश्न के समाधान को समझने से पूर्व जैन-दर्शन के व्यापक दृष्टिकोण को समझना अधिक उपयुक्त रहेगा । जैन-दर्शन वस्तुविचारणा एव तत्त्व-मीमासा मे एकान्तिक आग्रहात्मक दृष्टिकोण को स्वीकार नही करता है । उसके पास प्रभु महावीर द्वारा प्रदत्त अनेकान्त सिद्धान्त है, जिसके द्वारा वह वस्तु की सापेक्ष दृष्टिमूलक व्याख्या प्रस्तुत करता है ।"

"उसी अनेकान्तात्मक सापेक्ष दृष्टि के आधार पर उपर्युक्त श्लोको को भी व्याख्यायित किया जा सकता है । किन्तु केवल व्याकरण-सगत शाब्दिक व्याख्या मे उनमे सन्निहित गूढार्थ को नही समझा जा सकता है । वहाँ लक्षणा शक्ति के आधार पर लाक्षणिक व्याख्या प्रस्तुत करनी होगी । श्लोको मे आगत—"तदात्मान सृजाम्यह" तथा "सभवामि युगे युगे" वाले पदो मे सन्निहित अह पद से किसी व्यक्ति विशेष को न लेकर किसी सामान्य चेतना का ही ग्रहण करना होगा, जो कि युगीन पुकार के आधार पर पृथ्वी पर रहने वाली अनेक आत्माओ मे ही विशेष योग्यता प्राप्त कर जन-मानस के सम्मुख आती है और अपने जन-रक्षारूप लौकिक तथा लोकोत्तर कार्यों के द्वारा एक अवतार के रूप मे स्थापित हो जाती है, न कि मुक्ति-परमधाम को प्राप्त आत्मा-ईश्वर पुन भूमण्डल पर अवतरित होता है ।

"उपर्युक्त लाक्षणिक व्याख्या के द्वारा विरोध-परिहार सहजतया हो जाता है । अथवा यह भी माना जा सकता है कि तत्कालीन सामान्य जनता मे एक अच्छे शासक को ही अवतारी पुरुष मानने की सहज धारणा प्रचलित रही है अर्थात् किसी भी विशिष्ट योग्यता सम्पन्न राजा को ईश्वरीय अवतार मान लिया

नतमस्तक होते थे और उन्हे अपना आराध्य देव समझते थे। पर आचार्यश्री जी म० सा० ने जब यह देखा कि श्रमण वर्ग मे अनेक सावद्य प्रवृत्तियाँ एव शिथिलाचरण चल रहा है, तो लाखो मनुष्यो का मान-सम्मान उस विशिष्ट आत्मा को लुभा नही सका और उन्होने उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इस पर आपश्री को अनेक कष्ट उठाने पड़े। अनेक प्रकार के वाक्प्रहार हुए। पर आप श्री ने उनकी कुछ भी चिन्ता न कर निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की रक्षा के लिए सबको धैर्यपूर्वक सहन किया।

"सारा स्थानकवासी समाज स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० को, चाहे अभी तक पूरा समझ नही पाया हो, लेकिन वह दिन दूर नही कि जिस तरह सारा स्थानकवासी समाज लोकाशाह को स्मरण करता है, उसी प्रकार स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० को भी स्मरण करेगा।

"यदि कोई यह कहे कि वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म० सा० यहाँ पधारे है और उनकी सतियाँ भी यहाँ पधारी है, इसलिए आप उनका पक्ष लेते है, तो मै कहता हूँ कि जो श्रावक होता है वह सत्य की अवश्य तरफदारी एव पक्षपात करता है। जो सत्य-असत्य दोनो को समान समझता है, या दोनो मे तटस्थ रहता है वह भगवान की आज्ञा का आराधक नही होता है। साधु-साध्वी एव श्रावक-श्राविका चारो भगवान् महावीर के घटक है। साधु के साथ श्रावक समुदाय पर भी बडा उत्तरदायित्व है। लोकाशाह ने श्रमण सस्कृति की रक्षा की, उसी प्रकार स्वर्गीय आचार्यश्री ने भी श्रमण-सस्कृति की रक्षा की। श्रमण-सस्कृति को स्थिर रखा है। वे भी महान् क्रातिकारी महापुरुष हो गये है। सन्त, चाहे थोड़े भी हो, शुद्ध विचार, उच्चार और आचार वाले होकर श्रमण-सस्कृति के रक्षक है, तो उससे समाज शोभायमान है। हमारा समाज गुण-पूजक है। भगवान् महावीर का मार्ग किसी बाडे मे इकट्ठा किया हुआ नही है। वह शुद्ध विचार, उच्चार और आचार रूप है। उसके पालन करने वाले निर्ग्रन्थ श्रमणो पर हमारी श्रद्धा रहना आवश्यक है।

"अन्त मे मेरा यही कहना है कि आज के दिन दया, पौषध, उपवास, व्रत, प्रत्याख्यान, आदि करके स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की पुण्य तिथि को सम्यक् रूप से मनाये।"

धार नगरी के इसी प्रवास-काल मे रतलाम से लगभग सौ व्यक्ति एव इन्दौर से दो सौ व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

इन्दौर संघ की ओर से श्री लाभचन्दजी काठेंड ने इन्दौर-क्षेत्र को पावन करने हेतु भावभीनी विनति निम्न शब्दो मे प्रस्तुत की—

"भारत के महान् सन्त, प्रात.स्मरणीय परम पूज्य आचार्य प्रवर, पूज्य मुनिराजगण एवं महासतिया जी महाराज सा०, आज इन्दौर के सभी दर्शनार्थियो को आपके दर्शन कर अपार हर्ष रहा है।

एक जिज्ञासा की, "महाराजश्री, मैं पी० एच० डी० के लिए थिसिस (शोध-प्रबन्ध) लिख रहा हूँ। तद् हेतु मैंने बहुत से उच्चकोटि के विद्वानो द्वारा लिखित ग्रन्थों का अवलोकन किया है। उनमे मुख्यतया जगद्गुरु शकराचार्य आदि एव भारतीय दर्शनशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् उपराष्ट्रपति स्व० सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् ने जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्त स्याद्वाद को सशयवाद कह कर जैन दर्शन का उपहास करने का प्रयास किया है। तो क्या वास्तव मे स्याद्वाद का अर्थ सशयवाद ही होता है ?"

आचार्यश्री—"शास्त्रीजी, किसी भी विद्वान् ने कुछ भी लिखा अथवा कहा हो, किन्तु मैं दृढता के साथ कहना चाहूँगा कि आप यदि स्याद्वाद शब्द की गम्भीर विश्लेषणा को समझने का प्रयास करेंगे, तो आपका सम्पूर्ण भ्रम नष्ट हो जायेगा और आप स्वय बोल उठेंगे कि स्याद्वाद सशयवाद नही, सुनिश्चयात्मक वाद है।"

स्याद्वाद शब्द मे सन्निहित "स्यात्" पद सशयवाचक नही, कथचित् वाचक है। जैनाचार्यो ने इसका विश्लेषण करते हुए कहा है—"स्यादित्यनेकान्त द्योतक मव्ययम्" अर्थात् स्यात् अनेकान्त-द्योतक अव्यय है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—कथचित्-अपेक्षा विशेष से अत स्याद्वाद का अर्थ है—कथचित्वाद। स्याद्वाद के द्वारा वस्तु-विश्लेषण मे किसी ऐकान्तिक आग्रह विशेष का निषेध किया गया है। किसी एक वस्तु के विषय मे हमारी अपनी दृष्टि है और हमारे अपने विचार है। यह आवश्यक नही कि वे ही पूर्ण सत्य हो। हमारी तरह दूसरे के विचार भी सत्य-स्पर्शी हो सकते है। एक तीन मीटर लम्बी रेखा को हम न एकान्तत छोटी कह सकते है, और न बडी। अपने से छोटी दो मीटर रेखा की अपेक्षा वह बडी है, तथा पांच मीटर लम्बी रेखा की अपेक्षा वह छोटी है, किन्तु अपनी लम्बाई मे वह निश्चित तीन मीटर ही है।

इस प्रकार स्याद्वाद सशयवाद नही, निश्चयात्मक दृष्टि प्रदान करता है। उसके द्वारा वस्तु मे निहित अनन्त धर्मो को हम ठीक तरह से व्याख्यायित कर सकते है।

स्याद्वाद पर आधारित जैन दर्शन मे वर्णित सप्त भगी को थोडा समझने का प्रयास करें। 'स्यादस्त्येव घट" इस वाक्य मे स्यात् शब्द के साथ "एवकार" का भी प्रयोग हुआ है, जो निश्चयार्थक है। सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ होगा कथचित् घट है ही। इसमे प्रयुक्त 'कथचित्' एव 'ही' दोनो पद महत्त्वपूर्ण है। 'कथचित्' अपेक्षा विशेष का एव 'ही' निश्चयात्मकता का द्योतक है। घट किसी अपेक्षा से अर्थात् स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से है ही। इससे 'स्यात्" पद से यह ध्वनित होता है कि घट मे स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव का अस्तित्व है न कि

इन्दौर में

धार नगरी मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति करके आपश्री मार्गवर्ती छोटे-छोटे ग्रामो मे धर्म-लहर उत्पन्न करते हुए मध्य प्रदेश के विख्यात नगर इन्दौर पधारे ।

इन्दौर नगर का इक्कीस दिन का प्रवास अभूतपूर्व धर्म-जागृति के वातावरण मे हुआ । प्रतिदिन हजारो की सख्या मे जन-मेदनी प्रवचन-श्रवण का लाभ लेती थी, जिनमे विद्वद्-वर्ग एव युवा-वर्ग का बाहुल्य रहता । रात्रि ज्ञान-चर्चा की छटा तो आनन्ददायिनी ही रहती । इन्दौर नगर के चुने हुए विद्वानो द्वारा प्रश्न पर—प्रश्न और उनका हृदय-स्पर्शी गम्भीर उत्तर, सम्पूर्ण वातावरण को ज्ञान-विज्ञानमय बना देता, क्योकि प्रश्नो मे अधिकतर वर्तमान विज्ञान और धर्म के सम्बन्धो की चर्चा हुआ करती थी ।

वैज्ञानिक प्रश्नो के धर्म के परिप्रेक्ष्य मे वैज्ञानिक उत्तर प्रश्नकर्त्ताओ को भाव-विभोर कर देते । बहुत से विद्वानो के भाव तो ज्ञान-चर्चा से उठते समय मुखरित होते, "वर्षो से हम जिन प्रश्नो का समाधान खोज रहे थे, वे आचार्य देव के श्रीमुख से सहज समाहित हो गए ।

"आचार्यश्री की ज्ञान गरिमा अद्भुत है और साथ ही वैज्ञानिक अध्ययन तो हम विज्ञान के अध्येताओ को भी मात कर देता है ।"

तात्पर्य यह है कि वे इक्कीस दिवस इन्दौर नगर की ज्ञानपिपासु, धर्म-प्राण जनता के लिये आत्म-जागृति एव आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र मे वरदान सिद्ध हुए ।

स्थानीय कर्मठ कार्यकर्त्ता प्राध्यापक श्री लादचदजी के ही शब्दो मे वहाँ के जन-जागरण का चित्र निम्न प्रकार है, जिसे उन्होने अठारह दिन के व्यतीत हो जाने के पश्चात् आचार्य देव के चरणो मे विनती के रूप मे प्रस्तुत किया—

"भारत के महान् चरित्रनिष्ठ आध्यात्मिक सत, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के रक्षक, प्रात: स्मरणीय, परम पूज्य आचार्य प्रवर सविधि वदना निवेदन करते हुए आपश्री के चरणो मे श्री सघ की ओर से अत्यन्त नम्रतापूर्वक विनती

इस प्रकार सात दिनों तक धार नगरी के प्रबुद्ध वर्ग प्रश्न-प्रतिप्रश्नों के द्वारा मानसिक गुत्थियों को सुलझाता रहा। आठवें दिन जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व एवं उनकी व्याख्याओं पर चर्चा की, तथा नवें दिन मनोविज्ञान को सन्दर्भित कर आचार्य देव के विचार-मन्थन से श्रोता-समाज लाभान्वित हुआ।

आचार्यश्री लब्धि सम्पन्न हैं

इस प्रकार धार प्रवास का दस दिन का वह अल्पकाल तत्त्व विचारणा का ही काल रहा। विहार के एक दिन पूर्व तो भगतजी ने (जो शास्त्रों के ज्ञाता थे एवं वर्षों में धर्म स्थानक में ही रहकर श्रावक व्रतों की आदर्श आराधना में संलग्न थे) आचार्यश्री से निवेदन किया, "महाराज साहब, आपका यहाँ आना हमारे लिए अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। ये वकील लोग प्रायः हर किसी धार्मिक प्रसंग पर ईश्वर-कर्तृत्व को लेकर हमारा उपहास किया करते थे, किन्तु अब हमारी सदा-सदा की झंझट समाप्त हो गई है।" साथ ही समीप खड़े हुए कुछ श्रावकों को सम्बोधित करते हुए धर्मात्मा भगतजी ने कहा, "आप लोग समझ पाए या नहीं? शास्त्रों में अनेक प्रकार की लब्धियों का वर्णन आता है। मेरी आत्मा कहती है कि उनमें से आचार्यश्री को कोई न कोई लब्धि प्राप्त है। कौनसी लब्धि है, यह मैं नहीं बता सकता हूँ, किन्तु यह निश्चित है कि आचार्यश्री लब्धि सम्पन्न हैं।"

इसी प्रकार वकील साहब सिद्धनाथ जी उपाध्याय के भी अपने साथी मित्रों के समक्ष उद्गार थे कि "मित्रो, हम कहाँ इधर-उधर तीर्थों में घूमते फिरते हैं? वास्तव में सच्चे ज्ञान-तीर्थ तो यह हैं, जो अज्ञान एवं भ्रांतियों के सम्पूर्ण मल का प्रक्षालन कर देते हैं। इस जंगम तीर्थ में हमें जो उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र नहीं। मेरी तो बहुत अधिक भ्रान्तियाँ समाप्त हो गई हैं।"

धार-प्रवास की इसी पुण्यावधि में माघ कृष्णा द्वितीया का दिवस भी आ गया, जो कि शान्त क्रान्ति के अग्रदूत परम श्रद्धेय स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा० की प्रथम पुण्य तिथि का दिन था। इस विशेष प्रसंग को लेकर आचार्य देव ने उस दिन की प्रवचन-पीयूष-धारा में स्वर्गीय आचार्यश्री की जीवनगत विशेषताओं एवं उन्हीं के माध्यम से निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति की महत्ता विषय पर अमृत वर्षा भी की। साथ ही श्रमण-वर्ग में प्रविष्ट विकृतियों एवं समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक व्यामोह के प्रति भी करारा प्रहार किया। परिणाम स्वरूप स्थानीय श्रावक-समाज में संस्कृति की सुरक्षा के प्रश्न को लेकर पुनः सामाजिक चेतना की जागृति हुई।

इसी प्रसंग पर स्थानीय प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी श्रावक बन्धु श्री माणक-

निकलने देना चाह रही थी। वह आचार्य देव से अधिकतम लाभ ले लेना चाहती थी। इसी दृष्टि से कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियो ने विहार करते समय भी उस दिन का प्रवचन वैष्णव उच्च माध्यमिक विद्यालय मे रखवा लिया, जिसका लाभ शाला के छात्रो के अतिरिक्त प्रिंसिपल श्री चक्रवर्ती साहब, जो राष्ट्रपति पुरस्कार से पुरस्कृत है, पूरे कर्मचारी वृन्द (स्टाफ) एव अन्य गणमान्य नागरिको ने लिया।

प्रवचन के पश्चात् रामकृष्ण धर्मशाला मे गोचरी आदि से निवृत्त होकर गाधीनगर की ओर प्रस्थान हुआ। विदाई के उन क्षणो मे सैकडो नर-नारी नगर से बाहर कुछ दूरी तक एव लगभग पचास श्रावक बन्धु गाधीनगर तक साथ रहे।

इसी प्रकार मध्यवर्ती हातोद, देपालपुरा, गौतमपुरा आदि छोटे-छोटे गाँवो में जिनवाणी की पीयूष-धारा की बौछार करते हुए आपश्री बडनगर पधारे। बडनगर मे स्थानकवासी समाज के अतिरिक्त श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, दिगम्बर एव जैनेतर समाज ने अधिक भाग लिया।

चूकि आचार्य देव का जीवन आलोकमुखी जीवन है, अत· जहाँ भी आपश्री के चरण-स्पर्श होते है, एक सर्चलाइट (प्रकाश प्रेक्षक) सी फैली जाती है। यही स्थिति बडनगर की भी बनी। वहाँ यद्यपि स्थानकवासी जैनो के तीन-चार परिवार ही थे, किन्तु दिगम्बर एव श्वेताम्बर मूर्ति पूजक धर्मावलम्बियो के १००-१०० से भी अधिक घर थे और उन लोगो ने आचार्यश्री का एक ही तात्त्विक एव मर्मस्पर्शी प्रवचन सुना कि आचार्यश्री को वहाँ अधिक-से-अधिक समय तक रुकने के लिये आग्रह करने लगे। जैन एव जैनेतर बन्धुओ के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए आचार्यश्री को वहाँ चार दिन रुकना पडा। प्रवचन मे श्रोताओ की प्रतिदिन वृद्धि होना सहज बात है। स्थानीय डॉक्टर, वैद्य, अध्यापक, वकील आदि अनेक बुद्धिजीवियो ने आचार्य देव के प्रवचन एव ज्ञान-चर्चा के माध्यम से अपनी अध्यात्म-ज्ञान सम्बन्धी बुभुक्षा को शान्त किया।

आचार्यश्री के तत्त्व-स्पर्शी प्रवचनो की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए अनेक विद्वानो के तो शब्द थे—"ऐसे हृदय-स्पर्शी मार्मिक प्रवचन सुनने का हमारे लिये यह प्रथम ही अवसर है।"

दिगम्बर विद्वान् एवं वैद्यराजजी के उद्गार

दिगम्बर समाज के ख्यातिप्राप्त प्रवक्ता पण्डित श्री विष्णुकुमारजी शास्त्री ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा—"जो तात्त्विक विवेचन हमे दिगम्बर एव श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के सन्तो तथा पण्डितो से उपलब्ध

नव आचार्य श्री गणेशीलालजी म० ने उपाचार्य पद ग्रहण किया। इसके सम्बन्ध मे सब को सारी बाते मालूम है ही।

"पूज्य श्री गणेशलालजी म० सा० ने निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की रक्षा हेतु चार-पाँच कारणो को लेकर श्रमण-सघ से त्याग-पत्र दे दिया। उनका मुख्य कारण शिथिलाचार और दूसरा उसी के अन्तर्गत ध्वनिवर्धक यत्र है। शिथिलाचार के विषय मे क्या-क्या घटनाएँ घटित हुई, और क्या क्या घटनाएँ अब भी चल रही है, उस सम्बन्ध मे कुछ नही कहता हुआ ध्वनियत्र के विषय मे कुछ कहता हूँ। क्या जैन साधु ध्वनियत्र का उपयोग कर सकता है? एक व्यक्ति को जब वैराग्य उत्पन्न होता है, तब घर-कुटुम्ब-परिवार, आदि परिग्रह की सब साधन-सामग्री छोडकर वह निकलता है, और पच महाव्रत अगीकार करता है। पच महाव्रत का पालन तलवार की धार पर चलने के समान है। इस पर जो कर्त्तव्य निष्ठा से चलता है, उसी साधु के चरणो मे हमारा मस्तक झुकता है।

"नवकार मत्र मे पाँचवाँ पद साधु का है। उनकी स्थिति कैसी सुन्दर होनी चाहिये, इस पर हमे सोचना है। जो घरबार छोडकर साधु बना है, वह उसी चीज को काम मे ला सकता है जिसके लिए भगवान् ने आज्ञा दी हो, और जिससे सयम की पुष्टि हो। क्या साधु, छप्पर, पलग का तथा अपने हाथ से सिले बनियान, मौजे का उपयोग कर सकता है? कहना होगा, नही। साधु निर्वद्य चीजो का भी, जो सयम मे बाधक है, तथा सयम को पुष्ट करने वाली नही है, उपयोग नही कर सकता, तो सयम मे बहुत बडी बाधा उत्पन्न करने वाले ध्वनियत्र, पखा, एयर कडीशन, आदि का उपयोग कैसे कर सकता है? पर आज के युग मे जो कतिपय साधु ध्वनि-वर्धक यत्र, एयर कडीशन व पखे, आदि के उपयोग करते है और व्याख्यान टेप रिकार्ड करवाते है, उन साधुओ को तथा उनके सहयोगियो को भगवान् की आज्ञा का आराधक नही कहा जा सकता। साधु-कल्प की मर्यादा के विरुद्ध आचरण करने वाले साधु का साथ न देना, उनके साथ सहयोग न रखना, वीतराग भगवान् की आज्ञा का पालन है।

"जब साधु-समाज मे ध्वनि यत्र, आदि सावद्य प्रवृत्तियाँ चालू हुई और नैतिक जीवन भी गिरने लगा, तो उनको दूर करने के लिए स्व० आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० ने करीब तीन साल तक भरसक प्रयत्न किया, लेकिन अनेक प्रयत्नो के उपरान्त सफलता न मिलने दी गई, तो वे उनसे अलग हो गये। स्व० आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० साधु-समाज मे सयम चाहते थे। हम धार-निवासी भी कहते है कि कोई भी साधु चाहे वह नवनिर्मित श्रमण-सघ का हो या बाहर का हो अगर वह सयम की सम्यक् प्रकार से आराधना करता हुआ भगवान् की आज्ञानुसार चलता है तो वह हमारा वदनीय पूजनीय है।

स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशलाल जी म० सा० के चरणो मे हमारी सादर

भगवन् सूई जो सुबह लाया था, धर्म-स्थान में ही रह गई है। यथास्थान लौटाना भूल गया।

आचार्य देव ने संयमीय मर्यादाओं की सजगता के प्रति सचेष्ट करते हुए कहा—"एक भाई के साथ जाकर तुम स्वयं यथास्थान सूई लौटा कर आओ।"

विहार के साथ चलने वाले श्रावक बन्धुओ ने कहा, "आचार्य देव, एक सूई के लिये मुनिजी को चार मील का चक्कर देना अच्छा नही होगा। हम वापस जायेगे, तो सूई ढूँढकर पहुँचा देगे।"

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, "आपकी भावना प्रशस्त है, किन्तु हमारी सयमीय मर्यादा कहती है कि हम अपना कार्य स्वय करे। आज यह छोटा-सा कार्य आपसे करवायेगे तो कल इससे बड़ा करवाने लगेगे। इस प्रकार से साधना मे शिथिलता का प्रवेश होता है। दूसरी बात, स्वय जाकर देने मे आगे के लिये मुनिजी को भी सूक्ष्मतम प्रवृत्ति मे सजगता एवं सावधानी रहेगी।"

और, आचार्य देव के आदेश पर तथास्तु के साथ विनय प्रतिमूर्ति मुनिश्री तुरन्त लौट गए और सूई यथास्थान पहुँचा कर पुन. श्री चरणो मे पहुँचे। यह है अपनी सूक्ष्मतम प्रवृत्तियो के प्रति भी सजगता का उदाहरण।

इसी प्रकार मार्गवर्ती ग्रामों को यथावत पावन करते हुए आपश्री कानवन पधारे। कानवन की अटल श्रद्धानिष्ठ-धर्मप्राण जनता ने अपने आराध्य का अनूठा स्वागत किया। चार दिन के कानवन प्रवास मे जैन-जैनेतर जनता का उत्साह अभूतपूर्व था।

पीयूष-धारा का प्रभाव

यहाँ विगत कुछ समय से कुछ जैन बन्धुओ मे आपसी मन-मुटाव था। इसलिये वे धर्म-स्थान मे नही आ रहे थे। इस बात की जानकारी वकील साहब श्री माणकलालजी (धार) को हुई, तो वे उन्हे समझा कर आचार्य देव के चरणो मे ले आए और आचार्य देव को उन्हे मार्ग-दर्शन हेतु सकेत किया। आचार्यश्री ने अपने पीयूषवर्षी चन्द शब्दो मे ही उन्हे ऐसा भाव-विभोर कर दिया कि तत्काल पश्चात्ताप के आँसू डालते हुए, उन्होने आपस मे क्षमा-याचना कर ली और लम्बी अवधि से चला आ रहा वैमनस्यपूर्ण तनाव समाप्त हो गया। कानवन प्रवास के इन्ही दिनो धार-निवासी श्री माणकलालजी वकील साहब के साथ धार जिला काग्रेसाध्यक्ष वकील श्री सिद्धनाथजी उपाध्याय एव उपाध्यक्ष आदि उपस्थित हुए। आचार्यश्री से और किसी जिज्ञासा के लिये प्रेरित करने पर उपाध्यायजी ने कहा—"आचार्य देव, वैसे मेरी अधिकाश भ्रान्तियाँ दूर हो

"पूज्य श्री, हमने जब सुना कि आप रतलाम से अपना ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न कर पेटलावद, थांदला, राजगढ आदि ग्रामो को परसते हुए धार पधारेंगे तो हम लोगो को आपश्री के दर्शन करने की उत्कृष्ट इच्छा हुई। आज हमारा परम सौभाग्य है कि हमारी वह इच्छा पूर्ण हुई। आचार्य प्रवर! जहाँ तक मुझे ख्याल है आप इन्दौर नगर मे लगभग १३ वर्ष पूर्व स्वर्गीय आचार्य १००८ श्री गणेशलालजी म० सा० के साथ पधारे थे। अब इन्दौर के हजारो नर-नारी आपके दर्शनो के लिए उत्सुक है तथा आपश्री की अमृतमय वाणी का पान करने हेतु लालायित है।

आचार्य प्रवर! आप छोटे-से-छोटे ग्राम मे भी विचरण करते है तो फिर इन्दौर जैसे नगर मे जो कि भारत के प्रमुख नगरो मे से है, आप जैसे महान् सतो का पधारना अत्यन्त आवश्यक है। अत मैं सभी भाई-बहनो की ओर से अत्यन्त नम्रतापूर्वक आपश्री से यही विनती करता हूँ कि आप इन्दौर अवश्य-अवश्य पधारे। ऐसा न हो कि इन्दौर की जनता आपश्री के दर्शन एव अमृतमय वाणी के पान से वंचित रह जाय।

"मै आज आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि आज हमारे देश के कोने-कोने मे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, कर्त्तव्यहीनता आदि व्याप्त है। भारत सरकार ने भी इनको उन्मूलन करने की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की है। मेरा विश्वास है कि आप जैसे महान् सन्त ही अपनी अमृतवाणी द्वारा लाखो व्यक्तियो के हृदय-परिवर्तन करके उन्हे कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने मे सक्षम हो सकते है। पूज्य गुरुदेव, आप जैसे चरित्र-निष्ठ सन्त भारत की इस अनैतिकता का उन्मूलन करने मे महान् योग दे सकते है

"आज हम लोग धर्म के प्रति जागरूक नही है और उसमे विश्वास नही रखते है। देश मे व्याप्त बुराइयो का मूल कारण यही है। अत हमे मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है। आप सबका अधिक समय नही लेते हुए मैं पुन. आचार्य प्रवर से यह विनती करता हूँ कि आप इन्दौर नगर मे अवश्य पधारे और अपनी अमृतवाणी का पान कराकर सही मार्गदर्शन दे, ताकि हम लोग धर्म की ओर अग्रसर होकर उसके अनुरूप कार्य करके अपने समाज का तथा देश का कल्याण करने मे समर्थ हो सके। आशा ही नही, अपितु पूर्ण विश्वास है कि पूज्य श्री वर्तमान मे हमारी विनती पर विचार करके इन्दौर पधारने की स्वीकृति देगे। बस, यही हमारी प्रार्थना है।"

इन्दौर संघ की उत्साह-भरी विनती होते हुए भी आचार्यश्री ने निश्चित रूप से स्वीकृति नही देते हुए इतना ही कहा कि — "अभी आपकी विनती मेरे ध्यान मे है, आगे जैसा भी प्रसंग बनेगा अभी कुछ नही कहा जा सकता है।"

• • •

दीक्षा पच्चखा सकते है, किन्तु मेरी आन्तरिक भावना है कि इन्दौर नगर की विनती को दृष्टिगत रखते हुए आपश्री इन्दौर में चातुर्मास कर, अपने मुखारविन्द से ही माताजी को दीक्षा पाठ प्रदान करे।

इसी प्रकार श्री लाभचन्दजी काठेड, विज्ञान अध्यापक ने अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हुए कहा—

"आचार्यश्री के पदार्पण से इस कानवन मे हर्ष का पार नही है। आचार्यश्री जहॉ भी पधारते है, सैकडो व हजारो की सख्या मे जनता आपश्री के शुभागमन का स्वागत करती है और उपदेशामृत का लाभ लेकर मन्त्रमुग्ध हो जाती है। मैने आचार्यश्री के प्रवचन इन्दौर मे सुने और दर्शनार्थ व प्रवचन-श्रवणार्थ बेटमा, हातोद और धार भी श्रीचरणो मे उपस्थित हुआ, और आज यहाँ भी आया हूँ। आचार्यश्री के प्रवचन मे वह शक्ति है कि प्रवचन सुनते ही अन्त स्थल मे भावो की हिलोर उठती है एव सासारिक विचार लुप्तप्राय· हो जाते है। आचार्यश्री ने इन्दौर मे लगभग इक्कीस दिन विराज कर जादू का-सा असर किया है। आज के युग मे जहॉ नवयुवक धर्म से विमुख होते जा रहे है, वहॉ आचार्यश्री के उपदेशो ने नवयुवको को आकर्षित किया और अनेको के दिलो मे धर्म की वास्तविकता का सचार किया, जिससे नवयुवक यह अनुभव करने लगे है कि हमारे जीवन मे धर्म का होना अत्यन्त आवश्यक है। नीति-पूर्वक धर्म का अवलम्वन लिये बिना हम अपना उत्थान नही कर सकते। आचार्यश्री जहॉ भी पधारते है, जनता आकर्षित हो जाती है। इसका कारण आचार्यश्री के ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पराकाष्ठा ही है।

"मैं अंत में आचार्यश्री की पुनीत सेवा मे विनती करता हूँ कि विशेष नही तो आप कम-से-कम यह तो अभी फरमा दीजिये कि आगामी चातुर्मास मालव भूमि मे ही होगा। मालव भूमि मे एक चातुर्मास और होना अत्यावश्यक है। अत. हमारे ऊपर अनुग्रह कर हमारी विनती को ध्यान में लेकर स्वीकृति प्रदान करे।"

आचार्य देव ने अपनी सुमधुर गिरा अर्थात् साधु-भाषा मे विनती का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"ब्यावर, रायपुर, उज्जैन आदि की ओर से भी विनती है। मैंने किसी को कोई आश्वासन नही देते हुए यही कहा है कि भावी चातुर्मास के लिये फाल्गुनी पूर्णिमा के पहले तो कुछ भी नही कहा जा सकता। आगे जब भी जैसा अवसर होगा, तदनुसार विचार किया जावेगा। यही बात आपके लिये भी है। लेकिन आप तथा अन्य भी यह जानते है कि चातुर्मास सभी जगह तो होगा नहीं। किसी एक ही जगह होगा, सो समय पर मालूम हो ही जायेगा। आप सबका धर्म-प्रेम सराहनीय है।"

करता हूँ कि आप इन्दौर नगर में कल्पते काल तक विराजने की महती कृपा करें।

"आपके प्रभावकारी प्रवचन सुनकर हजारों जैन-जैनेतर भाई-बहिन अत्यन्त ही प्रभावित हुए हैं। आज दिन तक आपके इस नगर में अठारह व्याख्यान हुए हैं। आपने सदैव अपने प्रवचनों में हम लोगों का ध्यान धर्म की ओर खींचने का सफल प्रयास किया है। आपकी अमृतमय वाणी का पानकर अनेक मनुष्यों के हृदय-परिवर्तन हुए हैं और धर्म के प्रति एक नई जागृति आई है। आप जब से यहाँ पधारे हैं, तब से आज तक हम महावीर-भवन में पर्युषण पर्व चल रहा हो, ऐसा अनुभव कर रहे हैं।

"आपश्री के दैनिक व्यस्त धार्मिक कार्यक्रमों को देखकर हम लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रात्रि को लगभग ७½ से ९ बजे तक आप कई विद्वानों के प्रश्नों के समाधान बहुत ही सुन्दर ढंग से करते हैं। सभी आपके द्वारा दिये हुए उत्तरों से सन्तुष्ट होकर आनन्दित होते हैं और आपकी विद्वत्ता की अनुभूति कर रह जाते हैं। आपश्री में आधुनिक विज्ञान का धर्म के साथ समन्वय करने की अपूर्व क्षमता है। उससे हमें सहज ही पता चल जाता है कि आपने अनेकों ग्रन्थों का अध्ययन किया है। इन्दौर नगर के इतिहास में प्रश्नोत्तरों का कार्यक्रम अभूतपूर्व हो रहा है। आपश्री में शांतिप्रियता, चरित्रनिष्ठा, विनय, सरलता एवं तीक्ष्ण बुद्धि देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता होती है। आपसे हमें कई बातें सीखने को मिलती हैं, जिनकी हमें अपने जीवन को उन्नत बनाने में अत्यधिक आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि आप अभी इन्दौर ही विराजें और अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा हमें अधिक लाभान्वित करें। इन्दौर शहर को दृष्टिगत रखते हुए आपको अभी यहाँ विराजना अत्यन्त आवश्यक है। अब मैं एक बार पुनः श्री संघ की ओर से आपसे नम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप यहाँ पर कल्पते काल तक विराजने की स्वीकृति फरमावें। आशा ही नहीं, अपितु, पूर्ण विश्वास है कि आप हमारी विनती पर उचित ध्यान देकर हमारी उत्कट अभिलाषा को पूर्ण करेंगे।"

इन्दौर नगर की धर्म प्राण जनता की ज्ञान-पिपासा की उपशान्ति हेतु पूरे तीस दिनों तक आचार्य देव का इन्दौर नगर में प्रवास रहा। परिपूर्ण शेषकाल अर्थात् उन्तीस दिन तक विराजने के लिये संघ का अत्यन्त आग्रह रहा, किन्तु मालव प्रान्त के ग्रामीण अंचलों में विस्तृत भावुक जनता के लाभ एवं उपकारों को दृष्टिगत रखते हुए इकतीस दिन के प्रवास करने के पश्चात् मध्य-प्रदेश के गुलाबी नगर इन्दौर से निकटवर्ती ग्रामीण अंचलों को पावन करने हेतु आपश्री ने प्रस्थान कर दिया।

फिर भी इन्दौर की धर्म-पिपासु जनता अपने आराध्य को सहजतया नहीं

विशेष रूप से सावधान करते हुए फरमाया कि—"इस कोमल वय मे ही आपको अपने जीवन को सस्कारित करना है और इसके लिये आवश्यक है कि बीडी, सिगरेट, शराब, मास आदि सभी दुर्व्यसनो से आप अभी से दूर रहे। झूठ बोलना, एक दूसरे की वस्तु उठा लेना, अनुशासन को भग करना आदि प्रवृतियाँ हमारे जीवन को और पूरे भविष्य को बिगाड देती है। अतः यदि आप चाहे तो इन सभी दुर्गुणो का त्याग कर दे।"

महात्मा गाधी आदि कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के छोटे-छोटे उदाहरणो के द्वारा आचार्यश्री ने बच्चो के कोमल हृदय को इतना प्रभावित किया कि विद्यालय के प्राय सभी छात्रो ने हाथ खडे करके मास, मदिरा, बीडी, सिगरेट आदि न सेवन करने की तथा चोरी, झूठ, बुरी सगत एव अपशब्दो से दूर रहने की प्रतिज्ञाएँ ले ली।

बच्चो की त्याग-भावना से प्रभावित होकर श्री शैतानमलजी, श्री अमृतलालजी विनायक्या कौद निवासी तथा स्थानीय श्री सघ की ओर से बच्चो को मिठाई वितरित की गई।

इसी प्रकार कानवन से नागदा, बिडवाल होते हुए आचार्य देव के कोद पदार्पण पर भी तीन प्रवचन हुए एव एक प्रवचन मध्याह्न पाठशाला मे हुआ। वहाँ भी छात्रो ने उपर्युक्त दुर्व्यसनो का सामूहिक त्याग किया और श्री अमृतलालजी की ओर से मिठाई वितरित की गई।

छोटे-बड़े सामाजिक एव पारिवारिक सघर्ष समाज मे प्रायः चलते ही रहते है और वैसा कुछ सघर्ष यहाँ भी दो बन्धुओ मे मकान की दीवार को लेकर चल रहा था। आचार्य देव का चरण-स्पर्श एव मगल प्रवचन जादू सा प्रभाव अकित करता है। दोनो बन्धुओ मे प्रेम का सम्बन्ध हो गया।

कोद से विहार कर आपश्री बखतगढ एवं छायन की धरा को अपने चरण-स्पर्श से एव ग्राम्य जन-मन को पीयूषवर्षी वाग्धारा से पावन करते हुए मुलथान पधारे एव होली चातुर्मास यही पर किया।

पाच दिन का मुलथान प्रवास धर्म-जागृति की अनूठी छटा लिये हुए था। मुलथान नरेश भगतसिहजी के आग्रह के कारण प्रवचन राजमहलो के प्रागण मे ही होता था। यहाँ भी विगत १०-१२ वर्षो से सामाजिक वैमनस्य ने उग्र रूप धारण कर रखा था और उसके शमन के लिये समय-समय पर बहुत प्रयास किये गये थे, किन्तु वह शान्त नही हो पाया। आचार्य प्रवर ने अपने प्रवचनो मे समन्वय के सन्दर्भ मे प्रकाश डाला। परिणाम तो स्पष्ट था। जन-हृदय परिवर्तन एवं कापायिक उपशान्ति से एक-दूसरे विरोधी गले मिलकर सामूहिक भोज मे जुट गये।

नहीं होता है, वह आप जैसे महान् सन्तों से प्राप्त हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि आपश्री यहाँ कुछ और विराजकर जागृति लाने की कृपा करें।"

इसी प्रकार प्रवचन समाप्ति पर श्रीमान् वैद्य पण्डित श्री व्रजवल्लभजी ने भी अपने अन्तरंग श्रद्धापूर्ण भावों की अभिव्यक्ति करते हुए कहा—

"मैं हमेशा दूसरों को दवा देता हूँ, पर स्वयं कुछ दिनों से अस्वस्थ हूँ। घर से बाहर कम निकलता हूँ, लेकिन मैंने सोचा कि इस नगर का भाग्योदय है कि यहाँ एक महान् तत्त्ववेत्ता आध्यात्मिक संत पधारे हैं। हमेशा तू लोगों को दवा देता है, पर आज तुझे दवा लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। यह विचार कर पर्याप्त शक्ति न होते हुए भी धीरे-धीरे आपश्री के चरणों में दवा लेने आया हूँ। आपश्री के दर्शन कर तथा प्रवचन सुनकर मुझे अपार आनन्द हुआ। आज का मानव काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, कपट आदि रोगों से बहुत पीड़ित है। इस रोग को दूर करने का एवं मानव-जीवन को ऊँचा उठाने का आपका उद्देश्य अलौकिक है। मैं चाहता हूँ, मैं ही क्या सभी चाहेंगे कि आपश्री चातुर्मास बड़नगर में ही करें और चातुर्मास-काल में यहाँ विराज कर हमारा उद्धार करें। आपश्री यह न समझें कि यहाँ पर घर थोड़े हैं। यहाँ पर जैनियों के २०० से अधिक घर हैं। अतः यह विनती है कि आने वाला चौमासा बड़नगर में हो।"

बड़नगर में धर्मोद्योत की अभूतपूर्व लहर प्रसृत कर आपश्री बदनावर पधारे। बदनावर में भी अन्यान्य क्षेत्रों की तरह स्थानीय जैन समाज, जो लगभग १०० परिवारों की संख्या में थे, के साथ सरकारी कर्मचारियों ने प्रवचनों में सोत्साह भाग लिया। तीन दिन तक धर्म-जागृति की दुन्दुभि बजा-कर बदनावर से आपश्री ने कानवन की ओर विहार किया।

सजग संयमी

आचार्य देव संयम-साधना की लघुतम एवं सूक्ष्म प्रवृत्तियों के प्रति भी कितने सजग हैं, इसका उल्लेख यहाँ घटित एक छोटी-सी घटना से करना चाहेगा।

हुआ यों कि विहार के दिन प्रातः सेवाभावी तपस्वी मुनि श्री अमरचन्दजी म. सा. किसी गृहस्थ के यहाँ से सिलाई हेतु एक सुई याचना कर लाए थे। कुछ असावधानी के कारण सुई धर्म-स्थान में ही रह गई और वहाँ से विहार हो गया। लगभग दो मील चले जाने के पश्चात् मुनिश्री को स्मरण हो आया कि वे सुई वहीं भूल आए हैं। आपने तुरन्त आचार्य देव से निवेदन किया कि

"उस अल्पावधि मे भी आपश्री के व्याख्यानो का ही प्रभाव था, जिसके कारण त्याग, तपस्या, दान एव धर्म की ज्योति प्रज्वलित हुई थी जो अभी तक जाज्वल्यमान है।

"आज इन्दौर के नर-नारी लालायित है, उसी जिनवाणी को श्रवण करने के लिये, निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को जानने के लिये, ज्ञान-गगा मे अवगाहन करने के लिये, त्याग एव तपश्चर्या के रसास्वादन के लिये एव दृढ निश्चयी हैं सच्चे श्रमण की उपासना के लिये।

"अत पूज्यश्री से यह सघ सादर विनती करता है कि गुरुदेव आपश्री अपनी शिष्य-मण्डली सहित इन्दौर नगर मे पधारे एवं चातुर्मास कर हमे लाभान्वित करे। हमे अडिग विश्वास है कि आपश्री हमारी विनती को स्वीकार करेगे।"

इस विनती के पढते समय इन्दौर से आगत समस्त महानुभाव अपने-अपने स्थान पर शात खडे रहे। विनती-पत्र के वाचन के पश्चात् श्री वख्तावरमलजी साड एव श्री भोपराजजी ने बहुत ही भावभीनी विनती की। आये हुए अन्य सभी बन्धुओ ने आचार्यश्री से निवेदन किया कि आपश्री होली चातुर्मास पर चौमासा का निर्णय कर देते है, अत अब तो होली चातुर्मास भी निकल चुका है। अत अब आप इन्दौर चातुर्मास की स्वीकृति फरमावे।

इन्दौर श्री सघ अति उत्साह एव पूर्ण विश्वास के साथ लगभग ५० मिनट तक अपनी विनती को दोहराता रहा। इन्दौर श्री सघ का निवेदन था कि यदि आपश्री अभी स्वीकृति देने की स्थिति मे नही है, तो कुछ आश्वासन या सकेत ही हमे देवे ताकि हमारे हृदयो को उल्लास प्राप्त हो।

अत्यधिक आग्रह को देख आचार्यश्री ने अपने मुखारविन्द से अमृतमय वाणी मे फरमाया, "आपकी विनती मेरी झोली मे है और आगे जैसा समय पर बनेगा, वैसा ठीक रहेगा।"

साथ ही बाहर गॉव से पधारे हुए (जावरा, रतलाम, नागदा, मदसौर, धार, कानवन, ताल, बडावदा, छत्री, विरमावल, वखतगढ एव बदनावर से आये हुए) करीव तीन-चार सौ दर्शनार्थी भाई-वहनो ने अत्यन्त विनती की कि आचार्यश्री मालवा मे ही चातुर्मास की स्वीकृति फरमावे।

इन्दौर श्री सघ स्वीकृति के लिये आतुर होकर निवेदन कर रहा था। साथ मे मालवा के विभिन्न नगरो से आये हुए ३००-४०० बन्धुगण भी इन्दौर नगर की विनती के समर्थन मे आचार्यश्री से निवेदन कर रहे थे।

गई है तथा जो सामान्यतम शकाएँ उत्पन्न होती हैं वे तो आपश्री के दर्शन एव उपपात में बैठने मात्र से दूर हो जाती है। आपश्री का तपोतेज ही कुछ ऐसा है कि आगन्तुक सहज ही अभिभूत हो जाता है।

"आज तो मैं श्री चरणो में इसलिये उपस्थित हुआ हूँ कि आपने मुझे एव साथियो की जिज्ञासाओं के जिन दार्शनिक एव वैज्ञानिक शैली में समाधान दिये, क्या ऐसा कोई ग्रन्थ है, जिसके एक ही के अध्ययन से मुझे जैन-दर्शन का सर्वांगीण बोध हो जाए और तद्द्वारा मैं अन्य विचारकों को भी समाहित कर सकूँ ? क्योंकि जैसी भ्रान्तियाँ मेरे दिमाग में थी, वैसी अन्य अनेक वैदिक विद्वानो मे हो सकती है और उनका सटीक उत्तर देने के लिये किसी मौलिक ग्रन्थ का उपयोग अपेक्षित है।"

आचार्यश्री ने कुछ गम्भीर स्वर में कहा—"ऐसा कोई एक ही ग्रन्थ मेरी दृष्टि मे नही है, जिसमे जैन दर्शन के सूक्ष्म सिद्धान्तो को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे निरूपित किया गया हो। मैंने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, वह विभिन्न अध्ययनो एव कुछ अपने अनुभव के आधार पर किया है। हा, और कभी आपकी कुछ जिज्ञासाएँ हो तो आप नि सकोच पूछ सकते है।"

इस प्रकार कुछ औपचारिक चर्चा के पश्चात् वकील साहब एव उनके साथी अभिनन्दन एव आभार-प्रदर्शन पूर्वक विदा हो गये।

स्मरणीय है कि इन्दौर क्षेत्र के इस प्रवास काल की अवधि मे ही अर्थात् स० २०२० फाल्गुन कृष्णा १२ तथा फाल्गुन शुक्ला २ को क्रमश गगाशहर निवासी श्री तोलारामजी फलोदिया की धर्मपत्नी श्रीमती शान्ता बाई एव सेलुन्दा निवासी श्री सोभालालजी सोनी की धर्मपत्नी श्रीमती लीला बाई की दीक्षाएँ आचार्य देव की विशेष अनुमति के आधार पर क्रमश गगाशहर और सिरूम्भ मे महासतीजी श्री वल्लभकवरजी तथा महान् सेवाभाविनी महासतीजी श्री पेपकँवरजी, विदुषी श्री इन्द्रकँवरजी की सन्निधि मे सम्पन्न हुई।

इन्दौर चातुर्मास की विनती

इसी कालावधि मे [illegible]-प्रवास के तीसरे दिन इन्दौर का एक शिष्ट-मण्डल प्रतिष्ठित सुश्रावक श्री [illegible] साहब एव श्री [illegible] साहब के नेतृत्व मे इन्दौर चातुर्मास हेतु विनती लेकर उपस्थित हुआ और प्रार्थना के पश्चात् आग्रह करने लगा कि आपश्री का आगामी वर्षावास इन्दौर मे ही होना चाहिये। साथ ही श्री शान्तिलालजी बोहरा ने यह निवेदन किया कि उनकी भतीजी की दीक्षा लेने की प्रबल उत्कण्ठा है और उसके लिये वे सहर्ष अनुमति देने को तत्पर है। इस पर आपश्री अपनी स्वाभाविक हसी से

इस प्रकार भ्रान्तियो का उन्मूलन एव ज्ञान का सम्यक् प्रकाशन करते हुए, आपश्री ग्रामीण अचलों को पावन बनाते रहे। खाचरौद मे भी पॉच दिन तक जिनवाणी की भागीरथी प्रवाहित कर आपने नागदा जक्शन की ओर प्रस्थान किया।

भविष्य का संसूचन

नागदा-गमन के मार्गवर्ती गाँव मे रतलाम के लब्धप्रतिष्ठ सुज्ञ एव वयोवृद्ध अनुभवी श्रावक श्री नाथूलालजी सेठिया, जिन्होने पूर्वाचार्यो की अनन्य सेवा-आराधना की थी तथा जैन कान्फ्रेंस एव आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की अक्षुण्ण परम्परा के स्तम्भों मे माने जाते थे, उपस्थित हुए। बिहार मे साथ-साथ चलते हुए विचार-विमर्श के प्रसग पर सहसा उनके स्वर मुखरित हुए—"आचार्यश्री, मेरी अन्तरात्मा से पुन. ध्वनि उठ रही है कि आपश्री के द्वारा बहुत निकट भविष्य मे एक महान् जन-कल्याणकारी कार्य होगा। वह कार्य सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में समाज को एक महत्त्वपूर्ण देन के रूप में स्थापित होगा। यह बात मै किसी भावुक मन स्थिति से नही, अन्तरग की आवाज के आधार पर निवेदन कर रहा हूँ।"

आचार्यश्री ने सहज मुद्रा मे एक छोटा-सा उत्तर दिया—"आपकी भावना प्रशस्त है।" और मन-ही-मन विचार करने लगे, ये अनुभवी श्रावक है और इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग इन्होने कैसे किया। सम्भव है अपनी श्रद्धा के अतिरेक मे मनोबल बढाने हेतु कह गये हो। इस प्रकार सामान्य विचारो मे ही आपश्री उस विषय को टाल गये, किन्तु नागदा पहुँचने के तुरन्त बाद ही सेठियाजी के शब्द साकार हो उठे।

नागदा का पाँच दिन का प्रवास नागदा के इतिहास मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति का प्रतिष्ठापक रहा। आचार्यश्री के चामत्कारिक प्रवचनो से प्रभावित हो, अनेक जैन बन्धुओ ने धूम्रपान आदि दुर्व्यसनों का परित्याग किया तथा अनेक बन्धुओ ने प्रतिदिन धर्म स्थानक मे सामायिक करने की प्रतिज्ञा ली।

◆ ◆ ◆

उसी दिन मध्याह्न में कानवन के नवयुवकों ने एक सभा का आयोजन कर देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ (पंच महाव्रतधारी) और धर्म वीतराग प्रभु द्वारा भाषित पर सम्यक् श्रद्धा रखते हुए यथाशक्ति नैतिक व धार्मिक विकास करने हेतु एक संगठन बनाया और फिर आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर तमाखू, सिगरेट, भांग, परस्त्री गमन आदि अनेक बातों का त्याग किया और सामायिक आदि नित्य-नियम रखने की प्रतिज्ञा ली। श्री चम्पालालजी पवार ने सजोड़ शीलव्रत आराधना की एवं रात्रि को चौविहार रखने की प्रतिज्ञा ली।

जैनेतर युवावर्ग का आकर्षण

आचार्यश्री तीसरे प्रवचन के पश्चात् विहार का विचार कर रहे हैं, इसका आभास जब स्थानीय बन्धुओं को हुआ, तो उसी दिन प्रातःकाल व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् स्थानीय जैनेतर जनता ने एक स्वर से आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना की, "हे भगवन् ! कल के व्याख्यान की स्वीकृति अभी फरमा दीजिये।" तब आचार्यश्री ने फरमाया कि अभी अवसर थोड़ा है। यह सुनकर जैन-जैनेतर नवयुवक आचार्यश्री के पैर पकड़ कर बैठ गये और निवेदन करने लगे "जब तक कल के व्याख्यान की स्वीकृति न फरमावेंगे, हम यहाँ से नहीं उठेंगे।" करीब आधा घंटा तक समझाने पर भी यह कहते रहे कि कल का व्याख्यान और सुनेंगे। एक दिगम्बर जैन महिला ने तो अनशन तक कर दिया कि आचार्यश्री आज यहाँ से विहार कर जावेंगे और कल यहाँ प्रवचन नहीं देंगे, तो मैं आज अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी। अन्त में, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव को देखते हुए आचार्यश्री ने अगले प्रवचन हेतु स्वीकृति दी।

कानवन की धर्म-प्राण एवं बुद्धिजीवी जनता को अपने अध्यात्म-प्रवाही-प्रवचनों की वाग्धारा से सन्तृप्त कर एवं त्याग की अनवरत प्रज्वलित रहने वाली ज्योति जलाकर आपश्री ने चतुर्थ प्रवचन के पश्चात् वहाँ से प्रस्थान किया, किन्तु अन्यान्य क्षेत्रों के समान कानवन का शिक्षण संस्थान भी पीछे कहाँ रहने वाला था। ग्राम के बाहर पधारते ही विद्यालय परिसर के बाहर स्थानीय शिक्षक वर्ग ने आचार्यश्री का मार्ग रोक लिया और आग्रह करने लगा कि हमारे छात्रों को उद्बोधित किये बिना आपश्री आगे नहीं बढ़ सकते।

समय की कमी होते हुए भी आचार्यश्री का करुणापूर्ण हृदय द्रवित हो गया और विहार हेतु खड़े हुए समस्त ग्राम्य जनता, शिक्षक वर्ग एवं छात्रों को उद्बोधित करते हुए मर्मस्पर्शी प्रवचन फरमाया।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में विद्यार्थियों, शिक्षकों के साथ ही अभिभावकों को भी अपने अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग किया तथा विद्यार्थियों को

मार्गवर्ती गांवो को अध्यात्म-प्रवाही-धारा से पावन करते हुए आपश्री खिरमाचल पधारे। खिरमाचल मे जावरा संघ के शिष्ट-मण्डल ने आगामी चातुर्मास जावरा में करने हेतु विनती प्रस्तुत की। आचार्यश्री ने अपनी पद्धति के अनुसार विनती को अपनी झोली में लेते हुए फरमाया कि समय पर क्या स्पर्शना बनती है, कहा नही जा सकता।

इसी प्रकार मार्गवर्ती गावो मे धर्मोद्योत की अभूतपूर्व लहर प्रसृत करते हुए आपश्री का स्वाचरोद पदार्पण हुआ। मार्मिक प्रवचनो के प्रभाव से स्वाचरोद की जनता त्याग-मार्ग मे डुबकियाँ लगाने लगी।

स्वाचरोद मे इन्दौर के १५-२० प्रमुख सज्जनो का एक शिष्टमण्डल पुन. चातुर्मास की विनती लेकर उपस्थित हुआ। प्रवचन-समाप्ति पर इन्दौर संघ की ओर से श्री शान्तिलालजी ललवानी ने निम्नलिखित शब्दो मे विनती प्रस्तुत की "बाल ब्रह्मचारी, चारित्र-चूडामणि, परम पूज्य, पण्डित-रत्न, शात क्रांति के जन्मदाता, आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा०, महान् सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म० सा०, श्री विरदीचदजी म० सा० आदि सभी महान् सतो के चरण-कमलो मे यह विनती है—

"स्वाचरोद नगर मे जो धर्म से ओतप्रोत वातावरण आज के इस महान् दिवस पर निर्मित हुआ है, उससे यहा पर उपस्थित प्रत्येक मानव-हृदय मे धर्म के प्रति एक अनोखा आकर्षण उत्पन्न हुआ दिखाई दे रहा है।

"पूज्य गुरुदेव मालवा के नगर रतलाम मे अपना गौरवमय ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न कर, ठेंगर प्रदेश को पावन करने धार तथा इन्दौर नगर के आस-पास ग्रामानुग्राम विचरते हुए, अज्ञानता के अधकार को दूर कर निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का शंखनाद करते हुए, आज स्वाचरोद नगर मे पधारे हुए है। यहाँ उपस्थित जन-समुदाय आपका हार्दिक अभिनन्दन करता है।

"आपश्री के ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं वाणी से प्रभावित हो इन्दौर के धर्म-प्रेमी बन्धुगण आपके चातुर्मास की विनती हेतु उपस्थित हुए है।

"आपके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी को हृदयगम कर हम सबके जीवन को कृतार्थ मानते है।

परम पूज्य गुरुदेव, आपश्री गत दिनों पूर्व इन्दौर नगर मे पधारे थे और [illegible] इन्दौर किया [illegible] निवासी आपश्री के मुखारविन्द से [illegible] हुई उसी प्रकार इन्दौर के सभी जैन-जैनेतर भाई-बहनो ने अपने हृदय में धारण किया।

इतने मे कुछ सजग होकर स्वय श्री सीतारामजी ने ही बात को आगे बढाते हुए कहा—"गुरुदेव, अन्धो का प्रमुख यदि अन्धा ही हो तो उसकी क्या प्रमुखता है ? इस प्रमुखता-वमुखता को तो जाने दीजिये। आप हमारी जाति का उद्धार कीजिये। आप मे महान् अध्यात्म शक्ति है और आप हमारा उद्धार करने मे सक्षम है। यह मेरी आत्मा की पुकार है। आपको यह सब करना होगा, जो अछूतोद्धार के विधान बनाकर लाख प्रयास के उपरान्त भी सरकार नही कर सकी।"

"आपके समाज की वर्तमान स्थिति क्या है ?" आचार्य प्रवर ने विषय को गम्भीर बनाते हुए प्रश्न किया।

"भगवन् ! इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, जावरा, मन्दसौर आदि शहरो के आस-पास मालव प्रान्त के सैकडो छोटे-बडे गावो मे हमारा समाज फैला हुआ है। एक लाख से भी अधिक सख्या है गुजराती बलाई समाज की, किन्तु आज हमारी (समाज) जाति छिन्न-भिन्न हो रही है। हिन्दू कहलाने वाले उच्च जाति के लोग हमे अछूत कहकर हमसे घृणा करते है। गाधीजी ने अछूतोद्धार का कार्य किया, किन्तु ये ऊँचे कहलाने वाले लोग मानने को कहाँ तैयार है ? पद-पद पर हमारा तिरस्कार एव अपमान होता है और इसका जो परिणाम हो रहा है वह है हजारो व्यक्तियो का ईसाई, बाहल्ला एव मुसलमान बन जाना। हिन्दुत्व की उच्च सभ्यता मे जीने वालो का हमारे साथ यही तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार रहा, तो न जाने हमारा सम्पूर्ण समाज कहाँ से कहाँ चला जायेगा। हमारे हजारो बन्धु गोरक्षक से गोभक्षक बन गये है और निरन्तर बनते जा रहे है।

"गुरुदेव, अब आप चाहे तो हमे अपना कर इस अछूत के कलक से बचा सकते है। क्या हमे मानवीय समता के साथ जीने का अधिकार नही है ? हम क्या करे, आप ही मार्ग-दर्शन दे। और कोई व्यक्ति हमे आश्वस्त कर ऊपर उठाने वाला नही है। हा, कभी-कभी कोई नेताजी आ जाते है, और वोट पाने के लिए लम्बे-चौडे भाषण देकर, कुछ आश्वस्त कर चले जाते है। पर कुर्सी मिलने पर फिर उन्हे हम दीनो एव अछूतो से मिलने का समय कहाँ ? भगवन् ! अब आप जैसे त्यागी महापुरुषो की शरण मे आये है। अब हमारा उद्धार होना ही चाहिये।" कहते-कहते सीतारामजी गद्गद् हो गये।

आचार्य देव ने अति गम्भीर, किन्तु मधुर स्वर मे उन्हे आश्वस्त करते हुए कहा—"आप इतने हताश क्यो हो रहे है ? जो स्वय उठने और आगे बढने को तत्पर है, उनके लिये प्रकृति के हजार-हजार अनुदान उपस्थित हैं। व्यक्ति स्वयं पुरुषार्थी और सजग हो, तो सहयोग उसके चारो ओर बरसते है। आपको

अनन्य भक्ति एवं आग्रह को देख आचार्यश्री ने फरमाया कि "उज्जैन पहुँचने पर मैं यदि कहीं की चातुर्मास की विनती स्वीकार करूँगा तो इन्दौर श्री संघ की उपस्थिति में ही स्वीकार करूँगा।"

पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से ये शब्द निकलते ही, उपस्थित जन-समुदाय के मन हर्ष से खिल उठे और आचार्यश्री की जय-जयकार से आकाश गूंज उठा।

भ्रामक प्रचारकों को सचोट उत्तर

इधर के प्रायः सभी क्षेत्रों में कुछ अन्य साम्प्रदायिक विघ्न-सन्तोषियों ने पग-पग पर आचार्यश्री के विरोध में जनता को भ्रमित करने का प्रयास किया। उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर लोगों को प्रेरित किया था कि आचार्यश्री के आगमन पर स्वागत न करें तथा आवास आदि की सुविधाएँ न दी जायँ।

किन्तु गाँवों में भी सामान्य सनातनिक जनता के साथ कुछ बुद्धिजीवी स्वतन्त्र विचारक भी रहते हैं। वे एकांगी निर्णय को स्वीकार नहीं करते। ऐसे ही प्रमुख सज्जनों ने आगन्तुक भ्रामक प्रचारकों को सचोट एवं युक्ति-संगत उत्तर देते हुए कहा "भाई साहब, साम्प्रदायिक विद्वेष का प्रयास मत कीजिये। आप यह भी सोचिये कि किसी के पास गये बिना हम निर्णय कैसे कर सकते हैं कि वे अच्छे हैं अथवा बुरे हैं. अतः हम जायेंगे, प्रवचन सुनेंगे और हमें उनमें साधुता मिलेगी, तो हम उन्हें वन्दन भी करेंगे।

"हमारा सिद्धान्त साम्प्रदायिकता से नहीं, उच्च साधना से सम्बद्ध है। अतः हमें जो भी अच्छे मर्यादापालक साधु मिलेंगे, हम उनका स्वागत-सत्कार करेंगे एवं व्याख्यान वाणी सुनेंगे चाहे वे श्रमण-संघ से बाहर हों या अन्दर।

'हमें भले ही शास्त्रों का ज्ञान न हो, लेकिन मोटे-मोटे रूप में इतना तो हम भी समझते हैं कि जो कंचन व कामिनी के सर्वथा त्यागी हैं, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं, वे तो हमारे पूज्य हो सकते हैं। हम केवल वेशपूजक नहीं हैं। जहाँ अलौकिक प्रवृत्तियों के सद्गुण [illegible] की भावना है वहाँ हम अपना श्रद्धा-भाव अर्पित नहीं कर सकते? हम यह भली प्रकार समझते हैं कि चरित्र की आधार-शिला पर ही [illegible] होने से हमारा समाज आगे बढ़ सकता है।'

इस प्रकार के भ्रामक प्रचार के लिए कुछ व्यक्तियों का [illegible] किन्तु [illegible] आचार्यश्री की [illegible] सात्त्विक [illegible]

समाज मे वातावरण बनाइये और उन्हे दुर्व्यसनो से मुक्त होने की प्रेरणा दीजिये और उससे भी पूर्व आप जो यहाँ उपस्थित है, वे तो दुर्व्यसनो के परित्याग का श्रीगणेश कर ही दे।"

आचार्य देव के मर्मस्पर्शी शब्दो को सुनकर सीतारामजी एव उनके साथी खडे गये। उन्होने निवेदन किया—"गुरुदेव दुर्व्यसनो का हमे सक्षिप्त अर्थ समझा कर उनका त्याग करवा दीजिये।"

धर्मपाल प्रवृत्ति का श्रीगणेश

"देखिये, वैसे जीवन मे कई प्रकार के व्यसन होते है। उनमे बहुत से दुर्व्यसन की कोटि मे आते है, किन्तु सात प्रकार के दुर्व्यसन ऐसे है, जिनके कारण व्यक्ति मानवीय धरातल से भी नीचे उतर जाता है। अत उन्हे महा-दुर्व्यसन भी कहा जा सकता है। जैनाचार्यों ने सप्त कुव्यसन के त्याग को जैन धर्म स्वीकार करने के पूर्व शर्त के रूप मे माना है। इन सप्त कुव्यसनो का परित्याग करने वाला ही जैन कहलाने का अधिकारी है। वे सप्त कुव्यसन निम्न रूप मे माने जाते है —

१ जुआ, २ मास, ३. शराब, ४. चोरी,

५ परस्त्रीगमन, ६ वैश्यागमन एव ७. शिकार।

"इसके अतिरिक्त धूमपान आदि कुव्यसन ऐसे है, जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते है, किन्तु उपर्युक्त सात दुर्व्यसन तो पूरे जीवन को नष्टप्राय कर देते है।

"आप लोग आर्थिक दृष्टि से इतने विपन्न अवस्था मे क्यो रहते हैं ? इसके कारणो की यदि खोज करेगे, तो ज्ञात होगा कि ये दुर्व्यसन ही आर्थिक दुर्व्यवस्था के मुख्य कारण है। आप लोग दिन भर परिश्रम कर जो कुछ कमाते है, वह सन्ध्या को शराब, मास एव जुआ आदि को भेट चढ जाता है। फिर बताइये, आपकी सामाजिक स्थिति सुदृढ कैसे बनेगी ? अत जब तक आप एव आपका समाज, इन दुर्व्यसनो से मुक्त नही हो जाता, सस्कारयुक्त जीवन जीने को तैयार नही हो पाता, ऊँचा नही उठ सकता है और न कोई धर्म अपना सकता है।

"यदि आपको अपना सामाजिक उत्थान करना है और आत्म-कल्याण के मार्ग रूप धर्म को प्राप्त करना है, तो इन दुर्व्यसनो से अपने आपको मुक्त करना होगा। अब बोलिये ! यदि आप प्रसन्नतापूर्वक चाहे तो इन दुर्व्यसनो

इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ

हम जैन-इतिहास के पृष्ठो पर पढते है—"अमुक सूरीजी ने अथवा अमुक दादा गुरुजी ने इतने हजार जैनी बनाए", किन्तु इस अध्यात्म योगी ने विगत पन्द्रह वर्ष की अवधि मे कितने दलित एवं पतित कहलाने वाले मानवो को मानवता की गरिमापूर्ण स्थिति पर प्रतिष्ठित करने का युगान्तरकारी कार्य कर दिखाया है, यह अपने आपमे अनुपम और अद्वितीय है। इसका मूल्याकन आगे आने वाला बुद्धिवादी समाज ही कर पाएगा।

मानव-कल्याण की इस युगान्तरकारी प्रवृत्ति का प्रारम्भ भले ही किसी महानदी के उद्गम की तरह प्रारम्भ मे लघुतम जल-प्रपात-सा रहा हो, उसका वार्तमानिक विस्तृत रूप किसी महानदी से कम नही है। आज सत्तर-अस्सी हजार के लगभग दलित कहलाने वाले मानव-हृदयो मे एक क्रान्तिकारी जादू-सा परिवर्तन हो चुका है। उच्च समाज से जुगुप्सित वे लोग आज उल्लास से भर उठे है। उनके हृदय परिवर्तन के साथ ही उनका समूचा जीवन-क्रम ही परिवर्तित हो गया है। जिन हाथो मे सदा तीक्ष्ण छुरी रहती थी, उन हाथो मे आज माला एव पूजनी आदि धार्मिक उपकरण अथवा कृषि-औजार दिखाई देते है। हिसा की बर्बरता एव शराब के पागलपन से अब उन्हे मुक्ति मिल चुकी है। इन सब परिवर्तनो का फल है आर्थिक सम्पन्नता का विकास, जो उन लोगो के जीवन मे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

इस प्रकार आचार्य देव के परम पूत कर-कमलो द्वारा अछूतोद्धार का एक महान् क्रान्तिकारी कार्य आरम्भ हुआ, जो इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो में अंकित होगा। अस्तु, आचार्य देव ने सीतारामजी एव उनके कुछ साथियों के हृदय को बदला और साथ ही उनके जीवन-क्रम को भी। अब वे नीच नही, उच्च कहलाने के अधिकारी बने और अपने आपको गौरवान्वित मानने लगे। किन्तु वे केवल अपने तक ही सीमित नही रहे। उन्हे तो पूरे समाज मे क्रातिकारी परिवर्तन लाना था। अत. अब उनका मिशन आगे बढा और आचार्य देव की जय-जयकार से दिग्मण्डल को गुञ्जित करते हुए वे सीधे अपने मोहल्ले मे गए। उन्होंने अपने जाति-बन्धुओ को एकत्रित कर कुछ समझाया और घटा भर पश्चात् लगभग तीस व्यक्तियो के साथ पुन आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित

सामाजिक उत्क्रांति की पृष्ठभूमि

नागदा प्रवास की इसी वेला मे जीवन-निर्माणकारी, संस्कार-संजीवनी एव हृदय-परिवर्तनकारी सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ जो एक वट वृक्ष के बीज के रूप मे थी, किन्तु आज वह एक हरे-भरे, गगनचुम्बी महत्वशाली विशाल वृक्ष का रूप ले चुकी है ।

हुआ यह कि नागदा निवासी बलाई समाज के प्रमुख, कर्म से व्यवसायी, श्री सीतारामजी बलाई, आचार्यश्री के प्रवचन मे उपस्थित हुए । आचार्य देव का व्यक्तित्व एव प्रवचन उनकी अन्तश्चेतना को छू गया । उन्हे लगा कि बस यही महापुरुष हमारा एव हमारे समाज का उद्धारक एव त्राता हो सकता है । इन्ही की पुनीत कृपा से हमे जघन्यता से त्राण मिल सकेगा । हमे उन्ही की पावन शरण गहनी होगी । इन विचारो से मन को आन्दोलित करते हुए वे प्रवचन-समापन पर चले गये और अपने कुछ जाति बन्धुओ से चर्चा कर उनके साथ मध्याह्न-वेला मे पुन आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुए ।

आचार्यश्री के चरणो मे अपनी टोपी रखते हुए श्री सीतारामजी ने विनम्र निवेदन किया—"क्या आपश्री जैसे महापुरुषो के रहते हुए और जैन धर्म के इतने उदार सिद्धान्तो के द्वारा भी हमारा उद्धार नही होगा ? गुरुदेव ! आपने हमारा उद्धार नही किया तो फिर हमारा कभी उद्धार होने वाला नही है । मुझे पूरा विश्वास है कि आपश्री के उपदेश एव आशीर्वाद से हमारी हमारी जाति का उद्धार होगा ।"

आचार्यश्री सहसा उनके अभिव्यक्त भावो पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहने लगे – "आप सही में कहना क्या चाह रहे है ? कौन-सी जाति है आपकी और उनके उद्धार की क्या बात है ? आपका परिचय ?" समीप बैठे श्रावक बन्धुओ की ओर उन्मुख होते हुए आचार्यश्री ने पूछा ।

एक श्रावक ने कहा, "गुरुदेव इनका नाम श्री सीतारामजी है । ये स्थानीय गुजराती बलाई जाति के प्रमुख है ।

आचार्य देव ने मर्यादित भाषा मे स्वीकृति के स्वरों मे कहा—"यथावसर आपकी विनती मेरे ध्यान मे है" और मार्गवर्ती ग्राम की जानकारी लेकर आचार्यश्री ने दूसरे दिन मध्याह्न को विहार कर दिया। नागदा से चार मील पर स्थित वनबना पधारे और रात्रि विश्राम एक छोटे से मदिर मे किया। वनबना मे दो जैन परिवारो के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण तथा कुलम्बी लोगो के परिवार भी थे और गुराडिया मे चू कि शाकाहारी परिवार प्राय: नहीवत् थे, अत: बनबना से गुराडिया जाकर पुन. आहार-पानी हेतु बनबना ही आना था। अत: दूसरे दिन प्रात. आपश्री गुराडिया पधारे। गुराडिया के निकट पहुँचने के समाचार पाते ही श्री सीतारामजी के नेतृत्व मे गुराडिया के लगभग पचास-साठ भाई-वहिने २-३ फर्लांग सामने उपस्थित हुए तथा "जैन धर्म की जय, आचार्यश्री की जय" आदि नारो के साथ आचार्यश्री का ग्राम मे पदार्पण कराया।

तीर्थ भूमि गुराडिया

गुराडिया-प्रवेश के तुरन्त पश्चात् ही स्थानीय सम्पूर्ण बलाई समाज के भाई-बहिन एकत्रित हो गए। आचार्य प्रवर ने अत्यन्त सुबोध भाषा मे हिसा-अहिसा विचार एव दुर्व्यसनो की बुराई पर सारगर्भित प्रवचन दिया। चू कि प्रवचन ग्राम्यजन योग्य सरल एव सरस भाषा में दिया गया था, अत. वह प्राय· सभी ग्रामीण भावुक हृदयो को छू गया। परिणामस्वरूप उपस्थित ८२ व्यक्तियो ने प्रवचन-समापन के पश्चात् सप्त कुव्यसनो का परित्याग कर, जैन धर्म स्वीकार किया।

प्रवचन समापन एव त्याग-प्रत्याख्यानो के पश्चात् आहार-पानी हे आचार्यश्री अपनी शिष्य-मण्डली सहित पुन· बनबना पधारे।

चू कि दूसरे दिन ही गुरडिया के प्रमुख बन्धु श्री गोवाजी वलाई क सुपुत्री कु० लीलावाई के विवाह का प्रसग था और इस प्रसग पर वाहर सैकड़ो व्यक्ति आने वाले थे, अत रात्रि-विश्राम बनबना मे ही कर दूसरे दि पुन गुराडिया पधारे। वहॉ विवाह के प्रसग पर आगत अतिथियो हेतु ए पाण्डाल वना हुआ था। उसके सामने ही एक कच्चे छप्पर का वराण्डा था आचार्यश्री अपने शिष्य-समुदाय के साथ वराण्डे मे बैठ गए और आगत अतिथियो से कुछ चर्चा प्रारम्भ की। श्रोताओ की सख्या अधिक हो जाने पर प्रभु धर्मनाथ की प्रार्थना के माध्यम से अपना ओजस्वी प्रवचन प्रारम्भ कर दिया।

प्रवचन धारा-प्रवाही होते हुए भी सरल-प्राँजल भाषा मे होने के कारण सहज बोधगम्य था। श्रोताओ की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य देव

किसी धर्म अथवा राजनैतिक पार्टी ने नहीं अपनाया पर निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जैन धर्म के द्वार सबके लिये खुले हुए हैं। वहाँ जातीयता का कोई बन्धन नहीं है। जैन धर्म, जन्म से नहीं कर्म से जाति स्वीकार करता है। भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा है

"कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तियो।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥"

(उत्त० सूत्र २५–३३)

"अर्थात् व्यक्ति अपने कर्म से ही क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र बनता है जन्म से नहीं। एक व्यक्ति ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी शूद्र कर्म कर रहा है, तो उसे ब्राह्मण कहलाने का कोई अधिकार नहीं है और इसके विपरीत कोई शूद्र कुलोत्पन्न होकर भी ब्राह्मणत्व के उच्च संस्कारों से सम्पन्न है, तो वह ब्राह्मण है।

"जैन धर्म में जन्म की नहीं, कर्म की महत्ता मानी जाती है। कोई भी व्यक्ति अपने कर्म अर्थात् आचरण को पवित्र एवं उच्च आदर्शमय बनाकर महान् बन सकता है। उसमें उसकी जन्मना जाति बाधक नहीं बनती। आपकी जाति के प्रति लोगों में जो घृणा का भाव है उसका मुख्य कारण है आप लोगों के जीवनगत आचरणों में दुर्व्यसनों का समावेश। यदि आपकी जाति एक सामाजिक क्रान्ति के साथ दुर्व्यसनों से मुक्त हो जाय, तो धार्मिक लाभ के साथ-साथ आप लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा भी निश्चित रूप से बढ़ेगी और आप क्रमशः उच्च बन सकेंगे।"

गुरुदेव! यही मार्ग [illegible] तो हम आप से चाह रहे हैं। हम कैसे आज [illegible] सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात करें? आप ही इसके लिए [illegible] हमारी जाति का [illegible]। [illegible] आपका [illegible] चाहिए। [illegible] ने [illegible] से ही विनम्र प्रार्थना की।

[illegible]

बलाई से धर्मपाल

इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात् श्री सीतारामजी आदि कुछ प्रमुख व्यक्तियो ने निवेदन किया—"भगवन्, यह ठीक है कि हमने दुर्व्यसनो का परित्याग किया और जैन बन गए, किन्तु हमारे नाम के पीछे जो बलाई का जातिबोधक टीका लगा हुआ है, वह तो हमे घृणित बनाये रखेगा। लोग हमे बलाई कहकर पुकारेगे जो कि एक हीन-भावना का द्योतक बन गया है। अत आप कृपा कर हमारे जातिवाचक शब्द को भी परिवर्तित कर दे।"

आचार्य देव ने मधुर स्मिति के साथ कहा—"आपका कथन यथार्थ है। जब आप लोगो ने सभी घृणित कार्य छोड़ दिये है, तो आपका जातिवाचक शब्द जो एक घृणा का पर्याय बन गया है, भी बदल जाना चाहिये।

"अभी मैने जिस प्रार्थना का उच्चारण आपके समक्ष किया, वह धर्मनाथ प्रभु की प्रार्थना है। धर्मनाथ भगवान् जैन-धर्म के मान्य चौबीस तीर्थकरो मे पन्द्रहवे तीर्थकर है। धर्मनाथ प्रभु ने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर वीतरागता प्राप्त कर ली और हमारी धर्म-साधना का उद्देश्य भी राग-द्वेष पर विजय पाना ही है आप लोगो ने दुर्व्यसनो का त्याग भी इसीलिये किया है कि आपके राग-द्वेष समाप्त हो और जीवन मे समता-भाव बढे और वह होगा धर्म की आराधना के द्वारा ही। अत मै सोचता हूँ धर्मनाथ प्रभु की प्रार्थना के माध्यम से धर्म की योग्यता अथवा पात्रता आपके लिये तारक हो रही है, तो क्यो नही गुणनिष्पन्न होने से आपको "धर्मपाल" सम्बोधित किया जाय। यद्यपि यह शब्द प्रचलित जातीयता का द्योतक नही होगा, तथापि गुण निष्पन्न होने से आप अपनी पुरानी "बलाई" जाति के स्थान पर भी इसका प्रयोग कर सकेंगे। इस भिन्न नामकरण के कारण आपका वह शब्द भी हट जायेगा और एक सामूहिक वायु-मण्डल निर्मित होने मे भी इससे बल मिलेगा। इसमे एक बात विशेष समझ लेने की है कि जैसे जैन समाज मे ओसवाल, अग्रवाल, पोरवाल, पल्लीवाल आदि जातियो के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण होने के बावजूद भी धर्म सबका एक ही है, ठीक इसी प्रकार आपका सम्पूर्ण वर्ग "धर्मपाल" के नाम से कहा जायेगा। इस प्रकार यदि एक ही शब्द में आप लोगो का अपना परिचय देना हो, तो आप अपने आपको "धर्मपाल जैन" कह सकेंगे और इस प्रकार आपको

का आपको परित्याग करना पड़े जैन धर्म की पुनीत छाया में संरक्षण किया जा सकता है।'

आचार्य देव की कृपा भरी अमृत धारा को सुनकर सीतारामजी एवं उनके साथी गद्गद हो गये और निवेदन किया—"गुरुदेव ! आज से पूर्व जो करने को कुछ किया, सो किया किन्तु आज से आपश्री हमें प्रतिज्ञा करवा दीजिये। आज से हम इन सभी दुर्व्यसनों से सदा दूर रहेंगे। अपने जीवन को सम्मानित करने का प्रयास करेंगे। आपश्री हमें गुरु-मंत्र सुनाकर जैन-धर्म में प्रवेश दें व हम उसके लिये भी पूर्ण रूप से तैयार हैं।"

आचार्यश्री ने उन्हें बोध और मार्ग-दर्शन देने के पश्चात् 'सम्यक्त्व मंत्र' पाठ द्वारा जैन धर्म में दीक्षित किया और यहीं से शुभारम्भ होता है, सामाजिक क्रान्ति का।

• • •

बलाई से धर्मपाल

इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात् श्री सीतारामजी आदि कुछ प्रमुख व्यक्तियो ने निवेदन किया—"भगवन्, यह ठीक है कि हमने दुर्व्यसनो का परित्याग किया और जैन बन गए, किन्तु हमारे नाम के पीछे जो बलाई का जाति-बोधक टीका लगा हुआ है, वह तो हमे घृणित बनाये रखेगा। लोग हमे बलाई कहकर पुकारेगे जो कि एक हीन-भावना का द्योतक बन गया है। अतः आप कृपा कर हमारे जातिवाचक शब्द को भी परिवर्तित कर दे।"

आचार्य देव ने मधुर स्मिति के साथ कहा—"आपका कथन यथार्थ है। जब आप लोगो ने सभी घृणित कार्य छोड दिये है, तो आपका जातिवाचक शब्द जो एक घृणा का पर्याय बन गया है, भी बदल जाना चाहिये।

"अभी मैने जिस प्रार्थना का उच्चारण आपके समक्ष किया, वह धर्मनाथ प्रभु की प्रार्थना है। धर्मनाथ भगवान् जैन-धर्म के मान्य चौबीस तीर्थकरो मे पन्द्रहवे तीर्थंकर है। धर्मनाथ प्रभु ने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर वीतरागता प्राप्त कर ली और हमारी धर्म-साधना का उद्देश्य भी राग-द्वेष पर विजय पाना ही है आप लोगो ने दुर्व्यसनो का त्याग भी इसीलिये किया है कि आपके राग-द्वेष समाप्त हों और जीवन मे समता-भाव बढे और वह होगा धर्म की आराधना के द्वारा ही। अत मैं सोचता हूँ धर्मनाथ प्रभु की प्रार्थना के माध्यम से धर्म की योग्यता अथवा पात्रता आपके लिये तारक हो रही है, तो क्यो नही गुणनिष्पन्न होने से आपको "धर्मपाल" सम्बोधित किया जाय। यद्यपि यह शब्द प्रचलित जातीयता का द्योतक नही होगा, तथापि गुण निष्पन्न होने से आप अपनी पुरानी "बलाई" जाति के स्थान पर भी इसका प्रयोग कर सकेंगे। इस भिन्न नामकरण के कारण आपका वह शब्द भी हट जायेगा और एक सामूहिक वायु-मण्डल निर्मित होने मे भी इससे बल मिलेगा। इसमे एक बात विशेष समझ लेने की है कि जैसे जैन समाज मे ओसवाल, अग्रवाल, पोरवाल, पल्लीवाल आदि जातियो के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण होने के बावजूद भी धर्म सबका एक ही है, ठीक इसी प्रकार आपका सम्पूर्ण वर्ग "धर्मपाल" के नाम से कहा जायेगा। इस प्रकार यदि एक ही शब्द में आप लोगो का अपना परिचय देना हो, तो आप अपने आपको "धर्मपाल जैन" कह सकेंगे और इस प्रकार आपको

[illegible] किया। "भगवन् [illegible] भी [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] के साथ [illegible] दीजिए।

[illegible] के [illegible] के विषय में [illegible] [illegible] के प्रति [illegible] [illegible]।

[illegible] आज [illegible] [illegible] [illegible] के साथ [illegible] [illegible]।

[illegible] ग्राम [illegible] के [illegible] और [illegible] [illegible] प्रारम्भ किया है, [illegible] के लिए [illegible]। [illegible] [illegible]।

[illegible] के साथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

इस प्रकार नागदा के निकटवर्ती क्षेत्रो में ही करीब १५०० परिवार अर्थात् ८-१० हजार मानव हृदयो मे राक्षसी दारुणता के स्थान पर मानवीय कोमलता को प्रतिष्ठत कर एक अभूतपूर्व जादू भरे अभियान का सचालन करते हुए आपश्री गुराड़िया से पुन· नागदा एव नागदा से बडखेडा होते हुए बडावदा पधारे। बडावदा मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति हुई। यही जावरा सघ उपस्थित होकर जावरा क्षेत्र को पावन करने की एव आगामी वर्षावास जावरा मे ही करने की साग्रह विनती करने लगा। विनती पत्र सघ प्रमुख श्री राजमलजी पगारिया ने प्रचवन मे पढकर सुनाया, जो निम्न है—

"परम श्रद्धेय, बाल ब्रह्मचारी, चारित्र चूडामणि, शास्त्र विशारद, आचार्य प्रवर, पूज्य श्री नानालालजी म० सा०, महान् सेवा भावी मुनि श्री इन्द्रमलजी म० सा० आदि मुनिगण के चरणो मे सविनय सादर विनती है।

"आचार्यश्री रतलाम नगर मे अपना ऐतिहासिक प्रथम चातुर्मास पूर्ण करके मालव प्रदेश मे ग्राम-ग्राम विचरते हुए हमारे जावरा क्षेत्र के निकटवर्ती गाव बडावदा मे पधारे, यह हमारा परम सौभाग्य है।

"जावरा नगर का श्री सघ गुरुदेव आचार्य प्रवर के चरणो मे यहाँ उपस्थित है। आचार्य प्रवर जावरा के समीप सिर्फ पाच कोस की दूरी पर विराजमान है। ऐसी हालत मे जावरा क्षेत्र आचार्यश्री के पदार्पण से वचित रह जाय, यह कल्पना करना भी हमारे लिये असभव है।

"हमे आशा ही नही, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आचार्यश्री जावरा नगर मे पधार कर अपनी अमृतवाणी और आध्यात्मिक पीयूष धारा से हमे पावन करने का अनुग्रह फरमाये।

"आचार्यश्रीजी की सेवा मे हमारी सशक्त शब्दो मे यह भी प्रार्थना है कि आगामी चातुर्मास जावरा नगर मे करने की स्वीकृति प्रदान कर हमे इस सेवा का लाभ प्रदान करने की कृपा करे और इस समय शेष काल की विनती पर ध्यान देकर स्वीकृति प्रदान करावे।"

विनती के उत्तर मे आचार्यश्री ने फरमाया कि आपकी धर्म भावना अच्छी है, लेकिन अभी उधर विहार करने जैसी स्थिति मे नही हूँ।

बडावदा से मार्गवर्ती छोटे-छोटे गाँवो को पावन करते हुए आचार्य देव लोद पधारे। धर्मपाल प्रवृत्ति की लहर का गुराडिया मे आगत ७० ग्रामो के सदस्यो के प्रयत्न से आस-पास के सभी क्षेत्रो मे प्रसारण हो चुका था। आचार्य देव का जहाँ भी पदार्पण होता, निकटवर्ती ग्रामो के बलाई बन्धु अपने आप एकत्रित हो जाते और सामूहिक उद्बोधन प्राप्त कर दुर्व्यसनो से मुक्त हो

[illegible]

[illegible]

[illegible]

• • •

की महान् सेवा करते हुए स्वय भगवान् महावीर के चरणो में जाकर सयम अगीकार किया। महान् तपस्वी परम पूज्य पण्डित रत्न शाति के दाता श्री सूरजमलजी म० सा०, जो कि रतलाम नगर मे विराजित है, इसी नगरी दशपुर की ही देन है।

"गतवर्ष इसी नगरी के समीप पिपल्या मण्डी में, आपके पधारने से सारा क्षेत्र धन्य हुआ व देश के कोने-कोने से विशाल सख्या मे जनता ने आकर आपके मुखारविन्द से निकली अमृत वाणी को सुना व दर्शन कर नेत्र पवित्र किये व भगवान् महावीर का-सा समोसरण देखा। हृदय-पटल पर वही अलौकिक दृश्य अकित हो गया। उसे कभी भी भुलाया नही जा सकता और ऐसे ही अवसर को बार-बार देखने के लिये ये आँखे लालायित हो रही है।

"परम पूज्य गुरुदेव !

"हमारी आशाओ को लक्ष्य मे लखकर, दशपुर नगर के धर्म-प्रेमी बन्धुओ की यह विनती स्वीकार करेगे।

"जिस नगर की विनती बहुत पूर्व से पूज्यश्री के पास अग्रिम रूप मे थी, वह विनती पुन. आपश्री की सेवा मे प्रस्तुत है एव आज वह समय उपस्थित है कि पूज्य गुरुदेव आपश्री अपनी शिष्य-मण्डली सहित इस ऐतिहासिक नगर दशपुर मे पधारे एव चातुर्मास कर हमे लाभान्वित करे।

"हमे अटूट विश्वास है कि आपश्री हमारी प्रार्थना भरी विनती को स्वीकार करेगे।"

इसी प्रकार ताल मे कुछ धर्मपाल बन्धुओ ने आचार्य देव से निवेदन किया कि यहाँ से चार मील दूर आक्या ग्राम है। वहाँ एक मृत्यु भोज के प्रसग पर समीप व कुछ दूरवर्ती ग्रामो से हजारो बलाई बन्धु एकत्रित होने वाले हैं। अत आपश्री इस अवसर पर वहाँ पधारे तो हमे विश्वास है कि वहाँ एकत्रित होने वाले हजारो व्यक्ति आपश्री की हृदयस्पर्शी जादू भरी वाणी से लाभान्वित हो अपने को धर्मपाल के रूप मे परिवर्तित कर सकेगे।

करुणा के निर्झर

दलितो के प्रति करुणापूत आचार्य देव ने अपनी शिष्य-मण्डली के साथ सन्ध्या तीन बजे ही आक्या जाने हेतु ताल से प्रस्थान कर दिया। वहाँ रात्रि-विश्राम एक वैष्णव मदिर मे किया और प्रात: सूर्योदय के लगभग आधे घटे के पश्चात् सैकडो की सख्या मे एकत्रित बलाई समाज के लोगो के समक्ष खुले मैदान मे आचार्य देव का मर्मस्पर्शी एव लक्ष्यग्राही प्रभावक प्रवचन हुआ।

[illegible] में [illegible] का सम्पूर्ण [illegible] धर्म-निरपेक्ष [illegible] के आधार पर ही किया जाता है।

[illegible] के धर्म-निरपेक्ष 'पंथनिरपेक्ष' शब्द की व्याख्या [illegible] हुआ और [illegible] [illegible] है। [illegible] भूमि [illegible] [illegible] गया।

इस प्रकार 'धर्मनिरपेक्ष' [illegible] ऐतिहासिक [illegible] सामाजिक [illegible] (मजहब) [illegible] है। [illegible] सामाजिक [illegible] [illegible]।

[illegible]

[illegible]

विस्मय और समाधान

बात विस्मयकारी और अविश्वसनीय लगेगी पर ऐसा होना सहज भी है। हम देखते है कि एक कुलीन व्यक्ति की सामान्य सी सिगरेट-बीडी की लत भी नही छूट पाती, तो हजारो व्यक्तियो की इस प्रकार सामूहिक रूप से जन्मना पारिवारिक सस्कारो के साथ पडी हुई आदतो का सहसा छूट जाना असम्भव सा है। क्या इतनी जल्दी वे सभी व्यक्ति दुर्व्यसनो की हानियो को समझ लेते है और इतना शीघ्र छोड देते है ? किन्तु हमे यह नही भूलना चाहिये कि जब सामाजिक क्रान्ति होती है, उस समय जन-मानस अपने आप तदनुकूल ढलने लगता है। सहसा ऐसे परिवर्तन सम्पूर्ण समाज मे हो जाते है कि आम व्यक्तियो को दातो तले अगुली दवानी पडती है। इसके अतिरिक्त वह समाज भी अपने आप मे हीनत्व के संस्कारो से ऊब चुका था, वह भी इस प्रतीक्षा मे था कि किसी लोकोत्तर महापुरुष का शुभ सयोग मिले और हम ऊपर उठ सके। साथ ही धर्मपाल वन्धुओं मे अब सामाजिक नियम भी बनने लगे थे कि जो दुर्व्यसनो से मुक्त होगा, उसी से सामाजिक सम्बन्ध रखे जा सकेंगे। इस प्रकार कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे ही यह क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सका है। इस सवके ऊपर आचार्य देव के त्याग एव गरिमामय व्यक्तित्व का प्रभाव भी अपने आप मे अभूतपूर्व था। उनके एक-एक शब्द मे इतनी सचोट प्रभावकता रहती है कि आगन्तुक सहज ही अभिभूत हो जाता है। उसी प्रभावक व्यक्तित्व का चमत्कार था वह सामूहिक परिवर्तन एवं जागरण।

इसके उपरान्त भी शकाशील पाठक चाहे तो अपने आत्म-सतोप के लिए इस चमत्कारिक क्रान्तिकारी परिवर्तन का दर्शन आज भी इस क्षेत्र मे जाकर कर सकते है। इन पन्द्रह वर्षो की अवधि मे एक नीची श्रेणी का समाज कहाँ से कहाँ पहुँच गया है, यह वास्तव मे विस्मित कर देने वाली घटना ही लगेगी, किन्तु वहाँ की अनूठी जागृति को देखकर उसका चित्त भाव-विभोर हुए विना नही रहेगा।

आक्या मे शतश: व्यक्तियो के कुव्यसन की उष्मा से सन्तप्त हृदयो पर अमिय धारा की सरस फुहारो का शीतल छिडकाव कर आचार्य देव पुन ताल पधारे नया ताल मे उज्जैन के मार्गवर्ती आलोट, महिदपुर, डेलची, बोरखेडा, नागी, पीपल्या, रटडा, बूमाहेडा, आदि छोटे-छोटे ग्रामो मे सैकड़ो व्यक्तियो के

आत्म-धर्म के पालन-आराधन का परिपूर्ण अधिकार गुण-निष्पन्न नाम के आधार पर ही मिल जाता है।"

आचार्य देव के श्रीमुख से गुण-निष्पन्न "धर्मपाल" शब्द की व्याख्या सुनकर सभी लोगो का हृदय प्रसन्नता से झूम उठा और "धर्मपाल जैन के उद्धारक आचार्य भगवन् की जय" आदि नारो से गगन-मण्डल गूज उठा। सभी आगन्तुक व्यक्तियो मे भी हर्ष की एक अपूर्व लहर फैल गई। वह छोटा-सा गुरडिया ग्राम धर्मपाल की उद्भव भूमि होने के कारण एक तीर्थधाम-सा बन गया।

बस यही से "धर्मपाल जैन" का ऐतिहासिक स्वर्णिम युग प्रारम्भ होता है, जो अछूतोद्धार हेतु चलने वाली सभी राजनैतिक एव सामाजिक सस्थाओ को पीछे छोडता हुआ द्रुतगति से आगे बढता गया और आज उसने एक युग निर्माणकारी सफल मिशन (सगठन) का रूप ले लिया है। एक आचार्य के गरिमामय व्यक्तित्व के द्वारा उद्भूत यह अमर बेल आज कितनी विस्तृत एव सफला बनी, इसका साक्षात्कार तो उन क्षेत्रो मे भ्रमण करने से ही हो सकता है। निकट के इतिहास को उठाकर देखे, तो ज्ञात होगा कि इतना सामूहिक एव सम्पूर्ण समाज का परिवर्तन अपने आपमे एक चमत्कारपूर्ण घटना ही मानी जायेगी। यह सब आचार्यश्री के अनन्त पुण्य व गरिमामय व्यक्तित्व का ही चमत्कार है, जो आगन्तुक के हृदय को सहसा बदल देता है, अस्तु।

अछूतोद्धार का यह मिशन नागदा एव नाम रूप परिवर्तन के साथ गुराडिया से प्रारम्भ होकर आस-पास के सम्पूर्ण क्षेत्रो मे व्याप्त हो गया। कुछ तो विवाह-प्रसग पर आगत लगभग ७० गावो के प्रतिनिधियो ने आचार्य देव की सत्प्रेरणा प्राप्त कर अपने-अपने क्षेत्र मे प्रचार प्रारम्भ कर दिया और इधर आचार्यश्री का भी उस क्षेत्र मे जहाँ-जहाँ विचरण हुआ, उत्क्राति की लहर-सी फैलती चली गई। अनेक ग्रामो मे विवाह एव मृत्यु-भोज आदि के प्रसगो पर आचार्य देव का सहज सयोग के रूप मे वहाँ पदार्पण होता रहा और निकटवर्ती ग्रामो से आगत हजारो व्यक्तियो का मार्मिक उद्बोधन के द्वारा सामूहिक हृदय-परिवर्तन होता गया।

आचार्य देव का वह मालव-भ्रमण एक अद्भुत चमत्कार बन गया। निम्न श्रेणी के कहलाने वाले उन लोगो के भावना प्रधान हृदयो मे आचार्य देव के प्रति इतनी अधिक श्रद्धा जागृत हो गई कि वे आचार्य देव को एक अवतारी पुरुष रूप मे ही आराध्य मानने लगे। उनके लिये वे एक राम से कम नही है, जिन्होने अपनी पदरज से अहल्या का उद्धार किया। वहाँ एक अहल्या अथवा शबरी के उद्धार का प्रसग था, तो यहाँ हजारो अहल्याओ का उद्धार साकार हो रहा था।

प्रार्थना करता हूँ कि इन भाई-बहिनों को कुव्यसनो का त्याग कराकर गुरुमंत्र सुनाएँ।"

इसके पश्चात् आचार्यश्री ने उपस्थित सभी भाई-बहिनों को कुव्यसनो आदि का त्याग कराकर गुरुमत्र (समकित) सुनाया। पश्चात् 'बलाई' के स्थान पर 'धर्मपाल जैन' कहलाने की व्यवस्था दी गई।

इस प्रकार सभी मार्गवर्ती गाँवों मे जैन जनता में त्याग-प्रत्याख्यानो का एवं अजैन व्यक्तियों मे दुर्व्यसन-मुक्ति एवं जैनत्व के संस्कारो का बीजारोपरण करते हुए आचार्य देव का उज्जैन पदार्परण हुआ। उज्जैन का नगर-प्रवेश अत्यन्त अनूठे एवं मनमोहक वातावरण में हुआ।

चूँकि मध्यान्तर मे आगामी चातुर्मास की विनन्त्यर्थ आने वाले प्रायः सभी संघो को यह आश्वासन दिया जा चुका था, कि उज्जैन पहुँचे बिना चातुर्मास की स्वीकृति देने का भाव कम है, अत कोई भी संघ विनन्त्यर्थ पुनः-पुन उपस्थित होकर आने-जाने की क्रिया न करे। जहाँ उपयुक्त समझा जाएगा वहाँ की सूचना पत्रादि के द्वारा प्राप्त हो सकेगी। किन्तु अतिशय श्रद्धा एवं भक्ति-पुन्ज भक्तगण कहाँ मानने वाले थे! आचार्यश्री के उज्जैन पहुँचने के तीसरे ही दिन दर्शनार्थ एवं विनन्त्यर्थ आने वालों की अपार भीड उमड़ पडी। समीपवर्ती क्षेत्रो के सैकड़ों व्यक्ति तो थे ही, सुदूरवर्ती क्षेत्रो से भी हजारो व्यक्ति उज्जैन पहुँच गए। उनमें मुख्य सघ इन्दौर, ब्यावर, जावरा, मन्दसौर, बीकानेर, राय-पुर, उदयपुर के थे। सुदूर क्षेत्र राजस्थान, ब्यावर से लगभग सौ तथा अन्यान्य क्षेत्रों से भी सैकड़ों की सख्या में लोग उपस्थित हुए किन्तु इन्दौर से तो बारह बसो, कारों एवं ट्रेन से लगभग एक हजार से अधिक व्यक्ति उपस्थित हुए और अत्यन्त विनम्र, किन्तु भावपूर्ण शब्दो में आग्रह करने लगे—"सन्निकट अतीत के इतिहास मे इतनी बड़ी सख्या में चातुर्मास की विनती हेतु लोगो का आना, हमारी दृष्टि मे यह प्रथम अवसर है। इस प्रकार के उत्साह को देखते हुए आगामी चातुर्मास के अधिकारी हम ही है।"

वैसे चातुर्मास की विनती हेतु आगत सभी सघों ने अपने-अपने अधिकारो की भरसक चर्चा की, किन्तु इन्दौर संघ की दलीलें एवं विनती की पद्धति अपने आप में कुछ भिन्न ही थी। प्रवचन समापन के पश्चात् मध्याह्न मे सभी सघो ने अपने विचार व्यक्त किये। उनमे इन्दौर संघ के विचार निम्न प्रकार थे—

सर्वप्रथम अध्यक्ष श्री बख्तावरमलजी सांड ने आचार्य प्रवर के पावन चरणों मे नम्र विनती की, "आपश्री अपना चातुर्मास इन्दौर मे ही करने की कृपा करे।"

तत्पश्चात् मंत्री श्री मोतीलालजी सुराना ने नम्र विनती करते हुए कहा, "हम सभी की यह भावना है कि आपश्री इन्दौर मे ही चातुर्मास करने की कृपा करे।" इसके पश्चात् उन्होने एक मधुर स्तवन गाया।

जाते । तदनुसार आचार्यश्री के लोद पधारने के समाचार निकटवर्ती ग्राम लिम्बोदिया एव गुजरवडिया के धर्मपाल बन्धुओ को मिलते ही वे सन्ध्या को भारी सख्या मे लोद उपस्थित हो गये । आचार्यश्री का रात्रिकालीन उद्बोधन सुनकर सभी ने दुर्व्यसनो का परित्याग कर जैनत्व स्वीकार किया तथा अपने ग्राम मे पधारने का आग्रह करते हुए निवेदन किया—"गुरुदेव, यहाँ तो हम कुछ व्यक्ति ही उपस्थित हो सके हैं, आपश्री के हमारे ग्राम मे पधारने से बाल-बच्चो एव महिलाओ को भी कुछ उपदेश लाभ होगा, जिससे वे सब भी दुर्व्यसनो से मुक्त हो सकेंगे ।"

श्रद्धाशील भावुक हृदयो की पुकार पर ध्यान देकर आचार्य देव ने कहा—"आपकी भावनाओ को दृष्टि मे रखते हुए उधर विहार करने का विचार कर रहा हूँ, किन्तु इतना अवकाश नही है कि मैं एक-एक गाव मे इतना समय दूँ । अत गुजरवडिया के भाई-बहन भी लिम्बोदिया मे ही लाभ ले लेवे, तो उत्तम रहेगा ।"

तदनुसार आचार्यश्री के लिम्बोदिया पधारने के पूर्व ही गुजरवडिया के भाई-बहिन भी लिम्बोदिया पहुँच गये और दुर्व्यसन-मुक्ति के सामूहिक अभियान मे सम्मिलित हो गये । दोनो ग्रामो के १०० से अधिक व्यक्तियो ने धर्मपाल जीवन जीने का सकल्प ग्रहण किया । लिम्बोदिया से पुन लोद होते हुए आपश्री का पदार्पण ताल हुआ । ताल मे मन्दसौर का श्री साधु-मार्गी जैन श्रावक संघ आगामी चातुर्मास की विनती हेतु उपस्थित हुआ । व्याख्यान समापन पर श्री सौभागमलजी पामेचा ने निम्न शब्दो मे विनती प्रस्तुत की—

"पूज्य गुरुदेव,

"आपने मालवा के नगर रत्नपुरी (रतलाम) मे अपना गौरवशाली ऐतिहासिक चातुर्मास पूर्ण कर डूगर प्रदेश को पावन कर धार, इन्दौर, खाचरौद आदि नगरो एव छोटे-छोटे ग्रामो मे विचरण करते हुए ज्ञान-ज्योति की किरणो को गाव-गाव, नगर-नगर फैलाकर अज्ञानता के अधकार को दूर किया है एव निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति का शखनाद करते हुए आज आप ताल नगर मे पधारे हुए है । यहाँ उपस्थित समस्त जन-समुदाय आपका हार्दिक अभिनन्दन एव स्वागत करता है ।

"आपश्री के ज्ञान-दर्शन, चारित्र एव पावन वाणी से प्रभावित हो हम अपने आपको धन्य समझते हुए ऐसे नगर से आपश्री की सेवा मे उपस्थित हैं, जो भगवान् महावीर के विचरण काल का भी ऐतिहासिक क्षेत्र रहा और जहाँ से अनेक श्रावको ने शुद्ध सयम अगीकर किया । यह वह नगर है जहाँ दशार्ण भद्र राजा ने जैन धर्म की ज्योति को घर-घर, नगर-नगर मे प्रसारित कर धर्म

समकित भी ली है । यदि आपश्री का चातुर्मास इन्दौर में होवे, तो वे सभी लोग सुविधापूर्वक वहाँ आकर आपके दर्शन करके एव मधुर वाणी सुनकर अपने जीवन को और अधिक आनन्दमय बना सकते है । मुझे आशा है कि उन्हे वहाँ धार्मिक शिक्षा का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा ।

"गत ६० वर्ष पूर्व यहाँ ज्योतिर्धर जवाहर का चातुर्मास हुआ था । उसके पश्चात् इन्दौर मे किसी भी आचार्य का चातुर्मास नही हुआ है । आज हमारा परम सौभाग्य है कि आप जैसे महान् सत इन्दौर के आस-पास के ग्रामो में विचरण कर रहे है ।

"अन्त मे मैं एक बार पुन. आपके पावन चरणों मे अत्यन्त नम्रतापूर्वक विनती करता हूँ कि उपर्युक्त सभी बातो पर उचित विचार करते हुए तथा इन्दौर एव मध्यप्रदेश के अन्य स्थानो के लाखों लोगो की भावना को दृष्टिगत रखते हुए आप अपना आगामी चातुर्मास इन्दौर नगर मे करने की तत्क्षण स्वीकृति प्रदान करने की कृपा करे । बस यही प्रार्थना है ।"

इस प्रकार श्री माणकलालजी नाहर के सयोजकत्व मे लगभग दो घटे तक सभी संघो की आग्रहपूर्ण विनतियाँ चलती रही ।

आगामी वर्षावास की स्वीकृति

अन्त में आचार्य देव ने सभी को आश्वस्त करते हुए सक्षेप मे फरमाया, "यह निश्चित है कि मेरा वर्षावास किसी एक ही क्षेत्र में होगा । अत: वर्षावास से वचित रहने वाले क्षेत्रों के सघो को भी उदास अथवा खिन्न नही होना चाहिये । वैसे वचित क्षेत्रो को भी यथाशक्य सन्त अथवा सतियों के चातुर्मास का लाभ दिया जा सकेगा । आगत सघो मे अधिकाश की भावना मेरा चातुर्मास अपने क्षेत्र मे कराने की है । इधर मालव प्रान्त मे इन्दौर सघ कुछ अधिक ही लालायित प्रतीत हो रहा है । ऐसी परिस्थिति मे रखे जाने वाले सभी आगारो के साथ संवत् २०२१ के वर्षावास की स्वीकृति देने का विचार हो रहा है । वैसे उज्जैन संघ और उसमे भी सूर्या परिवार की अनूठी सेवाएँ एव अकेले परिवार से चातुर्मास करवाने की भावनाएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नही है, किन्तु अभी मेरी अन्तरात्मा मे इन्दौर क्षेत्र की उपयोगिता अधिक लग रही है । इसके पीछे एक मुख्य उद्देश्य धर्मपाल बन्धुओ के जीवन-निर्माण का भी है, जिसका कि संकेत श्री काठेड़जी ने अभी आपके समक्ष किया है ।

"मैं आज उपस्थित सभी धर्मस्नेही बन्धुओ से भी सकेत करना चाहूँगा कि जो हजारो व्यक्ति दुर्व्यसनो से मुक्त होकर जैन धर्म की पुनीत छाया तले अपने जीवन का निर्माण करने को कृत संकल्प हुए है, उन्हे सामाजिक एव धार्मिक स्तर पर ऊपर उठाने मे सहयोग करना आप लोगो का भी कर्त्तव्य है और मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि प्रभु महावीर के शासन की सच्ची सेवा भी यही

अपनी सामान्य सहज भाषा मे प्रवचन-पीयूष का पानकर सभी के हृदय भाव-विभोर हो गये। आचार्य देव ने प्रवचन मे सप्त कुव्यसन की हानियो का दिग्दर्शन कराते हुए अन्त मे कहा—"मैं आप लोगो से कोई रुपये–पैसे तथा नारियल आदि की भेंट लेकर पूजा अथवा चढावा लेने नही आया हूँ। मैं तो आपसे दुर्व्यसनो की भेंट लेकर आपके सिर पर बलाई याने नीची जाति के लगे हुए काले टीके को मिटाने आया हूँ। यदि आप कुछ भेंट-पूजा देना चाहे, तो बस यही दीजिये, जिससे आपका यह जीवन और आगामी जीवन भी सुखी हो सके। आप इन दुर्व्यसनो से मुक्त होकर जैन धर्म जैसे महान् एव पवित्र धर्म के आराधक बन सकते हैं। इस समय मैं आप सभी से कहना चाहूँगा कि जैसे पिछले गावो मे एक सामूहिक व्यसन-मुक्ति की धार्मिक चेतना जागृत हुई, वैसे ही आप सभी उपस्थित भाई-बहिन भी आगे कदम बढाकर "धर्मपाल जैन" कहलाने के अधिकारी बने।"

आचार्य देव के प्रवचन मे जो सरसता, आकर्षकता एवं प्रभावकता है, उससे पत्थर हृदय भी प्रभावित हुए बिना नही रहते है। यही प्रभाव वहाँ आगत जनता में हुआ और तत्काल ८१ ग्रामो के लगभग ७६३ परिवारो के प्रमुख प्रतिनिधियो सहित सैकडो व्यक्तियो ने दुर्व्यसनो का परित्याग कर "धर्मपाल जैन" व्रत स्वीकार किया।

• • •

जहा पुण्णस्स-तहा तुच्छस्स

आचार्यश्री ने "आप लोगो की विनतियाँ मैं अपनी झोली में रख लेता हूँ। आगे जैसी स्थिति होगी, सूचित किया जा सकेगा।" आदि भाव व्यक्त किये तथा आगत सघ-प्रमुखो को मध्याह्न एव रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात् विचार-विमर्श के लिये समय देने का विचार कर ही रहे थे कि प्रवचन स्थल पर ही सहसा श्री सीतारामजी पाट के पीछे आकर खडे हो गये और आचार्य देव से धीमे स्वर मे निवेदन करने लगे, "गुरुदेव ! आज आपश्री के बडे-बड़े सेठिया भक्त तो बहुत आये हुये है, किन्तु आपश्री ने जो मिशन हाथ मे लिया है, अछूतोद्धार का, उसका भी आज बहुत बडा कार्य हो सकता है। उसके लिये आपश्री को इन बडे भक्तो को छोडकर हम छोटे दीन भक्तो के मध्य चलना होगा।"

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—"क्यो, ऐसी क्या बात है ? आप लोगो के लिये तो मेरे पास पहले समय है, आप क्या कहना चाहते है, स्पष्ट करे।"

"गुरुदेव, कल यहाँ से तीन-चार मील की दूरी पर हमारे समाज के सैंकडो व्यक्ति एकत्रित होने वाले है। इस अवसर पर यदि आपश्री का वहाँ पदार्पण हो जाए, तो हम पर बडा उपकार होगा। वहाँ हमारे समाज के कुछ मुख्य अगुआ व्यक्ति भी आने वाले है, अत: यदि आज साय को ही वहाँ पधार कर रात्रि-विश्राम वही करे, तो उन लोगो से रात्रि मे कुछ चर्चा भी हो सकेगी और इसका प्रभाव इस सम्पूर्ण क्षेत्र मे अच्छा पड़ेगा।" श्री सीतारामजी ने कुछ सकोचपूर्वक विनम्र शब्दो मे स्पष्ट किया।

आचार्य देव ने उनकी विनती पर विचारात्मक स्वीकृति फरमाते हुए कहा—"आप निश्चित रहे। मैं विचार करके उचित अवसर देखूंगा। और आचार्यश्री ने तत्काल व्याख्यान के प्रसग पर विशेष कुछ नही फरमाते हुए मगल पाठ सुना दिया। मध्याह्न मे अपने बड़े-बडे आगन्तुक भक्तो को छोडकर "जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" के महावीर सन्देश को साकार करते हुए, चुपचाप अन्य तीन शिष्यो को साथ लेकर श्री सीतारामजी आदि कुछ धर्मपात्र बन्धुओ के साथ नागझिरी के लिये प्रस्थान कर दिया। आगन्तुक एवं स्थानीय बन्धुओ ने समझा—गुरुदेव सम्भवत: शौच-निवृत्ति हेतु बाहर पधार रहे

हृदय मे करुणा का निर्झर वहाते हुए और उन्हे आत्मबोध से आप्लावित कर धर्मपाल जेन की उच्च गरिमामय स्थिति पर प्रतिष्ठित करते हुए, बरखेडा पधारे। चूँकि बरखेडा मे पूनाजी नन्दरामजी बलाई के यहाँ मृत्यु-भोज का आयोजन था, इसलिए समीपवर्ती पचास ग्रामो के सैकडो नर-नारी उपस्थित थे। अत मुख्यतया उन्हे ही उद्बोधित करने हेतु आचार्य देव का वहाँ पदार्पण हुआ।

आचार्य देव के वहाँ पधारते ही गाँव के मुख्य चौक मे लगभग ६०० नर-नारियो का समूह एकत्रित हो गया। नित्य प्रति की तरह आचार्य देव ने अपनी माधुर्यपूर्ण वाग्धारा मे सभी श्रोताओ को आकण्ठ निमज्जित कर भाव-विभोर कर दिया। आचार्य देव के लगभग ५० मिनट के धारा-प्रवाह प्रवचन के पश्चात् धर्मपाल प्रवृत्ति के आदिस्रोत धर्मपाल जैन बन्धु श्री सीतारामजी राठौड ने उपस्थित सम्पूर्ण बलाई समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज हमारा अहोभाग्य है कि हमारे बीच ऐसे त्यागी महात्मा पधारे हैं। इनके दर्शन के लिए बड-बड सेठ-साहूकार लालायित रहते है। आज हमे उनके पदार्पण का सहज ही अवसर मिला है। इसके लिये हम आपश्री के बड आभारी हैं।

"हमारी जाति, जो आज इतनी पिछड गई है, इसका कारण हमारे कार्य ही है। वैसे विशेष कोई दीन स्थिति तो नही है, फिर भी हमारी गिरी हुई स्थिति को सुधारने के लिए सहारे की आवश्यकता है। हमे इन महात्मा का अच्छा योग मिला है। यदि आपके उपदेशो को हमने सुना है और समझा है, तो हम अपने कुकर्मो को त्याग देवें और आदर्श जीवन बिताने वाले बन जाये। अपनी जाति खेती का काम करती है। इस मे कई शराब, मास आदि का सेवन करते हैं और कई नही भी करते हैं। मैं मद्य, मास आदि सेवन करने वाले तथा नहीं करने वाले सभी से कहता हूँ कि खड होकर गुरुदेव से त्याग ले लेवें।

"नागदा, गुराडिया, आक्या, कला आदि गाँवो में एकत्रित हुए हमारे समाज के बहुत से भाई-बहिन इन्ही महात्मा के उपदेशों से मद्य, मांस, शिकार, आदि का त्याग कर "धर्मपाल जैन" बने हैं। इसके समाचार इधर-उधर बहुत जगह फैल चुके हैं, जिससे बीकानेर, खाचरौद, रायपुर आदि के सेठ-साहूकार पिछले गाँव दर्शनार्थ पधारे। उनसे मेरी भेंट हुई। उन्होंने कहा कि आप मद्य, मास, शिकार, आदि कुव्यसनो का त्याग कर [illegible] आगे बढते हैं, तो उसमे आपको हमारा सहयोग प्राप्त होगा। आप जितना भी अपना सुधार करना चाहे, करे।"

इसके पश्चात् सभी उपस्थित [illegible] आचार्यश्री की [illegible] मे निवेदन किया कि हमे कुव्यसनों [illegible] करे। साथ ही सीतारामजी ने [illegible]

आप शान्तिपूर्वक प्रवचन सुनिये—" और वे श्रावकगण सबसे पीछे धूलि मे ही बैठ गए।

आगत श्रीमन्तो के स्नेहमय व्यवहार से प्रभावित होकर प्रवचन-समाप्ति पर बलाई-समाज के एक प्रमुख व्यक्ति, जो कि पूर्व मे धर्मपाल बन चुके थे, खडे होकर कहने लगे—"मेरे जाति बन्धुओ, अभी आपने आचार्यश्री का प्रवचन सुना, आचार्यश्री ने हम से कुछ मागा है, किन्तु कोई धन–दौलत या भेट–पूजा नही। वे हमसे दुर्गुणो अथवा, दुर्व्यसनों की माग कर रहे है। आचार्यश्री कितने महापुरुष है, इसको मैं किन शब्दो मे कहूँ। मेरी आत्मा तो कह रही है कि जैसे शबरी को राम मिले थे, वैसे ही ये भगवान् हमारे उद्धार करने वाले हैं। राम ऋषियो के यहाँ नही गए, किन्तु उस भीलनी शबरी के यहाँ पहुँचे और जैसे कृष्ण दुर्योधन के यहाँ नहीं जाकर विदुरजी के यहाँ गये, वैसे ही ये महापुरुष इन लखपति एव करोडपति लोगो को छोडकर हमारा उद्धार करने के लिये हमारे मध्य पधारे है। मै आपसे क्या कहूँ ? कल मैने देखा उज्जैन मे, कलकत्ता, बीकानेर, सरदारशहर आदि शहरो के अच्छे-अच्छे करोडपति लोग आचार्यश्री से पाच-पाच मिनट का समय लेने को लालायित थे। वहाँ उस भीड मे हमारा पहुँचना ही असम्भव था, किन्तु श्री सीतारामजी ने पीछे से जाकर आचार्यश्री को निवेदन किया, आप नागझिरी पधारने की कृपा करे, तो आचार्यश्री उन सभी लोगो को समय न देकर हमारे मध्य यहाँ पधार गए। ये बडे-बडे लोग दो-दो मिनिट बात करने के लिये तरसते हैं, वहाँ हमे गुरुदेव ने कृपा करके इतना समय दिया। यह हम पर महान् उपकार किया है।

"आचार्य भगवन् की कृपा का ही यह फल है कि ऐसे बडे-बडे सेठिया लोगो का भी हमारे गाँव मे आना हुआ है। अभी आपने देखा, जहाँ अपने आसपास रहने वाले ऊँची जाति के लोग हमारे समीप मे नही बैठते है, वहाँ ये सेठिया लोग अपनी जाजम पर बैठे हैं और कुछ तो अपने इतना आग्रह करने पर भी नीचे जमीन पर ही बैठ गये है इन आचार्यश्री की कृपा-दृष्टि से हमें इन सेठिया लोगो का भी कितना स्नेह मिल रहा है। और ये लोग भी हमें अपनाने तथा दुर्व्यसन-मुक्त कर हमारे जीवन को ऊँचा उठाने मे कितना प्रेमपूर्ण सहयोग दे रहे है। अत. मेरा आप सभी लोगो से निवेदन है कि यह सुनहला अवसर हमारे हाथ लगा है, हमे खोना नही है और सभी जनों को खडे होकर दुर्व्यसनो का त्याग करके, "धर्मपाल जैन" बन जाना चाहिये। इसमे हमारी जाति का उत्थान होगा तथा हम नीची जाति के काले टीके से ऊपर उठकर ऊँची जाति के कहलाने लगेंगे।"

अनन्तर थली प्रान्त के कर्मठ कार्यकर्ता, थली के शेर श्री मोतीलालजी दरडिया सरदारशहर निवासी ने खडे होकर कहा—"हम आपको अपना भाई

इसके पश्चात् सहमंत्री श्री लाभचन्दजी काठेड ने इन्दौर श्री संघ की ओर से आचार्य प्रवर के पावन चरणो मे निम्नलिखित विनती की—

"भारत के महान् चरित्रनिष्ठ आध्यात्मिक संत, महान् तत्त्ववेत्ता, प्रात:-स्मरणीय परम पूज्य आचार्य प्रवर, महान् सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म सा, पूज्य मुनिराजगण एव महासतियाजी म सा, आज पुन इन्द्रपुरी के लगभग १००० भाई-वहिनो को राजा विक्रमादित्य की अवन्तिका नगरी मे आपके दर्शन पर अपार हर्ष हो रहा है। इसे शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता है। आज हम सभी का परम सौभाग्य है कि आपश्री की अमृतमय मधुर वाणी को श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

"मुझे यह कहते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आज हम सभी नर-नारी आपश्री की इन्दौर मे चातुर्मास की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु विनती करने यहाँ उपस्थित हुए हैं। मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक आपके पावन चरणो मे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप अपना आगामी चातुर्मास भारत के प्रमुख एव शातिप्रिय नगर इन्दौर मे ही करने की कृपा करे। आपश्री का इन्दौर मे चातुर्मास होना वहुत ही महत्त्वपूर्ण एव ऐतिहासिक घटित होगा। इन्दौर मध्यप्रदेश का केन्द्र है। यहाँ पर देश के कोने-कोने से हजारो की सख्या मे लोग आते हैं। अत वे भी आपश्री के दर्शन एव मार्मिक प्रवचनो को सुनकर अपने जीवन को सफल बना सकेंगे।

"मध्यप्रदेश की लाख-लाख जनता की यह माग है कि आपश्री का आगामी चातुर्मास इन्दौर मे ही होना चाहिए। आज देश व प्रदेश की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय बनी हुई है। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, हिसा, आदि कई कुव्यसन व्याप्त हैं। उनका उन्मूलन करने मे केन्द्रीय सरकार को लाखो रुपये व्यय करने पर भी सफलता नही मिल रही है। लेकिन मुझे दृढ विश्वास है कि यदि इस वर्ष आप श्री का चातुर्मास इन्दौर मे हो, तो आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव प्रवचनो से लाखो लोग प्रभावित होगे। इस प्रकार प्रदेश मे व्याप्त कुरीतियो मे भी कमी होगी। अत इन सव अवगुणो का उन्मूलन करने मे आप जैसे महान् सन्त का कुछ सुदृढ सहयोग प्राप्त होगा। आज मानव-मानव मे एक-दूसरे के प्रति घृणा तथा अविश्वास की भावना दृष्टिगोचर होती है। मैं यह दृढ विश्वास के साथ कहना चाहता हूँ कि आप जैसे महान् सत के सम्पर्क मे आने से तथा मार्मिक प्रवचन सुनने से प्रदेश मे एक वहुत वडा परिवर्तन होगा और धार्मिक जागृति होगी।

"मैं आपश्री का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि लगभग एक मास मे आपश्री के ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव प्रवचनो से प्रभावित होकर लगभग ५००० वलाई जाति के लोगो ने मांस, शराव, भांग, गाजा, तम्बाकू, आदि मादक वस्तुएँ जीवन भर ग्रहण नही करने के नियम लिये हैं, तथा इन्होंने

[illegible] का अनूठा लाभ उठा लिया है। इतने मुमुक्षु दर्शनार्थियों [illegible] भावनाओं का लाभ मिल गया है। अब भी आपकी भावना [illegible] किन्तु आस-पास के अन्यान्य क्षेत्रों को भी कुछ लाभ [illegible] है। फिर भी आपका अधिक ही आग्रह है, तो मैं अभी कुछ दिन [illegible] के गांवों में विचर कर अक्षय तृतीया के पूर्व पुनः यहां पहुंचने का विचार करता हूँ।"

इस प्रकार उज्जैन के संघ प्रमुख श्री सूर्याजी को कुछ आश्वासन कर तथा [illegible] श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० को कुछ अध्ययनरत सन्तों के साथ [illegible] सन्तों को अपने साथ लेकर आचार्यश्री ने छोटे-छोटे निकटवर्ती गांवों में भ्रमण करने हेतु प्रस्थान कर दिया।

[illegible] उस समय विशेष प्रचार-प्रसार का एक ही मिशन था, पर [illegible] गांवों में भ्रमण कर आचार्यश्री ने सैकड़ों के जीवन में अहिंसात्मक [illegible] का संचार किया, उन्हें हिंसक पशुवत जीवन से ऊपर उठाकर [illegible] सामाजिक जीवन के गरिमापूर्ण मंच पर प्रतिष्ठित किया अर्थात् [illegible] के हृदयों में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण कर उन्हें "धर्मपाल [illegible] का सौभाग्यपूर्ण विरुद दिया।

होगी । हम अहिंसक हैं और अपने आपको अहिंसा के अवतार प्रभु महावीर के पुजारी मानते है । एक चीटी की हिंसा करने मे हमारा हृदय कापता है और दूसरी ओर हम मनुष्य-मनुष्य मे जातीयता के भेद आरोपित कर, उन्हे नीच समझते हुए, उनसे घृणा का व्यवहार करते हैं । क्या यह मानसिक हिंसा नही है ? भगवान् महावीर ने केवल चीटी एव छोटे प्राणियो से ही नही, प्राणिमात्र से प्रेम करने का सदेश दिया है । मानव से मानव का घृणा करना जैन धर्म का सदेश नही है । हाँ, घृणा का भाव दुर्व्यसनो तथा पाप-प्रवृत्तियो से हो सकता है, इन्सान से नही । अत आप लोगो का कर्त्तव्य है कि जो जीवन को सस्कारित बनाने को तत्पर है, उन्हे आप यथाशक्ति यथासाध्य ऊपर उठने मे सहयोगी बनें । ये हजारो व्यक्ति दुर्व्यसनो से मुक्त होकर हिंसक से अहिंसक बन रहे है । जिनके हाथो मे बकरा काटने की छुरी और शराब की बोतल रहती थी, उनके हाथो मे आप चाहे तो शिक्षा एव सस्कारो के द्वारा माला, पू जणी आदि सामायिक के उपकरण पकडा सकते है ।

"वैसे इन्दौर नगर के धर्म श्रद्धालु बन्धुओ का आग्रह तो है ही, किन्तु मेरा वहाँ चातुर्मास करने के पीछे एक यह भी उद्देश्य है । वहाँ समीपवर्ती ग्रामो के धर्मपाल बन्धुओ को कुछ लाभ मिल सकेगा और उसके द्वारा उनके जीवन मे जैनत्व के सस्कारो का बीजारोपण भी हो सकेगा । अस्तु । अन्य सभी सघो को भी इसके लिए गौरवपूर्ण प्रसन्नता ही व्यक्त करनी चाहिये । यह भी प्रभु महावीर के शासन की एक प्रकार की महत्त्वपूर्ण सेवा है ।"

आचार्य देव के सूझ-बूझ पूर्ण निर्णय को सुनकर प्राय. सभी व्यक्तियो के हृदय प्रफुल्लित हो उठे । विशेषकर इन्दौर सघ की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या । उनके हृदय तो बल्लियो उछलने लगे । इन्दौर सघ के प्रमुखो ने "भगवान महावीर की जय, आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म० सा० की जय, धर्मपाल उद्धारक गुरुदेव की जय" आदि नारो से दिग्मण्डल को अनुगुन्जित कर दिया । अपने चेहरो पर अपार प्रसन्नता के भाव लिए इन्दौर के लगभग १०००-११०० का जन-समूह इन्दौर के लिए प्रस्थान कर गया तथा अन्य आगत सघ भी अन्य सन्त-सती वर्ग के चातुर्मास के कुछ आश्वासन लेते हुए विदा हो गये ।

चूँकि इन्दौर नगर की चातुर्मास स्वीकृति के चार दिन पश्चात् ही महावीर-जयन्ती का प्रसग था तथा बहुत से श्रीसघो को चातुर्मास की स्वीकृति भी लेनी थी, अत महावीर जयन्ती के प्रसग पर पुन. बाहर से सैकडो दर्शनार्थी उपस्थित हो गए । स्थानीय तथा बाहर से आगत हजारो की जनमेदनी के समक्ष महावीर जयन्ती के परिप्रेक्ष्य मे आचार्यश्री की महावीर जीवन एव सिद्धान्त पर मार्मिक, हृदयस्पर्शी, पीयूषवर्षी वाग्धारा के पश्चात् प्रत्येक सघ ने संत-सती वर्ग के वर्षावास की आग्रहपूर्ण विनतियाँ प्रस्तुत की ।

• • •

है।" उन व्यक्तियो ने भी दुर्व्यसनों का परित्याग कर धर्मपाल जैन का व्रत स्वीकार किया।

आपका इधर आना वरदान सिद्ध हुआ

आचार्य देव के पुन: उज्जैन पधारने पर आर्य समाज के कुछ प्रमुख नेता दर्शनार्थ उपस्थित हुए और कहने लगे—"आचार्यश्री, आपका इस क्षेत्र मे पधारना इस क्षेत्र के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। आपने हिन्दुत्व का रक्षण कर देश एव हमारी सस्कृति के गौरव को सुरक्षित बनाया है। इस क्षेत्र मे ईसाई मिशनरी एव बाहल्ला लोगो का प्रभाव बढता जा रहा था। अपने धर्म के प्रचारार्थ इन लोगो की जीपे इस क्षेत्र मे बहुत भ्रमण कर रही है। हमारे आर्य समाज के मिशन ने उनके प्रचार मे गतिरोध करने का प्रयास किया किन्तु उनके विशाल प्रचार-साधनो के समक्ष हमारे अल्प प्रचार साधन परास्त हो रहे थे। आपश्री ने अपने जादू भरे प्रभावक प्रवचनों तथा अपने व्यक्तित्व से उनके विस्तृत प्रचार-साधनो को भी परास्त कर दिया। हजारो बलाई, ईसाई एव बाहल्ला बनने से बच गये। यह हिन्दुत्व का बहुत उपकार का कार्य किया है आपश्री ने। अब आपश्री हमे कोई सेवा का कार्य बताएँ तो हम भी इस पुण्य कार्य के द्वारा सस्कृति की सेवा का कुछ लाभ ले सके।"

आचार्य देव ने कुछ गम्भीर स्वर मे कहा—"मैने कोई महान् कार्य नही किया है। अपने कर्तव्य की दृष्टि से मै उपदेश आदि का कार्य करता हूँ और एक तैयार उपादान मे निमित्त बन जाता हूँ। हा, हम अपनी साधु मर्यादा मे रहते हुए उपदेश द्वारा हृदय-परिवर्तन का कार्य ही कर सकते है। इसके आगे उन लोगो को जीवन जीने का स्तर समझाना, अहिसात्मक ढग से व्यवहारो के आधार पर आजीविका चलाने का मार्ग-दर्शन देना, यह आप लोगो का कर्तव्य है। इसके लिये आप कुछ कर सके, तो यह जन-कल्याण के क्षेत्र मे प्रशस्त कार्य हो सकता है। जो हृदय-परिवर्तित हुए है, उनका जीवन-क्रम भी परिवर्तित होगा तथा दुर्व्यसन-मुक्ति की ली हुई प्रतिज्ञाएँ भी दृढतापूर्वक स्थिर रह सकेंगी। यहाँ एक वात और स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैने अन्यान्य मिशनो की तरह किसी भी प्रकार के छल-वल का प्रयोग अथवा प्रलोभन का कार्य इसमे नही किया है और न धर्म-परिवर्तन का मेरा कोई आग्रह रहा है और न किसी प्रकार के दवाव में मेरा विश्वास ही है। धर्म किसी के आग्रह से नही, स्वत अन्तरग प्रेरणा से स्वीकार किया जाता है। इन वन्धुओ मे मैने वैसी जिज्ञासा देखी और मार्ग-दर्शन दिया। अत इसे धर्म-परिवर्तन की सज्ञा देना न तो यौक्तिक ही है, और न उचित ही। उनकी ऐसी भूमिका थी और मेरा सयोग मिला। इसे आप सहज संयोग कह दे या और कुछ।"

हैं, किन्तु जब ज्ञात हुआ कि आचार्य देव समीपवर्ती गाँव मे पधार गये है तो कुछ श्रावक तो रात्रि मे ही और अन्य प्रात काल वहाँ पहुँच गए।

आचार्य देव ने वहाँ पहुँच कर प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि मे बलाई समाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियो से चर्चा की। विचार-विमर्श के अवसर पर उन लोगो ने कहा—"आपने जो हमे समझाया, वह हम अच्छी तरह समझ गये हैं। यह आपकी हम छोटे लोगो पर महान् कृपा है कि आप हमे ऊपर उठाने के लिये इतनी कठिनाइयाँ सहन कर यहाँ पर पधारे है। हम दुर्व्यसनो से मुक्त होकर जैन धर्म के सिद्धान्तो को स्वीकार करना चाहते हैं, किन्तु जैसा अभी आपने हमे समझाया, वैसे ही प्रात काल यहाँ एकत्रित सभी लोगो को प्रवचन मे विस्तार-पूर्वक मार्ग-दर्शन देने की कृपा करे, तो अधिक उपकार हो सकेगा, क्योकि जितना प्रभाव आपश्री की जादू भरी अमृतवाणी का पडेगा, उतना हमारे समझाने से नही।"

आचार्य देव ने प्रात प्रवचन की स्वीकृति दे दी। तदनुसार आचार्य देव शिष्य समुदाय के साथ शौचादि से निवृत्त होकर आए। तब तक तो अपनी कुल-परम्परा के कुल देवता के मन्दिर के समक्ष खुले मैदान मे स्थानीय तथा बाहर के सैकडो व्यक्तियो की भीड इकट्ठी हो गई। आचार्यश्री देवालय के बाहर बने हुए चबूतरे पर विराज गए और सहज बोधगम्य भाषा में प्रवचन धारा प्रवाहित करने लगे।

आप ऊपर बैठिये

इधर उज्जैन मे आगत बाहर के दर्शनार्थियो एवं स्थानीय बन्धुओ को ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री का [illegible] ग्राम मे हो रहा है, तो कुछ यातायात के साधनो से तथा [illegible] पहुँच गये। चूंकि वहाँ जो दरिया एव चटाइयाँ [illegible] बलाई समाज के अधिकाश व्यक्ति बैठे हुए थे और जो [illegible] उन पर कुछ पहले पहुँचने वाले ओसवाल बन्धु बैठ गये थे, [illegible] के लिये दरियो पर रिक्त स्थान नही बचा तो बलाई [illegible] आगन्तुकों के लिये स्थान खाली करने लगे और [illegible] तो सरदारशहर [illegible] श्री मोतीलालजी [illegible] श्री सुन्दरलालजी [illegible] तथा प० लालचन्द [illegible]—"हम तो आज [illegible] की पवित्र [illegible] हम नीचे ही बैठेगे। [illegible] उठने के [illegible] बैठिये।" जब [illegible] आग्रह [illegible]—[illegible] आचार्यश्री [illegible] रहा है [illegible] आगे [illegible] हम वहीं [illegible]

स्वीकृत करवा लिया । इसके पीछे सम्भवतः उनका उद्देश्य रहा हो कि प्रवचन के श्रोता चारो तरफ विभक्त हो जाएँगे तो जनता इनके सम्पर्क मे कम आएगी, किन्तु पुष्प को हम कितना ही आवृत्त करने का प्रयास करे, उसकी महक फैले बिना नही रहती । और जब महक फैलती है तो मधुकर उस पुष्प पर अपने आप मण्डराने लगते है । इसी प्रकार आचार्य प्रवर की चारित्रिक सौरभ से आकृष्ट हो प्रतिदिन हजारो मुमुक्षु श्रोताओ की उपस्थिति होती रही ।

इस विषय परिस्थिति मे भी इन्दौर का वर्षावास किस आध्यात्मिक उत्क्राति एवं शान्तिमय वातावरण मे व्यतीत हुआ, यह तो आगे के पृष्ठो से ही ज्ञात होगा ।

• • •

ही मानते हैं। आप मे और हमारे मे कोई विशेष अन्तर नही है। बस, आप हमारी ही श्रेणी के गुरुदेव के भक्त कहलाएँगे। मेरा हृदय तो आज का यह दृश्य देखकर गद्गद् हो रहा है कि इस महापुरुष की आप लोगो पर कितनी कृपा है। हम समय मागने वाले तो बैठे ही रह गये और गुरुदेव चुपचाप आप लोगो के मध्य आ विराजे। जिन व्यक्तियो पर हमारे गुरुदेव की इतनी कृपा है, उनके मध्य आने से हम कैसे वचित रह सकते है? मेरी भी आपसे यही प्रार्थना है कि आपको यह स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है अत इसका लाभ उठाकर आप सब अभी खडे होकर सप्त कुव्यसन के त्याग की शपथ लेकर अहिसाधर्मी "धर्मपाल जैन" बन जावे।"

आचार्य देव के प्रभावक प्रवचनो से तथा आगत श्रावक समुदाय की स्नेहपूर्ण सहानुभूति से प्रभावित होकर लगभग सात आठ सौ उपस्थित व्यक्तियो ने दुर्व्यसन मुक्ति की प्रतिज्ञाएँ ली और धर्मपाल जैन व्रत स्वीकार किया। साथ ही आचार्य देव के प्रेरित करने पर कि—"आप लोग विभिन्न ग्रामो के मुखिया यहाँ आये हुए हैं अत आपका कर्त्तव्य है कि आप अपने-अपने ग्रामो मे जाकर सभी स्थानीय भाई-बहिनो को भी इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देगे", प्राय ७० गाँवो मे प्रमुख व्यक्तियो ने यह विश्वास दिलाया कि हमारे इस क्षेत्र मे लगभग ७५० परिवारो मे ४५०० व्यक्ति हैं। हम उन सभी को प्रेरित करके दुर्व्यसनो से मुक्त कराके जैन धर्म के निकट लाएँगे।

इस प्रकार उद्वोधन को सफलता की श्रेणी पर पहुँचा कर आचार्य देव लगभग १०-११ वजे के आप-पास पुन उज्जैन पधारे और लगभग एक घटे तक पुन प्रवचन दिया। मध्याह्न को आगत सज्जनो को अलग-अलग समय देकर उनकी विनती एव समस्याएँ सुनी तथा यथा-योग्य चातुर्मास आदि के आश्वासन दिये।

अव आचार्यश्री उज्जैन से विहार करने की स्थिति मे थे, किन्तु स्थानीय कर्मठ एव अग्रगण्य श्रावक श्री मागीलालजी सूर्या ने अत्यन्त आग्रहपूर्ण शब्दो मे निवेदन किया, "गुरुदेव हमारी उत्कट अभिलाषा थी कि आपश्री का यह चातुर्मास उज्जैन शहर मे होता, किन्तु आपश्री ने यह अवसर इन्दौर सघ को दे दिया। अव हमे कम-से-कम एक शेषकाल याने २९ दिन का पूरा लाभ तो मिलना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त अक्षय तृतीया भी अव निकट ही आ रही है। उस समय पारणा करने वालों का लाभ भी उज्जैन वालों को ही मिले, अतः अव आपश्री अक्षय तृतीया तक यही विराजने की कृपा करें।"

आचार्य देव ने मधुर शब्दो मे समझाते हुए कहा, 'आपकी भावना चातुर्मास के लिये भी वहुत थी, किन्तु आपके अकेले परिवार ने इस थोडे से

के समान ही कजवाना ग्राम मे भी लगभग सभी ७० व्यक्तियो ने "धर्मपाल जैन" व्रत ग्रहण किया । इसी प्रकार कायस्थ खेडी मे ८०, माली खेडी मे १००, गुरान मे २९ तथा जामोदी में ७६ व्यक्तियो ने अपने हिंसक जीवन को परिवर्तित कर अहिंसक विरुद धारण किया ।

उक्त ग्रामो मे आचार्य देव, केवल मुनि श्री कवरचन्दजी को लेकर ही भ्रमण करते रहे । विश्राम स्थल के अभाव के कारण कही आम्रवन मे आम्र-वृक्षो की छाया तले दिवस गुजारा, तो कही हनुमानजी के छोटे से छप्पर वाले चबूतरे पर रात्रि विताई ।

इस प्रकार भूख-प्यास के परिषहो को सहते हुए परापेकार-निरत आचार्य देव, विछुड़े तथा भटके हुए बन्धुओ को सत्पथ दिखाकर गले लगाते हुए पुन. सावेर पधारे । वहाँ विराजित दोनो मुनिवरो को साथ लेकर उज्जैन की ओर प्रस्थान किया । उज्जैन आते समय मार्गवर्ती ग्राम सिलोदा व मताना मे दो भोजो के प्रसग पर सैकडो बलाई एकत्रित हुए । उनमे से वहुत से बन्धुओ ने तो पूर्व मे ही "धर्मपाल जैन" का जैनत्व स्वीकार लिया था, किन्तु कुछ नये वलाई क्रमश. २२९ एव १५० वन्धुओ ने दुर्व्यसनो का परित्याग कर जैनत्व स्वीकार किया ।

अछूतोद्धार की मानव-पाविनी एव तद् द्वारा प्राणिरक्षा की गगा-धारा मे शतश व्यक्तियो को अवगाहन करवाते हुए आचार्य देव पुन अक्षय तृतीया के प्रसग पर उज्जैन पधारे । इस परिभ्रमण काल मे वातावरण इतना अधिक सुमधुर एव प्रभावक वन गया था कि कुछ "वलाई" जो पहले ईसाई, मुस्लिम एव वाहल्ला वन गए थे, वे भी आचार्य देव के चरणो मे आकर निवेदन करने लगे—"क्या हमे भी आप पुन अपने धर्म में प्रवेश दे सकते हैं ? हम गौरक्षक से गौभक्षक वनना नही चाहते थे, किन्तु स्पर्श-अस्पर्श के भयकर रोग से उद्विग्न होकर हमे यह कदम उठाना पड़ा । इस दूसरे धर्म के स्वीकार कर लेने पर हमारी इस स्पर्श-अस्पर्श की स्थिति में तो सुधार हुआ है, किन्तु पीढियो से चले आ रहे हिन्दुत्व के विरुद से तो हम वचित हो गए हैं । यह हमे वहुत वार खलता है । आप यदि हमें अपनाने को तत्पर हो, तो उन परिस्थितिवश स्वीकृत धर्मो को छोड़कर हम "धर्मपाल जैन" वनने को तत्पर हैं ।"

आचार्य देव ने उन्हे भी संक्षिप्त उद्वोधन देते हुए कहा—"देखिये, धर्म के द्वार सवके लिये खुले हुए हैं । यहाँ जातीयता का कोई वन्धन यदि आप दुर्व्यसनो से मुक्त होना चाहते हैं, तो जैन धर्म आपको

गुरुजी के चातुर्मास के लिए मकान की क्या समस्या है। राज मोहल्ले में एक कन्या माध्यमिक विद्यालय के लिए हमारे समाज का भवन बन रहा है। वैसे वह अभी पूरा नही बन पाया है। छः बडे-बडे हाल जैसे कमरे है, उनमे से दो कमरो मे फ्लोरिंग हो चुकी है। सभी कमरो के बाहर एक लम्बा बराण्डा है और बराण्डे के सामने ही इतना बड़ा मैदान है कि दस-पन्द्रह हजार व्यक्ति बैठ सकते है। वहाँ आपको पाण्डाल, आदि तो बनाना पड़ सकता है। वहाँ अन्य बचे हुए कमरों मे भी आप कहे तो मैं बहुत जल्दी फ्लोरिंग करवा दूँ।" सिक्ख वकील साहब ने आश्वासन भरे शब्दों मे कहा।

क्षण भर को वकील साहब के मुख पर प्रसन्नता छलक उठी तथा कुछ गम्भीर स्वर मे बोल उठे—"आपके विचार तो उदारतापूर्ण है, किन्तु शायद यह आपके अकेले का विषय नही है। चार मास की लम्बी अवधि तक अपना मकान दे देना आपके समाज को क्या उचित लगेगा ? वह भी बिना किसी किराया के, क्योंकि किराया, आदि देकर लिए जाने वाले मकान मे हमारे सन्त निवास नही करते है।"

सिक्ख वकील साहब ने मुस्कराते हुए कहा—"इस की चिन्ता आप क्यो कर रहे हैं ? मै अपने समाज का अध्यक्ष हूँ और समाज के व्यक्तियो से मैं चर्चा कर लूँगा। किराया-विराया का कोई प्रश्न नही उठेगा। आपके गुरु महाराज जैसे महान् सन्त हमारे विद्यालय के नव-निर्मित भवन मे बिराजें, इससे बढकर सौभाग्य और क्या हो सकता है ? हाँ, यह शर्त है कि उसमे गुरुजी का विराजना हो, यह नही कि गुरुजी को आप किसी दूसरे मकान मे ठहरादे और हमारी स्कूल का उपयोग आप किसी दूसरे काम मे करे। आप तो एक बार चलकर शाला भवन को देख लीजिये, शेष बाकी व्यवस्था मैं कर लूँगा।"

वकील श्री खाबियाजी का मुखकमल एकदम खिल उठा, जैसे सिर पर से कोई बहुत बड़ा भार उतर गया हो। उन्होने मधुर मुस्कान के साथ कहा--"तो फिर शुभस्य शीघ्रम् के अनुसार अभी चले।" और दोनो वकील मित्र भवन का निरीक्षण करने चल पडे। खाबियाजी ने कुछ सुझाव देते हुए कहा, "यदि आपका समाज चार मास के लिए यह भवन दे सके, तो हमारी सारी समस्या हल हो जाती है। हम पहले जिस भवन के विषय मे सोच रहे थे, वह दूसरे ने ले लिया, उससे तो यह बहुत अधिक उपयोगी है। पहली बात तो यह कि यह शहर के कोलाहलपूर्ण वातावरण से एकदम दूर है। यहाँ मुनिराजो के शौचादि के लिए निकट ही जगल की भी सुविधा रहेगी। दूसरी यह कि इस भवन के बाहर जो मैदान है, वह हमारे लिए बहुत उपयोगी होगा। यहाँ आवश्यकतानुसार विशाल प्रवचन मण्डप बनाया जा सकता है। आचार्यश्री एव सन्त-वर्ग बराण्डे का उपयोग कर सकते है। पर एक बात है, अब आप मुनिवृन्द के निमित्त से

इस प्रकार रतमाल वर्षावास के समापन के पश्चात् उज्जैन पदार्पण के पूर्व तक १४१ दिनो मे ८७ ग्रामो मे भ्रमण करके जैन-जागरण के अग्रदूत, परोपकार निरत आचार्य देव ने सर्दी-गर्मी एव क्षुधा-तृषा के अनेक परीषहो का सामना करते हुए जन-जागृति का अभूतपूर्व शखनाद फूक दिया और केवल डेढ मास की अल्प अवधि मे ११००० व्यक्तियो के हृदय-परिवर्तित कर उन्हे अहिसा की पुनीत छाया तले बिठा दिया ।

ईर्ष्या-भाव

इस प्रकार के जन-निर्माण एव जन-कल्याणकारी प्रवृत्ति के विस्तार पाने तथा इस निमित्त से आचार्य देव की धवल कीर्ति के दिग्-दिगन्त मे प्रसृत होने को कुछ लोग सहन नही कर पाए और कान्फ्रेन्स से तथा इन्दौर कार्यकारिणी सभा से प्रस्ताव पारित करवाया कि श्रमण सघ के बाहर वालो का चातुर्मास श्रमण सघीय क्षेत्र इन्दौर नगर मे नही होना चाहिये । कुछ व्यक्ति उज्जैन से विहार के पश्चात् आचार्यश्री के समक्ष भी पहुँच कर साम, दाम एव भेद नीतियो का प्रयोग करते हुए कहने लगे, "आपको इन्दौर चातुर्मास नही करना चाहिये । अब भी रखे हुए आगारो का उपयोग करके आप अपने निश्चय को बदल दे । इसमे आपकी प्रतिष्ठा बढेगी, अन्यथा इन्दौर मे दूसरे सम्प्रदाय के सतो का भी चातुर्मास होगा और आपको नीचा देखना पडेगा ।"

आचार्य देव ने मधुर किन्तु गम्भीर मुद्रा मे कहा—"मैंने वहाँ चातुर्मास स्थानीय सघ के अत्यन्त आग्रह के कारण निर्धारित किया है । अत. अब उसे बिना किसी ठोस महत्त्वपूर्ण कारण के परिवर्तित नही कर सकता । कान्फ्रेन्स अथवा कोई भी कार्यकारिणी कैसे ही प्रस्ताव लाए, मेरा उससे सम्बन्ध नही है । यदि अन्य श्रमणसघीय सतो का चातुर्मास वहाँ होता है, तो उसमे मेरी क्या आपत्ति हो सकती है ? वे अपने विचारों मे स्वतन्त्र हैं और मैं अपने विचारो मे । इसके अतिरिक्त मैं अपने ज्ञान-ध्यान से मतलब रखता हूँ । अत ऊँचा-नीचा लगने का कोई प्रश्न ही नही उठता । यदि ऐसा बने भी, तो इसकी चिन्ता आप लोगो को क्यो होनी चाहिये ? आप निश्चित रहे, मैं अपनी स्थिति मे निश्चिन्त रहता हूँ । राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढाने का मेरा कार्य नही है ।"

आचार्यश्री के स्पष्ट तथा सटीक उत्तर दे देने पर उक्त बन्धुओ ने कुछ रोष-भरे शब्दो मे कहा—"अच्छा तो हम भी देख लेते हैं कैसे करते हैं आप इन्दौर चातुर्मास ।" इसके पश्चात् उन्होंने प्रतिस्पर्धा की भावनाओ मे उतरते हुए श्रमण सघ के कट्टर समर्थकों से सम्पर्क कर श्री सौभागमलजी म० सा० एवं श्री [illegible] म० सा० का [illegible]

इस प्रकार चीकली से सामाजिक बन्धन के रूप मे इस हृदय-परिवर्तन-कारी उत्क्राति ने नया मोड ले लिया ।

चीकली मे इस दलितोद्धार की उत्क्राति को नूतन रूप एव नया परिवेश देकर आचार्य देव ने मालव प्रान्त के छोटे-छोटे ग्राम बडोद, डग, आगर, शाजापुर, देवास, आदि कस्बो मे धर्म-जागृति की अभूतपूर्व लहर प्रसृत करते हुए मक्सी गाँव मे अनेक बलाई बन्धुओ को "धर्मपाल जैन" का उद्बोधनात्मक व्रत दिया ।

लो महाराज, आम चूस लो

इन्दौर की ओर बढते हुए आचार्यश्री मक्सी के समीपवर्ती एक छोटे से ग्राम मे पहुँचे, जिसमे एक दो ओसवाल परिवारो के अतिरिक्त लगभग ३५० खातियो के घर थे । आचार्यश्री सहवर्ती सतो के साथ एक खाती बन्धु के कमरे मे विराजे । चूँकि पिछले गाँव मे भी आहार-पानी का पूरा सयोग नही मिला था और सहवर्ती सत नवदीक्षित ही थे, अत किसी स्थानीय बन्धु से परिचय करते हुए आचार्यश्री उन्हे समझा रहे थे कि उनकी इच्छा हो तो सतो को कुछ निरामिषभोजी लोगो के घर बता दे, जहाँ से अपनी मर्यादा एव नियमानुसार भिक्षा ले सके ।·······इतने मे एक स्थानीय जैन बन्धु उपस्थित होकर कहने लगे—"महाराज, आपके लिए चाय बना के ला रहा हूँ और आदेश दीजिये कि भोजन की क्या व्यवस्था करूँ ?"

आचार्यश्री आगन्तुक बन्धु की बात पर मुस्करा उठे और उन्हे समझाते हुए बोले—"आप जैन-ओसवाल है, आपको यह ज्ञात नही है कि जैन मुनि अपने लिए बनाई हुई कोई वस्तु नही लेते है । हमारे लिए बनायी हुई चाय अथवा कोई भी भोजन-सामग्री काम नही आ सकती और न हम बिना किसी विशेष कारण के चाय पीते ही है । हाँ, आप चाहे तो मुनियो को घर बता दे, जहाँ से सत अपनी मर्यादानुसार भिक्षा ले आएँगे । आप यह ध्यान रखे कि संतो के लिए किसी के भी यहाँ कुछ भी बनवाने का प्रयास न करे । जिन घरो मे खुद के खाने के लिए जो कुछ बना हो, उसी मे से थोडा-थोडा उपयुक्त भोजन सत ले सकते है । वह भी इसी विधि से लेगे कि पीछे उन गृहस्थो को फिर बनाना न पडे और न भूखा ही रहना पडे ·······।"

तब सहज एव सरल हृदय से वह बन्धु कहने लगे—"महाराज, क्षमा करे । मुझे तो मालूम नही था कि आपकी विधि क्या है, क्योकि आप जैसे सतो का यहाँ प्रथम बार ही पधारना हुआ है । आप सन्तो को भेज दीजिये । मै घर बता देता हूँ ।" आचार्यश्री ने कुछ सन्तो को निर्देशित कर उस बन्धु के साथ भेज दिया ।

चातुर्मासिक उपलब्धियाँ

आज केसरिया ओढनो से वेष्टित रमणियाँ, मगल कार्य की अभिव्यक्ति बन रही थी। पगडियाँ जो इससे पूर्व इक्की-दुक्की नजर आती थी, उनकी भी आज बहुलता थी। जैन साधुओ के सम्बन्ध मे एक अजैन भाई कुछ नही जानता था। जब उसे ज्ञात हुआ कि जैनाचार्य पधार रहे है, तो उसने कहा जरूर ही वे पालकी मे आते होगे। मै भी एक अच्छा फूलो का हार तैयार करवाता हूँ। स्वागत मे जरूर चलूँगा। जब उसे ज्ञात हुआ कि वे नगे पैर ही चलते है, हार को वे छूते ही नही और लाई गई मिठाइयो की भेट भी नही स्वीकारते है, तो वह आश्चर्य मे डूब गया। उसे आश्चर्य हुआ कि वैभवशालियो के गुरुजी नगे पैर चलते है।

मन्दिरमार्गी जैन बन्धुओं द्वारा स्वागत

राजवाडा (राजभवन) के गणेश हाल मे मधुर व्याख्यानी मन्दिरमार्गी साध्वी श्री विचक्षण श्री जी म० सा० का प्रवचन हो रहा था। पूज्यश्री का पदार्पण जब राजवाडे के निकट हो रहा था, तब साध्वी जी ने व्याख्यान समाप्त कर दिया। श्रोताओ को आचार्य प्रवर पूज्यश्री के स्वागत मे आने का अवसर मिल गया। पडाल मे भी मन्दिरमार्गी समाज के प्रमुख श्री श्रीलालजी पटवा दो मिनट स्वागत के लिए खड़े हुए और कहा, "हमारा अहोभाग्य है, जो आज आचार्यश्री पधारे। हम आपका हार्दिक स्वागत करते है और विश्वास दिलाते है कि यहाँ ३-४ चातुर्मास होते हुए भी शांति बनी रहेगी।"

जैनेतर बन्धु भी भक्ति में

आचार्य प्रवर को दूर से ही देखकर ड्यूटी पर नियुक्त एक ट्रेफिक पुलिस मैन अपने ऊँचे स्थान से उतरा। उसने अत्यन्त नम्र भाव से वन्दन किया। रास्ते पर सैकडो जैनेतर बन्धुओ—मुसलमान, सिक्ख, सिधी और वैष्णव बन्धुओ ने भी बहुत ही भाव-भक्ति से वन्दन-नमस्कार किया। कई जगह आचार्यश्री के दर्शन हेतु वृद्ध, अपग व छोटे बच्चो को शोभायात्रा के मार्ग पर लाया गया। उन्होने भक्ति-भावना से दर्शन किये। आचार्यश्री ने उन्हे "मगल पाठ" सुनाया। भव्य शोभा-यात्रा के कारण कई बार ट्रैफिक व्यवस्था मे व्यवधान भी हुआ।

फूल खिल रहे है, अमृत झर रहा है

शुद्ध सयम पालन की तेजस्विता से युक्त कातिमान तपोमय मुख। बोलते है तो भक्तो को ऐसा लगता है मानों पुष्प बिखर रहे है, अमृत बरस रहा है। सैकड़ो छोटे एवं बडे जैन-जैनेतर बन्धु आ रहे है। सन्त चरणो को अपने मस्तक से छूकर असीम आनन्द का अनुभव कर रहे है। अपने आपको धन्य अनुभव कर रहे है।

अल्पतम का भी बहुमत

महाविद्यालय के युवक, भारत के भावी भाग्य विधाता, फैशन के दूत,

इन्दौर चातुर्मास

स्थान की समस्या

इन्दौर चातुर्मास प्रवेश के पूर्व विरोध के अभियान मे प्रति-पक्षियो का मुख्य सूत्र था धर्मस्थानो पर आधिपत्य। राजबाडा स्थित महावीर भवन मे अन्य मुनिवरो का चातुर्मास करवाने की चर्चा करके उसे उन्होंने अपने अधिकार मे कर लिया। इस पर आचार्य देव के प्रति श्रद्धानिष्ठ बन्धुओ मे कुछ निराशा सी छाने लगी। स्थानीय जैन समाज मे महावीर भवन ही विशाल भवन है, अन्य स्थान छोटे-छोटे है और उन पर भी प्राय. प्रतिपक्षियो ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अत आचार्यश्री के चातुर्मास हेतु विशाल भवन की आवश्यकता थी और ऐसा कोई स्थान उपलब्ध नही हो पा रहा था। इसे लेकर लोगो मे चिन्ता छायी हुई थी किन्तु महापुरुषो का पुण्यमय व्यक्तित्व अपना अलग ही प्रभाव रखता है। वहाँ विरोधी-से-विरोधी को भी अवनत हो जाना पडता है।

आचार्य देव के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ सुश्रावक वकील साहब श्री रोशन-लाल जी खाबिया को मकान व्यवस्था का विशेष दायित्व सौंपा गया था और उन्हे ही इस विषय मे विशेष चिन्ता थी। एक दिन वकील साहब कोर्ट से लौट रहे थे कि उनके एक निकट के मित्र सिक्ख वकील साहब ने पूछ लिया "खाबिया जी, आजकल आप कुछ उदास एव चिन्तित से दिखाई देते हैं। आपके मुख पर वह सदा-सी प्रसन्नता एव प्रफुल्लता दिखाई नही दे रही है। क्या चिन्ता लगी है आपको ऐसी ?'

वकील साहब ने हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहा—"नही, चिन्ता जैसी कोई बात नही है, किन्तु अभी कुछ दिनो से एक जटिल समस्या मे उलझ गया हूँ। हमारे गुरु महाराज, जो एक प्रकाण्ड विद्वान् एव चरित्रनिष्ठ महात्मा है, के चातुर्मास की स्वीकृति हमने ले ली है, किन्तु उनके आवास एव प्रवचन हेतु हजारो श्रोताओ के बैठने योग्य विशाल भवन की आवश्यकता है। जिस भवन पर पहले हमारी दृष्टि थी, वह अब हमे नही मिल रहा है, बस, यही समस्या मुझे कुछ दिनो से उद्विग्न कर रही है।"

"अरे वाह, खाबिया साहब, आपने मेरे समक्ष इसकी चर्चा नही की।

आज केसरिया ओढनो से वेष्टित रमणियाँ, मगल कार्य की अभिव्यक्ति बन रही थी। पगडियाँ जो इससे पूर्व इक्की-दुक्की नजर आती थी, उनकी भी आज वहुलता थी। जैन साधुओं के सम्बन्ध मे एक अजैन भाई कुछ नही जानता था। जब उसे ज्ञात हुआ कि जैनाचार्य पधार रहे है, तो उसने कहा जरूर ही वे पालकी मे आते होगे। मै भी एक अच्छा फूलो का हार तैयार करवाता हूँ। स्वागत मे जरूर चलूँगा। जब उसे ज्ञात हुआ कि वे नगे पैर ही चलते है, हार को वे छूते ही नही और लाई गई मिठाइयो की भेट भी नही स्वीकारते है, तो वह आश्चर्य मे डूब गया। उसे आश्चर्य हुआ कि वैभवशालियों के गुरुजी नगे पैर चलते है।

मन्दिरमार्गी जैन बन्धुओ द्वारा स्वागत

राजवाडा (राजभवन) के गणेश हाल मे मधुर व्याख्यानी मन्दिरमार्गी साध्वी श्री विचक्षण श्री जी म० सा० का प्रवचन हो रहा था। पूज्यश्री का पदार्पण जब राजवाडे के निकट हो रहा था, तब साध्वी जी ने व्याख्यान समाप्त कर दिया। श्रोताओ को आचार्य प्रवर पूज्यश्री के स्वागत मे आने का अवसर मिल गया। पडाल मे भी मन्दिरमार्गी समाज के प्रमुख श्री श्रीलालजी पटवा दो मिनट स्वागत के लिए खडे हुए और कहा, "हमारा अहोभाग्य है, जो आज आचार्यश्री पधारे। हम आपका हार्दिक स्वागत करते है और विश्वास दिलाते है कि यहाँ ३-४ चातुर्मास होते हुए भी शाति बनी रहेगी।"

जैनेतर बन्धु भी भक्ति में

आचार्य प्रवर को दूर से ही देखकर ड्यूटी पर नियुक्त एक ट्रेफिक पुलिस मैन अपने ऊँचे स्थान से उतरा। उसने अत्यन्त नम्र भाव से वन्दन किया। रास्ते पर सैकडो जैनेतर बन्धुओ—मुसलमान, सिक्ख, सिधी और वैष्णव बन्धुओं ने भी बहुत ही भाव-भक्ति मे वन्दन-नमस्कार किया। कई जगह आचार्यश्री के दर्शन हेतु वृद्ध, अपग व छोटे बच्चो को शोभायात्रा के मार्ग पर लाया गया। उन्होंने भक्ति-भावना से दर्शन किये। आचार्यश्री ने उन्हे "मगल पाठ" सुनाया। भव्य शोभा-यात्रा के कारण कई बार ट्रैफिक व्यवस्था मे व्यवधान भी हुआ।

फूल खिल रहे हैं, अमृत झर रहा है

शुद्ध सयम पालन की तेजस्विता से युक्त कातिमान तपोमय मुख। बोलते है तो भक्तो को ऐसा लगता है मानो पुष्प बिखर रहे है, अमृत बरस रहा है। सैकडो छोटे एव बडे जैन-जैनेतर बन्धु आ रहे है। सन्त चरणो को अपने मस्तक से छूकर असीम आनन्द का अनुभव कर रहे है। अपने आपको धन्य अनुभव कर रहे है।

अल्पतम का भी बहुमत

महाविद्यालय के युवक, भारत के भावी भाग्य विधाता, फैशन के दूत,

इसमे शीघ्रता पूर्वक फ्लोरिंग आदि का कार्य नही करवा सकते हैं। जिन दो कमरो मे फ्लोरिंग, आदि हो चुकी है, मुनिगण उन्ही मे निर्वाह कर लेगे और श्रोताओ के वैठने हेतु हम अपना पाण्डाल बना लेगे। यदि आपकी समाज विना किसी किराये के यह भवन दे सके, तो आप यथाशीघ्र मुझे सूचित करने का कष्ट करे।"

और, राजस्थानी कहावत "भागवानो के भूत कमावे, विना कमाया घर मे आवे" के अनुसार चातुर्मास हेतु खालसा कन्या माध्यमिक विद्यालय का विशाल भवन वकील साहब के माध्यम से सघ वालो को सहज रूप से ही मिल गया और प्रतिपक्षियो द्वारा उत्पन्न व्यवधान अपने आप धराशायी हो गया।

जाति का अपराधी माना जायेगा

इधर आचार्य देव अपनी आत्म-साधना एवं जन-कल्याणकारी मिशन मे निरन्तर आगे बढते ही जा रहे थे। चूँकि सम्पूर्ण क्षेत्र मे अहिसक उत्क्राति का वातावरण फैलता जा रहा था, अत धर्मपाल प्रवृत्ति का क्षेत्र भी अपना विस्तार लेता जा रहा था। हजारो व्यक्तियो की भावनाएँ सहजतया नया मोड़ लेती जा रही थी।

उज्जैन मे अक्षय तृतीया के आध्यात्मिक पर्व तक अध्यात्म-धारा प्रवाहित कर आचार्यश्री अन्यान्य क्षेत्रो मे प्रवास का विचार कर ही रहे थे कि सहसा धर्मपाल वन्धुओ ने उपस्थित हो विनती की—"गुरुदेव, उज्जैन से तेरह मील की दूरी पर चीकली ग्राम मे एक वृहत् भोज का आयोजन हुआ है। उसमे वलाई समाज के ७० ग्रामो के ११०० गणमान्य प्रतिनिधियो को निमन्त्रित किया गया है। इस अवसर पर आपश्री वहाँ पधारे तो वहुत वडा उपकार का कार्य होगा। वहाँ एक साथ सैकडो व्यक्ति धर्मपाल व्रत ग्रहण कर सकेंगे और उनका प्रभाव हजारो व्यक्तियो पर होगा।"

आचार्यश्री ने तो अछूतोद्धार एव दुर्व्यसन-मुक्ति के पुनीत कार्य को शासन सेवा का ही अग मान लिया था। अत आगत धर्मपाल वन्धुओ की विनती स्वीकार कर चीकली ग्राम की ओर प्रस्थान कर दिया। अन्यान्य क्षेत्रो की तरह वहाँ भी ७० ग्रामो के प्रतिनिधियो के भावुक हृदयो पर आचार्य देव के जादू भरे प्रवचन का प्रभाव हुआ और सभी व्यक्तियो ने "धर्मपाल व्रत" ग्रहण किया। यहाँ एकत्रित ७० ग्रामो के प्रमुख पच प्रतिनिधियो ने अपनी सामान्य वुद्धि के आधार पर एक प्रस्ताव भी पारित किया। प्रस्ताव था—"इस चीकली गाँव मे उपस्थित होने वाले ७० गाँवो के करीव ११०० प्रतिनिधि लोग मास, मदिरा, शिकार, आदि दुर्व्यसनो का परित्याग करते हैं, और साथ ही यह भी घोषणा करते हैं कि हमारी इस जाति मे जो भी इन अभक्ष वस्तुओ का सेवन करेगा, जाति का अपराधी माना जाएगा।"

आज केसरिया ओढनो से वेष्टित रमणियाँ, मंगल कार्य की अभिव्यक्ति बन रही थी। पगडियाँ जो इससे पूर्व इक्की-दुक्की नजर आती थी, उनकी भी आज वहुलता थी। जैन साधुओ के सम्बन्ध मे एक अजैन भाई कुछ नही जानता था। जव उसे ज्ञात हुआ कि जैनाचार्य पधार रहे है, तो उसने कहा जरूर ही वे पालकी मे आते होगे। मैं भी एक अच्छा फूलो का हार तैयार करवाता हूँ। स्वागत मे जरूर चलूँगा। जव उसे ज्ञात हुआ कि वे नगे पैर ही चलते है, हार को वे छूते ही नही और लाई गई मिठाइयो की भेट भी नही स्वीकारते है, तो वह आश्चर्य मे डूब गया। उसे आश्चर्य हुआ कि वैभवशालियो के गुरुजी नगे पैर चलते है।

मन्दिरमार्गी जैन बन्धुओं द्वारा स्वागत

राजवाडा (राजभवन) के गणेश हाल मे मधुर व्याख्यानी मन्दिरमार्गी साध्वी श्री विचक्षण श्री जी म० सा० का प्रवचन हो रहा था। पूज्यश्री का पदार्पण जब राजवाडे के निकट हो रहा था, तब साध्वी जी ने व्याख्यान समाप्त कर दिया। श्रोताओ को आचार्य प्रवर पूज्यश्री के स्वागत मे आने का अवसर मिल गया। पडाल मे भी मन्दिरमार्गी समाज के प्रमुख श्री श्रीलालजी पटवा दो मिनट स्वागत के लिए खडे हुए और कहा, "हमारा अहोभाग्य है, जो आज आचार्यश्री पधारे। हम आपका हार्दिक स्वागत करते है और विश्वास दिलाते है कि यहाँ ३-४ चातुर्मास होते हुए भी शाति बनी रहेगी।"

जैनेतर बन्धु भी भक्ति में

आचार्य प्रवर को दूर से ही देखकर ड्यूटी पर नियुक्त एक ट्रेफिक पुलिस मैन अपने ऊँचे स्थान से उतरा। उसने अत्यन्त नम्र भाव से वन्दन किया। रास्ते पर सैकडो जेनेतर वन्धुओ—मुसलमान, सिक्ख, सिंधी और वैष्णव बन्धुओ ने भी वहुत ही भाव-भक्ति से वन्दन-नमस्कार किया। कई जगह आचार्यश्री के दर्शन हेतु वृद्ध, अपग व छोटे वच्चो को शोभायात्रा के मार्ग पर लाया गया। उन्होंने भक्ति-भावना से दर्शन किये। आचार्यश्री ने उन्हे "मगल पाठ" सुनाया। भव्य शोभा-यात्रा के कारण कई वार ट्रैफिक व्यवस्था में व्यवधान भी हुआ।

फूल खिल रहे हैं, अमृत झर रहा है

शुद्ध सयम पालन की तेजस्विता से युक्त कांतिमान तपोमय मुख। वोलते है तो भक्तो को ऐसा लगता है मानो पुष्प विखर रहे है, अमृत वरस रहा है। सैकडो छोटे एव वडे जैन-जैनेतर वन्धु आ रहे है। सन्त चरणो को अपने मस्तक से छूकर असीम आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। अपने आपको धन्य अनुभव कर रहे हैं।

अल्पतम का भी वहुमत

महाविद्यालय के युवक, भारत के भावी भाग्य विधाता, फैशन के दूत,

उपर्युक्त चर्चा के समय कुछ स्थानीय वन्धु भी आचार्यश्री के समक्ष वैठे हुए थे। आचार्यश्री द्वारा कथित भिक्षा-विधि को सुनकर वे बडे आश्चर्य मे पड गये और उनमे से एक वन्धु ने कहा—"महाराज, आपका नियम तो बडा कठोर है। इतनी अच्छी कथा-वार्ता सुनाने के वाद भी आप तो कोई भेंट-पूजा नही लेते है। यहाँ तक कि भोजन के लिए भी किसी एक व्यक्ति पर भार रूप नही वनते है। आप हमारे कृष्ण-मन्दिर पर चलकर ठहरिये। वहाँ कुछ अधिक लोग आपके दर्शन का लाभ ले सकेगे।"

आचार्यश्री ने कहा—"हमे पता नही था कि यहाँ कोई मन्दिर भी है, नही तो हम वही ठहर जाते। जो सन्त भिक्षा लेने गए है वे आ जाएँगे तव वहाँ चला जा सकेगा।" भिक्षा निवृत्ति के पश्चात् मध्याह्न के समय आचार्यश्री कृष्ण मन्दिर पधार गए, जहाँ ऊपर की मजिल पर एक वैष्णव सन्त ठहरे हुए थे। नीचे के हिस्से मे आचार्यश्री सन्त-समुदाय सहित विराज गए।

मध्याह्न वेला मे सन्तो को अध्ययन करवा रहे थे, तव उत्सुकतावश कुछ ग्रामीण व्यक्ति भी आकर वैठ गए। आचार्यश्री ने विषय को उनके अनुकूल ढाल दिया और जैन धर्म के तथा साधु-चर्या के कुछ नियमो को उनके समक्ष रखा। सभी आगत व्यक्ति इस प्रकार के उत्कृष्ट त्याग-मार्ग के स्वरूप-वोध से अत्यन्त प्रभावित हुए और अपने सन्तो की लोभ-वृत्ति एव कमजोरियो का चिट्ठा रखने लगे। इतने मे एक वृद्ध महिला (खातिन), जो आचार्यश्री के कुछ मगलवचनो को सुनकर अपने घर चली गई थी, एक वर्तन मे कुछ पके हुए मधुर आम्र फल लेकर आई और वोली—"लो महाराज! थोडा आम चूस लो।"

आचार्य देव ने वडे मधुर शब्दो मे उस वृद्धा को समझाते हुए कहा—"माँ साहव, हम लोग आम नही चूसते हैं। चूसना तो दूर रहा हम आम, आदि किसी भी कच्ची वनस्पति या पकी हुई भी, जिसमे वीज होता है, उसको एव अनाज आदि को छूते भी नही है। यदि भिक्षा देते समय भी कोई इन्हे छू दे तो उस रोज उस घर से भिक्षा नही लेते हैं। आपकी भावना अच्छी है, किन्तु ये फल हमारे काम नही आ सकते हैं।"

आपके चातुर्मास मे कितना खर्च होता है

उसी समय वहाँ रतलाम के कुछ श्रद्धानिष्ठ श्रावक भी दर्शनार्थ पहुँच गए। रात्रि-चर्चा के सिलसिले मे उन श्रावको के समक्ष ही एक स्थानीय वन्धु ने आचार्यश्री की वाणी एव त्याग से प्रभावित होकर पूछा—"महाराज! आपके चौमासे मे कितना खर्च आता है?"

आचार्य देव ने हल्की-सी मुस्कान के साथ कहा—"हमारे चातुर्मास मे

वाचन एवं चौपाई तथा सध्या प्रश्नोत्तर आदि के कार्यक्रम रहते है। तदनुसार इस वर्षावास मे भी उक्त सभी कार्यक्रमो का निर्बाध अनुशीलन एव परिशीलन होता रहा। इसकी अनूठी आकर्षकता से उपासको की सख्या निरन्तर बढती ही जा रही थी। इन्दौर के इतिहास मे त्याग-प्रत्याख्यानो तथा तपस्याओ का नया कीर्तिमान स्थापित हुआ। जनता के आग्रह से आप्लावित होकर आचार्य देव स्वय सैकडो घरो मे भिक्षावृत्ति हेतु पधारे, जहाँ अनेको श्रद्धालु नर-नारियों ने गुरुमत्र—शुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण किया। त्याग-प्रत्याख्यानो द्वारा जीवन-निर्माण के क्षेत्र मे माननीय वकील साहब श्री रोशनलालजी खाबिया तथा श्री भूपराजजी नलवाया के सुपुत्र ने अनूठे कीर्तिमान स्थापित किये। दोनो बन्धुओ ने आजीवन क्रोध नही करने की प्रतिज्ञा ली।

इस सामान्य चर्चा के अतिरिक्त आचार्य देव के इन्दौर वर्षावास के कुछ उल्लेखनीय प्रसग भी थे, इनमे एक था वयोवृद्ध सन्त तपोमूर्ति श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० का गर्म जल के आधार पर इकतीस दिन का उग्र तपश्चरण। उस तपश्चरण की मुख्य विशेषता थी कि इतने दीर्घ तपश्चरण काल के होते हुए भी तथा वयोवृद्ध शरीर के होते हुए भी वे सदा अप्रमत्त भाव से अपने स्वाध्याय तथा लेखन-कार्य मे ही लीन रहते। जब कभी उन्हे कोई कहता—"महाराज साहब, कुछ विश्राम भी तो किया करो।" तो उनका छोटा-सा उत्तर होता—"शास्त्रीय वाणी के लेखन मे समय अच्छा कट जाता है, तपस्या सोरी होती है, पडे-पडे दिन नही कटता है।"

इसी प्रकार वयोवृद्ध तपस्विनी महासतीजी श्री राजकुंवरजी ने भी अप्रमत्त भावपूर्वक बत्तीस दिनो का लम्बी अवधि तक गरम जल के आधार पर तपश्चरण किया।

दूसरा प्रसग था, श्री शान्तिलालजी बोहरा की मातेश्वरी श्रीमती सोहन बाई बोहरा की भागवती दीक्षा का। अपार जन-समूह के समक्ष खालसा कन्या माध्यमिक विद्यालय के विशाल प्रांगण मे आचार्य देव ने उन्हे विधिपूर्वक दीक्षा मत्र के द्वारा दीक्षित किया। आचार्य देव के आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् चातुर्मास काल मे दीक्षा का श्रीगणेश यही से होता है, जो आगे के प्रायः प्रत्येक चातुर्मासिक क्षेत्र मे अनवरत गतिशील रहा।

कुछ प्रसग थे राजनेताओं का प्रवचन श्रवणार्थ आना तथा आचार्य देव के प्रवचन एव व्यक्तित्व से प्रभावित होना।

दिनाक ११-७-६४ को मध्यप्रदेश के योजना मत्री श्री मिश्रीलालजी गगवाल तथा खाद्यमत्री श्री गौतमजी शर्मा आचार्य देव के प्रवचन-श्रवणार्थ उपस्थित हुए। आचार्य देव ने जन-जागृति मे व्यष्टि से समष्टि का निर्माण

सिनेमा-शौकीन, विविध वेश-भूषा और विविध रुचि के व्यक्ति जिनकी प्राय धर्म स्थान मे उपस्थिति नगण्य होती है, वे भी अधिक सख्या मे है। क्या वे किसी भ्रम से यहाँ आ गये हैं, अथवा जादू हुआ है ?

परलोक-इहलोक दोनों का सुधार

लोग कहते है जैनियो की सख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है, किन्तु यहाँ इसके विपरीत ही मालूम हो रहा है। अनेको भाई अपने को नये जैनी कहते हुए पाये गये। वे आचार्यश्री को साधुवाद दे रहे थे, "हमारा धन्य भाग्य है जो आचार्यश्री मध्यप्रदेश मे पधारे। दर्शन हुए, वाणी सुनी वह मन मे बैठ गई और हम उबर गये, सुधर गये, धर्मपाल जैन बन गये।" एक भाई ने तो यहाँ तक कहा कि शराब छोड देने से मेरे गृहस्थ जीवन की काया ही पलट गई है। पहले प्रतिदिन घर मे कलह हुआ करता था, अब शाति रहती है। पहले पाई-पाई के लिए बच्चे तरसा करते, क्रन्दन और रुदन मचा रहता था। अब कोई ऐसी बात नही, दोनो समय भोजन मिलता है। सचमुच सुरा, सुन्दरी, शिकार छोडना आनन्द को निमत्रण देना है।

इस प्रकार भव्यता एव आकर्षकता को लिए हुए शोभायात्रा राज मोहल्ला के नवनिर्मित "खालसा कन्या माध्यमिक विद्यालय" के विशाल प्रागण मे निर्मित प्रवचन मण्डप मे पहुँचकर विशाल सभा के रूप मे परिणित हो गई। आचार्यश्री सन्त वृन्द द्वारा याचित पाटे पर विद्यालय के बराण्डे मे आसीन हुए। विशाल प्रवचन मण्डप श्रोताओ से परिव्याप्त था। स्थान की अपर्याप्तता के कारण अनेक व्यक्ति मण्डप के बाहर खडे थे। अनेक वक्ताओ द्वारा स्वागत-सुमन समर्पित करने के पश्चात् आचार्य देव ने स्वागत शब्द के निर्वचन के साथ चातुर्मास काल मे समतापूर्ण व्यवहार के प्रति सभी श्रोताओ को सावधान करते हुए मगल प्रवचन के रूप मे अपना मार्मिक उद्बोधन दिया। अनन्तर मगलपाठ श्रवण कर आगत अपार भीड विसर्जित हुई।

जिन व्यक्तियो के मन मे सशय के बादल मण्डरा रहे थे कि लोग आएँगे कि नही, सहसा इतनी अपार भीड देखकर उन्हे आचार्य देव के जादू भरे प्रभाव से आश्चर्यचकित रह जाना पडा। उनका हृदय हर्षातिरेक से उछलने लगा और स्वागतार्थ जाने वालो को निषेध करने वालो की मन स्थिति तो यह सब देखकर कैसी हुई होगी, इसका अनुमान तो पाठक स्वय ही लगा सकते है। अस्तु, आचार्य देव का इन्दौर प्रवेश एव वर्षावास का आरम्भ अत्यन्त मगलरूप रहा।

इन्दौर चातुर्मास के उल्लेखनीय प्रसंग

सामान्यतया वर्षावास मे प्रात. प्रार्थना एव प्रवचन, मध्याह्न मे शास्त्र-

महात्मा बुद्ध और गाधी, नेहरू जैसी विभूतियो को पैदा किया है, लेकिन वर्त-मान मे भारतवर्ष चारित्रिक दृष्टि से अन्य देशो से गिरा हुआ है ।

"जिस प्रकार बरसात का पानी उचित जगह गिरने पर ही मोती वन सकना है उसी प्रकार सन्त-महात्माओ का असर भी योग्य व्यक्तियो पर ही पड सकता है, लेकिन वास्तव मे देखा जाय, तो हम योग्य नही है । हमारे मन मे योग्यता नही है । इसीलिए प्रभाव नही पडता है । समाज को ऊँचा नही उठाया जा सकता है । जैसा कि आचार्यश्री ने कहा कि वात्सल्य और करुणा जव तक आन्तरिक हृदय मे नही बहेगी तव तक सच्ची सेवा नही हो सकती । राजतत्र और धर्मतत्र दोनो प्रयास करे, तो भारत का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है ।

"परसो की बात है—प्रधानमत्री श्री लालवहादुर शास्त्री ने कहा कि 'प्रत्येक मंत्री को गॉव-गॉव जाकर दु.खी मानव की स्थिति का अवलोकन करना चाहिए ।' मैं एक गॉव गया । वहॉ पर मेहतर, चमार, किसान, मजदूर, माली, दर्जी, आदि सबसे मिला । मैं आपको एक दर्दभरी घटना वताना चाहता हूँ । मै वहॉ एक माली के मकान पर भी गया था । उसमे तीन व्यक्ति थे । बच्चे नही थे । उनके पास २ थाली, १ डेगची, १ चम्मच, और एक तवा और कुल जायदाद (सम्पत्ति) १५)रु की होगी । पहनने के कपडे भी उनके बदन पर नही थे । उसके सिवाय १ फटी धोती, और एक फटा लहगा था । प्रात· का भोजन तैयार था लेकिन साय के लिए अनाज-दाल, आदि नही थे । कैसी विचित्र दशा थी उसकी । आज लाखो मानव ऐसा ही दुखी जीवन विता रहे है । इनके जीवन को ऊँचा उठाने का कार्य सन्त महात्मा ही कर सके है और कर भी रहे है । यदि इनके जीवन को सुधारने का प्रयास नही हुआ, तो भविष्य मे देश मे बहुत भय-कर क्राति होने का डर है । इसलिए आचार्यश्री जैसे महापुरुषो की वाणी सुनने का लाभ मिलता है, तो उसका लाभ हर व्यक्ति को उठाना चाहिये । केवल भाषण सुनने से कोई लाभ नही हो सकता है । यदि महापुरुषो की वाणी का लाभ लेकर उसे जीवन मे उतारने का प्रयास किया जावे, तो जीवन तथा राष्ट्र का कल्याण हो सकता है ।"

अन्त मे आचार्यश्री जी का आभार मानते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया ।

मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्करजी से विचार-विमर्श

तीसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय प्रसग था अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के अधिवेशन के तत्त्वावधान मे होने वाले धर्मपाल-सम्मेलन के उद्घाटन हेतु मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्करजी का आगमन और आचार्यश्री से विचार-विमर्श ।

सिनेमा-शौकीन, विविध वेश-भूषा और विविध रुचि के व्यक्ति जिनकी प्राय: धर्म स्थान मे उपस्थिति नगण्य होती है, वे भी अधिक सख्या मे है। क्या वे किसी भ्रम से यहाँ आ गये है, अथवा जादू हुआ है ?

परलोक-इहलोक दोनों का सुधार

लोग कहते है जैनियो की सख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है, किन्तु यहाँ इसके विपरीत ही मालूम हो रहा है। अनेको भाई अपने को नये जैनी कहते हुए पाये गये। वे आचार्यश्री को साधुवाद दे रहे थे, "हमारा धन्य भाग्य है जो आचार्यश्री मध्यप्रदेश मे पधारे। दर्शन हुए, वाणी सुनी वह मन मे बैठ गई और हम उबर गये, सुधर गये, धर्मपाल जैन बन गये।" एक भाई ने तो यहाँ तक कहा कि शराब छोड देने से मेरे गृहस्थ जीवन की काया ही पलट गई है। पहले प्रतिदिन घर मे कलह हुआ करता था, अब शाति रहती है। पहले पाई-पाई के लिए बच्चे तरसा करते, क्रन्दन और रुदन मचा रहता था। अब कोई ऐसी बात नही, दोनो समय भोजन मिलता है। सचमुच सुरा, सुन्दरी, शिकार छोडना आनन्द को निमत्रण देना है।

इस प्रकार भव्यता एव आकर्षकता को लिए हुए शोभायात्रा राज मोहल्ला के नवनिर्मित "खालसा कन्या माध्यमिक विद्यालय" के विशाल प्रागण मे निर्मित प्रवचन मण्डप मे पहुँचकर विशाल सभा के रूप मे परिणित हो गई। आचार्यश्री सन्त वृन्द द्वारा याचित पाटे पर विद्यालय के बराण्डे मे आसीन हुए। विशाल प्रवचन मण्डप श्रोताओ से परिव्याप्त था। स्थान की अपर्याप्तता के कारण अनेक व्यक्ति मण्डप के बाहर खडे थे। अनेक वक्ताओ द्वारा स्वागत-सुमन समर्पित करने के पश्चात् आचार्य देव ने स्वागत शब्द के निर्वचन के साथ चातुर्मास काल मे समतापूर्ण व्यवहार के प्रति सभी श्रोताओ को सावधान करते हुए मगल प्रवचन के रूप में अपना मार्मिक उद्बोधन दिया। अनन्तर मगलपाठ श्रवण कर आगत अपार भीड विसर्जित हुई।

जिन व्यक्तियो के मन मे सशय के बादल मण्डरा रहे थे कि लोग आएँगे कि नही, सहसा इतनी अपार भीड देखकर उन्हे आचार्य देव के जादू भरे प्रभाव से आश्चर्यचकित रह जाना पडा। उनका हृदय हर्षातिरेक से उछलने लगा और स्वागतार्थ जाने वालो को निषेध करने वालो की मन:स्थिति तो यह सब देखकर कैसी हुई होगी, इसका अनुमान तो पाठक स्वय ही लगा सकते है। अस्तु, आचार्य देव का इन्दौर प्रवेश एव वर्षावास का आरम्भ अत्यन्त मगलरूप रहा।

इन्दौर चातुर्मास के उल्लेखनीय प्रसंग

सामान्यतया वर्षावास मे प्रात प्रार्थना एव प्रवचन, मध्याह्न मे शास्त्र-

महात्मा बुद्ध और गाधी, नेहरू जैसी विभूतियो को पैदा किया है, लेकिन वर्तमान मे भारतवर्ष चारित्रिक दृष्टि से अन्य देशों से गिरा हुआ है ।

"जिस प्रकार बरसात का पानी उचित जगह गिरने पर ही मोती बन सकता है उसी प्रकार सन्त-महात्माओ का असर भी योग्य व्यक्तियो पर ही पड सकता है, लेकिन वास्तव मे देखा जाय, तो हम योग्य नही है । हमारे मन मे योग्यता नही है । इसीलिए प्रभाव नही पड़ता है । समाज को ऊँचा नही उठाया जा सकता है । जैसा कि आचार्यश्री ने कहा कि वात्सल्य और करुणा जब तक आन्तरिक हृदय में नही बहेगी तब तक सच्ची सेवा नही हो सकती । राजतत्र और धर्मतत्र दोनो प्रयास करे, तो भारत का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है ।

"परसो की बात है—प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा कि 'प्रत्येक मत्री को गॉव-गॉव जाकर दु:खी मानव की स्थिति का अवलोकन करना चाहिए ।' मैं एक गाँव गया । वहॉ पर मेहतर, चमार, किसान, मजदूर, माली, दर्जी, आदि सबसे मिला । मैं आपको एक दर्दभरी घटना बताना चाहता हूँ । मैं वहॉ एक माली के मकान पर भी गया था । उसमें तीन व्यक्ति थे । बच्चे नही थे । उनके पास २ थाली, १ डेगची, १ चम्मच, और एक तवा और कुल जायदाद (सम्पत्ति) १५) रु. की होगी । पहनने के कपडे भी उनके बदन पर नही थे । उसके सिवाय १ फटी धोती, और एक फटा लहगा था । प्रात: का भोजन तैयार था लेकिन साय के लिए अनाज-दाल, आदि नही थे । कैसी विचित्र दशा थी उसकी । आज लाखो मानव ऐसा ही दुखी जीवन बिता रहे है । इनके जीवन को ऊँचा उठाने का कार्य सन्त महात्मा ही कर सके है और कर भी रहे है । यदि इनके जीवन को सुधारने का प्रयास नही हुआ, तो भविष्य मे देश मे बहुत भयकर क्राति होने का डर है । इसलिए आचार्यश्री जैसे महापुरुषो की वाणी सुनने का लाभ मिलता है, तो उसका लाभ हर व्यक्ति को उठाना चाहिये । केवल भाषण सुनने से कोई लाभ नही हो सकता है । यदि महापुरुषो की वाणी का लाभ लेकर उसे जीवन मे उतारने का प्रयास किया जावे, तो जीवन तथा राष्ट्र का कल्याण हो सकता है ।"

अन्त मे आचार्यश्री जी का आभार मानते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया ।

मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्करजी से विचार-विमर्श

तीसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय प्रसंग था अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के अधिवेशन के तत्त्वावधान मे होने वाले धर्मपाल-सम्मेलन के उद्घाटन हेतु मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्करजी का आगमन और आचार्यश्री से विचार-विमर्श ।

सिनेमा-शौकीन, विविध वेश-भूषा और विविध रुचि के व्यक्ति जिनकी प्राय धर्म स्थान मे उपस्थिति नगण्य होती है, वे भी अधिक सख्या मे है। क्या वे किसी भ्रम से यहाँ आ गये हैं, अथवा जादू हुआ है ?

परलोक-इहलोक दोनो का सुधार

लोग कहते है जैनियो की सख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है, किन्तु यहाँ इसके विपरीत ही मालूम हो रहा है। अनेको भाई अपने को नये जैनी कहते हुए पाये गये। वे आचार्यश्री को साधुवाद दे रहे थे, "हमारा धन्य भाग्य है जो आचार्यश्री मध्यप्रदेश मे पधारे। दर्शन हुए, वाणी सुनी वह मन मे बैठ गई और हम उबर गये, सुधर गये, धर्मपाल जैन बन गये।" एक भाई ने तो यहाँ तक कहा कि शराब छोड देने से मेरे गृहस्थ जीवन की काया ही पलट गई है। पहले प्रतिदिन घर मे कलह हुआ करता था, अब शाति रहती है। पहले पाई-पाई के लिए बच्चे तरसा करते, क्रन्दन और रुदन मचा रहता था। अब कोई ऐसी बात नही, दोनो समय भोजन मिलता है। सचमुच सुरा, सुन्दरी, शिकार छोडना आनन्द को निमत्रण देना है।

इस प्रकार भव्यता एव आकर्षकता को लिए हुए शोभायात्रा राज मोहल्ला के नवनिर्मित "खालसा कन्या माध्यमिक विद्यालय" के विशाल प्रागण मे निर्मित प्रवचन मण्डप मे पहुँचकर विशाल सभा के रूप मे परिणित हो गई। आचार्यश्री सन्त वृन्द द्वारा याचित पाटे पर विद्यालय के बराण्डे मे आसीन हुए। विशाल प्रवचन मण्डप श्रोताओ से परिव्याप्त था। स्थान की अपर्याप्तता के कारण अनेक व्यक्ति मण्डप के बाहर खडे थे। अनेक वक्ताओ द्वारा स्वागत-सुमन समर्पित करने के पश्चात् आचार्य देव ने स्वागत शब्द के निर्वचन के साथ चातुर्मास काल मे समतापूर्ण व्यवहार के प्रति सभी श्रोताओ को सावधान करते हुए मगल प्रवचन के रूप मे अपना मार्मिक उद्बोधन दिया। अनन्तर मगलपाठ श्रवण कर आगत अपार भीड विसर्जित हुई।

जिन व्यक्तियो के मन मे सशय के बादल मण्डरा रहे थे कि लोग आएँगे कि नही, सहसा इतनी अपार भीड देखकर उन्हे आचार्य देव के जादू भरे प्रभाव से आश्चर्यचकित रह जाना पडा। उनका हृदय हर्षातिरेक से उछलने लगा और स्वागतार्थ जाने वालो को निषेध करने वालों की मन स्थिति तो यह सब देखकर कैसी हुई होगी, इसका अनुमान तो पाठक स्वय ही लगा सकते हैं। अस्तु, आचार्य देव का इन्दौर प्रवेश एव वर्षावास का आरम्भ अत्यन्त मगलरूप रहा।

इन्दौर चातुर्मास के उल्लेखनीय प्रसंग

सामान्यतया वर्षावास मे प्रात. प्रार्थना एव प्रवचन, मध्याह्न मे शास्त्र-

करने तक कार्य ही कर सकता हूँ। इससे आगे सभी दायित्व आप जैसे दायित्व-पूर्ण अधिकार सम्पन्न व्यक्तियो तथा सवर्ण लोगो के है। जब उनका जीवन क्रम बदल जाये और वे उच्च आदर्शों के अनुसार अपने आपको ढालने के लिए तत्पर हो, तो उच्चकुलीन कहलाने वाले लोगो का कर्त्तव्य है कि वे उन्हे अपने समान स्तर पर बैठने का अधिकार दे तथा आप जैसे राजनेताओ का कर्त्तव्य है कि उन्हे जीवन-निर्माण के लिए यथोचित सहकार दे।"

राज्यपाल महोदय ने आचार्य देव के मार्ग-दर्शन को स्वीकार करते हुए कहा—"आचार्यश्री, आपका कथन यथार्थ है। मैं इसके लिये अवश्य प्रयत्नशील रहूँगा। वास्तव मे यह कार्य आपका नही, सरकार का है। आपश्री तो अपनी जन-कल्याण की भावनाओं से प्रेरित हो यह कार्य कर रहे हैं अन्यथा इसे सरकार को ही सम्भालना चाहिये। रहा प्रश्न सवर्ण बन्धुओ का, वे तो आपश्री के पास ही अधिक आते है, अतः आपश्री ही उन्हे उद्बोधन देकर इन्हे अपनाने के लिये तैयार कर सकते है। आप जैसे महान् सतो के त्याग व चरित्र का ही प्रभाव है कि इस प्रदेश के अन्दर इस तरह क्रातिकारी परिवर्तन हुए। साधु सन्त ही भाव परिवर्तन मे विशेष सहयोगी हो सकते है।"

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—"मेरे उद्बोधन अथवा प्रेरणा का परिणाम तो आपके समक्ष है। और आज आपको भी सम्भवत· उसी के परिप्रेक्ष्य मे यहाँ आना पडा। मेरे सम्पर्क मे जितने व्यक्ति आते है, उन्हे तो मैं उद्बोधित करने का प्रयास करता हूँ, किन्तु जन-कल्याण की इस प्रवृत्ति को व्यवस्थित रूप देने के लिये आप प्रादेशिक स्तर पर कुछ ठोस कदम उठाएँ, यही मेरा सकेत है।"

इस प्रकार लगभग २० मिनिट की यह चर्चा थी, किन्तु उसका परिप्रेक्ष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। और वह अत्यन्त शालीन एव सौजन्यपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुई।

धर्मपाल प्रवृत्ति के बढ़ते चरण

चातुर्मासकालीन विशेष प्रसगो मे चौथा था धर्मपाल जागरण को व्यवस्थित एव सुनिश्चित रूप देना। सम्पूर्ण वर्षावास मे समीपवर्ती तथा दूरवर्ती धर्मपाल वन्धुओ का प्रायः प्रतिदिन आवागमन वना रहता था। आगत धर्मपाल वन्धु अपने साथ कुछ नवीन वन्धुओ को भी लाते और उन्हे दुर्व्यसन-मुक्त करवा कर अपनी कोटि, "धर्मपाल" मे सम्मिलित कर लेते, किन्तु इन सवके साथ उन प्रमुख धर्मपाल वन्धुओ ने सम्पूर्ण जाति को जागृत करने हेतु, अपनी जातीयता से अनुवन्धित व्यक्तियो के लिये सूचना-पत्र प्रकाशित किया। उसमे सम्पूर्ण क्षेत्रवर्ती गुजराती वलाई वन्धुओ को जीवन-निर्माण का पावन निर्देश एव

करने के सकल्प से ही सफलता मिल सकती है, आदि जीवन के कर्त्तव्यो के प्रति सजगता का उद्‌बोधन दिया। आचार्य देव के प्रवचन से प्रभावित मन्त्रीद्वय ने प्रवचन समाप्ति पर अपने भावनात्मक श्रद्धासुमन आचार्य देव के चरणो मे सर्मपित किये, जिनके सक्षिप्त आकलन निम्न है —

जैन धर्म ने देश को बहुत कुछ दिया है

आचार्य प्रवर के प्रवचन के पश्चात् खाद्य मत्री श्री गौतमजी शर्मा ने अपने भाषण मे कहा—"मुझे महाराजश्री की वाणी सुनने और दर्शन करने का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ। महाराजश्री ने अपने प्रवचन मे एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण मूलभूत वात कही है कि समाज की रचना जन से होती है। अगर जन-जन अपने आप मे आध्यात्मिक दृष्टि से रहकर अपना जीवन-यापन करता है, तो वह अपने आपको और साथ ही समाज को ऊँचा उठा सकता है। अत जन-जन मे आध्यात्मिकता का पाया जाना आवश्यक है।

"मैं मानता आया हूँ कि हमारे देश को जैन धर्म ने वहुत कुछ दिया है और आज हम जो कुछ भी पा रहे हैं, मूल रूप मे ये वही सिद्धात है, जो कि महावीर स्वामी ने दिये है।

"राजनीति मे समाजवाद भी अपरिग्रह की भावना का दूसरा रूप है। व्यक्तिश त्याग की भावना लेकर अपरिग्रह को जीवन मे लाना ही वास्तविक समाजवाद होता है। विद्वान् सत महात्माओ के सुदपदेश से जन-जन मे त्याग की भावना पैदा होकर अपरिग्रहवाद जीवन मे उतरे तो सच्चा समाजवाद स्थापित होकर मानव ऊपर उठ सकता है।"

अन्त मे आभार मानते हुए उन्होने अपना भाषण समाप्त किया।

इसी प्रकार दिनाक २४ ८ ६४ को केन्द्रीय इस्पात एव खान उप मत्री श्री प्रकाशचन्दजी सेठी भी आचार्यश्री के प्रवचन-पान हेतु उज्जैन के लब्धप्रतिष्ठ उद्योगपति एव आचार्यश्री के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ श्रावक श्री गोकुलचन्दजी सूर्या के साथ उपस्थित हुए। आचार्य देव का उस रोज प्रवचन का विषय चल रहा था—"वात्सल्य एव करुणा के द्वारा ही मानवता की सच्ची सेवा साधी जा सकती है।" आचार्य देव के प्रवचन-पीयूष के पान के पश्चात् श्री सेठी जी ने अपने भाषण मे कहा कि "मुझे आचार्यश्री के दर्शन करने एवं वाणी सुनने का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ। अभी आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण वात कही है कि वात्सल्य एव करुणा के द्वारा ही सच्ची सेवा की जा सकती है। यह वात सभी सन्त-महात्मा कह रहे है। हमारे देश मे आध्यात्मिक महापुरुषो की कमी नही है। भारतवर्ष ऐसा देश है जिसने भगवान् महावीर,

बोरखेडा । धुलाजी, केवलजी, थावरजी, धन्नाजी, गुराडिया । गगारामजी, सीतारामजी, नागदा । पुनाजी, गगारामजी, रारणखेडी । रामजी भूवानजी, ग्राम ढेलची । काजूजी, पीराजी, लक्ष्मीनारायणजी, लेकोडा । हरजी, लसुडिया । नगजीरामजी, कमटाना । गम्भीरजी, गनपतजी, नाथाजी, लिमवास । शोभाराजजी, भलारिया । नानूरामजी, रुगनाथजी, रामाजी, सोनेडा । हीरालालजी, अनोपजी, भटेरा । भूवानजी, आकिया । किशनजी, भरादा । भेराजी, गनपतजी, हीडो । राधुजी, जागीरपुर । नानूरामजी, खेडा । माजगामडनी, नाथाजी, उँकारलालजी, पूनाजी, सडोदा । मागीलालजी, आडेसीगा । भैरूलालजी, बालोदा । मेराजी, गोपालजी, बालारामजी, नायन । सुखरामजी, पीपलौद । दयारामजी, धुलजी, आकिया । बादीरामजी, नदरामजी, बरखेडा । लालाजी, हलाणा । बाबरुजी, बूचाखेडी । धुलजी, रामजी, पालेखेडी । गगारामजी, शकरजी, मताना । देवाजी, नागभिरी । किसनजी, मुनालालजी, सालारखेडी । अमराजी, कुँवरजी, पूवारिया । बगडीरामजी, शकरजी, अमलाबद । शकरलालजी, कानाजी, पलदुना । गोपालजी, चन्देसरा । घासीरामजी, सकरवासा । आकीया धुलाजी नदरामजी, नलवा । भुवानजी, भोकरा । गगारामजी, रावजी, पीपलिया । पीराजी, रुगनाथजी, टावा । हीन्डूजी सावजी, पीपलिया । रूपाजी, सालोदा । नागजीरामजी, डनालडा । हरीगजी नाथुजी, मोरना । अमरजी, भीमपुरा । धुलाजी, नानाखेडी । धुलाजी, सेमलिया । कालूजी, भेसला । गनपतजी, पोसलोड । धनाजी, जोडूमा ।

जिला रतलाम :

घासीरामजी, करमदी । फकीरचदजी, धराड । नन्दरामजी, बीवडोद । नारायणजी, नदाजी, डेलनपुर । हरिरामजी, गुडखेडा । भवपनजी, नाथाजी, वेराखेडी । मेराजी, गनवानिया । नरसिंगजी, मोतीजी, रोहल । रजला, रामचद्रजी, धुलाजी, नानखेडा । ऊँकारलालजी, मन्नालालजी, हीरालालजी, पीपलोदा । उमाजी, जेठाना । रूपाजी, मोतीजी, कवरजी, लिम्बोदिया । नाथाजी, हसराजजी, गअरबाड़िया । नागुजी, ताजखेडा । अमराजी, ताल-खजूरिया । कनीरामजी, सरूपजी, नागुजी, लोगरजी, कड़ाई, अरनीया । गगारामजी, किसनाजी, गुराड़िया । बीसनजी, पालखेडा ।

जिला इन्दौर देवास :

पटेल पुनाजी, मेराजी, लखमनखेडी । जामुदी, मोहनलालजी, सीधाजी, सोलसदा । रुगनाथजी, सकासीरामजी, जेरामजी, पीराजी, वीसाखेडी । कालूरामजी सरुज । हीरालालजी, सालोदा । धुलजीरामजी, पानोड । धुलजी, हयुनीया । नाथूलालजी, गनपतजी, दयाखेडा । गोरधनलालजी, वाक्लीयाखेडा । सीधाजी, कुँवरजी, हसाखेडी । शंकरलालजी, खामेदा । परतावजी, रामजी,

माननीय श्री पाटस्करजी धर्मपाल सम्मेलन का उद्घाटन कार्य सम्पन्न कर श्रद्धेय आचार्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए और अत्यन्त विनम्र शब्दो मे कहने लगे "महाराजश्री, आपने दलितोद्धार का यह महत्त्वपूर्ण कार्य अपने हाथ मे लिया, यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है। महात्मा गाधी ने जीवन पर्यन्त इसके लिए सघर्ष किया, किन्तु उसमे परिपूर्ण सफलता नही मिल सकी। मैं मानता हूँ कि सत्ता के द्वारा जो नही किया जा सकता है, वह धर्म के द्वारा अथवा अध्यात्म की सत्ता के द्वारा किया जा सकता है। भारतीय सस्कृति मे अध्यात्म की सत्ता सर्वोपरि रही है तथा हमारी सामाजिक उत्क्रान्तियाँ अध्यात्म से ही उत्प्रेरित एव अनुवन्धित रही हैं।

मैं आपश्री का आभार मानता हूँ कि आपश्री ने दलितोद्धार का एक महत्त्वपूर्ण मिशन हाथ मे लिया है। आज ऐसे धर्म की ही आवश्यकता है, जो मानव मात्र के अभ्युदय एव कल्याण को साध सके। मैं तो धर्म सज्ञा उसी को देता हूँ, जिसमे प्राणिमात्र का कल्याण-अभ्युदय निहित हो। आपने जैन धर्म के महान् उद्देश्यो, सिद्धान्तो के आधार पर इन दलित वर्ग के वन्धुओ मे शुद्ध सस्कारो का वीजारोपण कर उन्हे ऊपर उठाने का जो स्तुत्य प्रयत्न किया है, यह मानव जाति के लिए एक आदर्श है। इसे निरन्तर प्रगतिपथ पर वढते रहने की आवश्यकता है। मैं अपनी वैयक्तिक एव राजनैतिक स्थिति से भी इस कार्य मे यथाशक्ति सहयोग की भावना रखता हूँ। और आपश्री मेरे लिए कुछ निर्देश फरमावे।"

श्री पाटस्करजी के विचारो का सक्षिप्त उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने अति मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे अपने विहार अनुभव व विश्वशाति के अमोघ उपाय बताते हुए कहा कि "वर्तमान समस्या राष्ट्र की नही वल्कि व्यक्ति की है। व्यक्ति यदि अपने आप मे सुलझ जाये, तो राष्ट्र के समक्ष कोई समस्या ही न रह जाये। वर्तमान मे वने हुए लगभग १५००० धर्मपाल जैनो के अन्दर जो क्रातिकारी परिवर्तन हुए, उनका भी आचार्यश्री ने दिग्दर्शन कराया। आचार्यश्री ने प्रसगवशात् यह भी कहा कि "यद्यपि साधु समाज के पास कोई सत्ता नही है, फिर भी वे भाव-परिवर्तन मे विश्वास रखते हैं। कानून और दण्ड द्वारा जो सुधार नही किया जा सकता, वह प्रेम व स्नेह के द्वारा भाव परिवर्तन से किया जा सकता है। मैं तो स्वकल्याण के साथ जिस विश्व-कल्याण की भावना को लेकर घर से निकला हूँ, उसके अनुसार ही प्रयत्नशील हूँ। जैन धर्म वर्गभेद एव वर्णभेद से ऊपर उठकर मानव मात्र ही नही, प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है और मैं उसी सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य मे कर्त्तव्य भावना से प्रेरित हो यथाशक्ति कुछ करने का प्रयास करता हूँ। इसे मैं समाज सेवा की सज्ञा न देकर अपने सात्विक कर्तव्य से ही अनुवन्धित करता हूँ इसे मैं अपनी आत्म-साधना की मर्यादाओ मे आवद्ध हूँ। अत उपदेश, आदि के द्वारा उन लोगो के हृदय-परिवर्तन के साथ हीन सस्कारो का निष्कासन तथा पवित्र सस्कारो का आरोपण

हुआ यह कि स्थानीय बन्धुओं के अत्यन्त आग्रह से आचार्य देव स्वयं भिक्षावृत्ति हेतु पधारते थे। प्रवचन के पश्चात् दूरवर्ती मोहल्लो मे सभी व्यक्तियो के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए जाना पड़ता था। परिणामतः गोचरी के आने मे प्रायः एक तो बज ही जाते थे और कभी-कभी तो २ एव ३ तक बज जाते।

इसी भिक्षावृत्ति के प्रसंग से आचार्य देव एक दिन राजवाड़ा स्थित महावीर भवन (जिसमे श्री सौभाग्यमलजी, श्री प्रतापमलजी आदि सन्त विराज रहे थे) के सामने से गुजर रहे थे। उधर सामने से श्री सौभाग्यमलजी म० सा० भी वैद्यजी के यहाँ से औषधि लेकर आ रहे थे। मार्ग मे ही श्री सौभाग्यमलजी म० सा० ने आचार्य देव को अपनी भुजाओं मे भरते हुए कहा—"महावीर भवन मे पधारो।" आचार्य देव ने सहज स्मिति के साथ कहा—"चलिये, मेरा महावीर भवन से कोई द्वेष थोड़े ही है। पहले भी इक्कीस दिन तक वहाँ रहकर गया हूँ।" कहते हुए आचार्य देव अन्दर चले गये। अन्दर जाने पर श्री सौभाग्यमलजी म० सा० ने उत्सुकता दिखाते हुए कहा—"मुझे आपसे बहुत ही बाते करनी है।"

आचार्य देव ने कहा—"मुझे इसमे कोई आपत्ति नही है। मैं विचार-विमर्श करने को सदैव तत्पर हूँ, किन्तु अभी तो भिक्षा मेरे पास है और समय अधिक हो गया है। सभी सन्त क्षुधित होगे। अतः कभी अवकाश के समय ही वार्ता हो सकेगी।"

"नही, मैं भी अभी के लिये नहीं कह रहा हूँ। मै स्वयं मध्याह्न मे राजमोहल्ला आऊँगा। वही वार्ता करूँगा।" श्री सौभाग्यमलजी म० सा० ने स्पष्ट किया।

"अवश्य पधारिये, आपका स्वागत है।"

आचार्यश्री संक्षिप्त उत्तर देकर वहाँ से राजमोहल्ला पधार गये।

मध्याह्न मे श्री सौभाग्यमलजी म० सा० अन्य एक-दो सहयोगी सन्तों के साथ राजमोहल्ला खालसा विद्यालय में पधारे और आचार्यश्री से विचार-विमर्श किया।

चर्चा का प्रारम्भ करते हुए आचार्य देव ने ही मुस्कराते हुए कहा—"रतलाम मे आपश्री ने फरमाया कि आप मुझे श्रमण संघ मे लेकर रहेगे। तो अब मुझे श्रमण संघ में लेने का विचार कब का है?"

एक गम्भीर निश्वास के साथ श्री सौभाग्यमलजी म० सा० ने उत्तर दिया—"क्या कहूँ, मैंने आपसे कहा था और उसी विचार के अनुसार मैं अजमेर

माननीय श्री पाटस्करजी धर्मपाल सम्मेलन का उद्घाटन कार्य सम्पन्न कर श्रद्धेय आचार्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए और अत्यन्त विनम्र शब्दो मे कहने लगे "महाराजश्री, आपने दलितोद्धार का यह महत्त्वपूर्ण कार्य अपने हाथ मे लिया, यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है। महात्मा गाधी ने जीवन पर्यन्त इसके लिए सघर्ष किया, किन्तु उसमे परिपूर्ण सफलता नही मिल सकी। मैं मानता हूँ कि सत्ता के द्वारा जो नही किया जा सकता है, वह धर्म के द्वारा अथवा अध्यात्म की सत्ता के द्वारा किया जा सकता है। भारतीय सस्कृति मे अध्यात्म की सत्ता सर्वोपरि रही है तथा हमारी सामाजिक उत्क्रान्तियाँ अध्यात्म से ही उत्प्रेरित एव अनुवन्धित रही हैं।

मैं आपश्री का आभार मानता हूँ कि आपश्री ने दलितोद्धार का एक महत्त्व-पूर्ण मिशन हाथ मे लिया है। आज ऐसे धर्म की ही आवश्यकता है, जो मानव मात्र के अभ्युदय एव कल्याण को साध सके। मैं तो धर्म सज्ञा उसी को देता हूँ, जिसमे प्राणिमात्र का कल्याण-अभ्युदय निहित हो। आपने जैन धर्म के महान् उद्देश्यो, सिद्धान्तो के आधार पर इन दलित वर्ग के वन्धुओ मे शुद्ध सस्कारो का वीजारोपण कर उन्हे ऊपर उठाने का जो स्तुत्य प्रयत्न किया है, यह मानव जाति के लिए एक आदर्श है। इसे निरन्तर प्रगतिपथ पर वढते रहने की आवश्य-कता है। मैं अपनी वैयक्तिक एव राजनैतिक स्थिति से भी इस कार्य में यथाशक्ति सहयोग की भावना रखता हूँ। और आपश्री मेरे लिए कुछ निर्देश फरमावें।"

श्री पाटस्करजी के विचारो का सक्षिप्त उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने अति मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे अपने विहार अनुभव व विश्वशाति के अमोघ उपाय वताते हुए कहा कि "वर्तमान समस्या राष्ट्र की नही वलिक व्यक्ति की है। व्यक्ति यदि अपने आप मे सुलझ जाये, तो राष्ट्र के समक्ष कोई समस्या ही न रह जाये। वर्तमान मे वने हुए लगभग १५००० धर्मपाल जैनो के अन्दर जो क्रातिकारी परिवर्तन हुए, उनका भी आचार्यश्री ने दिग्दर्शन कराया। आचार्यश्री ने प्रसग-वशात् यह भी कहा कि "यद्यपि साधु समाज के पास कोई सत्ता नही है, फिर भी वे भाव-परिवर्तन मे विश्वास रखते है। कानून और दण्ड द्वारा जो सुधार नही किया जा सकता, वह प्रेम व स्नेह के द्वारा भाव परिवर्तन से किया जा सकता है। मैं तो स्वकल्याण के साथ जिस विश्व-कल्याण की भावना को लेकर घर से निकला हूँ, उसके अनुसार ही प्रयत्नशील हूँ। जैन धर्म वर्गभेद एव वर्ण-भेद से ऊपर उठकर मानव मात्र ही नही, प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है और मैं उसी सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य मे कर्त्तव्य भावना से प्रेरित हो यथा-शक्ति कुछ करने का प्रयास करता हूँ। इसे मैं समाज सेवा की सज्ञा न देकर अपने सात्विक कर्तव्य से ही अनुवन्धित करता हूँ इसे मैं अपनी आत्म-साधना की मर्यादाओ मे आवद्ध हूँ। अत उपदेश, आदि के द्वारा उन लोगो के हृदय-परिवर्तन के साथ हीन सस्कारो का निष्कासन तथा पवित्र सस्कारो का आरोपण

घृणा नही है, किन्तु समाज के सभी व्यक्तियों का तो मुंह बंद नही किया जा सकता है। जब वे कुछ गलत प्रचार अथवा वातावरण सुनते है तो उनके मन मे भी कुछ क्षुब्धता का आ जाना स्वाभाविक है, किन्तु उसके लिए मैं जिम्मेदार नही हूँ। हा, मेरी ओर से यदि कुछ आपने सुना हो तो फरमाइये।"

"नही, आपकी ओर से तो ऐसा कुछ भी नही सुना है। आपकी तो धवल कीर्ति दिन-दूनी बढती ही जा रही है।" श्री सौभाग्यमलजी म० सा० ने स्पष्ट किया और कुछ औपचारिक चर्चा के पश्चात् आचार्यश्री से विदा ली। आचार्य देव भी शाला प्रागण से बाहर मुख्य मार्ग तक उन्हे विदा देने पधारे।

विदाई–वेला

अत्यधिक स्नेह, सौजन्य, सौहार्द एवं समन्वयात्मक वातावरण मे आध्यात्मिक उत्क्राति तथा तदद्वारा जन-क्राति की अनूठी एवं अभूतपूर्व लहर प्रसृत कर आचार्य देव ने अपना गौरवशाली ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न किया और वर्षावास समापन के पश्चात् इन्दौर के ही उप नगरों मे भ्रमण करते हुए गीता भवन के प्रमुख एवं कर्मठ कार्यकर्ता बाबा बालमुकुन्दजी के अत्यधिक आग्रह से गीता भवन पधारे।

तत्कालीन विदाई समारोह भी अपनी अनूठी छटा लिये हुए था। यह एक मनोवैज्ञानिक एव दैनिक व्यवहारों से सपुष्ट तथ्य है कि दो-चार घंटे की ट्रेन की यात्रा मे भी जब किसी व्यक्ति से कुछ गहरा परिचय हो जाता है, तो बिछुडने की वेला में दोनो पक्षो की आन्तरिक स्थिति करुणार्द्र हो उठती है। यहाँ तो चार-चार माह की लम्बी अवधि का सयोग और वह भी अपने आराध्य श्रद्धेय का। इस वियोगजन्य वेदना को शब्द तूलिका कैसे अभिव्यक्त कर पाएगी ?

आचार्यश्री के चातुर्मास हेतु नगर-प्रवेश के समय जो दृश्य उपस्थित था उससे विपरीत आज का वातावरण था। नगर प्रवेश के समय दि० १८-७-६४ को नागरिकों मे जो उत्साह, उल्लास, उमग थी, आज वे ही अपने श्रद्धेय पूज्य सतो को विदाई वेला में अश्रुपूरित नयनो से विदाई दे रहे थे। आज सतगण विदा होगे, इस कल्पना मात्र से ही हृदय व्याकुल हो उठे थे। जैसे-जैसे विहार का समय निकट आता जा रहा था, हजारो की जन-मेदनी राजमोहल्ला की ओर बढ़ती जा रही थी। एक बजे के लगभग ५ हजार नर-नारियो की उपस्थिति हो गई थी।

दोपहर के लगभग सवा दो वजे का समय हुआ। सतों के विहार का क्षण निकट आ गया। हजारो नागरिकों ने चरणो मे नतमस्तक हो विदाई दी और

दुर्व्यसनो से मुक्त होने का सशक्त सदेश था। आचार्य देव के वर्षावास हेतु इन्दौर पदार्पण के साथ ही सम्पूर्ण क्षेत्र के प्रमुख धर्मपाल वन्धुओ ने अपने सम्पूर्ण समाज को आग्रह करते हुए निम्न सूचना-पत्र प्रकाशित किया—

श्री पंचान गुजराती बलाइयान की सूचना

"आदरणीय समस्त गुजराती वलाई भाइयो को सूचित करते हुए हर्ष होता है कि पूजनीय महात्मा गाधी की प्रेरणा से हमारे रहन-सहन और खान-पान मे कुछ तवदीली आकर सुधार हुआ, लेकिन फिर भी हम ग्रामीण भाइयो को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है यह दु ख की वात है। लेकिन विशेष हर्ष की वात यह है कि हमारे भाग्योदय से आचार्य प्रवर पूज्य श्री १००८ श्री नानालालजी म० जव नागदा पधारे और नागदा से गुराडिया पधारे तव यहाँ के गुजराती वलाई भाइयो ने आचार्यश्रीजी के चरणो मे प्रार्थना की, हमारा गुजराती वलाई समाज पिछडा हुआ माना जाता है। आपश्री इसका उद्धार करें।

"आचार्य प्रवर ने फरमाया कि आप मास, मदिरा, शिकार, वेश्यागमन, आत्म-हत्या आदि वुरे व्यसनो का प्राणप्रण से पूर्णरूपेण त्याग करे, तो उन्नति हो सकती है। हमने आचार्य प्रवर के आज्ञा के मुताविक चलने की प्रतिज्ञा ली। साथ-ही-साथ आपश्री से गुरु-दीक्षा लेकर जैन धर्म स्वीकार किया और यह निश्चय किया कि हमारा समाज अव तक गुजराती वलाई कहलाता था, वह अव "धर्मपाल जैन" के नाम से कहा जावेगा। इसके वाद आचार्य प्रवर गुराडिया से आक्या, ताल, लीवोदिया, डेमची, नारायण, खेडी, वोरखेडा धुमहेडा, वरखेडा, नागझिरी, चीकली, लक्ष्मणखेडी, मताना, सिलाद, कजलाना, जामोदी, मक्सी आदि इन्दौर, उज्जैन व रतलाम जिले के ग्रामो मे विचरते हुए अनेक गुजराती वलाई भाइयो के दुर्व्यसनो को छुडा कर उनको जैन वनाते हुए इन्दौर पधार गये है और चौमासे के चार महीनो तक इन्दौर ही विराजेंगे।

"गुजराती बलाइयान अनेक गावो मे रहते है और उनकी सख्या करीब एक लाख से ऊपर है। उन सवकी सेवा मे हम नीचे दस्तखत करने वाले धर्मपाल जैन (गुजरात वलाई) प्रार्थना करते हैं कि आप भी मास-मदिरा आदि कुव्यसनो को त्याग कर धर्मपाल जैन वने। इससे हमारे समाज की हर तरह से उन्नति होगी और हम सम्मान की दृष्टि से देखे जावेंगे।"

जिला उज्जैन .

धुलजीरामजी, पालखेडी। शकरलालजी, गनपतजी, उमरना। नन्दरामजी, रूनखेडा। कवरलालजी जीवाजी, उज्जैन। भागीरथीजी हीराजी

कासीरामजी, वरखेडी । पटेल धुलाजी, दीलाजी, लसुडिया । पखतजी, सोभाजी, बोलावली । नगाजी, पनालालजी, खातीखेडी । भुवानजी कालुरामजी, टीगोरीया । कचनज, बलवनजी, सिधनाजी, परतावजी, विलाणा । गनपतजी, बडोहिया । छौगालालजी केलोद । धनालालजी, धनखेडी । दोलाजी, वेरागर । पणावलाल, कालूरामजी, धनाजी, जाख्या । हीराजी हरसिंगजी, आमलीखेडा । पीराजी, बाबला-जागीर । सेवारामजी, मीडकी ।

जिला मन्दसौर, धार, बड़नगर :

तुलसीरामजी, भेरुलालजी, मोडीरामजी, गोन्विदजी, मन्दसौर । देवीलालजी, कन्हैयालालजी, तुलसीरामजी, सीतारामजी, सेरुलालजी, लूधना । भगवान्जी, राकोदापलूदना । शकरलालजी, भागीरथजी, सोभाखेडी । सीतारामजी, धुलाजी, सेमलाया । कालूजी, भेसला । गनपतजी, पासलोद । नानुरामजी, सोडग । रामाजी, ढावला । नागुजी, जेलेखेडी । नागुजी, मनीरामजी, कन्हैयालालजी, भेरुलालजी, देवची । हमीजी, भील नागदा । शकरलालजी, रोजेटा–सडला । डूँगाजी, कुडावन । सालरामजी, कालुरामजी, जावरा ।

जिला शाजापुर :

नदरामजी, कचरुजी, रुगनाथजी, मक्सी । थावरजी, कासीरामजी, कठासीया । भागीरथजी, करज । गनपतजी, वणजारी । हमीरजी गनपतजी, रुडकी, नदरामजी, सीधनाथजी, सीरोलिया । हरचदजी, भमरी । नानुरामजी, मागीलालजी, चोसला । अमरसिहजी, हीरालालजी, धार । चपालालजी, मोतीलालजी, राजगढ ।

नोट :—**आचार्यश्रीजी म० सा० इन्दौर—राजमोहल्ला मे स्थित खालसा कन्या-माध्यमिक विद्यालय में विराजते हैं ।**

सूचना पत्र की इस सामान्य सी प्रक्रिया से हम अनुमान लगा सकते हैं कि मालव प्रान्त के विभिन्न जिलो मे कितनी अधिक सामाजिक क्राति हुई है तथा इतने प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियो ने सदेश दिया है, तो उनका पदानुसरण करने वाले कितने हजार व्यक्ति होंगे। इस प्रकार धर्मपाल प्रवृत्ति का विकास इन्दौर चातुर्मास मे अत्यधिक द्रुतगति से हुआ ।

मालव केसरी श्री सौभाग्यमलजी म० सा० से चर्चा

इस वर्षावास अवधि का पांचवा उल्लेखनीय प्रसग था—मालव केसरी श्री सौभाग्यमलजी म० सा० से श्रमण संघ से सन्दर्भित चर्चा ।

आशा है आचार्यश्री, फिर भी यहाँ पर आयेंगे,
एक चातुर्मास गीता भवन मे कर जायेंगे ।।१०।।

बाबा की इच्छा है, स्वामी अभी मत जाइये,
कम–से–कम गीता जयन्ती तक यहाँ रुक जाइये ।।११।।

अन्त मे है प्रार्थना, उस सर्व शक्तिमान से,
हम यही वर माँगते परम पिता भगवान् से ।।१२।।

आप भी हो अमर और कुछ दिन हम सभी जीते रहे,
प्रेम प्याला आप पिलाते रहे और हम सभी पीते रहे ।।१३।।

'जख्मी' स्वर निकला है, यह टूटी हुई आवाज का,
किस तरह स्वागत करूँ, आचार्यश्री महाराज का ।।१४।।

जब आचार्यश्री ने गीता भवन से सर्वोदय सस्था विसर्जन आश्रम की ओर प्रस्थान किया, तो बाबा बालमुकुन्दजी अपने सभी साथियो के साथ बहुत दूर तक साथ चले और जब मगल पाठ श्रवण कर लौटने लगे तो उनकी आँखो से अश्रुधारा वह चली। रुधे हुए कठ से उन्होने आचार्य देव से पुनः निवेदन किया– "आचार्यजी, आज दिन तक मै अनेक सत-महात्माओ के सम्पर्क मे आया पर किसी से इतना अधिक प्रभावित नही हुआ। आपश्री एक चातुर्मास गीता भवन मे कर देते, तो मेरा तो उद्धार हो जाता। किन्तु आपके विचारो के अनुसार ऐसी स्थिति नही लग रही है। फिर भी मेरी इतनी सी प्रार्थना तो आप अपने हृदय मे अवश्य रखे कि जब भी इन्दौर पधारे, गीता भवन को पावन करना नही भूले।"

पुनः ग्रामीण अचलों में

इन्दौर के उपनगरो मे जिन-वाणी की सौरभ प्रसृत कर आचार्य देव ने अपनी श्रमण-चर्या की विहार-मर्यादा के अनुसार ग्रामीण अचलो की ओर प्रस्थान कर दिया। इस वार आपकी विहार चर्या के लक्ष्य थे शुद्ध सयमीय साधको के प्रवास से वचित क्षेत्र, जहाँ के जन्मना जैन भी शुद्ध साधुत्व एव साधना के सामान्य वोध से भी अपरिचित हैं।

मार्गवर्ती छोटे-छोटे ग्रामों मे शुद्ध साधुत्व का अनुभूतिमूलक, जीवन्त परिचय कराते हुए आपश्री हाट पीपलिया पधारे। यह लगभग पचास जैन परिवारो का आवास स्थल था, किन्तु प्रायः सभी शुद्ध साधुत्व चर्या, नियम एवं मर्यादाओ मे अपरिचित थे। आचार्य देव की दैनिक चर्या एव अडिग आस्था पूर्ण साधना देखकर उन्हे वड़ा आश्चर्य हुआ। प्रातः प्रवचनो में जैन एव

सम्मेलन मे गया था। बहुत प्रयास किया मैंने, किन्तु मैं सफल नही हो सका। सन्त अपने-अपने आग्रहो मे अड़े हुए हैं। कोई मानने को तैयार नही है"

आचार्य देव ने पुन. मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे कहा—"जब सन्त सिद्धान्त के धरातल पर चलने को भी तत्पर नही हैं और न आप जैसे अनुभवी सतो के अनुभवो का लाभ उठाते हैं, तो आप ही बताइये, ऐसी स्थिति मे श्रमण सघ मे सम्मिलित होने के सन्दर्भ मे मेरा क्या कर्त्तव्य हो जाता है। क्या अनुशासन एव मर्यादापूर्ण स्थिति से निकल कर मैं भी ऐसे समुदाय मे प्रविष्ट हो जाऊँ, जहाँ अनुशासन नाम की कोई वस्तु न हो।"

"नही, अब मै उसके लिये आग्रह नही करना चाहता हूँ। आप अपनी तथा अपने सघ की अनुशासनबद्ध मर्यादाओ मे ही रहिये, किन्तु आज तो मैं इसलिये आया हूँ कि—दोनो ओर से एक सामजस्य पूर्ण समन्वयात्मक निवेदन निकलवा देना चाहिये कि—"कोई भी एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा-आलोचना न करे तथा आपसी सद्भाव बढे। ऐसा प्रयास किया जाय।" सौभाग्यमलजी म० सा० ने स्पष्ट किया। आचार्यश्री ने पुनः गम्भीर गिरा मे विषय को स्पष्ट करते हुए कहा—"आपका कथन किसी दृष्टि से यथार्थ है।" किन्तु ये कार्य केवल निवेदन आदि के द्वारा सम्पन्न नही हो सकते है। इसके लिए जन-मानस के निर्माण की आवश्यकता है। और वह भी दोनो ओर से। जब किसी भी एक ओर से अवाछनीय, विद्वेषपूर्ण तथा विघटनकारी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ होती है, तो दूसरे पक्ष का उत्तेजित हो जाना सहज है। मैं आपसे क्या कहूँ ? कहते हुए भी शर्म आती है। अभी रतलाम चातुर्मास के पश्चात् मैंने रावटी-भैरोगढ आदि छोटे-छोटे क्षेत्रो मे भ्रमण किया। वहाँ श्रमण सघ के कट्टर पक्षपाती प्रतिष्ठित श्रावक बन्धु मुझसे पहले ही पहुँच जाते तथा प्रवचन नही सुनने एव आहार-पानी नही देने तक का विद्वेषपूर्ण प्रचार करते रहे। क्या ऐसी स्थिति मे समन्वय साधा जा सकता है ? और, क्या इसे एकता के प्रयासो की भावना कही जा सकती है ? वास्तव मे यदि हमे एकता के प्रति प्रयास करना है, तो "निवेदन" आदि के प्रकाशन से कुछ भी नही होने वाला है। इसके लिए तो आवश्यक है कि सन्त-सती वर्ग ही स्वय अनुशासित हो, मर्यादाओ का निष्ठापूर्वक पालन करे। यदि श्रमण वर्ग अपनी चारित्रिक आराधना मे सुदृढ रहे और निन्दा, स्तुति आदि के चक्कर मे न पडे तो एकता के प्रयासो मे बहुत जल्दी सफलता मिल सकती है। अत पहली आवश्यकता है, श्रमण वर्ग की स्वच्छन्द प्रवृत्तियो पर प्रतिबन्ध लगाने की। जब तक इस स्थिति का निर्माण नही हो जाता है, एकता बन नही सकती है और बना भी ली जाय तो टिक नही सकती।

"वैसे मैं अपनी साधना मे निश्चित हूँ। मुझे किसी के प्रति द्वेष अथवा

हमारे से आपश्री की कुछ भी अविनय, आशातना हुई हो, तो उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी है।"

चार विभिन्न राजनैतिक पार्टियो के प्रमुखो ने जब समता दर्शन की रूपरेखा देखी तो समन्वित स्वर मे बोल उठे—"ये सिद्धान्त तो सम्पूर्ण राजनैतिक स्थिति को परिष्कृत कर एक सूत्र मे आबद्ध कर सकते है।"

इस प्रकार आचार्यश्री के सदुपदेशों से सारे समाज मे एक क्राति की लहर दौड़ गई। आस-पास के व दूर-दूर के दर्शनार्थी दर्शनार्थ आये एवं स्थानीय सघ ने सेवा-भक्ति का अच्छा लाभ लिया। काठेड़ परिवार की सेवा-भक्ति विशेष उल्लेखनीय रही। आचार्यश्री के उपदेशो से प्रभावित होकर बहुतो ने अनमेल विवाह मे सम्मिलित न होना, टीका न लेना, उपयोग पूर्वक क्रोध न करना, झूठी साक्षी न देना, प्रतिदिन सामायिक, कुछ-न-कुछ नित्य नियम करना आदि विभिन्न प्रकार की प्रतिज्ञाएँ ली।

व्यक्ति दोषी हो सकता है, सिद्धान्त नहीं

इस प्रकार हाट पीपलिया मे धार्मिक एवं सामाजिक उत्क्राति की मधुर लहर फैलाकर आचार्य देव ने आष्टा, इच्छावर, सिहोर आदि नगरो को पावन करते हुए भोपाल पदार्पण किया। भोपाल मध्यप्रदेश की राजधानी होने के कारण एक बडा शहर है। जैन समाज के घर भी वहाँ अधिक सख्या मे हैं। फिर भी धर्म के प्रति उत्साह एव उमग वहाँ नही लग रही थी। आचार्य देव ने उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया और सम्पर्क मे आने वाले कुछ स्थानीय प्रमुख व्यक्तियो से जानकारी ली, तो ज्ञात हुआ कि वहाँ से अमालेक ऋषिजी जैसे महान् सत निकले है जो शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्ही का पदानुसरण करने वाले यहाँ के श्रावक दृढ श्रद्धालु एवं धर्मनिष्ठ थे, किन्तु इधर आने वाले अधिकाश साधुओ की संयम-विघातक दूषित व घृणित प्रवृत्तियो को देखकर बहुत से बन्धुओ की श्रद्धा पवित्रतम जिनधर्म के प्रति भी विचलित हो गई है। यहाँ ओसवाल समाज के अतिरिक्त मोड़ समाज के लगभग सौ घर है, जो स्थानकवासी परम्परा का अनुसरण करने वाले तथा धार्मिक प्रवृत्तियो मे आगे होकर भाग लेने वाले थे। उनकी श्रद्धा तो इतनी डगमगा गई कि वे अधिकाश प्रवचन सुनना तो दूर, सतो के दर्शन तथा समीप तक आना पसन्द नही करते है।

आचार्य देव के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व एवं शुद्ध-दृढ चरित्र से प्रभावित कुछ व्यक्तियो ने मोड समाज के प्रमुख श्री भगवानदासजी, छोगमलजी व नारायणदासजी आदि को प्रेरित किया कि आप लोग एक बार चलकर आचार्यश्री के दर्शन तो कीजिये..... ..।

शोभा-यात्रा के रूप मे सत प्रवरो के साथ-साथ चलने लगे। बाहर से आगत दर्शनार्थियो की सख्या लगभग १००० होगी।

गीता भवन में

गीता भवन मे आचार्यश्री का प्रथम प्रवचन गीता शब्द की ही विवेचना पर हुआ। सम्पूर्ण जीवन को ही "गीता" बताते हुए गीता शब्द की इतनी गूढ एव लाक्षणिक व्याख्या आपश्री ने प्रस्तुत की कि आगत विद्वत्वर्ग भाव विभोर हो गया। भवन के प्रमुख स्तम्भ श्री बालमुकुन्दजी एव भूतपूर्व मजिस्ट्रेट ठाकुर श्री दलेलसिहजी ने अति विनम्र शब्दो मे प्रार्थना की कि "आपश्री के प्रवचन से हम अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। वैसे आपश्री की विश्रुत ख्याति तो हम पहले ही सुन चुके हैं, किन्तु आज प्रत्यक्षत हमने आपके प्रवचन का पानकर गरिमामय व्यक्तित्व का साक्षात्कार किया है। आपको गीता भवन मे पाकर आनदित है। गीता भवन की धरा आज पावन हो गई है। आपश्री चार माह की लम्बी अवधि तक नगरजनो को अपनी पीयूष धारा से पावन करते रहे। अब हमारी यही प्रार्थना है कि कुछ दिन गीता भवन मे ही विराजकर वचनामृत-वर्षा के द्वारा यहाँ के वातावरण को भी सुमधुर बनाने की कृपा करें।"

आचार्य देव ने उन्हे बडे मधुर शब्दो मे समझाने का प्रयास किया, "आप एक प्रवचन का आग्रह कर मुझे यहाँ लाये हैं। अत· आपकी भावना के अनुसार आपको एक प्रवचन का लाभ मिल गया है। अब मुझे कुछ लम्बी दूर का मार्ग पार करना है, अत आप अधिक आग्रह न करे।"

श्री बालमुकुन्दजी पुन आग्रह करने लगे, "ऐसा नही हो सकता है। गीता भवन मे आना आपके हाथ मे था, अब जाना आपके हाथ मे नही है। हमे तृप्त किये बिना आप आगे नही बढ सकते हैं।"

बाबा की असीम श्रद्धा एवं अप्रतिम प्रीति को दृष्टिगत रखते हुए एक-एक करके दो दिन की और स्वीकृति दी गई और तीन प्रवचन के पश्चात् जब विदा की चर्चा चली, तो पुन वैसे ही पचासों श्रोता अड़कर बैठ गये। तब आचार्यश्री ने बालमुकुन्दजी को ही समझाने का प्रयास करते हुए कहा—"आपके अपने नियमो के आधार पर भी अब मैं यहाँ रुक नही सकता हूँ। आपने इस कमरे के बाहर जो नियम बनाकर लिखे हैं, उनमे स्पष्ट है कि इस कमरे मे कोई भी तीन दिन से अधिक नही रह सकता। अब आप स्वय अपने ही द्वारा निर्मित नियमो को भग कर रहे हैं, यह कहाँ तक उचित है ?"

श्री बालमुकुन्दजी ने मुस्कराते हुए कहा—"आचार्य देव! आपने भी अच्छा बहाना ढूंढ लिया है। यह नियम आप जैसे उच्च कोटि के त्यागी

तो कुछ उच्चकोटि के चरित्रनिष्ठ महापुरुष भी होते हैं, किन्तु महाराज उस समय मे आप जैसे महापुरुषो क ।योग नही मिला । फलत· हमारा पूरा समाज विद्रोही हो गया । अब सहसा सब के विचारो को वदल पाना शक्य नही है । फिर भी आप कृपा कर हमारे भवन मे कुछ प्रवचन फरमाने की कृपा करे, तो हम प्रयास करके कुछ भाई-बहिनो को लावे ।" श्री भगवानदासजी ने स्पष्ट करते हुए निवेदन किया ।

आचार्यश्री ने सहज स्वीकृति देते हुए कहा—"मुझे तो कही भी प्रवचन देना है । आप यदि कुछ प्रयास करना चाहे और धर्म से विछुडे हुए वन्धु पुन. मिल सके, तो मुझे वहाँ प्रवचन देने मे कोई आपत्ति नही है ।"

तदनुसार आचार्यश्री का मोड समाज के भवन मे ही प्रवचन हुआ और बहुत से बन्धुओ की भ्रान्तियाँ दूर हुई ।

• • •

भविष्य मे आशा भी नही थी, किन्तु आचार्य प्रवर के गीता भवन मे चरण-स्पर्श इतने मगलकारी सिद्ध हुए हैं कि बिना किसी प्रयत्न के भूमि, भवन के अधिकार मे आ गई । अत. मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि आचार्य प्रवर का सान्निध्य ही सर्वपाप विनाशक, सर्व सिद्धिदायी है । प्रत्येक व्यक्ति आपश्री के प्रवचनो के आदेशो पर चलकर एक दिन परमात्मा बन सकता है । मैं आपकी स्तुति किन शब्दो मे करूँ ? मेरे पास शब्द नही है । मेरी आचार्यश्री के चरणो मे यही प्रार्थना है कि भविष्य मे भी गीता भवन का स्मरण रखावे और हमेशा कृपा बनी रहे ।"

इसके पश्चात् गीता भवन के मंत्री श्री जसवतरायजी जख्मी ने आचार्यश्री के प्रति अपार श्रद्धा एव भक्ति प्रदर्शित करते हुए श्री चरणो मे वदना के रूप मे बहुत ही मधुर शब्दो मे एक गीत सुनाया । वह निम्न प्रकार है .—

किस तरह स्वागत करूँ, आचार्यश्री महाराज का,
तपी त्यागी, साधुमार्गी सघ के सिरताज का ।। १ ।।

आपकी महिमा सुनाऊँ, मुझमे यह शक्ति नही,
मुझमे वह विद्या नही, सेवा नही, भक्ति नही ।। २ ।।

बाबाजी की और मेरी प्रार्थना को मानकर,
कृपा की है आपने गीता भवन मे आनकर ।। ३ ।।

आपके आने से, पत्ते डालियाँ सब खिल गये,
जो अभी तक दूर थे, वे भी यहाँ पर मिल गये ।। ४ ।।

आपके दर्शन को यहाँ, नर–नारियाँ आने लगे,
वृक्षो पर बैठे हुए, पछी चहचहाने लगे ।। ५ ।।

जिस तरह जुगनू चमकता है, अधेरी रात मे,
मोर जैसे नाचता है, सावनी बरसात मे ।। ६ ।।

इसी तरह सब पै जादू करने वाली, आपकी तस्वीर है,
आपकी वाणी मे भी कुछ इस तरह तासीर है ।। ७ ।।

छ. दिन यहाँ ज्ञान का सागर, बहाया आपने,
असली गीता भवन क्या है, यह बताया आपने ।। ८ ।।

ज्ञान और मोक्ष का, मार्ग बताया आपने,
प्रेम अमृत का प्याला, भर पिलाया आपने ।। ९ ।।

में ही निवेदन किया—"अव अधिक चिन्तन-मन्थन अथवा घोल-मथोल की आवश्यकता नही है, आपश्री को छत्तीसगढ की ओर प्रस्थान करना होगा। उधर बहुत बड़े उपकार की सम्भावनाएँ हैं। उनमे पहला तो यही है कि श्री सम्पतराजजी आत्मकल्याण के मार्ग पर बढने को तत्पर हैं। हमारे छत्तीसगढ सघ के ये प्राण है और हम अपने प्राण आपके चरणो मे समर्पित करने को तत्पर हैं, इससे बढकर और क्या भेट चाहिए आपको ?"

आचार्य देव ने मुस्कराते हुए कहा—"सम्भव है आपका कथन सत्य हो, किन्तु आप लोग ठहरे वकील और शायद यहाँ भी वकीली युक्ति लगा रहे हो कि दीक्षा की बात करने से महाराज छत्तीसगढ की ओर प्रस्थान कर देगे।"

"नही अन्नदाता! आपके सामने और वकीली युक्ति। यह नही हो सकता है। यथार्थ मे सम्पतराजजी दीक्षा लेने को आतुर है। हाँ, हमारा प्रयास तो सदा इन्हे रोके रखने का ही रहा है। आप जानते हैं, प्राणो को तन से कौन अलग करना चाहेगा ? किन्तु ये अव हमसे दूर भागने को आतुर है।" वकील साहब भूरचन्दजी ने पुनः विनोदपूर्ण चुटकी ली।

आचार्यश्री ने भी विषय को विनोदपूर्ण रखते हुए सम्पतराजजी की ओर उन्मुख होते हुए कहा—"ये तो वकील लोग है। इनके दाव पेच समझना बहुत कठिन है। आप ही बताइये आपके क्या विचार है और आपकी कहाँ तक की तत्परता है।"

"गुरुदेव ! वकील साहब की भाषा विनोदपूर्ण है, किन्तु ये जो कह रहे है, वह सत्य है। मेरी दीक्षा की भावना आज की नही, बहुत पुरानी है। लगभग आठ वर्ष पूर्व मैं भयंकर रूप से अस्वस्थ हुआ, बचने की कोई आशा नही थी, मुझे अनाथी मुनि का स्मरण हो आया और उसी समय मैंने सकल्प कर लिया था कि इस रोग से बच जाऊँगा तो सयम अगीकार कर लूँगा, और शासन देव की कृपा कहे या पुण्योदय, मै उस समय बाल-बाल बच गया। गृहस्थी के प्रपचो एव व्यवसायतत्र को समेटने मे मुझे इतने वर्ष लग गए। अभी कुछ दिनो पूर्व छत्तीसगढ से आने वाले सघ सदस्यो के साथ भी मेरे आने के विचार थे, किन्तु लडकी की तथा भाई केशरीचन्द के लडके का विवाह निपटाने मे लगा रहा। अतः नही आ सका। अभी भी सैतिया बारात से सीधा आ रहा हूँ। अब मै लडके-लड़कियो के विवाह सम्बन्धी दायित्वो से निवृत्त हो चुका हूँ। व्यापार सम्बन्धी कुछ सरकारी उलझने हैं, उन्हे भी आप उधर पधारेगे तब तक निपटा लूँगा। अब तो बस आपश्री का वरदहस्त इस पामर के सिर पर होना चाहिए।" कहते हुए श्री सम्पतराजजी कुछ भावुक से हो गये।

आचार्यश्री ने विषय को कुछ गम्भीर मोड़ देते हुए कहा—"आप बहुत

जैनेतर जनता की अति उत्सुक अपार भीड तथा रात्रि परिचर्चा मे राजकीय कर्मचारी तथा शाला के प्राय सम्पूर्ण अध्यापक आदि बुद्धिजीवियो की उपस्थिति किसी मेले-सी छटा लिए थी। हाट पीपलिया एक तीर्थ स्थान सा बन गया था। विहार की शीघ्रता होते हुए भी स्थानीय जैन-जैनेतर बुद्धिजीवियो का अत्यन्त आग्रह होने से लगभग सोलह प्रवचन हुए। हाट पीपलिया के इतिहास मे धर्म-जागृति का यह अभूतपूर्व वातावरण था। जैनेतर बन्धुओ का जैन धर्म के प्रति इन दिनो मे अत्यधिक आकर्षण बढ गया। परिणामत विहार की चर्चा सुनने को भी वे तैयार नही थे।

आचार्यश्री दिनाक ३१ दिसम्बर को प्रवचन देकर फिर दोपहर को विहार कर जायेगे, जब यह बात बच्चो को ज्ञात हुई तो बाल-मण्डली एकत्रित होकर श्री चरणो मे उपस्थित हुई। उनमे से श्री मिश्रीलालजी के सुपुत्र श्री नरेन्द्रकुमारजी काठेड ने कहा—"हम बच्चो की यह भावना है कि आचार्य श्री महाराज की स्मृति हमेशा बनी रहे। इसके लिए हमारा यह निवेदन है कि आपश्री दि० ३१ दिसम्बर के बदले दि० १ जनवरी को विहार करे, ताकि हमे यह स्मरण रहेगा कि आचार्यश्री सन् ६४ मे हाट पीपलिया पधारे और सन् ६५ मे हाट पीपलिया से विहार हुआ।" वयस्क लोगो ने भी कहा कि "बच्चो की विनती भी कितनी तर्क एव भावना युक्त है, इस पर जरूर ध्यान देना चाहिए। दया का और कार्यक्रम है। बच्चो! अब रोकना तुम्हारे हाथ मे है। हम तो पहले वचनबद्ध हो गये हैं। इससे कुछ नही बोल सकते।" इतना कहना हुआ कि बच्चे आचार्यश्री के पैर पकड कर बैठे गये और कहने लगे कि आप आज दि० ३१ दिसम्बर को यहाँ पर ही विराजने की स्वीकृति नही फरमावेंगे, तो हम, रोटी नही खायेंगे। अन्त मे आचार्यश्री का दि० ३१ को विहार नही हुआ और उस दिन फिर छकाया (दया) हुई।

प्रवचन के उपरान्त स्थानीय जनसघ के अध्यक्ष श्री बस्तीरामजी माली ने कहा कि "हमारे इस हाट पीपलिया का अहोभाग्य है कि आचार्यश्री ने यहाँ पर विराज कर व प्रवचनो द्वारा यहाँ की जनता को बोधित किया है। आपश्री ने समाज, राष्ट्र, नीति व धर्म के विषय मे दृष्टान्त देकर कठिन बात को भी सरल करके हमारे हृदय मे उतारा है। सभी धर्मों का समन्वय करके हमे अच्छी तरह समझाया है। एतदर्थ हम आपके आभारी हैं। आपश्री के प्रवचनो मे से यदि हम अपनी शक्ति के अनुसार थोडी-सी बाते अपने हृदय मे उतार कर तदनुकूल चलेंगे, तो हमारा उत्थान हुए बिना नही रह सकता।"

इसके पश्चात् सघ की ओर से डॉ० सतोषकुमारजी मुणोत ने कहा कि— "आचार्यश्री ने जो सत् शिक्षाएँ हमे दी हैं, उनका हम यथाशक्ति पालन करे,

"किन्तु प्रतिज्ञा-पत्र मे तो मेरे अपने ही विचार एवं अधिकार का प्रश्न है। यदि कहे तो प्रतिज्ञा-पत्र मैं अभी लिखकर भेट कर सकता हूँ। उसमे तो किसी की स्वीकृति की आवश्यकता ही नही है।" श्री सम्पतराजजी ने कहा और तत्काल श्री देशलहराजी ने प्रतिज्ञा-पत्र लिखा एव श्री सम्पतराजजी ने हस्ताक्षर कर आचार्य देव के चरणो मे समर्पित कर दिया। बस, यही निमित्त बन गया आचार्यश्री के छत्तीसगढ मे पदार्पण का। इसे हम यो कहे तो भी चलेगा कि आचार्य देव के छत्तीसगढ की प्यासी धरा पर पदचरण का अधिकांश श्रेय लब्ध-प्रतिष्ठ श्री सम्पतराजजी धाडीवाल को जाता है।

दीक्षा के प्रतिज्ञा पत्र के पावन प्रसग को निमित्त बनाकर आचार्यश्री ने ब्यावर, आदि विन्त्यर्थ आगत सघो को सतुष्ट किया और भोपाल से छत्तीसगढ की ओर प्रस्थान कर दिया।

मन के विकल्प

कुछ ही दूर आगे बढे होगे कि विकट जगल, भयंकर पहाडियो एव आहार-पानी की असुविधाओ को देखकर एक बार तो आचार्य देव का चित्त भी विचलित हो उठा। सहवर्ती शिष्य प्राय. नवीन एवं लघुवयी थे। उन्हे लेकर इतने सैकडो मील लम्बे विकट मार्ग को कैसे पार किया जाएगा। एक ओर लम्बे-लम्बे विहार और दूसरी ओर आहार-पानी का अभाव अथवा अल्प मिलना। नये-नये सन्त कैसे सहन कर पाएँगे। उन विचारो ने आचार्य देव के चित्त को उद्वेलित कर दिया।

गम्भीर चिन्तन-मंथन के पश्चात् आचार्य देव ने सहवर्ती सन्तो की मन. स्थिति का अवलोकन कर लेना ही उचित समझा और भिक्षा-निवृत्ति के पश्चात् सन्त वर्ग से परामर्शात्मक विचार लिया। सभी का उत्साह परीषहो का डटकर सामना करते हुए आगे बढने का ही था। तदनुसार ही आचार्यश्री ने कुछ और अधिक उत्साह बढाते हुए कहा—"साधना का मार्ग कटकाकीर्ण मार्ग तो है ही, उसे मुस्कराते हुए पार करना ही साधक की विशेषता है। अत. छत्तीसगढ स्पर्शन का जो सकल्प कर लिया है, उसे परीषहो की चिन्ता नही करते हुए पूरा करना ही श्रेयस्कर है। हमे सदा यही सोचना चाहिए कि सत्पुरुषार्थ के पश्चात् जो होता है, सो अच्छा होता है।"

कोलतार (डामर) के डिब्बों की टीन से बनी झोपड़ी में

अपने सकल्पो मे दृढीभूत आचार्य देव ने अपने चरण युगल से छत्तीसगढ की ओर बढते हुए पर्वत-शिखरो एव विकट वन-प्रान्तरो को नापना प्रारम्भ कर दिया। उत्तुग वृक्षावलियो से घिरी पर्वत श्रेणियो को पार करते हुए एक बार

तदनुसार मोड समाज के कुछ सज्जन एक दिन प्रवचन समाप्ति के पश्चात् उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे कि "महाराजजी, आप क्षमा करे। आपको ज्ञात है कि दूध का जला हुआ छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है। यही हालत हमारी है। हमे यहाँ पूर्व मे आने वाले सन्तो के अनैतिक काण्डो को देखकर जैन धर्म से ही घृणा हो गई है। इसीलिये आपश्री के चरणो मे भी हम इतने दिन तक आ नही सके।" कुछ सन्तो की सयम-विघातक प्रवृत्तियो का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा—"आचार्यश्री ! आप ही बताइये, सतो की ऐसी घृणास्पद घटनाओ का साक्षात्कार करके हमारी आस्था धर्म पर कैसे स्थिर रह सकती है ? गुरुदेव, ऐसे उत्तम धर्म को छोडकर हम स्वय भी प्रसन्न नही हैं। बडे परिश्रम एव लगन से हमने अपने धर्म स्थान के रूप मे भव्य भवन बनवाया और आज उसमे जिनवाणी के बदले हवन होते हैं, पूजा-पाठ होते है। इस प्रकार हमारी परम्परा का छूट जाना हमे खुद को खलता है, किन्तु उपर्युक्त स्थिति मे हम कर ही क्या सकते थे . ? वैसे हमने इन सभी घटनाओ की सूचना तत्कालीन उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० को दे दी थी, जिसका अवलोकन आपश्री ने भी किया ही होगा। धर्म के प्रचार-प्रसार के नाम पर उन सन्तो ने हमे कितना छला है, वह हमारे लिये असह्य है।"

आचार्य देव ने उनके विचारो को तन्मयतापूर्वक सुना और पुन उनमे धार्मिक आस्था जागृत करने हेतु कहा—"आपने जिन घटनाओ का उल्लेख किया, वे मेरी स्मृति मे आ रही हैं और उस विषय मे आचार्यश्री ने प्रायश्चित आदि के रूप मे अपनी व्यवस्थाएँ भी दी थी, किन्तु मैं आपसे कहना चाहूँगा कि किसी व्यक्ति विशेष के लाञ्छित या दोषपूर्ण हो जाने से समूचे धर्म अथवा सिद्धान्त को बुरा नही माना जा सकता है। आपके परिवार मे अथवा किसी भी राजनैतिक पार्टी मे कोई एक पारिवारिक अथवा पार्टी-सदस्य यदि परिवार अथवा सस्था के नियमो का उल्लघन करता है, तो एतावता सम्पूर्ण परिवार या पार्टी को ही दूषित नही माना जाता। ठीक, इसी प्रकार उन चन्द साधुओ ने अनुचित प्रवृत्तियाँ की है, तो वे दोषी हैं। उनका सम्पर्क एव ससर्ग वर्जित माना जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण धर्म-परम्परा को ही दोषी मानकर छोड बैठना कहाँ तक उचित है ? आप लोगो को इतना उच्च कोटि का पवित्र एव वैज्ञानिक धर्म अपने पूर्वजो से विरासत मे मिला और आप चार छ भ्रष्ट साधुओ के कारण उस शुद्ध सनातन जिनधर्म को ही छोड बैठे, इसे उचित नही माना जा सकता है। आप लोगो को पुन. एक सामाजिक धार्मिक क्राति के साथ जिनधर्म पर आरूढ होना चाहिये।"

"महाराजश्री, आपका कथन यथार्थ है। अब हम भी इसकी अनुभूति कर रहे हैं कि सभी सत एक समान नही होते हैं। केवल पोशाक से ही किसी को साधु या असाधु मान लेना बहुत बडी भूल है। इस वेश मे कुछ ढोगी रहते हैं,

कतारबद्ध वृक्ष कितने सुहावने लगते है। ऐसे सुन्दर वातावरण मे ही ध्यान-साधना अच्छी हो सकती है····· ।"

झोपडियो से प्रातः प्रतिलेखन से निवृत्त हो लगभग १२ मील का विहार कर आचार्यश्री होशगाबाद पधारे। इस बारह मील के विकट मार्ग मे पानी की एक बूँद भी कही नही मिल सकी और इधर ग्रीष्म का प्रकोप। परिणामत पिपासा परीषह का अधिक जोर रहा।

लगभग बारह बजे आचार्य देव का होशगाबाद मे पदार्पण हुआ। यहाँ दिगम्बर तारण पंथ के बहुत घर थे। अत· उनमे से यथाशक्य आहार-पानी लाया गया और आहार-पानी से निवृत्त हो लम्बे विहार की थकान के कारण आचार्यश्री कुछ विश्राम लेना चाह रहे थे, किन्तु उसी समय तारण पथ के विचारो से प्रभावित एक मस्ताना वकील, जो जाति की दृष्टि से तेली थे, और कुछ अन्य व्यक्ति आ गये और कुछ अशिष्ट से शब्दो मे अटपटे प्रश्न करते हुए कुतर्को का सहारा लेने लगे। आचार्य देव ने अपने अद्भुत स्वभाव के अनुसार सहज शाति एव मधुर-गम्भीर स्वर के साथ उनके तर्को-कुतर्को का यथोचित उत्तर दिया।

लगभग तीस-चालीस मिनट तक सौजन्यपूर्ण ज्ञान-चर्चा के पश्चात् वकील साहब अपना परिचय देते हुए कहने लगे—"महाराजजी, मैं दिगम्बर, श्वेताम्बर एव वैष्णव आदि कई साधुओ के सम्पर्क मे आया किन्तु मेरी आज तक किसी के साथ पटरी फिट नही बैठी। आज मुझे महसूस हो रहा है कि आपके साथ मेरे विचार साम्य हो सकते है। वैसे मैं व्यवसाय की दृष्टि से वकालत करता हूँ। इसलिए वार्तालाप एव सामान्य शिष्टाचार के नियमो को तो जानता ही हूँ, किन्तु आमतौर पर मै सन्त-महात्माओ की सहनशीलता की थाह पाने के लिए जरा कठोर भाषा मे कुछ टेढे-मेढे प्रश्न करता हूँ और अधिकाश साधु मेरे प्रश्नो को सुनकर उत्तेजित हो जाते है। अत· उनसे फिर समाधान बन ही नही पाता है। किन्तु आपश्री की अगाध शाति से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। साथ ही आपश्री ने मेरे तर्को का जो तर्कसंगत एव अकाट्य समाधान दिया, वह आपकी विद्वत्ता को स्पष्ट कर देता है। आपश्री कुछ दिन यहाँ विराजे और हमे धर्म का मौलिक व सही स्वरूप वताने की कृपा करे।"

आचार्यश्री ने उसी गम्भीर मुस्कराहट के साथ कहा—"आपकी भावना प्रशस्त है। अभी तो आप रात्रि मे ज्ञानचर्चा का लाभ ले। साथ ही यदि स्थानीय तारण पथी समाज के और अधिक वन्धु लाभ ले सके, तो कल प्रात· का प्रवचन भी सुन ले। इसके वाद हमे यहाँ से आगे वढना पडेगा, क्योकि चातुर्मास हेतु वहुत दूर जाना पड सकता है और इधर ग्रीष्म ऋतु का प्रकोप भी वढ रहा है।"

रायपुर चातुर्मास

छत्तीसगढ़ की ओर पदार्पण और उसका श्रेय

भोपाल मे होने वाली अभूतपूर्व धर्म-जागृति एव धार्मिक प्रभावना को दृष्टिगत रखते हुए उपनगर टी० टी० नगर को मिलाकर एक मास से कुछ अधिक विराजना हुआ। भोपाल से विहार की दिशा किस ओर हो, इस विषय मे गहरा चिन्तन चलता रहा, क्योकि इधर ब्यावर सघ आगामी चातुर्मास के लिए आग्रह-पूर्वक निवेदन अनेक बार कर चुका था और दूसरी ओर छत्तीसगढ सघ की भी विनती अत्यधिक आग्रहपूर्ण थी। आचार्यश्री के समक्ष दोनों संघो को समझाने की विकट समस्या थी। दोनो सघो का आग्रह वर्षों से चल रहा था और इधर छत्तीसगढ क्षेत्र मे पहुँचने के पश्चात् शीघ्र लौट पाना कठिन था।

आचार्य देव विचार-मथन मे ही थे कि छत्तीसगढ क्षेत्र के अध्यक्ष श्री भूरचन्दजी देशलहरा, मत्री श्री सम्पतराजजी धाडीवाल, श्री भीखमचन्दजी वैद एवं श्री चम्पालालजी सुराना आदि सज्जन भोपाल उपस्थित हुए और श्री सम्पतराज जी धाडीवाल तो आग्रह पूर्ण निवेदन करने लगे—"आप छत्तीसगढ पधारिये, मै दीक्षा लेने को तत्पर हूँ।"

आचार्य देव ने तत्काल उस प्रसंग को विनोदपूर्ण अथवा प्रलोभनात्मक ही समझा, और ऐसा समझना सहज भी था, क्योंकि श्री सम्पतराजजी एक भरे पूरे परिवार के सरक्षक सदस्य हैं। लाखो का व्यापार इनके हाथो मे है। माँ, पत्नी, लडके, लडकियाँ और पोते-पोतियो से सम्पन्न परिवार को सहसा छोड़ पाना सामान्य बात नही है। पारिवारिक विस्तार के साथ इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी कम नही है। श्री अखिल भारतीय जैन संस्कृति रक्षक सघ के उपाध्यक्ष, रायपुर कपडा एसोसिएशन के मानद मंत्री, स्थानकवासी जैन श्रावक सघ रायपुर के मत्री तथा सम्पूर्ण छत्तीसगढ स्थानकवासी सघ के भी मत्री थे। इतनी सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध व्यक्ति सहसा दीक्षा की बात करे, तो अविश्वास नही तो आश्चर्य होना तो सहज ही है। आचार्यश्री ने तत्काल छोटा सा उत्तर दिया—"आप लोग मध्याह्न मे आ सकें, तो विस्तार से बात की जा सके"

तदनुसार मध्याह्न मे रायपुर संघ के सदस्य उपस्थित हुए और छत्तीसगढ सघ के अध्यक्ष श्री भूरचन्दजी देशलहरा ने आचार्यश्री से अपने विनीत [illegible]

बैतूल की धर्म प्राण जनता को जिनवाणी की पवित्र धारा मे आकण्ठ निमज्जित कर तथा साधुत्व के शुद्ध आचार-विचार से सम्बोधित कर आचार्य देव मुलताई, पाढु रना, आदि ग्रामो को पावन करते हुए टाकली-भसाली आश्रम पधारे। आश्रमजीवी, गाधी विचारक श्री भसालीजी चलने-फिरने मे अशक्त थे, अत: उन्होने निवेदन करवाया कि आचार्यश्री उन्हे दर्शन देने हेतु पधारें। तदनुसार आचार्यश्री आश्रम मे ही निर्मित एक कुटिया मे, जहाँ भसालीजी रहते थे, पधारे। श्री भंसालीजी खाट पर बैठे हुए ही विनम्र शब्दो मे बोले—"क्षमा करे महाराजश्री, मुझे आपके दर्शन हेतु वहाँ उपस्थित होना था, किन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण नही आ सका। आपने यहाँ पधारने का कष्ट किया, यह मुझ पर बडी कृपा हुई।"

आचार्यश्री ने उनकी दोनो होठो को सिलना, मौन रखना, आटा घोलकर पीना, तथा कई दिनो तक नीम की पत्तियाँ खाना, आदि साधना के विषय मे चर्चा की और अपनी श्रुत-धारण की सत्यता की पुष्टि की।

आश्रम से विहार कर आचार्य देव खापर खेडा होते हुए नागपुर पधारे। नागपुर प्रवेश के पूर्व ही रायपुर, दुर्ग एव राजनाद गाँव के श्री सघ बसो द्वारा चातुर्मास की विनती हेतु उपस्थित हो गए और स्वागत समारोह मे सम्मिलित हो गए। अपूर्व उल्लासमय वातावरण मे आचार्यश्री का नगर प्रवेश हुआ।

उसी दिन मध्याह्न मे तथा द्वितीय दिन प्रवचन मे तीनो संघो ने आगामी वर्षावास अपने यहाँ करने का आग्रहपूर्ण निवेदन किया। चूँकि रायपुर सघ की विनती बहुत समय से चल रही थी तथा श्री सम्पतराजजी धाडीवाल का प्रतिज्ञा पत्र भी समर्पित हो चुका था, अत. अन्य सभी विनतियो मे रायपुर का ही पलडा भारी था और सम्वत् २०२२ के वर्षावास का सौभाग्य रायपुर को ही मिला।

विकट परीषहों के मध्य

चू कि चातुर्मास रायपुर के लिए स्वीकृत हो चुका था, ग्रीष्म ऋतु का प्रकोप वृद्धिगत और इधर नागपुर से आगे का मार्ग विकट। ऐसी स्थिति मे आचार्य देव नागपुर को अधिक समय नही दे सके। सदर एव इतवारी दोनो स्थानो को कुल मिलाकर १०-१२ दिनो का समय मिला।

इन १०-१२ दिनो में प्रवचन एव प्रश्नोत्तरो मे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने श्रमण सघीय समस्याओ के सन्दर्भ मे तथा विद्वद् वर्ग ने तत्त्वज्ञान के सन्दर्भ मे समाधान लिए। आगमन पूर्व की वहुत सी भ्रान्तियाँ निर्मूल हुई और आचार्यश्री ने अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान कर दिया।

समय से निवृत्त होने का प्रयास कर रहे है, यह तो ठीक है, किन्तु ब्यावर सघ बहुत समय से चातुर्मास की आग्रहात्मक विनती कर रहा है। उसे कैसे आश्वस्त किया जाए ? छत्तीसगढ की ओर निकलने के पश्चात् वापस मारवाड की ओर शीघ्र आना तो होगा नही।"

"और आप क्या सोच रहे हैं ? ब्यावर (मारवाड) की ओर निकलने के पश्चात् आप वापस इधर शीघ्र लौट आयेगे ? इतने समीप पधारने के पश्चात् आप वापस मारवाड की ओर लौट जाएँ और फिर हम आपके लौटने की आशा करे, यह असम्भव बात है। आपको यहाँ (भोपाल) से छत्तीसगढ की ओर ही विहार करना होगा।" वकील साहब ने बीच मे ही पुन अपना युक्तिसगत उत्तर दिया।

"मैने कब कहा है कि मारवाड जाकर पुन: शीघ्र इधर लौट आयेगे। मै तो यह कह रहा हूँ कि ब्यावर सघ को भी सतोषजनक समाधान मिलना चाहिये। आप ही कोई समाधान सुझाइये, जिससे आपकी और ब्यावर सघ दोनो की सतुष्टि हो जाए।" आचार्य देव ने पुन. गम्भीर स्वर मे कहा।

"गुरुदेव ! हम तो एक ओर का समाधान करना जानते हैं। दोनो पक्षो को प्रसन्न करने लगें, तो हमारी वकालत ही समाप्त हो जाये। हम तो अपना ही पक्ष सुदृढ करने का प्रयास करेंगे। आपको दोनो पक्षो को प्रसन्न करना है, तो आप ही मार्ग-दर्शन फरमाइये।" वकील साहब ने पुन विनोद भरे स्वर मे कहा।

"देखिये, आप लोग यदि उचित समझें, तो मार्ग तो सीधा-सा है। यदि श्री सम्पतराजजी का दीक्षा लेने का पक्का सकल्प है, तो अभी आप लोग आज्ञा पत्र तथा प्रतिज्ञापत्र समर्पित कर दें, ताकि अन्य सभी सघो को यह कहकर समझाया जा सके कि दीक्षा जैसे उपकार के कार्य को प्रमुखता देना अनिवार्य है, क्योकि शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा के उपकार को दृष्टिगत रखते हुए स्वीकृत चातुर्मास को भी बदला जा सकता है। और फिर ऐसे प्रतिष्ठित एव सम्पन्न परिवार के सरक्षक सदस्य का शासन-सेवा के लिए समर्पण बहुत अधिक उपकार का कार्य है।" आचार्यश्री ने अपने सुझावात्मक विचार रखे।

आचार्यश्री के विचारो को सुनकर एक बार तो सभी आगत सज्जन असमन्जस मे पड गए, किन्तु शीघ्र ही वकील साहब ने अपने पक्ष को सम्भालते हुए कहा—"आचार्यश्री, आपने तो एकदम जटिल समस्या लाकर खडी कर दी। आज्ञा पत्र क्या हमारे हाथ मे है, जो हम अभी लिखकर प्रस्तुत कर दें। माँ, पत्नी, भाई, पुत्र वधुएँ आदि लम्बा-चौड़ा परिवार है, उन सभी को समझाकर ही तो आज्ञा पत्र प्राप्त किया जा सकेगा।"

सहवर्ती वैरागी बन्धु श्री प्रेमचन्दजी ने कुछ ही दूरी पर आगे चल रहे आचार्य देव को सूचिता किया। आचार्यश्री तुरन्त पीछे लौट पडे और मुनिश्री के नाडी सस्थान का अध्ययन कर अन्य सतो को निर्देश दिया—"यथाशीघ्र अगले ग्राम मे पहुँच कर मर्यादानुसार जो कुछ आहार-पानी उपलब्ध हो, लेकर यहाँ पहुँचे।" निर्देश पाकर हम कुछ सत आगे बढे और उपलब्ध आहार, जल लेकर पुन· वही पहुँचे। तब तक ग्रीष्म का प्रकोप उग्र हो चुका था। सडक आग की तरह तपित थी। पैर उछल रहे थे, किन्तु मन मे कुछ और ही उथल-पुथल मची हुई थी। आचार्यश्री ने कुछ धोवन पानी मुनि श्री को पिलाया एव कुछ सावचेती आने पर उचित खुराक भी दी। इजिन को मिले ईंधन की तरह तपस्वी मुनिश्री का शरीर पुन गतिशील हुआ और उसी तपी हुई दोपहरी मे आचार्य देव के साथ देवरी पहुँचे।

मार्ग मे जहाँ कहाँ भी रायपुर के प्रमुख श्रावकगण उपस्थित होते और मार्ग की कठिनाइयो को देख-सुनकर रोमान्चित एव भाव विह्वल हो जाते। वास्तव मे साधना की इस अवधि मे छत्तीसगढ प्रवेश की यह विहार यात्रा रोमाचकता के कारण स्मृति पटल पर अविस्मरणीय बनी हुई है।

सिह द्वार बनाम मच्छर द्वार

इस प्रकार विकट एव बीहड मार्गो को पार करते हुए आचार्य देव का छत्तीसगढ के सिंह द्वार राजनाद गाव मे,पदार्पण हुआ। सिह द्वार नगर-प्रवेश का दृश्य अपने आपमे अनूठा एव स्थानीय जन समुदाय की दृष्टि मे अभूतपूर्व था। बच्चे-बच्चे मे एक अनुपम उत्साह था। आचार्य देव अपने शिष्य समुदाय के साथ पार्श्वनाथ जैन बगीचे मे विराजित हुए। दैनिक कार्यक्रम यथावत चला, रात्रि ज्ञान-चर्चा के पश्चात् जब सभी सत शयोन्मुख हुए कि मच्छरो की सेना चढकर आ गई। बगीचे के पीछे ही एक गदा-सा तालाब था और आस-पास भयकर गदगी। परिणामत बडे-बडे डासो के दल के दल अचानक मिली खुराक पर झपटने वाले बुभुक्षित श्वान दल की तरह मुनि मण्डल पर आक्रमण करने लगे।

रात्रि भर किसी भी मुनि को दस मिनिट के लिए भी निद्रा देवी ने आश्रय नही दिया। ग्रीष्म ऋतु मे ऊनी कम्बल ओढ़कर सोने पर भी नुकीले दन्तुल वाले डास कम्वल के सामान्य छिद्र के आर-पार अपने दन्तुलो को गडाकर अपनी खुराक खीच लेते। अतिम स्थिति यही थी कि सम्पूर्ण रात्रि जागरण मे व्यतीत हुई। मार्ग के क्षुधा-तृषा जनित परिपहो से यह मच्छरो का परिपह कुछ अधिक ही वजनदार रहा। वहाँ थकान के पश्चात् भी कम-से-कम निद्रा तो अच्छी प्रकार आ जाती, लेकिन यहाँ ऐसा नही हो सका। इसीलिए प्रात काल किन्ही संतो के मुंह से निकल पडा—यह सिह द्वार है कि मच्छर द्वार?

तो शून्य जगल के मध्य सडक-निर्माण हेतु बनी मजदूरो की झोपडियो मे ही ठहरना पडा। बारह मील के लम्बे विहार के पश्चात् भी कोई ग्राम नही था। बरखेडा ग्राम मे जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि, यहाँ से सोलह मील पर होशगाबाद है, उसके बीच कोई ग्राम नही है, जहाँ रात्रि-विश्राम किया जा सके। बीच मे चारो ओर पहाडियो एव वृक्षो से घिरा हुआ साय-साय करता हुआ जगल है। हाँ, मार्ग मे यहाँ से लगभग चार मील पर सडक निर्माण के समय ही डामर के टीन की बनी हुई दो-तीन झोपडियाँ हैं, किन्तु वहाँ रात्रि-विश्राम खतरे से शून्य नही है। भयकर जगल होने के कारण जगली जानवरो का बहुत भय रहता है।

आचार्यश्री ने चिन्तन किया कि सोलह मील का एक विहार होना अत्यन्त कठिन है, अत सन्ध्या का चार मील का मार्ग पारकर झोपडियो मे पहुँच जाना उपयुक्त रहेगा। जगली जन्तुओ से भयभीत वह होता है, जिसमे विषमता होती है। हमारा यदि वनजीवी प्राणियो के प्रति कोई द्वेषपूर्ण भाव नही है, तो वे हमे नही सता सकते हैं। दृढ आत्मबल और निश्चय के साथ आचार्य देव बर-खेडा से सन्त-समुदाय के साथ जगल मे बनी झोपडियो मे पधार गये और वही रात्रि-विश्राम किया। आचार्य देव के विचारो के अनुसार तो भयानकता नाम की वहाँ कोई वस्तु ही नही थी। चतुर्दिक सघन वृक्षो से दृश्य मनमोहक, सुहा-वना एव ध्यान-साधना के अनुकूल लगता था। झोपडियाँ भी इतनी छोटी थी कि ना तो खडे रहा जा सकता था और न सभी सन्तो का आराम से सोना हो सकता था, क्योकि एक जो कुछ बडी झोपडी थी उसमे श्रद्धावश उन लोगो ने लिपाई कर दी थी, अत वह अकल्पनीय हो गई, अत बैठकर ध्यान करना ही उनका सही उपयोग था। अन्य सन्तो को सुलाकर आचार्य देव ने स्वय अधिकाश रात्रि उसका उसी रूप मे उपयोग किया।

दूसरे दिन प्रात झोपडियो से बाहर सडक के किनारे सन्त वर्ग प्रति लेखन कर विहार की तैयारी कर रहा था कि तत्कालीन प्रदेश काग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता एव अध्यक्ष श्री मूलचन्दजी देशलहरा भोपाल से कार द्वारा दर्शनार्थ उपस्थित हुए और आचार्य देव से निवेदन किया—"गुरुदेव, इस विकट जगल मे और इन झोपडियो मे आपने रात्रि-विश्राम किया, जहाँ हम बैठना तो दूर, खडे भी नही रह सकते हैं। कितना कठोर है आपका सयमी जीवन!"

आचार्य देव ने मुस्कराते हुए ही उत्तर दिया—"आप नेता लोग हो! आपके लिए बडे-बडे बगले चाहिए। पर हम तो साधु है, 'कही घी घणा और कही मुट्ठी चणा' की उक्ति के अनुसार कही अच्छे मकान मिल जाते हैं तो कही वृक्ष तले ही रात्रि बिता लेते हैं। शास्त्रो मे उल्लेख आता है कि हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि तो बगीचो मे ही ठहरते थे। आप नही देख रहे है सामने सागौन के

विद्यार्थी, कर्मचारी गण एव आगत नागरिक वृन्द के समक्ष आचार्य देव का भाव विभोर कर देने वाला सारगर्भित प्रवचन हुआ। अपने प्रवचन मे आचार्यश्री ने सामयिक विवेकानन्द शब्द को विवेक एव आनन्द मे विभाजित कर उसकी व्युत्पत्ति शब्द एव निर्युक्ति मूलक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की, जिसे सुनकर स्थानीय प्राध्यापक, व्याख्याता आदि कर्मचारी गद्गद् हो गए।

नगर प्रवेश के प्रथम सोपान पर ही अपनी कमनीय जादू भरी वाणी का अमिट प्रभाव विद्वद्मण्डली पर अकित कर आचार्य देव का नगर पदार्पण हुआ और नगर से बाहर स्थित सुराना भवन मे विराजित हुए। चू कि शहर के मध्य-स्थित धाडीवाल ज्ञान भवन श्रोताओ की उपस्थिति के अनुसार अपर्याप्त होता था, अत· स्थानीय कार्यकर्ताओ ने जैन परिवारो की बस्ती के कुछ दूर, किन्तु सुविधापूर्ण सुराना-भवन मे ही चातुर्मास की व्यवस्था की थी और सुराना-भवन के बाहर आधा मार्ग रोककर श्रोताओ के लिए विशाल प्रवचन मण्डप बनाया था। आचार्य देव का चातुर्मास वही सम्पन्न हुआ।

रायपुर चातुर्मास की उपलब्धियाँ

अन्य वर्षावासो की तरह रायपुर का वर्षावास भी नित नूतन उपलब्धियो के द्वार खटखटाता हुआ व्यस्त दैनिक कार्य-विधियो के साथ सम्पन्न हुआ। प्रातः प्रार्थना-प्रवचन, मध्याह्न शास्त्र-वाचन एव सन्त-सती-वर्ग को अध्ययन-अध्यापन तथा सध्या-प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रिकालीन प्रश्नोत्तर का दैनन्दिन क्रम अपनी उपादेयता, भव्यता एव आकर्षकता मे निरन्तर वृद्धि करता रहा। श्रोताओ, ज्ञान-पिपासुओ एव विद्वद्वर्ग की उपस्थिति मे निरन्तर वृद्धि होते रहना तो आचार्य देव के हृदयस्पर्शी, जादूभरे प्रवचन एव व्यक्तित्व की एक अबूझ विशेषता रही है। तदनुसार मुमुक्षु श्रोताओ की उपस्थिति निरन्तर बढती ही रही।

चू कि जैन-धर्म त्याग प्रधान धर्म है (या यो, कहे त्याग ही जैन-धर्म व उत्स है) अत इस वर्षावास मे शतश मुमुक्षुओ ने विविध त्याग-प्रत्याख्यानो अलंकरणो से आत्म देव को सज्जित करने का प्रशस्त प्रयास किया।

ब्रह्मचर्य ही साधना की मूल भित्ति है और वही जीवन निर्माण का प्रथम सोपान है। ब्रह्मचर्य की साधना को दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर ने "तवेसु वा उत्तम वभचेर" के शब्दो मे सर्वोत्तम तप कह कर पुकारा है। आचार्य देव के इस वर्षावास मे अनेको मुमुक्षु आत्माओ ने इस कठोर व्रत को अपना कर साधना की ओर कदम बढाए। दो व्यक्तियो ने तरुणाई की देहली पार करते और विवाह के बन्धनो मे आवद्ध होने के पूर्व ही इस कठोर व्रत पर अपने अडिग चरण बढाए तथा पन्द्रह व्यक्तियो ने सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार

तदनुसार रात्रिकालीन ज्ञानचर्चा एव प्रात कालीन प्रवचन मे बहुत से तारण पन्थी बन्धुओ ने लाभ लिया तथा कुछ वरिष्ठ बन्धुओ ने तो आगामी चातुर्मास होशगाबाद मे ही करने की विनती प्रस्तुत की।

किन्तु आचार्य देव को छत्तीसगढ पहुँचने के लिए दीर्घ-मार्ग पार करना था। अत यहाँ अधिक रुकना नही हो सकता था।

तारण समाज का उत्थान करें

इसी प्रकार होशगाबाद से विहार कर आचार्यश्री ने इटारसी पधारने पर भी उस क्षेत्र के कुछ तारण-समाज के प्रमुखो ने आग्रह किया, "आपका प्रवचन सुनकर आज हमे अपने गुलाबचन्द जी स्वामी की स्मृति आ गई है। वे कहा करते थे कि 'अपने सिद्धान्तो की समानता यदि किसी जैन समाज-सम्प्रदाय से बैठेगी, तो केवल स्थानकवासी से ही।'

वैसे हमने तारण स्वामी के ग्रन्थ का विवेचन तथाकथित दिगम्बर श्री कानजी स्वामी से करवाया, किन्तु हमे उससे किंचित् भी सन्तोष नही हुआ। उन्होने अपने एकान्तिक आग्रह का प्रतिपादन उस विवेचन मे भी कर दिया, अत वह विवेचन हमारी शुद्ध सैद्धान्तिक अवधारणा के अनुरूप नही है। इधर अब तक जो स्थानकवासी मुनिगण यहाँ आये थे, उनसे तो आचार एव विचार की दृष्टि से हमारा सामजस्य नही बैठ पाया, किन्तु आपश्री का प्रवचन हमारे तारण स्वामी के सिद्धान्तो से बहुत अधिक मिलता है। अत आपश्री से हमारा साग्रह अनुरोध है कि आप एक वर्षावास यही करे और हमारे सोये हुए समाज मे पुनर्जागरण का स्वर फूँके। इस सम्पूर्ण क्षेत्र मे तारण सम्प्रदाय के बहुत घर हैं। वे सभी इस वर्षावास मे आपश्री के प्रवचनो का लाभ ले सकेंगे। चातुर्मास की सम्पूर्ण व्यवस्था भी हमारा समाज सम्भाल लेगा।"

उपर्युक्त भाव-भीनी प्रार्थना सुनकर एक बार तो आचार्यश्री का हृदय भी पसीज गया। बहुत बडे उपकार का कार्य था और उसे महत्ता देना उपयुक्त भी था। किन्तु पुन चिन्तन चला कि श्री सम्पतराजजी धाडीवाल के प्रतिज्ञा-पत्र के आधार पर एक बार उधर बढना उचित रहेगा।

आचार्यश्री ने उन्हे किसी तरह सन्तुष्ट किया और इटारसी से शाहपुरा, आदि ग्रामो को पावन करते हुए विन्ध्याचल एव सतपुडा की पर्वत-श्रेणियो को लाघ कर बैतूल पधारे। बैतूल मे दस-बारह दिन के प्रवास मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति हुई। आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञाएँ आदि अनेकानेक त्याग-प्रत्याख्यान हुए एव अमरावती, नागपुर आदि अनेक सघो के शिष्ट-मण्डल सामूहिक रूप से विनन्त्यर्थ उपस्थित हुए। बैतूल के इतिहास मे इतने अनूठे धर्म-जागरण एव प्रभावक धर्मोद्योत का यह प्रथम अवसर था।

गुरु का अपमान करने की भावना नही थी और न बच्चो की भी वैसी भावना माननी चाहिए बच्चे नटखट होते है और उसी चपलता के कारण उन्होने यह अपराध किया है। अपराध जान-बूझकर नही हुआ है। फिर भी अपने मौलाना साहब के साथ कल आपके गुरुदेव के समीप आकर क्षमा याचना कर लेगे। आपको इसके लिये दुःख नही करना चाहिये और न ऐसी छोटी भावना ही रखनी चाहिए कि वे केवल आपके ही गुरुदेव है। गुरुदेव या महात्मा तो जैसे आपके, वैसे हमारे भी तो है।"

वातावरण कुछ शान्त हुआ और दूसरे दिन प्रवचन के समय महन्त श्री लक्ष्मीनारायणदास जी (सदस्य राज्य विधान सभा, मध्य प्रदेश) श्री मौलाना हमीद अली, श्री वीरमणि अधीक्षक आरक्षक दल, श्री यादव उप-जिलाधीश, श्री फजलुद्दीन–मत्री मुस्लिम समाज, रायपुर, आदि गणमान्य नागरिक उपस्थित हुए। चूँकि नगर का वातावरण कुछ बोझिल-सा हो गया था, अतः हिन्दू समाज के गणमान्य सज्जन भी बहुत अधिक सख्या मे उपस्थित थे और इस आशका से कि कही तनाव उग्ररूप न ले ले तथा हिन्दू-मुस्लिम दगा न हो जाएं, पुलिस दल के साथ पुलिस इन्स्पेक्टर भी उपस्थित हो गए थे।

आचार्यश्री के प्रवचन-प्रारम्भ के पूर्व महन्त श्री लक्ष्मीनारायण जी ने आचार्य देव के वन्दन के साथ अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—"आज हम एक विशेष प्रसग को लेकर आचार्य प्रवर के चरणो मे उपस्थित हुए है। कल शहर मे कुछ युवकों की विनोदपूर्ण उद्दण्डता के कारण अप्रिय घटना घट गई थी। उसी सन्दर्भ मे मौलाना साहब, आदि मुस्लिम समाज के प्रमुख आज यहाँ उपस्थित हुए है। घटना कुछ आपश्री के कर्ण गोचर भी हुई होगी। ईद के त्यौहार के प्रसग से मुस्लिम समाज का जुलूस निकल रहा था। उस समय कुछ युवको ने सदर बाजार मे लगे हुए आपश्री के नाम के बैनर को फाड दिया। परिणामतः आपश्री के उपासको के हृदयो को इससे कुछ ठेस लगी और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अपने धर्मगुरु का अपमान कोई भी सहन नही कर सकता है। किन्तु इसमे कुछ समझने मे अन्तर भी रहा है। बच्चो ने अपमान की दृष्टि से पर्दा फाडा हो, ऐसा मैं नही मानता। इस प्रकरण को लेकर नगर मे कुछ तनाव-सा आ गया है। अतः माननीय मौलाना साहब आपश्री के चरणो मे अपने सहयोगी साथियो के साथ क्षमा-याचना हेतु उपस्थित हुए है।" तदनन्तर श्री मौलाना हमीद अली ने खडे होकर अपने विचार क्षमा-याचना के रूप मे व्यक्त करते हुए कहा "आदरणीय श्रद्धेय आचार्यश्री, कल जो कुछ हुआ उसे मैं अच्छा नही समझता। बच्चे नादान होते है और यौवन के साथ उनमे कुछ उद्दण्डता भी आ जाती है। उसी नादानी वश बच्चो ने कल एक बैनर फाड दिया। यद्यपि उसमे हमारा बिल्कुल यह भाव नही था कि आपका अथवा आपके धर्म का अपमान किया जाय। फिर भी बच्चो की उस धृष्टता से आपके हृदय

नागपुर से राजनाद गाव के अन्तरालवर्ती मार्ग मे आने वाले क्षुधा, तृषा तथा उग्र विहार सम्बन्धी परीषहो-कष्टो की अभिव्यक्ति देने मे देह तो रोमाचित होती ही है, किन्तु लेखनी भी काप उठती है। चू कि लेखक स्वय उस मार्ग मे भिक्षावृत्ति की सेवा-सयोजना मे नियोजित था, अत यह उसका अनुभूतिगत बोध है। भाषा एव साधु-मर्यादा की दृष्टि से अपरिचित ग्राम, बडी कठिनाई से ग्राम्यजनो को भिक्षा-विधि से परिचित करवाना और वह भी कई वक्त तीन-तीन, चार-चार गावो मे भ्रमण करने पर भी पर्याप्त भिक्षा का अभाव। शाकाहारी परिवारो की अल्पता तथा भिक्षा-विधि की अनभिज्ञता के कारण उन परिवारो से भी भिक्षा का सयोग नही बैठ पाता। विकट जगलो एव पहाडियो का दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मील के लम्बे विहार की थकान और उस पर आहार-पानी का अभाव अथवा अल्प मात्रा मे प्राप्त होना, जिसे एक-एक आधी-आधी रोटी के रूप मे वितरित-समविभाग करके, एक ओर परिषहात्मक था, तो दूसरा ओर सयमीय जीवन की कठिनाइयो मे अनूठा आनन्दोत्पादक भी था। नयी-नयी दीक्षा पर्याय वाले छोटे-छोटे सतो की अद्भुत सहनशीलता को देखकर कई बार आचार्यश्री का हृदय भी गद्‌गद् हो जाता।

अनेक बार जब सन्तगण भिक्षोपलब्धि के अभाव मे रिक्त हस्त वापस लौट आते, तो आचार्य प्रवर स्वय ग्राम मुखिया अथवा सरपच से सम्पर्क कर उन्हे अपनी भिक्षा-विधि का परिचय देते और केवल शुद्ध शाकाहारी गृह बताने का मार्ग-दर्शन देते तब कही जाकर भिक्षा उपलब्ध होती। हा उष्ण जल अवश्य उस क्षेत्र मे सहजतया उपलब्ध हो जाता, क्योकि गर्म जल से नहाने की वहाँ सामान्य परम्परा है।

व्यक्ति कितना ही देह तितीक्षक अथवा सहनशील क्यो न हो, देह तो आखिर देह ही है। इस मृत्पिण्ड इजिन को तो ईंधन चाहिए ही। बिना ईंधन के केवल उत्साह के धक्को से यह कहाँ तक चलने वाला है। नया-नया इजिन, जिसमे अच्छी आइलिंग हो चुकी है, तेज धक्को से कुछ गति पकड सकता है, किन्तु पुराना इजिन, जिसके चक्के भी घिस गये हो और तेल भी सूख चुका हो, धक्को से कब तक चल पायेगा ?

सत्तर वर्षीय वयोवृद्ध तपस्वी श्री वृद्धिचन्दजी महाराज के शरीर ने अपरिमित मानसिक उत्साह के विपरीत भी उत्तर दे दिया। उग्र विहार एव उचित तथा पर्याप्त खुराक के अभाव मे उनका शरीर थक गया। जैसे-तैसे लगभग अस्सी मील का मार्ग पार कर गए, किन्तु देवरी के करीब पहुँचते-पहुँचते देह ने मन का साथ देना छोड दिया। देवरी ग्राम से लगभग डेढ-दो मील पूर्व ही ग्रीष्म के प्रकोप एव क्षुधा-तृष्णा के परिषह के कारण मुनि श्री व्याकुल हो उठे। चक्कर आने के साथ कुछ बेहोशी आने लगी। भोपाल से ही साथ मे चल रहे

हमारे गुरु का अपमान हमारा अपमान है, किन्तु मैं इसे अपमान मान ही नही रहा हूँ, तो आपका अपमान कैसे हुआ ?

"श्रीमान् महन्तजी एवं मौलाना साहब ने आपके समक्ष जो कुछ कहा, उसे मैं इनका उदार दृष्टिकोण ही मानता हूँ। इसमे क्षमा-याचना जैसा कुछ नही है, फिर भी ये क्षमा-याचना हेतु यहाँ उपस्थित हुए है, यह इनके विचारो की उदारता है। मैं आपसे भी स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मेरा आपके प्रति अथवा आपके समाज एव उन बालको के प्रति कोई वैमनस्य का भाव नही है। मैं आप सबको अपना भाई ही मानकर चलता हूँ। रात्रि मे जब मेरे समक्ष यह घटना आई, तो मैंने उन बन्धुओ से भी स्पष्ट किया था कि आपने व्यर्थ ही इस प्रकरण को तूल दिया। बच्चे सदा गलती करते आये है। आप लोगो मे कम-से-कम इतनी क्षमता-सहनशीलता तो होनी ही चाहिये कि नादान बच्चो की इतनी-सी उच्छृखलता को क्षमा कर सके।

"मैं यहाँ उपस्थित सभी बन्धुओं को कहना चाहूँगा कि मेरा व्यक्तिगत अथवा सामाजिक रूप से किसी भी व्यक्ति के प्रति दुर्भाव नही है। मै यहाँ किन्ही के दिलो को तोडने के लिए नही, जोड़ने के लिए आया हूँ तथापि यदि किसी का हृदय इस प्रकरण से टूटा हो, तो मैं कहना चाहूँगा कि आप—

'ताबा, सोना, सुघड़ नर, टूट जुडे सौ बार।
मूरख हण्ड कुम्हार का, जुड़े न दूजी बार॥'

इस कहावत के अनुसार मिट्टी की हण्डिया न बने, जो टूटने के बाद फिर नही जुड़ती है। आप स्वर्ण के उस घाट की उपमा को अपने समक्ष रखिये जो टूटने पर फिर जुड जाता है। सुघड नर वही होता है, जो टूटने के बाद पुनः स्नेह सूत्र में बन्ध जाता है। अत. आत्मीयतापूर्ण स्नेह के मध्य आप इस प्रसग को न लावे।

"एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अभी मौलाना साहब नया नामांकित बैनर लेकर आये और उसे मुझे भेट करने लगे। सम्भव है, यह उनके जैन साध्वाचार की अनभिज्ञता के कारण हुआ है। जैन मुनि बैनर लगवाना, आदि प्रतिष्ठापूर्ण प्रचारात्मक प्रवृत्ति से दूर रहते है। हम पर्दे, आदि न तो लगाते है और न उस प्रकार की प्रेरणा ही किसी को देते है। यह प्रवृत्ति श्रावकों की है, जो अपनी श्रद्धा एव भावना के अनुसार करते है। हमारा इस प्रवृत्ति मे कोई सम्वन्ध नही है।

"अन्त मे मै यही कहना चाहूँगा कि चाहे वैष्णव समाज हो, चाहे मुस्लिम अथवा जैन समाज। मेरा सभी के प्रति एक ही आत्मीय भाव है। सभी के प्रति

दूसरे दिन कुछ सन्त तो शयन हेतु लगभग दो किलोमीटर दूर जैन गुरुकुल चले गये और आचार्य देव आदि कुछ मुनि वृन्द किसी अन्य मकान मे पधार गए और फिर सभी सतो का उसी मकान मे प्रवास रहा। अस्तु, नागपुर से राजनाद गाव तक का वह दुर्गम मार्ग परीषहो का ही मार्ग रहा।

राजनाद गाव मे कुछ दिनो तक धर्मामृत की पावन वर्षा कर आचार्य देव दुर्ग पधारे। दुर्ग मे भी चन्द दिनो मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति का सिंहनाद फूँक कर वर्षावास हेतु रायपुर की ओर प्रस्थान कर दिया।

पुष्पहार एवं नारियल

आचार्य देव का रायपुर नगर प्रवेश का प्रसग था। रायपुर से लगभग ७-८ मील दूर जिला–सीमा पर ही स्वागत के लिए जैन-जैनेतर गणमान्य सज्जन उपस्थित हुए। भीड से घिरे हुए आचार्य देव गतिलीन थे कि सहसा सामने से आती हुई एक कार रुकी और महन्त श्री लक्ष्मीनारायणदासजी (सदस्य राज्य विधान सभा, मध्य प्रदेश) हाथ मे पुष्पहार एव नारियल लिए हुए कार से उतरे और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा मे भाव विभोर होते हुए सीधे आचार्य देव के निकट पहुँच गए। पुष्पहार उठाकर सहसा आचार्य देव के गले मे डालने को उद्यत हुए कि साथ चल रहे श्रावक बन्धुओ ने अत्यन्त शिष्ट भाषा मे कहा—"नही, नही, यह आप क्या कर रहे हैं ? फूल माला एव नारियल को जैन सन्त छूते तक नही हैं, न इन्हे किसी प्रकार की भेट पूजा ही चाहिए." कहते हुए सहवर्ती एक श्रावक बन्धु ने आचार्यश्री को महन्तजी का प्रदेश के वरिष्ठ कांग्रेस नेता एव कर्मठ कार्यकर्ता के रूप मे परिचय करवाया। महन्तजी ने मुनि मर्यादा से अनभिज्ञ होने के कारण हुई अवज्ञा के लिए क्षमा याचना की और सहवर्ती भीड के साथ पाद विहार मे आचार्य देव के साथ हो गए।

आचार्य देव का नगर प्रवेश रायपुर के धार्मिक इतिहास मे अनूठा एव अभूतपूर्व था। स्थानीय कार्यकर्तागण के साथ जन-सामान्य का उत्साह दर्शनीय था। आबाल वृद्ध सभी के चेहरो पर एक अद्भुत पुलकन थी।

आचार्य देव, नगर प्रवेश करते समय ज्योही विवेकानन्द आश्रम के सामने से निकल रहे थे कि आश्रम के प्रमुख कार्यकर्ता श्री सतोषकुमारजी झा आचार्य देव के समक्ष आकर खडे हो गए और आचार्य देव का स्वागत करते हुए आश्रम स्थित विद्यार्थियो के मध्य प्रवचन का आग्रह करने लगे। चूंकि स्वागतार्थ आने वाला नगरजनो का समूह भी तब तक वहाँ बहुत बडी सख्या में उपस्थित हो चुका था और अभी समय भी अधिक नही हुआ था, अत. आचार्यश्री ने प्रवचन की स्वीकृति दे दी और शोभा यात्रा के साथ ही आश्रम भूमि मे पदार्पण किया। आश्रम के मध्य स्थित विशाल हाल मे स्थानीय

अनार्य देश : आर्य सन्देश

उड़ीसा प्रान्त की ओर

रायपुर का आदर्श, अभूतपूर्व ऐतिहासिक चातुर्मास आध्यात्मिक उत्क्राति के साथ सम्पन्न कर आचार्य देव ने उड़ीसा प्रान्त की आग्रहपूर्ण विनती के कारण उडीसा प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। प्रदर्शन-प्रवृत्ति से दूर रहने की मनोवृत्ति ने प्रस्थान वेला मे एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया। नागरिको की इच्छा थी कि नगर-भ्रमण के पश्चात् विवेकानन्द नगर पदार्पण हो, जबकि सुराना भवन से विवेकानन्द नगर का सीधा मार्ग था। आचार्यश्री ने मार्ग की जानकारी ली तो भावुक श्रद्धालुओ ने नगर की ओर होते हुए जाने वाला मार्ग ही बतलाया, किन्तु किन्ही सरल हृदय बन्धुओ से ज्ञात हो गया कि इधर से सीधा मार्ग है, जिसमे नगर भ्रमण नही करना पडता है और हजारो की भीड नगर-मार्ग की ओर प्रतीक्षा करती ही रह गई और आचार्यश्री सीधे मार्ग से विवेकानन्द नगर पहुँच गए। अधिक प्रदर्शन एवं आडम्बर से दूर रहने का यह एक आदर्श उदाहरण था।

विवेकानन्द नगर से गुडिहारी, जोरागाव आदि उपनगरो एव मार्गवर्ती क्षेत्रो को पावन करते हुए आचार्य देव का आरग पदार्पण हुआ। यद्यपि आरग मे जैन परिवारो का वास नही था, फिर भी चालीस घर अग्रवाल एव सत्तर घर गुप्ता आदि परिवारो के थे जिनका रायपुर के जैन परिवारो से बहुत गहरा व्यापारिक सम्बन्ध होने से यदा-कदा चातुर्मास काल मे प्रवचन-श्रमण हेतु आगमन होता रहता था। अत: आचार्य देव के व्यक्तित्व एव प्रभावक प्रवचनो से प्रभावित वे पूर्व मे ही हो चुके थे। अस्तु, आचार्य देव के आरग पदार्पण पर स्थानीय समस्त व्यापारियो ने आचार्य देव के आरंग प्रवास-काल तक सम्पूर्ण व्यापार वन्द रखा। प्रात:, मध्याह्न प्रवचन एव रात्रि ज्ञानचर्चा मे अत्यधिक उत्साहपूर्वक भाग लेकर जन्मता जैन उपासको से भी अधिक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। आगन्तुको का आतिथ्य सत्कार भी, जो कि सैकडो की सख्या मे होते थे, स्थानीय व्यापारी सघ ने ही अत्युदार भावो से किया। वाहर से आगत सैकडो दर्शनार्थियो को यह आभास नही होता था कि यहाँ स्थानीय वन्धु जैन नही है।

किया, उनमे लब्ध प्रतिष्ठ धनाढ्य श्री चम्पालालजी सुराना एव श्रीमती विजयाबाई सुराना का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होने ४१ व ३८ वर्ष की उम्र मे इस असिधारा व्रत को स्वीकार किया।

ब्रह्मचर्य साधना के साथ जैन-धर्म मे अनशन तप—निराहार रहने का भी अपना अनूठा महत्त्व है। वय और काय से वृद्ध किन्तु मन से युवा श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० ने लगभग ७० वर्ष की उम्र मे पैंतीस दिन तक निराहार केवल गर्म जल के आधार पर तथा तपोनिष्ठ श्री कवरलालजी म० सा० (बडे) ने छाछ के आधार पर एक साथ २५१ दिन के तप का प्रत्याख्यान कर तपस्या के क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया तथा तद् द्वारा जन-जागृति कर मुमुक्षु आत्माओ को आत्मोत्थान हेतु प्रेरित किया। परिणामत. श्रावक-श्राविका वर्ग मे भी आशातीत तपस्याएँ हुईं।

क्षमा का अमिट प्रभाव

उपर्युक्त दैनन्दिन कार्यक्रमो के अतिरिक्त चातुर्मासार्थ मगल प्रवेश के एक-दो दिन पश्चात् एक अजीब-सी विघटनात्मक एव तनावपूर्ण घटना घटित हुई, किन्तु आचार्य देव की अपूर्व तितिक्षावृत्ति एव शान्ति के प्रभाव ने विषमता एव तनाव के अकुरण के पूर्व ही इस विष को उपशमित कर समाप्त कर दिया।

हुआ यो कि आचार्य देव के नगर प्रवेश के पूर्व स्थानीय सघ के कार्यकर्ताओ ने "भगवान् महावीर स्वामी की जय, आचार्यश्री नानालालजी म० सा० की जय · " आदि कुछ बैनर (पर्दे) राजमार्ग (सदरबाजार) मे लगा दिये थे। आचार्य देव के प्रवेश के दूसरे या तीसरे दिन ही मुस्लिम समाज का ईद का पर्व था। पर्व के प्रसग से मुस्लिम समाज का एक जुलूस सदरबाजार को पार कर रहा था कि जुलूस के साथ ट्रक मे बैठे हुए कुछ युवको ने धाडीवाल ज्ञान भवन एव श्री भीखमचन्दजी बैद की दुकान के बीच रोड के ऊपर लगे हुए एक बैनर को जिसमे आचार्यश्री का नाम अकित था, फाड दिया। युवको को उद्दण्डता करते हुए कर्मठ कार्यकर्ता, समाजप्रतिष्ठ युवा हृदय श्री भीखमचन्दजी बैद एव कुछ अन्य व्यक्तियो ने देख लिया। युवको की इस उद्दण्डता एव शरारतपूर्ण प्रवृत्ति को उन्होने अपने गुरु तथा धर्म का अपमान माना और वे जुलूस के साथ चलने वाली बस एव ट्रको के आगे आकर खडे हो गए तथा मुस्लिम समाज के प्रमुख सदस्यो के समक्ष अडकर कहने लगे—"आपके कुछ शरारती लडको ने हमारे धर्म गुरु का अपमान किया है, उन्होने हमारे गुरु के नाम के पर्दे को फाड दिया है।" तनाव बढने लगा, गणमान्य प्रसिद्ध नेता महन्त श्री लक्ष्मीनारायणदासजी, आदि सज्जन कुछ बीच बचाव करने लगे। इतने मे चूँकि सिटी कोतवाली समीप ही थी, अत. पुलिस दल के साथ एस० पी० भी पहुँच गये। बीच-बचाव हुआ और मुस्लिम समाज के मुखिया बन्धुओ ने कहा—"हमारी आपकी और आपके

तो दूसरी ओर खरियार रोड काटाबाजी, केसिगा आदि ग्रामों के उडीसा के सैकडो श्रद्धालु नर-नारी अपने श्रद्धेय के स्वागतार्थ नदी के उस ओर उपस्थित हो गए। एक ही साथ एक ओर से विदाई और दूसरी ओर से स्वागत का दृश्य अनुपम छटा लिए हुए था।

खरियार रोड में धार्मिक उत्क्रान्ति की अभूतपूर्व लहर उत्पन्न हुई। बच्चो मे धार्मिक ज्ञानार्जन की होड-सी लग गई। कुछ बच्चो ने चन्द दिनो मे नमस्कार महामत्र से लेकर सामायिक के पाठ कण्ठस्थ कर लिए। एक बालक महेशकुमार कक्षा ६ ने तो एक ही दिन मे सम्पूर्ण पाठों एव कुछ ही दिनो मे प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, तेतीस बोल, थोकडा आदि कण्ठस्थ कर अपनी तीव्र मेधा का परिचय दिया। सघ के उत्साह एवं आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य देव को वहाँ पूर्ण शेष काल अर्थात् उन्तीस दिन तक रुकना पडा। चूकि दत्तात्रेय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य एव अध्यापक भी प्राय: प्रवचन का लाभ लिया करते थे, अत: प्रवचनो से प्रभावित होकर आग्रह किया कि हमारी शाला मे भी विद्यार्थी एवं अध्यापक वर्ग के समक्ष स्वतन्त्र रूप से प्रवचन होना चाहिए। तदनुसार दो दिन मध्याह्न शाला-प्रागण मे प्रवचन हुए।

आत्मा अनुभवगम्य

प्रवचनान्तर आचार्यश्री ने अध्यापको को एवं छात्रो को सम्बोधित करते हुए कहा कि मेरे व्याख्यान से सम्बन्धित अथवा अन्य भी कोई आपका प्रश्न हो या किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त करनी चाहें, तो आप प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि ७। से ८।। बजे तक के मध्य पूछकर समाधान ले सकते हैं और अभी भी कोई प्रश्न करना चाहे तो कुछ समय अब भी दिया जा सकता है। मैं अपनी साधु भाषा मे समाधान दे सकता हूँ।

एक अध्यापक ने प्रश्न किया कि "आत्मा नाम का कोई स्वतन्त्र तत्त्व है क्या? यदि है तो हमारी दृष्टि मे क्यो नही आता?" आचार्यश्री ने फरमाया कि "आपके प्रश्न के उत्तर मे पहले मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि आप ने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है?" अध्यापक—"बी० ए० तक।" आचार्यश्री—"आपमे बी० ए० की योग्यता है?" अध्यापक—"जी हाँ।" आचार्यश्री—"यह आप कैसे कहते है कि मेरे मे बी० ए० की योग्यता है।" अध्यापक—"मैं मेरी योग्यता स्वय अनुभव कर रहा हूँ। इस लिए कहता हूँ कि मेरे मे बी० ए० की योग्यता है।" आचार्यश्री—"यदि आप को कोई यह कहे कि आप मे बी० ए० की योग्यता है और आप इसका अनुभव करते है तो मुझे हथेली पर रखकर उसे प्रत्यक्ष बताइये। यदि आप प्रत्यक्ष नही बताते हैं तो मै कैसे मानूँ? इसका उत्तर आप प्रश्नकर्ता को क्या देगे?" अध्यापक—"अनुभव बताया नही जा सकता लेकिन

को तथा आपके उपासको को किसी भी प्रकार की ठेस पहुँची हो, तो मैं अपने सम्पूर्ण समाज की ओर से आपश्री से हार्दिक क्षमा-याचना करता हूँ। आप तो महान् क्षमामूर्ति हैं। आप बच्चो की उस नादानी को दिल मे नही रखकर हमे उदार दिल से क्षमा करेंगे। साथ ही यह नया बैनर हम बनवाकर लाए है। इसे आप स्वीकार करेगे।" कहते हुए बैनर आचार्यश्री को भेंट करने लगे तो स्थानीय कर्मठ कार्यकर्त्ता, मत्री तथा छत्तीसगढ के प्राण श्री सम्पतराजजी धाडीवाल ने सकेत करके उन्हे बिठाया और समझाया कि आचार्यश्री अथवा हमारे कोई मुनिराज ऐसे बैनर लेते ही नही हैं और न इन्हे इन बैनरो से कोई लगाव है। बैनर, आदि तो हम श्रावक लोग ही बनाते हैं और उचित स्थानो पर लगा देते है। इसमे मुनिराजो का कोई हाथ या सहकार नही रहता है।" तो मौलाना साहब यथा स्थान बैठ गये।

अनन्तर आचार्य देव ने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया, जिसके सक्षिप्त भाव थे ·

"बन्धुओ! आज जो यह सब कुछ सुन एव देख रहा हूँ, मुझे बहुत आश्चर्य-जनक सा लग रहा है। बच्चो के द्वारा किये जाने वाले सामान्य से कार्य मे आप इतने उलझ गये हैं कि मैं इसे भी एक बच्चे-सी ही चचल क्रिया कह दूँ तो चलेगा। मैं तो ससार के समस्त प्राणियो पर बन्धुत्व भाव का सदेश देता हूँ तथा वैसा ही मानकर चलता हूँ। ऐसी स्थिति मे क्या वे बालक भी आपके समान मेरे भी बालक अथवा बन्धु तुल्य नही हैं। अब तनिक विचार करिए, एक नादान बच्चा अपने पिता की अथवा दादा, नाना की मूँछ तक पकडकर खीच लेता है, तो क्या पिता उस पर क्रोध अथवा रोष करता है, नही, वह उसे फिर भी प्यार की दृष्टि से ही देखता है। वैसे ही कदाचित् कुछ बालको ने नासमझी वश कुछ कर दिया, तो क्या हम भी उनके साथ वैसी ही नादानी करे, क्या यह शोभनीय होगा? इसके अतिरिक्त किसी वस्त्र पर अथवा कागज पर अकित नाम के फाड देने से ही किसी का अपमान हो जाता हो, ऐसा मैं नही मानता। यो तो फिर हजारो समाचार पत्रो मे महापुरुषो के नाम एव चित्र अकित होते है और वे पैरो तले रौंदे जाते है। अत. इसमे मान-अपमान का प्रश्न उठाना बहुत भावुकतापूर्ण मन स्थिति का परिचायक है। जिन भी बन्धुओ ने इस विषय को तूल दिया है, उन्हे मैं कहना चाहूँगा कि वे इस लघुतम विषय को इतना अधिक तूल न दें तथा अधिक भावुकता मे न उलझे।

"इसके अतिरिक्त मैं मान-अपमान की इस सकुचित परिधि का विचार नही रखता। किसी के कुछ बुरा-भला कहने मात्र से हम मान-अपमान मान ले, यह उचित नही है। अपना मान अपने हाथ है। किसी दूसरे के शब्दो एव कृत्यो पर हमारा सम्मान आधारित नही है। आप (श्रावक) यह समझ रहे हैं कि

नही मानती हो, तो एक सन्त के साथ आप पुन. लौट सकते है तथा साथ ही वयोवृद्ध श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० को भी लेते जाओ, क्योकि मार्ग अत्यन्त कठिन परीषहात्मक है। और वयोवृद्ध श्री वृद्धिचन्दजी म० सा०, लेखक (शान्ति मुनि) एव कँवरचन्दजी म० सा० के बगोमुण्डा से पुन. लौटने की रूपरेखा बन गई। किन्तु इस बात की जानकारी ज्योही केसिंगा के धर्मनिष्ठ बन्धुओ को हुई, वे अत्यन्त आग्रह करने लगे "गुरुदेव, इतना समीप आकर दो सिघाडे मत करिये। यह तो एक तालाब के ठेके का दिन था, अत: आपको आज ऐसा दृश्य देखने को मिला, अन्यथा ऐसे कुछ नही होता है। साथ ही हम लोग ऐसी सब्जिया नही खरीदते है। हम खान-पान मे पूर्ण शुद्धता का ध्यान रखते है। अत: निवेदन है कि सभी सन्त केसिंगा तक तो पधारे।"

मुनि श्री कवरचन्दजी के विचारो मे परिवर्तन हुआ और फिर आचार्यश्री के साथ ही केसिगा तक विहार हुआ।

दुखती नस का उद्घाटन

बगोमुण्डा में नौ दिन तक जिनवाणी की सरस फुहारे छोडकर आचार्य देव सिधिकेला पधारे। सिधिकेला मे तेरापन्थ सम्प्रदाय के लगभग तीस परिवार है। सामान्य-सी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के उपरान्त भी कुछ बन्धुओ का सत्य धर्म के प्रति अनुराग श्रेष्ठ था। कुछ व्यक्तियो ने तो सकुचित साम्प्रदायिक विचारों से अलग हटते हुए दया-दान एव भिक्षावृत्ति विधि के सन्दर्भ मे खुलकर चर्चा की और सन्तुष्ट हो, अपने बद्धमूल विचारो मे सशोधन किया। लगभग ३ दिन का प्रवास काल सैद्धान्तिक तथा साहवाचार की चर्चाओ के सन्दर्भ मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा।

एक बन्धु के स्वर तो यहाँ तक फूट पडे कि "महाराजश्री सच्ची साधुता एव जैन के सिद्धान्तो का सही बोध ही हमे अब हुआ है। आप जैसे तत्त्वज्ञ एव क्रियानिष्ठ मुनियो का इस क्षेत्र मे यह प्रथम आगमन हुआ है। इसके पूर्व हमारे यहाँ तेरापन्थ सम्प्रदाय के साधुओ का ही आना होता रहा है। आपके साथ न तो कोई रास्ते की सेवा करने वाले है और न साथ वालो का आहार-पानी ही आप लेते है, किन्तु हमारे सन्त तो रास्ते की सेवा के लिये पारी बाँध देते है। वास्तव मे सच्ची साधु चर्चा की जानकारी हमे आपश्री के इधर पदार्पण से ही हो पाई है। आप यदि कुछ दिनों इन क्षेत्रो मे विचरे, तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है।" अपने भाव व्यक्त करते हुए उस बन्धु ने अपनी आन्तरिक सरल भावना को स्पष्ट कर दिया।

"महाराज, मै ब्राह्मण हूँ, अत: मछली का नहीं, कबूतर का मांस खाता हूँ"

सिंधिकेला मे ही एक अजीब-सा प्रसग बना था। सरकारी आदेश पर

एक ही सद्भावना है, सभी आत्मविकास मे आगे बढते जाये, राग-द्वेष को समाप्त करे, विकारो को जीते तथा सद्भाव, स्नेह, सौजन्य के साथ आत्मलीन बनते चले जाएँ। अत आज के इस प्रकरण को आप यही समाप्त कर, मेरी झोली मे डाल देगे एव पारस्परिक प्रेम मे वृद्धि करने का प्रयास करेगे।"

समता की साकार प्रतिमा, क्षमामूर्ति आचार्य देव के विश्व वात्सल्य के अनुप्रेरक अमिय वचनो को सुनकर सभी आगत वरिष्ठ सज्जन भाव-विभोर हो गये—कैसे परम क्षमा सम्पन्न ये मुनि प्रवर हैं, अपमानकर्ता पर भी कितनी प्रेम पूर्ण दृष्टि है इनकी। वास्तव मे ऐसे अलौकिक क्षमा-सम्पन्न महापुरुषो की ही आज के समाज को आवश्यकता है, जो समाज को शान्तिपूर्ण जीवन का मार्ग-दर्शन दे सके और जन-जन मे व्याप्त कटुता एवं विषमता को अपने समता-मय व्यक्तित्व से समाप्त कर, विश्व शान्ति का मार्ग प्रशस्त कर सके।

पुलिस अधीक्षक श्री वीर मणि तो इतने प्रभावित हुए कि प्रवचन समापन पर कुछ आरक्षको को सकेत करते हुए कहने लगे—"कल से प्रवचन के समय यहाँ पर पुलिस व्यवस्था होनी चाहिए जो यातायात जनित कोलाहल को प्रति-बन्धित कर सके अर्थात् यहाँ वाहनो के हार्न आदि की प्रतिध्वनियो पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए, ताकि ऐसे मधुर, जीवन निर्माणकारी प्रवचनो का सामान्य जनता भली प्रकार लाभ ले सके। दूसरे दिन से वहाँ पुलिस की सुदृढ व्यवस्था हो गई। किन्तु आचार्यश्री ने सकेत किया कि "इस कार्य हेतु पुलिस को कष्ट देने की आवश्यकता नही है। जिन व्यक्तियो को तीव्र जिज्ञासा होगी, वे अपने ध्यान को प्रवचन पर केन्द्रित करके ही सुनेंगे।"

आचार्यश्री के सकेत के आधार पर अधीक्षक महोदय ने वहाँ से पुलिस हटा दी, किन्तु निकटवर्ती चौराहो पर उन्हे नियुक्त कर अपनी ओर से प्रवचन-वेला मे पूर्ण शान्ति बनाये रखने का प्रयास किया।

घटना अत्यन्त लघु एव सामान्य थी, किन्तु लघुतम विष बिन्दु के समान विराट विकराल रूप धारण कर सकती थी और हिन्दू-मुस्लिम दगा तक हो सकता था। यदि आचार्य देव यत्किंचित् भी अपने उपासको को उत्तेजित कर देते कि वे अपमान कैसे सहन करते, किन्तु आचार्य देव की अद्भुत क्षमाशीलता ने उस विष-बिन्दु को उत्पन्न होते ही निर्विष कर दिया, ताकि वह अपना भयकर रौद्र परिणाम न दिखा सके।

इस प्रकार आचार्य देव की आदर्श एव अद्भुत क्षमाशीलता ने रायपुर ही नही, सम्पूर्ण छत्तीसगढ क्षेत्र मे एक अमिट छाप छोडी जिसे छत्तीसगढ की धर्मप्राण आम जनता आज तक विस्मृत नही कर पाई है और न कभी विस्मृत कर पायेगी।

• • •

किन्तु जैन बन्धुओ के समान ही उनकी भक्तिपूर्ण भावनाये अत्यन्त उच्चकोटि की थी ।

टीटीलागढ के धर्म स्नेही बन्धु नमक-व्यवसायी श्री हीरालालजी के सुपुत्र श्री महावीर प्रसाद जी जैन भिक्षावृत्ति की दलाली हेतु उन वैष्णव बन्धुओ के घर मे गये, तो एक स्थानीय बुजुर्ग बन्धु ने विनोद भरे स्वर मे कहा—"महावीर! पहले जब भी तुम्हारे महाराज यहाँ आते, तो भाई-वहिने रसगुल्ले एव मिठाइयो के टीफिन लेकर पहुँच जाते । हमारे यहाँ भिक्षा हेतु तो वे कभी आते ही नही थे । आज क्या हो गया है ? श्रावक लोग थक गये है क्या ?"

"बाबा, ये वो महाराज नही है । ये साथ मे रहने वाले का भोजन नही लेते है । बडा कठोर सयम मार्ग है इनका । ये तो बस्ती मे जाते है । वही का रूखा-सूखा जैसा मिलता है भोजन करते है ।" एक गम्भीर मुस्कराहट के साथ महावीरजी ने स्पष्ट किया ।

खुलान से टीटीलागढ होते हुए केसिगा पदार्पण हुआ । टीटीलागढ मे नमक व्यवसायी श्री हीरालालजी के एक स्वतन्त्र भवन मे विश्राम किया ।

चर्चा के मध्य उन्होने स्पष्ट किया, "महाराज, यहाँ प्राय सभी अग्रवाल है और तेरापथ सम्प्रदाय को ही मानते हैं । उनसे मैंने आपको ठहराने हेतु मकान की व्यवस्था के लिये कहा, तो कहने लगे कि "ठहर जावेगे किसी धर्मशाला मे ।" तब मैंने कहा, "अपने साधु आते है, तब हम सुन्दर-से-सुन्दर भवन की व्यवस्था करते है और आज स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य आये हैं, तो उनके लिये साधारण भवन भी नही दे सकते है । तव मुझे तेरापथ सम्प्रदाय के मुखिया से ज्ञात हुआ कि इनको स्थान देने एव प्रवचन सुनने के लिये ऊपर से निषेध आया है । अत. हम कुछ भी व्यवस्था नही करेगे । हम तुम्हे भी यही कहेगे कि यदि अपने सम्प्रदाय के प्रति कर्त्तव्य परायणता रखनी है, तो इस व्यवस्था मे मत उलझो । किन्तु महाराज मैंने तो आपके साध्वाचार को देखकर विचार कर लिया कि लोग कुछ भी कहे, मै सब व्यवस्था करूँगा और प्रवचन, आदि भी करवाऊँगा । क्योकि मैंने सच्ची साधुता का दर्शन आप मे ही किया है । इसके पूर्व आप लोगो का इधर कभी आगमन नही हुआ था और इस प्रकार के साधुओ को ही सच्चा साधु और जीवन-रक्षा मे पाप को ही जैन धर्म मानते चले आ रहे है । किन्तु हमारी दृष्टि मे सच्चा जैन एव सच्ची साधुता इस विचार-चर्चा के पश्चात् स्पष्ट हुई ।"

आचार्यश्री ने कुछ गम्भीर स्वर मे ही कहा—"यह तो अपनी-अपनी भावना एव विचारणा है । चाहे कोई कैसा ही सिद्धान्त बना ले अथवा मान ले, सत्य तो सत्य ही रहेगा । साधु–जीवन की मर्यादाएँ भी शास्त्र-विहित है ।

आचार्यश्री को जब ज्ञात हुआ कि जैन सस्कार मे पले हुए नही होने पर भी कितनी अदम्य अभीप्सा है इनमे धर्म के प्रति कि धर्म-श्रवण तथा जीवन-जागृति हेतु अपना सम्पूर्ण व्यवसायतन्त्र ही बन्द कर दिया है, तो सहज चिन्तन हुआ समाज मे सभी प्रकार के धनी-दीन व्यक्ति होते हैं। अधिक समय तक इनकी आजीविका पर व्यवधान डालना उपयुक्त नही है। अस्तु, दो दिन के प्रवास के पश्चात् ही आचार्यश्री विहार का विचार करने लगे कि स्थानीय प्रमुख सज्जन श्री लखनलालजी गुप्ता, गेन्दालालजी गुप्ता आदि उपस्थित हो आग्रह करने लगे "आचार्यश्री, आप अपने भक्तो को तो सदा ही सुनाते हैं, अभी हम नये-नये भक्तो को और समय देना पडेगा। यद्यपि इन दो दिनो मे ही आपने आरग वासियो को अपने रग मे रग दिया है, किन्तु रग अभी कुछ कच्चा है, उसे पक्का करने के लिए आपको अभी कुछ दिन और समय देना होगा। रहा प्रश्न व्यापार बन्द और आगन्तुको की सेवा का, सो तो ऐसा अवसर कब-कब प्राप्त होता है। हमे अपने जीवन मे यह स्वर्णावसर, प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है। व्यापार तो हम जीवन पर्यन्त करते रहे हैं और करते ही रहेगे।"

आचार्य देव भावुक हृदयो की आन्तरिक पुकार को टाल नही सके और एक दिन और विराजे।

आरग से विहार कर आचार्यश्री बेलसोडा कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट के भवन मे विराजे। वहाँ के कर्मचारियो ने आचार्य देव को एक प्रकृति का अजूबा बताया। एक काच की बडी सी बरनी मे स्प्रिट मे एक बच्चे का शव रखा हुआ था। जिसके धड तो एक था किन्तु सिर मुह दो थे। चार आखे थी। आचार्य देव ने शिष्य समुदाय को नाम कर्म की विचित्रता का बोध कराते हुए कहा— "इसे कहते हैं नाम कर्म की विचित्र लीला। अशुभ नाम कर्म के उदय से ही शरीर मे स्वाभाविक स्थिति से भिन्न आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं।"

बेलसोडा से आचार्य देव का महासमुन्द एव बागबहरा पदार्पण हुआ। दोनो स्थानो पर स्थानकवासी परिवारो की अल्पता होने पर भी मूर्तिपूजक बन्धुओ ने, विशेष कर महासमुन्द मे स्वतन्त्रता सेनानी यति श्री यतनलालजी ने आचार्य देव के विद्धत्तापूर्ण प्रवचनो का लाभ लिया। तात्त्विक एव सैद्धान्तिक चर्चा के द्वारा अपने प्रश्नो को भी समाहित किया।

महासमुन्द एव बागबहरा मे धर्मोद्योत कर आचार्य देव का खरियार रोड पदार्पण हुआ। खरियार रोड मध्यप्रदेश की सीमा-पार, उडीसा प्रान्त का सीमावर्ती नगर है। खरियार रोड से लगी हुई जो एक नदी है वही दोनो प्रान्तो की विभाजक रेखा है। अत. मध्यप्रदेश के रायपुर आदि के सघ भी बसो द्वारा अपनी प्रान्तीय सीमा से अपने आराध्य को विदाई देने उपस्थित हो गए,

आचार्य देव ने मधुर शब्दो मे समझाते हुए कहा—"आपने यह भ्रान्त धारणा बनाली है कि जैन धर्म जीव-रक्षा मे पाप मानता है। जैन धर्म की ऐसी कोई मान्यता नही है। जैन धर्म तो पूर्ण अहिंसा पर ही प्रतिष्ठित है। जैनागमो का निर्माण भी समस्त प्राणियो की रक्षा रूप दया के लिये ही हुआ है। हाँ, जैन धर्म का एक सम्प्रदाय ऐसा भी है, जो जीव-रक्षा मे पाप बताता है और आपके इधर उन्ही सम्प्रदाय के मुनियो का विशेप आगमन रहा है। अत· आपके मन मे ऐसी जिज्ञासा का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है, किन्तु यह विचार आप मस्ति से निकाल दीजिये कि जैन धर्म की मूल मान्यता जीव-रक्षा मे पाप की है। जै धर्म के सिद्धान्त पूर्ण अहिसा पर प्रतिष्ठित है और वहाॅ जीवन-रक्षा को सर्वो धर्म बताया गया है। एक सम्प्रदाय विशेष के कुछ सिद्धान्त गढ लेने से सम्पू जैन धर्म को वैसा मान लेना उचित नही माना जा सकता है।"

आचार्य देव के स्पष्टीकरण को सुनकर मागीलालजी अवाक् रह गये- "क्या यह जैन धर्म की मान्यता नही है। क्या आप मे तथा तेरापथ सम्प्रदाय सैद्धान्तिक अन्तर है। यह तो आज ही सुन रहे है। यदि ऐसा है तो आपके अ हमारे सिद्धान्त तो बहुत कुछ मिलते-जुलते ही है।

आचार्यश्री ने पुन: किंचित और स्पष्ट करते हुए कहा—"इसके पू आपको ज्ञात भी कैसे होता। पूर्व मे उसी सम्प्रदायो के साधुओ का भ्रमण हो रहा है। हमारा तो यहाॅ यह प्रथम बार ही आना हुआ है। अब आपके कित भी सन्देह हों, स्पष्ट कर ले और अपनी धारणाओ को शुद्ध बना ले।"

"गुरुदेव ! अब तो मेरी सभी भ्रान्त धारणाएँ निर्मूल हो गई हैं। आप यह कहा कि वह एक अलग सम्प्रदाय है और उसकी अपनी मन· कल्पित मान्यताएँ हैं। मै स्वय कितनी ही बार चिन्तन करता था कि ये भी कोई सिद्धान्त कि जीव-रक्षा मे पाप, माता-पिता की सेवा मे पाप, किसी दीन-दु खी को अनुकम्पा बुद्धि से कुछ दे देने मे पाप। मै इतने समय तक इन्ही सिद्धान्तो को जै धर्म के सिद्धान्त मानकर जैन धर्म को ही मानवता विरोधी धर्म मान बैठा थ और इसीलिए यहाँ के जैनो से मेरी नही पटती थी। अब तो मै नित्य प्रति आऊँगा और अपने समाज के सभी व्यक्तियो को भी प्रेरित करूँगा।" मागीलालजी ने स्पष्ट किया।

दूसरे दिन से ही प्राय: अधिकाश वैष्णव धर्मावलम्बियों का आचार्य देव के प्रवचन, आदि के प्रसगो पर महावीर भवन मे आना प्रारम्भ हो गया। श्री मागीलालजी का महावीर भवन मे प्रवेश तेरापथ सम्प्रदाय के सदस्यो के लिये आश्चर्य का विषय बन गया। कुछ बन्धुओ के तो शब्द भी निकल पडे— "महाराज, मागीलालजी के महावीर भवन मे पैर ही नही पडते थे। किसी सामाजिक कार्य मे भी ये कभी महावीर भवन मे पैर नही देते थे, किन्तु अब तो

मै उसका स्वयं अनुभव कर रहा हूँ" यह कहूँगा। आचार्यश्री—"आप जो अनुभव कर रहे हैं, वह एक विशिष्ट गुण है और वह गुण जिसमे रहता है, वह आत्मा है। इस अनुभव के आधार पर आप आत्मा को अच्छी तरह समझ सकते है।" तर्कप्रवण किन्तु सक्षिप्त उत्तर से अध्यापक गद्गद् हो गये।

खरियार रोड मे धर्म-जागृति की अभूतपूर्व उद्भावना कर आचार्य देव काटाबाजी पधारे। मार्ग अत्यधिक विकट था। रेल्वे लाइन पर चलना था और वह भी सोलह मील तक। पानी मिलने की भी सम्भावना नही थी। रात्रि-विश्राम हेतु स्थान देखने के लिये खरियार रोड निवासी श्रद्धानिष्ठ गुजराती बन्धु सघ प्रमुख श्री रसिकलाल भाई घोलकिया एव प्रवीण भाई लखना से आगे गये तो पुन लौटते समय भयकर जगल मे उलझ गये। रात्रि का समय, रेल्वे लाइन के किनारे साइकिल का चलना कठिन हो गया और साथ ही टार्च भी खराब हो गयी। जगली जन्तुओ की भयानक आवाजो के साथ गुरुदेव का नाम-स्मरण करते हुए बहुत रात्रि व्यतीत होने पर पुन लखना लौटकर गुरुदेव के नाम-स्मरण का प्रभाव बताने लगे।

उस कठिन मार्ग को पारकर आचार्य देव काटाबाजी पधारे और वहाँ से बगोमुन्डा पधारे। बगोमुन्डा ग्राम प्रवेश के समय ही ग्राम के बाहर पचासो व्यक्तियो को मछलियो का जाल लिये जाते देखा तथा ग्राम के मध्य बाजार मे सब्जी एव मछली बेचने वालो की कतारे देखी, जिनमे एक ही टोकरी मे सब्जी एव मछलियाँ पडी थी और उन्ही सब्जियो को सभी स्थानीय लोग खरीदते थे। उस जुगूप्सित दृश्य को देखकर सभी सन्तो के हृदय करुणा से द्रवित हो उठे। मुनिश्री कवरचन्दजी म० सा० तो स्थान पर पहुँचते ही करुण स्वर से रुदन करने लगे और कहने लगे—"गुरुदेव, किस हिंसक एव अनार्य देश मे आ गये हम। मै तो यहाँ से आगे नही चल सकता। बस यहाँ से पुन लौट चले। यहाँ का दूषित खान-पान मै नही खा सकता।"

आचार्यश्री ने उन्हे समझाया कि "सभी प्रकार के क्षेत्र होते है और सभी प्रकार के व्यक्ति होते है। हम किन-किन पर प्रतिबन्ध लगा पाएँगे। प्रभु महावीर ने तो इससे भी भयकर हिंसक मुल्को मे भ्रमण किया था फिर भी अभी जानकारी करेगे कि ये मारवाडी व्यक्ति भी क्या उन्ही टोकरियों से सब्जियाँ खरीदते है। यदि ऐसा हुआ, तो पुन लौटने का प्रसग भी वन सकता है। क्योकि मासाहार से सश्लिष्ट पदार्थ खाना किसी के लिये उचित कैसे माना जा सकता है। किन्तु यदि ये लोग, जिनके यहाँ से हमे भिक्षा लेनी है, ऐसी सम्पृक्त सब्जी क्रय नही करते है तो इतनी दूर आकर पुन लौट जाना उचित नही होगा। केसिंगा वालो का अत्यन्त आग्रह है और केसिंगा अव अधिक दूर नही है, अत आगे नही तो केसिंगा तक जाना तो उपयुक्त लगता है। फिर भी यदि आप की आत्मा

आचार्य देव ने मधुर शब्दो मे समझाते हुए कहा—"आपने यह भ्रान्त धारणा बनाली है कि जैन धर्म जीव-रक्षा मे पाप मानता है। जैन धर्म की ऐसी कोई मान्यता नही है। जैन धर्म तो पूर्ण अहिंसा पर ही प्रतिष्ठित है। जैनागमो का निर्माण भी समस्त प्राणियो की रक्षा रूप दया के लिये ही हुआ है। हाँ, जैन धर्म का एक सम्प्रदाय ऐसा भी है, जो जीव-रक्षा मे पाप बताता है और आपके इधर उन्ही सम्प्रदाय के मुनियो का विशेष आगमन रहा है। अत· आपके मन मे ऐसी जिज्ञासा का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है, किन्तु यह विचार आप मस्तिष्क से निकाल दीजिये कि जैन धर्म की मूल मान्यता जीव-रक्षा मे पाप की है। जैन धर्म के सिद्धान्त पूर्ण अहिंसा पर प्रतिष्ठित है और वहाँ जीवन-रक्षा को सर्वोच्च धर्म बताया गया है। एक सम्प्रदाय विशेष के कुछ सिद्धान्त गढ लेने से सम्पूर्ण जैन धर्म को वैसा मान लेना उचित नही माना जा सकता है।"

आचार्य देव के स्पष्टीकरण को सुनकर मांगीलालजी अवाक् रह गये—"क्या यह जैन धर्म की मान्यता नही है। क्या आप मे तथा तेरापथ सम्प्रदाय मे सैद्धान्तिक अन्तर है। यह तो आज ही सुन रहे है। यदि ऐसा है तो आपके और हमारे सिद्धान्त तो बहुत कुछ मिलते-जुलते ही है।

आचार्यश्री ने पुन· किंचित और स्पष्ट करते हुए कहा—"इसके पूर्व आपको ज्ञात भी कैसे होता। पूर्व मे उसी सम्प्रदायो के साधुओ का भ्रमण होता रहा है। हमारा तो यहाँ यह प्रथम बार ही आना हुआ है। अब आपके कितने भी सन्देह हो, स्पष्ट कर ले और अपनी धारणाओं को शुद्ध बना ले।"

"गुरुदेव ! अब तो मेरी सभी भ्रान्त धारणाएँ निर्मूल हो गई है। आपने यह कहा कि वह एक अलग सम्प्रदाय है और उसकी अपनी मन· कल्पित मान्यताएँ है। मै स्वय कितनी ही वार चिन्तन करता था कि ये भी कोई सिद्धान्त है कि जीव-रक्षा मे पाप, माता-पिता की सेवा मे पाप, किसी दीन-दु खी को अनुकम्पा बुद्धि से कुछ दे देने मे पाप। मै इतने समय तक इन्ही सिद्धान्तो को जैन धर्म के सिद्धान्त मानकर जैन धर्म को ही मानवता विरोधी धर्म मान बैठा था और इसीलिए यहाँ के जैनो से मेरी नही पटती थी। अव तो मै नित्य प्रति आऊँगा और अपने समाज के सभी व्यक्तियो को भी प्रेरित करूँगा।" मांगीलालजी ने स्पष्ट किया।

दूसरे दिन से ही प्राय: अधिकाश वैष्णव धर्मावलम्बियो का आचार्य देव के प्रवचन, आदि के प्रसंगो पर महावीर भवन मे आना प्रारम्भ हो गया। श्री मागीलालजी का महावीर भवन मे प्रवेश तेरापथ सम्प्रदाय के सदस्यों के लिये आश्चर्य का विषय बन गया। कुछ बन्धुओं के तो शब्द भी निकल पड़े—"महाराज, मागीलालजी के महावीर भवन मे पैर ही नही पडते थे। किसी सामाजिक कार्य मे भी ये कभी महावीर भवन मे पैर नही देते थे, किन्तु अब तो

एक दिन की तालावो मे मछली पकडने हेतु ग्राम जनता को छूट दी गई थी। अत सैकडो जाल लेकर तालाबो की ओर जा रहे थे। उसी समय आचार्यश्री के समीप एक उडिया ब्राह्मण बन्धु बैठे हुए थे। उन लोगो की ओर सकेत करते हुए कहने लगे—"महाराजश्री, देखिये कितना हिंसक मुल्क है। सब लोग मछली का मास खाते है। हम इने-गिने ब्राह्मण हैं इस प्रदेश मे जो अहिंसा धर्म को मानते हैं। हम लोग मछली, बकरे, आदि का मास नही खाते। हाँ, कभी-कभी देवी को चढा हुआ कबूतर का मास हम लोग अवश्य खा लेते हैं। किन्तु इन हिंसक लोगो की तरह मछली, आदि का मास हम कभी नही खाते।"

आचार्यश्री को उनकी बात सुनकर आश्चर्य मिश्रित दु ख हुआ। आश्चर्य इस बात का कि ये ब्राह्मण हैं और मास खाते हैं। वह भी कबूतर जैसे भोले-भाले मासूम प्राणी का, और दु ख इस बात का हुग्रा कि इन लोगो मे कितनी ग्रज्ञानता है कि ये कबूतर के मास को मास ही नही समझ रहे हैं और अपने आप को उन मत्स्य कर्मियो से श्रेष्ठ एव ग्रहिंसक मान रहे है।

आचार्यश्री ने आश्चर्यपूर्वक समझाने के स्वर मे कहा, "ग्राप कैसी विचित्र वात कर रहे हैं। कबूतर जैसे भद्रिक प्राणी का मास खाते हैं और अपने ग्राप को अहिंसक ब्राह्मण कह रहे हैं क्या कबूतर का मास, मास नही कहलाता है ? क्या कबूतर के प्राण नही होते हैं ?"

"नही महाराज, ऐसी बात नही है। पर हम ब्राह्मणो को दूसरा मास नही खाना है। अत हम कबूतर का मास ही खाते हैं। जीव-हिंसा करके पाप नही करते। वह कबूतर भी देवी को चढाया जाता है, तभी हम खाते हैं। उसमे पाप कहाँ से लगेगा।" उस ब्राह्मण ने ग्रपनी भावुकतापूर्ण अज्ञानता स्पष्ट की।

ग्राचार्य देव ने उसे समझाने का प्रयास किया कि "यह आपकी निरी अज्ञानता है कि आप इसको हिंसा और पाप नही मानते है। वास्तव मे देवी को तो मास आदि कुछ भी नही चाहिए। ग्राप अपनी जिह्वा को सतुष्ट करने के लिये देवी का वहाना लेते हैं। इसके पाप से ग्राप वच नही सकते हैं। मास किसी भी मनुष्य को नही खाना चाहिए। फिर आप तो ब्राह्मण जैसे सात्विक वर्ण के व्यक्ति है। ग्रापके मु ह से मास खाने के शब्द भी शोभित नही होते हैं। ग्रापको ऐसा नही करना चाहिये।" वहुत कुछ प्रयास के उपरान्त भी वह अपने वद्धमूल विचारो को त्याग नही सका।

कठोर सयम मार्ग

सिंधिकेला से प्रस्थान कर आचार्यश्री खुलान पधारे। खुलान मे जैन परिवारो का निवास नही था। ५-६ वैष्णव ग्रग्रवाल वन्धुओ के परिवार थे।

हे आभ्यन्तर तपस्विन ! आप मानव समाज मे वास्तविक धर्म का बीजा-रोपण करने की भावना से उसके धरातल को शुद्ध करने हेतु मानव समाज से अनैतिकता, असदाचार, झूठ, कपट एव बेईमानी, आदि को दूर करने मे प्रयत्न-शील है और अपने "समता दर्शन" द्वारा मैत्रीभाव उत्पन्न कर विश्व मे शान्ति स्थापित करने का जो मार्गदर्शन दिया है, वह समस्त मानव समाज के लिए उपादेय है ।

हे विशिष्ट गुण भण्डार ! अन्त मे हम आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करते है कि उडीसा-निवासी जन साधारण को प्रबुद्ध करने हेतु आपश्री का जो इधर पदार्पण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कई व्यक्तियों ने साधु और श्रावक के स्वरूप को समझने के साथ-साथ अहिंसा के निषेध रूप अर्थ— किसी प्राणी को मनसा, वाचा कर्मणा, न सताना और न मारना है तथा विधि रूप अर्थ सताये जाने वाले प्राणी के प्राणो की शुद्ध भाव से रक्षा करना है, इसको अच्छी तरह समझकर सच्ची प्रेरणाये हृदयगत करके गलत धारणाओ को निर्मूल किया है।

हे चारित्र चूडामणि ! आप के प्रति हमारे हृदय मे जो विशुद्ध श्रद्धा एवं भक्ति भावना उत्तरोत्तर जागृत हुई है, वह सदा अमिट रहेगी । आपका विशुद्ध प्रेम कभी विस्मृत नही हो सकता । इसी से प्रेरित होकर यह विनय-पत्र आपश्री के चरण कमलो मे श्रद्धापूर्वक सादर समर्पित है । इसे स्वीकार कर हमे कृतार्थ करे । हम आपश्री के चरणो मे अनुनय विनयपूर्वक यह भी प्रार्थना करते है कि आपश्री यहाँ पर पूरा शेष काल विराज कर, आगामी चातुर्मास भी यहाँ पर फरमाने की महती कृपा करे ।"

विनयावनत
हम है केसिंगा वासी सत्सग प्रेमीजन ।

केसिगा
१५-२-६६

तिजोरी की चाबियाँ फेंक दीं

होली चातुर्मास के प्रसग पर प्राय. आगामी वर्षावास की स्वीकृति दे दी जाती है और केसिंगा के जैन जैनेतर बन्धुओ की धार्मिक भावनाओ को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य देव को होली चातुर्मास तक वही रुकना पडा । होली के एक दिन पूर्व ही रायपुर, राजनांद गाव, दुर्ग आदि क्षेत्रो के सघ सदस्य सैकडो की सख्या मे उपस्थित हुए और रायपुर के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो की ओर से आगामी चातुर्मास हेतु आग्रह पूर्ण भावनाएँ प्रदर्शित हुई ।

आगन्तुको की सख्या को देखते हुए महावीर भवन का हॉल भी कुछ छोटा पड रहा था और इधर वैष्णव समाज के प्रमुख सदस्यो का आग्रह भी चल

उनका उल्लघन किसी भी सम्प्रदाय के मुनियो के लिए उचित नही ठहराया जा सकता है। मकान, आदि का जहाँ तक प्रश्न है, यह तो आपने अपनी सौजन्यता-पूर्ण भावना से दे दिया अन्यथा हमारा किसी के प्रति कोई आग्रह तो नही होता है। यदि यह नही मिलता, तो किसी धर्मशाला मे भी ठहर जाते।"

जैन वैष्णव एकता

केसिंगा मे आचार्यश्री का लगभग पच्चीस दिवसो का प्रवास काल अनूठी एव अद्भुत धर्म-जागृति का काल रहा। वर्षों से चले आ रहे साम्प्रदायिक सघर्षो का अवसान एव परस्पर स्नेह सद्भावना का प्रादुर्भाव आचार्य देव की अलौकिक चारित्रिक गरिमा का ही प्रभावशील कार्य था।

केसिंगा मे अग्रवाल समाज के लगभग १००-१२५ घर हैं, जिनमे स्थानकवासी जैन परिवारो की सख्या दस-बारह, तेरापथ सम्प्रदाय के उपासको की ४०-५० तथा शेष सभी वैष्णव धर्मानुयायी हैं। जैन-जैनेतर सभी बन्धुओ का धर्म-स्नेह एव आचार्य देव के प्रति भक्ति भाव अद्भुत अनुकरणीय रहा। बच्चे-बच्चे मे आचार्य देव के प्रति श्रद्धा पयस्विनी का प्रवाह देखते ही बनता था। जैन बन्धुओ का उत्साह तो अनूठा था ही, किन्तु वैष्णव बन्धुओ की भावभीनी श्रद्धा-भक्ति भी कम नही थी।

पारस्परिक स्नेह सद्भाव के होने पर भी कुछ सैद्धान्तिक तत्त्व-विषयो को लेकर जैन एव वैष्णव बन्धुओ मे मतभेद था। अत· महावीर-भवन मे वैष्णव समाज का आगमन नहीवत् था। किन्तु कुछ बन्धुओ ने वैष्णव समाज के प्रमुख स्तम्भ श्री मागीलालजी अग्रवाल को ज्ञान-चर्चा के प्रसग पर आचार्य देव के सन्निकट ला बिठाया तथा परिचय करवाया आचार्य देव ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—"आप इतना सकोच क्यो कर रहे हैं, जो कुछ जिज्ञासाएँ आपकी हो, आप नि सकोच पूछ सकते है।"

आचार्य देव के मधुर व्यवहार से प्रसन्न हो मागीलालजी ने सरलतापूर्वक स्पष्ट किया "महाराज, हमे आपकी त्यागपूर्ण साधना, सयम की कठोर आराधना अच्छी लगती है, किन्तु आपका यह सिद्धान्त कि गोरक्षा मे पाप होता है, अथवा जीवो को बचाने मे पाप होता है—अच्छा नही लगता है। और इसीलिये हम महावीर भवन मे नही आते हैं। ये लोग भले ही इस महावीर भवन को धर्म स्थान कहे, हम तो इसे पाप स्थान ही कहते हैं। क्योकि जहाँ गोरक्षा अथवा जीव-रक्षा मे पाप बताया जाता है, उसे धर्म स्थान कैसे कह सकते हैं। इसीलिये हम इस अधर्म स्थान मे नही आते हैं। आज भी मेरा मित्र मुझे आग्रहपूर्वक ले आया है कि एक बार चलो और कुछ प्रश्न करो। मैं आ गया हूँ और अपनी शका भी आपश्री के चरणो मे प्रस्तुत कर दी है।"

अर्जी नही सुनोगे तो अपना काम दिखा दूँगा ।
उत्कलवासी जनता से आदोलन रचवा दूँगा ।
अनशन भी करवा दूँगा, मै धरना भी दिलवा दूँगा ।
अनहोनी भी करवा दूँगा, दृश्य सारा यहाँ दिखा दूँगा ।
चातुर्मास फरमावे हम सर्वस्व चढा देगे ।
प्रभु तुम्हारे चरणो मे आकाश झुका देगे ।।२।।

माग चातुर्मास की छोटी सी, प्रमुख जो स्वीकार करेंगे ।
चातुर्मास पाकर के उत्कलवासी आनन्द धुन बना लेगे ।
चातुर्मास के सब आकाक्षी है चाहे मतदान करा लीजे ।
हे करुणा निधि अब उत्कल पर, करुणा झडी बरसा दीजे ।
चातुर्मास फरमावे हम सर्वस्व चढा देगे ।
प्रभु तुम्हारे चरणो मे आकाश झुका देगे ।।३।।

सभी विनतियो का प्रस्तुतीकरण भावपूर्ण एव अनूठा था । आचार्य देव कुछ चिन्तानान्तर विनतियो का उत्तर देने ही वाले थे कि सहसा श्री मागीलालजी वैष्णव खडे होकर कहने लगे—"आचार्यश्री आपके चरणो मे बडे-बडे शहरो की विनतिया है । उनके पास वजनदार शब्द एव युक्ति-युक्त दलीले है, किन्तु हमारे पास तो श्रद्धा-भक्ति से युक्त केवल शबरी के वेर भर है, जिन्हे ठुकराना अच्छा नही होगा । आपको इस विषय मे गम्भीर चिन्तन करना होगा । सम्भवत. आप यह समझ रहे होगे कि केसिगा का जैन समाज, विशेष कर स्थानकवासी समाज छोटा-सा समाज है, अत· इनकी विनती भी औपचारिक मात्र होगी और आपका यह चिन्तन सही भी है, किन्तु अभी इन सभी विनतियो की रूपरेखा देखकर मेरे मन मे तीव्र सकल्प जागृत हो गया है कि आपश्री का वह वर्षावास केसिगा मे ही होना चाहिए और इसके लिए हमारा वैष्णव समाज भी तन-मन-धन से तैयार रहेगा । अत मेरी आपश्री से करवद्ध प्रार्थना है कि आप अभी कही का निर्णय न लेकर हमे दो घण्टे का समय दे, हम अभी वैठक बुलाकर के आपश्री को निवेदन करेंगे । आपश्री ने यदि शीघ्रता मे कोई निर्णय ले लिया, तो हमारी आत्मा को बहुत ठेस लगेगी ।"

श्री मागीलालजी की भावनाओ को सहसा गौण कर देना अनुचित समझ कर आचार्य देव ने तत्काल कोई निर्णयात्मक भाव न व्यक्त करते हुए मगल पाठ सुना दिया और वाहर से आगत सभी संघ सदस्य एक असमजस पूर्ण मन स्थिति को लिए उठ गए ।

चन-समाप्ति के अनन्तर श्री मागीलालजी ज्यो ही अपने घर गये

ये दोनो-तीनो बार यहाँ बराबर उपस्थित हो रहे है। यह सभी ग्रामवासियो के लिये आश्चर्य का विषय है। यह आपकी ज्ञान एव चारित्रिक गरिमा का ही प्रभाव है। आपश्री ने जैन-वैष्णव मे सामान्य से प्रयास से जो एकता स्थापित कर दी है, वह केसिंगा के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी।"

केसिंगा की समस्त जनता पर आचार्य देव के व्यक्तित्व का जो अप्रतिम प्रभाव अकित हुआ, वह शब्दातीत है। अपनी श्रद्धा-भावना की अभिव्यक्ति के रूप मे स्थानीय समस्त समाज ने एक विनय-पत्र आचार्य देव के चरणो मे समर्पित किया जिसकी प्रतिलिपि यहाँ प्रस्तुत है।

"परम श्रद्धेय चारित्र चूडामणि, श्रमण सस्कृति के रक्षक शातक्रान्ति के जन्मदाता, शास्त्र महोदधि आचार्य प्रवर पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी महाराज सा० के पट्टधर शिष्य बाल ब्रह्मचारी, श्रमण सस्कृति के प्राण, आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता, चारित्रनिष्ठ श्रमण परम्परा के प्रहरी पूज्यपाद आचार्य प्रवर श्री श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा० के चरण कमलो मे भक्ति एव श्रद्धापूर्वक सादर समर्पित।"

विनय-पत्र

"हे दयानिधे! आज हम नगरवासियो को अपार हर्ष व आनन्द है एव हमारे केसिंगा नगर का महान् सौभाग्य है कि आपश्री ने हम उडीसावासियो पर अनुपम दया करके ग्रामानुग्राम विचरते हुए दुर्गम रास्तो के तथा भूख-प्यास के परीषह को सहन कर केसिंगा मे पदार्पण किया है। इसके लिये हम आपश्री के महान् आभारी हैं।

हे श्रमण सस्कृति के प्रहरी! इस ससार रूपी अटवी मे आप जैसे महापुरुष ही सच्चे मार्गदर्शक दृष्टिगोचर होते है। आपश्री वीतराग प्ररूपित तत्त्वो को सुगम रूप से समझाकर दु ख और क्लेश को निर्मूल करने वाले हैं तथा इस हिंसामय प्रदेश मे दु खदावानल मे सतप्त मानवो को अपनी अमृतमयी वाणी के द्वारा परम सतोष की उपलब्धि कराने मे सक्षम है।

हे वीर सेनानी! आप महाराणा प्रताप की जन्मभूमि मेवाड़ के अन्तर्वर्ती दाता गाव मे ओसवाल वशज श्रेष्ठि श्री मोडीलालजी की गृहभार्या महाभाग्यशालिनी शृगार माता की कुक्षि से जन्म लेकर इस भू-भाग पर अवतरित हुए है। आपने आचार्य हुक्मेश के अष्टम पाट को अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा सुशोभित किया है और थोडे ही समय मे लम्बे-लम्बे विहार कर आगत समस्याओ को अपने अदम्य साहस और धैर्य के बल पर हल किया है। आप गन्तव्य पथ से किंचिदपि विचलित नही हुए। यह स्थानकवासी समाज के लिए गौरव की बात है, जो इतिहास के पृष्ठो पर अकित रहेगी।

चन्द क्षणों के पश्चात् समस्त केंसिगा सघ, जिसमे समस्त स्थानकवा एवं वैष्णव बन्धुओ के अतिरिक्त कुछ बुद्धिजीवी तेरापथी भी थे, आचार्यश्री चरणो मे उपस्थित हुए और श्री मागीलालजी अत्यन्त आग्रहपूर्ण शब्दो निवेदन करने लगे कि "उन बडे-बडे क्षेत्रो मे तो आपका चातुर्मास होता रहता है। यह अवसर आपको केंसिगा जैसे छोटे से सघ को देना होगा। हमा यह विनती केवल औपचारिकता भर नही है, अपितु हमारा सम्पूर्ण सम तन-मन-धन से इसके लिए उत्सुक है। आशा है, आप बड़े-बडे सेठियो को नही, हम गरीब व्यक्तियो को भी प्रसन्न करने का अनुग्रह करेंगे। यदि आप ने इस चातुर्मास की स्वीकृति हमे नही दी, तो हमारी भावनाओ को बहुत च पहुँचेगी। हम तो सीधे सादे ग्रामीण लोग है। शहर वालो की तरह गाना अं बोलना हमे नही आता है, किन्तु इतना अवश्य है कि जैसे राम अयोध्या छोड गए, तो अयोध्यावासी रोते रह गए, ठीक वही हाल हमारा भी होगा.... निवेदन करते हुए वे आचार्य देव के चरणो मे बैठ गए।

आगामी चातुर्मास स्वीकृति की स्थित कुछ जटिल बन गई। केंसिगा अजैन धर्म स्नेही बन्धुओ की उच्चतम भावनाओ को देखकर दुर्ग, राजनाद गा सघ भी असंमजस मे पड़ गए कि अब हमे चातुर्मास मिलना कठिन है।

स्थिति का अध्ययन करते हुए आचार्य देव ने शीघ्र चातुर्मास की स्वी कृति देना उचित नही समझा और आगत व्यक्तियो को सकेत करते हुए कहा— "अभी मैं चातुर्मास की कही भी स्वीकृति दूँ, ऐसी स्थिति मे नही हूँ। आ अभी दया पाल ले। जहाँ की भी स्पर्शना होगी, आपको पंडित श्री लालचन्दज के माध्यम से ज्ञात हो जाएगा।" सभी आगन्तुक सघ सदस्य प्रायः अपने-अपने स्थान को लौट गए और आचार्य देव केंसिगा सघ के भावुक श्रद्धालु बन्धुओ क समझाने मे सलग्न हो गए। अत्यधिक परिश्रम पूर्वक येन-केन प्रकारेण श्रद्धालु हृदयो को सतुष्ट कर दूसरे दिन राजनाद गाव के लिए स० २०२३ के चातुर्मास का निर्णयात्मक सकेत दिया।

तुम जैनी नहीं, मै सच्चा जैनी हूँ

केंसिगा मे जैन जैनेतर बन्धुओ मे अपने अगाध ज्ञान एव चारित्र की परमपूत सौरभ प्रसृत कर आचार्य देव ने पुनः टीटीलागढ की ओर प्रस्थान कर दिया। केंसिगा के पचासो श्रद्धालु भाई-बहिन पद यात्रा मे टीटीलागढ तक आचार्य देव के साथ चले। श्री मागीलालजी कुछ भारी शरीर के कारण चलने मे अक्षम होते हुए भी नौ मील टीटीलागढ तक आचार्य देव के साथ चले। टीटीलागढ मे उनकी मुलाकात उडीसा प्रातीय तेरापथ समाज के मत्री से हुई, तो विनोद पूर्ण शब्दो मे उससे कहने लगे, "भाई, अब मैं भी जैनी बन गया हूँ, किन्तु तुम्हारे जैसा जीव-रक्षा मे पाप मानने वाला नही, मैं जीव-रक्षा मे धर्म

रहा था कि एक प्रवचन हमारे कृष्ण मन्दिर मे भी होना चाहिए। अत दूसरे दिन का प्रवचन कृष्ण मन्दिर के समक्ष बने विशाल हॉल मे हुआ।

आचार्य देव के प्रवचन के पश्चात् दुर्ग, राजनाद गाव एव बालोद सघ की ओर से आचार्य देव के चरणो मे आगामी सं० २०२३ का वर्षावास अपने-अपने क्षेत्रो मे कराने हेतु आग्रह पूर्ण विनतियाँ हुईं। राजनाद गाव सघ की ओर से श्री भीकमचन्दजी टाटिया ने अतीव जोशीले शब्दो मे एव भावपूर्ण स्वरो मे गीत के माध्यम से विनती निवेदित की। गीत की पक्तियाँ निम्न प्रकार थी :—

नादगाव सघ आज केसीगा मझार है।
विनती करत पूज्य श्री के दरबार है॥ टेर॥

जवाहर मजूषा के अनमोल रत्न आप हो।
गणेश गुरु के शिष्य श्रेष्ठ पूज्य आप हो।
नाना गुणधारी "नाना" चरणो मे मनुहार है॥१॥

मन की मुराद आशा पूरो नाना पूज्यवर।
मुख से प्रकाशो आज-आज नाना पूज्यवर।
अब ना बिलमाओ बीती होली की बहार है॥२॥

श्रमणसिंह गू जो-गू जो-गूजो वर्षावास मे।
सिंह चातुर्मास सोभेसिंह द्वार खास मे।
सिंह द्वार छोड अन्य द्वार नही सार है॥३॥

तेवीस का चातुर्मास करना अब बोल दो।
विनतियो की भरी झोली-झोली अब खोल दो।
टटोल चिट्ठी नादगाव खोलो दिल धार है॥४॥

इसी प्रकार भूतपूर्व मध्यप्रदेश कॉंग्रेसाध्यक्ष श्री मूलचन्दजी देशलहरा ने दुर्ग सघ की ओर से, केसिंगा क्षेत्र के लिए उडीसा प्रान्तीय तेरापन्थी सभा के अध्यक्ष श्री जगमोहनजी तथा उपमत्री श्री जगदीशप्रसादजी ने आग्रहपूर्ण विनतियाँ प्रस्तुत की। श्री जगदीशप्रसादजी ने तो तुमुल स्वर मे आग्रहात्मक गान भी प्रस्तुत किया—

चातुर्मास फरमा दे हम सर्वस्व चढा देंगे।
कहते ही नही भगवान् करके दिखादेंगे।
प्रभु तुम्हारे चरणो मे आकाश झुका देंगे।
चातुर्मास फरमादे हम सर्वस्व चढा देंगे॥१॥

चन्द क्षणो के पश्चात् समस्त केसिगा सघ, जिसमे समस्त स्थानकवासा एवं वैष्णव बन्धुओ के अतिरिक्त कुछ बुद्धिजीवी तेरापथी भी थे, आचार्यश्री के चरणों मे उपस्थित हुए और श्री मागीलालजी अत्यन्त आग्रहपूर्ण शब्दो मे निवेदन करने लगे कि "उन बडे-बड़े क्षेत्रो मे तो आपका चातुर्मास होता ही रहता है। यह अवसर आपको केसिगा जैसे छोटे से सघ को देना होगा। हमारी यह विनती केवल औपचारिकता भर नही है, अपितु हमारा सम्पूर्ण समाज तन-मन-धन से इसके लिए उत्सुक है। आशा है, आप बडे-बडे सेठियो को ही नही, हम गरीब व्यक्तियों को भी प्रसन्न करने का अनुग्रह करेंगे। यदि आपश्री ने इस चातुर्मास की स्वीकृति हमे नही दी, तो हमारी भावनाओ को वहुत चोट पहुँचेगी। हम तो सीधे सादे ग्रामीण लोग है। शहर वालो की तरह गाना और बोलना हमे नही आता है, किन्तु इतना अवश्य है कि जैसे राम अध्योध्या को छोड़ गए, तो अयोध्यावासी रोते रह गए, ठीक वही हाल हमारा भी होगा...।" निवेदन करते हुए वे आचार्य देव के चरणो मे बैठ गए।

आगामी चातुर्मास स्वीकृति की स्थित कुछ जटिल बन गई। केसिंगा के अजैन धर्म स्नेही बन्धुओ की उच्चतम भावनाओ को देखकर दुर्ग, राजनांद गाव संघ भी असमजस मे पड़ गए कि अब हमे चातुर्मास मिलना कठिन है।

स्थिति का अध्ययन करते हुए आचार्य देव ने शीघ्र चातुर्मास की स्वीकृति देना उचित नही समझा और आगत व्यक्तियों को सकेत करते हुए कहा—"अभी मैं चातुर्मास की कही भी स्वीकृति दूँ, ऐसी स्थिति मे नही हूँ। आप अभी दया पाल ले। जहाँ की भी स्पर्शना होगी, आपको पडित श्री लालचन्दजी के माध्यम से ज्ञात हो जाएगा।" सभी आगन्तुक सघ सदस्य प्रायः अपने-अपने स्थान को लौट गए और आचार्य देव केसिगा सघ के भावुक श्रद्धालु बन्धुओ को समझाने मे संलग्न हो गए। अत्यधिक परिश्रम पूर्वक येन-केन प्रकारेण श्रद्धालु हृदयो को सतुष्ट कर दूसरे दिन राजनाद गाव के लिए स० २०२३ के चातुर्मास का निर्णयात्मक सकेत दिया।

तुम जैनी नहीं, मै सच्चा जैनी हूँ

केसिगा में जैन जैनेतर बन्धुओ मे अपने अगाध ज्ञान एव चारित्र की परमपूत सौरभ प्रसृत कर आचार्य देव ने पुनः टीटीलागढ की ओर प्रस्थान कर दिया। केसिंगा के पचासो श्रद्धालु भाई-बहिन पद यात्रा मे टीटीलागढ तक आचार्य देव के साथ चले। श्री मागीलालजी कुछ भारी शरीर के कारण चलने मे अक्षम होते हुए भी नौ मील टीटीलागढ तक आचार्य देव के साथ चले। टीटीलागढ मे उनकी मुलाकात उडीसा प्रातीय तेरापथ समाज के मत्री से हुई, तो विनोद पूर्ण शब्दो मे उससे कहने लगे, "भाई, अब मैं भी जैनी बन गया हूँ, किन्तु तुम्हारे जैसा जीव-रक्षा मे पाप मानने वाला नही, मैं जीव-रक्षा मे धर्म

रहा था कि एक प्रवचन हमारे कृष्ण मन्दिर मे भी होना चाहिए। अत. दूसरे दिन का प्रवचन कृष्ण मन्दिर के समक्ष बने विशाल हॉल मे हुआ।

आचार्य देव के प्रवचन के पश्चात् दुर्ग, राजनाद गाव एव बालोद सघ की ओर से आचार्य देव के चरणो मे आगामी स० २०२३ का वर्षावास अपने-अपने क्षेत्रो मे कराने हेतु आग्रह पूर्ण विनतियाँ हुईं। राजनाद गाव सघ की ओर से श्री भीकमचन्दजी टाटिया ने अतीव जोशीले शब्दो मे एव भावपूर्ण स्वरो मे गीत के माध्यम से विनती निवेदित की। गीत की पक्तियाँ निम्न प्रकार थी :—

नादगाव सघ आज केसीगा मझार है।
विनती करत पूज्य श्री के दरबार है॥ टेर॥

जवाहर मजूषा के अनमोल रत्न आप हो।
गणेश गुरु के शिष्य श्रेष्ठ पूज्य आप हो।
नाना गुणधारी "नाना" चरणो मे मनुहार है॥१॥

मन की मुराद आशा पूरो नाना पूज्यवर।
मुख से प्रकाशो आज-आज नाना पूज्यवर।
अब ना बिलमाओ बीती होली की वहार है॥२॥

श्रमणसिह गू जो-गू जो-गूजो वर्षावास मे।
सिह चातुर्मास सोभेसिह द्वार खास मे।
सिह द्वार छोड अन्य द्वार नही सार है॥३॥

तेवीस का चातुर्मास करना अब बोल दो।
विनतियो की भरी झोली-झोली अब खोल दो।
टटोल चिट्ठी नादगाव खोलो दिल धार है॥४॥

इसी प्रकार भूतपूर्व मध्यप्रदेश कॉंग्रेसाध्यक्ष श्री मूलचन्दजी देशलहरा ने दुर्ग सघ की ओर से, केसिगा क्षेत्र के लिए उडीसा प्रान्तीय तेरापन्थी सभा के अध्यक्ष श्री जगमोहनजी तथा उपमत्री श्री जगदीशप्रसादजी ने आग्रहपूर्ण विनतियाँ प्रस्तुत की। श्री जगदीशप्रसादजी ने तो तुमुल स्वर मे आग्रहात्मक गान भी प्रस्तुत किया—

चातुर्मास फरमा दे हम सर्वस्व चढा देंगे।
कहते ही नही भगवान् करके दिखादेंगे।
प्रभु तुम्हारे चरणो मे आकाश झुका देंगे।
चातुर्मास फरमादे हम सर्वस्व चढा देंगे॥१॥

सस्कार भरने का प्रयास कर रही हूँ। आप मेरी भावनाओं को साकार होने का आशीर्वाद प्रदान करे और अभी दूसरे स्थान गोचरी न जाकर मेरी भावनाओ को सफल बनावे।" दृढ सकल्पवती भावनाशील तपस्विनी बहिन ने निश्छल विचारो को आचार्य देव के समक्ष प्रगट कर दिया। तपस्विनी बहिन की शासन सेवा की उज्ज्वल एव उदार भावनाओ को देखकर आचार्य देव एव उपस्थित अन्य बन्धुओ का हृदय गद्‌गद् हो गया। सभी व्यक्ति उन्हे एक स्वर से धन्यवाद देने लगे कि दीक्षा होना नही होना तो भावी के गर्भ मे है किन्तु इस माता की भावना कितनी उच्च कोटि की है। आचार्य देव के मानस मे तो वह घटना इतनी गहरी अकित हो गई कि अनेक बार आचार्यश्री मातृ-आदर्श का प्रतिपादन करते हुए अपने प्रवचनो मे उस घटना का उल्लेख किया करते है कि "सिहनी माताएँ जो अपने लालो को सिह बनाकर शासन सेवा मे समर्पित करती है, वे ही सच्ची माताएँ है। ऐसी माताएँ मातृ कर्तव्य का सही ढग से पालन करती है।"

और उस रत्न गर्भा सिहनी माता ने अपनी भावनाओ को केवल भावना तक ही सीमित नही रख, यथार्थ की भूमिका का स्पर्श भी दिया। पाँच नही, स्वय सहित छः छ व्यक्तियो को सस्कारो से पोषित कर शासन-सेवा मे अर्पित किया। स्वय तपस्विनी, अपने पतिदेव श्री सौभाग्यमलजी साण्ड, पुत्र सुरेन्द्रकुमारजी तथा तीन पुत्रियाँ श्री मगलाकुमारी तथा चन्दनबाला कुमारी के साथ आत्म-साधना मार्ग पर अग्रसर हुई। ये सभी महान् विभूतियाँ अपने त्याग, तप एव विद्वत्ता से शासन को गौरवान्वित कर रही है। उनमे तीनो साध्वी बहिने विद्वत्ता की ओर निरन्तर गतिशील है। तपस्विनी महासतीजी श्री सूरजकु वरजी प्राय प्रति वर्ष मास-मास क्षमण एव उससे ऊपर की तपाराधना से शासन के गौरव की श्री-वृद्धि कर रही है तो आदर्श त्याग भावनाओ से ओत-प्रोत श्री सौभाग्य मुनिजी भी पीछे नही है। वे भी, जिनसे कि बेला तेला भी कठिनाई से होता था, मास-मास क्षमण की तपस्याओ मे आनन्द का पान करने लगे है।

स्वनामधन्य आदर्श त्यागी श्री सौभाग्य मुनिजी की आदर्श त्याग साधना की एक झलक दिखाना अप्रासगिक नही होगा। दीक्षा ग्रहण करने की भावना के प्रबल होते ही अपनी लाखो की सम्पत्ति का अपने दो बडे लडको मे सम विभाग कर दिया। अपने लघु सुपुत्र श्री सुरेन्द्रकुमारजी के नाम से इक्कीस हजार रुपये की बडी राशि मे श्री सुरेन्द्रकुमारजी साण्ड शिक्षा-दीक्षा सोसायटी के रूप मे एकमुश्त दान कर दिया। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण त्याग की भावना यह थी कि जिन ग्राहक, कृषक आदि बन्धुओ मे हजारो रुपये का लेना था, उन्हे त्याग के विचारो के साथ छोड दिया। यही नही, पीछे आपके पुत्र भी उन्हे परेशान न करे इस दृष्टि से जिनमे हजारो रुपयो का लेना था सब जमा

वैठक वुलाने की तैयारी करते हुए कुछ प्रमुखो को निमंत्रण भेज दिया। इतने मे कुछ तेरापथी वन्धु, जो राजनैतिक दृष्टि से श्री मागीलालजी से सम्पर्क रखते थे, उनके घर पहुँचे और कहने लगे—"मागी, तुमने चातुर्मास की विनती बिना सोचे–समझे कैसे कर दी। तुम्हे मालूम है, इनके चातुर्मास मे कितना खर्च होता है। हजारो दर्शनार्थियो का आगमन और उनके आवास एव भोजन की व्यवस्था मे लाखो का खर्च होता है। पहले सोच समझ कर ही कोई बात मु ह से निकालनी चाहिए।"

उदारमना श्री मागीलालजी ने बात को सहज ढग से लेकर मुस्कराते हुए गम्भीर स्वर मे कहा—"क्यो, क्या बात है इसमे। हमारे समाज मे कोई कमी है, जो हम अतिथियो का सत्कार नही कर सकेंगे। तुम इस भ्राति मे मत रहो। समाज हमारे साथ है और वह बहुत बडा है। फिर भी कदाचित्–कोई साथ न दे, तो मैं अकेला ही सब व्यवस्था कर लू गा। तुम्हे विश्वास न हो तो ये तिजोरी की चावियाँ लो और चाहे जितना पैसा निकाल लो।" कहते हुए श्री मागीलालजी ने चावियो का गुच्छा आगन्तुको के सम्मुख फैंक दिया।

आगन्तुक अवाक् से देखते रह गये। कभी चाबियो की ओर तो कभी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उनकी ऐसी स्थिति को देखकर श्री मागीलालजी ने कहा—"आप किसी प्रकार का विचार न करे। मैंने बहुत सोच-विचार पूर्वक विनती की है। अनाज का कोटा मेरे हाथ मे है, चाहे जितना मिल जायेगा। अन्य वस्तुओ की भी महापुरुषो के प्रभाव से कोई कमी नही रहेगी।" वात चल ही रही थी कि कुछ आमन्त्रित प्रमुख-प्रमुख सज्जन भी वहाँ पहुँच गये। अस्तु, उन तेरापथी वन्धुओ ने उनकी ओर अभिमुख होकर कहा—"श्री मागीलालजी ने आचार्यश्री के चातुर्मास की विनती की है। हम यही चर्चा कर रहे थे कि पहले अर्थ-व्यवस्था आदि का विचार कर लेना चाहिए। श्री मागीलालजी ने ये चावियाँ फैंक दी हैं, किन्तु केवल पैसो से काम नही होता है। हजारो लोगो की आवास-व्यवस्था करना सामान्य वात नही है। मकान आदि की व्यवस्था आप लोग कैसे जुटाएँगे?"

आगन्तुक वन्धुओ मे से ही दो-तीन व्यक्ति तपाक से वोल उठे—"इसमे चिन्ता की क्या वात है? हजारी राइसमिले खाली हो जाएगी।" एक सुरमा-मिल मालिक अग्रवाल वन्धु ने कहा—"मेरी सुरमामिल खाली पडी है, हजारो अतिथि उसमे ठहर सकते हैं। आप आवास-व्यवस्था एव अर्थ व्यवस्था की किसी प्रकार को चिन्ता न करे। इस वर्ष आचार्यश्री का चातुर्मास किसी भी स्थिति मे यही होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति मे यह अवसर नही चूकना है।" कहते हुए श्री मागीलालजी को उत्साहित करते हुए विना ही वैठक के चातुर्मास करवाने दृढ स्वरो से आग्रह करने लगे।

लेकर खडे हुए और दाएँ को देखा तो लगभग एक डेढ इच हड्डी कलाई से ऊपर चढ आई। आचार्यश्री ने तुरन्त सहवर्ती सतो से कहा—"हाथ को दोनो ओर से पकड कर जोर से खीचो।" सोचता हूँ उस समय की अपनी दशा को, तो तरस आती है अपने आप पर। आचार्य देव ने दुबारा कहा, तब भी मै तो अधीर बन रोता रहा। हाथ को खीचना तो दूर रहा उसे स्पर्श करने मे भी काप रहा था। तुरन्त घोर तपस्वी श्री अमरचन्दजी म० सा० तथा मधुर व्याख्यानी श्री कवरचन्दजी म० सा० ने दोनो ओर से हाथ पकड कर खीचा, जिससे बाहर निकली हुई हड्डी अदर वैठ गई और ऊपर से कपडे की पट्टी कसकर बाध दी गई।

उस असह्य वेदना के क्षण मे भी आचार्य देव की उस सौम्य मुद्रा मे तनिक भी अतर नही आया। उसी शाति एव सहज मुद्रा मे एक मील का विहार कर नावा गाव पहुँचे। सत समुदाय कपडो का प्रतिलेखन एव आद्र कपडो को सुखाने मे व्यस्त हो गया। इधर रायपुर श्रावक सघ को इस दुर्घटना की जानकारी मिली तो सध्या प्रतिक्रमण प्रारम्भ होने के कुछ समय पश्चात् विरक्तात्मा श्री सम्पतराजजी धाडीवाल डॉक्टर साहब को लेकर उपस्थित हुए। किन्तु धैर्य की प्रतिमूर्ति आचार्य देव ने सूर्यास्त हो जाने के कारण डॉक्टर साहब को हस्त स्पर्श के लिए सर्वथा निषेध कर दिया कि "मैं रात्रि मे कुछ भी उपचार नही ले सकता। यदि आप कुछ समय पूर्व पहुँच जाते तो उपचार लिया जा सकता था।"

चिकित्सक महोदय ने बड़े विनम्र शब्दो मे आचार्य देव से निवेदन किया—"आचार्यश्री हमने बहुत शीघ्र ही यहाँ पहुँचने का प्रयास किया किन्तु दुर्भाग्य कहे या और कुछ, मार्ग मे कार खराब हो गई और हमे कुछ विलम्ब हो गया। अब आप उपचार नही लेना चाहते है, तो कम-से-कम मुझे हाथ एवं अगुलियाँ हिलाकर दूर से ही दिखला दीजिए, मुझे उससे भी कुछ सन्तोष हो जाएगा।"

तदनुसार आचार्य देव न अपनी कलाई एव अगुलियो को हिलाने का प्रयास किया किन्तु असह्य वेदना के कारण वैसा नही किया जा सका। चिकित्सक महोदय वन्दन के साथ यह कहते हुए चले गए कि "स्पर्श किए बिना पूरा निर्णय नही लिया जा सकता है, किन्तु सूजन बहुत बढ जाने से लगता है कि हड्डी टूट गई है। अत· कल पुनः आकर योग्य उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए।"

रात्रि मे वेदना असह्य हो गई। हाथ कोहनी तक सूज गया। सामान्य से आघात पर असह्य पीडा का अनुभव होता है, किन्तु आचार्य देव के मुख कमल पर झलकने वाले सस्मित् सौम्य भाव मे कही कोई परिवर्तन परिलक्षित

मानने वाला भगवान् महावीर का उपासक सच्चा जैनी बना हूँ। तुम जैनी नही हो, क्योकि तुम्हारे सिद्धात जैन धर्म के अनुकूल नही हैं ..।"

टीटीलागढ से सिन्धि केला होते हुए आचार्य देव का पुन· बगोमुन्दा पदार्पण हुआ। बगोमुन्दा मे सम्पूर्ण उडीसा प्रातीय संघ की ओर से आचार्य देव के सान्निध्य मे महावीर जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया, जो उडीसा प्रान्त के लिए सर्व प्रथम एव अविस्मरणीय अवसर था। तत्कालीन उडीसा प्रातीय धर्म-प्रेमी जनता का उत्साह देखते ही बनता था।

अन्नदाता मेरे अपशकुन मत करो

वगोमुन्डा मे महावीर जयन्ती के प्रसग पर महावीर के पवित्रतम सदेश को जन-जन तक प्रसृत कर आचार्य देव काटा भाजी आदि क्षेत्रो को पुन. पावन करते हुए अक्षय तृतीया के प्रसग तक खरियार रोड पधारे। वर्षीतप के पारणे के उद्देश्य से बाहर के अनेक तपस्वीजन तथा उनके साथ सैकडो दर्शनार्थी खरियार रोड उपस्थित हुए।

विशेष उल्लेखनीय है कि बडावदा निवासी स्वनाम धन्य सेठ श्री सौभग्यमलजी साँड अपनी धर्मपत्नी श्रद्धा-निष्ठ भावुक हृदया श्रीमती सूरजवाई को पारणा करवाने हेतु पारिवारिक सदस्यो के साथ उपस्थित हुए। पारणे के प्रसग पर आचार्यश्री जव वहिन सूरजबाई के यहाँ भिक्षा हेतु पधारे, तो आहार-दान के समय तपस्विनी वहिन एक साथ पाच लड्डू वहराने का आग्रह करने लगी। आचार्य देव ने निषेध करते हुए अपनी साध्वोचित भाषा मे कहा—"वाईजी, इतने लड्डू नही खपते है, आप एक लड्डू वहरा दीजिए।"

अपने सकल्पनात्मक भावो की सहज श्रद्धा के साथ अभिव्यक्ति देते हुए भावनापूर्ण शव्दो मे तपस्विनी वहिन कहने लगी—"अन्नदाता, मेरे अपशकुन मत करिए। मैं पूरे पाच लड्डू वहराऊँगी।"

आचार्यश्री ने श्रीमती सूरजवाई के मुँह से अपशकुन की वात सुनकर मुस्कराते हुए पूछा, "क्यो वाईजी, इसमे शकुन-अपशकुन की क्या वात हुई? सतो को जितना खपता है, उतना ही तो हम ले सकते हैं। इसमे अपशकुन की कल्पना नही करनी चाहिए।"

"नही अन्नदाता, मेरी भावना दूसरी है। मैं जैसे आज पाच लड्डू एक साथ वहरा रही हूँ वैसे ही मेरी भावना है कि मेरे घर से एक साथ पाच दीक्षाएँ हो। मेरे यहाँ से पाँच आतमा आपश्री की चरण-सेवा मे समर्पित हो। एक मगलावाई की भावना तो परिपक्व हो ही गई है, शेष तीन वच्चे-वच्चियो मे मैं

राजनाँदगाँव चातुर्मास

राजनाँदगाँव का वर्षावास विगत सभी वर्षावासो के परिप्रेक्ष्य मे कुछ अधिक ही सौरभमय रहा। वैसे सभी वर्षावास अपने आप मे विशिष्ट धार्मिक उत्क्राति के प्रतीक एव प्रेरक रहे, किन्तु राजनाँदगाँव के वर्षावास मे त्याग, तपस्या, सामूहिक दीक्षा, दर्शनार्थियो का आगमन एव साधना के कुछ नए कीर्तिमान स्थापित हुए थे जो कि राजनाँदगाँव के इतिहास के लिए अमिट लेख बन गए है।

यदि कोई विद्वान् राजनाँदगाँव के आध्यात्मिक उत्क्राति किवा धार्मिक जागृति के संदर्भ मे कुछ लिखे, तो मै सोचता हूँ, उस वर्षावास मे होने वाली उत्क्राति को ही शीर्षस्थ स्थान प्राप्त होगा। तत्कालीन वातावरण के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राजनाँदगाँव पाँच माह के लिए एक तीर्थ धाम ही बन गया था। राजनाँदगाँव को तीर्थ-भूमि बनाने मे कुछ श्रेय तो उस ज्योतिष शास्त्र को भी जाता है, जिसने उसे चार माह के स्थान पर पाँच माह की अवधि प्रदान की, अर्थात् राजनाँदगाँव की भूमि का अथवा स्थानीय धर्म प्राण जनता का यह गौरवपूर्ण सौभाग्य ही था कि उन्हे चातुर्मास काल मे पाँच माह का समय मिला।

पाँच माह तक अविरल रूप से प्रवचन-पयस्विनी का प्रवाह जिस धरा अथवा धरा-वासियो के हृदयो को पावन करता रहा, निश्चित ही वे हृदय धन्य भागी रहे हैं। आचार्य देव की पीयूष वर्षिणी वाणी ने पाच माह तक जिन हृदयो का अभिसिचन किया, जिन्हे शाति एव आनन्द के सरोवर मे डुबकियाँ लगाने का अवसर दिया, क्या वे हृदय अनन्त-अनन्त सौभाग्यशाली नही है ?

विशेष उपलब्धियाँ

चातुर्मास उपलब्धियो का सागोपाग वर्णन हमारी शब्द-सीमा से बाहर है। आध्यात्मिक उपलब्धियो की विवेचना उन्हे सीमित शब्द सीमा मे बाधकर बहुत सकुचित कर देती है तथापि किचित् विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

प्रार्थना, प्रवचन, अध्ययन, अध्यापन, रात्रिकालीन तत्त्वचर्चा आदि दैनन्दिन कार्यक्रम अन्य वर्षावासो के समान ही चलते रहे एव तद् द्वारा जन-

मानने वाला भगवान् महावीर का उपासक सच्चा जैनी बना हूँ। तुम जैनी नही हो, क्योकि तुम्हारे सिद्धात जैन धर्म के अनुकूल नही हैं ..।"

टीटीलागढ से सिन्धि केला होते हुए आचार्य देव का पुन बगोमुन्दा पदार्पण हुआ। बगोमुन्दा मे सम्पूर्ण उडीसा प्रातीय सघ की ओर से आचार्य देव के सान्निध्य मे महावीर जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया, जो उडीसा प्रान्त के लिए सर्व प्रथम एव अविस्मरणीय अवसर था। तत्कालीन उडीसा प्रातीय धर्म-प्रेमी जनता का उत्साह देखते ही बनता था।

अन्नदाता मेरे अपशकुन मत करो

बगोमुन्डा मे महावीर जयन्ती के प्रसग पर महावीर के पवित्रतम सदेश को जन-जन तक प्रसृत कर आचार्य देव काटा भाजी आदि क्षेत्रो को पुन. पावन करते हुए अक्षय तृतीया के प्रसग तक खरियार रोड पधारे। वर्षीतप के पारणे के उद्देश्य से बाहर के अनेक तपस्वीजन तथा उनके साथ सैकडो दर्शनार्थी खरियार रोड उपस्थित हुए।

विशेष उल्लेखनीय है कि बडावदा निवासी स्वनाम धन्य सेठ श्री सौभग्यमलजी साँड अपनी धर्मपत्नी श्रद्धा-निष्ठ भावुक हृदया श्रीमती सूरजबाई को पारणा करवाने हेतु पारिवारिक सदस्यो के साथ उपस्थित हुए। पारणे के प्रसग पर आचार्यश्री जब बहिन सूरजबाई के यहाँ भिक्षा हेतु पधारे, तो आहार-दान के समय तपस्विनी बहिन एक साथ पाच लड्डू बहराने का आग्रह करने लगी। आचार्य देव ने निषेध करते हुए अपनी साध्वोचित भाषा मे कहा—"बाईजी, इतने लड्डू नही खपते है, आप एक लड्डू बहरा दीजिए।"

अपने सकल्पनात्मक भावो की सहज श्रद्धा के साथ अभिव्यक्ति देते हुए भावनापूर्ण शब्दो मे तपस्विनी बहिन कहने लगी—"अन्नदाता, मेरे अपशकुन मत करिए। मैं पूरे पाच लड्डू बहराऊँगी।"

आचार्यश्री ने श्रीमती सूरजवाई के मुँह से अपशकुन की वात सुनकर मुस्कराते हुए पूछा, "क्यो वाईजी, इसमे शकुन-अपशकुन की क्या वात हुई? सतो को जितना खपता है, उतना ही तो हम ले सकते हैं। इसमे अपशकुन की कल्पना नही करनी चाहिए।"

"नही अन्नदाता, मेरी भावना दूसरी है। मैं जैसे आज पाच लड्डू एक साथ वहरा रही हूँ वैसे ही मेरी भावना है कि मेरे घर से एक साथ पाच दीक्षाएँ हो। मेरे यहाँ से पाँच आत्मा आपश्री की चरण-सेवा मे समर्पित हो। एक मगलावाई की भावना तो परिपक्व हो ही गई है, शेष तीन वच्चे-वच्चियो मे मैं

आज आचार्य देव की ध्यान-साधना जो इतनी गूढ एव अन्त:स्पर्शी बन पाई है, इसका कुछ श्रेय राजनॉदगॉव की उस पावन भूमि एवं चातुर्मास वेला को भी जाता है। इसके साथ मेरा वैयक्तिक चिन्तन भी पुकारता है कि "विपत्ति मानव को नई सूझ, नई दृष्टि देती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अस्थि-भग की दुर्घटना भी आचार्य देव के अन्त:प्रवेश मे कुछ सीमा तक निमित्त मानी जा सकती है। श्रेय किसी को भी क्यो न जाए, यह निश्चित है कि आचार्य देव इस वर्षावास के पश्चात् बहुत अधिक स्वाभिमुख आत्मलीन हुए है, जिसे हम अपने सामान्य शब्दो मे "ध्यान-साधना मे विकास" कह सकते है।"

मद्रास के विरक्त युवा दम्पति का आगमन

अत.विकास के साथ ही आचार्य देव की कीर्ति प्रभा का विस्तार भी द्रुतगति से होने लगा। यह प्राकृतिक तथ्य है कि पुष्प मे जितनी सौरभ भरती जाती है, परिपार्श्ववर्ती वायु मण्डल भी उतना ही सुरभित होता चला जाता है तथा सुवास जितनी गहरी फैलती है, उतने ही अधिक विस्तृत क्षेत्र को सुवासित करती है। परिणामत: सौरभ पिपासु भृ ग समूह परागपान हेतु सुदूर क्षेत्रो से आकर पुष्प पर मण्डराने लगते है और मकरन्द पान कर अपनी पिपासा को उपशोभित करते है।

ठीक यही स्थिति महान् चेतनाओ के साधनामय चारित्रिक विकास की होती है। अन्तरग चारित्रिक विकास देह पर प्रतिबिम्बित होता है। फिर उसका सौरभ प्रत्येक सचेतन मन पर पडे बिना नही रहता है। आज का मनोविज्ञान भी इन तथ्यो को उद्घाटित कर चुका है कि हमारा भावनात्मक जगत् परिपार्श्ववर्ती वातावरण को अवश्य प्रभावित करता है। हमारे विचार, चाहे वे अच्छे हो या बुरे, निकटवर्ती व्यक्तियो पर अपना प्रभाव छोडते है, जिन्हे सजगचेता व्यक्ति अनुभूत कर सकता है।

तात्पर्य यह है कि हमारे चिन्तन-कण निकट अथवा सुदूरवर्ती चेतनाओ को भी प्रभावित करते है और चतुर्दिक प्रसृत होने वाली पुष्प-सौरभ से आकृष्ट होने वाले मधुप समूह की तरह उन विचार-कणो से प्रभावित होने वाली सजगचेता चेतनाएँ भी खिची चली आती है। ऐसा ही कुछ घटित हुआ राजनॉदगॉव वर्षावास के प्रारम्भिक दिनो मे। आचार्य देव की चारित्रिक गरिमामय सौरभ से आकृष्ट एक दम्पति श्री धर्मप्रकाशजी घोका सपत्नीक, जिन्हे विवाह किए अभी दो-ढाई माह ही हुए थे, मद्रास से राजनाँदगॉव उपस्थित हुए और अपने परिचित, सघसेवा मे तल्लीन, मूकसेवी पं० श्री लालचन्दजी मुणोत से मिल कर अपनी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त करने लगे। प० श्री लालचन्दजी ने कहा—"मुझे ज्ञात है कि आपकी दीक्षा लेने की भावना विगत लम्बी अवधि से

कर दिया और सभी ग्रामवासियो के समक्ष सार्वजनिक घोषणा कर दी कि अब मेरा किसी से कुछ भी लेना नही है। इसे कहते है सच्चा वैराग्य एव त्याग भावनाओ के साथ दीन बन्धुओ के प्रति सवेदनात्मक भाव ।

असह्य वेदना बनाम अदम्य साहस

खरियार रोड मे अक्षय तृतीया के पावन प्रसग पर जिनवाणी की अक्षय धारा से जन-जन के हृदय को अभिसिंचित एव आतृप्त कर आचार्य देव पुन बागबहरा, महासमुद, आरग आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए रायपुर की ओर अग्रगामी हुए ।

स्मरणीय है कि खरियार रोड के इस प्रवास काल की अवधि मे ही स० २०२३ वैशाख शुक्ला ८ को आचार्य देव की विशेष अनुमति से बीकानेर निवासी श्री आशकरणजी सिरोहिया की धर्मपत्नी श्रीमती वृद्धिकवर बाई की भागवती दीक्षा साध्वी श्री चम्पाकवरजी के सान्निध्य मे बीकानेर मे सम्पन्न हुई ।

आचार्य देव सहवर्ती सत समुदाय के साथ आरग से रायपुर की ओर बढ रहे थे कि अशुभ कर्मोदय जनित एक दुर्घटना घटित हो गई। प्रात.काल आरग से रायपुर की ओर प्रस्थान किया । लगभग ढाई मील पर मार्गवर्ती ग्राम रसनी मे ग्रामवासियो के आग्रह को देखते हुए लगभग आधा घटे तक धर्मामृत का पान कराया, तत्पश्चात् वहाँ से साढे तीन मील पर स्थित लाखोली ग्राम के बाहर विश्राम-गृह पर पधारे । आहार आदि से निवृत्त हो पुन चार मील पर स्थित नावगाव के लिए प्रस्थान कर दिया। लगभग दो मील मार्ग पार किया होगा कि वर्षा की सम्भावना को देखते हुए उमरिया मोटर स्टेण्ड पर यात्रियो के लिए निर्मित छपरे मे कुछ समय रुक गए । वर्षा बद होने पर पुन विहार किया और लगभग एक मील चले होगे कि सामने से आते हुए ट्रक से उडने वाले पानी के छीटो से बचने हेतु सडक को छोडकर एक ओर बढ रहे थे कि मिट्टी की चिकनाहट एव सडक के ढलान के कारण अचानक पैर फिसल गया और सम्पूर्ण शरीर का भार दाएँ हाथ पर आ गिरा । परिणामत दाएँ हाथ की कलाई की हड्डी दो जगह से टूट गई तथा लगभग आधा इच हड्डी चमडी सहित ऊपर निकल आई ।

उस समय आचार्य देव के साथ श्री कवर मुनिजी चल रहे थे। घोर तपस्वी श्री अमरचन्दजी महाराज एव मैं (लेखक) लगभग पचास कदम की दूरी पर पीछे थे। आचार्य देव को गिरते हुए देखते ही शीघ्र गति से हम भी घटना-स्थल पर पहुँच गए। आचार्य देव ने तत्काल जिस अदम्य साहस का परिचय दिया, वह वर्णनातीत है। आचार्य देव ज्योही बाएँ हाथ का सहारा

के कुछ दिवस पूर्व ही हो गया और उन्हे मद्रास जाना पडा । अत· इस वर्षावास मे दीक्षा नही हो सकी ।

काश, श्रमण संघ का भी ऐसा रूप होता !

आचार्य देव की चारित्रिक गरिमा के अबूझ प्रभाव का एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ यहाँ विस्मृत कर जाना बहुत बडी भूल होगी । आचार्य देव से सैद्धान्तिक परि-प्रेक्ष्य मे विचार-भेद रखने वाला, आधुनिकता का कट्टर हिमायती व्यक्ति भी किस प्रकार आचार्य देव के चरण तले नत मस्तक झुक जाता है, इसकी एक किंचित झलक, जैन समाज के जाने माने कान्फ्रेन्स के वरिष्ठ कार्यकर्ता, प्रबुद्ध विचारक एव प्रबुद्ध प्रवक्ता श्री जवाहरलालजी मुणोत, अमरावती द्वारा सावत्सरिक प्रवचन के प्रसग पर लगभग सात हजार की जनमेदनी के समक्ष प्रकटित विचारो से मिल सकती है। स्मरण रहे, श्री मुणोतजी का एक सस्मरण पूर्व मे आप पढ चुके है । श्रमण सघ के सघटन-विघटन के सदर्भ मे उनका आचार्य देव से बहुत कुछ विचार-भेद था, किन्तु मुणोतजी के हजारो की जनमेदनी के समक्ष अभिव्यक्त निम्न विचार स्पष्टतया उद्घोषित करते है कि वे आचार्य देव की चारित्रिक महिमा से कितने अधिक पराभूत होकर श्रद्धान्वित हुए है ।

संवत्सरी पर्व के पुनीत अवसर पर राजनाँदगाँव मे परम श्रद्धेय आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा० की सेवा में प्रस्तुत, श्री जवाहरलालजी मुणोत के हृदयोद्गार ।

"परम आदरणीय आचार्यश्री, अन्य सन्तगण तथा महासतियाँजी म० एव माताओ, बहिनो और भाइयो. .. ।

आज मेरे लिए परम सौभाग्य का दिन है कि पर्यूषण पर्व के अवसर पर मुझे सहज ही आचार्यश्री की सेवा का लाभ मिल गया ।

जहाँ तक स्थानकवासी समाज का प्रश्न है, मै आप सबके सामने पहले त्याग, वैराग्य की साकार मूर्ति श्रद्धेय स्व० उपाचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० को इस प्रसंग पर स्मरण करना चाहता हूँ । उपाचार्यश्री साधु समाज को उन्नत तथा एक रूप देखना चाहते है। उनकी भावना थी कि एक आचार्य के नेश्राय मे शिक्षा-दीक्षा प्रायश्चित और सम्यक्त्व आदि के साथ सगठन सुदृढ हो ।

दुर्भाग्य से वह दिन अभी तक स्थानकवासी समाज को नही मिला परन्तु आशा की किरण उस समय भी थी और अब भी है। उपाचार्यश्री के दर्शन करने के प्रसग मुझे कई बार उपलब्ध हुए । उनकी मुझ पर अपार कृपा थी ।

नही हो रहा था। दूसरे दिन उसी वेदना मे वहाँ से ६-७ मील का विहार कर जोरा गाँव पधारे। तब मध्याह्न तीन बजे के लगभग चिकित्सक आए और अस्थि को व्यवस्थित कर पक्का प्लास्टर बाँध दिया। वहाँ से दूसरे दिन रायपुर पधार गए।

रायपुर मे कुछ दिनो तक उपचार लेकर आचार्य देव ने दुर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग मे चरोदा ग्राम मे वयोवृद्ध महान् तपस्वी श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० का लगभग एक घटे के सथारे के साथ देहावसान हो गया।

वयोवृद्ध स्वनामधन्य श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० के जीवन के सदर्भ मे पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ तो इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उन्होने "जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा" की उक्ति को अपने कर्म एव साधनामय जीवन से चरितार्थ कर दिखाया। अन्तिम घडियो तक साधुचर्या मे लीन, किसी के सेवा-सयोजन की अपेक्षापूर्वक नश्वर देह से पृथक् हो गए।

आचार्य देव दुर्ग मे कुछ दिन धर्मामृत का पान करवा कर चातुर्मासार्थ राजनाँदगाँव पधार गए।

• • •

श्रमण सघ से बाहर रहने वालों को वन्दन आदि नही करना चाहिये, और न उनका चातुर्मास ही करना चाहिये। तब मैंने इस वात का विरोध करते हुए कहा कि कान्फ्रेन्स को चाहिए कि कोई भी साधु हो, चाहे श्रमण संघ का हो या बाहर का हो, अथवा किसी भी सम्प्रदाय विशेष का हो, जिसमे चरित्र-शीलता हो, सयम की पालना हो, उसे आदर-सत्कार की दृष्टि से देखा जाना चाहिये और वन्दन-नमस्कार आदि भी किया जाना चाहिए। हमें हमेशा गुण-पूजक रहना चाहिए।"

"उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के वचन फिर स्मरण आ जाते है कि वे श्रमण सघ मे क्रान्ति देखना चाहते थे। उनमे सच्चाई थी और वही बात आज मैं आपश्री मे भी देखता हूँ। आपश्री ने प्रसगोपात सवत्सरी के विषय मे जो विचारणा रखी, उससे, मैं भी शतप्रतिशत सहमत हूँ क्योकि उस भावना मे सच्चाई के स्पष्ट दर्शन होते है।"

आपश्री किसी एक सम्प्रदाय विशेष के नही है। यह वात मैं आपश्री के इन्दौर चातुर्मास मे भी व्यक्त कर चुका हूँ। आपश्री स्थानकवासी समाज के प्रतीक है। आपश्री या खीचन वाले कोई भी सत क्यो न हो, शिथिलाचार मे विश्वास नही करते है, वे हम सबके वन्दनीय एवं पूजनीय है।

"उपाचार्यश्री ने आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के लिये जो यह कहा था कि मैं समाज को एक उज्ज्वल विभूति दे रहा हूँ, जो सचमुच आपश्री समाज के लिए उज्ज्वल सितारे है। मेरा आपश्री से वर्षो से सम्बन्ध रहा है। यह विश्वास है कि आपश्री के नेतृत्व मे ही स्थानकवासी समाज चमकेगा और आपश्री जैसे सन्तो के आधार पर ही समाज टिका हुआ है।"

महात्मा गाधी के विषय मे किसी व्यक्ति ने एक नेता से पूछा कि अमुक नेता अच्छा बोलना जानता है, उतना महात्मा गाधी नही, फिर भी महात्मा गाधी को लोग पूजते है और आदर की दृष्टि से देखते है और नेता को उतना नही, इसका क्या कारण है ? तो उत्तर मिला कि महात्मा गाधी जितना कहते है, उससे ज्यादा जीवन मे उतारते हैं। यही बात मैं इन आचार्यश्री मे देखता हूँ। मैं यहाँ की स्थिति को कान्फ्रेन्स में भी रखूँगा।

भोपाल निवासी वैरागी श्री प्रेमचन्दजी से बात करने का प्रसग भी आया। मालूम हुआ कि वे अपनी वैराग्य अवस्था मे अन्यान्य सन्तो के पास होकर, परीक्षा के बाद अपनी आशा के केन्द्र आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के पास १८ मास से त्यागमय जीवन-यापन करते हुए ज्ञानाभ्यास कर रहे है। इनकी भावना दीक्षित होने की है। ऐसे होनकार युवको से समाज को बहुत आशाएँ रहती है।

जागृति के लिए नूतन दिशा बोध मिलता रहा। स्मरणीय है कि इस वर्षावास मे विद्वद वर्ग विशेषकर अजैन विद्वानो का आगमन एवं उनकी तत्त्व ज्ञान की बुभुक्षा की उपशांति का उपादेय क्रम विशेष रहा। परिणामत: अजैन विद्वानों की जैन दर्शन एवं स्याद्वाद सिद्धान्त के सदर्भ मे बद्धमूल भ्रांतियां निर्मूल हुई तथा जैन दर्शन की महानता एव उपादेयता के प्रति अनेक विद्वानो की आस्था दृढमूल हुई। सीधे शब्दो मे कहे तो अनेक विद्वानों को आचार्य देव के द्वारा जो तत्त्व ज्ञान का निचोड प्राप्त हुआ और तद्द्वारा उन्हे जो आत्मतृप्ति मिली, वह इस वर्षावास की एक महत्तम उपलब्धि ही कही जायेगी।

साधना के बढते चरण

श्रमण जीवन का अर्थ है साधनारत जीवन। सम्पूर्ण श्रमण चर्या साधनामय ही होती है तथापि कुछ ऐसी विशिष्ट चर्याएँ होती हैं, जो साधना के विविध आयामो को उद्घाटित करती हैं। श्रमण चर्या किंवा जैन साधना मे ध्यान-साधना का ऐसा ही कुछ महत्त्व वर्णित है। ध्यान-साधना के द्वारा ही जैन श्रमण अन्तर की गहराइयो का स्पर्श करता हुआ अध्यात्म-उपलब्धियो के अनेक द्वारो को उद्घाटित करता है।

चू कि आचार्य देव एक उच्च कोटि के श्रमण-साधक हैं, अत: आपश्री की ध्यान-साधना भी अन्त स्पर्शी गूढ साधना रही है, किन्तु राजनांदगांव के वर्षावास मे आपश्री की ध्यान-साधना ने बहुत कुछ नये आयामो को उद्घाटित किया। इस वर्षावास मे जो प्रयोग ध्यान के क्षेत्र मे आपश्री ने किए, अत्यधिक अनूठे थे। देहातीत अवस्था का शास्त्रीय विवेचन जो हम पढते हैं, वह आचार्य देव की ध्यान-मुद्रा मे स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन प्रयोगो के पश्चात् भी आपश्री की ध्यान-मुद्रा अत्यधिक उल्लेखनीय, रमणीय एव दर्शनीय बन गई। कई दिनों दर्शनार्थियो के स्वर हैं कि "अब आचार्यश्री की ध्यान मुद्रा को अपलक देखा ही नही जा सकता है। ध्यानावस्था मे मुख पर झलकने वाली विभिन्न भाव भगिमाएँ तथा अनेक बार अपने मूल स्वरूप से भिन्न-भिन्न अन्य ही प्रकार की आकृतियो का निर्माण कई बार भाव-विभोर कर देता है, तो कई बार इतना विचित्र सा बन जाता है कि द्रष्टा सहसा भयभीत सा बन जाता है।" इस स्थिति के प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं, श्री माणकलालजी श्रीश्रीमाल एव श्री हुलासमलजी मोदी। यही कारण है कि उसके पश्चात् आचार्य देव की ध्यान-साधना को जनरवरहित एकान्त स्थान देना पडा। इन गूढतम प्रयोगो के पश्चात् आचार्य देव की ध्यान मुद्रा का दर्शन वर्जनीय कर दिया गया। यद्यपि बहुत से भावुक दर्शनार्थियो पर इसकी उनके मनोनुकूल प्रतिक्रिया नही हुई, तथापि साधना की विकासमानता एव उच्चतम भूमिकाओ के सम्पर्श हेतु यह अनिवार्य हो गया।

उपयुक्त छहो मुमुक्षु आत्माओ ने सॉसारिक व्यामोह एव भौतिक आकर्षणों से विरक्त हो आत्म उत्क्रान्ति हेतु साधना मार्ग मे चरण बढाकर राजनाँदगॉव के इतिहास मे चार चाँद लगा दिए। त्याग के उज्ज्वल आदर्श को प्रस्थापित करने वाले मुमुक्षु व्यक्तियो का सक्षिप्त परिचय अप्रासगिक नही होगा।

श्री सम्पतराज जी धाडीवाल छत्तीसगढ प्रातीय सम्पूर्ण जैन समाज मे लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तित्व के धनी, धर्मशीला पत्नी, एक इजीनियर, एक व्यवसायी एव एक डॉक्टर तीन सुयोग्य पुत्र, दो पुत्रियो एव पौत्र-पौत्रियों से सम्पन्न परिवार के सरक्षक सदस्य थे। आप बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि रहे है और शिक्षा व्यवस्था के अभाव वाले युग मे मैट्रिक तथा लौकिक शिक्षा लेने के साथ ही कुछ थोकडे, प्रतिक्रमण, दशवैकालिक सूत्र आदि धार्मिक अध्ययन किया था तथा सस्कृत सारस्वत व्याकरण एव न्यायतीर्थ के समुचित निर्वहन के द्वारा अपने 'छत्तीसगढ के प्राण' का विरुद प्राप्त किया था। आप वर्षों तक सपूर्ण छत्तीसगढ स्थानकवासी जैन सघ तथा रायपुर स्थानकवासी जैन सघ के महामत्री पद पर सुशोभित रहे। अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गीय जैन सस्कृति रक्षक सघ के आप उपाध्यक्ष थे। शिक्षण क्षेत्र मे आपकी अभिरुचि का ज्वलत प्रमाण है कि आप राजनॉदगॉव देवानन्द जैन शिक्षण सस्था के अध्यक्ष जैसे गुरुत्तर गरिमामय पद पर आसीन थे। एक सामान्य धारणा है कि धार्मिक उपासना एव सामाजिक कार्यक्रमो मे सलग्न व्यक्ति व्यावसायिक क्षेत्र मे बहुत पिछड जाता है किन्तु इस धारणा को भी आपने असत्य सिद्ध कर दिया। इतनी धार्मिक, शैक्षणिक एव सामाजिक सस्थाओ से सबधित होते हुए भी आपकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा मे किचित् भी न्यूनता नही आई। इसके प्रमाण मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आप वर्षों तक रायपुरी कपड़ा एसोसियेशन के महामत्री पद पर रहे है।

श्री सम्पतराज जी के उत्कृष्ट त्याग तथा सामाजिक कार्यकर्ता जीवन के सन्दर्भ मे छत्तीसगढ स्थानकवासी जैन सघ के अध्यक्ष, प्रबुद्ध विचारक श्री भूरचद जी देशलहरा यदाकदा आचार्य देव से निवेदन किया करते हैं, कि आप हमारे छत्तीसगढ का प्राण तो निकाल कर ले गये है। हमारा सघ तो निष्प्राण हो गया है। राजनाँदगाँव के तत्कालीन मत्री श्री भीखचद जी टाटिया द्वारा आचार्य देव के विदाई समारोह के समय प्रयुक्त शब्दो मे कहे तो आचार्य भगवान्! आप छत्तीसगढ मे पधारे ८ और ११ उन्नीस नाणे पधारे। अभी आप १० और १४ चौवीस ठाणे है। यहा पधारकर आप सवाए हुए हैं। छत्तीसगढ श्रावक समाज को जागृति देने वाले छत्तीसगढ श्रावक समाज के जन-जीवन मे क्रान्ति फूँकने वाले मूक नेता (श्री सम्पतराज जी) का आपने अपहरण कर लिया, आपने उसे छीन लिया, नही नही, आपने छीना नही, अपहरण नही किया, छत्तीसगढ़ ने आपकी झोली मे उसे वहरा दिया, आपको शिष्य रूपी

चल रही है, किन्तु यदि आपको दीक्षा लेनी थी तो दूसरा विवाह क्यो किया ? विना सोचे समझे कोई कदम उठाना उचित नही है। जिसके साथ विवाह हुआ है, क्या उसके जीवन के साथ आप खिलवाड करना चाहते है ?"

विरक्तात्मा श्री धर्मप्रकाशजी ने कहा—"नही, ऐसी वात नही है। मेरी धर्मपत्नी भी दीक्षा लेने की भावना रखती है। हम दोनो आत्मा कल्याण हेतु शासन सेवा मे समर्पित होने के विचार लेकर यहाँ आये है। अत किसी के साथ खिलवाड जैसी वात नही है।" अनन्तर प० जी के साथ ही वे आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन किया "गुरुदेव ! हमे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा करवा दीजिए।"

श्री धर्मप्रकाशजी के उपर्युक्त शब्दो को सुनकर सहसा समीपवर्ती सत एव आचार्यश्री भी आश्चर्यन्वित थे। अभी विवाह हुए दो-ढाई माह ही हुए है और सहसा इतनी विरक्ति का क्या कारण हो सकता है ? सम्भव है दोनो के आपस मे मनोभेद हो, एक दूसरे के विचार मेल नही खा रहे हो, दाम्पत्य जीवन विघटन के द्वार पर खडा हो और इस मनोभेद से खिन्न होकर शीलव्रत लेने को तत्पर हो गए हो। अत शिष्यव्यामोह वृत्ति से अनासक्त आचार्य भगवन् ने सहसा प्रतिज्ञा न करवा कर उन्हे कुछ समझाते हुए कहा—"अभी यहाँ सन्तो के पास रहकर अध्ययन करिए एव विचारो को परिपक्व वनाइये। विचारो के परिपक्व होने पर दृढ प्रतिज्ञा भी हो सकेगी एव साधना मे भी कदम वढा सकेगे।"

आचार्य देव के अनासक्त योग से प्रभावित हो समुचित निर्देश प्राप्त कर दोनो विरक्त आत्माएँ अध्ययन मे लीन हो गई। उस अध्ययनकाल मे ही सेवा-निष्ठ महासतीजी श्री पेप-कुंवरजी एव विदुषी व्याख्यात् महासतीजी श्री नानकुंवरजी ने वैराग्यवती श्री जयश्री वाई से एकान्त मे चर्चा करते हुए पूछा "आप दोनो पति-पत्नी के आपस मे मतभेद तो नही है। श्री धर्मप्रकाशजी आपके साथ कुछ अनुचित व्यवहार तो नही करते हैं जिससे कि घवरा कर आपने दीक्षित होने का विचार कर लिया हो।" इसी प्रकार वैराग्य मूर्ति श्री धर्मप्रकाशजी को भी आचार्य देव एव कमठ सेवाव्रती श्री इन्द्रचन्द्रजी म० सा० ने विभिन्न युक्तियो ने पूछ कर ज्ञात किया कि उनके आपसी द्वन्द्व तो नहीं है, किन्तु दोनो ही आत्माओ के गम्भीर उत्तर एव आतरिक वैराग्य को देखकर आचार्य देव ने प्रतिज्ञा करवा दी।

यद्यपि दोनो मुमुक्षु आत्माओ की राजनांदगांव मे होने वाली अन्य दीक्षाओ के साथ ही दीक्षित होने की प्रवलतम भावना थी, किन्तु अन्तराय कर्मोदय के कारण श्री धर्मप्रकाशजी के फूफा साहव का देहावसान दीक्षा-काल

इसी प्रकार श्री पार्श्वकुमार जी भण्डारी सुपुत्र श्री भँवरलाल जी भण्डारी भी एक भरे पूरे सम्पन्न परिवार के युवा सदस्य थे। आपकी वैराग्य भावना की उत्पत्ति का अधिकाश श्रेय आपकी धर्म परायणा तपस्विनी मातुश्री को जाता है। शैशवकाल से ही आपमे विरक्ति के सस्कार पल्लवित हो रहे थे। आचार्य देव के प्रवचन एव कर्मठ सेवाव्रती धार्यमातृ पदालकृत श्री इन्द्रचद जी म. सा. के उपदेशात्मक कथाओं तथा आत्मीयतापूर्ण आकर्षणात्मक व्यवहारो ने आपके वैराग्य को अभिसिचित कर सुन्दर पादम का रूप दे दिया। राजनाँद-गाँव की पावन भूमि मे आपके जीवन-निर्माण को सयम-साधना का पवित्र दिशा बोध प्राप्त हो गया। वर्तमान परिवेश मे मुनिश्री की प्रतिभा से समाज को बहुत आशाएँ है। इसी प्रकार तीनो विरक्तात्मा बहिने भी उच्च आदर्श परिवारो से निकलकर साधना-पथ पर पद चरण हेतु कृत सकल्प हो आगे बढी है। सुश्री प्रेमलता जी एव इन्द्रबाला जी की प्रतिभा भी अनूठी है और शैशव के पार और यौवन के प्रारम्भिक क्षणो मे ही दोनो ने महावीर का उज्ज्वल पक्ष वीर-बालाओ के समान स्वीकार किया।

उपर्युक्त छहों मुमुक्षु आत्माओ ने राजनाँदगाँव मे भागवती दीक्षा स्वीकार कर उस वर्षावास मे चार चाँद लगा दिये। चूँकि इसके पूर्व निकट भूत मे सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज मे छ. दीक्षाओ का एक साथ आयोजन नही हुआ था, अतः यह आयोजन अपने आप मे अनूठी अद्भुत छटा लिए हुए था और छत्तीसगढ के इतिहास मे तो अभूतपूर्व एव अविस्मरणीय ही था।

यद्यपि उस दीक्षा-महोत्सव की सम्पूर्ण छटा को विस्तार के भय से शृङ्खला मे बाँधना यहाँ अटपटा-सा लग रहा है, किन्तु एक-दो प्रसग कुछ ऐसे सात्विक आह्लाददायक है, जिन्हे यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासगिक नही होगा।

छह वर्षीय बालिका "चन्दु" का उज्ज्वलतम हठ—

स्थानीय नगरपालिका माध्यमिक विद्यालय के समक्ष विशाल खुले मैदान मे भारत के विभिन्न प्रान्तों से आगत लगभग २५ हजार की जन मेदनी के मध्य आयोजित दीक्षोत्सव अपने आप मे सर्वप्रथम एव सर्वश्रेष्ठ ही था। उस समय की एक मर्मस्पर्शी घटना का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, वह है बडा-वदा निवासी श्री साण्ड परिवार से सम्बन्धित।

हुआ यों कि दीक्षास्थल पर ही उस अपार जन मेदनी के समक्ष स्वनाम-धन्य श्री सेठ सौभाग्यमल जी साण्ड ने अपनी सुपुत्री श्री मंगला कुमारी का आज्ञा-पत्र आचार्य देव के चरणो मे प्रस्तुत किया। उसी प्रसग पर मगला कुमारी जी की दूसरे नम्बर की वहिन सुश्री श्रीकान्ता कुमारी ने साधना मे अग्रसर होने के प्रथम सोपान रूप आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण की। जिस समय सुश्री श्रीकान्ता कुमारी प्रतिज्ञा लेने को खड़ी हुई, उन्ही की छोटी वहिन छह

वे कहा करते थे कि मैं अपने बाद समाज को एक ऐसी विभूति दे रहा हूँ जिसको समाज मेरे जीवन के पश्चात् मालूम कर सकेगी। वही विभूति आज हमारे श्रद्धा-केन्द्र आचार्य श्री नानालालजी म० हमारे मध्य विराजमान है।

"आपश्री (पूज्यश्री) ने सवत्सरी पर्व के उपलक्ष मे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आदि सभी से क्षमत-क्षमापना करते हुए मेरे जैसे व्यक्ति को भी स्मरण किया। मेरा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं भी अपनी भावना आचार्य श्रीजी के समक्ष रखूँ। भूतकाल मे ऐसे कई प्रसग आये कि मुझे आपके प्रति कठोर शब्दो का प्रयोग करना पडा। मैं उस समय सहजता से सोचता था और आज सोचता हूँ कि आचार्यश्री मेरे जैसे पामर व्यक्ति के शब्दो पर ध्यान न देते हुए मेरी भावना की ओर ध्यान देने का अनुग्रह करेंगे।"

"मुझे कई प्रसग याद आ रहे हैं। उनमे चरम प्रसग बैतूल का है। उस समय तथा पूर्व मे कई बार आपश्री के प्रति ऊँचे-नीचे शब्दो का प्रयोग करने का प्रसग आया, उसके लिये आचार्यश्री के चरणो मे अपनी ओर से तथा आप सब श्रावको की तरफ से क्षमा-याचना करता हूँ।"

"मैं उपस्थित जन-समुदाय से एव आचार्यश्री से बहुत सम्मान के साथ कहता हूँ कि जिस तरह की मेरे मन मे श्रमण सघ को देखने की अभिलाषा है वह आप सन्तो मे दृष्टिगोचर होती है। मैं ऐसा कहकर प्रशसा के पुल नहीं बाधना चाहता हूँ परन्तु युवक वर्ग इस प्रकार का साधु समाज चाहता है जिसको नमन करने से व जिसका उपदेश आदि सुनने से त्याग की भावना पैदा हो और ऐसा ही साधु-समाज स्थानकवासी समाज का नेतृत्व करे। उसके दर्शन आज हम आपश्री मे करते हैं।"

"पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० के पाटानुपाट पर आप ही विराजमान हैं। और मे स्थानकवासी समाज का एक सेवक हूँ। पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० का सम्प्रदाय स्थानकवासी सम्प्रदाय का एक अग है। उनके पश्चात् आचार्य आपश्री (पूज्य श्री नानालालजी म०) हैं। आपश्री मे, आज मैं जो रूप देख रहा हूँ, उसी ढग का श्रमण सघ होने चाहिये और वैसी चारित्र निष्ठा भी चाहिए।"

मैं कहता हूँ कि आज जो कुछ भी यह सम्प्रदाय बना यह इसी सम्प्रदाय का उत्थान नही, बल्कि समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय का उत्थान है। इससे स्थानकवासी समाज का भविष्य उज्ज्वल होगा।

"पिछली बैठक (बम्बई) के अवसर पर कान्फ्रेन्स मे यह चर्चा चली कि जो श्रमण सघ को मानते हो उन्ही साधुओ को वन्दन आदि करना चाहिये।

इस प्रकार अध्यात्म-साधना, त्याग, तप व ज्ञान की आराधना एव चारित्रिक विकास के द्वारा राजनाँदगाँव का यह वर्षावास एक धार्मिक उत्क्रांति का वर्षावास रहा। स्वय आचार्य देव की साधना इस वर्षावास मे अन्तःस्पर्शी बनी रही, तद्द्वारा जो सामाजिक क्षेत्र मे आचार्य देव ने देन दी, वह भी अपने आप मे अनूठी एव अबूझ ही थी।

राजनाँदगाँव की धरा, वहाँ का इतिहास तथा वहाँ का जन-जन आचार्य देव के वचनो एवं चरणो से उपकृत हुआ। आचार्य देव के सामीप्य से वहाँ का धार्मिक इतिहास सनाथित एव गौरवान्वित हुआ। इससे बढकर किसी धरा को किसी महापुरुष की क्या देन हो सकती है ?

• • •

अन्त मे मैं यही कहूँगा कि आचार्यश्री के नेतृत्व मे आचार्यश्री के अनुरूप साधु-समाज तैयार हो, ताकि समाज का भविष्य आगे चमकता रहे। इसी शुभ भावना के साथ एक बार फिर गत अपराधो (कठोर शब्दो) के लिए क्षमा-याचना करता हुआ अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।

ऐतिहासिक दीक्षा महोत्सव

राजनाँदगाँव के इतिहास मे स्वर्णिम पृष्ठो पर शोभित होने वाला तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रसग है छ भव्य दीक्षाओ का मगल आयोजन।

चतुर्दिग् विस्तृत आचार्य-देव की कीर्ति सौरभ तथा दीक्षार्थी मुमुक्षु आत्माओ के उज्ज्वलतम प्रभाव ने उस दीक्षा महोत्सव को इतना रमणीय परिवेश दिया कि उसका विवेचन इस सामान्य लेखनी से हो पाना नितान्त कठिन है। राजनाँदगाँव की तत्कालीन छटा अद्भुत ही थी। गली-गली, घर-घर एव बच्चा-बच्चा पुलकित था। सम्पूर्ण नगर मनोरम छटा से प्रदीप्त था। मेवाड, मारवाड आदि सुदूरवर्ती क्षेत्रो से आगत हजारो दर्शनार्थियो की भीड तथा मद्रास से स्वनाम धान्य सेठ श्री गणपतराज जी वोहरा के नेतृत्व मे आगत स्पेशल ट्रेन ने राजनाँदगाँव को एक तीर्थ भूमि का ही रूप दे दिया था। गली-गली एव घर-घर मे मेवाड, मारवाड, मालवा आदि क्षेत्रो की पगडियाँ एव विविध प्रातीय परिधान पहने लोग ही दृष्टिगत होते थे। लगता था राजनाँद-गाँव का क्षेत्रफल कुछ अपने आप मे सिमट गया है। चारो तरफ विचित्र सी चहल-पहल सव्याप्त थी।

इस मनोमुग्धकारी छटा एव हजारो दर्शनार्थियो के आगमन का हेतु आचार्य देव की यशो दुन्दुभि का दिग्दिगत तक प्रसृत्त नाद तो था ही, किन्तु जो मुमुक्षु आत्माएँ आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हो रही थी, उनके उच्च-कोटि के त्याग एव उज्ज्वल यश भी उस मनोहारी छटा मे अवश्य निमित्त थे। वे मुमुक्षु आत्माएँ थी—

१ स्वनाम धन्य श्री सम्पतराज जी धाडीवाल, रायपुर,

२ कक्कड कुलभूपण श्री प्रेमचन्द जी कक्कड, भोपाल,

३ उदीयमान व्यक्तित्व श्री पार्श्वकुमार जी भण्डारी, दलोदा,

४ विरक्तात्मा श्री ज्ञानकु वरजी, राणावास

५ कोकिलकण्ठा तरुण वाला श्री प्रेमलता जी मेहता (गुजरात), रायपुर;

६ महकती कली विरक्त वाला श्री इन्दुवाला जी श्रीश्रीमाल, राजनाँद-गाँव।

अत: मत्स्योत्पादन नही किया जा सकता है।" कुछ कर्मचारी आग्रह करने लगे कि सरकारी तालाब है, तो साहूजी ने उन्हे बड़े सचोट एव स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि "यदि तालाब सरकारी है तो अपना तालाब ले जाए सरकार, किन्तु यहाँ मत्स्योत्पादन नही हो सकता है।"

इस प्रकार इस छोटे-से ग्राम की समस्त जनता को अहिंसा पर प्रतिष्ठित कर आचार्य देव लोहारा, बालोद आदि क्षेत्रो मे अपनी अमियधारा की पावन वर्षा करते हुए तथा तद्द्वारा त्याग-प्रत्याख्यान, आदि साधनापथ का सम्यक परिबोध देते हुए धमतरी पधारे।

महावीर की दृष्टि : निराकार उपासना

चूँकि धमतरी मे मूर्तिपूजक परिवारों का प्राबल्य था, अत तत्सम्बन्धित तर्क-वितर्क एवं तत्त्व चर्चा का अधिक जोर रहा। एक-दो दिन व्यतीत होने पर मध्याह्न में एक श्रद्धानिष्ठ बन्धु ने आचार्य देव से निवेदन किया "महाराजश्री, हमारे यहाँ का अमुक व्यक्ति अध्ययन की दृष्टि से समाज मे प्रतिष्ठित है तथा चर्चा वार्ता मे अधिक रुचि रखता है। आम तौर पर वह किसी के प्रवचन मे नही जाता है। केवल चर्चा-विचर्चा मे उलझाकर आगन्तुक सन्तो को उत्तेजित कर शीघ्र विहार करने के लिए विवश कर देता है। जितने भी सन्त आए, प्राय: सभी के साथ ऐसा ही व्यवहार हुआ, किन्तु आपश्री के पदार्पण के पश्चात् तो वह बराबर प्रवचन मे भी भाग ले रहा है और सम्भव है कभी खडा होकर कुछ प्रश्न कर ले।

आचार्य देव ने सहज स्मिति के साथ उस श्रद्धालु बन्धु को सन्तुष्टिपूर्ण उत्तर देते हुए कहा "आप किसी प्रकार की चिन्ता न करे। मै तो प्रत्येक व्यक्ति को प्रश्नोत्तर के लिए समय देने को तैयार हूँ। सन्ध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् प्रश्नोत्तर का ही समय रहता है। कोई भी बन्धु प्रश्न कर सकता है, और सन्ध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् कुछ अन्य बन्धुओ के साथ वे विद्वान् बन्धु प्रश्नोत्तर हेतु उपस्थित हुए। प्रथम दिन सामान्य साधुचर्या सम्बन्धित चर्चा हुई। दूसरे दिन पुन: उपस्थित हुए और चर्चा के दौरान प्रभावित होते हुए कहने लगे "आचार्य जी आपकी साधना, साधुचर्या, भिक्षाविधि, आदि क्रियाओ पर हमे बहुत श्रद्धा हुई है। भगवान् महावीर की सच्ची साधुता का दर्शन हम आप मे पा रहे है, किन्तु एक दो वाते आपकी उचित नही लगती है। इतने उच्चकोटि के विद्वान् होते हुए भी शास्त्रो मे वर्णित तीर्थो को आप क्यो नही मानते ?"

आचार्य देव ने मधुर मुस्कान के साथ कहा "कौन कहता है हम तीर्थ नही मानते है ?"

भिक्षा दी, आपके चरणो मे भेट चढा दिया। हे भगवान्! क्या इस भेट के वदले छत्तीसगढ को कुछ थोडा सा भी अपना मुँहमाँगा दान नही दोगे ?

इस प्रकार धन्यधान्य एव पुत्र-पौत्रादि से भरे पूरे सम्पन्न परिवार से विरक्त होकर जव आपने साधना पथ पर गमन का सकल्प किया तो सम्पूर्ण समाज आश्चर्य चकित था। आपकी वैराग्य भावना के पीछे शैशवकालीन सस्कार एव महामहिम युग द्रष्टा आचार्य देव श्री जवाहरलाल जी म० सा० के कलिमलहारी उपदेशो का प्रभाव तो था ही, किन्तु अनाथी मुनि की तरह रोग का एक ऐसा झटका आपके जीवन मे लगा जिसमे जीवन की वाती वुझवुझाती सी हो गई थी और आपने एक दृढ सकल्प कर लिया कि इससे वच गया तो सयम स्वीकार कर लूँगा। आपके जीवन की लौ आंधी के तीव्र झोको के मध्य भी वच गई। इसके पश्चात् लगभग ८ वर्ष तक सम्पूर्ण दायित्वो को हल्का कर आप आचार्य देव के चरणो मे भागवती दीक्षा लेने हेतु तत्पर हुए।

आपकी विश्रुत ख्याति एव आदर्श त्याग के कारण ही आप जन-जन के अभिवद्य हुए हैं और इसी कारण हजारो व्यक्तियो ने भावपूर्ण अभिनन्दन के साथ, अपने समाज-निर्माता को, दीक्षा के पावन प्रसग पर उपस्थित होकर, सासारिक-वन्धनो से विमुक्त होने हेतु विदाई दी।

दूसरे मुमुक्षु वन्धु थे, भोपाल निवासी श्री प्रेमचन्द जी कक्कड। तेईस वर्षीय मदमाते यौवन मे विरक्ति की ओर चरण वढाने वाले श्री प्रेमचन्द जी भी माता-पिता, भाई-वहिन से सम्पन्न परिवार के सदस्य थे। इस लघुवय मे ही आपने अपने परिवार का सम्पूर्ण दायित्व अपने लघु किन्तु सशक्त कधो पर ले लिया तथा दलाली (कमीशन एजेन्ट) के कार्य द्वारा अर्थ सम्पादन मे कुशलता प्राप्त कर ली थी। आपके नाना-नानी तथा मातुश्री के धार्मिक सस्कारो का प्रभाव तो आपको विरक्ति मे निमित्त था ही किन्तु "होनहार विरवान के होते चीकने पात" के अनुसार आपके एक व्यावसायिक मित्र की असामयिक मृत्यु भी वैराग्य मे प्रवलतम निमित्त का कार्य कर गई। आप सामारिक मोहजनित कृत्यो से मुक्त रहने का प्रयास करने लगे। अपने दैनिक क्रिया-कलापो मे वहुत अधिक समय धर्म स्थानक एव उसमे चलने वाली लोकाशाह जैन पाठशाला आदि को समर्पित करने लगे।

अपने निकटतम वौद्धिक परीक्षणो से पार होते हुए लगभग १८ माह तक आचार्य देव के अपपात मे प्रारम्भिक सैद्धान्तिक ज्ञान अर्जित किया और आसोज सुदना ४ को आचार्य देव के पुनीत पादपद्मो मे अपना जीवन समर्पित कर दिया।

मन और बन्ध जाता है। अत वास्तविकता यह है कि साधु एव श्रावक धर्म की आराधना ही मुक्ति का मार्ग है और इस आधार पर साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका इन चार को ही तीर्थ मानना युक्तिसगत लगता है। आप भी यदि अनाग्रही विचारो से चिन्तन करेंगे, तो आप की अन्तर आत्मा भी यही कहेगी। अपने पूर्व ग्रहीत विचारो के आधार पर आप इस सत्य को स्वीकार न कर सके, यह एक अलग बात है।"

आचार्य देव का सरल, सरस किन्तु तर्कपुष्ट उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता अभिभूत हो, भावुक बनकर कहने लगा "आचार्यजी, तर्क तो आपके अकाट्य है। यदि सभी स्थानो से आत्माएँ मोक्ष गई तो फिर क्या आधार रह जाता है कि २-४ चुने हुए स्थानो को ही तीर्थ माना जाए ? तथा यह भी आपश्री ने सही बताया कि यदि उन स्थानो पर जाने से ही आत्मा पवित्र बन जाए, तो वहाँ रुकने वालो की आत्मा तो पवित्र हो ही जानी चाहिए, किन्तु देखा यह जाता है कि वहाँ भी चोर, लुच्चे, बदमाश सभी तरह के लोग पाए जाते है। यह बात मेरे समझ मे आ गई। किन्तु मेरी एक जिज्ञासा और है। आप प्रतिमा को क्यो नही मानते है ? शास्त्रो मे कहा है कि "जिन पडिमा जिन सारखी।" फिर आप मूर्ति-पूजा को धर्म क्यो नही मानते है ?"

आचार्य देव ने कुछ गम्भीर स्वर मे उत्तर देते हुए कहा—"देखिए, मै नही चाहता कि किसी भी क्षेत्र मे राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढे और मेरे कारण से क्षेत्रीय वातावरण दूषित हो। किन्तु जब आप जिज्ञासापूर्वक पूछ रहे है, तो सत्य तथ्य को स्पष्ट करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। आप जिस सहजता से प्रश्न कर रहे हैं, आशा है उसी सहजता से सत्य तथ्य को स्वीकार करेंगे। क्योकि यह प्रश्न कुछ ऐसा है कि अपनी दृढ मूल मान्यता के विपरीत उत्तर मिलने पर कुछ उत्तेजना भी आ सकती है। अतः यदि यहाँ बैठे हुए सभी बन्धुओ मे निष्पक्ष भाव से तथ्य को ग्रहण करने की क्षमता हो, तो मै इस बात को कुछ बढाऊँ, अन्यथा और कोई प्रश्न ले सकते है।"

"नही महाराजश्री, ऐसी बात नही है। आपके सौजन्यपूर्ण व्यवहार तथा तर्क-सगत उत्तरो से हमे बहुत सन्तोष हुआ है। इसलिए मैं आपके समक्ष इतनी खुली चर्चा कर रहा हूँ। इसके पूर्व भी मेरी कुछ स्थानकवासी मुनियो से चर्चा का प्रसंग आया था, किन्तु थोडी-सी चर्चा-विचर्चा मे ही वे उत्तेजित हो जाते और पूरा उत्तर नही दे पाते, जिससे हमे भी उत्तेजना आ जाती और वातावरण दूषित हो जाता। किन्तु आप की विद्वत्ता एव उत्तर प्रदान करने की शैली तो अनूठी ही है। यहाँ उत्तेजना का अथवा वातावरण दूषित होने का कोई प्रश्न नही है। आप हमे स्पष्ट खोलकर समझाने की कृपा करे।

"मैं भी कोई हठाग्रही नही हूँ। मैं सदा सत्य को समझकर ग्रहण करने को

दुर्ग चातुर्मास

डोगर गाँव मे दीक्षाएँ

इस प्रकार राजनाद गाँव का साधनामय गौरवशाली ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य देव ने पुन छत्तीसगढ के ग्रामीण अचलो मे परिभ्रमण हेतु प्रस्थान कर दिया। चूँकि निकटवर्ती ग्राम डोगर गाँव मे दो भागवती दीक्षाएँ होना निश्चित हो चुका था, अत राजनादगाँव वर्षावास समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री का विहार डोगर गाँव की दिशा की ओर हुआ।

डोगर गाँव मे हजारो की जन मेदनी के समक्ष डोगर गाँव निवासी श्रीमती गगाबाई आयु ३० वर्ष तथा श्रीमती पारसबाई आयु २० वर्ष की भागवती दीक्षाएँ अत्यन्त उल्लासमय वातावरण मे सम्पन्न हुई। छोटे से ग्राम मे हजारो दर्शनार्थियो की भीड जन सागर की तरह लहरा उठी। डोगर गाँव का इतिहास भी आचार्य देव के वहाँ पदार्पण से सनाथित हुआ। दीक्षा सम्पन्न हो जाने के उपरान्त भी स्थानीय जैन-जैनेतर धर्मप्राण जनता के आग्रह के कारण आचार्यश्री कुछ दिनो तक वहाँ विराजे और अपनी पीयूषधारा से उन्हे सतृप्त किया।

डोगर गाँव मे धर्म जागृति का उद्घोष कर आचार्य देव अछोली पधारे। अछोली ग्राम मे जैन-परिवारो की सख्या यद्यपि १०-२० ही थी, किन्तु कबीर-पथी साहू समाज के बहुत परिवार थे और उनके आग्रह के कारण आचार्य देव को वहाँ लगभग आठ दिन रुकना पडा। छत्तीसगढ के ग्रामीण अचलो का भ्रमण अछोली ग्राम के जैनेतर बन्धुओ मे सस्काराारोपण की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। सम्पूर्ण ग्राम के जैन-जैनेतर आबालवृन्दो मे धार्मिक भावना की एक लहर-सी फैल गई। लगभग सभी ग्रामवासियो ने शराब-मास के राक्षसी खान-पान को अपने ग्राम की पवित्र भूमि से निष्कासित ही कर दिया। प्राय. अधिकाश व्यक्तियो ने बडी हिंसा का त्याग कर दिया। तत्कालीन सरपच लब्ध प्रतिष्ठ श्री केदारनाथजी साहू आदि अनेकानेक बन्धुओ ने आचार्यश्री से गुरु धारणा-सम्यक्त्व ग्रहण की। श्री केदारनाथजी की अहिंसक भावना तो इतनी उत्कृष्ट थी कि अपने सरपचत्वकाल मे शासन द्वारा डाला जाने वाला मत्स्य बीज भी यह कहकर रुकवा दिया कि "इस ग्राम मे कोई भी मासाहारी नही है,

मे धर्म नही हो सकता है और इस प्रकार जहाँ पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति, आदि की हिसा होती हो, ऐसे धर्म का उपदेश कोई साधु नही दे सकता है। तो तीर्थंकर जैसे महापुरुष मूर्तिपूजा का उपदेश कैसे दे सकते है ? हम तो तीर्थंकर महाप्रभुओ द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर ही चलते है और हिसापूर्ण मार्ग-दर्शन वे नही दे सकते है। अतः मूर्तिपूजा का विधान तीर्थंकरो द्वारा निर्देशित नही माना जा सकता है। तीर्थंकर प्रभु ने हिसा युक्त उपासना का नही, गुणोपासना का ही प्रतिपादन किया है।

"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी चिन्तन करेगे, तो स्पष्ट हो जाएगा कि अपने उद्देश्य के अनुसार हमारी उपासना कैसी होनी चाहिये। मनोविज्ञान का दृष्टि-कोण है कि जो जिसका ध्यान करता है, वह वैसा बन जाता है। चेतन के ध्यान से व्यक्ति परम चेतना को, तो जड के ध्यान से जडता को उपलब्ध होता है।

"हम साधना के द्वारा निराकारत्व को उपलब्ध होना चाहते है या साकारत्व को ? यदि निराकारत्व हमारा उद्देश्य है, तो हमे निराकार साधना ही करनी होगी। निराकार की उपलब्धि के लिए साकार से होकर गुजरने की लुभावनी प्रक्रिया एक भुलावा मात्र है। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से चिन्तन करे, हमारी उपासना मे पार्थिव प्रतीक की आवश्यकता नही है। गुणो की उप-लब्धि के लिए गुणोपासना, और चूँकि गुण निराकार होते है, अतः निराकार उपासना ही हमे अपने साध्य तक पहुँचा सकती है।"

"आचार्यश्री, तर्क की दृष्टि से तो आपका कथन यथार्थ है, किन्तु श्रद्धा की दृष्टि से मन को सन्तुष्ट नही कर पाता है। मूर्ति को देखते ही शुद्ध भावना उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त हम कई स्थानो पर मूर्तियो मे चमत्कार देखते है तथा प्राचीनतम मूर्तिया पृथ्वी मे गडी हुई निकलती है। यदि मूर्ति मे कुछ तथ्य नही होता, तो ये चमत्कार कैसे होते है ?" आगत बन्धु ने पुनः जिज्ञासा की।

"देखिये, किसी के प्रति श्रद्धा जम जाना भिन्न बात है और उसकी उपा-देयता को सिद्ध कर पाना अलग बात है। एक दुर्गा देवी का उपासक यह कह सकता है कि माँ दुर्गा के समक्ष बकरे की बलि चढाना हमारी श्रद्धा के अनुरूप है, किन्तु एतावता उसके इस कृत्य की धार्मिक उपादेयता सिद्ध नही हो जाती है। रहा प्रश्न भावना-शुद्धि का, सो ऐसा कोई नियम नही है कि मूर्ति के समक्ष जाने से भावना शुद्ध हो ही जाए, अन्यथा उनकी चोरी क्यो होती ? महमूद गजनवी, आदि अनेक मुगल सम्राटो ने हजारो मूर्तियाँ तोड दी। उनकी भावना पवित्र क्यो नही हुई ? मूर्ति के समक्ष तो वे भी आये थे। चमत्कार के विषय मे भी आपके विचार यौक्तिक नही लगते है। आप सोचिये, मूर्तियाँ भूमि से

दुर्ग चातुर्मास

डोगर गाँव मे दीक्षाएँ

इस प्रकार राजनाद गाँव का साधनामय गौरवशाली ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य देव ने पुन छत्तीसगढ के ग्रामीण अचलो मे परिभ्रमण हेतु प्रस्थान कर दिया। चूँकि निकटवर्ती ग्राम डोगर गाँव मे दो भागवती दीक्षाएँ होना निश्चित हो चुका था, अत राजनादगाँव वर्षावास समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री का विहार डोगर गाँव की दिशा की ओर हुआ।

डोगर गाँव मे हजारो की जन मेदनी के समक्ष डोगर गाँव निवासी श्रीमती गगाबाई आयु ३० वर्ष तथा श्रीमती पारसबाई आयु २० वर्ष की भागवती दीक्षाएँ अत्यन्त उल्लासमय वातावरण मे सम्पन्न हुई। छोटे से ग्राम मे हजारो दर्शनार्थियो की भीड जन सागर की तरह लहरा उठी। डोगर गाँव का इतिहास भी आचार्य देव के वहाँ पदार्पण से सनाथित हुआ। दीक्षा सम्पन्न हो जाने के उपरान्त भी स्थानीय जैन-जैनेतर धर्मप्राण जनता के आग्रह के कारण आचार्यश्री कुछ दिनो तक वहाँ विराजे और अपनी पीयूषधारा से उन्हे सतृप्त किया।

डोगर गाँव मे धर्म जागृति का उद्घोष कर आचार्य देव अछोली पधारे। अछोली ग्राम मे जैन-परिवारो की सख्या यद्यपि १०-२० ही थी, किन्तु कबीरपथी साहू समाज के बहुत परिवार थे और उनके आग्रह के कारण आचार्य देव को वहाँ लगभग आठ दिन रुकना पडा। छत्तीसगढ के ग्रामीण अचलो का भ्रमण अछोली ग्राम के जैनेतर बन्धुओं मे सस्कारारोपण की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। सम्पूर्ण ग्राम के जैन-जैनेतर आबालवृन्दो मे धार्मिक भावना की एक लहर-सी फैल गई। लगभग सभी ग्रामवासियो ने शराब-मांस के तामसी खान-पान को अपने ग्राम की पवित्र भूमि से निष्कासित ही कर दिया। प्राय. अधिकाश व्यक्तियो ने बडी हिंसा का त्याग कर दिया। तत्कालीन सरपच लब्ध प्रतिष्ठ श्री केदारनाथजी साहू आदि अनेकानेक बन्धुओं ने आचार्यश्री से गुरु धारणा-सम्यक्त्व ग्रहण की। श्री केदारनाथजी की अहिंसक भावना तो इतनी उत्कृष्ट थी कि अपने सरपचत्वकाल मे शासन द्वारा डाला जाने वाला मत्स्य बीज भी यह कहकर रुकवा दिया कि "इस ग्राम मे कोई भी मांसाहारी नहीं है,

दिया, हमें क्यो नही ? पुजारी तो अपने पैसो की पूजा करता है। सच्ची श्रद्धा के साथ तो पूजा हम करते है। किन्तु जहाँ केवल बिना चिन्तन की श्रद्धा होती है, वहाँ स्वस्थ चिन्तन के द्वार बन्द हो जाते है। मूर्ति को चुराकर पुजारी ने जमीन मे दबा दिया और स्वप्न की रूपरेखा रचकर चमत्कार दिखा दिया।

मैं कहता हूँ, कदाचित्, कहीं कोई चमत्कार दिखाई दे जाए, तो भी क्या हम चमत्कार के उपासक है या त्यागपूर्ण वीतराग मार्ग के ? चमत्कार तो एक सामान्य व्यन्तर जाति का देव भी दिखा सकता है, किन्तु वह हमारे लिए आराध्य नही बन जाता है। यदि चमत्कार ही दिखाना होता और उसके द्वारा जनता को अपनी ओर आकर्षित करना होता, तो भगवान् महावीर स्वय अनन्त शक्ति सम्पन्न थे। उनके पास सैकडों मुनि वैक्रियलब्धि के धारक थे। वे चमत्कार दिखाकर भोले भटकते मनुष्यो को जैन धर्म मे दीक्षित करवा सकते थे, किन्तु चमत्कार के द्वारा भावुक जनता को प्रतारित करना वीतराग आज्ञा के अनुरूप नही माना जा सकता है। अत चमत्कारिक किवदन्तियो की सर्जना करके मूर्ति पूजा को उचित कैसे ठहराया जा सकता है ?

इसके अतिरिक्त एक बात और चिन्तनीय है। मुक्ति साधना भौतिक आकर्षणो की उपासना से होती है अथवा बाह्य आकर्षणो से विरक्त होने से ? एक सामान्य व्यक्ति भी समझता है कि बाह्य-आकर्षणो मे अनुरक्त रहते हुए मोक्ष-मार्ग की आराधना कदापि नही हो सकती है। इसलिए तो प्रभु महावीर तथा अनन्त-अनन्त तीर्थकरो ने मोक्ष मार्ग की साधना मे परम सहयोगी इस देह की आसक्ति के भी त्याग का विधान किया है। ध्यान की स्थिति मे पहुँचने के लिए पहले "तस्स उत्तरी" के पाठ का उच्चारण किया जाता है, जिसमे दुर्ध्यान-युक्त सम्पूर्ण शारीरिक कार्यो अर्थात् स्वदेह तक का विसर्जन किया जाता है। आत्मलीनता के लिए जहाँ मुक्ति-साधना मे निकटतम सहयोगी देह तक को विसर्जित किया जाता है, वहाँ किसी पाषाणमय पदार्थ से मन को जोडने का प्रयास करना कैसे सगत हो सकता है ? आत्म-साधना का तो अर्थ है बाह्य भाव से निवृत्त होकर केवल आत्म-भाव मे रमण करना, जबकि प्रतिमा-उपासना मे आत्म-भाव नही, वाह्य भाव ही वना रहता है।

"इस प्रकार धार्मिक, मनोवैज्ञानिक तथा अहिसक आराधना आदि किसी भी दृष्टि से मूर्ति-पूजा वीतराग मार्ग के अनुकूल नही ठहरती है। आप कुछ गम्भीरता से चिन्तन करे तथा निष्पक्ष दृष्टि से विचार करे। मेरे इस कथन मे आपको और भी किसी प्रकार का सन्देह हो तो प्रति तर्क के द्वारा पुन. स्पष्ट कर सकते है।"

आचार्य देव के तर्क-पुष्ट विस्तृत एव मर्मस्पर्शी उत्तर को सुनकर आगत वन्धु भाव-विभोर होते हुए कहने लगे—"महाराजश्री, आज मेरी दृष्टि कुछ

"क्या आप शत्रुंजय, गिरनार, पालीताना आदि तीर्थों को मानते है ?" कुछ आश्चर्य के साथ उक्त बन्धु ने जिज्ञासा की ।

आचार्य देव ने अत्यन्त सुबोध ढंग से समझाते हुए तथा स्वयं से ही स्वीकार करवाते हुए कहा "आप ही बताइए, भगवान् महावीर ने अथवा पूर्व के सभी तीर्थंकरो ने कितने तीर्थों की स्थापना की थी ?"

"भगवान ने तो चार तीर्थों की स्थापना की है ।"

"कौन-कौन से ?"

"साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका ।"

"बस, इन चार तीर्थों को हम स्वीकार करते है । यदि तीर्थंकर देव इन चारो के अतिरिक्त, शत्रुंजय, गिरनार, आदि आठ दस बता देते तो हम उन्हे भी स्वीकार कर लेते, किन्तु किसी भी तीर्थंकर महाप्रभु ने चार के अतिरिक्त पाँचवें तीर्थ का निरुपण नही किया है । अत उसे तीर्थ कैसे कहा जाए ?"

आचार्य देव का सहज बोधगम्य संक्षिप्त उत्तर सुनकर आगन्तुक विद्वान् बड़े विनम्र शब्दो मे कहने लगे "महाराजश्री, आपका तर्क तो यथार्थ है, किन्तु हमारे पूर्वाचार्यो ने प्रतिपादन किया है कि इन क्षेत्रो से अनेक आत्माएँ मुक्त हुई है । अत इन्हे भी तीर्थ मानना चाहिए । वहाँ जाने से पाप धुल जाते हैं तथा आत्मा पवित्र बनती है ।"

आचार्य देव ने पुन सरलतापूर्वक स्पष्ट किया "आप जरा गम्भीर किन्तु निष्पक्ष दृष्टि से चिन्तन कीजिए, यदि उस स्थान को तीर्थ माना जाए जहाँ से आत्माएँ मोक्ष मे जाती है, तो अढाई द्वीप मे ऐसा कोई स्थान नही मिलेगा जहाँ से आत्मा मोक्ष नही गई हो । अनन्त आत्माएँ मुक्त हुई हैं और अढाई द्वीप का अणु-अणु सिद्धगत आत्माओ से पूर्व स्पर्शित है । अत. सम्पूर्ण अढाई द्वीप ही तीर्थ भूमि मानी जानी चाहिए, केवल गिरनार, शत्रुंजय, आदि ही नही । दूसरी बात यह है कि यदि उन स्थानो पर जाने से आत्मा पवित्र बन जाए, तो हजारों व्यक्तियो को वही बस जाना चाहिए था, अथवा जो वहाँ के निवासी हैं, उनकी मुक्ति तो हो ही जानी चाहिए । जबकि देखा इसके विपरीत ही जाता है । वहाँ रहने वाले तो उन तीर्थो के प्रति अनास्थावान ही देखे जाते है ।

"तीर्थ वह होता है, जिसके द्वारा तिरा जाए, और तिरना साधु एव श्रावक धर्म की आराधना से ही हो सकता है । तिरने का अर्थ है, कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाना । मुक्ति होगी साधना के द्वारा । किसी स्थान विशेष के दर्शन से तो मुक्ति नही बल्कि बन्धन ही अधिक दृढ होता है । उस स्थान के साथ हमारा

जावरा (म० प्र०) मे शासन प्रभाविका महासतीजी श्री गुलाब कंवरजी के सान्निध्य मे सम्पन्न हुई।

रायपुर में दीक्षोत्सव

रायपुर मे आदर्श विरक्तात्मा दम्पत्ति श्री धर्मप्रकाशजी व जयश्री बाई अपने पारिवारिक सदस्यो के साथ उपस्थित हो चुके थे तथा दीक्षा की तैयारी मे जुटे हुए थे। दीक्षा-तिथि के एक दिन पूर्व विरक्त बन्धु श्री धर्मप्रकाशजी की दादी माँ, जो कि सम्पूर्ण परिवार की प्रमुख श्रद्धास्पद महिला थी तथा अपनी धार्मिक मान्यता मे तेरापन्थ सम्प्रदाय की प्रतिष्ठित श्राविका थी, ने आचार्य देव से निवेदन किया, "अन्नदाता, धरम मारो घणो लाडलो पोतो है, घणा कोडऊं मे ईरो दूजो व्याव कीधो, पण इणरो वैराग पक्को हो, अबे इणने अर ईरी बू ने आपरा चरणा मे सौपूँ। पण उणारी पेला मै भी तो सच्चा धर्म रा मार्ग ने धारण कर लूँ, इसो विचार आज मारा मन मे उठ्यो। मै तेरापथ सम्प्रदाय री आमना मे पली। मने मारे बेटे जुगुराज घणो समझायो कै माँ साहब अबे माँ तो महावीर भगवान को साचो मार्ग धारण कर लीधो, अबे आप भी शुद्ध समकित ग्रहण करलो। पण मारो मन नी बदल्यो। अबे मे सोचियो के पोतो ने पोता री बू दोनू ही आपरा चरणा मे दीक्षा लेई नै आतम कल्याण करवा नै निकल र्‌या है तो मूं भी शुद्ध सरधा ले लूं। आप किरपा करने मारी खोटी सरधा ने छुडाय शुद्ध समकित री सरधा दिराओ। मै इण बीच खूब विचार कर्यो के भगवान् रो साचो मारग दान-दया मे धर्म मानवा वारोईज है।"

आचार्य देव ने धर्म, दान, दया आदि का संक्षिप्त स्वरूप समझाते हुए वृद्धा दादीजी को गुरु मन्त्र सम्यक्त्व पाठ सुनाया। दृढ श्रद्धा के साथ उसने अपना उपासना-क्रम परिवर्तित कर दिया। इस विषय की जानकारी जब तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य, साधु, साध्वी तथा प्रमुख श्रावको को हुई, तो वे आकर उस वृद्धा से कहने लगे—"धोकणजी, तुमने यह क्या किया ? तुम तो तेरापथ सम्प्रदाय की प्रमुख श्राविका थी। इस वृद्धावस्था मे रत्न को छोडकर कहाँ कंकड़ पकड लिया ? यह अच्छा नही किया है। अब भी अपने पूर्व के विचारो पर दृढ रहकर नई ग्रहण की हुई समकित का परित्याग कर दो। आपको पुनः सम्प्रदाय मे प्रतिष्ठा प्राप्त हो जायेगी।"

शुद्ध दृढ श्रद्धा सम्पन्न वृद्धा दादीजी ने सहज उत्तर देते हुए कहा—"महाराज, मैं सोच विचार ने सरधा लीधी है, मै कीराई वेकावासूँ सरधा नी बदली है। आप फरमायो के रतन ने छोड काकरो लीधो। पण मैं अतरा दिना मूँ काकरा ने रतन समझ लीदो हो, अबे मने समझ मे आयो कि यो काकरो है, रतन कोनी। तो मैं उणने फेक दीदो, अने साचो रतन ले लीधो। अब आप लाख समझाओ, पण इण अमोल हीरा ने मै छोड़वा वाली नी हूँ।"

भी उत्सुक रहता हूँ बस, कोई सरल ढग से मुझे समझा भर दे ।" अत्यन्त नम्रता पूर्वक जिज्ञासु बन्धु ने स्पष्ट किया ।

आचार्य देव ने मूल विषय का स्पर्श करते हुए ही कहा - "यदि आपकी सत्य तथ्य को समझने की जिज्ञासा है, तो मुझे उसके प्रतिपादन मे क्या आपत्ति हो सकती है ? आपने कहा कि—"जिन पडिमा जिन सारखी" ऐसा शास्त्रो मे कहा है । इस पर मैं यह पूछना चाहूँगा कि यह कथन किस शास्त्र का है । आप उपासकदशाग सूत्र को उठाकर देखिये । उसमे आनन्दजी, कामदेवजी, आदि भगवान् महावीर के दस प्रमुख श्रावको का वर्णन आता है । उसमे आनन्दजी ने बारह व्रत स्वीकार किये । छब्बीस बोलो की मर्यादा करते हुए यहाँ तक विधान आता है कि उन्होने कौन-सा चावल खाने को रखा, कौन-सा वस्त्र रखा, कौन-सा दातून रखा, आदि । यदि मूर्ति पूजा का विधान होता तो उस विषय मे इतना वर्णन तो अवश्य देते कि उन्होने अमुक समय तथा अमुक द्रव्य मूर्ति पूजा के लिए रखा, किन्तु किसी भी श्रावक के जीवन मे ऐसा वर्णन नही मिलता है ।

"इसके अतिरिक्त भी आप विचार करिये । एक पाषाण प्रतिमा को जिन सारखी कह कर हम जिनेश्वर भगवन्तो की अवमानना-आशातना तो नही करते हैं ? एक मानव को पशु से उपमित करते हैं, तो वह अपना अपमान समझता है । तो पाषाण से जिन भगवान को उपमित करना उनकी आशातना नही होगी ? यद्यपि जिन भगवन्त तो वीतरागी होते हैं, उन्हे आपके सम्मान-अपमान से कोई प्रयोजन नही है, किन्तु हमे तो चिन्तन करना चाहिये कि हम किसके साथ उनकी तुलना कर रहे हैं ।

आप व्यावहारिक दृष्टि से भी चिन्तन कीजिए । एक पिता यदि कमरे मे बैठा है, तो क्या उनके समक्ष पुत्र अपनी पत्नी से भद्दा विनोद कर सकता है । तीर्थंकर तथा माता-पिता के चित्र, जो कि असत् कल्पना से बने हैं, कमरे मे लगे रहते ही हैं । यदि जिन प्रतिमा जिन सारखी मानते हैं, तो क्या जिन भगवान् के समक्ष यह सब कुछ किया जा सकता है ?

साथ ही एक बात का चिन्तन और करिये, यदि मूर्ति या वन्दन-पूजन मोक्ष-मार्ग मे सहयोगी होता और जिन प्रतिमा जिन सारखी होती तो नमस्कार महामन्त्र मे पाच पदो के साथ एक "णमो जिण पडिमाए" का पद और दे दिया जाता । क्या हानि थी ? क्या तीर्थंकरो के पास शब्दो की कमी थी ? किन्तु ऐसा उल्लेख नही करके सभी चेतनायुक्त गुणसम्पन्न पदो का ही कथन किया है किसी जड प्रतीक का नही । इसी प्रकार सामान्य दृष्टि से ही विचारें तो तीर्थंकरो के उपदेश के अनुसार हिंसा से धर्म होगा या अहिंसा से ? नीतिकारों ने कहा है कि 'हिंसानाम् भवेद धर्मो न भूतो न भविष्यति ।" अत हिंसा

आचार्यश्री के प्रवचनो में प्राय· धार्मिक उत्क्रान्ति के साथ सामाजिक परिष्कार का प्रतिपादन भी हृदय-स्पर्शी भाषा मे होता है। इसका प्रभाव अबूझ होता है और अनेक श्रद्धालु बन्धु समाज-सुधार हेतु सामाजिक कुप्रथाओ का परित्याग करते है। इस वर्षावास मे भी अनेक बन्धुओ ने दहेज प्रथा, मृत्यु-भोज, कृत्रिम रुदन आदि कुप्रथाओ का वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से परित्याग किया। स्थानीय सघ के अध्यक्ष श्री जुगराजजी बोथरा ने आचार्य देव के मार्मिक उपदेशो से प्रभावित होकर अपने परिवार के सभी सदस्यो को अपने पीछे मृत्यु-भोज एव कृत्रिम रुदन आदि का परित्याग करवा दिया।

इसी प्रकार धनी-मानी अनन्य श्रद्धानिष्ठ बन्धु श्री केवलचन्दजी श्रीश्रीमाल के पिताश्री का इसी वर्षावास मे स्वर्गवास हो गया, जो कि वृद्ध होते हुए भी उग्र तपस्वी थे। सामान्य से उपदेश से सम्पूर्ण श्रीश्रीमाल परिवार ने दो दिन भी शोक नही रखकर प्रवचन आदि मे कोई व्यवधान नही आने दिया।

इस प्रकार दुर्ग का वर्षावास भी संयम-साधना एव चामत्कारिक उपलब्धियो के वातावरण मे सम्पन्न कर आचार्य देव ने पुन नागपुर की दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया। दुर्ग से खैरागढ, छुईखदान, डोगरगढ, गादिया आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए आचार्य देव बालाघाट पधारे। बालाघाट मे त्याग-प्रत्याख्यानो की अभूतपूर्व धूम मच गई थी। अनेक बन्धुओ ने आजीवन व मर्यादित ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किये। अनेको ने सप्त कुव्यसनो के त्यागपूर्वक शुद्ध सस्कारपूर्ण जैनत्व की दीक्षा ली।

बालाघाट मे धर्म-जागृति की पावन धारा प्रवाहित कर आचार्य देव वारासिवनी पधारे। यद्यपि वारासिवनी से सीधे मार्ग से इन्दौर की ओर बढने का विचार था, किन्तु मार्गवर्ती नदी बेनगगा का पुल असामयिक अतिवृष्टि के कारण ध्वस्त हो गया तथा उस मार्ग से जाने मे कुछ पॉव पानी मे लगाने पडते थे। अत. पुनः बालाघाट गोदिया होते हुए लगभग ४० मील का चक्कर लगाकर नागपुर पधारे। यह थी आचार्य प्रवर की सयम मर्यादा के प्रति सजगता।

चूँकि नागपुर की धर्म प्राण जनता पूर्व मे आचार्य देव के गरिमामय व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता से परिचित हो चुकी थी, अत. इस समय प्रवचन, तत्त्व-चर्चा आदि मे विशेष उपस्थिति होना स्वाभाविक था। स्थानीय कॉलेज के अनेक युवा विद्यार्थियो, वुद्धिजीवियो तथा समाज प्रमुखो ने आचार्य देव के समक्ष लिखित तथा मौखिक रूप से प्रश्नो की झडी लगा दी। आचार्य देव ने बहुत से प्रश्नो का अपने प्रवचनो मे तथा कुछ का सन्ध्याकालीन तत्त्व-चर्चा के

स्वत निकलती हैं अथवा उन्हे निकाला जाता है। जहाँ तक किंवदन्तियाँ हैं, मूर्ति किसी को स्वप्न देती है और स्वप्न-दृष्टा धनपतियो के सहयोग से प्रतिमा अनावरण का कार्य करते है। यदि मूर्ति को चमत्कार दिखाना है तो वह स्वय ही भक्तो को पुकारती हुई बाहर क्यो नही आ जाती है ? किसी को स्वप्न देने जैसे एक द्राविड़ प्राणायाम का क्या अर्थ है ? साथ ही यदि मूर्ति के प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् भी उसमे चमत्कार होता, तो वह चोरो के पैर क्यो नही चिपका देती ? जिन मुगल बादशाहो ने मूर्तियो का भन्जन किया, उन हजारो मूर्तियो मे से एकाध मूर्ति भी तो चमत्कार दिखाकर उन व्यक्तियो की आँखे हर लेती, किन्तु एक भी मूर्ति ने वैसा साहस नही किया। आजकल तो मूर्ति चोरियो की बाढ-सी आ रही है। लाखो रुपयो के आभूषण एव मूर्तियो को चोर उठाकर ले जाते है, किन्तु चमत्कार तो दूर रहा, एक भी मूर्ति स्वय की रक्षा भी नही कर पा रही है।

भूमि से मूर्ति निकलने की बात को लेकर जो चमत्कारो का वर्णन किया जाता है, वह भावुकता अथवा अन्ध श्रद्धा से अधिक कुछ नही माना जा सकता है। बहुत बार ऐसा होता है कि तस्कर लोग मूर्तियो की चोरी करके ले जाते है और उनमे से बहुमूल्य पदार्थ निकालकर अथवा पुलिस के डर से इधर-उधर जगलो मे डाल देते है। और वे ही धीरे-धीरे जमीन्दोज हो जाती है। कभी खुदाई करते-करते निकल जाती है और उसे ही बढा चढाकर चमत्कार का परिवेश पहना दिया जाता है। वास्तव मे यदि चमत्कारिक घटना हो तो मूर्ति स्वप्न मे क्यो आएगी, और वह भी पुजारी आदि के। स्वय अपने उपासक श्रेष्ठी वर्ग के ही स्वप्न मे क्यो नही आती है। एक घटना का उल्लेख मैने सुना है। अहमदाबाद मे एक पुजारी ने किन्ही सेठ साहब से जाकर कहा, "सेठ साहब, आज पिछली रात्रि मे मुझे एक स्वप्न आया। स्वप्न मे भगवान् पार्श्वनाथ ने मुझे दर्शन दिये और कहा मैं अमुक खेत मे दबा पड़ा हूँ। मुझे कोई सम्भालता ही नही है।" पुजारी की बात को सुनकर सेठ साहब को बहुत आश्चर्य हुआ और पुजारी को साथ लेकर स्वप्न मे देखे गए खेत पर गए तथा निर्दिष्ट स्थान पर खुदाई की, तो वास्तव मे एक भव्य मूर्ति भूमि मे दबी पड़ी थी। बड़ी धूम-धाम के साथ मूर्ति को निकालकर प्रतिष्ठा की गई और भव्य मन्दिर का निर्माण करवा दिया गया।

किन्तु एक दिन कलकत्ता के सेठजी उस चमत्कारिक मन्दिर मे दर्शन करने आए, तो मूर्ति को देखकर तुरन्त पहचान गए कि यह तो कलकत्ता के मेरे मन्दिर से चुराई गई मूर्ति है। सेठजी ने पुजारी का पता लगाया तो वह भी पहले कलकत्ता मे उन्ही सेठजी द्वारा निर्मित मन्दिर मे पूजा करता था और मूर्ति की चोरी करके भाग गया था। अब देखिये चमत्कार मानने वाले बन्धुओं ने इतना भी विचार नहीं, किया कि पार्श्वनाथ भगवान् ने पुजारी को क्यो स्वप्न

उन्होने आचार्य देव से निवेदन किया—"आचार्यश्री, मेरी माँ साहेब मुझसे बहुत लड़ती है।"

आचार्य देव ने सहज भाव से कहा—"क्यो, आपकी माँ साहब तो बहुत सरल एव धर्म श्रद्धालु है। नागपुर मे वे मेरे परिचय मे आई थी। उनका स्वभाव मुझे तो अच्छा ही लगा था। फिर वे आपसे क्यो झगडती है ?

"नही गुरुदेव ! ऐसे किसी काम के लिए नही झगडती है, किन्तु मेरी निद्रा जरा देरी से खुलती है, जिससे मैं सामायिक नही कर पाता हूँ। बस इसीलिए वे चिल्लाती रहती है कि तुम्हारे पिताजी कैसे धर्मात्मा थे, वे पूरा धर्मस्थानक बनाकर चले गए और तुझे एक सामायिक करने का समय नही" श्री नवलचन्दजी ने स्पष्ट किया।

"माताजी का यह कथन तो उचित ही है। इसे आप झगडना कैसे कह रहे है ? माता का परम कर्त्तव्य होता है कि वह अपने बालको मे धर्म-सस्कार डालने का पूरा प्रयास करे।" आचार्य देव ने स्पष्ट किया।

"गुरुदेव ! बात ऐसी है कि यदा-कदा रविवार को अवकाश मिलने पर मैं सामायिक कर लेता हूँ, किन्तु सामायिक मे रस नही आता। मुझे वह अड़तालीस मिनिट का काल पहाड-सा लगता है। अब आप ही बताइये, जिस सामायिक मे मन स्थिर नही, उस सामायिक को करने से क्या लाभ है ?" श्री नवलचन्दजी ने अपनी समस्या रखते हुए कहा।

आचार्य देव ने समाधान प्रस्तुत करते हुए सामायिक की सहज बोधगम्य विधि प्रस्तुत की और कहा कि "यदि आप विधि से सामायिक करेगे तो मन भी केन्द्रित होगा तथा रस भी आने लगेगा।"

"गुरुदेव, वही विधि तो मै समझना चाहता हूँ। आप कृपा करके कुछ विस्तार से मुझे समझा दे।"

आचार्य देव ने कुछ गम्भीर स्वर मे कहा—"देखिये, साधना अथवा किसी भी कार्य मे सफलता के लिये उसकी पहली और अनिवार्य शर्त है उसके प्रति आन्तरिक अभिरुचि का प्रादुर्भाव।

यदि आन्तरिक रुचि होगी तो कैसा भी कार्य क्यो न हो, व्यक्ति उसमे सफल हो जाता है। सफलता की दूसरी श्रेणी है उस कार्य को सम्यक् विधि के द्वारा सम्पन्न किया जाय। सामायिक का जहाँ तक प्रश्न है आप उल्लास एवं उत्साह भरे मन से सामायिक मे बैठिये तथा इसके लिए अपनी दैनिक चर्या को कुछ व्यवस्थित कर लीजिए। चर्या के व्यवस्थिकरण का क्रम प्यास लगने पर

माफ हो रही है । शास्त्रों मे कहा है कि बिना गुरु के ज्ञान नही होता है । इसका आज मैं अनुभव कर रहा हूँ । आज तक आप जैसे महान सतो का सुयोग नही मिला और हम अज्ञान मे भटकते रहे । अब आप श्री से मेरी एक प्रार्थना है कि आप कुछ दिनो तक यहाँ विराजकर अपनी अमृत-धारा से हमारे हृदयो के कालुष्य तथा अज्ञानता जन्य विष को समाप्त कर दे । आप चाहे कि एक-दो दिन मे हमारी बद्धमूल धारणाएँ बदल जाएँ, सो तो नही हो सकता है । महीना बीस दिन आप विराजे, तो हमारे विचारो मे कुछ परिवर्तन अवश्य आ सकता है, और हम पर उपकार करने के लिए आपश्री को यहाँ कुछ विराजना ही होगा ।"

आचार्य देव ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—"मुझे तो कही भी धर्म-जागृति कर जनता को उद्बोधित करना है, किन्तु इस समय मैं यहाँ अधिक रुकने की स्थिति मे नही हूं, कारण कि मद्रास निवासी युवा दम्पत्ति श्री धर्मप्रकाशजी तथा जयश्री बाई की दीक्षा निकट भविष्य मे रायपुर मे होनी निश्चित हो चुकी है, अत मेरा पहुँचना आवश्यक हो गया है ।"

और शीघ्र ही आचार्य देव को धमतरी मे कुछ ही धर्म जागृति करके, प्रस्थान करना पडा । धमतरी से भखारा, सेमरा, आदि छोटे-छोटे ग्रामो को पावन करते हुए विकट, किन्तु सीधे मार्ग से रायपुर पधार गए । आचार्य देव का रायपुर-पदार्पण लम्बे विहार के कारण इतना अकस्मात हुआ कि रायपुर श्री सघ स्वागत-सत्कार की प्रतीक्षा ही करता रह गया और आचार्य देव धाडीवाल ज्ञान भवन मे आ विराजे । छत्तीसगढ प्रान्त-भ्रमण की इस अवधि मे इधर आचार्य देव के परमपूत करकमलो द्वारा अनेक मुमुक्षु आत्माओ का उद्धार हो रहा था तो उधर आपश्री के ही विशेष निर्देशो से मालव एव मेवाड के क्षेत्रो मे दीक्षोत्सवो के आयोजन होते रहे ।

रायपुर की दीक्षाओ के कुछ पूर्व ही अर्थात् स० २०२३ माघ शुक्ला १० को महान् तपोमूर्ति श्री अमरचन्दजी म० सा० की ससार पक्षीया सुपुत्री चन्दन बाला (जिसका कुछ वर्णन पूर्व मे दिया जा चुका है) की भागवती दीक्षा अनेक विरक्तात्माओ की जन्म स्थली पिपलिया मण्डी मे हजारो की जन मेदनी के समक्ष विदुषी महासती श्री पानकवरजी एव शासन प्रभाविका श्री मनोहर कवर जी की पवित्र सन्निधि मे सम्पन्न हुई ।

स्मरण रहे पिपलिया मण्डी के इस परिवार से सम्बन्धित अद्यावधि १२ मुमुक्षु आत्माएँ आचार्य देव के अनुशासन मे समर्पित हो चुकी है । इसी प्रकार आषाढ शुक्ला ३ स० २०२४ को महासतीजी श्री मानकवरजी की ससार पक्षीया पौत्रि सुशिक्षित कुमारी सुपुत्री श्री [illegible] सुराना की भागवती दीक्षा भी

धार्मिक साहित्य का अध्ययन तल्लीनता पूर्वक कीजिए। अध्ययन के समय यह सकल्प रहे कि जितना मैं पढ रहा हूँ, उसे हृदयगम करता जाऊँ। साथ ही उस अध्ययनगत विषय मे से किसी एक सद्गुण की खोज करे और उसे जीवन मे एक मास के अभ्यास से आत्मसात करने का प्रयास करे। इस क्रम से आपके जीवन मे एक वर्ष मे बारह दुर्गुणो का अवसान एवं बारह सद्गुणो का प्रवेश होगा। जीवन आलोक-मुखी बनेगा तथा सामायिक शुद्ध एवं रस-प्रद बनेगी। एक अलग ही प्रकार के आनन्द की अनुभूति होने लगेगी। ऊब अपने आप समाप्त हो जाएगी। इस क्रम से आप अभ्यास करिये। इसके आगे की साधना इस क्रम के सध जाने के पश्चात् फिर कभी बताई जा सकेगी।"

श्री पुगलियाजी मन मे कुछ संकलिपत से होते हुए चले गये और आचार्य देव भी दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान का मार्गवर्ती ग्रामों को पावन करते हुए हिगनघाट पधारे। लगभग १५ दिनों के पश्चात् श्री पुगलियाजी पुन. आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए एवं निवेदन करने लगे "गुरुदेव, विधि तो आपश्री ने अत्यन्त सुगम एवं श्रेष्ठ बताई किन्तु मेरी माताजी का झगडना बन्द नही हुआ है।"

आचार्यश्री ने कुछ गम्भीर स्वर में पूछा—"क्यो, आपने सामायिक करना प्रारम्भ नही किया ?" "नही गुरुदेव सामायिक तो मैं प्रतिदिन करता हूँ, किन्तु आपश्री द्वारा उपदर्शित विधि मे इतना तल्लीन हो जाता हूँ कि समय का खयाल ही नही रहता है। मैं स्वाध्याय करता ही रहता हूँ। तब माताजी चिल्लाती है कि "बडा साधु बन गया है। मुँह बाँधे ही रहेगा कि दुकानदारी भी सम्भालेगा ? या तो सामायिक करता ही नही था और करने लगा तो बस समय का भी ध्यान नही। घर गृहस्थी भी तो पीछे लगी है, उसे भी तो देखना पड़ेगा। गुरुदेव, यह एक नई समस्या खड़ी हो गई है।"

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—"माताजी का यह कथन भी किसी दृष्टि से ठीक है, क्योकि आपके पीछे कुछ सासारिक कर्त्तव्य जुडे हुए है। यदि आपका जीवन पूर्ण साधना को समर्पित होता है तो आप घण्टो साधना मे रमते रहते, कोई वाधा नही रहती, किन्तु चूँकि अभी आपके साथ पारिवारिक दायित्व जुडे हुए है, अतः आपके सम्पूर्ण कार्यक्रम व्यवस्थित होने चाहिए। इस समस्या के हल का सहज उपाय यह है कि आप सामायिक मे बैठने के काल को थोडा जल्दी से प्रारम्भ करे। यदि आप सात बजे बैठते है तो उसे साढे छ: वजे कर दीजिए और इसके लिए अपने उठने का समय भी कुछ वदल दीजिए। अर्थात् यदि आप ५ वजे उठते हो तो उससे आधा घण्टा पूर्व उठिए ताकि दैनिक आवश्यक कार्यो मे, आपके सामायिक में आधा घण्टा अधिक

इस प्रकार आचार्यश्री ने शुद्ध श्रद्धा के बीज-वपन के साथ बोका परिवार की प्रमुख सदस्या के जीवन को एक सात्त्विक मोड़ दिया। अनन्तर श्री धर्मेश प्रकाशजी एवं श्रीमती जयश्री बाई की दीक्षा स्थानीय गांधी मैदान के विशाल आंगन में हजारों की जनमेदनी के समक्ष सम्पन्न हुई। श्री धर्मेश प्रकाशजी अपनी मां के इकलौते लाड़ले थे। लाखों की सम्पत्ति के स्वामी तथा मद्रास में सोना-चांदी एवं फाइनेन्स का व्यवसाय करते थे, किन्तु विरक्ति के भाव उठने के पश्चात् कौन तो मां और कौन सी सम्पत्ति ? सभी आसक्ति के बन्धन टूट जाते हैं और यही स्थिति थी श्री धर्मेश प्रकाशजी की। उत्कृष्ट वैराग्य-भाव के साथ संसार के समस्त आकर्षणों से विरक्त हो, साधना-पथ स्वीकार कर लिया। युवा दम्पत्ति को साधना-पथ का सबल प्रदान कर आचार्य देव अस्वस्थता के कारण कुछ समय तक रायपुर ही विराजे। यहाँ होली चातुर्मासी पर ब्यावर, बीकानेर, मन्दसौर, बालोद, कैलिया, दुर्ग आदि क्षेत्रों के श्रीसंघ आगामी वर्षावास की विनति हेतु उपस्थित हुए। चूँकि बीकानेर में विराजित वृद्ध संतों का अत्यधिक आग्रह था कि आचार्यश्री के आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् अभी तक हमें दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, अतः यथा शीघ्र आचार्यश्री को इधर पधार कर हमें दर्शन-लाभ देना चाहिये। किन्तु आचार्यश्री की स्वास्थ्य विषयक प्रतिकूलता तथा दुर्ग संघ का आग्रह कि इधर से प्रस्थान के पश्चात् पुनः इधर आना कठिन है, को दृष्टिगत रखते हुए आगामी सम्वत् २०२८ के वर्षावास का स्वर्णावसर दुर्ग श्रीसंघ को उपलब्ध हुआ।

होली चातुर्मास तथा महावीर जयन्ती के सफल समायोजन के पश्चात् आचार्य देव रायपुर से प्रस्थान कर मार्गवर्ती भिलाई आदि क्षेत्रों को अपनी पीयूष धारा से पावन करते हुए वर्षावास हेतु दुर्ग पधार गए।

दुर्ग वर्षावास : उल्लेखनीय प्रसंग

दुर्ग का वर्षावास भी दैनिक कार्यक्रमों के अनुसार त्याग, प्रत्याख्यान, साधना एवं धार्मिक-सामाजिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से सफल वर्षावासों की तरह ही भव्य एवं सार्थक कार्यक्रमों से उद्दीप्त एवं यशस्वी रहा। दुर्ग वर्षावास के प्रमुख आकर्षणों में एक था दो विरक्त आत्माओं का दीक्षा महोत्सव। तब श्री दुर्ग की बालब्रह्मचारिणी सरला कुमारी सांड सुपुत्री श्री सोभागमलजी सांड, बालाघाट तथा इसरी की सुश्री बालब्रह्मचारिणी शकुन्तला कुमारी सालेचा, सुपुत्री श्री भंवरलालजी सालेचा, बीदर। दोनों मुमुक्षुओं ने यौवन की देहली पर पैर रखते ही आत्म-साधना हेतु संयम मार्ग में चरण बढ़ा दिये। इनकी दीक्षाएँ क्रमशः वर्षावास के मध्य तथा वर्षावास समापन पर हजारों की जनमेदिनी के समक्ष हुईं।

रहा, "मैं आपश्री मे ही सम्पूर्ण स्थानकवासी सघ (समाज) के नेतृत्व की क्षमता पाता हूँ। आपकी उज्ज्वल चरित्र-निष्ठा एवं अलौकिक ज्ञान-गरिमा सर्वथा उसके योग्य है और यह निवेदन पूर्व मे भी आपश्री के चरणो में कर चुका हूँ। अत आपश्री एक सम्प्रदाय विशेष के ही न बनकर सम्पूर्ण श्रमण सघ का नेतृत्व अपनी सशक्त भुजाओ पर आरोपित करे।"

आचार्य देव ने सहज स्मिति के साथ समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा, "मैं समय-समय पर कहता रहता हूँ कि समाज का सगठन किसी ठोस धरातल पर ही स्थायी रहता है। जो उद्देश्य बनाया जाता है, उस पर दृढता के साथ चला जाय, तो एकत्व की स्थिति बनते देर नही लगती।"

सादडी साधु-सम्मेलन मे सर्वानुमति से एक उद्देश्य कायम किया गया था कि एक आचार्य हो और उसी के अधीन शिष्य-परम्परा, प्रायश्चित, विहार आदि सभी कार्य रहे और समाज का जो शिथिल वायुमण्डल है, उसका भी परिमार्जन करे, लेकिन इसको स्वीकार करके भी जब अमली रूप देने का प्रसग आया, तो वहुत से साधको की स्थिति डावाडोल होने लगी। साधक एक रूप मे पालन करने से पीछे हटे और इस प्रकार अन्यान्य शिथिल प्रवृत्तियो को भी प्रश्रय मिलता रहा। तब स्व० आचार्यश्री ने आखिर यह भी आवाज बुलद की कि स्वीकृत उद्देश्य को सारा समाज अमली रूप दे देवे तो बहुत ही अच्छा है। यदि सारा समाज अमली रूप न देवे तो जो भी अमली रूप देना चाहे, दे। मैं अमली रूप देने को तैयार हूँ। तदनुसार उसमे जितने भी तैयार हुए, उतने मे उद्देश्य को अमली रूप दे दिया गया, जिसको चतुर्विध सघ देख रहा है। मुझे तो बीच मे माध्यम वना दिया गया है। मुणोतजी ने यह भी कहा कि सारे स्थानकवासी समाज का नेतृत्व आप सभाले। इस पर मेरा कहना है कि मुझे तो अपना या अपनी आत्मा का नेतृत्व करना है। पाट-परम्परा व सम्प्रदाय की जो वात कही गई, वह जैसा आप समझते हैं, वैसी नही है। सम्प्रदाय कहाँ नही है। हाँ सम्प्रदायवाद क्या है? इसको शाति के क्षणो मे भली प्रकार समझने की आवश्यकता है। आप नाम के पीछे न जाइये। आज का युग वैज्ञानिक युग है। रेडियो किसने वनाया? क्रयकर्ता केवल लेवल व नाम के पीछे नही पडता, लेकिन गुणो को देखकर आवश्यकतानुसार क्रय कर लेता है।

भारत भूमि हमेशा क्रान्तिकारी भूमि रही है। यहाँ समय-समय पर क्रान्तिकारी कदम उठते रहे है। पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म० सा० ने भी क्रान्तिकारी कदम उठाया, नाम मे अभिप्राय नही। काम और गुणो के पीछे मनुष्य को चलना है। जहाँ भी स्वीकृत उद्देश्य के अमली रूप से एकत्व की पूर्ति हो रही हो, उसके पीछे कटिबद्ध होकर आगे बढने की आवश्यकता है। उद्देश्य के प्रतिकूल कही भी प्रवृत्ति हो तो उसके साथ न रहे। स्व० आचार्यश्री ने अपने

समय समुचित समाधान प्रस्तुत किया। इससे सम्पूर्ण समाज में आपश्री की विद्वता के प्रति समादर का भाव निर्मित हो गया।

समाज के कुछ वरिष्ठ सदस्यों ने सामाजिक एवं साम्प्रदायिक परिप्रेक्ष्य में श्रमण संघ से सम्बन्धित प्रश्न, जिन्हें लेकर यहाँ बहुत व्यक्तियों के मानस में कुछ भ्रान्तियाँ अथवा मिथ्या अवधारणाएँ निर्मित हो चुकी थीं, भी किये। आचार्यश्री ने इन सभी प्रश्नों का सशक्त एवं सचोट उत्तर देते हुए, श्रमण संघ का निर्माण क्यों हुआ, इसका उद्देश्य तथा विधेय क्या था, उसमें किस प्रकार से स्वच्छन्दता एवं विकृतियों का प्रवेश हुआ, उनके उत्तरदायी कौन ठहरते हैं, उनके परिष्कार के लिये क्या-क्या प्रयत्न किये गये, स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब ने मानापमान की चिन्ता नहीं करते हुए श्रमण संघ को सुदृढ़ एवं व्यवस्थित रूप देने में कितना आत्म योग दिया, विघटनकारी तत्त्वों ने किस प्रकार श्रमण मर्यादाओं को एक ओर छोड़कर श्रमण संघ से विलग होने को बाध्य कर दिया, विलग होने के पश्चात् भी वास्तविक सैद्धान्तिक श्रमण संघ का रूप कहाँ देखा जा रहा है आदि विषयों की विशद विवेचना कर भ्रान्तियों को निर्मूल किया।

नागपुर में मन्दसौर, मद्रास तथा अमरावती संघ अपने क्षेत्रों को पावन करने हेतु विनतियाँ लेकर उपस्थित हुए। यद्यपि आचार्य देव का सीधा इन्दौर की ओर बढ़ने का विचार चल रहा था, किन्तु अमरावती संघ का जिसमें प्रायः सभी जैन सम्प्रदायों के सदस्य थे अत्यधिक आग्रह रहा। उनके शब्द तो यहाँ तक थे कि "यह श्रमण संघ का क्षेत्र है, इसीलिये आप छोड़ कर जाना चाहते हैं ? किन्तु अब हमने उस प्रस्ताव की उपेक्षा कर दी है, जिसमें यह पारित किया गया था कि श्रमण संघ से बाहर के सन्तों की विनती नहीं करनी है।" अन्त में आचार्य देव को अमरावती स्पर्शने हेतु कुछ आश्वासन देना पड़ा और नागपुर में स्वल्प दिनों में ही अपनी विद्वत्ता एवं चारित्रिक गरिमा का अप्रतिम प्रभाव जन-जन के हृदय में अंकित कर आपश्री ने अमरावती के लिए प्रस्थान कर दिया।

महाराजश्री, सामायिक का ४८ मिनिट का काल पहाड़-सा लगता है।

नागपुर के सुप्रसिद्ध [illegible] सेठ स्वर्गीय श्री [illegible] [illegible] के सुपुत्र श्री [illegible] [illegible]। नागपुर में [illegible] जिज्ञासाओं का समाधान नहीं [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] जिज्ञासा [illegible]

का सयम लेने की भावना है, उन्हे आप शेखे काल मे दीक्षा देकर चातुर्मास हेतु बडी सादड़ी पधारने का कष्ट करे। इसके साथ एक बात यहा बैठे सभी सघो से अर्ज करना चाहता हू कि वर्तमान की विनतियो को देखकर मुझे स्थिति कुछ विस्फोटक लग रही है। हो सकता है कि कुछ तनाव बढे। किन्तु मेरा निवेदन है कि चातुर्मास तो किसी एक जगह ही होगा। अच्छा तो यह होगा कि हम सब अपनी-अपनी भावना प्रदर्शित कर आचार्य देव पर ही छोड दे कि वे जैसा उचित समझे, निर्णय ले सकते है।"

इसी प्रकार ब्यावर सघ की ओर से श्री मोहनलालजी मूथा का आग्रह था कि "स्वर्गीय आचार्यदेव श्री गणेशलाल जी म० सा० की उत्कृष्ट भावना थी ब्यावर पधारने की और इसके लिए उन्होने रुग्णावस्था मे भी उदयपुर से विहार करा दिया था, किन्तु हमारे दुर्भाग्य के कारण आचार्य श्री के शरीर ने साथ नही दिया और आचार्य देव को उदयपुर मे ही स्थिरवास विराजना पडा। अब स्वर्गीय आचार्य देव की उन भावनाओ की पूर्ति करना आपका कर्तव्य है। इसके लिए हम विगत कई वर्षो से निवेदन करते आ रहे है, किन्तु आप भी सुदूर छत्तीसगढ प्रान्त मे पधार गये और हमारी विनतिया झोली की झोली मे पडी रह गई। अब समय आ गया है कि हमारी माग पूरी हो और चातुर्मास का स्वर्णावसर ब्यावर नगर को मिले।"

बीकानेर सघ की ओर से अ भा साधुमार्गी जैन सघ के सहमत्री श्री सुन्दरलाल जी तातेड ने बडे सशक्त शब्दो मे निवेदन किया "अन्य सभी विनती करने वाले श्रावक सघो का मै स्वागत करता हूँ। साथ ही यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि मैं केवल बीकानेर श्रावक सघ की ओर से ही विनती प्रस्तुत नही कर रहा हूँ मेरी विनती चतुर्विध सघ की विनती है। आचार्य भगवन् को ज्ञात है कि बीकानेर मे विराजित महास्थविर श्री पन्नालाल जी म. सा , महासतीजी थी चम्पाकु वर जी म सा आप श्री के दर्शनो की प्यास मन-की-मन मे लेकर स्वर्गवासी हो गये। अब भी वहाँ विराजित स्थविर श्री वक्तावरमल जी म सा (बाबाजी म. सा), श्री सूरजमल जी म सा आदि महान् सत तथा सतियो जी म. सा दर्शनो के लिये अत्यन्त लालायित होकर निवेदन करवा रहे है कि आयुष्य का कोई विश्वास नही है। हम एक बार अपने अष्टमपाट के आचार्य श्री का दर्शन कर लेना चाहते है। अत आप श्री पर यह दायित्व आ जाता है कि उन वृद्ध महापुरुषो की पुकार को पूरी करे। बीकानेर चातुर्मास की माग हमारे श्रावक सघ की माग तो है ही किन्तु साधु-साध्वियो की भी तीव्र भावना है। अत आप श्री को आगामी वर्षावास बीकानेर के लिए घोषित करना चाहिए।"

जावरा सघ से गेन्दालाल जी नाहर का तर्क था कि "आप श्री ने चार वर्ष पूर्व जो धर्मपाल जैन का बीजारोपण किया है, उसके सिचन की नितान्त

कुआ खोदने के समान है। केवल सामायिक करने बैठें उसी समय तक सीमित मत रखिये। सन्ध्या शयन के पूर्व ही दृढ़ संकल्प करिये कि मुझे इतने बजे निश्चित उठ जाना है और एक घण्टा नियमित रूप से साधना करनी है। आप देखेंगे कि आपका मन सजग होकर आपको निश्चित समय पर जगा देगा। संकल्पों का प्रभाव अचूक होता है। निश्चित समय पर उठकर आँख बन्द रखे ही ध्यान मुद्रा में ग्यारह बार नमस्कार महामंत्र का स्मरण करिये। जिससे जागृति के साथ ही जीवन में प्रभु स्मरण रूप मंगल का प्रवेश हो। इसके पश्चात् बिछौने का परित्याग कर जिस दिशा में धर्माचार्य विचर रहे हों, उस ओर तीन बार परिपूर्ण आवर्तन आदि विधि के साथ उठ-बैठकर तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करिये, जिससे शारीरिक अवयवों में जो कुछ आलस्य होगा तो दूर हो जायेगा। अनन्तर पारिवारिक सदस्यों में जो भी अपने से बड़े हों, उन्हें चरण छूकर प्रणाम कीजिए और उनका प्रसन्न आशीर्वाद प्राप्त कीजिए।

अनन्तर आवश्यक हो तो, शौचादि से निवृत्त हो यह देख लीजिए कि परिवार में ऐसे कोई रुग्ण अथवा वृद्ध सदस्य तो नहीं है, जिनकी सेवा का दायित्व आप पर हो। यदि वैसा हो, तो उनके साधनों को जुटाकर अथवा उनकी समुचित व्यवस्था कर निश्चिन्तता पूर्वक कम-से-कम पचास मिनिट का अवकाश लेकर सामायिक साधना में बैठिए। उस समय व्यवसाय आदि सांसारिक कार्यों से मन को एकदम मुक्त रखिये। इसके लिए अपने सामायिक के काल को तीन भागों में विभक्त कर दीजिये। पहला १० मिनट, दूसरा १५ मिनट तथा तीसरा २५ मिनट। प्रथम १० मिनट में मन की एकाग्रता को साधने के लिए क्रमशः अनानुपूर्वी का अभ्यास करिए। (अनानुपूर्वी को अपनी अंगुलियों पर ही गिनने की विधि ऊपर बताई गई) इसके द्वारा मन के भटकाव रुकेंगे और उसे एक व्यवस्थित दिशा प्राप्त होगी।

अगले १५ मिनिट का समय अपनी दैनिक चर्या के अवलोकन में लगाइये। इसमें विगत दिवस की ध्यान से उठने के पश्चात् तथा पुनः ध्यान में प्रवेश के समय तक के चौबीस घण्टों की गतिविधियों का सामान्य तौर पर चिन्तन कर जाइये। उस चिन्तन क्रम में सोचिये कि गत दिवस मेरा कैसा बीता? [illegible] के अनुसार आचरण करता हुआ [illegible] हुई? किसी पारिवारिक सदस्य अथवा किसी मिलने-जुलने वाले के साथ [illegible] का व्यवहार तो नहीं किया, शौचादि के माध्यम से किसी के प्राणों का [illegible] तो नहीं हुआ? [illegible] दैनिक कार्यों में कहीं [illegible] तो नहीं हुई। यदि ऐसा [illegible] हुआ तो उसके प्रतिकार का [illegible] करते [illegible], [illegible] होने देने का [illegible] [illegible] प्रति होने वाली त्रुटियों में से [illegible] [illegible] [illegible] से दूर [illegible]।

अगले २५ मिनिट में किसी [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible]

इसी प्रकार धरणगाँव, पाठरकवड़ा, मद्रास, बैंगलोर एवं रतलाम आदि संघों ने भी अपने-अपने क्षेत्रों मे चातुर्मास हेतु विनतिया प्रस्तुत की। अमरावती सघ अभी तक मौन था। यद्यपि स्थानीय युवको एवं महिलाओ मे अन्दर-ही-अन्दर भाव जागृत हो रहे थे, किन्तु वे अपने सघ की स्थिति का गम्भीरतापूर्वक अवलोकन कर रहे थे और "सघ श्रमण सघीयनियम" श्रमण सघ के बाहर वालो की चातुर्मास हेतु विनती नही करना।" में बन्धा हुआ होने से विनती नही कर पा रहा था।

आचार्य देव ने मारवाड़ के सुदूरवर्ती क्षेत्रों को यह कह आश्वस्त किया कि अब मौसम गर्मी का आ रहा है और मैं इतना दूर पहुँच सकूँ ऐसी स्थिति में नही हू। बडावदा तथा मन्दसौर संघ की माग भी किसी दृष्टि से विचारणीय है, किन्तु वर्तमान की स्थिति को देखते हुए एक-एक व्यक्ति की दीक्षा को लेकर चातुर्मास की स्थिति बनना कठिन है। दीक्षार्थियो के अभिभावकों को चाहिए कि वे शासन की हित-कामना एव गौरव वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए किसी एक स्थान का चयन कर ले जहा सभी दीक्षाए सम्पन्न हो सके।

रहा प्रश्न आगामी चातुर्मास के लिए तो इस विषय मे चिन्तन चल रहा है कि यद्यपि खानदेश, आकोला तथा बरार, हिंगनघाट आदि क्षेत्रों का भी पूरा आग्रह है, किन्तु बीकानेर मे विराजित वृद्ध सन्त महापुरुषो के सकेतो को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक-सा लगता है कि इस क्षेत्र से अब यथावसर शीघ्र निकला जाए। मैं बता चुका हू कि इतनी लम्बी दूर इस वर्ष पहुँचना कठिन है, अब इस वर्ष रखे जाने वाले सभी आगारो के साथ तथा महाराष्ट्र प्रान्त से बाहर निकल जाने की स्थिति बन जाए, तो सूखे समाधे स २०२५ का वर्षावास "बडी सादड़ी" करने का भाव है।

आचार्य देव के श्री मुख से यह अप्रत्याशित घोषणा सुनते ही बडी सादडी सघ ने तो सम्पूर्ण भवन को जय-नादो से गु जा दिया। उनके हृदय बल्लियो उछलने लगे, किन्तु अन्य सघो को विशेषकर मन्दसौर सघ और उसमे भी सुश्री कुसुमलता एवं सुश्री प्रेमलता की अश्रु-कणो मे छलकती मनोव्यथा तो दर्शनीय ही थी। दोनों वालाओ की भाव-विभोर अवस्था समीपस्थ सैकड़ो व्यक्तियो की आखो को सजल वना रही थी। सम्पूर्ण सघ निराश एव खिन्नचित्त हो गया था, किन्तु अनुशासित सघ की गौरवपूर्ण मर्यादाओ को दृष्टिगत रखते हुए अपने स्थान को लौट आया।

युवावग में अनूठा जोश :

ज्योंही आचार्य देव के वर्षावास की घोषणा हुई कि अमरावती के युवा-वर्ग एव महिला समाज मे भूचाल सा आ गया। युवा चेतना के प्रतीक युवा

लग जाने पर भी व्यवधान उपस्थित नहीं होगा और माताजी का झगड़ना अपने आप बन्द हो जावेगा।"

श्री पु गनिराजी अत्यधिक सतुष्ट होते हुए कुछ तत्त्व चर्चा करके लौट गये।

आचार्य देव का हिंगनघाट मे लगभग सात दिन विराजना हुआ। इस प्रवास काल मे आचार्य देव के चरित्र एवं अगाध ज्ञान की अपूर्व छाप जन-जन पर पड़ी। परिणामत. आपके विश्रुत पाण्डित्य एव सयमीय मर्यादाओ से प्रभावित होकर हिंगनघाट सघ ने आगामी वर्षावास हिंगनघाट करने की आग्रहपूर्ण विनती की। अपनी विनती पर तर्क प्रस्तुत करते हुए स्थानीय बुद्धिजीवियो तथा समाज-प्रमुखो ने निवेदन किया कि "छत्तीसगढ को आपश्री ने तीन-तीन वर्ष दे दिए तो क्या विदर्भ को दो वर्ष का भी अधिकार नहीं है? आपश्री को दो वर्षावास विदर्भ मे और पहला वर्षावास हिंगनघाट मे व्यतीत करना होगा।"

आचार्य देव ने उन्हे समझाया, "होली चौमासी के पूर्व कहीं का भी आश्वासन नहीं दिया जा सकता है। आपकी विनती मेरी झोली मे है" और वहा से प्रस्थान कर वर्धा आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए आचार्य देव अमरावती पधारे। अमरावती मे आचार्य देव के प्रवचनो मे श्रोताओ की उपस्थिति अमरावती के इतिहास मे अभूतपूर्व होने लगी थी।

अमरावती मे अन्यान्य तात्त्विक चर्चाओ के साथ सामाजिक उत्थान धार्मिक उन्नति एव श्रमण सघीय समस्याओ के सदर्भ मे श्री जवाहरलालजी मुणोत ने आचार्य देव से उनके विचारो के आधार पर चर्चा की। सामाजिक एव आध्यात्मिक उन्नति हेतु आचार्य देव ने "समता-दर्शन" का सक्षिप्त प्रारूप मुणोतजी के समक्ष रखा, जिसे देख कर मुणोतजी को अपार प्रसन्नता के साथ [illegible] भी हुआ। प्रसन्नता इस बात की थी कि आपश्री की ओर से समाज [illegible] नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र [illegible] वैचारिक [illegible] है। [illegible] अनुयायियो की [illegible] है। [illegible] नहीं है। किन्तु [illegible] है कि [illegible] [illegible]

[illegible]

इसी प्रकार धरणगाँव, पाठरकवड़ा, मद्रास, बैंगलोर एवं रतलाम आदि संघो ने भी अपने-अपने क्षेत्रो मे चातुर्मास हेतु विनतिया प्रस्तुत की । अमरावती सघ अभी तक मौन था । यद्यपि स्थानीय युवको एव महिलाओ मे अन्दर-ही-अन्दर भाव जागृत हो रहे थे, किन्तु वे अपने संघ की स्थिति का गम्भीरतापूर्वक अवलोकन कर रहे थे और "सघ श्रमण सघीयनियम" श्रमण सघ के बाहर वालो की चातुर्मास हेतु विनती नही करना ।" में बन्धा हुआ होने से विनती नही कर पा रहा था ।

आचार्य देव ने मारवाड़ के सुदूरवर्ती क्षेत्रो को यह कह आश्वस्त किया कि अब मौसम गर्मी का आ रहा है और मैं इतना दूर पहुँच सकूँ ऐसी स्थिति मे नही हू । बडावदा तथा मन्दसौर संघ की मांग भी किसी दृष्टि से विचारणीय है, किन्तु वर्तमान की स्थिति को देखते हुए एक-एक व्यक्ति की दीक्षा को लेकर चातुर्मास की स्थिति बनना कठिन है । दीक्षार्थियो के अभिभावको को चाहिए कि वे शासन की हित-कामना एव गौरव वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए किसी एक स्थान का चयन कर लें जहां सभी दीक्षाएं सम्पन्न हो सकें ।

रहा प्रश्न आगामी चातुर्मास के लिए तो इस विषय में चिन्तन चल रहा है कि यद्यपि खानदेश, आकोला तथा बरार, हिंगनघाट आदि क्षेत्रो का भी पूरा आग्रह है, किन्तु बीकानेर मे विराजित वृद्ध सन्त महापुरुषो के सकेतो को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक-सा लगता है कि इस क्षेत्र से अब यथावसर शीघ्र निकला जाए । मैं बता चुका हूं कि इतनी लम्बी दूर इस वर्ष पहुँचना कठिन है, अब इस वर्ष रखे जाने वाले सभी आगारो के साथ तथा महाराष्ट्र प्रान्त से बाहर निकल जाने की स्थिति बन जाए, तो सूखे समाधे स. २०२५ का वर्षावास "बड़ी सादडी" करने का भाव है ।

आचार्य देव के श्री मुख से यह अप्रत्याशित घोषणा सुनते ही बडी सादडी सघ ने तो सम्पूर्ण भवन को जय-नादों से गु जा दिया । उनके हृदय बल्लियो उछलने लगे, किन्तु अन्य सघो को विशेषकर मन्दसौर सघ और उसमे भी सुश्री कुसुमलता एव सुश्री प्रेमलता की अश्रु-कणो मे छलकती मनोव्यथा तो दर्शनीय ही थी । दोनों बालाओ की भाव-विभोर अवस्था समीपस्थ सैकड़ो व्यक्तियो की आखो को सजल बना रही थी । सम्पूर्ण संघ निराश एवं खिन्नचित्त हो गया था, किन्तु अनुशासित सघ की गौरवपूर्ण मर्यादाओ को दृष्टिगत रखते हुए अपने स्थान को लौट आया ।

युवावग में अनूठा जोश :

ज्योंही आचार्य देव के वर्षावास की घोषणा हुई कि अमरावती के युवावर्ग एवं महिला समाज मे भूचाल सा आ गया । युवा चेतना के प्रतीक युवा

जीवन में स्वीकृत उद्देश्य को एवं उसमें कुछ-कुछ विशेष नियमों को अमली रूप दे दिया। उसके अनुसार अन्यत्र भी अमली रूप का विश्वास हो जाय, तो मैं कहाँ दूर हूँ ?

आगामी वर्षावास हेतु सात्विक संघर्ष

चूँकि आचार्य देव के इस अमरावती प्रवास काल में ही होली चातुर्मासी का प्रसंग आ गया था, अतः आगामी चातुर्मास की विनती हेतु अनेक संघों का आगमन हुआ। उसमें मुख्यतया बड़ी सादड़ी, बड़ावदा, ब्यावर, बीकानेर, हिंगनघाट, रतलाम, आकोला, जावरा, पाटन कवठा, मद्रास, बेंगलोर आदि का आगामी वर्षावास अपने-अपने क्षेत्रों में करवाने का अत्यधिक आग्रह रहा। चातुर्मास की विनतियों का तत्कालीन वातावरण इतना भावपूर्ण तथा हृदय-द्रावक था कि उसे अंकित करने का लोभ संवृत नहीं कर पा रहा हूँ। प्रत्येक संघ के तर्क अपने आप में सशक्त (भारी) प्रतीत होते थे।

बड़ावदा निवासी श्री सौभाग्यमलजी नाहर ने अपना सशक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा - "चातुर्मास का यह अवसर हमें मिलना चाहिए, क्योंकि मैं एक भेंट श्री मंगलाकुमारीजी को तो श्री चरणों में समर्पित कर चुका हूँ और दूसरी सुपुत्री श्रीकान्ता भी विगत कुछ वर्षों से दीक्षा लेने को आतुर हो रही है। यदि आप बड़ावदा में चातुर्मास फरमाते हैं, तो मैं इस वर्षावास में उसे भी श्रीचरणों में समर्पित करने को तत्पर हूँ।"

और इस प्रकार तर्क प्रस्तुत करते हुए मंदसौर निवासी श्री चांदमलजी फुलाल की सुपुत्रियाँ वैराग्यवती सुश्री कुसुमलता एवं सुश्री प्रेमलता ने तो अश्रुपूरित नयनों से सम्पूर्ण माहौल को ही भाव विह्वल बना दिया। उनका कथन था कि 'विगत कई वर्षों से हमारा दीक्षा लेने का विचार चल रहा था, किन्तु पिताजी आज्ञा नहीं दे रहे थे। अब पिताजी ने हमें दीक्षा लेने हेतु अनुमति प्रदान कर दी है, अतः अब आप भी अपना आगामी वर्षावास मन्दसौर के लिए फरमाकर हम बालाओं का उद्धार करें। शास्त्रों की भी यही आज्ञा है कि दीक्षा जैसे उपकार के कार्य के लिए निर्धारित किये चातुर्मास को भी बदला जा सकता है। अतः इस बार का चातुर्मास आपश्री को मन्दसौर ही करना होगा और हमारा उद्धार करना होगा।'

बड़ी सादड़ी संघ के मंत्री श्री सोहनलाल जी ढलावत अपनी बुलन्द ध्वनि-तरंगों से कहने लगे, 'बड़ी सादड़ी में आचार्य श्री के चातुर्मास को हुए लगभग ३१ वर्ष हो चुके हैं। यद्यपि वैरागिनी बहनें हमारे यहाँ नहीं हैं, किन्तु बड़ी सादड़ी संघ कभी पीछे नहीं रहा है। हम भी भविष्य में कुछ-न-कुछ भेंट अवश्य प्रस्तुत करेंगे। बड़ावदा निवासी एवं मन्दसौर निवासी जिन बहिनों

श्रीमती मुणोत की आँखो से गिरते हुए मुक्ताबिन्दुओ को देखकर वहाँ खडे अनेक व्यक्ति भावविह्वल हो गए। स्वय मुणोत जी ने आचार्य श्री के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—"मुझे आपश्री के ज्ञान, दर्शन एव चारित्र पर अगाध श्रद्धा है। मैं मानता हू कि वर्तमान परिस्थितियो मे यदि कही प्रकाश नजर आता है तो वह आप ही के पास, पर मैं नियम से बधा हू।"

श्रीमती मुणोत भावपूर्ण शब्दो मे आग्रह करती ही रही कि त्याग-पत्र देकर इसी क्षण आप नियमो से मुक्त हो सकते है, मै किसी भी हालत मे आचार्य श्री को अमरावती चातुर्मास किये बिना नही जाने दू गी। आप भाई लोग पीछे रहे तो रहे हमारा महिला मण्डल किन्ही नियमो मे नही बधा हुआ है। हम महिलाए सब कुछ कर लेगी। इस प्रकार उन्होने सत्याग्रह ही प्रारभ कर दिया।

युवावर्ग के होशपूर्ण सात्विक जोश एव उत्साह तथा महिला-मण्डल की सक्रियता को देखकर स्थानीय सघ असमजस मे पड गया कि इन युवको को सम्भाल पाना बहुत कठिन है और इन्होने यदि चातुर्मास स्वीकृत करवा लिया तो क्या स्थिति बनेगी। इसी स्थिति की विचारणा हेतु स्थानीय सघ की भी बैठको पर बैठके होने लगी। अन्तिम निर्णय यही रहा कि आचार्य देव का आगे बढ जाना उचित नही रहेगा, अन्यथा सम्पूर्ण युवावर्ग क्रान्तिकारी हो जाएगा। अत· आचार्य श्री जी के चरणो मे उपस्थित होकर पुन· चातुर्मास यही करने हेतु निवेदन करना चाहिए।

अत: युवावर्ग के अधिनेता, महिला मण्डल की वरिष्ठ सदस्या एव श्रावक सघ के प्रमुख अधिकारीगण आचार्यदेव के चरणो मे उपस्थित हुए तथा साश्रु-नयनों से चातुर्मास की भिक्षा मागने लगे—"गुरुदेव, इस स्थिति मे हमारे सघ को छोड़कर आप बडी सादडी पधार गये, तो हमारी आत्मा को बहुत चोट पहुँचेगी तथा सघ मे भी भेद की स्थिति का निर्माण हो जाएगा। अत. आपश्री रखे गए आगारो का उपयोग करके यह चातुर्मास अमरावती ही फरमाने की कृपा करे।"

आचार्य देव ने कुछ गभीर स्वर मे कहा—"यद्यपि रखे गये आगारो की दृष्टि से मैं चातुर्मास-क्षेत्र का परिवर्तन कर सकता हू किन्तु बिना ठोस कारण के मैं आगारो का प्रयोग नही करना चाहता हू।"

"गुरुदेव, आपका कथन यथार्थ है। किन्तु हमारे यहां के युवको की आन्तरिक तड़फन तथा श्री जवाहरलाल जी मुणोत की धर्मपत्नी का अनशनात्मक सत्याग्रह क्या ठोस कारण नही है? इसके अतिरिक्त भी यदि हम बडी सादडी सघ से चातुर्मास की भिक्षा माग कर ले आए, तव तो आप श्री को कोई आपत्ति नही होना चाहिए।" प्रमुख श्रावक ने आग्रह किया।

आवश्यकता है और उसके लिए जावरा क्षेत्र मध्य में पड़ता है। अतः आपका यह चातुर्मास जावरा में होना चाहिए।

मेवाड़, मालवा एवं मारवाड़ के संघों के भावी वर्षों के उपरान्त क्रम आता है, महाराष्ट्र, खानदेश तथा बरार का। खानदेश आकोला निवासी श्री मानकचन्द जी कोचर का निवेदन था, "मैं आपसे क्या निवेदन करूँ? आपको ज्ञात होगा कि प्रति वादिमान मर्दक स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं शान्त क्रान्ति के अग्रदूत आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की इस खानदेश पर कितनी कृपा रही है। विगत पैंतालीस वर्षों की लम्बी अवधि में आप हमें भूल गये और हम आपको। इतने वर्षों तक हमें यह भी पता नहीं था कि आचार्य श्री जवाहरलाल के पाट पर इतने उत्कृष्ट साधनारत शान्तिकारी आचार्यप्रवर विराजमान रहे हैं। आज पहली बार मैंने आप श्री के दर्शन किए हैं। मेरे भाई साहब श्री मोतीलाल जी म. सा. भी आपके इसी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। मेरा इस संघ से बहुत पुराना सम्बन्ध है। अब मैं प्रार्थना करना चाहूँगा कि मेवाड़, मालवा एवं मारवाड़ की भूमि तो चरणरज से पावन होती ही रहती है। अब आप इस वर्ष खानदेश आकोला में वर्षावास करके अपने पूर्वाचार्यों द्वारा लगाए बगीचे को सरसब्ज करने की कृपा करें।

एक विशेष बात और निवेदन कर देना चाहता हूँ कि अभी तक आप श्री का आकोला पदार्पण नहीं हुआ है। उसके पूर्व ही आप श्री के निर्मल चरित्र की सौरभ वहाँ पहुँच चुकी है। हमारा परिवार [illegible] कह सकते हैं कि [illegible] श्री चरणों में कितनी प्रेम [illegible] उत्कण्ठित हुआ है; सम्भवतः इतनी बड़ी संख्या में अभी तक आप कोई संघ नहीं होगा। अतः हमारी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान देकर आप श्री यह वर्षावास आकोला के लिए [illegible] फरमाने की कृपा करें।

[illegible] श्री [illegible] कोचर की [illegible] प्रार्थना थी। [illegible] आप श्री से [illegible] निवेदन कर चुके हैं कि हम [illegible] मेवाड़ [illegible] की भूमि तो [illegible] हैं। [illegible] बरार प्रान्त [illegible] है। [illegible] नहीं कि [illegible]

सघ मे चातुर्मास अपने यहा कराने की भावना बना कर एक शिष्टमण्डल चैत्र कृष्णा १० को बडी सादडी सघ के समक्ष चातुर्मास की माग लेकर उपस्थित हुआ । इस पर बडी सादडी श्री संघ की आमसभा हुई । सर्वानुमति से चातुर्मास परिवर्तन की माग के लिए क्षमा प्रकट कर शिष्टमण्डल को विदाई दी ।

लेकिन पुन. तारीख २८–३–६८ को इस विषयक अर्थात् अमरावती चातुर्मास के लिए शिष्टमण्डल के सदस्य जिसमे श्री अ भा. साधुमार्गी जैन सघ के अध्यक्ष महोदय श्री गणपतराज जी बोहरा व उदयपुर सघ के अहमदाबाद निवासी श्री बोरदिया जी सा व अमरावती सघ के पाँच सदस्य बडी सादडी पधारे और चातुर्मास के लिए पुन. अमरावती श्री सघ ने बडी सादड़ी सघ के समक्ष अपनी झोली पसारी ।

स्थिति का अकन करते हुए बडी सादडी सघ अत्यन्त दु:ख के साथ इस निर्णय पर पहुँचा है कि अमरावती व उसके आसपास के क्षेत्र में धर्म की अभिवृद्धि हो व जिन शासन की उन्नति हो, आदि उपकारो की दृष्टि से आचार्य प्रवर का उसमे विचरना आवश्यक है, इसलिए बड़ी सादड़ी सघ स २०२५ का चातुर्मास हर्षपूर्वक श्री अमरावती सघ को अर्पित करता है ।

बडी सादडी श्री सघ शासन देव से प्रार्थना करता है कि आचार्य श्री म सा वहा विराजकर धर्म जागृति करावे ।

लक्ष्मीलाल दिनाक २८–३–६८ सोहनलाल
अध्यक्ष मत्री

(श्री साधुमार्गी जैन सघ, बडी सादडी)

चू कि आचार्य देव तब तक अमरावती से प्रस्थान कर चुके थे । अतः अमरावती सघ का एक शिष्टमण्डल श्री धनराज जी मुणोत के नेतृत्व में बड़नेरा ग्राम मे आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगा "हम बड़ी सादडी संघ के चातुर्मास की भिक्षा ले आए है । अत्यन्त उदारता के साथ बडी सादड़ी के श्री संघ ने हमारी झोली भर दी है । अब हम चाहते है कि आप श्री हमे स्वीकृति प्रदान करे ।"

आचार्य देव ने मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे कहा—"अब मुझे कुछ कहने की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ? आप लोगो ने तो स्वत ही अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त कर ली है । फिर भी जिन आगारो के साथ बडी सादडी संघ को स्वीकृति दी गई थी, प्राय. उन्ही आगारो के साथ आप अपने लिए मान लीजिए ।" और हर्ष विभोर होता हुआ शिष्ट मण्डल लौट गया ।

इधर समीपवर्ती ग्रामो की भावपूर्ण प्रार्थना को दृष्टि मे रखते हुए पडित श्री सम्पत मुनि जी एव श्री धर्मेश मुनि जी को बडनेरा के निकटवर्ती ग्रामो मे

मण्डल के अध्यक्ष उत्साही बन्धु श्री प्रकाशचन्द जी कोठारी की आत्मा तो इस घोषणा से कराह उठी। वे तुरन्त सभा स्थल से उठकर स्थानीय संघ के वरिष्ठ एवं सम्मान्य सदस्य श्री धनराज जी मुणोत के पास पहुँचे और उन्हें अवगत कराया कि चातुर्मास यहीं पर होगा। आपको हमें पूर्ण सहयोग देना होगा। हम सब युवक आपके संकेत पर चलने को सन्नद्ध हैं।

श्री धनराज जी ने भी श्री प्रकाशचन्द जी कोठारी का उत्साह बढ़ाते हुए कहा—"तुम आतुरता मत करो। अधीरता से कोई काम नहीं होता है। तुम अपने प्रयास चालू रखो। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

इस प्रकार कुछ आश्वस्त हो श्री प्रकाशचन्द जी, श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी श्री जवाहरलाल जी मुणोत के पास पहुँचे और उन्हें भी वस्तुस्थिति से अवगत कराया। श्रीमती मुणोत जी तो स्वयं भी इसी उत्साह से भरी थीं और उन्हें युवा वर्ग का सहयोग और मिल गया। उन्होंने प्रकाश जी से कहा--"आप निश्चिन्त रहें, मैं अपनी ओर से पूरा प्रयास करूँगी। आप केवल अपनी युवा शक्ति को सम्भालें।"

इस प्रकार समुचित भूमिका का निर्माण कर उत्साही युवा बन्धु श्री प्रकाशचन्द जी कोठारी युवावर्ग में अनूठा जोश भरने लगे। चूँकि स्थानीय युवक आचार्य देव के ओजस्वी प्रवचनों से अत्यधिक प्रभावित हो ही चुके थे, अतः अब युवकों का स्थानीय संघ पर यह आरोप था कि उन्हें कल्पसूत्र के नियम उपनियम का नाम लेकर, अन्धेरे में रखकर धोखा दिया गया है। इसे यह नहीं ज्ञात था कि साम्प्रदायिकता के व्यामोह में स्थानीय संघ इतनी बड़ी भूल कर बैठेगा कि इतने निर्मल चारित्र एवं ज्ञान पुंज आचार्यदेव की चातुर्मास की विनती न करे। इस युवक टोली ने दृढ़ संकल्प कर लिया और आचार्य श्री का यह वर्षावास किसी भी परिस्थिति में समतानगरी में ही करवाकर रहेंगे। जोश के फलस्वरूप चन्दा हेतु कोठों तक भी निकल गये और लगभग पन्द्रह हजार रुपये की राशि भी बना ली।

पर भाई नगर को मत जाने दो

इधर युवकों में जोश बढ़ता गया और उधर श्रीमती मुणोत भी अपना प्रयास करने लगीं। यद्यपि श्रीयुत मुणोत जी स्थानीय संघ के वरिष्ठ पदाधिकारी होने से [illegible] के कारण स्वयं विनती नहीं कर पा रहे थे, किन्तु श्रीमती मुणोत आचार्यदेव के समक्ष पहुँच गईं तथा [illegible] [illegible] मुणोत जी से कहने लगीं — आप इतना समय [illegible] से [illegible] था और इस नगर को कोई [illegible] भी [illegible] करते थे। आचार्य श्री [illegible] से [illegible] करते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] आचार्य श्री ने [illegible] कहा कि किसी भी निर्णय के [illegible] श्री का [illegible] चातुर्मास [illegible] से ही [illegible] [illegible]।

आचार्य देव ने उन्हे समझाते हुए कहा—"आपकी शासन निष्ठा एव धर्म-भावना श्रेष्ठ है, किन्तु अभी लगभग एक माह से कुछ अधिक दिन वर्षावास मे शेष है। तब तक मेरी अशक्तता कुछ दूर हो सकती है तथा अमरावती भी यहा से लगभग १००-१२५ मील है। अतः प्रयास करने पर पहुँचा जा सकता है।

जब आचाय देव की अशक्तता शनै -शनै. दूर हुई तो धीरे-धीरे विहार करते हुए अमरावती की ओर प्रस्थान कर दिया। सहवर्ती सेवानिष्ठ सन्त वृन्द ने अत्याधिक आग्रह किया, कि "हम डोली बना लेते है, आप उसमें विराजिये, हम उठाकर ले चलेगे।" किन्तु आचार्य देव ने अपने आत्मबल के आधार पर सन्त समुदाय पर भार नही डालते हुए लघु विहारो द्वारा मार्ग तय किया एव यवतमाल, आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए वर्षावास हेतु अमरावती पधार गए।

• • •

मण्डल के अध्यक्ष उत्साही बन्धु श्री प्रकाशचन्द्र जी कोठारी की आत्मा तो इस घोषणा से कराह उठी । वे तुरन्त सभा स्थल से उठकर स्थानीय सघ के वरिष्ठ एव स्तम्भ सदस्य श्री धनराज जी मुणोत के पास पहुँचे और उन्हे अवगत कराया कि चातुर्मास यही पर होगा । आपको हमे पूर्ण सहयोग देना होगा । हम सब युवक आपके सकेत पर चलने को सन्नद्ध है ।

श्री धनराज जी ने भी श्री प्रकाशचन्द्र जी कोठारी का उत्साह बढाते हुए कहा—"तुम आतुरता मत करो । अधीरता से कोई काम नही होता है । तुम अपने प्रयास चालू रखो मैं तुम्हारे साथ हू ।"

इस प्रकार कुछ आश्वस्त हो श्री प्रकाशचन्द्र जी, श्रीमती सिरेकु वर बाई धर्मपत्नी श्री जवाहरलाल जी मुणोत के पास पहुँचे और उन्हे भी वस्तु-स्थिति से अवगत कराया । श्रीमती मुणोत जी तो स्वय भी उसी उत्साह से भरी थी और उन्हे युवा वर्ग का सहयोग और मिल गया । उन्होने प्रकाश जी से कहा—"आप निश्चिन्त रहे, मैं अपनी ओर से पूरा प्रयास करूगी । आप केवल अपनी युवा शक्ति को सम्भाले ।"

इस प्रकार समुचित भूमिका का निर्माण कर उत्साही युवा बन्धु श्री प्रकाशचन्द्र जी कोठारी युवावर्ग मे अनूठा जोश भरने लगे । चूकि स्थानीय युवक आचार्य देव के मौलिक प्रवचनो से अत्यधिक प्रभावित हो ही चुके थे, अत अब युवको का स्थानीय सघ पर यह आरोप था कि उन्हे कान्फ्रेन्स के नियम उपनियम का नाम लेकर, अन्धेरे मे रखकर धोखा दिया गया है । हमे यह नही ज्ञात था कि साम्प्रदायिकता के व्यामोह मे स्थानीय सघ इतनी बडी भूल कर बैठेगा कि इतने निर्मल चारित्र एव ज्ञान पुज आचार्यदेव की चातुर्मास की विनती न करे । हम युवक ही सब कुछ कर लेंगे और आचार्य श्री का यह वर्षावास किसी भी परिस्थिति मे अमरावती मे ही करवाकर रहेगे । जोश मे युवा-बन्धु चन्दा हेतु झोली लेकर भी निकल गये और लगभग अस्सी हजार रुपये की सूची भी बनाली ।

घर आई गंगा को मत जाने दो :

इधर युवावर्ग मे जोश बढता गया और उधर श्रीमती मुणोत भी अपना प्रयास करने लगी । चूकि श्रीयुत मुणोत जी कान्फ्रेन्स के वरिष्ठ अधिकारी होने से नियमबद्धता के कारण स्वय विनती नही कर पा रहे थे, किन्तु श्रीमती मुणोत आचार्यदेव के समक्ष खडी हो गई तथा आँखो से अश्रु-धारा बहाती हुई मुणोत जी से कहने लगी—"आप इसी समय कान्फ्रेन्स से त्याग-पत्र दो और इस घर मे आई गगा को मत जाने दो । आचार्य श्री बहुत से आगार रखते हैं । आप अभी त्याग-पत्र देकर आचार्य श्री से प्रार्थना करो कि किसी भी स्थिति मे आचार्य श्री को यह चातुर्मास अमरावती मे ही करना होगा ।"

से ही पण्डित रत्न वहुश्रुत श्री समर्थमलजी म० सा० के सम्प्रदाय का प्रेम-संबध चला आ रहा था या यो कहे कि आचार्य देव पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० ने ही श्री ज्ञानचन्द्रजी म० सा० के सम्प्रदाय के क्षेत्र-विचरण आदि की सुविधाएँ देकर सहयोग दिया था, किन्तु सामान्य से विकास के साथ ही अहं का प्रवेश दोनो सम्प्रदायो के प्रेम-सम्वन्ध मे व्यवधान वन कर खड़ा हो गया ।

व्यवधान उपस्थित करने की अनेक प्रमाण-पुष्ट घटनाओ के सामने आने पर भी आचार्य देव सागर की अगाध गम्भीरता को धारण किए रहे, किन्तु प्रवल प्रयास के वावजूद भी वह प्रेम-सम्वन्ध स्थापित नही रह सका ।

आचार्य देव के अमरावती के इस वर्षावास के समय इन्दौर मे वर्षावास हेतु विराजित वहुश्रुत मुनि श्री समरथमलजी म० सा० ने एक पत्र द्वारा विघटन की पहली ईट रखी । पत्र मे वहुश्रुतजी म० सा० ने साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त हो अपने एक शिष्य प० श्री घेवर मुनिजी के दोष को आवृत्त करने हेतु आचार्य देव के गुरु-भ्राता कर्मठ सेवाव्रती श्री इन्द्रचदजी म० सा० पर कुछ आक्षेप लगाए । बहुत पत्राचार के पश्चात् भी वे इस विषय मे प्रमाण प्रस्तुत नही कर सके और अन्त मे आचार्यश्री को संयमी मर्यादाओ की सुरक्षा के लिये सघ से पण्डितजी म० सा० का सम्वन्ध तोड़ देना पड़ा ।

वैसे घटना वहुत विस्तृत है किन्तु सम्वन्ध-विच्छेद के पत्र की ही एक प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है, जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि साम्प्रदायिक व्यामोह व्यक्ति को कहाँ-से-कहाँ ले जाता है । इससे यह वात भी प्रकट हो जायेगी कि आचार्य देव ने अपने पत्र और व्यवहार मे किस शालीनता का परिचय दिया है ।

" श्री "

अमरावती

श्रीमान् जुगराजी श्रीश्रीमाल,   ७-१०-६८

इन्दौर ।

सादर जय जिनेन्द्र ।

आपके वहाँ विराजित बहुश्रुत श्री १००८ श्री समरथमलजी म० सा० आदि ठाणा की तथा महासतियाँजी म० सा० की सेवा मे हमारी वन्दना अर्ज कर सुख साता पूछावे ।

आपका तारीख २७-९-६८ का रजिस्टर्ड पत्र मिला । वह परम श्रद्धेय

आचार्य देव ने स्पष्ट करते हुए कहा—'यह तो मैने इतने आगार रखे है, किन्तु यदि मैं कोई आगार नही रखता और आपको बडीसादडी सघ चातुर्मास दे देता है तो उसमे मेरे विचारने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। पूर्व मे भी स्वर्गीय आचार्यदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा के सरदारशहर एव मौरवी मे स्वीकृत वर्षावास क्रमश जोधपुर एव जामनगर सघो की माग पर बदल गये थे। इसी प्रकार आचार्य श्री श्रीलाल जी म सा का बडीसादडी के लिए स्वीकृत चातुर्मास रतलाम वालो को मिला था। ऐसे अनेक प्रसग पूर्व मे आ चुके हैं। अत यदि ऐसी स्थिति बनती है तो मुझे कोई आपत्ति नही है।''

आचार्य देव द्वारा आश्वस्त होकर सघ प्रमुखो ने अपना प्रयत्न प्रारभ कर दिया। अमरावती सघ का एक शिष्ट मण्डल बडी सादडी गया। बडे नम्र शब्दो मे उन्होने बडी सादडी सघ से चातुर्मास की भिक्षा मागी। किन्तु "परोसी हुई थाली को कौन ठुकरा सकता है" के अनुसार बडी सादडी सघ इसके लिए तैयार नही हुआ। अन्त मे अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री गणपतराज जी बोहरा से फोन आदि के माध्यम से सम्पर्क साधा गया और वे तुरन्त वायुयान द्वारा अमरावती पहुँचे। वहा से उनके नेतृत्व मे एक और शिष्टमण्डल बडी सादडी गया और बोहरा जी ने आग्रह किया कि "आपके यहा तो फिर कभी चातुर्मास हो सकता है, किन्तु आचार्य श्री के उस प्रान्त से निकल जाने के बाद पुन उन्हे अवसर मिलना कठिन है। अत भामाशाह की तरह उदार बनकर यह चातुर्मास अमरावती सघ को देने की कृपा करे। मैं आपसे भिक्षा मागने के लिए झोली लेकर आया हू। बडी सादडी सघ उदार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी झोली को भर देगा।''

बडी सादडी सघ ऐसी विकट स्थिति मे उलझ गया कि उससे कुछ कहते ही नही बन रहा था। अन्त मे बडी सादडी सघ ने स्थानीय सघ की एक आम सभा का आयोजन किया और निम्न प्रस्ताव पारित कर महानतम उदारता का परिचय दिया।

बडीसादडी श्री सघ की उदारता

आज स्थानीय नये स्थानक मे श्री साधुमार्गी श्रावक सघ बडी सादडी की आम सभा यह निर्णय करती हैं कि परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर चारित्र चूडामणि श्री १००८ श्री श्री नानालाल जी म सा ने स २०२५ का चातुर्मास कई आगारो के साथ सुखे समाधि पहुँचने की स्थिति मे बडी सादडी करने के भाव प्रदर्शित किये थे। आचार्य श्री जी म सा के फरमाने के पश्चात् अमरावती सघ मे धार्मिक जागृति हुई और वहा की अनैक्यता की स्थिति को एकता मे परिणित कर दी और अन्य भी धर्म जागति के कई कार्य सामने रखते हुए अमरावती

द्वारा नही लिखायी, तो इससे भी यह सहज समझा जा सकता है कि श्री बहुश्रुतजी म० सा० द्वारा मुनि श्री इन्दरचन्दजी म० आदि को लेकर पत्र द्वारा जिन-जिन आपत्तिजनक वाक्यो का प्रयोग हुआ है, वह सब सत्य नही है।"

उपर्युक्त पत्र को लिखाये भी लगभग २१ दिन व्यतीत हो गये है। लेकिन पृष्टव्य विषयक ब्यौरेवार स्पष्ट प्रामाणिक जानकारी आज तक नही आने से मुनि श्री इन्दरचन्दजी को लेकर जिन-जिन आपत्तिजनक वाक्यो का प्रयोग हुआ, वह सब सत्य नही है, इस बात की स्पष्टत पुष्टि हो जाती है।

दूसरी ओर जिस समय मुनि श्री सौभाग्यमलजी म० सा० आदि ठाणा ३ गगाशहर, भीनासर विराजते थे, उस प्रसग का उल्लेख इन्दौर के तारीख ६ सितम्बर, ६८ के पत्र मे श्रीमान् जुगराजजी श्रीश्रीमाल ने किया है। इसकी जाच के सदर्भ मे भी जो कुछ जानकारी मिली उसमे से फिलहाल निम्नाश का उल्लेख करना आवश्यक होने से किया जा रहा है।

"........माघ सुदी मे मुनि श्री सौभाग्यमलजी म० सा०, श्री घेवरचन्दजी म० सा०, मुनि श्री रतनचन्दजी म० सा० आदि ठाणा ३ वहाँ पर (गगाशहर) पधारे थे... तीनो ही सत श्री रावतमलजी बोथरा के मकान मे जो गाँधी चौक, गगाशहर मे है, विराजते थे। एक दिन, दिन के समय दो बच्चियाँ तथा एक बालक खेलते हुए मकान मे महाराज के पास चले गये। उस समय मकान मे मुनि श्री घेवरचन्दजी म० सा० अकेले ही थे, दो सत बाहर गये हुए थे। तारा नामक बच्ची जिसकी उम्र ६ वर्ष है को मुनिश्री ने खोले मे बैठाकर किताब पढाई। मुनिश्री ने बच्ची से कहा—तुम पढने मे होशियार हो। तुम्हारा मकान कहाँ पर है ? आदि बाते पूछी. .... ?"

इन परिस्थितियो मे शुद्ध आचार-विचार की स्थिति के अभाव मे वदन-व्यवहार आदि सम्बन्ध कैसे कायम रह सकता है ?

अत. विवश होकर बडे ही दु:ख के साथ लिखवाना पड रहा है कि श्री बहुश्रुतजी म० सा० द्वारा मुनि श्री इन्दरचन्दजी म० सा० आदि को लेकर जिन-जिन आपत्तिजनक वाक्यो का प्रयोग हुआ है तद्विषयक परिमार्जन होकर तथा श्री बहुश्रुतजी म० सा० के जिन मुनि के लिए संयमी मर्यादा विपरीत प्रवृत्ति की स्थिति है, उसकी जाच-पडताल के साथ प्रामाणिक निर्णय होकर जब तक यथायोग्य स्थिति न हो जाय एव भविष्य के लिए प्रेम-सम्बन्ध रखने वालो के साथ श्री बहुश्रुतजी म० सा० द्वारा सद्भावना और सद्व्यवहार रखने-रखाने

धर्म-जागृति हेतु अलग विहार करवाकर आचार्य देव ने विदर्भ प्रान्त के छोटे-छोटे ग्रामो को पावन करने हेतु प्रस्थान कर दिया। आचार्य देव का विदर्भ-विचरण विदर्भवासियो के लिए एक वरदान ही सिद्ध हुआ। आचार्य देव के पीयूषवर्षी प्रवचनो ने समतामृत की ऐसी सरस फुहारे छोडी कि छोटे-छोटे गावो मे वर्षों से चले आ रहे सामाजिक एव पारिवारिक वैमनस्यो का अवसान हो गया। मगरूर ग्राम मे वर्षों से चला आ रहा सामाजिक तनाव समाप्त हुआ तो नेर ग्राम मे चौदह वर्षों की लम्बी भेद की खाई पाट दी गई। इसी प्रकार डाभा ग्राम मे अठारह वर्षों से काका-भतीजे का पारिवारिक तनाव मृदुल प्रेम मे रूपान्तरित हो गया, तो आसेगाव की आपसी टकराहट स्नेह-सूत्र मे परिवर्तित हो गई। पहुर ग्राम का ५०—६० वर्षों का सघर्ष जो अनेको सन्त महापुरुषो के द्वारा भी समाप्त नही हुआ था, वह आचार्य देव के अमृतवचनो से अभिभूत हो धराशायी हो गया। सैद्धातिक दृष्टि से तीर्थंकर महाप्रभु के अतिशय के प्रभाव का सादृश्य इस सम्पूर्ण क्षेत्र मे परिव्याप्त हो गया।

प्राय प्रत्येक ग्राम के अनेक व्यक्तियो ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया, तो सैकडो व्यक्तियो ने दुर्व्यसनो का परित्याग किया।

इस प्रकार आचार्य देव का विदर्भ प्रान्त के छोटे-छोटे ग्रामो मे विचरण समता-सर्जना एव अभूतपूर्व धर्म-जागृति का प्रतीक रहा।

चू कि विदर्भ-विचरण के उन दिवसो मे खेरी ग्राम मे आचार्य देव को टायफायड (मोतीझरा) हो गया था, अत अधिक ग्रामो मे भ्रमण नही किया जा सका। भयकर ग्रीष्म प्रकोप के कारण दिन भर उतप्त हवाए सामान्य स्वस्थ व्यक्तियो को भी कितना उद्विग्न कर देती है। ऐसी स्थिति मे साधु-मर्यादा के अनुकूल पथ्यादि का अभाव, वेदनाभूति की सवेदना को कितना बढा देता है। किन्तु आचार्य देव उन वेदना के क्षणो मे भी अन्तर्मुखी ही बनते गए। देह अपना धर्म निभा रही थी तो चेतना अपने धर्म के प्रति पूर्ण सजग थी।

लम्बी अवधि तक ज्वर से पीडित देह एकदम अशक्त-सी हो गई। वर्षावास हेतु अमरावती पहुँच पाना कठिन हो गया। खेरी के धनीमानी धर्मानुरागी सज्जन श्री माणिकलाल जी ललवानी तथा समीपवर्ती पाढर कवडा के श्री रतनलाल जी सुराणा, आदि ने शारीरिक अशक्तता को देखते हुए अपने-अपने क्षेत्रो मे वर्षावास करने की विनम्र प्रार्थना की तथा निवेदन किया, "वैसे आप बहुत आगार रखते हैं। फिर अभी तो आप श्री का स्वास्थ्य भी अनुकूल नही है। चिकित्सक आपको पद-विहार की अनुमति नही दे रहे हैं। अत आप श्री अब यह वर्षावास हमारे क्षेत्र मे फरमादे। आपकी कृपा से यहा किसी प्रकार की कमी नही रहेगी। आगन्तुक दर्शनार्थियो के आतिथ्य सत्कार का लाभ हमे मिलेगा। आप कृपा कर निस्सकोच वर्षावास यही करने की कृपा करें।"

समाधान हेतु आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए और समझने का प्रयास करने लगे।

दोनो विद्वानो का मत था कि दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि समग्र जैन-समाज की मान्यता के अनुसार क्षायिक सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का होता है। चतुर्थ गुण स्थान से लेकर चतुर्दश गुण स्थान पर्यन्त क्षायिक सम्यक्त्व एक ही प्रकार का होता है। उनका तर्क था कि क्षायिक्त्व भाव मे कोई अन्तर नही होता है। जैसे केवल्य ज्ञान क्षायिक ज्ञान है वह एक ही प्रकार का होता है। ठीक इसी प्रकार क्षायिक सम्यक्त्व भी एक ही प्रकार का होगा।

किन्तु आचार्य देव की अनुभूति मूलक दृष्टि इस तर्क को अशक्त मान रही थी। आचार्य देव का कथन था कि क्षायिक भाव के समान होने पर भी तथा सामान्य दृष्टि से एकरूपता परिलक्षित होते हुए भी गुणस्थानो के आरोहण क्रम में तथा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षमोपशम के तारतम्य से क्षायिक सम्यग्दर्शन की स्थिति में अन्तर अवश्य मानना होगा। जैसे जीवन के एक गुण-विनम्रता के विकास के साथ अक्रोध, निरभिमानता एव निश्छलता, आदि सहवर्ती गुणो का विकास सहज फलित होता है और इसके विपरीत एक दूषण के साथ सहचारी अनेक दूषणो का प्रवेश हो जाता है, ठीक इसी प्रकार, चूँकि ज्ञान एव दर्शन-श्रद्धान सहवर्ती धर्म है, अत: उन दोनों मे एक की विशुद्धता के साथ दूसरे की विशुद्धता भी सहजतया होगी।

दर्शन मोहनीय कर्म एवं अनन्तानुबन्धी के क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व की उपलब्धि होती है और वह अपने आप मे सम्यग्दर्शन की विशुद्ध अवस्था है, और वह अप्रतिपाति ही होती है तथापि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की विशुद्धता पर सम्यग्दर्शन की फलश्रुति प्रगाढ आस्था मे विशुद्धता का सचार आवश्यक होता है। अत: क्षायिक सम्यग्दर्शन भी गुणस्थान वृद्धि एव आवरण क्षयोपशम के कारण विशुद्धतर-विशुद्धतम् अवस्था को अवश्य प्राप्त करता है। चौथे से बारहवे छाद्मास्थिक गुणस्थानो मे भी सम्यग्दर्शन की तारतम्यता अध्यवसाय-विशुद्धि के साथ बनी रहती है, तो कैवल्य अवाप्ति के पश्चात्-वर्ती सम्यग्यदर्शन एव बारहवे गुणस्थान तक के सम्यग्दर्शन मे तो तारतम्य अवश्य स्वीकार करना होगा। हाँ, तेरहवे गुणस्थान मे कैवल्य प्राप्ति के अनन्तर होने वाला सम्यग्दर्शन चूँकि सम्पूर्ण निरावरणता के पश्चात् का सम्यग्दर्शन है, अत उस तेरहवे-चौदहवे गुणस्थान एव सिद्धावस्थावर्ती क्षायिक सम्यक्दर्शन मे कोई अन्तर नही होगा।

आचार्य देव के इस सूक्ष्म तलस्पर्शी, विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य मे उक्त विद्वानों ने सैद्धान्तिक आधार चाहा कि यह मीमासा किस ग्रन्थ के आधार पर

अमरावती-चातुर्मास

उल्लेखनीय प्रसंग

अमरावती का यह वर्षावास चूँकि युवा-चेतना की जागृति एव युवा-मानस की अदम्य अभीप्सा का ही प्रतिफल था, अत· स्थानीय युवा बन्धुओ का उत्साह, कार्य-निष्ठा एव सेवा समर्पण अनूठा ही था। बच्चो के मानस मे अद्भुत उत्साह सचरित हो रहा था।

अन्यान्य वर्षावासो के समान सम्पूर्ण दैनिक व्यस्त कार्यक्रमो के साथ चातुर्मास काल व्यतीत हुआ। पर्युषणो के प्रसग पर छात्रो की कुछ मागो को लेकर वातावरण तनावपूर्ण बना और पूरे शहर मे धारा १४४ लगा दी गई थी तथापि स्थानीय बुद्धिजीवियो तथा कर्मठ युवा-कार्यकर्ताओ की सूझबूझ के कारण हजारो आगत यात्रियों की समुचित व्यवस्था बनी रही। साधना के किसी भी कार्य मे कोई व्यवधान उपस्थित नही हुआ।

चातुर्मास कालीन विशेष उपलब्धियो मे एक थी, जैनेतर बन्धुओ का जैन धर्म के प्रति सहज आकर्षित होना। स्थानीय माहेश्वरी समाज के बुद्धि-जीवियो एव धर्म-निष्ठ बन्धुओ पर तो आचार्य देव के निर्मल चारित्र की छाप चातुर्मास स्वीकृति के पूर्व ही इतनी अधिक पड चुकी थी कि वर्षावास की विनती के समय कुछ बन्धुओ के मुख से शब्द निकल पडे—"ओसवाल जैन समाज आचार्यश्री का चातुर्मास कराए चाहे न कराए, हमारा माहेश्वरी समाज ऐसे विद्वद् शिरोमणि, चारित्रमूर्ति आचार्य देव को यहाँ से जाने नही देगा। हम माहेश्वरी समाज की ओर से सम्पूर्ण व्यवस्था करेंगे, किन्तु आचार्यश्री का यह चातुर्मास यही करवाएँगे।" अस्तु, इस वर्षावास मे माहेश्वरी समाज ने बहुत अधिक सामीप्य से जैन धर्म को समझने का प्रयास किया एव आत्मोत्थान के क्षेत्र मे बहुत अधिक लाभ लिया।

साम्प्रदायिक भावना, सम्बन्ध विच्छेद

कुछ प्रिय एव उपलब्धिपूर्ण घटनाओ के साथ ही इस वर्षावास मे साम्प्रदायिक भावना से उत्प्रेरित एक अप्रिय घटना भी घट गई। हुआ यो कि अगाध महिमा मण्डित स्वर्गीय आचार्य देव श्री श्रीलालजी म० सा० के समय

कहा—"समय पर आप इसे शास्त्रीय अथवा ग्रन्थो के प्रमाण से भी समझ पाएँगे।"

सयोगत: अमरावती वर्षावास के पश्चात् आचार्य देव का जब राजस्थान पदार्पण हुआ तो वहाँ मुझे (शान्ति मुनि को) आचार्य देव वाचक मुख्य उमास्वाति विरचित तत्त्वार्थ भाष्य का अध्ययन करवा रहे थे। यद्यपि आचार्य देव के द्वारा तत्त्वार्थ भाष्य का यह प्रथम अवलोकन ही था, किन्तु उस अवलोकन मे आचार्य देव की अन्तरग अनुभूतिमूलक आवाज साकार हो उठी। आचार्य देव ने क्षायिक सम्यग्दर्शन के सन्दर्भ मे जो सहानुभूतिपरक विवेचन किया था, उसका प्रबलतम पुष्ट प्रमाण तत्त्वार्थ भाष्य मे मिल गया।

तत्त्वार्थ भाष्य मे क्षायिक सम्यग्दर्शन को भी सादि सान्त एव सादि अनन्त दो भागो मे विभाजित किया गया। चतुर्थ गुण स्थान मे प्रथम बार ही उपलब्ध होने से उसे सादि कहा गया एव बारहवे गुणस्थान के अन्त मे अपायापगम अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा विलय रूप हेतु से क्षायिक सम्यक्त्व मे भी विशुद्धावस्था की प्राप्ति के कारण उसे सान्त कहा गया है। अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय-क्षयोपशम के साथ सम्यग्दर्शन की विशुद्धता का तारतम्य स्वीकार किया गया है। इसी दृष्टि को सम्मुख रखते हुए भाष्यकार ने चतुर्थ से बारहवे गुणस्थान तक के क्षायिक सम्यक्त्वी को सम्यग्दर्शनी एव तेरहवे, चौदहवे गुणस्थान तथा सिद्धावस्था मे पाई जाने वाली सम्यक्त्व को सम्यग्दृष्टि सज्ञा से अभिसज्ञित किया है। तत्त्वार्थ भाष्य का दृष्टिकोण निम्नानुसार है—

> "सम्यग्दृष्टिर्द्धिविधा, सादि सपर्यावसाना, सादिअपर्यवसाना च। सादि सपर्यवसान मेव च सम्यग्दर्शनम्। तज्जघन्येनान्त मुहूर्त मुत्कृष्टेन षद् षष्टि सागरोपमानि साधिकानि। सम्यग्दृष्टि सादिरपर्यवासना। सयोग: शैलेशी प्राप्तश्च केवली सिद्धश्चेति ।।

टिप्पणीकार ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है :—

> "एकापाय सद्द्रव्य वर्तिनी, अपरात अशुद्ध दलिक रूप सद् द्रव्यापगमे क्षीर्ण दर्शन मोहाना श्रेणिकादीनाम्। द्विविधापिय सादि सपर्यवसाना, उत्पति काले आदिमत्वात्, आद्याया. मिथ्यात्व पुजोदये द्वितीययायश्च केवल ज्ञानोत्पतौ, मतिज्ञान तृतीयाशापाया पगमेनापगमात्'

अर्थात् क्षायिक सम्यग्दर्शन का भी केवल ज्ञानोत्पत्ति के अनन्तर रूपान्तरण हो जाता है। इस प्रकार आचार्य देव के सूक्ष्म अनुभूति मूलक बोध के समक्ष ग्रन्थ की प्रवलतम पुष्टि प्राप्त-हो जाने पर दोनो विद्वान् स्वत ही नत मस्तक हो गए।

आचार्य श्रीजी म० सा० की सेवा मे अर्ज कर दिया गया, तो उत्तर में आचार्य श्रीजी म० सा० ने निम्न आशय के भाव फरमाये हैं।

"क्या ही अच्छा होता कि बहुश्रुतजी म० अन्यान्य वाते लिखने की अपेक्षा पृष्टव्य विषय का स्पष्ट ब्यौरेवार प्रामाणिक उत्तर लिखाते ताकि सही स्थिति का तुलनात्मक अकन करने मे कुछ अधिक सुविधा रह सकती।

पृष्टव्य विषय के उत्तर के अभाव मे बहुश्रुतजी म० सा० द्वारा जिन-जिन आपत्तिजनक वाक्यो का प्रयोग हुआ है, वे सत्य कैसे समझे जा सकते हैं ? [illegible] शुद्ध आचार-विचार की स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए लिखवाना पड़ रहा है कि इन्दौर से प० र० श्री बहुश्रुतजी म० सा० द्वारा लिखा गया विना तारीख का पत्र, जो कुछ सप्ताह पूर्व श्रीमान् राजमलजी चोरडिया के मार्फत [illegible] उसमे मुनि श्री इन्दरचदजी आदि को लेकर जिन-जिन आपत्तिजनक [illegible] प्रयोग हुआ, उनकी वस्तुस्थिति जानने के लिए श्री बहुश्रुतजी [illegible] सेवामे तारीख ८ अगस्त को यहाँ से एक पत्र दिलाया गया। [illegible] पुन स्मृति दिलाई गयी, लेकिन फिर भी लम्बा समय बीत [illegible] पृष्टव्य विषय का उत्तर प्राप्त नही होने से सम्बन्धित [illegible] तारीख १५ सितम्बर, ६८ के पत्र द्वारा लिखाया गया [illegible] तारीख के पत्र की अन्यान्य वातो को गौण करके तारीख ८ [illegible] पत्र लिखाया गया, उसमे पृष्टव्य विपयक निम्न पैराग्राफ [illegible]

उधर से आपके पास से आते हुए [illegible] श्री कवरलालजी म० सा० आदि ने इधर के एक [illegible] गदा असत्य प्रचार किया आदि आशय [illegible] विभूक्ति प० र० बहुश्रुतजी म० सा० के [illegible] बहुश्रुतजी म० सा० के चरणो मे अर्ज [illegible] दोषारोपण किस-किस रूप मे किया गया [illegible] भी कैसे-कैसे क्या-क्या किया गया है [illegible] प्रामाणिक विवरण आवश्यक था [illegible] योग्य किया जा सके।

इसका इतना लम्बा [illegible] सा० की तरफ से उत्तर प्राप्त [illegible] जी म० सा०, प० र० श्री [illegible] जी हैं कि उपर्युक्त विषयक [illegible] था। एक सप्ताह तक मे यहाँ [illegible] म० सा० ने एक सप्ताह [illegible]

"अक्षय-अव्यय-अचल आदि विशेषणों का तात्पर्य इतना ही समझना चाहिए कि स्थान की दृष्टि से तथा परभाव सापेक्ष की दृष्टि से सिद्धो मे परिवर्तन नही होता है, किन्तु स्वभाव परिणमन जिसे स्वरूप-रमण कहते है, वह तो वहाँ होता ही है । इसी प्रकार जहाँ परिणमन का स्वभाव है, वहाँ आपेक्षिक दृष्टि से पर-भाव का प्रभाव भी किसी सीमा तक होता ही है, अन्यथा सिद्धात्माएँ अपने ऊर्ध्व गमन स्वभाव के कारण अलोकाकाश मे भी चली जाती । धर्म द्रव्य एव अधर्म द्रव्य के प्रभाव ने उन्हे लोकाग्रत् कही रोक लिया । अतः परभाव का कुछ प्रभाव माना जाएगा और इसी अर्थ मे सिद्ध प्रभु की पर्याय पदार्थ के पर्याय परिवर्तन के साथ परिणत होती है अर्थात् वर्तमान पर्याय को जिस रूप मे देख रहे है, दूसरे क्षण पदार्थ के पर्याय परिवर्तन के रूप में देख रहे है । पदार्थ के परिवर्तन के साथ सिद्ध प्रभु के ज्ञान पर्याय मे भी रूपान्तरण होता है । इस रूप मे स्वभाव और परभाव दोनो तरह से सिद्धात्माओ में पर्याय परिणमन घटित हो सकता है और यह स्वभाव परिणमन के बिना घटित नही हो सकता है। स्वभाव परिणमन की क्षमता होने पर ही पर निमित्तक परिणमन हो सकता है । जहाँ स्वभाव परिणमन नही होगा वहाँ पर भाव निमित्तक परिणमन भी नही होगा ।"

माननीय सरूपरिया जी आचार्य देव के श्रीमुख से इतना गम्भीर विश्लेषण श्रवण कर गद्-गद् हो गए और कहने लगे—"आचार्य हरिभद्रसूरि, सिद्धसेन-दिवाकर एव कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के गूढ ग्रन्थो के अवलोकन पर भी आज दिन तक मुझे जो समाधान नही मिला, वह आपश्री की अपनी अनुभूति-पूर्ण तलस्पर्शी प्रज्ञा से सहज प्राप्त हो गया । मै बहुत अनुगृहीत हूँ ।"

इस प्रकार तत्त्वज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे शताब्दियों से आवृत द्वारो का उद्घाटन एव तत्सम्बन्धी सूक्ष्म विश्लेषण के दौर-दौरे मे तथा जैन-जैनेत्तर प्रबुद्ध वर्ग मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति के साथ आचार्य देव का अमरावती वर्षावास सम्पन्न हुआ ।

सक्षेप मे आचार्यश्री की अगाध ज्ञान गरिमा, विशुद्ध चारित्र-निष्ठा एव समत्व योग की अप्रतिम साधना ने अमरावती नगर के धर्म श्रद्धालुओ, बुद्धि-जीवियो एव तत्त्व जिज्ञासु आबालवृद्ध नर-नारियो पर कितना अबूझ एव अप्रतिम प्रभाव अकित किया, इसकी लघुतम झलक विदाई समारोह की वेला मे आचार्य देव को अमरावती नगरनिवासियो द्वारा समर्पित किए गए अभि-नन्दन पत्र द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जिसकी अविकल प्रतिलिपि यहाँ प्रस्तुत है—

परम पूजनीय, श्री १००८ महाराज श्री आचार्य प्रवर, चरित्र चूड़ामणि

श्री नानालालजी महाराज

की विश्वस्तता ज्ञात न हो जाये, तब तक श्री बहुश्रुतजी म० सा० के साथ वदन-व्यवहार आदि नही रह सकता है ।

किन्तु उपर्युक्त समस्याओ के हल होने पर अन्यान्य विषयो मे तथा प्रेम-सम्बन्ध को दृढ बनाने मे यथावसर प्रत्यक्षादि के प्रसग एव पत्र-व्यवहार से विचार-विमर्श करने की सदा भावना रहती है ।

लिखी राजमल चोरडिया का जय जिनेन्द्र बचावसी । प० र० श्री बहुश्रुतजी म० सा० के चरणो मे वन्दना अर्ज कर सुख साता पूछ जीओ जी । पत्र सेवा मे अर्ज कर दिरावें ।"

सम्पूर्ण घटना के उद्गम गगाशहर प्रकरण की जानकारी आचार्य देव के कर्णगोचर पूर्व मे ही हो चुकी थी । किन्तु अपने गभीर एव धीर स्वभाव के कारण आचार्य देव ने उसे पत्राचार मे न उलझाकर प्रत्यक्ष ही समाहित करने का चिंतन स्थिर किया था । किन्तु "चोर की दाढी मे तिनका" की लोकोक्ति के अनुसार प्रति पक्ष अपनी ही स्खलना को उजागर करने को आतुर हो गया और पत्राचार प्रारम्भ कर उसने सामान्य-सी घटना को तूल दे दिया । परिणामत एक छोटी-सी घटना एक पक्ष की धीरता के अभाव मे सम्बन्ध-विच्छेद का कारण बन गई और पीढियो से चला आ रहा प्रेम-सम्बन्ध क्षणो मे विशीर्ण हो गया ।

तत्त्वज्ञान की सूक्ष्मता में अवगाहन

अमरावती वर्षावास की विशिष्ट उपलब्धियो मे सर्वतो महान् उपलब्धि थी, सैद्धान्तिक तत्त्व ज्ञान के सूक्ष्म एव गूढतम द्वारो का परिशीलन एवं उद्घाटन । एक ओर सटीक प्रज्ञापना सूत्र एव सधर्म मण्डन का सन्त-सती वर्ग एव वैराग्य रग से अनुरजित आत्माओ की गभीर अनुशीलन पूर्ण अध्यापन का कार्य आचार्य देव के मुख-कमल से होता था, तो दूसरी ओर विश्रुत विद्वान् पण्डित श्री रतनलालजी सिघवी, छोटीसादडी एव प० श्री पूर्णचन्दजी दक, कानोड द्वारा परीक्षोपयोगी ग्रन्थो का अध्यापन भी चलता रहा ।

क्षायिक सम्यक्त्व के प्रकार

उसी अध्ययनावधि मे जबकि विद्यार्थी सन्त विश्रुत विद्वान् श्री पूर्णचन्द्रजी दक के समीप अध्ययन कर रहे थे, सम्यग्दर्शन का विषय चल रहा था । सम्यग्दर्शन की गम्भीर मीमासा के क्षणो मे सम्यग्दृष्टि एव सम्यग्दर्शनी मे क्या अन्तर है तथा क्षायिक सम्यक्त्व एक ही प्रकार की होती है अथवा उसके कुछ भेद होते है, पर आकर चर्चा उलझ गई । विद्यार्थी सन्त जिज्ञासा के

"अक्षय-अव्यय-अचल आदि विशेषणो का तात्पर्य इतना ही समझना चाहिए कि स्थान की दृष्टि से तथा परभाव सापेक्ष की दृष्टि से सिद्धो मे परिवर्तन नही होता है, किन्तु स्वभाव परिणमन जिसे स्वरूप-रमण कहते है, वह तो वहाँ होता ही है। इसी प्रकार जहाँ परिणमन का स्वभाव है, वहाँ आपेक्षिक दृष्टि से पर-भाव का प्रभाव भी किसी सीमा तक होता ही है, अन्यथा सिद्धात्माएँ अपने ऊर्ध्व गमन स्वभाव के कारण अलोकाकाश मे भी चली जाती। धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य के प्रभाव ने उन्हे लोकाग्रत् कही रोक लिया। अत: परभाव का कुछ प्रभाव माना जाएगा और इसी अर्थ मे सिद्ध प्रभु की पर्याय पदार्थ के पर्याय परिवर्तन के साथ परिणत होती है अर्थात् वर्तमान पर्याय को जिस रूप मे देख रहे है, दूसरे क्षण पदार्थ के पर्याय परिवर्तन के रूप मे देख रहे है। पदार्थ के परिवर्तन के साथ सिद्ध प्रभु के ज्ञान पर्याय मे भी रूपान्तरण होता है। इस रूप मे स्वभाव और परभाव दोनो तरह से सिद्धात्माओ मे पर्याय परिणमन घटित हो सकता है और यह स्वभाव परिणमन के बिना घटित नही हो सकता है। स्वभाव परिणमन की क्षमता होने पर ही पर निमित्तक परिणमन हो सकता है। जहाँ स्वभाव परिणमन नही होगा वहाँ पर भाव निमित्तक परिणमन भी नही होगा।"

माननीय सरूपरिया जी आचार्य देव के श्रीमुख से इतना गम्भीर विश्लेषण श्रवण कर गद्-गद् हो गए और कहने लगे—"आचार्य हरिभद्रसूरि, सिद्धसेन-दिवाकर एवं कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के गूढ ग्रन्थो के अवलोकन पर भी आज दिन तक मुझे जो समाधान नही मिला, वह आपश्री की अपनी अनुभूति-पूर्ण तलस्पर्शी प्रज्ञा से सहज प्राप्त हो गया। मै बहुत अनुगृहीत हूँ।"

इस प्रकार तत्त्वज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे शताब्दियो से आवृत द्वारो का उद्‌घाटन एवं तत्संम्बन्धी सूक्ष्म विश्लेषण के दौर-दौरे मे तथा जैन-जैनेत्तर प्रबुद्ध वर्ग मे अभूतपूर्व धर्म-जागृति के साथ आचार्य देव का अमरावती वर्षावास सम्पन्न हुआ।

सक्षेप मे आचार्यश्री की अगाध ज्ञान गरिमा, विशुद्ध चारित्र-निष्ठा एव समत्व योग की अप्रतिम साधना ने अमरावती नगर के धर्म श्रद्धालुओ, बुद्धि-जीवियों एवं तत्त्व जिज्ञासु आबालवृद्ध नर-नारियो पर कितना अबूझ एव अप्रतिम प्रभाव अकित किया, इसकी लघुतम झलक विदाई समारोह की बेला मे आचार्य देव को अमरावती नगरनिवासियो द्वारा समर्पित किए गए अभि-नन्दन पत्र द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जिसकी अविकल प्रतिलिपि यहाँ प्रस्तुत है—

परम पूजनीय, श्री १००८ महाराज श्री आचार्य प्रवर, चरित्र चूडामणि

श्री नानालालजी महाराज

की जा रही है ? बिना सैद्धान्तिक आगमिक ठोस आधार के दोनो विद्वान् इस विश्लेषण को स्वीकार करने को तैयार नही थे । उनकी स्वीकारोक्ति के अभाव मे विद्यार्थी सन्त भी, जिनके मानस मे विद्वान् की बात घर कर गई थी, समझ नही पा रहे थे । तथापि विद्यार्थी मुनियो मे समझने की जिज्ञासा अवश्य थी । अत निवेदन किया, "हमे कोई स्थूल उदाहरण से समझाने की कृपा करे ।"

आचार्य प्रवर ने स्पष्ट करते हुए कहा, "यह विवेचन मैं अपने अनुभव गम्य बोध के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूँ । वर्तमान मे कोई आगमिक आधार मेरे पास नही है । पर तद्विषयक गहन ग्रन्थो के परिशीलन के द्वारा इस विषय को हृदयगम किया जा सकता है ।

रहा प्रश्न स्थूल उदाहरण का, जो इसे एक देशीय नवनीत के उदाहरण से समझा जा सकता है । दही को मथ लेने के पश्चात् छाछ मे से मक्खन को अलग कर लिया जाता है और वह इस स्थिति मे पहुँच जाता है कि पुन. दही अथवा छाछ नही बन सकता है । इसका अर्थ हुआ वह क्षायिक्त्व भाव की तरह पुन अपने पूर्व भाव मे रूपान्तरित नही हो सकता । किन्तु उस मक्खन मे छाछ के अस्तित्व के कारण तारतम्य अवश्य बना रहता है । सामान्य निचोडा हुआ मक्खन एव किसी शक्तिशाली व्यक्ति के द्वारा निचोड़ा हुआ मक्खन छाछ की अल्प-बहुत्वता के कारण अन्तर अवश्य रखता है । जब तक उसमे वक्र का कुछ भी अश मौजूद है, वह घृत नही कहला सकता है, यद्यपि वह घृत का पूर्व पर्याय ही है ।

जब मक्खन को तपा दिया जाता है तभी वह घृत सज्ञा को प्राप्त होता है, किन्तु इस घृतावस्था मे वह एक ही रूप होता है । एक क्षण पूर्व [illegible] अनन्तर क्षण वाली उसकी अवस्था मे स्थूल रूप से कोई भेद नहीं किया जा सकता है । ठीक इसी प्रकार चतुर्थ गुणस्थान से द्वादश [illegible] क्षायिक सम्यग्दर्शन मक्खन के समान है । अत उसमें [illegible] तारतम्य बना रहता है, जबकि तेरहवें गुणस्थान [illegible] सम्यग्दर्शन चूँकि कैवल्य ज्ञान का सहवर्ती है, अत: [illegible] नहीं होता है । वह सदा एक ही रूप माना जाता है । [illegible] है । यद्यपि अभी इस विषय की पुष्टि हेतु कोई [illegible] नहीं [illegible] रहा है, तथापि यह प्रतिपादन सर्वथा वीतराग [illegible] है । यह अनुभूति के आधार पर कहा जा सकता है ।"

आचार्य देव के इस [illegible] किन्तु दोनो विद्वान् इसे बिना [illegible] के [illegible] तैयार नही थे । आचार्य [illegible]

समदर्शी साधुवर !

सात्विक जीवन-यापन के जिन मानवीय मूल्यो की ओर आप सतत प्रेरणा देते रहे, वे आपके कष्ट-साध्यश्रम से पल्लवित होने जा रहे है। विवेक की जिस टहनी पर, आपके ज्ञान-सिचन से कोपले फूटने वाली है, उनकी सुरक्षा और सवर्द्धन का उत्तरदायित्व अब हमारा है। हमे पता है—इसी आश्वासन और निर्गम परिपालन की सूचना से आपको सन्तोष और समाधान की प्रसन्नता मिलती रहेगी। हम व्रत ले कि हमारी अहिसा आचरण की हो, अपरिग्रह-व्यवहार मे अधिष्ठित हो, तप-निरभिमानी हो, अनुशासन अहमन्यता से विमुख हो और धर्म-निष्ठा, असहिष्णुता से विरक्त हो।

विदा के इस मंगलमय अवसर पर, यदि आप हमारे हृदयो मे विरह-के सुप्त स्वरो की झकार सुन रहे है, तो उसे हमारी मद बुद्धि की अपरिपक्वता मानकर क्षमा कर दे।

विश्व के कल्याण के लिये, आपकी ज्ञान-यात्रा, सुकर, सफल सार्थक और श्रेयस्कर हो।

अमरावती

(कार्तिक शुक्ला १३, सं० २०२५ वि०) विनीत,

३ नवम्बर, १९६८ और अनुगत

(भारतीय शकाब्द १८९०—कार्तिक १२) अमरावती नगर के नागरिक

पुनः मालवा प्रान्त की ओर

इस प्रकार एक अनन्य सघीय क्षेत्र मे समता की सर्जना द्वारा अध्यात्मपूर्ण सौजन्य का सर्जन कर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात्, आचार्य देव ने मालव प्रान्त का लक्ष्य रखते हुये प्रस्थान कर दिया।

अमरावती से प्रस्थान कर आचार्य देव अभी ६ मील दूर वडोरा पहुँचे ही थे कि रालेगाव से गाधी परिवार के कुछ प्रमुख सदस्य उपस्थित हो निवेदन करने लगे "विगत लम्बी अवधि से हमारी भाभीजी श्रीमती जतनवाई जी महाभाग्यवती विदुषी महासती जी श्री नानुकु वर जी म सा. के सान्निध्य मे ज्ञानार्जन के साधनाभ्यास कर रही हैं। वैसे अभी हमारी इच्छा जल्दी दीक्षा देने की नहीं थी, किन्तु उनका आग्रह रहा कि आचार्य भगवन् एव महासती जी इसी वर्ष मालव प्रान्त की ओर पधार रहे है, पुन. ऐसा अवसर प्राप्त होना कठिन है। अतः आपश्री मालव प्रान्त की ओर प्रस्थान न कर हमारे गाव राले-गाव की तरफ पधार कर उन्हे (भाभी जी को) अपने चरणो मे शरण देने की कृपा करावे।

आचार्य देव के उदयपुर पदार्पण पर जैनदर्शन के उच्चकोटि के विश्रुत विद्वान् श्रीयुत् हिम्मतसिंह जी सरूपरिया भी आचार्य देव के इस तात्त्विक तल-स्पर्शी विवेचन से विस्मित रह गये। प्रारम्भ मे वे भी इस व्याख्या को स्वीकार नही कर पा रहे थे, किन्तु आचार्य देव ने नवनीत के उदाहरण एव तत्त्वार्थ भाष्य के प्रमाण से स्पष्ट किया तो वे कहने लगे "आचार्यश्री, आपश्री की प्रज्ञा तलस्पर्शी है। मैने बहुत उच्चकोटि के ग्रन्थो का अध्ययन किया, किन्तु इतनी गूढ विवेचना कही नही देखी।"

सिद्धों में उत्पाद व्यय ध्रौव्य

इसी परिप्रेक्ष्य मे श्रीयुत् सरूपरियाजी ने आचार्य देव के समक्ष एक दूसरी जिज्ञासा भी प्रस्तुत की, "आचार्यश्री, एक शका मेरे मानस मे कभी से चक्कर लगा रही है। वस्तु या सत् पदार्थ का लक्षण है—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। जिसमे यह लक्षण नही हो, वह पदार्थ ही नही ठहरता है। उसकी सत्ता आकाश कुसुम-वत ही होगी, किन्तु सिद्धात्मा मे यह लक्षण कैसे घटित होगा ? उनका स्थान तो अक्षय-अव्यय, अविचल एव अव्याबाध पदो ने लिया है। इस प्रश्न के समा-धान हेतु मैने बहुत से ग्रन्थो एव प्राचीनतम टीकाओ का अवलोकन किया, किन्तु तुष्टिकारक समाधान अभी तक नही मिला। किन्ही आचार्यों ने पर द्रव्य की अपेक्षा से सिद्धात्माओ मे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वीकार किया है, तो किन्हीं ने द्रव्य स्वभाव कहकर ज्ञानियो पर छोड दिया है। किन्तु इन [illegible] युक्ति-सगत समाधान नही हो पा रहा है। आपके द्वारा प्रदत्त [illegible] मूलक उत्तर से मुझे आशा बधी है कि इस जिज्ञासा का [illegible] अपने अनुभवगम्यबोध के आधार पर करने की कृपा करेंगे। क्योंकि [illegible] इसका तर्कसगत समाधान मिलना कठिन प्रतीत हो रहा है।"

आचार्य देव ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा—[illegible], इस प्रश्न पर कुछ गम्भीर चिन्तन अपेक्षित है। [illegible] है, "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत्।" यह लक्षण जिसमे घटित होता है [illegible] संज्ञा पा सकता है। इस लक्षण के अभाव मे पदार्थ [illegible] है। चूँकि सिद्धात्मा भी अपने आप मे एक मौलिक [illegible] है, [illegible] नहीं पाया जाए, यह असम्भव है। इसके अतिरिक्त [illegible] है कि पदार्थ मात्र प्रति क्षण परिवर्तनशील है। [illegible] ने द्रव्य का लक्षण किया है "गुण [illegible] गुण एवं [illegible] हैं, वही द्रव्य है। द्रव्य से रहित [illegible] गगनेन्दीवर के तुल्य ही होगा। [illegible] है। अत यह मानना अनिवार्य है कि [illegible] निश्चित रूप से होता है।

अपने हाथो से अपने पतिदेव की दूसरी शादी करके सयम मार्ग मे कदम बढाए। इसे कहते है—वैराग्य की तेजस्विता।

श्रीयुत गोलछा जी की प्रार्थना

यवतमाल मे धर्म प्रभावना की पावन सरिता प्रवाहित कर आचार्यदेव आकोला, खामगाव, बुलढाना आदि क्षेत्रो में जिनवाणी की पीयूप धारा का अभिसिचन कर आपसी सामाजिक सघर्पो का अवसान करते हुए जामनेर पधारे।

जामनेर की धर्मप्राण जनता को उद्‌वोधित कर आचार्य देव प्रस्थान करने ही वाले थे कि श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी गोलछा खीचन निवासी दर्शनार्थ उपस्थित हुए, और निवेदन करने लगे कि मुझे आप श्री से कुछ अत्यावश्यक चर्चा करनी है, अत. आप श्री आज यही विराजने की कृपा करे।

आचार्यदेव ने सयमी मर्यादा का स्मरण करवाते हुए कहा—"कुछ भाव विहार के लिये व्यक्त कर चुका हूँ, अत यहा रुकना नही हो सकता। यदि कोई आवश्यक चर्चा ही करनी हो तो आप गृहस्थ है, अगले गाँव मे भी चर्चा कर सकते है। अगला विश्राम जहा हमे ठहरना है, यहा से लगभग चार मील ही है।"

तदनुसार आचार्यदेव का प्रस्थान चार मील पर स्थित मन्दिरगाह खेडा के लिये हो गया तथा श्रीयुत गोलछाजी ने सन्ध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् उपस्थित हो वन्दनपूर्वक एकान्त मे चर्चा करने का समय मागा। आचार्य देव ने उन्हे समय दिया। चर्चा के समय प रत्न श्री सम्पत मुनि जी एव मधुर व्याख्यानी श्री धर्मेश मुनि जी भी उपस्थित थे। चर्चा प्रारम्भ करते हुये श्रीयुत् गोलछा जी ने कहा—"आचार्य श्री! मुझे इस बात का बहुत दु ख है कि पण्डित जी म. सा के साथ आप श्री ने सबध विच्छेद कर दिया। दोनो ही सप्रदाय उत्कृष्ट चारित्रनिष्ठ सप्रदाय है और इनमे पीढियो से प्रेम सबध चला आ रहा है। एक छोटी सी घटना से दोनो सम्प्रदायो मे भेद की दीवाल खडी हो गई, यह अच्छा नही हुआ है। मेरी कामना है कि दोनो चारित्रनिष्ठ सम्प्रदाए पुन एक सूत्र मे बँध जाये, मैं दोनो में पहले जैसा ही प्रेम सबध देखना चाहता हूँ। इसके लिये मेरी आपश्री से यह प्रार्थना है कि पण्डित जी म. सा. मेवाड मे विचर रहे है, और आपश्री भी अब उसी ओर पधार रहे है। अत आप दोनो महापुरुष एक साथ मिलकर इस समस्या का हल निकालने की कृपा करे। हाँ, ऐसे प्रसग पर मेरा एक निवेदन है, पहले आप दोनो महापुरुषो की एकान्त में चर्चा हो जाय, साथ में किन्ही साधु, साध्वी तथा श्रावको को रखना उपयुक्त नही है। मुझे विश्वास है कि आप श्री मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर प्रयास करने की मन.स्थिति बनायेगे।"

एवं उनके अनुचर साधु वृन्द की सेवा में

चातुर्मास-परिसमाप्ति के अभिनिष्क्रमण के अभिनन्दन में

विहार की वन्दना

श्रद्धास्पद आचार्यजी,

ज्ञान का अभ्युदय, विवेक के उषाकाल-सा आल्हाददायी होता है। अज्ञान, अविद्या और अहकार की अनेक सुलगती दोपहरियो की उष्मा पृथुल-प्रतीक्षा के पश्चात् शीतल-सुविधा के श्रावण-सी सुहावनी आपके आगमन की बेला थी। इस चातुर्मास के आमुख का आनन्द जितना अनिर्वचनीय था, उपसंहार की अपरिहार्यता का विराग, उतना ही संवेदनशील बन गया है। आखिर, इस वियोग के सक्रमण को, आपके ज्ञान-दान ने निर्वेद का पाथेय जो दिया है।

गुरुदेव :

आपका अमरावती-अधिवास, तपस्या, तप पूत कर्मठता और अनवरत जिज्ञासा के मधुमास का विष्कम्भक सिद्ध हुआ। जिस आध्यात्मिक अनुष्ठान का आह्वान आपकी तेजोमय उपस्थिति से प्रतिष्ठित हुआ, स्वाभाविक ही उसकी पूर्णाहूति अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के छठवे अधिवेशन के गौरवशाली अध्याय से प्रशसित हुई। देश के विभिन्न भागो से, अनेक श्री सघों के बहुरगी प्रतिनिधित्व के पावन-सगम का पुण्योदक जैन-समाज की एकता का अर्घ्य बन गया। इस स्नेह की भागीरथी का उत्स आपकी प्रेरणा से ही प्रवाहित होता रहा।

सदय शास्ता :

आपके प्रखर चरित्र की गरिमा, निग्रन्थो की अपराजेयता का स्मरण करा देती है। जन-जन के सतप्त मानवीय दु खो के प्रति आपका उदार अनुराग, करुणा सलिला मे अवगाहन की अनुभूति से साक्षात्कार करा देता है। सद्धर्म के आचरण पर आपका निरन्तर आग्रह, मानव समुदाय की समानता और शान्तिमय सह-जीवन के अनुसधान की अन्तत विजय का विश्वास पुन प्रस्थापित कर देता है। इसी कारण मनुष्य के देशकाल और युगीन आयाम से जटिल जीवन की दुर्बोधता को, आपके उपदेश की अलौकिकता सुगम बनाती गई, निराशा और हताशा से सत्रस्त हृदयो को आप की अभय वाणी, उल्लास और आशा का वरदान देती गई, दर्प और परिग्रह के पोषणो को, आपकी भर्त्सना सार्थक सुख के सहज आनन्द का चिरजीवी स्वर्ग अनावृत्त करती गई।

राजस्थान की ओर पधार रहे है और पडित जी म सा भी इधर ही विचर रहे है । आप दोनो महापुरुष मिलकर इस विपय को स्पष्ट कर लिरावे । हा, चर्चा आप दोनो ही करे तो अच्छा रहेगा । किन्ही भी अन्य मुनियो एवं श्रावको को साथ मे नही रखेगे तो ही बात सुलझ सकेगी, ऐसा निवेदन है ।"

"गोलछा जी, मैं तो प्रारम्भ से ही प्रत्यक्ष समाधान के पक्ष मे ही था और अब भी मै इसी पक्ष मे हूँ । सम्वन्ध विच्छेद के पत्र मे भी मैने स्पष्ट कर था कि यदि शुद्ध सैद्धान्तिक धरातल पर उत्पन्न विवादो का निराकरण हो जाय तो मैं हर समय सुसगठन हेतु तैयार हूँ, पर गोलछा जी ! ताली एक हाथ से नही बज सकती है । यदि पडित जी म सा भी उदार विचारो के साथ एकान्त मे विचार-विमर्श को तैयार होगे तो मै कभी विलग करने वाला नही हूँ । आप भी इसमे कुछ प्रयास करे ...।" आचार्य श्री ने स्पष्ट किया और गोलछा जी सन्तुष्ट हो चले गए ।

अब मै घी शक्कर खा सकूँगी

जामनेर से भुसावल, जलगाव, अमलनेर आदि क्षेत्रो मे अनेकानेक शैक्षणिक सस्थानो मे अमियधारा के द्वारा अपने निर्मल चारित्रिक यश का सौरभ प्रसृत करते हुए आचार्य देव फागणा पधारे । फागणा मे श्री उत्तमचद जी सिघी की धर्मपत्नी धर्म श्रद्धालु श्रीमती सिरेकु वर बाई ने आचार्य देव से भाव विभोरता के साथ निवेदन किया "भगवन् ! आज मै आप श्री को अपने ग्राम मे पाकर अपने आप को धन्य मान रही हूँ ।... भगवन् , मैं राजनाँदगाँव मे अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ श्रीचरणो के दर्शन हेतु उपस्थित हुई थी और वहाँ से आते समय मैंने स्वत प्रतिज्ञा कर ली थी कि आपश्री के चरणो से फागणा ग्राम की रज पवित्र होगी, तभी मै घी शक्कर खाऊँगी, अन्यथा जीवन पर्यन्त घी शक्कर नही खाऊँगी और मैंने इन दो वर्षो मे यह सोच लिया था कि अब मुझे जीवन पर्यन्त घी शक्कर खाने को नही मिल सकती है । क्योकि कहा तो राजनाँदगाँव और कहा फागणा ? न तो आचार्य भगवन् यहा पधार सकेगे और न मेरी भावना फलीभूत होगी । किन्तु भगवन् ! देखिये भक्त की अतरग पुकार भगवान को कैसे खीच कर ले आती है ? न तो आपश्री के अमरावती चातुर्मास की सभावना थी और न इधर पधारने का विचार ही था किन्तु सयोग कैसा बना, अमरावती चातुर्मास भी हुआ और आपश्री का इधर पदार्पण भी हो गया । इसमे भी विशेषता यह कि अमरावती चातुर्मास मे भी मैने आपश्री से कभी यह निवेदन नही किया कि मैने घृत शक्कर छोड दिया है । आपश्री फागणा क्या पधारे, मेरी आतरिक पुकार ने ही आपको यहा पधारने हेतु बाध्य किया है । अब मैं घी शक्कर खा सकूँगी ।" कहती हुई वह बहिन अत्यधिक गद्गद् हो गई ।

एवं उनके अनुचर साधु वृन्द की सेवा में

चातुर्मास-परिसमाप्ति के अभिनिष्क्रमण के अभिनन्दन में

विहार की वन्दना

श्रद्धास्पद आचार्यजी,

ज्ञान का अभ्युदय, विवेक के उषाकाल-सा आल्हाददायी होता है। अज्ञान, अविद्या और अहकार की अनेक सुलगती दोपहरियो की उष्मा पृथुल-प्रतीक्षा के पश्चात् शीतल-सुविधा के श्रावण-सी सुहावनी आपके आगमन की बेला थी। इस चातुर्मास के आमुख का आनन्द जितना अनिर्वचनीय था, उपसंहार की अपरिहार्यता का विराग, उतना ही संवेदनशील बन गया है। आखिर, इस वियोग के सक्रमण को, आपके ज्ञान-दान ने निर्वेद का पाथेय जो दिया है।

गुरुदेव :

आपका अमरावती-अधिवास, तपस्या, तप पूत कर्मठता और अनवरत जिज्ञासा के मधुमास का विष्कम्भक सिद्ध हुआ। जिस आध्यात्मिक अनुष्ठान का आह्वान आपकी तेजोमय उपस्थिति से प्रतिष्ठित हुआ, स्वाभाविक ही उसकी पूर्णाहूति अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के छठवे अधिवेशन के गौरवशाली अध्याय से प्रशसित हुई। देश के विभिन्न भागो से, अनेक श्री सघों के बहुरगी प्रतिनिधित्व के पावन-सगम का पुण्योदक जैन-समाज की एकता का अर्घ्य बन गया। इस स्नेह की भागीरथी का उत्स आपकी प्रेरणा से ही प्रवाहित होता रहा।

सदय शास्ता :

आपके प्रखर चरित्र की गरिमा, निग्रन्थो की अपराजेयता का स्मरण करा देती है। जन-जन के सतप्त मानवीय दुखो के प्रति आपका उदार अनुराग, करुणा सलिला मे अवगाहन की अनुभूति से साक्षात्कार करा देता है। सद्धर्म के आचरण पर आपका निरन्तर आग्रह, मानव समुदाय की समानता और शान्तिमय सह-जीवन के अनुसधान की अन्तत: विजय का विश्वास पुन:प्रस्थापित कर देता है। इसी कारण मनुष्य के देशकाल और युगीन आयाम से जटिल जीवन की दुर्बोधता को, आपके उपदेश की अलौकिकता सुगम बनाती गई, निराशा और हताशा से सत्रस्त हृदयो को आप की अभय वाणी, उल्लास और आशा का वरदान देती गई, दर्प और परिग्रह के पोषणो को, आपकी भर्त्सना सार्थक सुख के सहज आनन्द का चिरजीवी स्वर्ग अनावृत्त करती गई।

और न किसी चन्दे-चिट्ठो का। यही कारण है कि हमारे यहाँ के वयोवृद्ध श्रावक एव पुराने धूलिया के प्रतिष्ठित श्रावक भी आप श्री के प्रवचन-श्रवण को वरावर यथासमय पहुँच रहे है अन्यथा पुराने धूलिया के श्रावक ऐसे वैसे साधुओ को नही मानते है।"

और इसी प्रकार शनै शनैः सम्पूर्ण धूलिया निवासी धर्म श्रद्धालुओ मे थोडे ही दिनो मे अद्भुत धर्म जागरणा व्याप्त हो गयी। समस्त बुद्धिजीवी समाजप्रमुखो की भ्रातिया निर्मूल हो गईं। सभी के मुखों से एक ही आवाज मुखरित होने लगी—"अक्षय तृतीया एवं आगामी वर्षावास यही होना चाहिये।"

धूलिया सघ के अत्यधिक आग्रह को देखते हुये आचार्य देव को अक्षय तृतीया धूलिया मे ही करनी पडी। लगभग सतरह दिन आचार्यदेव का धूलिया प्रवास रहा। इस अवधि मे धूलिया सघ ने चातुर्मास के लिये अत्यधिक आग्रह किया एव आचार्य देव के यह समझाने पर कि "मदसौर मे दो बालाओ के दीक्षा का प्रसग है तथा उधर बीकानेर की ओर वृद्ध सन्तों का आग्रह है कि मैं उधर शीघ्र पहुँचू, अस्तु, यहाँ वर्षावास होना कठिन लग रहा है।" धूलिया सघ के वरिष्ठगण आचार्य देव को घेर कर बैठ गये और निवेदन करने लगे कि किसी भी परिस्थिति मे आपश्री को इस वर्ष महाराष्ट्र से बाहर नही निकलने देगे। आपश्री को इस वर्षावास की स्वीकृति धूलिया सघ को ही देनी होगी। एक वार महाराष्ट्र से वाहर निकल जाने के पश्चात् पुन. आप श्री का यहाँ पदार्पण असम्भव सा है। और यह भी हमारा सौभाग्य ही रहा है कि इस वर्ष आषाढ मास दो होने से अभी तक आप श्री ने आगामी चातुर्मास की कही के लिये स्वीकृति प्रदान नही की है।

आचार्य देव ने मधुर किन्तु गभीर स्वर में समझाने का प्रयास करते हुये कहा—"प्रारभ मे आप लोगो का आग्रह था कि केवल दो दिन के लिये ही धूलिया स्पर्श ले और यहाँ आने पर आप अक्षय तृतीया का आग्रह करने लगे, अक्षय तृतीया आई तो अव आप अगुली पकडते हुये पूँचा पकडने के समान चातुर्मास का आग्रह करने लगे है। आप लोगो की तृष्णा यद्यपि सात्विक है पर समय वढता ही जा रहा है, आप सवकी भावना श्रेष्ठ है, किन्तु मदसौर की दोनो वालिकाओ की तिलमिलाहट को देखते हुये अव मेरा इधर रहना उचित नही है। यदि उनके पिताश्री कही अन्यत्र दीक्षा देने का विचार कर ले तो कुछ समस्या हल हो सकती है, किन्तु ऐसा होना असम्भव लग रहा है। अत आप अधिक आग्रह न करे।"

अन्त मे धूलिया सघ ने आचार्य देव से यह आग्रह किया कि हम यहाँ से मदसौर जाकर बालिकाओ के पिताश्री से प्रार्थना करेगे कि आप इन दीक्षाओ

आचार्य देव ने उन्हे समझाते हुये कहा—"रालेगाव मेरे गतव्य मार्ग से बहुत एकान्त मे पडता है, मुझे कुछ लम्बा विहार करना है, और फिर ग्रीष्म का प्रकोप बढ जाता है, अत आप किसी ऐसे स्थान का चयन कर ले, जो मेरे मार्ग मे आता हो।"

"गुरुदेव हमारा बहुत बडा परिवार है, और हम चाहते है कि इस सुन्दर अवसर पर हम अपने द्रव्य का सदुपयोग करे, यानी हमारी इच्छा है कि हमारी ओर से ही दीक्षा महोत्सव की सम्पूर्ण व्यवस्था हो, और दूसरा सघ हमे ऐसा नही करने देगा। हाँ, यवतमाल आपके मार्ग से अधिक दूर नही पडता है, वहाँ भी हमारा घर है, अत आपश्री यवतमाल होकर आकोला की ओर पधारने की कृपा करे। तब तक विदुषी महासती जी श्री नानुकु वर जी आदि भी हिंगनघाट से विहार कर यवतमाल पधार जायेगी।"

तब आचार्यदेव का यवतमाल पदार्पण हुआ। यवतमाल मे श्रीमती जतनकु वर बाई की दीक्षा के साथ-साथ विगत लम्बे अर्से से वैराग्य वृत्ति मे चल रहे श्रीमान् बाबूलाल जी अग्रवाल, जिन्हे कि रायपुर निवासी श्रीमान् सेठ केवलचद जी आज्ञा पत्र के साथ लेकर उपस्थित हुए, की भी दीक्षा हजारो की जनमेदनी के समक्ष उल्लासमय वातावरण मे सपन्न हुई।

इधर यवतमाल मे दीक्षाए सम्पन्न हुई और उधर आचार्य देव की विशेष अनुमति के द्वारा बीकानेर मे विराजित स्थविर पद विभूषित सूरजमल जी म सा के श्रीमुख से तथा महान् सेवा भाविनी महासती जी श्री पेपकवर जी आदि महासतिया जी के सान्निध्य मे स २०२५ फाल्गुन शुक्ला पचमी को बीकानेर निवासी श्री किसनलाल जी गोलछा की सुपुत्री श्रीमती चमेली बाई तथा बीकानेर निवासी श्री सन्तोकचन्द जी बैद की सुपुत्री कुमारी सुशीला (सेवा-भावी श्री पेपकवर जी म सा की ससार पक्षीया भाणजी) की भागवती दीक्षा हजारो की जनमेदिनी के समक्ष बीकानेर मे ही सम्पन्न हुई।

इसके कुछ अनन्तर ही अर्थात् स २०२६ वैशाख शुक्ला ७ को आचार्य देव की संसार पक्षीया भगिनी श्रीमती छगन कँवर जी की दीक्षा कानोड मे विराजित स्थिवर पद विभूषिता श्री गट्टु कँवर जी म सा एव भगिनी साध्वी श्री धापू कँवर जी के सान्निध्य मे सम्पन्न हुई, तथा इसी दिवस रतलाम निवासी श्री कान्तिलाल जी मेहता की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रकान्ता बाई की दीक्षा ब्यावर मे शासन प्रभाविका महासती जी श्री गुलाबकँवर जी म सा की सान्निध्य मे सम्पन्न हुई।

स्मरणीय है कि श्रीमती चन्द्रकान्ता बाई ने अपनी अष्ट वर्षीया सुपुत्री कुमारी मनोरमा को छोडकर (जिसने बाद मे सयम ग्रहण कर लिया) तथा

सगठन ठोस बन जाये और आचार्यश्री भी श्रमण सघ मे पुनः सम्मिलित हो जाएँ। इसके लिये आवश्यक है कि आचार्यश्री के साथ ही किन्ही श्रमण सघ के वरिष्ठ अधिकारी सन्तो का भी यहाँ चातुर्मास कराया जा सके ताकि उनके आपस मे विचार-विमर्श हो और एकता का सूत्रपात होकर सुसगठन को बल मिले। और इसके लिये यदि आप चाहे तो मालव केशरी श्री सौभाग्यमलजी म० सा० को धूलिया लाने का प्रयास किया जा सकता है।"

बैठक मे उपस्थित किसी सज्जन ने जिज्ञासा के स्वर मे श्रीयुत बाफनाजी से पूछा—"श्री सौभाग्यमलजी म० सा० के चातुर्मास का तो निर्णय हो चुका है, वे अब यहाँ कैसे आ सकते है ?"

श्री बाफनाजी ने सहज विश्वास भरे स्वर मे कहा—"आप इसकी चिन्ता न करे, महाराजश्री का चातुर्मास परिवर्तन कराना मेरे हाथ मे है। मैं सब कुछ कर लूँगा। बस आप तो अपने सघ की वैसी भूमिका निर्मित कीजिये। चातुर्मास दोनो का ही साथ होना चाहिये।"

इस प्रकार बैठक मे अपनी ओर से सुन्दर वातावरण का निर्माण कर श्री बाफनाजी एव धूलिया सघ के अन्य प्रमुख सज्जनो का एक शिष्ट मण्डल आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुआ।

अत्यन्त विनम्र एव आग्रह पूर्ण शब्दो मे श्री बाफनाजी ने आचार्य देव से निवेदन किया—"आचार्यश्री, आपको इस वर्ष का वर्षावास धूलिया मे ही करना होगा, क्योकि इस वर्षावास मे अन्यान्य उपलब्धियो के साथ श्रमण सस्कृति के अभ्युदय हेतु श्रमण सगठन को भी बल मिलेगा। हम आज आपश्री के चरणो मे यही प्रार्थना करने आये है कि आपश्री के इस वर्षावास मे श्रमण सघ मे आई हुई विकृतियाँ एव विघटन दूर हो और पुन एक सुदृढ सगठन की भूमिका बन सके। इसके लिये हमारा निवेदन है कि इस वर्ष आपश्री एवं श्री सौभाग्यमलजी म० सा० दोनो का सयुक्त चातुर्मास धूलिया मे हो और आप दोनो इन चार मास मे खूब विचार-विमर्श पूर्वक एकता के प्रयास करे।"

आचार्य देव ने श्री बाफनाजी के विचारो को गभीरता पूर्वक सुना एव सहज स्मित के साथ उत्तर दिया—"आपके विचार अत्युत्तम है, कौन शासन प्रेमी यह चाहेगा कि सुश्रमण सगठन न हो ? किन्तु आपकी और हमारी चर्चा मात्र से तो ऐसा सभव नही है। मैं आपसे पूछता हूँ कि मान ले हमने सयुक्त चातुर्मास किया और हम किसी निर्णय पर पहुँचे, किन्तु आप विश्वास के साथ कह सकते है कि श्री मालवकेशरीजी म० सा० के निर्णय को श्रमण सघ के अधिकारी एव अन्य मुनि प्रवर विना किसी नौक झौक के स्वीकार कर लेगे ? यदि निश्चित रूप मे ऐसी विश्वस्तता की स्थिति बन सकती हो तो मैं बडी प्रसन्नता के साथ सयुक्त चातुर्मास करने हेतु प्रस्तुत हूँ। मैं आपको बता देना

आचार्य श्री ने गभीर स्वर मे उत्तर देते हुए कहा—"गोलछा जी, यह दु ख आप ही को हो रहा है, ऐसी बात नही है। इस घटना से जितने शासन प्रेमी एव सुदृढ चरित्र मे आस्था रखने वाले है, सभी को दु ख हुआ है। किन्तु सयमी जीवन की सुरक्षा एव शास्त्रीय मर्यादाओ का सम्यग् निर्वाह करने हेतु मुझे अनुशासनात्मक कदम उठाना पडा। आप जानते है कि इस प्रकरण का प्रारम्भ कहाँ से हुआ था ? यदि आप जैसे पण्डित जी म सा के प्रति विशेष आस्था रखने वाले सुज्ञ श्रावक पण्डित जी म सा को उचित सलाह देते तो शायद यह स्थिति यहाँ तक नही पहुँचती। इस विषय मे पत्र-व्यवहार का प्रारभ पहले पण्डित जी म सा ने किया। गगाशहर मे घटने वाली घेवर मुनि जी की घटना, एक रतन मुनिजी की घटना बहुत समय पूर्व ही मेरे कर्ण गोचर हो गई थी, किन्तु मैं उसे पचा गया और यही चिंतन किया कि पण्डित जी म सा से प्रत्यक्ष मिलने पर चर्चा करके स्पष्टीकरण कर लिया जायेगा। ठीक इसी प्रकार यदि पण्डित जी म सा कुछ धैर्य रखते और पत्र लिखवाने की शीघ्रता नही करते तो यह विवाद नही बनता। कदाचित् उन्होने मुनि श्री इन्द्रचन्द जी के विषय मे कुछ सुना तो अपनी दीर्घ दृष्टि से चिंतन कर उसे प्रत्यक्ष के प्रसग से स्पष्ट कर लेते, किन्तु ऐसा न करके पडित जी म सा ने निश्चयात्मक भाषा मे आरोपबद्ध पत्र लिखवाया और उसके स्पष्टीकरण के लिये यहा से पुछवाया गया तो कुछ भी स्पष्ट उत्तर नही दिया। तब विवश होकर मुझे समुचित विश्लेषण के साथ व्यवस्था देने को बाध्य होना पडा। अब आप ही सोचिये, एक बार विषय पत्राचार मे उलझ जाता है तो उसे बिना समाधान हुए कैसे दबाया जा सकता है ?"

"आचार्य श्री, आपका कथन यथार्थ है। मैं भी इस पक्ष मे नही था कि इस प्रकरण को इस प्रकार पत्र व्यवहार मे डाला जाए, क्योकि पत्र व्यवहार के द्वारा विषय सुलझने के बजाय और अधिक उलझ जाता है, और हुआ भी वैसा ही। जिस समय इन्दौर से वह पत्र लिखवाया जा रहा था, उन्नीस व्यक्तियो मे मैं अकेला इसका विरोधी था, किन्तु अन्य कुछ प्रमुख साधु-साध्वी एव श्रावक वर्ग मे कुछ उत्तेजनात्मक स्थिति थी, अत मेरी वहा नही चल सकी और मेरी इच्छा के विरुद्ध पडित जी म सा को यह पत्र लिखवाना पडा।" गोलछा जी ने अपने विचार स्पष्ट किये।

"आप विचार करिये, उत्तेजना मे किया गया कार्य क्या होता है ? चन्द व्यक्तियो की उत्तेजना का शिकार पडित जी म सा को होना पडा और इससे उनकी स्वय की प्रतिष्ठा को ही कितनी अधिक ठेस लगी है।" आचार्य देव ने विषय को समाप्त करते हुये कहा।

तब गोलछा जी ने पुन निवेदन के स्वर मे कहा "महाराज श्री, अब जो कुछ हुआ सो हुआ। अब मेरी आप श्री से यही प्रार्थना है कि आप भी अव

विपय मे आप लोगो को विशेष चिन्तन करना चाहिये ।" आचार्य देव के गम्भीरतम उत्तर को सुनकर श्री सांचालालजी बाफना तो वहाँ से लौट गये। किन्तु धूलिया सघ के कुछ प्रमुख सज्जन वही रुक गये और आचार्य देव से निवेदन करने लगे—कि "गुरुदेव, श्री साचालालजी वास्तव मे कुछ और ही विचार लेकर आये थे, किन्तु आपश्री ने तो इतना स्पष्ट एव युक्ति सगत उत्तर दिया कि वे निरुत्तर एव उदास होकर चले गये। वे इस उद्देश्य को लेकर बॉम्बे से आये थे कि धूलिया मे आपश्री का चातुर्मास नही हो सके। इसके लिये उन्होने यह युक्ति निकाली कि धूलिया वालो को ऐसे सीधा निषेध करने पर तो वे मानने वाले नही है। अत. प्रकारान्तर से सगठन की बात रख देने से श्री नानालालजी (आचार्यश्री) मानेगे नही, तो धूलिया वालो को समझाया जा सकेगा कि "देखो ये सगठन के विरोधी हैं—इनका चातुर्मास करवा कर हमें धूलिया मे फूट के बीज नही बोना है। किन्तु आपश्री ने तो सुसंगठन के लिये अपनी पूर्ण तैयारी बताई और पूर्व मे किये गये प्रयासो का भी उल्लेख कर दिया।"

गुरुदेव, आपश्री के इस निश्चल भाव से वे चाहे असन्तुष्ट हुये हो किन्तु हमारा रहा सहा सन्देह भी समाप्त हो गया है और हृदय में दृढ श्रद्धा प्रतिस्थापित हो गई है। अब तो आपश्री को किसी भी स्थिति मे यह चातुर्मास यहीं करना होगा। अब हम श्री बाफनाजी को भी यह दिखा देना चाहते है कि हम चरित्र एव गुणो के उपासक है, केवल सम्प्रदाय के नही। अब हमारा शिष्ट मण्डल भी तैयार हो चुका है मन्दसौर जाने के लिये। अत· आपश्री कृपा करके अभी चातुर्मास की स्वीकृति के लिये शीघ्रता नही करावे। इतना निवेदन कर धूलिया सघ के कुछ वरिष्ठ सदस्य श्री इन्द्रभानजी रुनवाल, भीखमचदजी चौधरी, नेमीचदजी बोरा, उत्तमचदजी साड, कन्हैयालालजी छाजेड़ आदि सज्जनो ने मन्दसौर के लिये प्रस्थान कर दिया किन्तु तीन दिन मे पुन निराश लौटे। आचार्य देव ने उन्हे कहा—"मैं आपको पूर्व मे ही सकेत दे चुका था कि आप आने-जाने की क्रिया न करे।"

ऐसी स्थिति के होने पर भी महाराष्ट्र प्रान्त का सम्पूर्ण सघ जहाँ-जहाँ आचार्य देव का विचरण हुआ था, अपने आग्रह पर अडा रहा कि यह वर्षावास महाराष्ट्र मे ही होना चाहिये। चातुर्मास विनती करने वाले सघो मे अमलनेर, फागणा, दोण्डायचा, भुसावल, जलगाव, धूलिया, नन्दरवार आदि प्रमुख थे जो अपने-अपने ही क्षेत्रो मे चातुर्मास कराने को उत्सुक थे।

आचार्य देव ने जब समस्या को उलझते हुये देखा तो चातुर्मास की कही भी स्वीकृति दिये बिना धूलिया से प्रस्थान कर दिया और आगे आगे एक छोटे से ग्राम नरडाना मे आगार सहित सम्वत् २०२६ के वर्षावास की स्वीकृति

आचार्यदेव ने उक्त बहिन की भक्तिपूर्ण त्याग भावनाओ को सुनकर मधुर मुस्कान के साथ सामान्य-सा उत्तर दिया—"बहिन जी, यह तो सयोग की ही बात है कि मुझे अमरावती चातुर्मास करना पडा और फिर इधर से निकलना पडा। भक्तिपूर्ण विचारो का अदृश्य सचार एक दूसरे को अधिक प्रभावित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हो सकता है कि आपकी भक्तिमयी आत्मा ने पुकारा और तभी मुझे इधर आना पडा।"

धूलिया की धूल भी पदचरण से पावन

फागरा मे धर्मोद्योत कर आचार्यदेव का धूलिया पदार्पण हुआ। चूंकि धूलिया परम्परा की दृष्टि से ऋषि सप्रदाय का अनन्य उपासक क्षेत्र था और इस आधार पर वह श्रमरा सघ का कट्टर क्षेत्र था, इसलिये प्रारभ के दो तीन दिन तक अधिक अभिरुचि परिलक्षित नही हुई किन्तु इस अवधि मे कुछ प्रमुख स्थानीय बन्धु श्री नेमीचद जी बोरा, कन्हैयालाल जी छाजेड आदि आचार्य देव के विशेष सम्पर्क मे आये और दूसरी ओर आचार्य देव के जादू भरे प्रवचनो की सौरभ भी प्रसृत होने लगी। परिणामत आचार्य देव के निर्मल चरित्र एव अगाध ज्ञान के प्रति श्रद्धा एव आकर्षण का भाव बढने लगा। कुछ बुद्धिजीवी समाज प्रमुखो के स्वर मुखरित हुए और श्रमण सघ से सदर्भित प्रश्नो का एक वातावरण चला। इस पर आचार्यदेव के सहज सत्य का उद्घाटन करने से भ्रातियो का अवसान होने लगा।

श्रीयुत् बोहरा जी एव छाजेड जी तो एक दिन श्रीचरणो मे उपस्थित हो दबी आवाज मे कहने लगे कि "आचार्य श्री, क्षमा करे, हम बहुत बडी भ्राति मे थे। आप श्री का समुचित सत्कार नही कर पाये। अब हमे इस बात का मर्मान्तिक पश्चात्ताप है। हमे इधर-उधर से यह बताया गया था कि "नानालाल जी बहुत अहकारी हैं। वे धनाधीशो से ही बात करते हैं, छोटे गरीब व्यक्तियो से तो वे बोलते ही नही। श्रमण-सघ मे फूट के बीज बोकर उसे टुकडो मे बाँटने वाले ये नानालाल जी ही हैं, आदि। किन्तु गुरुदेव हमने इन ४-५ दिनो मे देख लिया कि हमारी सारी धारणायें मिथ्या सिद्ध हुई हैं। हमने देखा है आप तो समता की साकार मूर्ति हैं। छोटे, बडे अथवा धनी और दीन के प्रति भेदभाव आपको छू तक नही गया है। आप उत्कृष्ट-चारित्रनिष्ठ महापुरुष हैं और सगठन के विषय मे आपके विचार हमें बहुत पसन्द आये। केवल बाडाबधी का सगठन आपश्री को ग्राह्य नही है। आप शुद्ध सैद्धान्तिक धरातल के आधार पर ठोस सगठन चाहते हैं और होना भी ऐसा ही चाहिये। जब तक चारित्रिक एव अनुशासनात्सक स्थिति सुदृढ नही बन जाती है, सुसगठन कैसे वन सकता है ?

"गुरुदेव आपकी सबसे बडी विशेषता हमने देखी कि आप श्री किसी भी प्रकार के व्यर्थ प्रपच मे नही पडते हैं न किसी संस्था का चक्कर आपके साथ है,

मन्दसौर चातुर्मास

मन्दसौर नई आबादी मे आचार्य देव, नगरी निवासी पुण्यशील श्रावक श्री मोतीलालजी तितरोदिया के मेन रोड स्थित विशाल भवन मे विराजे। श्रोताओ के लिये भवन के समक्ष मुख्य मार्ग को आधा घेरते हुये विशाल प्रवचन-मण्डप बना हुआ था। इस वर्षावास के स्मरणीय प्रसगो मे एक था प्रवचन-मण्डप का विस्तार किया जाता रहा और वह श्रोताओ की दृष्टि से छोटा पडता गया, अर्थात् आचार्य देव के प्रवचन हेतु हजारों की भीड उमड पड़ना सामान्य बात थी। विशेष कर पर्युषण एवं अधिवेशन आदि के प्रमुख प्रसगो पर बाल कवि वैरागी, सूचना प्रसारण मंत्री म० प्र०, जिला काग्रेसाध्यक्ष एव राजस्थान के माननीय मुख्य मंत्री श्री मोहनलालजी सुखाडिया आदि वरिष्ठ राजनेताओ ने आचार्य देव के प्रवचन-पान एव विचार-चर्चा द्वारा मार्ग-दर्शन प्राप्त किया। इसी प्रकार डॉक्टर, वकील, प्राध्यापक, प्राचार्य, वैष्णव सत, सच्चिदानन्द, याज्ञनिक आदि अनेक बुद्धिजीवियो ने आचार्य देव के सान्निध्य मे अपनी बुभुक्षित प्रज्ञा को सनाधित किया।

एक अबूझ उपलब्धि जिसे चमत्कारिक सज्ञा दी जा सकती है, यह थी कि इस वर्षावास मे अतिवृष्टि की स्थिति अधिक रही किन्तु विशेषता यह थी कि प्राय: आचार्य देव के प्रवचन के पूर्व अथवा पश्चात् ही मेघ अपना कार्य प्रारम्भ करते। जब तक आचार्य देव की पीयूष-धारा का अभिसिन्चन चलता रहता, मेघ भी मानो उसी शान्त भाव से पान कर आप्लावित हो जाते।

अपवर्ग साधना के प्रमुख अंग त्याग-प्रत्याख्यानो की दृष्टि से भी यह वर्षावास स्मरणीय स्तर पर रहा। अनेक मुमुक्षु आत्माओ ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर साधना के कठोरतम पथ पर पद चरण प्रारम्भ किया। इसी प्रकार अनेक बन्धुओ ने दहेज प्रथा आदि सामाजिक रूढ़ियो का परित्याग कर समाज के समक्ष अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

इस वर्षावास का एक अविस्मरणीय प्रसंग था, कुमारी कुसुम एव कुमारी प्रेम का भागवती दीक्षा महोत्सव। सच पूछें तो मन्दसौर वासियो को आचार्य देव के चातुर्मास का स्वर्णावसर प्राप्त होने का सम्पूर्ण श्रेय इन दोनो बालिकाओ को ही जाता है। दोनो बालाओ की उच्चतम भावना एव पिता

का स्वर्णावसर धूलिया सघ को दीजिये। हमे विश्वास है कि वे उदारता करेंगे और हमारी भावना फलवती हो जावेगी। अत आप श्री से निवेदन है कि जब तक हमारा शिष्टमडल मदसौर से लौटकर न आ जाए तब तक आप श्री चातुर्मास की कही के लिये स्वीकृति न दे।

आचार्य प्रवर ने निषेध के स्वर में कहा—"आप व्यर्थ आवागमन की क्रिया न करे तो ही श्रेष्ठ है। बालिकाओ के पिता श्री चान्दमल जी कुदाल इस स्थिति में मानने को तैयार नही हैं।" किन्तु धूलिया सघ अपने आग्रह को दुहराता रहा और मंदसौर जाने हेतु एक वरिष्ठ व्यक्तियो के शिष्टमण्डल का भी गठन कर लिया।

साम्प्रदायिकता के ताने-बाने

इस विषय की परिचर्चा उस श्रमण वर्ग तक पहुँची जो श्रमण संघ की दृष्टि से धूलिया क्षेत्र पर अपना आधिपत्य मानते थे तो वे कुछ चिंतित हो उठे। यदि नानालाल जी का चातुर्मास धूलिया मे हो जायेगा तो क्षेत्र हमारे हाथो से निकल जाएगा, क्योकि वे जानते थे कि आचार्यदेव के चरित्र एव ज्ञानधारा का प्रभाव अबूझ एव अलौकिक होता है। अत प्रकारान्तर से यह प्रयास प्रारभ किया कि धूलिया सघ आचार्य श्री के चातुर्मास की विनती न करे, और तद्हेतु धूलिया नगर के धनी मानी लब्ध प्रतिष्ठ श्रावक श्री सचालाल जी बाफना जो कि इस समय बम्बई मे रहते थे, प्रेरित हो शीघ्र धूलिया पहुँचे।

धूलिया सघ का वातावरण देखकर श्री बाफनाजी विचार मे पड गये कि अब इस सघ को कैसे समझाया जाये। सहसा यह कह देने पर कि चातुर्मास नही कराना है तो लोग भडक जायेंगे। उन्होने शीघ्र धूलिया सघ की एक बैठक बुलाई। बैठक मे श्री बाफनाजी ने अपना विषय प्रस्तुत करते हुये कहा—"देखिये धूलिया सघ महाराष्ट्र प्रान्त का एक माना हुआ श्रमण सघीय सघ है। श्रमण सघ की सुदृढ स्थिति के निर्माण मे इनका गौरवशाली योगदान रहा है।

अब आप लोग आचार्य श्री नानालालजी के चातुर्मास की विनती कर रहे हैं, जो कि श्रमण सघ के बाहर हैं। मैं इस चातुर्मास का विरोध नही कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि व्यापक दृष्टिकोण एव उदार विचारो के आधार पर आचार्यश्री का चातुर्मास यहाँ होना चाहिये, किन्तु इस चातुर्मास मे धूलिया सघ की क्या भूमिका रहेगी, इस पर हम गभीरतापूर्वक विचार कर ले।

मेरा दृष्टिकोण है कि धूलिया सघ इस चातुर्मास के द्वारा भी श्रमण सघ को दृढ बनाने मे अपना सबल दे सकता है। हम यह प्रयास करे कि आचार्यश्री के इस वर्षावास मे ऐसा वातावरण बनाया जाए कि श्रमण सघ का

आचार्य देव ने श्री जमनालालजी से अनुमति चाही। प्रारम्भ मे वे समझाने की दृष्टि से इकार करते रहे, किन्तु अन्त मे उन्होने स्वीकृति दे दी और उस आदर्श परिवार की आदर्श बाला ने भी आचार्य देव के चरणो मे अपने आपको समर्पित करने का दृढ सकल्प ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार पीपल्या मडी में धर्म जागरण कर आचार्य देव का नारायण गढ, महागढ आदि क्षेत्रो मे धर्म-आराधना का सरस छिडकाव करते हुए रामपुरा पदार्पण हुआ। रामपुरा मे कवि हृदय एव व्यापार की दृष्टि से जौहरी श्री समर्थमलजी डागरिया के सत्प्रयत्नो से महाविद्यालय छात्रवर्ग एव महाविद्यालय प्रतिनिधियो के मध्य आचार्य देव का "शिक्षा मे अध्यात्म का स्थान" विषय पर मर्मस्पर्शी प्रवचन हुआ। परिणामत: बुद्धिजीवियो मे एक धर्म-क्रान्ति-सी उत्पन्न हो गई और प्रबुद्ध वर्ग तथा अधिकारी वर्ग की माँग पर कुछ प्रवचन सदर बाजार के मध्य हुए। रात्रि तत्त्व-चर्चा मे भी श्री डागरियाजी ने अल्पारम्भ-महारम्भ से सन्दर्भित तथा अनेक प्रकार की अपनी जिज्ञासाओ का समीचीन समाधान प्राप्त कर सुन्दर तत्त्व-मीमासा के वातावरण का निर्माण किया।

उदयपुर में सम्मेलन

रामपुरा मे अद्‌भुत अध्यात्म-लहर प्रसृत कर आचार्य देव मनासा, नीमच, छोटी सादडी, कानोड, डूँगला आदि शहरो मे एवं ग्रामो मे अपने ज्ञान एवं चारित्र की अनुपम रश्मि विकीर्ण करते हुए अपने आचार्यत्व की जन्मस्थली उदयपुर पधारे।

उदयपुर क्षेत्र का तत्कालीन वायु मण्डल धार्मिक आराधना की दृष्टि से अत्यधिक सुरम्य मनोभिराम बन गया था। उस समय महामहिम तपोनिधि स्वर्गीय आचार्य देव श्री हुक्मीचदजी म० सा० की ऐतिहासिक परम्परा के श्रमण वर्ग का एक लघु सम्मेलन ही आयोजित हो गया था। तत्काल समीपवर्ती क्षेत्रो मे भ्रमणरत लगभग ६६ साध्वियो एव ११ सन्तो की उपस्थिति हो गई थी। आचार्य देव के नेतृत्व मे इस सुन्दर सम्मेलन के समुचित उपयोग की दृष्टि से समस्त साधु-साध्वी वर्ग के समक्ष श्रमण मर्यादाओ के प्रतिपादक ग्रन्थ (समाचारी) का सम्यग् अवलोकन किया गया। साथ ही समय के नाम पर श्रमण-मर्यादाओ मे आने वाली विकृतियो से श्रमण वर्ग किस प्रकार अपने आपको सुरक्षित रख सके, एतदर्थ कुछ नूतन मर्यादाओ का सग्रन्थन भी अपने आप मे श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु उठाया गया। यह एक ठोस कदम था। इसी प्रकार अनेकानेक सामयिक प्रश्नो के उत्तर, जो श्रमण-श्रमणी वर्ग के समक्ष आम बुद्धिजीवियो द्वारा हुआ करते थे, आचार्य देव ने सुन्दर बोधगम्य सामयिक समाधान पूर्वक प्रस्तुत किये और युगीन जिज्ञासाओ को सहज समाहित किया।

चाहता हूँ कि मैं सुसगठन का किसी से कम पक्षपाती नही हूँ। मेरी भावना है कि सगठन किसी सैद्धान्तिक ठोस धरातल के आधार पर हो ताकि वह सुदीर्घ कालीन स्थायित्व प्राप्त कर सके।"

आचार्य देव के सक्षिप्त, स्पष्ट किन्तु सचोट उत्तर को सुनकर श्रीमान् बाफनाजी कहने लगे—"यह तो कैसे हो सकता है ? आप दोनो के चर्चा के निष्कर्ष को फिर अन्य श्रमण सघीय मुनिवरो के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा और वे सब जब किसी सम्मेलन के माध्यम से एकत्रित होगे तभी किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकेगा। अभी ऐसी स्थिति परिलक्षित नही हो रही है कि श्रमण सघीय मुनिवर श्री सौभाग्यमलजी म० सा० को इतना अधिकार लिखित रूप मे सौंप दे।"

आचार्य देव ने गम्भीर स्वर मे कहा—"फिर आप विचार करिये, सयुक्त चातुर्मास मे क्या अर्थ सिद्ध होने वाला है ? वार्ता का जहाँ तक प्रश्न है श्री सौभाग्यमलजी म० सा० से मैं पूर्व मे रतलाम मे तथा इन्दौर मे मिल चुका हूँ और अपने विचार उनके समक्ष रख चुका हूँ। दूसरी बार के मिलन मे वे स्वय निराश स्वर मे कह चुके है कि अन्य मुनिवर मेरी हितप्रद बात स्वीकार करने को तैयार नही है।

इसी प्रकार रतलाम चातुर्मास मे श्री बद्रीनारायणजी शुक्ल भी मिले थे और तत्कालीन उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म० सा०, जो उस समय मनोनीत आचार्य माने जाते थे, से मिलने के सम्बन्ध मे बातचीत हुई। उनके समक्ष भी मैने अपने ये ही विचार रखे थे कि क्या अन्य सभी श्रमण सघीय मुनिवर श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० को यह अधिकार देने को तैयार है कि उनके निर्णय को चतुर्विध सघ स्वीकार करेगा ? इधर से मै तो अपने आप मे विश्वस्त हूँ और विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मुझ मे आस्था रखने वाला चतुर्विध सघ मेरे निर्णय को स्वीकार कर लेगा। यदि श्री आनन्द ऋषिजी म० सा० को भी यह अधिकार मिल जाता है तो मैं चातुर्मास समापन के पश्चात् उस दिशा मे विहार कर किसी भी स्थल पर मिल सकता हूँ। तब श्री शुक्लजी ने भी वही उत्तर दिया जैसा कि अभी आपने दिया। उनका भी कहना था कि अभी श्रमण सघ के सदस्यो की इतनी सुदृढ भूमिका परिलक्षित नही हो रही है।

इस प्रकार सुसगठन के सन्दर्भ मे पूर्व मे भी बहुत प्रयास किये जा चुके हैं। तब भी तत्कालीन मनोनीत आचार्य को भी पूर्ण अधिकार प्राप्त नही हो सका। तो अभी श्री सौभाग्यमलजी म० सा० को अधिकार मिलना भी कठिन ही लगता है और ऐसी स्थिति मे हम सयुक्त चातुर्मास भी करे और किसी ठोस निर्णायक भूमिका पर नही पहुँच सके तो उल्टे हँसी के पात्र बनते है। इस

देव के हृदयस्पर्शी उपदेश एव भावात्मक व्यक्तित्व से प्रभावित हो लगभग चार सौ पचास कैदियो ने प्रतिज्ञा ग्रहण की कि "पुन. कभी ऐसी अपराध पूर्ण प्रवृत्ति नही करेगे कि फिर से द्वितीय बार इस चार-दीवारी (कारागृह) के मध्य पुन. आना पडे ।" इसी प्रकार अनेको बन्धुओ ने शराब, मास, वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनो का भी परित्याग किया । अनन्तर आचार्य देव के कारागृह से बाहर आने के पश्चात् उदयपुर के धनी-मानी लब्ध प्रतिष्ठित सेठ श्री लक्ष्मीलालजी सिरोहिया उपाध्यक्ष उदयपुर सघ ने बदियो की स्थिति से द्रवित हो उन्हे तथा समस्त कारागृह कर्मचारी वर्ग को मिष्ठान्न का भोज दिया ।

आचार्य देव के इसी उदयपुर प्रवास काल मे सिन्धी समाज के प्रतिष्ठित धनी-मानी युवा बन्धु श्री लक्ष्मणदास सिन्धी एव उनके एक मित्र ने आचार्यश्री का सामीप्य प्राप्त कर दुर्व्यसनो से मुक्ति प्राप्त की और जैनत्व के सस्कारो से अपने-आपको उद्भासित किया । प्राय: प्रति दिन मद्य-मास के उपयोग करने-वाले व्यक्ति के हृदय का, जो कि एक ऐसे समाज मे जीता है, जहाँ पद-पद पर प्रतिज्ञा के विपरीत वातावरण में बिताना पडता है, परिवर्तित हो जाना अपने आप मे एक विशिष्ट घटना है । अनेक युवा-युवतियो द्वारा दहेज लेने-देने पर विवाह नही करने की प्रतिज्ञा भी आचार्य देव के मर्मस्पर्शी प्रवचनो का ही अचूक प्रभाव है ।

इसी प्रवास काल मे एक दिन सामूहिक दयाव्रत का आयोजन रखा गया, जिसमे लगभग ११११ व्यक्तियो ने दयाव्रत करके अद्भुत धार्मिक वातावरण का सर्जन कर दिया ।

इसी प्रकार १९ व्यक्तियो द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत आदि त्याग-प्रत्याख्यानो के वातावरण मे उदयपुर का उन्तीस दिन का शेष काल पूर्ण हुआ ।

इस प्रकार झीलो एव फव्वारो की नगरी उदयपुर को अपनी अनुपम आत्म-शान्ति प्रदायिनी अमिय-ज्ञान-धारा मे अभिसिञ्चित कर तथा अनेक मुमुक्षु आत्माओ के अन्तरग मे ज्ञानालोक का उद्भव कर आचार्य देव होली चातुर्मास हेतु रतलाम पधारे ।

रतलाम मे ब्यावर, बडावदा, बीकानेर, धूलिया, बडी सादडी, नीमच, [illegible] आदि अनेक सघो की आगामी वर्षावास हेतु साग्रह विनतियां [illegible] किन्तु बडी सादडी सघ का पलडा अधिक वजनदार रहा और आचार्य देव ने [illegible] इस वर्ष की स्वीकृति बडी सादडी के लिये दे दी ।

मन्दसौर के लिये प्रदान कर दी, किन्तु उस समय धूलिया संघ के आबाल वृद्धो की आँखो से प्रवाहित अश्रुधारा दर्शनीय ही थी।

इस प्रकार धूलिया सघ को साश्रुनयन एव अतृप्त ही छोड कर आचार्य देव ने मन्दसौर हेतु प्रस्थान कर दिया। मार्गवर्ती शाहदा, खेतिया, सेंधवा, मनावर, धार आदि छोटे नगरो तथा महाराष्ट्र एव कुछ मालव प्राप्त के ग्रामो में अपूर्व धर्मोद्योत करते हुए आपश्री का रतलाम पदार्पण हुआ।

आचार्य देव का सात दिन का रतलाम प्रवास अनूठा एव आकर्षक रहा। प्रतिदिन प्रवचन एवं प्रश्नोत्तरो की छटा धर्म स्थान के समक्ष बने मण्डप को बहुत छोटा बना देती थी। इन सात दिवसो ने पर्व पर्युषण का रूप ले लिया था। धर्माराधना एवं त्याग प्रत्याख्यानो की झडी सी लग गई। विशेष कर युवा वर्ग पर आचार्य देव के व्यक्तित्व का अबूझ प्रभाव पडा, परिणामत. धर्म से अनेक अनभिज्ञ युवक धर्मोन्मुख हुए।

एक बुद्धिजीवी एम. ए, एल-एल बी के प्रबुद्ध छात्र श्री अशोककुमारजी खाविया जो कि धर्म-जीवन से कोसो दूर थे, पर आचार्य देव का इतना जादू-सा प्रभाव पडा कि वे अपने अध्ययन को भूलकर रतलाम से मन्दसौर तक आचार्य देव के साथ पाद विहार मे चलते रहे। धर्म, विज्ञान, ध्यान एव योग के सम्बन्ध मे अति गूढ एवं हृदय-स्पर्शी चर्चा श्री अशोकजी ने आचार्य देव से की और तत्सम्बन्धी अपनी बद्धमूल धारणाओ को रूपान्तरित किया। श्री अशोकजी की धार्मिक आस्था का प्रभाव सम्पूर्ण खाबिया परिवार पर पडा। परिणामत. श्री गेन्दालालजी, श्रीमती रोशनदेवी का पूरा खाबिया परिवार अध्यात्म की ओर उन्मुख हो गया। आचार्य देव के समाज परिष्कार सम्बन्धी प्रवचनो का उन पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि उन्होने (उनके माता पिता ने) तत्काल ही दहेज नही लेने की प्रतिज्ञा कर ली।

आचार्य देव के इस रतलाम प्रवास मे ऐसे अनेको भटकते युवको को दिग्बोध मिला।

रतलाम से आचार्य देव जावरा पधारे एव जावरा से श्री साण्ड परिवार का अत्यधिक आग्रह होने से आपश्री को दो दिन के लिए बडावदा पदार्पण करना पडा। बडावदा निवासी श्री सौभाग्यमलजी साण्ड, जिनका प्राय सम्पूर्ण परिवार ही आत्म-साधना के लिये कृत सकल्प था, का उत्साह देखते ही बनता था। बडावदा मे दो दिनो मे ही अनूठी धर्म जागरण करके आपश्री पुन जावरा पधारे और वहाँ से प्रस्थान कर हजारो की जनमेदनी के स्वागत के साथ चातुर्मासार्थ मन्दसौर (नई आबादी) मे मगल प्रवेश किया।

• • •

अनुसार पहले ही कुछ स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ ताकि आप भी किसी असमन्जस अथवा भ्राति मे न रहे।"

आचार्य देव ने अमरावती से प०जी म० सा० के साथ हुए पत्र-व्यवहार की चर्चा करते हुये कहा - "मैंने पुनः शुद्धिकरण एव विश्वस्तता की शर्त के साथ श्री वहुश्रुतजी म० सा० से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया है। यद्यपि रखी गई शर्तो के अनुसार मैं स्वय महाराजश्री से प्रत्यक्षत· मिलना चाहता हूँ, आप लोग भी यही भावना लेकर उपस्थित हुए है कि दोनो सम्प्रदायो का पीढियो से चला आ रहा प्रेम-सम्बन्ध पुनः स्थापित हो। इसी आशय के भाव श्रीमान् चम्पालालजी गोलछा खीचन वालो ने, जब वे जामनेर मे मुझसे मिले, तब रखे थे। उनका आग्रह था कि आप और श्री बहुश्रुतजी म० सा० एकान्त मे बैठकर कुछ विचार-विमर्श करेगे तो ही अच्छा रहेगा। मैं स्वय भी इन्ही विचारो को लेकर चल रहा हूँ, किन्तु अभी सनवाड पहुँचते ही तो हमारा आपसी सम्बन्ध नही रह सकेगा। अतः प्रार्थना, प्रवचन एव स्थान आदि को लेकर स्थानीय सघ कुछ दुविधा मे उलझ सकता है, साथ ही यदि प्रवचन भी अलग-अलग होगे तो सघ मे विभेद पडता है और मै यह नही चाहता हूँ कि मेरे कारण किसी भी सघ मे विभाजन हो। अत. इस विषय मे आप लोग गभीरतापूर्वक चिन्तन कर ले और महान् दायित्व के निर्वहन की अपनी क्षमता को तोल ले। इसके पश्चात् ही कोई कदम उठायेगे तो श्रेष्ठ रहेगा।"

"आचार्यश्री, इन सब बातो का हम पूर्व मे ही गभीर चिन्तन कर चुके है। आपके पदार्पण से तो वर्षो के मनोमालिन्य धुल जाते है। फिर सनवाड मे फूट पडे यह कैसे हो सकता है ? प्रार्थना, प्रवचन आपश्री के ही होगे। दूसरे स्थान पर नही होगे। स्थान भी हमने दो निश्चित किये है एक तो ओसवाल भवन ही है, जिसमे एक तरफ हाल बना हुआ है और वह उस स्थान से जुडा हुआ ही है जिसमे पण्डितजी म० सा० विराज रहे है। किन्तु एक बडा दरवाजा है उसे वद कर देने पर तो दोनो मकान अलग-अलग हो जाते है। यदि वह मकान उचित नही लगा, तो दूसरा मकान रावला भी है। जैसा भी आप उचित समझे, हो सकेगा। वस, आप एक वार पधार भर जाइये, अन्य सभी व्यवस्थाये आपश्री की कृपा से सहज सम्पन्न हो जायेगी। इसके अलावा वहाँ पधारने पर भी हमारा कोई यह आग्रह नही रहेगा कि आपश्री को श्री पण्डितजी म० सा० से बातचीत करनी ही होगी। आपको वहाँ जैसी अनुकूलता हो एव आप जैसा उचित समझे, करे।" प्रमुख वन्धु ने स्पष्ट किया।

तथापि आचार्य देव ने पूर्णरूपेण स्वीकृति नही देते हुए इतना ही कहा कि—"आपके विचार मैंने सुन लिये है। अब मुझे जैसा उचित लगेगा, विचार करूँगा।" और सनवाड संघ के सदस्य लौट गये।

श्री चान्दमलजी कुदाल की यह भावना कि आचार्यश्री के यहाँ चातुर्मास होने पर ही दीक्षार्थ अनुमति दूँगा, के कारण ही मन्दसौर को वर्षावास का सुयोग प्राप्त हो सका।

दीक्षोत्सव की तत्कालीन छटा अलौकिक थी। दीक्षा-महोत्सव पर लगभग बीस हजार की जनमेदनी का एकत्रित हो जाना आचार्य देव का चारित्रिक आकर्षण तो था ही, किन्तु कुदाल परिवार एव दोनो बालिकाओ का अनूठा सौहार्द पूर्ण क्षेत्रीय प्रभाव भी इसमे कारण था।

इस वर्षावास का एक और स्मरणीय प्रसग था तपस्वी श्री रतनमुनिजी, जो कि तपस्वी श्री मिश्रीलालजी म० सा० (खादीवाले) के शिष्य थे और वहाँ से निकल कर एकाकी भ्रमण कर रहे थे, को लगभग चार माह तक परीक्षण एव उचित प्रायश्चित्त के साथ सघ मे प्रवेश देना।

आज वे एकल विहारी मुनि आचार्य देव के शासन म वर्षो तक एकान्तर तप की उपासना पूर्वक सयम साधना मे रत हैं।

इस प्रकार समस्त दैनन्दिन आराधना-पद्धतियो के सम्यक् परिपालन एव ज्ञान-दर्शन एव चारित्र की अभिवृद्धि के विविध द्वारो को उद्‌घाटित करते हुए मन्दसौर का ऐतिहासिक स्वर्णिम वर्षावास सम्पन्न हुआ।

वीर वसुन्धरा मेदपाट की ओर

मन्दसौर का गौरवशाली वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य देव ने पुन अपनी जन्म-भूमि वीर वसुन्धरा मेवाड प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। मन्दसौर से मार्गवर्ती लघु ग्रामो को आत्मबोध का पाथेय प्रदान करते हुए आचार्य देव प्रतापगढ पधारे। प्रतापगढ मे अनूठी धर्म-जागरणा कर आपश्री का पीपल्या-मण्डी पदार्पण हुआ। पीपल्यामण्डी की धर्म-प्राण जनता का उत्साह अनूठा था। स्वर्गीय श्री वृद्धिचदजी म० सा० एव वर्तमान तपोमूर्ति श्री अमरचन्दजी म० सा० के पारिवारिक सदस्यो और उनमे भी बच्चो का उत्साह तो देखते ही बनता था। श्री सुरेश पामेचा सुपुत्र श्री बाबूलालजी पामेचा, बी० ए०, प्रथम वर्ष के विद्यार्थी की धार्मिक अभिरुचि एव आचार्य देव के पदार्पण पर होने वाली प्रसन्नता शब्दातीत थी। उसका तन-मन सब कुछ इतना पुलकित था कि पठन-पाठन सभी कुछ छोडकर वह आचार्य देव के चरणो मे ही लीन हो गया।

इधर श्री जमनालालजी की सुपुत्री, श्री वृद्धिचदजी म० सा० की १७ वर्षीय सुपौत्री कुमारी सुशीला भी अपने दादाजी के मार्ग का अनुगमन करने को कृत सकल्प हो, प्रवचन मे खडी हो गई और आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने का आग्रह करने लगी।

श्री कन्हैयालाल जी ने उदासपूर्ण स्वरों मे कहा—"अभी बात करने का अवसर नही है। हमारे मन जरा खिन्न हो रहे है। अभी तो इतनी ही अर्ज करनी है कि हमने उदयपुर मे भी आपसे निवेदन किया और आज भी हम आपसे सानुरोध आग्रह कर रहे थे, किन्तु अब हम कोई आग्रह नही करेंगे। आप श्री को जैसा उचित लगे, आप करे। अभी हम जा रहे है। परिस्थिति कुछ अनुकूल हुई, तो पुनः आ सकते है।"

और दोनों बन्धु मागलिक श्रवण कर चले गये। इस घटना से आचार्य देव का चिन्तन कुछ इस रूप मे स्थिर हुआ कि लगता है उस पक्ष से वार्तालाप की पहल नही हो पा रही है

मध्याह्न के समय आचार्य प्रवर विद्यार्थी मुनियों को अध्यापन करवा रहे थे। इधर जनसमूह मे उत्साह बढता जा रहा था। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से चिन्तन मे लीन था। विचार-विमर्श की पहल किधर से और कैसे हो, यही चिन्तन संगठनप्रिय व्यक्तियो के मानस को आन्दोलित कर रहा था। सभी व्यक्ति दूर-दूर भ्रमण कर रहे थे, किन्तु आचार्य देव से कुछ निवेदन करने का साहस नही कर पा रहे थे। सनवाड सघ के दो-तीन वरिष्ठ सदस्य साहस कर आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए। उन्होने निवेदन किया—"गुरुदेव, अव आप यहा पधार गये है—और आप श्री के उदार विचारों से भी हम परिचित हो गये है, किन्तु वार्तालाप की रूपरेखा कैसी वनाई जावे, हमे समझ नही आ रहा है। कृपया आप कोई मार्ग सुझावे तो उचित रहेगा।"

आचार्यदेव ने सहज़ स्वरो मे कहा "देखिये, मैं आया इसलिये हूँ कि विचार-विमर्श के द्वारा समस्या का कोई समाधान निकल जाये और पुनः सुसगठन स्थापित हो, किन्तु ताली एक हाथ से तो नही वज सकती है। मै अपनी ओर से वार्तालाप करने को तैयार हूँ। इसके लिये सवसे सुगम मार्ग है कि पडित जी म. सा. एव मैं शौच निवृत्ति हेतु जगल मे जाते है, तो वही पर प्रारभिक शिष्टाचार सवधी वार्तालाप कर ले और वही समय भी निश्चित कर ले कि वार्तालाप हेतु उचित समय कौनसा रहेगा। अत. यदि आप पडित जी म. सा. से ज्ञात कर मुझे वता दे कि महाराज श्री अमुक दिशा मे शौच निवृत्ति हेतु पधारते है, तो मैं भी उस समय उसी दिशा मे चला जाऊँ।"

सहज सुगम मार्गदर्शन प्राप्त कर आगन्तुक वन्धु प्रसन्न होते हुए वन्दन कर पडित जी म सा के पास गये और कुछ ही क्षणो मे लौट आये और कहने लगे—"पडित जी म. सा. जंगल मे वार्ता करने को तैयार नही है।"

सक्षेप मे उदयपुर के तत्कालीन प्रवास मे उपस्थित श्रमण-श्रमणी वृन्द ने आचार्य देव के सान्निध्य से ज्ञान-प्रभा की अनेक सुनहली किरणे प्राप्त की तथा श्रावक-श्राविका समुदाय ने तो शेष काल मे ही वर्षावास सी आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर ली।

जेल में बन्दियों के मध्य

उदयपुर के इसी प्रवास काल मे उदयपुर के गणमान्य सज्जन जेलर साहब श्री जमनालालजी मट्ठा धर्म-आराधना से एकदम विमुख ही थे, आचार्य देव के सान्निध्य मे अध्यात्मोन्मुखी बन एक उच्च कोटि के धार्मिक एव सामाजिक कर्मठ कार्यकर्ता बन गये। उन्होने आग्रह किया—"आचार्य देव का जेल मे कैदियो के मध्य एक प्रवचन होना चाहिये।" और उनके आग्रह पर आचार्य देव का जेल मे पदार्पण हुआ।

आचार्य देव का जेल प्रवचन का यह प्रथम ही प्रसग था। जेल की चार-दीवारी मे हुई भावात्मक अनुभूतियो का चित्रण तत्कालीन सहवर्ती हम शिष्यो के समक्ष प्रस्तुत करते हुए आचार्य देव ने कहा—"एक के बाद एक फाटक खुलने और अन्दर प्रवेश के पश्चात् तुरन्त बद होने की प्रक्रिया ही इतनी आश्चर्यजनक लग रही थी कि कितना अविश्वसनीय वातावरण है यहाँ का ? अपने आप पर हुए क्षेत्रीय मनोवैज्ञानिक प्रभाव के सन्दर्भ मे आचार्य देव का चिन्तन था कि वास्तव मे वायुमण्डल का प्रभाव मानव-मस्तिष्क पर अबूझ पडता है। यहाँ के वायुमण्डल मे सौहार्द, स्नेह, वात्सल्य एव करुणा की भावनाएँ नहीवत् हैं। सम्पूर्ण वायुमण्डल तनावपूर्ण है, अत. दूषित मन.स्थिति को ही निर्मित करता है। इस चारदीवारी एव सघन तालो से परिवेष्टित वायुमण्डल में अपराधियो को रखकर उनसे अपराध-प्रवृत्ति से मुक्त होने की कामना करना मच्छर एव गन्दगीपूर्ण स्थान मे रखे हुये मलेरिया के रोगी से स्वस्थ हो जाने की कामना जैसा ही होगा। हाँ, उच्च मन स्थिति वाला कोई महामानव यदि इनके मध्य निरन्तर बना रहे, अपनी दिव्य करुणामयी आलोक-मुखी स्नेहिल भाव रश्मियो एव तदनुकूल व्यवहारो से इन्हे अभिसिंचित करता रहे, तो अपराध-प्रवृत्ति मे अवश्य न्यूनता आ सकती है। जब तक भारतीय कानून-व्यवस्था मे अपराधो के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रयोग नही किये जायेगे, अपराध-वृत्तियो का कम होना अशक्य है।"

ऐसी अनेक अनुभूति मूलक भाव-तरगे आचार्य देव के मानस को आलोकित करती रही। किन्तु आचार्य प्रवर ने उनसे अपने आपको अप्रभावित ही रखते हुये अपनी भाव-रश्मियो का प्रयोग अपने प्रवचन के मध्य ही कैदी बन्धुओ पर करना प्रारभ किया और परिणाम स्पष्ट समक्ष आया कि आचार्य

आचार्य श्री ने क्षण भर को तो विचार किया कि पूर्व निश्चित शर्त के अनसार महाराज श्री नीचे नही आये हैं, तो मैं भी चुपचाप ही आगे बढ सकता हूँ, किन्तु दूसरे ही क्षण विचार शृङ्खला को बदलकर चिन्तन किया कि वे अपनी शर्त से चूक रहे है, तो उसका वे सोचे। मेरा जिस उद्देश्य से आना हुआ है, मुझे इस समय उसे पूरा कर लेना चाहिये और आचार्य श्री द्वार की ओर उन्मुख हो गये। समीप पहुँच कर आचार्य श्री ने ही पहल करते हुए पण्डित जी म० सा० से पूछा, "सुना था आपका स्वास्थ्य कुछ नरम चल रहा है, सो अब कैसे है ?"

पडित जी म० सा० ने वही द्वार पर खड़े-खड़े उत्तर दिया, "और तो ठीक ही है, कुछ फोडे फुसी हो रहे है।" यह कहते हुए वे पाँव एव हाथ पर उभरे फोडे आचार्य श्री को दिखाने लगे। आचार्य देव भी फोड़ो को देखने के लिए द्वार पर पहुँचने के लिये बनी सीढियो मे से दो सीढ़िया ऊपर चढ गये।

आचार्य देव अन्य सन्त वृन्द के स्वास्थ्य के विषय में पूछ रहे थे कि सहवर्ती सन्त एव समीपस्थ श्रावकगण आवाज करने लगे। सीढिया बहुत गरम है, आप ऊपर पधार जाइये, किन्तु न तो बहुश्रुत जी म० सा० एव न उनके सहवर्ती सन्तो के मुँह से कोमलतापूर्ण दो शब्द भी निकले कि आप गरम सीढियो पर क्यो खड़े है, ऊपर पधार जाइये।

आचार्य देव अपने मानापमान को एक ओर रखते हुए सभी सीढियाँ पार कर द्वार के मध्य पण्डित जी म० सा० के समक्ष जा खड़े हुए और सभी सन्तो की स्वास्थ्य सवधी जानकारी एवं परिचय प्राप्त करने का प्रयास करने लगे किन्तु वहुश्रुत जी म० सा० की तरफ से आगन्तुक एव उनके सहवर्ती सन्तो के स्वास्थ्य के विषय मे भी नही पूछा गया।

सामान्य शिष्टाचार की चर्चा के पश्चात् आचार्य देव ने मूल विपय को स्पष्ट करते हुए पण्डित जी म० सा० से कहा—"महाराष्ट्र मे भ्रमण करते हुए जामनेर के आसपास खीचन वाले श्री चम्पालाल जी गोलछा मिले थे और आग्रह कर रहे थे कि हम दोनो एकान्त मे वैठकर पुन. सगठन हेतु कुछ विचार-विमर्श करे। इसी प्रकार इधर के कुछ प्रमुख श्रावको के भी विचार है। इस विपय मे आपके क्या विचार है, स्पष्ट करने की कृपा करे। यदि आप वात करना चाहते है, तो समय और स्थान का सकेत कर दे फिर वैसा सोचा जा सकता है।"

आचार्य देव के उपर्युक्त शब्दो को सुनकर समीप खडे कुछ प्रमुख श्रावको ने भी उच्च स्वरो मे आग्रह किया, "हां म० सा०, आप भी समय निश्चित कर लीजिये और दोनो महापुरुष एकान्त मे वैठकर वार्तालाप कर लीजिये, जिससे

बम्बोरा मे अभूतपूर्व धर्मोद्योत कर आचार्य देव भीण्डर पधारे। भीण्डर मे आचार्य देव के प्रवचनो की धूम सी मच गई। प्रतिदिन मुख्य बाजार में प्रवचन होते, जिनका जैन-जैनेतर जनता पर जादू-सा प्रभाव हुआ। लगभग ४०-५० अजैन बन्धुओ ने शराब मास, जुआ आदि दुर्व्यसनो से अपने आपको मुक्त किया। कुछ बन्धुओ ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली।

भीण्डर से अन्तरालवर्ती ग्रामो मे अपनी पीयूष-धारा प्रवाहित करते हुए आचार्य देव का खेरौदा पदार्पण हुआ। खैरोदा निवासियो के लिये आचार्य देव का वह मगल पदार्पण वरदान सिद्ध हुआ। लगभग तेरह वर्षो से चले आ रहे आपसी वैमनस्य के कारण समाज दो भागो मे विभक्त हो गया था। एक दूसरे के यहाँ जाना-आना बद था तथा अनेक विश्रुत एव बहुश्रुत महामुनियो के अथक प्रयासो पर भी उपशमित नही हो सका था। यहाँ तक कि एक क्रियानिष्ठ श्री बहुश्रुतजी को तो इस प्रकरण को लेकर बिना आहार किये प्रस्थान कर जाना पडा था। वह वैमनस्य आचार्य देव के निर्मल चारित्र एव अगाध ज्ञानधारा के अभिसिंचन से चन्द क्षणो मे उपशमित हो गया। सम्पूर्ण ग्राम का वातावरण स्नेहपूरित हो गया।

इस प्रकार खैरोदा मे स्नेहिल वायु मण्डल का सर्जन कर मार्गवर्ती ग्रामो को पावन करते हुये आचार्य देव का मावली मे पदार्पण हुआ। मावली मे भी किसी प्रकरण को लेकर समाज दो टुकडो मे विभक्त हो गया था। आचार्य देव के हृदयस्पर्शी प्रवचनो का प्रभाव यहाँ भी अचूक रहा। सामाजिक सघर्ष समाप्त हो गया।

सनवाड प्रकरण

मावली मे सनवाड सघ के अध्यक्ष, मत्री आदि वरिष्ठ सदस्य का एक शिष्टमडल विनत्यर्थ उपस्थित हुआ और आचार्य देव के चरणो मे सनवाड क्षेत्र को पावन करने की प्रार्थना करने लगा। साथ ही कुछ समाज प्रमुखो का यह भी आग्रह रहा कि अभी प० श्री समर्थमलजी म० सा० भी वही विराज रहे हैं अत वहाँ जाने पर प्रत्यक्ष चर्चा हो सकेगी, ताकि विगतकालीन कुछ प्रकरणो को लेकर जो एक भेद की रेखा खिच गई है वह मिट सकेगी।

आचार्य देव ने कुछ गभीर स्वर मे स्पष्ट करते हुए कहा, "देखिये, मेरे महावीर जयन्ती के प्रसग पर स्थविर पद विभूषित तपोमूर्ति श्री घनराजजी म० सा० की सेवा मे कपासन पहुँचने के विचार चल रहे है। अत. अभी मैं अधिक समय देने की स्थिति मे नही हूँ। फिर भी कदाचित् एकाध दिन का समय निकाल कर मैं वहाँ आने का विचार करूँ, किन्तु इसके पूर्व मैं अपने स्वभाव के

पुन· उसी रूप मे देखना चाहते है। उन्ही के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए मैं कुछ चक्कर खाकर इधर आया हूँ।"

पण्डित जी म० सा० ने पुन अपना दो टूक उत्तर दुहरा दिया। "मुझे नही करनी है कोई बात।"

तीसरी बार भी वही छोटा-सा उत्तर पाकर आचार्य प्रवर ने कहा, "मैं भी किसी आग्रहवश नही कह रहा हूँ। आप जैसा उचित समझें, करे। अच्छा तो यही होता कि आपसी विचार विनिमय से कुछ राग-द्वेष की प्रवृत्ति मद पडती और एक-दूसरे के प्रति सद्‌भाव का निर्माण होता। किन्तु आपकी वैसी इच्छा नही है तो ठीक है।" कहकर वे (आचार्य श्री) शौच-निवृत्ति हेतु चले गये।

इस सम्पूर्ण चर्चा-काल मे आचार्य प्रवर के सहवर्ती हम सत एव अनेको श्रावक बन्धु बाहर धूप मे खडे थे, कुछ सन्त उत्तप्त सीढियो पर खडे थे, किन्तु बहुश्रुत जी के सुशिष्यवृन्द के किसी के भी हृदय मे कोमलता एव सहृदयता के भाव प्रस्फुटित नही हुए कि वे ऊपर छाया मे आने के लिए कहते।

आचार्य देव शौच-कर्म से निवृत्त हो पुन. स्थान पर पहुँचे, तब तक आचार्य देव के प्रति प्रभावपूर्ण आकर्षणात्मक वातावरण निर्मित हो चुका था। अत· कुछ तटस्थ द्रष्टा बुद्धिजीवी बन्धु आचार्य प्रवर के चरणो मे उपस्थित हो गद्‌गद् स्वरो मे कहने लगे, "आचार्य श्री, आज तो आपश्री ने आचार्य पद के पूरे छत्तीस गुण दिखा दिये। जब तक आप श्री बाहर नही निकले, तब तक तो प्राय. आसपास के सभी लोगो की धारणा बनी हुई थी कि नानालाल जी को छोटी अवस्था मे आचार्य पद प्राप्त हो गया है, अत उन्हे अपने पद का अहकार है। वे कभी झुकने वाले नही है और न वे पडित जी म० सा० के यहाँ जाकर वात करने वाले है, किन्तु आपश्री तो निश्चित ही विनय एव शालीनता की प्रतिमूर्ति सिद्ध हुए। मानापमान की भी चिन्ता नही करते हुए आपश्री ऊपर द्वार तक पधार गये, जवकि शर्त के अनुसार पडित जी म० सा० को नीचे सडक पर आना चाहिये था।

"इधर आप श्री का इतना सुंदर शिष्टाचारपूर्ण शालीन व्यवहार रहा और उधर पडित जी म० सा० ने न तो शिष्टाचार के नाते किन्ही सतो अथवा आपके स्वास्थ्य, आदि के विपय मे पूछा और न आपको ऊपर चढने तक को कहा। फिर भी आपश्री ने अत्यन्त शाति एव मधुरता का परिचय दिया। इससे आपश्री के विपय मे जो कुछ लोगो मे गलत धारणा वनी हुई थी, वह तो साफ हुई, साथ ही सभी बुद्धिजीवियो के मनो मे आपश्री के प्रति अगाध श्रद्धा भी

दूसरे दिन बिना किसी पूर्व सूचना के आचार्य देव ने सनवाड की ओर प्रस्थान कर दिया और विचार-विमर्श की सुविधा को दृष्टिगत रखते हुए ओसवाल भवन के हाल मे ठहर गये। आचार्य देव के पदार्पण के समय ही उदयपुर सघ भी दो बसो द्वारा सनवाड पहुँच गया तथा निकटवर्ती ग्रामो से भी अनेक व्यक्ति उपस्थित हो गए।

सगठन प्रिय सुज्ञ बन्धुओ द्वारा सुसगठन हेतु उभयमुखी प्रयास होने लगे। सर्वप्रथम भोपालसागर निवासी श्री कन्हैयालाल जी पोखरना एवं चेयरमैन श्री धनराज जी बाफना आचार्यदेव के चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे—"गुरुदेव, हम जब उदयपुर श्री चरणो मे उपस्थित हुए और आप श्री ने सनवाड आने हेतु आश्वासन नही दिया, तो हम निराश हो गये थे। किन्तु आज हमे अपार प्रसन्नता हो रही है कि आप श्री वास्तव मे कहने की अपेक्षा करके दिखलाने वाले महापुरुष है। आपश्री ने हमे उदयपुर मे यही आश्वासन दिया था कि "मैं कहना कम और करना अधिक चाहता हूँ।" अब आपश्री का यहा पदार्पण हो गया है, तो कुछ वार्तालाप के द्वारा समन्वय की रूपरेखा निश्चित हो जानी चाहिये।"

आचार्य देव ने सहज स्मिति के साथ गभीर स्वर मे कहा—"बाफना जी, आप अध्यक्ष है, नीति-सूत्र का कुछ-न-कुछ बोध तो आपको है ही। यदि मुझे वार्तालाप नही करना होता और मेरी कुछ भी अशक्तता होती, तो मैं यहा आता ही क्यो ? मैं अपनी ओर से पूर्ण तैयारी से आया हूँ, किन्तु क्या नीति-मत्ता की यह माग नही है कि बहुश्रुत जी म सा अपनी ओर से पहल करे और मैंने शास्त्रीय दृष्टि से जो निर्णय दिया है, उसमे कही भी कुछ असम्बद्धता हो, तो स्पष्ट करें। तथापि मैं हर दृष्टि से वार्तालाप करने को तैयार हूँ। आप पडित जी म सा से भी इस विषय में विमर्श कर लें कि वे किस समय, किस स्थल पर, किस रूप मे विचार-विमर्श को तैयार हैं ?"

दोनो श्रावक बधु प्रसन्न मुद्रा मे यह कहते हुए चले गये "हम अभी पंडित जी म सा से चर्चा करके आते है।"

दस-बीस मिनट के अनतर ही दोनो बधु अपने मुख मण्डल पर उदास एव गभीर मुद्रा लिये लौट आये और निवेदन करने लगे—"हमें मांगलिक सुना दीजिये ··कल ही एक बाबू की बारात ले जानी है, अतः कुछ तैयारी करना है ··।"

आचार्य देव ने सहजतया पूछ लिया—अभी तो आप प्रसन्न मुद्रा मे विचार-विमर्श हेतु पडित जी म सा. से मिलने गये थे और अभी आप मागलिक सुन रहे हैं, वास्तव मे बात क्या है ?

आचार्य देव ने उसी गम्भीर स्वर में कहा, "देखिये, आप अनुभवी वृद्ध श्रावक हैं। ताली एक हाथ से कैसे बज सकती है ? जब पंडितजी म० सा० बात करने को ही तैयार नही है, तो समस्या का हल कैसे निकल सकता है ?"

"नही गुरुदेव, ऐसी बात नही है कि पण्डितजी म० सा० बात नही करना चाहते है। हम लोग अभी प्रतिक्रमण के पश्चात् महाराजश्री की सेवा मे गये और हमने निवेदन किया कि आचार्यश्री आपके पास चलकर आये और आपने वार्तालाप के लिए सहसा निषेध कर दिया यह अच्छा नही हुआ। इससे जनता पर आपके प्रति अच्छा प्रभाव नही पड़ा है। आपको कुछ तो आचार्यश्री से चर्चा करनी चाहिए थी। आपने तो उनके स्वास्थ्य आदि के बारे मे भी नही पूछा। इस पर पण्डितजी म० सा० ने फरमाया कि आचार्य महाराज ने क्या कहा मैं तो सुन भी नही सका। अतः हमारा निवेदन है कि पण्डितजी म० सा० के समझने मे कुछ भ्राति रह गई है सो अब पुनः कोई मार्ग सुझाने की कृपा करे, ताकि ठीक से आप दोनो मे विचार-विमर्श हो सके।"

आचार्यश्री ने एक गम्भीर मुस्कराहट के साथ स्पष्ट किया, "आप कैसी भावुकतापूर्ण बात कर रहे है, जिस समय महाराज साहब से चर्चा हुई, मैं अकेला तो नही था। दोनों ओर के सन्त खडे थे और समीप ही पचासो भाई भी खडे थे। यदि पण्डितजी म० सा० ने नही सुना, तो उत्तर किस बात का दिया। जो-जो मैंने पूछा, ठीक प्रश्न के अनुसार ही उनके उत्तर थे। यदि नही सुनते तो प्रश्न कुछ और होता और उत्तर कुछ और ही होता, किन्तु ऐसा कुछ नही हुआ। फिर पण्डितजी म० सा० यह परस्पर विरोधी बात कैसे कर रहे हैं, समझ के वाहर है। ऐसी स्थिति मे पुनः वार्तालाप का क्या परिणाम आ सकता है, विचारणीय है क्योकि पण्डितजी म० सा० (उन्ही के कथनानुसार) न तो पूरा सुनते है और न कुछ स्मरण ही रख पाते है।

"दूसरी वात, इतने व्यक्तियो के समक्ष हुई चर्चा को भी, जिसमें उन्होने तीन वार नकारात्मक उत्तर दिया, महाराजश्री नकार रहे है तो एकान्त मे की गई चर्चा का समुचित परिणाम आना संशयास्पद है। अब मेरे विचारो से तो एक ही मार्ग वच जाता है कि जो कुछ चर्चा हो वह लिखित रूप मे हो। महाराजश्री को जो कुछ पूछना हो, वे लिखित रूप मे पूछ ले और मैं भी लिखित रूप मे उत्तर दूं ताकि कम सुनना और न्यूनतम स्मृति की समस्या अपने आप समाप्त हो जायेगी।"

"पर महाराजश्री, लिखित चर्चा के लिए तो पण्डितजी म० सा० तैयार नहीं होंगे।" आगन्तुको ने स्पष्ट किया।

"तो फिर अव इस चर्चा को यही तक रहने दीजिये। मैंने अपने कर्त्तव्य

आचार्य देव ने पुन स्पष्ट करते हुए कहा—"कही मार्ग मे मिल गये और शिष्टाचारवश दो मिनिट खडे-खडे ही वार्तालाप कर लिया, तो उसमे कही आगमिक परम्परा मे व्यवधान नही आता है।"

श्रावक बन्धुओं ने कुछ झिझकते हुए कहा—"वे जगल ही नही जाना चाहते हैं।" आचार्य देव ने मन ही मन विचार किया, समझ मे नही आ रहा है, पण्डित जी म० सा० बात करने मे इतना क्यो कतरा रहे हैं? अभी तो केवल शिष्टाचार सबधी कुछ वार्तालाप ही करना है। उसमे इतनी दुविधा की क्या बात है? प्रत्यक्षत· खैर आप इस विषय मे पण्डित जी म० सा० से पूछ लीजिये—वे जिस स्थिति मे बात करने को तैयार है, मुझे वैसी सूचना हो जाये। वैसे मैं वहाँ बहुश्रुत जी म० सा० के पास जाकर भी चर्चा कर लेता, किन्तु मैं पहले यह तो प्रत्यक्षत जान लूँ कि वे चर्चा करने के लिये तैयार हैं भी या नही, और है तो किस स्थिति मे ?

आगन्तुक बधु पुन पण्डित जी म० सा० के पास जाकर दस-बीस मिनिट मे लौट आये और कहने लगे—"हमने महाराज श्री से बातचीत की है। उनका अभिप्राय था – आप श्री अभी तीन-साढे तीन बजे के लगभग जगल पधारेंगे पण्डित जी म० सा० वाले मकान का मुख्य द्वार उसी गली के मार्ग पर पडता है। आप श्री जब शौच निवृत्ति हेतु पधारते समय उधर से निकलेंगे तब पण्डित जी म० सा द्वार से निकलकर सडक पर आ जायेंगे। और उसी समय वही खडे-खडे दो मिनिट चर्चा हो जायेगी। उसके पश्चात् आप दोनो महापुरुष जो उचित समझे समय निश्चित कर ले।"

आचार्य देव ने मधुर शब्दो मे कहा, "यदि महाराज श्री ने कहा है कि—वे सडक पर आ जायेंगे तो मुझे कोई आपत्ति नही है। मे वही मार्ग मे ही बात कर लूँगा" और आगन्तुक बन्धु प्रसन्न होकर लौट गये।

लगभग पूर्व निर्धारित समय पर आचार्य देव सहवर्ती सत समुदाय के साथ जगल जाने हेतु उसी मार्ग से निकले। स्थानीय एव बाहर के लगभग एक सौ पचास दर्शनार्थी साथ हो गये और जयजयकार के नारे लगाने लगे। आचार्य देव ने उन्हे शौरगुल करने से रोकते हुए सकेत किया कि आप लोग किसी प्रकार की तेजध्वनि न करें एव सन्त समुदाय से कुछ दूर दो-चार हाथ पीछे रहे तो उचित रहेगा।

आचार्य प्रवर मकान के द्वार तक पहुँच गये, किन्तु पूर्व निश्चित शर्त के अनुसार पण्डित जी म० सा० सडक पर नही आये। दो कदम आगे बढकर देखा तो पण्डित जी म० सा० अपने कुछ सन्तो के साथ द्वार पर कपाट के निकट खडे हैं।

सभी ने प्रायः एक स्वर से कहा, "नही गुरुदेव, छीटे एकदम बन्द है ।"

आचार्य देव की दीर्घ दृष्टि एव दीर्घ चिन्तनशील प्रज्ञा इससे सन्तुष्ट नही हुई । आचार्य देव की अन्तःप्रज्ञा ने सम्भव है सावधान कर दिया कि इस विषय मे भी भ्रातिया निर्मित होने वाली है । अत आचार्यश्री ने सामने सडक पर खडे हुए पण्डितजी म० सा० के अनन्य भक्त श्री केशरीमलजी चपलोत से ही स्पष्ट कर लेना चाहा कि वर्षा तो नही आ रही है । आचार्य प्रवर ने जब द्वितीय बार केशरीमलजी को सम्बोधित करते हुए कहा, "आप भी तो बताइये, छीटे तो नही आ रहे है ?"

श्री केशरीमलजी कहने लगे, "बादल हो रहे है । आज यही विराजिये ।"

"बादल है यह तो ठीक, किन्तु बादल विहार मे रुकावट नही डालते । आप तो यह बताइये कि छीटे आ रहे है क्या ?" आचार्य प्रवर ने पुनः पूछा ।

"महाराज, मुझे कुछ कम दिखाई देता है ।" श्रावकजी ने बहाना बनाया । आचार्य प्रवर भी कहाँ छोड़ने वाले थे "आँखो से कम दिखता है, किन्तु स्पर्शेन्द्रिय तो काम करती है । आप खुले मे खड़े है, आपके शरीर पर छीटे लगने का अनुभव हो रहा है क्या ?" आखिर उक्त श्रावकजी को स्पष्ट सत्य कहना पडा— "हाँ, अभी तो अनुभव नही हो रहा है ।" और आचार्य प्रवर ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया । विहार का मार्ग उसी द्वार के सामने से जाता था, जिस पर कल पण्डितजी म० सा० से कुछ चर्चा हुई थी । आचार्य प्रवर उस गली की मोड पर मुडे ही थे कि पण्डितजी म० सा० के ही एक अनन्य उपासक ने बडे जोर से पूर्व निश्चित योजना के अनुसार सकेत हेतु आचार्य प्रवर की जयकार का नाद किया ।

इधर आचार्य प्रवर उसी द्वार के निकट पहुँचे और उधर जय ध्वनि का संकेत पाकर पण्डितजी म० सा० के निकटवर्ती प्रमुख सत श्री सौभाग्यमलजी म० सा० सडक पर आकर आचार्य प्रवर के समक्ष दोनो हाथ फैलाकर खडे हो गये और कहने लगे—"अव आप पधार रहे है । एक बार महाराज से मिलकर पधारिये ।"

आचार्य प्रवर विना किसी तर्क-वितर्क के यह चिन्तन कर कि सम्भव है कुछ वात करने का मूड वन गया हो तुरन्त द्वार की ओर उन्मुख हो सीढियाँ चढ गये । सहवर्ती हम सत भी साथ ही अन्दर चले गये । अन्दर पहूँच कर आचार्य प्रवर ने देखा कि पण्डितजी म० सा० द्वार पर नही है । सोचा, सम्भव है वात करने की दृष्टि मे अन्दर वैठे हो किन्तु दूसरी ओर मुडे तो देखा कि कपाट के पीछे वने एक चवूतरे पर महाराजश्री एव कुछ सतियाँ वैठे हुए है ।

संघ में प्रेम का वातावरण बन सके । आप ही आचार्य श्री को समय बता दीजिये कि अमुक समय मे बात हो सकेगी ।"

आचार्य देव एव श्रावक बन्धुओ के शब्द को सुनकर उदासीन से स्वरो मे पण्डित जी म० सा ने कहा, "समय का क्या बताना है ? रात्रि को प्रतिक्रमण के पश्चात् १०–११ बजे तक लोग जाते हैं । कोई भी आये, बात करे, मेरी मनाही नही है । एकान्त मे क्या बात करनी है । सबके सामने ही कर लेंगे ।" एक आचार्य को सामान्य जन की कोटि मे गिनने के उपेक्षापूर्ण कटु उत्तर को सुनकर भी आचार्य देव ने अपनी सहज प्रकृति के अनुसार विषय को साहसिक ही रखते हुए कहा—"मुझे सबके समक्ष बात करने मे कोई आपत्ति नही है । किन्तु इन प्रमुख श्रावको का आग्रह है कि आप दोनो एकान्त मे बैठकर चर्चा करे ।"

"मेरी स्मृति ठीक नही है, मैं ऊँचा सुनता हूँ । दूध का जला छाछ को भी फूँक कर पीता है । मैं क्या वार्तालाप करूँ ? मैंने पत्र लिखवा ही दिया था ।" पण्डित जी म० सा० ने अपना तर्क प्रस्तुत किया ।

आचार्य देव ने पुन सहज भाव से कहा, "आप श्री ने पत्र लिखवाया, यह तो मुझे याद है । किन्तु यह आप भूल रहे हैं—कि उस पत्र से ही तो ये समस्याए और झझटे खड़ी हो गई हैं । यदि आप पत्र नही लिखवाते और कुछ धैर्य रखकर प्रत्यक्ष मिलने की प्रतीक्षा करते, तो सम्भव है यह विवाद खडा नही होता । किन्तु अब आप चाहे, तो विचार-विमर्श एव उचित निर्णय के द्वारा समाधान निकाला जा सकता है । हम आपस मे एकान्त मे जो विचार करेंगे, उसे एकदम निश्चयात्मक रूप नही देंगे । साथ ही आपकी स्मृति काम न करे अथवा कम सुनाई दे और आपको छाछ से जलने जैसा लगे तो आप किसी सन्त एव श्रावक को बुला सकते हैं । मुझे उसमे भी कोई आपत्ति नही है ।

"कम सुनने पर आप उसको दुबारा-तिबारा भी पूछ सकते हैं । इतना होने पर भी जो भी निर्णय स्थिर होगा उसे परिपक्व रूप सबधित साधु वर्ग एव श्रावको के समक्ष रखने के पश्चात् ही प्रसारित करेगे । उससे विस्मृति एव दूध से जलने की बात ही समाप्त हो जायेगी ।"

इतने स्पष्टीकरण के पश्चात् पण्डित जी म० सा० ने दो टूक उत्तर दिया "मुझे नही करनी है कोई भी बात चीत ।"

आचार्य देव ने पुन. स्पष्ट करते हुए कहा—"मेरा भी कोई आग्रह नही है, और न मेरा प्रस्ताव ही है । आपके अनन्य सलाहकार श्री चम्पालाल जी गोलछा ने एव अन्य श्रावको ने आग्रह किया है कि हम पीढियो से चले आ रहे प्रेम को

पड़ते में विहार करके चले गये तो कुछ बुद्धिजीवियो ने सचोट उत्तर देते हुए दो टूक शब्दो मे ही कहा—"यदि आचार्यश्री वर्षा के गिरते हुए विहार कर गए, तो श्री सौभाग्यमलजी म० सा० उस समय सडक पर कैसे चले आये ? क्या सौभाग्यमलजी म० सा० पर उनकी लब्धि से छीटे बन्द हो गये और आचार्य श्री पर गिरते रहे थे ? इस प्रकार की परस्पर विरोधी अनर्गल बाते करके दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करना कहाँ तक उचित है ?"

इस प्रकार सौभाग्यमलजी म० सा० के बाहर निकलने की बात के सचोट उत्तर से जब यह मिथ्या आरोप स्वयं पर ही पड़ गया, तो प्रतिपंथी अपने आप ही उस विषय मे मूक बन गये। इस सम्पूर्ण प्रकरण के स्पष्टीकरण के पीछे यहाँ मेरा यह उद्देश्य है कि आचार्य प्रवर ने अपने जीवन की विकट-से-विकट एव विषम-से-विषम परिस्थितियो मे और प्रबलतम विरोधियों के समक्ष भी अपनी सौजन्यवृत्ति एवं शालीनता का रच मात्र भी परित्याग नही किया। आचार्यत्व के गरिमामय पद की अवज्ञा के क्षणों में भी अपने आपको एक सामान्य साधक की तुलना का समझकर, अपमान के गरल को प्रसन्नता पूर्वक पी गए। वास्तव मे बिना तलस्पर्शी साधना के इतनी सूक्ष्म प्रज्ञा, दीर्घ सूत्रीय दृष्टि एव जीवन की निश्चल वृत्ति का विकास नही हो सकता है।

चूँकि इस सम्पूर्ण घटना-क्रम के क्षणो मे लेखक आचार्य प्रवर के निकट ही घटनास्थल पर विद्यमान था, अतः यह उसका स्वानुभूत विषय रहा है। इस विषय मे लेखक की धारणा के अनुसार साधुता के मानदड तो बहुत दूर, मानवता की भित्ति का सामान्य व्यवहार भी वहाँ दुर्लभ था। यह सब इसलिये नही कहा जा रहा है कि लेखक आचार्य का शिष्य होने से पक्षांध दृष्टि रखता है अपितु यह उसकी ही नही अन्य अनेक प्रत्यक्षदर्शियो की साक्षात् अनुभूति थी, जिसे लेखक ने निष्पक्ष दृष्ट्या शब्द-बद्ध किया है।

लघु ग्रामों में अपूर्व उद्योत

इस प्रकार सनवाड मे समन्वय की विशुद्धतम भावना के द्वारा अपने उदात्त गरिमापूर्ण व्यक्तित्व की अप्रतिम प्रभा प्रसृत करके निकटवर्ती क्षेत्रो को अपने दिव्य सुवास से सुवासित कर आचार्य प्रवर महावीर जयन्ती के पुनीत प्रसग पर अपनी दीक्षास्थली कपासन पधारे। कपासन मे वयोवृद्ध स्थविर पद विभूपित तपोमूर्ति श्री धनराज जी म० सा० एवं सरलमना वृद्धकाय श्री सागरमल जी म० सा० विराज रहे थे, जो कि दीक्षा पर्याय की दृष्टि से आचार्य प्रवर से बहुत अधिक दीक्षा-ज्येष्ठ थे। आचार्यत्व के गौरवपूर्ण पद पर आसीन होने पर भी तत्कालीन दीक्षा-ज्येष्ठो के प्रति आप श्री की विनय समर्पित दर्शनीय ही थी। एक आचार्य मे इतनी अधिक विनम्रता सचमुच ही हम नवीन अवोध शिष्यों के लिये अनुकरणीय और मूक वोध-पाठ था। कपासन से आचार्य प्रवर

निर्मित हो गई है। वास्तव मे आपने बडी विचित्र साधना की है। उसका प्रत्यक्ष बोध आज हम सबको हो गया है।"

आचार्य देव ने कुछ गम्भीर स्वर मे कहा, "मान-अपमान की बात तो आप जाने दीजिये। मुझे तो यही विचार आ रहा है कि अन्ततोगत्वा पडित जी म० सा० बात करने से भी क्यो कतरा रहे हैं। बात तो एक शत्रु से भी की जा सकती है। प्राण ग्राहक शत्रु राजा लोग भी आपस मे मिलकर विग्रह को टाल देते हैं। कम-से-कम मानवता के दृष्टिकोण से ही कुछ बात हो जाती। मानलो, किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचते, तो उतना दु ख नही होता। फिर भी मुझे सतोष है कि जिस उद्देश्य से आया, मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया। यह आवश्यक नही कि सामने वाला भी उसी दृष्टि से सोचे।"

इस प्रकार आचाय देव के उदारतापूर्ण व्यवहार की सौरभ आम जन-मानस मे फैल गई और जन-जन के मुख पर यही चर्चा प्रतिध्वनित होने लगी। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक पक्ष की प्रशसा कीर्ति फैलने पर दूसरा पक्ष सहज ही उसमे अपनी अवमानना समझ बैठता है। ऐसा ही कुछ वातावरण उस दिन सनवाड का था। पडित जी म० सा० के कुछ अनन्य भक्तो ने जब आचार्य श्री की जन-जन के मुख से प्रशसा सुनी, तो सम्भव है उन्हे लगा कि यहा हम चूक गये हैं, कुछ भूल कर बैठे हैं। हमे इस वातावरण परिवर्तन का पुन: प्रयास करना चाहिये। परिणामस्वरूप कुछ प्रमुख भक्तजन पडित जी म० सा० से कुछ मत्रणा करके सध्या प्रतिक्रमण के समय आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए और कुछ चर्चा हेतु समय चाहा। आचार्य प्रवर प्रतिक्रमण का काल आ जाने से तत्काल समय नही दे सके और कहा कि प्रतिक्रमण के पश्चात् आपको समय मिल सकेगा।

तदनुसार रात्रि ज्ञान-चर्चा के पश्चात् कुछ बन्धु पुन उपस्थित हुए और आचार्य देव से निवेदन करने लगे, "आचार्य श्री, आज तो आप श्री ने महान् आदर्श उपस्थित किया। आपके इस सौजन्यतापूर्ण व्यवहार की प्रभावोत्पादक सुगध आसपास के सभी ग्रामो-शहरो मे फैल चुकी है। हम सभी दोपहर से ही चिन्तन कर रहे थे कि यदि आपके समीप विवादास्पद विषय के सटीक प्रमाण नही होते, तो आप सनवाड ही क्यो पधारते। आज अपराह्न के समम जो कुछ बना, उसमे भी आपश्री ने पडित जी म० सा० से दो-तीन वार वात करने को कहा, किन्तु वे मना कर गये। इससे हम इस निश्चय पर पहुँचे कि आप प्रमाण पुष्ट सत्य तथ्य पर ही अपने कदम-वढा रहे हैं और अहकार जैसा कोई भाव आप श्री मे नही है।

"अब हमारा निवेदन है कि आप यो ही यहाँ से पधार गये, तो फिर यह टूटी हुई कडी कभी जुडने वाली नही है। किसी भी प्रकार यह कडी

बड़ीसादड़ी-चातुर्मास

आचार्य देव का वर्षावास हेतु तत्कालीन नगर-प्रवेश बडीसादडी के इतिहास मे अभूतपूर्व एव अनूठा था। पाँच छह हजार की जनमेदनी अपने आराध्य के स्वागत मे उमड पडी थी। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि दो फर्लांग भी पैदल नही चलने वाले बडीसादडी के राजराणा साहब श्री हिम्मतसिंहजी श्रद्धान्वित हो तीन मील तक आचार्य प्रवर के साथ पैदल चलते रहे। उस समय उनके स्वेद से आर्द्र वस्त्रो को देखकर, मेरा चिन्तन तो इतिहास के उन स्वर्णिम पृष्ठो में खो गया, जिनमे मेदपाट के गौरव मण्डित व्यक्तित्व महाराणा प्रताप की जीवन गाथाएँ चित्रित है। मैं सोच रहा था—कहाँ तो महाराणा प्रताप, जो अपनी आन-मान एव मर्यादा की सुरक्षा हेतु घास की रोटियाँ खाकर वन-वन भटकते रहे थे और कहाँ उन्ही के वशज ये महाराणा इतने सुकोमल तन है कि थोडे से पाद-विहार के श्रम मे ही पूरा कोट स्वेद से आर्द्र हो गया है। अस्तु, आचार्य देव ने अप्रतिम स्वागत समारोह के साथ नगर मे मगल प्रवेश किया।

बड़ीसादड़ी वर्षावास के स्मरणीय पृष्ठ

बडीसादडी का वर्षावास अपनी ऐतिहासिक परम्परा मे बेजोड, अप्रतिम एवं चामत्कारिक उपलब्धियो का प्रतीक था। सर्वतो महत् विशेषता इस वर्षावास की थी कि सघ का प्रत्येक सदस्य लघु से लघुतम कार्य मे नि.सकोच जुट जाता था।

कार्यकर्ता विवेकी, सशक्त एव कर्मठ हो तो कार्य सहज सफल हो जाता है। और यह देखा गया इस वर्षावास मे।

वैसे अन्य वर्षावासो की तरह इस वर्षावास मे भी प्रार्थना, प्रवचन, प्रश्नोत्तर एव विद्यार्थी सन्त-सती वर्ग के अध्ययन-अध्यापन के कार्य यथावत् निर्बाध गतिशील रहे। प्रवचनो की एक महत्ता इस वर्षावास मे यह रही कि स्थानीय राजराणा, समीपवर्ती ग्राम भीमगढ के राणा श्री भीमसिहजी एव क्षेत्रीय विधायक आदि यथोचित लाभ लेते रहे। राणा श्री भीमसिहजी ने तो आचार्य प्रवर की अहिसात्मक देशना से प्रभावित हो अपनी कुल-परम्परा से चली आ रही नवरात्रि के दिनो मे होने वाली बलि-प्रथा को सदा के लिये तिलाजली दे

की दृष्टि से जो कुछ करना था, किया। जब पण्डितजी म० सा० की स्वय की तैयारी एवं तत्परता होगी, तब कभी देखा जायेगा। मैं तो अपनी ओर से हर समय तैयार हूँ।" आचार्य देव ने विषय को समाप्त करते हुए कहा, आगन्तुक बन्धु चले गये।

दूसरे दिन प्रात काल तत्र विराजित श्रमण सघीय वृद्ध सतियाँ जी को दर्शन देने हेतु जाना था, अत शौच निवृत्ति का मार्ग भी सहज बदल गया था किन्तु कुछ बन्धुओ ने उसका विपरीत अर्थ ले लिया कि अब आचार्यश्री बात नही करना चाहते है। अत. मार्ग बदल दिया है।

द्वितीय दिन प्रवचनान्तर मध्याह्न बेला मे विहार हेतु वस्त्रादि उपकरण व्यवस्थित किये गये कि कुछ वर्षा की बौछार होने लगी। सभी सत एव आचार्य देव वर्षा समाप्ति की प्रतीक्षा मे बैठ गये। इसी मध्य फतहनगर के एक बन्धु आये और निवेदन किया "आचार्य देव, आपने इस प्रान्त मे कल की उदारता से अपने लिए बहुत सुन्दर वातावरण बना लिया है। इसके पूर्व इधर के क्षेत्रो मे आपके प्रति अनेक प्रकार के निम्न स्तरीय विचार थे। किन्तु कल के वातावरण मे प्रत्यक्षदर्शियो ने आपके व्यक्तित्व को निकटता से देखा और मेरी तथा अन्य अनेक लोगो की भ्रान्तिया निर्मूल हो गईं। किन्तु मेरे मन मे एक सन्देह और है कि इस प्रकरण का पत्र व्यवहार आपकी ओर से प्रारम्भ हुआ है। इधर के क्षेत्र मे यही वातावरण फैला हुआ है। इसमे तथ्यात्मक स्थिति क्या है, कृपया स्पष्ट करें।"

आचार्य प्रवर ने पत्रो की मूल प्रति दिखाते हुए स्पष्ट किया—"आप स्वयं निर्णय कर लीजिये कि पत्र-व्यवहार सर्वप्रथम किसकी ओर से प्रारम्भ हुआ। यदि मेरी ओर से पत्र-व्यवहार होता, तो पण्डितजी म० सा० के पत्र मे मेरे पत्र की चर्चा अवश्य होती, जबकि ऐसा नही है। सर्व प्रथम पण्डितजी म० सा० का मेरे पास पत्र आया और मैंने अपने पत्र मे उसका वर्णन करते हुए उत्तर दिलवाया। भ्रान्तिया तो लोग कितनी ही निर्मित कर सकते है। कल जो हुआ, उसके विषय मे भी लोग अपनी मति-कल्पना से कुछ भी भ्रातिया निर्मित कर सकते हैं।"

"गुरुदेव, आपकी सरलता एव सौजन्यता देखकर हृदय गद्गद् हो जाता है। आज हमारी यह भ्राति भी दूर हो गई कि पत्र-व्यवहार आपकी ओर से प्रारम्भ हुआ है।" आगत बन्धु ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

इधर चर्चा चल रही थी कि उदयपुर निवासी वकील साहब श्री डूँगरसिंहजी डूँगरपुरिया ने निवेदन किया, "गुरुदेव, वर्षा एकदम बन्द हो गई है।" आचार्य देव ने सत-वृन्द से उपकरण उठाने का सकेत दिया और द्वार पर आकर सडक पर खडी भीड से पूछा "छीटें बिलकुल नही आ रहे हैं क्या ?"

विचारो से परिपार्श्ववर्ती वायुमण्डल अवश्य प्रभावित होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से एक कमरे मे तीन हत्याओ की वारदाते हो चुकी है, तो वहाँ के वायुमण्डल मे क्रूरता का सव्याप्त हो जाना सहज है। इसलिये वहाँ जाने वाले स्वस्थ विचारक के चित्त मे भी विक्षेप का प्रादुर्भाव सहज हो जाता है। इसके विपरीत उसी कमरे मे यदि उच्चकोटि के विचारक सन्तमना व्यक्ति का निवास रहा है, तो वैसे वातावरण का सर्जन अनिवार्यत. हो जाएगा।

आचार्य देव के गरिमामय व्यक्तित्व के अबूझ चामत्कारिक प्रभाव के विषय मे हम बहुत पढ चुके है। यहाँ बड़ीसादडी वर्षावास की ऐसी ही कुछ घटनाओ का उल्लेख किया जा रहा है, जिनमे आचार्य देव के व्यक्तित्व का परि-पार्श्ववर्ती वातावरण पर प्रभाव अकित होता है।

आचार्य देव का मगल प्रवेश ही बड़ीसादडी निवासियो के लिए मगलप्रद हो गया। प्रवेश के दिन ही आचार्य देव के चामत्कारिक प्रभाव ने बडीसादडी सघ को आश्चर्यचकित कर दिया। हुआ यह कि प्रवेश के दिन स्थानीय सघ ने आतिथ्य–सत्कार हेतु अनुमान के आधार पर १२०० व्यक्तियो मे पूरा हो सके, इतना ही मिष्ठान्न (मोदक) बनाया। उस मिष्ठान्न मे लगभग १३०० व्यक्तियो ने तो तृप्ति पाई ही, किन्तु वे मोदक द्रौपदी के चीर की तरह ऐसे बढते गये कि द्वितीय दिवस ३५० व्यक्ति और जीम गये और प्रत्येक घर मे जो कि लगभग ३०० परिवार हैं, मोदक वितरित किये गये और बढ जाने पर विद्यार्थियों को भी बाटे गये।

बडीसादड़ी सघ का उत्साह इस मगल प्रवेश की घटना से ही इतना अधिक बढ गया कि वे कहने लगे, निश्चित ही हमारे यहाँ दिव्य तपोधनी चमत्कारी युग पुरुष के चरण स्पर्श हुए है। इनकी महिमा के दर्शन हमे प्रवेश के दिन से ही हो रहे है।

सात दीक्षाएँ

बड़ीसादड़ी के स्मरणीय प्रसगो मे सर्वतोमहत् उल्लेखनीय प्रसग है—सात दीक्षाओ का भव्य आयोजन। विगत सौ-दौसौ वर्षों के इतिहास मे स्थानक-वासी समाज मे सात दीक्षाओं का एक साथ समायोजन नही हुआ था। अतः यह प्रसग ही अपने आप मे अभूतपूर्व था।

सभी दीक्षार्थी भी उच्च कुलीन एवं सम्पन्न परिवारो से सम्बन्धित थे। ग्रन्थ-विस्तार के भय से सभी का विस्तृत परिचय तो अप्रासगिक होगा, किन्तु नाम मात्र यहाँ प्रस्तुत है।

आचार्य प्रवर सीधे उनके निकट चले गये। जब तक पण्डितजी म० सा० कुछ असमन्जस की स्थिति मे बैठे ही रहे। आचार्य प्रवर ने खड-खड ही महाराजश्री की अगुलियो को अपने हाथ मे लेते हुए कुछ उच्च स्वर मे कहा—"मैं कल आपसे मिला ही था ना ?" तत्कालीन वातावरण को देखते हुए लगा कि बहुश्रुत जी म० सा० तत्काल किंकर्त्तव्य विमूढ से हो गये थे। सम्भवत उन्होने अपनी एव अपने उपासक समुदाय की दृष्टि से यह चिन्तन स्थिर किया हो कि कल के बाद आचार्यश्री इस मार्ग से नही निकले हैं, अत अब उनकी मिलने की इच्छा नही है, तो क्या ही अच्छा हो कि अपने एक सत को उनके समक्ष मार्ग मे भेज दिया जाए, ताकि वे जब मिलने हेतु अन्दर नही आयेंगे तो वातावरण को पुन: अपने अनुकूल बनाने मे सुविधा हो जाएगी कि "कल तो महाराज पूरा सुन ही नही पाए और आज मिलने के लिए सन्तो को भेजा, तो वे खुद ही नही आए।"

किन्तु आचार्य प्रवर जब बिना किसी सकोच के अन्दर चले गये, तो उनके लिए एक समस्या खडी हो गई। वे सोच ही नही पाए कि अचानक आगन्तुक एक आचार्य के साथ कैसा शिष्टाचार का व्यवहार रखा जाए। उसी असमन्जस-पूर्ण स्थिति के कारण वे आचार्य देव के उक्त प्रश्न कि, मैं कल आपसे मिला ही था ना, का कोई उत्तर नही दे पाये और कुछ क्षण मूक से पाँव को इधर-उधर हिलाते हुए बैठे रहे। फिर सहसा उसी चबूतरे पर खड हो दोनो हाथ ऊपर कर अगुलियाँ उठाने लगे।

आचार्य प्रवर उस स्थिति मे कुछ क्षण खड रहे, किन्तु कुछ भी उत्तर न पाकर वहाँ खडा रहना अनुचित समझा। पुन लौट गये।

मिथ्या आरोप जो स्वयं पर पड़ा

जैसा कि आचार्य प्रवर का सन्देह था और जिसके लिए आचार्यश्री ने पण्डितजी म० सा० के ही अनन्य भक्त से स्पष्टीकरण कर लिया था, उसी विषय मे विहार के उपरान्त अनेक मिथ्या आरोप प्रारम्भ हो गये। आचार्य प्रवर विहार कर गए उसके पश्चात् कुछ कट्टर सम्प्रदाय पथियो ने उन आरोपो मे एक आरोप मे यह प्रचार करना प्रारम्भ किया और 'सम्यग् दर्शन' पत्रिका मे भी लिख दिया कि आचार्य प्रवर ने बरसते पानी मे विहार कर दिया।

इस विषय मे आचार्य देव की दीर्घ दृष्टि की तो अवश्य प्रशसा करनी होगी कि उन्होने कितनी सूक्ष्म छानवीन एव पृच्छा के पश्चात् स्थान से प्रस्थान किया। हम सहवर्ती सन्त स्वय तत्काल खड-खड विचार कर रहे थे कि आज आचार्य भगवन् इतनी पूछताछ क्यो कर रहे हैं ? किन्तु हमारी स्थूल दृष्टि उस विराट् दूरगामी चिन्तन को कहाँ समझ पाती।

किन्तु जव स्थान-स्थान पर यह चर्चा होने लगी कि नानालालजी छींटे

विचारो से परिपार्श्ववर्ती वायुमण्डल अवश्य प्रभावित होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से एक कमरे मे तीन हत्याओ की वारदाते हो चुकी है, तो वहाँ के वायुमण्डल मे क्रूरता का सव्याप्त हो जाना सहज है। इसलिये वहाँ जाने वाले स्वस्थ विचारक के चित्त मे भी विक्षेप का प्रादुर्भाव सहज हो जाता है। इसके विपरीत उसी कमरे मे यदि उच्चकोटि के विचारक सन्तमना व्यक्ति का निवास रहा है, तो वैसे वातावरण का सर्जन अनिवार्यत: हो जाएगा।

आचार्य देव के गरिमामय व्यक्तित्व के अबूझ चामत्कारिक प्रभाव के विषय मे हम बहुत पढ चुके है। यहाँ बडीसादड़ी वर्षावास की ऐसी ही कुछ घटनाओ का उल्लेख किया जा रहा है, जिनमे आचार्य देव के व्यक्तित्व का परि-पार्श्ववर्ती वातावरण पर प्रभाव अकित होता है।

आचार्य देव का मगल प्रवेश ही बड़ीसादडी निवासियों के लिए मगलप्रद हो गया। प्रवेश के दिन ही आचार्य देव के चामत्कारिक प्रभाव ने बडीसादडी सघ को आश्चर्यचकित कर दिया। हुआ यह कि प्रवेश के दिन स्थानीय सघ ने आतिथ्य–सत्कार हेतु अनुमान के आधार पर १२०० व्यक्तियो मे पूरा हो सके, इतना ही मिष्ठान्न (मोदक) बनाया। उस मिष्ठान्न मे लगभग १३०० व्यक्तियो ने तो तृप्ति पाई ही, किन्तु वे मोदक द्रौपदी के चीर की तरह ऐसे बढते गये कि द्वितीय दिवस ३५० व्यक्ति और जीम गये और प्रत्येक घर मे जो कि लगभग ३०० परिवार है, मोदक वितरित किये गये और बढ जाने पर विद्यार्थियो को भी बाटे गये।

वड़ीसादड़ी सघ का उत्साह इस मगल प्रवेश की घटना से ही इतना अधिक बढ गया कि वे कहने लगे, निश्चित ही हमारे यहाँ दिव्य तपोधनी चमत्कारी युग पुरुष के चरण स्पर्श हुए है। इनकी महिमा के दर्शन हमे प्रवेश के दिन से ही हो रहे है।

सात दीक्षाएँ

वडीसादडी के स्मरणीय प्रसगो मे सर्वतोमहत् उल्लेखनीय प्रसग है— सात दीक्षाओ का भव्य आयोजन। विगत सौ-दौसौ वर्षों के इतिहास मे स्थानक-वासी समाज मे सात दीक्षाओ का एक साथ समायोजन नही हुआ था। अत. यह प्रसग ही अपने आप मे अभूतपूर्व था।

सभी दीक्षार्थी भी उच्च कुलीन एवं सम्पन्न परिवारों से सम्बन्धित थे। ग्रन्थ-विस्तार के भय से सभी का विस्तृत परिचय तो अप्रासगिक होगा, किन्तु नाम मात्र यहाँ प्रस्तुत है।

का परमपुण्य भूमि अपनी जन्म-स्थली दाता ग्राम मे पदार्पण हुआ। लघु ग्राम दाता की समस्त जनता ने, जिनमे अधिकाश कृषक थे, अपनी पूत धरा के नौनिहाल लाल का पलक पावडे बिछाकर स्वागत एव अभिनन्दन किया। प्राय. सभी कृषक वन्धुओ ने शराब, मास, आदि दुर्व्यसनो का परित्याग किया तथा प्रत्येक मास की एकादशी एव अमावस्या को तथा भाद्रपद पचमी को (अगता पालने) बैलो को सम्पूर्ण विश्रान्ति देने की सामूहिक प्रतिज्ञा ग्रहण की। इसी प्रकार निकटवर्ती ग्राम कनूकडा के कृषको ने भी उक्त प्रतिज्ञा ग्रहण की।

कनूकडा से आचार्य प्रवर आकोला, हथियाना आदि ग्रामो को धर्मामृत से अभिसिंचित करते हुए अक्षय तृतीया के प्रसग पर चित्तौडगढ पधारे।

राजस्थान की ऐतिहासिक नगरी चित्तौडगढ मे अक्षय तृतीया के पुनीत प्रसग पर जिनवाणी की अक्षयधारा द्वारा स्थानीय एव बाहर से आगत हजारो बुद्धिजीवी पिपासुओ को आप्यायित कर आचार्य प्रवर ने मेवाड के लघु ग्रामो एव भीलवाडा, हमीरगढ, गगरार, बेगू, जावद, निम्बाहेडा, मदसौर, भादसोडा, कानोड़ आदि कस्बो मे जिनवाणी की पीयूषधारा के अभिसिंचन से कषाय कल्मष को प्रक्षालित करते हुये तथा मुमुक्षुओ को त्याग-प्रत्याख्यानो का पाथेय प्रदान करते हुए, इतिहास प्रसिद्ध झाला मन्ना की नगरी बडी सादड़ी मे वर्षा-वास हेतु पदार्पण किया।

• • •

गाडियो की व्यवस्था कर ही रहे थे कि सहसा रात को ट्रेन से ४० पुलिस के जवान बिना ही सूचना के पहुँच गए। बड़ीसादडी संघ के सदस्य इस विषय मे तो आश्चर्यचकित थे ही और इधर विघ्न-संतोषियो के मुखिया के किसी निकटतम सम्बन्धी की उदयपुर अस्पताल मे मृत्यु हो जाने से विवश हो उसे और उसके कुछ साथियो को उसी ट्रेन से उदयपुर जाना पड़ा। परिणामत: विरोध का मुहिम स्वत: ही शान्त हो गया और दीक्षा महोत्सव लगभग बीस हजार की जनमेदनी के समक्ष सानन्द सम्पन्न हुआ।

यह था आचार्य देव की अगाध शान्ति, धीरता, सहिष्णुता एवं तीक्ष्ण दृष्टि का चमत्कार।

इस प्रकार अनेकानेक चामत्कारिक सस्मरणो के साथ बडीसादड़ी का वर्षावास सम्पन्न हुआ।

सामाजिक उत्क्रान्ति

बडीसादडी का गौरवशाली ऐतिहासिक एवं चामत्कारिक उपलब्धियो से पूर्ण वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर ने निकटवर्ती पहाड़ी क्षेत्रो धरियावद, कानोड़ आदि को पावन किया।

आचार्य देव के कानोड़ के इस प्रवास-काल मे अभूतपूर्व सामाजिक उत्क्राति का सूत्रपात हुआ जिसकी सौरभ सम्पूर्ण निकटवर्ती क्षेत्र मे सव्याप्त हो गयी। यह बताया जा चुका है कि आचार्य प्रवर सामाजिक परिष्कार को आध्यात्मिक उत्क्राति की भूमिका के रूप मे स्वीकार करते है। अत. अध्यात्म-उत्थान के गम्भीरतम उद्बोधन के साथ आचार्य प्रवर अपने प्रवचनो मे सामाजिक सुधार पर भी विशेष बल देते है।

कानोड़ मे इसी परिप्रेक्ष्य मे हृदय को छू जाने वाली भाषा मे आचार्य प्रवर के प्रवचन हुए, जिनका स्थानीय जनता पर जादू सा प्रभाव पडा। परिणामत: लगभग सौ वन्धुओ ने सामाजिक उत्थान हेतु निम्न दस प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की।

(१) मृत्यु भोज नही खाना।
(२) मृत्यु के सामूहिक भोज जैसे धोयरा आदि मे सम्मिलित नही होना। यदि कारण विशेप जाना पड़े तो मीठे का उपयोग नही करना।
(३) तिलक नही लेना।
(४) तिलक नही देना।

दी। यहाँ तक कि उन्होने कुछ मूक पशुओ को जो इसी उद्देश्य के लिये रखे गये थे, अभयदान दे दिया। आपकी सुप्त चेतना पर आचार्य देव के प्रवचनो का इतना अधिक प्रभाव पडा कि आप आचार्य देव के अनन्य उपासक बन गये। अपने परिवार वालो से अपने पीछे मृत्युभोज न कराने हेतु प्रतिज्ञा कराली तथा प्रति वर्ष आचार्य प्रवर की जन्म जयन्ती के प्रसग पर ४००) रु० प्रशस्त कार्यो मे दान करने का जीवन पर्यन्त के लिये सकल्प ग्रहण किया।

प्रवचनो की एक दूसरी अबूझ विशेषता थी अनेकानेक बन्धुओ की अन्तरग जिज्ञासाओ का अन्तरज्ञाता की तरह बिना ही प्रश्न किये सहज समाहित हो जाना। श्री बालकिशनजी राठौड एव श्री गोविन्दलालजी शर्मा जैनेतर कृषक बन्धु भी आचार्य देव की इसी तेजस्मिता से पराभूत होकर उनके अनन्य भक्त बन गए थे। इसी प्रकार ब्राह्मण, स्वर्णकार एव अन्यान्य जातियो के स्थानीय एव निकटवर्ती ग्रामो के अनेक बन्धुओ ने दुर्व्यसनो से मुक्त हो, रात्रि-भोजन नही करना, जूते-चप्पल नही पहनना आदि अनेक प्रकार के व्रत धारण किए। अनेक बन्धुओ ने मदमाते यौवन की प्रौढावस्था मे ही जीवन पर्यन्त के लिये सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया।

अध्यात्म-साधना के उन्नयन हेतु प्रेरक उद्बोधन के साथ आचार्य प्रवर के प्रवचनो मे सामाजिक परिष्कार हेतु रूढ अन्ध धारणाओ के प्रति भी सचोट प्रहार होता है। परिणामत इस वर्षावास मे लगभग ७० प्रतिशत महिलाओ ने मृत्योपरान्त रोने आदि की अन्ध कुरीतियो का पालन न करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

इसी प्रकार विगत लम्बी अवधि से स्थानीय लघु साजनान-ओसवाल समाज मे कटुतापूर्ण वैमनस्य का वातावरण बना हुआ था। समाज विघटन के कगार पर खडा था, किन्तु आचार्य देव की पीयूष वर्षिणी वाणी ने समाज प्रमुखो के हृदयो पर शीतल सरस प्रभाव अकित किया। परिणामत सावत्सरिक महापर्व के पुनीत प्रसग पर वह सामाजिक सघर्ष समाप्त हो गया और सम्पूर्ण समाज मे स्नेहिल व्यवहार स्थापित हो गया। यह भी स्थानीय सघ के लिये अपने आप मे एक महान् उपलब्धि ही मानी जाएगी।

चामत्कारिक प्रसंग

महापुरुषो का गरिमा मण्डित व्यक्तित्व ही अपने आप मे चमत्कार पूर्ण होता है। आगमिक दृष्टि से लोकोत्तर पुरुष तीर्थंकर महाप्रभु के व्यक्तित्व का प्रभाव सम्पूर्ण वायुमण्डल को इतना पूत बना देता है कि वहाँ जन्मना वैर रखने वाले प्राणी भी अपनी शत्रुता को विस्मृत कर मैत्री-भाव लिये सन्निकट बैठे रहते है। आज के मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करते है कि हमारे

(२) मृत्यु भोज नही खायेगी ।

(३) मरने वालों के पीछे एक महीने से ज्यादा नही रोयेगी ।

(४) त्यौहारो के दिनो मे किसी के यहाँ रोने नही जायेगी । छाती-माथा नही पीटेगी ।

(५) धर्म-स्थान पर हमेशा सादगी से जायेगी और गुरु महाराज के प्रवचन मे मौन रहेगी ।

(६) विवाह आदि सामाजिक समारोहो के अवसर पर नही नाचेगी व गीतो मे गदी गालियाँ नही गावेगी ।

(७) सासुएँ अपनी बहुओ के साथ बेटी जैसा व्यवहार करेगी और बहुएँ अपनी सास के साथ माता जैसा व्यवहार करेगी अर्थात् कटुशब्द काम नही लेगी ।

(८) रात्रि को सोते समय और प्रातः उठते समय प्रतिदिन पाच नवकार मंत्र का ध्यान करेगी ।

(९) प्रतिदिन एक सामायिक करेगी ।

(१०) गाँव मे विराजित सत मुनिराज अथवा सतियाजी के दर्शन करने जायेगी ।

(११) किसी भी अवसर पर कही भी कोडियाँ नही खेलेगी ।

(१२) पुरुषो के साथ होली नही खेलेगी

युवावर्ग क्यों पीछे रहे

क्रान्ति-उत्क्रान्ति की मशाल जव तक युवा-चेतना के सशक्त हाथों मे नही थमाई जाय, उसका अपनी पूर्णता को प्राप्त होना सदिग्ध ही रहता है। क्रान्ति किवा उत्क्रान्ति का सूत्रपात सदा युवा हृदय से ही होता है। ऊर्जस्विल युवा मानस ही क्रान्ति के स्वर जन-जन मे फूँक सकता है और उस क्रान्ति को अपने चरम विन्दु तक पारगामी रूप देना भी युवा मानस के द्वारा ही हो सकता है। अस्तु, सामाजिक उत्क्रान्ति मे भी युवा वर्ग का सक्रिय होना नितान्त आवश्यक है। इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए आचार्य प्रवर ने स्थानीय जवाहर विद्यापीठ के उत्साही युवा छात्रो मे उद्‌वोधना के स्वर फूँके और उत्क्रान्ति के पुनीत कार्य मे उन्हे मेरुदण्ड का कार्य करने को उत्प्रेरित किया।

परिणाम—जो कि अवश्यम्भावी था, हुआ। युवको मे प्रज्ञा-पूर्ण जोश आया। युवा चेतना की तो सदा अन्तर पुकार ही रहती है कि कोई उन्हे मार्ग-

लब्ध प्रतिष्ठ आदर्श त्यागी बन्धु श्री रणजीतमलजी भण्डारी पीपलिया निवासी ने अपनी साधनाप्रिय धर्मपत्नी श्रीमती विमलाबाई के साथ सयम के कठोर साधना-पथ पर पदचरण किया। आप महातपोधनी मुनि श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० के भागिनेय (भानेज) थे।

इसी प्रकार श्री ताराचदजी वैदमूथा अमलनेर, श्री माणकचदजी चोरडिया, उदयपुर ने भी सात दीक्षाओ की अभूतपूर्वता मे चार-चाद लगाए।

श्रीमती कमलाबाई (ब्यावर) जेठाना, सुश्री पुष्पा एव सुमति कुमारी बडीसादडी ने भी इस वर्षावास की भव्यता को द्विगुणित किया। इस प्रकार सात मुमुक्षु आत्माओ के उद्धार का कार्य आचार्य देव के मगलमय कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी दीक्षा प्रसग पर आचार्य प्रवर की दिव्य दृष्टि का सूचक एक अद्‌भुत एव चमत्कारपूर्ण प्रसग बना, जिसका उल्लेख यहाँ अनिवार्य मान रहा हूँ।

दीक्षाओ के प्रसग पर कुछ सम्प्रदायवादी विघ्न-सन्तोषी बन्धुओ ने मधुर व्याख्यानी श्री कवरचदजी म० सा० की ससार पक्षीय बहिन श्रीमती पारसबाई की दीक्षा का मिथ्या वातावरण निर्मित कर दीक्षा तिथि के एक दिन पूर्व सम्पूर्ण वातावरण को दूषित कर दिया। मिथ्या आरोपमय विज्ञप्तिये प्रसारित करने के साथ ही मार-पीट का उद्‌दण्डतापूर्ण व्यवहार भी करने लगे। स्थानीय सघ के वरिष्ठ सदस्य कुछ असमन्जस मे पड गए और रात्रि दस बजे के लगभग आचार्य प्रवर के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगे—"गुरुदेव! अभी तक हमने पूर्ण शान्ति बनाए रखी है, किन्तु अब हमारे सहने की सीमा के बाहर की बात है। हमे ईंट का जवाब पत्थर से देना पडेगा। हम अभी पुलिस को सूचना दे रहे हैं, ताकि कल दीक्षा के प्रसग पर विरोधी लोग सिर ऊँचा न कर सकें। अभी सूचना करेंगे तभी चित्तौडगढ से कल तक पुलिस फोर्स आ सकेगी।"

आचार्य देव ने गभीर स्वर मे सघ प्रमुखो को आश्वस्त करते हुए कहा—"आप उत्तेजित न हो, सब व्यवस्था अपने आप सुन्दर ढग से निवृत्त हो जाएगी। बोलने वाले कुछ मन का आवेश निकाल कर अपने आप शान्त हो जायेंगे। आप सभी निश्चिन्त रहे।"

सघ सदस्य आचार्य देव के मगल वचनो से सन्तुष्ट हो चले आए। फिर भी बाह्य व्यवस्था को बनाए रखने के लिये उन्होने पुलिस थाना को सूचित कर दिया कि कुछ पुलिस फोर्स चित्तौड़गढ से मगवाई जाए। पुलिस अधिकारी जीप

कानोड़ के पश्चात् ब्यावर वर्षावास हेतु पदार्पण तक के अन्तरालवर्ती सभी क्षेत्रो मे आचार्य देव ने एक अभूतपूर्व सामाजिक एव आध्यात्मिक नव-जागरण एवं नवोन्मेष उत्पन्न कर दिया। आचार्य देव के पद-चरण के प्रमुख क्षेत्र थे—भीण्डर, मगलवाड, चिकारडा, निकूम, विनौता, निम्बाहेडा, जावद, सरवानिया, कंजार्डा, सिंगोली, बेगू, पुनः जावद, लसडावन, भदेसर, चित्तौडगढ, कपासन, गगापुर, देवरिया, रायपुर (मेवाड), देवगढ़ मदारिया, टाटगढ़ एव भीम।

उपर्युक्त सभी ग्रामो में समाज क्रान्ति की उस लहर में अपने आपको प्रवाहित करने वाले सैकडों व्यक्ति तत्पर हो गए। गाँव-गाँव मे सैकडो पुरुष, महिलाएँ एवं युवा बन्धुओ ने कानोड से प्रवाहित उपर्युक्त नियम-धाराओं में अपने आपको अवगाहित किया अर्थात् पुरुषो ने उपर्युक्त १०, महिलाओ ने १२ एवं युवा वर्ग ने १६ प्रतिज्ञाओ मे कही अधिक एव कही न्यून प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की। सरवानिया तक पहुँचते-पहुँचते तो इस नूतन क्रान्ति ने एक नया मोड़ ही ले लिया। सरवानिया मे आचार्यश्री के दर्शनार्थ आगत समीपवर्ती १७ ग्रामो के प्रमुख सदस्यो ने इस मिशन को वैधानिक रूप देने हेतु एक सभा का समायोजन कर समिति का गठन किया। समिति के कर्मठ सदस्यो ने उपर्युक्त बारह नियमों को बढाकर उन्नीस कर दिया और अपने-अपने क्षेत्रो मे इनका व्यापक प्रचार कर इसे और आगे बढ़ाने के सकल्प ग्रहण किये।

१७ ग्राम तथा उनका प्रतिनिधित्व करने वाले सज्जनो के नाम इस प्रकार है :—

	ग्राम	प्रतिनिधि
(१)	सरवानिया महाराज	श्री शान्तिलालजी नपावलिया
(२)	मोरवन	श्री घासीलालजी सहलोत
(३)	जावी	श्री इन्द्रमलजी चोरड़िया
(४)	मोडी	श्री चन्दनमलजी नपावलिया
(५)	दडोली	श्री कन्हैयालालजी नागौरी
(६)	बसेडीभाटी	श्री कन्हैयालालजी फाफरिया
(७)	धामनिया	श्री राजमलजी बोरावत
(८)	नीमच	श्री भंवरलालजी काठेड़
(९)	जावद	श्री रोडमलजी पीतलिया
(१०)	जामुनिया पान	श्री किशनलालजी गाधी
(११)	मनासा	श्री मनोहरलालजी चौधरी

लब्ध प्रतिष्ठ आदर्श त्यागी बन्धु श्री रणजीतमलजी भण्डारी पीपलिया निवासी ने अपनी साधनाप्रिय धर्मपत्नी श्रीमती विमलाबाई के साथ सयम के कठोर साधना-पथ पर पदचरण किया। आप महातपोधनी मुनि श्री वृद्धिचन्दजी म० सा० के भागिनेय (भानेज) थे।

इसी प्रकार श्री ताराचदजी वैदमूथा अमलनेर, श्री माणकचदजी चोरडिया, उदयपुर ने भी सात दीक्षाओ की अभूतपूर्वता मे चार-चाद लगाए।

श्रीमती कमलाबाई (ब्यावर) जेठाना, सुश्री पुष्पा एव सुमति कुमारी बडीसादडी ने भी इस वर्षावास की भव्यता को द्विगुणित किया। इस प्रकार सात मुमुक्षु आत्माओ के उद्धार का कार्य आचार्य देव के मगलमय कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी दीक्षा प्रसग पर आचार्य प्रवर की दिव्य दृष्टि का सूचक एक अद्भुत एव चमत्कारपूर्ण प्रसग बना, जिसका उल्लेख यहाँ अनिवार्य मान रहा हूँ।

दीक्षाओ के प्रसग पर कुछ सम्प्रदायवादी विघ्न-सन्तोषी बन्धुओ ने मधुर व्याख्यानी श्री कवरचदजी म० सा० की ससार पक्षीय बहिन श्रीमती पारसबाई की दीक्षा का मिथ्या वातावरण निर्मित कर दीक्षा तिथि के एक दिन पूर्व सम्पूर्ण वातावरण को दूषित कर दिया। मिथ्या आरोपमय विज्ञप्तिये प्रसारित करने के साथ ही मार-पीट का उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार भी करने लगे। स्थानीय सघ के वरिष्ठ सदस्य कुछ असमन्जस मे पड गए और रात्रि दस बजे के लगभग आचार्य प्रवर के चरणो मे उपस्थित हो निवेदन करने लगे—"गुरुदेव! अभी तक हमने पूर्ण शान्ति बनाए रखी है, किन्तु अब हमारे सहने की सीमा के बाहर की वात है। हमे ईंट का जवाब पत्थर से देना पडेगा। हम अभी पुलिस को सूचना दे रहे हैं, ताकि कल दीक्षा के प्रसग पर विरोधी लोग सिर ऊँचा न कर सकें। अभी सूचना करेंगे तभी चित्तौडगढ से कल तक पुलिस फोर्स आ सकेगी।"

आचार्य देव ने गभीर स्वर मे सघ प्रमुखो को आश्वस्त करते हुए कहा—"आप उत्तेजित न हो, सब व्यवस्था अपने आप सुन्दर ढग से निवृत्त हो जाएगी। बोलने वाले कुछ मन का आवेश निकाल कर अपने आप शान्त हो जायेगे। आप सभी निश्चिन्त रहे।"

सघ सदस्य आचार्य देव के मगल वचनो से सन्तुष्ट हो चले आए। फिर भी बाह्य व्यवस्था को वनाए रखने के लिये उन्होने पुलिस थाना को सूचित कर दिया कि कुछ पुलिस फोर्स चित्तौडगढ से मगवाई जाए। पुलिस अधिकारी जीप

(१२) कोई भी भाई-बहिन त्यौहारो के दिनो मे शोक वाले के यहाँ रोने व रुलाने के लिये नही जायेगे ।

(१३) विवाह आदि के अवसरो पर अग्रेजी बैंड-बाजो मे अनावश्यक खर्च नही करेगे ।

(१४) प्रतिदिन यथाशक्ति एक सामायिक या महीने मे ३० सामायिक पूरी करेगे ।

(१५) जाति सम्बन्धी और व्यक्तिगत झगडो को धर्म मे नही डालेगे ।

(१६) अनमेल विवाह नही करेगे ।

(१७) आध्यात्मिक आहार हेतु धार्मिक पुस्तको का यथाशक्ति पठन-पाठन करेगे ।

(१८) सत-सतियो के जहाँ भी दर्शनार्थ जायेगे, वहाँ, जहाँ तक हो सकेगा, सादा भोजन करेगे ।

(१९) नैतिक व चारित्रिक बल बढाने हेतु तथा असहाय को सहायता पहुँचाने हेतु यथाशक्ति उदारता करेगे ।

यही नही, अन्य अनेक ग्राम भी इस समिति के सदस्य बनते चले गये । यहाँ तक कि ब्यावर वर्षावास के पश्चात् भी आचार्य प्रवर का विचरण जिन क्षेत्रो मे हुआ, आचार्य प्रवर के प्रवचनो के हृदयस्पर्शी प्रभाव ने सर्वत्र जन-जागृति उत्पन्न कर दी और हजारो बन्धु समाज-क्रान्ति के पथ पर अग्रसर होते चले गये ।

आचार्य प्रवर के ब्यावर वर्षावास के पूर्व उपर्युक्त क्षेत्रो के विचरण काल मे उपर्युक्त जन-क्रान्ति के साथ अन्य अनेक उपकार भी हुए जो सक्षिप्त मे निम्नानुसार है ।

प्राय. प्रत्येक ग्राम मे अनेक बन्धुओ ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया, जिसमे चित्तौडगढ मे १७ व्यक्तियो द्वारा इस असिव्रत को सामूहिक रूपेण स्वीकार करना और प्रवचन स्थल पर ही हजारो व्यक्तियो द्वारा सामूहिक रूप से दहेज का त्याग करना उल्लेखनीय है ।

अनेक क्षेत्रो मे युवामडल के गठन और उनके सशक्त कन्धों पर बालक-बालिकाओं मे धार्मिक सस्कार हेतु पाठशालाओं के सचालन की व्यवस्था का सूत्रपात भी हुआ ।

ग्राम-ग्राम मे सैकड़ो बन्धुओ द्वारा मद्य, मास आदि दुर्व्यसनो के परित्याग

(५) जहाँ तिलक लिया जाता हो वहाँ सगाई के अवसर पर सम्मिलित नही होना ।

(६) साधु, सत, सतियाँ जो गाँव मे विराजते हो, उनके दर्शन करना । प्रार्थना मे सम्मिलित होना, यथासम्भव व्याख्यान सुनना । किसी कारणवश प्रार्थना आदि मे सम्मिलित न हो सकें, तो उसकी छूट रहेगी और बदले मे तिविहार का पालन करना ।

(७) प्रतिदिन एक सामायिक करना अथवा महीने मे ३० सामायिक पूरी करना ।

(८) जाति के झगडे को लेकर धार्मिक कार्यों मे किसी भी प्रकार का मनमुटाव नही रखना ।

(९) दीक्षार्थियो की दीक्षा मे उनकी भावोत्कृष्टता को देखते हुए बाधक नही बनना ।

(१०) मृत्यु के पश्चात् एक महीने से अधिक शोक घर मे नही रखना ।

उपर्युक्त प्रतिज्ञाओ मे कुछ बन्धुओ ने दहेज नही लेगे यह प्रतिज्ञा तो ग्रहण की किन्तु दहेज नही देगे इस प्रतिज्ञा को ग्रहण करने मे उन्होंने अपने आपको असमर्थ पाया । उनका कथन था कि जब तक यह सामाजिक अभिशाप समाप्त नही हो जाये, हम यह प्रतिज्ञा ग्रहण नही कर सकते ।

नारियो के कदम उत्क्रान्ति की ओर

प्राय यह माना जाता है कि हमारे समाज की नारियाँ अत्यन्त पिछड़ी हुई हैं इसलिये वे सामाजिक उत्क्रान्ति के कार्यों मे पुरुषो का साथ नहीं दे सकती हैं, किन्तु कानोड की कर्मठ कर्मशील महिलाओ ने, जो कि प्राय: पर्दे की ओट मे रहने वाली हैं, महिला वर्ग पर लगे कलक को धूमिल कर दिया और समाज सुधार के पुनीत कर्म क्षेत्र मे पुरुषो से अधिक सन्नद्ध हो नया कीर्तिमान स्थापित किया । लगभग १५२ महिलाओ ने आचार्य प्रवर के प्रेरक उद्बोधन से उद्बोधित हो निम्न १२ प्रतिज्ञाओ को ग्रहण किया । कुछ महिलाओं ने इसमें कुछ आगार भी रखे हैं, किन्तु इस पुनीत कर्म मे वे सभी [illegible] दृढ़ रहीं और महिला-जागृति का सूत्रपात भी कानोड की पुनीत धरा पर ही हुआ ।

(१) दहेज लेने व देने मे [illegible] और परिवार वालों को प्रोत्साहन नहीं देंगी ।

उदयपुर, वडावदा, बीकानेर, धूलिया आदि अनेक सघों की आगामी वर्षावास की विनतियो मे ब्यावर को वह स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। साथ ही होली तीन दिन पूर्व मोडी–निवासी स्वनामधन्य श्री सूरजमल जी नपावलिया की सुपुत्री कुमारी विमला की भागवती दीक्षा भी हजारो की जनमेदिनी के समक्ष सम्पन्न हुई।

शान्ति कैसे मिलती है ?

इसी विहार-यात्रा का एक विचारोत्तेजक स्मरणीय प्रसग है देवगढ मे उदयपुर के विश्व ख्याति प्राप्त (अमरीका मे कार्यरत) युवा वैज्ञानिक श्री कुन्दन सिह जी सिघवी से विज्ञान के सन्दर्भ मे परिचर्चा—

प्राध्यापक श्री के० एस० सिंघवी उदयपुर मे जन्मे एक प्रबुद्ध विचारक है। प्रखर प्रतिभा के कारण आपने वैज्ञानिक जगत मे अप्रतिम ख्याति अर्जित की है। अणुशक्ति के सन्दर्भ मे विशेष शोध-अनुसधान के द्वारा वैज्ञानिक विश्व को अपूर्व दृष्टि प्रदान की है। उस समय श्री सिंघवी अमरीका विश्वविद्यालय मे विज्ञान विभाग मे प्राध्यापक एव विभागाध्यक्ष थे।

श्री सिंघवी जी की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि पच्चीस हजार रुपये मासिक का उच्च वेतन होते हुए एव अमेरिका जैसे भडकीले देश मे रहते हुए भी आपकी सादगीपूर्ण वेशभूषा, विनम्रता एव सतो के समक्ष वार्तालाप मे यतनाविषयक पूर्ण विवेक श्लाघनीय ही नही, अनुकरणीय भी था।

आज के तथाकथित युवा बुद्धिजीवी बन्धुओ के लिये, जिन्हे कि हजार पाँच सौ रुपये वेतन मिलता है, सिघवी जी का जीवन एक प्रशस्त आदर्श उपस्थित करता है।

श्री सिघवी जी की दूसरी विशेषता थी कि अमेरिका की नागरिकता स्वीकार कर भौतिकता प्रधान वातावरण मे रहते हुए भी अध्यात्म के प्रति आन्तरिक अभिरुचि। यही कारण है कि आपकी आचार्य प्रवर के प्रति अनन्य आस्था है। आप जब भी भारत आते है, समय निकालकर आचार्य देव के विचरण क्षेत्र की जानकारी कर वहाँ पहुँच जाते है। वैसे सिघवी जी का प्रायः सम्पूर्ण परिवार उदयपुर मे रहता है, तथापि उनका भारत आगमन प्राय. भारत सरकार के वैज्ञानिक शोध हेतु निमन्त्रण पर ही होता है।

इसी आधार पर आचार्य प्रवर के विचरण क्षेत्र की जानकारी लेकर श्री सिघवी जी देवगढ मे आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हो गए।

प्रवचन-श्रवण के पश्चात् सिघवी जी ने आचार्य देव से विनम्र शब्दो मे कुछ समय मांगा, मैं कुछ जिज्ञासा लेकर श्री चरणो मे उपस्थित हुआ हू।

दर्शन भर कर दे, फिर वह कहाँ पीछे रहने वाली है। यही स्थिति बनी विद्यापीठ के युवा बन्धुश्रो की भी। श्राचार्य देव का क्रान्तिकारी उद्‌बोधन प्राप्त कर वे पुरुषों एव महिलाओ से भी दो कदम आगे बढ गए। लगभग ७७ युवा वन्धुश्रो ने निम्नलिखित १६ नियम ग्रहण कर उत्क्रान्ति के पथ पर पदचरण करने हेतु पहल की।

(१) मृत्यु भोज मे सम्मिलित नही होगे।

(२) विशेष परिस्थितियो मे जाना पड़ा तो मीठा नही खायेगे।

(३) बीडी, सिगरेट, गाजा आदि मादक वस्तुओ को काम मे नही लेना अर्थात् इनके सेवन का त्याग रखना।

(४) माता-पिता श्रौर गुरु की श्राज्ञा का पालन करना।

(५) प्रतिदिन घर मे बड़ो को प्रणाम करना।

(६) उठते, सोते व भोजन करते समय नवकार मत्र का पाठ करना।

(७) दूसरो की वस्तुश्रो को विना पूछे नही लेना।

(८) मुँह से अपशब्द नही निकालना।

(९) प्रतिवर्ष ५ उपवास या १० व्रत रखना।

(१०) परीक्षा मे नकल नही करना।

(११) रात्रि को भोजन नही करना (महीने मे १० दिन)।

(१२) गाँव मे विराजित सत व सतियो के दर्शन करना।

(१३) धार्मिक शिक्षण स्वय लेना व अपने छोटे भाइयो को देना।

(१४) दीक्षा लेने वालो के कार्य मे वाधक न होना श्रौर सहायक वनना।

(१५) अवकाश के दिन सामायिक करना।

(१६) अपनी ओर से दहेज को प्रोत्साहन न देना।

सामाजिक एव तद् द्वारा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की यह लहर केवल कानोड परिक्षेत्र तक ही सीमित नही रही। कानोड की पवित्र धरा से उठी यह लहर प्राय सम्पूर्ण चित्तौड जिले मे एव शस्य श्यामला मालव भूमि में जहाँ-जहाँ भी श्राचार्य देव के पद-चरण हुए, फैलती चली गई श्रौर संगठनो एवं समा-सयोजनो के द्वारा स्थायित्व लेती गई।

अर्थात् धन से कभी भी प्राण रक्षा अथवा शांति नही प्राप्त हो सकती है। धन-सपत्ति अशांति का ही मूल कारण है और यही बात आप कह रहे हैं। सम्पन्नता भौतिक ऐश्वर्य को दे सकती है, जिससे शारीरिक सुख क्रय किये जा सकते है, किन्तु मन की शाति क्रय नही की जा सकती। पैसो से मखमल के गलीचे क्रय किये जा सकते है, किन्तु नीद नही। कुछ और गहराई मे जाएँगे तो स्पष्ट होगा कि सम्पूर्ण अनर्थ-अशाति का कारण ही अर्थ है। इसलिये तो मनीषियो ने कहा है कि :—

"अर्थ मनर्थभावय नित्यं"

प्रसन्नता का विषय है कि आप जैसे उच्चकोटि के विचारक-वैज्ञानिक अब इस पुरातन तथ्यपूर्ण सत्य को स्वीकारने लगे है और उच्चतम सम्पन्न वर्ग भी इस सत्य की स्वीकृति मे आगे बढ रहा है। यह भिन्न बात है कि वे जिन मार्गो पर अंधानुकरण के रूप मे दौड जा रहे है, वह मार्ग उन्हे पूर्णरूपेण सतुष्ट नही कर पाएगा। कारण स्पष्ट है कि हिप्पीवादिता अथवा हरे रामा.... आदि की धुन उन्हे एक नशा-सा आनद अवश्य दे सकती है, जो कि क्षणिक होता है। जैसे किसी को अफीम, चाय आदि का नशा हो जाता है, वैसे ही वह नाचगान भी कुछ क्षणो के लिये दु:ख-विस्मृति के अलावा कुछ नही दे सकता। कुछ क्षणो का ऐन्द्रिक आनन्द सुखाभास उससे मिल सकता है और गम भी नीद की गोलियो के समान भुलाया जा सकता है, किन्तु जिन मार्गो पर आज के शाति-पिपासु दौड लगा रहे है, वे मार्ग उनके भटकाव के लिये है, स्थायी हल के लिये नही।

"वास्तव मे यदि शाति की सच्ची प्यास है, तो उसे हमे अपनी अन्तरग वृत्तियो मे ही खोजना होगा। आनद, शाति अथवा दु:ख सक्लेश तो हमारे विचारो के आधार पर ही निर्मित होते है। किसी विषय मे एक व्यक्ति को आनन्द भासित होता है तो उससे भिन्न रुचि वाले किसी व्यक्ति को उसी विषय मे दु.ख भी भासित हो सकता है। वस्तुत· शाति का सम्बन्ध बाह्य विषयो की प्राप्ति-अप्राप्ति से नही, अपितु मनोवृत्तियो के सशोधन से है इसलिये शाति-प्राप्ति की अभीप्सा मे हमे मन:साधना के प्रति अधिक सक्रिय होना होगा। मन की वृत्तियो के सध जाने पर पदार्थो के प्रति वनने वाले हमारे दृष्टिकोण मे महज ही परिवर्तन आ जाएगा और "दृष्टि वदली, कि सृष्टि वदली" की उक्ति के अनुसार दु.खप्रद विषय मे भी हम दृष्टि नैर्मल्य के साथ सुख की अनुभूति कर सकते है। अस्तु, मेरे विचारो के अनुसार आपको मन साधना के क्षेत्र मे प्रवेश करना चाहिये और आप जैसे प्रतिभा-सम्पन्न वुद्धिजीवी के लिये यह साधना कोई कठिन कार्य नही है क्योकि जिस तीव्र अभीप्सा के साथ आप वैज्ञानिक अनुसधान के कार्य मे सलग्न होते है, उसी अभीप्सा को साधना की ओर मोड देना है।

(१२)	भाटखेडी	श्री चतुरलालजी वम्ब
(१३)	अल्हेड	श्री मोहनलालजी तखेचा
(१४)	कजार्डा	श्री लहरमलजी भंडारी
(१५)	सावन	श्री भैरूलालजी कोठारी
(१६)	खजसूरिया	श्री रूपचन्दजी वावेल
(१७)	पीपल्या स्टेशन	श्री मनोहरलालजी खिदावत

जिन नियमों का पालन करने की प्रतिज्ञा ली गई, वे इस प्रकार है :—

(१) मोसर या स्वामी वात्सल्य आदि किसी भी नाम से किया जाने वाला मृत्यु भोज नही करेंगे।

(२) तिलक लेने व देने सम्बन्धी ठहराव यानी सौदावाजी नही करेंगे। तिलक के विषय को लेकर यदि सम्वन्ध मे कोई वाधा उपस्थित होगी, तो कार्यकारिणी उसका हल करेगी।

(३) सगाई (सम्वन्ध) होने के वाद उसे कोई नही छोड़ेगा। यदि कोई छोडेगा तो वह पचो का अपराधी होगा।

(४) मृत्यु के वाद एक मास से अधिक शोक नही रखेंगे।

(५) धर्म-स्थान पर हमेशा सादगी से जायेंगे और साधु-सतियो के प्रवचन मे मौन रहेगे।

(६) धार्मिक शिक्षण स्वय यथाशक्ति लेंगे तथा वालक-वालिकाओ को धार्मिक शिक्षण दिलाने मे तत्पर रहेगे।

(७) जहाँ धर्म-स्थान उपलब्ध हो या जो सामूहिक स्थान निर्धारित हो, वहाँ पर प्रतिदिन सामूहिक रूप से प्रार्थना करेंगे।

(८) विवाह आदि के समारोहो पर होने वाले गदे गीतो पर रोक लगायेगे।

(९) जाति व धार्मिक रीति-रिवाजो मे वृथा खर्च नही करेंगे।

(१०) प्रातः उठते समय व साय सोते समय ११ नवकार मंत्र का ध्यान करेंगे।

(११) दीक्षार्थी भाई-वहिनो की दीक्षा विपयक उत्कट भावना को देखते हुए उसमे वाधक नही वनेंगे, वल्कि सहयोग देंगे और दीक्षा को सादगी से सम्पन्न करने का ध्यान रखेंगे।

के निमित्तो से सहज मुक्ति प्राप्त हो सकेगी । आपके लिये मैं नही कहता, किन्तु सामान्य जन-जीवन लघुतम पारिवारिक सघर्षो एव सक्लेशो से पीडित है। तुच्छ विषयो को लेकर तूफान खडा हो जाता है और आत्म शाति भग हो जाती है । उदाहरण के लिये किसी के पास वैभव की सम्पन्नता है तो उस विषय मे आवश्यकताओ की यथासमय पूर्ति हो जाने से सक्लेश उत्पन्न नही होते हैं, तो कभी छोटे बच्चे की सामान्य सी बात को लेकर पति-पत्नी मे तनाव हो जाता है । कभी पडौसी के अभद्र व्यवहार के प्रति चित्त क्षुब्ध हो जाता है, तो कभी अधिकारी अथवा अधीनस्थो की प्रतिकूल प्रवृत्तियो पर मन विचलित हो उठता है ।

"इस मानसिक तनाव से मुक्ति पाने हेतु उपर्युक्त चिन्तन जिसमे स्वय की कमजोरियो एव स्वय द्वारा किसी के प्रति किये गये अभद्र व्यवहार के प्रति पश्चात्ताप जागृत होता है, श्रेष्ठ रह सकता है ।

"दैनिक प्रवृत्तिजन्य तनाव से मुक्त होने के साथ ही स्थायी आत्म शाति हेतु चिन्तन भी आवश्यक है । स्थायी आत्म शाति का मूल उत्स बाहर न होकर भीतर ही है । अत इसके लिये आत्म केन्द्र के सन्निकट पहुँचने की आवश्यकता है । प्रारभ मे आत्म शक्ति के विषय मे यह आस्था जागृत की जाए कि मैं अनन्त शक्ति का पु ज हूँ । सामान्य से प्रयास से मेरी चेतना से अनन्त शक्ति स्रोत फूट सकते है । जिन भौतिक पदार्थों के प्रति अनुरागी बनकर मैंने अपनी शाति को खोया है, उनके प्रति हेयता की दृष्टि निर्मित कर मैं पुन आत्म शाति मे प्रतिष्ठित हो सकता हूँ । वास्तव मे पर पदार्थ के प्रति होने वाले लगाव से ही अशाति उत्पन्न होती है । यदि मै लगाव से मुक्त हो जाऊँ तो, फिर क्या कारण बच जाता है, मेरी अशाति का । उससे मुक्त होने की अनन्त सामर्थ्य छिपी है मेरी ही चेतना मे । यदि मै ममता के बन्धनो से मुक्त होकर समत्व योग की उच्च भूमिका का स्पर्श कर लूँ तो ससार की किसी भी शक्ति से मैं प्रतिहत होने वाला नही हूँ । समत्वभाव दुर्दमनीय शत्रु को भी परम मित्रता मे रूपान्तरित कर देता है । मेरी शाति पर सापेक्ष नही, स्व सापेक्ष है । जहाँ भी पर की अपेक्षा है, अशाति ही हो सकती है, शाति नही । अत. यह परम आवश्यक है कि मैं, जितना बन सके पर भाव से ऊपर उठने का प्रयत्न करता रहू ।

"इस उपर्युक्त गभीर चिन्तन को स्थायित्व प्रदान करने हेतु तथा उस चिन्तनीय प्रभाव को दिन भर की क्रियाओ मे अनुस्यूत करने हेतु यह चिन्तन भी आवश्यक है कि "मैं कौन हू, मेरा क्या स्वरूप है और मुझमे क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं ?" मैं कल जिस रूप मे था वैसा ही आज हूँ, अथवा मुझमे अच्छाई-बुराई के सन्दर्भ मे कुछ परिवर्तन भी हो रहे है, मुझे किस रूप मे अपने

के साथ पीढियो से चली आ रही अपनी परम्परागत बलि प्रथा का परित्याग भी इसी विचरण काल का एक उपलब्धिपूर्ण ठोस कदम था ।

अनेक लघु ग्रामो मे, जहाँ कृषको का ही वाहुल्य रहता है, आचार्य प्रवर के प्रवचन भी उसी शैली से होते है। परिणामत. छोटे-छोटे ग्रामो मे भी सामूहिक रूप से मास मे दो दिन तथा भाद्रपद पचमी (सवत्सरी) को अगता पलवाने (बैलो को विश्रान्ति देने) की प्रतिज्ञाएँ हुईं ।

कुछ क्षेत्र विशेषो मे उल्लेखनीय प्रसग भी वने, जिन्हे यहाँ उल्लेखित करना अप्रासगिक नही होगा ।

सरवानिया के लगभग सौ व्यक्तियो ने प्रतिमाह एक दया एव प्रति अमावस्या को व्यवसाय बन्द रखने की प्रतिज्ञा ली ।

परम्परागत चले आ रहे, श्रद्धालु भक्त वन्धुओ के हृदयो का परिवर्तन तो सहज है, किन्तु आचार्य प्रवर की वाणी का जादू-सा प्रभाव अजैन एव अभक्तो को भी किस प्रकार प्रभावित करता है, इसका लघु किन्तु ज्वलन्त रूप देखने को मिलता है मगलवाड एव टाटगढ मे ।

मगलवाड के एक पुरोहित परिवार मे कुछ भूमि को लेकर दो पीढियो मे (लगभग ५०–६० वर्षों से) आपसी वैमनस्य चल रहा था। हजारो रुपये दोनो ओर से कोर्ट मे खर्च हो चुके थे। आपसी समझौते के अनेक प्रयास हुए, किन्तु सफलता नही मिली ।

आचार्य देव की शान्तिदायिनी अमृतधारा ने श्री नवलराम जी एव श्री लक्ष्मीलाल जी पुरोहित काका-भतीजे के हृदयो मे स्नेहाकुर उत्पन्न कर दिया । परिणामत वर्षों का सघर्ष चन्द क्षणो मे विध्वस्त हो गया और एक स्नेह की धारा वह चली ।

इसी प्रकार टाटगढ मे तेरापन्थ सम्प्रदाय के वन्धुओ मे वर्षो से आपसी तनाव था। आचार्य प्रवर की जादूभरी वाणी ने वहाँ भी अपना प्रभाव दिखाया और चारो ओर सौहार्द, स्नेह एव शान्ति का वातावरण छा गया। टाटगढ निवासियो का हृदय आचार्य प्रवर के प्रति श्रद्धा से भर गया। अनेक श्रद्धालुओं के स्वर फूट पड़े, "ऐसे समत्वयोगी महापुरुषो का आगमन हमारे क्षेत्र में प्रथम वार ही हुआ। हमे आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अतिशय सम्पन्न व्यक्तित्व लगता है। यह आचार्य प्रवर के अतिशय का ही प्रभाव है कि लगभग पन्द्रह वर्षो से चला आ रहा सामाजिक सघर्ष विना किसी विशेष प्रयास के शान्त हो गया।"

इस परिभ्रमण काल का जावद का द्वितीय प्रवासकाल भी स्मरणीय है, जहाँ कि होली चातुर्मासी के प्रसग पर हजारो की जनमेदिनी की उपस्थिति मे

भी अपने जैन सिद्धान्तो के अनुसार जड पदार्थों में गति स्वीकार कर रहा है। वास्तव मे अब वैज्ञानिक-दृष्टि पदार्थ की गुणात्मकता को ही स्वीकार करती है। उसके अनुसार पदार्थ एक ऊर्जा मात्र है।" श्री सिंघवी जी ने कुछ विस्तार से स्पष्ट किया और समय की स्थिति को देखते हुए वन्दन एव आभार प्रदर्शन के साथ लौट गये।

देवगढ की धर्मप्राण जनता के मनो को जिनवाणी की अमृतधारा से आप्यायित कर आचार्य देव का भीम मे धर्म एव सामाजिक उत्क्रान्ति का उद्घोष करते हुए, वर्षावास हेतु ब्यावर पदार्पण हुआ।

• • •

आचार्य प्रवर ने चर्चा हेतु समय दिया और सिंघवी जी के साथ आगत सभी बन्धु आचार्य देव के उपपात मे आसीन हो गए और श्री सिंघवी जी ने जिज्ञासा के स्वरो मे पूछा—"आचार्य देव, सर्व प्रथम मैं आज की ज्वलन्त समस्या के सदर्भ मे जिज्ञासा करना चाह रहा हू। आज का मनुष्य आत्म-शान्ति से भटक गया है। इतनी सुख-सुविधाओ एव तकनीकी विकास की सुख-सुविधाओ से ओत प्रोत होने पर भी मन मे शाति नही है। मानव-मन निरन्तर अशात एव उद्वेलित बना हुआ है। गुरुदेव! आप ऐसा कोई सुगम उपाय दर्शायें ताकि कुछ मन शाति मिल सके?"

आचार्य देव ने किंचित मुस्कुराहट के साथ कहा, "सिंघवी जी, आपके मुह से यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है। आप तो अमेरिका जैसे धन कुबेरो के देश मे रहते हैं, जहाँ सभी भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। फिर आप एक अनुसधान विभाग मे सर्वेसर्वा है। आपका मन अशान्त कैसे है? आप यह कैसे पूछ रहे है कि शाति कैसे मिलती है। सुना जाता है कि अमेरिका मे अपार वैभव-विलास की सामग्री है। उस सबके मध्य आपको यह जिज्ञासा क्योकर हुई है?"

"आचार्य प्रवर, यह भारतवासियो की नितान्त भ्रान्त धारणा है कि अमेरिका सम्पन्न देश है, अत सुखी है। वहाँ के लोग सम्पन्नता से ऊब चुके है। उनके सामने अब ज्वलन्त समस्या है कि धन के अम्बार लगा देने के उपरान्त भी आत्म-शाति तो क्षण भर को भी नही मिल पाती है। फिर क्या उपयोगिता है इस धन की? वास्तव मे अमेरिकन लोग शाति की खोज मे यत्र-तत्र भटक रहे है और जो कोई जैसा भी मार्ग बता देता है, उसी के पीछे चल पडते हैं। कोई हिप्पी बन रहे है, तो कोई हरे राम, हरे कृष्ण की धुन लगा रहे है। कोई भारत के तीर्थों मे घूम रहे हैं, तो कोई पडा एव पुजारियो के चगुल मे फँसे हैं।

"सामान्य लोगो को तो जाने दीजिये। मेरा तो अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवियो एव वैज्ञानिको से सम्पर्क है। मैं देखता हूँ, उन सभी के मानस भी तनावों से घिरे रहते है। तृष्णा की अदम्य लिप्सा उन्हे भी चैन की सास नहीं लेने देती है। मैं स्वय भी इसी श्रेणी मे हूँ। अत मेरा विनम्र निवेदन है कि आप मुझे ऐसा मार्ग-दर्शन दे कि कुछ आत्मशाति मिले।" श्री सिंघवी जी ने स्पष्ट किया।

"सिंघवी जी आपकी इस चर्चा से एक बात तो स्पष्ट हो रही है कि प्रभु महावीर ने पच्चीस सौ वर्ष पूर्व जो विचार दिये है, वे अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रहे है। प्रभु की वाणी है कि —

"वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमम्मि लोए अदुवा परत्था।"

तो स्वय श्री सौभाग्यमलजी साण्ड, दूसरे उनके सुपुत्र श्री सुरेन्द्रकुमारजी साण्ड, दो पुत्रियाँ सुश्री कुमारी श्रीकान्ता एव सुश्री कुमारी चन्दना, तथा साण्ड साहव की धर्मपत्नी श्रीमती सूरजदेवी साण्ड । साण्ड परिवार का सक्षिप्त परिचय पूर्व मे दिया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि साण्ड परिवार एक आदर्श परिवार रहा है, जिसने छ सदस्यो को जिन शासन के गौरव की श्री वृद्धि हेतु समर्पित किया है। उल्लेखनीय है कि श्री साण्डजी ने दीक्षा के पूर्व अपने सुपुत्र श्री सुरेन्द्रकुमार के नाम से ही एक मुश्त इक्कीस हजार की राशि प्रदान कर सुरेन्द्रकुमार साण्ड शिक्षा समिति की स्थापना की जिससे शिक्षा विस्तार के क्षेत्र मे अप्रतिम सहयोगात्मक प्रवृत्ति का शुभारम्भ हुआ ।

छठवे मुमुक्षु बन्धु थे उदयपुर निवासी श्री रगलालजी वाफना के सुपुत्र भद्रमना श्री रमेशकुमारजी वाफना, जो कि यौवन की देहली पर पाँव धरने के पूर्व ही आत्म-कल्याण की उद्दाम भावना लिये हुए साधना के पथ पर आरूढ हो गये ।

इसी प्रकार रतलाम निवासी श्री सुगनमलजी पिरोदिया की सस्कार-शीला प्रतिभावती सुपुत्री बाल-ब्रह्मचारिणी सुश्री ताराकुमारी, वीकानेर निवासी श्री सम्पतलालजी बाठिया की सुपुत्री कुमारी कल्याणवाई एव रावटी निवासी धर्म श्रद्धालु श्रावक श्री नानालालजी कटारिया की सुपुत्री कुमारी केशर ने भी आत्म-साधना के पावन पथ पर अग्रसर होने हेतु इन्ही नौ दीक्षाओ मे अपना गौरवशाली स्थान प्राप्त किया ।

यह बताया जा चुका है कि आचार्य प्रवर का जीवन निरन्तर अभूतपूर्वता की ओर गतिशील है, अत. इस दीक्षा महोत्सव की छटा भी अभूतपूर्व ही थी। चालीस-पचास हजार की जनमेदनी का दीक्षोत्सव के प्रसग पर उपस्थित हो जाना एक ऐतिहासिक सघटना ही मानी जाएगी ।

वैज्ञानिक मत–ध्वनिवर्धक यत्र मुनियों के लिये वर्जित

ब्यावर वर्षावास के अविस्मरणीय प्रसगो मे एक था वैज्ञानिक सन्दर्भो मे ध्वनिवर्धक यत्र के विषय मे परिचर्चा । अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ के वार्षिक अधिवेशन के प्रसग पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक, शिक्षाविद् सन् ६४-६६ मे भारतीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) के सम्माननीय निर्देशक एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष श्री दौलतसिहजी कोठारी भी उपस्थित हुए । एक दिन सन्ध्या प्रश्नोत्तर की वेला मे ज्ञान-चर्चा चल रही थी। चूँकि ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक की उपस्थिति थी, अत चर्चा अध्यात्म के साथ कुछ वैज्ञानिक जगत् की ओर मुड गई थी । सहसा भीनासर निवासी सेठ श्री चम्पालालजी बाठिया ने डॉ० कोठारी से प्रश्न किया—"डॉ० साहब, वैज्ञानिक दृष्टि से विजली अचित है या सचित है ?"

"आपका कार्य-क्षेत्र नित नूतन अनुसंधान कर उपलब्धियो के नूतन आयाम प्रस्तुत करना है। उसके लिये जैसे तीव्रतम इच्छाशक्ति का आप उपयोग करते हैं, ठीक वैसी ही तीव्र इच्छा मन.साधना के प्रति उत्पन्न करले। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि किसी भी कार्य के प्रति जितनी तीव्र आत्मशक्ति होगी, कार्य उतना ही शीघ्र सम्पन्न होगा। इस प्रकार के तीव्र सकल्प के साथ आप मन साधना की किसी विशिष्ट पद्धति का अनुगमन प्रारभ कर दें।

"चूँकि आप मे अध्यात्म-सस्कार आनुवशिक परम्परा के रूप मे शैशव से चले आ रहे हैं, इसलिये सम्भव है तीव्र अभीप्सा के लिये आपको अधिक प्रयास नही करना पडे। आप प्रारभ मे सहजयोग की प्रक्रिया से मन की गतिविधियो मे परिवर्तन-सशोधन करने का प्रयास करे। इसके लिये आपको अपने व्यस्त जीवन क्रम मे से कम-से-कम एक घटे का समय निकालना चाहिये। उस समय का निर्धारण आप इस क्रम से करें कि उसमे आपको अन्य किन्ही प्रवृत्तियो को लेकर व्यवधान उपस्थित न हो, अर्थात् वह काल आपका एकान्त शात हो और अपना ही हो। उसमे परिवार, समाज एव व्यवसाय सम्वन्धी कोई विचार न उठने पाये। साधना का प्रारभ उस तीव्र सकल्प से करे कि अव घटे भर के लिये मैं परिवार एव समाज की क्षुद्र परिधियो से मुक्त होने जा रहा हूँ। मैं एक विराट् आकाशवत् विश्वव्यापी चेतना हूँ और उसी स्वरूप मे समाहित होने की साधना मे प्रवेश कर रहा हूँ। अस्तु, इस पवित्र वेला मे मुझे समस्त चराचर प्राणियो मे आत्मत्व का साक्षात्कार करना है। मैं एक सजगचेता अध्यात्म चिन्तक एव साधक वनने जा रहा हूँ। इन क्षणो मे मुझे जीवन-दर्शन एव उसके मौलिक उद्देश्य के विषय मे चिन्तन करना है।

"इस सकल्प के साथ चेतन जगत् की शाश्वतता एव देह के मृत्पिण्ड की विनश्वरता का विचार करे कि वर्तमान जीवन केवल देह तक सीमित मृत्पिण्ड ही नही है, अपितु अनन्त जन्म-शृङ्खला की यह भी एक कडी है। मुझे प्रयास तो करना चाहिये कि मैं इस दु ख दौर्मनस्य की शृङ्खला को तोड़कर जीवन की विराटता, अनन्तता अथवा शाश्वत शाति मे समाहित हो सकूं, किन्तु इतना सामर्थ्य अभी नही जुटा पा रहा हूँ। तो भी वर्तमान जीवन को तो तनावो, सघर्षो एव विद्वेषपूर्ण स्थितियो से मुक्त कर सकूँ। इसके लिये मेरे व्यवहारो मे सहृदयता, शालीनता एव सहजता का होना नितान्त आवश्यक है। दैनिक प्रवृत्तियो मे मेरा कही ऐसा आचरण तो नही हुआ है, जिनसे कि किसी की आत्म-शाति भग हुई हो। यदि इस प्रकार की कोई पद्धति वन गई हो, तो उसके प्रति पश्चात्ताप का भाव निर्मित कर पुन. इस प्रकार की प्रवृत्ति को नही दुहराने के लिये सकल्पित होना होगा।

"वर्तमान जीवन मे सन्दर्भित इस सामान्य चिन्तन के द्वारा अपने आस-पास के वातावरण को सशुद्ध वनाने मे सहयोग प्राप्त होगा तथा स्वयं संक्लेश

चातुर्मास समापन पर ब्यावर से प्रस्थान किया। विदाई समारोह की छटा भी अपने आप मे अनोखी एव अभूतपूर्व ही थी। लगभग २५ हजार की जनमेदनी का विदाई समारोह मे एकत्रित हो जाना अभूतपूर्व ही था।

पीढ़ियो का सघर्ष समाप्त

ब्यावर से प्रस्थान कर आचार्य प्रवर का राम, बावरा, नागेलाव होते हुए लीडी पदार्पण हुआ। लीडी एक छोटा-सा पाच सो घरो की बस्ती वाला गाँव है। लगभग ३० घर जैन समाज के है। अनूठे धर्मोत्साह के उपरान्त वहाँ का आपसी तनाव भिन्न ही प्रकार का था। सम्पूर्ण जैन समाज दो दलो मे विभक्त था। वे सब आपस मे गोत्रीय भाई ही थे। एक दल दूसरे दल के यहाँ किसी भी प्रसग पर पाँव नही रखता था। पूछा गया कि इस सघर्ष का कारण क्या है, तो उत्तर मिला, "इसकी हमे जानकारी नही। हमारा यह सघर्ष पीढियो से लगभग (१००) सौ वर्षों से चला आ रहा है। हम नही जानते है कि हम किस कारण से एक-दूसरे भाई के यहाँ नही जाते, यहाँ तक कि हमने किसी एक दूसरे भाई के मकानो को कभी नही देखा कि वे भीतर से कैसे बने हुए है और अब भी हम एक-दूसरे के यहाँ नही जाते है और भविष्य मे भी नही जाएँगे।"

यह सब सुनकर आचार्य प्रवर को आश्चर्य मिश्रित दु ख हुआ। आश्चर्य इस बात का कि लोग निष्कारण सघर्ष को भी पीढी-दर-पीढी कैसे पालते रहते है, और दु ख यह कि लोगो मे कितनी नासमझी है कि आपस मे निष्कारण ही राग-द्वेप का अभिवर्धन कर रहे है।

आचार्य प्रवर ने प्रवचनो के माध्यम से इस भेद की विस्तृत खाई को पाटने का प्रयास किया, किन्तु खाई पुरखो द्वारा इतनी गहरी की गई थी कि दो दिन के प्रवचनो के द्वारा उसमे परिपूर्ति के लक्षण दृष्टिगत नही हुए। अन्यान्य सामान्य प्रयासो के द्वारा स्थिति स्पष्ट हुई कि ऐसे अनेक प्रयास यहाँ हो चुके है, किन्तु कोई प्रयास सफल नही हुआ। हाँ, लगभग ५५ वर्ष पूर्व इस सघर्ष मे कुछ न्यूनता आई थी, किन्तु मानसिक स्थिति के पूर्ण परिष्कार के अभाव मे तनाव पुन. वैसा का वैसा बना रहा। इन्ही दो दिनो के अन्तराल मे ब्यावर के कुछ बुद्धिजीवियो ने भी इस वैमनस्य की उपशाति हेतु अथक प्रयास किया, किन्तु क्लान्त चित्त हो आचार्य प्रवर से निवेदन कर दिया—इन तिलो मे तेल नही है। यह वैमनस्य मिटने वाला नही है। लेकिन आचार्य देव का व्यक्तित्व इतने मात्र से निराश अथवा सन्तुष्ट होने वाला नही था। अपने तृतीय दिवस के प्रवचन मे आचार्य प्रवर ने अयोध्या नरेश एव काशी नरेश के आख्यान का इतना हृदयस्पर्शी मार्मिक चित्र खीचा कि लीडी निवासियो के कठोर हृदय भी हिल उठे। सबकी आत्मा मे एक सगठनात्मक उत्क्राति की भावना उमड पड़ी और प्रवचन समापन के अनन्तर ही सभी ने आपस मे क्षमायाचना कर

आपको ढालना है और मैं किस रूप मे ढलता जा रहा हूँ। क्या मैं अपने इस क्रम मे कुछ परिवर्तन नही करता हूँ ?

"इस चिन्तन के पश्चात् यदि कुछ समय वचे, तो इसी विषय के अध्यात्म साहित्य का नियमित अध्ययन किया जाए। इस क्रम के सध जाने पर और कुछ तनावो से मुक्त होकर आत्म शाति की भूमिका के निर्मित हो जाने पर कुछ ध्यान की प्रक्रिया भी प्रारभ की जा सकती है, किन्तु उसके लिये पहले आप इस स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करे।"

"आचार्य प्रवर ! निश्चित ही निर्देशित मार्ग का अनुगमन करने का प्रयास करूँगा। आपके द्वारा प्रदर्शित यह पद्धति मुझे अत्यन्त साइकोलोजिकल (मनोवैज्ञानिक) प्रतीत हुई है। मुझे विश्वास है कि इसके माध्यम से मैं ही नही, मेरे अनेक अमेरिकन मित्र भी लाभान्वित होगे। आपने इतना समय दिया, इसके लिये मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।"—श्री सिघवी जी ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

"समय तो हो ही रहा है, किन्तु कुछ अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियो से भी तो परिचित कराइये"—आचार्य प्रवर ने जिज्ञासा व्यक्त की।

"गुरुदेव, विज्ञान वैसे वहुत कुछ सूक्ष्मता तक पहुँचा है। परमाणु तत्त्व के अनेकानेक सूक्ष्मतम घटको को विज्ञान ने खोज निकाला है, किन्तु हमारी यह मान्यता है कि परिपूर्ण सत्य तक हम नही पहुँच सकते है। क्योकि ज्यो-ज्यो नया अन्वेषण होता है, त्यो-त्यो पुरातन सिद्धान्त खण्डित होते जाते हैं और उनका स्थान नूतन सिद्धान्त ले लेते हैं। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, अत: यह कहना एकदम मिथ्या सिद्ध होता है कि हमने जो खोज लिया, वही पूर्ण सत्य है। जहाँ तक मैंने जैन तत्त्व ज्ञान का अध्ययन किया है, हमारा परमाणु विज्ञान जैन तत्त्व ज्ञान के अत्यन्त सन्निकट है। मैं कभी तुलनात्मक अध्ययन करता हू तो मुझे वडा आश्चर्य होता है कि हम जिन तत्त्वो की आज खोज कर रहे हैं, उन्हे महावीर ने वहुत पूर्व ही देख कर स्पष्ट कर दिया था।'

"मैंने सुना है कि विज्ञान जहाँ भी हलन-चलन गतिशीलता देखता है, उसे जैविक-जीवाणु मान लेता है, क्या यह सिद्धान्त सत्य है ? क्योंकि यह अवधारणा जैनदर्शन की दृष्टि से सगत नही बैठती है। जैन दर्शन तो पुद्गल परमाणु मे भी गतिशीलता मानता है। एक चेतना शून्य जड़ परमाणु की गति एक समय (सूक्ष्म कालांश) मे लोक के अधो छोर से ऊर्ध्व छोर तक हो सकती है ?' आचार्य प्रवर ने जिज्ञासा की।

"हाँ कुछ समय पूर्व तक विज्ञान इसी तथ्य को स्वीकार करता था, किन्तु अभी-अभी इन वैज्ञानिक धारणाओ मे बहुत परिवर्तन हो रहे है। अब वैज्ञानिक

मडी, जयपुर आदि सघो की आगामी चातुर्मास हेतु सानुग्रह पूर्वक विनतियाँ हुई, किन्तु इसका सौभाग्य जयपुर सघ को प्राप्त हुआ ।

बुद्धिजीवियों का संघर्ष समाप्त

तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रसग था, आचार्य देव के व्यक्तित्व का बुद्धिजीवियों पर अबूझ प्रभाव । जयपुर समाज मे एक शिक्षण सस्था के आधिपत्य को लेकर एक लम्बा सघर्ष चल रहा था । परिणामत. सघ दो भागो मे बँट गया था। सघर्ष इतना उग्र रूप ले चुका था कि दोनो पार्टियाँ कोर्ट की शरण ले चुकी थी । एक-एक पार्टी की ओर से लगभग ३०-३०, ३५-३५ हजार रुपये व्यय हो चुके थे । सघर्ष बढता ही जा रहा था । आचार्य देव के समक्ष भी कुछ बन्धुओ ने इस विषय की चर्चा की । दोनो ग्रुपो के प्रमुख जन आचार्य देव के समक्ष उपस्थित हुए और अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करने लगे । दोनो मे कोई भी पक्ष अपने को कमजोर मानने को तैयार नही था । कारण कि दोनो तरफ करोड़पति एव समाज-प्रतिष्ठित व्यक्ति थे ।

आचार्य प्रवर ने समझाने के प्रयास मे कहा—"मुझे ज्ञात हुआ कि आपके इस सघर्ष मे अर्थ-व्यवस्था भी जुडी हुई है अत मैं इस मामले मे हस्तक्षेप नही करना चाहता हूँ । हाँ, इतना अवश्य सकेत करना चाहूँगा कि केवल स्नेह से जो कार्य हो सकता है, वह संघर्ष से नही हो सकता । साथ ही, यदि आपके इस सघर्ष मे कोई तीसरा तत्त्व नारद विद्या करने वाला हो, जैसा मुझे ज्ञात हुआ है तो आपको ऐसे तत्त्वो से अवश्य सावधान रहना चाहिये । मेरी दृष्टि से आप अलग-अलग चर्चा करने की अपेक्षा एक साथ बैठकर कुछ करे, तो शीघ्र सफलता मिल सकती है । इस तरह बहुत कुछ प्रयास चलते रहे, किन्तु सफलता नही मिल पा रही थी । इसी मध्य होली चातुर्मास के अनन्तर आगामी वर्षावास की स्वीकृति देने का प्रसग आ गया और आचार्य प्रवर ने बिना किसी शर्त के अपनी अनुकूलता एव सघ की जागृति को दृष्टिगत रखते हुए आगामी वर्षावास की स्वीकृति जयपुर सघ को आगारो सहित प्रदान कर दी ।

इस स्वीकृति की स्थानीय बुद्धिजीवियों पर अबूझ प्रतिक्रिया हुई । वे चिन्तन करने लगे कि आचार्य प्रवर कितने निस्पृह साधक है । यदि आपश्री चाहते तो चातुर्मास स्वीकृति के साथ यह आग्रह जोड सकते थे कि "यदि सघ एकता स्थापित होती है तो मैं वर्षावास कर सकता हूँ ।" किन्तु आचार्य प्रवर ने कोई शर्त नही रखी । वह आपश्री की महानता है ।

इस प्रकार आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व से प्रभावित हो विहार के एक दिवस पूर्व के प्रवचन मे ही एक पक्ष, जिसे कि बहुसख्य समर्थन प्राप्त था, खडा हो गया और उसने क्षमा-याचना करते हुए मुकदमा कोर्ट से निकालने की

ब्यावर-चातुर्मास

अविस्मरणीय प्रसग

समस्त दैनन्दिन क्रिया-विधियो के परिप्रेक्ष्य मे ब्यावर वर्षावास मे साधना मार्ग मे सजगता का उद्‌बोधक एक क्रम और सयुक्त हुआ था । प्रार्थना, प्रवचन प्रश्नोत्तर एव अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त प्रति रविवार को सन्त सती-वर्ग को सयम साधना मे सुदृढता हेतु मार्मिक उद्‌बोधन इस वर्षावास की एक उल्लेखनीय स्मृति है । एक श्रावक एव एक श्राविका की उपस्थिति मे ब्यावर मे उपस्थित समस्त साधु, साध्वी वर्ग को प्रति रविवार को आचार्य प्रवर का विजन सान्निध्य प्राप्त होता और तद् द्वारा साधना पथ की बाधाओ के परिचय के साथ समुज्ज्वल मार्ग-दर्शन भी प्राप्त होता था । उस निश्चित अवधि मे आचार्य देव प्रत्येक श्रमण-श्रमणी को उसकी साधना मे आने वाली प्रत्येक बाधा से उपरत होने का सहज बोधगम्य हल सुझाते और साधना के नूतन प्रयोगो की प्रक्रिया भी प्रस्तुत करते । मेरी अपनी दृष्टि से वही समय होता था, जिसमे जीवन-निर्माण का अमोल पाथेय प्राप्त होता था ।

इस वर्षावास मे कुछ साम्प्रदायिक विद्वेषपूर्ण प्रवृत्तियाँ भी प्रतिपन्थियो के द्वारा हुई, किन्तु आचार्य प्रवर की अगाध क्षमाशीलता के समक्ष वे अकिंचित्कर होकर रह गई ।

नौ दीक्षाएँ अभूतपूर्व दीक्षोत्सव

निरन्तर अभूतपूर्वता की ओर अग्रसर होना आचार्य प्रवर के जीवन की नियति ही है । अत इस वर्षावास मे भी वही सब कुछ हुआ, जिसे अभूतपूर्व और आज की भाषा मे रिकार्ड तोड कह सकते है ।

सात दीक्षाओ का प्रसग विगत बडी सादडी वर्षावास मे बन चुका था, तो उससे ऊपर बढना इस वर्षावास के लिए अनिवार्य-सा हो गया । इसी आधार पर इस वर्षावास मे दस दीक्षाएँ सम्पन्न हुई । उनमे देवगढ निवासी स्वनाम धन्य (नगर सेठ) श्री गणेशीलालजी देशलहरा की एक दीक्षा तो स्वतन्त्र रूप से अनन्त चतुर्दशी को हुई । शेष नौ दीक्षाओ मे पाच तो बडावदा निवासी स्वनाम धन्य सेठ श्री सौभागमलजी नाण्ड के परिवार के सदस्य ही थे । एक

आचार्य देव के निषेध करने पर भी एक डोली बना दी गई और सवाई माधोपुर से प्रस्थान कर दिया गया। कुछ डोली मे और कुछ पाद विहार से इस प्रकार लगभग अस्सी मील का मार्ग पार कर आचार्य देव शिष्यवृन्द के साथ चातुर्मास हेतु जयपुर पधार गये।

स्मरणीय है कि आचार्य देव की अस्वस्थता के समाचार इतस्तत: प्रसारित हो चुके थे। परिणामस्वरूप कलकत्ता से आचार्य देव के प्रति अनन्य निष्ठावान, गुप्तदानी, चिकित्सा-क्षेत्र के अनुभवी श्री भीखमचन्दजी भसाली सपत्नीक सवाई माधोपुर मे ही आ गये और जयपुर तक आगे-पीछे अपने साधनो द्वारा मार्ग मे पुन. पुन: पहुँचकर सेवा का लाभ लेते रहे। मातृहृदया श्रीमती चेतनबाई भसाली की शासननिष्ठा एव सेवाभावना अपने आप मे अनूठी थी।

• • •

डॉ० डी० एस० कोठारी ने सहज किन्तु गम्भीर उत्तर दिया—"अचित अथवा सचित ये शब्द हमारी वैज्ञानिक शब्दावली मे नही हैं किन्तु इतना कहा जा सकता है कि आकाश मे कौंधने वाली, विद्युत भट्टी मे जलने वाली आग एव प्रयोगशाला मे यत्रो द्वारा उत्पन्न होने वाली विद्युत के गुण धर्मों मे कोई अन्तर नही है। यदि शास्त्रकारो की दृष्टि मे आकाश मे कौंधने वाली विद्युत एव आग सचित है तो पावर हाउस से उत्पन्न विद्युत को भी सचित ही मानना पडेगा। सचित-अचित शब्द तो शास्त्रो के पारिभाषिक शब्द हैं, हमारे विज्ञान मे ऐसा कोई शब्द नही है।"

श्री बाठियाजी ने प्रश्न के मूल का स्पर्श करते हुए जिज्ञासा को आगे बढाते हुए कहा—"डॉक्टर साहब, आज की समस्याओ से आप पूर्णरूपेण परिचित है। महान् सन्तो के प्रवचनो मे हजारो की भीड एकत्रित हो जाती है। ऐसी स्थिति मे यदि हम श्रावक लाउड-स्पीकर (ध्वनिवर्धक यन्त्र) लाकर महाराज के सामने रख दे, तो क्या आपत्ति है ?"

श्री कोठारीजी ने मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा, "मैं आपके इन विचारो से सहमत नही हूँ। मुनियो की बिना इच्छा के अथवा उनकी इच्छा के विरुद्ध आप ध्वनिवर्धक यत्र नही रख सकते है।" डॉक्टर साहब ने हँसते हुए कहा—"कल प्रवचन मे आचार्यश्री के सामने ही रख कर देख लें।"

बाठियाजी बोले—"यह तो असम्भव है।"

डॉ० साहब ने अपने विचारो को और स्पष्ट करते हुए कहा—"देखिये, ध्वनिवर्धक यन्त्र विद्युत से चलता है। वैसे आकाशीय विद्युत की तुलना से वह सचित ही सिद्ध होती है। आप सचित-अचित को जाने दीजिये। ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग साधु जीवन मे एक परिग्रह को तो अवश्य बढा ही देता है, अत मेरी अपनी विचारधारा के अनुसार साधुओ को इस परिग्रह से दूर ही रहना चाहिये।"

कुछ आधुनिक मुनियो की यह धारणा बन गई है कि विद्युत अचित है, किन्तु उपर्युक्त वार्ता से वैज्ञानिक दृष्टि से भी स्पष्ट प्रमाणित तथ्य उजागर हो जाते है कि विद्युत सचित है और वह मुनि जीवन के लिए अप्रयोग्य है। साथ ही डॉ० कोठारी के ऊर्ध्वमुखी चिन्तन को भी दाद देनी होगी कि वे ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक होते हुए अध्यात्म साधना के नियमो एव उनकी ऊँचाइयो से कितने परिचित हैं तथा साधुता की महानता के प्रति वे कितने सजग चेता एव श्रद्धान्वित हैं।

अभूतपूर्व विदाई समारोह

अनेकानेक अभूतपूर्व उपलब्धियो के द्वार उद्घाटित कर आचार्य देव ने

अंकित है। कानवन निवासी वयोवृद्ध किन्तु युवा हृदय श्री रेखचदजी गोखरू तथा निकुम्भ निवासी श्री औंकारलालजी सहलोत के सुपुत्र श्री भवरलालजी की भागवती दीक्षाएँ इसी वर्षावास मे कुछ दिनो के अन्तर मे हुई थी।

तप साधना मे अनशन तप की आराधना जैन-साधना पद्धति मे एक अनूठी तपश्चर्या है। जयपुर का वर्षावास तपश्चर्या की दृष्टि से बेजोड सिद्ध हुआ। कठोर तपश्चर्या में एक ६१ दिवसीय, एक ४१ दिवसीय तथा २१ व्यक्तियो ने ३०-३१ दिवसीय एव सैकडो अष्ट दिवसीय तपस्वियो ने तप-साधना कर तप के क्षेत्र मे नया कीर्तिमान स्थापित किया। सक्षेप मे आचार्य देव का जौहरियो की नगरी का वर्षावास त्याग, तप, साधना एव ज्ञान-आराधना की दृष्टि से ऐतिहासिक उपलब्धियो से परिपूर्ण रहा।

बीकानेर प्रान्त की ओर

राजस्थान के गुलाबी शहर जयपुर का त्याग-तप से ओत-प्रोत ऐतिहासिक अनूठा वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर ने थली प्रान्त की ओर प्रस्थान किया।

बालहठ

मार्गवर्ती एक लघुग्राम "दात्री" मे गंगाशहर–भीनासर सघ मिनी बस द्वारा बीकानेर की दिशा मे विहार हेतु विनती लेकर उपस्थित हुआ। अत्यन्त आग्रहपूर्ण विनती पर भी जब आचार्य देव ने स्वीकृति नही दी तो तेरह वर्षीय मधुर गायक किशोर विजयकुमार सोनावत ने बालहठ करते हुए पूज्य चरणो मे निवेदन किया—"मुझे शीघ्र दीक्षा देकर अपने चरण-शरण मे लेने हेतु आपश्री को बीकानेर पधारना होगा।"

आचार्य देव ने उस श्रद्धाविल भावुक मन को समझाने का प्रयास किया तो वह किशोर बालहठ पर उतर कर रुदन करने लगा और बाहर आकर स्वत घोषित कर दिया—"मेरी दीक्षा निश्चित हो गयी है, आचार्य भगवन का विहार शीघ्र बीकानेर की ओर हो रहा है।" अन्ततोगत्वा आचार्यश्री को श्रमण मर्यादानुरूप आश्वस्ति द्वारा विरक्तिरजित किशोर मन को सतुष्टि देनी पडी और मार्गवर्ती नागौर, नोखा मण्डी, देशनोक आदि क्षेत्रो मे समता की सरस फुहारो से युगो के आपसी वैमनस्यो को उपशान्त करते हुए आपश्री गगाशहर–भीनासर (बीकानेर) पधारे।

थली प्रान्त के श्रद्धालु नर-नारी एव वहाँ विराजित वृद्ध स्थविर महा-मुनि वर्षों से आचार्य देव के दर्शनो के लिए लालायित थे, अत स्थानीय आबाल वृद्धो ने अपने आराध्य के स्वागत मे पलक पावड़े बिछा दिये।

बिछुडे हुए बन्धुओ को गले लगा लिया । यही नही, आचार्य देव को साग्रह विनती कर एक दिन और रोका और एक प्रीतिभोज का आयोजन किया, जिसमे जिन्होने कभी एक दूसरे का घर नही देखा था और आपस मे कभी वार्तालाप नही किया, उन्होने एक साथ मे बैठकर भोजन किया । समस्त वातावरण प्रेम-धारा से आप्लावित हो गया ।

लीडी मे स्नेह, सौहार्द एव समन्वय के वातावरण का सृजन कर आचार्य प्रवर जैठाना, अजमेर आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए राजस्थान की राजधानी एव भारत की गुलाबी नगरी जयपुर पधारे । स्मरण है कि रास, बाबरा, नाग-लाव, लीडी, जेठाना आदि मार्गवर्ती क्षेत्रो मे भी सामाजिक एव धार्मिक उत्क्राति के उन सूत्रो की सामूहिक प्रतिज्ञाएँ हुई जिनका कि कानोड की पुण्य धरा से प्रादुर्भाव हुआ था । बाबरा मे श्री दुर्गासिहजी राजपूत एव श्री भवरलालजी सुतार के मध्य वर्षो से चला आ रहा वैमनस्य जो कि न्यायालय तक पहुँच गया था, आचार्य देव के हृदयस्पर्शी प्रवचन से प्रवचन स्थल पर ही हार्दिक स्नेह के रूप मे रूपान्तरित हो गया । इसी प्रकार रास मे भी १४ घरो का समाज तीन दलो मे विभक्त था । लगभग २५ वर्षो से इस सघर्ष ने उग्र रूप ले लिया था । समीपवर्ती बाबरा, लाम्बिया आदि क्षेत्रो मे भी इसके कारण तनाव एव विघटन बन गया था किन्तु आचार्य प्रवर के ममतापूत व्यक्तित्व ने यहाँ भी अपना चम-त्कारिक प्रभाव दिखाया और सघर्ष समाप्त हो गया । यह एक क्षेत्र की चर्चा नही है, आचार्य प्रवर के जहाँ भी चरण स्पर्श होते, ममता एव स्नेह की धारा बह जाती । आचार्य प्रवर के अजमेर प्रवास काल मे जिलाधीश, पुलिस निरीक्षक, अध्यक्ष माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, वकील, डाक्टर आदि बुद्धिजीवियो ने प्रवचन एव प्रश्नोत्तर काल मे आशातीत लाभ लिया एव आचार्य प्रवर की अगाध ज्ञान गरिमा से अत्यधिक प्रभावित हुए ।

जयपुर के १६ दिवसीय प्रवासकाल मे आचार्य देव ने राजधानी के बुद्धि-जीवी समाज को अपनी ज्ञानधारा मे आप्लावित कर अत्यधिक प्रभावित किया । आचार्य देव के गरिमा मण्डित व्यक्तित्व का स्थानीय समाज पर इतना अमिट प्रभाव पडा कि स्थानीय सघ आगामी वर्षावास हेतु आग्रहपूर्ण विनती करने लगा ।

जयपुर के इस प्रवास काल मे तीन विशेष प्रसग बने । रतलाम निवासी श्री हीरालालजी नाना की सुपुत्री वैराग्यवती कुमारी तारा की भागवती दीक्षा आचार्य प्रवर के कर कमलो द्वारा रामलीला मैदान मे हजारो की जनमेदनी के समक्ष सम्पन्न हुई ।

दूसरा होली चातुर्मास के प्रसग पर बीकानेर, गगाशहर, देशनोक, नोखा-

आचार्य प्रवर के दर्शनार्थ आये और कुछ दिन रहकर ज्यों-ज्यो आचार्य प्रवर की चरणरज का स्पर्श करते रहे तथा साधना के सकल्प को दृढिभूत करते रहे त्यो-त्यो करके ही रोग एवं नशे से सर्वथा मुक्त हो गए। विरक्ति का भाव बढा और अपनी अर्धांगिनी को तथा लघुवयी सुपुत्र एव सुपुत्री को भी सस्कार सम्पन्न कर अपने साथ आचार्य देव के चरणो मे अर्पित कर दिया।

श्री विजय मुनिजी एव साध्वी श्री प्रभावतीजी प्रतिभा सम्पन्न है और समाज के लिये आशा के केन्द्र है।

अन्य छः मुमुक्षु आत्माये थी १—अजमेर निवासी चण्डालिया परिवार की वधू एव नागेलाल निवासी श्री रतनलालजी कोठारी की सुपुत्री श्रीमती तेज प्रभाबाई, २—जावरा निवासी लब्ध प्रतिष्ठ श्रावक श्री शान्तिलालजी पगारिया की सुपुत्री सुश्री कुसुम कुमारी, ३—दलौदा निवासी आदर्श सेवाव्रती भण्डारी-परिवार के लब्ध प्रतिष्ठ श्रावक श्री भवरलालजी भण्डारी एव आदर्श श्राविका तपस्विनी श्रीमती मोहन कु वरबाई की सस्कार सम्पन्न सुपुत्री तथा उदीयमान व्यक्तित्व विद्वान् मुनि श्री पार्श्वकुमारजी की ससार पक्षीया भगिनी सुश्री राजमती कुमारी, ४—देशनोक निवासी सुश्रावक श्री घेवरचंदजी बोथरा की सुपुत्री एव महाविदुषी महासतीजी श्री नानुकु वरजी की ससार पक्षीया भतीजी कुमारी पुष्पा बोथरा, ५—बीकानेर निवासी निष्ठावान श्रावक श्री इन्द्रचन्दजी पु गलिया की सुपुत्री बसन्ता कुमारी तथा ६—बीकानेर निवासी श्रद्धा-निष्ठ श्रावक श्री रतनलालजी सेठिया की सुपुत्री बाल० ब्र० कुमारी मजुवाला।

उपर्युक्त बारह मुमुक्षु आत्माओ की दीक्षा की पावन वेला की वह छटा, जिसमें लगभग २५-३० हजार की जनमेदनी उपस्थित थी, इतिहास का अमिट लेख वन गई। द्वादश दीक्षाओ के इसी प्रसंग पर मुमुक्षु आत्माओ के त्याग-तप से प्रेरित हो अनेक धर्म श्रद्धालुओ ने साधना-पथ पर चरण बढाए, जिनमे उल्लेखनीय है लगभग ३५ व्यक्तियो का आजीवन सपत्नीक एव एक सत्रह वर्षीय मद्रासी युवक का ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार करना।

इस प्रकार तीर्थ भूमि गगाशहर-भीनासर की पवित्र धरा पर त्याग, वैराग्य एवं साधना का आलोक प्रसृत कर आचार्य प्रवर उदासर को पावन करते हुए वीकानेर पधारे। वीकानेर में पुनः दीक्षा महोत्सव की छटा का निर्माण हो गया। नोखामण्डी निवासी धर्मनिष्ठ श्रावक श्री घेवरचन्दजी गोलछा की सुपुत्री तथा गगाशहर निवासी श्री सम्पतलालजी सेठिया की पुत्रवधू श्रीमती ललितावाई की दीक्षा सेठिया कोटड़ी, वीकानेर मे सम्पन्न हुई। यद्यपि वैराग्यवती वहिन ललितावाई की भावना वारह दीक्षाओ के साथ ही दीक्षित होने की थी, किन्तु पतिदेव श्री भवरलालजी की अनुमति प्राप्त नही हो रही थी। अन्तत वैराग्य की दृढ मनोभूमि देखकर श्री भवरलालजी ने भी अनुमति

घोषणा कर दी । सम्पूर्ण समाज मे उसकी समुचित प्रतिक्रिया हुई और दूसरे दिन आदर्श नगर के प्रवचन मे दूसरे पक्ष ने भी मुकदमा उठाने की घोषणा कर दी, साथ ही दोनो पक्ष त्यागपत्र लिखकर आचार्य प्रवर के पास लाये । आचार्य प्रवर ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं कोई आपका नियन्ता नही हूँ कि मैं त्यागपत्र मजूर करूँ । आपकी व्यवस्थाएँ आप खुद ही सम्भाले ।" दोनो पक्षो ने एक मध्यस्थ व्यक्ति को त्यागपत्र देकर चुनाव अधिकारी घोषित कर दिया ।

जयपुर के इसी प्रवास काल मे केन्द्रीय कारागृह राजस्थान के मुख्याधिकारी आई० जी० पी० श्री राणावत के विनम्र आग्रह पर आचार्यश्री ने वन्दियो के मध्य केन्द्रीय कारागृह मे भी प्रवचन दिया । परिणामत लगभग एक हजार वन्दियो ने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि "अव से ऐसी कोई प्रवृत्ति नही करेगे, जिससे कि पुन कारागृह मे आना पडे ।"

इस प्रकार जयपुर मे बुद्धिजीवियो के आपसी वैमनस्य को उप शात कर, अपनी चरित्रनिष्ठा एव समस्त साधना की अप्रतिम छाप अकित कर आचार्य प्रवर विकट परीषहो से जूझते हुए स्वनाम धन्य, तपोमूर्ति, आचार्य प्रवर श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० की पाट परम्परा के पचम पट्टधर, शात, दान्त, गम्भीर आचार्य प्रवर पूज्यश्री श्री लालजी म० सा० की जन्मभूमि "टोक" पधारे ।

टोक मे महावीर जयन्ती के प्रसग पर कानोड निवासी श्री हनुमानमलजी गाधी की सुपुत्री कुमारी चेतनश्री की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई ।

टोक मे अभूतपूर्व धर्म जागृति की लहर प्रसृत कर आचार्य देव ने बूँदी, कोटा, चौथका वरवाडा, श्यामपुरा एव सवाई माधोपुर की धर्मप्राण एव बुद्धिजीवी समाज की ज्ञान-तृषा को सतृप्त किया और पुन सवाई माधोपुर मे वर्षावास हेतु जयपुर के लिए प्रस्थान किया । उल्लेखनीय है कि मार्गवर्ती अनेक ग्रामो मे आचार्य देव की पीयूष धारा के अभिसिचन ने वर्षो के वैमनस्यो का अवसान कर दिया । श्यामपुरा एक छोटा-सा ग्राम है जिसमे लगभग ३० जैन परिवार है किन्तु वहां की धर्माराधना का उत्साह एव दयाव्रत की ३१, ५१, ७१ एव ८१ तक की होड ने आचार्य प्रवर को भी अप्रभावित नही छोडा । एक दिन प्रवचन मे सहसा आचार्य देव के श्रीमुख से निकल गया यह "श्यामपुरा" नही यह तो "धर्मपुरी" है । और स्थानीय लोगो ने उसे वही नाम दे दिया ।

सवाई माधोपुर मे मार्ग की असुविधाओ एव सर्दी की अधिकता के कारण आचार्य देव कुछ अधिक ही अस्वस्थ हो गए । डाक्टरो ने श्रमण-पाद-विहार का सर्वथा निषेध कर दिया था और इधर वर्षावास का समय निकट आ रहा था, अस्तु, विहार करना भी आवश्यक हो गया था । ऐसी स्थिति मे सहवर्ती सन्त वृन्द ने निवेदन किया 'हम एक डोली बना लेते है, इसमे उठाकर ले चलेंगे ।"

बीकानेर-वर्षावास

अन्यान्य वर्षावासो के तुल्य बीकानेर का वर्षावास भी अभूतपूर्व धर्म-जागृति एव अनूठे धर्मोद्योत के साथ सम्पन्न हुआ। समस्त दैनन्दिन धर्म उपासनाओ की क्रमबद्ध आराधना के साथ ही इस वर्षावास मे बुद्धिजीवियो तथा राजकीय कर्मचारी वर्ग के मानस-शोधन एव जीवन-परिवर्तन के विशेष प्रसग बने।

बडीसादडी सघ के अध्यक्ष, आचार्य देव के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ उपासक श्री लक्ष्मीलालजी पामेचा की सुपुत्री कुमारी निर्मला तथा ब्यावर निवासी श्रद्धानिष्ठ धर्मप्रेमी श्री मगलचन्दजी कोठारी की सुपुत्री बा० ब्र० कुमारी शान्ता की भागवती दीक्षाएँ भी आचार्य देव के पुनीत कर कमलो द्वारा इसी वर्षावास मे सम्पन्न हुई।

बीकानेर का आदर्श वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर का पुन· गगाशहर-भीनासर की पुण्य धरा पर पदार्पण हुआ। इसी प्रसग पर विदुषी महासती श्री नानुकु वरजी का भी देशनोक से चातुर्मासान्तर पदार्पण हुआ। जिनके साथ स्वय दीक्षित माता-पुत्री श्रीमती पारसबाई एव कुमारी सुशीला, मधुर व्याख्यानी श्री कवरचन्दजी म० सा० की भगिनी, भानजी भी थी। समय की परिपक्वता के अनुसार आचार्य प्रवर ने श्री वकील साहब भूरचन्दजी देशलहरा, रायपुर की सरक्षता के आधार पर उन्हे विधिवत दीक्षा प्रदान की।

भीनासर के इसी प्रवास काल मे राजस्थान के तत्कालीन वित्तमत्री श्री चन्दनमलजी वैद का आचार्य प्रवर के दर्शनार्थ एव प्रवचन-पान हेतु आगमन हुआ। श्री वैदजी ने प्रवचन के प्रसग पर आचार्य प्रवर से जैन समाज के सगठन के सन्दर्भ मे गभीर विचार-चर्चा की। आचार्य प्रवर ने सगठन को स्थायित्व देने के लिये ठोस भूमिका निर्माण पर वल दिया। आचार्य देव का कथन था कि "विना ठोस सैद्धान्तिक धरातल के वनने वाली एकता चिरस्थायी नही रह सकती है। यही कारण है कि अनेक सगठन वने और विघटित हो गए, अस्तु यदि कोई ठोस सैद्धान्तिक एव सर्वमान्य भूमिका निर्मित होती है, तो मैं उसमे अपनी क्षमता के अनुसार योग देने हेतु पूर्णतया तत्पर हूँ।"

जयपुर-चातुर्मास

राजधानी का वर्षावास भी अपने आप मे अनूठा एव ऐतिहासिक वर्षावास था। साम्प्रदायिक दृष्टि से परिवारो की सख्या अत्यल्प होने पर भी आचार्य देव के व्यक्तित्व ने अपना प्रभाव दिखाया और लाल भवन का विशाल हाल भी छोटा-सा लगने लगा।

विशेपतया बुद्धिजीवियो ने उस वर्षावास मे आचार्य देव का अधिक सामीप्य प्राप्त किया। एक विद्वान् बन्धु ने वर्षावास के प्रारभ के पूर्व ही आचार्य प्रवर से निवेदन किया—"आचार्यश्री ! यदि इस चार मास की अवधि मे आपके प्रवचन किसी एक ही विपय पर हो तो विद्वद्वर्ग अधिक लाभान्वित हो सकेगा। चूँकि आपके प्रवचन हृदयस्पर्शी, धाराप्रवाही एव तात्त्विक दृष्टि से तलस्पर्शी होते है, अत चारो मास यदि किसी एक ही विपय का प्रतिपादन होगा तो तत्सम्बन्धी सूक्ष्मता मे हमारा प्रवेश हो सकेगा और सामान्य जनता भी उससे लाभान्वित हो सकेगी। हाँ, विपय ऐसा हो, जो वर्तमान सन्दर्भो से अधिक जुडा हो और युवावर्ग के लिये मार्ग प्रशस्त अधिक करता हो।"

आचार्य प्रवर ने गभीर स्वर मे कहा—"विपय आप ही सुझा दीजिये। मै प्रयास करूँगा कि उस विपय की गहनता मे प्रवेश करूँ।"

"मेरी दृष्टि मे 'जीवन दर्शन' से बढकर और कोई श्रेष्ठ विपय नही हो सकता। अत जीवन क्या है, इसी विपय पर आपके धाराप्रवाही प्रवचन हो, तो उपयुक्त रहेगा। आज जीवन जटिल बनता जा रहा है। जीवन का बोझ ढोया अवश्य जा रहा है किन्तु जीवन जीने की कला लुप्त प्राय होती जा रही है। ऐसी स्थिति मे यदि आपश्री जीवन दर्शन की सर्वांगीण उपयोगितावादी व्याख्या प्रस्तुत करे, तो बहुत बडा उपकार होगा।"

आचार्य प्रवर ने उपर्युक्त विद्वान् बन्धु के विचारो को सहमति प्रदान करते हुए चार मास तक—'किं जीवनम् ?'' इस सूत्र का गभीर विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए स्व निर्मित सूत्र—"सम्यक् निर्णायकं समतामयं च यत्तज्जीवनम्" के माध्यम से जीवन दर्शन की तलस्पर्शी विवेचना प्रस्तुत की। जिसकी कुछ विवेचना "प्रवचन-एक पर्यवेक्षण' मे की गई है।

जयपुर वर्षावास के स्मरणीय पृष्ठो मे स्मरण दो भागवती दीक्षाएँ भी

बीकानेर-वर्षावास

अन्यान्य वर्षावासो के तुल्य बीकानेर का वर्षावास भी अभूतपूर्व धर्म-जागृति एव अनूठे धर्मोद्योत के साथ सम्पन्न हुआ। समस्त दैनन्दिन धर्म उपासनाओ की क्रमबद्ध आराधना के साथ ही इस वर्षावास मे बुद्धिजीवियो तथा राजकीय कर्मचारी वर्ग के मानस-शोधन एव जीवन-परिवर्तन के विशेष प्रसग बने।

बड़ीसादडी सघ के अध्यक्ष, आचार्य देव के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ उपासक श्री लक्ष्मीलालजी पामेचा की सुपुत्री कुमारी निर्मला तथा ब्यावर निवासी श्रद्धानिष्ठ धर्मप्रेमी श्री मगलचन्दजी कोठारी की सुपुत्री बा० ब्र० कुमारी शान्ता की भागवती दीक्षाएँ भी आचार्य देव के पुनीत कर कमलों द्वारा इसी वर्षावास मे सम्पन्न हुई।

बीकानेर का आदर्श वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर का पुन· गगाशहर-भीनासर की पुण्य धरा पर पदार्पण हुआ। इसी प्रसग पर विदुषी महासती श्री नानुकु वरजी का भी देशनोक से चातुर्मासान्तर पदार्पण हुआ। जिनके साथ स्वय दीक्षित माता-पुत्री श्रीमती पारसबाई एव कुमारी सुशीला, मधुर व्याख्यानी श्री कवरचन्दजी म० सा० की भगिनी, भानजी भी थी। समय की परिपक्वता के अनुसार आचार्य प्रवर ने श्री वकील साहब भूरचन्दजी देशलहरा, रायपुर की सरक्षता के आधार पर उन्हे विधिवत दीक्षा प्रदान की।

भीनासर के इसी प्रवास काल मे राजस्थान के तत्कालीन वित्तमंत्री श्री चन्दनमलजी वैद का आचार्य प्रवर के दर्शनार्थ एव प्रवचन-पान हेतु आगमन हुआ। श्री वैदजी ने प्रवचन के प्रसग पर आचार्य प्रवर से जैन समाज के सगठन के सन्दर्भ मे गभीर विचार-चर्चा की। आचार्य प्रवर ने सगठन को स्थायित्व देने के लिये ठोस भूमिका निर्माण पर बल दिया। आचार्य देव का कथन था कि "बिना ठोस सैद्धान्तिक धरातल के बनने वाली एकता चिरस्थायी नही रह सकती है। यही कारण है कि अनेक संगठन बने और विघटित हो गए, अस्तु यदि कोई ठोस सैद्धान्तिक एव सर्वमान्य भूमिका निर्मित होती है, तो मैं उसमे अपनी क्षमता के अनुसार योग देने हेतु पूर्णतया तत्पर हूँ।"

ऐतिहासिक दीक्षोत्सव १२ दीक्षाएँ

आचार्य देव का बीकानेर प्रान्त मे पदार्पण अत्यन्त मगलप्रद रहा। धार्मिक एव सामाजिक उत्कर्ष के साथ साधना-मार्ग मे भी ऐतिहासिक उत्कर्ष हुआ। थली प्रान्त के प्रवेश द्वार से ही मगल कृत्यो का शुभारम्भ हो गया। आचार्य देव के देशनोक पदार्पण के साथ ही आष्टा निवासी श्री राजेन्द्रकुमारजी, जो कि छ वर्षो से कर्मठ सेवाव्रती श्री इन्द्रचदजी म० सा० की सन्निधि मे अध्ययनरत थे और स्वय दीक्षित हो चुके थे, की विधिवत दीक्षा सम्पन्न हुई। इस प्रकार श्री राजेन्द्रकुमारजी (वीरेन्द्र मुनिजी) की दीक्षा के कुछ दिनो पश्चात् ही गगाशहर–भीनासार मे उच्चकुलीन एव सम्पन्न परिवारो मे अनुवधित १२ सदस्यो का आचार्य देव के चरणो मे प्रव्रजित होना एक अभूतपूर्व स्वर्ण इतिहास था।

प्रव्रजित सदस्यो मे गगाशहर निवासी सेठिया परिवार के दो सदस्य त्याग, तप, सादगी, सरलता एव सौम्यता की साक्षात् मूर्ति साधुमना श्री हुलासचन्दजी सेठिया एव उनके लघु सुपुत्र युवा वन्धु श्री राजेन्द्रकुमारजी थे। श्री हुलासचन्दजी विगत कुछ वर्षो से तत्र विराजित स्थविर सन्त महापुरुषो के चरणो मे ही रहकर साधनामय जीवन व्यतीत कर रहे थे। कलकत्ता एव आसाम मे चलने वाले अपने सम्पूर्ण व्यवसाय को वडे पुत्रो के कन्धो पर आरोपित कर सर्वथा निर्लिप्त जीवन जीते हुए अध्ययन मे लीन रहते थे। तत्त्वार्थ सूत्र आदि उच्च कोटि के सैद्धान्तिक ग्रन्थो के साथ सैकडो थोकडो का ज्ञान आपने सयम-ग्रहण के पूर्व ही कर लिया था।

युवा वन्धु श्री राजेन्द्रकुमारजी भी वैसे तो आधुनिक वातावरण एव पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित फैशनप्रिय वन्धु थे, किन्तु ससार की असारता एव क्षण भगुरता का वोध होते ही समस्त वाह्य आकर्पणो से विरक्त हो साधना-पथ पर अग्रसर हो गए।

बीकानेर निवासी सोनावत परिवार के चार सदस्य श्री जतनलालजी सोनावत, धर्मपत्नी श्रीमती भवरबाई, सुपुत्र किशोर, मधुर गायक श्री विजय कुमारजी एव सुपुत्री सुश्री प्रभावती कुमारी का त्याग भी अपने आप मे अनूठा था। एक ही परिवार के चारो सदस्य आत्म–साधना के पुनीत लक्ष्य के अनुसार दीक्षाओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

विरक्तात्मा श्री जतनलालजी को अफीम के नशे का व्यसन था और जब कभी वे उससे मुक्त होने का प्रयास करते, कुछ ही दिनो मे हाथो की सभी अगुलियो मे पीप झरने लग जाता। यहाँ तक कि भोजन भी किसी दूसरे के हाथो से खाना पडता था। विवश होकर उन्हे पुन अफीम लेनी पडती थी। पर उनके जीवन के साथ छूट चुकी थी किन्तु वह इच्छा-शक्तिवान मे वे

आचार्य प्रवर के सान्निध्य में "विश्व हिन्दू कल्याण दिवस" का आयोजन किया गया, जिसमे विश्व हिन्दू परिषद् के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। अन्त मे आचार्य देव के प्रवचन में हिन्दूत्व की गभीर व्याख्या श्रवण कर लगभग दो हजार उपस्थित व्यक्ति गद्गद् हो गए।

श्री डूँगरगढ मे आचार्य प्रवर का लगभग अष्ट दिवसीय प्रवास काल अभूतपूर्व धर्म जागरण का प्रवास काल रहा। साधुमार्गी समाज का एक भी घर नही होते हुए भी प्रवचनो एव प्रश्नोत्तरो मे सैकडो व्यक्तियो की उपस्थिति आचार्य देव के चारित्रिक गरिमामय व्यक्तित्व का ही चमत्कार माना जाएगा।

श्री डूँगरगढ में अपने समुज्ज्वल चारित्र एवं तलस्पर्शी ज्ञान की अमिट प्रभा विकीर्ण कर आचार्य प्रवर का थली प्रान्त के प्रमुख नगर सरदार शहर मे पदार्पण हुआ।

निस्पृह आचार्य

सरदार शहर का तत्कालीन उन्तीस दिवसीय प्रवास काल अनूठा धर्म-जागरण का काल रहा। यद्यपि वहाँ साधुमार्गीय परम्परा के २५-३० परिवार ही थे, तथापि स्वर्णकार आदि जैनेतर बन्धुओ एव कुछ तेरह पन्थी बन्धुओ के उत्साह एवं आग्रह के कारण आचार्य प्रवर को वहाँ इतना अधिक समय देना पडा। इस प्रवास काल की प्रमुख उपलब्धियाँ थी—जैनेतर बन्धु विशेषकर अनेक स्वर्णकार बन्धुओ का सपरिवार जैनत्व के प्रति समर्पण। बीकानेर महाराजा ससद सदस्य श्री करणीसिहजी का दर्शनार्थ आगमन और आचार्य देव की चारित्र एवं सयमी मर्यादाओं से प्रभावित होना। महाराजा श्री करणीसिहजी का सायकाल सूर्यास्त के लगभग आधा घण्टा पूर्व आगमन हुआ। महाराजा ने लगभग दस-पन्द्रह मिनट पहले अपने विचार एव श्रद्धा-सुमन आचार्य प्रवर के चरणो मे समर्पित किये। आचार्य प्रवर ने दस मिनट के लगभग अपने विचार देने के पश्चात् अपनी श्रमण-मर्यादा का स्मरण कराते हुए कहा, "अव हमारी मुनि-मर्यादा के अनुसार यहाँ स्त्रियाँ नही रह सकती, क्योकि श्रमण-जीवन की सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए भगवान् महावीर ने निर्देश दिया है कि सूर्यास्त से सूर्योदय तक स्त्री जाति का पशु भी उस मकान मे नही रह सकता जहाँ जैन मुनि रहते हों।" इतना संकेत होते ही समस्त वहिनें उठकर धर्मस्थान से वाहर चली गई।

लगभग पाँच मिनट के पश्चात् पुनः आचार्य प्रवर ने कहा—"अब हमारे सन्ध्याकालीन प्रतिक्रमरण (नित्यकर्म) का समय आ रहा है। अतः मैं इस स्थिति मे अधिक समय न देने के लिये वाध्य हूँ।"

प्रदान कर दी । परिणामत. श्री ललिताबाई की दीक्षा का स्वर्णावसर बीकानेर सघ को प्राप्त हुआ ।

बीकानेर के इसी शेष कालीन प्रवास मे लगभग १५ व्यक्तियों ने सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया तथा विभिन्न प्रकार की तपश्चर्याओं के द्वारा पर्युषण के सदृश्य वातावरण का निर्माण कर दिया । इसी मध्य होली चातुर्मासी के अनन्तर विभिन्न क्षेत्रो की विनतियाँ ग्रहण करते हुए बीकानेर के लिये आगामी चातुर्मास स्वीकृत हुआ ।

बीकानेर मे जिनवाणी की अमोघ धारा की वृष्टि कर आचार्य प्रवर का पुन॰ समीपस्थ क्षेत्रो को लाभान्वित करने के उद्देश्य से प्रस्थान हुआ और देश-नोक मे धर्म जागृति कर पुन नोखामण्डी मे मौडीग्राम (म० प्र०) निवासी श्री सूरजमलजी नपावलिया की सुपुत्री सुश्री कुमारी सुशीला एव अजमेर निवासी धर्मनिष्ठ श्रावक श्री पूरणमलजी कोठारी की सुपुत्री बा० ब्र० कुमारी समता की दीक्षाएँ सम्पन्न हुई । इस प्रकार अनेक मुमुक्षु आत्माओ को आत्मोद्धार हेतु सयम का सम्बल प्रदान करते हुए वर्षावास हेतु आचार्य प्रवर का बीकानेर पदार्पण हुआ ।

• • •

मंत्री सरदार शहर के प्राण श्री मोतीलालजी बरडिया का ही अपने भतीजे श्री भंवरलालजी बरड़िया से लगभग पन्द्रह वर्षों से मकान को लेकर संघर्ष एव वैमनस्य बढ गया था। सामन्जस्य स्थापित करने हेतु अनेक प्रयत्न हुए, किन्तु सघर्ष की खाई बढती गई। श्री भवरलालजी के लघु भ्राता प्रज्ञाचक्षु श्री कन्हैयालालजी के तो मुनियो के समक्ष यहाँ तक शब्द मुखरित हुए कि "आप इसमें मध्यस्थता मत करिये। आप अधिक कहेगे तो हम स्थानक मे आना छोड देगे। २५वे तीर्थंकर आ जाएँ तो भी हमारा यह झगडा नही मिट सकता है।"

किन्तु आचार्य देव का समतापूत व्यक्तित्व एवं प्रवचन वहाँ पच्चीसवे तीर्थंकर-सा सिद्ध हुआ। दोनो काका-भतीजो एव श्री रतनलालजी, श्री विजयकुमारजी क्रमशः दोनो के सुपुत्रों आदि पारिवारिक सदस्यो पर आचार्य देव के प्रवचनो का अबूझ प्रभाव पड़ा और प्रवचन-स्थल पर ही सैकडों व्यक्तियो के समक्ष एक दूसरे से क्षमा-याचना कर एवं चरण-स्पर्श के द्वारा इतना भावपूर्ण दृश्य उपस्थित कर दिया कि उपस्थित जन-समूह गद्‌गद् हो गया तथा अनेक व्यक्तियो के तो नेत्र-छलक आये।

सावंत्सरिक एकता के प्रयास

सरदार शहर के इसी प्रवास-काल मे एक दिन श्री सम्पतकुमारजी गवैया, सदस्य, राजस्थान प्रान्तीय भगवान् महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव समिति, अपने कुछ प्रमुख सहयोगियो के साथ उपस्थित हुए और आचार्य प्रवर से निवेदन करने लगे—"भगवान् महावीर का २५००वाँ निर्वाण वर्ष आ रहा है। उसे राष्ट्रीय स्तर पर मनाने का निर्णय जैन समाज और भारत सरकार ने लिया है। तद् हेतु अनेक प्रान्तीय समितियो का गठन हुआ है। राजस्थान की प्रान्तीय समिति के सदस्यो मे मेरा भी नाम है। अत: मैं इस विषय मे आपश्री से कुछ परामर्श एव मार्ग दर्शन चाहता हूँ। साथ-साथ आपश्री अपने आयोजनो के विषय मे भी अवगत कराने की कृपा करे।"

आचार्य देव ने गभीर स्वर मे कहा—"हमारा तो सम्पूर्ण जीवन ही प्रभु महावीर के शासन की सेवा करने के लिये समर्पित है। हमारा एक वर्ष ही नही, प्रति क्षण प्रभु की सेवा एतदद्वारा समाज-रचना के लिये नियोजित है। हमे अपने लिये किसी नये आयोजन अथवा कार्यक्रम की आवश्यकता नही है। आपके मार्गदर्शन का जहाँ तक प्रश्न है, किन्ही सावद्य प्रवृत्तियो के लिये हम अपनी श्रमण मर्यादानुसार निर्देश नही दे सकते है। फिर भी एक सुझाव मे आपको देना चाह रहा हूँ। आर्थिक दृष्टि से अन्य समाज सुधार के कार्य तो आप लोग करते ही है, किन्तु इस परिनिर्वाण वर्ष के पुनीत प्रसग पर यदि

वित्तमन्त्रीजी आचार्य प्रवर के विचारो से सहमत एव अत्यन्त प्रभावित हुए । इसी प्रकार गगाशहर के इसी प्रवास-काल मे भूतपूर्व बीकानेर नरेश एव तत्कालीन ससद सदस्य महाराजा श्री करणीसिहजी भी आचार्य प्रवर के चरणो मे विद्वद् वर्ग एव प्रबुद्ध कर्मचारी वर्ग के साथ प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित हुए । आचार्य प्रवर के प्रवचन से प्रभावित हो प्रवचनान्त उन्होने अपने श्रद्धापूर्ण विचार प्रस्तुत किए ।

थली प्रान्त की ओर

थली प्रान्त (सरदार शहर) की आग्रहपूर्ण विनती को दृष्टिगत रखते हुए गगाशहर से आचार्य प्रवर ने सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया । थली के प्रथम द्वार नापासर मे विश्व हिन्दू परिषद् की ओर से आचार्य प्रवर का भव्य स्वागत हुआ । स्मरणीय है कि नापासर मे जैन समाज का एक भी परिवार नही है । प्रारभ मे एक जैनाचार्य का एक सनातन धर्मोपासक सस्था विश्वहिन्दू परिषद् के द्वारा अत्यन्त उत्साह के साथ स्वागत करना, नागरिको को अजीब लगा । क्योकि आचार्यश्री तुलसी के माध्यम से चूरू घटित घटना की चर्चा सम्पूर्ण स्थली प्रान्त मे फैल चुकी थी । फलस्वरूप जैन मात्र के लिये वातावरण दूषित हो चुका था । कुछ युवा बन्धुओ ने तो एक भिक्षार्थ गए मुनि जी को उत्तेजनात्मक शब्दो मे यहाँ तक कह दिया कि—"ये सीता माता को दुराचारिणी कहने वाले है, इन्हे डण्डा मारकर भगा दो ।" किन्तु दूसरे दिन परिषद् के कार्यकर्ताओ की प्रेरणावश तथा कुछ कुतूहलवश सैकडो नागरिको ने प्रवचन के माध्यम से आचार्य प्रवर के साम्प्रदायिकता से मुक्त विचारो को सुना तो सहज श्रद्धा विभूत हो गद्गद् हो उठे तथा मन-ही-मन पलती हुई अपनी सकुचित विचारधारा को निकाल फेका । विश्व हिन्दू परिषद् के स्थानीय शाखाध्यक्ष श्री हरिप्रसादजी जोशी ने अपने आभार-प्रदर्शन भाषण मे इसका सकेत भी दिया कि उनके द्वारा पूर्व मे जैनाचार्य के प्रति पाली गई धारणा निर्मूल निकली । आचार्यश्री के विचारो ने हमे अपनी भूल का आभास हुआ । हम आज समझ पाये है कि चूरू काण्ड वाले आचार्य मे और आपश्री मे बहुत अन्तर है । हमे विश्वास है कि महासती जगत-जननी सीता-माता के विषय मे उन्होने जो विष-वमन किया है, उसे आपश्री के अमृत वचन ही परिमार्जित कर सकते है । आपसे हमारा सानुरोध निवेदन है कि आपश्री कुछ दिन यहाँ विराज कर हमारी भ्रान्तियो को दूर करने की कृपा करे और अत्यन्त आग्रह कर आचार्य प्रवर को उन्होने चार दिन रोक लिया ।

इसी प्रकार नापासर से श्री डूंगरगढ पदार्पण की वेला मे विश्व हिन्दू परिषद् ने आचार्य प्रवर के स्वागत मे [illegible] दिये । श्री डूंगरगढ मे [illegible] के प्रश्न पर [illegible] विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा

से अधिक सफलता आपके द्वारा प्राप्त हुई है। सगठन के लिये हम इसे अति शुभ चिन्तन मानते है। आपकी इस आदर्श उदारता के द्वारा अन्यो को भी प्रेरणा मिल सकेगी।"

श्रीयुत् गवैया जी आदि सज्जन प्रसन्न हो चले गए। इधर सयोगत: उसी वर्ष दो भाद्रपद माह थे। अत: सम्पूर्ण समाज मे सावत्सरिक विवाद खडे हो गए और एकता के प्रयास भी पूरी शक्ति से चलते रहे। इसी मध्य आचार्य प्रवर को ज्ञात हुआ कि दिल्ली मे श्वेताम्बर-दिगम्बर के चारों सम्प्रदायो के वरिष्ठ सन्तो की एक सभा हुई, जिसमे श्रमण सघ के आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज, तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसी एवं दिगम्बर तथा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के प्रमुख मुनिवर समुपस्थित हुए तब गभीर विचार-मथन के पश्चात् प्राय. सभी सदस्यो ने द्वितीय भाद्रपद मे सवत्सरी पर्व मनाने का निर्णय लिया। यद्यपि आचार्य तुलसी आदि कुछ मुनि बाद मे निर्णय पर स्थिर नही रहे, किन्तु आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी की ओर से तो वैसी घोषणा भी हो गई है। इस जानकारी के पश्चात् आचार्य देव ने भी समन्वय की भावना को दृष्टिगत रखते हुए अपनी पूर्व परम्परा को गौण कर द्वितीय भाद्रपद मे सवत्सरी पर्व मनाने के सकेत निम्न घोषणा पत्र के माध्यम से समाज को दे दिये। बुद्धिजीवी समाज पर उसका अत्यधिक श्रेष्ठ प्रभाव पडा। अनेक महामुनियो के शब्द थे "हम सोचते थे आचार्य श्री नानालाल जी परम्परावादी आचार्य है। वे अपने आग्रह को नही छोडते है, किन्तु आज ज्ञात हुआ कि वे अपनी चारित्रनिष्ठा एव सयमीय मर्यादाओ मे दृढ होते हुए भी अति उदार विचार रखते है।"

घोषणा-पत्र निम्नानुसार है

इस वर्ष दो भाद्रपद होने से किस मास मे सवत्सरी मनाई जाये, एतद्विषयक चर्चाएँ चल रही है। ऐसी स्थिति मे महावीर निर्वाण शताब्दी के निमित्त से यदि सारे जैन समाज की एक ही सवत्सरी होती हो, तो इधर की तैयारी रही है और वर्तमान मे है। यद्यपि इस सम्प्रदाय की परपरा चातुर्मास लगने से ४९–५० वे दिन सवत्सरी करने की रही है और यही परम्परा स० १९९० के अजमेर साधु सम्मेलन ने स्वीकृत की थी, तदनुसार ही सवत्सरी पर्व मनाते आ रहे है।

बृहत्साधु सम्मेलन सादडी मे भी ४९–५० वे दिन सवत्सरी पर्व मनाना उचित माना गया था। इसके साथ ही सगठन की वृद्धि हेतु बहुमत ने उदारता दिखाकर दो भाद्रपद हो, तो दूसरे भादवे की सवत्सरी स्वीकार की थी, लेकिन उसमे भी यह भावना रही थी कि यदि जैन समाज की सवत्सरी एक ही दिन मनाना निश्चित हो, तो उसके अनुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है।

वित्तमत्रीजी आचार्य प्रवर के विचारो से सहमत एव अत्यन्त प्रभावित हुए । इसी प्रकार गगाशहर के इसी प्रवास-काल मे भूतपूर्व बीकानेर नरेश एव तत्कालीन ससद सदस्य महाराजा श्री करणीसिहजी भी आचार्य प्रवर के चरणो मे विद्वद् वर्ग एव प्रबुद्ध कर्मचारी वर्ग के साथ प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित हुए । आचार्य प्रवर के प्रवचन से प्रभावित हो प्रवचनान्त उन्होने अपने श्रद्धापूर्ण विचार प्रस्तुत किए ।

थली प्रान्त की ओर

थली प्रान्त (सरदार शहर) की आग्रहपूर्ण विनती को दृष्टिगत रखते हुए गगाशहर से आचार्य प्रवर ने सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया । थली के प्रथम द्वार नापासर मे विश्व हिन्दू परिषद् की ओर से आचार्य प्रवर का भव्य स्वागत हुआ । स्मरणीय है कि नापासर मे जैन समाज का एक भी परिवार नही है । प्रारभ मे एक जैनाचार्य का एक सनातन धर्मोपासक सस्था विश्वहिन्दू परिषद् के द्वारा अत्यन्त उत्साह के साथ स्वागत करना, नागरिको को अजीब लगा । क्योकि आचार्यश्री तुलसी के माध्यम से चूरू घटित घटना की चर्चा सम्पूर्ण स्थली प्रान्त मे फैल चुकी थी । फलस्वरूप जैन मात्र के लिये वातावरण दूषित हो चुका था । कुछ युवा बन्धुओ ने तो एक भिक्षार्थ गए मुनि जी को उत्तेजनात्मक शब्दो मे यहाँ तक कह दिया कि—"ये सीता माता को दुराचारिणी कहने वाले है, इन्हे डण्डा मारकर भगा दो ।" किन्तु दूसरे दिन परिषद् के कार्यकर्ताओ की प्रेरणावश तथा कुछ कुतूहलवश सैकडो नागरिको ने प्रवचन के माध्यम से आचार्य प्रवर के साम्प्रदायिकता से मुक्त विचारो को सुना तो सहज श्रद्धा विभूत हो गद्‌गद् हो उठे तथा मन-ही-मन पलती हुई अपनी सकुचित विचारधारा को निकाल फेका । विश्व हिन्दू परिषद् के स्थानीय शाखाध्यक्ष श्री हरिप्रसादजी जोशी ने अपने आभार-प्रदर्शन भाषण मे-इसका सकेत भी दिया कि उनके द्वारा पूर्व मे जैनाचार्य के प्रति पाली गई धारणा निर्मूल निकली । आचार्यश्री के विचारो से हमे अपनी भूल का आभास हुआ । हम आज समझ पाये हैं कि चूरू काण्ड वाले आचार्य मे और आपश्री मे बहुत अन्तर है । हमे विश्वास है कि महासती जगत-जननी सीता-माता के विषय मे उन्होने जो विष-वमन किया है, उसे आपश्री के अमृत वचन ही परिमार्जित कर सकते है । आपसे हमारा सानुरोध निवेदन है कि आपश्री कुछ दिन यहाँ विराज कर हमारी भ्रान्तियो को दूर करने की कृपा करें और अत्यन्त आग्रह कर आचार्य प्रवर को उन्होने चार दिन रोक लिया ।

इसी प्रकार नापासर से श्री डूँगरगढ पदार्पण की वेला मे विश्व हिन्दू परिषद् ने आचार्य प्रवर के स्वागत मे पलक पावडे बिछा दिये । श्री डूँगरगढ मे मकर सक्रान्ति के प्रसग पर मध्याह्न एक बजे से विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा

खतरे से खाली नही है। आचार्य श्री तुलसी को भी वहाँ पुलिस के संरक्षण मे रहना पडा था। किन्तु आचार्य देव की समत्व योगी आत्मा को ये विभीषिकाएँ विचलित नही कर सकी। इधर सरदार शहर मे प्रस्थान के पूर्व ही चूरू के लव्ध प्रतिष्ठ श्रद्धानिष्ठ श्रावक श्री फतेहचद जी कोठारी एक शिष्टमण्डल को लेकर विनत्यर्थ उपस्थित हो गए और निवेदन किया कि "चूरू की जनता आप श्री के पदार्पण की अधैर्यता से प्रतीक्षा कर रही है। आपके बिना ही आश्वासन के, वहाँ स्वागत समिति का गठन हो चुका है और उसके अध्यक्ष आचार्य श्री तुलसी की उस घटना के विरोधी पक्ष के नेता ही नियुक्त हुए है। वहाँ के बुद्धिजीवी स्थानकवासी एवं तेरापन्थी के अन्तर को समझ गए है और वे आपश्री का हृदय से स्वागत करेगे।"

आचार्यदेव का सरदार शहर के पश्चात् चूरू पदार्पण हुआ। जिस चूरू मे ओसवाल मात्र भयभीत एव सत्रस्त थे, जहाँ साधुमार्गीय परम्परा को मानने वाला केवल एक कोठारी परिवार ही था, उसी चूरू में लगभग दो हजार धर्म श्रद्धालुओ ने आचार्य देव का पलक पाँवडे बिछाकर स्वागत किया। उनमे अनेक बुद्धिजीवी एव राज्य कर्मचारी भी उपस्थित थे।

श्री आतमाराम जी गुरु, अध्यक्ष जिला पत्रकार सघ, चूरू, प्राध्यापक श्री मुरलीधर जी सारस्वत, श्री विजेन्द्रसिंह जी एडवोकेट, श्री विजयसिह जी सुराणा तथा चूरू जिला विश्व हिन्दू परिषद् के अध्यक्ष श्री भागीरथ प्रसाद जी मरदा, आदि बुद्धिजीवी सज्जनों ने हृदयोत्थित स्वरो मे अपने वक्तव्य के माध्यम से आचार्य प्रवर का गुणानुवाद करते हुए भावभीना स्वागत किया एव आचार्य देव के गरिमा मण्डित व्यक्तित्व एवं विद्वत्तापूर्ण प्रवचन शैली से प्रभावित हो, भावपूर्ण श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

पत्रकार सघ के अध्यक्ष श्री आतमाराम जी गुरु ने तो प्रवचन-स्थल पर ही आचार्य प्रवर से गुरुदीक्षा ग्रहण कर ली। इसी प्रकार अन्यान्य वधुओ ने भी सद्धर्म का अनुसरण प्रारभ किया।

चूरू के इस प्रवास काल मे आचार्य प्रवर के दो प्रवचन वैष्णव समाज के मुख्य धार्मिक स्थल दादू भवन मे हुए। स्मरणीय है कि उस समय तक चूरू का ओसवाल समाज दादू भवन के सामने से निकलने मे भी कॉपता था, क्योकि तेरापथी आचार्य श्री तुलसी के विरोध की मुहिम का सचालन इसी दादू भवन मे हुआ था।

चूरू के लगभग २३ दिन के इस प्रवासकाल मे प्रवचनो एवं ज्ञान चर्चा की वेला मे जैन-जैनेतरो की उपस्थिति चूरू के धार्मिक इतिहास मे अविस्मरणीय है।

महाराजा साहब के साथ आगत स्थानीय प्रतिष्ठित धर्म श्रद्धालु श्री कन्हैयालालजी दुग्गड ने कहा—"अभी महाराजा साहब के पास कुछ समय है, यदि आप कुछ मार्ग-दर्शन करे, तो कृपा होगी।"

आचार्य प्रवर ने सैद्धान्तिक स्थिति की सुरक्षा का बोध कराते हुए कहा—"हमे अपनी दैनिक चर्या के अनुसार प्रत्येक कार्य नियमित समय पर करना होता है। अभी हमारे प्रतिक्रमण (दैनिक क्रियाओ मे हुई अशुद्धि का अनुचिन्तन) का समय निकट आ रहा है। अस्तु, अभी मैं समय देने मे विवश हूँ।"

आचार्य प्रवर के उपर्युक्त उत्तर के आधार पर महाराजा साहब (ससद सदस्य) श्री दुग्गडजी एव आगत सैकडो व्यक्ति तत्काल आचार्यश्री को वन्दन कर विसर्जित हो गए, किन्तु श्री दुग्गडजी एव महाराजा श्री करणीसिहजी आचार्य प्रवर की इस निस्पृहता से इतने अधिक प्रभावित हुए कि जाते समय उनके स्वर निकल पडे—"सच्ची साधुता इन आचार्यश्री मे है। इन्हे राजनेताओ की अपेक्षा अपनी श्रमण मर्यादाएँ अधिक प्रिय है। ऐसे उच्चकोटि के निस्पृह महापुरुष ही जनता को सही मार्ग-दर्शन देकर जन-कल्याण कर सकते है। हम ऐसे निस्पृह आचार्यश्री के दर्शन कर धन्य हुए है।"

सरदार शहर के इसी प्रवास-काल मे ववोरा निवासी धर्मनिष्ठ श्रावक श्री अर्जुनलालजी पीतलिया के तेईस वर्षीय सुपुत्र श्री नरेन्द्रकुमारजी, सरदार शहर निवासी लब्ध प्रतिष्ठ थली के शेर श्री मोतीलालजी वरडिया के ज्येष्ठ भ्राता श्री हरकचन्दजी के स्वर्गीय सुपुत्र श्री तिलोकचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमती सूरजवाई (स्नेहलता) तथा उदयपुर निवासी अनन्य श्रद्धानिष्ठ श्री वक्तावरमलजी तलेसरा की वीस वर्षीय कुमारी सुश्री विजयालक्ष्मी की भागवती दीक्षाएँ भी लगभग बारह हजार की जनमेदनी की उपस्थिति मे सम्पन्न हुई। यह दीक्षा महोत्सव सरदार शहर के धार्मिक इतिहास मे अभूतपूर्व था। स्मरणीय है कि सरदार शहर मे तेरह पन्थ सम्प्रदाय के दो हजार परिवार हैं और वहाँ अनेक दीक्षोत्सव सम्पन्न हो चुके है, किन्तु इस अभूतपूर्व दीक्षोत्सव की छटा की प्रशसा स्वय तेरा पन्थी कर्मठ श्रावक भी किये विना नही रह सके। यह सब आचार्य देव की चारित्रिक गरिमा का ही प्रभाव है।

काका-भतीजे का वैमनस्य और भावपूर्ण क्षमायाचना

सरदार शहर के इस प्रवास काल का एक और उल्लेखनीय प्रसग है—काका-भतीजे के सघर्ष का समाप्त होना। स्थानीय साधुमार्गीय सघ के

क्या हो गया था । उत्तर मिला—"मुझे कुछ भी ज्ञात नही है ।" आचार्य देव ने सरल हृदयी ओमप्रकाश के पिताश्री से पूछा "क्या यह इस प्रकार पूर्व मे भी करता रहा है ?"

उसके पिताश्री ने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा—"यह अत्यत भावुक एव सरलहृदयी अवश्य है, किन्तु ऐसी स्थिति प्रथम बार ही हुई है । यह सब कैसे हुआ, हमारी समझ से परे है ।"

चूँकि वातावरण मे कुछ भय व्याप्त हो गया था, अत सभा बिखर चुकी थी और वह विषय वही रह गया था, किन्तु घटना इतनी सजीव थी कि उसे भूला नही जा सका । वह क्या था, यह मेरे लिए आज भी रहस्यमय बना हुआ है ।

इस प्रकार चूरू के संघर्ष एव तनावपूर्ण वातावरण को समत्व, शाति एव स्नेह की अमिय वृष्टि के द्वारा प्रशमित कर तथा अपने अगाध ज्ञान एव समुज्ज्वल चरित्र की धवल प्रभा विकीर्ण कर आचार्य प्रवर का चूरू से प्रस्थान कर रतनगढ पदार्पण हुआ ।

अनोखी उदारता

रतनगढ के इस प्रवासकाल मे उदारचेता धर्म धूरी श्री मागीलालजी मेहता सपरिवार उपस्थित हुए और आराध्य आचार्य देव के चरणो मे निवेदन करने लगे—"भगवन् ! बच्ची ललिता एव सुपुत्र ज्ञानचन्द दीक्षा लेने की शीघ्रता कर रहे है । मै भी सोचता हूँ अब इन्हे क्यो अधिक रोका जाय । वर्ष दो वर्ष मे इन्हे दीक्षा दिलाना तो है ही, फिर मैं अपनी ओर से विलम्ब कर के इनके ज्ञान-ध्यान मे बाधक क्यों बनूँ ? दूसरा मेरा स्वास्थ्य भी अनुकूल नही रहता है । मैं चाहता हूँ कि मेरे हाथो से ही यह परम पुनीत कार्य सम्पन्न हो जाय । अत· आपश्री से निवेदन है कि आप यथाशीघ्र इनकी दीक्षा का निर्णय करके इन्हे अपने चरण-शरण मे लेने की कृपा करे । यद्यपि हमारी भावना ब्यावर मे ही दीक्षा देने की है फिर भी आपश्री अपने स्वास्थ्य आदि की अनुकूलता देखकर स्थान एवं समय का जो निर्णय देगे, वही हमे स्वीकार है । आचार्य प्रवर कुछ विस्मित से हो विचारमग्न हो गए—कहाँ तो वे माता-पिता, जो अपनी सन्तान के आध्यात्मिक विकास मे पद-पद बाधाएँ उपस्थित करते है और कहाँ ये माता-पिता जो स्वत अनोखी उदारता का परिचय दे रहे है । आचार्य प्रवर ने कहा—"आप इतनी शीघ्रता क्यो कर रहे है ? अभी ज्ञानचन्द छोटा है, कुछ समय और देखलें तो अच्छा रहेगा ।"

इतने मे धर्मप्राण माता श्रीमती सौरमबाई बोल उठी—"नहीं गुरुदेव, अब बिल्कुल देरी नहीं करना है । इनका (पतिदेव का) स्वास्थ्य अनुकूल नही

आपकी समितियाँ सावत्सरिक एकता का प्रयास कर सके तो श्रेष्ठ रहेगा, और मैं उसे एक वहुत वडी उपलब्धि मानता हू। अन्यान्य विषयो मे तो समाज टुकडो-टुकडो मे विभक्त है ही, यदि एक सवत्सरी के विपय मे एकता का सूत्र-पात किया जा सके, तो मार्ग प्रशस्त होगा क्योकि सावत्सरिक एकता मे यदि हमे अपनी पुरातन परम्पराओ को त्यागना पडे, तो भी मूल महाव्रतो अथवा साधु-मर्यादा मे कही कोई दोप नही आता है और समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि इस विपय मे आप कोई नये कदम उठा सके तो मैं अपनी स्थिति से पूर्णरूपेण तैयार हू। मेरा कोई पूर्वाग्रह नही होगा। समस्त जैन समाज सर्वानुमति से जो निर्णय लेगी, मुझे स्वीकार होगा।"

श्री गधैया जी अवाक्-से आचार्य प्रवर के समन्वयात्मक विचारो को सुनते ही रह गये। उन्हे आशा नही थी कि अपनी चारित्रिक साधना मे मेरुवत अडोल आचार्यश्री समन्वय के इतने विराट् एव उदार विचार रखते है।

श्री गधैया जी ने गद्‌गद् स्वर मे निवेदन किया "हमे आपके इतने उदार विचार सुनकर अपार हर्ष हुआ। क्या आपके ये विचार मैं समिति की वैठक मे रख सकता हू ?"

आचार्य देव ने मधुर मुस्कान से कहा—"अवश्य, मै सर्वदा इसके लिये तत्पर हू।" और गधैया जी अपने साथियो के साथ प्रसन्न मुद्रा मे लौट गये। आचार्य देव के थली-भ्रमण काल मे ही कुछ दिनो पश्चात् वे पुन: छापर ग्राम मे आचार्य देव के चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन किया—"आप श्री के अति उदार विचारो की जानकारी मैंने वैठक मे दी। सभी सदस्य आप श्री की इस उदारता से अत्यन्त प्रभावित हुए। अव चिन्तन चल रहा है कि इस कार्य को मूर्त्त रूप किस प्रकार दिया जाए। अभी हमारी दृष्टि मे दो विधियाँ . (१) मत प्रणाली से निर्णय लिया जाए (२) व्यक्तिश प्रमुख-प्रमुख आचार्यों एव मुनियो से मिलकर निर्णय लिया जाए। आप ही सुझाएँ हमे प्रयास कैसे करना चाहिये।"

आचार्य प्रवर ने गभीर स्वर मे कहा—"सर्वश्रेष्ठ तो यह रहेगा कि जैसे मैंने विना किसी शर्त पूर्वाग्रह को छोड दिया, वैसे ही सभी महामुनि समिति को अधिकार दे दें कि समिति जो निर्णय लेगी, वह-स्वीकार होगा। यदि ऐसा न वन सके तो प्रत्यक्ष सम्पर्क, आदि जैसा आप उचित समझें कर सकते है। मेरी ओर से आप निश्चित रहे। मुझे विना पूछे ही सर्वानुमति से आप जो भी तिथि निश्चित कर लेंगे, मुझे स्वीकार्य है। और मुझे अपने चतुर्विध सघ पर इतना विश्वास है कि जो निर्णय मै दू गा, वह उसे स्वीकार करेगा।" आचार्य प्रवर के स्पष्ट अनाग्रही विचारो को सुनकर गधैया जी एव उनके साथियो ने गद्‌गद् स्वर मे कहा "हमे आपसे मिलकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। हमे आशा

सिमस्या से आचार्य प्रवर का पदार्पण पडिहारा हुआ । स्मरणीय है कि इस समस्त विचरण-क्षेत्र मे साधुमार्गी परम्परा के परिवार नही वत है, प्राय तेरापन्थ सम्प्रदाय के अनुयायी है । अस्तु, अपनी सघीय स्थिति को सुदृढ बनाये रखने हेतु तेरापन्थ सम्प्रदाय के सन्त मुनि आदि आचार्य प्रवर के पदार्पण के पूर्व ही उस ग्राम मे पहुँच जाते, जहाँ आचार्य प्रवर को जाना होता, और अपने उपासको मे दृढता का सस्कार भरते कि "बाइस टोला के आचार्य इधर आ रहे है। उनको स्थान, आहार-पानी की सुविधा नही देना । वे हमारे धर्म का विरोध करते है। आदि ···।"

किन्तु पडिहारा के रिखबचन्दजी सुराना आदि कुछ बुद्धिजीवी श्रावको ने उनके इस निर्देश को मानने से स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—"एक ओर तो आप समन्वय की बाते करते है और दूसरी ओर एक जैनाचार्य के आगे-आगे जाकर विरोध का अभियान खडा करते है । क्या यह उचित है ? आप विद्वान् है । आपको हम क्या कहे, किन्तु आप के लिए यह सब शोभाप्रद नही है ।"

मुनिजी थोड़े शर्मिन्दा होते हुए कहने लगे—"हमें ऊपर से आदेश है। इसमे हमारा दोष नही है ।"

अन्ततोगत्वा पडिहारा के कर्मठ बुद्धिजीवियों द्वारा दुहरी नीति के प्रति सावधान कर दिये जाने के पश्चात् मुनिजी ने पडिहारा के बाद आगे-आगे जाना बन्द कर दिया, अस्तु ।

पडिहारा के बुद्धिजीवियों को अपने उज्ज्वल चरित्र एव शुद्ध श्रमण चर्या से प्रभावित कर छापर, सुजानगढ, लाडनूँ, डेह एव नागौर आदि क्षेत्रो मे विशुद्ध धर्म एव शुद्ध साधुत्व का सम्यग्बोध कराते हुए दीक्षा प्रसग पर आपश्री का गोगोलाव पदार्पण हुआ ।

स्मरणीय है कि छापर मे आचार्य देव श्री ज्योतिर्धर जवाहर के प्रति अनन्य निष्ठावान, सात्विकता एव नैतिकता के प्रतीक श्री हुकमीचन्दजी वैद मे अनूठा उत्साह था ।

इसी प्रकार सुजानगढ मे विद्यार्थी मुनि श्री सुरेन्द्रकुमारजी को टाइफाइड (ज्वर) हो गया । परिणामत दीक्षा तक गोगोलाव पहुँचने की स्थिति कुछ जटिल हो गई । इधर सरदार शहर निवासी श्री मोतीलालजी बरड़िया उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे—"सन्तो के स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए अब रखे हुए आगारो के अनुसार गोगोलाव की दीक्षा स्थगित करके इधर ही सुजानगढ या लाडनूं में रख दीजिए, अन्यथा आपका इस भयकर ग्रीष्म ऋतु मे वहाँ पहुँच कर पुनः सरदारशहर पहुँच पाना कठिन होगा । वैसे ही हमें कुछ तेरापथी बन्धु

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अद्भुत परिवर्तन कर दिया। दीक्षा दिवस के दो दिन पूर्व ही आकाश सघन मेघो से आच्छादित हो गया। मेघ-गर्जना एव विद्युत-माला की चकाचौध से वर्षा ऋतु सा सुहाना मौसम बन गया। वर्षा की बौछार भी इतनी पर्याप्त मात्रा मे हो गई कि धूलिकण जम गए और वातावरण मे आर्द्रता एव शीतलता व्याप्त हो गई। जन समूह आश्चर्यचकित था कि सहसा प्रकृति मे इतना परिवर्तन कैसे हो गया।

दीक्षा दिवस के प्रात:काल को भी घटाटोप बादल मण्डरा रहे थे। कुछ अन्धकार सा छा रहा था। साथ ही सामान्य जनमानस मे भी संशय का तम छा रहा था कि दीक्षा के समय कही वर्षा हो गई तो सम्पूर्ण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी, किन्तु आचार्य देव के अप्रतिम चारित्रिक तेज का अदृश्य सत्ता पर प्रभाव ही कहे कि दिन भर मनोभिराम मौसम के उपरान्त दीक्षोत्सव मे किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नही हुआ। यदि हम प्रकृति के साथ तालमेल बिठाना चाहे तो प्रकृति हमे अवश्य सहयोग देती है। यह पूर्ण सत्य इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटना मे देखा जा सकता है। अस्तु, गोगोलाव का दीक्षोत्सव सानन्द सम्पन्न कर आचार्य देव ने पुन: समय की स्थिति को सम्मुख रखते हुए वर्षावास हेतु शीघ्र सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया। देशनोक, डूँगरगढ, मोमासर, आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए यथासमय सरदारशहर पदार्पण कर उन सम्पूर्ण भ्रान्तियो को निर्मूल कर दिया, जो जनमानस मे बैठी थी कि इस ग्रीष्म ऋतु मे आचार्यश्री अपने आगारो का प्रयोग कर अन्यत्र वर्षावास कर लेंगे, सरदारशहर नही आयेंगे।

• • •

चूरू में समता के समुद्घोष द्वारा समत्व, समन्वय, स्नेह एव सद्भाव का निर्माण कर आचार्य देव ने पूर्व निर्मित जैन-सनातन सघर्ष को समाप्त कर दिया।

रहस्य के घेरे में

चूरू के इसी प्रवास काल में सन्ध्या ज्ञानचर्चा की वेला मे घटित एक अजीबो गरीब घटना-प्रसग को विस्मृत नही किया जा सकता है। उसका मैं स्वय प्रत्यक्षदर्शी हूँ और जब कभी उस घटना का स्मरण हो आता है, पूरा शरीर रोमान्चित हो जाता है।

हुआ यो कि एक दिन सध्या ज्ञानचर्चा का प्रसग चल रहा था। आचार्य देव चौकी (छोटे पाट) पर आसीन थे और आचार्य देव के उपपात निकट पार्श्व मे मैं (लेखक) बैठा था। सम्मुख २०–२५ जिज्ञासु उपस्थित थे। एक अग्रवाल धर्मनिष्ठ बधु श्री रामगोपाल जी स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा० के चूरू वर्षावास के समय अनन्य भक्त बन गए थे, आज भी उनकी आचार्यदेव के प्रति अनन्य निष्ठा है, ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है ? मैं (शातिमुनि) जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत कर रहा था। जन्म और मृत्यु की मौलिक परिभाषा एव व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही मैं देहातीत मृत्यु विजयी ध्यानयोगी स्वर्गीय आचार्य देव श्री गणेशीलाल जी म सा का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा था। मैं बता रहा था कि वे एक ऐसे उच्चकोटि के अनासक्त योगी थे कि मृत्यु की चरमघडियो मे भी वे शात, प्रशात निश्छल थे। जैसे लम्बी यात्रा हेतु प्रस्थान करने के लिए वस्त्र-मजूषा सजायी जाती है, उसी प्रकार उन्होने अत्यन्त सजगता के साथ मृत्यु का वरण किया। मैं इस प्रसग को कुछ विस्तार देते हुए कह रहा था कि आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा०, इतने मे उपस्थित जिज्ञासुओ के मध्य बैठा १७–१८ वर्ष का एक भद्रमना युवक श्री ओमप्रकाश, जो कि अग्रवाल जी का ही लडका था और ग्यारहवी कक्षा मे अध्ययन कर रहा था, अत्यधिक तीव्र स्वर से मध्य-शून्यता की स्थिति में पहुँचता हुआ चिल्लाया—"अठे हूँ · अठे हूँ अठे हूँ।"

स्वर इतना तीव्र था कि वह मानव स्वर का अतिक्रमण कर चुका था। सम्पूर्ण सभा स्तम्भित हो गई। मेरा तो शरीर ही काँपने लगा और नासिका से जुकामवत् पानी रिसने लगा। अन्य बधु भी भयभीत-से हो उठे। सरदार शहर निवासी श्री मोतीलाल जी बरडिया ओमप्रकाश के निकट पहुँचे और उसके नाडी सस्थान का परीक्षण करने लगे। उस समय तक युवक बोध शून्य था, किन्तु बरडिया जी के अनुसार उसकी नाडी की गति मे कोई व्यवधान नही था। उसके पिताजी ने कुछ पानी मँगाकर ओमप्रकाश के चेहरे पर छिडकाव किया। कुछ समय पश्चात् वह स्वस्थ हुआ। उससे पूछा गया कि तुझे अभी

देना । व्यवस्था-सयोजना मे प्रमुखतया चण्डालिया और वरडिया परिवार की सेवा संयोजना अनुकरणीय थी । उसमे भी थली के शेर श्री मोतीलाल जी बरडिया का तो पूरा परिवार ही प्राय· पॉच माह के लिए व्यावसायिक तत्र से असम्पृक्त हो सेवा मे जुट गया था और उसका प्रतिफल भी उन्हे मिला। वर्षावास समाप्ति के कुछ दिनो पूर्व श्री बरडिया जी के स्वर निकल पडे— "महाराज श्री ! रतनलाल (सुपुत्र श्री मोतीलाल जी) अहमदाबाद फैक्ट्री पर पॉच माह से नही गया है । कुछ दिनो के लिये आया था और यही टिक गया, किन्तु इसके नही जाने से हम डेढ लाख की हानि से बच गये । मैं तो इसे सेवा का आशु-फल और बहुत बड़ा चमत्कार समझता हूँ ।"

इसी प्रकार इस वर्षावास मे कुछ जैनेतर बुद्धिजीवियो ने आचार्य देव से गुरु मत्र ग्रहण किया । इनमे सरदारशहर के जानेमाने विद्वान् कर्मठ कार्यकर्ता प्राध्यापक श्री शिवाशकर जी त्रिवेदी का नाम उल्लेखनीय है । श्री त्रिवेदी जी ने आचार्य देव के समता दर्शन के विचारो से प्रभावित हो अपने साप्ताहिक पत्र 'वल्गा' का एक समता विशेषाक भी प्रकाशित किया था ।

उसी प्रकार इसी वर्षावास मे राजस्थान के वित्त मत्री श्री चन्दनमल जी वैद अपने घनिष्ठ मित्र श्री गणेशमल जी चण्डालिया के साथ उपस्थित हुए तथा जैन एकता के सन्दर्भ मे आचार्य प्रवर से खुलकर विचार-विमर्श किया । आचार्य प्रवर ने श्रमण मर्यादाओं की रक्षा एव आतरिक राग-द्वेषात्मक वृत्तियो के सशोधन पर बल देते हुए कहा—"मैं केवल ऊपरी दिखाऊ संगठन पसद नही करता । ऊपर से हम समन्वय की बाते करके सामान्य जनता को दिखाना चाहते है कि हम एक है और अन्दर से हम एक दूसरे से वैयक्तिक वैमनस्य पालते रहे, यह कहाँ तक उचित है ? इस वर्ष के थली भ्रमण के अनुभव आप सुनेगे तो स्वय अनुभव करेगे कि हमारी मनोवृत्तियाँ समन्वय के विचारो के प्रति कितनी शुद्ध हैं ? मैं आपको क्या बताऊँ, इस भ्रमण काल मे आगे-आगे सत कैसा भ्रामक वातावरण निर्मित करते चले जा रहे थे । यह आप स्थानीय बधुओ से जान सकते है, अस्तु ! मेरे विचारो से पहले हम आतरिक विचारो को शुद्ध बनाकर शुद्ध सैद्धातिक मूल महाव्रतो की सुरक्षा के लिए, साध्वाचार को सुदृढ बनाने का प्रयास करे और उसके साथ जैसा कि मैंने पूर्व मे आपको सकेत दिया था, सांवत्सरिक एकता पर स्थिर हो जाए तो आगे एक साथ प्रवचन, आदि की स्थिति का प्रसग भी आ सकता है । बिना अन्तर शुद्धि के ऊपरी समन्वय भी, जिसके प्रदर्शन के प्रति हम बडे उत्साहित है, स्थापित नही हो पायेगा । आज का समाज बुद्धिवाद की ओर बढ रहा है । वह हमारी इन प्रवृत्तियो का उपहास ही करता है ।"

आचार्य प्रवर के विचारो से सहमति व्यक्त करते हुए मंत्री महोदय ने कहा—"आपके विचार माननीय है । आतरिक एकता ही वस्तुत: एकता है ।

रहता है और मैं चाहती हूँ यह कार्य इन्ही के हाथो से हो। अत आपश्री जितना हो सके शीघ्र समय और स्थान का निर्णय कर दे। ज्ञानचन्द छोटा भले ही हो किन्तु समझदार है और इसे आपश्री एव सन्तो की सेवा मे रहते हुए बहुत समय भी हो गया है।"

आचार्य प्रवर ममताजयी माँ की उदारता देखकर आश्चर्यचकित थे और उन्हे समुचित आश्वासन देना ही पडा।

इस प्रकार रतनगढ मे धर्मोद्योत कर आचार्य देव का राजलदेसर पदार्पण हुआ।

राजलदेसर के कुछ तेरापन्थी तथा अधिकाश जैनेतर बन्धुओ ने आचार्य देव का हृदय से स्वागत किया। राजलदेसर के इस प्रवास काल मे महावीर जयन्ती का प्रसग आ गया था। अत निकट एव सुदूरवर्ती अनेक श्री सघो का आगमन हुआ। परिणामत धार्मिक वातावरण सुमधुर बन गया। इसी प्रसग पर अन्य अनेक श्रीसंघो की भावपूर्ण प्रार्थना के उपरात सरदार शहर की आग्रह-पूर्ण विनती को दृष्टि मे रखते हुए आगामी वर्षावास की स्वीकृति सरदारशहर को प्रदान की गई। साथ ही आगे निकट भविष्य मे होने वाली दीक्षाओ के लिए गोगोलाव सघ को आश्वासन दिया गया।

इतनी सहज स्वीकृति प्राप्त कर सरदारशहर सघ ही नही, थली प्रान्त के अधिकाश सघ स्तम्भित रह गये। सरदारशहर के कुछ वरिष्ठ सदस्यो के तो स्वर फूट पडे "हमने आचार्य देव के व्यक्तित्व को पहचानने मे बहुत भूल की है। हमारी धारणा थी कि एक ओर देशनोक, नोखामण्डी, गगाशहर, भीनासर, आदि बडे-बडे सघ हैं, जहाँ बडे-बडे करोडपति हैं और दूसरी ओर हमारा छोटा-सा क्षेत्र और हम साधारण स्थिति के लोग हैं। साथ ही साधुमार्गी सघ के बडे-बडे कर्मठ नेता भी हमारे पक्ष मे नही हैं। ऐसी स्थिति मे आचार्यश्री अपने करोडपति भक्तो की प्रार्थना ठुकराकर हम दीन श्रावको को चातुर्मास का लाभ कैसे दे सकेंगे ? किन्तु आज प्रत्यक्ष देख लिया है कि आचार्य भगवन् न करोडपतियो के ही हैं, और न सघ प्रमुखो के कहने पर ही चलते हैं। आचार्य देव अपनी स्वतन्त्र विचारणा से ही कुछ भी निर्णय लेते हैं।"

राजलदेसर के इस प्रवासकाल मे चार मील दूरी वाले, सिमस्या गाँव से श्री पेमारामजी चौधरी प्रतिदिन प्रवचन-पान हेतु उपस्थित होते रहे और अन्त मे आचार्य देव को अपने गाँव ले जाने के लिए अड गये। श्रद्धालु भक्त के आग्रह को स्वीकार कर आचार्य देव सिमस्या पधारे, जहाँ जैन का तो एक भी परिवार नही है, किन्तु वहाँ के जाट (चौधरी) परिवारो ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ प्रवचन का लाभ लिया एव अनेक बन्धुओ ने दुर्व्यसनो का त्याग कर सम्यक्त्व भी ग्रहण किया।

मार्गदर्शन कर आचार्य प्रवर ने वर्षावास समापन पर देशनोक की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्गवर्ती क्षेत्र रतनगढ, राजलदेसर, सिमस्या, पडिहारा, छापर, बीदासर, सुजानगढ, लाडनू आदि क्षेत्रो को धर्म-देशना की परम पावनी धारा से सतृप्त करते हुए आचार्य प्रवर का देशनोक पदार्पण हुआ। स्मरणीय है कि सिमस्या ग्राम मे आचार्य प्रवर का पूर्व मे पदार्पण हो चुका था। उस समय अनेक कृषक बन्धुओ ने दुर्व्यसनो का त्याग किया था। दो चौधरी (जाट) बधु लगभग पचास मील तक विहार-यात्रा मे आचार्य देव के साथ श्रद्धाभिभूत हो चलते रहे और आग्रहपूर्वक अपने आराध्य को अपने ग्राम मे ले आए। आचार्य प्रवर के सिमस्या के इस दो दिन के प्रवास काल मे लगभग १५० अजैन (कृषक) बधुओ ने दुर्व्यसनो का परित्याग कर जेनत्व को स्वीकार किया। गाम्यजनो की श्रद्धा मे प्रकृति ने भी अद्भुत सहयोग प्रदान किया। दो दिन तक घु वर ने आचार्य देव को सिमस्या मे रुकने हेतु वाध्य कर दिया और श्रद्धालु-चित्तो को अप्रत्याशित लाभ प्राप्त हो गया। इसी प्रकार बीदासर का पन्द्रह दिवसीय प्रवास भी अनूठे धर्म-जागरण का प्रवासकाल रहा जिसमे श्री हिम्मत-मल जी साँखला, प्रशासक नगरपालिका, बीदासर की सेवाएँ प्रशसनीय रही।

इस प्रकार मार्गवर्ती लघुग्रामो मे भी अद्भुत धर्म-जागरण का शखनाद करते हुए तथा कटकाकीर्ण एव पथरीले बीहड दुर्गम मार्ग के कष्टो का सामना करते हुए आचार्य प्रवर का देशनोक पदार्पण हुआ।

देशनोक की पुण्यशालिनी धरा कुछ दिनो के लिए तीर्थधाम ही बन गई थी। इस अवधि मे वहाँ छ· दीक्षाएँ सम्पन्न हुई थी।

गगाशहर के वयोवृद्ध किन्तु युवाशक्ति के प्रतीक तपोनिष्ठ आदर्श त्यागी, सरलता एव सात्विकता की प्रतिमूर्ति सुश्रावक श्री मोतीलाल जी सुराना ने पारिवारिक सदस्यो की अनुमति के अभाव मे गगाशहर मे परिवेश परिवर्तन के साथ स्वय ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी। अत: देशनोक मे पारिवारिक अनुमति पूर्वक आचार्य देव के कर-कमलो द्वारा उनकी विधिवत दीक्षा सम्पन्न हुई।

इसके अतिरिक्त देशनोक निवासी स्वर्गीय श्री नेमीचन्द जी भूरा के सुपुत्र, उदीयमान व्यक्तित्व, बाल ब्रह्मचारी श्री रामलाल जी भूरा, सौ० श्रीमती प्रेमकाता जी, धर्मपत्नी श्री सागरमल जी सहलोत निकुम्भ, देवगढ निवासी श्रद्धानिष्ठ श्रावक श्री सोहनलाल जी देरासरिया की सुपुत्री कुमारी सुशोला, बीकानेर निवासी श्री करणीदान जी पटवा की सुपुत्री कुमारी किरण एव रावटी निवासी श्रद्धा सम्पन्न श्रावक श्री नानालाल जी कटारिया की सुपुत्री तथा साध्वी श्री केशर कु वर जी की ससार पक्षीया-भगिनी कुमारी सोमलता की भागवती दीक्षाएँ हजारो की जनमेदिनी की उपस्थिति मे देशनोक मे ही सम्पन्न हुई।

ताने मार रहे है कि –सरदारशहर वालो को प्रसन्न करने के लिए सरदारशहर चातुर्मास का निर्णय दिया है। चातुर्मास तो देशनोक या नोखामडी मे ही होगा, नही तो इस ग्रीष्म प्रकोप को देखते हुए दीक्षा स्थल का निर्णय इतनी दूर क्यो करते—और कही उनकी बात सही नही निकल जाए। आप आगारो का प्रयोग कर वर्षावास उधर ही न कर ले।"

आचार्य प्रवर ने मधुर स्वर मे कहा - "जैसी स्थिति होगी सामने आयेगी। दीक्षा इधर करने का जहाँ तक प्रश्न है, मैं आगारो का प्रयोग नही करना चाहता। हाँ, यदि गोगोलाव सघ सहर्ष इस क्षेत्र मे ही दीक्षा कराना चाहे, तो मुझे कोई आपत्ति नही है।"

इस पर श्री वरडियाजी कुछ अनमने एव विक्षुब्ध हो गये और उनके मुख से सहसा कुछ अप्रिय शब्द भी निकल पडे कि "आप इस गर्मी मे सन्तो को झुलसा देगे, सन्तो को परेशानी हो जाएगी।" अन्ततोगत्वा अपने वचनो पर दृढ आचार्य प्रवर रुग्ण सन्त श्री सुरेन्द्र मुनिजी की सेवा हेतु मुझे एव विद्यार्थी श्री रमेश मुनिजी को नियुक्त कर अन्य सहयोगी मुनियो के साथ प्रस्थान कर नागौर मे वर्षो से चले आ रहे सामाजिक सघर्ष को समाप्त करते हुए दीक्षा-प्रसग पर गोगोलाव पहुँच गये। हम तीनो मुनि भी कुछ दिन की विश्राति के पश्चात् दीक्षा प्रसग पर पहुँच गए।

गोगोलाव में अभूतपूर्व दीक्षोत्सव, प्रकृति का सहयोग

गोगोलाव मे ब्यावर के लब्ध-प्रतिष्ठ धर्मचेता श्रद्धाप्रवण श्रावक श्री मागीलालजी मेहता के सुपुत्र, बालब्रह्मचारी उदीयमान् व्यक्तित्व श्री ज्ञानचन्दजी एव प्रतिभावती कुमारी ललिता की तथा उदयपुर निवासी दृढश्रद्धा सम्पन्न श्रावक श्री गुलाबचन्दजी चपलोत की दो सुपुत्रियो कुमारी रजना एव अजना की भागवती दीक्षाएँ लगभग बारह हजार की जनमेदनी के समक्ष हुई। स्मरणीय है कि गोगोलाव दो हजार की जनसख्या वाला छोटा-सा ग्राम है। वहाँ बारह हजार व्यक्तियो का उपस्थित हो जाना गागर मे सागर वत अतीव अद्भुत एव रमणीय रहा है। कुछ दिनो के लिए गोगोलाव एक विशाल तीर्थधाम ही बन गया।

इस दीक्षोत्सव की एक विशेषता और थी—प्रकृति का अप्रतिम सहयोग। भयकर ग्रीष्म ऋतु के दिनो मे चारो ओर साय-साय उष्ण हवाएँ चलती है। रेतीले टीले उत्तप्त हो उठते हैं और आधी के समय उडने वाले बालूकण स्वेद से आर्द्र तन से चिपककर जलन-सी उत्पन्न कर देते है। ऐसी विकट स्थिति मे गोगोलाव का लघु सघ चिंतनमग्न था कि इस छोटे से गाँव मे इतनी अपार जन-राशि की समुचित व्यवस्था कैसे बन पाएगी, किन्तु प्रकृति ने अपने आप मे

चुके थे। स्मरणीय है कि महासती जी ने संथारा चलती-फिरती स्थिति मे अत्यन्त सजग स्थिति मे ग्रहण किया था। जैसे सामान्य यात्री अपनी यात्रा हेतु सन्दूक सजाता है, ठीक उसी प्रकार महासती जी ने अपनी अगले जीवन की यात्रा का पाथेय सज्जित किया।

लगभग दस दिवसीय संथारे की कालावधि मे महासती जी को आचार्य देव के दर्शन एव मंगल पाठ श्रवण का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

अस्तु पुन. भीनासर आगमन के लिए एक संथारे का निमित्त बना और दूसरा निकट भविष्य मे कुछ मुमुक्षु आत्माओ की भागवती दीक्षा इसी पुण्यधरा पर होना निश्चित हो गया था। स्मरणीय है कि भीनासर की इस पूतधरा पर पूर्व मे एक साथ द्वादश दीक्षाएँ हो चुकी थी और आचार्य देव के इस पुन· प्रवास काल मे अत्यल्पावधि मे ही पुन छ मुमुक्षु आत्माओ ने प्रव्रज्या अंगीकार कर आत्म साधना में चरण बढाए। वे मुमुक्षु थे—कठोर तपस्वी वयोवृद्ध सत्तर वर्षीय, किन्तु युवा हृदय साधनारत श्री कस्तूरचन्द जी सुराणा, गंगाशहर। श्री सुराणा जी गृहस्थ जीवन मे ही विगत सात वर्षो से तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे। सात वर्षो से केशलुंचन करते थे। इस वृद्ध अवस्था मे प्रतिदिन एक हजार-ग्यारह सौ के लगभग विधिवत वन्दन करते रहे है। यह एक अनुपम आदर्श है। श्री सुराणा जी इस विरक्त भाव मे ही चल रहे थे, किन्तु सुपुत्र श्री हनुमानमल जी वार्द्धक्य के कारण प्रव्रज्या हेतु अनुमति प्रदान नही कर रहे थे। अत· आप श्री स्वय ही श्रमण परिवेश धारण कर स्वय दीक्षित हो गए। अनन्तर सुपुत्र एव अन्य पारिवारिक सदस्यो की अनुमति एव प्रार्थना के आधार पर अन्य पाँच के साथ आचार्य प्रवर ने आपको विधिवत दीक्षा प्रदान कर वृद्ध तन को सयम का सम्बल प्रदान किया। अन्य पाँच मुमुक्षु आत्माएँ थी—

(१) श्रीमती मंजुलादेवी भूरा, इक्कीस वर्षीय, धर्मपत्नी श्री भंवरलाल जी भूरा, देशनोक।

(२) कुमारी सुलोचना सहलोत, सुपुत्री श्री बाबरूलाल जी सहलोत, कानोड।

(३) कुमारी प्रतिभा सेठिया, सुपुत्री श्री पानमल जी सेठिया, बीकानेर।

(४) कुमारी वनीता गुलगुलिया, सुपुत्री श्री गुलाबचन्द जी गुलगुलिया, बीकानेर।

(५) कुमारी सुप्रभा, सुपुत्री श्री चंपालाल जी काकरिया, गोगोलाव।

सरदारशहर-चातुर्मास

बताया जा चुका है कि सरदारशहर मे साधुमार्गीय जैन परम्परा की गृह सख्या नगण्य-सी है तथापि प्रार्थना, प्रवचन एव ज्ञान-गोष्ठी मे जैन-जैनेतर सैकडो की उपस्थिति तथा प्राय प्रति रविवार को हजारो की उपस्थिति मे मध्य बाजार मे सार्वजनिक प्रवचन होना आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व एव प्रवचन की लोकप्रियता का सूचक है ।

सरदारशहर वर्षावास की श्री वृद्धि मे चार चाँद लगाने का कार्य किया सयमीजनो की खान पिपलिया मडी के गौरवशाली पामेचा परिवार से सबधित चार मुमुक्षु आत्माओ एव मण्डी डबावाली के वीर वय गभीर उदारचेता श्री फूलचन्द जी गोयल (अग्रवाल) ने ।

स्वर्गीय तपोमूर्ति श्री वृद्धिचन्द जी म० सा० के सुपुत्र एव घोर तपस्वी श्री अमरचन्द जी म० सा० के ससार पक्षीय अग्रज, आदर्श त्यागी, शात चेता श्री बाबूलाल जी पामेचा, उन्ही की सुपुत्री प्रतिभा सपन्न तेजस्वी बाला कुमारी पुष्पा, भतीजी अर्थात् अग्रज श्री जमनालाल जी साहब की सुपुत्री प्रखर प्रतिभा पु ज सुश्री सुशीला कुमारी बी ए तथा इसी परिवार से अनुबधित अर्थात् (भुआ के लडके) भ्राता श्री रणजीत मुनि जी की ससार पक्षीया आग्नेया श्री रामगोपाल जी कच्छारा की सुपुत्री कुमारी सुशीला कच्छारा तथा पजाब के जनधन से सपन्न परिवार के सरक्षक आदर्श त्याग वृत्ति से ओतप्रोत श्री फूलचन्द जी अग्रवाल । इन पाचो मुमुक्षु आत्माओ ने इसी वर्षावास मे आचार्य प्रवर के चरण-सरोजो मे समर्पित हो सयम साधना मे पद-चरण प्रारभ किया ।

दीक्षा महोत्सव की छटा अनूठी थी । सरदारशहर का धार्मिक इतिहास इस प्रसग को पाकर सनाथित हो उठा था ।

पाचो मुमुक्षुओ का कर्णप्रिय नामाकन भी क्रमश निम्नरूपेण रूपान्तरित किया गया (१) श्री बलभद्र मुनिजी (२) साध्वी प्रियलक्षणा श्री (३) साध्वी विचक्षणा श्री (४) साध्वी सुलक्षणा श्री (५) श्री पुष्प मुनि जी ।

इस वर्षावास की एक और प्रमुख विशेषता थी अल्प सख्य परिवार होते हुए भी आगतुक हजारो व्यक्तियो के लिए समयोचित समुचित व्यवस्था जुटा

देशनोक-चातुर्मास

उपलब्धियो के प्रकाश में

देशनोक वर्षावास अन्यान्य समस्त दैनन्दिन कार्यकलापो के साथ ज्ञान-आराधना की दृष्टि से विशेष उपलब्धिपूर्ण रहा। स्वाध्याय-शिविर, बाल-सस्कार-शिविर आदि आयोजनो द्वारा चार मास तक देशनोक का सम्पूर्ण वातावरण ज्ञान सौरभ मे आप्यायित रहा। युवा हृदय विद्वान् मुनि श्री प्रेमचदजी म० सा० द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र के माध्यम से निरन्तर युवको को तत्त्व ज्ञान का रसास्वाद मिलता रहा, तो दूसरी ओर मधुरवक्ता श्री धर्मेशप्रकाशजी का नन्हे मुन्ने वालको को सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस वोल आदि सैद्धान्तिक अध्ययन के माध्यम से सरस, सुरुचिपूर्ण उद्बोधन मिलता रहा। साथ ही वृद्धो को प्रवचन एव रात्रि-चर्चा के माध्यम से आचार्य भगवन् की अमृत-वर्षिणी धारा का मधुर पान प्रतिदिन मिलता था। इस प्रकार चार मास के लिए देशनोक की पूत भूमि ज्ञान-भूमि वन गई।

इस वर्षावास की दूसरी उपलब्धि थी, जैनेतर बन्धुओ का एव विद्वद् वर्ग का जैन धर्म, विशेष कर आचार्य देव के प्रति आस्थावान बनना। लब्ध प्रतिष्ठ वैष्णवानुयायी माहेश्वरी बन्धु श्री बाबूलालजी मूँदडा जो कभी जैन मुनियो के निकट नही आते थे, और जब आचार्य प्रवर के मंगल-प्रवेश के समय सैकडो अजैन अपने-अपने स्थानो से निकल कर आचार्य देव को वन्दन कर रहे थे तब भी श्री मूँदडाजी न खडे हुए और न झुके, तत्पश्चात् किसी की विशेष प्रेरणा प्राप्त कर एक बार प्रवचन मे आए तो पूर्णरूपेण समर्पित हो गए और प्रातः, मध्याह्न एव सन्ध्या तीनो समय लगातार उपस्थित होते रहे। यही नही, जहाँ कही भी आचार्य प्रवर के दर्शन हो जाते, तुरन्त साष्टाग दण्डवत करते। आपको बीस दिन के लिए नेत्रो की शल्य-चिकित्सा हेतु औषधालय जाना पडा। चिकित्सा से निवृत्त होने पर जब मागलिक श्रवण हेतु उपस्थित हुए तो अश्रुपूरित नेत्रो से निवेदन करने लगे—"महाराज श्री ! आपश्री की अमृतवाणी सुनने मे मेरे बीस दिन का व्यवधान पड़ गया।" चिकित्सा-समाप्ति के अनन्तर चिकित्सको का निषेध था कि

साध्वाचार की शुद्धि तो रहनी ही चाहिए। महाव्रतो की सुरक्षा ही तो श्रमण जीवन का प्राण है।"

इसी प्रकार एक दिन गाँधी विद्या मन्दिर (शिक्षा सस्था) के सस्थापक उदारचेता धर्मनिष्ठ बधु श्री कन्हैयालाल जी दुग्गड आचार्य प्रवर के चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे—"गाँधी विद्या मदिर मे एक महोत्सव मनाया जा रहा है जिसमे राजस्थान के मुख्य मत्री, शिक्षा मत्री, वित्त मत्री आदि बडे-बडे राजनेता आ रहे है। उस प्रसग पर आप भी कृपा करके वहाँ पधारने की स्वीकृति प्रदान करे, तो अनुग्रह होगा। आपके विचारो को वे नेता लोग भी सुन सकेगे।"

आचार्य देव ने गभीर उत्तर देते हुए कहा, "देखिए, प्रथम तो विद्या मदिर शहर से डेढ-दो मील दूर है। वहा जाने और रात्रि-विश्राम, आदि मे असुविधा होगी। इसके अतिरिक्त उस समारोह मे ध्वनि वर्धक यत्र का प्रयोग होगा। उस स्थिति मे मैं वहाँ रहना उचित नही समझता। मैंने आत्मकल्याण हेतु महाव्रत ग्रहण किये हैं और ध्वनि वर्धक यन्त्र मे विद्युत् का प्रयोग होता है, जिसमे शास्त्रीय दृष्टि से छ काया के जीवो की विराधना होती है। हिंसक साधनो का प्रयोग कर प्रचार करना आगम विरुद्ध है। ऐसी स्थिति मे मैं वहाँ आऊँ और आपकी व्यवस्था मे व्यवधान उपस्थित करूँ, यह मुझे उचित नही लगता।

"दूसरी बात यह है कि राजनेताओ से हमे क्या लेना-देना ? यदि किसी को तत्त्व ज्ञान की बुभुक्षा होगी, तो वह स्वय आकर मुझसे परिचय प्राप्त कर सकेगा।"

आचार्यदेव के श्रमण मर्यादोचित विचार श्रवण कर श्री दुग्गड जी कहने लगे—"महाराज श्री, आपका दृष्टिकोण यथार्थ है। मैं स्वय नही चाहता कि हमारे मुनिगण राजनैतिको के इर्द-गिर्द घूमे अथवा उन्हे प्रभावित करने के लिये प्रयत्नशील रहे। मैंने आपसे केवल एक व्यावहारिकता के नाते निवेदन किया कि आप श्री तो प्रेरणा नही देते नेताओ से मिलने की, किन्तु सभव है प्रार्थना पर पधार जाते हो। आप श्री ने जो दृष्टिकोण रखा, उससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई हैं।"

पुन देशनोक की ओर दीक्षाओ की धूम

इस प्रकार सरदारशहर वर्षावास मे बुद्धिजीवियो एव जैन-जैनेतर मुमुक्षुओ पर अपने निर्मल ज्ञान एव समुज्ज्वल चरित्र की धवल प्रभा विकीर्ण कर तथा कन्हैयालाल जी नाहटा, बाबूलाल जी चण्डालिया आदि अनेक जीवन-लक्ष्य एव तदनुकूल साधना से विचलित बन्धुओ को आत्मशोधन का सम्यग्

की दीर्घावधि के उपरान्त भी उपचार से अभीष्ट लाभ नहीं हो पाया, अतः जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से गंगाशहर पदार्पण हुआ। उदार भारत मान्य पद्मश्री डॉक्टर नन्दलालजी बोर्दिया, इन्दौर, उदयपुर के सुप्रसिद्ध डाक्टर शूरवीरसिंहजी का तथा साधुमार्गी संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं का भी अत्यधिक आग्रह रहा कि उपचार में परिवर्तन होना चाहिए। परिणामतः आयुर्वेदिक उपचार समाप्त कर एलोपैथिक उपचार प्रारम्भ किया गया। इस उपचार ने भी पर्याप्त लाभ तो नहीं हुआ, किन्तु पूर्वापेक्षा कुछ सुधार हुआ। इसी मध्य होली चातुर्मासी प्रसंग पर आगामी वर्षावास की स्वीकृति नोखामण्डी संघ को दी जा चुकी थी। अस्तु, देशनोक आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए वर्षावास हेतु नोखामण्डी पदार्पण हुआ।

• • •

लघु ग्रामों में धर्मोद्योत

देशनोक मे त्याग, तप एव साधना की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित कर आचार्य प्रवर ने पुन पाचू, झज्झु, आदि लघु ग्रामो की ओर प्रस्थान कर दिया। चूँकि पाचू एव झज्झु ग्राम राजमार्ग से कटे हुए है, अतः वहाँ आचार्य प्रवर का तो चौतीस वर्षों के पश्चात् पदार्पण हुआ है, किन्तु मार्ग की असुविधा के कारण अन्य साधु-साध्वी वर्ग का भी समागम अत्यल्प ही होता है। इतनी दीर्घकालावधि की प्रतीक्षा के उपरात आचार्य प्रवर का वहाँ पदार्पण हुआ है। अत श्रद्धालु भक्तजनो के हृदय अपने आराध्य को अपने क्षेत्र मे पाकर अत्यधिक उल्लसित थे। दोनो ग्रामो से त्याग, तप, ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार आदि आराधनाओ के कारण शेषकालीन प्रवास काल मे ही पर्युषण पर्व-सा उल्लास व्याप्त हो गया।

पाँचू मे दो जैन सहोदर बन्धुओ मे १५ वर्ष से आपसी वैमनस्य चल रहा था। आचार्य देव के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व से प्रभावित हो प्रवचन स्थल पर ही दोनो बधुओ ने एक दूसरे को गले लगाकर समत्व के वातावरण का निर्माण कर दिया। इसी प्रकार चार स्वर्णकार परिवारो मे भी १५–१६ वर्षों से चला आ रहा वैमनस्य आचार्य देव की अमृतवर्षीय वाग्धारा से प्रक्षालित हो गया। चारो परिवारो के समस्त नर-नारी, बालक-बालिकाओ सहित प्रवचन-स्थल पर उपस्थित हो एक दूसरे से "क्षमा-याचना" कर स्नेह-सूत्र मे बँध गए।

इसी प्रकार उपर्युक्त क्षेत्रो मे अनेक जाट, राजपूत, कसाई, मोची आदि बधुओ ने मद्य, माँस आदि दुर्व्यसनो का तथा कई अजैन कृषक महिलाओ ने भी रात्रि भोजन का त्याग किया।

पाचू के प्रवासकाल मे होली चातुर्मासी का प्रसग आ गया था अतः गगाशहर, भीनासर, देशनोक, नोखामण्डी, उदयपुर, ब्यावर आदि क्षेत्रो की आग्रहपूर्ण विनतियो के मध्य देशनोक सघ को आगामी वर्षावास की स्वीकृति दी गई।

पाचू, झज्झु एव समीपवर्ती धर्म पिपासु ग्राम्य जनता को धर्म-देशना का अमृतपान कराकर तथा तद्द्वारा क्रूरतम शौकरिको (कसाइयो) के भी हृदयो को परिवर्तित कर आचार्य प्रवर का पुन तीर्थ भूमि गगाशहर-भीनासर पदार्पण हुआ, क्योकि झज्झु (जज्जु) मे महावीर जयन्ती के पुनीत प्रसग पर आचार्य देव को यह सूचना प्राप्त हुई कि भीनासर मे महान् सेवाभाविनी सरलचेता महासती जी श्री पानकवर जी ने अत्यन्त सजगतापूर्वक आजीवन सथारा का प्रत्याख्यान कर लिया है तथा आप श्री के दर्शनो के लिये उत्कठित हैं। सदेश प्राप्त होते ही आचार्य देव शीघ्रतापूर्वक तीन-चार दिन मे ही उग्र विहार कर भीनासर पधार गए। तब तक महासती जी को सथारे के लगभग सात दिन हो

जैन दर्शन की यह अवधारणा है कि लोकोत्तर व्यक्तित्व के स्वामी तीर्थकर महाप्रभु के विचरण क्षेत्र के निकटवर्ती पच्चीस योजन क्षेत्र मे सम्पूर्ण व्याधियाँ एव वैमनस्य समाप्त हो जाते है। महाप्रभु के समतापूत व्यक्तित्व से सम्पूर्ण वायुमण्डल, पवित्र, शात, प्रशात व निर्वाध वन जाता है।

इन सब स्थितियो को हमारी सामान्य प्रज्ञा चमत्कार की सज्ञा देती है, क्योकि हमे यह सब अनहोना-सा लगता है, जवकि यह सब सकल्प-शक्ति एव चारित्रिक गरिमा के द्वारा सहज साध्य है। हमारी सकल्पित आस्था पत्थर मे आँसू ला सकती है, तो फिर चेतन मे रूपान्तरण ले आना क्यो दुष्कर होगा ? हाँ यह स्मरणीय है कि चमत्कार दिखाया नही जाता है। वह तो शक्ति-स्फोट की प्रक्रिया के अनुसार सहज ही होता है। नोखामण्डी के इस वर्षावास मे कुछ ऐसे ही पहलीनुमा प्रसग वने थे, जो आचार्य देव के समतापूत व्यक्तित्व की गरिमा को अभिव्यक्ति देते है, साथ ही इस धार्मिक आस्थाहीन युग मे धार्मिक आस्था की अनूठी शक्ति को भी उजागर करते है। उनमे प्रथम प्रसग था, ८५ वर्षीय वृद्धा को ग्यारह वर्षो के पश्चात् पुन. ज्योति प्राप्त होना।

वह अप्रतिम भाग्यशालिनी महिला थी नोखामण्डी निवासी स्व र्गीय श्री खीमराजजी लुणावत की धर्मपत्नी श्रीमती पन्नी वाई। लगभग ८५ वर्ष की वृद्धा पन्नी बाई की विगत ग्यारह वर्षो से नेत्र-ज्योति समाप्त हो गई थी। नेत्र-ज्योति के सम्पूर्ण अभाव के साथ ही वृद्धावस्था एव अन्यान्य शारीरिक रुग्णताओ के कारण वे चलने-फिरने मे भी एकदम अशक्त थी। उनका समस्त समय चारपाई पर ही व्यतीत होता था। इतना होने पर भी श्रद्धानिष्ठ पन्नी बाई की धार्मिक आस्था अचल थी और वह परमात्म-स्मरण मे लीन रहती थी।

आचार्य प्रवर के नोखामण्डी वर्षावास हेतु पदार्पण के समाचार उन्हे प्राप्त हो चुके थे और वह अपने आराध्य गुरुदेव के दर्शन हेतु अत्यन्त लालायित थी। किन्तु उनके पुत्र, पौत्र आदि भिन्न साम्प्रदायिकता के कारण उन्हे आचार्य देव के दर्शन पर्यु षण के पूर्व तक नही करवा सके।

सवत्सरी पर्व के दूसरे दिन श्री चतुर्भु जजी सेठिया के यहाँ दर्शन देने हेतु आचार्य प्रवर का पदार्पण हो रहा था। उक्त भाग्यशालिनी माँ साहिबा का निवास स्थान भी उसी मार्ग पर था। कुछ जयनाद के स्वर माँ साहिबा के कानो पर गये, तो उनसे रहा नही गया और अपने पुत्र तोलारामजी लुणावत से कहा कि—"आचार्य महाराज का इस तरफ पदार्पण हो रहा है। अब तो गुरु महाराज से प्रार्थना कर दो कि मुझे माँगलिक सुना दे। मैं दो महीने से दर्शनो के लिए तरस रही हूँ।" श्री तोलारामजी ने विचार किया—माँ पुन: पुन: कहती

गगाशहर मे उपर्युक्त छ मुमुक्षु आत्माओ को अपनी श्रमण-परम्परा मे आश्रय प्रदान कर आचार्य प्रवर का बीकानेर पदार्पण हुआ और बीकानेर कारागृह अधीक्षक के आग्रह पर कारागृह मे कर्मचारी एव बन्दियो के समक्ष प्रवचन हुआ जिसमे ३५० बन्दियो ने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि हम अब से ऐसे कोई कृत्य नही करेंगे जिससे पुन कारागृह की हवा खानी पडे ।

बीकानेर मे अपराधवृत्तिकजनो के हृदयो को परिवर्तित कर आचार्य प्रवर का पुन. गगाशहर होते हुए वर्षावास हेतु देशनोक पदार्पण हुआ ।

• • •

साश्चर्य देव, गुरु, धर्म की महिमा का बखान करने लगे, तो दूसरी ओर श्रद्धा उपासना को तर्क की कसौटी पर कसने हेतु तार्किक बुद्धिजीवियो का भी आगमन होने लगा। बीकानेर से डॉ० सक्सेना, डॉ० सुराना एवं डॉ० पूनिया सा० भी उपस्थित हुए तथा माँ साहिबा के नेत्रो की परीक्षा की गई। नेत्र-परीक्षण के पश्चात् उन्होने कहा, "वास्तव मे माँ जी के एक नेत्र मे ज्योति आ गई है। यह सहसा कैसे हुआ, यह हमारी समझ से परे है।"

इस प्रकार आचार्य देव के महिमामडित व्यक्तित्व ने जिन शासन की प्रभावना मे चार चाद लगा दिए।

नैया खिवैया : गुरु नाना

दूसरा, नाम-स्मरण के चमत्कार का अद्भुत प्रसग है सिलचर (आसाम) का। उदयरामसर निवासी श्री नथमलजी सीपानी व्यावसायिक दृष्टि से आसाम मे कार्यरत थे। एक दिन बाढ-पीडितों के लिए अपने अन्य चार बंगाली सहयोगियो के साथ श्री सीपानीजी खाद्य-सामग्री लेकर नौका द्वारा बराक नदी पार कर रहे थे। नौका ज्यो ही नदी के बीच मे पहुँची, जल के तीव्र प्रवाह के कारण नौका सहसा ही उलट गई। चारो बगाली बन्धु तो तैराक थे, अतः वे तैर कर नदी के किनारे पहुँच गए, किन्तु श्री सीपानीजी को तैरना नही आता था। अतः वे पानी की लहरो के बीच गोता खाने लगे। किन्तु जीवन और मृत्यु के बीच होने वाले इस सघर्ष मे उन्हे अपने आराध्य गुरुदेव का पुनीत स्मरण हो आया और सहसा तीव्र सकल्प जगा—"गुरुदेव, आपका ही शरणा है, मै पुण्य कार्य के लिये जा रहा था फिर ऐसी विकट परिस्थिति कैसे बन गई ? भगवन्, इस सकट से बच गया तो तुरन्त आपश्री के दर्शनार्थ उपस्थिन होऊँगा और यथाशक्ति तपस्या करूँगा।"

इस सकल्प के साथ ही सहसा एक आटे का बोरा उनके सीने के नीचे आकर टिक जाता है और वे उस पर चढ़कर बैठ जाते है।

इधर वे बगाली भाई नदी किनारे पहुँच कर सोच रहे थे कि वह सेठ तो आज मर गया, किन्तु ज्योही उन्होने उधर देखा कि सेठ तो पानी पर बैठा है, वे आश्चर्य चकित रह गए और शीघ्र ही दूसरी नौका के द्वारा उन्हे जल-प्रवाह से बाहर निकाल लाये।

स्मरणीय है कि सीपानीजी का इतना भारी शरीर नदी के वेगपूर्ण प्रवाह मे एक आटे के बोरे पर नही टिक सकता था, किन्तु नाम-स्मरण का अचिन्त्य प्रभाव ही उन्हे मृत्यु के मुख से बचा लेता है। इसके पश्चात् श्री सीपानीजी

तीन दिन पूर्ण विश्राम लेना है, किन्तु उनसे नही रहा गया और आँखो पर पट्टी लगे हुए ही श्री चरणो मे दर्शनार्थ पहुँच गए। इसे कहते है हृदय परिवर्तनकारी प्रभाव !

देशनोक वर्षावास की तीसरी उपलब्धि थी तीन मुमुक्षु आत्माओ का दीक्षोत्सव। देशनोक निवासी श्रद्धानिष्ठ श्रावक श्री सम्पतलालजी भूरा के दो सुपुत्र युवा बन्धु श्री प्रकाशचन्दजी एव श्री भवरलालजी भूरा तथा बीकानेर निवासी श्री फकीरचन्दजी पारख की सुपुत्री कुमारी हेमलता पारख की भागवती दीक्षा इसी वर्षावास मे १२–१३ हजार की जनमेदनी के समक्ष सम्पन्न हुई। इस दीक्षोत्सव की विशेषता यह थी कि इतनी भीड होने पर भी सर्वाधिक शान्ति छाई हुई थी। देशनोक के दोनो मुमुक्षुओ के दीक्षार्थ अनुमति के प्रयास का श्रेय लब्ध-प्रतिष्ठ उद्योगपति उदारमना श्रेष्ठिवर्य श्री दीपचन्दजी भूरा को भी जाता है, जिनके जीवन मे आचार्य देव की इस वर्षावास सन्निधि मे अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ और अध्यात्म के प्रति अप्रतिम निष्ठा का जागरण हुआ।

उदर-व्याधि का प्रकोप

देशनोक का ऐतिहासिक उपलब्धियो से पूर्ण वर्षावास समाप्त कर आचार्य प्रवर का सेठिया परिवार के प्रतिभाशाली युवक उदीयमान व्यक्तित्व श्री गौतमकुमारजी की भागवती दीक्षा के निमित्त से पुन. बीकानेर पदार्पण हुआ और श्री गौतमकुमारजी की दीक्षा विधिवत सम्पन्न हुई।

इधर आचार्य देव की उदर व्याधि ने जो कुछ पूर्व मे चल रही थी, अधिक उग्र रूप धारण कर लिया। ऐसी स्थिति मे बीकानेर सघ के कर्मठ सेवाव्रती श्रावको का अत्यधिक आग्रह रहा कि यहाँ वैद्यो एव डॉक्टरो का समुचित सयोग है, अत इस व्याधि का यहाँ सम्पूर्ण उपचार हो जाना चाहिये। आचार्य देव के विहार करने की स्थिति भी नही थी। अस्तु, आचार्य प्रवर ने स्वास्थ्य की अनुकूलता तक वहाँ रहना स्वीकार कर लिया और लब्ध-प्रतिष्ठ श्रावक श्री सुन्दरलालजी तातेड एव श्री केशरीचन्दजी सेठिया के आग्रह पर स्थानीय प्रसिद्ध वैद्य श्री हरिनारायणजी के दिशा-निर्देशन मे आयुर्वेदिक उपचार प्रारम्भ हुआ।

चूँकि रोग कुछ पुरातन हो चुका था, अत. उपचार की अवधि भी कुछ लम्बी रही। लगभग तीन मास तक पर्पटी का उपचार चला। पथ्य सेवन मे दुग्ध के अतिरिक्त अन्नादि खाद्य एव पेय का प्रतिषेध था। तीन मास

करुणामूर्ति आचार्य देव ने कहा—"सयम साधना मे सहयोग देना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जब इन्होने चालीस वर्षो तक सयम पर्याय का अनुशीलन किया है तब तो इन्हे सहयोग प्रदान करना और भी महत्त्व रखता है। किन्तु अभी मैं तो भ्रमण करता रहता हूँ, यदि इनके विहार करने जैसी स्थिति होती तो मै अपने पास रखकर इनकी सेवा का दायित्व अपने ऊपर ले लेता। फिर भी हमारे सघ मे अनुशासनबद्धता व सेवा की व्यवस्था सुदृढ है। आप चाहे तो अभी इन्हे कर्मठ सेवाव्रती श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० के पास बीकानेर मे रख दे। अनन्तर इनके विचार-व्यवहार के परिज्ञात होने पर दीक्षा के विषय मे भी चिन्तन किया जा सकेगा।"

आचार्य देव की उदारता एव सदाशयता से अत्यधिक प्रभावित हो वकील श्री धर्मपालजी कहने लगे—"आपश्री की महानता से मैं आज पूर्णत परिचित हुआ हूँ। अभी तक मैने आपश्री के विषय मे कुछ सुना ही था, आज उस श्रवणगत विषय का साक्षात्कार भी हो गया। मै आपश्री की करुणा-दृष्टि से अत्यन्त प्रभावित हूँ।"

आचार्य प्रवर ने श्री प्रकाशचन्द्रजी से भी कुछ सामयिक चर्चा करके उनके विचारो की जानकारी ली। श्री प्रकाशचन्द्रजी ने कहा—"आचार्य देव, मेरी तीव्र इच्छा सयमाराधना की थी और है, किन्तु उधर पजाब मे जिनके पास मैंने चालीस वर्ष तक सयम पाला, उन्होने मुझे इस अस्वस्थता एव वृद्धावस्था मे धोखा दे दिया। उनके इस व्यवहार से मेरा मानस भी कुछ विक्षिप्त-सा रहने लगा और भाई श्री धर्मपालजी मुझे बीकानेर ले आए। अब यदि आपश्री का आशीर्वाद एव सहयोग हो तो मैं सयम साधना मे ही अपना शेष जीवन व्यतीत करूँ। मुझे गृहस्थ जीवन मे रहना बिल्कुल अच्छा नही लगता है। आप दया करे तो मेरी पिछली अवस्था सुधर सकती है। हाँ, एक बात अवश्य है, मेरी इस शारीरिक स्थिति मे पूर्ण सेवा का भार आपश्री के सतो को ही उठाना होगा। मेरे इस स्थूल शरीर से कोई कार्य नही हो सकता है। इतनी सेवा का उत्तरदायित्व कोई ले सके तो बड़ी कृपा होगी।"

आचार्य देव ने आश्वस्त भरा उत्तर देते हुए कहा—"आपकी भावना श्रेष्ठ है। अभी तो आप कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० के पास रहकर अपनी प्रकृति आदि का परिचय दें। यदि आप में सयम-पालन की उत्कृष्ट भावना है तो मैं उसमे सहयोग देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। रहा प्रश्न सेवा का, वह तो इस सघ मे अनुशासनबद्ध सुन्दर व्यवस्था है और कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी जैसे सेवानिष्ठ सन्त है, अत. इस विषय मे आप निश्चिन्त रहे।"

नोखामण्डी-वर्णन

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अद्भुत चमत्कार : अन्धी को आँख मिली

[illegible]

श्रीमती रभादेवी ने अपने क्षेत्रीय व्यामोह का परित्याग कर तथा जिन महासतियो के सान्निध्य मे संयम-साधना करना था, उनके भी लगाव को छोडकर शासन गौरव की दृष्टि से आचार्य देव की सन्निधि में प्रव्रज्जा ग्रहण कर शासन के गौरव की श्रीवृद्धि मे नया कीर्तिमान स्थापित किया ।

रुग्णता और प्राकृतिक उपचार

नोखामण्डी का चामत्कारिक उपलब्धियो से पूर्ण वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर का उपनगरीय ग्राम जोरावरपुरा पदार्पण हुआ । यद्यपि वहाँ से शीघ्र ही प्रस्थान का विचार था, किन्तु कुछ मुनियो को ज्वर एव टाइफाइड हो जाने से बहाँ पूर्ण शेषकाल तक रुकना पड़ा । इसी बीच मेडता निवासी स्वर्गीय श्री रतनलालजी ललवानो की धर्मपत्नी वैराग्यवती चन्द्रप्रभा की दीक्षा का प्रसग आ गया । अत: दीक्षा-तिथि को पुन. आचार्य प्रवर का नोखामण्डी पदार्पण हुआ ।

इस अन्तराल मे ज्वरग्रस्त मुनियो का स्वास्थ्य तो ठीक हो गया, किन्तु आचार्य देव का रक्तचाप बढ गया और कुछ चक्कर आने लगे । परिणामत देशनोक के प्रसिद्ध सेवाव्रती राजवैद्य श्री भवरलालजी सुराना ने रक्तचाप परीक्षण के उपरान्त सुझाव दिया कि मै बीकानेर से राजस्थान युनिवर्सिटी के मेडिकल फैकल्टी के डीन डॉक्टर के० डी० गुप्ता को लाकर परीक्षण करवाना उपयुक्त समझता हूँ । तदनुसार श्री सुरानाजी गुप्ता साहब को लेकर दूसरे दिन ही उपस्थित हो गए और परीक्षण के उपरान्त डॉक्टर साहब एवं वैद्यराजजी दोनो की राय रही कि आचार्यश्री ऐसी स्थिति मे लम्बा विहार न करे । पूर्ण उपचार के अनन्तर ही विहार का विचार करे ।

इसी मध्य सयोगत: उदयपुर के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक श्री हिम्मतसिंहजी भटनागर का बीकानेर मे चिकित्सा सेवारत अपने सुपुत्र डॉक्टर लक्ष्मणकुमारजी से मिलने हेतु आगमन हुआ और आचार्य देव के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे जानकारी होने पर वे नोखामण्डी पहुँच गये, क्योकि उदयपुर मे स्वर्गीय आचार्य देव के समय वे सभक्ति अपनी सेवाएँ दे चुके थे। उन्होने अपने भावों के आधार पर आचार्य देव से निवेदन किया, "आपके इस रोग का स्थायी उपचार मैं प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से करना चाहता हूँ । आपश्री अभी नागौर की ओर बिहार नही करके बीकानेर अथवा किसी निकटवर्ती क्षेत्र मे कुछ दिवस विराजे तो उपचार मे सुविधा रहेगी । मैं भी अभी कुछ दिनो के लिये बीकानेर मे रहूँगा तथा आवश्यकता होने पर कुछ अधिक समय भी रुक सकूँगा ।"

रहती है और इधर आचार्यजी का आना भी हो गया है। सहज ही दर्शन हो जायेंगे। तदनुसार श्री तोलारामजी एव माँ जी के पौत्रादि अपने मकान के बाहर खडे हो गए और आचार्य देव के उस मार्ग से गुजरने पर निवेदन कर माँ साहिबा को दर्शन देने हेतु ले गए।

अपने आराध्य का दर्शन कर माँ साहिबा का हृदय उल्लास से भर उठा। चेहरे से ही श्रद्धाजन्य अपार प्रसन्नता झलक रही थी। आचार्य प्रवर ने मगल पाठ सुनाया और कहा—"मुझे पूर्व मे किसी ने सकेत नही किया अन्यथा मैं पहले भी आ जाता।"

अनन्तर माँ साहिबा ने आचार्य देव से निवेदन किया—"मुझे तीन द्रव्य से अधिक द्रव्य खाने का प्रत्याखान करवा दीजिये।"

आचार्य देव ने वृद्धा माँ साहिबा की त्याग-भावना की सराहना करते हुए कहा—"आपकी भावना अच्छी है, किन्तु अभी आप शारीरिक दृष्टि से पराधीन है, अत आपकी पुत्रवधू जो कुछ दे दे उसके आगार पर अन्य का त्याग करवा देता हूँ। साथ ही आप जब तक चारपाई से नही उठ सके, तब तक के लिये शरीर-निर्वाह के अतिरिक्त १८ पापो का त्याग करवा देता हूँ।" माँ साहिबा ने प्रसन्नता पूर्वक त्याग लिये। आचार्य प्रवर पुत्र, पौत्र आदि अन्य सदस्यो को भी कुछ त्याग-प्रत्याख्यान करवा कर स्थानक भवन मे पधार गए।

इधर वे वृद्धा माँ जी लकडी के सहारे अपनी खाट से उठकर खडी हुई और दो कदम आगे बढकर सम्मुखस्थ पुत्र-पौत्रो से कहने लगी—"यह लोटा रास्ते मे क्यो रखा है ? अमुक वस्तु यहाँ क्यो रखी हुई है ?" यह सब सुनकर सम्मुखस्थ व्यक्तियो ने साश्चर्य कहा—"क्या आपको दिखाई देने लगा है ?" वृद्धा ने उत्तर दिया, "हाँ, दीख रहा है, तभी तो बता रही हूँ।" पुत्र ने अत्यन्त विस्मय की मुद्रा मे पूछा, "यह कब से और कैसे दिखने लगा ?"

वृद्धा ने अत्यन्त श्रद्धाप्लावित स्वर मे कहा—"आचार्य देव मागलिक सुनाकर गए और इधर दिखने लगा, गुरुदेव की मुझ पर असीम कृपा है।" और दूसरे दिन तो अपनी समस्त वेदना–पीडाओ को विस्मृत कर अथवा उनसे मुक्त हो वह ८५ वर्षीय महाभाग महिला आचार्य भगवन् के दर्शनार्थ धर्मस्थान में आ गई

इस घटना का प्रसारण विद्युत् प्रवाहवत सपूर्ण शहर मे ही नही, समीपवर्ती नगरो मे बीकानेर, देशनोक आदि मे भी हो गया। परिणामत एक तरफ श्रद्धालुचित्त भाग्यवती माँ साहिबा के दर्शन करने हेतु आने लगे और

गंगाशहर-भीनासर चातुर्मास

निश्चित ही गगाशहर-भीनासर की पुण्यधरा एक तीर्थधाम से किंचित् भी न्यून गौरवशाली नही है । इस पूत धरा को स्वर्गीय आचार्य देव ज्योतिर्धर जवाहर के लम्बी अवधि तक स्थविर वास का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है । साथ ही आचार्य देव के बीकानेर प्रान्त के विचरण काल मे रुग्णावस्था आदि के कारण सबसे अधिक समय मिलने का गौरव भी इसी क्षेत्र को प्राप्त हुआ है । यही नही, इधर चार-पॉच वर्षो मे होने वाले दीक्षा महोत्सवो मे सबसे अधिक दीक्षा महोत्सव एव दीक्षाएँ भी इसी पवित्र धरा पर सम्पन्न हुई है ।

आचार्य देव के गगाशहर-भीनासर के प्रथम प्रवेश काल मे ही बारह तथा दूसरी बार छ कुल अठारह दीक्षाएँ सम्पन्न हो चुकी थी । अब इस वर्षावास के पूर्व ही एक बार पॉच और दूसरी बार एक दीक्षा और सम्पन्न हुई । वे दीक्षार्थी मुमुक्षु आत्माएँ थी :—

१– बाल ब्र० मुमुक्षु बन्धु श्री ताराचन्द (श्री प्रशम कुमार) सुपुत्र श्री गोपीचन्द जी छल्लानी, गगाशहर ।

विशेष स्मरणीय है कि प्रशान्तमना विरक्तिरजित किशोर श्री प्रशम कुमार बाल्यकाल से ही गठियावात के रोग से पीडित थे । शीतकाल मे तो आपकी पीडा इतनी अधिक हो जाती है कि चलना-फिरना तो दूर, उठना-बैठना भी दूभर हो जाता । लघुवय मे ही अत्यन्त दु खद वेदना के अनुभव ने सहज ही आपमे जागतिक बन्धनो के प्रति उदासीनता तो उत्पन्न कर ही दी थी, फिर सहसा आचार्य देव का एव मुनिवृन्द का सान्निध्य प्राप्त हो गया तो विरक्ति का भाव अधिक वेगवान हो गया । एक दिन भिक्षार्थ गए आदर्श त्यागी मधुर व्याख्याता मुनि श्री धर्मेश प्रकाशजी आपकी शारीरिक स्थिति देखकर बोल उठे "यह सकल्प कर लो कि यदि रोग मुक्त हो जाऊँगा तो सयम स्वीकार कर लूँगा ।" और आगमोल्लिखित उदाहरण अनाथी मुनि के समान ही आपने दृढ सकल्प कर लिया कि यदि मैं रोग मुक्त हो जाऊँगा तो अवश्य दीक्षा अगीकार कर लूँगा । और चार-छ दिन मे ही वह चमत्कार घटित हो गया, जो अनहोना सा लगता है । जादू की छडी के स्पर्श की तरह आपका सम्पूर्ण रोग न जाने कहाँ छूमन्तर हो गया और आपने आचार्य देव के पुनीत चरण-सरोजो मे अपने आप को अर्पित कर दिया ।

अपने गाँव न जाकर वही से तपश्चरण प्रारम्भ करके आचार्य देव के चरणो मे नोखामण्डी पहुँच गए और सोलह दिनो का निराहार तप किया।

करुणा के निर्झर

नोखामण्डी वर्षावास का एक और स्मरणीय प्रसग था, आचार्य देव की अनन्त करुणा का ज्वलन्त उदाहरण—

बीकानेर क्षेत्र के विश्रुत अभिभावक (एडवोकेट) श्री धर्मपालजी अपने अग्रज श्री प्रकाशचन्द्रजी को लेकर नोखामण्डी उपस्थित हुए। अपने अग्रज का परिचय देते हुए श्री धर्मपालजी ने कहा—"ये मेरे बडे भ्राता हैं। साठ वर्ष की इनकी उम्र है। लगभग चालीस वर्ष तक स्व० श्री आत्मारामजी म० सा० के सान्निध्य में संयमाराधना कर चुके है। अब वृद्धावस्था होने के कारण कोई भी मुनि इनकी सेवा नही करना चाहते है। मैं इनके गुरु भाई आदि अनेक प्रमुख-प्रमुख सन्तो की सेवा में गया और सानुरोध निवेदन किया—"इतने वर्षों तक श्री प्रकाश मुनिजी ने आपके सघ की सेवा की है, अब आप वृद्धावस्था मे इन्हे सहयोग नही देते, यह उचित नही हैं. ।" किन्तु वहाँ मुझे सन्तोषजनक उत्तर नही मिला, विपरीत यह कहा गया कि उन्हे (श्री प्रकाश मुनि जी को) हम स्थानक भवन मे भी नही रहने देगे। विवश हो मैंने इन्हे गृहस्थ का वेश पहना दिया और रेल द्वारा बीकानेर ले आया।

"अब ये वैसे गृहस्थ जीवन में रह रहे है, किन्तु इन्हें गृहस्थ जीवन असह्य-सा लग रहा है। इतनी दीर्घ सयम पर्याय के धूमिल हो जाने से इन्हे अत्यधिक पश्चात्ताप हो रहा है। इस स्थिति मे मैं इन्हे आपश्री के चरणो में लेकर उपस्थित हुआ हूँ। मैंने सुना है कि आपके सघ मे अनुशासनवद्धता के आधार पर सेवा-साधना की समुचित व्यवस्था है। आप करुणा मूर्ति हैं, उचित समझे तो इन्हे पुन सयम प्रदान कर अपनी शरण मे लें। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि भाई साहब प्रकाशचन्द्रजी चलना तो दूर, स्थूल शरीर होने से पूरे उठने-बैठने मे भी कष्ट पाते हैं। वस्त्र प्रक्षालना से लेकर अन्य सभी कार्यों की व्यवस्था आपश्री को ही करनी होगी तथापि आपश्री इनकी संयमाराधना की भावना को दृष्टिगत रखते हुए इन पर कुछ अनुकम्पा करें तो कृपा होगी।

"यद्यपि मैं इनकी सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए तत्पर हूँ, घर पर इन्हें कोई कष्ट नही है। अपनी बहुत बडी कोठी है, अपने मन्दिर पर अपनी धर्म-आराधना करते रहे। भोजन हम पहुँचा देगे। किन्तु इन्हें गृहस्थ वेश में रहना ही पसन्द नही है। अत आपश्री के चरणो में आना पड़ा। अब आपश्री जैसा उचित समझे, परामर्श देने की कृपा करे।"

४– दुर्ग (निवारी) निवासी श्री केवलचन्दजी नाहटा की सुपुत्री तथा उनके अग्रज श्री घेवरचन्दजी नाहटा द्वारा परिपोपित सरल हृदया कुमारी कुसुम ।

इस प्रकार गगाशहर–भीनासर का वर्षावास दीक्षाओ की दृष्टि से अनूठा वर्षावास रहा । इसके अतिरिक्त इस वर्षावास मे व पूर्व के प्रवासकाल मे ज्ञान-उपासना का क्रम भी विशिष्ट रहा । ज्ञान-आराधना तथा साधना मे विशेष जागृति हेतु साधना एव स्वाध्याय शिविर, बालको का धार्मिक शिक्षण शिविर तथा धर्मपाल शिक्षक प्रशिक्षण शिविर, इस प्रकार शिविरो का आयोजन हुआ, जिनमे शिक्षण-कार्य विद्वान् सन्तो के द्वारा विभिन्न शिक्षण पद्धतियो द्वारा सम्पन्न हुआ ।

इस प्रकार स्वास्थ्य-लाभ के साथ अध्यात्मोत्थान की विविध आयामी प्रवृत्तियो के समायोजन पूर्वक गंगाशहर का ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर ने पुनः बीकानेर की ओर प्रस्थान किया । वर्षावास समाप्ति के कुछ दिनो पश्चात् ही होने वाली तीन दीक्षाओ की स्वीकृति बीकानेर-सघ को दी जा चुकी थी । वे तीनो भव्य मुमुक्षु आत्माएँ थी :—

१– मोडी निवासी धर्मनिष्ठ श्रावक श्री सूरजमलजी नीपावलिया की सुपुत्री सुश्री मुन्नी कुमारी । स्मरणीय है कि मुन्नी कुमारी की दो अग्रजा महासती जी श्री विमला कु वर जी तथा महासतीजी श्री सुशीला कु वरजी पूर्व मे निकट भूत मे प्रव्रजित हो चुकी थी ।

२– दूसरी दीक्षार्थिनी बहिन थी सुश्री गुलाब कुमारी (गुणसुन्दरी), सुपुत्री श्री सम्पतलालजी सेठिया, उदासर (बीकानेर) ।

३– तीसरी कुमारी मधुबाला, सुपुत्री श्री शान्तिलालजी नागौरी, छोटी सादडी ।

तीनो मुमुक्षु आत्माओ को अपने सघ मे आश्रय प्रदान कर शीघ्र ही आचार्य देव ने देशनोक, नोखामण्डी की ओर प्रस्थान कर दिया । आचार्य देव स्वास्थ्य-लाभ की स्थिति मे यथाशीघ्र थली प्रान्त (बीकानेर क्षेत्र) से निकल जाना चाहते थे, क्योकि ५ वर्ष की लम्बी अवधि तक इस क्षेत्र मे विचरण हो चुका था, तथा अन्यान्य क्षेत्र भी लालायित थे, किन्तु बीकानेर प्रान्तीय सघ भी अपने आराध्य को सहज कहाँ छोडने वाला था । वह येन-केन-प्रकारेण कुछ-न-कुछ निमित्त बनाकर अधिक-से-अधिक समय आचार्य देव को रोकने के प्रयत्न करता रहा । यही स्थिति आचार्य प्रवर के नोखामण्डी पदार्पण पर बनी ।

नोखामण्डी पदार्पण के पूर्व ही नोखामण्डी निवासी उत्कट वैरागी श्री

इस प्रकार विचार-विमर्श कर दोनो बन्धु पुन बीकानेर चले गए। इधर नोखामण्डी वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर का भी उपचारार्थ गगाशहर-भीनासर पदार्पण हुआ। इस अन्तराल मे कर्मठ सेवाव्रती श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० श्री प्रकाशचन्द्रजी की प्रकृति आदि से अच्छी तरह परिचित हो चुके थे, अत आचार्य देव से निवेदन किया—"इन्हे आपश्री दीक्षा दिलावे, सेवा का भार तो आपकी कृपा से मैं सम्भाल लूँगा।"

और इस प्रकार भारी भरकम शरीर वाले वृद्धकाय श्री प्रकाशचन्द्रजी को अनन्त करुणामूर्ति आचार्य देव ने अपनी सघीय व्यवस्थानुसार सयम प्रदान किया और प्रमुदित भाव के आधार पर प्रमोद मुनि सज्ञा प्रदान की।

इस करुणा के प्रतिफलन के रूप मे चमत्कार तो तब हुआ जब कि आभ्यन्तर तपस्वी कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म० सा० की अनुकम्पापूर्ण समीचीन परिचर्या से स्वस्थ होते ही श्री प्रमोद मुनिजी के जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। उन्होने चालीस वर्ष की दीर्घ दीक्षा पर्याय मे उपवास से अधिक तप नही किया, अब अपने शरीर को तप की भट्टी मे झोक दिया। केवल गर्म जल के आधार पर बीस दिन का तपश्चरण तथा निरन्तर बेले-बेले, तेले-तेले आदि नौ-नौ तक की कठोरतम तपश्चर्या के साथ १०८ आयम्बिल, १०८ नीवी, १०८ एकासन व्रत आदि तपश्चरण से उन्होने अपने शरीर को इतना साध लिया कि दूसरो की सेवा लेने वाले वे श्री प्रकाशचन्द्रजी अब दूसरो की सेवा करने वाले श्री प्रमोद मुनि जी बन गए। जो एक लघु पात्र उठाने मे अक्षम थे, भिक्षावृत्ति मे पानी के पात्र उठाने लगे। दस मील तक के पाद विहार की क्षमता अर्जित कर ली। इतना ही नही, अपना अधिकाश समय स्वाध्याय एव ध्यान मे ही व्यतीत करने लगे।

यह है आचार्य प्रवर की करुणा का एव सघीय व्यवस्था का मधुर परिणाम। जहाँ आचार्य प्रवर ने एक बुझती दीपक-लौ को पुन प्रज्वलित कर दिया और साथ ही अपनी सघीय व्यवस्था मे वृद्धकाय सन्तो की होने वाली सेवा-सुश्रुषा का प्रबलतम प्रमाण भी प्रस्तुत किया। आज हम देखते हैं कि अनेक स्थानो पर विभिन्न सम्प्रदायो मे वृद्ध साधु-साध्वियो की क्या स्थिति है? वहाँ आचार्यश्री द्वारा इस प्रकार के वृद्धकाय आत्मा को सयम-साधना मे सहकार प्रदान करना निश्चित ही उनकी उदारता, सदाशयता एव अनुशासनबद्धता को ध्वनित करता है।

नोखामण्डी वर्षावास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसग था—विद्वद्वर्य कर्मठ सेवाव्रती मुनि श्री सम्पतराजजी म० सा० की ससार पक्षीया धर्मपत्नी आदर्श नारी रत्ना श्रीमती रभादेवी धाडीवाल की भागवती दीक्षा। स्मरणीय है कि

परम वीतराग श्रमरण भगवान् महावीर का धर्मशासन उपशम-भाव प्रधान है, वीतराग भाव की प्राप्ति जिसका लक्ष्य है। जप-तप की कठोर साधना भी धर्म शासन में उपशम भाव के साथ ही सफल मानी गई है। एतदर्थ, समाज में व्याप्त राग, द्वेष, निन्दा के कलुषित वातावरण को दूर करने और शास्त्रीय आचार-परम्परा को सुरक्षित रखने तथा शान्त, स्वच्छ, समताभाव की वृद्धि के लिए तदनुकूल वातावरण का निर्माण करना परमावश्यक है। कषाय घटाने की शिक्षा देने वाला वीतराग मार्ग यदि राग-द्वेष वृद्धि का क्षेत्र बनता है, तो हर धर्मप्रेमी के लिए सहज चिन्ता का विषय हो जाता है। इस दृष्टि से चिन्तन करते हुए हमको आवश्यक लगा कि जब तक आगमप्रेमी मुनिवर्ग आचार-शुद्धि के साथ स्वयं सगठन की भूमिका पर नही आवे, तब तक पूरे संघ का सुव्यव-स्थित स्थिति मे आना सम्भव नही लगता अतः हम लोगों ने ३-४ दिनो के विचार-विमर्श मे इस पर गम्भीर चिन्तन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक सम्वत्सरी की भावनापूर्वक कुछ मौलिक नियमो पर आश्रित एक चातुर्मास, निन्दावर्जन और एक व्याख्यान की व्यवस्था समाज-मान्य हो, तो शासन की सुव्यवस्था का मार्ग व्यापक रूप से सरलता से गतिमान हो सकता है।

एतदर्थ समाज की भावना और आवश्यकता को ध्यान मे रखकर हमने अन्य साथियो से बिना परामर्श किये तत्काल मंगलाचरण के रूप मे यह सोचा कि समग्र जैन समाज की अथवा श्वेताम्बर जैन समाज की या स्थानकवासी जैन समाज की सावत्सरिक एकता बनने का अवसर आये तो हमारी पूर्ण तैयारी है, और तदुपरान्त एक चातुर्मास, एक पट्ट पर व्याख्यान आदि का प्रेम सम्बन्ध स्वीकार किया है।

इस प्रकार आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के स्वर्गवास के पश्चात् हमारा यह प्राथमिक मिलन होते हुए भी बड़ा ही प्रेमवर्धक और आशाप्रद रहा। कुछ बाते ऐच्छिक रही है जिन पर समयानुसार आगे विचार हो सकता है।

हम दोनो ने तटस्थ भाव से आगमीय सिद्धान्तो के अनुरूप गृहीत महा-व्रतो के सरक्षार्थ एक भूमिका तैयार की है। हम इसमे आगम प्रेमी श्रमणो के सहकार एवं विचार की अपेक्षा रखते है।

माघ कृष्णा २, सम्वत् २०३४, दिनांक २६-१-७८।

इस प्रकार भोपालगढ की परमपूत धरा पर युगान्तरकारी प्रवृत्ति के द्वारा समन्वय एवं सद्भाव का सर्जन कर दोनो आचार्य देव ने भिन्न-भिन्न मार्गों से जोधपुर के लिए प्रस्थान कर दिया, क्योकि दोनों आचार्यो के सान्निध्य मे जोधपुर एवं उसके निकट पलासनी मे कुछ दीक्षाओ का होना निश्चित हो चुका था।

इधर गगाशहर–भीनासर, बीकानेर सघ के वरिष्ठ सदस्यो का भी आग्रह रहा कि पूर्णतया स्वस्थ हुए बिना आपश्री इस क्षेत्र को न छोडे ।

आचार्य देव ने इस विषय पर कुछ गम्भीर चिंतन किया और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को निरवद्य एव उपयुक्त समभकर गगाशहर–भीनासर की ओर प्रस्थान कर दिया । शारीरिक अस्वस्थता तथा चिकित्सको के निर्देशन के कारण कुछ तो सेवानिष्ठ मुनि वृन्द के कधो के सहारे एव कुछ पाद-चरण के द्वारा आपश्री का गगाशहर–भीनासर पदार्पण हो गया तथा प्राकृतिक चिकित्सक श्री भटनागरजी के दिशा-निर्देशन से साधु मर्यादा के अनुकूल योग्य उपचार प्रारभ किया गया । प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार यह उपचार बहुत अधिक समय ले गया । परिणामत. आचार्य देव को बहुत समय तक गगाशहर–भीनासर रुकना पडा । इसी अवधि मे होली चातुर्मासिक के पश्चात् अन्यान्य सघो के अत्यधिक आग्रह के उपरान्त भी स्थानीय सघ की विनती को दृष्टिगत रखते हुए आगामी २०३४ के वर्षावास की स्वीकृति भी अत्यन्त भाग्यशाली सघ गगाशहर–भीनासर को दी गई ।

◆ ◆ ◆

परम वीतराग श्रमण भगवान् महावीर का धर्मशासन उपशम-भाव प्रधान है, वीतराग भाव की प्राप्ति जिसका लक्ष्य है। जप-तप की कठोर साधना भी धर्म शासन मे उपशम भाव के साथ ही सफल मानी गई है। एतदर्थ, समाज में व्याप्त राग, द्वेष, निन्दा के कलुषित वातावरण को दूर करने और शास्त्रीय आचार-परम्परा को सुरक्षित रखने तथा शान्त, स्वच्छ, समताभाव की वृद्धि के लिए तदनुकूल वातावरण का निर्माण करना परमावश्यक है। कषाय घटाने की शिक्षा देने वाला वीतराग मार्ग यदि राग-द्वेष वृद्धि का क्षेत्र बनता है, तो हर धर्मप्रेमी के लिए सहज चिन्ता का विषय हो जाता है। इस दृष्टि से चिन्तन करते हुए हमको आवश्यक लगा कि जब तक आगमप्रेमी मुनिवर्ग आचार-शुद्धि के साथ स्वयं सगठन की भूमिका पर नही आवे, तब तक पूरे संघ का सुव्यवस्थित स्थिति मे आना सम्भव नही लगता अतः हम लोगो ने ३-४ दिनो के विचार-विमर्श मे इस पर गम्भीर चिन्तन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक सम्वत्सरी की भावनापूर्वक कुछ मौलिक नियमों पर आश्रित एक चातुर्मास, निन्दावर्जन और एक व्याख्यान की व्यवस्था समाज-मान्य हो, तो शासन की सुव्यवस्था का मार्ग व्यापक रूप से सरलता से गतिमान हो सकता है।

एतदर्थ समाज की भावना और आवश्यकता को ध्यान मे रखकर हमने अन्य साथियो से बिना परामर्श किये तत्काल मगलाचरण के रूप मे यह सोचा कि समग्र जैन समाज की अथवा श्वेताम्बर जैन समाज की या स्थानकवासी जैन समाज की सावत्सरिक एकता बनने का अवसर आये तो हमारी पूर्ण तैयारी है, और तदुपरान्त एक चातुर्मास, एक पट्ट पर व्याख्यान आदि का प्रेम सम्बन्ध स्वीकार किया है।

इस प्रकार आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के स्वर्गवास के पश्चात् हमारा यह प्राथमिक मिलन होते हुए भी बड़ा ही प्रेमवर्धक और आशाप्रद रहा। कुछ बाते ऐच्छिक रही है जिन पर समयानुसार आगे विचार हो सकता है।

हम दोनो ने तटस्थ भाव से आगमीय सिद्धान्तो के अनुरूप गृहीत महाव्रतो के सरक्षार्थ एक भूमिका तैयार की है। हम इसमे आगम प्रेमी श्रमणो के सहकार एव विचार की अपेक्षा रखते है।

माघ कृष्णा २, सम्वत् २०३४, दिनाक २६-१-७८।

इस प्रकार भोपालगढ की परमपूत धरा पर युगान्तरकारी प्रवृत्ति के द्वारा समन्वय एव सद्भाव का सर्जन कर दोनो आचार्य देव ने भिन्न-भिन्न मार्गों से जोधपुर के लिए प्रस्थान कर दिया, क्योकि दोनो आचार्यो के सान्निध्य मे जोधपुर एवं उसके निकट पलासनी मे कुछ दीक्षाओ का होना निश्चित हो चुका था।

२– दीक्षार्थिनी कुमारी आदर्श प्रभा, सुपुत्री श्री त्रिलोकचन्दजी सेठिया, उदासर।

३– कोकिल कंठी सुश्री कुमारी श्रीकान्ता (कीर्तिश्री), सुपुत्री श्री मेघराजजी लुणावत, भीनासर।

४– विरक्तात्मा कुमारी हर्षिला, सुपुत्री श्री किशनलालजी सोनावत, गंगाशहर।

५– साधनापथ पिपासु सुश्री साधना कुमारी, सुपुत्री श्री सन्तोकचन्दजी भूरा, गंगाशहर।

उपर्युक्त पाचों मुमुक्षु आत्माओ की दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई, तथा इस दीक्षोत्सव के कुछ ही दिनो पश्चात् गगाशहर निवासी श्री लूणकरणजी सुराणा की सुपुत्री कुमारी अर्चना की दीक्षा सम्पन्न हुई।

उपर्युक्त अठारह एव छः कुल चौबीस दीक्षाएँ तो इस पावन धरा पर वर्षावास के पूर्व अल्पावधि मे ही हो गईं किन्तु यह क्रम अभी रुका नही। वर्षावास मे आसोज शुक्ला द्वितीया को तीन मुमुक्षु १–आत्माएँ उदीयमान व्यक्तित्व, प्रतिभा सम्पन्न, युवा तपस्वी बन्धु श्री बा० ब्र० अशोक कुमार नवलखा, सुपुत्र श्री सौभाग्यमलजी, जावरा, २–विरक्तिरजित कुमारी शान्ता, सुपुत्री श्री पूनमचन्दजी सिरोहिया, बीकानेर तथा ३–प्रतिभावती कुमारी मजुलता सुपुत्री श्री कन्हैयालालजी बाफना, उदयपुर, भी इसी पुण्य तपोभूमि का आश्रय ग्रहण कर आचार्य देव के परम पूत चरणो मे समर्पित हुईं।

इसी वर्षावास मे आचार्य देव के नेश्राय मे आपश्री की विशेष अनुमति के आधार पर चार दीक्षाओ का भव्य आयोजन दुर्ग नगर (छत्तीसगढ प्रान्त) मे तपोमूर्ति अमरचन्दजी म० सा० तथा सरल हृदया श्री गुलाबकुंवर जी, विदुषी श्री सूरजकुंवर जी साध्वी जी की सन्निधि मे सम्पन्न हुआ। वे चारो मुमुक्षु आत्मायें थी–

१– छत्तेरा (बालाघाट) निवासी श्रद्धानिष्ठ बन्धु श्री सूरजमलजी चोरडिया की सुपुत्री तथा धमतरी निवासी श्री शान्तिलालजी राखेचा की धर्मपत्नी भावनाशीला श्रीमती सज्जन बाई (सरोजदेवी)।

२– रतलाम निवासी श्री कान्तिलालजी मेहता की आत्मजा व साध्वी श्री चन्द्राकुंवरजी की ससार पक्षीया सुपुत्री बुद्धिमती श्री मनोरमा कुमारी।

३– काकेर निवासी श्री सूरजमलजी गाधी की सुपुत्री प्रतिभावती कुमारी

२– उदयपुर निवासी धर्मनिष्ठ, कर्मठ कार्यकर्ता, सहायक कोषाधिकारी के उच्च पद पर नियुक्त प्रामाणिकता एवं विनय की प्रतिमूर्ति श्री जीवनसिंहजी कोठारी की सुपुत्री, एम० ए० पूर्वार्द्ध तथा जैन सिद्धान्त शास्त्री परीक्षोत्तीर्ण विदुषी बाला कुमारी राजश्री कोठारी ।

३– बड़ी सादडी निवासी उदयपुर मे व्यवसायरत धर्मनिष्ठ श्रावक श्री मदनलालजी गदिया की सुपुत्री सरलचेता कुमारी शशिकान्ता ।

४– रतलाम निवासी दृढ-श्रद्धा सम्पन्न सुश्रावक श्री गौतमलालजी पिरोदिया की सुपुत्री, प्रतिभावती कुमारी कमला (कनकप्रभा) ।

५– देशनोक निवासी सुश्रावक श्री गणेशमलजी बोथरा की सुपुत्री तथा विदुषी साध्वीजी श्री नानुकु वरजी की ससार-पक्षीय भतीजी कुमारी सुशीला (सुलभा) ।

उपर्युक्त पाँचो मुमुक्षु आत्माओ को अपने संघ में जोधपुर की पुण्य धरा पर आश्रय प्रदान कर तथा जोधपुर की धर्मप्राण जनता मे अपने अगाध ज्ञान एवं चरित्र-निष्ठा की सुवास प्रवाहित कर आचार्य प्रवर ने होली चातुर्मासी हेतु बालेसर की ओर प्रस्थान कर दिया ।

स्मरणीय है कि दिव्य तपोधनी आचार्य प्रवर श्री हुकमीचन्दजी म० सा० की पाट-परम्परा के दिग्गज आचार्यों द्वारा समय-समय पर सिंचित एव संस्कारित इस क्षेत्र में लगभग ४८ वर्षो के पश्चात्—इस पाट-परम्परा के महा-मुनियो का मुख्यतया आचार्य देव का आगमन हुआ । इस लम्बे अन्तराल मे कुछ साम्प्रदायिक मनोवृत्तियो ने जन-मानस मे साम्प्रदायिकता एवं कटुता का वातावरण निर्मित कर दिया था । उन्होने सामान्य जन-चेतना को जटिल क्रिया के कर्म जाल में उलझाकर दिग्भ्रान्त कर दिया था, किन्तु आचार्य प्रवर के मगल पदार्पण के साथ ही कट्टरतापूर्ण भ्रान्तियो के समस्त महल बालू के पहाड की भाति सहज ही विलीन हो गये । परिणामत: समस्त क्षेत्र की जनता अपने आराध्य पूर्वाचार्यों द्वारा प्रदत्त थाती, आचार्य देव के स्वागत मे सम्पूर्णतया समर्पित हो गई । सम्पूर्ण क्षेत्र मे तीस-चालीस वर्षों के पश्चात् पुन. धार्मिक उत्क्रान्ति की लहर दौड गई ।

बालेसर के इस प्रवास-काल में अभूतपूर्व धर्म-जागरणा के साथ, उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, बालेसर एव ब्यावर के श्री सघों की साग्रह विनतियो के मध्य स० २०३५ के वर्षावास की स्वीकृति जोधपुर सघ को दी गई । आचार्य प्रवर इसी प्रवास काल मे बालेसर सत्ता एव बालेसर दुर्गावता के कुछ बन्धुओ मे

मूलचन्दजी कांकरियां की दीक्षा हेतु आज्ञा पत्र समर्पित कर नोखामण्डी सघ ने कुछ दिनो का समय अपने लिये और नियत कर लिया ।

आचार्य प्रवर के नोखामण्डी पदार्पण पर स्वनाम धन्य, अप्रमत्तभावी, अनेक वोल, थोकडो के ज्ञाता, विगत छः वर्षों से सपत्नीक वर्षीतप के आराधक, विरक्तात्मा श्री मूलचन्दजी काकरिया की दीक्षा अत्यन्त सादगीपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुई । दीक्षा के इसी प्रशस्त वातावरण मे सामान्य से प्रयास के फल-स्वरूप वर्षों के आपसी सघीय विवाद का भी शमन हो गया ।

दो आचार्यो का मिलन : अपूर्व संयोग

नोखामण्डी मे श्रावक रत्न को अपनी श्रमण मडली मे आश्रय प्रदान कर और इस प्रकार थली प्रान्त के लगभग पॉच वर्ष के विचरण काल मे ७१ आत्माओ को सयम-सम्बल प्रदान कर, आचार्य प्रवर का नागौर, डेह, कुचेरा आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए भोपालगढ पदार्पण हुआ, जहाँ आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० पूर्व मे ही विराज रहे थे । इस प्रकार यह पुण्य धरा दो-दो आचार्यों के चरण-स्पर्श एव मधुर-मिलन से सनाथित हुई ।

यह एक अपूर्व सयोग ही था कि भारतीय गणराज्य के गणतन्त्र दिवस एव गुरुणागुरु गणेशाचार्य के सोलहवे स्वर्गारोहण दिवस पर दो गणाधीशो का ऐतिहासिक मधुर मिलन हुआ । साथ ही यह भी अद्भुत सयोग था कि दोनो गणाधिप अपनी-अपनी पाट-परम्परा के अष्टम पट्टधर थे और मिलन की पुनीत बेला मे अष्ट-अष्ट श्रमणों-शिष्यो से परिवृत्त थे ।

यह युगान्तरकारी ऐतिहासिक स्नेह-मिलन अपने आप मे विशिष्ट उप-लब्धिपूर्ण रहा । उपलब्धि का मुख्य आयाम था— पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध की स्थापना पूर्वक निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा हेतु सुसगठन की सुदृढ भूमिका का निर्माण । दोनो सघ नायको ने ३-४ दिनो की मत्रणा के उपरान्त सुसगठन की पृष्ठभूमि के रूप मे सयुक्त उद्घोष किया, जिसका सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज के बुद्धिजीवियो ने हर्षित हो स्वागत किया ।

सयुक्त उद्घोष निम्न प्रकार है—

विचार-चर्चा का निष्कर्ष

आचार्य द्वय (श्री हस्तीमलजी म० सा० एव श्री नानालालजी म० सा०) के शब्दो मे

वहुत दिनो की प्रेरणा और प्रतीक्षा के पश्चात् हम दोनो का औपचारिक प्रेम मिलन भोपालगढ की पवित्र भूमि मे सम्पन्न हुआ । शासन-हित की दृष्टि से हमने श्रमण वर्ग की वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखकर चिन्तन किया ।

२– उदयपुर निवासी धर्मनिष्ठ, कर्मठ कार्यकर्ता, सहायक कोषाधिकारी के उच्च पद पर नियुक्त प्रामाणिकता एवं विनय की प्रतिमूर्ति श्री जीवनसिहजी कोठारी की सुपुत्री, एम० ए० पूर्वार्द्ध तथा जैन सिद्धान्त शास्त्री परीक्षोत्तीर्ण विदुषी बाला कुमारी राजश्री कोठारी।

३– बडी सादडी निवासी उदयपुर मे व्यवसायरत धर्मनिष्ठ श्रावक श्री मदनलालजी गदिया की सुपुत्री सरलचेता कुमारी शशिकान्ता।

४– रतलाम निवासी दृढ-श्रद्धा सम्पन्न सुश्रावक श्री गौतमलालजी पिरोदिया की सुपुत्री, प्रतिभावती कुमारी कमला (कनकप्रभा)।

५– देशनोक निवासी सुश्रावक श्री गणेशमलजी बोथरा की सुपुत्री तथा विदुषी साध्वीजी श्री नानुकुंवरजी की ससार-पक्षीय भतीजी कुमारी सुशीला (सुलभा)।

उपर्युक्त पाँचो मुमुक्षु आत्माओ को अपने संघ में जोधपुर की पुण्य धरा पर आश्रय प्रदान कर तथा जोधपुर की धर्मप्राण जनता मे अपने अगाध ज्ञान एव चरित्र-निष्ठा की सुवास प्रवाहित कर आचार्य प्रवर ने होली चातुर्मासी हेतु वालेसर की ओर प्रस्थान कर दिया।

स्मरणीय है कि दिव्य तपोधनी आचार्य प्रवर श्री हुकमीचन्दजी म० सा० की पाट-परम्परा के दिग्गज आचार्यों द्वारा समय-समय पर सिंचित एव संस्कारित इस क्षेत्र मे लगभग ४८ वर्षो के पश्चात्—इस पाट-परम्परा के महामुनियो का मुख्यतया आचार्य देव का आगमन हुआ। इस लम्बे अन्तराल मे कुछ साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों ने जन-मानस मे साम्प्रदायिकता एवं कटुता का वातावरण निर्मित कर दिया था। उन्होने सामान्य जन-चेतना को जटिल क्रिया के कर्म जाल मे उलझाकर दिग्भ्रान्त कर दिया था, किन्तु आचार्य प्रवर के मगल पदार्पण के साथ ही कट्टरतापूर्ण भ्रान्तियो के समस्त महल वालू के पहाड की भाति सहज ही विलीन हो गये। परिणामतः समस्त क्षेत्र की जनता अपने आराध्य पूर्वाचार्यों द्वारा प्रदत्त थाती, आचार्य देव के स्वागत मे सम्पूर्णतया समर्पित हो गई। सम्पूर्ण क्षेत्र मे तीस-चालीस वर्षो के पश्चात् पुन. धार्मिक उत्क्रान्ति की लहर दौड गई।

वालेसर के इस प्रवास-काल में अभूतपूर्व धर्म-जागरणा के साथ, उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, वालेसर एवं व्यावर के श्री सघो की साग्रह विनतियो के मध्य सं० २०३५ के वर्षावास की स्वीकृति जोधपुर सघ को दी गई। आचार्य प्रवर इसी प्रवास काल मे वालेसर सत्ता एव वालेसर दुर्गावता के कुछ वन्धुओं मे

सयोगत· आचार्य द्वय का जोधपुर में पुनः मिलन हो गया और सहप्रवचन आदि के द्वारा सद्भाव वृद्धिगत होता रहा। चूँकि आचार्य प्रवर का जोधपुर मे अत्यधिक लम्बी अवधि के पश्चात् पदार्पण हुआ था, अतः स्थानीय जनता मे अनूठे उत्साह एवं आकर्षण का होना स्वाभाविक ही था। जोधपुर की धर्म-प्राण जनता ने अपने आराध्य देव का हार्दिक भावनाओ के साथ स्वागत किया। इस प्रवासकाल मे आचार्य देव ने जन-जागृत्ति एव सामाजिक उत्क्रान्ति हेतु कुछ रचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। जोधपुर के उपनगर सरदारपुरा के सरदार छात्रावास मे हुए अपने मार्मिक प्रवचन मे आचार्य देव ने आबाल वृद्धो मे धार्मिक उत्क्रान्ति की सूचक पचसूत्रीय योजना प्रस्तुत की, जिसका साराश निम्न है—

जीवन-व्यवहार की पंचसूत्री योजना

प्रकृति और व्यक्ति का यदि गहराई से अध्ययन-चिन्तन करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि "समता" उसका मूल आधार है।

सामान्यतया सब आत्माओ का मौलिक स्वरूप एक समान है। सभी भव्य आत्माओ मे ईश्वरत्व प्राप्त करने की एक समान क्षमता है। समता का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है ?

जो पिण्ड मे है, वही ब्रह्माण्ड मे है। पिण्ड जिस प्रकार सभी अवयवो की समता से एक रूप बनकर सचालित है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी पचभूतो व जड़-चेतन पिण्डो के अपने-अपने स्वभावमय समता-युक्त नियमन से निश्चित निर्धारित क्रम मे गतिमान है।

इस प्रकार समता, व्यक्ति से ब्रह्माण्ड तक विस्तारित है परन्तु व्यक्ति बाह्य विषमताओ से घिरकर अपने जीवन मे उसका दर्शन नही कर पाता। जीवन मे समता का दर्शन कराने की दृष्टि से ही पाँच महाव्रतो व सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओ का आप्त पुरुषो ने उल्लेख एव निर्धारण किया है। प्रत्येक व्यक्ति को इन सब व्रतो-नियमो को इसी दृष्टि से देखना, समझना और जीवन मे अपनाना है।

इसके सम्यक् आचरण से व्यक्ति विषय, कषाय, राग-द्वेष और अह-मम के अधोगामी घेरे से निकलकर समतादर्शी के श्रेष्ठतम स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। परन्तु उस स्थिति तक पहुँचने के लिए उसे पहले समतावादी बनकर अपने अभ्यासक्रम को निरन्तर बढाना होगा। इस हेतु प्रारम्भिक पचसूत्री सक्षिप्त योजना प्रस्तुत की जा रही है।

जोधपुर-चातुर्मास

जोधपुर का स्वर्णिम, ऐतिहासिक वर्षावास अपने आप मे अभूतपूर्व अध्यात्म उत्क्रान्ति का वर्षावास था इस वर्षावास की एक विशेपता थी निकट अतीत मे मैत्री सम्बन्ध से अनुबन्धित आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० के सन्त श्री लक्ष्मीचन्द जी म० सा० आदि ठाणा चार का वर्षावास भी संयुक्त रूप से आचार्य देव की सन्निधि मे हुआ, जिससे प्रेम-सम्बन्ध मे प्रगाढ़ता की वृद्धि हुई।

इसके अतिरिक्त इस वर्षावास, मे जहाँ पारस्परिक दृष्टि से इस सम्प्रदाय की गृह सख्या अत्यल्प थी तथा अन्य अनेक सम्प्रदायो के साधु-साध्वियो के वर्षावास भी थे, तथापि आचार्य देव के प्रवचन मे हजारो की सख्या मे श्रोताओ की उपस्थिति होना और स्थान की अलपता के कारण पुन पुनः प्रवचन स्थलो का परिवर्तन होना आचार्य देव की ज्ञान-गरिमा, चरित्र-निष्ठा की प्रभावक लोकप्रियता का सूचक है। श्रोताओ एव ज्ञान-चर्चा के प्रति निष्ठावान जिज्ञासुओ मे बुद्धिजीवियो, विशेषकर वकीलो एवं न्यायमूर्तियो (न्यायाधीशो) की उपस्थिति अधिक होती थी। इस प्रकार बुद्धिजीवियों में आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से यह वर्षावास चिरस्मरणीय बन गया।

इस वर्षावास का दूसरा स्मरणीय प्रसंग था—चार मुमुक्षु आत्माओं द्वारा प्रव्रज्या अगीकार करना।

(१) बा० ब्र० युवाबन्धु श्री रतनलाल जी चतर—सुपुत्र श्री दाडम चन्द जी चतर, रतलाम।

(२) वैराग्यवती श्रीमती निर्मला देवी, धर्मपत्नी स्व० श्री जतनलाल जी सेठिया, गगाशहर।

(३) कुमारी चन्द्रकला बाबेल, सुपुत्री श्री मोहनसिह जी बाबेल, कानोड।

(४) कुमारी कुमुद श्री, सुपुत्री श्री धूडचन्द जी बोथरा, गगाशहर।

उपर्युक्त चारो भव्यात्माओ ने इसी वर्षावास की पवित्र बेला मे आचार्य प्रवर का चरणाम्य प्राप्त कर अपने आपको धन्य बनाया।

सयोगत: आचार्य द्वय का जोधपुर में पुन· मिलन हो गया और सहप्रवचन आदि के द्वारा सद्भाव वृद्धिगत होता रहा। चूँकि आचार्य प्रवर का जोधपुर मे अत्यधिक लम्बी अवधि के पश्चात् पदार्पण हुआ था, अत. स्थानीय जनता मे अनूठे उत्साह एवं आकर्षण का होना स्वाभाविक ही था। जोधपुर की धर्म-प्राण जनता ने अपने आराध्य देव का हार्दिक भावनाओ के साथ स्वागत किया। इस प्रवासकाल मे आचार्य देव ने जन-जागृत्ति एव सामाजिक उत्क्रान्ति हेतु कुछ रचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। जोधपुर के उपनगर सरदारपुरा के सरदार छात्रावास मे हुए अपने मार्मिक प्रवचन मे आचार्य देव ने आबाल वृद्धो मे धार्मिक उत्क्रान्ति की सूचक पचसूत्रीय योजना प्रस्तुत की, जिसका साराश निम्न है—

जीवन-व्यवहार की पंचसूत्री योजना

प्रकृति और व्यक्ति का यदि गहराई से अध्ययन-चिन्तन करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि "समता" उसका मूल आधार है।

सामान्यतया सब आत्माओ का मौलिक स्वरूप एक समान है। सभी भव्य आत्माओ मे ईश्वरत्व प्राप्त करने की एक समान क्षमता है। समता का इससे बढकर और क्या उदाहरण हो सकता है ?

जो पिण्ड मे है, वही ब्रह्माण्ड मे है। पिण्ड जिस प्रकार सभी अवयवो की समता से एक रूप बनकर सचालित है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी पचभूतो व जड़-चेतन पिण्डो के अपने-अपने स्वभावमय समता-युक्त नियमन से निश्चित निर्धारित क्रम मे गतिमान है।

इस प्रकार समता, व्यक्ति से ब्रह्माण्ड तक विस्तारित है परन्तु व्यक्ति बाह्य विषमताओ से घिरकर अपने जीवन मे उसका दर्शन नही कर पाता। जीवन मे समता का दर्शन कराने की दृष्टि से ही पाँच महाव्रतो व सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओ का आप्त पुरुषो ने उल्लेख एव निर्धारण किया है। प्रत्येक व्यक्ति को इन सब व्रतो-नियमो को इसी दृष्टि से देखना, समझना और जीवन में अपनाना है।

इसके सम्यक् आचरण से व्यक्ति विषय, कषाय, राग-द्वेष और अह-मम के अधोगामी घेरे से निकलकर समतादर्शी के श्रेष्ठतम स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। परन्तु उस स्थिति तक पहुँचने के लिए उसे पहले समतावादी बनकर अपने अभ्यासक्रम को निरन्तर बढाना होगा। इस हेतु प्रारम्भिक पचसूत्री सक्षिप्त योजना प्रस्तुत की जा रही है।

लाभान्वित नही हो सका। किन्तु थोड़े ही समय मे कुछ बुद्धिजीवियो ने आचार्य देव के असाम्प्रदायिक विचारो को समझा तो वे सहज ही श्रद्धावनत हो गये और अध्यापको एवं छात्रों ने मिलकर आचार्य देव को ३-४ दिन रोक लिया। इस अवधि मे कुछ लोगो की भ्रान्तियाँ निर्मूल हुई और सत्य-तथ्य का दर्शन हुआ। लगभग ३५० छात्रो ने एव अन्य अनेक बन्धुओ ने मद्य, माँस, धूम्रपान आदि दुर्व्यसनो से मुक्ति प्राप्त की।

खीचन मे व्याप्त साम्प्रदायिक भ्रान्तियो का उन्मूलन कर मार्गवर्ती आऊ, चाडी आदि ग्रामो मे धार्मिक उत्क्रान्ति के द्वारा अभूतपूर्व लहर उत्पन्न की तथा अधिकाश ग्रामो मे विद्यालयीय प्रवचनो के द्वारा विद्यार्थियों को उद्‌वोधन प्रदान कर दुर्व्यसनो से मुक्त करते हुए आप श्री का मेड़ता सिटी पदार्पण हुआ।

मेडता सिटी का तत्कालीन प्रवास काल अद्‌भुत ही नही, मेडता के इतिहास मे अभूतपूर्व था। होली चातुर्मासी का प्रसंग समुपस्थित होने से अपने-अपने क्षेत्रो मे साधु-साध्वियो के वर्षावास करवाने हेतु विनन्त्यर्थ आगत श्री सघो की अपार भीड के कारण धर्म स्थान छोटा-सा होता जा रहा था। इसके अतिरिक्त अनेक मुमुक्षु आत्माओ के अभिभावको द्वारा आचार्य देव के श्रीचरणो मे आज्ञा-पत्र समर्पण भी इसी पुण्य धरा पर हुआ। आचार्य देव के आगामी २०३६ के वर्षावास की स्वीकृति भी उदयपुर, ब्यावर, अजमेर, लोहावट आदि सघो की अत्यन्त आग्रहपूर्ण प्रार्थनाओ के मध्य अजमेर सघ को प्रदान की गई।

स्मरणीय है कि मीरा जन्मस्थली मेडता सिटी मे आचार्य प्रवर के सम्प्रदायगत उपासकों की सख्या नगण्य सी थी, तथापि आप श्री के अगाध चारित्रिक प्रभाव से प्रभावित हो अनेक वृद्धो के स्वर मुखरित हो रहे थे– "सही अर्थो मे मीरा नगरी इन दिनो जंगम तीर्थ भूमि वन गई है। इतना मनोमुग्धकारी दृश्य पहले कभी नही देखा।"

इस प्रकार तीर्थ नगरी मेड़ता की परमपूत धरा को कुछ दिनो के लिये जगम तीर्थ बनाकर निकट भविष्य मे होनेवाले दीक्षोत्सव हेतु आपश्री ने व्यावर की ओर प्रस्थान किया। मार्गवर्ती धर्मोत्साही क्षेत्र वावरा मे सैकड़ो राजपूत (क्षत्रिय) बन्धुओं ने आचार्य देव की पीयूष धारा से प्रभावित हो दुर्व्यसनों का त्याग कर सच्चे क्षत्रियत्व का परिचय दिया। कवर साहब रतनसिंह जी (राजकुमार) तो विदाई के क्षणो मे भाव विभोर हो अश्रु-पूरित नयनो के साथ कहने लगे, "आचार्य श्री, मैं पत्थर-सा कठोर था। मुझे कभी रोना नही आता था, किन्तु आप श्री ने न जाने क्या जादू किया, मेरी आँखो मे आज धारा वह

१५ वर्षों से चले आ रहे सामाजिक मतभेद का भी अवसान हुआ और परस्पर प्रेम का वातावरण निर्मित हो गया ।

वालेसर की धर्मप्राण जनता को श्रमण-जीवन का सम्यग्बोध देकर आचार्य प्रवर सोइतरा, बागावास आदि लघु ग्रामो मे अनेक व्यक्तियो को धार्मिक उद्बोधन के द्वारा दुर्व्यसनो से मुक्ति दिलाते हुए बालोतरा पधारे। बालोतरा मे लगभग ६३ तपस्वी आत्माओ के अक्षय तृतीया के प्रसग पर वर्षी तप के पारणे सम्पन्न हुए । बालोतरा से गढ सिवाना पदार्पण हुआ, जहाँ श्रमण सघीय सन्त श्री हीरा मुनिजी के सान्निध्य मे कुमारी सुमित्रा की दीक्षा सम्पन्न हुई, जिसमे दीक्षा-विधि एव प्रत्याख्यान आचार्य देव के द्वारा ही करवाया गया। गढ सिवाना से मोकलसर, समदडी आदि क्षेत्रो मे धार्मिक उत्क्रान्ति करते हुए आचार्य प्रवर का वर्षावास हेतु जोधपुर पदार्पण हुआ ।

उल्लेखनीय है कि समदडी मे आचार्य देव के रक्तचाप ने अत्यधिक उग्र रूप ले लिया अस्तु चिकित्सको ने पाद विहार के लिए सर्वथा निषेध कर दिया। इधर वर्षावास की अवधि भी अत्यन्त निकट थी इसलिये जोधपुर पहुँचना भी आवश्यक था। वैसे सघ के गणमान्य श्रावको एव सन्तवर्ग ने यह आग्रह भी किया कि स्वास्थ्य की दृष्टि से अब यह आवश्यक हो गया है कि चातुर्मास बदल दिया जाय ।

किन्तु सकल्प एव साहस के ज्वलन्त प्रतीक आचार्य देव यो सामान्य से निमित्त से वर्षावास परिवर्तन करने वाले कहाँ थे ? अन्ततोगत्वा सहवर्ती सेवा-निष्ठ मुनिमण्डल ने एक झूलानुमा डोली बनाली और उसमे आचार्य देव को उठाकर चलने का प्रावधान रखा ।

कुछ दूरी तक पद चरण करने पर आचार्य प्रवर ने विनीत शिष्यो के आग्रह पर डोली का आश्रय लिया, किन्तु जब आपश्री को अनुभूति होने लगी कि सन्तो को डोली उठाने मे कुछ अधिक श्रम पड रहा है, तो आपश्री ने डोली मे बैठने का परित्याग कर दिया और आत्मबल के आधार पर अशक्त शरीर से ही पाद विहार प्रारम्भ कर दिया ।

• • •

थे, इस ज्ञानामृत को पान कर बाबरा का समीपस्थ ग्रामवासी जैन समुदाय कृतकृत्य हो गया।

"रात्रि मे ८ से ९।। बजे तक जो प्रश्नोत्तरो की धारा बहती थी, वह भी अत्यन्त प्रेरणादायक थी। कोई भक्तजनो की भावमयी गुरुदेव की स्तुति के बारे मे प्रश्न कर रहा है, कोई जैनधर्म मे उपदिष्ट व्रत-उपवास, सामायिक आदि के बारे मे जानने का इच्छुक है, तो कोई सन् १९८० मे क्या होने वाला है, यह जानना चाहता है, कोई जैन धर्म के अवान्तर भेद श्वेताम्बर, दिगम्बर, मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी २२ टोला, तेरापन्थी के बारे मे जानने को इच्छुक है। भूमिका रूप मे उत्तर श्री राममुनि जी म० देते एव आवश्यकता होने पर व सामान्य रूप से प्राय: सभी प्रश्नो के उत्तर की समाप्ति पूज्य महाराज साहब फरमाते थे।

"श्री पूज्य महाराज साहब जिस सहजता, सौम्यता, आत्मीयता व प्रेम के साथ समाधान देते थे, वह बडा मोहक व शाति देनेवाला होता था। कुछ प्रश्नो मे आलोचना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होनी थी परतु जीवमात्र का कल्याण चाहने वाले, अहिसा परम महाव्रत के उपासक मे ईषत् (किचित-मात्र) आक्रोश की रेखा भी देखने को नही मिली, अपितु सहज करुणापूरित स्नेह से जो जो उत्तर मिले, वे अवर्णनीय थे।

"आचार्य श्री के व्याख्यान व प्रश्नोत्तरी सुनने से मुझे जो आनन्द व ज्ञानोन्मेप हुआ, उसी से मुझ मे जैन धर्म शास्त्र पढने की रुचि जागृत हुई।

"दिनाक २६–३–७९ से १–४–७९ के प्रात· तक पूज्य आचार्य श्री का बावरा मे ठहरना हुआ। इस अवधि मे बडी पोल व गोपालपुरा के राजपूतो ठकुरानियो ने, जो ६० के लगभग थे, माँस व मदिरा का त्याग किया।"

ब्यावर में विशाल दीक्षा महोत्सव

वावरा मे धर्म उत्क्रान्ति कर आचार्य देव का ब्यावर पदार्पण हुआ। आचार्य प्रवर का ब्यावर मे निकट भूत वर्षावास हो चुका था तथा उस वर्षावास मे दस दीक्षाएँ भी सम्पन्न हो चुकी थी, किन्तु ब्यावर का यह प्रवास-काल इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ वन गया। इस प्रवास काल की विशेप उपलब्धि थी, शताधिक साधु-साध्वियो का एकत्रित होना एव १५ बाल ब्रह्मचारी मुमुक्षु आत्माओ का एक साथ प्रव्रज्या ग्रहण करना।

ब्यावर नगर की तत्कालीन छटा अद्भुत एव रमणीय थी। दीक्षा महोत्सव की छटा तथा अपने आराध्य आचार्य देव एव उनके विशाल साधु-साध्वी संघ के दर्शनो द्वारा अपने चिरतृपित नेत्रो को सतृप्त करने हेतु सुदूर

१५ वर्षों से चले आ रहे सामाजिक मतभेद का भी अवसान हुआ और परस्पर प्रेम का वातावरण निर्मित हो गया।

वालेसर की धर्मप्राण जनता को श्रमण-जीवन का सम्यग्बोध देकर आचार्य प्रवर सोइतरा, बागावास आदि लघु ग्रामो मे अनेक व्यक्तियो को धार्मिक उद्बोधन के द्वारा दुर्व्यसनो से मुक्ति दिलाते हुए बालोतरा पधारे। बालोतरा मे लगभग ६३ तपस्वी आत्माओ के अक्षय तृतीया के प्रसग पर वर्षी तप के पारणे सम्पन्न हुए। बालोतरा से गढ सिवाना पदार्पण हुआ, जहाँ श्रमण सघीय सन्त श्री हीरा मुनिजी के सान्निध्य मे कुमारी सुमित्रा की दीक्षा सम्पन्न हुई, जिसमे दीक्षा-विधि एव प्रत्याख्यान आचार्य देव के द्वारा ही करवाया गया। गढ सिवाना से मोकलसर, समदडी आदि क्षेत्रो मे धार्मिक उत्क्रान्ति करते हुए आचार्य प्रवर का वर्षावास हेतु जोधपुर पदार्पण हुआ।

उल्लेखनीय है कि समदडी मे आचार्य देव के रक्तचाप ने अत्यधिक उग्र रूप ले लिया अस्तु चिकित्सको ने पाद विहार के लिए सर्वथा निषेध कर दिया। इधर वर्षावास की अवधि भी अत्यन्त निकट थी इसलिये जोधपुर पहुँचना भी आवश्यक था। वैसे सघ के गणमान्य श्रावको एव सन्तवर्ग ने यह आग्रह भी किया कि स्वास्थ्य की दृष्टि से अब यह आवश्यक हो गया है कि चातुर्मास बदल दिया जाय।

किन्तु सकल्प एव साहस के ज्वलन्त प्रतीक आचार्य देव यो सामान्य से निमित्त से वर्षावास परिवर्तन करने वाले कहाँ थे ? अन्ततोगत्वा सहवर्ती सेवा-निष्ठ मुनिमण्डल ने एक झूलानुमा डोली बनाली और उसमे आचार्य देव को उठाकर चलने का प्रावधान रखा।

कुछ दूरी तक पद चरण करने पर आचार्य प्रवर ने विनीत शिष्यो के आग्रह पर डोली का आश्रय लिया, किन्तु जब आपश्री को अनुभूति होने लगी कि सन्तो को डोली उठाने मे कुछ अधिक श्रम पड रहा है, तो आपश्री ने डोली में बैठने का परित्याग कर दिया और आत्मबल के आधार पर अशक्त शरीर से ही पाद विहार प्रारम्भ कर दिया।

• • •

(९) वैराग्यवती कुमारी प्रवीणा, सुपुत्री श्री सागरमल जी पोरवाल, मन्दसौर।

(१०) वैराग्यरन्जित कुमारी शकुन्तला, सुपुत्री श्री लूणकरण जी सुखानी, वीकानेर।

(११) विशिष्ट प्रतिभावती कुमारी कमला, साध्वी सुशीला कंवर जी की ससार पक्षीया भगिनी एव श्री मोतीलाल जी कोठारी उदयपुर की आत्मजा।

(१२) वैराग्यभाव वासितात्मा सुश्री कुमारी स्नेहलता, सुपुत्री श्री रामलाल जी सेठिया, गगाशहर।

(१३) वैराग्यवती कुमारी पुष्पा साध्वी श्री सुमतिकुंवर जी की ससार पक्षीया भगिनी, श्री ख्यालीलाल जी मुणोत, बडीसादड़ी की सुपुत्री।

(१४) वैराग्यवती कुमारी मीना, सुपुत्री श्री किसनलाल जी सोनावत, गगाशहर।

(१५) वैराग्यवती जतन, सुपुत्री श्री रतनलाल जी कोठारी, ब्यावर।

इस प्रकार भव्य बाल ब्रह्मचारी १५ आत्माओ ने ब्यावर की पुण्य धरा के आश्रय मे आराध्यदेव आचार्य प्रवर का परमपूत चरणाश्रय प्राप्त किया। यह कहने की आवश्यकता नही कि आचार्य प्रवर का अलौकिक व्यक्तित्व निरन्तर अभूतपूर्वता की ओर वढता हुआ नए कीर्तिमान स्थापित करता जा रहा है। स्थानकवासी समाज मे इस प्रकार भौतिकवादी युग मे रिकार्डतोड सख्या मे युवा-युवतियो का आत्मोन्नायक साधनापथ पर अग्रसर होना, आचार्य देव के महिमा मडित धवल कीर्ति पूर्ण व्यक्तित्व का चमत्कार ही है।

व्यावर के इस प्रवासकाल का दूसरा आकर्षण था नवदीक्षित आत्माओं सहित साधुमार्गी सघ के ११८ [२८ संत एव ९० साध्वियाँ] साधको का एकत्रित होना। इस एकत्रिकरण को एक लघु सम्मेलन का रूप देकर शुद्ध सैद्धान्तिक विचारणाओ के द्वारा आचार्यदेव ने साधु-साध्वी वृन्द को साधनागत जीवन मे सजगता के संकेत भी दिये।

विश्व हिन्दू परिषद के महामन्त्री एम० पी० डेग्वेकर एव केन्द्रीय सगठन मत्री श्री द्वारकाप्रसाद जी पाटोदिया तथा राजस्थान के संगठन मत्री श्री मोहन जी जोशी भी इसी प्रवासकाल मे सामाजिक उत्क्रान्ति हेतु मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये आचार्य प्रवर के श्री चरणो मे उपस्थित हुए।

उपर्युक्त १५ मुमुक्षु आत्माओ की ऐतिहासिक वडी दीक्षा का पुनीत अवसर भी इसी पुनीत धरा को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अनेक मुमुक्षु आत्माओ को जीवन-निर्माण का सम्यक्बोध प्रदान कर जोधपुर के ऐतिहासिक वर्षावास की समाप्ति पर आचार्य देव का पुन· मारवाड के विभिन्न कस्बो एव लघुग्रामो मे धर्म जागरण हेतु प्रस्थान हुआ। मथानिया, ओसरिया आदि लघु ग्रामो को पावन करते हुए आचार्य देव का लोहावट की पुण्य धरा पर पदार्पण हुआ। स्मरणीय है कि लोहावट के अधिसख्य जैन राजस्थान से बाहर मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो मे व्यवसायरत है। लोहावट मे कुल २५-३० परिवार ही स्थायी रूप से निवास करते है। किन्तु जोधपुर से लोहावट की ओर विहार के समाचार इतस्तत: प्रसृत हो चुके थे, परिणामत विभिन्न क्षेत्रो से लगभग २०० व्यक्ति अपने आराध्य आचार्य देव के दर्शन हेतु लोहावट पहुँच गए।

लोहावट के इस २०-२२ दिन के प्रवास काल की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी जैन-जैनेतर सम्पूर्ण ग्रामवासियो का अनूठा उत्साहपूर्ण धर्मभाव। राजनादगाँव के लब्धप्रतिष्ठ राजनेता एव धर्मानुरागी गुप्तदानी श्री इन्दरचन्द जी जैन की प्रेरणा से सेवक, विश्नोई, दर्जी, माली और स्वर्णकार आदि जैनेतर बन्धुओ ने बहुत बडी सख्या मे जैन साधना पद्धति के अनुसार दयाव्रत करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। अनेक जैनेतर बन्धुओ ने दुर्व्यसनो का परित्याग कर जैनत्व स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त लोहावट सघ का तत्कालीन धर्मोत्साह अद्भुत था। कुछ दिनो के लिये लोहावट एक जगम तीर्थस्थल वन गया था। सम्पूर्ण प्रवास काल मे प्रतिदिन सैकडो दर्शनार्थियो के आगमन से पर्वाधिराज पर्युषण-सी धर्म-साधना चलती रही।

लोहावट के सदृश ही फलौदी मे भी लगभग २६ दिन का प्रवास काल अभूतपूर्व धर्म जागृति का प्रवास काल रहा। रायपुर निवासी सेवाभावी श्रावक श्री ज्ञानचन्द जी गोलछा तो अपनी जन्मभूमि फलौदी मे आचार्य प्रवर के पदार्पण हेतु जोधपुर से विहार के पश्चात् प्राय प्रतिदिन आते रहे। विशेषकर मूर्तिपूजक जैन बन्धुओ एव जैनेतर श्रद्धालुओ के अत्यधिक आग्रह के कारण ही फलौदी सघ को इतना समय दिया गया। स्मरणीय है कि आचार्य प्रवर के सयम स्वीकार करने के पश्चात् प्रथम वर्षावास का गौरव फलौदी क्षेत्र को ही प्राप्त हुआ था और अब लगभग ३९ वर्ष पश्चात् पुन. आचार्य प्रवर की दीक्षा जयन्ती तथा स्व० आचार्य देव श्री गणेशीलाल जी म० सा० की स्वर्गारोहिणी तिथि मनाने का सौभाग्य भी इसी क्षेत्र को प्राप्त हुआ। लोहावट एव फलौदी सघ की आचार्य प्रवर के प्रति अनन्य निष्ठा अनुकरणीय थी

फलौदी से आचार्य प्रवर का खीचन पदार्पण हुआ। चूँकि खीचन क्षेत्र कुछ साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से ग्रस्त क्षेत्र था, अत प्रारम्भ मे बद्धमूल साम्प्रदायिक धारणाओ एव सकुचित विचारो के कारण आचार्य देव के द्वारा समुचित

उदात्त चरित्र के द्वारा अध्यात्म-साधना की परम पावनी धारा प्रवाहित कर अनेक राजपूत ठाकुर आदि जैनेतर बन्धुओ को अहिंसा के सन्देश द्वारा दुर्व्यसनो से मुक्त करते हुए तथा अनेक क्षेत्रो मे संव्याप्त वर्षों के वैमनस्य, जिसे समाप्त करने में बड़े-बड़े आचार्य एवं महामुनि भी असमर्थ रहे, को अपनी अमोघ वाग्धारा एवं अतिशय प्रतिभा के प्रभाव से समाप्त किया तथा कुछ क्षेत्रो में व्याप्त बद्धमूल साम्प्रदायिक धारणाओं एवं तद्गत भ्रान्तियों का उन्मूलन करते हुए, आचार्य प्रवर का वर्षावास हेतु अजमेर पदार्पण हुआ।

• • •

रही है।" बावरा में हुई धार्मिक उत्क्रान्ति एव जैनेतर बुद्धिजीवियों पर हुए प्रभाव को स्थानीय बुद्धिजीवी वैद्य श्री इन्द्रदेव जी ओझा के ही शब्दो में लीजिये—

"भारत भूमि की आध्यात्मिक विकास करने वाली जिन अनेक धाराओं ने मानव-जीवन को क्षुद्र से विराट् मे परिवर्तित कर, पूर्ण सत्चित एव आनन्द-मय कर, काल के अनन्त चक्र से मुक्ति दिलाकर कल्याण किया है, उनमे श्रमण-सस्कृति का अपना विशिष्ट स्थान है। उस काल मे आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा जिसका प्रवर्तन हुआ और चौबीसवे तीर्थंकर भगवान महावीर ने जिस धर्म का प्रतिपादन किया वह विश्व में समता का पाठ पढाने वाला, जीवनमात्र को कष्ट न हो, इस अहिंसा परमधर्म को अगीकार कर अपने को कर्म बन्ध से मुक्त कर पाप एव पुण्य से ऊपर उठाकर, आत्मा को परमात्मा बनाने वाला धर्म है। गीता मे कहा गया है —

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। गीता ६१५ ।।

भगवान् महावीर ने भी 'उत्तराध्ययन' सूत्र में कहा है—

अप्पा कत्ता विकता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिओ सुपट्ठिओ ।।

इसी रूप मे भगवान् महावीर द्वारा निर्देशित सच्चे अर्थो में यह वीर धर्म है। इसमे पारलौकिक कामनाओ की पूर्ति तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये देवोपासना को स्वीकार नही किया गया है, अपितु अपने कर्म एव साधना को ही मुख्य स्थान दिया है—

"मानव अपने कर्मो के कारण अनेक जन्म-जन्मान्तरो के चक्र मे घूमता है। यदि वह विशेष निर्जरा से युक्त हो, तो बिन्दु से समुद्र बनकर शाश्वत शान्ति, सुख, ज्ञान और आनन्द की स्थिति प्राप्त कर सकता है।

"पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० ने इसी श्रमण-सस्कृति की वैजयन्ती लहराते हुए श्रावक-श्राविकाओ की विनती तथा अपनी सहज करुणा-मयी कल्याण भावना से दयावान होकर बावरा (रायपुर-पाली) पदार्पण किया है।

"पूज्य आचार्य श्री के मध्याह्न प्रवचन २।। से ३।। बजे तक होते थे। इसमे पूज्य महाराज साहब धर्म के तत्त्वो का उपदेश बालक, वृद्ध, साक्षर, निरक्षर तथा माता-बहिनो को सहज ग्राह्य रूप मे देते थे। पूर्ण शाति के साथ सरल आख्यानो के द्वारा धर्म के निगूढ तत्त्वो की जो अमृतमयी ज्ञान-गगा बहाते

उदयपुर विश्वविद्यालय की विषय प्रवर्त्तनकारी वार्ताएँ आयोजित की गईं। तीनो दिन इन वार्ताओ का समापन आचार्यश्री के प्रेरक, दिशा निर्देशक एव मार्मिक उद्‌बोधन से हुआ। सभी विद्वानो ने आचार्य देव के सस्कारो के सदर्भ मे मार्मिक उद्‌बोधन श्रवण कर अत्यधिक प्रभावित होकर कहा—"हम आज प्रथम जैनाचार्य से भेंट कर रहे है, जो किसी विषय विशेष पर इतना सचोट, तर्क-पुरस्सर, धारा-प्रवाह, ओजपूर्ण प्रवचन कर सकते हो। हमे आचार्य देव के विचार श्रवण कर अपार हर्ष हुआ।"

यहाँ आचार्य देव के प्रवचन के कुछ अश उद्‌धृत किये जा रहे हैं :—

बालक के चरित्र-निर्माण की समस्या और सुज्ञजनों का दायित्व

"बालक के चरित्र-निर्माण की समस्या पर चिन्तन करना उसका सम्यक् समाधान खोजना सुज्ञजनो का ही दायित्व है।

किसी भी समस्या के समाधान मे उलझन का आभास तभी ही सकता है, जब पहले उस समस्या के विधि रूप पर विचार कर लिया गया हो तथा उसमे कतिपय कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हो। बालक के चारित्र-निर्माण की समस्या पर आचार संहिता आदि से सम्बन्धित प्रयास करने तथा उनके परिणामो पर विचारने की आवश्यकता है, किन्तु इस दिशा मे सरक्षको ने, समाज के अगुआओ ने, राष्ट्रीय नेताओ ने अथवा प्रबुद्ध वर्ग ने कोई ठोस प्रयास किये हो—ऐसा मेरे अनुभव मे नही है। आज के व्यस्त समाज मे अपने ही कोमल मति बालको के जीवन-निर्माण पर विचार करने का समय ही किसके पास है ? आप स्वयं तटस्थ भाव से सोचिये कि क्या आपने कभी दो क्षण भी गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया है कि हमारे बालको का जीवन कैसा है तथा कैसा होना चाहिये ? इस विषय पर माताएँ भी बहुत कम ही सोचती होगी।

अभी डॉ० नेमीचन्दजी जैन (सम्पादक—'तीर्थकर'), ने आपके समक्ष इस विषय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है और बताया है कि चरित्र-निर्माण की इस समस्या का समाधान किस रूप मे निकाला जाना चाहिये। प्रत्येक अभिभावक और सरक्षक को सोचना चाहिये कि उसका बच्चा कैसा बने, उसे किस रूप मे ढाले कि उसका भावी जीवन सार्थक बन सके।

सभी चाहते हैं कि बालक सुन्दर बने

आप यह तो सोच लेते है कि हमारा बालक सुन्दर बने लेकिन क्या कभी आपने सुन्दरता के तात्पर्य को भी भलीभाँति समझने की चेष्टा की है ? सुन्दरता का वास्तविक तात्पर्य बाह्य सुन्दरता की अपेक्षा आन्तरिक सुन्दरता के साथ

प्रान्त एव निकटवर्ती क्षेत्रो से हजारो दर्शनार्थियो की भीड उमड पड़ी, जिससे कुछ दिनो के लिये,ब्यावर तीर्थधाम ही बन गया था। निरन्तर बढती हुई जनराशि से स्थानीय विशालतम धर्म स्थान उतने छोटे पडते गये कि प्रवचन मध्य बाजार मे राजमार्ग पर होने लगे।

ब्यावर के इस प्रवास काल मे सबसे अद्भुत एवम् अप्रतिम छटा थी, दीक्षा महोत्सव की। स्थानीय जनता जनार्दन के अतिरिक्त बाहर से आगत लगभग २५–३० हजार की अपार जन राशि ने ब्यावर नगर के क्षेत्रफल को बहुत सीमित कर दिया और उसकी शोभा को द्विगुणित कर दिया। चारो तरफ विविध वेश-विन्यास मे लिपटे नर झुण्ड ही दृष्टिगत हो रहे थे।

यहाँ यह कहना भी अप्रासगिक नही होगा कि ब्यावर सघ के कर्मठ युवा वृद्ध सभी कार्यकर्ताओ ने इतने विराट समारोह की जो सुन्दर, समुचित एव भव्य व्यवस्था की, वह निश्चित ही बेजोड़ थी।

इस पावन प्रसग पर प्रव्रज्या अगीकार कर अपने आपको धन्य बनाने वाली मुमुक्षु महाभाग-पुण्यशालिनी बा० ब्र० १५ आत्माए निम्न थी, जिन्होने यौवन की देहली पर चरण धरकर यौवन के विस्फोट के पूर्व ही साधना के दुर्गम पथ पर पद-चरण प्रारभ कर दिया था—

(१) उदीयमान व्यक्तित्व, काति-पु ज, प्रतिभावान युवक श्री जितेश कुमार, सुपुत्र श्री नेमीचन्द जी पटवा, पूना (महाराष्ट्र)

(२) सरलचेता, सात्विक वृत्तिक तरुण तपस्वी श्री शान्तिलाल, सुपुत्र श्री नगराज जी चोरडिया, खेरी (महाराष्ट्र)

(३) विनय गुण सम्पन्न श्री विनय कुमार, सुपुत्र श्री मोहनलाल जी बाठिया ब्यावर (राजस्थान)।

(४) प्रखर प्रतिभावती एम० ए० साहित्यरत्न, विदुषी कुमारी पुखराज बुरड, सुपुत्री श्री सौभाग्यमल जी, महिदपुर।

(५) प्रतिभा पु ज कुमारी मधुबाला बी० ए० द्वितीय वर्ष, सुपुत्र श्री सोहनलाल जी सुराना, इन्दौर।

(६) वैराग्यवती कुमारी कान्ता, सुपुत्री श्री आनन्दमल जी भूरा, देशनोक।

(७) विरक्तात्मा कुमारी विजया, सुपुत्री श्री पारसमल जी छीगावत, पीपल्या मण्डी।

(८) वैराग्यवती कुमारी दर्शना, सुपुत्री श्री जयचन्दलाल जी छल्लाणी, देशनोक।

चरित्र-निर्माण की समस्या—बालक की अथवा बड़े-बूढ़ों की

मुझे बताया गया है कि यहाँ आयोजित श्री अ० भा० जैन विद्वत्-परिषद् इस समस्या पर विचार कर रही है और इसी संदर्भ मे मैं यह प्रश्न रखना चाहूँगा कि बालक के चरित्र-निर्माण की समस्या स्वय बालक की है अथवा बड-बूढो की ? कोई आचार सहिता आप विद्वान् लोग बना रहे हों तो चिन्तन करे कि वह बालको के लिये होनी चाहिये या समाज के नेताओ तथा अभिभावको के लिये ?

मेरा मानना है कि चरित्र-निर्माण की समस्या सबसे पहले बड-बूढो के लिये है और उन्ही की आचरण शुद्धि के लिये किसी सुसंगठित आचार-सहिता की आवश्यकता है। बच्चो के लिये किसी आचार-सहिता की आवश्यकता नही है। फिर भी समस्या जब सामने आई है तो सोचना होगा कि यह क्यों आई, इसकी पृष्ठ भूमि क्या है तथा इसका समाधान किस रीति से किया जा सकता है ?

बालको के शरीर, मन एवं बुद्धि के विकास में तथा समूचे रूप से उसके जीवन-निर्माण मे आप बड-बूढो को गम्भीरता से सोचना है कि आपका योग-दान कितना है और उसे आप कितने सही ढग से दे पाते है ? सचमुच मे यह वडी समस्या है और इसे मैं आपके समक्ष रखता हूँ। इससे सम्बन्धित अन्य भी कई समस्याएँ सामने आती है, किन्तु वे सब बच्चो द्वारा पैदा नही की जाती है। वे सब समस्याएँ आपकी ओर से आती है, परिवार व सरक्षकों की ओर से आती है और समाज व राष्ट्र की ओर से आती है। तो मूलतः यह समस्या आप वड़े-बूढो की है, जिसके लिये न तो बच्चे को आतकित बनावे और न ही उसकी बुद्धि को कु ठित करे।

चरित्र-निर्माण की समस्या का समाधान आपको सबसे पहिले अपने ही व्यावहारिक जीवन एव आचरण मे खोजना है तथा उसी खोज के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए उसका प्रयोग बालक के चरित्र-निर्माण मे करना है तथा वह भी इस विधि से कि वालक के मन पर दवाव महसूस न हो। आप इस समस्या का मात्र दायित्व ही ग्रहण न करे, वलिक इसे अपनी समस्या मानकर समाधान की ओर उन्मुख वने।

वाल-विकास के समुचित साधनों की क्या दशा है ?

यह वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय वाल-वर्ष के रूप मे मनाया जा रहा है तो वास्तव मे यह समस्या भी समग्र विश्व की समस्या है। इस समस्या पर सही विचारणा

अनुकरणीय दान

इस प्रकार ब्यावर नगर मे धार्मिक उत्क्राति की लहर प्रस्तुत कर आचार्य प्रवर का अक्षय तृतीया के प्रसग पर पीपलिया कला पदार्पण हुआ। पीपलिया कला यद्यपि एक लघुग्राम ही है किन्तु आचार्यदेव के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ धनीमानी बोहरा परिवार के आग्रह के कारण वहाँ पदार्पण हुआ एव उस लघु ग्राम मे भी अद्भुत धर्म साधना के कारण अनुपम छटा व्याप्त हो गई। सेठ श्री गणपतराज जी बोहरा के प्रतिष्ठान 'प्रेम केबल' के अनेक कर्मचारी मजदूरो ने मद्य, मास आदि दुर्व्यसनो का परित्याग किया। सुदूरवर्ती क्षेत्रो से लगभग ६३ तपस्वी आत्माओ ने अपने श्रद्धेय-आराध्य के चरणो मे पहुँचकर दर्शनलाभ के अनतर वर्षीतप का पारणा किया।

इसी प्रसग पर दानवीर सेठ श्री गणपतराज जी बोहरा ने आचार्य देव के प्रवचनो से प्रभावित हो तथा इस पदार्पण की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से समाज उत्थान के कार्यों हेतु १० लाख रुपये के एक मुश्त दान की घोषणा की। साथ ही यह भी घोषित किया कि सरकारी नियमो के अन्तर्गत स्वीकृति मिलने पर यह राशि बढाकर बीस लाख तथा ३५ (२) ए के अन्तर्गत स्वीकृति मिलने पर एक करोड तक कर दी जाएगी।

इस प्रकार पिपलिया कला की पावन धरा पर प्रवचन पीयूष-धारा से पुण्य कार्यो का पुनीत बीजारोपण कर आचार्य देव ने अजमेर की ओर प्रस्थान किया।

स्वर्गीय आचार्य श्री का अवतरण

मार्गवर्ती क्षेत्र कुशालपुरा मे स्व० श्री जयमल जी म० सा० के सम्प्रदाय के आचार्य श्री जीतमल जी म०, लालचन्द जी म० आदि से मिलन हुआ। मिलते ही प० रत्न श्री लालचन्द जी म० सा० ने मधुर शब्दो मे कहा—"इतने दिन तो मैं सुनता ही था, किन्तु आज तो साक्षात्-प्रत्यक्ष देख रहा हूँ आपमे स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा० ही प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। क्या आपमे स्व० आचार्य श्री का अवतरण हो गया है ?"

आचार्य देव ने मुस्कराते हुए सहज स्वर मे कहा—"भावुक लोग श्रद्धातिरेक मे ऐसे ही बोल दिया करते हैं, आप भी वैसे ही कहने लगे।"

इस प्रकार कुछ औपचारिक वार्तालाप खडे-खडे ही कुछ क्षणो तक हुई।

कुशालपुरा से निम्बाज, जयतारण, बलुन्दा, कुडकी, बीजाथल, गोविन्दगढ, पिसागन, नागेलाव, खवा, लीडी, जेठाणा आदि क्षेत्रो मे अपने उज्ज्वल

भले ही रोता रहे, लेकिन अपने बीमार बच्चे को भी कुछ-न-कुछ ठूंसते रहेगे। यह बच्चे को खिलाने का दुरुपयोग है। यह हकीकत मे बच्चे के साथ ज्यादती है।

बाल-विकास के समग्र साधनो का कैसे विधिवत् उपयोग होना चाहिये, इसका विज्ञान यदि आप सीखे और अमल मे लावे तो आपके बच्चे भी सीख सकते है, परन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ—बड़े बुजुर्ग लोगों को इसका बराबर खयाल नही है कि जिन साधनो का हम उपयोग कर रहे है, उनके उपयोग की सही विधि क्या है ? यह सारी प्रक्रिया ध्यान मे रहनी चाहिये कि शरीर के भीतर मे कौनसी ग्रन्थि क्या काम कर रही है और मन व बुद्धि के सचालन का शरीर के विभिन्न अवयवो पर क्या प्रभाव पड रहा है ? इन सब बातो का ज्ञान बच्चे की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ मे होना चाहिये।

बच्चे की स्वाभाविकता के निर्वाह मे बाह्य साधनो से भी अधिक उपयुक्त मानसिक वातावरण के निर्माण की आवश्यकता होती है। आप भरपूर बाहरी पदार्थ जुटा दे और मानसिक धरातल पर बच्चे को सर्वथा अनुचित रूप से दबाते रहे तो बच्चे का सहज विकास कभी नही हो सकेगा। बच्चा हर्ष-विभोर हो रहा हो और पति-पत्नी महाभारत छेड दे तो बच्चे के साथ यह असहयोग होगा। इसलिये बालक की स्वाभाविकता के सहज विकास मे माता-पिता व परिवार वालो के सहयोग की अपेक्षा रहती है। इस दिशा मे उनकी सतत जागरुकता आवश्यक है।

चारों ओर के वातावरण का बालक पर अमिट प्रभाव

इसे भी बालक की विशिष्ट समस्या मान कर चलना चाहिये कि उसके चारो ओर कैसा वातावरण रहे ? बालक की कुछ तो मूल प्रवृत्तियाँ होती है, किन्तु कई प्रवृत्तियों को वह अपने आस-पास के वातावरण से अर्जित करता है। जो कुछ भी वह देखता है, सुनता है और प्राप्त करता है, उसे धीरे-धीरे अपने ज्ञान केन्द्र मे सचित करता जाता है। ज्यो-ज्यो बालक की आयु बढती जाती है, वह अपने सम्पर्कगत अनुभवो को काम मे लेने लगता है।

इसलिये जैसा वातावरण होगा, वैसा ही बालक की प्रवृत्तियो का ढलान भी होगा। यदि वातावरण समतामय हो तो बालक की प्रवृत्तियाँ समता के रग मे रग जायगी, अन्यथा विषम वातावरण का प्रभाव उसकी प्रवृत्तियो को सहज स्वाभाविकता से दूर कर देगा तथा उन्हें विषमता मे ढाल देगा। प्रकारान्तर मे बचपन मे उसके मस्तिष्क मे जो यह विषमता दृढीभूत हो जाती है, वही उसके प्रौढ जीवन मे प्रकट होकर सम्पूर्ण समाज एव राष्ट्र को विषमता की

अजमेर-चातुर्मास : शैक्षणिक उत्क्रान्ति

अजमेर का ऐतिहासिक वर्षावास, अजमेर के ७० वर्ष के इतिहास में अभूतपूर्व धार्मिक उत्क्रान्ति का वर्षावास रहा। अजमेर सघ के अध्यक्षजी के शब्दो मे कहे तो अजमेर महावीर भवन का हाल इस वर्षावास मे ही अपनी उपयोगिता की दृष्टि से सार्थक हुआ। वर्षावास मे दर्शनार्थियो के रूप मे इतने जन-सागर का उमड पडना अजमेर के धार्मिक जगत् का स्वर्ण अवसर वन गया था।

सभी दैनन्दिन कार्य-विधियो के अतिरिक्त इस वर्षावास मे ज्ञान-साधना एव सस्कार निर्माण की दृष्टि से आचार्य देव के सान्निध्य मे वीर सघ, स्वाध्याय शिविर एव त्रिदिवसीय वाल सस्कार शिक्षा साहित्य सगोष्ठी का समायोजन किया गया। यह सगोष्ठी अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के उपलक्ष्य मे श्री अ० भा० जैन विद्वत् परिषद् एव श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ के सयुक्त तत्त्वावधान मे दि० १२, १३, १४ अगस्त, १९७९ को आयोजित की गई जिसमे देश के विभिन्न क्षेत्रो से लगभग ८० विद्वान् सम्मिलित हुए। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक एव विद्वत् परिषद् के महामत्री डॉ. नरेन्द्र भानावत ने सगोष्ठी का सचालन किया। सगोष्ठी मे निम्नलिखित चार विषय निर्धारित कर उनसे सम्वद्ध चार कार्यकारी दल गठित किये गये :—

(१) वच्चो के चरित्र-निर्माण की समस्या और उसके सभावित उपाय।

(२) वच्चो के लिए नैतिक शिक्षा ' स्वरूप और कार्यक्रम की रूपरेखा।

(३) वच्चो के लिये सस्कार-निर्माणकारी साहित्य : कथ्य, शिल्प और रूपरेखा।

(४) वच्चो के चरित्र-निर्माण मे समाज, शिक्षक व अभिभावक की भूमिका।

तीन दिन क्रमश डॉ० नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर, विश्वविद्यालय, डॉ० महावीरसरन जैन, जवलपुर विश्वविद्यालय एव डॉ० प्रेमसुमन जैन,

वालक का स्वस्थ विकास हो और वह एक अनुशासित नागरिक तथा आदर्श पुरुष के रूप मे ढले, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिक्षा पद्धति की सुघडता के साथ अन्य समस्त साधनो का सुप्रयोग करना भी बड़ो को अपनी जिम्मेदारी मानना चाहिये ।

बच्चे के चहुँमुखी विकास हित, बड़े लोग गम्भीर चिन्तन करें

आपकी विद्वत् परिषद् के माध्यम से जो प्रसंग चल रहा है, वह बच्चे के चहुँमुखी विकास से सम्बन्धित है, जिस पर बडे लोगो को गम्भीर चिन्तन करना चाहिये । फिर उस चिन्तन की विधिवत् परिणति आवश्यक है कि प्रस्तुत समस्याओ का किस ढग से समाधान निकालने पर बाल विकास का मार्ग निष्कटक बन जायगा ? यह भी देखना होगा कि कैसा वायुमण्डल बनाया जाय और उसमे किन-किन के सहयोग की अपेक्षा रहेगी ? यह भी सोचे कि जिस वच्चे की समस्याओ के विषय मे विचार कर रहे है और उसके समाधान के उपाय ढूँढ रहे है, उस बच्चे का चहुँमुखी विकास किस रूप मे साधा जा सकेगा ?

वालक एक सुकोमल पौधे के समान होता है । आपने देखा होगा कि किसान कितनी सावधानी से छोटे-छोटे पौधो की सार-सम्भाल करता है । अपने कष्ट की तनिक भी परवाह न करके पौधे को कही आच नही पहुँचने देता । किसानो की यह कला अपने वच्चो के प्रसंग से अभिभावको मे भी आनी चाहिये । जैसे पौधे की एक-एक जड़ और एक-एक पत्ते तथा उनके भी एक-एक रेशे के पनपने का किसान पूरा खयाल रखता है, उसी प्रकार बडो को वच्चो के शरीर, मन व बुद्धि तथा उसकी एक-एक नस, एक-एक तरग एवं एक-एक भावना के समुचित विकास के लिये सन्नद्ध व यत्नशील रहना चाहिये । वच्चो की जडो को सुसस्कारो से सीचे, उनके पत्तो को स्वस्थ वातावरण की खाद से पनपावे और उन पर सुशिक्षा के पुष्प विकसावे । तब फिर देखे कि वालको का कितना सुन्दर स्वरूप ससार के समक्ष प्रकट हो सकेगा ? वह सुन्दरता न सिर्फ वाह्य होगी, वल्कि आन्तरिक होगी । वालक की वह सर्वांग सुन्दरता एक नये और सुन्दर विश्व का निर्माण कर सकेगी ।

वड़े स्वयं सुसंस्कारो में ढलें और फिर वच्चों को ढालें

ये वच्चे वडे कोमल होते है । इनको जैसा सम्पर्क, शिक्षण तथा वायुमण्डल मिलेगा, वैसे ही ये अपने सस्कार वना लेगे । वच्चो के सस्कारो का ढालना अपने आप मे वडा विचित्र होता है । इस सम्वन्ध में वैज्ञानिको ने एक आश्चर्यजनक घटना की खोज की है । एक वच्चा कुछ ही महीनो का था कि

अधिक जुडता है। भीतरी सुन्दरता की तरफ कितने लोगो का खयाल जाता होगा—मैं नही कह सकता, क्योकि अधिकाश लोग वाहरी याने भौतिक सुन्दरता की तरफ ध्यान लगाकर ही रह जाते है।

चाहते सभी लोग यही है कि उनके वालक सुन्दर बने लेकिन कम सख्या मे ही ऐसे लोग मिलेगे जो सुन्दरता के भीतरी स्वरूप मे गम्भीरता से प्रवेश कर सकें। कई माताएँ भी बच्चे को तैयार करने का यही मतलब समझती हैं कि उसको नहला-धुला कर अच्छे वस्त्र पहिना देना तथा क्रीम पाउडर आदि सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग करके बच्चे के रूप को आकर्षक वना देना। इससे आगे बढकर वे बच्चे को अच्छा खिला-पिला देगी और उसकी तन्दुरुस्ती का खयाल रख लेगी।

अधिकाश अभिभावको का अपने बालको के लिये यही लक्ष्य रहता होगा कि वे जल्दी पढ–लिख कर ज्यादा-से-ज्यादा अर्थोपार्जन करने मे योग्य बन जावे। इसलिये पाठशाला मे प्रवेश कराते समय या किसी परीक्षा मे विठाते समय बालक की आयु के बारे मे झूठ बोलना हो तो सकोच नही किया जाता है। कारण, कैसे भी उसे पैसा कमाने की मशीन वनाना है—यह उद्देश्य सबसे ऊपर रहता है।

इसलिये जव तक उद्देश्य परिवर्तित और स्पष्ट न हो एव उसमे आन्तरिक सुन्दरता की उपलब्धि प्रमुख न वने तव तक बालक के चरित्र-निर्माण का प्रयास ठीक से नही बन सकेगा।

वालक की भीतरी सुन्दरता का उद्देश्य सर्वोच्च रहना चाहिये

जव प्रारम्भ से बालक की भीतरी सुन्दरता का उद्देश्य सर्वोच्च रहेगा, तभी आत्म-स्थित विराट् शक्तियाँ प्रस्फुटित एव विकसित हो सकेंगी। उस उद्देश्य के साथ बालक के साथ किया जाने वाला आपका व्यवहार भी तदनुकूल रूप से सशोधित एव परिमार्जित होने लगेगा। तव आप उस वालक को प्रलोभन या दण्ड से प्रभावित नही करके उसकी इच्छा शक्ति को ही सक्रिय वनाना चाहेगे। अगर वह स्कूल जाने मे आना-कानी करता है तो आप उसको चाटा लगाने की वजाय शिक्षा के प्रति उसकी रुचि को जागृत करेगे। आप सोचेंगे कि उस वालक मे अहिसक विचारणा का विकास करना है, इस कारण उसके साथ हिंसा का कोई भी प्रयोग नही किया जाना चाहिये। आप तो जैन हैं मुह पर मुख-वस्त्रिका इसीलिये वाधी जाती है कि वायुकाय के सूक्ष्म जीवाणुओ का भी हनन नही हो तो भला अपने लाडलो पर डण्डा चला कर हिंसा का प्रयोग कैसे कर लेते हैं ?

मिले तो भावी पीढ़ी के व्यवहार में जातिवादिता या वर्णवादिता को समाप्त कर सकते हैं। समता के संस्कारों मे प्रशिक्षित बच्चे जब बड़े होकर समाज एव राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं, तब वे उन क्षेत्रों के बीच समरसता बना सकते है। समरसता सम-व्यवहार का तात्पर्य है कि एक धरातल पर रहने वाले परस्पर समान व्यवहार करे। जहाँ ऐसा सम-व्यवहार होगा, वही नैतिकता का व्यवहार होगा।

इसी परिप्रेक्ष्य मे नैतिकता, मानवीय मूल्य एवं धार्मिक सिद्धान्तों की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध मे सोचना होगा कि क्या ये बदलते है ?

अधिकाश चिन्तक यही सोचते है कि नैतिकता बदलती रहती है अथवा धार्मिक सिद्धान्त भी बदलते रहते है। उनका यह भी तर्क रहता है कि बदलते हुए वायुमण्डल के अनुसार साधु जीवन की पवित्रता भी बदल जानी चाहिये। मै सोचता हूँ कि वे क्या सोच रहे है ? क्या आत्मा के मूल स्वभाव को बदला जा सकता है ? स्व-स्वरूप तो अपरिवर्तनशील होता है। जो सरल स्वाभाविकता और अन्दर की अनुभूति को महसूस करता है, वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के सद्गुणो की गम्भीरता को भी समझता है। वही समता की दिशा मे प्रगति कर सकता है।

नैतिकता, मानवीय मूल्य तथा धार्मिक सिद्धान्तों मे जो कही परिवर्तन दिखाई देता है वह धरातल की भिन्नता के कारण। इसलिये नैतिकता की स्पष्ट व्याख्या के लिये यह ध्यान मे रखिये कि वह यथास्थान सम-धरातल पर सम-व्यवहार की दृष्टि से की जाय।

साहजिक योग से आबाल वृद्ध का उन्नयन

जैन धर्म स्वाभाविक धर्म है और इसलिये साहजिक योग का प्रतीक है। चाहे बालक हो या वृद्ध—यदि वे साहजिक योग को समझ कर चले तो वे अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त बना सकते हैं। बडे अपना चरित्र-निर्माण सुन्दरता से कर लेगे तो उनका अनुसरण करते हुए बच्चो का चरित्र-निर्माण सहज रूप मे हो जायगा।"

सगोष्ठी के शुभारम्भ समारोह की अध्यक्षता राजस्व मण्डल के सदस्य व प्राथमिक-माध्यमिक शिक्षा राजस्थान के भूतपूर्व निदेशक श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता ने व समापन समारोह की अध्यक्षता माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान के अध्यक्ष श्री सत्यप्रसन्नसिंहजी भडारी ने की। श्री भंडारीजी ने सगोष्ठी के निष्कर्षो को महत्त्वपूर्ण बतलाते हुए उन्हे शिक्षा बोर्ड की विभिन्न पाठ्यक्रम समितियो को भेजने का आश्वासन दिया। विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष

और धारणा होती तो बाल-विकास के समुचित साधनो की दिशा पर सबका ध्यान जाना चाहिये था। साधन समुचित और श्रेष्ठ नही होंगे तो साध्य की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

बालक की कोमल कमनीयता को पनपाने तथा दिशा निर्देशक बनाने के लिये जिन साधनो की आवश्यकता होती है, आप देखे कि क्या वे साधन सामान्यतया सभी बच्चो को मिल पाते हैं ? यदि नही मिल पाते है तो यह भी देखे कि वे साधन कहाँ लुप्त हो गये हैं अथवा उनका कौन दुरुपयोग कर रहा है ? यह समस्या बडी जटिलता से उलझ गई है।

सबसे पहले बच्चे के शरीर निर्माण के तथ्य को ही ले ले। शुरू से बच्चो का शरीर स्वस्थ और पुष्ट बने—क्या वैसे खाद्य पदार्थ सभी बच्चो को सुलभ हैं ? आप देखेंगे तो पता चलेगा कि अधिकाश बच्चो को सुपोषण के पदार्थ तो मिलते ही नही हैं, बल्कि वे कुपोषण के शिकार बने रहते है। जब शरीर का ही समुचित विकास नही हो पाता हो तो मन का स्वस्थ विकास कैसे होगा ? शरीर का ठीक विकास हो तो उसके साथ मन और बुद्धि का भी ठीक विकास हो सकता है। एक बच्चे को दूध आदि शरीर के पोषक तत्त्व देने के बाद देखिये कि उसका शरीर कितनी शीघ्रता से पुष्ट होने लगता है, और जब वे तत्त्व ही बच्चो को नही मिल सकें तो वे मुरझा भी सकते हैं। अन्य आवश्यक पदार्थ भी यदि बच्चो को सुलभ नही हो तो उनका शारीरिक विकास भी भलीभाँति नही हो सकेगा।

आज बालको के सर्वांगीण विकास के लिये जैसे साधन चाहिये, वे उन्हे उपलब्ध नही हो रहे हैं। जिन सम्पन्न बच्चो को साधन उपलब्ध हो भी रहे हैं तो उनका उपयोग विधिपूर्वक नही होने से उनका लाभ प्राप्त नही हो रहा है। इन साधनो को सामान्य रूप से सभी बालको के लिये सुलभ करने की ओर ध्यान दिया जाना क्या आवश्यक नही है ?

बालक की स्वाभाविकता का सहज विकास अपेक्षित

यदि बालक को उसकी स्वाभाविक सद्वृत्तियो की अवस्था के अनुसार चलने दिया जाय तो उसका सर्वांगीण विकास सहज बन जायगा। जैसे बच्चे का यह स्वभाव होता है कि उसे वास्तविक क्षुधा होगी, तभी वह कोई खाद्य-पदार्थ ग्रहण करेगा, नहीं तो छोड़ देगा। उसे बुखार आयगा तो वह खाना-पीना छोड़ देगा, परन्तु आपसे रहा नही जाता है और आप उसे कुछ-न-कुछ जबरदस्ती खिला-पिला कर उसकी स्वाभाविकता को तोडते हैं। इसमें भी आप लोगो की स्वार्थ वृत्ति कभी-कभी ऐसी होती है कि पडौसी का बच्चा भूख से

राणावास-चातुर्मास

पुष्करराज से परिवृत्त अजमेर की तीर्थभूमि को अपनी अविरल ज्ञान-धारा से अभिसिचित कर उसे ज्ञानभूमि का परिवेश प्रदान कर आचार्य देव ने वर्षावास समापन पर लाखन कोटड़ी से प्रस्थान कर दिया । किन्तु वह पुण्यधरा अपने पुण्य-पुरस्कर्ता का इतना शीघ्र विछोह नही कर पा रही थी । अस्तु, आचार्य देव का अपने पॉव दर्द के उपचारार्थ लगभग एक मास, पच्चीस दिन अजमेर के उपनगर आना-सागर लिंक रोड स्थित अतुल श्रद्धानिष्ठ श्री गुमान-मलजी नाहटा के बगले पर विराजना हुआ । यहाँ श्री श्यामजी पहलवान, जो पोलियो, लकवा एव हड्डी के दर्द का उपचार करने मे दक्ष एव अनुभवी है, का नि स्वार्थ उपचार लिया गया ।

स्वास्थ्य मे यथोचित परिष्कार के उपरान्त जन-जन मे समत्व-सन्देश प्रसृत करने हेतु समता विभूति आचार्य देव ने पुन. लघु ग्रामो मे पद चरण प्रारम्भ कर दिया । नसीराबाद, मसूदा, रामगढ, रामपुरा, जालिया, विजय-नगर, गुलाबपुरा, जयनगर, शम्भूगढ, आकड सादा, आसीन्द, भीम बडाखेडा, जाम्बूड़ा, सारण, सिरियारी एव राणावास आदि ग्रामो एव कस्बो मे धर्म की परम पावनी सरस्वती की धारा प्रवाहित करते हुए धर्मामृत द्वारा अनेक शुष्क हृदयो को आप्यायित किया तथा विद्यालयो, महाविद्यालयो मे नैतिक जागरण का सन्देश प्रस्तुत करते हुए आचार्य देव का होली चातुर्मासिक हेतु सोजत रोड पदार्पण हुआ ।

स्मरणीय है कि यह भ्रमण प्राय: अरावली पर्वत श्रेणियो के पहाडी परि-क्षेत्र का भ्रमण था, जहाँ विकट जगलो के मध्य विचरण करना होता था । जाम्बडा क्षेत्र मे तो सम्पूर्ण दिवस पानी की बून्द भी प्राप्त नही हुई । एक-दो किसान परिवारो से केवल छाछ की आछ (ऊपर का पानी) ही प्राप्त हुआ । इतनी विकट यात्रा मे भी आचार्य देव एव सन्त वृन्द आत्मशोधन के पथ पर अबाध गतिशील रहे ।

सोजत रोड का तत्काली प्रवासकाल धार्मिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से सोजत रोड के इतिहास मे अभूतपूर्व था ।

सोजत रोड की धरा उस समय एक जगमतीर्थ स्थली ही बन गई थी ।

ओर आगे वढाती है। फिर समाज के नेता और अभिभावक अपने बच्चो के प्रति चिन्तित होते है कि बच्चो मे धर्म-कर्म छूट गया या विनय, भक्ति उठ गई तो उस चिन्ता मे उन्ही की नादानी और वेपरवाही प्रकट होती है। वे सोच नही पाते कि वच्चो का ऐसा विषम विकास क्यो हुआ ?

एक घटना याद आ गई है। मैं महाराष्ट्र मे विचरण कर रहा था, तब एक दिन एक गाँव मे एक भाई अपने १२ वर्षीय पुत्र को मेरे पास लाया और कहने लगा--इस लडके को आप ले जाओ और साधु बना लो। मैंने सोचा कि इस भाई ने पुत्र की ममता का त्याग कर दिया है या और कोई वात है ? मैंने पूछा—यह विचार तुमने कैसे वना लिया ? वह वोला—महाराज, मैं तो इस लडके से तग आ गया हूँ। कहना मानता नही, मनमानी करता है और ऊपर से इसकी माँ हमेशा इसका पक्ष लेती रहती है। मैंने फिर पूछा—तव तो आप दोनो पति-पत्नी भी लडते रहते होगे ? उसने स्वीकार किया, तव मैंने कहा—वालक मे फिर अच्छे सस्कार कहाँ से आयेगे ? सस्कार सही नही, वातावरण सही नही, फिर बालक का सही निर्माण कैसे होगा ?

वर्तमान शिक्षा पद्धति भी बाल-विकास की दृष्टि से दोषपूर्ण है

मैं समझता हूँ कि वाल विकास की दृष्टि से आज की शिक्षा पद्धति भी दोषपूर्ण है। इसमे भी परिवर्तन की वडी आवश्यकता है। ये परिवर्तन किस रूप मे हो—इसके वारे मे शिक्षा विशेषज्ञ सोचे। अपेक्षित यह है कि वालक के शारीरिक, मानसिक एव वौद्धिक विकास की समस्या सही तरीके से सुलझे। यह जव तक नही सुलझेगी, ये वच्चे युवावस्था को प्राप्त करके कर्मठ एव उत्साही तरुण नही वन सकेगे।

शिक्षा, सस्कार एव वातावरण—इन तीनो मोर्चों को दुरुस्त करने के लिये शिक्षा पद्धति का समुचित परिवर्तन अनिवार्य माना जाना चाहिये। यह परिवर्तन भी तभी प्रभावकारी वन सकेगा जव अभिभावकगण भी अपने सस्कारो एव पारिवारिक वातावरण मे वाछित परिवर्तन ला सकेगे। ये सव अन्योन्याश्रित वाते है। समाज के नेता यदि इन सव वातो को ठीक से वना लेते है तो फिर वालको के लिये कोई समस्या शेष नही रहेगी।

वालक की प्रवृत्ति अनुकरणशील होती है, इसलिये जव वडो की तरफ से उसके सामने अच्छी वाते ही आयेगी तो उसका अनुकरण श्रेष्ठता का ही होगा। अत वडो पर वडी जिम्मेदारी है कि वे अपने स्वय के आचरण से वालको के चरित्र निर्माण को प्रगतिशील दिशा प्रदान करे।

अन्तराल में उठे है, इन्हे अभिव्यक्त किये बिना रहा भी नही जा सकता, इसलिए हम ये श्रद्धा-सुमन आपश्री के चरणो मे अर्पित कर, अपने आप को सौभाग्यशाली अनुभव करते है।

समतादर्शन प्रणेता !

सोजत रोड एक छोटा-सा कस्बा है जिसकी जनसख्या दस हजार की है जिसमे जैनो के लगभग १२५ घर सभी सम्प्रदायों को मिलाकर है, फिर भी इस छोटे से कस्बे का सगठन एवं पारस्परिक सहयोग व सद्भाव अवर्णनीय है। जैनो के अतिरिक्त अजैन भाई-बहिन भी बिना किसी भेदभाव के साम्प्रदायिक सकुचितता से ऊपर उठकर ग्राम के प्रत्येक सामाजिक व धार्मिक सेवा कार्य मे सदैव तत्पर रहते है। यही कारण है कि आज आपका अभिनन्दन करने सम्पूर्ण ग्राम उमड़ पडा है। आज के इस पावन दिन आपका अभिनन्दन करने हेतु समाज की ही नही, पूरे ग्राम की ओर से प्राप्त आदेश को शिरोधार्य कर हम इस ग्राम के प्रतिनिधि के रूप मे आपश्री का वन्दन कर, अपने आपको कृतकृत्य अनुभव करते है।

जिन शासन प्रद्योतक !

परम पूज्य प्रात.स्मरणीय स्व० गुरुदेव श्री श्री १००८ श्री श्री गणेशीलालजी महाराज सा० ने अपनी इहलीला समाप्त करने से पूर्व उदयपुर के राजमहलो के प्रागण मे चतुर्विध सघ की उपस्थिति मे अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ की स्थापना की घोषणा के साथ आपश्री को श्रमण सस्कृति की रक्षा का जो भार सौपा था, उसका आपने अत्यन्त ही योग्यता, चातुर्य एवं कर्मठता से निर्वाह कर श्रमण सस्कृति की मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए एव साधु-मर्यादाओ का अक्षरशः पालन करते हुए, इस सस्कृति को गौरवान्वित किया है। आपने जब से आचार्य पद ग्रहण किया है इस पद की गरिमा दिनानुदिन बढती जा रही है। आपश्री ने अपने पूर्वाचार्यों के समान ही जिन-शासन की गरिमा को प्रदीप्त रखा है। आपका सत एव सतिवृन्द एक आचार्य की परम्परा मे श्रद्धावनत अनुशासनप्रिय है। आप से उन्हे सदैव गुरु तुल्य असीम वात्सल्य प्राप्त होता रहता है। आज आपश्री की आज्ञा से प्रेरित लगभग २०० सन्त मुनिराज व साध्वी समुदाय प्रभु महावीर के सदेश को प्रचारित-प्रसारित कर रहे है। आपके पदारूढ़ होने के पश्चात् लगभग १५० मुमुक्षु आत्माओ ने आपके चरणो मे दीक्षा प्राप्त कर अपना जीवन जन-कल्याण के महान् कार्य मे समर्पित किया है। आज वे ग्रामानुग्राम विहार कर भगवान महावीर के सदेश को घर-घर एव जन-जन तक पहुँचाने के कार्य मे सलग्न है। यह आपकी ओजस्वी, प्रभावशाली एव प्रेरणादायी वाणी का ही प्रभाव है।

उसे एक जगली जानवर उठाकर जगल मे ले गया। उसे उसने मारा नही। वह उन जानवरो के बच्चो के साथ वडा होने लगा। सवके साथ वह भी उस जगली जानवर का दूध पीता, उनके जैसा खाना खाता, उनके जैसी हुँकार करता और उनके जैसी ही चारो हाथ-पैरो से चाल चलता। एक दिन कुछ लोग उधर से निकले और उन्होने इन्सान के वच्चे की वैसी हरकते देखी तो उन्हे वडा ताज्जुव हुआ। किसी तरह वे उसे अपने साथ ले आये, फिर लम्वे अर्से तक मानव-परिवार के सम्पर्क मे रह लेने के वाद ही वह वच्चा अपने पशुवत् सस्कारो को वदल सका।

कहने का आशय यह है कि एक बालक का जीवन उसी रूप मे ढलता है, जिस रूप का सम्पर्क, शिक्षण और वायुमण्डल उसको अपने वडो के माध्यम से प्राप्त होता है। उसकी आदते, उसकी नैतिकता तथा उसका चरित्र भी प्राय अपने वडो के अनुसार ही वनता है।

आज का विषय है—"वच्चो के चरित्र-निर्माण की समस्या और उसके उपाय", लेकिन मेरे उपर्युक्त विश्लेषण के सन्दर्भ मे वस्तुत· तो विचारणीय विषय होना चाहिये—"वडो के चरित्र-निर्माण की समस्या और उसके उपाय।" कारण, वच्चो के चरित्र-निर्माण के लिये हकीकत मे वडो को ही अपनी नैतिकता तथा अपने सच्चरित्र का निर्माण करना होगा, जिसे देखकर वच्चे स्वय ही नैतिकता एव सच्चरित्र के सुसस्कारो को प्रारम्भ से ही ग्रहण करते रहेगे।

नैतिकता की स्पष्ट व्याख्या तथा समता की दिशा मे प्रगति

नैतिकता का प्रश्न जव सामने आता है तो उसकी स्पष्ट व्याख्या के सम्वन्ध मे चिन्तन आवश्यक है। क्या नैतिकता और अनैतिकता के मानदण्ड समय के साथ बदलते रहते है। क्या मानवता के मूल्यो के साथ उन मानदण्डो का तालमेल वैठना जरूरी होता है ? यह व्याख्या यदि स्पष्ट नही होती है तो उलझन वढ जाती है। मैं सोचता हूँ कि इसका समाधान समता के धरातल पर यथास्थान यथायोग्य सम-व्यवहार से हो सकता है कि कौन किस स्थान का है ? कोई वच्चा प्रौढ या वूढा किस स्थान पर है ? व्यवहार से, नैतिकता से, पारस्परिक सम्वन्धो से तथा अपने जीवन की उच्चता से ? सम-धरातल के ज्ञान से विकास की विभिन्न श्रेणियाँ दिखाई देगी उसी तरह जिस तरह एक कक्षा के सभी विद्यार्थियो को सम-धरताल वाले मानकर चलते हैं।

इसी प्रकार एक वय के वालको का भी मम-धरातल होता है। वालक क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण, हरिजन, धनी या निर्धन का हो—सभी वालक समान भाव से एक साथ खेलते रहेगे। उनके हृदय मे न मैल होता है, न छल। उनका स्नेह निष्पक्ष होता है। इस अवस्था मे उनकी योग्यता के अनुसार यदि शिक्षण

मरुधर केशरीजी महाराज सा० को आपश्री के इस क्षेत्र मे पधारने व होली चातुर्मास की सूचना मिली तो हम नगर निवासियो को आपश्री की सेवा-सुश्रुषा एव प्रवचनादि का पूरा-पूरा लाभ उठाने का सकेत फरमाया। यह है मरुधरा के सतो की आप व अन्य सभी सत-मुनिराजो के प्रति श्रद्धा-सद्भावना।

आचार्य भगवन् !

एक निवेदन इस क्षेत्र के निवासियो का यह भी है कि आपश्री का इस क्षेत्र मे २७ वर्ष बाद पधारना हुआ है पर चातुर्मास जैसी विशाल योजना का लाभ आज तक नही प्राप्त हुआ। अब जबकि काठा प्रान्त के प्रमुख केन्द्र शिक्षा स्थली राणावास के श्रावक समुदाय ने इस आगामी चातुर्मास हेतु विनती ही नही सारी व्यवस्था की रूपरेखा भी तैयार करली है, अतः हमारी भी सानुग्रह विनती है कि इस वर्ष का चातुर्मास काठा प्रान्त मे फरमाकर व पाली जिले को ही नही, मेवाड़ के क्षेत्रो को भी लाभ दिलावे। ऐसी हमारी ही नही जन-जन की हार्दिक अभिलाषा है।

अन्त मे हम नगर निवासी आपश्री के हृदय से आभारी हैं कि आपने कडकड़ाती धूप मे पाव की पीडा की परवाह किये बिना लगातार लम्बे विहार कर हमे जो दर्शनो व क्षेत्र स्पर्शने का लाभ प्रदान किया है, उसके लिए हम आपके कृतज्ञ है एव आपश्री के दीर्घायु की कामना करते है जिससे न केवल सघ, समाज, राष्ट्र को वरन् सम्पूर्ण मानव जाति को आपका ज्ञान और शिक्षाओ का लाभ प्राप्त होता रहे। पुन. आपका कोटि-कोटि वन्दन-अभिनन्दन।

हम है सोजत रोड़ के समस्त नागरिको की ओर से—

गणेशमल कटारिया मूथा
अध्यक्ष
वर्द्ध स्था० जैन श्रावक सघ

चम्पालाल आछा
अध्यक्ष
तेरापथी सभा

केवलचन्द माडोत
सरपच
ग्राम पचायत, सोजत रोड (राज०)

आगामी सवत् २०३७ के वर्षावास की साग्रह विनतियाँ भी यही हुई। विनती करने वाले प्रमुख सघ थे—फलौदी, लोहावट, बालेसर, उदयपुर, ब्यावर, राणावास, सोजतरोड आदि। विनतियो का आग्रह का पुट इतना अधिक था कि वह सत्याग्रह का रूप ले रहा था। उदयपुर के कुछ श्रद्धालुओ के स्वर तो यहाँ तक निकल पड़े कि यदि इस वर्ष उदयपुर को वर्षावास का अवसर नही मिला तो कुछ श्रद्धालुओ का हार्ट अटैक हो जाएगा (हृदय गति रुक जावेगी)।

श्री सौभाग्यमलजी जैन ने सगोष्ठी को महत्त्वपूर्ण बतलाते हुए आचार्यश्री के प्रेरक विचारो के प्रति निष्ठा व्यक्त की।

भ्रातृ-मिलन

वाल सस्कार-शिक्षा साहित्य सगोष्ठी के अतिरिक्त इस वर्षावास की एक उल्लेखनीय घटना है भ्रातृ-मिलन की। आचार्य देव के प्रति अनन्य निष्ठावान्, संघ के कर्मठ कार्यकर्ता श्री नेमीचन्दजी चोपडा का अपने लघुभ्राता श्री अनोपचन्दजी के साथ विगत कुछ काल से विभाजन को लेकर सघर्ष चला आ रहा था। जब आचार्य देव को इस विषय की जानकारी हुई तो श्री नेमीचन्दजी को सामान्य-सा राग-द्वेप समाप्ति का उद्वोधन प्राप्त हुआ और वे अपने आराध्य के पुनीत चरणो मे पूर्णतया समर्पित हो गये। श्री अनोपचन्दजी ने भी वही मार्ग अपनाया और सघर्ष क्षणो मे समाप्त हो गया। दो भाइयो के विछुडे हृदय विलग हुई दो धाराओ की तरह पुनः मिल गए।

इस प्रकार अध्यात्म साधना, धर्म जागरण एव सस्कार-शिक्षा सगोष्ठी आदि के माध्यम से अजमेर की भूमि को ज्ञान भूमि के रूप मे प्रतिष्ठित कर आचार्य प्रवर ने अपना गौरवशाली वर्षावास सम्पन्न किया।

• • •

समाधान के द्वारा भ्रान्त धारणाओ से मुक्त हुए । पाली के वृद्ध पुरुषों की कथनी के अनुसार पाली के धार्मिक इतिहास मे महावीर जयन्ती का इतना भव्य आयोजन अभूतपूर्व था ।

इसी प्रवास के मध्य सोजत निवासी प्रसिद्ध उद्योगपति श्री लालचन्दजी कोचर एव चुन्नीलालजी कोचर सहोदर—भ्राताओ मे आपसी विचार भेद के कारण लगभग दस-बारह वर्षो से चले आ रहे विग्रह का भी शमन हो गया ।

यद्यपि इस दुराव की समाप्ति हेतु सामाजिक स्तर पर बड़े-बड़े प्रयास हो चुके थे, किन्तु विग्रह उपशमित नही हो पाया था । जब आचार्य प्रवर का सोजत सिटी पदार्पण हुआ तब अहमदाबाद से श्री लालचन्दजी एवं बम्बई से श्री चुन्नीलालजी साहब का समता विभूति आचार्य देव के दर्शनार्थ आगमन हुआ । आचार्य देव को आप दोनो मे चल रहे विग्रह की जानकारी हुई तो मधुर शब्दो मे कुछ सकेत किया । "इगियागार सम्पन्ने" की तरह वह छोटा सा सकेत जादूवत् प्रभावशील हुआ और सामान्य विचार-मन्थन के उपरान्त दोनों बन्धु एव लालचन्दजी की धर्मपत्नी आचार्य देव के उपपात मे समुपस्थित हो गये और वही अपने आराध्य के चरणाश्रय तले लघु भ्राता श्री चुन्नीलालजी अपने अग्रज श्री लालचन्दजी तथा अपनी भाभी के चरण स्पर्शपूर्वक क्षमायाचना करते हुए निवेदन करने लगे—"आप मेरे जनक-जननी के तुल्य है । आप मेरे विगत के सभी अपराधो को क्षमा करे ।" इस पर अग्रज एव भाभी ने भी आशिर्वादात्मक वरद हस्त ऊपर उठा दिया और अनुज को सीने से लगा लिया । बिछुड़े हुए दो हृदयो के मिलन का वह दृश्य इतना स्नेहार्द्र एव भावपूर्ण था कि समीप खड़े सज्जनो के नेत्र भी सजल हो गये ।

समता की जीवन्त प्रतिभा आचार्य देव की यह समत्व प्रभा इतनी अधिक प्रभावशाली एव विस्तृत होती जा रही है कि ऐसे अनेक विग्रह-आपसी संघर्ष उस प्रभा-तले पराभूत होते रहे है ।

राणावास का दुहरा सौभाग्य

राणावास छोटा-सा ग्राम है । फिर भी निश्चित ही उसे पुण्यस्थली का गौरव प्राप्त हुआ है । व्यावहारिक शिक्षण का केन्द्र होने से वह ज्ञान-भूमि तो है ही, आचार्य देव ने अक्षय तृतीया एव वर्षावास का स्वर्णावसर प्रदान कर उसे तपोभूमि एव अध्यात्म भूमि बनने का गौरव भी प्रदान किया ।

पाली मे महावीर जयन्ती के प्रसंग पर महावीर-वाणी की ज्योति प्रज्वलित कर आचार्य प्रवर का अक्षय तृतीया के अवसर पर राणावास पदार्पण हुआ । यहा लगभग साठ तपस्वी आत्माओ ने वर्षीतप का पारणा किया । राणावास उस समय तपस्वियो की उपस्थिति से तपोभूमि की छटा लिये हुए

स्थानीय सम्पूर्ण जैन समाज तो आचार्य देव की ज्ञान गरिमा एव अगाध चरित्र निष्ठा से अत्यधिक प्रभावित हुआ। तत्कालीन, प्रभाव का शब्द चित्र स्वय जनता की भाषा मे प्रस्तुत करने का लोभ सवरण नही कर पा रहा हूँ, जिसे उन्होने आचार्य देव के अभिनन्दन के रूप मे अर्पित किया था।

मुद्रित अभिनन्दन पत्र की प्रतिलिपि

।। णमोत्थुरण समणस्स भगवओ महावीरस्स ।।

परम श्रद्धेय जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक,
समता दर्शन प्रणेता, सतशिरोमणि, चारित्र–
चूडामणि, बाल ब्रह्मचारी, प्रात. स्मरणीय
महामहिम श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री
श्री नानालालजी म० सा०
एव सन्त-सतिवृन्द के चरणारविन्द मे
कोटि कोटि वन्दन अभिनन्दन

परम श्रद्धेय !

हमारे ग्राम सोजत रोड की धरती आज आपके पदार्पण से पावन हो गई है। हम ग्रामवासियो के लिए आज का यह क्षण चिरस्मरणीय रहेगा। एक लम्बे समय से हम आप से सोजत रोड स्पर्शने की करबद्ध प्रार्थना करते आये हैं लेकिन आपके सम्मुख भी शारीरिक अस्वस्थता, पाँव की असह्य पीडा जैसी बाधाएँ थी जो हमे दर्शन लाभ से वचित रख रही थी, फिर भी आखिर आज वह क्षण आ गया है, जब हमारी इच्छा फलवती हुई है। हमारी विनती को ध्यान मे रखते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते छोटे-बडे क्षेत्रो को भगवान् श्री महावीर प्रभु की जन कल्याणकारी वाणी का रसास्वादन कराते एव पाँव की पीडा की उपेक्षा करते हुए अरावली का दुर्गम कटकाकीर्ण व दुरुह मार्ग को तय करते हुए आज आप अपने शिष्य समुदाय सहित पधारे हैं, यह हमारे लिए परम सौभाग्य का क्षण है। आपकी इस अनुकम्पा से आज इस ग्राम का ही नही, समूचे क्षेत्र का हर नर-नारी हर्षोल्लित हो आपश्री का हृदय से वन्दन-अभिनन्दन कर रहा है।

प्रातः स्मरणीय गुरुदेव !

हम आपश्री का क्या परिचय दें। सन्तो की वाणी व मर्यादित जीवन ही उनका परिचय होता है। हम अपनी तुच्छ सासारिक वाणी से आप जैसी महान् विभूति के गुणानुवाद करने मे असमर्थ हैं, फिर भी जो तुच्छ शब्द हृदय के

अनेक हृदयों को चोट पहुँचाता रहता है। क्या यह तेरे गौरव के
अनुरूप है ? नही, कदापि नही !

६— हे प्रबुद्ध चैतन्य ! यह निश्चित समझ कि मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या
ज्ञान, मिथ्या आचरण, पर पदार्थो पर ममत्व भाव एव कषाय ते
वैभाविक भाव है, स्वभाव नही। पर निन्दा करना, सक्लेश उत्प
करना एव मोह वृद्धि के कार्य तेरी एव अन्य किसी की आत्मा
लिये हितकर नही है।

७— हे विज्ञाता ! तू यह अविचल श्रद्धान् कर कि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म
अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एव स्याद्वाद आ
सिद्धान्त ही तेरी आत्मा की उन्नति करने वाले है।

८— हे सिद्ध बुद्ध-निरजन आत्मन् ! सिद्धावस्था की अपेक्षा से न
दीर्घ है न तू ह्रस्व आदि लौकिक विशेषणो से युक्त है। तेरा को
वर्ण, गध, रस, स्पर्शादि युक्त आकार भी नहीं है। न तू स्त्री है,
तू पुरुष है, न नपुसक है। तो फिर क्या है ? अरूपी है, शाश्व
है, अशरीरी है, अजर है, अमर है, अवेदी है, अखेदी है, अलेशी है
अक्षय सुख रूप है एव ज्ञाता व द्रष्टा आदि सम्परिपूर्ण गुणो
सम्पन्न है। अत: अपने इस स्वरूप को समझ।

९— हे सुज्ञानी आत्मन् ! तू ध्यान धर कि मैं विशुद्ध आत्मिक स्वरूप
आदर्श को सदा समक्ष रखता हुआ सम्यग् विधि से जीवन क
उन्नत बनाऊँ तथा अन्त मे समग्र बन्धनो से विनिर्मुक्त बनूँ। इर
अन्तरात्मा की शुद्ध श्रद्ध, प्ररूपणा एव आराधना के लिए सतत
प्रयत्नशील रहूँ।

समत्व भज भूतेषु निर्ममत्व विचिन्तय।
अपाकृत्य मन: शल्य भावशुद्धि समाश्रय ।।

महाराज ! थारा कानून करड़ा घणा

अक्षय तृतीया के पुनीत पर्व पर राणावास मे अध्यात्म की अक्षय धार
प्रवाहित कर आचार्य देव ने अरावली के अचलो मे भ्रमण हेतु प्रस्थान कर दिया

इस प्रवास काल मे एक लघुग्राम "गादाणा" मे पदार्पण हुआ जहाँ
तेरापन्थ समाज के ८ परिवार थे। अनुकरणीय श्रद्धा-भक्ति का भाव था वहाँ
के प्रबुद्ध बन्धुओ मे। मुनि मर्यादानुसार भिक्षावृत्ति के समय श्री प्रेमचन्दजी
दलालो हेतु साथ मे हो गए। मधुकरी वृत्ति के आधार पर अनेक घरो मे भ्रमण

धर्मपाल प्रतिवोधक !

मालवा (मध्य प्रदेश) के विहार के समय उस क्षेत्र मे कुव्यसनो के शिकार ग्रामीण वलाई जाति के लोगो के कष्टो, दुर्दशा एव दीन-हीन अवस्था से द्रवित हो आपश्री ने अपना कार्यक्षेत्र शहरो की अपेक्षा ग्रामो का ही वना लिया और लगातार १० वर्षो तक उन पिछड़े क्षेत्रो मे विचरण कर उन लोगो मे जागृति लाने व उन्हे कुव्यसनो व कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाकर उन्हे उनके पाँवो पर खडा करने हेतु सकल्प लिया, एव उस क्षेत्र के श्रावक समुदाय को भी इस महान् कार्य मे सलग्न कर दिया, उन अनुसूचित जाति के भाई-वहिनो के कल्याण हेतु आपने जो शखनाद किया, उसकी प्रतिध्वनि से एव भगवान् महावीर के उपदेशो तथा सदेशो से अल्प समय मे ही वहाँ चमत्कारिक परिवर्तन हुआ एव सैंकडो ग्रामो मे जैन धर्म की दुन्दुभी वजने लगी। हजारो भाई-वहिन जैन धर्म को अगीकार कर भगवान् महावीर के अनुयायी वन गये। आज उस क्षेत्र मे लगभग ८० जैन धार्मिक पाठशालाएँ चल रही है। हमारे लिए यह भी अत्यन्त गौरव की वात है कि हमारे पडौसी ग्राम पीपलिया के निवासी सेठ श्री गणपत-राजजी सा० वोहरा मालवा के उन जैन मतावलम्वी श्रद्धालु नागरिको की सेवा मे प्रतिवर्ष लाखो रुपया व्यय कर जैन धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर रहे हैं। आपको वे भाई पितामह के नाम से सम्वोधित करते है।

सन्त शिरोमणि !

सवत् २०३४ मे आपश्री से भीनासर चातुर्मास के समय हमने हमारे इस ग्राम मे चातुर्मास हेतु सत-सतिया जी की माग की, उस समय आपने तत्काल ही युवासत श्री धर्मेश मुनि श्री एव प्रशम मुनि श्री को सोजतरोड पहुँचने का आदेश फरमा दिया, जिससे इन सतो ने धर्म की जो प्रभावना व लाभ इस नगर के निवासियो को प्रदान किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। उक्त दोनो सतो ने ज्ञान, ध्यान, तप, चारित्र, एव स्नेह की प्रभा से इस क्षेत्र को प्रभावान वना दिया। आपकी इस अनुकम्पा के लिए स्थानीय सघ व ग्रामवासी आपश्री के चिर ऋणी रहेगे।

महामहिम !

जैसा कि सर्व विदित है कि हमारे इस क्षेत्र को मरुधर-केसरी, श्रमण सूर्य, प्रवर्तक, पडित रत्न मुनि श्री श्री १००८ श्री श्री मिश्रीमलजी महाराज सा० के स्नेह एव विशेष कृपापात्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। उनकी सदैव यही प्रेरणा रही है कि सोजतरोड काठा प्रान्त का प्रवेश द्वार एव मालवा-मेवाड से पधारने वाले संत-सतिवृन्द की विश्राम स्थली है, अत यहाँ पधारने वाले सत-सतिवृन्द की सेवा-सुश्रुषा का पूर्ण धर्मलाभ अर्जित किया जाना चाहिये। श्री

अचल मे विचरणरत महा तपस्वी श्री अमर मुनिजी के सान्निध्य मे जगदलपुर निवासी श्री गिरधारीलालजी जैन की भागवती दीक्षा भी सम्पन्न हुई ।

इस प्रकार से दो मुमुक्षु आत्माओं को अपने सघ मे आश्रय प्रदान करके आचार्य देव का वर्षावास हेतु विद्यानगरी राणावास पदार्पण हुआ ।

राणावास को विद्यानगरी इसलिये कहा जाता है कि कुल छः हजार की जनसख्या वाले इस लघु-ग्राम मे एक उच्च प्राथमिक विद्यालय, एक माध्यमिक विद्यालय, दो उच्च माध्यमिक विद्यालय एव एक महाविद्यालय है । इनमे लगभग दो हजार छात्र अध्ययन करते है । इसके अतिरिक्त स्थानकवासी, तेरापन्थी, चौधरी सर्वोदय एवं शान्तिनाथ इस प्रकार पाँच छात्रावास है, जिनमे विभिन्न प्रान्तो के लगभग ८०० छात्र निवास करते हैं । इसी प्रकार एक कन्या छात्रावास भी है । अस्तु, इस वर्षावास को विद्यानगरी का वर्षावास कहना असगत नही कहा जा सकता है ।

उपलब्धियाँ

आध्यात्मिक ज्ञान-प्रसार एव सस्कार निर्माण के क्षेत्र में इस वर्षावास की मौलिक उपलब्धि यह मानी जाएगी कि सैकडो की सख्या मे यहाँ के छात्र प्रतिदिन प्रवचन-पान हेतु उपस्थित होते और जीवन-निर्माण की कला का पाथेय प्राप्त करते ।

धर्म-सस्कारो के अभाव मे आज की पीढी जिस प्रकार से पथ-च्युत होती जा रही है, वह बुद्धिजीवियो एव सामान्य जनमानस के लिए भी चिन्ता का विपय बना हुआ है । इस स्थिति मे बालको के कोमल मानस मे विनय, विवेक शालीनता, सच्चरित्रता एव अध्यात्म के सस्कारो के बीजारोपण की दृष्टि से यह वर्षावास अपना अलग ही महत्त्व रखता है ।

वर्द्धमान स्थानकवासी जैन छात्रावास के छात्रो को प्रतिदिन लगभग पैतालिस मिनिट तक विद्वान् सन्त श्री प्रेम मुनिजी द्वारा तात्त्विक अध्यापन भी विशेप उल्लेखनीय है ।

विद्यार्थियो के अध्यापन के साथ ही सन्त-सती वर्ग को मध्याह्न मे आगम ग्रन्थ आचाराग सूत्र का आचार्य देव द्वारा तलस्पर्शी अध्यापन अपना अलग ही महत्त्व रखता था । आचाराग जैसे आर्ष ग्रन्थ की सूत्रस्पर्शी अतल विवेचना गूढार्थ को इस प्रकार स्पष्ट अभिव्यजित करती कि प्राचीनतम टीकाएँ भी वहाँ अपनी उपादेयता की सीमित परिधि मे सिमट जाती ।

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० डी० एस० कोठारी, जो विज्ञान के तलस्पर्शी अध्ययन के साथ अध्यात्म के प्रति भी उतनी ही अभिरुचि रखते है, रुचि ही

आचार्य प्रवर स्वय असमजस की स्थिति मे थे कि इन्हे कैसे सन्तुष्ट किया जाय । विचारोपरान्त एक मार्ग निकाला और आगत सब सघो को सूचित कर दिया गया कि जहाँ उचित होगा वहाँ की वर्षावास की घोषणा के समाचार प० श्री लालचन्दजी के माध्यम से आप लोगो को प्राप्त हो सकेंगे । आप अपने आग्रहो को कुछ ढीला करे तो उत्तम रहेगा । और फिर वन्द लिफाफे मे आगामी वर्षावास की स्वीकृति राणावास सघ को दी गई ।

इसका एक प्रमुख कारण था, राणावास का विद्यानगरी होना । छात्रावासो एव विद्यालय-महाविद्यालयो के सैकडो छात्रो का आग्रह था कि हमे भी अध्यात्म सरोवर मे कुछ डुवकियाँ लगाने का स्वर्णावसर प्राप्त हो । छात्रावास के एक छोटे से वालक जो कि जाति से ब्राह्मण था ने तो "उठ सवेरे, वैठ मु डेरे, काइजी वोल्यो कागलियो ' । सपना मे नानागुरु मिलिया, चौमासे रो हा भरियो ।" गीत की पक्तियो के द्वारा समस्त सघो को भाव-विभोर वना दिया तथा आचार्य देव को भी छात्रो की भावनाओ को प्रमुखता देनी पडी ।

भ्रातृ-मिलन का स्नेहिल दृश्य

सोजत रोड मे धर्म जागरण की दुन्दुभी वजाकर आचार्य देव का मार्ग मे रायपुर निवासी प्रसिद्ध उद्योगपति धर्मनिष्ठ श्रावक श्री केवलचन्दजी मूथा के कुए पर कुछ विश्रान्ति लेते हुए वगडी पदार्पण हुआ । वगडी की धर्म जागरणा तो अनुपम रही ही, साथ ही हेमराजजी लक्ष्मीचन्दजी भावर—दोनो सहोदर वन्धुओ मे विगत लम्बी अवधि से चले आ रहे मन-मुटाव का अन्त हो गया । दोनो वन्धुओ का एक-दूसरे से क्षमायाचना का दृश्य इतना करुणापूर्ण एव स्नेहिल था कि प्रवचन-स्थल पर समुपस्थित शतश वन्धुओ के नेत्र छलछला आए ।

हुआ यो कि आचार्य देव के प्रवचन मे सहज तौर पर भ्रातृ स्नेह का विवेचन चल पडा, जो हृदयस्पर्शी एव मार्मिक था । वह दोनो वन्धुओ के हृदय को छू गया और दोनो वन्धु प्रवचन-स्थल पर ही नेत्रो से अविरल अश्रुधार प्रवाहित करते हुए एक दूसरे से क्षमायाचना करने लगे । आँखो के खारे पानी के माध्यम से अपनी सम्पूर्ण कटुता को विगलित कर एक-दूसरे के गले मिल गये । अनन्तर सभी साधर्मिक वन्धुओ को—सामूहिक भोज देकर प्रगाढ-प्रीति अनुवद्धता को अभिव्यक्ति दी ।

वगडी मे आपसी स्नेह की धारा प्रवाहित कर सोजत सिटी, वागावास आदि क्षेत्रो को लाभान्वित करते हुए आचार्य प्रवर का पाली पदार्पण हुआ । चूँकि महावीर जयन्ती का पुनीत प्रसग पाली प्रवास काल मे रहा, अत स्वभावत ही अद्भुत धर्म-जागरण हुआ । अनेक बुद्धिजीवियो के मानस जिज्ञासा

उदयपुर-चातुर्मास

ग्रादर्श ज्ञान नगरी राणावास का अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से युक्त ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य देव का कांठा प्रान्त के ग्रामीण अचलो मे पद चरण प्रारम्भ हुग्रा। लघु-लघु ग्रामों मे धर्म की मन्दाकिनी प्रवाहित करते हुए आपश्री का देवगढ पदार्पण हुआ। समत्वदर्शी आचार्य देव के समता-पूत पद चरण जहा भी गए द्वेष, वैषम्य एव घृणा के बादल बिखरते गये एव समत्व, प्रेम एवं वात्सल्य के निर्झर फूट पड़े। इसके अनेक ज्वलन्त उदाहरण हम पूर्व पृष्ठों पर पढ चुके है। यह आचार्य प्रवर की समत्व-योग साधना का ग्रथवा समतामय व्यक्तित्व का सहज, किन्तु चमत्कृतिपूर्ण प्रभाव ही है कि उनके पदार्पण के साथ ही राग-द्वेष एवं वैषम्यपूर्ण संघर्षों की ग्राग सहजतया थमित हो जाती है। तो फिर देवगढ मे विगत कुछ वर्षों से चला आ रहा सघीय वैषम्य कैसे स्थिर रह सकता था ? ग्राचार्य देव के मगल पदार्पण एव कुछ प्रवचन श्रवण के उपरान्त ही उभयपक्ष प्रवचन-स्थल पर ही एक-दूसरे के स्नेह-पाश मे सम्बद्ध हो गए। इतना ही नही, आचार्य देव को विनम्र ग्राग्रह पूर्वक अधिक समय तक रोकने के लिए "समता प्रचार संघ" का शिविर भी वही ग्रायोजित करवाया।

देवगढ़ की धर्मप्राण जनता को धर्मामृत से ग्राप्लावित कर ग्रादर्श त्यागी, मधुर व्याख्यानी मुनि श्री धर्मेश प्रकाशजी की जन्मस्थली "गोधाजी का गाँव" होते हुए ग्राचार्य प्रवर का भीम पदार्पण हुआ। स्मरणीय है कि गोधाजी के गाँव मे लगभग तीस घण्टे तक निरन्तर धूँग्रर (कोहरा) छायी रही, परिणामतः सभी मुनियो के चौविहार उपवास हो गए। आचार्य देव ने कहा—"मैंने अपने जीवन मे धूँग्रर का इतने दीर्घकाल तक टिकना नही देखा।"

भीम में दीक्षा

"भीम" का स्मरणीय प्रसंग था—हजारो की जनमेदनी के समक्ष नोखा-मण्डी निवासी श्री वावूलालजी, सुपुत्र श्री चांदमलजी लूणिया की भागवती दीक्षा। श्री वावूलालजी ने यौवन के विस्फोट के पूर्व ही साधना-मार्ग पर पद चरण हेतु आचार्य देव का चरणाश्रय ग्रहण कर लिया ग्रौर निकल पडे सत्य की खोज मे। अव वे वावूलाल से वदलकर सन्मति के उपासक सुमति मुनि वन गए।

था। उल्लेखनीय है कि उन साठ भव्यात्माओ मे पुरुप वर्ग का नामोज्ज्वल करने वाले केवल एक ही वन्धु थे दुर्ग के सम्पन्न एव गणमान्य देशलहरा परिवार के धर्म धुरीण श्री नवरतनमलजी देशलहरा। अन्य ५९ महिलाएँ थी।

राणावास के इस अक्षय तृतीया के प्रवास-काल मे उस व्यावहारिक ज्ञान-स्थली मे अध्यात्म का वीज-वपन करते हुए, अध्यात्म-विभूति आचार्य देव ने अध्यात्म-साधना की गहराई मे पैठने हेतु साधना के अक्षय सुख सर्जक नौ सूत्रो का सन्देश भी दिया जो आज की पथ-चलित जन-चेतना के लिए पुनीत दिशा-सूचक हैं और जिनका प्रात विमर्शपूर्ण अनुचिन्तन जीवन को मगल-मुखी वना देता है।

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

अक्षय तृतीया १७ अप्रैल १९८० के पावन प्रसग पर अक्षय सुख प्राप्ति

हेतु

समता विभूति आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रदत्त चिन्तनकण

प्रारम्भिक साधना के नव सूत्र

१– हे चैतन्य ! तू चिन्तन कर कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, किसलिये आया हूँ और क्या कर रहा हूँ ?

२– हे चैतन्य देव ! तू सत्‌चित् आनन्दघन स्वरूप ज्ञाता एवं द्रष्टा है। किन्तु कर्म बन्धन के कारण अनादिकाल से चतुर्गति ससार मे भटकता आ रहा है। प्रवल पुण्योदय से तुझे यह अमूल्य मनुष्य जन्म एव आर्यकुल आदि उत्तम सयोग प्राप्त हुए है। अत सोच कि अव तुझे क्या करना चाहिये ?

३– हे ज्ञानपुञ्ज ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि आत्मगुणो के विकास एव परम शान्ति, अखण्ड आनन्द की प्राप्ति हेतु तुझे यह मानव तन प्राप्त हुआ है।

४– हे ज्योतिर्मय आत्मन् ! तू समभाव से चिन्तन कर कि मैं क्या सोच रहा हूँ, क्या वोल रहा हूँ और क्या कर रहा हूँ ? मेरा सोचना, वोलना एव चिन्तन करना तुच्छ भाव से युक्त तो नहीं है।

५– हे शुद्ध चैतन्य ! तू जिन भौतिक पदार्थो को ही सर्वोपरि मानकर उनकी प्राप्ति के लिए असत्य, प्रपच आदि दुष्प्रवृत्तियो मे उलझता हुआ अमानवीय भावो मे वहता रहता है एव कटुवचनो के द्वारा

मार्गवर्ती ग्रामो मे त्याग-प्रत्याख्यानो के द्वारा अध्यात्म लहर प्रसृत करते हुए आचार्य प्रवर का गिलुण्ड (मातृ-कुण्ड्या) पदार्पण हुआ। गिलुण्ड मे "प्रेमराज बोहरा शिविर समिति" के तत्त्वावधान मे बालकों के धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन भी अपने आप मे महत्त्वपूर्ण था। इधर आचार्य भगवन् की सन्निधि एव प्रवचन-पान का अनुपम अवसर शिविरार्थियो को उपलब्ध होता था तो उधर ज्येष्ठ माह की चिलचिलाती धूप मे शिविर स्थल पर आगत विद्वद्वर्य श्री रमेश मुनिजी, विजय मुनिजी, ज्ञान मुनिजी एव सेवाभावी विद्यार्थी श्री अजित मुनिजी, विनय मुनिजी का शैक्षणिक लाभ भी। पन्द्रह दिनो के इस शिविर काल मे बालको मे आशातीत धार्मिक ज्ञान का विकास हुआ। आचार्य देव द्वारा तीव्रतम ज्वर की अस्वस्थता के उपरान्त भी अपने अमूल्य क्षणो का योगदान सहज ही स्मरणीय है।

कपासन का तुमुल संघर्ष क्षण भर में ध्वस्त

गिलुण्ड मे तत्त्व ज्ञान की अमीय धारा की वृष्टि के उपरान्त आचार्य प्रवर का अपनी दीक्षा-स्थली कपासन मे पदार्पण हुआ। कपासन का तत्कालीन प्रवास स्थानीय जनता के लिए अलौकिक वरदान का कार्य कर गया। कपासन मे साम्प्रदायिक एव सामाजिक विद्वेष के कारण वैमनस्य की ज्वालाएँ इतनी अधिक तीव्रतर हो चुकी थी कि उसमे प्रत्येक परिवार ही नहीं, समीपवर्ती क्षेत्रो के नर-नारी भी झुलस रहे थे। कषायाग्नि के उपशमन के अनेक प्रयास निष्फल हो चुके थे। ऐसे समय मे आवश्यकता थी—ऐसे समतापूत व्यक्तित्व की जो अपनी समत्व धारा के अमीय सिचन से उस द्वेष अग्नि को सदा-सदा के लिए पूर्णतया उपशमित कर दे। और हुआ भी वही। महान् समतायोगी आचार्य प्रवर के दूसरे मंगल प्रवचन मे ही कषायाग्नि की ज्वालाएँ शान्त हो गयी। प्रथम प्रवचन मे ही आचार्यदेव ने राग-द्वेष के उपशमनपूर्वक क्षमा के अपूर्व आदर्श का जो चित्रण किया कि श्रोताओ के हृदय गद्गद् हो उठे। प्राय सभी के मन मे सकल्प उठे कि ये महापुरुष निश्चित ही हमारे वैमनस्य को धो डालेगे—वर्षो से बिछुड़े हृदय प्रेम-धाराओ मे एकाकार हो जाएँगे। इनके प्रवचन का एक-एक शब्द हृतन्त्री को झकृत करने वाला है। अब कपासन का सामाजिक वैमनस्य नही टिक सकता है। और कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता श्री नाथूलाल जी ने तो उसी समय अपने वक्तव्य मे गद्गद् स्वरो मे कालुष्यपूर्ण भावना को आचार्य देव की झोली मे डाल दिया। आचार्य प्रवर के द्वितीय प्रवचन ने तो वह जादू-सा प्रभाव किया कि सघर्ष के सूत्रधार अन्य नेताओं के दिल भी हिल उठे। प्रवचन स्थल पर ही दूसरे दिन पुन श्री नाथूलाल जी चण्डालिया ने जो एक पक्ष के प्रमुख थे, खड़े हो गए और अपने भावपूर्ण श्रद्धाविल ओजस्वी वक्तव्य मे अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपने समस्त आग्रहो को आचार्य देव के चरणो मे समर्पित कर दिया और क्षमायाचना कर ली। इधर दूसरे पक्ष की

के उपरान्त भी साध्वोचित धोवन पानी प्राप्त नही हो रहा था। सभी घरो मे राख डालकर अचित किया हुआ पानी, जिसे वे "पासु" कहते थे, उपलब्ध था। प्रेमचन्दजी साग्रह निवेदन करने लगे "हमारे यहाँ तो यही परम्परा है। सब कोई ऐसा "पासु" पानी ही वहराते है।"

मुनियो ने उन्हे आगमिक मर्यादा का स्मरण कराते हुए कहा--"यह पानी हमारे लिए अकल्पनीय-अग्राह्य है।" अन्त मे आचार्य देव के चरणो मे पहुँचकर विनम्र जिज्ञासा प्रस्तुत की "महाराजश्री, आप को अचित पानी लेना कल्पता है। हमारे यहाँ राख-चूना डाला हुआ अचित पानी है। उसे आपके सन्त क्यो नही लेते है ?"

आचार्य देव ने मधुर शब्दो मे समाधान की भाषा मे कहा—"आपकी भावना श्रेष्ठ है। आचारांग सूत्र मे भगवान ने शुद्ध सयम की आराधना हेतु अचित जल का विधान किया है। किन्तु इस प्रकार राख, आदि डालकर कृत्रिम रूप से अचित किये हुए पानी का नही। वहाँ धोवन (वर्तन आदि के धोने से बनने वाले) पानी का विधान है, न कि घोलन का। शास्त्र मे बीस प्रकार के धोवन एव इक्कीसवे गर्म जल का वर्णन भी मिलता है। हमे आगमानुसार साधु-मर्यादा का पालन करना है, तो आगमिक विधान का ही अनुसरण करना चाहिये। अस्तु, मुनियो को धोवन पानी ही लेना चाहिए घोलन नही।"

समुचित समाधान से प्रीत हुए श्री प्रेमचन्दजी के मुँह से शब्द निकल पडे—"महाराज! थारा कानून करडा घणा।"

बूसी मे दीक्षोत्सव

अरावली अचल-काठा प्रान्त के इस प्रवास-काल के अवसर पर लघु ग्रामो मे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना से अभिव्यजित धवल कीर्तिका विस्तार करते हुए आचार्य देव का बूसी ग्राम मे पदार्पण हुआ। अरावली की पर्वत-श्रेणियो से परिवृत्त-प्राकृतिक सुषमा लिये हुए लघु ग्राम बूसी उस समय एक तीर्थधाम बन गया, जबकि वहाँ रायपुर निवासी प्रसिद्ध उद्योगपति रायपुर सघ के अध्यक्ष धर्मप्राण श्री केवलचन्दजी मूथा की असीम प्रेरणा एव सहयोजन से उन्ही के लघु भ्राता श्री मगलचन्दजी के सालाजी श्री नथमलजी श्रावक की सुपुत्री कुमारी नीता, जो कि मगलचन्दजी के अभिभावकत्व मे पली-पुसी है, की मगल-दीक्षा का प्रसग बना। दीक्षोत्सव पर बिना किसी पत्रिका-प्रेषण के लगभग दस हजार की जनमेदनी का उपस्थित हो जाना, आचार्य देव के दिव्य तपोतेज का ही प्रभाव माना जाएगा।

लगभग इसी कालावधि मे आचार्य देव की विशेष अनुज्ञा से छत्तीसगढ

दी, विघ्न बाधाओं से डटकर मुकाबला करने का जो साहस बँधाया तथा दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से बुजुर्गों का इन युवको पर अपना वरदहस्त बनाये रखने का आह्वान किया, उससे हम विशेष आश्वस्त हुए है। आप श्री का सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने की ओर कितना ध्यान है, यह हमारे लिए अत्यन्त गौरव का विषय है।

"हम कपासन क्षेत्रवासी इसलिए भी अधिक गौरवान्वित हैं कि पूज्य आचार्य श्री ने हमारे दाता ग्राम मे जन्म धारण कर तथा हमारे कपासन मे ही दीक्षा ग्रहण कर एक प्रकार से इन्हे तीर्थ-स्थलियाँ बनाने का सौभाग्य प्रदान किया है।

"इन्ही शब्दो के साथ मे सम्पूर्ण कपासनवासियो एवं माहेश्वरी समाज की ओर से आचार्य श्री के आज इस माहेश्वरी पचायती नोहरे मे पदार्पण के उपलक्ष्य मे आभार प्रकट करते हुए आपश्री को कोटिशः प्रणाम करता हूँ।"

इस प्रकार समता की सरस फुहारो के छिड़काव से सामाजिक विषमता की धधकती ज्वालाओ के उपशमित होने के साथ ही कुछ व्यक्तिशः चले आ रहे सघर्षों का भी शमन हो गया।

अपनी दीक्षा-जन्म-स्थली कपासन की परम पावनी धरा पर समता रस का अभिसिचन कर आचार्य प्रवर का भोपालसागर बबराणा होते हुए दाता पदार्पण हुआ। स्मरणीय है कि बबराणा गाव मे एक भी जैन परिवार नही रहता है, किन्तु २५ परिवार माहेश्वरी समाज के है, जिनकी श्रद्धा-भक्ति अनुकरणीय थी। आग्रहपूर्वक रात्रि विश्राम तक रोकते हुए आगत दर्शनार्थियो के आतिथ्य सत्कार का दायित्व भी स्वयं माहेश्वरी बन्धुओ ने ही निभाया।

यहाँ भी विजयवर्गीय बन्धुओ मे विगत कुछ वर्षों से पारिवारिक मनोभेद चला आ रहा था, वह भी इतना गहरा था कि बहू-बेटियो के परिवारो मे आपस मे आना-जाना, भोजन-व्यवहार तक बन्द था, किन्तु समतासृष्टा आचार्य देव के चरण-स्पर्श पर वह भी कैसे टिक सकता था ? एक ही मर्मस्पर्शी ओजस्वी प्रवचन का जादू-सा प्रभाव पडा कि सभी के हृदय द्रवित हो उठे। दोनो पक्षो ने आचार्य देव के समक्ष ही समस्त विवादों को श्री चरणों मे समर्पित करते हुए संघर्ष को शमित कर दिया। उन्ही के शब्दो मे "रामा-सामी" करते हुए परस्पर क्षमायाचना करली।

जन्म-भूमि दांता

जन्मस्थली दांता का प्रवास तो निसर्गतः ही अनूठा रहना था। चूँकि लगभग ग्यारह वर्षों के उपरान्त आचार्य देव का अपनी जन्म-स्थली मे पदार्पण

नही, धर्म एव दर्शन का गम्भीर अध्ययन भी रखते है, आचार्य प्रवर के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उस समय "इहमेगसि नो णाय भवई" इस सूत्र का विवेचन चल रहा था। आचार्य देव के श्रीमुख से "एगेसि का लाक्षणिक अर्थ श्रवण कर डॉक्टर साहब के स्वर फूट पडे—"इतनी गम्भीर विवेचना इस सूत्र की आज पहली बार सुन रहा हूँ। आचाराग सूत्र के अध्ययन के समय मे स्वय इस विषय मे सन्देहशील था, किन्तु आज मेरा सन्देह समाप्त हो गया।"

ध्यान-साधना

इस वर्षावास की सर्वतो महत् उपलब्धि थी, स्वाध्याय-शिविरो के माध्यम से मुमुक्षु बन्धुओ का ध्यान-साधना मे प्रवेश। सामान्यतया दैनिक सयमोचित क्रियाओ एव जन-सम्पर्क मे सलग्न साधु-साध्वियो मे भी इस वर्षावास मे ध्यान-साधना के प्रति उत्साह वृद्धिगत हुआ।

महान् ध्यागयोगी आचार्य देव की सन्निधि एवं सघ प्रधान-ध्यानोपासक श्री भवरलालजी कोठारी, बीकानेर के सयोजकत्व मे सैद्धान्तिक रूप से "बन्धन-मुक्ति का आरोहण क्रम"—चतुर्दश गुणस्थानो पर ध्यान-प्रक्रिया अनूठा प्रभाव लिए हुए शिविर काल मे अबाधगति से चलती रही।

इस ध्यान-साधना का महत्त्व उस समय अधिक बढ जाता, जब महामहिम आचार्य देव निमिलित-नेत्र ध्यान मुद्रा मे साधना के सूक्ष्म तत्त्वो को सन्त सती वर्ग के समक्ष सारगर्भित शब्दावली मे अभिव्यक्ति देते, जो कि अनुभूति का प्रत्यक्ष सप्रेषण रूप लिए हुए होता था। तत्रस्थ साधक वर्ग निश्चित ही परम पुनीत सौभाग्यशाली थे, जिन्हे आचार्य देव की अनुभूति के सम्प्रेषण को ग्रहण करके आत्म-तृप्ति का अमाप आनन्द उपलब्ध हुआ।

इसी प्रकार इस वर्षावास मे महान्तपोनिष्ठ मुनि प्रवर श्री पुष्प मुनिजी द्वारा अट्ठावन एव महातपोमूर्ति श्री बलभद्र मुनिजी द्वारा बयालीस एव अठारह का क्रमश. केवल गर्म जल के आधार पर किया गया तपश्चरण भी एक कीर्तिमान था।

इस वर्षावास की तीसरी उपलब्धि थी, बीकानेर निवासी श्री चिमनलाल जी पुगलिया की सुपुत्री वैराग्यवती कुमारी शान्ता एवं केनीगा निवासी धर्मप्राण बन्धु श्री हुकमचन्दजी बरडिया की सुपुत्री वैराग्यवती कुमारी हेमलता की भिन्न-भिन्न रूप से दीक्षाओ का सम्पन्न होना। दीक्षा के समय एव दीक्षा के पूर्व दो बार केशर की वृष्टि आचार्य देव के अलौकिक दैविक चमत्कार का द्योतन करती है। अदृश्य शक्ति द्वारा वृष्ट केशर की सुवास की तरह ही आचार्य देव के व्यक्तित्व की महक भूलोक को सुवासित करती रहती है।

• • •

तपस्वी आदर्श त्यागी श्री अमरचन्द जी म० सा० ५७ दिन का तथा महान् तपस्विनी विदुषी महासती जी श्री शकुन्तला कुवर जी का ३७ दिन का केवल गर्म जल के आधार पर किया गया तपश्चरण उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त श्रावक-श्राविकाओ मे भी प्रतिस्पर्द्धात्मक तपस्याए हुई। अनेक युवा युवतियो ने अष्ट दिवसीय (अठाई) तप किया।

तप साधना के साथ ज्ञानाराधना एव ध्यान-साधना का क्रम भी सयुक्त था। साधक चित्त श्री भँवरलाल जी कोठारी के कुशल नेतृत्व मे चलने वाला सप्त दिवसीय स्वाध्याय एव साधना शिविर तथा सरलमना श्री गणेशलाल जी वया के सयोजकत्व मे समता-प्रचार सघ का त्रिदिवसीय शिविर इसी की कड़ी थे।

इसके अतिरिक्त इस वर्षावास की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी बुद्धिजीवी वर्ग का अध्यात्म के प्रति समर्पित होना। अनेक वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर्स, अन्यान्य कर्मचारी वर्ग, आदि बद्धिजीवियो के जीवन मे आचार्य देव के सान्निध्य से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। अध्यात्म शून्य जीवन-भूमि मे अध्यात्म के बीज अकुरित हो उठे और चन्द महीनो मे पुष्प खिलने लगे। जीवन अथ से इति रूपान्तरित हो गए।

प्रवुद्ध विचारक महावीर-सेवा-सस्थान के अध्यक्ष युवाबन्धु डॉ० आर० सी० जैन (आम्नाय से मूर्तिपूजक होते हुए भी) तो आचार्य देव के व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुए कि एक दिन प्रवचन स्थल पर अपने हार्दिक उद्गार रखने से अपने आपको नही रोक सके। श्रद्धा-समर्पणा मे अभिव्यक्त उनके विचार शब्दश· यहाँ प्रस्तुत है—

"परम पूज्य आचार्य—गुरु महाराज साहब के पावन-चरणो मे सादर वन्दन-नमन करते हुए—मेरे आत्मन् बन्धुओ-माताओ और बहिनो से कुछ निवेदन के रूप मे दो शब्द कहने के लिए गुरु-महाराज-साहब से आज्ञा की अभ्यर्थना है—

"... .. विगत कुछ दिनो मे जो मेरी आँखो ने देखा—दो कानो ने सुना और मन के चिंतन मे जो उथल-पुथल मची, जो मन ने पाया।

'गुरु महाराज साहव के सद्वचन—"श्रमणोपासक" में कई अर्से मे पढता आया हूँ, किन्तु आज जो साक्षात्-देखा-सुना और पाया, वह केवल अनुभूति मात्र ही नही वरन् परम-आनन्द-उल्लास और परमहर्ष मे परिणत हो गया। मुझे विदेश मे जाने का मौका मिला—अफ्रीका मे लिविया रहा, मिस्र मे काहिरा यूनान मे एथेन्स, इटली मे रोम, फ्रांस मे पेरिस और ब्रिटेन मे लन्दन देखा,

भीम की पुण्य धरा पर एक और मुमुक्षु आत्मा को चरणाश्रय प्रदान कर आचार्य देव का वडी दीक्षा हेतु पुन. देवगढ पदार्पण हुआ। क्योकि अत्यधिक आग्रह के कारण देवगढ सघ को वडी दीक्षा की अनुमति पूर्व मे ही दी जा चुकी थी। देवगढ से मार्गवर्ती लघु ग्रामो मे धर्म की भागीरथी प्रवाहित कर अनेक ग्रामो के वैमनस्य जनित कूडे-कचरे का प्रक्षालन करते हुए आपश्री भीटा पधारे। भीटा मे अनेक जैन वन्धुओ ने आचार्य प्रवर की अमृत धारा से प्रभावित होकर दहेज नही मागने की प्रतिज्ञाएँ ली तो अनेक राजपूत, वलाई आदि जैनेतर वन्धुओ ने शराव, मास आदि दुर्व्यसनो से मुक्ति प्राप्त की।

इसी प्रकार गगापुर पदार्पण पर वहाँ के सामाजिक सघर्ष की उपशान्ति भी कम महत्त्वपूर्ण नही थी। वर्षो से चला आ रहा छोटे साजन और वडे साजन का आपसी सघर्ष अपनी चरम सीमा पर था, किन्तु आचार्य देव जैसी समत्व-विभूति के समक्ष वह कहाँ टिकने वाला था। एक दो प्रवचन-पीयूष के उपरान्त ही स्नेह-सद्भाव की धारा फूट पडी और एक-दूसरे के विरोधी आत्मीय प्रेम के धागे मे वन्ध गये।

गगापुर के पश्चात् आचार्य देव के पदो ने भीलवाडा की धरा को पावन किया। चूँकि यही होली चातुर्मासी का प्रसग आ गया था, अत आगामी वर्षावास की विनती हेतु आगत सदस्यो की वहुलता के कारण भीलवाडा उस समय एक जगम तीर्थ ही वन गया था। इसी अवसर पर आगामी वर्षावास की स्वीकृति उदयपुर सघ को प्राप्त हुई।

भीलवाडा प्रवास के अनन्तर महावीर जयन्ती एव अक्षय तृतीया हेतु क्रमश चित्तौडगढ एव गगापुर के प्रवास भी स्मरणीय हैं। आचार्य प्रवर का पदार्पण तो स्थानीय सघ के लिए वरदान सिद्ध हुआ। चित्तौड सघीय एवं चित्तौडगढ (किले) का मनोमालिन्य प्रवचन धारा ने सहज ही प्रक्षालित हो गया। वर्षो का विद्वेष प्रगाढ स्नेह मे रूपान्तरित हो गया।

गंगापुर–दीक्षोत्सव

इसी प्रकार गगापुर मे अक्षय तृतीया के पावन प्रसग पर सत्तर तपस्वी आत्माओ के सामूहिक वर्षीतप के पारणे उल्लेखनीय हैं तो दूसरी ओर फलौदी निवासी सरलचेता श्री भीकमचन्दजी चोरडिया के सुपुत्र युवावन्धु श्री गजेन्द्र कुमार (चन्द्रेश मुनिजी) एव विनोता निवासी श्री भवरलालजी डोसी की सुपुत्री कुमारी ललितप्रभा का दीक्षा महोत्सव भी अविस्मरणीय है। दोनो मुमुक्षु आत्माओ ने वाल ब्रह्मचारी पद से सुशोभित होते हुए लगभग वारह हजार के जन-समूह के समक्ष आचार्य देव का पदाश्रय ग्रहण किया।

गगापुर की पुण्य धरा दो मुमुक्षु आत्माओ को सघ मे आश्रय प्रदान कर,

इस असिधारा पथ पर विरले जीवटधारी व्यक्ति ही गति कर सकते है। उदयपुर के इस वर्षावास मे यह भी एक अभियान चला कि अधिकतम व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण व्रत को जीवन के यथार्थ मे आत्मसात् करे। अभियान ने गति पकडी और शताधिक व्यक्तियो ने आजीवन सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर कठोर साधना पथ पर कदम बढाए।

२—दहेज-उन्मूलन अभियान :

यह सर्व विदित है कि आचार्य देव के प्रवचन अध्यात्म प्रवाही होते हुए भी सामाजिक बुराइयो-रूढियो पर भी सशक्त प्रहार करते है। वर्तमान समाज की सबसे वडी बुराई जिसे समाज का कोढ कहा जाता है, वह है दहेज प्रथा। आचार्य प्रवर के मार्मिक प्रवचन हृदय को छू देने वाली भाषा मे होते है जिनमे दहेज जैसे सामाजिक अभिशाप को दूर करने के लिए गहरी उत्प्रेरणाएँ रहती है। इस वर्षावास मे भी आचार्य देव ने इस अभिशाप की जड को हिला देने वाला उत्प्रेरक उद्बोधन प्रदान किया। परिणामत. सैकडो व्यक्तियो ने दहेज की माग एव प्रदर्शन आदि नही करने के सकल्प ग्रहण किये। यही नही, समता युवा-सघ के सक्रिय सदस्यो ने इसे एक वैधानिक रूप प्रदान करते हुए लिखित शपथ-पत्र लेने प्रारम्भ कर सैकडो व्यक्तियो से शपथ-पत्रो पर हस्ताक्षर लिये। आवश्यकता है इस अभियान को गति प्रदान करने की। यदि अध्यात्म के धरातल से सामाजिक उत्क्रान्ति प्रारम्भ होती है, तो उसकी सफलता ही अनिवार्य नही है, अपितु वह अपने लक्ष्य बिन्दु तक भी पहुँचती है।

३—दुर्व्यसन मुक्ति, आदिवासी जागरण :

वर्तमान सन्दर्भो मे आधुनीकीकरण का एक नया मानदण्ड बन गया है—"ईट, ड्रिक एण्ड वी मैरी" "खाओ-पीओ और मौज उडाओ।" इसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव ही कहे कि आज उच्च वर्ग जो मद्य मास के नाम मात्र से घृणा करता था, वहाव मे वहता जा रहा है। कुलीन कहलाने वाले कुल-हीन-सी प्रवृत्तियो मे उलझते जा रहे है। यही नही, शराव-मास का भक्षण आज उच्च माना जाने लगा है।

ऐसी स्थिति मे निश्चित ही हमारी सास्कृतिकता एव आध्यात्मिकता को एक गहरा खतरा हो गया है। पश्चिमी सभ्यता का यह अन्धानुकरण भारतीय सस्कृति, अध्यात्म, स्वास्थ्य एवं अर्थ-व्यवस्था सभी को असन्तुलित वना रहा है। आश्चर्य तो यह है कि तथाकथित राजनेता भी इस प्रतिस्पर्धा मे पीछे नही है, अपितु वे अग्रिम पक्ति मे खड़े दृष्टिगत होते हैं। स्थिति कितनी भयावह है, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

ओर से कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता वकील श्री घीसूलाल जी ने भी श्रद्धा समर्पण के साथ अपने तर्क पुरस्सर वक्तव्य मे समस्त वैमनस्य के मुद्दो को आचार्य देव के चरणो मे समर्पित कर दिया। परिणाम स्पष्ट था, राम-भरत मिलन-सा दृश्य उपस्थित हो गया। वर्षों से टूटे दिल मिल गए। सभी एक-दूसरे के गले मिलने लगे। वातावरण इतना स्नेहार्द्र बन गया कि उपस्थित हजारो श्रोताओ के हृदय भी स्नेह से गद्गद् हो गए। वर्षों का कालुष्य क्षण भर मे धुल गया।

इस स्नेह-मिलन का स्थानीय जैनेतर, विशेषकर माहेश्वरी समाज पर भी इतना गहरा प्रभाव पडा कि वे भी आचार्य देव को महान् विभूति के रूप मे अनन्य श्रद्धा के साथ स्वीकार करने लगे। यही नही, उन्होने अगले दिन का प्रवचन भी आग्रहपूर्वक अपने माहेश्वरी पचायती नोहरे मे रखवाया।

आचार्य देव के व्यक्तित्व का स्थानीय माहेश्वरी समाज पर अकित प्रभाव का चित्रण तो समाज प्रमुख, बुद्धिजीवी माहेश्वरी नवयुवक मण्डल के सरक्षक, निम्बार्क बी० एड० कालेज के वाइस प्रिन्सिपल श्री गोवर्धनलाल जी लड्ढा के ही शब्दो मे अधिक उचित रहेगा। जो कि माहेश्वरी भवन के प्रवचनोपरान्त उन्होने अपने वक्तव्य मे कहे थे—

"आज हम सभी कपासनवासी अत्यन्त सौभाग्यशाली है, जो आचार्य श्री का हमारे यहाँ पदार्पण हुआ। आध्यात्मिक ज्ञान के सदुपदेशो के साथ-साथ हमारे सामाजिक जीवन को समुन्नत एव सुव्यवस्थित बनाने मे आपका योगदान सदा से मिलता आ रहा है।

"मुझे याद है, जब आज से ४६ वर्ष पूर्व वि० स० १९९२ मे पूज्य आचार्य श्री जवाहर लाल जी म० सा० का चातुर्मास इसी कपासन नगर मे हुआ था, उस समय भी कपासन का माहेश्वरी समाज ६ धडो मे विभाजित होकर फूट के दलदल मे फँसा था, तब भी उन पूज्य म० सा० के पुण्य प्रताप एव आशीर्वाद से ही वह सारा समाज एकता के सूत्र मे बँध गया और आज भी जब हमारे कपासन के ओसवाल समाज पर फूट का भारी प्रकोप हो रहा था—भ्रान्तियो एव अहवश वह कई धडो मे विभाजित था, ऐसे समय मे पूज्य आचार्य श्री का पदार्पण विशेष महत्त्वपूर्ण बन गया है, और यह कहते हुए हमारा हृदय गद्गद् हो रहा है कि पूज्य श्री के चरणो के प्रताप एव तेज से आज वह विशृङ्खलित समाज पुन एकता के प्रेम-सूत्र मे बँध गया है। इस प्रकार आचार्य श्री ने हमारे सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने हेतु हमारी फूट का मूलोच्छेदन तो किया ही परन्तु आज अपने प्रवचन मे हमारे सम्पूर्ण समाज क्या माहेश्वरी, क्या ओसवाल, क्या अग्रवाल, क्या ब्राह्मणो मे व्याप्त सामाजिक कुरीतियाँ दहेज, दिखावा आदि पर आपने अपने जो विचार प्रकट कर उनसे पार पाने के लिए पटेल की कहानी के माध्यम से नवयुवको को आगे आने के लिए जो प्रेरणा

(६) सुश्री कुमारी लब्धिश्री (लीला), सुपुत्री श्री धूडचन्दजी बोथरा, गगाशहर।

उपर्युक्त छहो मुमुक्षु आत्माओ ने भरे यौवन मे अपने-अपने सम्पन्न परिवारो के समस्त भौतिक ऐश्वर्य का परित्याग कर आत्म-साधना के पुनीत लक्ष्य हेतु आचार्य देव का चरणाश्रय प्राप्त किया।

समीक्षरण ध्यान एवं प्राकृत सस्थान

इस वर्षावास की ज्ञान एव ध्यान साधना के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एव उल्लेखनीय उपलब्धि थी—ध्यान की नूतन विधा 'समीक्षण ध्यान' का आचार्य देव द्वारा आविष्करण एव प्रायोगिक प्रशिक्षणपूर्ण उद्‌बोधन तथा अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के सहयोग द्वारा इस वर्षावास की पुनीत स्मृति मे **'आगम, अहिसा, समता एवं प्राकृत संस्थान'** की स्थापना।

आचार्य देव के ध्यानयोगी मानस से आविष्कृत 'समीक्षण ध्यान' कितना उपयोगी है और उसका विधि-क्रम क्या है, इसे स्वतन्त्र आलेख के द्वारा प्रस्तुत करना ही अधिक उपयुक्त समझ रहा हूँ, अस्तु पाठक 'विचार-दर्शन' खण्ड मे समीक्षरण ध्यान की सर्वागीरण व्याख्या देख पायेगे।

ज्ञान-साधना के क्षेत्र मे 'आगम, अहिसा, समता एव प्राकृत सस्थान' की स्थापना अपना अलग ही महत्त्व रखती है। आज समाज मे जैन विद्वानो की अत्यन्त अल्पता है। जो इने-गिने जैन विद्वान् है वे भी वृद्ध प्राय है। मुख्यतया साधुमार्गी (स्थानकवासी) जैन सघ मे तो नाम मात्र को ही विद्वान् बचे है। ऐसी स्थिति मे यह सस्थान सहज ही अतीव उपयोगी सिद्ध हो जाता है। प्रति-वर्ष दो स्नातकोत्तर विद्यार्थियो को प्राकृत भाषा एव जैन आगमो पर पी० एच० डी० के लिये सहयोग प्रदान कर, उन्हे किसी आगम विशेष मे निष्णात बनाना, इस सस्थान का कार्य है। इसके अतिरिक्त भी ज्ञान-साधना के विशेष आयाम उद्‌घाटित करने का दायित्व यह सस्थान अपने कन्धो पर उठाने को सकल्पित है।

इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियो के द्वार उद्‌घाटित करते हुए, उदयपुर वर्षावास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर ने उदयपुर के उपनगरो मे पदार्पण किया। उदयपुर की पुण्य-धरा अपने आराध्य को बहुत शीघ्र ही अपने से अलग नही करना चाहती थी, अस्तु भोपालपुरा, शिवाजी नगर, अशोकनगर, महावीर कॉलोनी, हिरणमगरी सेक्टर-४, सेक्टर-३, सेक्टर-११, अम्बामाता

हुआ, अत स्थानीय जैन-जैनेतर आवाल वृद्ध अपनी ही माटी मे खेले-कूदे अपने आराध्य का स्वागत करने पलक पाँवडे बिछाए आतुर थे। १७५ घरो की छोटी सी वस्ती जिसमे जैन परिवार तो केवल आठ ही है (जो आचार्य श्री के जन्म के समय केवल दो थे) लगभग चार सौ नर-नारियो का समूह आचार्य देव के स्वागत को उपस्थित हो गया। लगता था जातीयता की क्षुद्र परिधि यहाँ टूट चुकी है। ऊँच-नीच के भेद तिरोहित हो चुके है। वच्चे-वच्चे मे पर्वोत्सव के समान उल्लास-उमग की तरगे सव्याप्त थी। अनेक जैनेतर वन्धुओ ने अपने आराध्य देव के चरणो मे अपने जीवन की दुर्व्यसनात्मक वुराइयो की भेट चढा दी एव अनेक व्यक्तियो ने साधनात्मक सकल्प ग्रहण किये।

तीर्थ धाम दाता से उमड, करू कडा होते हुए आचार्य देव के पवित्र चरणो ने आकोला की धरती को सनाथित किया। उल्लेखनीय है—यहाँ भी हिंगड परिवार के पाँच भ्राताओ के परिवार मे कुछ वर्षो से आपसी मनोभेद चला आ रहा था, परिणामत श्री मूलचन्द जी हिंगड का अपने ही अग्रजो के यहाँ आना-जाना वन्द था। अनेक प्रयासो के उपरान्त भी विग्रह शान्त नही हो पा रहा था, किन्तु समताशील व्यक्तित्व के आगमन के साथ ही विपमता की कालिख धुल गई—स्नेह की उज्ज्वल धारा वह चली। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि समतामूर्ति आचार्य-देव के चरण स्पर्श के साथ यह नियति ही वन गई है कि विपमता वहाँ से अपना आसन छोड देती है।

आकोला के विग्रह-शमन के अनन्तर फतेहनगर मे प० श्री समर्थमल जी म० सा० की सम्प्रदाय के प० श्री लालचन्द जी म० सा० से साम्प्रदायिक सम्वन्धो के सन्दर्भ मे औपचारिक वार्ता के साथ साधनागत कुछ परामर्श देते हुए तथा गुडली के सामाजिक सघर्ष को परिसमाप्त करते हुए आचार्य देव का वर्षावास हेतु ऐतिहासिक नगर उदयपुर मे पदार्पण हुआ।

श्रद्धेय आचार्य देव के उदयपुर नगर प्रवेश की इस अवधि के कुछ पूर्व अर्थात् आपाढ शुक्ला अष्टमी को आचार्य देव की विशेष अनुमति से अलाय निवासी सुश्रावक श्रीमान् पूनमचन्द जी सुकलेचा की सुपुत्री कुमारी वसुमति की भागवती दीक्षा अपनी जन्म-भूमि अलाय मे ही महान् तपोधनी श्री ईश्वर मुनि जी म० सा० के पवित्र श्री मुख से एव महास्थविरा साध्वी श्री सरदारकँवर जी, प्यारकँवर जी व भमकूकँवर जी म० सा० की सन्निधि मे सम्पन्न हुई।

उपलब्धियो के प्रकाश मे

अन्य वर्षावासो के समान यह वर्षावास भी सम्पन्न दैनन्दिन क्रियाविधियो के परिप्रेक्ष्य मे सानन्द ही रहा। त्याग, प्रत्याख्यान एव तप साधना के क्षेत्र मे इस वर्षावास मे कुछ कीर्तिमान स्थापित हुए जिनमे महान् तपोधनी स्थविर

मोटा, सुशीलाबाई आदि अनेक महासतियाँजी तो एक प्रकार से हम पर व्यग्य सा करती रही है कि आप केवल बाते करते है, आचार्यश्री को लाते तो नही है। हम वर्षो से सुनती आ रही हैं कि प्रकाण्ड विद्वान् स्व० आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० के सम्प्रदाय मे अभी महान् चारित्रनिष्ठ एव प्रतिभा सम्पन्न धुरन्धर विद्वान् आचार्य हैं, किन्तु हम केवल सुन ही रही है अभी तक, आप लोग आचार्य श्री नानालालजी म० सा० को गुजरात की भूमि पर लाइये, हम उनके दर्शनो को उत्कण्ठित है आदि। इन सभी परिस्थितियो के अतिरिक्त अभी आचार्य भगवन् अहमदाबाद से बहुत नजदीक है और स्वास्थ्य भी कुछ अनुकूल है, अतः यह स्वर्णिम अवसर है कि गुजरात की धरती को पावन किया जाय।

श्री पारखजी के साथ गुजरात राज्य काग्रेस (इ) के महामंत्री एव विधायक तथा एस्टीमेट कमेटी के चैयरमेन श्री वाडीभाई कामदार ने गुजरात प्रात के प्रतिनिधि के रूप मे अपनी विनती प्रस्तुत करते हुए कहा—"मैं जैन धर्म से वहुत अधिक प्रभावित हूँ। जैन धर्म के पॉच महाव्रत एव नेहरूजी के पचशील मे मै बहुत कुछ साम्य पाता हूॅ। मैं वर्ष मे एक बार स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० का साहित्य पढ ही लेता हूँ, उससे मुझे शान्ति एव प्रेरणा मिलती है। मै आचार्य श्री जवाहरलालजी से बहुत प्रभावित हूँ। हे आचार्यश्री! अब आप गुजरात प्रात मे पधार कर वहाँ की जनता को, जो आपके दर्शनो को लालायित एवं उत्सुक है, सदुपदेश प्रदान करे। मैं प्रान्त-प्रतिनिधि की दृष्टि से आपसे निवेदन कर रहा हूँ।" इस विनती के उपरान्त प्रवचन समाप्ति पर श्री कामदार ने आचार्य प्रवर से व्यक्तिगत सम्पर्क भी किया और निवेदन किया कि—आपश्री ने जिस समता सिद्धान्त की अभी प्रवचन में चर्चा की, वह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और आज उसकी हमारे क्षेत्र मे ही नही, विश्व मे अत्यधिक आवश्यकता है।

अहमदावाद नवावाडज सघ के अध्यक्ष श्री धीरुभाई ने भी आचार्यश्री के चरणो मे विनती पत्र प्रस्तुत किया।

इस प्रकार विनतियो का क्रम चलता रहा और अन्त मे प्रवल भाग्यशाली क्षेत्र गजरात की धर्म-धरा ने इस विभूति को अपनी ओर खीच लिया।

उदयपुर विश्वविद्यालय में

डॉ० श्री कमल मोगानी, दर्शन विभागाध्यक्ष उदयपुर विश्वविद्यालय एत्र डॉ० प्रेम सुमन जैन, अध्यक्ष प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग आदि का दीर्घा-

मस्जिद और गिरजाघर मे गया, धर्म गुरुओ के प्रवचन सुने—सत्सग किया, मौका देखकर उपदेश भी दिया—भारत मे भी ऐसे अवसर कई बार आए—किन्तु इस बार इन एक गुरु से जो पाया, वह असाधारण है—ऐसा व्यक्तित्व—अद्भुत-अलौकिक, विलक्षण और विचक्षण है। जिनकी विचार धारा–चिंतन मनन सारा मानवता से ओतप्रोत, ऐसा भान होता है, जैसे गुरु महाराज का जीवन ही करुणा-दया और ज्ञान का जीवन है। महाराज साहब के उपदेश सहज-सरल भाषा मे देश-भाव और काल-परिस्थिति को देखते हुए मानव जीवन को अज्ञान से ज्ञान की ओर, अधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर ले जाने के लिए हृदय को स्पर्श करने वाले है। आत्मा और शरीर के विषय मे स्वय अपनी आत्मा का दूसरी आत्मा से इतना तादात्म्य कर लेना कि दोनो एक हो जाय, सबकी आत्मा को एक मे समा ले और एक मे सबको समझे—ऐसे महावीर के वचनो का अपने जीवन मे प्रेक्टिकल रूप कर लेना—गुरु महाराज साहब की ही उपलब्धि है। महाराज सा० अमृत के सागर है—जितना चाहे ले सकें—केवल जागने की–पाने की–देखने की–ग्रहण करने की पात्रता मात्र चाहिये।

"महाराज सा० शरीर पिण्ड के तारो को झकृत करने मे सिद्धहस्त योगी हैं—गुरु परम्परा मे "चमकते हुए भानु समाना है" हु से नाना तक आठ अक्षर है, ये सरगम के सा रे ग म प ध नि सा है—शरीर पिण्ड मे इन तारो को मधुर सगीत की आनन्दमयी मन लुभावनी–सगीत लहरी पैदा करने वाले सबको मन्त्र-मुग्ध कर लेते है–आनन्द की पावन सरिता बहा लेते है।

"अन्त मे मैं आपसे निवेदन करूँगा कि जयपुर मे बाढ से पीडित भाई-बहिन जो भूखे-प्यासे है–उन्हे अपना समझकर जैसा गुरु महाराज सा० फरमाते है—"पहले सबसे पूछकर फिर तू खाया कर" अत अपना कर्तव्य एव समय का औचित्य समझकर श्रद्धानुसार कपडे और दवाइयाँ बाढ पीडित भाइयो को "महावीर सेवा सस्थान" के माध्यम से अर्पित करे।

"समता-साधक गुरु के चरणो मे वन्दन! वन्दन! वन्दन! आप सभी ने जो मुझे शाति से सुना और श्री हिगड सा० ने जो बोलने के लिये समय दिया, उसके लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।"

तीन अभियान

इस सामान्य क्रम के अतिरिक्त इस वर्षावास की तीन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थी—

१—ब्रह्मचर्य-व्रत अभियान :

आगम सूक्त है—"तवेसु वा उत्तम बह्मचेर" अर्थात् सब तपो मे श्रेष्ठ तप है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य की साधना जीवन की सर्वतो महत्त्वपूर्ण साधना है।

दी। सघ सदस्य प्रसन्न हो लौट गये और आचार्य प्रवर ने अपनी शिष्य मण्डली के साथ बम्बोरा होते हुए गुजरात की धरा की ओर चरण बढाए।

बम्बोरा का विकट सामाजिक संघर्ष समाप्त

विगत कुछ वर्षों से बम्बोरा में अत्यन्त गहरा सामाजिक सघर्ष बना हुआ था। प्रारम्भ मे दो परिवारो के मध्य हुए इस सघर्ष ने शनै शनै सामाजिक एव साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लिया था। आचार्य प्रवर के बम्बोरा पदार्पण के पूर्व इस सघर्ष की परिसमाप्ति हेतु, अनेक महारथियो ने रात-रात जागरण किया, विविध प्रयास किये, किन्तु सफलता का श्रेय प्राप्त नही कर सके, अपितु उनकी तो यह धारणा ही बन गई कि इस सघर्ष का अवसान असम्भव है, किन्तु समता की साकार विभूति आत्मोपम्य दृष्टि के सधायक आचार्य प्रवर के पदार्पण के पश्चात् सघर्ष नामक तत्त्व कैसे स्थिर रह सकता है ?

आचार्य प्रवर के कुछ ही प्रवचनो के हृदयस्पर्शी प्रभाव ने दोनो पक्षो को चिन्तन के लिये बाध्य कर दिया। प्रवचनोपरान्त प्रवचन-स्थल पर ही दोनो पक्षो के वरिष्ठ सदस्यो ने खडे होकर समस्त सघर्ष को आचार्य प्रवर की झोली में बहरा (डाल) दिया। आचार्य प्रवर ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा—"यह प्रसन्नता का विषय है कि आप लोगो ने राग-द्वेष की परिणति को समाप्त कर समत्व भाव की ओर कदम बढाए है। सघर्ष मे आर्त्त-रौद्र ध्यान के परिणाम चलते है, जो चिकने कर्मबन्ध के प्रति निमित्त बनते है। आज आपने आज दिन पूर्व के समस्त मतभेदो को, चाहे लिखित हो या मौखिक, मेरी झोली मे डाल दिये है। यह स्मरण रहे कि मुनियो की झोली मे बहराई हुई वस्तु वापस नही ली जाती है, इस बात के प्रति सभी सजग रहे।"

परिणामत· उपस्थित सभी लोगो ने यह प्रत्याख्यान (सकल्प) लिया कि किसी भी पुरानी वार्ता को नही छेडेगे और भविष्य मे प्रेम बनाए रक्खेगे।

आचार्य प्रवर के समत्व योग के अचूक एवं अमिट प्रभाव की अनेक घटनाएँ हम पूर्व के पृष्ठो मे पढ चुके है। यह इस महामहिम व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि असम्भव माने जाने वाले कार्य भी चन्द क्षणो मे सम्भव हो जाते है और उनका साक्ष्य प्रकृति स्वय प्रस्तुत कर देती है। बम्बोरा के बिछुडे सार्धमियो के मिलन एव दीक्षा के प्रसग पर तीन-तीन बार होने वाली केशर वृष्टि की सघटना ने हजारो व्यक्तियो को यह मानने को बाध्य कर दिया कि महान् अध्यात्मयोगियो की सन्निधि में देवगण भी अवनत होते है। आने वाले प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति बम्बोरा की धरती के पत्थर उठा-उठा कर ले गये, जिन पर केशर के छींटे अंकित थे।

श्रद्धेय आचार्य देव इस सन्दर्भ मे अपना अत्यधिक सुस्पष्ट एव मौलिक चिन्तन रखते है और अपने प्रवचनो मे इसका यौक्तिक समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। उदयपुर वर्षावास मे भी आचार्य प्रवर मद्यपान से होने वाली मानसिक विकृतियो एव अन्यान्य हानियो का तर्क पुरस्सर मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करते रहे। मासाहार की अवैज्ञानिकता एव क्रूरता का विवेचन भी वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे होता रहा। परिणामत एक ओर कुलीन परिवारो के युवा-वर्ग मे बढती इस प्रवृत्ति पर रोक लगी तो दूसरी ओर अनेक आदिवासी वन्धुओ ने जन्मना सस्कारो के रूप मे अनुपालित दुर्व्यसनो से मुक्ति प्राप्त की।

इस दुर्व्यसन-मुक्ति के कार्यक्रम ने भी एक व्यवस्थित अभियान का रूप लिया और उदयपुर के सैकडो व्यक्तियो ने दुर्व्यसन मुक्ति के सकल्प ग्रहण किये तथा निकटवर्ती आदिवासी क्षेत्रो के शतश नर-नारियो ने भी सभी दुर्व्यसनो का सदा के लिए परित्याग कर दिया।

अत सामाजिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से उदयपुर का यह वर्षावास अपना अलग ही महत्त्व रखता है।

उदयपुर-दीक्षोत्सव

इस सबके अतिरिक्त इस वर्षावास की ऐतिहासिकता की श्रीवृद्धि का कार्य किया छ मुमुक्षु आत्माओ ने, जिन्होने यौवन के विस्फोट के साथ ही अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्व दिशा देते हुए साधना का असि-पथ स्वीकार कर लिया और चल पडी आत्म-शोधन के मार्ग पर। वे मुमुक्षु आत्माएँ थी—

(१) सुश्री कुमारी इन्द्र प्रभा (इन्दु), सुपुत्री श्री केसरीचन्दजी बोथरा, बीकानेर।

(२) सुश्री कुमारी ज्योति प्रभा, सुपुत्री श्री सूरजमलजी छाजेड, गगाशहर।

(३) सुश्री कुमारी रचना श्री (राजकुमारी), सुपुत्री श्री मदनलालजी गदिया, उदयपुर।

(४) सुश्री कुमारी सुरेखा श्री, सुपुत्री श्री पारसराजजी मेहता (सुखलेचा), जोधपुर।

(५) सुश्री कुमारी चित्राश्री (चन्द्रकला), सुपुत्री श्री सम्पतलालजी कोटडिया, लोहावट (नीलगिरि)।

अहमदाबाद-प्रवास

सहवर्ती सन्तों का अदम्य साहस

मार्गवर्ती लघु ग्रामो एव कस्बो मे पतित पावनी वाग्धारा प्रवाहित करते हुए तथा अनेक विद्यालयो मे उद्‌बोधन प्रदान करते हुए आचार्य प्रवर का गुजरात की राजधानी अहमदाबाद मे पदार्पण हुआ। गुजरात की धर्म भूमि आचार्य देव के चरण स्पर्श से सनाथित हुई और वहाँ की धर्मप्राण जनता कृतार्थ।

किन्तु आचार्य प्रवर के गुजरात पदार्पण का श्रेय किसको अधिक जाता है, यह एक विमर्शनीय व स्मरणीय प्रसग है।

बम्बोरा से लगभग ३०-४० कि० मी० दूर ही चले होगे कि आचार्य प्रवर के दीर्घावधि से चले आ रहे पाँव-दर्द ने उग्र रूप धारण कर लिया, आगे बढना कठिन हो गया। जब यह जानकारी सेवाभावना से साथ मे चलने वाले बन्धुओ के माध्यम से कानोड एव बडीसादडी आदि सघो को मिली तो कुछ बडीसादडी के एवं अधिक सख्या मे कानोड सघ के सदस्य उपस्थित हो आचार्य प्रवर से आग्रह करने लगे कि इस दर्द की स्थिति मे हम आप श्री को मेवाड से बाहर नही निकलने देगे। अब आप श्री आगे नही बढकर पुन· लौटने की कृपा करे। कानोड सघ सदस्यो ने तो आचार्य श्री के पाँव पकड लिये। किन्तु आचार्य प्रवर ने उन्हे समझाया कि अब मेरा लौटना उचित नही है, अभी तो समय बहुत शेप है, अत उसी दिशा मे धीरे-धीरे बढना उपयुक्त है और आचार्य प्रवर का विहार गतिशील रहा। किन्तु झल्लारा, बम्बोरा से ४५ कि० मी० पहुँचने के बाद दर्द ने अति उग्र रूप धारण कर लिया।

ऐसी स्थिति मे सेवाभावी श्री भूपेन्द्र मुनि जी, विद्वद्वर्य श्री विजय मुनि जी, विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनि जी, विद्वान् श्री राममुनि जी, सेवाभावी श्री प्रकाश मुनि जी, विद्याभिलाषी श्री विनय मुनि जी एव श्री चन्द्रेश मुनि जी ने अतुल साहस का परिचय दिया। मुनिवृन्द ने आचार्य भगवन् से निवेदन किया कि आपश्री ने अहमदावाद सघ को होली चातुर्मासी की स्वीकृति प्रदान करदी है, अस्तु अब वहाँ पहुँचना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि आपश्री रखे गये आगारो का उपयोग कर सकते है, किन्तु अभी वैसी स्थिति नही है। अभी आपश्री की

कॉलोनी, अहिंसापुरी, भुवाणा, आयड एव राणा प्रतापनगर आदि उपनगरो मे भी क्रमशः कुछ दिनो का विचरण हुआ ।

केन्द्रीय कारागृह में

इस उपनगरीय विचरणकाल मे कुछ विशेष प्रसग भी बने जो उल्लेखनीय हैं । शिवाजी नगर प्रवास काल मे मध्याह्न मे केन्द्रीय बन्दीगृह मे आचार्य प्रवर का सरस-सुबोध शैली मे मार्मिक प्रवचन हुआ । परिणामत लगभग चार सौ कैदियो ने चोरी, हिंसा आदि अपराधिक वृत्तियो एव शराब, मास आदि दुर्व्यसनो से मुक्ति प्राप्त की अर्थात् जीवन पर्यन्त इनसे दूर रहने के सकल्प किये ।

हिरणमगरी सेक्टर–११ मे दीक्षा महोत्सव

अभी निकट अतीत मे ही छ मुमुक्षु आत्माएँ आचार्य प्रवर का चरणाश्रय प्राप्त कर चुकी थी । इसी उदयपुर की पुण्य धरा पर आदर्शनगर, (सवाई-माधोपुर) निवासी सरलमना श्री बाबूलालजी जैन की प्रतिभा सम्पन्न सुपुत्री, कुमारी विद्या की भागवती दीक्षा नई कृषि मण्डी के विशाल मैदान मे हजारो की जनमेदनी के समक्ष आचार्य प्रवर के वरद कर-कमलो द्वारा सम्पन्न हुई ।

आगामी वर्षावास हेतु विनतियाँ

उदयपुर के इस प्रवासकाल मे ही रतलाम, जावरा, छोटीसादडी, बडी-सादडी, उज्जैन, कानोड एव अहमदाबाद सघो के सदस्य अनेक बार सामूहिक रूप से उपस्थित हुए और सशक्त शब्दो मे आगामी वर्षावास अपने क्षेत्र मे करने की साग्रह विनतियाँ करते रहे । उनमे से कानोड सघ एव अहमदाबाद सघ का आग्रह सीमातिक्रान्त था । अहमदाबाद सघ तो अनेक बार पुन पुन उपस्थित हो गुजरात प्रान्त मे पदार्पण के प्रति आग्रह करता रहा । सघ मत्री श्री पीरदानजी पारख के बड तीखे एव वजनदार तर्क थे कि जिस नगरी मे लगभग पाँच लाख जैनी बसते हैं, वहाँ आचार्य भगवन् जैसी विभूति की कितनी उपयोगिता सिद्ध हो सकती है ? लगभग ४२ वर्ष हो गये, आचार्य प्रवर श्रीमद् जवाहर ने गुजरात की भूमि को पावन किया था । उसके बाद हमारे सघ की ओर से वह क्षेत्र उपेक्षित ही रहा है । इधर गुजरात के बहुत से मुनि प्रवर एव महासतियाँजी म० सा० आपके दर्शनो को उत्कण्ठित है । बरवाला सप्रदाय के आचार्य श्री चम्पकमुनिजी म० सा०, श्री सरदार मुनिजी म० सा० को एक दीक्षा के प्रसग पर भावनगर, जाना है, किन्तु वे आपश्री के दर्शनो के लिये रुके हुए हैं । विदुषी महासतीजी श्री शारदाबाई, हीराबाई छोटा, हीराबाई

गु जित करता हुआ वह जुलूस अस्पताल भवन मे पहुँच कर सभा के रूप मे परिरगत हो गया।

सर्व प्रथम श्री रघुवीरसिह जी उडीसा निवासी ने स्वागत गीत प्रस्तुत किया।

नवरगपुरा सघ के मत्री श्री कातिभाई ने गुजराती भापा मे अपने विचार व्यक्त किये कि—"राजस्थान सेवा समिति की ओर से अभिनन्दन करते हुए बहुत-बहुत आनन्द आ रहा है। आचार्य श्री खूब-खूब आनद व उत्साह के साथ होली चातुर्मासार्थ इस भूमि पर पधारे। यह एक अद्भुत सयोग है कि आज महाशिवरात्रि है एव गुजरात की अत्यन्त लोकप्रिय महान् विभूति श्री रविशकर जी महाराज के ९९वे जन्म दिवस के पावन प्रसग पर अध्यात्म योगी, चारित्र चूडामरिग महान् सत का गुजरात की इस भूमि पर पदार्पण हुआ।"

स्थानकवासी बाडी नारायणपुरा सघ के मत्री प्रबुद्ध विचारक श्री जवती-भाई ने स्वागतार्थ अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "सारा जैन समाज जिनका नाम सुनकर बहुत प्रफुल्लित है, आपश्री के सान्निध्य मे धर्माराधन कर कर्मों की निर्जरा करेगा। धन्य घडी और धन्य भाग है कि गुरुदेव असीम कृपा कर कर्म से मुक्त कराने हेतु गुजरात मे प्रवेश कर आज यहाँ पधारे है। अत श्री जी से मेरी पुरजोर शब्दो मे साग्रह विनती है कि आपश्री अहमदाबाद के समस्त क्षेत्रो को अपनी पावन पद-रज से पवित्र करे एव प्रभु वीर के उपदेशो से हमे लाभान्वित करे।" आपने प्रत्येक व्यक्ति को व्याख्यान का लाभ लेने हेतु आह्वान किया और कहा कि—'सूरज ना माटे केवातो नथी के सूरज उगियो।'

एच० एल० कॉमर्स कॉलेज के प्रिन्सिपल एव जैन जागृति सेन्टर के प्रमुख श्री आर० वी० सिघवी ने आचार्य श्री का अभिनन्दन करते हुए श्रद्धेय गुरुदेव से निवेदन किया कि "इस जैन जागृति सेन्टर मे अलग-अलग कई फिरको के करीब ३५० भाई-बहिन जैन जागृति की प्रवृत्ति अपनाते है। हमारे सेन्टर के भाइयो को आपश्री जी एक कार्यक्रम एव मार्गदर्शन देवे।"

राजस्थान सेवा समिति के सहमत्री श्री सपतराज जी हुडिया ने आचार्य प्रवर का स्वागत करते हुए आचार्य श्री जी के प्रवचनो का अधिक से अधिक लाभ उठाने की आशा व्यक्त की।

आचार्य श्री चपक मुनि जी म० सा० के मधुर वक्ता विद्वान् शिष्य श्री सरदार मुनि जी ने गुजराती मुनियो की ओर से गद्गद् स्वरो मे गुजरात की धरती पर आचार्य श्री के पदार्पण का भावभीना स्वागत किया एवं हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होने अपनी गुजराती भाषा मे इस आशय के भाव व्यक्त

वधि से आचार्यश्री के चरणो मे साग्रह निवेदन चल रहा था कि आपश्री का एक प्रवचन विश्वविद्यालय भवन मे हो, जिससे आपश्री की अमूल्य देन समता-दर्शन से हमारे विद्यार्थी परिचित हो सके। आचार्य प्रवर के आयड पदार्पण पर तो उन्होने कहा—"अब विश्वविद्यालय भवन दूर नही है और आचार्य प्रवर उनकी विनती को स्वीकृति प्रदान कर विश्वविद्यालय पधारे।"

कॉलेज के छात्र-छात्राओ एव विश्वविद्यालय के कर्मचारियो के समक्ष आपका "समता दर्शन का व्यावहारिक उपयोग" विषय पर हृदयस्पर्शी प्रवचन हुआ। विद्यार्थियो के साथ-साथ प्रोफेसर्स आदि अत्यन्त प्रभावित हुए। डॉ० प्रेम सुमन जैन ने इसे अपना एव विश्वविद्यालय का सौभाग्य बताया तो डॉ० सौगानी ने कहा—"मैं आचार्यश्री के बहुत निकट सम्पर्क मे आया हूँ। मैंने पाया है कि आचार्यश्री ने प्लेटो, कान्ट एव अरस्तू सभी को पचा लिया है। यह विश्व की वह विभूति है, जिसमे सम्पूर्ण योग एव पूर्ण समत्व के दर्शन होते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि आज हम समता-दर्शन के विषय मे कुछ सुन पाये है। हमारी सस्कृति का निर्माण सन्तो ने किया है। जीवन मूल्यो के प्रति आस्था आचार्यश्री जैसे सन्तो के सान्निध्य एव उपदेशो से ही आ सकती है।" सस्थान के निदेशक प्रो० के० के० महर्षि ने अपने समापन वक्तव्य मे कहा कि—"आचार्यश्री जैसे सन्तो की वाणी से ही मनुष्य के बीच व्याप्त विकृतियाँ दूर हो सकती है। समता-दर्शन से जब व्यक्ति का अह भाव शान्त होगा, तभी विश्व मे शाति स्थापित हो सकेगी।"

युनिवर्सिटी के प्रवचन के पश्चात् आचार्य प्रवर का राणाप्रताप नगर (अरविन्द नगर) पदार्पण हुआ। अरविन्द नगर मे प्राय विश्वविद्यालय के कर्मचारीगण ही रहते है। वहाँ के प्रबुद्ध बुद्धिजीवियो ने समता-दर्शन के २१ सूत्रो को क्रियान्वयन की रचनात्मक दिशा प्रदान की। साथ ही समता-समाज का एक सगठन भी निर्मित किया जिससे कि इस इक्कीस सूत्री योजना द्वारा समाज मे व्याप्त दुष्प्रवृत्तियो, कुप्रथाओ एव अनैतिक आचरणो का उन्मूलन किया जा सके। यहाँ के बुद्धिजीवियो की अध्यात्म के प्रति जिज्ञासापूर्ण अभिरुचि एव आत्म-शान्ति की प्यास अतुलनीय-अनुकरणीय थी।

इस प्रकार उदयपुर के उपनगरो के बुद्धिजीवियो मे अध्यात्म की पवित्र धारा प्रवाहित कर आचार्यश्री ने बम्बोरा की दिशा मे प्रस्थान किया। प्रथम पडाव मटूण मे ही अहमदाबाद से प्रसिद्ध उद्योगपति श्री प्रेमराजजी काकरिया एव श्री पीरदानजी पारख के नेतृत्व मे ग्यारह सदस्यो का शिष्टमण्डल होली चातुर्मासी अहमदाबाद करवाने की विनती लेकर उपस्थित हुआ। सघ के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए आचार्यश्री ने साध्वोचित भाषा मे स्वीकृति प्रदान कर

प्रसग पर बाहर से आगत अनेक सघो ने अपने क्षेत्रों में वर्षावास हेतु संत-सती वर्ग के लिये आग्रहात्मक विनतियाँ प्रस्तुत की । हजारो व्यक्तियो की उपस्थिति हुई । आध्यात्मिक साधना का वातावरण बना । कानोड़ एव अहमदाबाद के सशक्त आग्रह मे अहमदाबाद को आगामी वर्षावास की स्वीकृति मिली ।

जिज्ञासा-समाधान

होली प्रवास के इन्ही दिवसो मे अर्थात् आचार्य प्रवर के अहमदाबाद प्रवास के प्रथम रविवार को ही 'जैन जागृति सेन्टर' के प्रमुख एच० एल० कॉमर्स कॉलेज के प्रिन्सिपल श्री आर० वी० सिघवी के आग्रह से सेन्टर की ओर से प्रवचनोपरान्त उसी स्थल पर जिज्ञासा-समाधान का ज्ञानवर्धक भव्य कार्यक्रम रखा गया, जिसमे सेन्टर के लगभग ३५० व्यक्तियो के अतिरिक्त अन्य सैकड़ो श्रोताओ ने भाग लिया । अनेक प्रबुद्ध बुद्धिजीवियो ने युगीन समस्या एव धर्म दर्शन आदि के सम्बन्ध मे गम्भीर जिज्ञासाएँ रखी । आचार्य प्रवर ने सभी का सटीक समाधान दिया ।

तत्कालीक प्रसग अपने आप मे एक अलग ही विधा के रूप मे था । प्रत्येक जिज्ञासु, जो अपने विषय का जाना-माना विद्वान होता, बडी विनम्रता के साथ अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करता और आचार्य प्रवर से बुद्धिगम्य यथोचित समाधान प्राप्त कर हर्षित होता हुआ बैठ जाता ।

मिलन हेतु आचार्यो का आगमन

उदयपुर से प्रस्थान के पूर्व ही आचार्य प्रवर की धवल कीर्ति की सौरभ तो गुजरात की धर्मप्राण जनता मे फैल चुकी थी । यही कारण है कि आपश्री के अहमदाबाद पदार्पण के साथ ही गुजरात के विभिन्न सम्प्रदायो के आचार्य, मुनिगण एव साध्वियो का आपश्री के दर्शनार्थ ताता-सा लग गया ।

आपश्री का राजस्थान हास्पिटल के नवनिर्मित विशाल नौ मजिले भवन मे पदार्पण हुआ और यह सूचना ज्यो-ज्यो इतस्तत: प्रसृत हुई कि सन्त-महात्माओ एव गणमान्य सज्जनो ने दर्शनार्थ एव प्रवचन-श्रवणार्थ आना प्रारम्भ कर दिया ।

दर्शनार्थ आगत महामुनियो मे सर्वप्रथम थे बरवाला सम्प्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० के विद्वान् सुशिष्य श्री सरदार मुनिजी म० सा० जो कि आचार्य प्रवर के अहमदाबाद प्रवेश मे कुछ दूरी तक स्वागतार्थ भी गये थे ।

दूसरे-तीसरे दिन ही दरियापुरी आठ कोटी सम्प्रदाय की महासतीजी श्री मोटा हीराबाई, महासतीजी श्री सुशीलाबाई आदि का पदार्पण हुआ । इसके

पुन भागवती दीक्षा का भव्य आयोजन

वम्वोरा के इसी प्रवास काल मे दो महत्त्वपूर्ण कार्य और हुए। एक तो समता-प्रचार सघ के तत्त्वावधान मे त्रिदिवसीय 'स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर' और दूसरा भागवती दीक्षा का भव्य आयोजन।

प्रकृति की गोद मे छोटी-छोटी टेकरियो पर एव पहाडियो के मध्य वसे वम्वोरा ग्राम मे विनोता निवासी सरलमना वन्धु श्री नक्षत्रमलजी की सुपुत्री कुमारी (वसन्त) विरक्ता की भागवती दीक्षा का समारोह अत्यधिक ही मन-मोहक था। हजारो की जनमेदनी के समक्ष वट-वृक्ष की छाया तले आचार्य प्रवर ने उस वाला को अपने वरद कर-कलमो की छाया तले ले लिया।

इस प्रकार वम्वोरा की पवित्र धरा को लगभग शेषकाल एक माह तक तीर्थ भूमि का परिवेश प्रदान कर आचार्य प्रवर ने अहमदावाद की दिशा मे प्रस्थान कर दिया।

• • •

इधर शासन प्रभाविका परम विदुषी महासतीजी श्री मनोहरकवरजी म० सा०, शासन प्रभाविका विदुषी महासतीजी श्री इन्द्रकवरजी म० सा०, विदुषी महासतीजी श्री सूर्यकान्ताजी एव परम सेवाव्रती श्री चन्द्रकान्ताजी म० सा० ठाणा–४२ एव गुजरात के विभिन्न सम्प्रदायो मे दरियापुरी सम्प्रदाय की विदुषी महासतियाँजी सर्वश्री बसन्तीबाई, हीराबाई, बिमलाबाई आदि ठाणा, खम्भात सम्प्रदाय की विदुषी महासतीजी श्री शारदाबाई आदि ठाणा, कच्छ मोटा लीबडी सम्प्रदाय की महासतीजी श्री रश्मिताबाई आदि ठाणा (सभी सम्प्रदाय के कुल १०० से अधिक) साध्वी मण्डल धवल परिधान से मण्डित साधना की धवलता-समुज्ज्वलता का अलग ही सकेत दे रहा था।

इस दीक्षा महोत्सव की एक-दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, जिसे जन-सामान्य की भाषा मे चमत्कार कहा जा सकता है, लगभग तीस हजार से अधिक जनमेदनी मे भी अपार शान्ति बने रहना और आचाय प्रवर की धारा प्रवाही वाणी का बिना ध्वनिवर्धक यत्र के अथ से इति तक पहुँचना। आज के परिवेश मे इसे चमत्कार ही कहा जाएगा कि ज्यो ही आचार्य प्रवर ने अपना अमृत प्रवचन प्रारम्भ किया समस्त वातावरण मे नीरवता छा गई। पुरुष एव महिलाएँ ही नही, नन्हे-मुन्ने बालक भी शान्त हो गये और आचार्य देव की पीयूष धारा का सभी व्यक्तियो ने चकोरवत् पान किया। युगीन आवाज के अनुसार ध्वनिवर्धक यत्र का आग्रह करने वाले व्यक्ति दातो तले अगुली दबाते रह गये। प्राय· प्रत्येक आगन्तुक के स्वर निकल रहे थे—"इतनी विशाल जनमेदनी में इतनी अधिक शान्ति एव इतनी सुन्दर व्यवस्था कही नही देखी, यह सब आचार्य देव के अतिशय का ही चमत्कार है।"

उस विशाल जनमेदनी मे आचार्य प्रवर का तत्कालीन उद्बोधन था—विश्व शान्ति के सदर्भ में। आपश्री ने कहा—"विश्व शान्ति प्राप्ति की दिशा मे विश्व के विभिन्न राजनैतिक सगठन, सामाजिक सस्थाएँ एव अन्य विभिन्न सगठन विविध आयामो मे प्रयासरत है, फिर भी शान्ति की प्राप्ति नही हो पा रही है। इसका मुख्य कारण है विश्व शाति प्राप्ति की दिशा मे किये जा रहे प्रयासो मे समता-दर्शन सूत्र का अभाव। विना इस सूत्र को अपनाये विश्व शाति की प्राप्ति असभव ही है।

"व्यक्ति अपने मे व्याप्त अशाति को दूर करने के लिए इस भौतिक युग मे कृत्रिम तरीको का उपयोग एव प्रयोग करता है, लेकिन इन तरीको से स्थायी शाति प्राप्त नही कर पाता। भौतिक साधनो से प्राप्त शान्ति भी कृत्रिम शाति ही होती है। स्थायी शाति को प्राप्त करने के लिए समता-दर्शन की महत्ता को स्वीकार करना ही होगा।" समता-दर्शन के महत्त्व पर जोर देते हुए आचार्यश्री ने कहा—"समतामय-दर्शन स्थायी शांति प्रदान करता है, मानव कल्याण का

सेवा मे हम सभी युवा सन्त है । हम अपने कन्धो के वल पर आपश्री को अहमदाबाद ले जायेगे और उन अपरिमित साहसी मुनियो ने आचार्य प्रवर के निषेध करने पर भी कन्धे पर उठाने योग्य एक डोली के माध्यम से अपने आराध्य को उठा लिया, अपने सशक्त कन्धो पर ।

मुनिमण्डल के अदम्य साहस को इसलिए अधिक दाद देनी पडेगी कि मार्ग के लघु ग्रामो मे गृहसख्या की अत्यल्पता के कारण अधिकाश ग्रामो मे कभी एक समय आहार मिला तो कभी वह भी अत्यल्प । कभी-कभी तो अचित जल (धोवन पानी) भी वहुत कम मिला । यही नही कुछ ग्रामो मे तो जैन समाज के घरो से भी आहार नही मिलता तो मुनिगण कुम्भकार आदि परिवारो से भिक्षा करके लाते और आहार की अल्पता के कारण विभाजन करके उपभोग करते । इसके उपरान्त सडक भी शर्करा प्रभा की याद दिलाने वाली थी फिर भी मुख्यतया चार मुनि प्रवर विद्वद्वर्य श्री विजयमुनि जी, विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनि जी, विद्वान् श्री राममुनि जी एव सेवाभावी श्री प्रकाश मुनि जी ने अत्यन्त साहस का परिचय दिया । विद्याभिलापी श्री विनयमुनि जी के पैरो मे छाले होने पर भी मध्यान्तर मे उनका उत्साहपूर्ण सहयोग सराहनीय रहा । शेप दो मुनियो ने पानी-पात्र आदि उठाने मे सहयोग प्रदान किया । इस प्रकार आठ मुनियो के कार्य को चार मुनियो ने ही तीव्र मनोवल के द्वारा सम्पन्न कर कभी १४, कभी १६ और कभी १६ कि० मी० तक अपने आराध्य देव को कन्धे पर उठाकर, चलने का प्रतिमान स्थापित किया और यह क्रम २३६ कि० मी० तक चला । अहमदावाद पदार्पण पर स्वय आचार्यदेव के शब्द थे कि "इन साहसी मुनियो के वल पर ही मैं यहाँ तक पहुँच सका हूँ । अस्तु, इसका अधिकाश श्रेय इन मुनियो को जाता है ।"

अहमदावाद प्रवास · उपलब्धियो के प्रकाश में

इस प्रकार मुनियो के अतुलनीय साहस एव उग्र विहार के द्वारा आचार्य प्रवर का अहमदावाद की पावन धर्मभूमि पर पदार्पण हुआ । अहमदावाद नगर प्रवेश एव स्वागत समारोह का दृश्य अनूठा था । अहमदावाद के विभिन्न क्षेत्रो के वरिष्ठ अधिकारियो तथा वाडीभाई कामदार एवं भूतपूर्व मुख्यमत्री हितेन्द्र भाई देसाई आदि प्रमुख राजनेताओ ने आचार्य देव का गुजरात की धर्म भूमि पर भावभीना स्वागत किया । स्वागत समारोह का वह मनमोहक दृश्य अनूठा ही था ।

आचार्य श्री चपक मुनि जी म० सा० के विद्वान् शिष्य श्री सरदार मुनि जी म० सा० जो कि श्रद्धेय आचार्य प्रवर समता विभूति श्री नानेश के अहमदावाद पधारने की चिर प्रतीक्षा कर रहे थे, स्वागतार्थ आचार्य श्री जी के सामने पधारे । भगवान् महावीर स्वामी एव आचार्य प्रवर की जय-जयनाद से गगन

"इस क्रान्तिकारी पावन भूमि पर वीर लोंकाशाह ने एव महात्मा गाँधी ने क्रान्ति की थी। मुझे परम प्रसन्नता है कि इस पावन भूमि पर आज विश्व संत आचार्य प्रवर के सान्निध्य मे भागवती दीक्षाओं का ऐतिहासिक पुनीत प्रसग सम्पन्न हो रहा है। यह भी एक महान् क्रान्ति है। आचार्य प्रवर के तप-तेज का ही यह प्रभाव है।

आचार्यश्री घनघोर परिषह उठाकर गुजरात में पधारे है तो गुजरात-वासियों का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि आपश्री का आगामी चातुर्मास अहमदाबाद मे ही करावे और मेरी भी यही विनती है। आपने गुजरात की जनता को सम्बोधित किया कि आप लोगों को ध्यान रखना है कि गुजरात से आचार्य प्रवर का अन्य प्रात मे विचरण न हो जाय। इस गुजरात की भूमि से बाहर मत जाने देना, क्योकि विनतियाँ कई क्षेत्रो से आ रही है। साथ ही अक्षय तृतीया के प्रसग से भावनगर पधारने की ओजपूर्ण शब्दो में विनती करते हुए कहा कि—"आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० के सान्निध्य मे अक्षय तृतीया पर ही दीक्षा का प्रसग सम्भावित है।"

इस प्रकार मनमोहक, अध्यात्मरसप्रद छटा के वातावरण मे आचार्य देव ने प्रभु महावीर के शासन एव अपने अनुशासन मे जिन्हे आश्रय प्रदान किया, उन १५ विरक्तात्माओ का सामान्य परिचय इस प्रकार है—

१. **विरक्तात्मा श्री चम्पालालजी टांटिया**—धर्मपत्नी, पुत्र एव पौत्र-पौत्रियो से भरे पूरे सम्पन्न परिवार के वरिष्ठ संरक्षक सदस्य, छत्तीसगढ के सिहद्वार राजनाँदगाँव के श्री चम्पालालजी विगत बारह वर्षो से विरक्तिमय जीवनयापन कर रहे थे। आचार्य प्रवर के छत्तीसगढ भ्रमण से लौटते समय आप में विरक्ति के भाव प्रस्फुटित हुए। मन्दसौर वर्षावास काल एवं उसके पश्चात् विहार काल मे आपने आचार्य प्रवर के साथ भ्रमण किया। किन्तु पारिवारिक सदस्यों के मोह ने आपको आगे बढ़ने की अनुमति नही दी। परिणामत: आपको लगभग बारह वर्ष गृहस्थ मे ही विरक्त जीवन की साधना करनी पड़ी। अहमदाबाद की पन्द्रह दीक्षाओ की वेला मे आपके व्यवधान हटे और आप चम्पालालजी टाटिया से 'श्री पकज मुनि' के रूप मे वदल गये। आपकी दीक्षा के लिये पारिवारिक सदस्यों को समझाने रूप सत्प्रयत्नो का अधिकांश श्रेय राजनाँदगाँव निवासी आपके दामाद श्री शिवचन्दजी के वड़े भ्राता श्री दुलीचन्दजी पारख को जाता है।

२. **श्री धर्मेन्द्रकुमारजी देशलहरा**—महाराष्ट्र में साखरा (जलगाँव)

किये कि—"जैन जगत् के सितारे, जन-जन के तारणहार आचार्य श्री, जिनका कि हम वर्षों से इन्तजार कर रहे थे, आज यहाँ पधारे हैं। मैंने आचार्य भगवन् के दर्शन ४–५ वर्ष पूर्व बीकानेर मे किये थे। मैंने आचार्य श्री से गुजरात मे पधारने की विनती की थी, आज हमारी वह कामना सफल हो गयी है। वर्षों पूर्व आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० एव आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० का यहाँ पदार्पण हुआ। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के विषय मे राष्ट्र-नेता लोकमान्य तिलक एव राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि राष्ट्र मे दो जवाहर (रत्न) हैं एक राजनैतिक क्षेत्र मे पडित जवाहरलाल, दूसरे आध्यात्मिक क्षेत्र मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा०।

लगभग ४३ वर्ष बाद आज पुन इसी सप्रदाय के आचार्य श्री का यहाँ पदार्पण हुआ है। महज अहमदाबाद ही नही अपितु पूरे गुजरात प्रात का सौभाग्य है। अत आप श्री के ज्ञान-दर्शन-चारित्र का लाभ उठाना चाहिये। ऐसी चारित्र निष्ठ विभूति का सयोग हमे बहुत भाग्य से ही प्राप्त होता है। मुनि श्री ने आशा व्यक्त की कि अहमदाबाद व गुजरात की प्रबुद्ध धर्म प्रेमी जनता अधिक से अधिक सख्या मे आचार्य श्री के पावन उपदेशामृत का पान कर अपने को कृतार्थ करेगी।"

अन्त मे आपने कहा कि "मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री चपक मुनि जी म० सा० भी आप श्री के दर्शनार्थ एव मिलन हेतु बहुत उत्कठित हैं, किन्तु स्वास्थ्य की कमजोरी एव सतो की तपस्या के कारण नही पधार सके, उनकी तरफ से भी मैं आचार्य श्री का स्वागत करता हूँ।"

अन्त मे परम श्रद्धेय समता विभूति आचार्य श्री ने सिद्ध प्रभु की स्तुति पूर्वक अपने स्वागत का उत्तर देते हुए स्वागत शब्द की अभिनव परिभाषा की तथा सच्ची शाति एव सुख की प्राप्ति के लिये परस्पर भावात्मक एकता पर बल दिया। आपश्री ने फरमाया कि "गुजरात की पावन धरती पर अगाध चरित्र निधि स्व० आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० एव प्रकाण्ड प्रज्ञा-निधि युग पुरुष श्री जवाहरलाल जी म० सा० तथा अन्य महापुरुषो ने जो बगीचा लगाया और अभी इधर विचरणरत सत-सती वर्ग जिसे सीच रहे हैं, मैं तो उसकी सुगन्ध लेने आया हूँ। आप व हम सब पूर्व महापुरुषो द्वारा सिंचित धर्मवाटिका की सुगध लेवे और अपने अन्तर को पवित्र करे।"

अहमदाबाद के उपनगरो के विचरणकाल मे अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसग सघटित हुए—

होली चौमासी

अहमदाबाद सघ को आचार्य देव की सन्निधि मे जिन धार्मिक उत्सवो के आराधन का सौभाग्य मिला, उनमे प्रथम था होली चातुर्मासी का। इस

१० **विरक्ति पथ साधिका सुश्री कान्ता**—मुक्ताश्री, सुपुत्री धर्मप्राण श्री सोहनलालजी चण्डालिया, कपासन (राज०) ।

११ **आत्म विजय पथ पथिका सुश्री विजया** - विशाल प्रभा, सुपुत्री श्रद्धानिष्ठ श्री मूलचन्दजी भसाली, गगाशहर (राज०) ।

१२-१३ **वैराग्य वासित आत्मा सुश्री कुसुम–कनक प्रभा**—सुश्री सुनीता–सत्यप्रभा, सुपुत्रियाँ अहोभागी श्री गुलाबचन्दजी गुलगुलिया, बीकानेर (राज०) ।

स्मरणीय है कि श्री कनकप्रभा एव सत्यप्रभा, साध्वीजी श्री वनिता श्रीजी की सहोदरा है ।

उपर्युक्त पन्द्रह आत्माओ ने अपने-अपने भरे-पूरे सम्पन्न परिवारो के समस्त भौतिक सुखप्रद उपादानो का परित्याग कर कठोर श्रमण-जीवन स्वीकार किया और महिमा विभूषित आचार्य देव का चरणाश्रय प्राप्त किया ।

इस दीक्षा महोत्सव के विराट् आयोजन मे स्वर्णिम पृष्ठ का संयुक्तिकरण किया अहमदाबाद सघ की आध्यात्मिक एव सामाजिक उत्क्रान्ति की भव्य योजना ने ।

राजस्थान स्थानकवासी सघ अहमदाबाद के मत्री श्री पीरदानजी पारख ने इस महामहोत्सव पर जनता को आह्वान किया कि ये पन्द्रह महान् आत्माएँ ससार के समस्त सुखो का परित्याग कर आत्म-साधना की ओर बढ रही है । इस पुनीत प्रसग पर हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम भी महान् चेतनाओ के निमित्त से आचार्य प्रवर के चरणो मे त्याग-प्रत्याख्यानो की कुछ भेट अपने सघ की ओर से चढाएँ । वैसे आप स्वतन्त्र रूप से कुछ भी भेट समर्पित करे, किन्तु हमारी निम्न छ सूत्री योजना मे अवश्य सहयोग प्रदान करे । और वे दीक्षा दिवस के कुछ दिन पूर्व से ही प्रतिदिन प्रवचन के पश्चात् इस योजना के लिए आह्वान करते रहे । वह छः सूत्री योजना थी—

१ १५०० जीवो को अभयदान । लगभग ३ लाख का अनुदान ।

२ १५०० भाई-बहिनो द्वारा तप साधना जिसमें ५०० अट्ठम (तेले), ५०० छट्ठ (बेले) एव ५०० उपवास ।

३ १५०० व्यक्ति जुआ, शराब एव मास का आजीवन परित्याग करे ।

४ १५ दम्पतियो को आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण हेतु प्रेरित

दो-तीन दिन बाद पधारे दरियापुरी आठ कोटी सम्प्रदाय के आचार्य श्री शांति-लालजी म० सा० अपने विद्वान् शिष्य श्री वीरेन्द्र मुनिजी म० सा० आदि ठाणा-५ से।

अनन्तर आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० अपने मधुर व्याख्याता विद्वान् शिष्य श्री सरदार मुनिजी म० सा० आदि ठाणाओ के साथ पधारे।

और इसके पश्चात् तो गुजरात के विभिन्न सम्प्रदायो के अनेक साध्वी मण्डली का आचार्य देव के दर्शनार्थ आगमन होता रहा। आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० का तो कुछ दिन हास्पिटल भवन मे ही विराजना रहा तथा आचार्य श्री शान्तिलालजी म० सा० एव अन्य महासतियाँजी निकटवर्ती फ्लेटो मे विराज कर प्रतिदिन प्रवचन श्रवणार्थ एव मध्याह्न मे ज्ञान-चर्चा हेतु आते रहे। प्रतिदिन मध्याह्न मे आचार्य प्रवर, साध्वी वर्ग एव मुनि वर्ग के सैद्धान्तिक एव आचार-विचार सम्बन्धी प्रश्नो का आगमसम्मत समाधान प्रदान करते। रात्रि मे दोनो सम्प्रदायो के विद्वान् मुनियो से एकान्त के क्षणो मे सैद्धान्तिक समाचारी सम्बन्धी चर्चाएँ भी हुई।

इस प्रकार शारीरिक रोगियो के लिए निर्मित विशाल हास्पिटल भवन आध्यात्मिक का चिकित्सा केन्द्र बन गया, जहाँ हजारो मुमुक्षु-जिज्ञासु आये और अपना-अपना समाधान लेकर गये। वह वर्षो से वीरान पडा भवन एक तीर्थ धाम-सा बन गया।

पन्द्रह मुमुक्षुओ का विराट् दीक्षा महोत्सव

अहमदाबाद प्रवास की सर्वतो महत्ती उल्लेखनीय घटना थी—पन्द्रह विरक्ति-पथ-पथिको की भागवती दीक्षा का भव्य आयोजन। पाठको ने देखा होगा कि आचार्य प्रवर के वरद करकमलो द्वारा पूर्व मे ब्यावर नगर मे एक साथ पन्द्रह मुमुक्षु आत्माओ ने आत्म-साधना मे चरण बढाए थे। यह द्वितीय प्रसग बना जिसमे पुन १५ आत्माओ ने एक साथ आचार्य प्रवर का चरणाश्रय प्राप्त किया।

इस महाभिनिष्क्रमण महोत्सव की यह विशेषता थी कि इसमे दो-दो आचार्य अपने शिष्य समुदाय सहित विराजित थे और सौ से अधिक साध्वी समुदाय की उपस्थिति थी। समता विभूति चरितनायक आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० ठाणा—१०, बरवाला सम्प्रदाय के आचर्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० के प्रमुख शिष्य श्री सरदार मुनिजी म० सा० ठाणा—२ तथा दरियापुरी आठ कोटी सम्प्रदाय के आचार्य श्री शान्तिलालजी म० सा० अपने व्याख्यानी शिष्य श्री वीरेन्द्र मुनिजी आदि ठाणा—५ के साथ उपस्थित थे।

सतियों ने सैद्धान्तिक गहन प्रश्नों के समाधान लिये। आचार्य प्रवर द्वारा प्रदत्त समाधानो से प्रश्नकर्ता मुनि प्रवर एवं महासती वर्ग गद्गद् हो कह उठते—"कितनी सुन्दर शैली है समाधान की, आपश्री उदाहरणो के द्वारा विपय को बहुत सुगम एवं सुबोध बना देते हैं।"

महावीर जयन्ती

दूसरा प्रसंग था—नारायणपुरा स्थानकवासी जैन सोसायटी मे सेठ श्री सूरजमलजी बोर्दिया के बंगले मे रहते हुए स्थानकवासी जैन वाडी मे अ० भा० हिसा निवारण सघ के तत्त्वावधान में "आर्य सस्कृति मे अहिंसा की प्रधानता" विषय पर धाराप्रवाही मार्मिक सार्वजनिक प्रवचन एवं महावीर जयन्ती का भव्य आयोजन। इस महान् आध्यात्मिक उत्सव पर आचार्य प्रवर ने प्रभु महावीर के सिद्धान्तो को व्यावहारिक जीवन मे उतारने की प्रेरणा प्रदान की। सार्वजनिक प्रवचन के प्रसंग पर अनेक व्यक्तियो ने हिसाजन्य शृ गार-प्रसाधनो का उपयोग नही करने के संकल्प लिये।

नारायणपुरा स्थानकवासी जैन सघ के मंत्री अध्यात्मनिष्ठ प्रबुद्ध विचारक श्री जयन्ती भाई तो आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हो एक दिन विनय एव बहुमान शब्दो की व्याख्या सुनकर प्रवचन के पश्चात् अपने वक्तव्य में कहने लगे—"आज तक तो हम सुनते ही थे, अब प्रत्यक्ष देख लिया है कि आपका व्यक्तित्व एवं वक्तव्य कितना गभीर है। अभी तक हम विनय पूर्वक ही विनती-निवेदन कर रहे थे, अब बहुमान अर्थात् सर्वस्व समर्पणा के साथ विनती कर रहे है कि अब आपश्री को पुन: शीघ्र नारायणपुरा पदार्पण करना होगा।"

अक्षय तृतीया

इस प्रवास का तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रसग था—पुन: नवरगपुरा मे अक्षय तृतीया का। इस प्रसग पर आचार्य प्रवर ने अक्षय तृतीया की गम्भीर तल-स्पर्शी व्याख्या प्रस्तुत की। अक्षय तृतीया के उद्देश्य एव महत्त्व पर सैद्धान्तिक विश्लेषण दिया। प्रभु ऋषभदेव के जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हुए उनकी सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी देन एवं तप:साधना द्वारा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति पर धाराप्रवाही ओजस्वी स्पष्टीकरण दिया। अक्षय तृतीया एवं वर्षीतप के सम्बन्ध मे चली आ रही भ्रान्त धारणाओ का सयुक्तिक आगमसम्मत समाधान देकर जन-जन को भाव-विभोर कर दिया।

इस प्रसग पर सुदूर असम, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि प्रान्तो से ७८ वर्षीतप की तपस्वी आत्माओ ने आचार्य प्रवर के चरणो में पहुँच कर

पथ प्रशस्त करता है। जीवन मे एक ऐसी सौरभ का निर्माण करता है जिसकी महक विश्व मे विकीर्ण होकर मानव मात्र मे शाति का प्रसार कर सकती है।"

आपश्री ने कहा "कि समता का वायुमण्डल तैयार करने के लिए मोह, माया तथा ममता का त्याग करना होगा एव समता-दर्शन के धरातल पर तटस्थ भाव मे चिन्तन करना होगा, जिससे जीवन में व्याप्त असतुष्टता समाप्त की जा सके। समता के महत्त्व को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक होगा कि हमारा जीवन सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र के अनुरूप हो।

"प्रभु महावीर की सस्कृति किसी जाति-पाति या वर्ग विशेष की नही है वरन् जो इसके अनुरूप अपना जीवन आचरण बनाता है, उसकी है। श्रमण भगवान् महावीर के आदर्श सिद्धान्त मानव कल्याण के लिए है। विश्व मे व्याप्त विषमता को इन्ही आदर्श सिद्धान्तो से दूर किया जा सकता है। जीवन क्या है? इसकी वास्तविक परिभाषा को समझना भी आवश्यक है। समतामय जीवन के अभाव मे जीवन की परिभाषा पूर्ण नही बनती।"

आपश्री ने दीक्षार्थियो की ओर इगित करते हुए फरमाया कि "आज के इस भौतिक वातावरण मे इस देश की तरुणाई दिशाहीन पथ की ओर अग्रसर है, भौतिकता की चकाचौंध मे फस गयी है, लेकिन ये मुमुक्षु आत्माएँ अपने वैभवशाली पारिवारिक जीवन का त्याग कर श्रमण भगवान् महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को अपना रही हैं। इस निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति में प्रवेश होने का श्रेय पूर्व जन्म के किये गये शुभ कर्मो के साथ वर्तमान के पुरुषार्थ को है।"

आचार्य प्रवर के धाराप्रवाही प्रवचन के पश्चात् आचार्य प्रवर के महिमाशाली व्यक्तित्व से प्रभावित दरियापुरी सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्री शातिलालजी म० सा० के सुशिष्य श्री वीरेन्द्र मुनिजी म० सा० ने गुजराती भाषा मे अपने हृदयोद्गार प्रगट करते हुए कहा—

"अहमदाबाद माटे आजे अद्वितीय अवसर प्रथम वक्त निहारी ने बधा ना अन्तर मा आनन्द नो अनुभव थयो छै। अमे अमारा आचार्यो पासे थी सांभरेलु के आज थी सौ वर्ष पलेला इडर मा बावीस बहनो नी दीक्षा एक साथे थई हती। आ प्रसग फक्त साभरेलोज हतो, परन्तु आजे आचार्यश्री नानालालजी म० सा० नी निश्राय मा पन्द्रह दीक्षा नो भव्य प्रसग प्रत्यक्ष मा निहारी ने घणोज आनन्द अनुभवाय छै। आ मुमुक्षु आत्माओ जे भाव थी सयम आदरेल छै तेज भाव थी सयम नु पालन करे अने चतुर्विध संघ ने वहु-वहु दिपावे तेवी मारी भावना छै।"

तदुपरान्त बरवाला संप्रदाय के आचार्य प्रवर श्री चंपक मुनिजी म० सा० के विद्वान् सुशिष्य श्री सरदार मुनिजी म० सा० ने अपने वक्तव्य मे कहा कि—

उपसंहार

अनेकानेक मुमुक्षु आत्माओं को आश्रय प्रदान करता हुआ आचार्य देव का निर्मल व्यक्तित्व उस सरिता प्रवाह के समान अनवरत गतिशील है, जो अगाध जल राशि—महासमुद्र मे मिलने को कृत सकल्प है और अनेक लघु जल-प्रपातो को अपने मे समाहित करता जाता है ।

इस प्रकार आचार्य श्री एव उनका गरिमामय शासन निरन्तर नित नूतन उपलब्धियो के द्वार उद्घाटित करता हुआ अपने आत्म-शोध एव आत्मशान्ति के पुनीत लक्ष्य की ओर अनवरत गतिमान है ।

जीवन वृत्त के आरम्भ मे यह बताया जा चुका है कि आचार्य देव का व्यक्तित्व उस लघु जल प्रपात-सा है, जो अपनी आदि स्थिति मे अति लघु होते हुए भी निरन्तर विशालतम होता हुआ एक महासागर मे रूपान्तरित हो जाता है ।

अज्ञात-अनादि से अनवरत प्रवहमान् भागीरथी की भाँति आचार्यदेव की जीवन-यात्रा परम पवित्रता का पाथेय लिये हुए निर्बाध रूप से गतिशील है और यह तब तक गतिशील रहेगी जब तक स्पृहणीय चरम सत्य के अथाह सागर मे अनन्त-अनन्त काल के लिए विश्रान्ति न ले ले ।

निष्कर्ष की भाषा मे महामहिम आचार्य श्री का व्यक्तित्व सहस्रपखुडी पकज के समान मनोभिराम सुवास लिये हुए है । व्यष्टि और समष्टि के प्रतिरूप पकज की प्रत्येक पखुडी अपनी व्यष्टि इकाई के साथ विलक्षण महत्ता लिये होती है, तो उसकी समवायात्मक एकता समष्टि की समस्थिति को ध्वनित करती है । पखुडियो की विभिन्नता पकज का बाह्य रूप है तो एकता उसकी आत्मा ।

जीवन का सहस्रदल भी अनेक घटनाओ का सामष्टिक रूप है । प्रत्येक घटना के अपने आप में पूर्ण होने के उपरान्त भी घटना-समष्टि का समन्वायात्मक रूप ही जीवन को आकृति प्रदान करता है ।

मधुकोष को सुरक्षा देने वाली पखुडी विशेष सुसज्ज एव सुव्यवस्थित दिखाई देती है जबकि उसके पर्यावरण मे स्थित पखुडियाँ बिखरी-बिखरी सी

निवासी सरलचेता श्री हेमराजजी देशलहरा के सुपुत्र श्री धर्मेन्द्र-कुमारजी ने यौवन के देहली पर पैर धरते ही साधना के असि पथ पर चरण बढा दिये। चूंकि आपके एक अग्रज रायपुर रहते है, अत. आप विगत कुछ अवधि से रायपुर रह रहे थे। आप मे धर्म सस्कारो का आरोपण करने का श्रेय आपकी भाभी श्रीमती किरण बाई को जाता है।

अहमदाबाद मे सम्पन्न १५ दीक्षाओ मे पुरुष वर्ग मे उपर्युक्त दो मुमुक्षु थे। शेष तेरह मुमुक्षु विरक्ति पथ-पथिकाएँ वा० ब्रह्मचारिणी कुमारिकाएँ थी, जिन्होने यौवन के विस्फोट के पूर्व अथवा साथ ही साधना के असिधारा पथ पर चरण रख दिये और अपने जीवन के समस्त अरमानो की अपने आराध्य आचार्य देव के शासन के प्रति समर्पणा कर दी। वे तेरह आत्म-साधिकाएँ थी—

१ **वैराग्यवती कुमारी जमुना**—जिन प्रभाश्री, सुपुत्री धर्म प्राण श्री राणुलालजी सा० गिडिया, राजनांदगांव (म० प्र०)।

२ **वैराग्यवती कुमारी अंगूरबाला**—अमिता श्री, सुपुत्री एकात्म श्रद्धा-निष्ठ श्री हस्तीमलजी श्रीश्रीमाल, रतलाम (म० प्र०)।

३ **विनयगुण समन्विता कुमारी विमला**—विनयश्री, सुपुत्री श्री गेन्दमलजी साखला, छुईखदान (म० प्र०)।

४ **दीप्तिमती सुश्री कमला**—श्वेताश्री, सुपुत्री श्री मोतीलालजी बुरड, केशकाल (बस्तर म० प्र०)।

५. **विरक्ति पथ पथिका सुश्री सुमनलता**—सुचिताश्री, सुपुत्री श्री हस्तीमलजी श्रीश्रीमाल, रतलाम (म० प्र०)।

स्मरणीय है कि अमिताश्री एव सुचिताश्री सहोदरा भगिनी है।

६ **विरक्ति अनुरञ्जिता सुश्री मणिप्रभा**—सुपुत्री श्री भवरलालजी वैद, गगाशहर (राज०)।

७ **साधना पिपासु सुश्री सरला**—सिद्धप्रभा, सुपुत्री धर्मनिष्ठ श्री जवरीलालजी पीचा, नागौर (राज०)।

८ **सरलता एव सेवा साधना की प्रतीक सुश्री सरोज**—नम्रताश्री, सुपुत्री श्रद्धानिष्ठ श्री उत्तमचन्दजी नाहर, जगदलपुर (बस्तर)।

६ **प्रतिभावती कुमारी सुप्रतिभा**—सुपुत्री श्री आसकरणजी ओस्तवाल, सुपौत्री अचल श्रद्धानिष्ठ श्री चन्दनमलजी ओस्तवाल, राजनांदगांव (म० प्र०)।

आचार्य श्री की साधना "सत्यं, शिव, सुन्दर" की उपासना से पोषित है। वे जितने गम्भीर तत्त्वद्रष्टा है, उससे अधिक आत्म-शोधी साधक एवं सृजनशील कलाकार है। उनका मनस्तत्त्व गूढ़ चिन्तन की उर्वरस्थली है। उनके हृदय मे साधनो की पवित्र भागीरथी अनवरत प्रवहमान है और उनके चरण-पाद युगल कला के उन्मेष मे संलग्न रहते है।

इस दृष्टि से आचार्य प्रवर साम्ययोग के पुरस्कर्ता और यशशालिनी परम्परा के यशस्वी आचार्य है। अधुनापि साधना एव शिक्षा के पवित्र पथ पर उनका व्यक्तित्व एव कृतित्व जीवनरूपेण समर्पित है। उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व के निर्मल निरन्तर विकासमान समुज्ज्वल जलप्रपात को सीमित शब्द-शृङ्खला मे बाँधना, उसे मलिन करना है। यही कार्य मेरी लेखनी से हुआ है।

अस्तु, इसी मगल कामना के साथ अपनी लेखनी को विराम देना चाहता हूँ कि महिमा मण्डित, समता विभूति आचार्य देव शताधिक आयु प्राप्त कर युग युग तक अपनी साधना की धवल कीर्ति से दिग्-दिगन्त को सुवासित करते रहे। अपनी ज्ञान रश्मियो की प्रशान्त-प्रभा से जन-जन को प्रभास्वर करते रहे तथा अपने समुज्ज्वल चरित्र की शुभ्रज्योत्सना से भूमण्डल पर अमृत की वृष्टि करते हुए "अप्पा सो परमप्पा" के आगम वाक्य का चरम साक्षात्कार प्राप्त करें।

ॐ शान्ति—शान्ति—शान्ति !

• • •

५ १५०० व्यक्ति अपने पुत्र अथवा परिवार के पुरुष सदस्य की शादी मे दहेज न माँगने का सकल्प करे तथा अपनी अपेक्षा से दहेज कम आने पर आगत कन्या के साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नही करने की प्रतिज्ञा करे।

६ राजस्थान सेवा समिति द्वारा सचालित की जाने वाली 'चतुरभुज लाजपतराय' हॉस्पिटल हेतु एक बडी राशि की ध्रुव फण्ड के रूप मे स्थापना करना, जिसके व्याज की आय से जरूरतमन्द रोगियो को नि शुल्क औषधि दिलाई जाय।

उपर्युक्त छ कार्यक्रमो मे प्रथम चार का तो मुख्य रूप से अध्यात्म से ही सम्बन्ध है, क्योकि प्राणियो को अभयदान, तप साधना, दुर्व्यसन परित्याग एव ब्रह्मचर्य आराधन आत्मशुद्धि के प्रमुखतम साधन हैं। शेष दो का सम्बन्ध यद्यपि सामाजिक व्यवस्था से अधिक है, तथापि इन्हे भी अध्यात्म से सर्वथा अलग नही किया जा सकता है क्योकि सामाजिक परिष्कार आध्यात्मिक साधना का भूमिका का कार्य करता है।

इस विशाल आयोजना मे चतुर्थ सूत्र को छोडकर अन्य पाँच सूत्रो मे सघ अधिकाशत सफल रहा। और इस प्रकार इस दीक्षा प्रसग पर त्याग-प्रत्याख्यानो के क्षेत्र मे अहमदावाद सघ ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

आचार्य त्रय का भावपूर्ण मिलन

अहमदावाद प्रवास के उल्लेखनीय प्रसगो मे एक था—नवरगपुरा मे पुन. आचार्य त्रय-समता विभूति आचार्य श्री नानालालजी म० सा०, वरवाला सम्प्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म० सा० एव दरियापुरी आठ कोटि सप्रदाय के आचार्यश्री शान्तिलालजी म० सा० का भावपूर्ण-स्नेहिल मिलन एव बडी दीक्षा का समारोह।

आचार्य त्रय के सौहार्द पूर्ण मिलन का दृश्य देखकर सभी दर्शक विनयाभिव्यक्ति की समर्पणा मे गद्गद् एव भाव-विभोर हो गये। बडी दीक्षा के प्रसग पर भी गुजरात के विभिन्न सम्प्रदायो के दो आचार्य एव १०० से अधिक साधु-साध्वियो की उपस्थिति थी और इस प्रकार तीन-तीन आचार्यों का एक साथ मिलन, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना का मूक सकेत प्रस्तुत कर रहा था। मध्याह्न एव रात्रि मे तीनो आचार्य प्रवर एवं शिष्य समुदाय मे सैद्धान्तिक चर्चाएँ चलती थी। समता-विभूति आचार्य प्रवर (चरितनायक) ने मधुर व्याख्यानी श्री वीरेन्द्र मुनिजी, विद्वान् श्री नन्दार मुनिजी एव अनेक महा-

वर्षीतप के महत्त्व पर प्रवचन सुना एव मागलिक श्रवण कर अपनी गृहस्थीय व्यवस्थानुसार पारणा किया ।

नवरगपुरा की नूतन नवल धर्म छटा को देखकर स्थानीय मंत्री श्री कान्तिभाई ने चातुर्मास की विनती करते हुए गद्गद् स्वरो मे कहा—"आपने एक चातुर्मास नवरगपुरा मे करवु ज पड़से । एटलु वन्धु आनन्द क्यारेज नथी आव्यो जेटलु श्रा दिवसो माँ श्राव्यो । अमारी आ विनती आपने मानवीज पडसे ।"

इस प्रकार ग्रहमदावाद का वर्षावास के पूर्व का प्रवास काल ही अत्यधिक प्रभावपूर्ण ग्रध्यात्म भावनाग्रो से अनुगुञ्जित रहा । आचार्य प्रवर की चारित्र-निष्ठा एव व्यक्तित्व प्रभाव ने गुजरात के विभिन्न सम्प्रदायो के साधु-साध्वी समाज पर अमिट प्रभाव अकित किया ।

• • •

इस वैषम्य के साथ ही आज का विश्व सर्वाधिक ग्रस्त है—मानसिक तनावो से। आज का आम व्यक्ति किसी-न-किसी तनाव से अनुवेष्टित है। वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्षपूर्ण स्थितियो मे वह तनाव-मुक्त नही रह सका है। और इस तनाव ने वहुत अधिक मनोरोगो को उत्पन्न किया है।

अध्यात्म के प्रति उपेक्षा एव सामाजिक सघर्षो ने भी विश्व-समस्याओ मे कम वृद्धि नही की है। मानव-मन की उद्दाम लालसाओ ने आम व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर खीच लिया है, परिणामतः अध्यात्म-साधना के प्रति जनरुचि सहज ही क्षीण होती गई और आज विश्व उस स्थिति मे पहुँच गया है जहाँ आत्म-शान्ति नामक तत्त्व नाम शेष रह गया है।

इतना सब होने पर भी यह मानना पडेगा कि आज के विश्व ने वौद्धिक विकास के प्रतिमान स्थापित किये है। प्रतिभाओ मे बहुमुखता आई है। प्रकृति-विजय का अभियान आरम्भ किया है मानव-प्रज्ञा ने। महासमुद्रो के विराट् वक्ष पर विशाल जलयान ही नही, जहाजी बेड़ो की गर्जना सुनाई दे रही है। पक्षियो की भाँति आज का मानव आकाश को नाप रहा है। यही नही, वह सृष्टि के समस्त रहस्यो को जान लेने के लिए कृतसकल्प है और विकास की ओर द्रुतगति से बढ रहा है, किन्तु दूसरी ओर उसी मानव प्रज्ञा ने हाइड्रोजन एव न्यूट्रान जैसे अणु आयुधो का भी निर्माण किया है, जो विश्व सभ्यता को एक ही ग्रास मे आत्मसात् कर सके। मानव प्रज्ञा की इस स्थिति को देखते हुए आज का जन-मानस प्रश्नाकुल ही अधिक बना है। उसकी तीक्ष्ण प्रज्ञा अनेक सामान्य-असामान्य जिज्ञासाओ से आक्रान्त बनी रहती है। अनेक जटिल-अजटिल प्रश्न उसके मानस में तरगायित होते रहते है।

विश्व की इन सभी गभीर एव पेचीदा समस्याओ पर आचार्य प्रवर ने मीमासापूर्ण चिंतन किया और उसके समाधान के लिए समता दर्शन, समीक्षण ध्यान, जैसे सशक्त आयाम प्रस्तुत किये है। इन सब की सविस्तार व्याख्या के द्वारा, जो आगे के पृष्ठो पर अंकित है, पाठक अपनी समस्याओं का भी समाधान प्राप्त कर सकेंगे।

आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अनुभूतिगत साधना का व्यक्तित्व है। उनकी साधना आत्मनिष्ठ साधना है और आत्मा के चरमान्त स्वरूप की उपलब्धि उनकी साधना का पुनीत लक्ष्य है। अस्तु, जो कुछ विचार-वैभव आचार्य प्रवर से प्राप्त हुआ है, वह आत्म-दर्शन की भूमिका का निदर्शन मात्र है। समस्त अनुभूतियो का अभिव्यजन एव आलेखन असम्भव ही है। अतः अगले पृष्ठो मे हम 'विचार-दर्शन' के माध्यम से आचार्य प्रवर के आन्तरिक व्यक्तित्व की किंचित् झलक प्राप्त कर सकेंगे।

• • •

रहती हैं तथापि मूलकोष से अनुबद्ध व उससे अभिन्न ही होती हैं। जीवन-वृत्त के घटनाक्रमो का भी यही आदर्श होता है। कुछ घटनाएँ क्रम-व्यवस्थित होकर जीवन की अन्त स्थिति का सम्बोध प्रकट करती हैं, तो कुछ वृत्त के बाह्यावरण को उजागर करती हैं। अपेक्षाकृत अधिक खुलापन उन्हे यह रूप दे देता है। फिर भी पखुडियो की सौरभ सदृश्य उनकी गुणवत्ता एव उपादेयता मे किन्चित् भी भेदरेखा नही खीची जा सकती है।

आचार्य श्री का जीवन-सहस्रदल भी विभिन्न अन्तर-बाह्य घटनाओ का समवाय है। उन घटनाओ मे समस्वरता एव समरसता है। वे परस्पर इस तरह अनुबद्ध है कि उन्हे विलग कर पाना शक्य नही है।

पकज के बाह्य-आवरण की कुछ इयत्ता है, किन्तु उसकी सुवास-गुणवत्ता को किसी इयत्ता मे नही बाधा जा सकता है। बाह्य कलेवर विनश्वर है जबकि उसकी सौरभ शाश्वत। पकज के ऊपरी कलेवर के वर्णन मे शब्द का सामर्थ्य है, किन्तु उसकी सौरभ शब्द-तूलिका की परिधि से बाहर है। आचार्य श्री के जीवन सहस्रदल मे कितनी महक है, कितना सुवासित सौन्दर्य है, कितनी कमनीयता है, यह शब्द-अभिव्यजना से परे है।

आचार्य श्री का जीवन सहज साम्ययोगी का जीवन है। वह किसी बधी-बधाई परिपाटी का सरलरेखीय जीवन नही है। वह नवनवोन्मेषी प्रवहमान निर्झर सा जीवन है, जिसमे घुमाव है, कटाव है, तथा युगानुसन्धान के अनुसार नव्य-भव्य सृजन की अभीप्सा है। सक्षेप मे वह एक युग-सधाता युग-पुरुष का जीवन है, जिसका प्रत्येक चरण साधना की ऊँचाइयो-गहराइयो के प्रति पूर्णतया समर्पित है।

"प्रतिक्षण यन्नवतामुपैति तदेवरूप रमणीयताया " इस परिभाषा के अनुसार ज्ञान-दर्शन एव चारित्रिक साधना के क्षेत्र मे प्रतिपल अभिनव प्रयोगो का अनुसन्धान उनका सुपोषित स्वभाव है, जो उन्हे-उनके जीवन वृत्त को रमणीयता का परिवेश प्रदान करता है।

अपने अनुशासित सघ के सर्वतोमुखी विकास के लिये आचार्य प्रवर के ऊर्जस्विल मानस मे नित नूतन प्रयोगो का आविष्कार होता रहता है। यही कारण है कि आचार्य प्रवर की नव-नवोन्मेषी प्रज्ञा का सम्बल प्राप्त कर सघ साधना एव समाज परिष्कार के क्षेत्र मे अनुशासनबद्ध होकर प्रगति-पथ पर द्रुतगति से बढता जा रहा है। सर्वतो महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे प्रत्येक प्रयोग का प्रारभ स्वय से करने के पक्षधर है। उनकी निष्ठापूर्ण अवधारणा है कि अपने को आपवादिक स्थिति मे रखकर किया जाने वाला प्रयोग कभी सफल नही होता है। स्वय का परिष्कार ही जगत्-परिष्कार का सक्षम निमित्त बन सकता है।

द्वितीय खण्ड

विचार-दर्शन

दर्शन-निर्युक्ति

दर्शन मानव मस्तिष्क की विचित्र किन्तु तर्कनिष्ठ उपज है। दर्शन, जीवन और जगत् की विचित्रताओ का पर्यावलोकन करने वाला दिव्य चक्षु है। दर्शन शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है। 'दृश' का अर्थ है देखना। "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" जिसके द्वारा देखा जाये, वह दर्शन कहलाता है। नेत्रो का दर्शन चाक्षुष दर्शन कहलाता है, किन्तु प्रस्तुत मे दर्शन शब्द किन्ही भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। जिन तत्त्वों का साक्षात्कार चर्म-चक्षुओ से नही किया जा सकता, उनका साक्षात्कार दर्शन-चक्षु का विषय क्षेत्र है। सक्षेप मे दर्शन का अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार।

दर्शन की सार्थकता केवल भौतिक पदार्थो की शक्ति-सीमा के परिबोध मे ही नही, अपितु, सृष्टि के चराचर तत्त्वो की अपरिमेयता एव सूक्ष्मता के प्रति अन्तर्दृष्टि के जागरण मे है।

दर्शन का उद्देश्य

विश्व के रगमच पर प्रतिपल घटित होने वाले घटना चक्रो की विविधता, विचित्रता, साश्चर्यता एव रमणीयता का तीक्ष्ण प्रज्ञा से तर्क-पटु विवेचन करना, विश्व मे चेतन-अचेतन-सत्ता का क्या स्वरूप है, उस सत्ता का जीवन और जगत् पर क्या प्रभाव पडता है, प्रकृति प्रदत्त उपादानो की रमणीय व्यवस्थाओ का केन्द्र क्या है, प्रकृति अपने सन्तुलन को कैसे बनाए रखती है आदि प्रश्नों की गहराई मे पहुँच कर उनकी तर्क-सगत व्याख्या करना दर्शन-शास्त्र का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

पाश्चात्य दार्शनिको के अनुसार दर्शन का उद्देश्य है, विश्व की बौद्धिक एव तर्क-सगत व्याख्या प्रस्तुत करना, अर्थात् पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार मानसिक व्यायाम का ही अपर पर्याय दर्शन है। किन्तु पौर्वात्य दर्शन तर्क के साथ श्रद्धा के सबल को समुचित महत्त्व प्रदान करते है, अतएव पूर्व के दर्शन, विशेषकर भारतीय दर्शनो मे श्रद्धा एव तर्क का सुन्दर समन्वय मिलता है। दृश्य एव अदृश्य जागतिक तत्त्वो के प्रति नैसर्गिक श्रद्धा के साथ तर्क-पुरस्सर विवेचना प्रस्तुत करना भारतीय दर्शनो की प्रमुख विशेषता है। तात्पर्य यह है कि भारतीय दर्शन जगत् के साथ जीवन की भी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से भारतीय दर्शन आत्मा एव परमात्मा की सत्ता को उजागार करते है। इस प्रकार यदि भारतीय दर्शन की ऐसी कोई विशेषता है, जो उसे पाश्चात्य दर्शन से पृथक् करती है, तो वह है, आत्मा की परम सत्ता (मोक्ष) का चिन्तन।

वैचारिक परिवेश

आचार्य श्री के परिदृष्ट व्यक्तित्व को 'अन्तर्पथ के यात्री आचार्य श्री नानेश' के प्रथम खड 'जीवन-दर्शन' मे आलेखित करने का प्रयास किया गया है, किन्तु किसी भी व्यक्तित्व के सम्यक् बोध हेतु उसके व्यक्तित्व एव कर्तृत्व दोनो पर दृग्पात करना होता है। व्यक्तित्व जीवन के एक पक्ष को उजागर करता है, तो कर्तृत्व ही ऐसी सशक्त विधा है, जो व्यक्तित्व को स्पष्टतया अभिव्यजित करती है।

कर्तृत्व को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है, एक वैयक्तिक, दूसरा सामष्टिक। जीवन की कुछ कृतियाँ ऐसी होती है, जो स्वय के जीवन से ही अधिक सम्बद्ध होती है। उनका समष्टि पर प्रभाव होना आनुषगिक मात्र होता है, जबकि कुछ कृतियाँ समष्टि के लिए, सामान्य जन-जीवन के लिए उत्प्रेरक होती है, जिनके द्वारा जन चेतना को दिशाबोध प्राप्त होता है।

आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व एव वैयक्तिक कर्तृत्व को इस ग्रथ के प्रथम खण्ड 'जीवन-दर्शन' मे विवेचित किया गया है, किन्तु इतने मात्र से उनके सामष्टिक व्यक्तित्व का आलेखन अपूर्ण ही रहता है अथवा यो कहे इतने श्रम के उपरान्त भी उनके व्यक्तित्व को अभिव्यजना के फलक पर पूर्णतया उकेरा नही जा सका है। उनके व्यक्तित्व का सर्वतोमहत् पक्ष है—विचार-क्राति। उन्होने समष्टि को विचार की एक नई दिशा दी है, जिसे हम क्राति शब्द से अभिहित कर सकते हैं। क्राति का अर्थ होता है– विचारो का सामूहिक एव सशक्त रूपान्तरण। और यह कार्य किया है आचार्य प्रवर के वैचारिक परिवेश ने अपनी वैचारिक क्राति मे उन्होने व्यक्ति एव देश को ही नही, विश्व-समस्याओ को रेखाकित कर उन्हे समाहित करने का मौलिक मार्गदर्शन प्रस्तुत किया है।

आज विश्व की ज्वलन्त समस्याएँ है—मानव-मानव मे व्याप्त विषमता की भेद-रेखाएँ, मानसिक तनाव, सामाजिक विभेद एव जन-जन का प्रश्नाकुल मानस।

आचार्य श्री के उर्वरक ऊर्जस्विल मानस ने विचार-क्राति के रूप मे प्रत्येक समस्या का स्पर्श किया और उनका स्थायी समाधान भी प्रस्तुत किया।

विषमता की धधकती ज्वालाओ मे आज एक राष्ट्र ही नही, समूचा विश्व जल रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के भेद ने समाज, राष्ट्र एव विश्व मे विभेद की सशक्त रेखाएँ खींच दी है।

महावीर-दर्शन की इस सक्षिप्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि समस्त भारतीय दर्शनो मे जैन-दर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली दर्शन है। इस दर्शन की अनूठी एव वस्तुनिष्ठ विशेषताएँ है। अध्यात्म से सम्बन्धित जड़-चेतन, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, आत्मा-परमात्मा तथा संसार-मुक्ति, सभी का सागोपाग तर्क-सगत विवेचन तथा तदनुसार जीवन-सर्जन जैन-दर्शन और जैन-धर्म के प्रथम प्रतिपाद्य है।

विडम्बना यह कि अन्यान्य दर्शनो की तरह जैन-दर्शन की तात्त्विक विवेचना भी बौद्धिक विलास बनकर रह गई है। आज का चिन्तन बौद्धिक विश्लेषण किवा वैचारिक परिधि तक सीमित रह गया है। जीवन की सम्पूर्ण व्यावहारिक समस्याओ-अभीप्साओ का समयोचित तथ्यमूलक समाधान दर्शन की परिधि से बाहर रहता जा रहा है। दर्शन की चर्चा केवल तर्क के रूप में जीवन की नही, मस्तिष्क की खुराक बनकर रह गई है और दर्शन अपने उद्देश्य (सत्य की खोज) से भटक गया है।

वैज्ञानिक दर्शन

यही कारण है कि पौर्वात्य दार्शनिक चिन्तन-प्रणाली की जटिलताओ एवं दुरुहताओं से आज की जन-चेतना असम्पृक्त-सी होती जा रही है, और पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन, जो आज विज्ञान के रूप मे प्रस्तुत है, के प्रति समूचा पौर्वात्य जन-जीवन भी आकर्षित है। तथ्य यह है कि जीवन के चरम एव परम सत्य का आधार विज्ञान कथमपि नही बन सकता। विज्ञान का प्रारम्भ भौतिक जगत् के सत्य तत्त्व की खोज के लिये और तद्द्वारा जीवन मे बाह्य सुख-सुविधाओ और सुरक्षा जुटा लेने के लिये हुआ है। किन्तु विज्ञान अपने प्रारभिक उद्देश्य से भटक कर ठीक विपरीत दिशा की ओर मुड़ गया। उसकी तथाकथित उन्नति, अवनति की पराकाष्ठा बन गई है। आनुमानिक तथ्य के अनुसार ससार के बडे देशो मे वैज्ञानिक प्रयोगो पर होने वाले व्यय का लगभग ९९ प्रतिशत युद्ध और जासूसी के साधनों पर हो रहा है।[1] कैसी विडम्बना है कि जिस विज्ञान से यह अपेक्षा की गई थी कि वह मानव-जाति के लिये अधिक जीवन सामग्री, अधिक रोजगार, अधिक विश्राम और अवकाश, अधिक शान्ति और अधिक सौहार्द तथा पारस्परिक विश्वास का निर्माण करेगा, वही विनाश की सामग्रियो के अम्बार लगाने मे नियुक्त है। क्या मनुष्य की मूल प्रवृत्ति सृजनात्मक होने के बजाय विध्वसात्मक है ?

आज राष्ट्रीय रंगमंच ही नही, सम्पूर्ण जन-मानस त्रस्त है। विश्व युद्धो के सृजन में संलग्न कूटनीति और सर्वनाशी आणविक अस्त्रो की घुड-दौड के

१—नवभारत टाइम्स, वार्षिकाक १९७७।

समता दर्शन

महावीर-दर्शन की इस सक्षिप्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते है कि समस्त भारतीय दर्शनो मे जैन-दर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली दर्शन है। इस दर्शन की अनूठी एव वस्तुनिष्ठ विशेषताएँ है। अध्यात्म से सम्वन्धित जड़-चेतन, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, आत्मा-परमात्मा तथा संसार-मुक्ति, सभी का सागोपांग तर्क-सगत विवेचन तथा तदनुसार जीवन-सर्जन जैन-दर्शन और जैन-धर्म के प्रथम प्रतिपाद्य है।

विडम्बना यह कि अन्यान्य दर्शनो की तरह जैन-दर्शन की तात्त्विक विवेचना भी बौद्धिक विलास बनकर रह गई है। आज का चिन्तन बौद्धिक विश्लेषण किवा वैचारिक परिधि तक सीमित रह गया है। जीवन की सम्पूर्ण व्यावहारिक समस्याओ-अभीप्साओ का समयोचित तथ्यमूलक समाधान दर्शन की परिधि से बाहर रहता जा रहा है। दर्शन की चर्चा केवल तर्क के रूप मे जीवन की नही, मस्तिष्क की खुराक बनकर रह गई है और दर्शन अपने उद्देश्य (सत्य की खोज) से भटक गया है।

वैज्ञानिक दर्शन

यही कारण है कि पौर्वात्य दार्शनिक चिन्तन-प्रणाली की जटिलताओ एवं दुरुहताओ से आज की जन-चेतना असम्पृक्त-सी होती जा रही है, और पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन, जो आज विज्ञान के रूप मे प्रस्तुत है, के प्रति समूचा पौर्वात्य जन-जीवन भी आकर्षित है। तथ्य यह है कि जीवन के चरम एव परम सत्य का आधार विज्ञान कथमपि नही बन सकता। विज्ञान का प्रारम्भ भौतिक जगत् के सत्य तत्त्व की खोज के लिये और तद्द्वारा जीवन मे बाह्य सुख-सुविधाओ और सुरक्षा जुटा लेने के लिये हुआ है। किन्तु विज्ञान अपने प्रारभिक उद्देश्य से भटक कर ठीक विपरीत दिशा की ओर मुड गया। उसकी तथाकथित उन्नति, अवनति की पराकाष्ठा बन गई है। आनुमानिक तथ्य के अनुसार ससार के बडे देशो मे वैज्ञानिक प्रयोगो पर होने वाले व्यय का लगभग ९९ प्रतिशत युद्ध और जासूसी के साधनो पर हो रहा है।[1] कैसी विडम्बना है कि जिस विज्ञान से यह अपेक्षा की गई थी कि वह मानव-जाति के लिये अधिक जीवन सामग्री, अधिक रोजगार, अधिक विश्राम और अवकाश, अधिक शान्ति और अधिक सौहार्द तथा पारस्परिक विश्वास का निर्माण करेगा, वही विनाश की सामग्रियो के अम्बार लगाने मे नियुक्त है। क्या मनुष्य की मूल प्रवृत्ति सृजनात्मक होने के बजाय विध्वसात्मक है ?

आज राष्ट्रीय रगमच ही नही, सम्पूर्ण जन-मानस त्रस्त है। विश्व युद्धो के सृजन में सलग्न कूटनीति और सर्वनाशी आणविक अस्त्रो की घुड़-दौड के

१—नवभारत टाइम्स, वार्षिकाक १९७७।

समता-दर्शन

किसी भी महामानव के महनीय व्यक्तित्व को तब तक सर्वांगीण रूप से नहीं जाना जा सकता, जब तक उसके दार्शनिक विचार अथवा उसकी समाज किंवा राष्ट्रोत्थान के लिये समर्पित दार्शनिक विचारधारा को ठीक से न जान लिया जाय। महान् व्यक्तित्व की गरिमा उनके विचार-वैभव द्वारा ही आंकी जा सकती है। विचार ही उसकी ऐसी धरोहर है जो युग-युग तक उस व्यक्तित्व को अमर रखती है और समाज को निरंतर आलोक प्रदान करती है।

आचार्यश्री एक युगपुरुष हैं और युग पुरुष वही होता है, जो समाज में चली आ रही गली-सड़ी मान्यताओं, मानवता विरोधी रूढ़ धारणाओं को ध्वस्त कर समाज को चिन्तन का नया आलोक प्रदान करे, युगीन समस्याओं का आध्यात्मिक दृष्टि से समयोचित समाधान प्रस्तुत करे तथा जनजीवन में फैली हुई अन्ध श्रद्धा, विषमता एवं दौर्मनस्यपूर्ण परिस्थितियों पर स्थायी समाधान हेतु अनुभूतिमूलक दृष्टि प्रदान करे।

श्रद्धेय आचार्य देव अपने इस दायित्व के निर्वहन में कितने सक्षम रहे हैं, इसे हम उनके द्वारा प्रस्तुत समता-दर्शन की वैचारिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर समझने का प्रयास करेंगे।

आज का जनजीवन जिस विषमता के दलदल में फँस चुका है, अथवा फँसता जा रहा है, वह अत्यन्त शोचनीय है। चारों तरफ हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है प्रत्येक मानव का मन भयाक्रान्त है विषमता की इस विभीषिका के भयंकर परिणामों से उपराम पाने के लिये ही आचार्यश्री ने समता-दर्शन की मौलिक देन समाज के लिये प्रस्तुत की है।

समता-दर्शन के स्वरूप-विश्लेषण एवं तत्सम्बन्धित विवेचन के पूर्व 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति तथा दर्शन-क्षेत्र की वर्तमान दशा पर कुछ चिन्तन अप्रासंगिक नहीं होगा।

वह निश्चित ही दर्शन-जगत् की जीवन्त माँग को पूरी कर सकती है और दर्शन-क्षेत्र के प्रति जो एक उपेक्षा का भाव सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, उसे समाप्त करने मे योगदान कर सकती है ।

आचार्य श्री ने युगीन समस्याओ को अपने अध्यात्म-चिन्तन के व्यापक फलक पर लेकर तोला है और पाया है कि जब तक दर्शन को समता के धरातल पर युगान्तरकारी रूप मे प्रस्तुत नही किया जाएगा, तब तक दर्शन के प्रति विश्व-मानस आश्वस्त नही हो सकता ।

वर्तमान का भयावह विज्ञान

मेरी अपनी दृष्टि से, ऐसे समय मे, समता दर्शन की उपयोगिता और अधिक बढ जाती है, जबकि समूचा वायुमण्डल विषमता के विष से सपृक्त एव विस्फोटक बन गया है । आज इस अध्यात्म-प्रधान सास्कृतिक मानवीयता के नीलाकाश मे भौतिकवाद का विस्फोटक गुब्बारा अपनी चरम सीमा तक फूल कर विनाश के कगार तक पहुँचने को है, क्योकि मानवीय सभ्यता एव सस्कृति को भूमिसात करने वाले विध्वसक अणुओ के ढेर पर हर राष्ट्र का अह ताण्डव नृत्य कर रहा है । सभ्यता और सस्कृति के श्वासो की धडकन सीमातीत रूप से तीव्र हो चली है । पता नही कौन-सा क्षण उसके पर्यवसान की घण्टी बजा दे ।

दो प्रलयकारी महायुद्धो के दुष्परिणाम हम देख चुके है । तीसरे महायुद्ध के घनघोर बादल भी जब कभी तथाकथित राष्ट्राधिपतियो के अमानवीय अन्तराकाश मे मडराने लगते है । शीतयुद्ध तो प्राय: चलते ही रहते है ।

ब्रिटिश विज्ञान-शास्त्री गार्डरेटरेटेलर ने अपनी पुस्तक 'द बायलाजिकल टाइम बम" मे कीटाणु-युद्ध की विभीषिकाओ का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है, "अब इन आयुधो के प्रहार से यह संभव हो गया है कि किसी देश को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्थायी तौर से दुर्बल बनाकर शताब्दियो तक पराधीन रखा जा सके । यह कितनी चिन्ताजनक दयनीय और अमानवीय स्थिति होगी ? अमेरिकी कृमिविज्ञानी साल्वे डोर लूरिया ने यह आशका व्यक्त की है कि अब सिर्फ राजनेता ही नही सामान्य रसायनवेत्ता भी किसी देश अथवा समस्त विश्व को बर्बाद करने की शक्ति से सुसज्जित हो गये है । इससे सार्वभौम विनाश को रोक सकना और भी अधिक जटिल हो गया है ।"

कितनी दर्दनाक एवं भयावह स्थिति मे पहुँच गई, हमारी मानवीय सभ्यता ! आज जिधर दृष्टि दौड़ाई जाय, उधर ही विषमता एव अशान्ति का दौर-दौरा मानव-मानव के अन्त:करण को घेरे खड़ा है । मानवता टुकड़ो-टुकडो मे विभक्त हो चुकी है । हिसा का दानव मानवीय हृदयो को कुचलकर सभ्यता और सस्कृति के रहे-सहे चिह्नों को भी दुर्दश्य किवा अदृश्य बना देना चाहता है ।

सृष्टि के दो प्रमुख घटक हैं, चेतनामय जगत् और अचेतन सृष्टि। जैन दर्शन की भाषा में चेतन एवं जड, सांख्य दर्शन के शब्दों में पुरुष और प्रकृति, वेदान्त के चिन्तन में ब्रह्म एवं माया का विस्तार कहा जाता है।

उपर्युक्त दोनों तत्त्वों के अन्वेषण की मुख्य दो परम्पराएँ कायम हो गई हैं और वे दो परम्पराएँ ही निरन्तर प्रवहमान सरिता की तरह दर्शन-जगत् की दो धाराएँ बन गई हैं, एक पाश्चात्य और दूसरी पौर्वात्य। पाश्चात्य दर्शन भौतिक तत्त्वों के विश्लेषण की गहराई में पहुँचे, तो पौर्वात्य दर्शन चेतन-आत्म तत्त्व के अन्वेषण की दिशा में प्रवृत्त हुए। इसी दृष्टि से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित सभी पौर्वात्य दर्शनों को आत्मवादी दर्शन कहा जाता है।

भारत के प्राय सभी दर्शनों का प्रमुख ध्येय आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन करना रहा है। चेतन एवं परम चेतन की सत्ता को जिस समग्रता एवं सूक्ष्मता से भारतीय दार्शनिकों ने समझने-समझाने का प्रयास किया, वह अपने आप में अनूठा एवं अतुलनीय है।

जैन-दर्शन

सभी भारतीय दर्शनों में जैन-दर्शन का अपना गौरवमय स्थान है। आत्म-तत्त्व की विवेचना में तो इसका सानी कोई दर्शन है ही नहीं, क्योंकि दिव्यद्रष्टा प्रभु महावीर का अध्यात्मवादी दर्शन "आत्मा" का ही दर्शन है। प्रभु महावीर के उपदेश "से आयावाई, एगे आया" जैसे आत्मवादी स्वरों से ही प्रारम्भ होते हैं। आत्मा के सदर्भ में जितनी सूक्ष्म मीमांसा जैनागमों में उपलब्ध होती है, उससे सहज समझा जा सकता है कि आत्मा का स्वरूप विवेचन महावीर का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। इतना होने पर भी वह आत्मा-सम्बन्धी चिन्तन केवल विचारपरक नहीं रहा। विचार के साथ आचारनिष्ठा महावीर दर्शन का प्राण है। महावीर का दर्शन केवल विचारों का एक कोष नहीं, अपितु जीवन जीने की कला है। यहाँ केवल तत्त्व की अन्वेषणा नहीं, उसके साथ तन्मयता (आत्मसात् हो जाना) भी अनिवार्य मानी गई है।

यही कारण है कि वेदान्त और मीमांसा, महायान और हीनयान, सांख्य और योग की तरह महावीर-दर्शन दर्शन और धर्म दो भागों में विभक्त नहीं हुआ और न वहां किसी प्रकार का विरोध ही उपस्थित हुआ। दर्शन और धर्म यहां विचार और आचार के रूप में परस्पर पूरक बनकर अपना सहगामी रहे हैं। महावीर-दर्शन में विचार के साथ आचार की भी अनुपम महिमा तथा गरिमा है। दर्शन द्वारा विचार परिपुष्ट और तद्द्वारा तत्त्व प्रतिपादन होता है, जो धर्म उसके क्रियान्वयन तथा अनुशीलन पर बल देता है।

ताशकद समझौता उसी प्रयास की एक कडी कहा जा सकता है, किन्तु जब तक सर्वमान्य मानवीय धरातल का सैद्धान्तिक भूमिका के रूप मे गठन नही किया जाये, ये छुटपुट प्रयास प्राणवान बनकर स्थायित्व ग्रहण नही कर सकते ।

अध्यात्मवादियों के छुटपुट प्रयास

आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी स्थायी विश्व शान्ति की उपलब्धि हेतु विभिन्न विचारात्मक एवं समायोजनात्मक प्रयास किये गये व किये जा रहे है, किन्तु वहाँ भी कही साम्प्रदायिक हठाग्रह के घेरे मे तो कही व्यक्तिगत अहं के सम्पोषण एव सवर्धन मे ही अवरुद्ध होकर प्राय वे प्रयास इति श्री प्राप्त करते रहे है ।

आचार्य श्री द्वारा स्थायी समाधान

सम्भवत: इन्ही दृष्टिकोणो को सन्मुख रखते हुए जैन-दर्शन को भाषा एवं शैली की दृष्टि से नूतन परिवेश प्रदानकर तथा उसे वैचारिकता की एकान्त परिधि से बाहर निकालकर स्थायी विश्वशान्ति के अमोघ उपाय प्रशस्त करने के लिये एव मानव-मानव मे परिव्याप्त विषमता का सफल समाधान देने हेतु राष्ट्र के महान् मनीषी, सन्त, युगपुरुष, अध्यात्म जगत् के प्रखर चिन्तक, दार्शनिक गरिमा से युक्त, समतादर्शन एव समता-समाज के सृजेता तथा व्याख्याता, तप·-पूत, समतासागर, आचार्यवर्य श्री नानालाल जी म० सा० ने समता-दर्शन का सिद्धात प्रस्तुत किया है। आचार्यश्री द्वारा प्रस्तुत समता-दर्शन वैचारिक, दार्शनिक एव व्यावहारिक क्षेत्रो मे समता का समुद्घोष कर अहिसक उत्क्राति का आधार रखने वाला, साम्प्रदायिक घेरे-बन्दियो से मुक्त, वैचारिक और व्यावहारिक रूपरेखा तैयार करने वाला है । यदि चिन्तको, दार्शनिको तथा समाज व राष्ट्र के कर्णधारो की चेष्टाएँ इस दर्शन के अनुरूप हो, तो मैं समझता हूँ कि, निर्विवादेन विश्व शान्ति का प्रयास एक आश्वस्त दिशा पा सकता है । इसके साथ ही दर्शनजगत् अपने नव्य-भव्य रूप मे पुन स्थायी आलोक-स्तम्भ के रूप मे प्रस्तुत हो सकता है ।

‚ आचार्य श्री की चिन्तन-प्रणाली सम्प्रदायवाद तथा व्यक्तिवाद से उन्मुक्त आत्मिक एव मानवीय मूल्यो को स्पर्श करने वाली है। उनका जीवन चिरपोषित साधना का जीवन है । उनकी साधना एक सच्चे योगी की अनुभूतिपूर्ण साधना है । अत: उनके तप पूत मानस से नि सृत चिरसचित अनुभूतियो से नियोजित समता दर्शन की विचार-भागीरथी जन-जन के हृदय-क्षेत्र मे परिव्याप्त विषमता-जन्य शुष्कता को समता की सरसब्जता मे अवश्य ही बदल सकती है । ˈ

आचार्य प्रवर ने अपनी साधना के समुज्ज्वल अतीत मे जो कुछ चिन्तन, मनन एव अनुभव किया है उसी से समता दर्शन की विचारधारा का आकलन

जिस वैज्ञानिक युग मे हम जी रहे है, इसमे मानवीय मूल्य और मापदण्ड भी बदल गए है। लगता है, अब मानवीय अस्तित्व अनिश्चित है। उसमे न तो निश्चितता रह गई है और न निश्चितता। यायावरो की तरह हम भटक रहे है और अपने ही भविष्य के प्रति आतकित बने हुए है। विज्ञान का तथाकथित विकास यहाँ तक पहुँच गया है कि एक उन्मादी आक्रामक इस धरती की अद्या-वधि सचित सभ्यता को चुटकी बजाते भस्मसात कर सकता है, और समस्त सुरक्षा-साधन निरर्थक होकर ताकते रह सकते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक दर्शन की भयावह स्थिति के सुस्पष्ट चिह्न समक्ष होते हुए भी आज सम्पूर्ण जन-चेतना उसी से आप्लावित एव प्रभावित है तथा पौर्वात्य दर्शन के प्रति एक आम उपेक्षा प्राय. सर्वत्र परिलक्षित हो रही है।

कारण स्पष्ट है कि आज समूचा पौर्वात्य दर्शन केवल वैचारिक सिद्धान्त मात्र रह गया है, और दर्शन जब बौद्धिक परिधि मे ही आबद्ध होकर युगीन समस्याओ का समुचित समाधान प्रस्तुत करने मे अक्षम हो जाता है, तो वह दर्शन की व्युत्पत्ति मूलक परिभाषा से ही कट जाता है।

यह कहा जा चुका है कि दर्शन का अर्थ केवल बौद्धिक व्यायाम ही नही है। जीवन की मौलिक समस्याओ के समाधान पर दृष्टि-बोध देना भी दर्शन के कार्य क्षेत्र मे आता है। इस अर्थ मे दर्शन विचार एव तदनुरूप आचार का भी उत्प्रेरक होता है।

वर्तमान चिन्तन इस बात का प्रबल साक्षी बनता जा रहा है कि आज दर्शन का कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो चुका है और उसकी उपयोगिता भी बढ चुकी है, किन्तु आवश्यकता है दर्शन को अपने पुरातन रूढ अर्थों की परिधि से बाहर निकाल कर उसे युगानुकूल शैली एव भाषा मे प्रस्तुत करने की। आज का जन-जीवन वैषम्य की जिस ज्वाला मे झुलस रहा है, दर्शन के समक्ष यह एक ज्वलन्त चुनौती है। दृष्टिकोण और आचार का सयोजन तो विज्ञान की बुनियाद है, किन्तु जब ध्वस्त आचार पर कोई दर्शन प्रस्तुत कर दिया जाता है, तो उसकी परिणति बडी शोचनीय हो जाती है। वही बात आज के वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन की हो रही है, जो कुटिल युद्ध नीति के अत्याचारी जबडो मे आ फँसा है।

दर्शन का वर्तमान रूप : समता दर्शन

श्रद्धेय आचार्य देव ने समता दर्शन की जो विचार-प्रणाली प्रस्तुत की है,

किया जाए। समता-दर्शन के प्रारभिक प्रतिपादन मे सूत्रात्मक शैली के आधार पर आचार्य श्री ने समता-दर्शन को चार सोपानो मे विभक्त किया है। इन सूत्र-स्पर्शो की विस्तृत विवेचना आचार्य श्री अपने प्रवचनो मे किया करते है। यहाँ प्रस्तुत है आचार्य श्री के शब्दो एव विचारो मे ही समता-सिद्धात का मूल सूत्रात्मक रूप।

समता-दर्शन के चार मुख्य विभाग किये जा सकते है—

(१) सिद्धान्त-दर्शन   (२) जीवन-दर्शन
(३) आत्म-दर्शन और   (४) परमात्म-दर्शन

(१) सिद्धान्त-दर्शन :

मानव ही नही, प्राणि समाज से सबधित सभी क्षेत्रो मे यथार्थ की दृष्टि, वस्तुस्वरूप के उत्तरदायित्व तथा शुद्ध कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान एव सम्यक्, सर्वागीण व सम्पूर्ण चरम विकास की साधना समता सिद्धान्त का मूलाधार है। इस प्रथम सोपान पर सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई है।

(क) समग्र आत्मीय शक्तियो के सम्यक् और सर्वागीण चरम विकास को सदा-सर्वत्र सम्मुख रखना।

(ख) समस्त दुष्प्रवृत्तियो के त्यागपूर्वक सत्साधना मे विश्वास रखना।

(ग) समस्त प्राणिवर्ग का स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार करना।

(घ) समस्त जीवनोपयोगी पदार्थो के यथाविकास यथायोग्य सम-वितरण मे विश्वास रखना।

(ङ) गुण एव कर्म के आधार पर विश्वस्थ प्राणियो के श्रेणीविभाग मे विश्वास रखना।

(च) द्रव्य-सम्पत्ति व सत्ता-प्रधान व्यवस्था के स्थान पर चेतना तथा कर्तव्यनिष्ठा को प्रमुखता देना।

(२) जीवन-दर्शन :

सबके लिए एक व एक के लिए सब तथा जीओ व जीने दो के प्रतिपादक सिद्धान्तो तथा सयम-नियमों को स्वय के व समाज के जीवन मे आचरित करना समता का जीवन्त दर्शन करना होगा।

(क) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सापेक्षवाद (स्याद्वाद) को जीवन मे उतारना।

जिस वैज्ञानिक युग मे हम जी रहे है, इसमे मानवीय मूल्य और मापदण्ड भी वदल गए हैं। लगता है, अव मानवीय अस्तित्व अनिश्चित है। उसमे न तो निश्चितता रह गई है और न निश्चितता। यायावरो की तरह हम भटक रहे हैं और अपने ही भविष्य के प्रति आतकित वने हुए है। विज्ञान का तथाकथित विकास यहाँ तक पहुँच गया है कि एक उन्मादी आक्रामक इस धरती की अद्यावधि सचित सभ्यता को चुटकी वजाते भस्मसात कर सकता है, और समस्त सुरक्षा-साधन निरर्थक होकर ताकते रह सकते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक दर्शन की भयावह स्थिति के सुस्पष्ट चिह्न समक्ष होते हुए भी आज सम्पूर्ण जन-चेतना उसी से आप्लावित एव प्रभावित है तथा पौर्वात्य दर्शन के प्रति एक आम उपेक्षा प्राय सर्वत्र परिलक्षित हो रही है।

कारण स्पष्ट है कि आज समूचा पौर्वात्य दर्शन केवल वैचारिक सिद्धान्त मात्र रह गया है, और दर्शन जव वौद्धिक परिधि मे ही आवद्ध होकर युगीन समस्याओ का समुचित समाधान प्रस्तुत करने मे अक्षम हो जाता है, तो वह दर्शन की व्युत्पत्ति मूलक परिभाषा से ही कट जाता है।

यह कहा जा चुका है कि दर्शन का अर्थ केवल वौद्धिक व्यायाम ही नही है। जीवन की मौलिक समस्याओ के समाधान पर दृष्टि-वोध देना भी दर्शन के कार्य क्षेत्र मे आता है। इस अर्थ मे दर्शन विचार एव तदनुरूप आचार का भी उत्प्रेरक होता है।

वर्तमान चिन्तन इस वात का प्रवल साक्षी वनता जा रहा है कि आज दर्शन का कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो चुका है और उसकी उपयोगिता भी वढ चुकी है, किन्तु आवश्यकता है दर्शन को अपने पुरातन रूढ अर्थो की परिधि से वाहर निकाल कर उसे युगानुकूल शैली एव भाषा मे प्रस्तुत करने की। आज का जन-जीवन वैषम्य की जिस ज्वाला मे झुलस रहा है, दर्शन के समक्ष यह एक ज्वलन्त चुनौती है। दृष्टिकोण और आचार का सयोजन तो विज्ञान की वुनियाद है, किन्तु जव ध्वस्त आचार पर कोई दर्शन प्रस्तुत कर दिया जाता है, तो उसकी परिणति वडी शोचनीय हो जाती है। वही वात आज के वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन की हो रही है, जो कुटिल युद्ध नीति के अत्याचारी जवडो मे आ फँसा है।

दर्शन का वर्तमान रूप : समता दर्शन

श्रद्धेय आचार्य देव ने समता दर्शन की जो विचार-प्रणाली प्रस्तुत की है,

किया जाए। समता-दर्शन के प्रारभिक प्रतिपादन मे सूत्रात्मक शैली के आधार पर आचार्य श्री ने समता-दर्शन को चार सोपानो मे विभक्त किया है। इन सूत्र-स्पर्शो की विस्तृत विवेचना आचार्य श्री अपने प्रवचनो मे किया करते है। यहाँ प्रस्तुत है आचार्य श्री के शब्दो एवं विचारो मे ही समता-सिद्धात का मूल सूत्रात्मक रूप।

समता-दर्शन के चार मुख्य विभाग किये जा सकते है—

(१) सिद्धान्त-दर्शन　　(२) जीवन-दर्शन
(३) आत्म-दर्शन और　　(४) परमात्म-दर्शन

(१) सिद्धान्त-दर्शन :

मानव ही नही, प्राणि समाज से संबधित सभी क्षेत्रो मे यथार्थ की दृष्टि, वस्तुस्वरूप के उत्तरदायित्व तथा शुद्ध कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान एव सम्यक्, सर्वागीण व सम्पूर्ण चरम विकास की साधना समता सिद्धान्त का मूलाधार है। इस प्रथम सोपान पर सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई है।

(क) समग्र आत्मीय शक्तियो के सम्यक् और सर्वागीण चरम विकास को सदा-सर्वत्र सम्मुख रखना।

(ख) समस्त दुष्प्रवृत्तियो के त्यागपूर्वक सत्साधना मे विश्वास रखना।

(ग) समस्त प्राणिवर्ग का स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार करना।

(घ) समस्त जीवनोपयोगी पदार्थो के यथाविकास यथायोग्य सम-वितरण मे विश्वास रखना।

(ङ) गुण एव कर्म के आधार पर विश्वस्थ प्राणियो के श्रेणीविभाग मे विश्वास रखना।

(च) द्रव्य-सम्पत्ति व सत्ता-प्रधान व्यवस्था के स्थान पर चेतना तथा कर्तव्यनिष्ठा को प्रमुखता देना।

(२) जीवन-दर्शन :

सबके लिए एक व एक के लिए सब तथा जीओ व जीने दो के प्रतिपादक सिद्धान्तो तथा संयम-नियमो को स्वय के व समाज के जीवन मे आचरित करना समता का जीवन्त दर्शन करना होगा।

(क) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सापेक्षवाद (स्याद्वाद) को जीवन मे उतारना।

इस विस्फोटक परिस्थिति का सवेदन राजनैतिक एव दार्शनिक मनीषियो के ग्राशकित हृदयो को विगत तीन दशो मे ग्रत्यधिक झकझोर रहा है। राज-नीतिज्ञो की मनश्चेतना व्याकुल हो रही है। दार्शनिको एव सस्कृति-सरक्षको ने सावधान ग्रौर सचेत होकर फूँक-फूँक कर पैर धरने के स्वर •उठाये हैं, राज-नीतिज्ञो ने जलावर्त्तों से बचते हुए नौका खेने का ग्राग्रह प्रदर्शित किया है।

राजनीतिज्ञो द्वारा समाधान

अन्तश्चेतना को उद्वेलित करने वाले इन दृश्यो को देखकर विभिन्न राजनीतिज्ञ भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समस्याओ पर समाधान पाने का निष्फल प्रयास कर रहे हैं। कोई समाजवाद का नारा लगाता है, तो कोई राजतन्त्र का। किन्ही की दृष्टि कम्युनिज्म पर ही केन्द्रित हो जाती है, तो कोई पूँजीपति बन-कर शान्ति को हस्तगत करना चाहता है। लेनिनवाद, माओवाद के मनमोहक नारे लगाये जा रहे हैं।

ऐसे समय मे आवश्यकता है एक ऐसे शान्तिदूत की जो महावीरवत समतापूत, बुद्धवत करुणापूत और जीससवत सेवापूत हो, जिसकी समग्र ग्रन्तश्चेतना ग्रहिंसा एव समता की ग्रन्तश्चेतना हो, जिसका प्रत्येक उद्घोष ग्रहिंसक क्रान्ति के साथ समता का सिंहनाद करने वाला हो, जिसकी हर प्रक्रिया अहिंसात्मक समता की गहराई हो, जिसके जीवन के ग्रणु-अणु से मुखरित होता हुआ समता का समवेत स्वर विषमता से आप्लावित जन-जन के कर्ण-कुहरो को ग्रजस्र वाहिनी समताधारा से भरनेवाला हो, किन्तु समस्या यह है कि उस समता-सर्जक ग्रथवा दर्शक की खोज प्राय भौतिक, सामाजिक एव राजनैतिक क्षेत्रो मे ही की जा रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर से प्राय सभी ग्रन्वेषको की दृष्टि बन्द हो चुकी है जबकि शान्ति एव समता का वास्तविक प्रवाह-स्रोत अध्यात्म ही है।

जब तक इन उद्जन एव हाइड्रोजन विस्फोटको की सर्वनाशकारी प्रति-स्पर्धा का ग्रन्त न ग्रा जाए और उन चिन्तको की दृष्टि, जो ग्रभी तक भौतिक शक्ति मे ही परिबद्ध रही है, मुडकर अध्यात्म की ग्रोर करवट न ले ले, स्थायी शान्ति का सूत्र हस्तगत नही किया जा सकता।

ग्राश्चर्य तो इस बात का है कि ग्रन्तश्चेतना मे सन्निहित शान्ति का ग्रन्वेषण चन्द्रलोक, मगलग्रह एव समुद्र की अतल गहराइयो मे किया जा रहा है। शान्ति बाहर नही है, ग्रन्तर मे उपलब्ध होगी। आवश्यकता है, दृष्टि-परिवर्तन ग्रथवा दृष्टि-समन्वय की।

वैसे राजनीतिज्ञो द्वारा शान्ति-स्थापन के छुटपुट प्रयास राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे यदाकदा दृष्टिगत होते रहे हैं। हिंदुस्तान-पाकिस्तान का

इस विषय मे निरन्तर ध्यान रखते हुए जो व्यक्ति क्रमिक विकास पर चलता है, वह समता-दर्शन की स्थिति से विश्व-कल्याण में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। अत. समता-दर्शन को परिपूर्ण रूप से जीवन मे उतारना चाहिये।

उपर्युक्त चार सूत्र रूप सोपानो को माध्यम बनाकर आचार्यश्री अपने प्रवचनो मे समता-समाज की सर्जना के लिये मौलिक प्रकाश डालते है, जिसका सीधा सम्बन्ध वर्तमान की विषमताजन्य विभीषिका के समाधान से होता है। आचार्य देव सचोट, किन्तु स्पष्ट शब्दो मे फरमाया करते है कि असमानता के नाम से जो सर्वव्यापी विषमता चारो तरफ फैली हुई है, वही जन-जीवन मे घृणा, द्वेष, दौर्मनस्य एव असन्तोष का कारण बनी हुई है। अतः इस स्थिति से उपराम पाने के लिये समता-दर्शन के माध्यम से समता-समाज का निर्माण नितान्त अपेक्षित है। जन-जन मे व्याप्त विषमता की आग की उप-शान्ति के लिये समता-सिद्धान्त-सरिता का शीतल जल ही एक अमोघ उपाय सिद्ध हो सकता है।

समता-सिद्धान्त के प्रतिपादन का मूल उद्देश्य है, विषमताजन्य द्वन्द्वो से उपराम पाना। वर्तमान विषमता की अग्नि का चित्रण आचार्यश्री के भावो मे ही प्रस्तुत है।

वर्तमान विषमता की विभीषिका

आज सारे ससार मे विषमता की सर्वग्राही आग धू-धू करके जल रही है। जहाँ दृष्टि जाती है, वही दिखाई देता है कि हृदय मे अशान्ति, वचन मे विश्रृखलता एव जीवन मे स्वार्थ की विक्षिप्तता ने सब ओर मनुष्यता के कोमल और हार्दिक भावो को आच्छादित कर दिया है। ऐसा लगता है कि चचलता मे गोते लगाता हुआ मनुष्य का मन भ्रष्टता एव विकृति के गर्त की ओर निरन्तर अग्रसर होता ही चला जा रहा है।

सर्वव्यापी विषमता

अमावस्या की मध्य रात्रि का अन्धकार जैसे सर्वव्यापी हो जाता है, वैसी ही सर्वव्यापी यह विषमता हो रही है। क्या व्यक्ति के हृदय की आन्तरिक गहराइयो मे, तो क्या वाह्य ससार मे, व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं समूचे विश्व मे प्रायः यह विपमता फैलती जा रही है—गहराती जा रही है।

विपभरी यह विपमता सवसे पहले मानव-हृदय की भीतरी परतो मे घुस कर उसे क्षत-विक्षत वनाती है और हृदय की सौजन्यता तथा शालीनता को

प्रस्तुत हुआ है। समता दर्शन एक स्पष्ट दार्शनिक एव व्यावहारिक विचार-धारा है। यह वैचारिक हवाई महलो का निर्माण नही है, जहाँ केवल विचार, विचार तक सीमित रह जाय। जीवन की समस्याओ का स्थायी समाधान केवल वैचारिक उत्क्रान्ति से ही नही होगा। उसके लिये जीवन के व्यवहारो की ओर भी दृष्टि दौडानी होगी। इन्ही दृष्टियो को सम्मुख रखते हुए समता दर्शन की विचार-सरणि मे सैद्धातिक एव दार्शनिक पहलुओ के साथ-साथ व्यावहारिक (Practical) प्रयोगात्मक प्रणालियो का भी समुचित समायोजन किया गया है। सक्षेप मे हम यो कह सकते हैं, वर्तमान विपमताजन्य समस्याओ का स्थायी समाधान समता दर्शन की दार्शनिक तथा व्यावहारिक पृष्ठभूमि के आधार पर ढूँढा जा सकता है।

समता दर्शन का उद्देश्य

समता दर्शन का प्रतिपाद्य (उद्देश्य) आध्यात्मिक (धार्मिक), सामाजिक, नैतिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे परिव्याप्त विपमताओ का वैचारिक तथा प्रवृत्त्यात्मक स्थायी समाधान प्रस्तुत कर जन-जन मे समत्व, समन्वय, सामजस्य, सर्वधर्म सद्भाव एव भावात्मक एकता की प्रवल भावनाओ का विस्तार करना है।

आधुनिक सदर्भ मे युगीन पुकार के आधार पर यह नितान्त वाछनीय भी है कि समता, समन्वय, मैत्री एव सद् एकत्व की भावना जन-जनव्यापी वने। किन्तु इसके लिये पहले एक सुदृढ पृष्ठभूमि चाहिये। सशुद्ध वैचारिक भूमिका पर ही कर्मवीज पल्लवित हो सकता है। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" के अनुसार जैसी विचार-निष्ठा होगी, कर्म-प्रस्फुटन भी तदनुरूप ही होगा। अत. समन्वय और समतामूलक व्यवहार अपने लिये एक ऐसी भूमिका चाहते हैं जो एतन्मूलक विचारो से ओतप्रोत हो।

यह तभी सभव है, जवकि प्रवुद्ध जन-मानम समता-दर्शन की वैचारिक पृष्ठभूमिका की परिचिति प्राप्त कर लोकव्यापी अहिंसक सत्सगठनात्मक आदोलन द्वारा उसके व्यावहारिक क्रियात्मक रूप को विचार, उच्चार एव आचार द्वारा आत्मसात् करने का सवल प्रयास करे।

उसके सामान्य परिचय (परिवोध) के लिये समता-दर्शन की वैचारिक एव व्यावहारिक रूपरेखा "समता-दर्शन और व्यवहार" नामक ग्रथ मे साधुमार्गी जैन सघ द्वारा प्रस्तुत की गई है। यह आचार्यदेव के चिन्तन का व्याख्यान वद्ध अनुलेख है।

आचार्य श्री द्वारा प्रतिपादित समता-दर्शन के उद्देश्य एव विधेय को हृदयगम करने के लिये यह आवश्यक है कि उसके मूल सिद्धान्तो पर दृष्टिपात

बहुरूपी विषमता

जितने क्षेत्र–उससे कई गुनी भेद की दीवारे—इस विषमता के कितने रूप है—यह जानना भी आसान नही है ।

राजनीति के क्षेत्र मे नजर फैलावे, तो लगता है कि सैकड़ों वर्षो के कठिन सघर्ष के बाद मनुष्य ने लोकतत्र के रूप मे समानता के कुछ सूत्र बटोरे, किन्तु विषमता के पुजारियो ने मत जैसे समानाधिकार के पवित्र प्रतीक को भी ऐसे व्यवसाय का साधन बना दिया है कि प्राप्त राजनीतिक समानता भी जैसे निरर्थक होती जा रही है । वैसे मत का समानाधिकार साधारण उपलब्धि नही है, इससे स्वस्थ परिवर्तन का चक्र घुमाया जा सकता है । किन्तु देश मे यही चक्र किस दिशा में घुमाया गया और किस तरह घूम रहा है—यह सर्वविदित है ।

विषमता के पंक मे से राजनीति का उद्धार तो नही हुआ सो न सही, किन्तु वह तो जब इस दलदल मे गहरी डूबती जा रही है, तब आर्थिक क्षेत्र मे समता लाने के सशक्त प्रयास किये जा सके—यह और भी अधिक कठिन हो गया है । राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे आर्थिक प्रगति के सारे दावो के बावजूद इस क्षेत्र की विषमता बेहद बढी है । एक ओर भव्य भवनो मे ऐश्वर्य तथा विलास के झूलों मे झूलते इठलाते हुए अति अल्पसख्यक नागरिक तो दूसरी ओर जीवन के आधार-भूत आवश्यक पदार्थो–साधारण भोजन, वस्त्र एवं निवास से भी वचित, कठिनाइयो एव कष्टो मे जर्जर बने करोडों नर-कंकालो का विवश और असहाय समूह । यह कैसी दर्दनाक विषमता है ?

विज्ञान का विकास और विषमता

यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि अनियत्रित विज्ञान के विकास ने मानव-जीवन को असन्तुलित बना दिया है और यह असन्तुलन नित प्रति विषमता को बढाता जा रहा है । विज्ञान जहाँ वास्तव मे निर्माण का साधन बनना चाहिये, वहाँ वह उसके दुरुपयोग से विनाश और महाविनाश का साधन बनता जा रहा है ।

विज्ञान तो विशेष ज्ञान का नाम है और भला स्वय ज्ञान और विज्ञान विनाशकारी कैसे बन सकता है ? उसे विनाशकारी बनाने वाला है उसका अनियंत्रण अथवा उसका दुष्प्रवृत्तियो के बीच सरक्षण । उस्तरे से हजामत बनाई जाती है, मगर वही अगर बन्दर के हाथ मे पड़ जाये तो वह उससे किसी का भी गला काट सकता है ।

(ख) जिस पद पर जीवन रहे, उस पद की मर्यादा को प्रामाणिकता से वहन करने का ध्यान रखना।

(३) आत्म-दर्शन

विश्व मे मुख्य दो तत्त्व हैं—एक चेतन तत्त्व और दूसरा जड तत्त्व। चेतन तत्त्व स्व-पर-प्रकाश-स्वरूप है और जड तत्त्व उससे भिन्न है। इन दोनो तत्त्वो के सम्मिश्रण से कर्म-युक्त ससारी प्राणी-जगत् है। इसमे व्यवस्थित न्यूनाधिक कलापूर्ण विकासशीलता आत्मा का प्रतीक है और घुणाक्षर-न्याय के तरीके से वननेवाली स्थिति का प्रतीक प्राय जड तत्त्व है।

सम्यक् आचरण से आत्मा का साक्षात्कार चिन्तन, मनन व स्वानुभूति द्वारा करना आत्म-दर्शन है। इसके लिये निम्नोक्त भावना एव नियमितता आवश्यक है—

(क) प्रात काल सूर्योदय के पहले कम-से-कम एक घण्टा आत्म-दर्शन के लिये निर्धारित करना।

(ख) जो भी घण्टा, जिन मिनिटो से नियुक्त किया जाये, ठीक उन्ही मिनिटो का हमेशा ध्यान रखकर साधना मे वैठना।

(ग) साधना के समय पापकारी प्रवृत्तियो का निरोध करना और सत्प्रवृत्तियो को आचरण मे लाना।

(घ) समस्त प्राणिवर्ग को आत्मा के तुल्य समझना।

जैसा सुख-दु ख अपने को होता है अर्थात् सुख प्रिय और दु ख अप्रिय लगता है, वैसा ही अन्य प्राणियो को भी होता है। अत हम किसी को दु ख न दे। सवको सुख हो, इस भावना से अपनी सम्यक् प्रवृत्ति का ध्यान रखना।

किसी भी जीव को हनन करने की भावना रखना अपने आपका हनन करना है। दूसरो के सुख मे अपना सुख समझना और कष्ट मे अपना कष्ट समझना परमावश्यक है। इस प्रकार आत्म-दर्शन की भावना को यथास्थान सम्यक् रीति से आगे वढाते रहना चाहिये तथा इन भावनाओ को पुष्ट करने के लिए सत्साहित्य का यथावकाश अध्ययन करना चाहिये।

(४) परमात्म-दर्शन .

रागद्वेष, आदि विकारो के समूल नाशपूर्वक चरम विकास पर पहुँचने वाली आत्मा सही अर्थ मे परमात्म-दर्शन को प्राप्त होती है और परमात्म-दर्शन पद प्राप्त आत्मा ही समग्र आत्मीय तथा अनन्त गुणो का उपयोग करती हुई जगत् मे मगलमय कल्याण अवस्था की आदर्श स्थिति उपस्थित करती है।

है, लेकिन जिसके पास काफी कुछ है, वह भी और अधिक पा लेने के लिये और पाते रहने के लिये पागल बना हुआ है। जितना वह पाता है, उसकी तृष्णा उससे कई गुनी अधिक बढती जाती है और फिर सारे कर्त्तव्यो को भूलकर वह और अधिक पाना चाहता है। सिर्फ स्वय के लिये वह पाता रहता है, या यो कहे कि वह लूटता रहता है तो एक शक्तिशाली की लूट का असर हजारो के अभावो मे फूटता है। विषमता की दूरियाँ इसी तरह आज तीखी बनती जा रही है।

आज आदमी धन की लिप्सा मे पागल है, सत्ता की लिप्सा मे मत्त बन रहा है, तो यश और झूठे यश की लिप्सा मे अपने अन्तर को कालिमामय बनाता जा रहा है। सभी जगह सिर्फ अपने लिये वह लेना ही लेना सीख गया है। भोग उसका प्रधान धर्म बन गया है, त्याग से उसकी निष्ठा उठती जा रही है और यही सारी विषमता का मूल है। आज का व्यापार और व्यवसाय इसी कारण नैतिकता की लीक से हटकर शोषण एवं उत्पीड़न का साधन बनता जा रहा है। धन कम हाथो मे अधिक और अधिक हाथो मे कम-से-कम होता जा रहा है। इसका नतीजा है कि कुछ सम्पन्न लोग विलास की कगार पर इठलाते है, तो अधिक-सख्य जन अपनी प्रतिभा, अपनी गुणशीलता और अपने सामान्य विकास की बलि चढाकर विनाश की कगार पर खडे है।

धन-लिप्सा, सत्ता-लिप्सा में बदल कर और अधिक आक्रामक बन रही है। आँखे मूँदकर सत्ता-लिप्सा अपना अणुबम इस तरह गिराती है कि वहाँ दोषी और निर्दोष के विनाश मे भी कोई भेद नही है। सत्तालिप्सु एक तरह से राक्षस हो जाता है कि उसे अपनी कुर्सी से मतलब—फिर दूसरो का कितना अहित होता है, यह सब उसके लिये बेमतलब रह जाता है। यश-लिप्सा इस परिप्रेक्ष्य मे और अधिक भयानक हो जाती है। ये लिप्साये ही बडा-से-बडा रूप धारण करती हुई आज संसार को विषमतम बनाए हुए है।

विषमता का मूल कहाँ ?

सारभूत एक वाक्य मे कहा जाय तो इस सर्वव्यापिनी पिशाचनी विषमता का मूल मनुष्य की मनोवृत्ति मे है। जैसे हजारो गज भूमि पर फैले एक वट वृक्ष का बीज राई जितना ही होता है, उसी प्रकार इस विषमता का बीज भी छोटा ही है, किन्तु है कठिन अवश्य। मनुष्य की मनोवृत्ति मे जन्मा और पनपा यह बीज बाह्य और आन्तरिक जगत् मे वट वृक्ष की तरह प्रस्फुटित होकर फैलता है और हर क्षेत्र में अपनी विषमता की शाखाएँ एव उपशाखाएँ विस्तारित करता है।

'समता-दर्शन और व्यवहार' पुस्तक के उपर्युक्त कुछ उद्धरणो से समता-

(ख) जिस पद पर जीवन रहे, उस पद की मर्यादा को प्रामाणिकता से वहन करने का ध्यान रखना।

(३) आत्म-दर्शन

विश्व मे मुख्य दो तत्त्व हैं—एक चेतन तत्त्व और दूसरा जड़ तत्त्व। चेतन तत्त्व स्व-पर-प्रकाश-स्वरूप है और जड तत्त्व उससे भिन्न है। इन दोनो तत्त्वो के सम्मिश्रण से कर्म-युक्त ससारी प्राणी-जगत् है। इसमे व्यवस्थित न्यूनाधिक कलापूर्ण विकासशीलता आत्मा का प्रतीक है और घुणाक्षर-न्याय के तरीके से बननेवाली स्थिति का प्रतीक प्राय जड तत्त्व है।

सम्यक् आचरण से आत्मा का साक्षात्कार चिन्तन, मनन व स्वानुभूति द्वारा करना आत्म-दर्शन है। इसके लिये निम्नोक्त भावना एव नियमितता आवश्यक है—

(क) प्रात काल सूर्योदय के पहले कम-से-कम एक घण्टा आत्म-दर्शन के लिये निर्धारित करना।

(ख) जो भी घण्टा, जिन मिनिटो से नियुक्त किया जाये, ठीक उन्ही मिनिटो का हमेशा ध्यान रखकर साधना मे बैठना।

(ग) साधना के समय पापकारी प्रवृत्तियो का निरोध करना और सत्प्रवृत्तियो को आचरण मे लाना।

(घ) समस्त प्राणिवर्ग को आत्मा के तुल्य समझना।

जैसा सुख-दु.ख अपने को होता है अर्थात् सुख प्रिय और दु.ख अप्रिय लगता है, वैसा ही अन्य प्राणियो को भी होता है। अत हम किसी को दु.ख न दे। सबको सुख हो, इस भावना से अपनी सम्यक् प्रवृत्ति का ध्यान रखना।

किसी भी जीव को हनन करने की भावना रखना अपने आपका हनन करना है। दूसरो के सुख मे अपना सुख समझना और कष्ट मे अपना कष्ट समझना परमावश्यक है। इस प्रकार आत्म-दर्शन की भावना को यथास्थान सम्यक् रीति से आगे बढाते रहना चाहिये तथा इन भावनाओं को पुष्ट करने के लिए सत्साहित्य का यथावकाश अध्ययन करना चाहिये।

(४) परमात्म-दर्शन

रागद्वेष, आदि विकारो के समूल नाशपूर्वक चरम विकास पर पहुँचने वाली आत्मा सही अर्थ मे परमात्म-दर्शन को प्राप्त होती है और परमात्म-दर्शन पद प्राप्त आत्मा ही समग्र आत्मीय तथा अनन्त गुणो का उपयोग करती हुई जगत् मे मगलमय कल्याण अवस्था की आदर्श स्थिति उपस्थित करती है।

प्राणी की आत्मा हो या सिद्ध भगवान् की पूर्ण विकसित आत्मा। दोनों में वर्तमान समय की जो विषमता है, वह कर्मजन्य है। कुविचारो एवं कुप्रवृत्तियो का मैला अविकसित अवस्था मे आत्मा के साथ सलग्न होने से उसका स्वरूप भी मैला हो जाता है और जैसे मैले दर्पण मे प्रतिविम्व नही दिखाई देता, उसी तरह मैली आत्मा भी श्रीहीन बनी रहती है। तो आध्यात्मिक समता यह है कि इस मैल को दूर करके आत्मा को अपने मूल निर्मल स्वरूप मे पहुँचाया जाय।

एक-एक आत्मा इस तरह समता की ओर मुडे तो दूसरी ओर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व मे भी ऐसा समतामय वातावरण वनाया जाय जिसके प्रभाव से समूहगत समता भी सशक्त बनकर समग्र जीवन को समतामुखी बना दे। राजनीति मे समानता, अर्थनीति मे समानता और समाजनीति मे समानता के जब पग उठाये जायेंगे और उसे अधिक-से-अधिक वास्तविक रूप दिया जायेगा, तो समता की द्विधारा बहेगी—भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। तब भौतिकता और आध्यात्मिकता संघर्षशील न रहकर एक दूसरे की पूरक बन जायेगी जिसका समन्वित रूप जीवन के बाह्य और अन्तर को समतामय बना देगा।

यह परिवर्तन समाजवाद या साम्यवाद से आवे अथवा अन्य विचार के क्रियान्वयन से—किन्तु लक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिये कि मानवीय गुणों की अभिवृद्धि के साथ सासारिक व्यवस्था में अधिकाधिक समता का प्रवेश होना और ऐसी समता का जो मानव-जीवन के आभ्यन्तर को न सिर्फ सन्तुलित रखे, बल्कि उसे संयम-पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी करे। धरातल जब समतल और साफ होता है तो कमजोर आदमी भी उस पर ठीक व तेज चाल से चल सकता है, किन्तु इसके विपरीत अगर धरातल ऊबडखाबड़ और कँटीला-पथरीला हो तो मजबूत आदमी को भी उस पर भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा।

व्यक्ति की सक्षमता का तालमेल यदि सामाजिक विकास के साथ बैठ जाता है तो व्यक्ति की क्षमता भी कई गुनी बढ जाती है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध

यो देखा जाय तो समाज कुछ भी नही है। व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर ही तो समाज की रचना करते है, फिर व्यक्ति से विलग समाज का अस्तित्व कहाँ है ? किन्तु सभी के अनुभव मे आता होगा कि व्यक्ति की शक्ति प्रत्यक्ष दीखती है, फिर भी समूह की शक्ति उससे ऊपर होती है, जो व्यक्ति की शक्ति को नियंत्रित भी करती है। एक व्यक्ति एक संगठन की स्थापना करता है—उसके

नष्ट कर देती है। जो हृदय समता की रसधारा मे समरस बनकर न केवल अपने भीतर, बल्कि बाहर भी सब ठौर आनन्द की उमग उत्पन्न कर सकता है, वही हृदय विषमता की आग मे जलकर स्वय तो काला-कलूटा बनता ही है, किन्तु उस कालिमा को बाह्य वातावरण मे भी चारो ओर विस्तारित कर देता है।

फैलाव व्यक्ति से विश्व तक

यह विषमता इस तरह व्यक्ति के हृदय मे पोषण प्राप्त करके जब बाहर फूटती है, तो उसका सबसे पहला आक्रमण परिवार पर होता है, क्योकि परिवार ही आधारगत घटक है। परिवार में जो रक्त-प्रभाव का सहज स्नेह होता है, वह भी विषम विचारो एव वृत्तियो में पडकर विषाक्त बन जाता है।

परिवार की सहृदयता एव स्नेहिल वृत्ति को लूटती हुई विषमता जब आगे फैलती है, तो वह समाज और राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रो में भेद-भाव व पक्ष-पात की असख्य दीवारे खड़ी कर देती है और पग-पग पर पतन की खाइयाँ खोद देती है। जिन क्षेत्रो से वास्तव मे दुर्बलता के क्षणो मे मनुष्य को सम्हलने और उठने का सहारा मिलना चाहिये, वे ही क्षण आज उसकी अपनी ही लगाई हुई आग में जलते हुए उसकी जलन मे वृद्धि ही कर रहे हैं।

सहकार के सूत्र मे अतीत से बधे हुए भारत पर ही यदि दृष्टिपात करे, तो क्या यह स्पष्ट नही होगा कि ज्यो-ज्यो सब ओर विषमता पसरती जा रही है, त्यो-त्यो सहकार की कडियाँ ही नही टूट रही है बल्कि मानवीय सद्‌गुणो का शनै. शनै. ह्रास भी होता चला जा रहा है। विषमता के वशीभूत होकर क्या आज सामान्यतया भारतीय जन हृदयहीन, गुणहीन और कर्त्तव्यहीन नही होता जा रहा है ?

जहाँ विभिन्न राष्ट्र विषमता के जाल मे ग्रस्त होकर अपने स्वार्थों को अन्तर्राष्ट्रीय हित से ऊपर उठाते जा रहे हैं, तो उसका स्वाभाविक परिणाम सबके सामने है। वियतनाम-युद्ध, जो अभी-अभी समाप्त हुआ है, क्या मानव सभ्यता के भाल पर सदैव कलक के रूप मे नही बना रहेगा, जहाँ व्यक्तियो और राष्ट्रो की पशुता ने नगा नृत्य किया था। युद्ध और विनाश—यह विश्व-गत विषमता का खुला परिणाम होता है। और नित प्रति प्रकट होने वाले परिणामो से स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि व्यक्ति से लेकर विश्व तक समूचे रूप से प्राय यह विषमता फैली हुई है। इसने विश्व के कोने-कोने मे आत्मीयता का मरण-घण्टा बजा दिया है।

सशक्त कारण होती है। समता का व्यवहार करे—ऐसी जागृति होना भी अनिवार्य है।

समता का मूल्यांकन

समता या समानता का कोई यह अर्थ ले कि सभी लोग एक ही विचार के या एक से शरीर के बन जावे अथवा बिल्कुल एक-सी ही स्थिति मे रखे जावे तो यह न सभव है और न ही व्यावहारिक। एक ही विचार हो तो बिना आदान-प्रदान, चिन्तन और सघर्ष के विचार का विकासशील प्रवाह ही रुक जायगा। इसी तरह आकृति, शरीर अथवा सस्कारो मे भी समानपने की सृष्टि सभव नही।

समता का अर्थ है कि पहले समतामय दृष्टि बने तो यही दृष्टि सौम्यता पूर्वक कृति मे उतरेगी। इस तरह समता समानता की वाहक बन सकती है। आप ऐसे परिवार को लीजिये, जिसमे पुत्र अर्थ या प्रभाव की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो में हो सकते है, किन्तु सब पर पिता की जो दृष्टि होगी, वह समतामय होगी। एक अच्छा पिता ऐसा ही करता है। उस समता से समानता भी आ सकेगी।

समता कारण रूप है, तो समानता कार्यरूप. क्योकि समता मन के धरातल पर जन्म लेकर मनुष्य को भावुक बनाती है तो वही भावुकता फिर मनुष्य के कार्यो पर असर डाल कर उसे समान स्थितियो के निर्माण मे सक्रिय सहायता देती है। जीवन मे जब समता आती है तो सारे प्राणियों के प्रति सम-भाव का निर्माण होता है। तब अनुभूति यह होती है कि बाहर का सुख हो या दु ख, दोनो अवस्थाओ मे समभाव रहे—यह स्वय के साथ-के-साथ की स्थिति। अन्य सभी प्राणियो को आत्म-तुल्य मानकर उनके सुख-दु ख मे सहयोगी बने—यह दूसरो के साथ व्यवहार करने की स्थिति। ये दोनों स्थितियाँ जब पुष्ट बनती है, तो यह मानना चाहिये कि जीवन समतामय बना रहेगा। कारण कि सही पुष्ट भावना आचरण में उतरकर व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति की दो राहो पर विषमता को नष्ट करती हुई समता की सृष्टि करती है।

समता का आविर्भाव कब ?

समता का श्रीगणेश चूँकि मन से होना चाहिये, इसलिये मन की दो वृत्तियाँ प्रमुख होती है—राग और द्वेष। ये दोनों विरोधी वृत्तियाँ है। जिसे आप चाहते है उसके प्रति राग होता है। राग से मोह और पक्षपात जन्म लेता है। जिसे आप नही चाहते उसके प्रति द्वेष आता है। द्वेष से कलुष, प्रतिशोध और हिंसा पैदा होती है। ये दोनो वृत्तियाँ मन को चंचल बनाती रहती है तथा मनुष्य को स्थिरचित्ती एव स्थिरधर्मी बनने से रोकती है। चंचलता से

विषमताजन्य समाज मे विज्ञान का जितना विकास हुआ है, वह बराबर बन्दर स्वभावी लोगो के हाथ मे पडता रहा है। आखिर विज्ञान एक शक्ति है, इसके नये-नये अन्वेषण और अनुसधान शक्ति के नये-नये स्रोतो को प्रगट करते हैं। ये ही स्रोत अगर सदाशयी और त्यागी लोगो के नियत्रण मे आ जाये, तो उनसे समता की ओर गति की जाकर सामूहिक कल्याण की साधना की जा सकती है। परन्तु आज तो यह शक्ति स्वार्थ और भोग के पडो के हाथो मे है, जिसका परिणाम है कि तत्त्व अधिक-से-अधिक शक्तिशाली होकर इस शक्ति का अपनी सत्ता और अपना वर्चस्व बढाने मे प्रयोग कर रहे हैं।

शक्ति स्रोतो का असन्तुलन

वैज्ञानिक शक्तियो का यह दुरुपयोग, सभी क्षेत्रो मे निरन्तर विषमता मे वृद्धि करता जा रहा है। हमारी सस्कृति का जो मूलाधार गुण और कर्म पर टिकाया गया था, वह इस असन्तुलित वातावरण के बीच उखडता जा रहा है। शक्ति-स्रोतो के इस असन्तुलन का सीधा प्रभाव यह दिखाई दे रहा है कि योग्य को योग्य नही मिलता और अयोग्य सारा योग्य हडप जाता है। योग्य हताश होकर निष्क्रिय होता जा रहा है और अयोग्य अपनी अयोग्यता का ताडव नृत्य कर रहा है।

विलास और विनाश की विषमता

ससार की बाह्य परिस्थितियो मे विलास और विनाश की विषमता आज पतन के दो अलग-अलग कगारो पर खडी हुई है। विलास की कगार पर खडा इन्सान अट्टहास कर रहा है तो विनाश की कगार पर खडा इन्सान इतना व्यथाग्रस्त है कि दोनो को यह भान नही है कि वे किसी भी क्षण पतन की खाई मे गिर सकते है।

एक विहगावलोकन करें इस विषम दृश्य पर कि स्वार्थ और भोग की लिप्सा के पीछे पागलपन किस सीमा तक बढता जा रहा है। भारतीय दर्शन-शास्त्रो ने तृष्णा को वैतरणी नदी कहा है, ऐसी नदी जिसका कही अन्त नही।

तैरते जाइये, तैरते—न कूल, न किनारा। एक पश्चिमी दार्शनिक ने भी इसी दृष्टि से मनुष्य को उसकी स्वार्थ वृत्ति के कारण भेड़िया कहा है। यह वृत्ति जितनी अनियत्रित होती है, उतनी ही यह विनाश रूपी होती हुई अधिकाधिक भयावह होती जाती है।

वर्तमान युग मे सन्तोष की सीमाएँ टूट गई हैं और वितृष्णा व्यापक हो रही है। जिसके पास कुछ नही है—वह आवश्यकता के मारे कुछ पाना चाहता

समूह एकरूपता की अनुभूति ले सकता है। वाह्य दृष्टि की विषमता इसी भाव एव विचार-समता के दृढ आधार पर समाप्त की जा सकती है।

समता दर्शन का व्यावहारिक रूप

अधिकाश में दार्शनिक सिद्धात विचारो तक सीमित रह जाते हैं, किन्तु विचार जब तक आचरण मे ढले नही, तब तक उनकी उपयोगिता संदिग्ध ही बनी रहती है। हम देखते है दर्शन-क्षेत्र जितना विचारो मे परिष्कृत हुआ, उतना आचार मे नही। इसीलिये उसकी उपयोगिता आज उपेक्षा का कारण बनी हुई है। आचार्य देव ने इस दृष्टि पर अत्यन्त गम्भीर मनन एव मन्थन किया और पाया कि समता-दर्शन भी यदि विचारो का एक कोष अथवा हवाई महल ही बना रहा, तो उसकी कोई उपयोगिता नही रह जायगी। किसी भी सिद्धान्त की व्यावहारिक कसौटी यही है कि सामान्य जन-जीवन तथा उसकी सामयिक समस्याओ पर उसका क्या और कैसा प्रभाव पडता है, साथ ही उन दार्शनिक सिद्धान्तो का सामान्य जन-चेतना अपने आचरणो के द्वारा किस रूप मे अनुसरण कर सकती है।

इसी दृष्टिकोण से समता-दर्शन के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ उसके रचनात्मक रूप अर्थात् क्रिया (आचरण) पक्ष पर भी आचार्य श्री ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।

समता दर्शन अपने नवीन परिप्रेक्ष्य में

समता, साम्य या समानता मानव जीवन एवं मानव समाज का शाश्वत दर्शन है। आध्यात्मिक या धार्मिक क्षेत्र हो अथवा आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक—सभी का लक्ष्य समता है, क्योकि समता मानवमन के मूल मे है। इसी कारण कृत्रिम विषमता की समाप्ति और समता की अवाप्ति सभी को अभीष्ट होती है। जिस प्रकार आत्माएँ मूल में समान होती है, किन्तु कर्मों का मैल उनमे विभेद पैदा करता है, वैसे ही मानव-सम्बन्धो मे भी विषमता एव विकार उत्पन्न होते हैं। इन्हे सयम और नियम द्वारा समान बनाया जा सकता है। उसी प्रकार समग्र मानव समाज मे भी स्वस्थ नियम-प्रणाली एव सुदृढ सयम की सहायता से समाजगत समता का प्रसारण किया जा सकता है।

आज जितनी अधिक विषमता है, समता की माँग भी उतनी ही अधिक गहरी है। काश, कि हम उसे सुन और महसूस कर सके तथा समता-दर्शन के विचार को व्यापक व्यवहार मे ढाल सके। विचार पहले और बाद मे उस पर व्यवहार—यही क्रम सुव्यवस्था का परिचायक होता है। वर्तमान विषमता के मूल मे सत्ता व सम्पत्ति पर व्यक्तिगत या पार्टीगत लिप्सा की प्रबलता ही विशेष

दर्शन का उद्देश्य सुस्पष्ट प्रकाशित हो जाता है। किन्तु किसी भी सिद्धान्त के उद्देश्य प्रतिपादन से ही समस्याओ का समाधान नही हो जाता है, चाहे वे उद्देश्य कितने ही सुन्दर क्यो न हो। अतः उद्देश्य के साथ विधेय एवं उसके क्रियात्मक पक्ष को उजागर करना भी सिद्धान्त की मौलिक प्रतिपादना के लिये आवश्यक है।

प्रस्तुत है आचार्य देव के भावो मे ही उपर्युक्त विषमता का स्थायी एव रचनात्मक समाधान।

एक जटिल प्रश्न ?

"वर्तमान विषमता की विभीषिका मे इसलिये यह जटिल प्रश्न पैदा होता है कि क्या व्यक्ति और समाज के जीवन को इस विषमता के चहुँमुखी नागपाश से मुक्त बनाया जा सकता है ? क्या समग्र जीवन को न सिर्फ अन्तर्जगत मे, बल्कि बाहर की दुनिया मे भी समता, सहयोगिता और सदाशयता पर खडा किया जा सकता है ? और क्या उल्लास, उत्साह और उन्नति के द्वार सभी के लिये समान रूप से खोले जा सकते है ?

प्रश्न उत्तर मांगता है

"प्रश्न गहरा है—जटिल भी है, किन्तु प्रबुद्ध वर्ग के सद् विवेक पर चोट करने वाला है—काश, कि इसे वैसी ही गहरी अनुभूति से समझने और अपनी कार्य-शक्ति को कर्मठ बनाने का यत्न किया जाये।

यह प्रश्न उत्तर मागता है—समाधान चाहता है। यह माग गूंजती है—उत्तर दीजिये, समाधान कीजिये अथवा अपने और अपने समस्त संगठनो के भविष्य को खतरे मे डालने के लिये तैयार हो जाइये।

इस गूंज को सुनिये और उत्तर तथा समाधान खोजिये। प्रश्न विषमता का है—उत्तर समता मे निहित है।

समतामय जीवन

समता शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपो मे लिया जाता है। वैसे मूल शब्द सम है, जिसका अर्थ समान होता है। अब यह समानता जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे किस-किस रूप मे हो—इसका विविध विश्लेषण किया जा सकता है।

सबसे पहले आध्यात्मिक क्षेत्र की समानता पर सोचें तो अपने मूल स्वरूप की दृष्टि मे सारी आत्माएँ समान होती हैं—चाहे वह एकेन्द्रिय याने अविकसित

मानव-समाज ही नही, समूचा प्राणी-समाज भी इन स्वरो में आह्लादित हो उठेगा। जीवन के सभी क्षेत्रो मे फैली विपमता के विरुद्ध मनुष्य को सघर्प करना ही होगा, क्योंकि मनुष्यता का इस विषम वातावरण मे निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।

यह ध्रुव सत्य है कि मनुष्य गिरता, उठता और बदलता रहेगा, किन्तु समूचे तौर पर मनुष्यता कभी समाप्त नही हो सकेगी और आज भी मनुष्यता का अस्तित्व डूबेगा नही। वह सो सकती है, मर नही सकती और अब समय आ गया है, जब मनुष्यता की सजीवता लेकर मनुष्य को उठना होगा, जागना होगा और क्रान्ति की पताका को उठाकर परिवर्तन का चक्र घुमाना होगा। क्रान्ति यही कि वर्तमान विषमता जन्य सामाजिक मूल्यो को हटाकर समता के नये मानवीय मूल्यो की स्थापना की जाय। इसके लिये प्रवुद्ध एव युवा वर्ग को विशेष रूप से आगे आना होगा और व्यापक जागरण का शख फूंकना होगा जिससे समता के समरस स्वर उद्भूत हो सके।

जीवन-दर्शन की क्रियाशील प्रेरणा

क्रियाहीन ज्ञान पगु होता है, तो ज्ञानहीन क्रिया निरर्थक। जानना, मानना और करना का सतत क्रम ही जीवन को सार्थक बनाता है। जानने को वास्तविकता का ज्ञान करले और उस जाने हुए को चिन्तन की कसौटी पर कसकर खरा भी पहचान ले और उसके बाद करने के नाम पर निष्क्रियता धार ले, तो उससे तो कुछ बनने वाला नही है। यह दूसरी बात है कि सही जानने और मानने के बाद करने की सबल प्रेरणा जागती ही है। सम्यक् ज्ञान और सयम्क् दर्शन का बल सम्यक् चरित्र का अनुप्रेरक अवश्य ही बनता है, फिर भी कर्मठता का तीव्र अनुभाव उत्पन्न होना ही चाहिये।

सिद्धान्त भी वही प्रेरणोत्पादक कहलाता है, जो तदनुकूल कार्य-क्षमता को जागृत करता है। जीवन-निर्माण का यही मूल मत्र होता है। ज्ञान और क्रिया की सयुक्त शक्ति ही मनुष्य को बन्धनो से मुक्त करती है। चाहे वे बन्धन कैसे भी हो, विषमता या तज्जन्य विकारो के ही क्यो न हो, इस शक्ति के सामने वे कभी भी टिके नही रह सकते है।

दृढ एव अटल संकल्प के साथ जब इस शक्ति का पग आगे बढता है, तो विषमता से मुक्ति भी सहज बन जाती है। व्यक्ति का अटल संकल्प अपने क्रम मे परिवार, समाज, राष्ट्र एव समूचे विश्व की सकल्प शक्ति को प्राणवान बनाता है और यही सामूहिक प्राण शक्ति समाजगत प्रभाव लेकर ज्ञान एव क्रियाहीन व्यक्तियो को सावधान बनाती है। व्यक्ति के जागने से विकास का

नियमोपनियम बनाता है तथा उनके अनुपालन के लिये दण्ड-व्यवस्था भी कायम करता है। एक तरह से सगठन का वह जनक है, फिर भी क्या वह स्वय ही नियम-भग करके दण्ड से बच सकता है ? यही शक्ति समाज की शक्ति कहलाती है। जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से वरण करता है। राष्ट्रीय सरकारो के सविधानो मे यही परिपाटी होती है।

जब-जब व्यक्ति स्वस्थ धारा से अलग हटकर निरकुश होने लगता है—शक्ति के मद मे झूमकर अनीति पर उतारू होता है, तब-तब यही सामाजिक शक्ति उस पर अकुश लगाती है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता होगा कि कई बार वह कुकर्म करने का निश्चय करके भी इसी विचार से रुक जाता है कि लोग क्या कहेगे : ये लोग चाहे परिवार के हो—पडौस के हो, मोहल्ले, गाँव, नगर या देश-विदेश के हो, इन्हे ही समाज मान लीजिये।

व्यक्ति स्वय से नियत्रित हो—व्यक्ति समाज से नियत्रित हो, ये दोनो परिपाटियाँ समता लाने के लिये सक्रिय बनी रहनी चाहिये। यही व्यक्ति एव समाज के सम्बन्धो की सार्थकता होगी कि विषमता को मिटाने के लिये दोनो ही नियत्रण सुदृढ बने।

समता मानव मन के मूल में है

प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुखी बनाना चाहता है और उसके लिये प्रयास करता है, किन्तु आज की दुविधा यह है कि सभी तरह की विषमताओ के बीच सम्पन्न भी सुखी नही है, विपन्न भी सुखी नही और शान्ति-लाभ तो जैसे एक दुष्कर स्थिति बन गई है। इसका कारण यह है कि मानव अपने साध्य को समझने के बाद भी उसके प्रतिकूल साधनो का आश्रय लेकर जब आगे बढता है तो बबूल उगाने से आम कहाँ से फलेगा ?

समता मानव मन के मूल मे है—उसे भुलाकर जब वह विपरीत दिशा मे चलता है तभी दुर्दशा आरम्भ होती है।

एक दृष्टान्त से इस मूल प्रवृत्ति को समझिये। चार व्यक्तियो को एक साथ खाने पर बिठाया गया। पहले की थाली मे हलुवा, दूसरे की थाली मे लप्सी, तीसरे की थाली मे सिर्फ गेहूँ की रोटी तो चौथे की थाली मे बाजरे की रोटी परोसी गई, तो क्या चारो साथ बैठकर शान्तिपूर्वक खाना खा सकेंगे ? ऊपरवाला नीचे वाले के साथ घमड से ऐंठेगा तो नीचे वाला भेदभाव के दर्द से कराहेगा। इसके विरुद्ध सभी की थालियो मे केवल बाजरे की रोटी ही हो तो सभी प्रेम से खाना खा लेगे। इसलिये गहरे जाकर देखे, तो पदार्थ मनुष्य के सुख और शान्ति के कारण नही होते, बल्कि उसके मन की विचारणा ही अधिक

रखना । आवश्यकता से अधिक धन-धान्य हो तो ट्रस्टी बनकर उसके यथा-आवश्यक सम-वितरण की भावना रखना ।

(८) लेन-देन और व्यवसाय आदि की सीमा एव मात्रा का अपनी सामर्थ्य के अनुसार मर्यादा रखना ।

(९) स्वय के, परिवार के, समाज के एवं राष्ट्र के चरित्र मे कलक लगाने वाला कोई भी कार्य नही करना ।

(१०) आध्यात्मिक जीवन के निर्माणार्थ नैतिक सचेतना एवं तदनुरूप सत्य प्रवृत्ति का ध्यान रखना ।

(११) मानव जाति मे गुणकर्म के अनुसार वर्गीकरण पर श्रद्धा (विश्वास) रखते हुए किसी भी व्यक्ति से घृणा व द्वेष नही रखना ।

(१२) सयम की मर्यादाओं का पालन करना एव अनुशासन को भग करने वालो को अहिसक-असहयोग के तरीके से सुधारना, परन्तु द्वेप की भावना न लाना ।

(१३) प्राप्त अधिकारो का दुरुपयोग नही करना ।

(१४) कर्त्तव्य-पालन का पूरा ध्यान रखना, लेकिन प्राप्त सत्ता मे आसक्त (लोलुप) नही होना ।

(१५) सत्ता और सम्पत्ति को मानव-सेवा का साधन मानना न कि साध्य ।

(१६) सामाजिक व राष्ट्रीय चरित्र-पूर्वक भावात्मक एकता को महत्त्व देना ।

(१७) जनतत्र का दुरुपयोग नही करना ।

(१८) दहेज, वीटी, तिलक, टीका आदि की मागनी, सौदेवाजी तथा प्रदर्शन नही करना ।

(१९) सादगी मे विश्वास रखना और वुरे रीति-रिवाजो का परित्याग करना ।

(२०) चरित्र-निर्माण पूर्वक धार्मिक शिक्षण पर वल देना एवं नित्य प्रति कम-से-कम एक घण्टा धार्मिक क्रियापूर्वक स्वाध्याय, चितन, मनन करना ।

विषमता बनती और बढती है। मन विषम, तो दृष्टि विषम होगी और उसकी कृति भी विषम होगी।

समता का आविर्भाव तभी सभव होगा, जब राग और द्वेष को घटाया जाय। जितनी निरपेक्ष वृत्ति पनपती है, समता सगठित और सस्कारित बनती है। निरपेक्ष दृष्टि मे पक्षपात नही रहता और जब पक्षपात नही है तो वहाँ उचित के प्रति निर्णायक वृत्ति पनपती है तथा गुण और कर्म की दृष्टि से समता अभिवृद्ध होती है। अगर एक पिता के मन मे एक पुत्र के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष हो, तो वह स्थिति समता-जीवन की द्योतक नही है। मैं सबकी आँखो मे प्रफुल्लता देखना चाहूँ—मैं किसी की आँख मे आँसू नही देखना चाहूँ—ऐसी वृत्ति जब सचेष्ट बनती है तो मानना चाहिये कि उसके मन मे समता का आविर्भाव हो रहा है।

बाह्य समानता के लिये प्रयास करने के पूर्व अन्तर की विषमता नही मिटाई और कल्पना कर ले कि बाहर की विषमता किसी भी बल-प्रयोग से एक बार मिटा भी दी गई हो, तो भी विषमतामय अन्तर के रहते वह समानता स्थायी नही रह सकेगी। एक ध्वजा, जो उच्च गगन मे वायु मण्डल मे लहराती है—उसकी कोई दिशा नही होती। जिस दिशा का वायु वेग होता है, वह उधर ही मुड जाती है, किन्तु ध्वजा का जो दण्ड या स्तूप होता है वह सदा स्थिर रहता है। तो समता के विकास के लिये दण्ड या स्तूप बनने का प्रयास करें, जो स्थिर और अटल हो। फिर समता का सूक्ष्मतम विकास होता चला जायगा।

अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि

समता के दो रूप हैं—दर्शन और व्यवहार। अन्तर के नेत्रो की प्रकाशमय दृष्टि से देखकर जीवन मे गति करना समता दर्शन का मुख्य भाव है और यह जो गति है उससे समता के व्यवहार का स्वरूप स्पष्ट होता है। अत अन्तर और बाह्य दोनो दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का सचालन करने से सार्थक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। दर्शन की गति व्यापक नही हो, तो व्यवहार मे भी एकरूपता नही आती है। इसके लिये अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि मे सम्यक् समन्वय होना चाहिये।

आप एक मकान को देखते हैं। उसमे कही पत्थर होता है, कही चूना, सीमेट, लोहा, लकडी आदि। साथ ही उसमे रहने या बैठने वालो की स्थिति भी एक-सी नही होती है - अलग-अलग आकृतियाँ, वेषभूषा, आदि। फिर भी यदि अन्तर्दृष्टि मे सबके समता आ जाय तो इन विभिन्नताओ के बावजूद सारा

सर्वत्र समर्थन करने वाले एव सबके समक्ष २१ सूत्रो एव तीन चरणो की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाले होगे। स्वय भी आचरण की दिशा मे आगे वढने के सकल्प की तैयारी कर रहे होगे और किन्ही अशो मे आचरण का श्रीगणेश कर चुके होगे। ऐसे साधको के लिये निम्न प्रारम्भिक नियम आचरणीय हो सकते है—

(१) विश्व मे रहने वाले समस्त प्राणियो मे समता की मूल स्थिति को स्वीकार करना एव गुण तथा कर्म के अनुसार ही उनका वर्गीकरण मानना। अन्य सभी विभेदो को अस्वीकार करना और गुण-कर्म के विकास से व्यापक समतापूर्ण स्थिति बनाने का सकल्प लेना।

(२) समस्त प्राणिवर्ग का स्वतत्र अस्तित्व स्वीकारना तथा अन्य प्राणियो के कष्ट-क्लेश को स्व-कष्ट मानना।

(३) पद को महत्त्व देने के स्थान पर सदा कर्त्तव्यो को महत्त्व देने की प्रतिज्ञा करना।

(४) सप्त कुव्यसनो को धीरे-धीरे ही सही पर त्यागते रहने की दिशा मे आगे बढना।

(५) प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व कम-से-कम एक घण्टा समय नियमित रूप से समता-दर्शन के स्वाध्याय, चिन्तन एव समालोचन मे व्यतीत करना।

(६) कदापि आत्मघात न करने एव प्राणि-रक्षा करने का सकल्प लेना।

(७) सामाजिक कुरीतियो को त्याग कर विषमता जन्य वातावरण मिटाना तथा समतामयी नई परम्पराएँ ढालना।

सक्रिय, सो समताधारी

समता के दार्शनिक एव व्यावहारिक धरातल पर जो दृढ चरणो से चलना शुरू कर दे, उसे समताधारी की दूसरी उच्चतर श्रेणी मे लिया जाय। समताधारी दर्शन के चारो सोपानो को हृदयगम करके २१ सूत्रो पर व्यवहार करने मे सक्रिय वन जाता है। आशय है कि समतामय आचरण की सर्वांगीणता एवं सम्पूर्णता की ओर जव साधक गति करने लगे तो उसे समताधारी कहा जाय। समताधारी निम्न अग्रगामी नियमो का अनुपालन करे—

रूप से कारणभूत है और यही कारण सच्ची मानवता के विकास मे बाधक है। समता ही इसका स्थायी व सर्वजन हितकारी निराकरण है।

समता दर्शन का लक्ष्य है कि समता, विचार मे हो, दृष्टि और वाणी मे हो तथा समता आचरण के प्रत्येक चरण मे हो। वह समता जीवन के अवसरो की प्राप्ति मे होगी, सत्ता और सम्पत्ति के अधिकार मे होगी, वह व्यवहार के समूचे दृष्टिकोण मे होगी। समता मनुष्य के मन मे, तो समता समाज के जीवन मे। समता भावना की गहराइयो मे तो, समता साधना की ऊँचाइयो मे। प्रगति के ऐसे उत्कट स्तरो पर फिर समता के सुप्रभाव से मनुष्यत्व को क्या-ईश्वरत्व को भी उपलब्ध और स्थापित किया जा सकता है।

समता दर्शन का नवीन परिप्रेक्ष्य

युग बदलता है, तो परिस्थितियाँ बदलती हैं, व्यक्तियो के सहजीवन की प्रणालियाँ बदलती हैं, तो उनके विचार और आचार के तौर-तरीके मे तदनुसार परिवर्तन आता है। यह सही है कि शाश्वत तत्त्व मे एव मूल व्रतो मे परिवर्तन नही होता। सत्य ग्राह्य है, तो वह हमेशा ग्राह्य ही रहेगा। किन्तु सत्य प्रकाशन के रूपो मे युगानुकूल परिवर्तन होना स्वाभाविक है। मानव-समाज स्थगित नही रहता, बल्कि निरन्तर गति करता रहता है। गति का अर्थ होता है एक स्थान पर टिके नही रहना और एक स्थान पर टिके नही रहे तो परिस्थितियो का परिवर्तन अवश्यभावी है।

मनुष्य एक चिन्तनशील और विवेकशील प्राणी है। वह प्रगति भी करता है, तो विगति भी। किन्तु यह सत्य है कि वह गति अवश्य करता है। इसी गति-चक्र मे परिप्रेक्ष्य भी बदलते रहते हैं। जिस दृष्टि से एक तत्त्व या पदार्थ को कल देखा था—शायद समय, स्थिति आदि के परिवर्तन से वही दृष्टि आज उसे कुछ भिन्न रूप मे पायेगी। कोण भी तो देश, काल और भाव की अपेक्षा से बदलते रहते हैं। अत स्वस्थ दृष्टिकोण यह होगा कि परिवर्तन के प्रवाह को भी समझा जाय तथा परिवर्तन के प्रवाह मे शाश्वतता तथा मूल व्रतो को कदापि विस्मृत न होने दिया जाय। दोनो का समन्वित रूप ही श्रेयस्कर होता है।

इसी दृष्टिकोण से समता-दर्शन को भी आज हमे उसके नवीन परिप्रेक्ष्य मे देखने एव उसके आधार पर अपनी आचरण-विधि निर्धारित करने मे अवश्य ही जिज्ञासा रखनी चाहिये। इस अध्याय मे आगे इस जिज्ञासा से विचार किया जा रहा है।

समता के समरस स्वर

वर्तमान विषमता की कर्कश ध्वनियो के बीच आज साहस करके समता के समरस स्वरो को सभी दिशाओ मे गुंजित करने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण

तथा समग्र आत्मीय शक्तियो के विकास मे अपने जीवन के विकास को देखना । अपनी विषमताभरी दुष्प्रवृत्तियो को त्याग करके आदर्श की स्थापना करना एव सबमे समतापूर्ण प्रवृत्तियो के विकास को बल देना ।

(२) आत्म-विश्वास की मात्रा को इतनी सशक्त बना लेना कि अन्य प्राणियो के साथ अथवा स्वयं के साथ जाने या अनजाने भी विश्वासघात सम्भव न रहे ।

(३) जीवन-क्रम के चौबीसों घण्टों में समतामय भावना एवं आचरण का विवेकपूर्ण अभ्यास एव आलोचन करना ।

(४) प्रत्येक प्राणी के प्रति सौहार्द, सहानुभूति एव सहयोग रखते हुए दूसरो के सुख-दु ख को अपना सुख-दु ख समझना—आत्मवत् सर्व भूतेषु ।

(५) सामाजिक न्याय का लक्ष्य ध्यान मे रखकर, चाहे राजनीति के क्षेत्र मे हो अथवा आर्थिक या अन्य क्षेत्र मे, आत्मबल के आधार पर अन्याय शक्तियो से सघर्ष करना तथा समता के समस्त अवरोधो पर विजय प्राप्त करना ।

(६) चेतन व जड तत्त्वो के विभेद को समझ कर पर से ममता हटाना, जड की सर्वत्र प्रधानता हटाने मे योग देना तथा चेतन को स्वधर्मी मान उसकी विकासपूर्ण समता मे अपने जीवन को नियोजित कर देना ।

(७) अपने जीवन मे और बाहर के वातावरण मे राग और द्वेष दोनो को सयमित करते हुए सर्व प्राणियो मे समदर्शिता का अविचल भाव ग्रहण करना, वरण करना तथा अपनी चिन्तन-धारा मे उसे स्थायित्व देना । समदर्शिता को जीवन का सार वना लेना ।

साधुत्व तक पहुँचाने वाली ये तीन श्रेणियाँ

इन तीनो श्रेणियो मे यदि एक समता-साधक अपना समुचित विकास करता जाय तथा समदर्शी श्रेणी मे अपनी हार्दिकता एव कर्मठता को रमाले, तो उसके लिये यह कहा जा सकता है कि वह साधक भावना की दृष्टि से साधुत्व के सन्निकट पहुँच गया है । तीसरी श्रेणी को गृहस्थ-धर्म का सर्वोच्च विकास माना जायगा ।

विशिष्ट स्तर बनता है, तो समाज के जागने से सभी व्यक्तियो मे विकास का सामान्य स्तर निर्मित होता है ।

समतामय आचरण के २१ सूत्र

समतामय आचरण के अनेकानेक पहलू एव रूप हो सकते हैं, किन्तु सारे तत्त्वो एव परिस्थितियो को समन्वित करके उसके निचोड मे इन २१ सूत्रो की रचना इस उद्देश्य से की गई है कि आचरण के पथ पर इन्हे पकड कर समता की गहन साधना आरम्भ की जा सकती है । इन २१ सूत्रो का समायोजन इस भाँति किया गया है कि वे मानव के अन्तर्बाह्य को समुज्ज्वलित करने के साथ ही जगत् की आन्तरिक एव बाह्य पीडाओ का निराकरण कर सके । इनको आधार बनाकर चलने से जहाँ व्यष्टि को आत्म-साक्षात्कार तक पहुँचाया जा सकता है, वही समष्टिगत जीवन मे शान्ति, सद्भाव एव समत्व की स्थापना हो सकती है । यह समझना चाहिये कि यदि समुच्चय रूप से एक समता-साधक इन २१ सूत्रो को आधार मानकर सक्रिय बनता है, तो वह साधना के उच्चतर स्तरो पर सफलता प्राप्त कर सकता है । ये २१ सूत्र इस प्रकार है :—

(१) ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म आदि की सुव्यवस्था अर्थात् तत्सम्बन्धी सामाजिक (नैतिक) नियमो का पालन करना । उसमे कोई कुव्यवस्था पैदा नही करना एव कुव्यवस्था पैदा करने वालो का सहयोगी नही बनना ।

(२) अनावश्यक हिंसा का परित्याग करना तथा आवश्यक हिंसा की अवस्था मे भी भावना तो व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र आदि की रक्षा की रखना तथा विवशता से होने वाली हिंसा मे लाचारी अनुभव करना, न कि प्रसन्नता ।

(३) झूठी साक्षी नही देना । स्त्री, पुरुष, पशु, भूमि, धन आदि के लिये झूठ नही बोलना ।

(४) वस्तु मे मिलावट करके धोखे से नही बेचना ।

(५) ताला तोडकर, चावी लगाकर तथा सेंध लगाकर वस्तु नही चुराना । किसी की अमानत को हजम नही करना ।

(६) परस्त्री का त्याग करना, स्व-स्त्री के साथ भी अधिक-से-अधिक ब्रह्मचर्य का पालन करना ।

(७) व्यक्ति, समाज व राष्ट्र आदि के प्रति दायित्व-निर्वाह के आवश्यक अनुपात से अतिरिक्त धन-धान्य पर अधिकार नही

व्यापार भी त्याज्य है। बिना श्रम का धन व्यसनो की बढोतरी मे ही खर्च होता है।

(४) **चोरी** : चोरी की व्याख्या को भी सूक्ष्म रीति से समझने की जरूरत है। दूसरे के परिश्रम की आय को व्यक्त या अव्यक्त रूप से स्वयं ले लेना भी चोरी है। यही आज के आर्थिक शोषण का रूप है। टैक्स चोरी भी इसका दूसरा रूप है। चोरी सदा सत्य का हनन करती है, अत· त्याज्य होनी चाहिये।

(५) **शिकार** : सर्वजीव रक्षण की भावना मे अपने मनोविनोद के लिए जीव हरण सर्वदा निन्दनीय है।

(६) **परस्त्री गमन** : समाज मे सैक्स की स्वस्थता को बनाये रखने के उद्देश्य से ही विवाह-सस्था का प्रारम्भ हुआ था। काम का विकार अतिप्रबल होता है और उसे नियमित एव सयमित करने के लिये ससारी मनुष्य के लिये स्वस्त्री सन्तोष का व्रत बताया गया है। यदि काम के अन्धेपन को छूट दे दी जाय, तो वह कितने अनर्थों एव अपराधो की लडी बाँध देगा—इसका कोई हिसाब नही। परस्त्री गमन तो इस कारण भी जघन्य अपराध माना जाना चाहिये कि ऐसा दुष्ट पुरुष दो या अनेक परिवारो के सदाचरण को नष्ट करता है।

(७) **वेश्या गमन** : यह कुव्यसन सारे समाज के लिये घातक है, जो नारी जैसे पवित्र जीवन को मोरी के कीडो की तरह पतित बनाता है। आज राज्य और समाज इसके विरोधी बन चुके है तथा वेश्याओं के धन्धे को समाप्त किया जा रहा है। फिर भी व्यक्ति का संयम इसे समाप्त करने मे विशेष सहायक बन सकेगा।

इन सातो कुव्यसनो के वैयक्तित्व एव सामाजिक कुप्रभावों को ध्यान मे रखते हुए इनके त्वरित परित्याग की ओर कदम आगे बढ़ने ही चाहिये।

समता-समाज की संक्षिप्त रूपरेखा

अन्तर में जो कुछ श्रेष्ठ है, वह गूढ हो सकता है, किन्तु जब तक उसे सहज रूप में बाहर प्रकट नही करे उसकी विशेषताओ का व्यापक रूप से प्रसार नही हो सकता है। समता-दर्शन के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि यदि इसके भी बाह्य प्रतीक निर्मित किये जायँ, तो इसके प्रचार-प्रसार मे सुविधा होगी। कोई समता-दर्शन का अध्ययन करे तथा उसके व्यवहार पर भी सक्रिय हो, किन्तु यदि ऐसे साधको को एक सूत्र मे आबद्ध रहने हेतु किसी सगठन की रचना की जाय तो साधको को यह सुविधा होगी कि वे पारस्परिक सम्पर्क से अपनी साधना को अधिक सुगठित एवं सुचारु बना सकेंगे और साधारण रूप से

(२१) समता दर्शन के आधार पर सुसमाज-व्यवस्था मे विश्वास रखना।

उपर्युक्त २१ सूत्रो पर गम्भीर चिन्तनपूर्ण हृदयस्पर्शी विस्तृत विवेचना श्रद्धेय आचार्यश्री के पावन प्रवचनो मे उपलब्ध होती है। ग्रन्थ-विस्तार के भय से उसे यहाँ प्रस्तुत नही किया जा रहा है।

समता दर्शन : सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे

इस प्रकार समता-दर्शन के सैद्धान्तिक एव क्रियात्मक पहलू को स्पष्ट करने के पश्चात् उसके सामाजिक रूप को भी एक सुनियोजित क्रम से प्रस्तुत किया गया है—समता-समाज-रचना के रूप मे।

प्रश्न है कि समाज का प्रत्येक घटक समता-दर्शन को अपने आचरण के आधार पर जीवन मे किस प्रकार आत्मसात् कर सकता है तथा तद्द्वारा समता-समाज का निर्माण किस रूप मे हो सकता है। प्रारम्भ मे समता साधको की योग्यता एव शक्ति के अनुसार उन्हे तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया है, तदनन्तर उसके सामाजिक सगठनात्मक रूप को प्रस्तुत किया गया है। समता-दर्शन के इस सामाजिक पहलू को आचार्यश्री के भावो मे ही समझाने का यहाँ विनम्र प्रयास है।

आचरण की आराधना के तीन चरण

साधुत्व से पूर्व स्थिति मे समता-साधक की साधना के तीन चरणो या सोपानो का इस हेतु निर्धारण किया जा रहा है, जिससे साधक को स्वयं प्रतीति हो तथा समाज मे उसकी पहचान हो कि समता की साधना मे वह किस स्तर पर चल रहा है। इस प्रतीति और पहचान से साधक के मन मे उन्नति की आकाक्षा तीव्र बनी रहेगी। ये तीन चरण निम्न हैं—

(१) समतावादी।
(२) समताधारी।
(३) समतादर्शी।

समतावादी की पहली श्रेणी

पहली एव प्रारम्भिक श्रेणी उन समता-साधको की है, जो समता-दर्शन मे गहरी आस्था, शोध की जिज्ञासा एव अपनी परिस्थितियो की सुविधा से समता के व्यवहार मे सचेष्ट होने की इच्छा रखते हो। पहली श्रेणी वालो को समतावादी इस कारण कहा है कि वे समता के दर्शन एव व्यवहार-पक्षो का

निष्ठापूर्वक चार सोपानो, इक्कीस सूत्रो एवं तीन चरणो मे आस्था रखे तथा व्यावहारिक रूप से अपने जीवन मे समता तत्त्व को यथाशक्ति समाहित करे। यदि प्रारम्भिक प्रयास सफल बने तथा देश मे समता-समाज का स्वागत हो और समता-समाज के सदस्य चाहे, तो कोई कठिन नही कि इस अभियान को विदेशों में भी लोकप्रिय बनाया जा सके। समाज के उद्देश्य सबको छूने एव सब मे समाने वाले हो।

समाज के उन्नायक उद्देश्य

जो अब तक विश्लेषण किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति एव समाज के आन्तरिक एव बाह्य जीवन मे समता रम जाय एवं चिरस्थायी रूप ग्रहण करले—यह समता-समाज को अभीष्ट है। कहा नही जा सकता कि इस अभियान को सफल बनाने मे कितना समय लग जायेगा, किन्तु कोई भी अभियान कभी भी सफलता तभी प्राप्त कर सकेगा, जब उसके उद्देश्य स्पष्ट हो एव उसमे जनकल्याण की व्यापक भावना झलकती हो।

समाज के उन्नायक उद्देश्यो को सक्षेप मे निम्न रूप से गिनाया जा सकता है—

१— व्यक्तिगत रूप से समता-साधक को समतावादी, समताधारी एव समतादर्शी की श्रेणियों में साधनारत बनाते हुए अपने व्यक्तित्व को विकेन्द्रित करने की ओर अग्रसर बनाना।

२— मन की विषमता से लेकर विश्व के विभिन्न क्षेत्रो की विषमताओ से सघर्ष करना एवं सर्वत्र समता की भावना का प्रसार करना।

३— व्यक्ति और समाज के हितो मे इस भाति तालमेल बिठाना, जिससे दोनो समतामय स्थिति लाने मे पूरक शक्तियाँ बने। समाज व्यक्ति को धरातल दे तो व्यक्ति उस पर समता-सदन का निर्माण करे।

४— स्वार्थ, परिग्रह की ममता एव वितृष्णा को सर्वत्र घटाने का अभियान छोडकर स्वार्थों एव विचारो के टकराव को रोकना तथा सामाजिक न्याय एवं सत्य को सर्वोपरि रखना।

५— स्थान-स्थान पर समता-साधको को सगठित करके समाज की शाखाओ-उपशाखाओ की स्थापना करना, साधारणजन को समता का महत्त्व समझाने हेतु विविध सयत प्रवृत्तियो का सचालन करना एव सम्पूर्ण समतामय परिवर्तन के लिए सचेष्ट रहना।

समता-समाज किनका ?

यह समाज किसी देश-प्रदेश, जाति-सम्प्रदाय, वर्ण-वर्ग या दल विशेष का

(१) अपने विषमताजन्य विचारो, सस्कारो एव आचारो को समझना तथा विवेकपूर्वक उन्हे दूर करना। अपने आचरण से किसी को भी क्लेश न पहुँचाना य सबसे सहानुभूति रखना।

(२) द्रव्य, सम्पत्ति तथा सत्ता-प्रधान व्यवस्था के स्थान पर समता-पूर्ण चेतना एव कर्त्तव्यनिष्ठा को मुख्यता देना।

(३) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एव अनेकान्तवाद के स्थूल नियमो का पालन करना, उनकी मर्यादाओ मे उच्चता प्राप्त करना एव भावना की सूक्ष्मता तक पैठने का विचारपूर्वक प्रयास करते रहना।

(४) समस्त जीवनोपयोगी पदार्थों के सम-वितरण मे आस्था रखना तथा व्यक्तिगत रूप से इन पदार्थों का यथाविकास, यथायोग्य जन-कल्याणार्थ परित्याग करना।

(५) परिवार की सदस्यता से लेकर ग्राम, नगर, राष्ट्र एव विश्व की सदस्यता को निष्ठापूर्वक आत्मीय दृष्टि एव सहयोगपूर्ण आचरण से अपने उत्तरदायित्वो के साथ निभाना।

(६) जीवन मे जिस किसी पद पर या कार्यक्षेत्र मे रत हो, उसमे भ्रष्टाचार से मुक्त होकर समताभरी नैतिकता एव प्रामाणिकता के साथ कुशलता से कार्य करना।

(७) स्व-जीवन मे सयम को तो सामाजिक जीवन मे सर्वदा नियम को प्राथमिकता देना एव अनुशासित बनना।

साधक की सर्वोच्च सीढ़ी—समतादर्शी

समतादर्शी की श्रेणी मे साधक का प्रवेश तब माना जाय, जब वह समता के लिये बोलने और धारने से आगे बढकर ससार को समतापूर्ण बनाने व देखने की दृष्टि और कृति प्राप्त करता है। तब वह साधक व्यक्ति के व्यक्तित्व से ऊपर उठकर एक समाज और सस्था का रूप ले लेता है। उसका लक्ष्य परि-वर्तित निजत्व को व्यापक परिवर्तन मे समाहित कर लेना बन जाता है। ऐसा साधक साधुत्व के सन्निकट पहुँच जाता है, जहाँ वह अपने स्वहित को भी पर-हित मे विलीन कर देता है और समाज मे सर्वत्र समता लाने के लिये जूझने लग जाता है। वह समता का वाहन बनने की बजाय, समता का वाहक बन जाता है। समतादर्शी निम्न उच्चस्थ नियमो को अपने जीवन मे रमा ले—

(१) समस्त प्राणिवर्ग को निजात्मा के तुल्य समझना व आचरना

व्यक्ति और समाज का समन्वित स्वर

यह आन्दोलन, यह सघर्ष, व्यक्ति और समाज के समन्वित स्वर से उठना और चलना चाहिये । व्यक्ति समाज की ओर उन्मुख हो तथा समाज एक-एक व्यक्ति को गले लगावे—तब ऐसे सहज समन्वय का स्वर मुखर हो सकेगा । व्यक्ति और समाज इस आन्दोलन के साथ एक-दूसरे की प्रगति के अनुपूरक बनते रहेगे और समता की ऊँचाइयों पर चढते रहेगे । व्यक्ति-व्यक्ति से समाज बनता है और समाज व्यक्ति से अलग नही है, फिर भी दोनो शक्तियाँ एक दूसरे की सहायक होकर चलेगी तभी अन्दर-बाहर की सच्ची समता भी प्रकट हो सकेगी । जितनी विषमता है, वह व्यक्ति के स्वार्थ के गर्भ से जन्म लेती है । जितने अशो मे स्वस्थ रीति से इस स्वार्थ का सफल समाजीकरण कर दिया जायगा उतने ही अशो मे विषमता की मात्रा घटेगी और व्यक्ति एव समाज का समन्वय बढेगा । यह स्वाभाविक प्रक्रिया है ।

समता-समाज इस लक्ष्य की ओर अग्रसर बने कि व्यक्ति का सत्ता और सम्पत्ति के स्वार्थों पर अधिक-से-अधिक स्वैच्छिक नियंत्रण किया जाय । यह नियत्रण भावात्मक होना चाहिये एव जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ सामाजिक नियत्रण-प्रणाली द्वारा व्यक्ति के स्वार्थ के भूत को फैलने से रोका जाना चाहिये । अपने ही सदस्यो के माध्यम से यदि समता-समाज इस लक्ष्य को पकड़ सका, तो यह सन्देहरहित भविष्यवाणी की जा सकती है कि समता समाज की सर्वोच्च उन्नति होकर रहेगी ।

क्रान्ति का चक्र और कल्याण

कल्पना करे कि किसी भी टिकट-खिडकी के बाहर अगर लोग पूरे अव्यवस्थित रूप से टिकट लेने के लिये टूट पडेगे तो कितने और कौन लोग टिकट ले पायेंगे ? वे ही जो शरीर से, बल से या किसी तरह ताकतवर होंगे—कमजोर तो वेचारा भीड मे पिस ही जायगा । आज के विषम समाज की ऐसी अव्यवस्था से तुलना की जा सकती है जहाँ सत्ता और सम्पत्ति को लूटने की मारामारी मची हुई है । जो न्याय से नही, नीति से नही, बल्कि अन्याय और अनीति से लूट जारी है । इस दुर्व्यवस्था मे दुर्जन आगे वढकर लूट का सरदार वन जाता है, तो हजारो सज्जन नीति और न्याय के पुजारी होकर भी विवश खड़े देखते रह जाते है ।

टिकट-खिडकी के वाहर ऊपर उचकने वालो को समझा-बूझा कर उनकी बाँहे पकड़कर एक क्यू मे खडा कर देने का जो प्रयास है, उसी को समाज के क्षेत्र मे क्रान्ति का नाम दे दिया जाता है । सारी भीड उमडे नही, अपनी-अपनी

तीनो श्रेणियो के जो नियम वताये गये हैं, इनके अनुरूप एक से दूसरी व दूसरी से तीसरी श्रेणी में अग्रसर होने की दृष्टि से प्रत्येक साधक को अपना आचरण, विचार एव विवेकपूर्ण पृष्ठभूमि के साथ स्वय को सन्तुलित एव सयमित करते रहना चाहिये, ताकि समता व्यक्ति के मन मे और समाज के जीवन में चिरस्थायी रूप ग्रहण कर सके। यही आत्म-कल्याण एव विश्व-विकास की सही प्रेरणा है।

समता-साधना के इस क्रम को व्यवस्थित एव अनुप्रेरक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से एक समता-समाज की स्थापना की जाय, उसकी सदस्यता हो, सदस्यो के विकास का सम्पूर्ण लेखा-जोखा रखा जाय एव अन्य प्रवृत्तियाँ चलाई जाय—इसके लिए यहाँ एक सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

आचरण शुद्धि का पहला पग :
सप्त कुव्यसन का त्याग

समता-मार्ग के साधक को प्राथमिक शुद्धि रूप सप्त कुव्यसनो का त्याग तो करना ही चाहिये। ये कुव्यसन जीवन को पतन के गर्त मे डुबोने वाले तो होते ही हैं, समाज मे भी इनका बुरा असर पडता है और पतन की सभावनाओ को स्थायी भाव मिलता है। इन सात कुव्यसनो के सम्बन्ध मे निम्न जानकारी जरूरी है—

(१) **मांस-भक्षण** समता के ससार मे प्रत्येक जीव को दूसरे जीव की रक्षा मे आस्था रखनी चाहिये—"जीवो जीवस्य रक्षणम्।" फिर मास खाने का मूल अभिप्राय इस वृत्ति के विपरीत वन जाता है। अपने लिए जीव को मारें और मास-भक्षण करे—यह तो विषमता को पूजना हुआ। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आज पश्चिमी ससार मे शाकाहार की आवाज उठ रही है और मास-भक्षण को हानिकारक बताया जाता है। यह तामसिक भोजन विकारो को भी पैदा करता है। अत इसको छोडना अनिवार्य समझा जाना चाहिये।

(२) **मदिरा-पान** देश भर मे आज शराववन्दी के वारे मे उग्र आन्दोलन चल रहा है। सरकार आय का लोभ नही छोड पा रही है, वरना शराव की वुराई को तो त्याज्य मानती है। इससे ही शराव के कुप्रभाव का अनुमान कर लेना चाहिये। शराब को समस्त वुराइयो की जड कह दे तो भी कोई अत्युक्ति नही होगी। गाजा, भाग, धतूरा और आज की एल० एस० डी० की गोलियाँ आदि के सारे नशो का त्याग मदिरा-त्याग के साथ ही आवश्यक समझा जाना चाहिये।

(३) **जुआ** जहाँ भी विना परिश्रम के अनर्थ तरीको से धन आने का स्रोत हो, उसे जुए की ही श्रेणी मे लेना चाहिये। इस नजर से सट्टा व तस्कर

और उसका वह जूझना न सिर्फ बाह्य समता की स्थापना को यत्र-तत्र और सर्वत्र साकार रूप दे, बल्कि बहुसख्यक लोगो की आन्तरिक समता को भी प्राणवान् बनाते ।

समता-साधक का जीवन धन्य होगा ही

अन्त मे यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि जो समता की साधना करेगा, उसका स्वय का जीवन तो धन्य होगा ही, वह समाज के जीवन को भी धन्य बनायेगा ।

समता-समाज के साधको के लिये यह ऊँचा लक्ष्य प्रकाशस्तभ का काम दे और वे जीवन के सभी अन्दर-बाहर के क्षेत्रो मे समता का प्रसार करे, यह वाछ-नीय है । क्रान्ति की मशाल को जो अपने मजबूत हाथो मे पकडते है, वे उस मशाल से विकृति को जलाते है साथ ही प्रगति की दिशा भी प्रकाशित करते है । समता की मजिल इसी मशाल की रोशनी मे मिलेगी ।

आचार्य देव के समतादर्शन रूपी चिन्तन-सागर से कुछ ही मुक्ताकण यहाँ प्रस्तुत किये गये है । ये समता दर्शन के लिये दिग्बोध का काम करते हैं ।

वास्तव मे समता को आचार्य श्री ने पूर्णत: आत्मसात् किया है, उसे सम्पूर्ण रूप से जिया है । अनुभूति के उन क्षणो को शब्द-बद्ध कर पाना शक्य नही है । यह जो कुछ दिग्दर्शन है, वह केवल आचार्य श्री के अनुभूतिमूलक चिन्तन से नि सृत विचारो का एक सन्दोह मात्र है इससे आचार्य श्री के दार्श-निक एव सामाजिक विचार-जगत् का सामान्य परिबोध हो सकता है । यह परिबोध आचार्य श्री के जीवन-दर्शन की जाज्वल्यता का प्रथम परिचायक हो सकता है ।

अन्त में यह कहते हुए किन्चित् मात्र भी सकोच नही करूँगा कि वह दिन भारत के लिये क्रान्तिकारी एव सौभाग्य का होगा जब विश्व-मानव समता दर्शन की पुनीत छाया मे जाति, भाषा और वर्ण, आदि के कृत्रिम भेदों को भूलकर विश्व मानवता के आदर्श को अपनायेगा ।

"नाना" निर्देशित समता का—
समुद्घोष यदि विश्व सुने,
दूर हो जन-जन व्याप्त विषमता,
सत् "शान्ति" साम्राज्य बने ।

• • •

सगठित साधकों का सुप्रभाव समूचे समाज पर इस रूप से पडेगा कि लोग इस दिशा मे अधिकाधिक आकर्षित होने लगेगे ।

एक प्रकार से समता के दर्शन एव व्यवहार पक्षो का मूर्त रूप ऐसा समता-समाज होना चाहिये जो समता-मार्ग पर सुस्थिर गति से अग्रसर हो और उस आदर्श की ओर सारे ससार को प्रभावित करे ।

समता-समाज क्यो ?

सारे मानव-समाज को यदि भिन्न-भिन्न भागो मे विभाजित करे, तो विविध विचारधाराओ, मान्यताओ एव सम्बन्धो पर आधारित कई वर्ग निकल आवेंगे । सम्पूर्ण मानव-समाज विभिन्न समाजो का एक समाज ही है । प्रश्न है समता-समाज के नाम से एक और समाज की वृद्धि क्यो ?

मानव-समाज इतना विशाल समाज है कि एक ही बार मे एक मानव उसे समग्र रूप से आन्दोलित करना चाहे, तो एक दुस्साध्य-सा कार्य होगा । कार्य एक साथ नही साधा जाता, क्रमबद्ध रूप से ही आगे बढते हुए उसे साधना सरल एव सुविधाजनक होता है । सारे ससार मे याने कि सभी विभिन्न क्षेत्रो मे समतामय जीवन की प्रणाली की स्थापना एक साथ सरल नही हो सकती । अपने नवीन परिप्रेक्ष्य मे समता के विचार-बिन्दु को हृदयगम कराना तथा उसके आचरण को जीवन मे उतारना एक क्रमबद्ध कार्यक्रम ही हो सकता है । समता-समाज इस क्रमबद्ध कार्यक्रम को सफल बनाते हुए समता के निरन्तर विस्तार का ही एक सगठन कहा जा सकता है । सगठन की शक्ति उसके सदस्यो पर आधारित होती है तथा समता-समाज भी कितना शक्तिशाली वन सकेगा, यह इसके साधक सदस्यो पर निर्भर करेगा ।

समता समाज के नाम से कायम होने वाला यह सगठन एक जीवन्त सगठन होना चाहिये, जो बिना किसी भेदभाव के सिर्फ मानवीय धारणाओ को लेकर मात्र मानवता के धरातल पर मानवीय समता की उपलब्धि हेतु कार्य करे एव विभिन्न क्षेत्रो मे विषमता भरे वातावरण को हटाकर समतामय परिस्थितियो के निर्माण मे योग दे ।

समता-समाज का कार्यक्षेत्र

समता-समाज का कार्य क्षेत्र किसी भौगोलिक सीमा मे आवद्ध नही होगा । जहाँ-जहाँ विषमता है और जहाँ-जहाँ समता के साधक खडे होते जायेंगे, वहाँ-वहाँ समता समाज के कार्य क्षेत्र खुलते जायेंगे । प्रारम्भ मे किसी भी एक विन्दु से इस समाज का कार्यारम्भ किया जा सकता है । फिर उस केन्द्र से ऐसा यत्न किया जाय कि देश मे चारो ओर इस समाज के ऐसे सदस्य वनाये जाये, जो

नही होगा। प्रारम्भ मे समाज का आकार छोटा हो सकता है, किन्तु इसका प्रकार कभी छोटा नही होगा। जो अपने आपको सीधे और सच्चे रूप मे मनुष्य नाम से जानता है और मनुष्यता के सर्वोपरि विकास मे रुचि रखता है, वह इस समाज का सदस्य बन सकता है। समता समाज सम्पूर्ण मानव जाति का समाज होगा और इसकी सदस्यता का मूल आधार गुण और कर्म होगा, क्योकि इसकी साधना-श्रेणियो का निर्माण भी गुण एव कर्म के आधार से ही बनाया गया है।

दूसरे शब्दो मे यो कहे कि समता-समाज उन लोगो का सगठन होगा, जो समाज के उद्देश्यो मे विश्वास रखते होगे, इसके २१ सूत्रो तथा ३ चरणो को अपनाने के लिए आतुर होगे एव अपने प्रत्येक आचरण मे समता के आदर्श की झलक दिखायेंगे। समाज अपने सदस्यो की कर्मठता का केन्द्र होगा, तो अन्य सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत भी, क्योकि अन्ततोगत्वा समाज का लक्ष्य राजनीतिक, आर्थिक एव अन्य सभी क्षेत्रो मे मानवीय समता स्थापित करके आध्यात्मिक क्षेत्र मे समता के महान् आदर्श को प्रकाशमान बनाना है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि समता समाज २१ सूत्रो के पालक एव ३ चरणो मे साधनारत साधको का सगठन होगा, जो गृहस्थ धर्म मे रहते हुए भी उज्ज्वल नक्षत्रो के रूप मे ससार के विविध क्षेत्रो मे समता के सुखद सन्देश को न केवल फैलावेंगे, बल्कि उसे क्रियान्वित कराने के काम मे सर्वदा एव सर्वत्र निरत रहेगे।

विषमता से सघर्ष मन को हर्ष

आपके सामने पग-पग पर विषमताओ के जाले बुने हुए हैं, जिनमे उलझ-उलझ कर अपने कई साथियो को ही गिरते हुए आप नही देखते, बल्कि जानते-अजानते खुद भी उनमे उलझ-उलझकर गिरते रहते हैं। इन्ही जालो को काटते जाना जीवन का उद्देश्य बन जाना चाहिये और यही समता की साधना का मार्ग है, क्योकि जहाँ-जहाँ अन्धेरा मिटेगा वहाँ-वहाँ प्रकाश का फैलते जाना अनिवार्य है। विषमताओ को काटने का अर्थ ही होगा कि वहाँ-वहाँ आत्मीय समता का प्रसार सुगम होता जायेगा।

समता-समाज के सदस्यो को अपने जीवन-क्रम मे इसी उद्देश्य को सर्वोपरि रखना होगा। वे एक क्षण के लिये भी न भूले कि वे अपने मन, वचन या कर्म से किसी भी रूप मे विषमता पैदा करने वाले न बने। उन्हे तो स्वय सम बनकर प्रत्येक स्थान से विषमता को नष्ट करना है और समता की दृष्टि पनपानी है। विषमता से सघर्ष उनकी भावना, वाणी और कृति का शृङ्गार बन जाना चाहिये।

लगती है । वह उठा, बाहर से उन सभी की मछली पकड़ने की टोकनियाँ उठा लाया और उन्हे देते हुए कहा—"लो, इन्हे अपने मुँह पर ढक लो, देखो अभी निद्रा आती है ।" और सच मे उन्हे कुछ ही क्षणों मे नीद ने आ घेरा ।

कहानी कितनी सच है, कहा नही जा सकता । किन्तु आज के जन-जीवन पर यह पूर्णत. घटित होती है । वैभाविक परिणतियो एव भौतिक उपादानो के वाह्य परिवेश मे जीता हुआ आम जन-मानस बाहर की इस यात्रा का इतना अभ्यस्त हो गया है कि अन्तर्यात्रा ही उसे दुर्गन्धमय लगने लगी है । बाहर के सभी-साधन सयोग, जो वास्तव मे क्षणिक सुखदायी है, अत: दुर्गन्धमय ही है, तथापि वे ही सब कुछ माने जाने लगे है । अन्तर्यात्रा की न उसे प्यास है और न इसके लिये उसके पास अवकाश ही । बल्कि भौतिक उपादानो के एकत्रिकरण की प्यास ही तीव्र से तीव्रमय होती जा रही है । परिणाम भी हमारे सामने है— मानसिक तनाव, वायु प्रदूषण के द्वारा स्नायविक विकार एव अनेक विकृतियो से परिवेष्टित जिन्दगी का भार ।

यह वैपरीत्याभास इतना तीव्र हो चला है कि सत्-असत् और असत्-सत् भासित होने लगा है । अविनाशी विनश्वर और विनाशी अविनश्वर लगने लगा है । हेय मे उपादेयता का और उपादेय मे हेयता का बोध उत्पन्न हो गया है । और यह सब हो रहा है एक लम्बे अभ्यास के कारण ।

तथापि यह हर्ष का विषय है कि इस अति ने अब हल्की सी करवट ली है । बुद्धिवादियो एव विचारको ने इस ज्वलन्त समस्या का अनुभव किया है । वैज्ञानिक स्वय भी अपने तथाकथित विकास की अति से हत-प्रभ हो, चिन्ता मग्न हुए है । तकनीकी विकास और उसके परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण के द्वारा होने वाले मानसिक एव शारीरिक रोगो की बेमाप वृद्धि ने इनकी विकास मे सलग्न प्रज्ञा को झकझोरा है । अब उच्चतम बौद्धिको को यह अनुभव होने लगा है कि हमारी विकास की दौड विपथगामी थी । हम पूर्व की बजाय पश्चिम मे धावमान थे । हमारी यात्रा की दिशा ही गलत हो गई थी । हम अन्तर मे नहीं, वाहर मे ही सब कुछ ढूँढ रहे थे ।

और इस चिन्तन ने पुन: आम आदमी का ध्यान अध्यात्म की ओर खीचा । तनाव की चरम सीमा ने अध्यात्म शक्ति की ओर उन्मुख होने को वाध्य कर दिया और साधना के विभिन्न आयाम उपस्थित हुए । विपश्यना, सक्रिय ध्यान एव प्रेक्षा ध्यान जैसे विभिन्न मनोरजक, सागर की सतह पर तैरने के समान कुछ उथले प्रयोग चले । कुछ लोगो को सामयिक शान्ति मिली, एक आकर्षण वढा, किन्तु इन सभी प्रयासो मे देह एव श्वास-प्रश्वास पर ही अधिक वल दिया गया । आत्म शक्ति को प्राय. ओझल ही रखा गया । परिणामत क्षणिक स्नायविक विश्रान्ति के अतिरिक्त इससे अधिक लाभ नही मिल सका ।

वारी से हर एक को टिकट मिल जाये, यह किसी क्रान्तिपूर्ण व्यवस्था का ही फल हो सकता है। मानव समाज मे अपराधवृत्ति मिटे, विषमता कटे और सभी मानव न्याय और नीति का फल प्राप्त करे—यही क्रान्ति का उद्देश्य हो सकता है।

क्रान्ति का चक्र यदि योजनाबद्ध नीति से घुमाया जाय तो निस्सन्देह वह विषमता को भी काटेगा और समता की रक्षा भी करेगा। इस चक्र को जन-कल्याण का चक्र कहा जा सकता है। समता-समाज का यही प्रयास होना चाहिये कि वह अपनी सशक्त गति से क्रान्ति के चक्र को पूरे वेग से घुमावे ताकि नये समाज की नई धारणाए और परम्पराए जन्म ले तथा उनका निर्वहन करने-कराने वाली नई पीढी का निर्माण किया जा सके।

सर्वव्यापी समता

सर्वरूपी समता सर्वव्यापी भी बननी चाहिये। जीवन के सभी रूपो मे समता ढले, किन्तु अगर वह सभी जीवनो मे नही ढले तो समता का सामूहिक चित्र साकार नही हो पायेगा और इसके विना समता का सर्वव्यापी वन पाना भी सभव नही होगा। सर्वव्यापी समता को जीवन के स्थूल स्थानो से लेकर सूक्ष्म स्थानो तक प्रवेश करना होगा। अन्तर्मन यदि समता के मूल्यो को गहराई से धारण करले, तो राजनीति, अर्थ या समाज के क्षेत्र मे भी समता की प्रतिष्ठा करने मे अधिक कठिनाई नही आवेगी। किन्तु अगर मनुष्य का अन्तर्मन ही स्वार्थ और विकार मे डूवा हो, तो समता के स्थूल क्षेत्रो मे परिवर्तन काफी टेढा और कठिन होगा।

यही कारण है कि पहले आन्तरिक विषमता को मिटाने का निर्देश किया जाता है। किसी भी सामूहिक कार्य का सफल श्रीगणेश भी इसी अवस्था मे किया जा सकता है, जब कुछ ऐसे लोग तैयार होते हैं, जो अपने अन्तर की विषमता को घटाकर समता का सन्देश लेकर आगे वढते हैं। साथ मे यह भी सत्य है कि ऐसे लोग किसी भी सगठन अथवा आन्दोलन के जरिये जिस वातावरण का निर्माण करते हैं, वह भी अन्य व्यक्तियो की जागृति का कारण वनता है। कुछ लोगो की आन्तरिक समता वाह्य समता की स्थापना मे योग देती है; तो वह स्थापित वाह्य समता भी अन्य व्यक्तियो की आन्तरिक समता को जगाती और प्रेरित करती है। सर्वव्यापी समता की पारस्परिक प्रक्रिया ऐसी ही होती है।

समता-समाज को यह विन्दु ध्यान मे रखते हुए अपने कार्यक्रमो मे आन्तरिक विषमता को घटाने व मिटाने के अभियान को प्राथमिकता देनी चाहिये ताकि आन्तरिक समताधारियो की एक सशक्त अहिंसक सेना तैयार की जा सके

ध्यान की इस नूतन विधा से आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व को तो सम्यक् अभिव्यक्ति मिलेगी ही, किन्तु इससे मुमुक्षु ध्यान साधको को एक अभिनव प्रयोगात्मक दिशा भी प्राप्त होगी, अस्तु ।

प्रयोग-विधि प्रवेश

वर्तमान युग विभिन्न झझाओ से आक्रान्त है । वायु प्रदूषण के समान मन:प्रदूषण भी अपनी चरम सीमा का स्पर्श कर रहा है । विज्ञान के नित नूतन आविष्कारो ने जहाँ सुविधाओ के अम्बार लगाए हैं, वहाँ उद्दाम लालसाओ के द्वारा मानसिक तनावो मे भी वृद्धि की है । आज का आम व्यक्ति एक मशीन-सी जिन्दगी जी रहा है, जिसे न अपने परिवेश का सम्यग्बोध है और न अपने परिपार्श्व का । इन्सान खोया-खोया-सा जिन्दगी का भार ढो रहा है । उसे अपने ओर का पता है न छोर का ।

इस सब के उपरान्त भी अध्यात्मवादियो के हर्ष का विषय यह है कि भौतिक विज्ञान के अथक विकास ने इन्सान को अध्यात्म की ओर उन्मुख होने की परोक्ष प्रेरणा भी प्रदान की है । जब सुविधावाद ने अपना जाल फैलाया और अनेक भौतिकविदो को फँसाने का प्रयास किया तो अपनी चरम परिणति में वह स्वय भी उसका शिकार बन गया । परिणामत' चिन्तन ने स्वस्थ मोड लिया और अध्यात्म साधना पर आम व्यक्ति का दृष्टिकोण सक्रिय होने लगा । तनाव-मुक्ति की जिज्ञासाओ ने समाधान की अपेक्षा का अनुभव किया । फलस्वरूप साधना के परिदृष्ट आयामो पर ध्यान केन्द्रित हुआ । जिज्ञासाओ के बाहुल्य ने समाधानो के भी अम्बार लगाए । यह अलग बात है कि अधिकाश समाधान भी असफल होकर रह गए ।

चू कि जिज्ञासा तनाव-मुक्ति की है, अत: समाधान के सन्दर्भ भी वे ही अपेक्षित है । तनाव आभ्यन्तरिक सन्दर्भो से अनुवेष्टित है, अत समाधान भी आभ्यन्तरिक ही होने चाहिये । और वे होगे मन साधना के सन्दर्भ ।

मन.साधना के अगणित प्रयोग प्रचलित हुए है । हठयोग, भक्तियोग, लययोग, कर्मयोग, सहजयोग आदि । किन्तु सहजयोग के अतिरिक्त प्राय. सभी प्रयोग एक सीमा तक जाकर अपनी उपयोगिता को अवरुद्ध कर लेते है । अत महावीर-दर्शन ने सहजयोग की साधना को ही अधिक सम्पुष्टि प्रदान की है । सहजयोग की साधना के द्वारा ही तनाव-मुक्ति एव उसकी फलश्रुति के रूप मे अमाप शान्ति का साक्षात्कार किया जा सकता है। सहजयोग की साधना "आत्मान विद्धि" अर्थात् आत्म-दर्शन की साधना है । इसकी प्रारम्भिक भूमिका है—मन.साधना ।

समीक्षण ध्यान

उद्वेलित करता है। साधना के लिए सर्वोत्तम उपयोगी स्थान एकान्त, नीरव एव सभी प्रकार के इन्द्रियाकर्षणो से रहित होना चाहिये । पुनः पुनः उठने वाला जनरव प्रारम्भिक ध्यान साधक को विचलित करता रहता है। परिणामतः सफलता मे समय की दूरी बढ जाती है, अतः द्रव्य एव भाव उभय मुखी शुद्धि वाला स्थान ही साधना की उचित भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

इसी प्रकार ध्यान साधक को परिपार्श्विक वातावरण पर भी दृष्टि केन्द्रित करनी होती है। भौतिक ऐश्वर्य एव बाह्य आकर्षणो से घिरा हुआ साधक अन्त प्रवेश की साधना मे शीघ्र सफल नही हो सकता । अन्तःप्रवेश के लिए सहजता अनिवार्य है और वह सहज सरल परिधान एव पर्यावरण के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। साधक के वेश-विन्यास एव रहन-सहन में जितनी सात्विकता-सादगी होगी, चित्त उतना ही शीघ्र साधना के प्रति समर्पित होगा। यह अनावश्यक है कि साधना मे बैठने के पूर्व साधक अपने बाह्य परिवेश को भी सहजता प्रदान करे। 'सादा जीवन उच्च-विचार' यह सामान्य सूक्त साधक जीवन का अभिन्न अग बन जाए। क्योकि परिवेश के साथ विचारो का गहरा सम्बन्ध है। सीधी-सादी पोशाक विचारो की ऋजुता में निमित्त बनती है तो तडक-भडकपूर्ण परिवेश विचारो की वक्रता मे सहयोगी बनता है। अत· परि-पार्श्विक वातावरण की सहजता को भी साधना की भूमिका के रूप मे स्वीकार किया जाय।

समय की नियमितता

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समय के साथ भी मन के कुछ तादात्म्य स्थापित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए—तीन बजे चाय पीने की आदत मन को तत्काल प्रभावित करती है। तीन बजते ही मन सहजतया चाय की स्मृति मे खो जाता है। ठीक यही स्थिति साधना की भी बनती है। साधना हेतु जिस भी औचित्यपूर्ण समय का निर्धारण किया जाता है, उसी समय मन उन पवित्र विचारो का वाहक वन जाता है। अत. समय की नियमितता भी साधना का एक अग वन जाती है। अर्थात् यदि साधक को चार बजकर दस मिनिट पर साधना के लिए प्रस्तुत होना है तो प्रतिदिन उसी समय उसे साधना मे उपस्थित हो जाना चाहिये। न एक मिनिट आगे, न पीछे। समय की यह नियमितता साधक चित्त को अधिक सक्रियता प्रदान करेगी और मनोनियमन मे भी शीघ्र सफलता प्राप्त होगी। यहाँ यह चिन्तन आवश्यक है कि दैनिक चर्या मे उसी उपयुक्ततम समय का निर्धारण हो, जिसमे शारीरिक, पारिवारिक अथवा सामाजिक किसी प्रकार के व्यवधान उपस्थित न हो। और वह सर्वोत्तम समय होगा अपर रात्रि-ब्रह्म मुहूर्त ।

समीक्षण ध्यान

अन्तर्दर्शन

अधिक श्रेष्ठ होगा, एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात प्रारम्भ करूँ। बडा सुहावना-मनभावन मौसम, आकाश कही-कही छितरे किन्तु काले कजरारे मेघो की चादर ओढे हुए था। कभी-कभी किसी दिशा मे बिजली कौध जाती और हल्की सी गर्जना भी हो जाती। मौसम की अनुकूलता देख कुछ मछुआरे निकल पडे अपनी टोकनियाँ लेकर—किसी झील के किनारे पहुँचे और अपने जाल झील मे फैला दिये। सहसा छितरे बादल सघन हो गये। काली घटा घिर आई। देखते-देखते गर्जन-तर्जन के साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। शीघ्रता से अपनी जालें समेट कर सभी भागे, कही आश्रय पाने।

कुछ ही दूरी पर एक रमणीय उद्यान था। किन्तु वहाँ पहुँचते-पहुँचते वे सभी पूरे भीग चुके थे। बागवान से अनुनय किया—"हम ठिठुर रहे हैं, हमे कोई आश्रय दो।" बागवान सहृदय था, अपनी कोठरी के द्वार खोल दिये। बिखरे हुए फूलो को एकत्र किया और उनके सोने योग्य स्थान बना दिया। अपनी टोकनियो को कोठरी के बाहर पटक, वे सभी अन्दर जाकर सो गये।

सर्दी तो कुछ कम हुई किन्तु उन्हे नीद नही आ रही थी। सभी परेशान थे। रात्रि के बारह बजे करीब बागवान को आवाज दी—"भाई, हमे नीद नही आ रही है, बडी दुर्गन्ध आती है यहाँ तो, इस दुर्गन्ध मे हम सो नही सकेंगे। क्या बिखरा है, यहाँ चारो ओर?"

बागवान कुछ चतुर था, कहा—"भाई, यहाँ तो सुगन्धित पुष्प बिखरे है। चारो ओर सुवासित पुष्पो की पौध है। इसके अतिरिक्त तो यहाँ कुछ भी नही है।"

"भाई, इस सुगन्धि को जाने दो, हमे तो और कोई स्थान बताओ। हम इस दुर्गन्ध मे नही सो सकेंगे।"

बागवान बुद्धिमान था, समझ गया कि इन्हे फूलो मे दुर्गन्ध आती है। इनका स्वभाव मछलियो की टोकनियो मे रहने का है। वहीं इन्हे सुगन्धित

जाता है, तो अन्त.प्रवेश की प्यास जागृत होती है, अभिरुचि मे सामान्य-सा मोड आता है, साधना के लिए समुचित मनोभूमि का निर्माण होता है, और ऐसी स्थिति में चित्त वृत्तियो को सम्यग् दिशा प्रदान करने मे विशेष कठिनाई नही होती है।

सकल्प की दृढता, परिवेश की शुद्धता, वातावरण की पवित्रता तथा विनय-विवेक के साथ त्याग-भावना की ओजस्विता के द्वारा साधना के लिये उपयोगी भूमिका का निर्माण हो जाता है। अब आवश्यकता है मन को सुझाव व निर्देशन देने की। सर्वप्रथम मन के लिए यह निर्देश अपेक्षित है कि वह कम से कम साधना काल तक अर्थात् पचास अथवा न्यूनाधिक मिनिट तक आपके निर्देशो का अनुगामी बने। उसकी समस्त बहिर्गामी दौड़ रुक जाए। वह आपके इशारो का अनुसरण करे। यह निर्विवाद है कि जितने तीव्र सकल्प के साथ मन को सजेशन (निर्देश) दिये जाएगे, निर्देशो का अनुपालन उतनी ही अधिक सक्रियता के साथ होगा। अत: निर्देशो के साथ सकल्प का सयुक्तीकरण अनिवार्य है। साधक इतने अधिक ऊर्जस्विल संकल्प का सहयोग ले कि मन की समस्त वृत्तियाँ अपने केन्द्र का अतिक्रमण नही कर सके। किसी भी प्रकार की झझाएँ उसे डोला न सके और कोई भी रागात्मक अथवा द्वेषात्मक वृत्ति उसे आकर्षित नही कर सके। तीव्रतम सकल्प के बल पर निश्चित अवधि तक इन्द्रियो पर सम्यग् नियन्त्रण साधने का प्रयास भी अनिवार्य है।

परमोच्च भावना के साथ परमात्म भाव की साक्षी से यह सकल्प किया जाय कि मैं इस (५० मिनिट की) अवधि मे किसी भी प्रकार के दृश्य-श्रव्य आदि विषयो के आकर्षण-विकर्षण मे नही उलझूगा। कोई भी पापजनक असत्यप्रवृत्ति मेरे द्वारा नही होगी। रस, गध एवं स्पर्श के लुभावनेपन पर भी नियत्रित रहते हुए सभी इन्द्रियो को अप्रशस्त से हटाकर प्रशस्त सम्बल प्रदान करूँगा। साथ ही पानी, अग्नि आदि एकेन्द्रिय प्राणियो की भी रक्षा करता हुआ विश्व मैत्री की उच्च भावना का सृजन करूँगा।

मन एक बालक

इन सब संकल्पों की सम्पूर्ति हेतु यह आवश्यक है कि मन को शृङ्खलाबद्ध कार्यक्रम मे नियुक्त कर दिया जाय। एक अग्रेजी लोकोक्ति है कि "वेकेन्ट माइण्ड इज डेविल'स् वर्कशाप" अर्थात् खाली दिमाग शैतान का घर होता है। अस्तु मन को विपथगामिता से उपराम पाने के लिए उसे सम्यग् दिशा प्रदान करना आवश्यक है। यहाँ मुझे एक छोटी-सी घटना का स्मरण आ रहा है। एक बालक के हाथ में कुल्हाडी आ गई। बस, वह किवाड, फर्नीचर आदि पर प्रहार करने लगा। माँ परेशान हो गई। बालक चचल था, समझाने के सभी प्रयास निष्फल हो रहे थे। सहसा एक विचारक उस मार्ग से निकल रहे थे। उन्होने माता की

उदयपुर के कुछ बुद्धिजीवियो ने भी इस समस्या का अनुभव किया और उसे अपने आराध्य, समता साधना के ज्वलन्त प्रतीक, समता-विभूति आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म० सा० के चरणो मे प्रस्तुत किया । उसी के प्रतिफलन के रूप मे समीक्षण ध्यान का प्रगटीकरण हुआ है ।

आचार्य प्रवर स्वय एक ध्यानयोगी साधक है । ध्यान की तलस्पर्शी अनुभूतियो का सन्दोह है उनके पास । अत वे इसके वैधानिक अधिकारी हैं । उन्होने अपनी इस साधना पद्धति को 'समीक्षण ध्यान' की सज्ञा प्रदान की । समीक्षण का अर्थ है—'सम्यग् + ईक्षण' सम्यग्प्रकार से अथवा समतापूर्वक देखना । विपश्यना एव प्रेक्षा ध्यान प्रणालियो मे केवल 'ईक्षण'—देखने को महत्त्व प्रदान किया गया है जबकि देखना उभयमुखी होता है । सम्यग् भी और मिथ्या भी । अत समीक्षण ध्यान की महत्ता इस अर्थ मे और वढ जाती है कि वह वीतराग सम्मत सम्यग्दर्शन मे अन्तर्गभित होकर मोक्ष मार्ग के त्रिअगो मे स्थान प्राप्त कर लेता है । विपश्यना, प्रेक्षा अथवा सक्रिय ध्यान की पद्धतियो मे वह अर्थवत्ता ध्वनित नही होती जो समीक्षण शब्द मे होती है, क्योकि इसे "पण्णा समिक्खए धम्म" वाला आगमिक आधार भी प्राप्त है ।

प्रस्तुत विधि के उद्भव की एक सामान्य सी भूमिका है । उदयपुर वर्षावास समाप्ति पर था, प्रबुद्ध वर्ग मे कुछ जिज्ञासा वढी कि हम प्रतिदिन प्रवचन सुनकर भी कोरे के कोरे हैं । साधना की दिशा मे हमने कोई रचनात्मक कदम नही वढाए . । और एक दिवस कुछ वन्धुओ ने पूज्य चरणो मे निवेदन किया—"आचार्य देव, आप अपने प्रवचनो मे समीक्षण-ध्यान की वहुत चर्चा किया करते है । हम उसका प्रेक्टिकल (रचनात्मक) दिग्वोध चाहते हैं ।"

आचार्य प्रवर ने मधुर स्मिति के साथ कहा—"वडा हर्ष का विषय है, आप मे ध्यान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई है । साधना की रूपरेखा मेरे मानस मे स्फुरित हुई । मैं लम्वे समय से उसे प्रयोग के पथ पर आत्मसात् करता रहा तथा उसके कुछ सामान्य सकेत भी प्रवचन के माध्यम से देता रहा । किन्तु समाज की वैसी भूमिका की प्रतीक्षा मे था । आज वह भी आप लोगो के माध्यम से समक्ष प्रस्तुत है ।" और आचार्य प्रवर की आत्मस्पर्शी अनुभूतियाँ अभिव्यञ्जित होने लगी ।

'समीक्षण ध्यान के अनुसन्धान' के रूप में आचार्य प्रवर ने जो उद्वोधन दिया, वह उदयपुर वर्षावास की सर्वतो महत् उपलब्धि है, जो कि आचार्य प्रवर के वैचारिक परिवेश एव उनकी ध्यान साधनागत स्थिति को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करती है, अत आचार्य प्रवर के वैचारिक परिवेश का सम्यग्वोध प्राप्त करने हेतु इसका प्रस्तुतिकरण मैं अनिवार्य मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि

जान लेना आवश्यक होता है कि उस पर कितने और किस-किस प्रकार के दाग लग रहे है, कितना प्रयास अपेक्षित होगा इन दागो को छुडाने-मिटाने मे। ये दाग तेल घृतादि चिकने पदार्थो के तो नही है ? इस जानकारी के उपरान्त ही वस्त्र का सम्यक् प्रक्षालन प्रारम्भ किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से समीक्षण ध्यान-साधना के द्वारा चित्तवृत्तियो का सम्यग् अवलोकन होना आवश्यक है। मन पर किस प्रकार की अप्रशस्त वृत्तियाँ हावी हो रही है ? कौन-कौन से चिकने दाग मन की चादर को कलुषित बना रहे है ? तथा कितनी साधना के द्वारा उस कालुष्य से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? आदि। यद्यपि समीक्षण ध्यान की उपयोगिता यही तक सीमित नही है, उसकी उपयोगिता आत्म-दर्शन की पराकाष्ठा पर जाकर नि.सीमता मे रूपान्तरित हो जाती है। तथापि यहाँ उसकी प्रारम्भिक उपयोगिता का निर्देशन मात्र किया गया है।

समीक्षण ध्यान एक अन्त प्रज्ञा चक्षु है, जिसके द्वारा अन्तरंग को देखा जाता है जहाँ बाहर के चर्म चक्षु अपनी स्थूल रूप बोध की परिधि मे अवरुद्ध हो जाते है, उससे ऊपर अन्तरचक्षु के रूप मे समीक्षण ध्यान का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ होता है। यह ईक्षण-देखना मनोवृत्तियो का होगा। उस पर लगे कालुष्य दाग का होगा। किन्तु वह होगा समत्वपूर्वक। क्योकि समत्वपूर्वक किया जाने वाला निरीक्षण ही पक्षपात से रहित होगा और निरपेक्ष भाव से मन.शुद्धि के कार्यक्षेत्र मे सक्षम होगा। यदि ध्यान के उन क्षणो मे भी निरपेक्षता नही आएगी तो मन पुन: भौतिक आकर्षणो मे उलझ जाएगा। लुभावने प्रलोभनो का शिकार हो जाएगा। अस्तु, समीक्षण ध्यान की प्रारम्भिक भूमिका मे केवल चित्तवृत्तियो के सम्यग्निरीक्षण का कार्य होगा और वह इतना ही कि मन किन-किन अशुभ प्रवृत्तियो मे गतिशील होता है ? उसकी राग-द्वेषात्मक एव वैकारिक वृत्तियाँ कितनी तीव्र है ? उन वृत्तियो के उद्दीपन मे कौन-कौन से निमित्त कारण है ? उनकी निवृत्ति के लिए कौन से प्रयास सफल हो सकते है ? इस प्रकार का अनुचिन्तन पूर्ण निरीक्षण समीक्षण ध्यान की भूमिका का कार्य करेगा।

व्यवहार-दर्शन

समर्पण की इस प्रक्रिया के उपरान्त पुन: व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित स्थूल चिन्तन पर आ जाना श्रेष्ठ होगा। चूँकि मानव सामाजिकता से अनुबन्धित होता है, अत: उसे समाज एव परिवार से सम्बद्ध अनेक प्रवृत्तियों मे प्रवृत्त होना पड़ता है। और यह उसके व्यावहारिक जीवन की अनिवार्यता भी है। किन्तु साधक-चित्त मानव के लिए यह चिन्तन अपेक्षित है कि पारिवारिक दायित्वो के निर्वहन हेतु जिन किन्ही विवशताओ से गुजर कर असत्य आदि अशुभ प्रवृत्तियो मे सलग्न होना पड़ा हो, उन्हे आत्मिक दुर्बलता जन्य विवशता ही माना जाय। अशुद्ध को अशुद्ध के रूप मे सहजता पूर्वक स्वीकार किया जाय।

मनस्साधना मे चित्त वृत्तियो के नियत्रण-सशोधन का प्रमुख प्रावधान है। यही आकर "योगश्चित वृत्ति सशोध." वाली परिभाषा सार्थक होती है। किन्तु चित्त वृत्तियो की विशुद्धि सहज साध्य नही है। अनन्त-अनन्त काल से विपथ पर धावमान चित्त को नियत्रित बना लेना सहज हो भी कैसे सकता है ? इस पर सख्यातीत साधको ने अगणित प्रयोग किये और अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया। भटकते साधको को सामयिक समाधान मिले। साध्य की दिशा मे गति बढी। किन्तु स्थायी समाधान स्वानुभूति की अपेक्षा रखता है। अनुभूति बोध से गुजरे बिना साधना की उपयोगिता सदा सदिग्ध ही बनी रहती है तथापि अनुभूतियो के निर्देशन अथवा अभिव्यञ्जन की शृ खला मे एक कडी के सयोजन का विनम्र-सुगम किन्तु सशक्त प्रयास यहाँ प्रस्तुत है, जिसे प्रारम्भिक ध्यान साधक अथवा मनस्साधक के लिए अतीव उपयोगी माना जा सकता है।

भूमिका-शुद्धि

साधना का अर्थ है—बाहर से सिमट कर अन्तरग मे प्रवेश करना। विशृ खलित चित्तवृत्तियो को विशोधन पूर्वक नियत्रित करना। अनादि अनन्त काल से चित्तवृत्तियाँ बहिर्मुखी बनी हुई है, उनमे अस्थैर्यपूर्ण भटकाव है। उन्हे सुनियोजित करने के लिए एक विशेष प्रकार की भूमिका ही अपेक्षित है। बीज वपन के पूर्व कृपक क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। चित्र-निर्माण के पूर्व कलाकार फलक-चित्रपट की विशुद्धि एव उसके उचित अनुमाप को अवश्य देख लेता है। ठीक इसी प्रकार, विकेन्द्रित वृत्तियो के नियत्रण के पूर्व स्थान एव वातावरण की विशुद्धि के साथ तीव्रतम सकल्प शक्ति की अपेक्षा भी अनिवार्य है।

संकल्प

सर्व प्रथम मनस्साधना के प्रति तीव्रतम सकल्प की आवश्यकता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हमारे सकल्प ही हमारे विकास एव ह्रास की दिशा का निर्धारण एव वरण करते हैं। हम जितने सकल्प से किसी भी आचरण के प्रति सक्रिय होते हैं, उतनी ही मात्रा मे हम सफल भी होते हैं। अत. साधना के क्षणो मे उपस्थित होने से पूर्व हमारा मनस् सकल्प से भर जाए। तीव्रतम सकल्प हो कि आज मैं निश्चित रूप से साध्य के प्रति अधिक गतिशील बनूँगा। और यह स्मरण रहे कि हमारा वह सकल्प सकर्म बन कर ही विश्रान्ति ले।

स्थान एवं वातावरण

तीव्र सकल्प के साथ क्षेत्र एवं वातावरण का प्रभाव भी साधक-चित्त को

जान लेना आवश्यक होता है कि उस पर कितने और किस-किस प्रकार के दाग लग रहे है, कितना प्रयास अपेक्षित होगा इन दागों को छुडाने-मिटाने मे । ये दाग तेल घृतादि चिकने पदार्थो के तो नही है ? इस जानकारी के उपरान्त ही वस्त्र का सम्यक् प्रक्षालन प्रारम्भ किया जाता है । ठीक इसी प्रकार से समीक्षण ध्यान-साधना के द्वारा चित्तवृत्तियों का सम्यग् अवलोकन होना आवश्यक है । मन पर किस प्रकार की अप्रशस्त वृत्तियाँ हावी हो रही है ? कौन-कौन से चिकने दाग मन की चादर को कलुषित बना रहे है ? तथा कितनी साधना के द्वारा उस कालुष्य से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? आदि । यद्यपि समीक्षण ध्यान की उपयोगिता यही तक सीमित नही है, उसकी उपयोगिता आत्म-दर्शन की पराकाष्ठा पर जाकर नि.सीमता में रूपान्तरित हो जाती है। तथापि यहाँ उसकी प्रारम्भिक उपयोगिता का निर्देशन मात्र किया गया है ।

समीक्षण ध्यान एक अन्त:प्रज्ञा चक्षु है, जिसके द्वारा अन्तरग को देखा जाता है जहाँ बाहर के चर्म चक्षु अपनी स्थूल रूप बोध की परिधि मे अवरुद्ध हो जाते है, उससे ऊपर अन्तरचक्षु के रूप मे समीक्षण ध्यान का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ होता है । यह ईक्षण-देखना मनोवृत्तियो का होगा । उस पर लगे कालुष्य दाग का होगा । किन्तु वह होगा समत्वपूर्वक । क्योकि समत्वपूर्वक किया जाने वाला निरीक्षण ही पक्षपात से रहित होगा और निरपेक्ष भाव से मन·शुद्धि के कार्यक्षेत्र मे सक्षम होगा । यदि ध्यान के उन क्षणो मे भी निरपेक्षता नही आएगी तो मन पुन: भौतिक आकर्षणो मे उलझ जाएगा । लुभावने प्रलोभनो का शिकार हो जाएगा । अस्तु, समीक्षण ध्यान की प्रारम्भिक भूमिका मे केवल चित्तवृत्तियो के सम्यग्निरीक्षण का कार्य होगा और वह इतना ही कि मन किन-किन अशुभ प्रवृत्तियो मे गतिशील होता है ? उसकी राग-द्वेषात्मक एव वैकारिक वृत्तियाँ कितनी तीव्र है ? उन वृत्तियो के उद्दीपन मे कौन-कौन से निमित्त कारण हैं ? उनकी निवृत्ति के लिए कौन से प्रयास सफल हो सकते है ? इस प्रकार का अनुचिन्तन पूर्ण निरीक्षण समीक्षण ध्यान की भूमिका का कार्य करेगा ।

व्यवहार-दर्शन

समर्पण की इस प्रक्रिया के उपरान्त पुन: व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित स्थूल चिन्तन पर आ जाना श्रेष्ठ होगा । चूँकि मानव सामाजिकता से अनुबन्धित होता है, अत: उसे समाज एव परिवार से सम्बद्ध अनेक प्रवृत्तियो मे प्रवृत्त होना पड़ता है । और यह उसके व्यावहारिक जीवन की अनिवार्यता भी है । किन्तु साधक-चित्त मानव के लिए यह चिन्तन अपेक्षित है कि पारिवारिक दायित्वो के निर्वहन हेतु जिन किन्ही विवशताओ से गुजर कर असत्य आदि अशुभ प्रवृत्तियो मे सलग्न होना पड़ा हो, उन्हे आत्मिक दुर्बलता जन्य विवशता ही माना जाय । अशुद्ध को अशुद्ध के रूप मे सहजता पूर्वक स्वीकार किया जाय ।

विधि-क्रम

पूर्व निर्देशनो के औचित्य-निर्धारण के साथ यदि साधनाकाल अपर रात्रि निर्धारित होता है, तो साधना-काल के आधा घटा पूर्व निद्रा भग एव आसन-विछौना परित्याग आवश्यक है। उस तीस मिनिट के काल मे यदि आवश्यक हो तो दैहिक चिन्ताओ से निवृत्त हो, निश्चित किन्तु उपयुक्त स्थान पर प्रमार्ज-निका से स्थान प्रमार्जन कर सामान्य पतले आसन पर साधना-सामग्री—माला, मुख वस्त्रिका आदि लेकर बैठा जाय। सामायिक सुविधा को दृष्टिगत रखते हुए सामायिक अथवा सवर के प्रत्याख्यान किये जाए। प्रमाद-निवारण एव सजगता साधने हेतु सामायिक प्रत्याख्यान के पूर्व पूर्वाभिमुख ग्यारह वार पचाग-नमन-वन्दन 'तिक्खुतो' के पाठ के उच्चारण के साथ किया जाना आवश्यक है। विधिपूर्वक वन्दन से आलस्य तो टूटेगा ही साथ ही विनय भाव की भी अभि-वृद्धि होगी, जो कि साधना का मूल सेतु है। विनय-अभिवृद्धि का सीधा अर्थ है—अहकार पर चोट। अहकार पर चोट का प्रतिफल होगा लाघवता एव चेतना का ऊर्ध्वारोहण। अत. साधक-चित्त के निर्माण के लिए विनय अनिवार्य है और वह प्राप्त होगा वन्दन-नमन के द्वारा।

विधिपूर्वक वन्दन का दूसरा लाभ और होगा—सहजरूप से योगासन की साधना। विधि के अनुसार तीन आवर्तनपूर्वक ऊठ-वैठकर पचाग नमन होता है। आवर्तनो के द्वारा सीने के कोष्ठको (माँस-पेशियो) मे हरकत होती है, उनमे अधिक सक्रियतापूर्वक रक्त-सचार होता है, फलस्वरूप सीने (वक्षस्थल) का व्यायाम हो जाता है। साथ ही प्राण-वायु (ऑक्सीजन) की मात्रा अधिक प्राप्त होने से जीवन-शक्ति का भी विकास होता है। इस प्रकार वन्दन की इस सामान्य-सी प्रक्रिया मे अहकार विसर्जन के द्वारा आध्यात्मिक एव व्यायाम तथा प्राण-वायु सवर्द्धन के द्वारा शारीरिक, उभयमुखी लाभ प्राप्त होता है। विधि एव विवेकपूर्वक सामायिक अथवा सवर ग्रहण करने के पश्चात् पद्मासन अथवा अन्य किसी सुखासन (जिसमे किसी प्रकार का तनाव न हो) से वैठा जाए। स्मरण रहे आसन अथवा वैठक इस प्रकार हो कि उसमे मेरु-दण्ड (रीढ की हड्डी) सोधा-सरल हो ताकि प्राणो के सचार मे किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो।

अन्तर्यात्रा

उपर्युक्त विधि-क्रिया के उपरान्त हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ होती है। प्राय सम्पूर्ण जीवन वाहर की यात्रा मे गतिशील है। चौवीसो घटो इन्सान वहिर्दर्शन की ओर दौड रहा है। अन्तर्दर्शन की न तीव्र प्यास है और न अभि-रुचि। वाहर की प्रतिस्पर्धात्मक दौड मे उसे अवकाश भी नही कि वह अन्तर्यात्रा के सम्वन्ध मे भी कुछ चिन्तन कर सके। किन्तु जव साधक-चित्त का सृजन हो

पुन· साधना के द्वितीय चरण आत्म-लक्ष्य मे प्रवेश अपेक्षित है। वह चरण होगा आदर्श-स्थैर्य का। किसी उच्च आदर्श की स्थिरता के अभाव मे साधना मे निराबाध गति नही हो सकती है। साधना ही नही किसी भी कार्य के प्रति समर्पित होने के पूर्व किसी आदर्श की परिकल्पना अनिवार्य मानी गई है। एक व्यवसायी व्यवसाय-क्षेत्र मे उतरने के पूर्व किसी समर्थ व्यवसायी को आदर्श मानकर अपने क्षेत्र मे गति करता है। ठीक इसी प्रकार से साधना के क्षेत्र मे चरण गतिशील हो, इसके पूर्व किसी आदर्श की अनिवार्यता अपरिहार्य है। हाँ, वह आदर्श हो परमोच्च एव परम श्रेष्ठ। आदर्श जितना उच्चतम होगा, साधना की गति उतनी ही ऊर्ध्व होगी। अत· आदर्श के निर्धारण मे सजग वृत्ति की नितान्त आवश्यकता है। आदर्श वह होना चाहिये जो लक्ष्य का सर्वोत्तम प्रतिमान हो और साधना के क्षेत्र में वह होगा आत्मा का सर्व विशुद्ध रूप सिद्धावस्था का। आदर्श के अनुचिन्तन मे साधक का प्रथम चिन्तन होगा मेरा जीवन केवल वर्तमान परिवेश-मानव पर्याय तक ही सीमित नही है। अनादि अनन्त के संसरण मे मैं अनेक योनियो मे मनुष्य, तिर्यञ्च एव नरक की पर्यायो मे भ्रमण कर चुका हूँ। अनन्त पुण्य के शुभ सयोग का परिणाम है, यह मानव का तन। उससे भी अधिक पुण्य का प्रतिफल है आर्य क्षेत्र एव सुकुलोत्पत्ति। और अधिक प्रबल पुण्य का प्रभाव है—अध्यात्म के अनुकूल वातावरण का प्राप्त होना।

इस सब सयोग की उपलब्धि के उपरान्त भी यदि मैं आत्म कल्याण के लक्ष्य से विचलित रहा, पुण्यमय संयोगो का सम्यगुपयोग नही किया, भौतिक पदार्थों के अर्जन-सर्जन मे ही अमूल्य उपलब्धि एव बहुमूल्य समय को समर्पित करता रहा तो क्या अर्थ होगा इस सब उपलब्धि का ? क्या मैं दृढ विश्वास के साथ आत्म साक्षी से कह सकता हूँ कि मुझे पुन. आगामी जन्म मे ये सयोग सुलभ हो जाएँगे ? यदि यह आत्म विश्वास सुदृढ नही है तो मुझे किस प्रकार के प्रयासो के प्रति सलग्न होना चाहिए। केवल भौतिक उपादानो की उपलब्धि का मार्ग अन्धकाराच्छन्न मार्ग है। अन्धकार की ओर गतिशील होना मेरा लक्ष्य नही है। इन्द्रियो के आकर्षण भी चेतन सत्ता को अन्धकार की ओर ही ले जाते हैं। समस्त दृश्य, श्रव्य एव आस्वाद्य पदार्थ मुझे अपने आदर्शभूत लक्ष्य से विचलित करने वाले है। मुझे इन सब से ऊपर उठकर परम चेतना के साक्षात्कार के आदर्श को स्वीकार करना है जहाँ अन्धकार की एक रेखा भी न हो। प्रकाश-प्रकाश केवल प्रकाश ही शेष बचे। किन्तु वह प्रकाश भी रवि-शशि-तारो का अथवा दीपक का नही, इन सबसे भिन्न आत्म-ज्ञान का प्रकाश, जिसे सूर्य से भी उपमित नही किया जा सकता है। क्योकि सूर्य के प्रकाश मे भास्वरता के साथ सतप्तता भी है जबकि आत्म प्रकाश मे अनन्त भास्वरता के साथ परम शान्ति का आलोक होता है। इसीलिए 'लोगस्स' के पाठ मे सिद्ध स्वरूप के वर्णन में कहा गया है—"आइच्चेसु अहिय पयासयरा" अर्थात् अनन्त सूर्यों से भी

परेशानी को समझा। बालक को निकट बुलवाया, उसके सिर पर स्नेह से हाथ फिराते हुए कहा—"बेटे, तुम काम करने मे बहुत चतुर हो, तुम कितनी शीघ्रता से काम सम्पन्न कर देते हो।" जलाऊ लकडी (ईन्धन) की ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा—"देखो बेटा, वे लकडियाँ पडी हैं, उनके जलाने लायक छोटे-छोटे टुकडे करना है। देखे, कितनी जल्दी करते हो।"

बस किशोर को काम मिल गया। उसकी कुल्हाडी ध्वस के बजाय सृजन मे लग गई। माता की समस्या समाहित हो गई और उसका एक अधूरा पडा कार्य भी सम्पन्न हो गया।

हमारा मन भी उस बालक के समान है। जब तक उसे व्यवस्थित दिशा नही मिल जाती, किसी भी सत्प्रवृत्ति का आधार नही मिल जाता, वह उछल-कूद करता रहता है। विध्वस के ताने-बाने बुनता रहता है। क्योकि मन का स्वभाव ही मनन करना है, गतिशीलता है। उसकी गति तो होगी ही, उसे मनन से रोका नही जा सकता है। मन साधना का अर्थ इतना ही है कि मन की दिशा को बदल दिया जाय। उसे असत् से हटाकर सत्प्रवृत्ति मे सयोजित कर दिया जाय। विभाव से मोडकर स्वभाव का प्रशस्त मार्ग दिया जाय।

हमारी चेतना अनन्त अनादि से कर्म बन्धन से सम्पृक्त है। कर्म की कालिख उसकी विशुद्ध अवस्था को आवृत्त कर मलिन बनाए हुए है। वही कालुष्य मनोवृत्तियो को भी विकृत बनाता रहता है। तात्पर्य यह है कि अनादि-कालीन कर्मजनित काम, क्रोधादि की वासना मन के केन्द्र को विकृत करती रहती है। यही वासना समस्त विषमताओ, विद्वेषो एव विरूपताओ की जननी है। चूँकि यह अनादिकालीन है, अत. इस पर त्वरित विजय नही हो पाती है। मनोवैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण इस विजय मे सहयोगी बन सकता है। यहाँ यह विशेष रूप से समझ लेना चाहिये कि मनोवृत्तियो का अवरुन्धन साधना का उद्देश्य नही है, साधना का उद्देश्य है—वृत्तियो का सशोधन, उदात्तीकरण अथवा रूपान्तरण और वह सशोधन, उदात्तीकरण अथवा रूपान्तरण होगा समीक्षण ध्यान-साधना के द्वारा।

समीक्षण–अर्थ–सन्दर्भ

समीक्षण शब्द का अर्थ है—सम्यक् प्रकार से अथवा समतापूर्वक देखना निरीक्षण करना। 'सम + ईक्षण' इन दो शब्दो के मेल से 'समीक्षण' शब्द बना है। 'सम' का अर्थ है—समता अथवा सम्यक् और 'ईक्षण' का अर्थ है—देखना। अत समीक्षण का तात्पर्य हुआ अपनी ही वृत्तियो को सम्यग्रीत्या समभाव पूर्वक निश्चित रूप से देखना। इस अर्थ मे चित्त वृत्तियो के सम्यग्निरीक्षण को भी साधना का अनिवार्य अग माना गया है। किसी वस्त्र की धुलाई के पूर्व यह

साक्षात्कार उसकी सामर्थ्य-सीमा से बाहर होगा । किन्तु यह नही भूलना चाहिये कि साधक स्वयं भी अनन्त सत्ता का धारक होता है । अपनी शक्ति का अनवरत स्मरण उसे अपने आदर्श के स्वरूप बोध मे अवश्य सहयोगी बनेगा । उसकी दृढ सकल्पनात्मक साधना उसे निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाएगी । इस जन्म मे नही तो आगामी जन्म मे और आगामी जन्म में वह अवश्य ध्येय का साक्षात्कर्ता बनेगा ।

तीसरा आयाम—भविष्य का निर्धारण

आदर्श के निर्धारण एव लक्ष्य के सस्मरण के द्वारा आत्म-लक्ष्यी अन्तरावलोकन कर साधक पुन: अपने व्यावहारिक जीवन मे लौट आता है । यही से साधना का तृतीय चरण अथवा तीसरा आयाम प्रारम्भ होता है ।

साधक की यात्रा बाहर से भीतर की ओर हुई । व्यवहार से अध्यात्म की ओर हुई । देह से चैतन्य की ओर हुई । किन्तु चेतना की ओर होने वाली यह यात्रा सामयिक थी, अत: निश्चित अवधि के उपरान्त उसे पुन. अपने व्यावहारिक जीवन मे लौटना पडता है । हाँ, वह लौटना भी अध्यात्म साधना का सम्पूरक ही होगा । उसी को गति देने वाला होगा ।

पुन व्यावहारिक जीवन मे लौटने की प्रक्रिया स्वरूप इस तृतीय चरण मे सकल्प की बलवत् शक्ति का सम्बल अपेक्षित होगा । बाहर लौटने की इस क्रिया मे सर्वप्रथम प्रबलतम सकल्प के साथ सामयिक निश्चितता, समय की पाबन्दी पर बल दिया जाना आवश्यक है और उसी के आधार पर साधनावधि के उपरान्त आगामी चौबीस घन्टो के कार्यक्रम का निर्धारण होना चाहिये । साधना से उठते ही जिस कार्य के प्रति सलग्न होना है, उसका समय निश्चित कर लिया जाय कि इतने बजकर इतने मिनिट पर मुझे इस कार्य से निवृत्त होकर इससे अगले कार्य के प्रति इतने बजे सलग्न हो जाना है । इसी प्रकार समस्त दैनिक कार्यक्रमों का सामयिक विभाजन दृढ सकल्प के साथ किया जाय । उदाहरण के लिए, साधना से उठते ही देह चिन्ता-निवारण अथवा शारीरिक अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति मे सलग्न होना है तो उनकी कालावधि निश्चित कर ली जाय । इस निश्चिति मे भी मन को सशक्त सुझाव दिये जाएँ कि उसे उस समय उसी क्रिया के प्रति समर्पित होना है, जो समय जिस के लिए नियुक्त है । उससे किंचित्-मात्र भी इधर-उधर नही होना है ।

सहज योग

इस समय-निर्धारण के साथ साधक चित्त की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि जिस कार्य में साधक सलग्न हो, उसकी समग्र वृत्तियाँ उसी के प्रति समर्पित हों, उसका सम्पूर्ण उपयोग-अवधान उसी के प्रति हो । जिस समय वाचन

व्यवसाय आदि मे भी जहाँ कही असत्य आदि अनैतिक आचरणो का सहारा लेना पड रहा हो, उसे भी अपनी मानसिक दुर्बलता मानकर उसके प्रति हार्दिक पश्चात्ताप किया जाय और यह चिन्तन भी किया जाय कि वह दिवस मेरे लिये परम सौभाग्य का होगा जबकि मैं इन दुर्बलताओ एव विवशताओ से ऊपर उठ कर समस्त असत् प्रवृत्तियो से मुख-मोड कर आत्म-दर्शन के लक्ष्य के प्रति समर्पित बनूँगा ।

विवशताजनित असत्प्रवृत्तियो के प्रति पश्चात्ताप के साथ ही असावधानी, प्रमाद एव आलस्यवश विगत २४ घन्टो मे हुई त्रुटियो के लिए भी सघन पश्चात्ताप करते हुए कोई सशक्त प्रायश्चित्त रखना आवश्यक है । प्रायश्चित्त से पूर्व यह निर्धारण अनिवार्य होगा कि उन प्रमादजनित अशुभ प्रवृत्तियो का अनुगणन किया जाय । दिन भर मे किस प्रमत्त भाव मे कौनसी असत्प्रवृत्ति हुई ? कितनी मात्रा मे मलिन विचारो ने अपना प्रभाव दिखाया ? ताकि प्रायश्चित्त की मात्रा का निर्धारण भी सम्यक् प्रकारेण हो सके । प्रायश्चित्त इस प्रकार का हो कि उसका मन पर गहरा प्रभाव अकित हो सके और इसके लिए सुगम उपाय यह है कि मन की अत्यन्त प्रिय वस्तु उसे नही दी जाए । अर्थात् कोई खाद्य-पदार्थ, जिस पर मन की अत्यधिक आसक्ति हो, छोड दिया जाए । इस प्रक्रिया का प्रभाव तो मन पर होगा ही, साथ ही मन को कुछ सशक्त निर्देश भी प्राप्त होंगे कि वह पुन वैसी त्रुटि के प्रति प्रवृत्त न हो । इस निर्देश के सत्परिणाम कुछ दीर्घकालावधि अवश्य चाहेगे, किन्तु वे होंगे प्रभावशील ।

मन को दिये जाने वाले निर्देशनो मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विवशताओ एव प्रमत्तताओ से होने वाली भूलो को उसी क्रम से उसी सक्रिय सशक्तता के साथ परिमार्जित किया जाय ताकि समीक्षण की क्रिया भी वैधानिक रूप ले सके ।

यह निश्चित है कि सभी त्रुटियो का समीक्षण, निरीक्षण अथवा परिमार्जन एक साथ नही हो सकेगा तथापि स्थूल प्रवृत्तियो से उपराम पाते हुए सूक्ष्म दोषो को भी परिमार्जित किया जा सकेगा ।

आत्मावलोकन अथवा व्यवहार दर्शन की इस प्रक्रिया मे तब तक सलग्न रहना चाहिये जब तक चित्त मे उत्साह-उमंग हो, मन की क्षुधा बनी रहे—मन चाहे कि अभी कुछ समय और यही चिन्तन किया जाय । इस प्यासपूर्ण स्थिति मे ही—ऊब के पूर्व साधना के आयाम मे कुछ परिवर्तन कर देना अधिक श्रेष्ठ होगा । क्योकि प्रारम्भ मे ही मन को ऊबा देने से पुन. उसी साधना-क्रम मे गति लाना अत्यन्त कठिन हो जाता है ।

परमोच्च आदर्श—द्वितीय चरण

जीवन के व्यावहारिक परिवेश मे मनोवृत्तियो के समायोजन के उपरान्त

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि हमारा लक्ष्य सिद्ध-स्वरूप का साक्षात्कार है—परम चैतन्य-सत्ता की अवाप्ति एव अविचल शान्ति मे सदा-सदा के लिए विश्रान्ति, यही हमने साधना के उच्चतम लक्ष्य के रूप मे स्वीकार किया है। अत उपर्युक्त त्रिआयामी साधना मन स्थिति को सुदृढ-एकावधानी बनाने की भूमिका मात्र है। इसे ही साधना का सर्वोतम आदर्श या सर्वोच्च लक्ष्य नही मान लेना चाहिये।

यहाँ यह स्मरणीय है कि साधना की पूर्व भूमिका स्वरूप इन तीन आयामो मे भी प्रतिदिन प्रखरता के साथ सूक्ष्मता मे अवगाहन अपेक्षित है। कुछ घिसी-पिटी बातो का ही प्रतिदिन चिन्तन साधना नही होगी। विषय वे ही हो किन्तु उन्ही विषयो का सूक्ष्म चिन्तन हो और वह सूक्ष्मता-तलस्पर्शिता प्रतिदिन बढती ही जाय। जितनी गहराई मे पहुँचा जा सके, चिन्तन को उतनी ही गहराई मे ले जाना चाहिये। "जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ" वाली सूक्ति को सदा स्मरण रखना चाहिये। हाँ, यह ध्यान अवश्य रहे कि चिन्तन की गम्भीरता वही तक हो कि मस्तिष्क मे किसी भी प्रकार का तनाव उत्पन्न न हो। चिन्तन के प्रति उत्साह-उमग कुछ शेष रहे उसके पूर्व ही चिन्तन को विषयान्तर मे ले जाना चाहिये। यह सावधानी तो साधना के प्रत्येक चरण मे आवश्यक है। जहाँ भी मस्तिष्क मे हल्का सा भी तनाव अनुभव हो, तुरन्त उस चरण का स्थगन और कुछ विश्रान्ति के पश्चात् नवीन चरण का प्रारम्भ हो जाय।

आदर्श के अनुस्मरण रूप द्वितीय आयाम मे भी यह जागरण आवश्यक है कि साधक अपने आपको तदनुरूप ढलता हुआ अनुभव करे। उसके सुदृढ-सकल्प हो कि मेरी अन्तश्चेतना मे अनन्त सूर्यो से भी अधिक प्रकाश है, मेरे चित्ताकाश मे उस प्रकाश की लौ जल रही है। आलोक का एक व्यापक विस्फोट मेरी आत्मा मे हो रहा है। मेरी आत्मा मे अनेक शक्तिस्रोत प्रवाहित हो रहे है। अनेक शक्तियो की अभिव्यक्ति का मै अनुभव कर रहा हूँ।

यह निश्चित है कि साधना का यह क्रम कुछ अधिक कालावधि की अपेक्षा रखता है। कारण स्पष्ट है कि सुदीर्घकाल से विशृखलित चित्तवृत्तियो पर सहसा विजय नही पाई जा सकती है तथा सर्वोच्च सिद्धि के लिए सर्वोत्कृष्ट प्रयत्न भी तो अपेक्षित होता है। व्यवहार मे हम देखते है कि बीज-वपन के साथ ही फल की प्राप्ति नही हो जाती है। कुछ फलो मे महीनो की तो कुछ आम्रादि फलो मे वर्षो की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जब भौतिक फलो की प्राप्ति मे हम प्रतीक्षा कर सकते हैं, उसमे अविश्वास भी नही करते हैं तो अध्यात्म साधना मे त्वरित फल कामना के साथ धैर्य कैसे छोड सकते है? निश्चित विश्वास एव अगाध धैर्य के साथ साधना मे गतिशील रहते हुए

व्यवसाय आदि मे भी जहाँ कही असत्य आदि अनैतिक आचरणो का सहारा लेना पड रहा हो, उसे भी अपनी मानसिक दुर्बलता मानकर उसके प्रति हार्दिक पश्चात्ताप किया जाय और यह चिन्तन भी किया जाय कि वह दिवस मेरे लिये परम सौभाग्य का होगा जबकि मैं इन दुर्बलताओ एव विवशताओ से ऊपर उठ कर समस्त असत् प्रवृत्तियो से मुख-मोड कर आत्म-दर्शन के लक्ष्य के प्रति समर्पित बनूँगा।

विवशताजनित असत्प्रवृत्तियो के प्रति पश्चात्ताप के साथ ही असावधानी, प्रमाद एव आलस्यवश विगत २४ घन्टो मे हुई त्रुटियो के लिए भी सघन पश्चात्ताप करते हुए कोई सशक्त प्रायश्चित्त रखना आवश्यक है। प्रायश्चित्त से पूर्व यह निर्धारण अनिवार्य होगा कि उन प्रमादजनित अशुभ प्रवृत्तियो का अनुगणन किया जाय। दिन भर मे किस प्रमत्त भाव मे कौनसी असत्प्रवृत्ति हुई ? कितनी मात्रा मे मलिन विचारो ने अपना प्रभाव दिखाया ? ताकि प्रायश्चित्त की मात्रा का निर्धारण भी सम्यक् प्रकारेण हो सके। प्रायश्चित्त इस प्रकार का हो कि उसका मन पर गहरा प्रभाव अकित हो सके और इसके लिए सुगम उपाय यह है कि मन की अत्यन्त प्रिय वस्तु उसे नही दी जाए। अर्थात् कोई खाद्य-पदार्थ, जिस पर मन की अत्यधिक आसक्ति हो, छोड दिया जाए। इस प्रक्रिया का प्रभाव तो मन पर होगा ही, साथ ही मन को कुछ सशक्त निर्देश भी प्राप्त होगे कि वह पुनः वैसी त्रुटि के प्रति प्रवृत्त न हो। इस निर्देश के सत्परिणाम कुछ दीर्घकालावधि अवश्य चाहेगे, किन्तु वे होगे प्रभावशील।

मन को दिये जाने वाले निर्देशनो मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विवशताओ एव प्रमत्तताओ से होने वाली भूलो को उसी क्रम से उसी सक्रिय सशक्तता के साथ परिमार्जित किया जाय ताकि समीक्षण की क्रिया भी वैधानिक रूप ले सके।

यह निश्चित है कि सभी त्रुटियो का समीक्षण, निरीक्षण अथवा परिमार्जन एक साथ नही हो सकेगा तथापि स्थूल प्रवृत्तियो से उपराम पाते हुए सूक्ष्म दोषो को भी परिमार्जित किया जा सकेगा।

आत्मावलोकन अथवा व्यवहार दर्शन की इस प्रक्रिया मे तब तक सलग्न रहना चाहिये जब तक चित्त मे उत्साह-उमंग हो, मन की क्षुधा बनी रहे—मन चाहे कि अभी कुछ समय और यही चिन्तन किया जाय। इस प्यासपूर्ण स्थिति मे ही—ऊब के पूर्व साधना के आयाम मे कुछ परिवर्तन कर देना अधिक श्रेष्ठ होगा। क्योकि प्रारम्भ मे ही मन को ऊबा देने से पुन. उसी साधना-क्रम मे गति लाना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

परमोच्च आदर्श—द्वितीय चरण

जीवन के व्यावहारिक परिवेश मे मनोवृत्तियो के समायोजन के उपरान्त

खोज करता रहा। किन्तु मेरी दृष्टि जब आत्म-शक्ति पर केन्द्रित हुई, मैं इनकी क्षुद्रता को समझ गया। मुझे यह ज्ञात हो गया कि मेरा आनन्द क्षणिक क्यो है ? अब तक मैं तत्त्व द्रष्टाओं द्वारा वर्णित शाश्वत आनन्द को क्यो नही उपलब्ध कर पा रहा था और, अब मेरी आत्म ज्योति प्रज्वलित हो गई है, मेरी शक्ति मे जागरण हो चुका है। ज्योति और वह जागरण है—समीक्षण ध्यान।

समीक्षण ध्यान से मैने आत्म-शक्ति को देखा-परखा। उसकी तह-गहराई तक पहुँचा। समता की आँख से देखा तो मुझे आश्चर्यमिश्रित खेद हुआ। आश्चर्य यह कि कितनी अमाप शक्ति का केन्द्र हूँ मैं। मेरी मूल सत्ता केवल आनन्दमयी ही है और मैं उसे बाहर खोजता रहा। और खेद इस बात का कि मैं कितनी बेहोशी मे था, अपने आप से बेभान। अपने आप से अपरिचित ! अनन्त शाश्वत आनन्द का असीम कोष होते हुए भी दर-दर ठोकर खाने वाला भिखारी बना—मैं किन बाह्य पदार्थों-इन्द्रियाकर्षणो मे आनन्द को खोज रहा था। उन्हे ही जीवन का आदर्श मानकर सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को इन्ही विनश्वर पदार्थों के प्रति समर्पित कर दिया। खेद ही नही, महा खेद का विषय है कि अनन्त आलोक स्वरूप होते हुए मैं अन्धकार मे ठोकरे खाता-भटकता रहा। सत्‌चित्त आनन्दघन स्वरूप अनिर्वचनीय अलौकिक आत्म-शक्ति पर इन विकारी वृत्तियो का इतना कुहरा छा गया कि मैं अपने आप से सर्वथा अपरिचित बना रहा। कितना महा अज्ञान, कितनी प्रगाढ मोह-निद्रा और किस प्रकार इसने मुझ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया !!!

सद्‌गुरु के मार्ग-दर्शन ने मेरे विवेक-चक्षु उद्‌घाटित किये और अब मैं समझ पाया हूँ कि मै स्वयं ही स्वयं का स्रष्टा हूँ। अनन्त शक्ति की अविरल स्रोतस्विनी मेरे भीतर बह रही है। मैं ही तो अनन्त ज्योति पुञ्ज हूँ। मेरी चेतना स्वयं मे सर्व तन्त्र, स्वतन्त्र, पूर्णतया निर्विकार, लोकालोक को सम्यग्‌रीत्या अवलोकन करने वाली, केवलज्ञान की सत्ता की धारक है। और इस स्वरूप बोध को देने वाली शक्ति है, वीतराग वाणी। अतः उसे ही मैं परिपूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ। उसी वाणी का निष्यन्द रूप नवनीत है—समीक्षण ध्यान। अब इसी समीक्षण ध्यान के द्वारा मैं अपने अनन्त स्वरूपी चेतना-बोध के प्रति सक्रिय हूँ। मैं अपने आपको परम धन्य—परम सौभाग्यशाली मानता हूँ कि अनन्त ससृति के ससरण मे अब मैंने अपनी दिव्य निधि आत्म-बोध को प्राप्त कर लिया। यह ठीक है कि अभी यह प्राप्ति केवल श्रद्धा स्वरूपा है। किन्तु मुझे अब प्रगाढ विश्वास हो गया है कि मेरी यह श्रद्धा अविचल होगी और कार्यान्वित भी। अब दूषित वृत्तियाँ मेरी आत्मा मे अपना स्थान नही बना सकेगी। अब संघर्ष मे विजय आत्म-शक्ति की ही होगी। यहाँ तक कि ये वृत्तियाँ चाहे इस साधना मे सहयोगी शरीर को भी समाप्त करने का

अधिक प्रकाश करने वाले । आचार्य मानतु ग ने अपने 'भक्तामर स्तोत्र' मे कहा—
"सूर्यातिशायि महिमासि · · · ।"

अनन्त सूर्यों से भी अधिक महिमा वाले ।

तो हमारा आदर्श यह भौतिक पदार्थों से अनुबन्धित आलोक भी नही होगा । हमारा आदर्श होगा, अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान चेतना की सर्वोच्च सत्ता का, जहाँ केवल परम आनन्द ही शेष बचता है । शान्ति ही शान्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहता है । जिसकी चरम परिणति होगी सत्-चित्त आनन्दमयता ।

इस परमोच्च आदर्श को समक्ष रख कर ही साधक साधना मे चरण बढा सकता है और तद् द्वारा उद्देश्य प्रपूर्ति तक पहुँच सकता है । इस सर्वोत्तम आदर्श को विस्मृत कर केवल वर्तमान जीवन और तत्सम्बन्धी उपलब्धियो को ही सब कुछ मान बैठने वाला साधक अपनी अनन्त सामर्थ्य-सत्ता को भी विस्मृत कर जाता है । परिणामत इस शरीर की क्षुद्र परिधि के सकुचित घेरे मे ही अपनी अनन्त शक्ति को अवरुद्ध कर लेता है और उसके लिए विकास के समस्त द्वार ही बन्द हो जाते है ।

अत· साधना के द्वितीय चरण मे साधक सजगवृत्या अपने आदर्श के निर्धारण, उसके प्रति समर्पण एव उसमे होने वाली त्रुटियो के प्रति पश्चात्ताप पूर्ण चिन्तन मे अपनी सम्पूर्ण चिन्तना शक्ति को नियोजित करता है । जहाँ भी विवशता आती है, साधक-चित्त पश्चात्ताप से भर जाना चाहिए । क्योकि पश्चात्ताप भविष्य के प्रति सजगता का सकेत करता है । फलस्वरूप साधक की साधना मे अधिक निखार आता है ।

साधना के इसी चरण मे यह चिन्तन भी आवश्यक है कि ससार की समस्त गतियो, समस्त योनियो मे एक मानव तन की पर्याय ही साधना मे सम्बल प्रदान कर सकती है । अतीत काल मे अनन्त सिद्ध भगवन्तो ने इस मानव तन के द्वारा ही उस परम चैतन्य रूप आत्मसत्ता का साक्षात्कार किया है । बिना मानवीय तन के मोक्ष मार्ग की—आत्म ज्योति के साक्षात्कार की साधना नही हो सकती है । अत इस क्षण-भगुर, किन्तु महत्त्वपूर्ण तन के महत्त्व को समझकर तथा सिद्ध-स्वरूप के परम आदर्श को समक्ष रखकर दृढ सकल्प के साथ मुझे जीवन की अर्थवत्ता को सार्थक करना है । क्षण भर के लिए भी मुझे अपने आदर्श-लक्ष्य को विस्मृत नही करना है । मेरा उपयोग सतत साधना के उच्चतम लक्ष्य के प्रति समर्पित हो ·· · ।

यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रारम्भ मे साधक को आदर्श का अनुचिन्तन अनिर्वचनीय एव काल्पनिक उडान ही लगेगा । क्योकि उतनी उच्च स्थिति का

खोज करता रहा। किन्तु मेरी दृष्टि जब आत्म-शक्ति पर केन्द्रित हुई, मैं इनकी क्षुद्रता को समझ गया। मुझे यह ज्ञात हो गया कि मेरा आनन्द क्षणिक क्यो है ? अब तक मैं तत्त्व द्रष्टाओ द्वारा वर्णित शाश्वत आनन्द को क्यो नही उपलब्ध कर पा रहा था और, अब मेरी आत्म ज्योति प्रज्वलित हो गई है, मेरी शक्ति मे जागरण हो चुका है। ज्योति और वह जागरण है—समीक्षण ध्यान।

समीक्षण ध्यान से मैंने आत्म-शक्ति को देखा-परखा। उसकी तह-गहराई तक पहुँचा। समता की आँख से देखा तो मुझे आश्चर्यमिश्रित खेद हुआ। आश्चर्य यह कि कितनी अमाप शक्ति का केन्द्र हूँ मै। मेरी मूल सत्ता केवल आनन्दमयी ही है और मैं उसे बाहर खोजता रहा। और खेद इस बात का कि मैं कितनी बेहोशी मे था, अपने आप से बेभान। अपने आप से अपरिचित ! अनन्त शाश्वत आनन्द का असीम कोष होते हुए भी दर-दर ठोकर खाने वाला भिखारी बना—मैं किन बाह्य पदार्थों-इन्द्रियाकर्षणो मे आनन्द को खोज रहा था। उन्हे ही जीवन का आदर्श मानकर सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को इन्ही विनश्वर पदार्थों के प्रति समर्पित कर दिया। खेद ही नही, महा खेद का विषय है कि अनन्त आलोक स्वरूप होते हुए मैं अन्धकार मे ठोकरे खाता-भटकता रहा। सत्‌चित्त आनन्दघन स्वरूप अनिर्वचनीय अलौकिक आत्म-शक्ति पर इन विकारी वृत्तियो का इतना कुहरा छा गया कि मैं अपने आप से सर्वथा अपरिचित बना रहा। कितना महा अज्ञान, कितनी प्रगाढ मोह-निद्रा और किस प्रकार इसने मुझ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया ! ! !

सद्‌गुरु के मार्ग-दर्शन ने मेरे विवेक-चक्षु उद्‌घाटित किये और अब मैं समझ पाया हूँ कि मैं स्वय ही स्वय का स्रष्टा हूँ। अनन्त शक्ति की अविरल स्रोतस्विनी मेरे भीतर बह रही है। मै ही तो अनन्त ज्योति पुञ्ज हूँ। मेरी चेतना स्वयं मे सर्व तन्त्र, स्वतन्त्र, पूर्णतया निर्विकार, लोकालोक को सम्यग्‌-रीत्या अवलोकन करने वाली, केवलज्ञान की सत्ता की धारक है। और इस स्वरूप बोध को देने वाली शक्ति है, वीतराग वाणी। अत· उसे ही मैं परिपूर्ण सत्य के रूप मे स्वीकार करता हूँ। उसी वाणी का निष्यन्द रूप नवनीत है—समीक्षण ध्यान। अब इसी समीक्षण ध्यान के द्वारा मै अपने अनन्त स्वरूपी चेतना-बोध के प्रति सक्रिय हूँ। मैं अपने आपको परम धन्य—परम सौभाग्यशाली मानता हूँ कि अनन्त ससृति के ससरण मे अब मैंने अपनी दिव्य निधि आत्म-बोध को प्राप्त कर लिया। यह ठीक है कि अभी यह प्राप्ति केवल श्रद्धा स्वरूपा है। किन्तु मुझे अब प्रगाढ विश्वास हो गया है कि मेरी यह श्रद्धा अविचल होगी और कार्यान्वित भी। अब दूषित वृत्तियाँ मेरी आत्मा मे अपना स्थान नही बना सकेगी। अब सघर्ष मे विजय आत्म-शक्ति की ही होगी। यहाँ तक कि ये वृत्तियाँ चाहे इस भावना मे सहयोगी शरीर को भी समाप्त करने का

कर रहा है तो उसका ध्यान वाचन के प्रति ही हो। उसकी चित्तवृत्तियाँ उसी मे उपयुक्त हो। उस समय वह भोजन को अपनी स्मृति-पथ पर नही आने दे। और जब भोजन अथवा अन्य कार्यों के प्रति समर्पित हो, स्नान अथवा अन्य अपर कार्य का स्मरण नही होना चाहिए।

कार्य के प्रति एकावधानता की यह साधना ही सहज योग की साधना कहलाती है। अस्तु, साधना के तृतीय चरण मे कार्य के प्रति पूर्णतया समर्पण के सकल्प बने। सकल्प की दृढता यहाँ तक हो कि मैं आज भोजन करते समय उसकी एक-एक क्रिया पर सजगता की साधना करूँगा। कौर तोडते हुए, ग्रास मुखार्पित करते हुए, उसका चर्वण (चबाना) करते हुए सभी क्रियाओ में मेरा उपयोग सजग रहेगा। प्रत्येक क्रिया का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन करूँगा। उसके प्रत्येक एक्शन के प्रति सजगता का अभ्यास करूँगा। एक भी कौर-ग्रास बिना सजगता के अन्दर नही जाएगा।

भोजन के समय की जाने वाली इस जागृति-साधना के द्वारा सहज योग की साधना तो होगी ही साथ ही पाचन-प्रक्रिया पर भी इसका प्रभाव होगा। सतत जागृति के कारण खाद्य-पदार्थ ठीक प्रकार से चबाया जाएगा। उसमे पाचक रस का सम्मिश्रण समुचित मात्रा मे होगा, परिणामत· वह सुपाच्य हो जाएगा। यह स्मरणीय है कि भोज्य पदार्थ जितना सात्विक होगा, उतना ही सुपाच्य होगा और पाचन प्रक्रिया का सुव्यवस्थित होना, प्राण-शक्ति के सवर्धन मे आवश्यक है और प्राण-शक्ति का सवर्धन साधना के लिए आवश्यक है। इस प्रकार भोजन करते समय जागरुकता का होना शारीरिक दृष्टि से भी एवं साधना की दृष्टि से भी लाभप्रद होता है

भोजन ग्रहण के समान ही प्रत्येक दैनन्दित क्रिया मे सतत सावधानता की साधना का सकल्प साधना के तृतीय चरण मे किया जाना आवश्यक है।

साधना का त्रिचरणात्मक अथवा तीन आयाम रूप यह क्रम, जिसमे अतीत २४ घन्टो का सस्मरण, आगामी २४ घन्टो की रूप-रेखा का निर्धारण एव इन दोनो के मध्य आदर्श लक्ष्य का एकावधान अनुचिन्तन हो, नियमित रूप से प्रति-दिन किया जाय। जहाँ कही मनोवृत्तियो मे स्खलन हो, पुन. उसे सावधानी का सम्बल प्रदान किया जाय। इस साधना के क्षणो मे मन को अपना अनुचर बने रहने का सकल्प दोहराना और उसे वैसा वने रहने को वाध्य करना अधिक श्रेष्ठ होगा। क्योकि मन को अनुचरवत अनुशासित किये विना सकल्प सशक्त नही वन पाते हैं। और उनके अभाव मे लक्ष्य सिद्धि असम्भव ही है। अस्तु, लक्ष्य के प्रति प्रतिपल जागरण के साथ मनोवृत्तियो का समीक्षीकरण अनिवार्य माना जाना चाहिये।

साधक कुछ शाति के क्षणो मे अनुभव का आस्वादन प्राप्त करता है। वह एक ऐसी अवस्था है जो कि समाधि के स्वरूप का आभास कराने लगती है। जब कभी साधक को यह लगने लगता है कि मेरी साधना परिपूर्णता को प्राप्त होने मे अग्रसर बन रही है। तत्काल साधक कुछ भ्राति की स्थिति मे आ जाता है। समय की परिधि के बढने को समाधि की परिधि बढना मान लेता है। इस प्रकार का भ्रम हो जाने से मानसतत्र के परे के तंत्रो को नियत्रित करता हुआ अग्रिम परिधि मे नही पहुँच पाता। क्योकि स्थूल परिधि मे अपेक्षाकृत सतुष्टि एव समय की वृद्धि को समाधि की वृद्धि मान लेने से आतरिक यात्रा करने वाले दृढ सकल्प की एव अदम्य उत्साह की जो वृत्तियाँ गन्तव्य स्थान की परिपूर्णता की ओर ले जाने के लिये उत्सुक बनी थी, उस उत्सुकता मे शिथिलता एव कमजोरी व्याप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप यत्किचित् बाहरी परिधि मे होने वाले परिणामो को ही सब कुछ मानने से आगे की गतिशीलता कु ठित सी बन जाती है। अतः साधको को साधना के क्षेत्र में प्रति समय दृढ सकलपपूर्वक अग्रिम मंजिल को पाने के लिये सदा उत्साहित रहना चाहिये। चिन्तन करना चाहिये कि यह यात्रा का प्रथम पडाव है। इस पडाव मे विश्राम लिया जा रहा है, परन्तु वह विश्राम आगे के आयामो मे बैठने के लिये शक्ति सचय का रूप है न कि कोई आखिरी मजिल ही है। इस प्रकार के चिन्तनपूर्वक आगे के आयामो के लिये अति जिज्ञासु और तीव्र पिपासु बनकर प्रारम्भिक विराम की अपेक्षा से गतिशीलता की गरिमा को विशेष महत्त्व देने पर आगे का पडाव सहज सुलभ बनता हुआ परिलक्षित होने लगेगा।

किन्तु स्थूल परिधि मे मानसिक तत्र की जो उलझन है उस उलझन को सुलझाये बिना अग्रिम गति बन नही पाती। उसको सुलझाने के लिये बाहरी साधन एव अन्य तौरतरीके कामयाब नही हो सकते। उलझन तभी सुलझ सकती है जबकि उसका सम्यक् रीति से अवलोकन कर लिया जाय। उलझे हुए सूत के धागो को बिना अवलोकन किये कोई भी व्यक्ति सुलझा नही सकता। उन जाल के रूप मे परिणीत धागो के देखने मे अवधानता, मन की एकाग्रता, शरीर की स्थिरता, नेत्र और हाथो के सक्रिय होने पर ही उस सूत के जाल को सुलझाया जा सकता है। सूत के जाल को सुलझाने मे हस्त, नेत्र एव बाह्य प्रकाश आवश्यक है। परन्तु स्थूल अवस्थान के भीतर मे सूत के धागो के जाल से भी अधिक जटिल सस्कारित जालो के—सस्कार के धागो का जाल अस्त-व्यस्त रूप से उलझा हुआ है। उसको सुलझाने मे बाह्य प्रकार—बाह्य हाथ एव नेत्र सफल नही होते। उनको सुलझाने के लिये समता और एकावधानता रूप हाथ के माध्यम से विवेक आलोक के प्रकाश मे समीक्षण ध्यान रूप नेत्रो की आवश्यकता है। समीक्षण ध्यान रूप नेत्रो को जब तक व्यवस्थित नही किया जावेगा तब तक मानसतत्र की स्थूल परिधि मे उलझी हुई बिखरती हुई

निश्चित साध्य का साक्षात्कार हो सकता है। यह अवश्य है कि अध्यात्म का विषय इन्द्रियो और मन से भी परे का विषय है। वहाँ समस्त दृश्य पदार्थों से परे हटकर अदृश्य सत्ता-आत्म ज्योति पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। वह केन्द्रीकरण की साधना एक जन्म मे ही नही, कई बार अनेक जन्मो मे सिद्ध हो पाती है। अनेकानेक महान् योगी एव धुरन्धर साधक भी उस साधना मे सहसा सफल नही हो पाते है। अत साधक को सदा यह स्मरण रहे कि मुझे निरन्तर एक निष्ठा एव सत्कार के साथ दृढ सकल्प का सम्बल लेकर अचल विश्वास के साथ प्रगति-पथ पर बढते ही जाना है। साधना मे आने वाली हल्की सी थकान अथवा सुस्ती उसके व्यवस्थित क्रम को ही अस्त-व्यस्त कर देती है और क्रम का टूट जाना साधक के विश्वास को भी विचलित कर देता है। जिसका परिणाम होता है– साधना के प्रति अरुचि का उत्पन्न हो जाना। अत यह आवश्यक है कि दृढ निश्चय, अगाध धैर्य के साथ विधिपूर्वक साधना के प्रति समर्पित हुआ जाय तथा ऊब अथवा थकान को कभी अवकाश नही दिया जाय।

सावधानी

इस साधना-क्रम मे सबसे अधिक जागृति की आवश्यकता तब पडती है जबकि अपना प्राय स्थायी आसन जमाई हुई दूषित वृत्तियाँ कुछ तूफान मचाने लगती है। साधना के द्वारा जब सुषुप्त शक्तियो का जागरण होता है—चारो दिशाओ से पवित्रता का वायुमण्डल बनता है तो उन कलुषित वृत्तियो का आसन हिलने लगता है। वे अपने आसन को छोडना क्यो चाहेगी ? परिणामत सघर्ष छिडता है। यदि साधना का सकल्प सशक्त हुआ तो असत्वृत्तियो को अपना आसन छोडना पडेगा। साधक को विजयश्री प्राप्त हो जाएगी। अन्यथा वे अनादिकालीन दूषित विचार साधना को छिन्न-भिन्न कर देंगे और साधक हतोत्साहित होकर लक्ष्य से भटक जाएगा। अस्तु, यहाँ यह सावधानी नितान्त आवश्यक है कि ज्योही वैकारिक दूषित वृत्तियाँ अपना प्रभाव दिखाने लगे, आत्म-शक्ति के सम्बल से उन्हे परास्त कर दिया जाय। उनके आगमन के मार्ग को ही अवरुद्ध कर दिया जाय। तत्काल यही चिन्तन हो कि ये वृत्तियाँ पर है—आगन्तुक है। मेरी आत्म-शक्ति की दुर्वलता के कारण ही इन्होने यहाँ अपना आसन जमा लिया था और मेरी चेतना पर हावी हो गई थी। मेरी असावधानी के कारण ही ये अकुरित हुई और फली-फूली। अन्त मे मेरी आत्म-शक्तियो को दवोच लिया। इन्द्रियजन्य क्षणिक आनन्द ने सत्‌चित्त रूप शाश्वत आनन्द को आवृत्त कर दिया। किन्तु दोष इन वृत्तियो का नही, दोष मेरी असावधानी का है। असावधान मालिक की तरह ये चोर वनकर मेरी आत्मा मे घुस गई और अभी भी मेरी तन्द्रालुता से ही ये सव वृत्तियाँ सक्रिय हैं।

यह मेरी सवसे वडी भूल थी कि मैं इन क्षुद्र वृत्तियो मे ही आनन्द की

करती है । ऐसी वृत्ति के अधीन हुआ साधक अपने पवित्र साधना क्षेत्र से विलग हो जाता है । आगे की शक्तियो से वचित रहता हुआ—"कात्या पिंजा कपास एक" करने की स्थिति मे बन जाता है । अत: धैर्यवान तीव्र जिज्ञासावश परिपूर्णता को पाने वाले जिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह उस सीमा तक भी मजबूती के साथ खडा रहे । दृढ विश्वास एवं दृढ सकल्प रूप चरणो को हिलने न दे । समीक्षण ध्यान की दृष्टि को तेज बनावे । निरन्तर तत्परता के साथ रग-विरगे दृश्यो के चाकचिक्य मे वीतराग के राजमार्ग को भलीभाँति अवलोकन करता हुआ, पीछे न हटकर आगे बढने का प्रयास करने वाला साधक एक-न-एक समय अवश्य सफल हो सकता है । अत· साधक के लिये अपनी शक्ति, धैर्य, दृढ संकल्प, दृढ आस्था को एकाग्रता के साथ और समता की भूमिका के साथ समीक्षण ध्यान के माध्यम से पहले भलीभाँति व्यवस्थित एव दृढीभूत बना लेना नितान्त आवश्यक है ।

एकावधानता

यह स्पष्ट हो चुका है कि मनोनियन्त्रण के रूप मे की जाने वाली हमारी यह साधना अन्तर्यात्रा की साधना है । इस यात्रा मे एक और शक्ति अपेक्षित है, वह है एकाग्रता की ।

एकावधानता के बिना शक्ति-सचय नही हो पाता । शक्ति सचय के अभाव मे गति का प्रारभ समीचीन तरीके से नही हो सकता है । अतएव एकाग्रता का शरीर में रीढ की हड्डी के समान अथवा भूतल पर रेल की पटरी के तुल्य महत्त्व है । अत: एकाग्रता की साधना भी समीक्षण ध्यान साधना का एक अग है । इस अगभूत साधना का प्रारभ अनेक विधियो से किया जा सकता है । किसी मंत्र की ध्वनि के माध्यम से भी एकाग्रता सध सकती है । उन मत्रो मे से नमस्कार महामत्र का प्रथम पद ही लीजिये । इस प्रथम पद की ध्वनि के आधार पर एकाग्रता की साधना के द्वारा अन्तरप्रवेश के साथ शक्ति केन्द्रो को व्यवस्थित रूप से सक्रिय बनाया जा सकता है । शब्द ध्वनि शब्द से सबधित तरगो को उद्वेलित करती है । वे तरगे जिस दिशा मे प्रसृत होती है, उस दिशा के इर्द-गिर्द ध्वनि-प्रकंपन बन जाया करता है । इस प्रकार के ध्वनि प्रकपन से प्रत्येक स्थल पर रहते हुए इस जाति के प्रकपन सक्रियता के रूप मे सहायक बनने लगते है । ध्वनि के प्रकंपन बाह्य आकाश मण्डल में यथायोग्य सुदूर तक पहुँचते है । प्रकपनो का सबल साधक के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण बनता है । वही प्रकंपन-प्रवाह यदि भीतरी अवस्थान की ओर प्रवाहित होता है तो आभ्यन्तर से स्थानों मे अनेक केन्द्रों मे सुषुप्त शक्तियो के जागरण का कार्य करता है । और एकाग्रता की शक्ति बलवती बनती हुई समीक्षण ध्यान की भूमिका का निर्माण कर देती है । अत: ध्वनि का प्रारंभ पहले उच्च स्वर के रूप मे

प्रयास करें, मैं अपने ध्येय से विचलित होने वाला नही हूँ । इस जन्म में नही तो अगले जन्म मे सही, मैं लक्ष्य-सिद्धि का वरण करके ही रहूँगा ।

ये वृत्तियाँ चैतन्य देव को लाख प्रलोभन दे कि 'हमने तुम्हारा अनन्त जन्मो तक साथ निभाया, तुम्हे सभी प्रकार के इन्द्रियजन्य सुख प्रदान किये है, अब तुम हमारी जडो को उखाड रहे हो, यह तुम्हारे लिए ही अहितकर है।' किन्तु मैं इन प्रलोभनो से भी विचलित होने वाला नही हूँ । क्योकि मैं समझ गया हूँ कि इन वृत्तियो मे प्राण-शक्ति का सचार तो मेरे ही द्वारा हो रहा है। अन्यथा तो ये निष्प्राण ही है। अत अब इन निष्प्राण वृत्तियों से ऊपर उठकर शाश्वत आनन्द के द्वार उदघाटित करूँगा ।

अहं-विसर्जन

हम सभी साधना के क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे हैं। साधना एक सामान्य शब्द है। वह कई प्रकार की होती है। विविध साधनाओ के अलग-अलग आयाम होते हैं। उन आयामो के माध्यम से साधक अपनी साधना की गति को तीव्र या मद बनाता हुआ अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है। आध्यात्मिक साधना सभी साधनाओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस साधना से बढकर कोई अन्य साधना विश्व मे न थी, न है और न होगी। इसी अद्वितीय साधना के परिवेश मे साधको की गति मुडती है तब वह सभी परिधियो को पारकर उच्चतम स्वरूप का वरण करती है। वही उच्चतम अवस्था भव्य जनो के लिये गन्तव्य स्थल है। उस अवस्था को पार करने के लिये प्रारम्भिक आयाम पूर्व मे बतलाये गये थे। उन आयामो मे जिनकी जितनी गति अधिक बन पाती है उतनी ही आन्तरिक प्रवेश की प्रक्रिया तीव्र एव व्यवस्थित बन पाती है। इन सभी प्रक्रियाओ मे अनेक प्रकार के विश्राम-स्थल उपलब्ध होते है। स्थूल परिधि के भीतर प्रवेश पाने मे चित्त की वृत्तियाँ सन्मुख गतिशीलता के साथ आती है। उस स्थूल परिधि के अन्तर्गत परिभ्रमण करने वाली चित्तवृत्तियाँ सामयिक रूप को लेती हुई मानसतत्र को उद्वेलित करती रहती हैं। मानसतत्र की उथल-पुथल के बीच मे साधक इतना उलझ जाता है, जिससे वह आगे का कोई भी मार्ग प्राप्त नही कर पाता है। वह कितना ही मन की वृत्तियो का या मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करे पर उस एकाग्रता मे जितनी चाहिये उतनी सफलता उपलब्ध नही हो पाती है। उस एकाग्रता के अभाव मे साधक थकान महसूस करने लगता है और सोच लेता है कि आगे की कोई गति नही बन पायेगी, वह हतोत्साह होकर अन्दर प्रवेश के प्रयत्न को ही छोड देता है।

इसके विपरीत कुछ साधको को साधना की सामान्य स्थिति मे ही समाधिस्थ हो जाने का भ्रान्तिपूर्ण आभास होने लगता है। वे उस अवस्था का

कदाचित् इस विधि से कठिनता अनुभव हो तब दूसरी विधि है श्वास प्रक्रिया की। सहज स्वाभाविक रूप से श्वास की गमनागमन सबंधी प्रक्रिया, उस प्रक्रिया को समीक्षण ध्यान के माध्यम से अवलोकन करने की चेष्टा करे। वीतराग मुद्रा की अवस्था से साधक मस्तिष्क से तनाव को समाप्त कर अवयवो का शिथिलीकरण करले। शिथिलिकरण के लिये यह प्रयोग अधिक सुगम होगा कि समस्त मानसिक अवधान को नेत्रो के समीप ले जाकर कुछ हल्का सा उच्चारण करे—'जाने दो-जाने दो।' इस प्रकार के उच्चारण के साथ नेत्र के समीप उपयोग रहने से तनाव-मुक्ति एव शिथिलीकरण मे बहुत सहयोग प्राप्त होगा। शिथिलीकरण के अभ्यास के सध जाने पर उपयोगपूर्वक श्वास की गति को समीक्षण ध्यान के माध्यम से देखने लगे। ध्यान रखे कि श्वास नासिका के किस रन्ध्र से आ रहा है एवं जा रहा है। दॉये रन्ध्र से या बाँये रन्ध्र से। दॉये रन्ध्र से श्वास का गमनागमन होता है तो समझना चाहिये 'इडा नाडी' सक्रिय है। यदि बॉये नाक के छिद्र से श्वास की गति विदित हो तो यह जाना जा सकता है कि पिंगला नाडी की गति बन रही है। स्वरविज्ञ बॉये स्वर को 'चन्द्र स्वर' और दॉये स्वर को 'सूर्य स्वर' से सबोधित करते है। यह स्वर शास्त्रज्ञ का आपेक्षिक कथन है। योग साधना की दृष्टि से इन दोनो स्वरो से एकाग्रता साधने के साथ-साथ एकाग्रता का केन्द्र—समता धरातल भी ज्ञात हो सकेगा। जब तक एक-एक स्वर चालू है तब तक वह राग एव द्वेष की परिणति का सूचक है, समता का नही। दाहिना स्वर राग का द्योतन करता है और बॉया स्वर द्वेष की गति का प्रतिनिधित्व करता है। जब दोनो स्वर की गति समान रूप की अवस्था मे परिलक्षित होने लगे तब 'सुषम्ना' का स्वर सक्रिय बनने की स्थिति मे होता है। यह अवस्था राग और द्वेष की परिणति से ऊपर उठकर समता की भूमिका को भरने वाली बन सकती है।

सुषुम्ना के सक्रिय होने पर दोनो स्वरो की गति शात एव विरल बनेगी क्योकि सुषुम्ना का सम्बन्ध सुषुम्ना शीर्ष एव नाडी तन्त्रो से सम्बन्धित होता हुआ शक्ति केन्द्र, आनन्द केन्द्र, शुद्धि केन्द्र, दर्शन केन्द्र एव ज्ञान केन्द्र को सचालित करने मे सहायक होगा। इन केन्द्रो से सबधित ग्रन्थिये भी समीचीन तरीके से रसो का परिष्पदन करेगी एव केन्द्रस्थ रगो के साथ स्थान की एकाग्रता, श्वास की स्तब्धता तथा मत्र की भावात्मक शक्ति से सम्बन्ध जुडने पर आन्तरिक शक्तियो का आलोक उद्भासित हो सकता है। ये मनोवृत्तियो की एकावधानता के कुछ विधिक्रम है। इनके माध्यम से साधक विशृङ्खलित चित्त वृत्तियो को नियोजित कर एक समस्वरता प्रदान करता है, जो समीक्षण ध्यान की पूर्व भूमिका का कार्य करती है।

एकावधानता की प्रथम विधि
शरीर—तन्त्र—समीक्षण

दृश्य शरीर भी साधक की साधना के लिये एक महत्त्वपूर्ण अवस्थान है।

प्रयास करें, मैं अपने ध्येय से विचलित होने वाला नही हूँ। इस जन्म मे नही तो अगले जन्म मे सही, मैं लक्ष्य-सिद्धि का वरण करके ही रहूँगा।

ये वृत्तियाँ चैतन्य देव को लाख प्रलोभन दें कि 'हमने तुम्हारा अनन्त जन्मो तक साथ निभाया, तुम्हे सभी प्रकार के इन्द्रियजन्य सुख प्रदान किये हैं, अब तुम हमारी जडो को उखाड रहे हो, यह तुम्हारे लिए ही अहितकर है।' किन्तु मैं इन प्रलोभनो से भी विचलित होने वाला नही हूँ। क्योकि मैं समझ गया हूँ कि इन वृत्तियो मे प्राण-शक्ति का सचार तो मेरे ही द्वारा हो रहा है। अन्यथा तो ये निष्प्राण ही हैं। अत अब इन निष्प्राण वृत्तियो से ऊपर उठकर शाश्वत आनन्द के द्वार उदघाटित करूँगा।

अहं-विसर्जन

हम सभी साधना के क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे हैं। साधना एक सामान्य शब्द है। वह कई प्रकार की होती है। विविध साधनाओ के अलग-अलग आयाम होते हैं। उन आयामो के माध्यम से साधक अपनी साधना की गति को तीव्र या मद बनाता हुआ अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है। आध्यात्मिक साधना सभी साधनाओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस साधना से बढकर कोई अन्य साधना विश्व मे न थी, न है और न होगी। इसी अद्वितीय साधना के परिवेश मे साधको की गति मुडती है तब वह सभी परिधियो को पारकर उच्चतम स्वरूप का वरण करती है। वही उच्चतम अवस्था भव्य जनो के लिये गन्तव्य स्थल है। उस अवस्था को पार करने के लिये प्रारम्भिक आयाम पूर्व मे बतलाये गये थे। उन आयामो मे जिनकी जितनी गति अधिक बन पाती है उतनी ही आन्तरिक प्रवेश की प्रक्रिया तीव्र एव व्यवस्थित बन पाती है। इन सभी प्रक्रियाओ मे अनेक प्रकार के विश्राम-स्थल उपलब्ध होते है। स्थूल परिधि के भीतर प्रवेश पाने मे चित्त की वृत्तियाँ सन्मुख गतिशीलता के साथ आती है। उस स्थूल परिधि के अन्तर्गत परिभ्रमण करने वाली चित्तवृत्तियाँ सामयिक रूप को लेती हुई मानसतत्र को उद्वेलित करती रहती हैं। मानसतत्र की उथल-पुथल के बीच मे साधक इतना उलझ जाता है, जिससे वह आगे का कोई भी मार्ग प्राप्त नही कर पाता है। वह कितना ही मन की वृत्तियो का या मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करे पर उस एकाग्रता मे जितनी चाहिये उतनी सफलता उपलब्ध नही हो पाती है। उस एकाग्रता के अभाव मे साधक थकान महसूस करने लगता है और सोच लेता है कि आगे की कोई गति नही बन पायेगी, वह हतोत्साह होकर अन्दर प्रवेश के प्रयत्न को ही छोड देता है।

इसके विपरीत कुछ साधको को साधना की सामान्य स्थिति मे ही समाधिस्थ हो जाने का भ्रान्तिपूर्ण आभास होने लगता है। वे उस अवस्था का

उपलब्धि के लिये, अन्यान्य साधनो के साथ स्थूल शरीर विज्ञान को भी माना। येन-केन-प्रकारेण तत्सबधी परीक्षाओं की उत्तीर्णता के साथ इस स्थूल शरीर विज्ञान के माध्यम से अर्थ उपलब्धि मे तन्मय हो जाने के कारण उनकी चिन्तन शक्ति मे सूक्ष्मतम अवयवों की भीतरी परिधि में कौन-कौन सा रहस्य किस-किस रूप मे छिपा हुआ है, आदि विषयक जिज्ञासा ही नही रह पायी। अतएव वे स्थूल शरीर के परे के अवयवो का विश्वास ही कैसे कर पाते ? परन्तु जिन वैज्ञानिको का दृष्टिकोण स्थूल परिधि की चिकित्सा पद्धति तक ही सीमित नही रहा, उनकी चिन्तन शक्ति अधिक प्रवण वनी, वे स्थूल शरीर के भीतर मे छिपे हुए रहस्यो को भी उद्घाटित करने मे सलग्न है। उन्होने कुछ नवीन रहस्यो का विज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। साथ ही कुछ वैज्ञानिक मनोविज्ञान एव परा-मनोविज्ञान की खोज के आधार पर स्थूल शरीर के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों का विज्ञान प्राप्त कर चुके हैं।

वे प्रणाली युक्त रसवाहिनी एव प्रणाली विहीन अन्त.स्रावो को स्थूल शरीर में पहुँचाने वाली ग्रन्थियाँ ही ज्ञान हो पायी है। इन नये रहस्यों से भी वे वैज्ञानिक अभी सन्तुष्ट नही हुए है। उनका अन्वेषण अभी गतिशील ही है। इधर आध्यात्मिक विज्ञान के विज्ञाता साधको मे भी कुछ अनुकरणशील साधक पाये जाते है। बिरले ही साधक अनुकरणशीलता के साथ-साथ नयी खोजों की महत्त्वपूर्ण मिसाल को लेकर चलते है। आध्यात्मिक निधि की उपलब्धि चाहने वाले साधक अपना स्थिर प्राप्य विषय तो सत्चित्त आनदघन ही मानते है। लेकिन वह सत्चित्त आनदघन स्वरूप जिन आवरणो के भीतर मे रहा हुआ है, उन आवरणो के अन्तर में प्रवेश पाने के द्वारो की खोज मे भी लग चुके है। स्थूल शरीर की परिधि मे ऐसे अनेक द्वार है। उन सभी द्वारो की अपेक्षा विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण द्वार श्वास प्रणाली का है। श्वास के वाहन पर जिस साधक का आरोहण हो गया, वह साधक इस वाहन की गतिविधि से परिचित होता हुआ आन्तरिक सजातीय विशेष वाहनो की अवस्था को जानता हुआ एक दूसरे सजातीय वाहन का अवलम्बन लेकर विराट आन्तरिक मार्ग मे प्रवेश करने मे सक्षम बन जाता है। वह भीतर मे रहने वाले पाँच प्रकारों के वायु संस्थानो को एव उनकी समीपता से प्राण वायु का महत्त्व एवं मूल्यॉकन करता हुआ प्राण-शक्ति के समीप पहुँच जाता है। इस प्राण-शक्ति के समीप पहुँचने पर सूक्ष्म परिधि की समीपता मे रही हुई अनेक रगो युक्त शक्तियों को पहचानने मे अधिक सक्षम बन सकता है। उनकी पहचान के बाद अग्रिम रास्ता उस साधक के लिये अधिक सुगम एव सुव्यवस्थित बन सकता है।

श्वास-समीक्षा

नासिका से जो श्वास ग्रहण किया जाता है वह ऑक्सीजन की संज्ञा से अभिहित होता है। ऑक्सीजन मुख्यतया वनस्पति आदि तत्त्वो से सुगमता से प्राप्त

कडियाँ नही सुलझ पायेगी। एकाग्रता एक हाथ है तो समता दूसरा हाथ है। दोनो का सयुक्तिकरण भव्य तरीके से सधने पर ही अन्दर मे ये दोनो हाथ कार्य करने मे सक्षम बन सकते हैं। विवेकालोक को पाने के लिये स्थूल परिधि का एव स्थूल परिधि से सम्बन्धित नाडी तत्र, ग्रन्थिमडल आदि समग्र वृत्तियो का विज्ञान भी अपेक्षित है। उस विवेकालोक में आन्तरिक तत्र का विज्ञान हो जाने पर समीक्षण ध्यान के माध्यम से उन वृत्तियो को अवलोकन कर व्यवस्थित करता हुआ साधक अन्तरयात्रा की क्षमता अर्जित कर लेता है। दृढ सकल्प एव पूर्ण विश्वास के साथ अन्त प्रवेश रूप सडक पर गमन जितना व्यवस्थित बनेगा उतना ही वह स्थूल परिधि से सूक्ष्म परिधि की सीमा में प्रवेश कर पायेगा। उस परिधि मे गति की विशेषता होगी, जटिलता उतनी नही रहेगी। क्योकि जितनी भी विचित्र प्रकार की झझटे, बाधाएँ, रुकावटे स्थूल परिधि में आती है, उतनी वहाँ नही आ पाती। इन बाधाओ एव रुकावटो से जो सकुशल आगे बढ जाता है, उसके लिये वह राजमार्ग बन जाता है। उस मार्ग पर परिपूर्ण विश्वास एव दृढ सकल्प के चरणो से चलता हुआ रग-बिरगे दृश्यो मे प्रवेश पा सकता है। वे रग-बिरगे दृश्य ऐसे सूत के धागे की तरह उलझे नही होते हैं, परन्तु उनमे विविध प्रकार की रगयुक्त रोशनियो के प्रकाश की मिलावट के समान एक तरह की सघनता-सी होती है। उस सघनता मे सहसा साधक स्तब्ध सा हो जाता है। समीक्षण ध्यान की गति को यदि व्यवस्थित नही रखता है तो उस प्रकाश के चाकचक्य मे किकर्तव्यविमूढ भी बन जाता है। जैसे कि जगली जन्तु बीहड जगल की घाटियो, पहाडियो, नालियो एव पथरीले कटीले रास्तो को पार कर लेता है। अधेरी रात्रि मे भी शिकारी जन्तु जगल मे सकुशल अपने मार्ग की खोज कर लेता है। पर वे ही जन्तु प्रकाश युक्त ग्राम सडक पर पहुँच जाते है और घनी रोशनियो का समूह उनके सामने आ जाता है तब वे चकरा जाते हैं। झाडियाँ आदि नही होने पर भी उनकी गति उस प्रकाश के चाकचक्य मे अवरुद्ध हो जाती है। वही दशा समीक्षण ध्यान की निर्बलता मे स्थूल परिधान के परे सूक्ष्म परिवेश मे बन सकती है। कभी-कभी तो कुछ साधक उसी को सिद्धि मान बैठते है और अपना प्रदर्शन करने हेतु पुनः बाहर आ जाते हैं। वे इतना मार्ग तय करने पर भी बाहरी प्रदर्शन मे लग जाने से पुन स्थूल परिधि के नये जाल की रचना कर अपनी विकसित साधना की अवस्था को समाप्त कर बैठते है। वे साधक उस सीमा पर अनेक समस्याओ मे उलझ कर गति नही कर पाते। उन समस्याओ को सुलझाने की जिज्ञासा वृत्ति जन्म लेने पर भी अहवृत्ति उस जिज्ञासा को दबा देती है। यह सोचते हैं कि दुनिया मे मेरी ही साधना सिद्ध हो चुकी, मैं अब दूसरो को क्यो पूछूँ। पूछने पर मेरा मानदड कम होगा। अन्य साधक समझेगे कि मैं पूरा साधक नही हूँ। जबकि वास्तव मे वह पूरा साधक नही है। इस बात को अहंवृत्ति प्रकट नही होने देती। वह अहवृत्ति बाहरी यश को लूटने मे अपनी परिपूर्णता का प्रदर्शन

व्यक्ति के अनुभवगम्य भी बन सकती है, पर कब ? जबकि व्यक्ति का ध्यान उस ओर आकर्षित हो। व्यक्ति तो ऊपरी चाकचक्य एव रूप-रग को सजाने के साथ-साथ पुष्ट एव सुन्दर बनने की तीव्र अभिलाषा से अधिक पदार्थ भी उदरस्थ करने की चेष्टा करता रहता है। इतना भी नही सोच पाता है कि इस रसना के अधीन होकर अधिक स्वादिष्ट एव गरिष्ठ पदार्थों को उदरस्थ कर रहा हूँ, किन्तु इन पदार्थों के पचने मे कितना समय लग सकता है ? समय का भी विज्ञान नही होने से पूर्व के खाये पदार्थ पूरे पच ही नही पाते, कि पुनः अन्य पदार्थों को ग्रहण करने मे तन्मय बन जाता है। परिणाम यह होता है कि अन्दर के अवयवो की शक्ति से अधिक भार उदरस्थ हो जाने से अवयवो का सचालन व्यवस्थित नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे वायुवाहक नाड़ियाँ वायु के वेग को बढाने मे अधिक सक्रिय बनने की चेष्टा करती है और कुछ क्लान्त हो जाती है परिणामत. वायु का सतुलन पूरा नही रह पाता। उदर मे गये हुए पदार्थ सडने लगते है। उस सडान्ध की दुर्गन्ध से समग्र वायु सस्थान मे दूषणता व्याप्त हो जाती है। वह दूषित वायु जीवन के प्रत्येक अवयव के लिये अहितकर साबित होती है। बेचैनी बढ जाती है। योग साधना तो दूर रही, अन्य व्यावहारिक कार्य मे भी उसकी शक्ति नही लग पाती। वह शरीर की इस स्थिति से ऊब कर डॉक्टरो एव वैद्यो की शरण मे जाता है। उनमे भी सही मार्गदर्शन प्रदान करने वाले वैद्य एवं डॉक्टर बिरले ही होते है। अर्थोपार्जन करने वाले डॉक्टर एव अन्य चिकित्सक तीक्ष्ण व पॉइजनमय औषधियो का प्रयोग करने लगते है। परिणामतः सवेदनशील-ज्ञानतन्तु क्षत-विक्षत एव अव्यवस्थित हो जाने से दुःख की सवेदना सही तरीके से नही हो पाती। पहले की वेदना मे अन्तर पड जाने से व्यक्ति को भ्रान्ति हो जाती है कि इन औषधियो से मेरा स्वास्थ्य ठीक हो रहा है। वस्तुतः स्वास्थ्य ठीक होने के बजाय विकृति की ओर बढ जाता है एव बिना सोचे समझे अत्यधिक औषधियो के प्रयोग से व्यक्ति जीवन-शक्तियो को भी शनैः शनैः नष्ट कर बैठता है। वर्तमान जीवन की जो सुखद जीवन शक्ति है, उसका भी अनुभव नही कर पाता, तो फिर आध्यात्मिक साधना तथा योग सम्बन्धी उपलब्धियो के साथ-साथ होने वाली सुख-शाति की अवस्था समीप ही नही आ पाती। यह बहुत बडी दुर्व्यवस्था जीवन विज्ञान के अभाव मे प्राणी वर्ग मे पायी जा रही है। इस दुर्व्यवस्था का सम्यक् समाधान योग पद्धत्ति के माध्यम से भव्य तरीके से बन सकता है। वह भी कब ? जबकि इस जीवन मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व का मूल्याकन किया जाय और सहायक तत्त्व की प्रणाली को उससे सम्बन्धित जातीय-विजातीय स्वरूप को विधिवत परिमार्जित करता हुआ चले और उस महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व की सुव्यवस्था एव अशुद्धिकारक तत्त्वो को प्रविष्ट नही होने दे, अपितु उसकी कार्य प्रणाली को व्यवस्थित बनाने के लिये इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ दैनिक जीवन मे आवे तथा सच्ची क्षुधा लगे तभी अन्न ग्रहण करे। सही प्यास की

तदनन्तर मध्यम स्वर, पश्चात् जघन्य स्वर, तदनन्तर मानस स्वर एव अन्त मे भावप्रधान अर्थस्वर की अवस्था मे परिणत होने पर भावोर्मियाँ अधिक से अधिक सक्रिय बनती है। तार स्वर का रूप—नमो अ रि ·· ह· · ता · ण। इस प्रकार तार स्वर का उच्चारण कम से कम ११ बार लयबद्ध चलता रहे और ध्वनि के प्रारभ से लेकर प्रत्येक ध्वनि की समाप्ति तक एक समान रहे। ११ तार स्वर के पश्चात् ११ मध्यम स्वर का उच्चारण णमो··· ··· अ रि · ह ता · ण एक समान स्वर की पद्धति से गतिशील रहे। उपयोग की अवस्था मध्यम स्वर के प्रारभ से लेकर प्रत्येक स्वर के अन्त तक विना स्खलना के बनी रहे। तदनन्तर णमो अरिहताण धीरे स्वरो मे जघन्य स्वर की अवस्था भी उपयोगपूर्वक पूर्व की ११ ध्वनियो के अनुरूप ११ बार की अवस्था मे रहे। पश्चात् ध्वनि का स्वर कर्ण गोचर न होकर मानस स्वर मे ही अर्थात् मन ही उच्चारण करे, मन ही श्रवण करे और मन ही लय के साथ जुडा रहे। इस मन के स्वर की गति भी अखण्डित रूप से ११ बार (चलती रहे) से परिपूरित हो। पश्चात् भाव प्रधान मत्र के अर्थ का भावो मे ही उच्चारण भाव ही साक्षी के रूप मे श्रवण करे। इन्ही भावो के साथ उपयोग की अवस्था निरन्तर बनी रहे। यह प्रक्रिया भी पूर्ववत् ११ की गिनती के साथ भावात्मक रूप से की जाय। इन विधियो-ध्वनियो मे तार स्वर की ध्वनि-तरगे छहो दिशाओ मे न्यूनाधिक रूप मे प्रवाहित होने पर भी बाह्य दिशाओ मे अधिक प्रसृत होगी जिससे बाहर ध्वनियाँ सक्रिय बन जाएगी। गौण रूप से यह ध्वनि भीतर के अवयवो को भी छूती हुई अन्य तत्रो को प्रकपित करती हुई केन्द्रो तक पहुँचेगी। मद स्वर की ध्वनि बाहर व भीतर समान मात्रा मे प्रवाहित होगी। जघन्य ध्वनि का मुख्य किन्तु सूक्ष्म प्रवाह भीतर की ओर बहेगा बाहर गौण रूप से। मन की ध्वनियाँ मन के धरातल वाले ग्रन्थि तत्रो के क्रिया केन्द्रो को तथा ज्ञान सेन्टरो को प्रभावित करने लगेगी। भाव ध्वनि के सूक्ष्मतम प्रकपन स्थूल सेन्टर के मानसतत्र की सूक्ष्म परिधि के समीप सूक्ष्म एव विविध रगी दृश्यो के सेन्टरो को प्रभावित करते हुए सूक्ष्म सेन्टर के अग्रिम मोर्चे तक पहुँचने की शक्ति अर्जित कर लेंगे। उस सूक्ष्म परिधि के सन्मुख यदा-कदा साधक किंकर्तव्य विमूढता की अवस्था मे पहुँच जाता है। जो कि एक एक दृष्टि से जडीभूत की तरह वनने की स्थिति मे रहती है। उस जडता को भाव ध्वनि के माध्यम से सक्रिय वनाया जा सकता है। इसी भाव ध्वनि के प्रकपनो मे जहाँ वर्गीकरण का प्रसग उपस्थित होगा, उस वर्गीकरण मे समीक्षण ध्यान की महत्त्वपूर्ण गरिमा अनुभव होने लगेगी। इस विधि से साधक सूक्ष्म परिधि के समीपस्थ होने वाले विविध अवस्थानो का निर्णय करने मे सक्षम वन सकता है। यह प्रक्रिया इस एक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी है तो दूसरी दृष्टि से इसके द्वारा स्वरो के सहारे एकाग्रता की स्थिति सधने मे सुगम भी वन सकती है। यदि इसी से साधक अधिक योग्यता प्राप्त कर लेता है तो एकाग्रता सम्वन्धी अन्य उपाय भी सरल वन जाएगे।

सकता है, वैसे ही मानसतंत्र से सम्बन्धित भावोर्मियो का भी असर श्वास के माध्यम मे अभिव्यक्त होता है । किस व्यक्ति के कौन से भाव ज्ञान सेन्टर मे होते हुए क्रिया सेन्टर के माध्यम से मानसतंत्र को झंकृत करते हुए शरीर के क्रिया-कलापो को प्रभावित करते है, वह प्रभाव भी श्वास विज्ञान की परिधि मे आ जाता है । मलिन भावो का प्रभाव शरीर के आन्तरिक अवस्थानों पर व्याप्त हो जाता है । उन भावो ने सभी तन्त्रो पर अपना प्रभाव डाला, इसी प्रभाव से भीतर मे घुटन बनने लगी । इस वक्त श्वास विधिज्ञ साधक इस भाव के अभाव को तत्क्षण न्यून करने की कला का प्रयोग करे तो इन भावो का वह प्रभाव नासिका के माध्यम से बाहर फेका जा सकता है और इस भाव के प्रतिकूल शुभ भाव से सम्बन्धित वायु को भीतर प्रवेश देने पर अशुभ भाव के प्रभाव के स्थान पर शुभ भाव का प्रभाव व्याप्त हो सकता है ।

गन्दगी से परिपूर्ण सड़े गले पानी को टूटी (पम्प, नालिका) के माध्यम से बाहर फेकने पर टकी मे नये पानी का प्रवेश कराया जा सकता है और उस स्वच्छ पानी से टकी की गन्दगी को धोकर स्वच्छ पानी की सुगन्ध से सम्पन्न बनाया जा सकता है । इस एक देशीय रूपक से साधक मलिन भावों को श्वास की टूटी से बाहर करने पर स्वच्छ भाव से भीतरी टकी को स्वच्छ बनाने का प्रयत्न सावधानीपूर्वक यथासमय करता रहे तो उसकी साधना दिन प्रतिदिन निखरती हुई अभीष्ट लक्ष्य के समीप पहुँच सकती है ।

उदाहरण के तौर पर क्रोध के भाव, यदि भीतर मे उमड़ रहे हो, तो उस समय साधक क्रोध के भावो मे उलझ कर वाणी व शरीर के अन्य अवयवो से बाहर प्रकट न करे । अपितु श्वास विधि के माध्यम से शात-प्रशात श्वास वर्गणा के स्कन्धो को भीतर मे खीचे, जितना खीचा जा सके, एक-दो सैकड श्वास का भीतरी कुम्भक करे और फिर लयबद्ध भीतरी श्वास को बाहर फेकने की चेष्टा करे, ऐसा कुछ वक्त करने पर क्रोध का प्रभाव सफलीभूत न होता हुआ बाहर निकल जायेगा । शात वर्गणाओ से सम्बन्धित श्वास-प्रश्वास वर्गणा का बार-बार भीतर मे प्रवेश पाने से कषाय क्रोध सम्बन्धी दुर्गन्ध समाप्त होती हुई-सी लगने लगेगी । यही प्रक्रिया काम गन्दगी को निष्कासित करने वाली एव निष्काम वृत्ति के भव्य प्रभाव वाली बन सकती है । यही बात शरीर मे व्याप्त गन्दगी को समाप्त करने मे सहायक बनती है । क्योकि शारीरिक गन्दगी का एव काम-क्रोध की गन्दगी का कभी-कभी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पाया जाता है । भीतर के क्रिया-कलापो के अस्त-व्यस्त होने पर भीतर मे दुर्गन्ध व्याप्त होती है । दुर्गन्ध का प्रभाव नियन्त्रण केन्द्र पर पड़ता है । नियन्त्रण केन्द्र जैसे ही शिथिल बना नही, कि काम क्रोध का प्रभाव प्रकट होने लगता है और इस प्रभाव के निमित्त भीतरीय सड़ान्ध बढ़ने लगती है । यही क्रम निरन्तर बहुत समय तक चलता रहे तो व्यक्ति का समग्र जीवन दोनो प्रकार की गदगियो

इस दृश्य शरीर की आन्तरिक सरचना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जीवन दृश्य शरीर की सीमा तक ही सीमित नही है। दृश्य शरीर से परे सूक्ष्म शरीर एव सूक्ष्मतम शरीर भी है। कम से कम ये तीन शरीर तो इस जीवन की वर्तमान स्थिति के रूप मे माने जा सकते है। तीनो शरीरो की आन्तरिक व्यवस्था एक दूसरे से सम्बन्धित है। सन्धि स्थान आदि के रूप मे प्रत्येक शरीर की अपनी-अपनी सीमा मे कार्य परिणति समीचीन रूप से विद्यमान है। साधक जब तक सूक्ष्म एव सूक्ष्मतम शरीर की प्रक्रियाओ को नही जान पाता तब तक इस शरीर मे आवृत्त सच्चिदानन्द का साक्षात्कार कैसे हो सकता है ?

किसी भी किले मे प्रवेश पाने के पूर्व किले के प्रकोटो को एव भीतरी सरचना के अवस्थानो को जानना, निरीक्षण शक्ति के साथ पहिचानना नितान्त आवश्यक है। साधक यदि यह चाहे कि मुझे प्रकोटे एव किले के भीतर के अवस्थानो को नही देखना है, मुझे तो किले के भीतर की अमूल्य निधि को प्राप्त करना है तो वह व्यक्ति निधि को नही पा सकता। निधि पर आयी हुई परतो का सावधानीपूर्वक ज्ञान होने पर तथा उन्हे हटाने पर ही निधि का साक्षात्कार सभव है। आध्यात्मिक जीवन साधक भी यह चाहे कि मुझे इन शरीरो से कुछ भी वास्ता नही है, इन शरीरो के भीतर की प्रक्रियाओ, विधि-विधानो एव अनुसन्धानो के बोध की अपेक्षा नही है, सिर्फ सत्चित्त आनन्दघन रूप चैतन्य की परम निधि को ही मुझे पाना है, अतएव मुझे उसी के लिये पुरुषार्थ करना अभीष्ट है। आध्यात्मिक धरातल के साधक के लिये यह लक्ष्यगत आस्था तो समीचीन है, परन्तु अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हेतु किन-किन अवस्थानो से कौन-कौन से मार्गो से किन-किन का अवलोकन एव किन-किन शक्तियो का निर्धारण करते हुए निधि को उपलब्ध किया जा सकता है, यह ज्ञान भी आवश्यक है। इस ज्ञान की कमी के परिणामस्वरूप हजारो हजार अथवा लाखो वर्षों तक ही नही, अपितु अनन्तान्त काल की परिक्रमा मे कितना ही पुरुषार्थ किया जाय तथापि गन्तव्य स्थान दूर ही रह जाता है। यह सत्य एव तथ्य युक्त वस्तु स्वरूप का कथन है। परम लक्ष्य पर पहुँचने के लिये साधक को लक्ष्य के आभ्यन्तरवर्ती आयामो-अवस्थानो एव इनसे सम्बन्धित तन्त्रो आदि का अवलोकन नितान्त आवश्यक है। वह अवलोकन समीक्षण ध्यान की धुरा पर ही सभव हो सकता है। यद्यपि इन सदियो मे ऐलोपैथिक विज्ञानविदो (चिकित्साशास्त्रियो) ने स्थूल शरीर सरचना का यत्किचित् अवबोध प्राप्त किया है और सामान्य जन दृष्टि मे दृश्य शरीर का वह विज्ञान बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगता है तथा स्थूल शरीर के विज्ञाता चिकित्सकगण भी अपने आप मे परिपूर्ण ज्ञाता होने का अह करते हैं। किन्तु इससे ऊपर या इस स्थूल शरीर से पर के अवस्थान को जानना तो दूर रहा उनमे इसके अस्तित्व की आस्था भी प्राय: नहीवत् सी लगती है। ऐसा होने मे अनेक हेतु है। उन हेतुओ मे एक हेतु है अर्थ-दृष्टि की प्रधानता। मानव ने अर्थदृष्टि को सर्वोपरि माना, उसकी

अस्तु, यह उत्साहपूर्ण सकल्प सदा बना रहे कि इस जन्म में नही तो आगामी जन्म में ही, मै अपने लक्ष्य को सिद्ध कर लूँगा। यदि संकल्प-सप्राण है तो वह विकारी वृत्तियो को परास्त कर लोकालोक के साक्षात्कर्त्ता सिद्ध-स्वरूप को प्राप्त करके ही दम लेता है।

इतने दृढ संकल्पनात्मक संस्कार जब सूक्ष्म शरीर मे संयुक्त हो जाते हैं तो वे संस्कार जन्म-जन्मान्तर तक अनुगामी होते है। फलस्वरूप उनकी शक्ति आगामी जन्मो मे भी अध्यात्म ऊर्जा को सम्बल प्रदान करती है। वह बलवती प्रेरणा एक दिन सूक्ष्मतम शरीर के मूल को ही उखाड़ फेकती है और परमसिद्धि का द्वार उद्घाटित हो जाता है।

शक्ति का एक और स्रोत–सद्विचार

तीव्रतम संकल्प के साथ इस साधना मे एक दूसरी शक्ति और अपेक्षित होगी, वह होगी सद्विचार की। केवल सकल्प तब तक निष्क्रिय होता है जब तक की उसकी सम्पुष्टि का वातावरण नही बनाया जाय। सम्पूर्ण जीवन विलासपूर्ण वातावरण से परिवेष्टित हो और हम अध्यात्म के सकल्पो को दोहराते चले जाएँ तो वे सकल्प कभी लक्ष्य-सिद्धि तक नही पहुँचाएँगे। अतः संकल्प साधना के साथ सद्विचारो के वायुमण्डल का निर्माण अथवा यो कहे सकल्प नगर की सुरक्षा हेतु पवित्र विचारो की चारदीवारी की नितान्त आव-श्यकता है।

जैन दर्शन की किवा कर्म सिद्धान्त की यह ध्रुव मान्यता है कि विचारो के अनुसार ही जीवन का सर्जन होता है, यही नही वर्तमान के विचार ही भविष्य के जीवन की रूपरेखा निर्मित करते है। अत इस सन्दर्भ में भी विचारो का महत्त्व बढ जाता है कि वे ही आगामी जीवन की नीव खड़ी करते है। भावनाएँ विचार अप्रशस्त हैं तो जीवन अप्रशस्तता की ओर गतिशील होगा और आगामी जीवन भी तदनुरूप ही प्राप्त होगा। इसके विपरीत प्रशस्त विचारो के द्वारा वर्तमान एव अनागत दोनो को समुज्ज्वल बनाया जा सकता है। "यादृशी भावनायस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" की सूक्ति यही आकर सार्थक होती है।

ध्यान साधना के परिप्रेक्ष्य मे विशुद्धतम विचारो का प्रभाव सूक्ष्म एव सूक्ष्मतम शरीर पर अकित होगा। यदि आगामी जन्म का आयुष्य बन्ध उन विचारो मे हो गया तो सूक्ष्मतम शरीर से अनुबन्धित वे विचार हमारे भविष्य को अर्थात् आगामी जन्म को भव्यता प्रदान करेगे। साधनानुकूल वातावरण, आर्य क्षेत्र, सुकुल, निरोगी तन एव अध्यात्म सयोगो की प्राप्ति होगी, जिसके

होती है। वही ऑक्सीजन वायु फेफडे मे पहुँचकर रक्त शुद्धि आदि का कार्य सम्पादित करती हुई अशुद्ध तत्त्व को लेकर बाहर आती है। शरीर विज्ञान के विज्ञाताओ की श्वास प्रक्रिया सम्बन्धी सीमा प्राय. यही तक सीमित है। पर योग पद्धति आदि की दृष्टि से इस विषयक चिन्तन गहनता की ओर गया है। श्वास के द्वारा सगृहीत ऑक्सीजन मे प्राणवायु का भी समावेश रहता है और वह प्राणवायु की प्रक्रिया रक्त शुद्धि मे ऑक्सीजन की स्थिति के साथ रहती हुई, शुद्ध रक्त मे भी प्राण वायु को प्रवाहित करती है। रक्त का सचार शरीर के छोटे से छोटे सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयव से लेकर बडे से बडे स्थूल अवयव तक रहता है। उस रक्त सचार मे जितनी अधिक मात्रा मे प्राण वायु का प्रभाव होगा, प्राण वायु उतनी ही अधिक शरीर के आतरिक सस्थानो मे प्रमुख सचालन का माध्यम बनेगी। उस प्राण वायु के अतिरिक्त उसी अवस्थान के अन्तर्गत समान वायु भी पायी जाती है। वह समान वायु समान रूप से यथायोग्य यथास्थान पर शरीर की आवश्यकता की सपूर्ति मे सहायक होती है। आन्तरिक सस्थानो के हलन-चलन एव प्रकम्पन आदि अवस्थाओ से अन्य वायु भी निर्मित होती है। उस वायु मे से जिस वायु विभाग का प्रवाह ऊर्ध्व दिशा की ओर होता है, उसको ऊर्ध्ववायु से सबोधित किया जाता है। अन्य विभाग शरीर के अधोभाग की ओर प्रवाहित होता है, उसकी अधोवायु की सज्ञा वनती है। ऊर्ध्व और अधोवायु की दिशा से भिन्न, विभिन्न दिशाओ मे शरीर के अवयवो से पैदा होने वाली वायु, व्यान वायु के नाम से अभिहित होती है। इस प्रकार योग पद्धत्ति के अनुसार पाँच प्रकार की वायु शरीर के आन्तरिक अवयवो मे व्याप्त होकर रही हुई है। शरीर मे जहाँ कही भी सपीडा का अनुभव होता है, वह अनुभव वहुलता से वायुवेग के अवरुद्धन से वनता है। यह अवरुद्धन व्यक्ति के व्यवस्थित क्रिया-कलापो के अभाव मे वनता है। इस वायु सस्थान एव वायु विभागो को किस प्रकार व्यवस्थित रखना आदि का सही विज्ञान नही कर पाने से वायु की व्यवस्था विगडती है एव अस्त-व्यस्त-सी वन जाती है। अधिक विकृत हो जाने पर सारा शरीर का ढाँचा ही नही, अपितु समग्र जीवन की नौका दोलायमान होती हुई प्रकपित-सी वन जाती है। मानव अन्य प्राणियो की तरह एक दृष्टि से यन्त्रवत पैदा होता है और यन्त्रवत ही जीता रहता है। वाह्य अवयवो को सँवारता शृङ्गारता रहता है। उनको व्यवस्थित एव सुन्दर वनाने मे अधिकाश समय एव शक्ति का व्यय करता रहता है, परन्तु यह नही जान पाता कि इस शरीर के वाह्य अवयवो की सुन्दरता-सुव्यवस्था आदि प्रक्रियाएँ भीतरी वायु सस्थान पर विशेष निर्भर करती है। जिस अग-प्रत्यग पर इन्सान सुन्दरता का अनुभव करता हुआ, उसी के लिए समग्र जीवन की समर्पणा के साथ-साथ अपने आपको अच्छा मानने मे फूला नही समाता, उसी अग की भीतरी सस्थान वाली वायु के प्रकुपित होने पर कुछ ही क्षणो मे अग-प्रत्यगो की सुन्दरता, भव्यता—वदरूप एव विकीर्ण-सी होने लगती है। यह वात हर

वे आँधी-तूफान अकिंचित्कर होकर रह जाएँगे। अतः समत्व साधना एवं समीक्षण ध्यान का आपस मे गहनतम सम्बन्ध है। किसी अपेक्षा से समीक्षण ध्यान को हम समता-साधना भी कह सकते है।

इसे कुछ और स्पष्ट कर ले—जिस देह से मृत्पिण्ड मे सर्वशक्तिमान् चैतन्य अपनी समग्र शक्तियो को सगोपित कर रह रहा है, उसके अनेक द्वार है—द्रव्य एव भाव। उन द्वारो से विशेषकर काम-क्रोधादि भाव द्वारो मे से किसी भी द्वार से समता साधना के बाधक तत्त्वो का प्रवेश सम्भव है। अन्तर की चेतना शक्ति विवेक, दीपक के साथ जागृत नही रही एवं आने वाले बाधक तत्त्वो का परिज्ञान नही हो सका तो वे तत्त्व अनादि से आसन जमाए उन मलिन वृत्तियो को उद्दीप्त करेंगे और यत्किंचित् विकसित समता-साधना के अकुरो को नोच कर ध्वस्त कर देंगे। अतः समीक्षण ध्यान की इस प्रक्रिया मे समता की साधना के लिए विवेकपूर्ण सतत जागरण की अपेक्षा है।

साधक चित्त साधना का निस्यन्द पान कर रहा है, उसकी आत्मलीनता बढ रही है और इधर कोई कटु शब्द कर्णगोचर हुआ। यद्यपि कटु शब्द का प्रयोग विषमता की मनोभूमि से हुआ, किन्तु उसने साधक की समता धारा को आन्दोलित कर दिया। उसके ज्ञान केन्द्र को विपथगामी-विषम चितन के लिए बाध्य कर दिया। ज्ञान सेन्टर ने क्रिया केन्द्र को सूचित किया और प्रतिक्रिया मे साधक की चेतना आन्दोलित हो उठी। शरीर के सभी केन्द्र प्रकम्पित हो गए। बस, यही से समता-साधना मे स्खलन हुआ। द्रव्य मन के द्वारा भाषा के परमाणुओ के ग्रहण ने इतना गजब ढहा दिया। वर्षो की साधना मे एक बहुत बडा व्यवधान उपस्थित हो गया। दुष्ट शब्दो की एक सामान्य-सी क्रिया ने भयकर प्रतिक्रिया का रूप ले लिया।

समीक्षण ध्यान-साधक के लिए यहाँ इतना ही चिन्तन अपेक्षित है कि अच्छे-बुरे सभी शब्दो के प्रति उसकी विवेक पूर्ण समत्व प्रज्ञा जागृत रहे। उसका ज्ञान सेन्टर (केन्द्र) इतना जागृत हो कि अपने हिताहित का त्वरित निर्णय कर सके। प्रतिकार की भावना उसके द्रव्य मन को आन्दोलित अथवा उद्वेलित नही कर सके। सामान्य-सी जागृति उसे आत्मस्थ बने रहने मे सहयोगी बन जाएगी और बाहर की कोई भी क्रिया उसे विचलित नही कर पाएगी, बनिस्पत वह अपशब्द की क्रिया उसके साधक-चित्त को परीक्षण के रूप मे और अधिक साधना का सम्बल प्रदान करेगी। अतएव समीक्षण ध्यान साधक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अपने ज्ञान केन्द्र पर समत्व एव विवेक-दीपक का प्रकाश अनुभव करता रहे।

अपशब्दो के समान ही अन्य इन्द्रियों के विषय भी मन को आन्दोलित-उद्वेलित कर सकते है, अपितु करते रहते है। इसी प्रकार इन्द्रियातीत विषय

स्थिति में पानी व अन्य तत्त्वो का अनुपान करे। अन्दर उत्पन्न होने वाली सडान्ध को उपवास आदि व्रतो के माध्यम से अन्दर के अवयवो को ही निष्कासित करने मे सहायक बनाया जाय। जिह्वा एव शरीर की वाह्य आकृति पर आसक्ति की दशा हटाकर उस महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व को व्यवस्थित एव शुद्ध रखने से अधिक से अधिक प्राण वायु का सग्रहण एव उसी प्राण वायु की सवारी पर भीतरी मुख्यतया पञ्च वायुओ का सकेत मिलता है, उन वायुओ को प्राण वायु से प्रक्षालित करते रहने से वायुतन्त्र पर व्यक्ति का आधिपत्य भव्य तरीके से हो सकता है। इस आधिपत्य के साथ प्रत्येक अग-प्रत्यग मे पहुँचाने वाली प्राण वायु को जीवन के महत्त्वपूर्ण अग-प्राणो से साधक सपर्क साधे। जव इस प्रकार की यात्रा से प्राणो के साथ सपर्क सध जाता है तो उस साधक का सूक्ष्म परिधि के समीप पहुँचना सभव हो सकता है। अग्रिम यात्रा के स्थल सूक्ष्म एव सूक्ष्मतम अवस्थान तथा इनके अन्तर्गत विविध विचित्र उलझनो के सुगम वन जाने का वहुत वडा अवसर प्राप्त हो जाता है।

अन्ततोगत्वा सत्चित् आनन्दघन के समीप उपस्थित होने का अपूर्व अवसर समुपलब्ध होने का अवसर प्राप्त हो सकता है। अतएव शरीर के समग्र अवयवो की अपेक्षा श्वास-प्रश्वास सम्बन्धी जो प्रक्रियाएँ है उन प्रक्रियाओ मे जो अन्य सहायक अवस्थाएँ है उन सभी का ध्यान रखता हुआ साधक श्वास प्रणालिका को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दे और जीवन मे इसी का विशेष मूल्याकन करता हुआ अन्य साधनो के साथ अपनी आध्यात्मिक साधना का पुरुषार्थ प्रवल बनावे, जिससे अगले पडावो-आयामो की समीचीन विज्ञप्ति हो सकती है।

श्वासानुसन्धान

श्वास-प्रश्वास आन्तरिक क्रिया तन्त्र का एक कांटा मापकयत्र (तराजू) है। पैट्रोल की टकी के काटे मे पैट्रोल की न्यूनाधिक मात्रा का सकेत मिलता है, वैसे ही जीवन से सम्वन्धित समग्र क्रिया-कलापो का सकेत श्वास की गतिविधि से जाना जा सकता है। भीतर के क्रिया-कलाप एक दृष्टि से विशाल कारखाने के क्रिया-कलाप के तुल्य है। विशाल कारखाने मे आवश्यक छोटे से छोटे तार का अवरुधन होने पर सारी मशीनरी मे उसका प्रभाव होता। वैसे ही शरीर अवस्थान मे होने वाली सूक्ष्म व स्थूल क्रिया-कलापो के वीच मे किसी भी सूक्ष्म नाडी के क्रियातन्त्र का अवरोध आने पर उस रुकावट का समग्र शरीर सवधी क्रिया-कलापो पर प्रभाव पडता है। उसकी सूचना श्वास प्रणालिका से मिल सकती है। अतएव श्वास-प्रश्वास के विज्ञान को, भलीभाति जानकर इस प्रणाली के माध्यम से क्रियाओ की गतिविधि को एव अवरोध के कारणो को जाना जा सकता है तथा उन कारणो को व्यवस्थित करने का ज्ञान भी पाया जा सकता है। क्रिया कलापो का असर जैसे श्वास प्रणालिका के माध्यम से जाना जा

किया जाय। इसके प्रत्येक चरण में सजगतापूर्वक समर्पण की भावना निर्मित हो और वह यथार्थ रूप मे परिणित हो तो मनः शान्ति एव आत्म-शान्ति के द्वार सहजतया खुल सकते है। बहुधा होता यह है कि आम व्यक्ति साधना की शब्दात्मक चर्चा कर लेते है, किन्तु उसे जीवन मे प्रेक्टिकल रूप देते समय लाख बहाने खोज लेते है। परिणामतः वह साधना शब्द-विलास बन कर रह जाती है। साधना का तो अर्थ ही यह है कि उसके द्वारा जीवन में अन्तर-बाह्य उभयमुखी रूपान्तरण घटित हो, साधक साध्य के निकटतम होता चला जाय।

यह सब होगा उपर्युक्त प्रयोग-विधि को जीवन मे आत्मसात् करने से। सभी प्रकार के तनावो से मुक्ति के साथ ही जीवन मे एक सशक्त रूपान्तरण होगा, आत्म द्रष्टा भाव का जागरण होगा और होगा आत्म देव का दर्शन। सतत सावधान होकर सत्कार पूर्वक प्रयोग करे, सफलता आपके चरण चूमेगी।

• • •

से ओत-प्रोत वन जाता है । इस प्रकार उभय गन्दगियो की सघनता सिर्फ श्वासतत्र से ही समाप्त नही की जा सकती, वरन् श्वासतत्र के साथ-साथ तपश्तत्र को सक्रिय करना भी अपेक्षित रहता है । यत्किंचित् हठवल के साथ भी तपश्तत्र को सम्वल देकर निराहार अवस्था की वृत्ति मे ढाल देता है तो एक दिवसीय, द्विदिवसीय एव त्रिदिवसीय उपवासवृत्ति से भीतर की दुर्गन्ध भीतर मे समाहित हो जाती है एव आहारतत्र को सक्रिय बनाने के साथ ही अवशेष गन्दगी को वाहर निकालने मे निमित्त भूत विरेचक पदार्थ ग्रहण करने पर अवशेष गन्दगी अधोवायु के माध्यम से वाहर निकालने मे श्वासतन्त्र आदि आन्तरिक वायु सस्थान सक्रिय वन जाते हैं । प्रारम्भिक विरेचक पदार्थों के अनन्तर सुपाच्य एव सात्विक पदार्थो का ग्रहण एव पाचकतत्र से सम्वन्धित अवयवो का, सुनियोजन करने पर उस गन्दगी के वदले मे उसके प्रतिपक्षी वायुमण्डल का भाव भीतर के समस्त क्रियातन्त्रो पर होने लगता है । परिणामत नियन्त्रण केन्द्र के सवल वन जाने से नये रूप मे सेन्टरो मे आने वाली गन्दगी सहसा वाहर नही आ सकती, उस समय यदि साधक सावधान रहे और सुपाच्य पदार्थो का नियमित एव सीमित सेवन करे तो विवेक तन्त्र के माध्यम से भीतर के अवस्थानो से उभर कर आने वाली काम क्रोधादि की वृत्ति को रूपान्तरित कर सकता है । इसी प्रकार की प्रक्रिया से सावधानीपूर्वक लम्बे समय तक ध्यान का प्रवाह वना लेने से साधक सूक्ष्म परिधि के समीप से होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो का सृष्टा-निर्माता के रूप मे स्वतन्त्रता साध सकता है ।

प्रबलतम शक्ति-सकल्प

इस त्रिआयामी साधना मे सवसे प्रवलतम शक्ति है—सकल्प की । सकल्प जितना प्राणवान होगा, साधना भी उतनी ही सप्राण होगी । चूँकि सकल्प का सम्वन्ध स्थूल शरीर से कम, सूक्ष्म शरीर से अधिक है, और वह सस्कारात्मक सूक्ष्म शरीर, जिसमे कि सूक्ष्म वृत्तियो के भी सस्कार हैं, आज से नही अनादि अनन्त से चेतना के साथ सम्वन्धित है । अज्ञानता के कारण इसे चेतना ने निज भाव मान लिया । वस, यही भूल अनन्त काल से चेतन सत्ता को परेशान कर रही है । चूँकि भूल अनन्त काल की है, अत· उसका परिमार्जन सहसा कुछ ही क्षणो मे अथवा वर्षों मे हो जाय, कम सम्भव है । इसके लिए अनेक जन्मो की साधना होमनी पडती है । जिन महान् चेतनाओ ने विकारी वृत्तियो पर विजय प्राप्त की, उन्होने भी अनेक जन्मो की साधना के द्वारा ही । हमे भले ही वह अन्तिम जन्म ही ऐसा लगता है कि इसी जन्म मे इस महापुरुष ने आत्म साक्षात्कार कर मुक्ति प्राप्त की है, किन्तु वह होता है अनेक पूर्व जन्मो की साधना के द्वारा ही । हाँ, अपवाद स्वरूप किसी आत्मा की भव स्थिति का परिपाक त्वरित हो जाय तो अलग वात है ।

माध्यम से पुन साधना का मार्ग प्रशस्त होगा और अव्याबाध आनन्द के द्वार तक पहुँचा जा सकेगा ।

सत्सकल्प एव सद्विचार की ऊर्जा के द्वारा साधना की गहराई मे उतरते हुए साधक का यही प्रयास होना चाहिये कि मैं अविलम्ब अपने गन्तव्य पथ की ओर बढता हुआ अचल सिद्धि स्थान का वरण करूँ । इस दृढ सकल्प मे सशय को कदापि अवकाश नही दूँगा । अटल निष्ठा का सम्बल मेरे साथ होगा । कोई भी व्यवधान मुझे बाधित नही कर सकेगे । मेरे विशुद्ध एव मगल विचार तथा सकल्प अवश्य यथार्थ के धरातल पर फलवान होगे ।

समीक्षण की पूर्णता—समता

समीक्षण ध्यान की परिपूर्णता हेतु तृतीय आयाम मे निर्धारित भविष्य के सकल्पो मे समता का सकल्प भी नितान्त अपेक्षित है । क्योकि साधक-चित्त की सर्जना का प्रथम सूत्र होगा—समता । समग्र साधना का मूल सेतु है—समता । जब तक समता को साधना के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप मे स्थिर नही किया जाएगा, साधना सफल नही हो सकेगी । अन्त प्रवेश एक काल्पनिक उडान मात्र बनकर रह जाएगा । वैषम्य की ज्वालाएँ सुलगती रहेगी और उसमे साधना का पल्लवन असम्भव ही होगा । अतः साधना, चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, उसका मूल समत्व को ही स्वीकारना होगा । सम्पूर्ण जीवनी शक्ति का समर्पण समता के लिए होगा । समता को अध्यात्म की प्राण ऊर्जा मानकर उसी के सवर्धन का सकल्प करना होगा और तभी साधना भी प्राणवान् बन सकेगी ।

यह हो सकता है कि समत्व योग की चरम उपलब्धि सहसा नही होगी, तथापि उसके प्रति आस्था का अकुरण एक रोज विशाल वृक्ष का रूप ले सकता है और मधुर फलो का प्रदाता भी बन सकता है । समता के अभाव मे की जाने वाली साधना विराधना की कोटि मे समाविष्ट होती है । और इसके विपरीत स्वल्प मात्र भी समतापूर्ण साधना लक्ष्य को उजागर करेगी तथा एक-न-एक दिन परम साम्य के द्वार को उद्घाटित करेगी ही ।

अत· साधक चित्त के लिए यह आवश्यक है कि विषमता के बीज आत्म चेतना पर अकुरित हो इसके पूर्व ही अपनी समस्त वृत्तियो को समता साधना मे नियोजित कर दे ताकि साधना मे निराबाध गति हो सके । यह सम्भव है कि समत्व साधना से विचलित करने को भी अनेक तूफान उठ खडे होगे, आंधियो के थपेडे लगेगे । क्योकि आँधी और तूफान के लिए सभी दिशायें खुली है—द्रव्य और भाव । किस दिशा से आँधी आएगी और कितना सशक्त तूफान उठेगा, कह पाना कठिन है । किन्तु, यदि हमारा समत्व का आसन सुदृढ है तो

प्रयोग अगणित चेतनाएँ कर चुकी है। ऐसी स्थिति मे कोई भी व्यक्ति नूतनता का सृष्टा नही, पुरातन का द्रष्टा ही बन पाता है। विश्व कवि खलील जिब्रान के शब्दो मे—"And you shall hear from us only that which you hear *from yourself*" अर्थात् तुम हमसे वही सब सुनोगे जो तुम अपने भीतर से सुना करते हो।

उपर्युक्त अर्थों मे हम नया कुछ भी नही सुनते हैं, न प्रवचनकर्ता कुछ नया सुनाता है। प्रवचनकर्ता जो कुछ सुनाता है, वह हमारे अतरग स्वरो से भिन्न नही होता। उसे हम जन्म-जन्मान्तर मे अगणित बार सुन चुके होते है, किन्तु हमारा अनुभव है कि अनेक बार हम उन सुने-सुनाए विचारो को भी किसी भाव-प्रवाही प्रवक्ता के मुँह से तल्लीन हो सुनते ही रह जाते है। कई वार प्रवचन-प्रवाह समाप्त हो जाने पर भी मन्त्र-मुग्ध हो कीलित से बैठे रह जाते है। यह सब क्यो होता है ?

यह सब प्रवक्ता के भाव, भाषा एवं शैली का चमत्कार अथवा जादू ही होता है, जो श्रोतृ वर्ग पर अपना अप्रतिम प्रभाव अकित कर देता है। पटु प्रवचनकर्ता भाव, भाषा व शब्दो का शिल्पी होता है। वह शब्द-सयोजना को मृदु-कोमल, कला-कलित, कर्णाभिराम सौदर्य प्रदान करता है।

सच्चा प्रवक्ता वह होता है, जो वर्तमान युगीन चेतना मे प्रेरणा प्रवाहित करता हुआ अनागत युग को आशावादिता का मधुर सदेश देता है।

यद्यपि प्रवक्ता अपने विषय-निर्धारण एवं विचार के प्रस्तुतीकरण मे स्वतन्त्र एव स्वत्वाधिकारी होता है, किन्तु सिद्धवक्ता वही बन पाता है, जो श्रोतृवर्ग की मनोभूमिका समझकर तदनुकूल विषय-मर्यादा का चयन करने मे दक्ष होता है।

वैसे प्रवक्ता के अपने-अपने परिक्षेत्र होते है—अध्यात्मशास्त्र, राजनीति, समाज-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, प्राणिशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि, किन्तु प्रकृत मे चूँकि हम एक अध्यात्म-प्रवक्ता की वाणी-विवेचना प्रस्तुत करने जा रहे है, अत: यहाँ अध्यात्म प्रवक्ता की ही कुछ मौलिक विशेषताओ पर दृक्पात करेगे।

जैनागमो के परिशीलन से यह स्पष्ट परिज्ञान होता है कि जैन धर्म अथवा दर्शन को जैन प्रवचन—"जिण पवयण" की सज्ञा भी सम्प्राप्त हुई है। जैन दर्शन की परम्परा प्रवचन के माध्यम से ही आज तक अक्षुण्ण बनी रही है। आज जो जैन वाङ्मय उपलब्ध है, वह शिष्य-प्रशिष्यानुरूप मे श्रुति-परम्परा के आधार पर ही सुरक्षित रखा जा सका है। अत. प्रवक्ता किंवा प्रवचनकार का

भी पूर्व द्रष्ट श्रुत आदि, साधक चित्त को विकेन्द्रित करने का प्रयास करते हैं, जिन्हे साधक सहसा पहचान भी नही पाता है। किन्तु वहाँ भी समीक्षण ध्यान के माध्यम से समत्व का साधक उन विषयो से अपने को असम्पृक्त रखता हुआ ध्यान की गहराई मे उतरता चला जाय, अपने अभ्यास क्रम को निरन्तर सत्कार पूर्वक बढाते हुए अत्यन्त सूक्ष्मतम वृत्तियो का सम्यग्वलोकन करने की क्षमता अर्जित होने के पश्चात् स्थूल एव सूक्ष्म सभी वृत्तियाँ अकिञ्चित् कर बन जाएगी और साधक अपने इष्ट लक्ष्य का द्रष्टा बन जाएगा। समस्त विकार वृत्तियाँ नदियो के समुद्र मे मिल जाने के समान समीक्षण ध्यान के द्वारा समत्व के महासागर में विलीन होकर समता भाव से रूपान्तरित हो जाएगी और यही आकर समीक्षण ध्यान अपनी पूर्णता को प्राप्त होगा। चेतना अपने अलौकिक, अनिर्वचनीय, सत्‌चित् आनन्द घन स्वरूप मे प्रतिष्ठित होगी।

उपसहार

हमारी साधना तीन आयामो के रूप मे प्रारम्भ हुई। मन.शोधन एव मनोनियन्त्रण से गुजरती हुई यह साधना पूर्णत आत्म सयम और तद् द्वारा चरम एव परम शान्ति तक पहुँच कर विश्रान्ति लेती है। अतीत के स्मरण के द्वारा साधक विगत कालीन कलुषित वृत्तियो के चिन्तन एव शोधन का कार्य करता है। आदर्श के द्वितीय चरण मे लक्ष्य की स्मृति उसे परमात्म भाव के साथ तादात्म्य स्थापित करने की प्रेरणा देती है तो अनागत का चिन्तन विशुद्धतम मन स्थिति के सृजन का कार्य करता है। इस सबके लिये हमने सकल्प की शक्ति, वातावरण की विशुद्धि, समय की नियमितता एव विचार विशुद्धि को सहयोगी अगो के रूप मे स्वीकार किया है।

यह स्मरण रहे कि साधना में सफलता के लिये सबसे पहली आवश्यकता है प्यास की। जितनी तीव्र प्यास होगी, प्रयोग के प्रति अभिरुचि भी उतनी ही तीव्र होगी और पूर्ण अभिरुचि युक्त प्यास के साथ किया जाने वाला कार्य सफलता की मजिल का वरण अवश्यमेव करता है।[1]

अन्त मे यही संकेत पर्याप्त होगा कि हमारा यह प्रतिपादन केवल विचार तक ही सीमित नही रह जाए। इसे प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे आत्मसात्

१ यहाँ इतना और स्पष्ट करले कि उद्देश्य की दृष्टि से परिपूर्णता का प्रतिपादन करने पर भी यह विधिक्रम एक वर्ष के अभ्यास का विधिक्रम है। वर्ष भर की साधना के उपरान्त साधक को आगे के मार्ग-दर्शन अपेक्षित होगे। क्योंकि वार्षिक साधना मे साधक के जीवन मे कहाँ-कहाँ व्यवधान उपस्थित हुए, वह कितना आगे बढा, यह सब जान लेने के उपरान्त ही साधना के अगले चरण मे प्रवेश सुलभ हो सकता है। किन्तु वह भी इस त्रिआयामी साधना मे पूर्णत गति होने के पश्चात् ही।

तो वह श्रोताओ मे आस्था उत्पन्न करके उन्हे श्रद्धावान् नही बना सकता ।

२– **वाचनाकला-कुशल :** वह अध्ययन-अध्यापन की कला मे निपुण हो। किसी भी आगम साहित्य का अस्खलित अध्येता हो तथा सुनाते समय भी पुन-पुनः स्खलित न हो । अत्यन्त रुक्ष विषय को भी सरस एव सुबोध बनाने मे दक्ष हो ।

३– **निश्चय-व्यवहार-विज्ञ :** वह तत्त्व के नैश्चयिक एव व्यावहारिक स्वरूप का विज्ञाता हो अर्थात् वह जाने कि आगम का कौन-सा सूत्र निश्चय-नय के द्वारा प्रतिपादित किया गया है तथा कौन-सा व्यवहार-नय के द्वारा । नय-प्रतिपादना का समुचित बोध न होने पर विषय-प्रतिपादन समीचीन नही होगा । परिणामत· भावुक श्रोता भ्रान्त बन सकते है तथा कई बार वक्ता स्वय असमजस मे उलझकर अनर्थ कर सकता है ।

४– **जिनाज्ञा-आराधक** . वह वीतराग प्रभु की आज्ञा के प्रति अटल निष्ठावान रहते हुए सिद्धान्त-विपरीत प्ररूपणा से सदा भयभीत रहने वाला हो ।

५– **क्षमा** वक्ता को जिस विषय का प्रतिपादन करना है, उसका स्वय मे अनुशीलन नितान्त आवश्यक है । यदि प्रवक्ता क्षमावान नही है; उत्तेजक प्रवृत्ति से सयुक्त है, तो वह क्षमादि धर्मांगो का सचोट प्रवचन करने मे सदा शकित रहेगा । साथ ही अपनी क्रोध वृत्ति के कारण प्रवचन मे अनुचित शब्दो का प्रयोग भी कर सकता है । अतः प्रवचनकार के लिए सतत जागृति के साथ क्षमागुण-सम्पन्न होने की नितान्त अपेक्षा है ।

६– **निरभिमानता :** क्षमाशीलता की तरह ही एक उच्चकोटि के अध्यात्म-प्रवक्ता मे विनम्र-वृत्ति का प्रादुर्भाव भी आवश्यक है । अपने अहं मे फूलने वाला व्यक्ति नूतन तत्त्वज्ञान का अधिकारी नही बन पाता । फलस्वरूप उसकी बुद्धि का विकास अवरुद्ध हो जाता है । अविकसित बुद्धि के कारण वह वास्तविक तत्त्व-निर्णय नही कर पाता और अपनी असत् प्ररूपणा पर आग्रही बना रहता है । अत. प्रवक्ता का निरभिमानी होना भी एक विशेष गुण है ।

७– **निष्कपटता :** जो उपदेष्टा ऋजु अर्थात् सरल-हृदयी होगा, वही यथावत् उपदेश कर मकता है । कुटिल व्यक्ति अपनी कमजोरियो को छिपाने हेतु सत्य तथ्य को भी विपरीत रूप मे प्रस्तुत करता है ।

पुस्तक-समीक्षा

१६– **बुद्धिमत्ता** : वक्ता गम्भीर, प्रतिभावान्, बौद्धिक चातुर्यवाला होना चाहिए, ताकि उसके द्वारा सूक्ष्म विषय का भी सुबोध प्रतिपादन हो सके।

१७– **मधुर वचन** : स्वर-माधुर्य के साथ ही वचन-माधुर्य भी आवश्यक है। वचन की मिठास प्रवचन मे मिश्री का कार्य करती है। मधुर तथा प्रियकारी शब्दो से श्रोतृवर्ग की प्रीति उत्पन्न होती है, फलत वे मनोयोगपूर्वक प्रवचन सुनते है। कठोर एव कटु शब्द श्रोताओ मे क्षोभ-उत्पत्ति के कारण बन जाते है।

१८– **प्रभावशाली** : जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है, उसके वचन भी प्रभावोत्पादक होते है। अत: प्रवचनकार का प्रभावशाली होना भी आवश्यक है।

१९– **सामर्थ्य-सम्पन्न** : प्रवक्ता को सामर्थ्यशाली होना चाहिए अर्थात् प्रवचन के बीच मे बौद्धिक अथवा शारीरिक थकान नही आनी चाहिए, ताकि प्रवचन अस्खलित रूप से चल सके।

२०– **व्यापक अध्ययन** : प्रवचनकार का अध्ययन सूक्ष्म, तलस्पर्शी एव पाडित्यपूर्ण होना चाहिए। उसे स्वसिद्धान्त के साथ-साथ अन्य ग्रन्थो का अध्ययन, मनन, चितन भी होना चाहिए, ताकि वह युक्ति-पुरस्सर विवेचना प्रस्तुत कर सके।

२१– **आत्मवेत्ता** : चूँकि यहाँ मुख्यतया अध्यात्म प्रवचनकार का विश्लेषण प्रस्तुत है, अतः प्रवक्ता का आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी अध्यात्म बोध परिपुष्ट होना चाहिए, क्योकि अध्यात्म-विद्या-आत्मज्ञान के बिना समस्तज्ञान निस्सार एव निष्प्रयोजन है।

२२– **शब्द रहस्यवेदी** : जो व्यक्ति शब्दो के गूढ मार्मिक अर्थो को नही समझता है तथा अपनी भावाभिव्यक्ति मे समुचित शब्द प्रयोग नही कर पाता है, वह सुन्दर प्रवक्ता नही बन सकता। उचित शब्द-सयोजना के बिना प्रवचन प्रभावक भी नही हो सकता है तथा भ्रान्ति भी उत्पन्न कर सकता है। अत: प्रवचनकर्ता को शब्दो के रहस्य का ज्ञाता होना चाहिए।

२३– **अर्थ-संकोच प्रवण** : प्रवक्ता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है अर्थ-संकोच व अर्थ-विस्तार की क्षमता। समय की अल्पता को देखकर विस्तृत विचारो को सीमित शब्दो मे प्रतिपादित कर सकने तथा समय के आधिक्य मे अल्प से सूत्र की भी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करने की योग्यता उसमे होनी चाहिए।

प्रवचन-मीमांसा

वाणी की सरस एव स्पष्ट अभिव्यंजना, जो श्रोता के हृदय को मंत्र-कीलित-सा भावाभिभूत कर दे, प्रवचन सज्ञा से अभिसज्ञित होनी चाहिये। वचन, प्रवचन तभी बनता है, जब वह अन्तश्चेतना से उत्स्फूर्त हो, सम्मुखासीन श्रवणकर्ता की हृतत्री को झकृत कर दे। इस गुण के अभाव मे वह वचन, प्रवचन नही, वाग्वैदग्ध्य ही कहला सकता है।

सृष्टि के समस्त चराचर प्राणियो मे मानवीय तन ही ऐसा तन है, जिसमें प्रवचन की सामर्थ्य है। पशु की अपनी भाषा है, वाणी की अभिव्यजना है, किन्तु उसकी यह भावाभिव्यजना प्रवचन की सज्ञा नही पा सकती है। पशु ही नही, मानवीय वपुधारी अनेक व्यक्तियो मे भी वचन-प्रावीण्य वाणी वैदग्ध्य रूप मे ही पाया जाता है, प्रवचन-पटुता के रूप मे नही। वाक्पटु बनकर अनवरत कुछ-न-कुछ बोलते रहना प्रवचन नही, शक्ति का अपव्यय ही हो सकता है। वचन जहाँ श्रोताओ के प्रति सार्थक होता है, वही वह प्रवचन की परिधि मे प्रवेश पाता है। थोडा और स्पष्ट करे तो वचन मे जहाँ चुम्बकीय आकर्षण का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ वह प्रवचन की सज्ञा ले लेता है, तथा "प्रकर्षेण उच्यते इति प्रवचनम्" वाली निर्युक्ति सार्थक बनती है।

प्रवचन वाक्शक्ति का एक अद्भुत चमत्कार होता है। किन्तु प्रवक्ता की अन्तर्भूमिका के आधार पर ही वह सशक्त एव प्रभावी हो सकता है। अत: महत्ता प्रवचन की नही, प्रवक्ता (प्रवचनकर्ता) की है। वचन अथवा शब्द तो अपने आप मे भाषा वर्गणा के पर्याय जड मात्र होते हैं। उनमे स्वत अभिव्यक्त होने की सामर्थ्य कहाँ है? वे तो प्रवक्ता की चेतना-भूमि का स्पर्श पाकर ही सजीव बन पाते है। अत. जैसे वाक्शक्ति की सार्थकता प्रवचन मे निहित है वैसे ही प्रवचन की सार्थकता प्रवक्ता पर अवलम्बित है।

प्रवचनकार अपनी नूतन बात कुछ भी नहीं कहता है। सदियो से चले आ रहे विचार-प्रवाह को ही वह नव्य-भव्य शैली मे ढालकर तथा नया शाब्दिक परिवेश पहनाकर उसे युगानुकूल रूप देता है। जिस अनुभूति से हम गुजर रहे है, उसी अनुभूति-पथ से सख्यातीत आत्माएँ गुजर चुकी हैं तथा जिस शब्द शृ खला मे हम अपने भावो को आबद्ध कर रहे हैं, उन्ही शब्दो का सन्निमुन

१६– **बुद्धिमत्ता** : वक्ता गम्भीर, प्रतिभावान्, बौद्धिक चातुर्यवाला होना चाहिए, ताकि उसके द्वारा सूक्ष्म विषय का भी सुबोध प्रतिपादन हो सके।

१७– **मधुर वचन** : स्वर-माधुर्य के साथ ही वचन-माधुर्य भी आवश्यक है। वचन की मिठास प्रवचन में मिश्री का कार्य करती है। मधुर तथा प्रियकारी शब्दो से श्रोतृवर्ग की प्रीति उत्पन्न होती है, फलत वे मनोयोगपूर्वक प्रवचन सुनते है। कठोर एवं कटु शब्द श्रोताओ मे क्षोभ-उत्पत्ति के कारण बन जाते है।

१८– **प्रभावशाली** : जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है, उसके वचन भी प्रभावोत्पादक होते है। अतः प्रवचनकार का प्रभावशाली होना भी आवश्यक है।

१९– **सामर्थ्य-सम्पन्न** : प्रवक्ता को सामर्थ्यशाली होना चाहिए अर्थात् प्रवचन के बीच मे बौद्धिक अथवा शारीरिक थकान नही आनी चाहिए, ताकि प्रवचन अस्खलित रूप से चल सके।

२०– **व्यापक अध्ययन** : प्रवचनकार का अध्ययन सूक्ष्म, तलस्पर्शी एव पाडित्यपूर्ण होना चाहिए। उसे स्वसिद्धान्त के साथ-साथ अन्य ग्रन्थों का अध्ययन, मनन, चिंतन भी होना चाहिए, ताकि वह युक्ति-पुरस्सर विवेचना प्रस्तुत कर सके।

२१– **आत्मवेत्ता** : चूँकि यहाँ मुख्यतया अध्यात्म प्रवचनकार का विश्लेषण प्रस्तुत है, अतः प्रवक्ता का आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी अध्यात्म बोध परिपुष्ट होना चाहिए, क्योकि अध्यात्म-विद्या-आत्मज्ञान के बिना समस्तज्ञान निस्सार एव निष्प्रयोजन है।

२२– **शब्द रहस्यवेदी** : जो व्यक्ति शब्दो के गूढ मार्मिक अर्थों को नही समझता है तथा अपनी भावाभिव्यक्ति मे समुचित शब्द प्रयोग नही कर पाता है, वह सुन्दर प्रवक्ता नही बन सकता। उचित शब्द-सयोजना के बिना प्रवचन प्रभावक भी नही हो सकता है तथा भ्रान्ति भी उत्पन्न कर सकता है। अतः प्रवचनकर्ता को शब्दो के रहस्य का ज्ञाता होना चाहिए।

२३– **अर्थ-संकोच प्रवण** : प्रवक्ता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है अर्थ-संकोच व अर्थ-विस्तार की क्षमता। समय की अल्पता को देखकर विस्तृत विचारो को सीमित शब्दो मे प्रतिपादित कर सकने तथा समय के आधिक्य मे अल्प से सूत्र की भी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करने की योग्यता उसमे होनी चाहिए।

जैन तत्त्वज्ञान की सुरक्षा मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन दर्शन मे प्रवचन का प्रारम्भ जिन-दर्शन के उद्गाता तीर्थंकर महाप्रभु की पीयूषवर्षी वाग्धारा से होता है, जो गणधरो (प्रमुख शिष्यो) के श्रुतकुण्ड मे आकर व्यवस्थित सग्रहीति का रूप लेती है तथा गणधरो के द्वारा वह श्रुति-मधुरवाणी-सरिता शिष्य-शिष्यानुरूप के माध्यम से जन-जन के शुष्क हृदय-क्षेत्र को आप्यायित कर सर-सब्ज बनाती चली जाती है। इस प्रकार जिन तत्त्वधारा के आदि प्रवचनकार तीर्थंकर तथा पारम्परिक प्रवचनकार मुनिगण होते है। एतदर्थमेव मुनिजीवन की दैनदिन प्रवृत्ति का एक प्रमुख अग होता है "प्रवचन"। प्रवचन के माध्यम से ही मुनिगण जन-जन के हृद्देश तक पहुँच कर उसे आर्द्रता से आप्लावित करने का प्रयास करते हैं, किन्तु प्रवचन-साधना मे नैपुण्य सहज सुलभ नही है। प्रत्येक मुनिश्रेष्ठ प्रवक्ता अथवा प्रवचनकार नही बन पाता। आगम-मन्थन एव साहित्य-साधना के साथ कुछ वैयक्तिक गुणो का विकास प्रवचन-पटुत्व के लिए नितान्त आवश्यक है। वक्तृत्वकला का सौष्ठव भी प्रवचन-प्रावीण्य मे नितान्त अपेक्षित है। पाश्चात्य विचारक शेनेका के शब्दो मे—"Speech is the index of mind" वक्तृत्व-कला विचारो का मापदण्ड है। अत वक्ता की सबसे महत्त्व-पूर्ण विशेषता होती है—अपने विचारो के प्रस्तुतीकरण की समीचीन पद्धति। इसके अतिरिक्त भी अध्यात्म प्रवचनकार मे कुछ विशेषताओ का सयोजन अनिवार्य होता है, जिनका विवेचन जैनाचार्यों ने सविस्तार किया है।

प्रवचनकर्ता के पच्चीस गुण

चूँकि जैन दर्शन के विकास एव विस्तार मे प्रवचन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, या यो कहे कि प्रवचन ही जैन-तत्त्व-दर्शन के व्यवस्थित विकास का आधार रहा है, अत. वहाँ प्रवचनकर्ता को बहुत अधिक सचेष्ट किया गया है। जैनागमो मे आचार्य जैसे गौरवपूर्ण पद की प्रमुख विशेषताओ में वचनसम्पदा एव वाचना-सम्पदा जैसे मौलिक गुणो को अनिवार्य माना गया है। अर्थात् एक जैनाचार्य में प्रवचन एव वाचना का प्रावीण्य अत्यन्त आवश्यक है। प्रवक्ता की सामान्य-सी उपेक्षा सिद्धान्तो को गलत रूप मे अथवा मिथ्या रूप मे प्रस्तुत कर सकती है। आजकल हम देखते है—सामान्य-सा तत्त्वज्ञान हुआ नही, कि हम अपने आपको उपदेशक की गद्दी का हकदार मान बैठते हैं, किन्तु उपदेष्टा बनना सहज नही है। एक मौलिक आध्यात्मिक उपदेष्टा को कितना सयमित एव मितभाषी होना चाहिए, इसकी कुछ गम्भीर विवेचना जैनाचार्यो द्वारा उपदेशक की निम्न पच्चीस विशेषताओ मे की गई है। प्रवचनकर्ता के २५ गुण इस प्रकार हैं .—

१— दृढ श्रद्धा : सर्वप्रथम प्रवचनकार को अपने प्रतिपाद्य विषय के प्रति दृढ आस्थावान बनना होता है। प्रवचनकर्ता स्वय नयशील हो,

मधुरता एव ओजस्विता से ओत-प्रोत प्रवचन रूपको तथा लघुकथाओ से सुसज्जित एवं प्राचीन आगम तथा नवीन कथा सूक्तियो से प्रमाणित होकर और अधिक प्रभावशाली बन जाते है। प्रत्येक कथा को हर बार आप इस विलक्षण पद्धति से प्रतिपादित करते हैं कि घटो तक हजारो नर-नारी मत्रमुग्ध से निश्चल एव शात बैठे रहते है। घडी की सूचिकाएँ निरन्तर आगे बढ़ती रहती है, किन्तु श्रोता समय के अवधान को विस्मृत कर जाते हैं। आपका प्रवचन-सबधी प्रमुख अतिशय किवा माहात्म्य है कि प्रवचन-मडप मे आपके पदार्पण करते ही, एकदम नीरवता एव निस्तब्धता छा जाती है। जन-समुदाय इस प्रकार सुस्थिर हो जाता है मानो सम्मोहित हो गया हो। यही कारण है कि ८-१० हजार की जनमेदनी मे आप अपनी साधु मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए किसी ध्वनि-विस्तारक यत्र को माध्यम बनाए बिना अपनी सिंह-गर्जना प्रसारित करते है तथा किसी श्रोता को यह शिकायत नही होती कि वह आप श्री का प्रवचन भलिभाँति नही सुन पा रहा है।

जयपुर वर्षावास का वह प्रसंग स्मृति-पटल पर उभर रहा है जिसमे वहाँ के प्रतिष्ठित सज्जन श्री ज्ञानचद जी चौरडिया ने एक दीक्षा-प्रसग पर आग्रह किया—"यह जयपुर सिटी है। यहाँ की जनता पर नियत्रण पाने के लिए आप श्री को ध्वनिविस्तारक यत्र का प्रयोग करना होगा।" उस समय आपने स्पष्ट शब्दो मे कहा था, "आपके श्रोताओ को प्रसन्न करने के लिए मैं अपने नियमो को भग नही कर सकता। हाँ आप चाहे जितने श्रोता ले आए, केवल शाति बनाए रखने का कार्य कर लेना—सब तक आवाज पहुँचाने का कार्य मेरा है।" और उस समय विशाल रामलीला मैदान मे लगभग ८-१० हजार की जनमेदनी एकत्रित थी, जिसमें आप श्री ने लगभग ४५ मिनट तक प्रवचन किया। सभी श्रोताओ ने श्रवण किया। श्री ज्ञानचद जी चौरडिया प्रवचन-समाप्ति पर आचार्य श्री के समीप आकर निवेदन करने लगे—"गुरुदेव, वडी अद्-भुत शक्ति है आपमे। मैने सभी श्रोताओ के पीछे तीनो बाजू कुछ-कुछ समय खडे रहकर प्रवचन-पान किया और आपकी आवाज पीछे तक स्पष्ट सुनाई दे रही थी।" आचार्य श्री की वाणी मे वह जादू है जो सम्पूर्ण वातावरण को सरस एव भाव-विभोर बना देता है।

आपके प्रवचन की दूसरी विशेषता है सभा-चातुर्य। श्रोताओ मे किस तत्त्व विवेचना के जिज्ञासुओ का बाहुल्य है तथा उनकी आध्यात्मिक बुभुक्षा कौन-सी खुराक चाहती है, इसे आप जन-समूह पर दृष्टिपात करते ही भाँप लेते है। पाश्चात्य दार्शनिक व्ही० सेम्युअल के शब्दो मे—Three things are needed for great oratory, not the orator only, but a great theme and a great occasion"—अर्थात् वाणी की सुन्दर एव सरस अभिव्यंजना के लिए प्रवक्ता ही नही, अपितु महत् विषय एवं समुचित अवसर भी अपेक्षित होता है।

८– **निर्लोभता** उपनिषद् का एक सूक्त है "हिरण्ययेन पात्रेण सत्य-स्यापिहित मुख"—अर्थात् जहाँ लोभ वृत्ति का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ सत्य का मुँह वन्द हो जाता है। उपदेशक यदि लोभी-लालची होगा, तो वह लोभवश नग्न सत्य नही कहकर भक्तो को प्रसन्न करने वाली वात ही कहेगा। अत उपदेष्टा का निर्लोभी होना आवश्यक है, ताकि निर्भीकतापूर्वक राजा, रक सभी को सत्य-मार्ग का पथिक वना सके।

९– **अभिप्रायज्ञता :** प्रवक्ता में एक मनोवैज्ञानिक गुण 'अभिप्रायज्ञता" का होना भी आवश्यक है। श्रोताओ के चेहरे को पढकर वह उनके अभिप्रायो को जान ले और तदनुसार विषय का निर्धारण करे।

१०– **धैर्य** धैर्यगुण का सयोजन प्रवक्ता को अति-उच्चता पर प्रतिष्ठित कर देता है। वह प्रत्येक विषय को धैर्य के साथ स्पष्ट करता चले ताकि वह श्रोताओ के लिए प्रभावशाली रूप से ग्रहणीय वनता चला जाय। जो भी शकाएँ हो, सदा अक्षुब्ध रहते हुए वह उनका मधुर समाधान प्रस्तुत करे।

११– **अनाग्रहो :** वह किसी भी प्रकार का मिथ्या आग्रही न हो। यदि किसी प्रश्न का समुचित समाधान तत्काल न दिया जा सके, तो आग्रही वनकर गलत राह न पकडे, प्रत्युत नम्रतापूर्वक स्पष्ट कर दे "मुझे इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात नही।"

१२– **निन्द्यकर्म से रहित** · वह चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात आदि निन्दनीय कर्मो से दूर रहता हो। जो स्वय सद्गुणी होगा, वही अप्रतिहत वनकर प्रवचन कर सकेगा।

१३– **कुलीनता** . कुलहीन प्रवक्ता के प्रति श्रोताओ के हृदय मे सहसा श्रद्धा उत्पन्न नही होती है, फलत· श्रोता उसकी मर्यादा नही रखते और उसके वचनो का प्रभाव भी उन पर नटीक नही पडता। अत उसका कुलीन होना प्रभावकारी होता है।

१४– **परिपूर्णागता** वक्ता का आगिक सौन्दर्य भी श्रोताओ के लिए प्रभावी होता है अत प्रवचनकार सर्वांग-सम्पन्न होना चाहिए। अगहीन वक्ता सुशोभित नही होता।

१५– **स्वर-माधुर्य** वक्तृत्व कला के साथ स्वर-माधुर्य का सयोजन सोने मे सुगध का कार्य करता है। वक्ता के स्वर कर्कश नही, मधुर होने चाहिए, ताकि वे प्रियकारी हो सकें।

प्रवाह होता है। आपके धार्मिक प्रवचनो की यही विशेषता है कि उनमे भाव को भापा का मुखापेक्षी नही बनना पड़ता, प्रत्युत भाषा भावो की आत्मीया बन जाती है। भापा की सज्जा के लिए भावो और विचारो को तोडना, मरोडना आचार्य श्री को अमान्य है। आपकी भाषा भावो की अनुगामिनी होती है।

धार्मिक प्रवचनो का केन्द्रीय पक्ष तो अध्यात्म होता है, किन्तु उसका परिवेश उस नैतिकता से निर्मित होता है जो उदीयमान समाज की विधायिका होती है। आपकी मान्यता है कि समाज के स्वास्थ्य के लिये जहाँ अध्यात्म की प्राण-सत्ता आवश्यक है, वही नैतिकता की नियमावली भी। जिस परिवार, समाज, ग्राम, नगर अथवा राज्य मे अनैतिकता, अनाचार एवं अराजकता है, उसमे आध्यात्मिक उत्थान असभव है। अत अध्यात्म के वट वृक्ष को पल्लवित करने के लिए समाज सुधार की भूमिका का निर्माण नितान्त अपेक्षित है। अतएव आपके प्रवचन वर्तमान को स्पर्श करते हुए होते हैं। वे श्रोताओ के लिए सहज हृदयस्पर्शी होते है।

प्रथम तो रूक्ष धार्मिक विषय और दूसरा समाज का धर्म के प्रति उपेक्षा-भाव, दोनो मिलकर धार्मिक श्रोताओ की सख्या को अल्पतम करते जा रहे है। परन्तु आपश्री का प्रवचन इसका अपवाद है। हजारो की सख्या आपश्री के प्रवचन मे प्रतिदिन बनी रहती है। एक बार जो आपकी पीयूपवर्षी वाग्धारा का रसपान कर लेता है, वह दुबारा अपने आप चु बकीय आकर्षण से खिचा चला आता है।

आम धारणा बन गई है कि आज का युवा वर्ग धर्म के प्रति उदासीन है, किंतु आचार्य श्री का व्यक्तित्व इसका भी अपवाद है। आपके प्रवचनो मे युवको की जितनी अधिक उपस्थिति रहती है, उतनी बुजुर्गों की नही। इसका कारण है आप श्री के प्रवचनो मे आधुनिकता एव पुरातनता के सुन्दर समन्वय का होना। प्राजल भापा एव भावो से सुसज्जित आपकी प्रवचन-पद्धति खण्डन-मण्डनात्मक न होकर पूर्णतया स्याद्वाद सिद्धान्त से पूत एव समन्वयात्मक होती है। इसीलिए आपके प्रवचन के विपयो मे आधुनिक विज्ञानवाद के साथ जैन तत्त्व दर्शन मे वर्णित पुद्गलवाद का समन्वयात्मक विवेचन विशेप महत्त्व रखता है। यह, विद्वानों की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के साथ ही जन साधारण के लिए भी परम आह्लादक, रोचक एव तर्क-सगत सिद्ध होता है। जैन-दर्शन मे निरू-पित पुद्गल परमाणु-तत्त्व-विवेचना की अद्भुत गरिमा एव इसकी शक्ति सीमा असाधारण रूप से कितनी गभीर है, इसके तलस्पर्शी, विवेचन की तह तक यदि किसी को प्रवेश पाना है तो वह आज भी परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर के गंभीर तत्त्व विश्लेपणात्मक प्रवचनो का रस-पान कर अपनी ज्ञान-पिपासा को सतुष्ट कर सकता है।

२४– **तर्कज्ञ** तार्किकता का बोध भी प्रवक्ता मे अति अपेक्षित है। किसी भी व्यक्ति के तर्कपूर्ण प्रश्नो का समाधान तर्क-प्रवणता के बिना युक्ति-पुरस्सर नही हो सकता। अत प्रवक्ता को तर्कपटु होना चाहिए।

२५– **गुणयुक्तता** प्रवचनकार का सर्वतो महान् गुण है—गुणयुक्तता तथा गुण-ग्राहिता। प्रवक्ता मे प्रामाणिक, प्रतिष्ठित, प्रभावशाली तथा विश्वासपात्र बनाने वाले सभी गुणो का सयोजन होना चाहिए। गुणो के बिना उसके वचन प्रामाणिक एव सर्वमान्य नहीं बन सकते हैं।

उपर्युक्त गुणो के अतिरिक्त अन्य सद्गुणो के समुचित सयोजन से कोई भी वक्ता यथार्थत प्रवचनकार के महनीय पद का अधिकारी बन सकता है :

जादू भरे वाग्मी

यह कहा जा चुका है कि प्रवचन जैन मुनियो की दैनिक प्रवृत्तियो का एक अभिन्न अग है। वे आत्म-द्रष्टा एव अध्यात्म-प्रवक्ता होते है, किंतु प्रवचन-कला मे सभी मुनिगण प्रवण हो, यह आवश्यक नही। सभी की अपनी-अपनी मेधा एव चिन्तन-क्षमता भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। विचार अभिव्यक्ति का कौशल भी सभी का अपना अलग होता है। अतएव हम देखते हैं कि कुछ प्रवक्ताओ की वाणी मे जादू-सा आकर्षण होता है। हजारो मील से लोग प्रवचन-पान हेतु भागे चले आते है। विषय पुराना हो अथवा नया, सुनाने की कला उसमे नूतनता का सचार कर जादू उत्पन्न कर देती है।

ऐसे ही जादूभरे वाग्मी है परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म० सा०। एक अध्यात्म प्रवचनकर्ता मे जिन मौलिक विशेषताओं का समायोजन अपेक्षित होता है, वे सभी पूज्य आचार्य देव की नैसर्गिक सपदा हैं। आपकी प्रवचन-शैली मे न मालूम ऐसा क्या जादू भरा आकर्षण है, कि प्राय. प्रतिदिन आपके प्रवचनो मे हजारो की भीड लगी रहती है। सैकडो मील से आगत श्रोता मत्रमुग्ध से चकोरवत् प्रवचन-पान करते है। आचार्य श्री की प्रवचन-शैली अद्भुत एव विलक्षण है। सामान्य से विषय को भी आप इस अद्भुत एव विलक्षण शैली मे अभिव्यक्ति देते हैं कि श्रोता सम्मोहित हो जाते हैं। आपकी प्रवचन-शैली का चमत्कार यह है कि गभीरतम सिद्धान्त भी सुगम एव सुबोध बन जाते है। चूँकि आपके प्रवचनो का मुख्य विषय अध्यात्म है, अत उसमे रूक्षता का होना स्वाभाविक है। किंतु आप उस रूक्ष विषय को इतनी सचोट एव सरस अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं कि सामान्य बुद्धिवाला श्रोता भी सरसता का पान करता रहता है। आपके प्रवचनो की भाषा सुबोध होते हुए भी प्राँजल, अलकृत एव ओजयुक्त होती है। वह श्रोता के मस्तिष्क पर भार नही बनती।

किसी भी आगम ग्रन्थ के किसी एक छोटे से सूत्र अथवा गाथा (श्लोक) को लेकर आप उसकी घंटो और दिनो नही, बल्कि महीनो तक इतनी मौलिक सैद्धान्तिक-विवेचना प्रस्तुत करते है कि आगमगत सूक्ष्म विषय श्रोताओ के लिये सरस एवं अति सुबोध हो जाते है। चूँकि जैनागमो पर आपका अधिकार पूर्ण तलस्पर्शी एव अनुभूतिमूलक अध्ययन है, अत: आपके प्रवचन प्रमुखतया जैन आगम सूक्तो के परिशीलन से ओतप्रोत होते है, किन्तु आगमिक अर्थों की परि-पुष्टि तथा श्रोताओ की मनोभूमिका के अनुसार गीता, रामायण, उपनिषद् आदि के सिद्धान्तानुकूल उद्धरण भी प्रवचन मे अधिक सरसता का सयोजन कर देते है।

प्रवचन का तीसरा सामयिक अंग है—सामाजिक कुरीतियो एव रूढियो पर प्रहार तथा व्यावहारिक जीवन मे नैतिकता के अनुशीलन पर उद्बोधन। समाज मे फैली हुई जड़ता पर सशक्त चोट करते हुए आपश्री अपने श्रोताओ को कुछ अतीत की सास्कृतिक स्मृति की ओर सचेष्ट करना प्रवचन का अनिवार्य अंग मानते हैं। आपश्री का यह दृष्टिकोण ही प्रवचन मे सामयिकता का समा-योजन कर उसे युगानुकूल परिवेश प्रदान करता है।

होता यह है कि अधिकाश प्रवक्ता अतीत के ऐतिहासिक पृष्ठो को ही दुहराते रहते है तथा कुछ पौराणिक कथा-कहानियो से अपने श्रोताओ का मनोरजन कर देना ही प्रवचन की अथ-इति मान लेते है। फलत: उनका यह प्रवचन कुछ रूढिग्रस्त भक्तों के अतिरिक्त युवा-चेतना के लिये सशक्त एव प्रभावक नही बन पाता। श्रद्धेय आचार्य देव का दृष्टिकोण इस विषय मे इससे कुछ भिन्न है। आपकी यह मान्यता है कि जो आगमिक दृष्टि हमे अपने श्रोताओ को देनी है, जब तक उसे भाषा, भाव और शैली के माध्यम से नूतन परिवेश नही देगे, वह प्रवचन युगीन चेतना को प्रभावित नही कर सकेगा। अत: आपके प्रवचनो में अतीत के ऐतिहासिक पृष्ठ एव अनागत के स्वप्निल स्वर्ग के चित्र अल्पप्राय या नही-वत् ही मिलेंगे। आपका दृष्टिकोण है, अपने वर्तमान को स्वर्ग—बनाने का। यदि वर्तमान स्वर्ग बन गया तो अनागत निश्चित स्वर्गीय आनन्दप्रद बन जावेगा। धर्म केवल अनागत के लिये नही प्रत्युत इसका सम्वन्ध वर्तमान से अधिक है। भविष्य मे तो इसके लाभ होगे ही, किन्तु सर्वप्रथम आपका वर्तमान उससे आलोकित होगा। इसी सदर्भ मे आप अपने प्रवचन मे आधुनिक विज्ञान एवं आगमिक सिद्धान्तो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करते हैं, जो सहज ही आज के वैज्ञानिक युग के श्रोताओ के लिये आकर्षण का केन्द्र वन जाता है। वैसे आधुनिक विज्ञान विषय मे आपकी मान्यता है कि वैज्ञानिक दृष्टि जो कुछ हमारे समक्ष लाती है वह सर्वथा शत-प्रतिशत सत्य ही है, ऐसा नही माना जा सकता है। हाँ, जो वैज्ञानिक-विश्लेपण आगमिक कसौटी पर

२४– **तर्कज्ञ** तार्किकता का बोध भी प्रवक्ता मे अति अपेक्षित है। किसी भी व्यक्ति के तर्कपूर्ण प्रश्नो का समाधान तर्क-प्रवणता के बिना युक्ति-पुरस्सर नही हो सकता। अत प्रवक्ता को तर्कपटु होना चाहिए।

२५– **गुणयुक्तता** प्रवचनकार का सर्वतो महान् गुण है—गुणयुक्तता तथा गुण-ग्राहिता। प्रवक्ता मे प्रामाणिक, प्रतिष्ठित, प्रभावशाली तथा विश्वासपात्र बनाने वाले सभी गुणो का सयोजन होना चाहिए। गुणो के बिना उसके वचन प्रामाणिक एव सर्वमान्य नही बन सकते हैं।

उपर्युक्त गुणो के अतिरिक्त अन्य सद्गुणो के समुचित सयोजन से कोई भी वक्ता यथार्थत प्रवचनकार के महनीय पद का अधिकारी बन सकता है :

जादू भरे वाग्मी

यह कहा जा चुका है कि प्रवचन जैन मुनियो की दैनिक प्रवृत्तियो का एक अभिन्न अग है। वे आत्म-द्रष्टा एव अध्यात्म-प्रवक्ता होते है, किंतु प्रवचन-कला मे सभी मुनिगण प्रवण हो, यह आवश्यक नही। सभी की अपनी-अपनी मेधा एव चिन्तन-क्षमता भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। विचार अभिव्यक्ति का कौशल भी सभी का अपना अलग होता है। अतएव हम देखते हैं कि कुछ प्रवक्ताओ की वाणी मे जादू-सा आकर्षण होता है। हजारो मील से लोग प्रवचन-पान हेतु भागे चले आते हैं। विषय पुराना हो अथवा नया, सुनाने की कला उसमे नूतनता का सचार कर जादू उत्पन्न कर देती है।

ऐसे ही जादूभरे वाग्मी हैं परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म० सा०। एक अध्यात्म प्रवचनकर्ता मे जिन मौलिक विशेषताओं का समायोजन अपेक्षित होता है, वे सभी पूज्य आचार्य देव की नैसर्गिक सपदा हैं। आपकी प्रवचन-शैली मे न मालूम ऐसा क्या जादू भरा आकर्षण है, कि प्राय: प्रतिदिन आपके प्रवचनो मे हजारो की भीड लगी रहती है। सैकडो मील से आगत श्रोता मत्रमुग्ध से चकोरवत् प्रवचन-पान करते है। आचार्य श्री की प्रवचन-शैली अद्भुत एव विलक्षण है। सामान्य से विषय को भी आप इस अद्भुत एव विलक्षण शैली मे अभिव्यक्ति देते हैं कि श्रोता सम्मोहित हो जाते हैं। आपकी प्रवचन-शैली का चमत्कार यह है कि गभीरतम सिद्धान्त भी सुगम एव सुबोध बन जाते है। चूँकि आपके प्रवचनो का मुख्य विषय अध्यात्म है, अत उसमे रूक्षता का होना स्वाभाविक है। किंतु आप उस रूक्ष विषय को इतनी सचोट एव सरस अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं कि सामान्य बुद्धिवाला श्रोता भी सरसता का पान करता रहता है। आपके प्रवचनो की भाषा सुबोध होते हुए भी प्राँजल, अलकृत एव ओजयुक्त होती है। वह श्रोता के मस्तिष्क पर भार नही बनती।

वाग्धारा के प्रत्येक वाक्य एवं उसके प्रत्येक शब्द-कण में जीवन-ज्योति को जगमगाने वाला विमल आलोक भरा रहता है। न जाने कितनी चेतनाओं ने आपश्री के प्रवचनो से प्रेरणा का आलोक प्राप्त किया है। कितनी प्रसुप्त आत्माओ ने जागरण-उद्बोधन का स्वर प्राप्त किया है, कितने हताश व्यक्तियो को आशा का प्रकाश स्तम्भ परिदृष्ट हुआ है।

आपके प्रवचनो से समाज ने अतुलनीय लाभ प्राप्त किया है। लाखों व्यक्ति लाभान्वित हुए और हो रहे है। आपके प्रवचनो से समाज मे चली आ रही कई सामाजिक रूढियो, अन्धविश्वासो और विचारों की जडताओ का अन्त तथा पराभव हुआ है। इस दृष्टिकोण से यदि कहे कि आप अपने युग के विधाता, अधिवेत्ता एवं युग-जागरण के अधिचेता हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। आज का भारतीय जीवन अपने बीच ऐसे उदात्त, चरित्र-निष्ठ, ब्रह्मचर्य की गरिमा से मण्डित सरस्वती के वरद पुत्र को पाकर गौरवान्वित है।

वक्ता-प्रवक्ता तो और भी उच्चकोटि के प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु जिनके जीवन के विचार, उच्चार एव आचार मे अद्भुत साम्य हो, ऐसे चरित्रनिष्ठ प्रवचनकार की उपलब्धि इतिहास को यदा-कदा ही होती है। श्रद्धेय आचार्य देव ऐसे ही उच्चकोटि के प्रवचनकार है, जिनकी मानसिक, वाचिक एव कायिक प्रवृत्तियो मे समरस टपकता है, अथवा यो कहे कि उनके जीवन का कण-कण एव प्रत्येक क्रियान्विति स्वतः ही अभिप्रेरक-दृष्टान्त है। ऐसी निर्मिति, जो आगन्तुक को दर्शन मात्र से ही अनुप्राणित कर देती है।

आपके धारा-प्रवाही उपदेश का पूर्ण रसास्वादन तो पुनीत चरणों के उपपात मे बैठकर ही किया जा सकता है, किन्तु आंशिक आस्वादन के लिए कुछ मुक्ता-कण हम यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे है।

यह कहा जा चुका है कि आपश्री के अमृत प्रवचन सामयिक एवं युगानुकूल दृष्टि-बोधक होते हैं। धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्मवाद, भौतिकवाद, सामाजिकता, मानवता, राष्ट्रीयता आदि प्रत्येक पहलू की व्याख्या आपके प्रवचनो मे वर्तमान युग का स्पर्श करती हुई अतीत को उजागर करती है।

वर्तमान युग मे धर्म और विज्ञान एक दूसरे को चुनौती देते-से प्रतीत होते है। वैज्ञानिक विकास धार्मिक विश्वासो के समक्ष सकट उपस्थित कर रहा है। परमाणु ऊर्जा एव भौतिक तथ्यो के नित नये उद्घाटन तथा आधुनिक सुविधाओ का अम्बार मानवीय चेतना को दिग्मूढ बनाकर भोग और वासना की अनजानी राह पर चलने के लिए प्रेरित कर रहा है। चारो तरफ विज्ञान का चुनौती भरा हौआ अट्टहास कर रहा है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक तकनीकी

श्रद्धेय आचार्य देव मे उन सभी अपेक्षाओ का सुन्दर समन्वय है, जो प्रवक्ता की महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए अपेक्षित है।

यद्यपि आपके श्रोताओ की कोई बँधी हुई परम्परा नही है, तथापि धर्म-श्रद्धा-प्रवण एव दार्शनिक विचार-विमर्श-निरत श्रोताओ की समुपस्थिति आपके समक्ष प्रधानतया होती है।

जिस समय आप दार्शनिक विमर्श मे प्रवेश करते हैं, आपकी गम्भीर दार्शनिक मुद्रा दर्शनीय होती है। आपकी वाणी चिन्तन की सहवर्तिनी बन जाती है। जीवन-दर्शन के स्पष्ट बोध को जब आप ऐतिहासिक चिन्तन-धारा से जोडना प्रारम्भ करते है तो ऐसा नही प्रतीत होता कि आप दर्शन की भिन्नताओ को प्रकाशित कर रहे हैं। प्रतीत होता है एक ही मानव-चेतना विभिन्न दृष्टि-कोणो को बीनती-बराती हुई समाधान को उजागर करती जा रही हो। उस समय आप तो केवल समग्र चिन्तन और अविभक्त काल-गरिमा के साक्षी होते है।

चूँकि आचार्य श्री के विचार अनुभूतिमूलक साधना एव घोर तपस्या के निचोड है अत उनमे मौलिकता की अभिव्यक्ति रहती है। सकुचित साम्प्रदा-यिकता की क्षुद्र परिधि उन्हे आबद्ध नही करती। समस्त मानव जाति ही नही, प्रत्युत सपूर्ण प्राणि समुदाय के हितमार्ग, विश्वकल्याण तथा विश्वशाति की विराट भावना के स्वर उसमे मुखरित होते है। आचार्य श्री के दार्शनिक विचारो मे अपना स्वतन्त्र चिंतन एव विराट व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित होता है।

निस्सदेह आचार्य श्री के उच्चकोटि के दार्शनिक विचार शाश्वत सत्य के उ्भासक एव यथार्थता के अवबोधक होते हैं। वे अपने दार्शनिक क्षेत्र मे सत्य से आप्लावित पुरातन मान्यताओ का जितना समादर करते हैं, उतना ही नूतन सत्य-स्पृष्ट विचारो का। उनके विचारो मे न नूतनत्व का आग्रह है और न पुरातनता का व्यामोह। उनका सर्वतोभावेन परिष्कृत दृष्टिकोण मात्र सत्य का आग्रही है। आपके दार्शनिक विचार-पक्ष, ओज, तेज, सत्य, विवेचन, सरसता एव माधुर्य से ओत-प्रोत होते हैं।

आपके श्रोताओ का दूसरा वर्ग होता है धर्म श्रद्धालु भक्तो का। आपको वहाँ अपनी भाषा को अत्यन्त सरलता एव सरसता प्रदान करनी पडती है, जहाँ गूढ सैद्धातिक तत्त्वो को रूपको एव लघुकथाओ के माध्यम से सामान्य जिज्ञासु मुमुक्षुओ को हृदयगम करवाना होता है। चूँकि आपके प्रवचन का पुनीत लक्ष्य श्रमण-सस्कृति का अभ्युत्थान एव भावुक गतानुगतिक जनमानस मे शुद्ध धर्म सस्कारो का बीजारोपण करना होता है, अत आपके प्रवचन की विषय-मर्यादा धर्म भीरू भावुक जनता के अनुकूल होती है। भाषा मे सुबोध एव जीवन्त

वनस्पति के सम्बन्ध मे निज के अनुभव वाला एक लेख लिखा था। लेख में बताया गया कि वह वैज्ञानिक जगलो में घूमने का शौकीन था अत: दो आदिवासियो को साथ लेकर वह एक घने जगल मे गया। वहाँ उन आदिवासियो ने उसे दूर से एक वृक्ष दिखाया व पास मे जाने से मना किया। उस वृक्ष की टहनियाँ करीब ४२ फीट तक लम्बी थी। वह बडा सुन्दर था, किन्तु आदिमवासियो ने वैज्ञानिक को बताया कि यह मास-भक्षी वृक्ष है। उसी समय उनके देखते-देखते एक मृग भागा-भागा उधर आया और उस वृक्ष की टहनियो ने आगे बढकर उसे जकड लिया। उसे जकड कर टहनियो ने उसे बीच के गुच्छे मे फेंक दिया जहाँ से थोडी देर बाद उस मृग की कोरी हड्डियाँ बाहर गिरती नजर आई।

यह सब देखकर वैज्ञानिक की जिज्ञासा अति उग्र हो उठी कि वह उस गुच्छे के रहस्य का पता लगावे। उसने आदिवासियो को धन का लोभ देकर प्रेरित किया कि वे कुछ ऐसा उपाय करे कि वह गुच्छा फिर बाहर निकले। उन्होने एक बंदर को उस वृक्ष की सीमा मे भगाया कि टहनियो ने फिर बदर को पकडा और उसे बाहर निकले गुच्छे मे फेकने लगी। तभी वह वैज्ञानिक यह सोचकर भागा कि इस समय वह उस गुच्छे को काट ले ताकि उसका रहस्य उस पर प्रकट हो जाय। वृक्ष के निकट पहुँचते ही एक टहनी ने उसे झटका मारा कि वह सज्ञाहीन सा होने लगा। यदि आदिवासी उसे तरकीब से वहाँ से उठा नही लेते, तो मृग व बदर जैसी दशा उस वैज्ञानिक की भी हो जाती।

कहने का अभिप्राय यह है कि शास्त्र मे जिस मांस-भक्षी वनस्पति का वर्णन आया है, उसकी पुष्टि इस वैज्ञानिक के लेख से हो जाती है, किन्तु जिस रहस्य का पता शास्त्रकारो ने युगों पूर्व पा लिया था, उसे एक वैज्ञानिक आज भी पाने मे असफल रहा। इसलिए यह खयाल रखने की बात है कि आत्मा का चिंतन बहुत ही गहरा और दूरदर्शी होता है।

भौतिक विज्ञान स्थूल ज्ञान होता है। यह सही है कि इसकी सहायता से मनुष्यो के लिये बाह्य सुख के साधन प्रस्तुत किये गये है, किन्तु इसके साथ क्या यह सही नही है कि इसी विज्ञान की प्रगति ने ससार के सामने अणुबम आदि के रूप मे महाविनाशकारी साधन भी प्रस्तुत किये है ? विज्ञान ऐसा है, जिसका सदुपयोग करे तो ठीक, वरना दुरुपयोग तो किया ही जा सकता है। एक उस्तरा होता है, जिससे हजामत भी की जा सकती है, किन्तु यदि वह किसी वन्दर के हाथ लग जाय तो उससे वह किसी की नाक भी काट सकता है। आत्मज्ञान से हीन मनुष्य की अवस्था वन्दर से कम नही होती। आज विज्ञान

आपके प्रवचन की एक और मौलिक विशेषता है भाषागत सयम। जिस समय आपका धारा-प्रवाह प्रवचन अजस्र रूप मे प्रवाहित हो रहा हो, उस समय भी आपका प्रत्येक शब्द निर्दोष मुक्ता की तरह "भाषा समिति" से सयत रहता है। प्रत्येक शब्द आपत्तिजनक अर्थों की केंचुली उतारकर ही आपके समक्ष उपस्थित होता है।

चूँकि आपके धर्म प्रवचन के प्रमुख श्रोता धर्म श्रद्धालु, धर्म भीरू एवं तत्त्व-जिज्ञासु सामान्य जन हैं, अत आपके प्रवचन मे समस्त श्रोताओ के योग्य खुराक होती है। इसी दृष्टि से आपने अपने प्रतिपाद्य विषयो को चार भागो मे विभक्त कर दिया है।

प्रथम एव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अग है—अध्यात्म, प्रार्थना-स्तुति की भावपूर्ण विवेचना। महान् अध्यात्म योगी आनन्दघन जी के भावपूर्ण, रसप्रद एव तत्त्व-निस्यन्द रूप चतुर्विशति स्तव मे से किसी आगत सम्मत स्तव का सुमधुर कठ से भाव विभोर उच्चारण करके जब आप उसकी अध्यात्म-दृष्टि-मूलक विवेचना प्रस्तुत करते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आप सिद्ध ज्योति की अनिर्वचनीय गहरी अनुभूति कर रहे होते है।

महात्मा आनन्दघन जी की प्रार्थना को माध्यम बनाकर आप अपने अध्यात्म-तत्त्व-विश्लेषण का इतना सुन्दर एव सुबोध विवेचन करते हैं कि श्रोता विषय की दुरूहता से ऊपर उठकर भाव-विभोर एव तन्मय हो जाते है।

प्रार्थना के विवेचन मे आतमा, परमात्मा, कर्म, पुनर्जन्म ससार, नवतत्त्व, हेय-ज्ञेय-उपादे का बोध, बन्धन और मुक्ति के कारण, स्वरूप बोध, सम्यग् दर्शन आदि विषयो का निरूपण प्रमुख होता है।

उपर्युक्त विषयो की गभीर किंतु अति सुबोध विवेचना आपे प्रस्तुत करते हैं, जिसमे श्रोताओ मे सहज ही गूढ तत्त्वो के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रादुर्भूत हो जाता है।

प्रवचन का द्वितीय अग है—शास्त्र-विवेचना। आगम ग्रन्थो मे निहित गूढ तत्त्वो की सूक्ष्म एव तलस्पर्शी गम्भीर व्याख्या जब आपके श्रीमुख से प्रवाहित हो रही हो, तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई महान् वाग्मी श्रुतधर महात्मा द्रव्यानुयोग की चिन्तनपूर्ण मीमासा कर रहा हो। आगम के लघुकाय सूक्तो की इतनी सूक्ष्म एव हृदयग्राही विवेचना आप प्रस्तुत करते हैं मानो छोटे-छोटे मुक्ताओ को स्वर्णतार मे आबद्ध कर सुन्दर मनोहारी हार बनता जा रहा है।

आज मनुष्य का ध्यान भौतिकता की ओर आकृष्ट है। वह यह सोचने लगा है कि जो कुछ भी उसे स्थूल रूप में दिखाई दे रहा है तथा विज्ञान जिन वस्तुओ को प्रमाणित करता है, केवल वे ही सत्य है, किन्तु वास्तविकता तो ऐसी नही है। मै विज्ञान का विरोधी नही हूँ। लेकिन मैं यह कहना चाहता हू कि मनुष्य को विज्ञान के साथ-साथ अपना ज्ञान (आत्म-विज्ञान) भी प्राप्त करना आवश्यक है।

एक सीधा-सा प्रश्न है कि विज्ञान ने जो तथ्य प्रमाणित किये है, वे इससे पूर्व अस्तित्व मे थे कि नही ? वे गतियाँ पहले कहाँ थी ? सत्य तो यह है कि वे इससे पूर्व भी थी, किन्तु विज्ञान उन्हे अब जान-पहचान सका है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ का अब पहले से अधिक विकास हुआ है और धीरे-धीरे वैज्ञानिक उन सभी बातो को स्वीकार करता जा रहा है, जिनका वर्णन शास्त्रो मे हमे पहले से ही प्राप्त है।

अतः हमें अपनी दृष्टि को विशाल रखकर चलना चाहिए और विज्ञान को विज्ञान तक ही सीमित रहने देना चाहिए। प्रत्येक बात का मापदण्ड विज्ञान को ही बना लेने से हमारा काम चलने वाला नही है कहा गया है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्।"—अपनी आत्मा के लिये जो प्रतिकूल पड़ता हो, वैसा आचरण दूसरों के लिए भी न करो।

जीवन मे अपने व्यवहार का शुद्ध मापदण्ड यही उद्घोष वाक्य होना चाहिए। दूसरों को हम किस दृष्टि से देखे, उनके साथ कैसा व्यवहार करे, यह बात इस कथन से निर्णीत की जा सकती है। हमे स्वयं अपना ही गज, अपना ही मापदण्ड लेकर चलना चाहिए और अपने भीतर झाँककर, अपने स्वरूप को पहचान कर, दूसरो के साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

आप व्यापार करते है, कपड़े का। वहाँ लेन-देन का साधन गज या आजकल मीटर है। अनाज के व्यापारी के पास किलो-क्विटल है। सोने-चाँदी के व्यापारी के पास ग्राम, आदि हैं। तो प्रत्येक व्यापारी के लिए भिन्न-भिन्न साधन और आधार हैं। यदि एक सोने-चाँदी का व्यापारी मीटर या किलो से तोल या नाप करने लगे, तो उसका दिवाला निकल जाय या उसका काम नही चले। उसका काँटा भी टूट सकता है। इसी प्रकार से आजकल हवा के दबाव और वजन को नापने के लिए भी यन्त्र है। तो ये सब भौतिक साधन हैं। इन साधनो से आध्यात्मिक तत्त्व को नही नापा जा सकता है।

इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि जीवन के दोनो पक्षो को बड़े ध्यान मे देखिए। गम्भीरता से विचार कीजिए। एक ही पक्ष (पख) के होने से जिस प्रकार से कोई पक्षी उड़ान नही कर सकता, उसी प्रकार यदि आप अपने जीवन

खरे उतर जावे, वे मान्य हो सकते हैं। कसौटी विज्ञान नही, कसौटी का आधार सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा प्रभु की वाणी ही हो सकती है। वैज्ञानिक अवधारणाएँ प्राय: स्थिर नही रह पाती हैं। उनमे परिवर्तन अनिवार्य है। एक वैज्ञानिक जिन तथ्यो को अनुभूतिमूलक सत्य से प्रमाणित मानता है, उसे ही कुछ समय के अन्तराल मे दूसरा वैज्ञानिक अपनी अनुभूति के आधार पर असत्य घोषित कर देता है। अत वैज्ञानिक दृष्टिकोण आशिक एव सापेक्ष सत्य माना जा सकता है, पूर्ण सत्य नही।

प्रवचन के इसी अग के अन्तर्गत युगीन घटनाओ, रूपकों, ऐतिहासिक लघु कथानको, वैराग्योत्पादक एव नीति-निर्देशक धार्मिक चर्चा-वार्ताओ एव अनुभवो का सयोजन सहजतया हो जाता है, जो प्रवचन की सरसता मे कला-सपादन का कार्य करता है।

चूँकि आपके आम प्रवचनो मे धर्म-भीरु एवं श्रद्धा-सपन्न भावुक महिलाओ की उपस्थिति भी अत्यधिक होती है और उन्हे गूढ सैद्धान्तिक तत्त्व-स्वरूप को हृदयगम करवाना सहज नही है, अत· आपके प्रवचन का अतिम एव चतुर्थ अग है—पौराणिक आख्यानो और काव्य-ग्रन्थो की कथा वस्तु को हिन्दी अथवा प्रातीय देशी भाषाओ मे गेय रूप देकर ढालो एव चौपाइयो के रूप मे प्रस्तुत करना तथा तद्द्वारा श्रोताओ के मानस-पटल पर विवेक, दया, दान, तप, सेवा, सहानुभूति, सद्व्यवहार, क्षमा, सहिष्णुता, शाति आदि सद्गुणो की कोमल कलित भावनाओ का प्रादुर्भाव करना।

सुमधुर कोमल कठ से उच्चरित भावपूर्ण काव्य-मय ये व्याख्यान स्वय आपके द्वारा रचित होते है जो आपकी काव्यमय प्रतिभा के सूचक हैं। अलकार एव मुहावरो से सुसज्जित इन काव्यरचनाओ मे आपकी अनुभूतियो के स्पष्ट दर्शन होते है। इनमे मात्र कथावस्तु पौराणिकता की ओर द्योतन करती है, अन्यथा चूँकि यह आपकी स्वय की काव्य-प्रतिभा का चमत्कार होता है अत. इनमे जीवन के हर कोण का वर्तमान परिवेश की दृष्टि से स्पष्ट चित्रण मुखरित होता है। नाम मात्र को ही यह पौराणिक आख्यान होता है। आचार्यश्री इसमे ऐसी नूतनता को उन्मेषित कर देते है कि श्रोतागण अतीत और वर्तमान के मधुर समन्वय के झूले मे झूलने का आनन्दन लेते रहते है।

सब मिलाकर आपका प्रत्येक प्रवचन प्रकाण्ड विद्वान् से लेकर सर्व साधारण तक के लिए समुचित खुराक प्रस्तुत करता है तथा जीवन के सभी दृष्टि-बिन्दुओ का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आपके ओजस्वी प्रवचनो से जहाँ एक ओर युगीन चेतना को जागृति की प्रेरणा मिलती है, वहाँ दूसरी ओर भावी युग को जीवन की स्वर्णिम आशा का मधुर सदेश भी। आपश्री की पीयूष

कहने वाले यह नही देखते कि आत्मा और आत्म-ज्ञान के बल पर ही भौतिक विज्ञान का विकास हुआ है। दोनो मे से जब मूल पक्ष की उपेक्षा की जाती है, तो वैसा अतर की आँखो के नही खुलने से ही होता है। भौतिक विज्ञान तो अभी भी विकासशील है और अभी वह प्रौढावस्था में नही आया है, किंतु यह चैतन्य तो अनन्त शक्ति से सपन्न होता है और उसके चरम को प्राप्त करना पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। परमात्मा की उस शक्ति का दर्शन भौतिक विज्ञान की सामर्थ्य मे नहीं है।

आत्मा की शक्ति ही प्रधान होती है, जो चेतना और विज्ञान दोनों क्षेत्रो मे समान रूप से प्रगति की प्रेरक बनती है। भौतिक विज्ञान के विकास मे प्रयोग का फल है, किंतु प्रयोग मे रत रहनेवाला और उसमे निरंतर श्रम करने वाला दृढ मन ही तो होता है। और यह मन क्या है ? चैतन्य का ही तो एक सबल अग है। फिर कैसे कह सकते है कि भौतिक विज्ञान का क्षेत्र आत्म-शक्ति से परे है ? विद्युत शक्ति पावर हाउस मे सगृहीत रहती है और वहाँ से वह बिजली के बल्ब मे समाती है, जो आँखो को प्रकाश देते है और ऐसी बिजली से कई प्रकार के उद्योग, आदि चलाए जा सकते है तथा उपयोगी पदार्थो मे उससे काम लिया जा सकता है। उससे कारखाना भी चलता है और उससे दाह-क्रिया भी की जाती है। किन्तु जरा-सी असावधानी से बिजली के तारो को जला डालती है, तो जान भी ले लेती है। ऐसी खतरनाक शक्ति को नियत्रण मे रखकर चलाने वाला कौन है ? क्या यह चैतन्य नही है ? एजिन को भौतिक विज्ञान कह ले, तो उसका चालक चैतन्य ही हो सकता है।[1]

युवा-वर्ग के संदर्भ में

आज का सपूर्ण जन-जीवन युवकों को कोसता हुआ-सा परिलक्षित होता है। यद्यपि युवा-वर्ग के प्रति आशाभरी दृष्टि लगी रहती है, तथापि वे सभी आशाएं आज धूमिल-सी निराशा मे परिणत होती दिखाई दे रही है। एक आम धारणा बन गई है कि युवा-वर्ग भटक गया है, किन्तु आचार्य श्री के विचार इस विषय में भी आशा की एक नई किरण प्रस्तुत करते हैं। आप स्वयं आशावादी दृष्टिकोण को समक्ष रखते है—अपने व्यक्तिगत जीवन में भी और सामाजिक परिष्कार के सदर्भ मे भी। आपने अपने जीवन की मनोभूमि पर कभी निराशा के बीजों को अंकुरित नही होने दिया। आपके आशा भरे स्वर कई बार मुखरित होते है—"प्रतीक्षा करो, निराश मत बनो। अंधेरी निशा का अंत होने पर स्वर्णिम प्रभात अवश्य ही आएगा। जिसने धैर्य के साथ प्रतीक्षा की है, उसे प्रकाश अवश्य उपलब्ध हुआ है"—आज के युवा-वर्ग के प्रति भी आप श्री का

१—जयपुर चातुर्मास प्रवचन, पावस प्रवचन, भाग ४, पृ० ५८—५६

को न तो नकारते बनता है और न स्वीकारते। सामान्य जन-मानस दिग्भ्रमित सा बन जाता है। ऐसे दिग्भ्रमित मानव को दिग्बोधक प्रकाश का सबल देते हुए आचार्यश्री कहते हैं—

विज्ञान और धर्म

आज का युग विज्ञान व तकनीकी युग कहलाता है तथा विभिन्न भौतिक क्षेत्रो मे विज्ञान ने काफी उन्नति की है। नई-नई खोजो के फलस्वरूप एक ओर विश्व के विभिन्न भागो मे रहने वाले लोगो मे समीपता बढी है, तो दूसरी ओर लोगो की भौतिक सुख-सुविधाओ मे भी भारी बढोतरी हुई है।

आत्मा का आधार चिंतन है तो विज्ञान का आधार प्रयोग। प्रयोग एक भौतिक प्रक्रिया है, जबकि चिंतन अन्त:प्रेरणा से प्रस्फुटित होता है। चिंतन मूल है, तो प्रयोग उसकी शाखा, क्योकि दोनो का सम्बन्ध आत्मिक शक्ति से है। अन्तर यह आता है कि आध्यात्मिकता की ओर विकास करना आत्मा का प्रधान धर्म माना गया है, तो कोरे विज्ञानवादी भौतिक प्रगति को ही अपना अक्ष्य मानते हैं। अत· उनके चिंतन मे वह सूक्ष्मता नही आ सकती जो एक आत्मवादी के चिंतन मे प्रकट होती है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो लोग विज्ञान की प्रामाणिकता को ही एक मात्र कसौटी मानकर चलना चाहते है, उनकी धारणा स्वय प्रामाणिक नही है। इसका कारण यह है कि एकाकी रूप मे विज्ञान स्वयं अधूरा है। विज्ञान मे प्रयोग चलते रहते है, सत्याश उन्हे मिलता रहता होगा, किन्तु एक वैज्ञानिक कभी पूर्ण सत्य का पता नही पा सकता है, जबकि एक चितक अपनी साधना के बल पर पूर्ण सत्य की खोज सफलतापूर्वक कर लेता है। विज्ञान की खोज कभी पूरी नही होती और सबसे बडी बात तो यह है कि उस खोज का दायरा जब भौतिक क्षेत्र मे ही पूरा नही बैठता, तो वह व्यापक पूर्णता भला प्राप्त भी कैसे करेगा ?

मेरे भाई कभी-कभी प्रश्न उठाते हैं—वैज्ञानिको ने अमुक चीज बना दी, अब उसके आगे कोई चीज है ही नही। परन्तु आपको ध्यान रखना चाहिये कि इस विज्ञान मे जितने विषय आते हैं, वे बहुत थोडे हैं, पर शास्त्रो के विषय विशाल व व्यापक होने के साथ-साथ पूर्ण और अतिम सत्य का दिग्दर्शन कराने वाले होते हैं। वे इतने गूढ़ भी होते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हे बिना गहन चिंतन के आसानी से नही समझ सकता है।

मैं एक बार सन् १९५२ के करीब जब सब्जी मडी, दिल्ली मे था, तो एक भाई ने मुझे 'धर्मयुग' पत्र दिखाया था, जिसमे एक वैज्ञानिक ने एक

क्या यह जीवन के साथ खिलवाड नही है ? क्या जीवन को इस प्रकार से व्यर्थ मे बर्बाद करना चाहिए ? जिनके मस्तिष्क में ऐसे कुव्यसन प्रवेश कर जाये, जो नैतिकता का धरातल भूलकर गिर जाये, ऐसे युवको को क्या युवा-पीढी मे लेगे ? अरे, इनसे तो वे बूढे ही अच्छे है, जो कुव्यसनों से दूर है और समता-जीवन-दर्शन का लक्ष्य बनाकर चल रहे है। निश्चय ही वे तरुण है।

बन्धुओ ! ऐसे कुव्यसनो से जीवन का कितना ह्रास हो रहा है। आज डॉक्टर लोग कह रहे है कि कैंसर की बीमारी का मुख्य कारण सिगरेट है। डॉक्टरो के पास इसका इलाज नही है। वैज्ञानिक भी हैरान है। फिर भी लोग उसके अधीन होकर चल रहे है। ऐसे व्यक्ति क्या अपने जीवन मे समता-दर्शन ला सकते है ? उनमे यदि बल है, तो इन कुव्यसनो को दूर फेक देना चाहिए। जब तक नही समझा, तब तक इनमे फसे रहे, परन्तु समझ कर तो इनसे दूर हट जाना ही चाहिए ! शराब, मास, अण्डे आदि सब दुर्व्यसन है। वे सम्पूर्ण युवा-पीढी के जीवन मे से हटने ही चाहिए।[1]

जब तरुणाई मे व्यक्ति पहुँचता है, तब अगो के विकास के साथ-साथ उसकी मानसिक क्रियाएँ भी बदल जाती है और जीवन के अन्दर जो एक आधी और तूफान आता है, उस तूफान और आधी से ओत-प्रोत उस तरुणाई पर काबू पाना सब लोगो के लिये सहज नही है। ऐसी स्थिति मे स्वय में रही हुई निर्णायक शक्ति अगर सुषुप्तावस्था मे है, उसे किसी ने जागृत नही किया है, तो वह तरुणाई की आधी उस शरीर रूपी कार को कहाँ ले जाकर गिरा (ढकेल) देती है, इसका भी पता नही लगता।

समाचार पत्रो मे आये दिन आप लोग भी पढते रहते है और कभी-कभी मुझे भी सुनने को मिलता है कि आज के तरुण और तरुणियाँ इस जीवन-रूपी कार को कहाँ ले जाकर पटक रहे है। वे कैसी-कैसी औषधियो का और नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। इनके नाम भी सम्भवतः आप कइयो ने नही सुने होगे और उन परिस्थितियो मे पड कर वे अपने जीवन को किधर ले जा रहे है, इसकी कल्पना करने मात्र से रोमाच हो जाता है। सरक्षक माता-पिता तो यह समझते है कि हमारे वच्चें-वच्चियाँ कॉलेजो मे अध्ययन करने जा रहे है। वे वहाँ कुछ ज्ञान-विज्ञान की वाते सीखकर अपने जीवन का निर्माण करेंगे। पर वे आज उल्टी दिशा मे वहे जा रहे हैं। माता-पिता उनके वारे मे वहुत थोडी जानकारी रखते होगे। वे शायद महसूस भी नही करते कि हमे इस विपय मे आगे क्या करना है ? वे ११ से लेकर ५ वजे तक कॉलेजो मे पढते हैं। साधारण घरो के वच्चो मे तो शायद यह प्रवृत्ति नही होगी, पर जो अमीर घरो के वच्चे

१ वीकानेर चातुर्मास प्रवचन, आध्यात्मिक वैभव, पृ० ७०-७२

की प्रगति का जिस कदर दुरुपयोग किया जा रहा है, उससे संसार के अस्तित्व तक के सामने क्या प्रश्नचिह्न नही लगा हुआ है ?[1]

वैज्ञानिक अपने सिद्धान्त के अनुसार प्रयोगशाला मे जितना निर्णय वर्तमान मे करता है, वह निर्णय भविष्य मे भी टिका रहेगा या नही, ऐसा विश्वास नही किया जा सकता है और न ही वैज्ञानिक स्वय उस पर विश्वास करते हैं। उनका कथन भी यही है कि वर्तमान मे जिन भौतिक साधनो से जो कुछ भी खोज की और उससे जो उपलब्ध हुआ, उसको ही हम कह रहे हैं। सम्भव है कि भविष्य मे हमारी यह धारणा भी गलत साबित हो जाय। ऐसा हुआ भी है। पूर्व के वैज्ञानिको ने निश्चयात्मक रूप से जिसका अनुभव किया और जिसे ससार के सामने रखा, बाद के वैज्ञानिको ने उसमें सशोधन कर दिया। इस प्रकार वैज्ञानिको ने प्रयोगशाला मे किये गये अनुसधान की दृष्टि से जिस तत्त्व का निर्णय किया, वह निर्णय पूर्णतया अबाधित नही हुआ।

फिर भी वैज्ञानिक अपने अनुसधान-कार्य मे निरंतर लगे रहते हैं, परन्तु अब उनका दृष्टिकोण भौतिक पदार्थों का अनुसधान करते हुए भी उससे ऊबकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने का है। भौतिक पदार्थों मे उन्हे जल्दी सफलता मिली और वे आगे बढ गए उनकी उपलब्धि से दुनिया को आश्चर्य हो गया, परन्तु स्वय वैज्ञानिक आश्चर्यचकित नही हैं। वे तो अब भी सोच रहे है कि ये प्रयोग और आविष्कार हुए तो साधारण जनमानस भले ही इनको हौवा समझ ले, परन्तु अभी वैज्ञानिक क्षेत्र की दृष्टि से विज्ञान की बचपन की-सी अवस्था है। वह अभी तरुणाई पर नही पहुँचा है। जिस दिन वह तरुणाई की पूर्ण परिपक्वता पर पहुँचेगा, उस दिन दुनिया की वर्तमान दशा मे परिवर्तन आकर स्थिरता आ सकती है। वैज्ञानिको का यह तटस्थ मस्तिष्क है। परन्तु आज के पाठकवृ द, विद्यार्थी और अखबारो को देखने वाले विचारवादी कुछ-कुछ बातो को लेकर उनको ही सर्वस्व समझ लेते हैं। यह बहुत बडी भ्राति की बात है। उनका मस्तिष्क भौतिकवादी बन गया है। वे यही चिंतन करते है कि इसके अतिरिक्त कुछ नही है। इस प्रकार के मस्तिष्क को एक बात के पीछे बाँध देना, भौतिकता से चिपका देना, यह बडी हिंसा की अवस्था है। आज के मानवो को चाहिए कि वे अपने मस्तिष्क को खुला रखे और सोचे कि भौतिक-विज्ञान की उपलब्धि से प्राप्त विज्ञान यदि हमारे मस्तिष्क को बाँध देता है, तो हम जडीभूत हो जाते है और इससे सत् तत्त्व क्या है, इसका पूरा पता नही लगा पाते है।[2]

१-मन्दसौर चातुर्मास प्रवचन, ताप और तप, पृ० ७६-८०

२-बीकानेर चातुर्मास प्रवचन, आध्यात्मिक आलोक, पृ० ४६-४७

समूह का आधार व्यक्ति ही होता है तथा व्यक्ति के जीवन-विकास से समूह प्रभावित होता है। यदि व्यक्ति का चरित्र उच्चतम बिन्दुओ तक समुन्नत बनता है, तो उसका ऐसा नैतिक प्रभाव सारे समूह पर पडता है कि एक स्तर तक समूह भी उस दिशा मे ऊपर उठने के लिए प्रयत्नशील होता है। वैसी अवस्था मे समूह की भी एक ऐसी शक्ति का उदय होता है, जो व्यक्ति-विकास के सामान्य धरातल को समतल बनाती है। जहाँ समूह का सामान्य रूप से भी विकास नही होता, वहाँ व्यक्ति को अपने विकास का मार्ग स्वय काटो, पत्थरो और ऊवड-खावड़ जमीन मे होकर निकालना पडता है। वैसी स्थिति मे विकास की दिशा मे आगे वढने के लिए उसे अपनी काफी शक्ति लगानी पड़ती है। किन्तु जहाँ समूह का समुचित विकास उपलब्ध होता है, वहाँ व्यक्ति को अपने विकास हेतु गति करने के लिए सीधी सड़क मिल जाती है। इसी दृष्टि से व्यष्टि एव समष्टि का विकास अन्योन्याश्रित रहता है।[1]

अत: आप सबको यह विचार करना चाहिए कि न केवल धार्मिक क्षत्र मे ही, वलिक पारिवारिक तथा सामाजिक क्षेत्र में भी हमारा जीवन शुद्ध, शान्त एवं सुखी हो। हमे ऐसे जीवन का निर्माण करना चाहिए, जो कि प्रदर्शनो से दूर हो और आत्मा का शृंगार करने वाला हो। सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते जा रहे है। इन विकारो को, इन वुराइयो को हमे दूर करना चाहिए। उदाहरण के लिए एक दहेज प्रथा को ही ले लीजिए। यह प्रथा इतनी विपम है कि इसके कारण प्रतिदिन अनेक परिवार नष्ट-भ्रष्ट हो रहे है। अनेक निर्दोप वालिकाओ का जीवन अभिशाप से ग्रसित हो रहा है। मध्यम वर्ग की स्थिति दो पाटो के वीच मे पिस रही है। परिवार मे एक कमाने वाला हो और दस खाने वाले हो, तो आखिर वह कव तक और किस प्रकार से काम चला सकता है ? मजदूर वर्ग मे तो फिर भी यह स्थिति है कि सभी कुछ-न-कुछ कार्य कर लेते हैं और उनका काम चल जाता है, किन्तु मध्यम वर्ग के भाइयो का क्या हो ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि जीवन मे सादगी को अपनाइये और प्रदर्शन से दूर रहिये अन्यथा आज सामाजिक जीवन मे जितनी वुराइयाँ है, वे भी कम नही है। यदि उनमे ओर वढोतरी हुई, तो समाज पूर्णतया नष्ट हो जायगा।

आज समाज की, राष्ट्र की तथा विश्व की जो स्थिति है, वह अत्यन्त चिन्तनीय है। भारतवर्ष किसी जमाने मे सोने की चिडिया कहलाता था, किन्तु आज भारत जैसा निर्धन देश शायद ही कोई हो। ऐसा क्यो हुआ ? इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि हम जीवन की परिभाषा को ही भुला बैठे है। आध्यात्मिकता हमारे जीवन से दूर होती जा रही है। हम लोगो मे स्वच्छन्दता की वृत्ति, उच्छृंखलता की भावना घर करती जा रही है।

१–मन्दसौर चातुर्मास प्रवचन, ताप और तप, पृ० १८२

के एक ही पक्ष को साधते चले जायेगे और दूसरे पक्ष की अवहेलना कर देंगे, तो आपके विकास की गति रुक जायेगी ।

एक वैज्ञानिक के लिए भी यही बात उचित ठहरती है। विज्ञान की उपलब्धियाँ हितकर है, वशर्ते कि उनका उपयोग मानव-कल्याण के लिए किया जाय न कि मानव सहार के लिए। किन्तु एक वैज्ञानिक को भी जीवन के दूसरे पक्ष—आध्यात्मिक पक्ष को नही भूलना चाहिए, तभी सारी वैज्ञानिक उपलब्धियो का सही उपयोग हो सकता है।[1]

इस सदर्भ मे विज्ञान की स्थिति भी समझने लायक है। विज्ञान सत्य के पहले छोर को पकड़ कर प्रस्थान करता है। अन्वेषण और अनुसधान के बल पर वह चलता रहता है, किन्तु यह नही कहा जा सकता है कि वह सत्य पर ही चल रहा है। आज वह जिसे खोज सका है, वह विज्ञान के लिए आज सत्य है। हो सकता है कल प्रयोग का परिणाम आज के सत्य को बदल देने वाला और नये सत्य को उद्घाटित करनेवाला बन जाय। सत्य के अतिम छोर तक पहुँचाने का दावा भी विज्ञान नही करता, क्योकि वह रास्ता बहुत लबा होता है तथा पदार्थों की स्थिति निरतर परिवर्तनशील होती है, फिर जितना भी सत्य विज्ञान की सहायता से प्रकट होता है, उसका बहुलाश जड तत्त्व—भौतिकता से सबधित होता हे। वस्तुत आत्मा (याने चैतन्य) विज्ञान का प्रयोग-विषय ही नही होता।[2]

वर्तमान युग मे भौतिक विज्ञान की प्रगति को देखकर सभी उसकी ओर आकर्षित होते है और उस जोश मे अध्यात्मवाद की मौलिकता एव वैचारिकता का चिंतन करने से कतराते हैं। युवक और प्रबुद्ध वर्ग भी भौतिक विज्ञान से ही प्रभावित है। इसमे कोई सदेह नही कि बड़े-बडे अनुसधान एवम् अन्वेषण सफल बनाकर विज्ञान से सबको आश्चर्य मे डाल रखा है, लेकिन जहाँ प्रयोगात्मक विधि से विज्ञान का विकास सभव है, वहाँ आत्म-विकास की सूक्ष्म रेखाओ मे चलते हुए चैतन्य का विकास करना अपेक्षाकृत कठिन है। आज का मनुष्य यह सोचने का कष्ट नही करता है कि भौतिक-विज्ञान का पिता कौन है ? पुत्र को देखकर सारी दुनिया प्रसन्न हो रही है लेकिन यह पुत्र आया कहाँ से ? अगर ज्ञान नही होता तो विज्ञान कहाँ से आता ? विज्ञान पुत्र है तो उसका जनक है चैतन्य। चैतन्य की कोख से ही ज्ञान और विज्ञान का जन्म होता है। तो समझने की बात है कि आध्यात्मिक ज्ञान और भौतिक ज्ञान मे विभेद नही है वल्कि पिता-पुत्र का सबध है।

भौतिक विज्ञान के प्रति भी लोगो मे जो एकाकी निष्ठा फैल रही है, वह अन्धानुकरण का रूप लेती जा रही है। भौतिक विज्ञान ही श्रेष्ठ है, ऐसा

१—ब्यावर चातुर्मास प्रवचन, शाति के सोपान, पृ० २०१—२०३

२—मन्दसौर चा० प्र०, ताप और तप, पृ० १६६

प्रतीत नही होता, किन्तु भीतर-ही-भीतर ऐसी स्थिति बना देता है जिससे हिंसा होती है। ऐसी हिसा भी कम पापमय नही है। यदि एक व्यापारी अनाज को इकट्ठा करके बैठ जाता है तथा लोग भूखे मरते है, तो वह व्यापारी हिसक कहा जायगा। यदि एक व्यापारी खाने-पीने की वस्तुओ मे मिलावट करता है तथा लोगो का जीवन खतरे मे डालता है, तो वह भी हिसक कहा जायगा।

इसी प्रकार दहेज-प्रथा को बढाने और दहेज मागने वाले लोग भी भारी हिसा करते है। इस प्रथा ने समाज के जीवन को बहुत दूषित बना दिया है। यह प्रथा अनेक बार हिंसा को प्रेरित तथा उत्तेजित करती है। इस प्रसग मे मैं कभी-कभी एक घटना का जिक्र किया करता हूँ। वह दुखद घटना इस प्रकार है—

देहली मे एक अध्यापक थे, वेतन केवल ढाई सौ रुपया मासिक था। पत्नी तो थी ही, तीन कन्याएँ भी थी। देहली जैसा नगर और अल्प वेतन। गुजर-वसर कठिनाई से ही होता था। किन्तु किसी भी प्रकार से, कठिनाइयाँ झेलते हुए भी, उन्होने अपनी कन्याओ को अच्छी शिक्षा दिलाई थी। अब उनके सामने यह प्रश्न आया कि उन कन्याओ को किसके सामने सुपुर्द करे। उनका विवाह किस प्रकार किया जाय ? ढाई सौ रुपयो मे से तो कुछ बचत होने का प्रश्न था ही नही। अब विवाह का खर्च कहाँ से लाए तथा इस प्रकार घोर सामाजिक अभिशाप दहेज का प्रबन्ध कैसे करें ? कन्याएँ सभी प्रकार से सुयोग्य तथा सुशिक्षित थी, किन्तु सास-ससुर को देने के लिए, उनकी अर्थलोलुपता को सन्तुष्ट करने के लिए द्रव्य उन अध्यापक के पास नही था।

अत: पति-पत्नी घोर चिन्ता मे डूबे रहते थे। प्राय: आपस मे चर्चा किया करते थे और समस्या का कोई समाधान खोजने का प्रयत्न करते थे किन्तु समाधान कोई होता तो निकलता ? इस प्रकार दु:खी होकर वे सिर पीटकर रह जाते थे। अपनी वच्चियो की ओर देख-देखकर रोया करते थे।

एक दिन वच्चियो ने अपने माता-पिता को गहन चिन्ता मे डूवा हुआ देखा और उनकी वातचीत भी सुनी। स्वाभाविक रूप से उनके कोमल हृदय पर इससे वडी ठेस लगी।

एक दिन अवसर देखकर, जवकि माता-पिता दोनो ही घर मे वाहर गये हुए थे, उन वच्चियो ने एक निश्चय किया और मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाकर वे जल मरी।

बन्धुओ, वे कोमल, निष्पाप वालिकाएँ जो यह आत्मघात करके जल मरी, वह हिंसा किनके सिर पर है ? यह दायित्व किसका है ?

ऐसा ही दृष्टिकोण है। अतएव आप अपने प्रवचनो मे पुन -पुन: युवको को सचेष्ट करते हुए नही चूकते हैं। निम्नोक्त प्रवचनो से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि आप मे युवा जागृति के प्रति कितनी तडप है और आज के युवा-वर्ग से कैसी अपेक्षा रखते हैं—

मैं युवको से कहूँगा कि वे दिल-दिमाग से उत्साहित हो तथा बिना स्वार्थ-भावना के तत्पर होकर समझे। जो समता-जीवन-दर्शन मे सब कुछ लगाने को तत्पर होते हैं, वे सब युवक है। उम्र से कोई कैसे भी हो, जहाँ उत्साह है, वहाँ तरुणाई है। जो दिल से उत्साही है, वे सब तरुण है।

परन्तु आज का तरुण-वर्ग कानो मे तेल डाल कर सोया हुआ है। तरुण सोचते हैं कि धर्म करना तो वृद्धो का काम है। हमको तो राजनीति मे भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है। यह वर्ग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ है। उसको सोचना है कि अपना काम करते हुए भी जीवन के प्राण-समता-दर्शन को नही भुलाना है। युवको को तो नये जोश से आगे आकर इसमे अग्रसर होना ही चाहिए और एक-दूसरे के दिल को जीतना चाहिए।

हमको यह जीवन मिला है, तो ऐसे ही नही चला जाए, कुछ-न-कुछ भला तो इस जीवन मे अवश्य ही कर गुजरे। अनैतिकता की स्थिति पर चिंतन करके परिवार और समाज मे समता-जीवन-दर्शन आए, राष्ट्र और विश्व मे समता-जीवन-दर्शन आए, ऐसी भावना यदि तरुणो मे आ जाती है और वे जाग जाते हैं, तो सब कुछ करके दिखला सकते हैं। परन्तु आज की युवा-पीढी जिस रूप मे चल रही है और उसकी जो दशा है, उसको देखकर कभी-कभी विचार होता है कि तरुणो मे जोश है, परन्तु इनमे थोडे से होश की जरूरत है। वह आ जाए तो ये कुछ-का-कुछ करके दिखला सकते हैं।

युवको मे इस प्रकार की स्थिति हर क्षेत्र मे बननी चाहिए—चाहे वह थली प्रांत हो, मालवा हो, या अन्य स्थान हो। उनमे एक जागृति आ जाये, क्राति का स्वर आ जाए और वे सोचें कि हमको अपने जीवन मे समता-दर्शन अगीकार करके चलना है, हमे आत्मा को जीतना है और समाज में एक नयी लहर पैदा कर देनी है, तो उन्हे जीवन के दुर्गुणो को दूर फेंक देना चाहिए।

आज की युवा-पीढी मे कई कुव्यसनो के लांछन हैं। आज का युवक वर्ग उनका दास बन गया है। वे शरीर से तरुण हैं, परन्तु कुव्यसनो की दृष्टि से वृढे हो चुके हैं। यदि जीवन मे वीडी, सिगरेट, तम्वाकू आदि के कुव्यसन हैं तो ये तरुण जीवन को वृद्ध वनाने वाले ही हैं।

कहा गया है कि एक माता सौ शिक्षको के बराबर होती है । एक शिक्षक भी अपने योग्य निर्देशन से विद्यार्थी का जीवन-निर्माण करता है, लेकिन बाल्यावस्था मे माता का उस पर जितना सीधा असर पडता है, उतना और किसी का नही । जीवन के अधिकाश सस्कार बालक को अपनी माता से मिलते है । ये सस्कार ही जीवन भर उसके प्रत्येक कार्य मे क्रियाशील बने रहते है । प्रारम्भ मे, यदि माता बच्चे के साथ अपने प्रत्येक व्यवहार मे पूर्णतया सतर्क रहे और ऐसा रहना स्वय माता की शिक्षा पर आधारित रहता है, तो बालक के जीवन की ढलान कुछ और साचे की बन जाती है । भय के सस्कार के साथ मे भी यही बात लागू होती है । "उस अन्धेरी कोठरी मे भूत है, बाबा तुझे पकड़ ले जायगा, डाकन तुझे खा जायगी ।" आदि विविध वाक्यो से अगर माँ बच्चे मे काल्पनिक भय के बीज निरन्तर बोती रहती है, तो वही बच्चा जब बड़ा होता है, तो एक चूहे की खटक से भी पसीने से लथपथ हो जाता है ।

जब इहलोक के भय के संस्कार ही इतने प्रबल होते है, तो परलोक के भय के सस्कार और उनकी आतुरता भी कम नही होगी । इस तरह के भय के सस्कार बच्चे की स्वाभाविक प्रकृति मे विकृति ला देते है । बच्चे की प्रकृति मे चचलता रहती है । वह माता को सताता भी है, मगर सताने की भावना से नही । अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए वह सताता है । माता यदि योग्य होती है, तब तो वह उसकी आवश्यकताओ को यथासमय समझकर सम्यक् प्रकार से लालन-पालन कर देती है और बच्चे को स्वस्थ एव शान्त स्वभाव मे ढाल देती है, वरन् माताएँ बच्चे के मन मे सैकडो प्रकार के काल्पनिक भय बिठाकर उसे कायर, डरपोक और निकम्मा बना डालती है । बच्चे का चूँकि माता पर, पूरा-पूरा विश्वास होता है, इसलिए माता जो कुछ कहती है, उसे वह अपने मन, मस्तिष्क मे जमा लेता है । इस कोमल मस्तिष्क के एक बार जैसे भी सस्कार जम जाते है, उनको फिर उखाड़ देना दु:साध्य नही तो अति श्रमसाध्य तो होता ही है ।

जब ऐसे सांचे मे यानी कि संस्कारहीन अथवा यों कहिये कि कुसस्कारों के साचे मे निरन्तर बालको को ढाला जा रहा हो, तो उनका भविष्य क्या होगा । वे बड़े होकर अपने गृहस्थाश्रम मे भी जब असफल होते रहेगे, तो धर्म-क्षेत्र मे इनसे क्या आशाएँ हो सकती है ? क्योकि जीवन को कही भी सफलता दिलाने वाला मुख्य गुण निर्भयता होता है । निर्भय व्यक्ति ससार के कार्य करेगा, तो अपना शौर्य दिखायेगा । और वही जब धर्म के क्षेत्र मे भी प्रवेश करेगा, तो अपनी निर्भयता से वहाँ भी असम्भव को सम्भव करके दिखा देगा ।[1]

एक प्राचीन कथा है । एक वीर क्षत्रिय-पुत्र ने अपनी माता से प्रश्न

१—मन्दसौर चातुर्मास प्रवचन, ताप और तप, पृ० ११८—१२०

हैं, वे क्या-क्या वहाँ करते है ? तो आज यह सब क्या चल रहा है ? इस जीवन रूपी कार को किधर धक्का दिया जा रहा है ? वह बिना ब्रेक की कार किसी खड्डे में तो नही गिर जावेगी ? ड्राइवर के हाथो से ब्रेक की स्थिति कमजोर बन जाती है, तो उसकी दशा क्या बन सकती है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है ।[1]

सामाजिक व्यवस्था और धर्म

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह एक मौलिक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का मर्म है कि मनुष्य समाज के बिना जीवित नही रह सकता है। सामाजिकता मानव का अनिवार्य धर्म है। जिस मनुष्य मे समाज मे रहते हुए भी सामाजिकता का अभाव है, उसे मनुष्य कहना मानवता का परिहास कहलायेगा। सामाजिक परिवेश मानव-जीवन का आवश्यक अग है। एक व्यक्ति किसी परिस्थिति विशेष मे भले ही एक-दो दिन एकात मे व्यतीत कर ले, किन्तु सदा-सदा के लिए वह समाज से निरपेक्ष रहकर जीवित नही रह सकता है।

समाज और व्यक्ति का अग-अगी भाव का सम्बन्ध है। व्यक्ति अग है और समाज उसका अगी।

समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध के समान ही आज एक ज्वलत प्रश्न सामने खडा है समाज और धर्म के सम्बन्ध का। कई विचारको का मत है कि हमे अपनी वैयक्तिक साधना करनी है। हमे क्या मतलब समाज से ? समाज जाए भाड मे ! हमे समाज से कोई सरोकार नही किन्तु यह प्रश्न हवा में उडा देने जैसा नही है। इस पर मनीषियो ने गम्भीर चिन्तन किया है।

श्रद्धेय आचार्यश्री की इस विषय मे स्पष्ट और सचोट ध्रुव मान्यता है कि समाज से कटकर मनुष्य के जीवन का अस्तित्व नही रह सकता है। सामाजिक परिष्कार धर्म की भूमिका है। यदि समाज मे अराजकता है, तो वहाँ धर्म की नीव डगमगाने लगेगी। अत धर्म के बीज-वपन के लिए पहले सामाजिक धरातल का शुद्धिकरण नितात अपेक्षित है। इसी दृष्टिकोण से समाज मे प्रविष्ट बुराइयो और जडता को ध्वस्त करने के लिए आप अपने प्रवचन में इन पर बडा करारा प्रहार करते है। प्रवचन के निम्न उद्धरणो से स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और समाज के मधुर सम्बन्ध के विषय में आपकी क्या अवधारणा है तथा समाज की वर्तमान विकृत, दयनीय एव दर्दनाक अवस्था के प्रति आपके भीतर कितनी टीस है !

---

१ जयपुर चातुर्मास प्रवचन, पावस प्रवचन, भाग २, पृ० ५६–५७।

दोनो आदर की नजर से देखते है, जहाँ उस वीरपुत्र का सिर लडते-लडते धड से कटकर गिरा था।

यह तो एक रूपक है। किन्तु जब तक माताएँ ऐसे निर्भय सस्कार अपने बालको मे नही भरेगी और वीरपुत्रो का निर्माण नही होगा, तब तक सामूहिक जीवन मे से भय को उखाडकर फेका नही जा सकेगा। आप मे से प्रत्येक को यह देखना है कि क्या आपके घरो मे बच्चों पर निर्भयता के सस्कार डाले जाते है ? क्या ये बहिने स्वय निर्भयता का भाव रखती है और अपने बालको को भी निर्भय बनाना चाहती है? वह वीरपुत्र तो नौ सौ दम्पतियो की रक्षा के लिये खेत रहा, किन्तु जहाँ न्याय और नीति का प्रश्न अडा हुआ हो, वहाँ चाहे एक की भी रक्षा का सवाल हो तब भी और जहाँ छः काया की रक्षा के रूप में अरबों-खरबो प्राणियो की रक्षा की स्थिति हो तब भी आपकी सतान ऐसी होनी चाहिए, जो सर्वस्व त्यागकर भी निर्भयता का रग दिखावे। ऐसी सन्तान ही असभव को भी सभव करके दिखा सकती है।

किन्तु आज तो माता-पिता का मानस भी कुछ दूसरे ही प्रकार का हो रहा है। यदि कोई बच्चा धार्मिक संस्कार लेने की दृष्टि से सन्तो के पास जाता है और छः काया की रक्षा करने की दृष्टि से निर्भयता दिखाकर वीर बनना चाहता है, तो उसे माता-पिता रोकना चाहते है। यह संस्कारो की ही कमी है। निर्भय बनना चाहने वाले ऐसे पुत्र को तो और अधिक निर्भयता की शिक्षा दी जानी चाहिये कि वह वीर बनकर आध्यात्मिक क्षेत्र मे असभव को सभव कर दिखावे।[१]

माता-पिता और सन्तान तक के बीच आज के युग मे जिस प्रकार कर्तव्य-निष्ठा का अभाव दिखाई दे रहा है, यह स्थिति वास्तव में अतीव शोचनीय है।

माता-पिता और सन्तान के परस्पर कर्तव्य

देवकी रानी को जिस मुख्य बात का सन्ताप हुआ, वह यह थी कि वह उन छः पुत्रों को जन्म देकर भी उनके साथ अपने मातृत्व के कर्तव्यों का निर्वाह नही कर सकी। वह कर्तव्यनिष्ठा की दृष्टि से ही दूर रही थी यदि वे छहों पुत्र उसकी गोदी मे खेलते और बडे होते, तो वह भी उनके उच्च संस्कारों के निर्माण की भागीदार हुई होती। क्या आज माताओं को सन्तान के प्रति अपने इस मूल कर्तव्य का भान है कि उन्हें प्रारम्भ से ही अपने बालक-बालिकाओ को जीवन-निर्माण की कला सिखानी चाहिये। माता का इतना ही कर्तव्य नही है कि वह शरीर के लोथड़े के रूप में केवल सन्तान को जन्म दे दे, बल्कि उसके

१-मन्दसौर चातुर्मास प्रवचन, ताप और तप, पृ० १२२-१२४

अतएव मैं आपसे कहता हू कि आप जहाँ कही भी रहे, आपको प्रण करना चाहिए कि आप नैतिकता से रहेगे। आपके सम्पूर्ण जीवन मे कही भी अनैतिकता नही होनी चाहिए। धर्मस्थानो मे आने पर तो मन और भी अधिक शुद्ध रहना चाहिए। पूर्णरूपेण सादगी आपके जीवन मे होनी चाहिए। इस स्थान पर आकर आपके हृदय मे प्रेम और समभाव का उदय होना चाहिए। चाहे कोई गरीब हो या अमीर, सभी मनुष्यो के प्रति आपके हृदय मे प्रेम, आदर और सहानुभूति की भावना होनी चाहिए। यह स्थल तो पवित्र बनाने वाला है, शुद्धि करने वाला है। इस स्थल पर आकर मन के समस्त विकार धुल जाने चाहिए, जीवन के सभी पाप धुल जाने चाहिए। जीवन की परिभाषा को हमे समझना चाहिए। जीवन की कला हमे सीखनी चाहिए। जीवन परिमार्जित होना चाहिए। नीतिकारो ने कहा है कि—

"अन्य स्थाने कृत पापं, धर्म स्थाने विमुच्यते।
धर्म स्थाने कृत पाप, वज्र लेपो भविष्यति।"

अन्य स्थान पर हो गये पाप को भी व्यक्ति धर्म स्थान पर आकर छोड देता है और अपनी भूल का प्रायश्चित करता है, किन्तु यदि धर्मस्थान पर आकर भी पाप किया गया, तो वह तो वज्रलेप हो जाता है। अत इससे बचने का प्रयत्न कीजिए। ऐसे क्षेत्र मे आकर सादगी धारण कीजिए, हृदय को शुद्ध बनाइये। ऐसा करने से ही आप सबको शान्ति मिल सकेगी तथा मध्यम वर्ग की स्थिति मे सुधार आ सकेगा।[1]

सामाजिक हिंसा

इसी सन्दर्भ में आचार्यश्री ने समाज द्वारा व्यक्ति पर और व्यक्ति द्वारा समाज पर पडने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हुए वैयक्तिक हिंसा एव सामाजिक हिंसा का मौलिक रूप से शोधपरक चिंतन प्रस्तुत किया है—

यदि व्यक्ति अपने जीवन को शान्त तथा दोष-रहित बनायेगा, तो उसका पारिवारिक जीवन भी उन्नत होगा, सामाजिक जीवन भी आनन्दमय बनेगा तथा राष्ट्रीय जीवन भी उच्च बनेगा। किन्तु आज तो लोगो के जीवन मे हिंसा बढती जा रही है। हम शान्त जीवन को भुलाते चले जा रहे हैं। हिंसा जीवन को अत्यन्त कष्टमय बना देती है। हिंसा का एक रूप तो प्रकट हिंसा का होता है तथा दूसरी सभ्य हिंसा होती है। प्रकट हिंसा अथवा असभ्य हिंसा वह होती है, जिसमे कोई तलवार लेकर जाता है और किसी को मार देता है। दूसरी सभ्य हिंसा वह होती है जिसमे कोई किसी को प्रकट रूप मे मारता हुआ तो

१—ब्यावर चातुर्मास प्रवचन, शान्ति के सोपान, पृ० ३०-३२

उनकी वीर सन्ताने भी ऐसी होती थी कि केसरिया बाना धारण करके वे युद्ध-क्षेत्र मे कूदा करते थे तो सिर कट जाने पर भी उनका धड घण्टो तक तलवार घुमाता रहता था। ऐसे वीर जुझारू कहे जाते हैं। वैसी वीरता की भावना जगानेवाली और बालक मे शौर्य्य के अपूर्व सस्कार भरनेवाली लोरी की कुछ पक्तियाँ देखिये—

बाळो पाँखाँ बाहिर आयो माता बैन सुणावे यूँ
मारी कूख सराहिजे रे बाळा मैं तने सकरी घूँटी दूँ
तेज कटारी नाळो मोड्यो मोडत नाळो बोली यूँ
वेर्‌या की फौजाँ मे जाजे, सत्य विजय कर आइजे तूँ
गोदी सूतो बाळो चूखे माता बैन सुणावे यूँ
धोळा दूध में कायरता को काळो दाग न लाइजे तूँ
सोन पाळणे बाळो झूले झोटत झोटत बोलो यूँ
इतरी बार हिलाइजे पृथ्वी, मैं थने जितरा झोटा दूँ।

कहने का अभिप्राय यह है कि बालक मे कर्त्तव्यनिष्ठा की शिक्षा माता के दूध से ही प्रारम्भ होनी चाहिये। चरित्रशील व्यक्तित्व के निर्माण की आधार-शिला यही रखी जाती है। ससार और धर्म—दोनो क्षेत्रो मे देदीप्यमान जीवन की सृष्टि करने वाली सर्वप्रथम भूमिका मे माता ही होती है। प्राचीन काल मे माताएँ अपनी सतान को कहती थी—

"सिद्धोसि बुद्धोसि निरंजनोऽसि........"

और वह सन्तान वास्तव मे राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध बन जाती थी। मदालसा महारानी एक आदर्श माता के रूप मे विख्यात है, जिन्होने हर्षपूर्वक अपने सातो पुत्रो को दीक्षित बना दिया।

आज की माताओ को इस सत्य की ओर ध्यान देना है तथा स्वय कर्त्तव्यनिष्ठ बनकर अपनी सन्तान मे कर्तव्यनिष्ठा को जगाना है। आज तो वे स्वय इतनी अज्ञान है कि बच्चो मे शुरू से डर और कायरता के सस्कार भरती है, जिससे बड़े होकर वे भ्रष्ट, कर्तव्यहीन एव अनैतिक गृहस्थो का रूप लेते है। ऐसी सन्तान से भला किसका भला हो सकता है?[१]

नारी और अलंकरण

नारी-जागरण के सदर्भ मे ही जहाँ एक ओर आचार्य श्री अतीत का साँस्कृतिक चित्र महिलाओ के लिए खीचते है, वही वे वर्तमान के भौतिक

१–जयपुर चातुर्मास प्रवचन, पावस प्रवचन, पृ० १६१–१६३

इतना ही नही घटना का अन्तिम चरण यह है कि वे पति-पत्नी जब घर लौटे और उन्होने यह दर्दनाक दृश्य देखा तब अपनी फूल जैसी कोमल बालिकाओ की इस दु खदायी मृत्यु को देखकर उनका हृदय हाहाकार कर उठा। अव उनके लिए इस जीवन का कोई अर्थ, कोई मूल्य नही रह गया था। परिणामत वे भी इस दु खी जीवन से हताश-निराश होकर उसी पथ के अनुगामी बन गये, जिस पथ पर उनकी पुत्रियाँ गई थी।

बन्धुओ! बालिकाओ ने सोचा कि हमारा जीवन माता-पिता के लिए आर्त्त-रौद्र ध्यान का विषय बन गया है। धार्मिक एव आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव मे वे बेचारी आत्मघात जैसे पाप के मार्ग पर चली गईं। उसी प्रकार माता-पिता भी इस दोष-सहित जीवन से ऊबकर जल मरे।

आज हमारे समाज एव देश की यह स्थिति है। कैसी विडम्बना हमारे जीवन मे भर गई है? कितना दोषमय हो गया है हमारा जीवन! आज का बुद्धिवादी वर्ग भी इस चक्र मे बुरी तरह पिस रहा है। यह सभ्य हिसा हो रही है और हम कानो मे तेल डाल कर, आँखो पर पट्टी बाँधकर इस सामाजिक हिंसा को देख रहे है। मैं नही जानता कि आपके ब्यावर नगर मे ऐसा हो रहा है कि नही, किन्तु ससार मे यह हो रहा है, और यह घोर चिन्ता की बात है। यदि ऐसी स्थिति चलती रही, तो कौन-सा आध्यात्मिक लक्ष्य हम प्राप्त कर सकेगे? यह एक ऐसी सामाजिक कुरीति है, जिसके कारण आपका मन चचल वना हुआ है। इसका परिमार्जन करना अत्यन्त आवश्यक है। मैं कभी-कभी आपके सामने ऊँचे आदर्श की बात कह जाता हूँ। किन्तु हमारा आदर्श ही ऊँचा न होगा, तो हमारा जीवन ऊँचा कैसे उठेगा? जो ऊँचा पहुँचेगा, वह ऐसा जघन्य कर्म नही करेगा। अत अपने जीवन को शुद्ध बनाइये। लोभ और ईर्ष्या का त्याग करके ऊँचे आदर्शों को अपनाइये।[1]

मातृ-सस्कार-नारी जागरण

सामाजिक परिष्करण के सदर्भ मे नारी जाति के विकास एव दायित्व के विषय मे भी आचार्यश्री का अति स्वस्थ दृष्टिकोण है। आपका चिन्तन है कि जन-जीवन के सस्कारो का अधिकाश दायित्व माताओ-नारी जाति पर है। नारी, जैसा चाहे, ससार वना सकती है। ससार को स्वर्ग या नरक वनाना अथवा वसुन्धरा को वीर-पु गवो से सज्जित कर देना या कायरो की फौज तैयार कर देना, यह सव नारी पर आधारित है। अत नारी का जीवन उस रग की डिबिया और तूलिका के समान है जिसके द्वारा हम मनोवाञ्छित नयनाभिराम रूप निर्मित कर सकते हैं। नारी-जागृति के प्रति उद्‌वोधन देते हुए आपके स्वर इस प्रकार मुखरित होते हैं।

१—ब्यावर चातुर्मास प्रवचन, शाति के सोपान, पृ० ३२–३५

उनकी वीर सन्ताने भी ऐसी होती थी कि केसरिया बाना धारण करके वे युद्ध-क्षेत्र मे कूदा करते थे तो सिर कट जाने पर भी उनका धड घण्टो तक तलवार घुमाता रहता था। ऐसे वीर जुभारू कहे जाते है। वैसी वीरता की भावना जगानेवाली और बालक मे शौर्य्य के अपूर्व सस्कार भरनेवाली लोरी की कुछ पक्तियाँ देखिये—

बाळो पॉखॉ बाहिर आयो माता बैन सुणावे यूँ
मारी कूख सराहिजे रे बाळा मैं तने सकरी घूँटी दूँ
तेज कटारी नाळो मोड्यो मोडत नाळो बोली यूँ
वेर्‌या की फौजॉ मे जाजे, सत्य विजय कर आइजे तूँ
गोदी सूतो बाळो चूखे माता बैन सुणावे यूँ
धोळा दूध मे कायरता को काळो दाग न लाइजे तूँ
सोन पाळणे बाळो झूले झोटत झोटत बोलो यूँ
इतरी बार हिलाइजे पृथ्वी, मै थने जितरा झोटा दूँ।

कहने का अभिप्राय यह है कि बालक मे कर्त्तव्यनिष्ठा की शिक्षा माता के दूध से ही प्रारम्भ होनी चाहिये। चरित्रशील व्यक्तित्व के निर्माण की आधार-शिला यही रखी जाती है। ससार और धर्म—दोनो क्षेत्रो मे देदीप्यमान जीवन की सृष्टि करने वाली सर्वप्रथम भूमिका मे माता ही होती है। प्राचीन काल मे माताएँ अपनी सतान को कहती थी—

"सिद्धोसि बुद्धोसि निरजनोऽसि……"

और वह सन्तान वास्तव मे राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध बन जाती थी। मदालसा महारानी एक आदर्श माता के रूप मे विख्यात है, जिन्होने हर्षपूर्वक अपने सातो पुत्रो को दीक्षित बना दिया।

आज की माताओ को इस सत्य की ओर ध्यान देना है तथा स्वय कर्त्तव्यनिष्ठ वनकर अपनी सन्तान मे कर्तव्यनिष्ठा को जगाना है। आज तो वे स्वय इतनी अज्ञान है कि वच्चो मे शुरू से डर और कायरता के सस्कार भरती है, जिससे वडे होकर वे भ्रष्ट, कर्तव्यहीन एव अनैतिक गृहस्थो का रूप लेते है। ऐसी सन्तान से भला किसका भला हो सकता है ?[1]

नारी और अलंकरण

नारी-जागरण के सदर्भ मे ही जहाँ एक ओर आचार्य श्री अतीत का साँस्कृतिक चित्र महिलाओ के लिए खीचते है, वही वे वर्तमान के भौतिक

१–जयपुर चातुर्मास प्रवचन, पावस प्रवचन, पृ० १६१–१६३

किया—"हे मातेश्वरी, एक रुपया खर्च करने से नौ सौ रुपयो का मुनाफा मिलता है, एक तत्त्व जानने से नौ सौ गुणा लाभ होता है, तो उस व्यापार को मुझे करना चाहिए अथवा एक के बचाने से एक की रक्षा मात्र का काम मुझे लेना चाहिये ?" प्रश्न समुच्चय था। काश, वैसा प्रश्न आपके सामने भी आ जाय तो आप क्या करेंगे ? खैर माता ने उत्तर दिया—एक को देने पर नौ सौ गुना लाभ हो तो वह करना चाहिये। वोरपुत्र ने माता को प्रणाम किया और प्रस्थान करने से पूर्व बोला—"माताजी, मै भले ही इकलौता पुत्र हूँ, किन्तु इस समय एक स्थान पर नौ सौ दम्पति सकट से घिरे हुए हैं। उनको अपनी जान की बाजी लगा कर भी खतरे मे से निकालने के लिए मैं जा रहा हूँ। एक को छोड़ रहा हूँ, मगर नौ सौ को रख सकूँगा।"

माँ चौक पडी और आँसुओ से आँखे भरकर बोली, "पुत्र यह कैसी पहेली तुम बुझा रहे हो ?" पुत्र ने स्पष्ट करते हुए कहा—"माँ, यहाँ के महाराजा ने जीवन भर सत्ता और सम्पत्ति का भरपूर भोग किया है, फिर भी अब वे जब रोगग्रस्त हो गये हैं और असाध्य रोग से पीडित है, तो एक तान्त्रिक की राय से वे नौ सौ नव-दम्पतियो के ताजे रक्त मे स्नान करके स्वास्थ्य लाभ करना चाह रहे हैं। इस हेतु नौ सौ नव-दम्पतियो को पकडवा कर कारागार मे बन्द कर रखा है और कल उन्हे मार कर राजाजी के स्नान के लिए रक्त पहुँचाया जायगा। मैं इन नौ सौ दम्पतियो की रक्षा करना चाहता हूँ—यह जानकर भी कि उसके बाद मुझे अपने प्राणो से हाथ धोना पडेगा। इस कारण मैंने आपसे यह अनुमति माँगी है, कोई पहेली नही बुझाई है।"

वीरपुत्र की वह वीरमाता थी। उस वीरमाता के समक्ष अपने जीवन का भी प्रश्न था, किन्तु न्याय और नीति को वह समझने वाली थी। उसने नि सकोच अपनी आज्ञा देते हुए भलावण दी, "हे लाल, तूने मेरी कोख से जन्म लिया है और इस समय, जबकि तू अपने जीवन का वलिदान नौ सौ दम्पतियो की जीवन-रक्षा के लिए करने जा रहा है तो मुझसे अधिक हर्षित और कौन हो सकेगा ?" उस माता के हृदय मे निर्भयता थी, तो उसने अपने वच्चे को भी निर्भयता की ही घुट्टी दी। वीर पुत्र को उसने वीरतापूर्ण कार्य के लिए निर्भ-यतापूर्वक जाने दिया।

सुनसान मध्यरात्रि मे उस वीर पुत्र ने जाकर कारागार के द्वार खोल दिये और उन नौ सौ दम्पतियो को मुक्त कर दिया। किन्तु इसके वाद वह भागा नही, स्वय कारागार पर खडा हो गया। प्रात.काल जव राजा को इसकी सूचना मिली तो वह क्रोधित हो उठा। उसने पूरी सेना की टुकडी उस वीरपुत्र को पकड लाने के लिये भेजी। वह वीर-पुत्र उससे सघर्ष करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि आज भी उस स्थान को हिन्दू और मुस्लिम

नरक में ही क्यों न जाना पडे, किन्तु मुझे तो गहने चाहिए। इस प्रकार से वे धार्मिक स्थल पर आकर भी अपने जीवन को दोष-सहित बनाती रहती है तथा अन्य लोगो के जीवन को भी दोष-सहित बनाती है।[१]

राष्ट्र धर्म बनाम राष्ट्रीय चरित्र

आधुनिक युग का सर्वाधिक ज्वलत प्रश्न है राष्ट्रीय चरित्र की सुरक्षा का। आज राष्ट्रीय चरित्र पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच रहा है। क्या राज-नीतिज्ञ, क्या समाजशास्त्री तथा क्या अर्थशास्त्री, सभी का मानस अपने राष्ट्र की शोचनीय अवस्था से चितित है। भारत के अतीत के साँस्कृतिक मानचित्र को उठाकर देखे तो पता चलेगा कि तत्कालीन भारत का क्षेत्रफल कितना विशाल एव विराट था। आज का पाकिस्तान ही नही, उससे भी सुदूर काबुल के अतिम किनारो तक भारतीय जन-जीवन था। भौगोलिक दृष्टि से ही उस युग का भारत विस्तृत एव महान् नही था, अपितु विचारो की उच्चता मे, सभ्यता मे अपनी सस्कृति तथा धर्म के विस्तार मे भी विराट् व महान् था। उस युग के भारत की देह भी विराट् थी और आत्मा भी। किन्तु आज का भारत, कहने से शब्द कतराते है। शरीर से भी उसकी परिधि घटती जा रही है और वैचारिक परिवेश मे भी वह छोटा होता जा रहा है।

किसी देश की विराटता एव महानता तत्रस्थ सुविस्तृत मैदान, गगन-चुम्बी अट्टालिकाओ तथा जन-जीवन के विस्तार से नही होती है, प्रत्युत विरा-टता का आधार वहाँ की साँस्कृतिक एव धार्मिक चेतना है।

आज हम अपनी राष्ट्रीय चेतना की ओर दृकपात् करते है, तो बरबस आँखे छलछला आती है। एक पाश्चात्य विचारक के शब्दो मे कहे, तो भारत का सर्वस्व लुट चुका है, क्योकि—

When wealth is lost, nothing is lost.

When health is lost, something is lost

When character is lost, all is lost

अर्थात् चारित्रिक पतन के पश्चात् मानव का अपने पास बचता ही क्या है?

इस उपर्युक्त परिस्थिति में एक और प्रश्न उपस्थित होता है कि धर्म-गुरु एव धर्मोपदेशक राष्ट्रीय चरित्र के उन्नयन मे अपना क्या योगदान दे सकते है?

१—ब्यावर चातुर्मास प्रवचन, शाति के सोपान, पृ० २८–२६

शरीर-गठन के सिवाय श्रेष्ठ सस्कारो एव पवित्र भावनाओ की अमिट छाप भी उसके मन एव मस्तिष्क पर डालने का उसका प्रधान कर्तव्य होता है।

माता-पिता का ही प्रमुख प्रभाव होता है कि सन्तान का आन्तरिक सस्कारो से ओत-प्रोत आदर्श जीवन बन पाता है। ऐसी एक ही सन्तान हो, तब भी वह परम हितकर होती है। लेकिन माता-पिता अपने मोह मे फँसे रहे और सन्तान की शिक्षा-दीक्षा के प्रति बेमन रहे, तो वैसी कई सन्ताने भी उन्हे शान्ति नही पहुँचा सकती हैं।

इसी सिक्के का दूसरा पहलू भी उतना ही चिन्तनीय है। लडके कुछ पढकर या व्यवसाय मे जमकर योग्य होते है, कुछ सम्पत्ति का सचय कर लेते है, तो अपने आप को कुछ-का कुछ समझने लग जाते है और माता-पिता की तनिक भी परवाह नही करते। उनको माता-पिता के प्रति सामान्य से कर्त्तव्यो का भी ख्याल नही रहता। मेरे अनुभव की ही एक बात सुनाऊँ। एक स्थान पर मैं पहुंचा तो लकडी के सहारे बडी कठिनाई से चलकर एक वृद्धा वन्दन करने आई। उसने बड करुण स्वर मे कहा, "महाराज! क्या कहूँ, मैं बहुत दु खी हूँ।" मैंने उत्सुकतावश पूछा, 'क्या हुआ माजी, आपको ?" वृद्धा बोली, "मेरी सेवा करने वाला कोई नही है, महाराज!" बाद मे खोज करने पर पता चला कि उस वृद्धा के चार नौजवान व कमाऊ पुत्र हैं। किन्तु सभी अपनी-अपनी पत्नियो के साथ अलग-अलग रहते हैं और वृद्धा माता की तरफ कोई देखता भी नही। यह ससार की बडी विचित्र स्थिति है।

आज का इन्सान बडी-बडी डीगे मारता है, मगर छोटे-छोटे कर्त्तव्यो को भी भुला देता है। बहुतेरे भाई-बहिन लम्बे-चौड ज्ञान की चर्चा कर लेगे। तेला, चोला व मासखमण तक की तपस्या कर लेगे, किन्तु परिवार, समाज, राष्ट्र या विश्व के प्रति अपने सामान्य कर्त्तव्यो का भी ध्यान नही रखेगे। यह कितनी विषम स्थिति है। ऐसा सम्भव है कि कई भाई-बहिन तेला करके लालसा रखते होगे कि जैसे श्रीकृष्ण के तेला करने पर देव आया था, वैसे हमको भी देव दर्शन दे और हमारा मनोरथ पूरा करे, किन्तु ऐसी लालसा के पहले श्री कृष्ण की कर्त्तव्यनिष्ठा का शताश तो अपने अन्दर पैदा कीजिये।

एक माता : हजार शिक्षक

कहावत है कि एक माता की शिक्षा बच्चे के लिये हजार शिक्षको के बराबर होती है। माता कर्त्तव्यनिष्ठ रही, तो यह बहुत कम होगा कि उसकी सन्तान कर्त्तव्यनिष्ठ न बने, क्योकि बचपन मे डाले गये सस्कारो का पूरे जीवन तक अमिट असर बना हुआ रहता है। वीर क्षत्राणियाँ पालने मे जब अपनी सन्तानो को वीर रस की लोरियाँ सुनाया करती थी, तो उस रूप मे सस्कारित

यह सब मिलकर जिस प्रकार की एकीकृत सभ्यता एव संस्कृति का निर्माण करते है, उसकी रक्षा की दृष्टि से भी जो एक शक्तिशाली एव समन्वित भूखड बनता है, उसे ही राष्ट्र के रूप मे देखा जाता है। किन्तु मूल रूप मे राष्ट्र केवल भूमि नही, क्षेत्र विशेष नही बल्कि एक भाव विशेष ही होता है, जो उसके पीछे चलने वालो को सस्कृति एव सभ्यता के एक सूत्र मे आबद्ध करके प्रगति की स्वस्थ एव विशिष्ट दिशा की ओर मोड़ना चाहता है।

इस भाव-विशेष के व्यवस्थित एव व्यावहारिक रूप को ही राष्ट्रधर्म कहा जा सकता है, जिसका ढलान एक-एक नागरिक के अन्तर मे रहे हुए सत्, चित् और आनन्द के विकास और विकृति के आधार पर बनता और बिगड़ता है। इस कारण व्यक्ति के विकास के लिये जैन-दर्शन मे जो सम्यक् ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के विकास का निर्देश दिया गया है, उसे ही यदि राष्ट्रीय जीवन के लिये स्वीकार्य निर्देश बना लिया जाय तो राष्ट्र का मुक्ति-मार्ग भी निर्बाध और निष्कंटक बन सकता है।

'ठाणागसूत्र' मे दस प्रकार के धर्मो का प्रतिपादन करके फिर राष्ट्रधर्म को परिभाषित किया है। सूत्र का पाठ इस प्रकार है—

"दस विहे धम्मे पण्णत्ते तजहा—गाम धम्मे, नगर-धम्मे, रट्ठधम्मे, पाखड-धम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, सघधम्मे, सुत्तधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे एव।"

ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म आदि के निर्देश के बाद श्रुतधर्म और चारित्रधर्म आदि का निर्देश किया गया है। ग्राम, नगर एव राष्ट्रधर्मो को पहले रखने का अभिप्राय यही है कि जब ये धर्म निष्ठापूर्वक पाले जायेंगे और इनका रूप व्यवस्थित होगा, तभी जाकर श्रुत, चारित्र आदि धर्मो का पाला जाना सुविधाजनक बन सकेगा। जब ग्रामधर्म, नगरधर्म एवं राष्ट्रधर्म की व्यवस्था सुघड बनती है, तभी उस राष्ट्र मे रहने वाले साधक अपनी सभी प्रकार की साधना को सही तौर पर आगे बढा सकते है। जिस गाँव में साधक विचरण करे यदि उस ग्राम की स्थिति अराजकतापूर्ण हो, तो क्या वह साधक निर्भय होकर अपनी साधना मे निरत रह सकेगा? इसी प्रकार नगर व राष्ट्र की सुव्यवस्था अथवा दुर्व्यवस्था साधना के लिये सुविधाजनक अथवा दुविधाजनक वातावरण का निर्माण करती है।

ग्राम, नगर अथवा राष्ट्र तथा उसके नागरिको के बीच के संबंध निश्चित रूप से एक-दूसरे को प्रभावित करते है। नागरिक अच्छा होगा तो राष्ट्र अच्छा बनेगा तथा राष्ट्र अच्छा होगा तो नागरिक की अच्छाई भली प्रकार से पनप सकेगी। व्यक्ति का समूह पर, और समूह का व्यक्ति पर असर पड़ता ही

सौन्दर्यात्मक आकर्षण मे डूबी नारी को जीवन के मौलिक सौन्दर्य का दर्शन-वोध भी कराते है। आज की नारी के भद्दे प्रदर्शनो पर उनके उद्वोधनात्मक तीक्ष्ण स्वर है—

जिस मनुष्य के भीतर आत्मिक शाति का सचार होता है, उसे फिर किसी वाहर की वस्तु की अपेक्षा नही रहती। बाहर की समस्त वस्तुएँ, दिखावे और शान-शौकत के सभी पदार्थ उसके लिए निरर्थक हो जाते है। वह सादगी के मूल्य को समझने लगता है और उसमे उसे अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। उसके भीतर से भौतिकता के, पाशविकता के सस्कार लुप्त हो जाते है, तथा ऐसी भावना उसके हृदय मे व्याप्त हो जाती है जिससे समस्त मानवो का कल्याण हो।

आज तो परिस्थिति विषम बन गयी है। मनुष्य फैशन मे इस प्रकार डूव रहा है कि उसे सच्चे सुख का आभास भी अव नही रहा। यहाँ तक कि पवित्र धार्मिक स्थलो पर भी आकर उसके दिमाग से शृगार और प्रसाधन का भूत दूर नही होता। इस प्रकार धर्मस्थान मे वैठकर भी वह दोष-रहित न होकर, दोष सहित होता है। हमारी ये माताएँ यहाँ धार्मिक स्थल पर होती है, धर्म के वचन सुनने आती है किन्तु तरह-तरह के शृङ्गार करके, आभूषणो से लदकर, वहुमूल्य जरी-गोटे के वस्त्र धारण करके आती है। ऐसी स्थिति मे उनका सारा ध्यान तो अपने शृङ्गार पर ही टिका रहता है। तव वे धर्म का उपदेश कैसे सुनेगी ? धर्मस्थान मे आकर सादगी का जीवन अपनाना चाहिए, सरलता और शुद्धतारूपी आत्मिक सौदर्य को वढाना चाहिए, जो कि मनुष्य का वास्तविक शृङ्गार है, सच्ची शोभा है। लेकिन वे ऐसा नही करती। सजधज कर आती है और अपना सारा ध्यान इसी वात मे लगाये रहती है कि मेरे वस्त्राभूपण कितने सुन्दर है, इन्हे दूसरी स्त्रियाँ देख रही है या नही ? इन सव वातो मे डूवने से उनमे आपस मे ईर्ष्यावृत्ति जागृत होती है, पाप की भावना का उदय होता है। इस प्रकार दोष-रहित जीवन के स्थान पर उनका स्थान दोष-सहित वन जाता है।

अन्य माताएँ जिनके पास इतने मूल्यवान वस्त्राभूपण नही होते, वे यहाँ वैठी-वैठी यह चिन्तन किया करती है कि मेरे पास ये वस्तुएँ क्यो नही है ? अव घर जाकर मैं अपने पतिदेव से कहूँगी कि वे मेरे लिए भी इन वस्तुओ को लाएँ। भला मैं क्या किसी से कम हूँ ? इस प्रकार की भावना लेकर जो माताएँ-वहिनें यहा वैठेगी, वे धर्म का उपदेश क्या सुनेगी ? घर जाकर पतिदेव से कहेगी कि कुछ भी करिए, लेकिन मेरे लिए भी वैसे ही गहने वनवाइये, जैसे कि औरो के पास है। इसके लिए आपको चाहे जो कुछ करना पडे। भले ही आप अनीति से रुपया कमाओ, भले ही आपका यह मानव-जीवन नष्ट हो जाय तथा आपको

एव शासको के अपने चरित्र एव आचरण का प्रश्न सामने आता है। स्वय कानून बनाकर उसके प्रति स्वयं कितनी और कैसी निष्ठा रखते है, आखिर उसी का तो प्रभाव सामान्य-जन पर पडेगा। प्रायः देखा जाता है एक कानून बनता है, फिर दूसरा बनता है। बार-बार सशोधन व परिवर्तन होते रहते है। इनके पीछे हमेशा कोई हितकारी आधार नही होता, सत्तास्थितो के स्वार्थों को पूरा करने के लिये भी ऐसा किया जाता है।

जहाँ सत्ता को सेवा का साधन न बनाकर स्वार्थों को पूरा करने का साधन बना दिया जाय, तो क्या वहाँ राष्ट्रधर्म टिक सकता है ? क्या वहाँ सभी के चरित्र मे विकास सभव रहता है ? क्या वहाँ की स्थिति धार्मिक एवं सदाचारमय बनी रह सकती हैं ? यहाँ देश मे रहने वाले अगर इस राष्ट्रधर्म के नाम से अलग-अलग स्थितियाँ लेकर चले, वर्गहितों एव क्षेत्र-हितो को प्रमुखता देकर राष्ट्रीयता की अवमानना करे, धर्म के नाम पर कटुता फैलावे अथवा दलीय स्वार्थों में लिप्त बनकर जनहित को तिलाजलि देते रहे, तो क्या वहाँ राष्ट्रधर्म टिक सकता है ? जहाँ नागरिक राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को भुला दे और राष्ट्रीय सत्ता के संचालक जनसाधारण के प्रति अपने कर्तव्यो को ठुकरा दे, तो वहाँ राष्ट्रधर्म का अभाव है—ऐसा मानने में कोई आपत्ति नही है।

विदेशी शासन की गुलामी मिटे भी इस देश मे पसीस वर्ष पूरे होने जा रहे है और स्वतंत्रता के इन पैंतीस वर्षों में भी यदि यहाँ राष्ट्रधर्म की स्थापना नहीं की जा सकती है, तो यह स्थिति किसी भी वर्ग के लिये शोभाजनक नही है। सच पूछा जाय तो राष्ट्र मे यह कैसी स्वतन्त्रता है ? देश मे, व्यक्तियो में हो या दलो मे—इस अर्से मे सत्ता की लिप्सा ने ऐसा ताडव दिखाया है कि सिर्फ राजनीति ही सबके सिरों पर हावी होती चली जा रही है। सत्ता भोग हो गई और व्यवसाय बना दी गई। सेवा लुप्त हो गई और भुला दी गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि सभी जगह सच्चे और खरे लोगो की उपेक्षा हो रही है तथा अवसरवादियो की बन आई है। अवसरवादी सिर्फ अवसर का अपने लिये ही लाभ उठाना जानता है, उसे न पड़ौसी से कोई सरोकार, न ग्राम, नगर या देशवासी से। जब अवसरवादी सत्ता की ऊँची कुर्सियों पर बैठ जाय, तो इसके सिवाय हो ही क्या सकता है कि सार्वजनिक हितो की भरपेट अवहेलना हो। ऐसी अवस्था मे राष्ट्रधर्म का पालन तो दूर रहा, उसका साधारण निर्वाह तक भी कैसे हो सकता है ? यह लिप्सा और वासना का रूपक सुव्यवस्था का शत्रु ही सिद्ध होता है।

राष्ट्रीय चरित्र के विकास के साथ आज आवश्यकता है—ग्राम और नगरो मे सुव्यवस्था स्थापित करने की। यह राष्ट्रधर्म की निष्ठा के आधार पर ही स्थापित हो सकती है। नीचे के घटक सुधर गये, तो समझिये कि राष्ट्र सुधर

सौन्दर्यात्मक आकर्षण मे डूबी नारी को जीवन के मौलिक सौन्दर्य का दर्शन-बोध भी कराते है। आज की नारी के भद्दे प्रदर्शनो पर उनके उद्‌बोधनात्मक तीक्ष्ण स्वर है—

जिस मनुष्य के भीतर आत्मिक शाति का सचार होता है, उसे फिर किसी बाहर की वस्तु की अपेक्षा नही रहती। बाहर की समस्त वस्तुएँ, दिखावे और शान-शौकत के सभी पदार्थ उसके लिए निरर्थक हो जाते है। वह सादगी के मूल्य को समझने लगता है और उसमे उसे अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। उसके भीतर से भौतिकता के, पाशविकता के सस्कार लुप्त हो जाते है, तथा ऐसी भावना उसके हृदय मे व्याप्त हो जाती है जिससे समस्त मानवो का कल्याण हो।

आज तो परिस्थिति विषम बन गयी है। मनुष्य फैशन मे इस प्रकार डूब रहा है कि उसे सच्चे सुख का आभास भी अब नही रहा। यहाँ तक कि पवित्र धार्मिक स्थलो पर भी आकर उसके दिमाग से शृ गार और प्रसाधन का भूत दूर नही होता। इस प्रकार धर्मस्थान मे बैठकर भी वह दोष-रहित न होकर, दोष सहित होता है। हमारी ये माताएँ यहाँ धार्मिक स्थल पर होती है, धर्म के वचन सुनने आती है किन्तु तरह-तरह के शृङ्गार करके, आभूषणो से लदकर, बहुमूल्य जरी-गोटे के वस्त्र धारण करके आती है। ऐसी स्थिति मे उनका सारा ध्यान तो अपने शृङ्गार पर ही टिका रहता है। तब वे धर्म का उपदेश कैसे सुनेगी ? धर्मस्थान मे आकर सादगी का जीवन अपनाना चाहिए, सरलता और शुद्धतारूपी आत्मिक सौदर्य को बढाना चाहिए, जो कि मनुष्य का वास्तविक शृङ्गार है, सच्ची शोभा है। लेकिन वे ऐसा नही करती। सजधज कर आती है और अपना सारा ध्यान इसी बात मे लगाये रहती है कि मेरे वस्त्राभूषण कितने सुन्दर है, इन्हे दूसरी स्त्रियाँ देख रही है या नही ? इन सब बातो मे डूबने से उनमे आपस मे ईर्ष्यावृत्ति जागृत होती है, पाप की भावना का उदय होता है। इस प्रकार दोष-रहित जीवन के स्थान पर उनका स्थान दोष-सहित बन जाता है।

अन्य माताएँ जिनके पास इतने मूल्यवान वस्त्राभूषण नही होते, वे यहाँ बैठी-बैठी यह चिन्तन किया करती है कि मेरे पास ये वस्तुएँ क्यो नही है ? अब घर जाकर मैं अपने पतिदेव से कहूँगी कि वे मेरे लिए भी इन वस्तुओ को लाएँ। भला मैं क्या किसी से कम हूँ ? इस प्रकार की भावना लेकर जो माताएँ-बहिनें यहा बैठेंगी, वे धर्म का उपदेश क्या सुनेगी ? घर जाकर पतिदेव से कहेगी कि कुछ भी करिए, लेकिन मेरे लिए भी वैसे ही गहने बनवाइये, जैसे कि औरो के पास है। इसके लिए आपको चाहे जो कुछ करना पडे। भले ही आप अनीति से रुपया कमाओ, भले ही आपका यह मानव-जीवन नष्ट हो जाय तथा आपको

शून्य और कही-कही दम्भपूर्ण कृत्य से राष्ट्र सवल वन सकेगा ? इस माली का रूपक क्या आज के कुछ राजनैतिक कर्णधारो के कामो से मेल नही खाता ? राष्ट्रधर्म की आवाज लगाने, कर्त्तव्यो का उपदेश देने और नारो को गुंजाने वालो का आज जब विपरीत आचरण देखा जाता है, तो यह क्यो न समझा जाय कि ऐसे लोग विवेकशून्य ही नही, वल्कि देशद्रोही भी हैं, जो येनकेन प्रकारेण आम जनता को वहलाकर अपनी स्वार्थपूर्ति करते रहते हैं। राष्ट्र को ये लोग सिर्फ अपनी जिह्वा पर रखते हैं। उसे अपने मन और मस्तिष्क मे कोई स्थान नही देते। उन्हे कथनी से राष्ट्र प्यारा होता है, मगर असल में करनी से वे अपने मतलब को ही चाहते है। राष्ट्र की शक्ति या इज्जत घटे, आम नागरिक मरे, जिये या नरक की-सी यातनाएँ सहता रहे—ऐसे लोगो को इन सवकी कोई परवाह नही रहती।

राष्ट्रीय चरित्र एव आचरण की जब ऐसी भयकर दुर्दशा हो, तो राष्ट्रधर्म की महत्ता कैसे व्यापक व प्रभावशाली वन सकती है ? हर छोटे-वडे नागरिक को सोचना चाहिये कि सापेक्ष-दृष्टि से उसका उसके प्रत्येक नागरिक साथी के साथ एक प्रकार से आत्मीय सम्बन्ध है, क्योकि वे सब एक ही समूह के सदस्य है तथा एक-दूसरे के आचरण और व्यवहार से प्रभावित होते है। यदि वह शांति और सुख से रहना चाहता है तो दूसरे भी इसी तरह रहना चाहते है। इसलिए "जीओ और जीने दो" के सिद्धान्त मे उसकी आस्था ही नही, कर्मठता भी होनी चाहिए। सम्पत्ति एवं पदार्थों का जहाँ तक सम्वन्ध है, उसमे उसकी मूर्च्छा-बुद्धि नही होकर समत्व की भावना होनी चाहिए कि उसका सब नागरिको मे आवश्यकता, न्याय एव समानता के आधार पर वितरण हो। वह यह सोचे कि जब राष्ट्र मे रहता हुआ मैं शाति की सास लेना चाहता हूँ, आवश्यक सामग्री की आकांक्षा रखता हूँ, तो अन्य सभी नागरिक भी ऐसा ही चाहते है। इसलिए ऐसा अपने आचरण में न उतारकर जब कोई किसी के हक को छीनकर मौज मारता है और ऊपर से आवाज लगाता है कि वह तो राष्ट्रधर्म का पालन कर रहा है, तब जिस प्रकार का संकट जन्म लेता है, उसे ही राष्ट्रीय चरित्र का सकट कहा जाता है। इस सकट से न सिर्फ आर्थिक अथवा सामाजिक विषमता बढकर राष्ट्र का पतन होता है, बल्कि व्यक्ति की आत्मिक एव आध्यात्मिक उन्नति के द्वार भी बन्द हो जाते हैं। जैसे एक मकड़ी जो जाला बनाती है, उसमे खुद तो फंसती ही है, मगर दूसरो को भी फसाती है, वैसे ही ऐसे दुश्चरित्र लोग स्वयं को और समूह को भी नीचे गिराते है।

आप अपनी प्रबुद्ध चेतना-शक्ति से वीतराग वाणी के धरातल पर राष्ट्रधर्म को समझने की चेष्टा करे। भगवान् महावीर ने इस सिद्धान्त की उद्घोषणा की थी—

प्रश्न कुछ अटपटा है, क्योकि आज धार्मिक परिवेश को वैयक्तिक घेरे मे बन्द कर उसे राष्ट्रीयता से अलग ढकेल दिया गया है। वास्तव मे व्यक्ति का अस्तित्व राष्ट्रीयता के अभाव मे नही रह सकता है। अत. राष्ट्रीय चरित्र का व्यक्ति पर और वैयक्तिक आचरणो का राष्ट्र पर प्रभाव अनिवार्य है।

हमारे राष्ट्रीय चरित्र की भूमिका कैसी होनी चाहिए ? राष्ट्र मे समन्वय भावना का विस्तार कैसे हो ? इस बात को आचार्य श्री ने आगम सम्मत राष्ट्र-धर्म के सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया है। यह राष्ट्र के प्रत्येक कर्णधार के लिए मननीय है। इसमे पुरातनवादी धर्मोपदेशको के लिए भी चिंतन का द्वार उद्घाटित होता है कि धर्मोपदेशको पर भी राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण मे कितनी अपेक्षाएँ-जिम्मेदारियाँ होती है। आचार्य श्री के निम्न प्रवचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चरित्र के पतन के प्रति उनकी कितनी दर्दभरी आवाज है। वे एक अध्यात्म-प्रवक्ता होकर राष्ट्रीय चरित्र के प्रति कितने सजग है।

आधुनिक युग मे समस्त प्रकार के समूहो मे सर्वाधिक विकसित, व्यवस्थित एव शक्तिशाली समूह राष्ट्र को माना जाता है। इसलिए राष्ट्र-धर्म की व्याख्या से नागरिक एव राष्ट्र के पारस्परिक अधिकारो एव कर्त्तव्यो के बोध के जरिये दोनो के पारस्परिक विकास का स्वरूप भी भलीभाति समझा जा सकेगा तथा इस प्रकार के विवेचन का ही दूसरा नाम राष्ट्रधर्म है। इसी के सन्दर्भ मे राष्ट्र, ग्राम, नगर, समाज, आदि समूहो के प्रसग मे व्यक्ति या नागरिक के विविध धर्मो याने कर्तव्यो का लेखा-जोखा भी सम्यक् प्रकार से समझा जा सकता है।

यद्यपि राष्ट्र की राजनीतिक व्याख्या के अनुसार सीमाबद्ध भूमि, सर्वमान्य राज्यतत्र एव एक राष्ट्रीयता का होना राष्ट्र के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीयता है जो सभी नागरिको की समभावना की आधारशिला पर टिकी हुई रहती है। किसी भी राष्ट्र की उसकी राष्ट्रीयता की भावना भूमि-रूप होती है, तो उसका राष्ट्रधर्म प्रगति का पथ नही पा सकता। राष्ट्रधर्म का स्वरूप और राष्ट्रीयता की भावना आसमान से नही टपकती बल्कि एक-एक नागरिक के हृदय मे जागृत होकर फलती-फूलती है तथा एक सामूहिक शक्ति के रूप मे ढलती है।

राष्ट्रधर्म इस दृष्टिकोण से राष्ट्र मे रहने वाले समस्त नागरिको मे सवधित होता है। व्यक्ति अपनी अतर-चेतना को लेकर जिस भू-मडल पर अपना अवस्थान रखता है, छोटे क्षेत्र के उन सभी व्यक्तियो का समूह मिलकर ही तो ग्राम की रचना करता है। गाँवो से ही व्यावसायिक, औद्योगिक एव अन्य सुविधाओ के विस्तार की दृष्टि से नगरो का निर्माण होता है। चूँकि स्वतन्त्र रूप से ग्रामो और नगरो का आत्मनिर्भर हो पाना सरल नही होता तथा दूसरे

विकास के लिए यत्नशील हों, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय सम्मान को सर्वोपरि समझकर तदनुसार अपने स्वस्थ चरित्र का निर्माण करे, तो क्या वास्तव मे देहली के दीपक की तरह वे सबके लिए आलोकदान करने वाले नही कहलायेंगे ?

एक बार जब यह निर्माण का क्रम नीचे से चलेगा, तो राष्ट्र तक पहुँचने मे उसे अधिक समय लग सकता है, किन्तु वह निर्माण अवश्य ही ठोस होगा। चरित्रनिर्माण के साथ ढली हुई राष्ट्रीयता की भावना से ही राष्ट्र का सच्चा निर्माण होता है। एक शिक्षाप्रद घटना है कि एक बार एक भारतीय जलयान मे जापान देश मे कही जा रहा था। रास्ते मे एक बन्दरगाह आया, वहाँ उसके उपयुक्त कोई भोजन-सामग्री उसे नही मिली। क्षुद्रतावश वह सारे जापान देश की निन्दा करने लगा कि कैसा बेकार देश है जहाँ खाने को भी कुछ नही मिलता। इसे सुनकर एक जापानी मजदूर अपने खाने के फल ले आया और उन्हे उस भारतीय को खाने को दे दिये तथा नम्रतापूर्वक कहा कि आप ये फल खा लीजिये। मैं खुशी से भूखा रह जाऊँगा, किन्तु अपने देश के सम्मान के विरुद्ध कुछ भी नही सुनना चाहूँगा। तो ऐसी घटनाएँ किसी भी राष्ट्र के विकास का मापदड होती है। जहाँ राष्ट्रधर्म का समुचित प्रचलन है, वहाँ के नागरिक के लिए अपना स्वार्थ बड़ा नही होता। वह राष्ट्र के हित मे अपना सब कुछ निछा-वर करने को तत्पर रहता है। इसके विपरीत राष्ट्रधर्म से हीन राष्ट्रवासी कपट, झूठ और प्रपच मे इतने लिप्त रहते है कि वे सिफ अपने ही स्वार्थ की पूर्ति की बात समझते हैं। स्वतन्त्रता की छाया मे पलने वाली भारत-भूमि की जब आज भी ऐसी बुरी अवस्था दिखाई देती है, तो यह किसी भी विवेकशील व्यक्ति के हृदय को पीड़ा पहुँचाये बिना नही रह सकती कि जो भारत-भूमि विश्वगुरु के रूप में पूजित थी, उसे ही आज अपने पतन से उठने का भान तक लुप्त हो रहा है।

यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने की वस्तुस्थिति है। मैं ये जो बाते कह रहा हूँ शायद आपको कडवी लग रही होगी, किन्तु मुझे जो कहना है, वही कह रहा हूँ। इस विषय मे चन्दनबाला राजकन्या की स्थिति का कुछ भाव आपको समझने की आवश्यकता है। चन्दनबाला के नगर पर जब आक्रान्ताओ ने आक्र-मण किया, और उस नगर को रौद डाला तथा चन्दनबाला व उसकी माता को पकड़कर रथ मे साथ ले चले तब बन्दी की अवस्था मे भी माता ने रथ में बैठे-बैठे चन्दनबाला को समझाया—"जिस देश मे तुमने जन्म लिया है, जिस धरती पर तुम पली-पोसी हो, उसको एक पल के लिए भी मत भूलना और जहाँ भी जैसे भी तुम्हे अवसर मिले, उसे पुनः स्वतन्त्र कराने के लिए जितना भी बलिदान करना पड़े, उससे कभी पीछे मत हटना।" माता ने यह शिक्षा नही दी कि बेटी किसी तरह अपनी जान बचा लेना और आनन्द मनाना, बल्कि माता ने बेटी को राष्ट्रीयता का स्वरूप भी समझाया कि जो देश किसी भी

है। इसी पारस्परिक असर को सुचारु एव सुनियन्त्रित वनाने का प्रभावशाली साधन है धर्म, जो ग्राम, नगर एव राष्ट्र के लिए नागरिक के पालनार्थ वताया गया है। धर्म वैसे भी कर्तव्य का ही दूसरा नाम होता है तथा ग्राम, नगर व राष्ट्रधर्मो के रूप मे ग्राम, नगर एव राष्ट्र के प्रति नागरिको के कर्तव्यो का ही विवेचन किया गया है, जिसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि व्यक्ति व समूह के वीच ऐसा सुन्दर सामजस्य वना रहे है कि दोनो घटक परस्पर प्रगति के सहयोगी वन सके।

इस विश्लेषण के सन्दर्भ मे आप अपने राष्ट्र की ओर एक विहगम दृष्टि डालिये। यह भारतभूमि दार्शनिक धाराओ, सस्कृति व सभ्यता की जन्मस्थली रही है। यही से जागरण-सन्देश सारे विश्व मे फैला। इसी धरती पर जिस उत्कृष्ट कोटि के महापुरुष जन्मे तथा जिस प्रकार के उन्नायक साहित्य का सर्जन हुआ, वैसी महत्ता अन्य राष्ट्रो के इतिहास मे कम दिखाई देगी। किन्तु यही राष्ट्र लम्वे समय तक विदेशी शासन की गुलामी मे डूवा रहा, तव से इसकी आत्मा शिथिल हो गई। यहाँ के नागरिक आत्म विस्मृत होकर विकृतियो के घेरो मे फँसते रहे और अपनी अर्जित प्रतिष्ठा को खाते रहे। इसका कुपरिणाम यह हुआ कि राजनीतिक स्वतन्त्रता भी इस देश को जो मिली, वह भी इस देश के कृत्रिम विभाजन एव जर्जरता की वुनियाद पर।

भारत राष्ट्र के जव हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप मे भाग किये गये तव क्या इन दोनो भागो मे ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ थी, जिनमे साधक सुविधा से अपनी साधना साध सकता ? जीवन की कडियो तक को ठीक से वनाये रख सकता था ? आपने सुना होगा और सभव है कि कइयो ने देखा और भुगता होगा कि इस विभाजन के समय पशुता का कैसा नगा नाच हुआ था। लोगो के इधर-उधर आने-जाने और कष्ट भुगतने की रोमाचक कहानियाँ आज भी किसी श्रोता को सहज ही मे रुला सकती हैं। इस दुर्व्यवस्था मे समझने का विन्दु यह है कि जहाँ राष्ट्रधर्म की स्थिति विगडती है, वहाँ आध्यात्मिक शक्तियो का सहज विकास वाधित होता है और जहाँ चरित्र एव नैतिकता की स्थिति भ्रष्ट वन जाती है, वहाँ सवके लिये समान सुख से रहने लायक वातावरण भी समाप्त हो जाता है। राष्ट्र के नागरिको को इस दशा मे राष्ट्रधर्म को समझने एव पालने की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रधर्म का समझना कहाँ हो सकता है ? क्या सिर्फ दिल्ली मे वैठकर कुछ कानून वना देने मात्र से देश मे परिवर्तन आ जायगा तथा राष्ट्रधर्म का सर्वत्र पालन होने लग जायगा ? वुराई को दवानेवाले और अच्छाई को पनपाने वाले कानून वनें—यह अच्छी वात है। किन्तु कानून का पालन करवाना आसान नही होता। यह सिर्फ व्यवस्था का ही प्रश्न नही है, स्वय कानून निर्माताओ

भारत राष्ट्र के निवासी गीता की नीति सुनते है, आगमो की वाणी का लाभ लेते है और सन्तो के उपदेशामृत का पान करते है। फिर भी उनके मन से घृणा की भावना दूर न हो—यह समुचित नही है। यहाँ भाई-भाई ईर्ष्या से जलते है, परस्पर घृणा करते है, तो फिर राष्ट्रधर्म कहाँ टिकेगा ? राष्ट्रधर्म का विकास तो तब माना जाय, जब एक भाई अपने गिरे हुए भाई को गले लगाकर उसे इतना आत्मीय बना ले कि उसके दु:ख को वह अपना दु ख समझकर चले और अपने सुख को उस दु:खी भाई पर लुटा दे। कवि ने कहा है कि सुख जब बाटा जाता है तो वह हजार गुना बढ जाता है। सज्जन पुरुप अपने सुख से नही, दूसरो को सुखी बनाकर ही अत्यधिक हर्षित होते है। इसी प्रकार दु:ख को जब आपस मे बाट लिया जाय तो दु:ख का भार घट जाता है। उसका सुख और सबका दु ख जब सारे राष्ट्रवासियों मे बंट जाय, तो कल्पना कीजिए कि क्या उनका सौहार्द, सौजन्य और समभाव स्वर्ग से भी अधिक सुखकर नही हो जायेगा ?

आज राष्ट्रधर्म के आदर्श को आगे लाने का दायित्व बुद्धि-वादी वर्ग पर विशेष रूप से है। किन्तु जिस तरह का शिक्षको और शिक्षार्थियो का वातावरण बन रहा है, वह कोई विशेष उत्साहप्रद नही है। स्वय बुद्धिवादियो को सुधारने की भी समस्या है। ऐसे समय देश के ब्रह्मचारी एवं महात्मा वर्ग को आगे आकर राष्ट्रधर्म की प्रेरणा फूकनी चाहिये। इस वर्ग मे जीवन्त जोश होता है और इसी जोश का प्रयोग उन्हे इस दिशा मे करना चाहिये। लेकिन होश खोकर नही। अपने स्वय के चरित्र एव आचरण से उन्हे राष्ट्रधर्म का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये।

भारत एक विशाल राष्ट्र है, जिसमें विभिन्न धर्मो, आस्थाओ, वर्गो, वर्णों और विचारो के लोग रहते है, किन्तु विविधता मे भी अब तक उनके बीच एकता का जो सूत्र रहा है, वह आत्मज्ञान ही रहा है। उसी आत्मज्ञान के द्वारा समानता के वातावरण को प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है। राष्ट्र मे रहने वाले सभी वर्ग चाहे, हिन्दू हो या मुसलमान—अगर राष्ट्रीयता की आत्मीय भावना के एकसूत्र मे बधे हुए रहेगे, तो कोई किसी का शत्रु नहीं बन सकेगा। यहाँ तो सभी धर्मों ने दिल दु:खाने तक को महापाप बताया है। इस्लाम का यह एक वचन देखिये—

> मवाश दरपये आजार वहरचि ख्वाही कुन।
> किदर शरयिते या गैर अजी गुनाह नेस्त॥

इसी आशय की एक हिन्दी कविता भी है—

> दिल किसी का मत दुखा दिल चाहे सोकर
> दिल यार इस बात का, दिल अल्लाह का घर

जायगा । शासन को चलाने वाले व्यक्ति सुधर गये तो व्यवस्था सुधर जायगी । किन्तु यदि कोई समन्वय की भावना के स्थान पर पृथक्त्व की भावना लेकर चले और कहे कि राष्ट्र मे सुधार नही हो रहा है इसलिये राज्यो और नगरो को अलग कर लो, ता क्या वहाँ राष्ट्र रह जायगा ? नगरो को ग्रामो से पृथक् कर दो, तो क्या उसकी बुनियाद तक नही हिल जायगी ? ग्राम से वहाँ के व्यक्तियो को अलग कर दो, तो ग्राम का क्या रूप रह पायगा ? सवसे ऊपर यह तथ्य चिन्तनीय है कि उन व्यक्तियो को उनकी सच्चरित्रता, नैतिकता और आत्म-चेतना से पृथक् कर दो, तो क्या शेष रह जायगा ? क्या मुर्दा शरीरो का ढेर कलेवरो का समूह मात्र नही ? आत्मशक्ति जहाँ के नागरिको मे नही वचती, तो न राष्ट्र वचता है और न राष्ट्रीय चरित्र ।

आप इस नक्शे को समझने का प्रयत्न करे कि राष्ट्र की आत्मा कहाँ वसती है । ये ऊपर मैंने जो कडियाँ वताई हैं, यह जव पूरी शृ खला के रूप मे जुडी हुई रहती है तब तक तो सब ठीक रहता और चलता है, मगर जव ये कडियाँ टूटने लगती है, तो राष्ट्र और राष्ट्रीयता ही नही टूटती, व्यक्ति और उसकी आत्मशक्ति भी टूटती है । इन कडियो के क्रम से चले तो समझ मे आता है कि राष्ट्र की आधार शिला एक-एक नागरिक की आत्म-चेतना और आत्म-शक्ति पर टिकी हुई है । यदि पिंड मे रहने वाली चेतना सजग और शुद्ध है, तो वह ज्ञान और शुद्धता राष्ट्र की सुन्दर सीमा तक प्रसारित हो जायगी । वाहर के आडम्वरो से न व्यक्ति वनता है और न राष्ट्र । ऊपर की टीमटाम से कोई यह मान ले कि वहाँ सवको अपने-अपने धर्म का भी पूरा खयाल है तो यह भ्रान्त धारणा ही सावित होगी । विना जड के पौधे पर कागज के फूल ही लगाये जा सकते है, असली फूल खिलाये नही जा सकते हैं । जड की रक्षा से ही फूल-पत्ते हरे-भरे रह सकते है ।

कल्पना करे कि एक माली अपने वगीचे मे आम्र-वृक्षो को पनपा कर उसके फल चखना चाहता है । इधर आम की मजरियाँ आने लगी, और उधर टहनियाँ सूखने लगी । माली सोचता है कि टहनियाँ सूख जायेगी तो वह फल चखने से वचित रह जायगा । इसलिए वह टहनियो को सीचने की इस तरह कोशिश करता है कि सीढी लगाकर वाल्टी-वाल्टी पानी टहनियो पर छिडकता है । तो क्या उसकी इस तरह की सिचाई से टहनियाँ हरी-भरी हो जायेगी ? उस माली को आप किसकी उपमा देगे ? झटपट आप उसे मूर्ख कह डालेंगे । क्योकि अगर उसे आम का फल चखना है तो वह टहनियो को सीचने से नही मिलेगा, वह तो जड को सीचने से ही मिलेगा ।

इसी तरह आज यदि आप राष्ट्र के प्रागण मे भी ऐसा ही करें कि जड की तरफ तो ध्यान ही न दे, और टहनियो को सीचते रहे तो क्या ऐसे विवेक-

स्थिति है, राक्षसी-वृत्तियो का दौर-दौरा है, तो वहाँ आध्यात्मिक साधक का भी टिकाव नही हो सकता है ।

इस प्रकार दस धर्मो के वर्णन से वीतराग देव ने मुख्य तौर पर आध्यात्मिक जीवन का सकेत देते हुए नैतिक जीवन का परिमार्जन करने के लिए ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि का सकेत किया है । यह सकेत एक वैज्ञानिक तथ्य को लिए हुए है ।[1]

शरीर की दृष्टि से मनुष्य जाति का समुदाय एक है । परन्तु आज का मानव शरीर तक ही सीमित नही रहा है । उसने वर्णभेद की भी दीवारे खडी कर दी है—ये काले मनुष्य है और ये गोरे मनुष्य हैं । अरे कोई चमडी का काला या गोरा है, तो इससे क्या मनुष्य की आत्मा मे भी भेद आ गया ? यह छूत है और यह अछूत है । किसको छूत-अछूत समझते हो ? उसके पीछे कोई सिद्धान्त है क्या ? यदि आपने अछूत को छू लिया, तो क्या अछूत हो गये ? फिर स्नान करोगे, तो पवित्र और यदि नही करोगे तो क्या अपवित्र रहोगे ? क्या पानी अछूतपन को धो डालता है ?

जो हिन्दुस्तान अखण्ड था, उसके टुकडे-टुकड़े हो गये । अब और कितने टुकडे करना चाहते हो, आज अलग-अलग गुट या पार्टियाँ बन गयी है । वे चाहे राजनीति की दृष्टि से हों या अन्य किसी दृष्टि से हो, परन्तु वे भेद की दृष्टि ही अपना रही है । वे आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को नही समझ रही हैं । वे अपने ही भाइयो को आपस मे टकरा रही है । किन्तु मानव यदि भेद और अभेद दोनो दृष्टि अपनाकर चलता रहे, तो भिन्नता नही आ सकती । अतः दोनो दृष्टियो से समभाव के साथ चलने का प्रयास करेगे तो आत्मा के स्वरूप को समझ सकते है ।

आज से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर के जीवन-चरित्र को देखते है, तो पता चलता है कि उनका स्वय का जन्म क्षत्रिय-कुल में हुआ था । वे क्षत्रिय राजकुमार थे । उनके गणधरों को देखिये तो गौतम स्वामी ब्राह्मण-कुल मे जन्म लेने वाले दिग्गज विद्वान् और चारो वेदों के पाठी थे । सुधर्मास्वामी भी ब्राह्मण जाति मे जन्म लेने वाले थे । धन्ना शालिभद्र का जिक्र सुनते है, तो वे वैश्य जाति के थे । अर्जुन माली और हरिकेशी श्रमण सरीखे व्यक्ति जाति से शूद्र थे । परन्तु उनका गुण और कर्म एक हो गया था । वे एक रूप मे चलने लगे । गुण और कर्म द्वारा वहाँ कृत्रिम जाति-भेद नही रहा । किन्तु—

कम्मुणा बभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

१–आध्यात्मिक आलोक, पृ० ५६

सव्व भूयप्प भूयस्स, सम्म भूयाइ पासग्रो।
पिहियासव्वस्स दन्तस्स, पाव कम्म न वधई।
(दशवैकालिक सूत्र, अ ४ गा. ६)

कहा है, हे मानव तुम्हारी आत्मा के साथ पाप-कर्मो का वन्ध क्यो होता है ? अगर इन पाप-कर्मो से मुक्त होना है, तो अन्य सभी मनुष्यो को ही नही, सभी प्राणियो को भी अपनी आत्मा के तुल्य समझकर सयम के साथ चलो। सवको आत्मा के तुल्य समझने की भावना रखोगे, तभी सोचोगे कि जिस अवस्था मे मैं चल रहा हूँ, मैं जो आकाक्षाएँ रख रहा हूँ उनके अन्दर मुझे तटस्थ वृत्ति लानी है और उसके साथ देखना है कि मेरी ग्राकाक्षाएँ यश-लिप्सा, सत्ता, अधिकार या पद-प्रतिष्ठा के रूप मे तो नही है। यदि स्वार्थ के रूप मे लालसा रही, तो मैं ग्रपनी ग्रन्य प्राणियो के साथ तुलना नही कर सकूँगा। यह सिद्धान्त केवल शिक्षा की दृष्टि से ही नही कहना है, अपितु प्रत्येक को इसका ग्राचरण ग्रपने जीवन के प्रत्येक चरण मे करते रहना चाहिये। इस ग्रात्म-भावना के साथ यदि इस तत्त्व को ग्रहण किया जाय, तो व्यक्ति के मन से धूर्तता, दम्भ एव कपट के खोटे विचार वाहर निकल जायेगे और उसके स्वभाव मे सरलता, ईमानदारी ग्रौर समानता की भावना का सहज विकास होने लगेगा।

आत्म-नियत्रण, सयम एव स्वार्थत्याग की भावना के साथ जो व्यक्ति चलेगा, तो वह उसी के अनुरूप ग्रपने परिवार को वनाना व देखना चाहेगा। वैसा परिवार ग्राम को वदलेगा तो वैसा ग्राम तथा नगर, राष्ट्र मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकेगा। यह समत्व की भावना राष्ट्रधर्म का मूल है, जो सारे राष्ट्र को समानता ग्रौर एकता के आत्मीय सूत्र मे ग्रावद्ध करके रखती है। मैं राष्ट्रधर्म के विकास मे नगर का विशेष महत्त्व मानता हूँ, क्योकि यह ग्राम ग्रौर राष्ट्र के वीच की कडी है। नगर मे रहने वाले नागरिक का भी इस दृष्टि से विशेष कर्त्तव्य होता है। नगरपालिकाएँ वनती है, जिनका ध्यान सिर्फ वाहरी वनावट तक ही सीमित होता है। किन्तु नगर-धर्म का पालन हो—ऐसी प्रेरणा न इन सस्थाग्रो की होती है, न इसके नियुक्त या निर्वाचित सदस्यो की ग्रौर न ही उन मतदाता नागरिको की जो इन सस्थाओ के सदस्यो को चुनते है। यह विकासशील स्थिति नही है।

नगर, ग्राम ग्रौर राष्ट्र के वीच की कडी होने से इसकी "देहली दीपक न्याय" की स्थिति कही जा सकती है। जानते हैं "देहली दीपक न्याय" ? जव एक दीपक देहली पर रखा जाता है, तो वह भीतर-वाहर दोनो तरफ प्रकाश डालता है। वैसे ही नगर मे रहने वालो के आचरण का प्रकाश दोनो ओर गिरना चाहिये। नगर मे ही अधिसख्य वुद्धिजीवियो एव विवेकशील लोगो का निवास होता है। वे एक ओर ग्रामवासियो के साथ छल नहीं करके उनके

वाइकिग जैसे गगन-स्पर्शी यानो की चर्चा है, तो कही हाइड्रोजन, मेगाटन एवं उद्जन जैसे महाविनाश की लीला प्रस्तुत करने वाले प्रलयकारी अणु-आयुधो की चर्चा है । भौतिक अनुसन्धानो की इस दौड़ मे मानव महाविनाश की ओर निरन्तर भागता जा रहा है । प्रथम तो भौतिक चकाचौध से आप्लावित इस युग मे आत्मा-परमात्मा जैसे शाश्वत तत्त्वों के प्रति जन-मानस मे अभिरुचि का प्रादुर्भाव क्लिष्ट से क्लिष्टतर बन गया है और दूसरे में अध्यात्म-जगत् के सूक्ष्म तत्त्व हमारी भौतिक दृष्टि से परे होते है । इन्हे हम इन्द्रियो के माध्यम से साक्षात् नही कर सकते है । फलत. अध्यात्म तत्त्वो पर विश्वास समाप्त होता जा रहा है । वायुमण्डल इतना दूपित वन चुका है कि लगता है अध्यात्म हारता जा रहा है एव विज्ञान भौतिकवाद जीतता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे अध्यात्म द्रष्टा एव आत्मदर्शी साधको के समक्ष भी एक ज्वलन्त प्रश्न मुँह बाए खड़ा है कि अध्यात्म को स्थिर कैसे रखा जाए ? अधिकाश आत्म-साधक एव उपदेष्टा इस विषय मे निराश से लगते है, क्योकि अध्यात्म तत्त्व को सुगम रीत्या आज के परिवेश मे प्रस्तुत करने की प्रत्येक व्यक्ति मे मेधा नही हो पाती और जब तक आधुनिक दृष्टिकोण से उन सूक्ष्म तत्त्वो का विश्लेपण वर्तमान युगीन जनचेतना के सम्मुख न हो, वह प्रभावकारी नही हो पाता ।

श्रद्धेय आचार्यश्री के धारा-प्रवाही अध्यात्म-प्रवचन इस वात के ज्वलन्त प्रमाण है कि वे इस भौतिक वातावरण मे भी अध्यात्म के प्रति कभी निराश नही हुए है । वे आज भी भौतिकवाद की वस्तुनिष्ठ परिभाषा एव व्याख्या इस ढग से कर जाते है कि व्यक्ति का मानस सहसा अध्यात्म के प्रति आकृष्ट हो जाता है, चाहे वह अध्यात्म का विरोधी परम भौतिकवादी व्यक्ति ही क्यो न हो । इसका कारण है कि आप अध्यात्म, आत्मा, परमात्मा, कर्म, विरक्ति आदि सूक्ष्म इद्रियातीत विषयो पर भी इतनी मार्मिक एव आधुनिक दृष्टिसम्मत तलस्पर्शी विवेचना प्रस्तुत करते है कि एक बार तो नास्तिक विचार भी भावाभिभूत हो जाते है और पराभौतिकवादी व्यक्ति को भी अध्यात्म की अद्भुत सत्ता पर बराबर विश्वास करना पड़ता है ।

उदाहरण के लिए कर्म-विवेचना-सम्बन्धी निम्न प्रवचनाश मे अवगाहन कर पाठक स्वय चिन्तन करे कि कर्म-सिद्धान्त जैसे सूक्ष्म विषय पर आपश्री का प्रवचन कितना हृदयग्राही एव भावप्रवण है—

आन्तरिक शत्रुओं से संघर्ष में

आध्यात्मिक रणभूमि मे जो साधक उतर चुका हो और जिसे अपने सामने सेनापति मोहनीय कर्म की अधीनता मे खडी कर्म समूह की सेना दिखाई दे रही हो, वैसे आदर्शोन्मुख साधक को जब योग्य सहयोगी (गुरु) का सवल

अन्य देश पर आक्रमण करता है वह अपने माथे पर कलक का टीका ही लगाता है। परन्तु वह देश, जो किसी भी ऐसे आक्रमण को सिर नीचा करके सह लेता है या राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को भुला देता है, उससे भी वढकर कलक का टीका अपने माथे पर लगाता है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का समर शाति-समर कहलाता है और ऐसा कलक का दाग शाति-समर मे रूधिरवारि से धोने पर ही साफ होता है। माता ने तव चन्दनवाला को कहा कि तुम्हे भी अहिसक युद्ध के तरीके अपनाकर इस दासता के कलक को धोना है। वाद मे इतिहास वताता है कि किस शौर्य के साथ चन्दनवाला ने अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए सफल सघर्ष किया।

क्या भारतीयजन अपने विगत गौरव को भूल चुके है ? क्या वे राजनीतिक स्वतन्त्रता की परिष्कृति के साथ आर्थिक एव सामाजिक विपमताओ को दूर करके आत्मिक समानता स्थापित करने के सघर्ष हेतु कटिवद्ध नही हो सकेंगे ? उन्हे स्मरण रखना होगा कि भारत-भूमि देव-भूमि कहलाती थी। देव का अर्थ देवता से नही, किन्तु देवता के समान उज्ज्वल चरित्र से था। भारतीयो का चरित्र कितना उज्ज्वल था ! और आज का रूपक ? कितना आसमान-पाताल का भेद ? और फिर भी भारतीयो मे जागृति न फैले तथा उन्नति की आकाक्षा उन्हे झकझोर न डाले—यही आश्चर्य का विषय है। भारत का अतीत गुणाधारित था, पर आज जाति-भेद तथा छुआछूत जैसी वीमारियाँ इन्सान मे वची-खुची इन्सानियत को भी खाए जा रही है। पहले के वर्ण भी गुण के अनुसार थे और कर्म के आधार पर थे। 'उत्तराध्ययन' सूत्र मे इसी दृप्टि से कहा है कि—

कम्मुणा वभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने कार्यो के आधार पर होते थे, जाति या जन्म के आधार पर नही। यही सिद्धान्त आज भी देश-धर्म की स्थिति के साथ लागू होना चाहिए। इन्सान भी कोई अछूत होता है—यह कलकपूर्ण धारणा है। राष्ट्रधर्म को नही समझने वाले कोई कट्टरपथी छुआछूत का समर्थन कर सकते हैं, किन्तु उनकी आँखे गीता के इस श्लोक से तो खुलनी चाहिये—

विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
सुनिचैव श्वपाके, च, पडिता: समदर्शिन.॥

कृष्ण महाराज से पूछा गया कि पडित की क्या परिभाषा है ? उन्होने वताया कि कोरा पडित कुछ नही, विनय उसमे होना चाहिये और जब विनय और विवेक उसमे हो और वह सभी प्राणियो मे समदर्शी वने, तव वह सच्चा पडित है। जव कुत्ते मे भी समानता देखने का निर्देश है—तो इन्सान को अछूत वताना सरासर निन्दनीय है।

दोनों प्रकार की उन्नति कर सकता है। किन्तु चेतना-शक्ति की दुर्बलता यही होती है कि जड मे उसकी अपेक्षा और आसक्ति पैदा हो जाती है—वह उनमे व्यामोहित हो जाती है। तब वैसा मोह अन्य सारे कर्मो को न्योता देता है और चेतन को जड़लिप्त बना देता है। इसे ही जीवन का पतन कहते है कि जो ससारी जीव को संसार मे उलझा देता है, उसे सिद्ध नही बनने देता।

सिद्ध बनने के लिये इसी पतनावस्था से चेतन को सघर्ष करना पडता है—जड मोह से सबद्ध कर्मो से लडना पडता है। इसी कारण आध्यात्मिक विकास जड़-चेतन के सघर्ष से ही आरम्भ होता है।[1]

आपको ऐसा लगता होगा कि कभी-कभी मैं आपको इन वैज्ञानिक तथ्यो के साथ उलझन मे डालने की कोशिश करता हूँ, किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नही है। हकीकत मे मैं इनको सुलझाने की कोशिश कर रहा हूँ। आप वैज्ञानिक तथ्यो को कर्म-सिद्धान्त की तुलना मे परखिये, उनका अध्ययन और मनन कीजिये, फिर कुछ-कुछ स्पष्टीकरण सामने आयेगा कि वैज्ञानिक चरण भी घूम-फिर कर उधर ही बढ रहे हैं, जिधर केवलज्ञानी विचरण कर चुके है और अपने ज्ञान का आलोक इस विश्व को प्रदान कर चुके है।

विश्व मे जितनी भी दार्शनिक विचारधाराएँ है, उनमें न्यूनाधिक मात्रा में कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। किन्तु जिस वैज्ञानिक पुष्टता से उसका विश्लेषण जैन दर्शन ने किया है, उतनी गम्भीरता और स्पष्टता अन्यत्र नही मिलेगी। इस कर्म-सिद्धान्त का मानना है कि आत्मा जब शुद्ध अवस्था मे होती है, तब उसके कर्म-बध नही होता है। दूसरी ओर जड़ भी अपनी शुद्ध अवस्था मे चेतन से सर्वथा पृथक् होता है। अनादि काल से ससारी आत्मा जड़-चेतन के संयोग पर चल रही है, जिससे अपने शुभाशुभ कर्मो के अनुसार उसके साथ कर्म-बन्ध का अवसर आता रहता है।

कर्म का रूप तब पैदा होता है जब जड का सयोग आत्मा के साथ होता है। पहले ये कार्माण वर्गणा के पुद्‌गल रूप होते है। जब वे आत्मा के साथ बंधते हैं और सजीवता ग्रहण करते है, तब कर्म कहलाते है। इसीलिये जिन आत्माओ के साथ कर्म लगे हुए है और उन कर्मों के साथ जो शरीर है, वह सजीव शरीर कहलाता है।

अजीव कर्म-वर्गणा का सजीव रूप

अब इसमें प्रश्न यह आ सकता है कि अजीव कार्माण वर्गणा के पुद्‌गल

१—जयपुर चातुर्मास प्रवचन, पावस प्रवचन, भाग ४, पृष्ठ ४४-४५।

दिल अल्लाह का घर, घट-घट मे है अल्ला
चार जन मिल बैठिये, यही यार है सल्ला
ऐन खुदा के मिलन का यह रास्ता है नर। दिल०।

भारत राष्ट्र की इस पावन धरती पर अगर एक भी नागरिक किसी दूसरे का दिल नही दुखावे, सबको अपनी आत्मा के तुल्य समझे और परस्पर आत्मीयता से ओत-प्रोत रहे, तो कहिये किसी भी छेद से स्वार्थ अन्दर घुस सकेगा ? और स्वार्थ अन्दर नही आ सकेगा तो क्योकर झूठ, कपट और प्रपच अपना घिनौना सिर ऊपर उठा सकेंगे, तथा क्योकर सत्ता और पूँजी का मोह मनुष्य को पिशाच बना सकेगा ?

समत्व, समानता या साम्य भावना इस राष्ट्रधर्म की मूल आत्मा है और जब तक मूल को ठुकराया जाता रहेगा, शाखाओ और उपशाखाओ को सीचने से फल कभी नही आयेगा। दुनिया भर की योजनाएँ, बाँध, पुल और सडके दिलो को नही जोड सकेंगी। दिलो को जोडने वाला और राष्ट्र को बनाने वाला है आत्मज्ञानपूर्ण राष्ट्रधर्म। इसी के पालन से मनुष्य, मनुष्यता के साचे मे ढलेगे और वे ही सच्चे राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगे। इसके लिए परमात्मा का निर्मल स्वरूप सदा अपने सामने रखिये, ताकि आप अपनी आत्मा का स्वरूप उस दर्पण मे देखते हुए सतत जागृत रह सके।[1]

जिस नगर मे नैतिकता की दृष्टि से सुव्यवस्था नही है, जहाँ सब लोग स्वच्छद और उद्दण्ड है, एक-दूसरे को सताने वाले हैं, तो ऐसे नगर के बीच वह साधक श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना नही कर सकता है। चाहे साधक कैसा भी क्यो न हो, परन्तु अभी आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम शरीर है। अत शरीर का जहाँ निर्वाह करना है, उस स्थान का वायुमण्डल भी तो शुद्ध होना चाहिए। यदि नगर सुव्यवस्थित है, अर्थात् नैतिक धरातल के साथ है, नगर के रहने वालो मे एक-दूसरे का सहयोग है, सहानुभूति है, मानवीय धरातल पर शाति है, तो उस नगर मे आध्यात्मिक जीवन का साधक अपनी पवित्र साधना करते हुए वहाँ जो चरम लक्ष्य साधता है, वह सिर्फ उसके लिए ही नही होता, परन्तु जन-समुदाय के लिये भी वह शुद्ध और आदर्श वायुमण्डल तैयार करने वाला बनता है।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म की सुव्यवस्था के वर्णन की तरह ही राष्ट्रधर्म के विषय मे भी समझना चाहिये। जिस राष्ट्र मे व्यवस्थित मानवीय धरातल है, आत्मीय शक्तियो के विकास का सुन्दर अवसर है, जिसमे हर एक साधक अपनी साधना को साधने मे तत्पर रह सकता है, वही श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म की आराधना हो सकती है। यदि राष्ट्र मे अराजकता है, विप्लव की

१–मन्दसौर चातुर्मास प्रवचन, ताप और तप, पृ० १८३–२००

कर्म-सिद्धान्त की इस परिपक्वता के साथ वैज्ञानिक खोज की आप तुलना करेंगे, तो प्रतीत होगा कि यह खोज अभी तक बहुत अपरिपक्व है। वैज्ञानिक लोग इतनी खोजो के बाद भी अनखोजा एक तत्त्व ऐसा मान रहे है कि वह सजीव और निर्जीव कोशिका के साथ जुडने का काम कर रहा है। इस स्थान पर जब लेश्या की वर्गणा को इसका माध्यम मान कर सोचेगे तो इस जुडने वाले तत्त्व के सम्बन्ध मे स्पष्ट जानकारी होने लगेगी। कषायो की स्थिति पर भी इस सदर्भ मे चिन्तन करना पड़ेगा। तब स्पष्ट होगा कि जैन-दर्शन के इस कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि कितनी पैनी और सूक्ष्म रही है। इस दृष्टि तक भी अपने प्रयोगात्मक ढंग से पहुँचने मे अभी तक वैज्ञानिको को बहुत समय लगेगा।[1]

आत्मा और चित्त शक्ति

आत्मा की शक्ति उसके सबध और आचरण को कितनी बोधगम्य भाषा मे रूपकबद्ध अभिव्यक्ति दी गई है, इसका भाव प्रवाही आस्वादन प्रस्तुत है—

विचार आत्मा की शक्ति है और उसका आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होता है। शक्ति तेज या मन्द हो सकती है, किन्तु समाप्त नही होती, क्योकि वह आत्मा का गुण है तथा गुण और गुणी के सबध में विच्छेद नही होता। इसको ठीक से समझने के लिये सूर्य और सूर्य की किरणों का तादात्म्य संबध देखे। सूर्य से सूर्य की किरणे अलग नही की जा सकती है। किरणे सूर्य की तद्रूप होती हैं। प्रकाश से रिक्त सूर्य का अस्तित्व नही होता तो जहाँ सूर्य है, वहाँ किरणो का अस्तित्व होगा ही। उसी प्रकार चिंतन, विचार या इच्छा-शक्ति आत्मा के साथ तादात्म्य सबध मे रही हुई होती है। वस्तुतः चिंतन ही तो चेतना है और चिंतनहीनता आत्मशून्यता का ही तो रूप माना जाता है।

हाँ, सूर्य की किरणे जिस वातावरण को छूती हैं, वैसा रंग और रूप वे अपने मे अवश्य भर लेती हैं। उदयाचल पर्वत की लालिमा को जब वे किरणे प्रभातकाल मे अपने अक मे भर लेती है, तो वे सर्वत्र अरुणिम वन जाती है, इसी प्रकार मस्तिष्क के विचार भी जिन सस्कारो के रग-ढग मे ढलते हैं उन्ही का रूप-स्वरूप भी पकड़ लेते हैं। इसीलिये कहा गया है कि विचार आत्मा का गुण है, तादात्म्य सवध से जुड़ा हुआ है। लेकिन जैसे सस्कारों का धरातल मस्तिष्क को मिलेगा, वैसा ही स्वरूप विचार-गति का वनता जायगा। अतः समस्या विचारो के सशोधन करने की है, उनमे यथोचित परिवर्तन लाकर उन्हे विकासोन्मुखी वनाने की है।

१—पावस प्रवचन, भाग ४, पृष्ठ १६६-१६८।

आप कह सकते हैं कि यह तो बहुत पुरानी बात है। क्या वर्तमान मे ऐसी समानता प्रकट हुई है ? हाँ, ऐसी समानता कुछ तो हुई है, और कुछ आगे भी हो सकती है।

आपने अभी गाधी-युग देखा है। मैं गाधीजी के समग्र जीवन की बात नही कहता हूँ। उन्होने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दृष्टि से अहिंसा और सत्य की भावना अपनाई। वे मानव-भावना के साथ चले। उन्होने छूआछूत त्यागने को कहा। वे स्वय मोड जाति के बनिये थे। परन्तु उनके साथ प० जवाहरलाल नेहरू कश्मीरी ब्राह्मण थे, डॉक्टर अम्बेडकर हरिजन थे, मौलाना आजाद और खान अब्दुल गफ्फार खाँ मुसलमान थे। विनोबा भावे महाराष्ट्री ब्राह्मण है। जमनालाल बजाज सरीखे वैश्य भी थे। ये सब-के-सब गाधीजी के साथ घुलमिल गये। परन्तु यह स्थिति तभी बनी, जबकि गुणो के साथ अभेद दृष्टि रखी गई। व्यक्तियो मे यद्यपि भेद था, परन्तु ऐसा होने पर भी गुणो की दृष्टि से समानता थी। गुणो का उन्होने थोडा-सा अश ग्रहण करके देश के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

आज का मानव तो माँग कर रहा है। वह कह रहा है कि मानव अपने जीवन मे मानवता लाये और मानव-मानव की आत्मा को समझने का प्रयास करे। अभेद-दृष्टि से मनुष्य एक भी है और भेद-दृष्टि से अनेक भी है। इसी तरह परमात्मा एक भी है और अनेक भी है इसलिए परस्पर सघर्ष मत करो। मानव यदि समन्वय की दृष्टि से चले, तो शाति का अनुभव कर सकता है।[1]

अध्यात्म के मधुर सन्देश

चूंकि आचार्य प्रवर एक आत्मद्रष्टा अध्यात्मयोगी महान् वाग्मी हैं, अतः उपर्युक्त सामाजिक एव राष्ट्रीय विचार तो आपके आनुषगिक विषयो पर है। आपका अपना मौलिक विषय तो अध्यात्म ही है। अध्यात्म को सुबोध एव परिपुष्ट करने के लिए ही उसकी भूमिका के रूप मे आप अन्यान्य सदर्भों को स्पर्शित करते है।

आपका सम्पूर्ण साधनामय जीवन अध्यात्म से अनुप्राणित है। अत· आपका अध्यात्म-प्रवचन अनुभूति के आलोक से उद्भासित होता है, अथवा यो कहे कि आपके प्रत्येक वचन के पीछे अध्यात्म का मधुर सन्देश निगूढ़ रहता है।

आज का युग भौतिकवाद की पराकाष्ठा का युग है। चारों तरफ विज्ञान के भौतिक अनुसन्धानो की चर्चा है। कही अपोलो, सोयुज और

१–आध्यात्मिक आलोक, पृ० ४१–४३

अशुद्ध अवस्था मे जो राग की थोड़ी-बहुत मात्रा बनी रह जाती है, उस अपेक्षा से सराग-संयम की व्याख्या की जा सकती है ।

परिमार्जन की प्रक्रिया में बाह्य रूप से शरीर के प्रत्येक अवयव मे भी सयम की झलक दिखाई देती है। इसीलिये शास्त्रकारो ने "हत्थ संयमे, पाय संयमे" का संकेत दिया है। सयम में इन्द्रियों पर सम्यक् प्रकार से नियत्रण होना चाहिये, किन्तु फिर भी, जब तक छद्म अवस्था रहती है, तब तक प्रशस्त राग की दशा भी बनती है। इससे रजित आत्मा साधना के पथ पर अग्रसर होती है, तो संयम से आत्मा की शुद्धि और साता-वेदनीय का बध दोनो होते है। इसे ही सराग-संयम कहा गया है। पूर्ण आत्म-नियंत्रण की स्थिति मे पूर्ण संयम कहलाता है। परिमार्जन की प्रक्रिया की यह अन्तिम अवस्था होती है।

"धर्मानुरागरत्ता" का महत्त्व

शास्त्र का पाठ है कि पहले श्रावक कैसे होते थे? वे "धर्मानुरागरत्ता" होते थे, अर्थात् धर्म के अनुराग मे अनुरक्त होने के कारण वे सत् सिद्धातो के प्रचार-प्रसार में भी लगते थे, जिससे कि सामूहिक रूप से भी समाज मे आत्म-विकास का मार्ग प्रशस्त बन सके। जो धर्म को अपने जीवन मे जितना उतार सके, उतारे और अपने जीवन को शुद्ध बनावे, किन्तु उसके आगे भी उसका कर्तव्य समाज के प्रति यह होता है कि वह धार्मिक विचारधारा का अधिकाधिक प्रचार एव प्रसार करते हुए अधिक-से-अधिक मात्रा में जन-जीवन में भी सशोधन एव परि-मार्जन की प्रक्रिया प्रारम्भ करे। धर्मानुराग में रत रहने का यही व्यापक अर्थ हो सकता है।[1]

प्रभुकृपा

प्रभुकृपा की आलकारिकता का विवेचन आचार्य श्री के शब्दो में—

कवि आनन्दघन जी ने प्रार्थना में कहा है कि भगवान् की कृपा-दृष्टि हुई, तो मुझे दर्शन हो जायेगे। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या वही दर्शन है, जहाँ प्रभु की कृपा-दृष्टि है और जहाँ प्रभु की कृपा-दृष्टि नही है तो वहाँ दर्शन नही है? क्या प्रभु की आत्मा के ऊपर अकृपा है या क्या वे कृपालु नही है? अथवा क्या वे उसी पर कृपा करते है, जो उनकी भक्ति करता है, और अन्य पर नही? अगर इस प्रकार की वृत्ति प्रभु में मान ली जाय तो उनका स्वरूप शुद्ध माना जायगा या अशुद्ध?

१–पावस प्रवचन, भाग ४, पृ० १२१–१२३

सहयोग मिल जाय, तो निश्चय ही वह उनसे कठिन सघर्ष छेडकर अपने आदर्श की ओर प्रगति कर सकता है । अपने ही शुभाशुभ योगो से उपार्जित कर्मों का क्षय करना किसी भी रणभूमि मे बडे-बडे योद्धाओ से अकेले लडने से कम शौर्य्यपूर्ण नही होता । अपने विचारो मे, अपनी वाणी मे और अपनी साधना मे प्रतिपल ये योद्धा हर सभव विघ्न डालने को सामने आते हैं और उसी समय उनके घनत्व को समझ कर अपने सुदृढ सयम से उन पर प्रहार करना और उन्हे परास्त करते जाना ही आध्यात्मिक रण-भूमि की सफलता कही जाती है ।

जब ये आन्तरिक शत्रु साधक की आध्यात्मिक शक्ति को दबोचने के लिये आगे बढते हैं, उस वक्त निपुण बुद्धि वाला सहयोगी अगर साधक का आत्मिक रथ चला रहा हो, तो फिर साधक पैने बाणो से इन शत्रुओ को प्रबल वेग से छेद सकेगा ।

यह संघर्ष है जड़ और चेतन का

जब तक आपकी दृष्टि अतर्मुखी नही बने, तब तक भले ही यह सघर्ष आपको छोटा-सा दिखाई दे, किन्तु इस विचार मे एक प्रकार से शास्त्रो का समूचा रूप समाया हुआ है । योग्य सहयोग की अपेक्षा, उस आध्यात्मिक स्तर पर ही नही, बल्कि इस विराट् विश्व मे जीवन-सचालन करते हुए पग-पग पर रहती है ।

इस लोक के अन्दर छः प्रमुख तत्त्व माने गये हैं, जिन्हे एक दृष्टि से लोक-सचालक कहा जा सकता है । ये है धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल एव जीव-चैतन्य । पहले पाँच अजीव हैं । अजीव वह, जो चेतना रहित होकर सुख दुःख को वेदे नही, पर्याप्ति, प्राण, योग उपयोग तथा कर्मरहित और जड लक्षण वाला हो । जीव का लक्षण चेतना व उपयोग युक्त, सुख दुःख का वेदक, पर्याप्ति, प्राण का धर्ता, आठ कर्मो का कर्ता और भोक्ता तथा शाश्वत होता है । जीव का कभी विनाश नही होता तथा ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य के भावो मे वह विगत काल मे जीता रहा, वर्तमान मे जी रहा है और आगामी काल मे सदैव जीता रहेगा ।

पहले के पाँच तत्त्वो के आधार पर सारा ससार बना है और उनके साथ सम्बन्धित होकर यह छठा जीव तत्त्व उसे चला रहा है । इस तरह यह छ खिलाडियो का लोक है । पाँचो जड तत्त्व गति, स्थिति, अवकाश, रचना और समय के प्रतीक है, तो छठा-चेतन तत्त्व सचालक है । यदि निरपेक्ष भाव से सचालन हो तो दोनो तत्त्वो मे सामंजस्य बैठकर ससार भौतिक एव आध्यात्मिक

है। अनेकानेक साधक मनोनिग्रह के विविध साधना-मार्गों का अवलबन लेते हैं, परन्तु अधिकाश साधक मन की साधना के विषय मे हताश और निराश हो पथविचलित हो जाते है। ऐसे साधको के लिए आचार्य श्री की वाणी कोमल किंतु साहस भरे सब्दो मे प्रस्फुटित होती है।

आज का साधक प्रभु की भक्ति एव सेवा करने बैठता है और सोचता है कि सेवा की साधना का प्रसग बनता नही है। अतः वह मन को स्थिर करने का प्रयास करता है। उस प्रयास मे जब उसको आशिक सफलता भी नही मिलती है, तब अधिकतर वह या तो मनोनिग्रह के अप्राकृतिक उपायो की ओर बढ जाता है अथवा ऊबकर मनोनिग्रह के अभ्यास को ही छोड बैठता है। आखिर मे जाकर वह कहना शुरू कर देता है कि मन कभी वश मे नही हो सकता है।

वास्तव मे मन को वश मे कर पाना एक टेढी खीर है। आप किसी एक विषय पर कुछ गहराई से विचार करना चाहते है अथवा सिर्फ प्रभु के नाम की एक माला ही एकचित्त से फिरा लेना चाहते है और मन को रोककर उसे आप उसमे लगाना चाहते हैं, लेकिन होता क्या है कि आपने मन को लगाया एक विपय या प्रभु के नाम मे और दूसरे ही क्षण वह दौड़ जाता है आपके कारखाने मे कि वहाँ के उत्पादन को कैसे हल्की जात का वनाया जाय, जिससे खर्चा कम वैठे और मुनाफा ज्यादा आवे। वहाँ से मन को किसी तरह खीचखाँच कर लावे और फिर से प्रभु के नाम मे जुटावे, किन्तु वह फिर अगले ही क्षण आपके पुत्र के विवाह की चिन्ता में भाग जायगा कि अभी तक पचास हजार का माल देने वाले लड़कियो के पिता तो आ चुके है—अब और माल के लिये ठहरा जाय या सम्वन्ध तय कर लिया जाय। आप फिर वहाँ से उसे खीच कर माला मे पिरोना चाहते हैं और वह वार-वार इधर-उधर भागता रहता है। अक्सर पहले-पहले नतीजा यह निकलता है कि चाहे आप माला फिराने वैठे है या सामायिक लेकर, उस क्रिया का समय पूरा हो जाता है, परन्तु लगता है कि अन्तःकरण से तो उस क्रिया की साधना हुई ही नही। शरीर जरूर क्रिया मे वैठा दिख रहा था, किन्तु मन तो न जाने कहाँ-कहाँ छलाँगे लगाता फिर रहा था।

मन की गति इतनी चंचल होती है कि वह एक क्षण मे अगणित स्थानो की सैर कर आता है और जितनी चचलता अधिक होती है उतने ही विविध विचार तो कर लिये जायेंगे, किन्तु उनमे से किसी एक विचार का भी सफल कार्यान्वियन हो—इसकी आशा कम ही रहती है। अतः इसमे कोई सन्देह नहीं कि जब तक मन की इस चंचलता को समाप्त न कर दे तथा उसकी गति पर कठोर निग्रह लागू न कर दे, साधना की सफलता का वातावरण नही बन सकेगा।

सजीव कैसे बन जाते है ? उत्तर यह है कि तदनुरूप कार्य से कर्म आए और आत्मा के साथ सयुक्त होकर सजीव बन गये। इसका प्रमाण 'भगवती सूत्र' मे दिया गया है। गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया कि "रूवी आया, अरूवी आया ?" तो प्रत्युत्तर मे भगवान् ने कहा - "रूवी वि आया, अरूवी वि आया।" अर्थात् आत्मा रूपी भी है और अरूपी भी है। यह सापेक्ष कथन है। अपेक्षा यह है कि सब ही शरीर हैं, जो संसारी आत्माएँ है और गति-सजीव शरीर को कोई सर्वथा जड कहे, तो ऐसा कहने वाले को असत्य लगता है। तो प्रभु ने इस शरीर-अवस्था की स्थिति को आपेक्षिक दृष्टि से रूपी चैतन्य कहा है। जितने परमाणु आत्मा के साथ आकर लगें और शरीर रूपी मे रासायनिक प्रक्रिया मे सयुक्त हुए, तो उन्होने सजीव रूप ग्रहण कर लिया।

यहाँ आप यह सोच सकते हैं कि अजीव तत्त्व सजीव मे कैसे और सजीव तत्त्व अजीव मे कैसे ? इसमे समझने की बात यह है कि जब अजीव तत्त्व सजीव के साथ हुआ, तो उस वक्त उसकी पर्याय का चैतन्य शक्ति की पर्याय के साथ मिश्रण होने से वह सजीव कहलाने लगा। शास्त्रीय दृष्टि से यह नही है कि सर्वथा चैतन्य जड और जड चैतन्य हो गया। जड सदा जड और चैतन्य सदा चैतन्य रहेगा, परन्तु पर्याय की दृष्टि से उसके सयोग के साथ रूपी आत्मा होने का भान पडता है। यह भी ध्यान रखें कि सयोग सम्मिलित नही होता। शरीर पर वस्त्र धारण किया यह सयोग है। किन्तु वस्त्र शरीर रूप मे एकमेक नही हो जाता। सयोगित होकर भी अस्तित्व पृथक्-पृथक् रहता है।

कर्म के अनुरूप वैज्ञानिक खोज

बताया जाता है कि वैज्ञानिको ने आजकल एक विषाणु की खोज की है, जो कई प्रकार का होता है। उसके लिये वैज्ञानिको का कथन है कि वे अणु निर्जीव होते हैं। किन्तु वे मानते हैं कि जब विषाणु सजीव कोशिका के अन्दर प्रवेश करते हैं तो वे सजीव बन जाते हैं। यदि वे ही विषाणु निर्जीव कोशिका मे रखे जाते हैं तो वे निर्जीव ही रहते है। इसमे उनका तात्पर्य यह है कि ये विषाणु दोनो तत्त्वो को जोडने वाले भी बनते हैं। सजीव कोशिका और निर्जीव कोशिका—ये शब्द वैज्ञानिक क्षेत्र के हैं। शास्त्रीय दृष्टि से कोशिका एक स्कध कहा जाता है, जो सजीव और निर्जीव दो तरह का बनता है। जैसे विज्ञान इन्हे जोडने मे विषाणु की कल्पना करता है और विषाणु के आवरण प्रोटीन आदि मानता है, वैसे ही कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से इनके स्थान पर मैं लेश्या को जोड़ रहा हूँ, जो कार्माण वर्गणा के रूप मे निर्जीव थी, किन्तु जब आत्मा के साथ वह सयुक्त हुई, तो सजीव बन जाती है। जब वे लेश्यागत परिणाम पुन आत्मा से विलग होते हैं, तो पुन. वे निर्जीव बन जाते हैं।

चचलता को समाप्त करने के लिये कई लोग अलग-अलग तरीकों में साधना की विधियाँ अपनाते है। कुछ लोगो का कहना है कि इसके लिये त्राटक किया जावे। त्राटक का नाम शायद आपने नही सुना होगा। किसी भी एकान्त स्थान मे दीवार पर अमुक चिह्न अकित करके उसी की ओर एकटक दृष्टि साधकर मन मे एकाग्रता लाने का जो प्रयास किया जाता है, उसे त्राटक विधि के नाम से पुकारा जाता है। दृष्टि को एक स्थान पर केन्द्रित करके चित्त को एकाग्र करने की इस विधि को हठयोग का ही एक प्रकार समझा जाना चाहिये। एक तो यह बडी ही स्थूल विधि है और इससे देखा गया है कि आँखो की नजर खराब करने के अलावा चचलता समाप्त करने की दृष्टि से कोई लाभ नही होता। इस विधि से आत्म-शान्ति को भी कोई खास तरह की प्रेरणा नही मिलती है।

एकाग्रता लाने के लिये प्राणायाम की विधि भी अपनाई जाती है। प्राणायाम के तीन रूप मुख्य है—रैचक, पूरक और कुम्भक। श्वास-निरोध के माध्यम से ये विभिन्न प्रक्रियाएँ पूरी की जाती है। अत: प्राणायाम का मुख्यत: सम्बन्ध शरीर के साथ होने से इसका रूप भी स्थूल ही रह जाता है जो मन की सूक्ष्म क्रियाओं को प्रभावित कर सके, ऐसा कम ही देखा जाता है। प्राणायाम से यह अवश्य है कि श्वास पर कुछ काबू पा लिया जा सकता है। कई वक्त तो कुम्भक आदि के प्राणायाम की प्रक्रिया से मस्तिष्क की बारीक नसे फट जाती है और साधक जीवन भर के लिये या तो विक्षिप्तता का बोझ मोल ले लेता है अथवा अपने जीवन से ही हाथ धो बैठता है। ऐसा कुप्रभाव किसी गलत प्रक्रिया से हो जाता है।

समाधि के द्वारा भी कई लोग मानसिक नियत्रण करना चाहते है। समाधि मे वायु को कपाल मे चढा लेते है और फिर पंच भूत मे से एक-एक तत्त्व की साधना की जाती है। इसमे भी श्वास-क्रिया का ही मुख्य प्रभाव रहता है। समाधि के द्वारा दिल की धड़कन तक को रोक लेते है। किन्तु ये सारे उपाय बाहरी स्थिति पर आधारित होने से अपने स्थूल रूप मे ही शरीर की अमुक क्रियाओं को नियत्रित करते है। ये मन की सूक्ष्म चंचलताओ का निग्रह करके उसे स्थायी रूप से सद्विचारणा मे स्थिर कर सके हों, ऐसा नही पाया गया है।

हठयोग की अपेक्षा साहजिक योग की स्थिति के साथ यदि मन की चचलता को समाप्त करने की कोशिश की जाय तो चंचलता से निवृत्ति मिल सकती है। साहजिक योग की प्रक्रिया के लिये केवल बाहरी साधनो के ऊपर ही अवलम्बित नही रहना है, बल्कि बाहरी साधनो की सहायता के बाद साधना को अन्तर की कड़ियों से जोड़ना पड़ता है।

आत्मा का शुद्ध स्वरूप भी सासारिक पदार्थों के सपर्क मे आ जाने से रग-बिरगा बना हुआ है। शुद्ध श्वेत वर्ण चितकबरा बन गया है और आत्म-स्वरूप भ्रान्त-सा दिखाई देता है। भ्रात इस कारण कि मूल-स्वरूप के प्रति तो विस्मृति आ गई और साधारण रूप से मानव यही समझने लग गया है याने कि शरीर-सुख ही सब कुछ है। शुद्ध स्वरूप आत्मा का गुण है और वह आत्मा के तादात्म्य रूप से सम्बन्धित है, किन्तु उनके साथ जो अशुद्धता सलग्न हो गई है, उसे परिमार्जित करना आवश्यक है।

अशुद्ध स्वरूप का परिमार्जन

इस अशुद्ध स्वरूप का परिमार्जन दृढ निष्ठा के साथ किया जाना चाहिये और इस विश्वास के साथ कि आत्मा अनन्त शक्तियो की त्रिकाल द्रष्टा है। ये शक्तियाँ पर-पदार्थों से अनुरजित हो जाती है, किन्तु ज्योही उनकी अशुद्धता का परिमार्जन कर दिया जाय तो वे सूर्य की किरणो की तरह प्रकाशमान हो उठती है। तभी आत्मा का वास्तविक रूप सत्-चित् और आनन्द के रूप मे प्रकट होता है।

इस उद्देश्य के लिये दो बातो की जरूरत होती है। एक तो मस्तिष्क मे उभरने वाले विचार-प्रवाह को सशोधन और परिमार्जन की नई दिशा देनी होगी, तो दूसरे साता-वेदनीय के बध और उदय की आवश्यकता होगी, जिससे विचार और आचार की सहज ही मे उत्कृष्टता बन सके। चलते दोनो हैं—एक जो डामर की सडक पर चलता है और दूसरा जो ऊबड-खाबड कँटीले मार्ग पर। किन्तु पहला सहज ही तीव्र गति से आगे बढता है और दूसरा जब तक बहुत ही मजबूत इरादे का नही हो, तो रुक जाता है—न भी रुके, तो उसकी चाल धीमी और कष्टदायक रहती है। इस तरह असाता वेदनीय और साता-वेदनीय का रूपक होता है। साता-वेदनीय गति के लिये डामर की सडक बना देता है, जिस पर चाल तेजी से और सुख से हो हो सकती है। इस तथ्य पर कुछ सोचा जा चुका है कि साता-वेदनीय कर्म को बाँधने के उपाय क्या हैं और सर्व प्राणियो पर अनुकम्पा रखने एव जरूरतमद को उदार मन से दान देने के लिये मनुष्य को अपने आचरण मे क्या-क्या परिवर्तन लाने होंगे।

इसी अनुक्रम मे सराग-सयम का प्रसग आया है। आत्मा समभाव मे रमण करने लगे—उस स्थिति को सयम कहते है। यह वृत्ति उच्चतर बनती हुई साधु अवस्था तक पहुँचती है और इसकी परिपूर्ण अवस्था अरिहत भगवान की होती है। किन्तु साधु बन जाने पर अपनी दुर्बलताओ के साथ वह देश-सयम से पूर्ण सयम की ओर बढ सकता है। यह निरन्तर सशोधन और परिमार्जन की अवस्था होती है कि अशुद्धता हटकर वहाँ शुद्धता प्रसारित होती जाय। इस

जा सकता है ? तब वह पहले अपने शरीर की ताकत का प्रयोग करना चाहेगा, किन्तु उसका परिणाम क्या होगा कि या तो वह बिजली का झटका खायेगा या पखे की पत्तियों का धक्का खाकर शरीर के किसी अग को नुकसान पहुँचायेगा। सोचिये, वह अपने हाथ से उसे नही रोककर किसी रस्से की सहायता से उसे रोकने की कोशिश करता है तो भी उसे सफलता नही मिलेगी। पखा टूट तो जायेगा, किन्तु करेन्ट रहते हुए अन्य किसी विधि से वह रुकेगा नही।

किन्तु, जो उसके सही भेद को जानता है वह तत्काल उसके बटन को बन्द कर देगा और तुरन्त ही पखा रुक जायगा। पखे के चलने के मुख्य कारण को जो नही समझ पाया, तो वह उसे बन्द भी नही कर सकेगा। बिजली का करेन्ट उस पखे के चलने का मुख्य कारण है और उस कारण को समझ कर जो जब चाहे पखा चला सकता है और उसे बन्द कर सकता है। सूत्र छोटा-सा है, किन्तु जब तक चित्त मे जमे नही, तो बाधा बड़ी बनकर ही हमारी सफलता के बीच मे खड़ी रहती है।

आप बाहरी पंखे का रूपक तो समझ गये है, किन्तु अब अन्दर के रूपक को समझने की भी कोशिश कीजिये। आपके अन्दर भी मन का पखा घूम रहा है। उस मन के पखे को पकड़ने के लिये लोग तरह-तरह की विधियाँ प्रयोग मे ला रहे है। पखे को पकडने की चेष्टा या रस्से से उसे रोक लेने की कोशिश को आप त्राटक कहिये, प्राणायाम, समाधि या हठयोग का कोई अन्य साधन कहिये, बात एक सी ही है। इन विधियों से पखे पर चोट की जा सकती है या स्वय के शरीर पर भी चोट खाई जा सकती है, किन्तु बिजली के करेन्ट को बन्द नही किया जा सकता है, जिसके बिना पखा बन्द होता नही। बिजली का करेन्ट है परिणामो की चंचलता और उसका बटन है आत्मनिग्रह। इसके लिये साहजिक योग कारगर बन सकता है। आत्मनिग्रह के आदेश से ही परिणामो की गति हो सकेगी। तब वह गति सार्थक रूप मे होगी। परिणामो की बिजली का करेन्ट जब नियंत्रित गति से चलेगा, तो मन का पखा भी आवश्यक रीति से ही घूमेगा।

आत्मनिग्रह को प्राप्त करने के लिये नियमित साधना का क्रम बनाना होगा। चौबीस घंटो मे से अगर एक घण्टा भर भी यह सोचा जाय कि मन रूपी पंखे का बटन कहाँ है और उसका उपयोग कैसे किया जा सकता है, तथा इसे जानने के बाद उस बटन को काम में लाने की कला का अभ्यास किया जाय, तो फिर कैसे सम्भव होगा कि मन का पखा मनमाने तौर पर चचल गति से घूमता ही जाय और किसी से रुके नही ? पंखे का चलना फिर पखे के हाथ मे नही होगा, बटन के काबू में होगा। बस इसी बटन को पाने और उसका

यदि भगवान् कृपा-अकृपा के प्रपच मे पडते हो, तो शायद वे भगवान् ही नही रहेगे। फिर तो उनकी तुलना उस अधिकारी से की जा सकती है, जो रिश्वत के जरिये कृपा या अकृपा करता है। अतः प्रभु-कृपा के कथन का सही आशय यह है कि हम अपनी आन्तरिक कृपा को बनावे। अन्तर के चेतन प्रभु की कृपा हुई, तो आत्म-दर्शन अवश्य हो जायेगे।

एक दृष्टि से भगवान् दो तरीके के हैं। एक तो शुद्ध परमात्मा जो अष्ट-कर्म से रहित शुद्ध अवस्था मे आनन्दपूर्वक निर्वाण स्थिति मे विराजमान है। वे तटस्थ द्रष्टा होते है। ससार के किसी भी पदार्थ से उनका लाग-लगाव नही होता। दूसरे भगवान वे, जो अपने ही अन्तर मे बैठे हुए है—प्रत्येक के अन्तर मे बैठे हुए है। ये भगवान् कर्मलिप्त होने के कारण अभी तेजवान न दिखाई देते हो किन्तु ज्यो ही कर्मों का आवरण हटता है, इनका तेज प्रकट होते-होते उसी अन्तिम बिन्दु तक पहुँच जाता है जो स्वय प्रभु का तेज होता है। अतः जागरण अवस्था मे अपने ही आत्मप्रभु की जितनी अधिक कृपा होगी, उतने ही शीघ्र उसके दर्शन सुलभ हो सकेंगे—इसमे कोई सन्देह नही है।

प्रभु कृपा तो सूर्य-किरण सी होती है

सूर्य का प्रकाश आपके सामने व्यापक रूप से आ रहा है और यह सभी के पास समान रूप से पहुँच रहा है। क्या प्रकाश-दान मे उसकी कोई भेद-भरी स्थिति है ? सूर्य अपनी गति से आकाश मे समभाव से चलता है, किन्तु ज्ञानी पुरुष उस फैले हुए प्रकाश से अपना मार्ग ढूँढ लेते है। इसके विपरीत जो अज्ञानी, मोहग्रस्त और सुषुप्त बने रहते है, वे उल्लू की तरह उस फैले हुए प्रकाश को भी ग्रहण नही कर पाते है। जैसे प्रकाश को प्राप्त करने मे सूर्य की कृपा या अकृपा का कोई अर्थ नही है, उसी प्रकार प्रभु के स्वरूप को समझकर उससे प्रेरणा पाने मे भी प्रभु की कृपा या अकृपा का प्रश्न ही नही उठता।

प्रभु-कृपा का यही अर्थ लिया जा सकता है कि उन्होने जिस आदर्श साधना से स्वय को कर्मावरण से मुक्त किया, उस आदर्श-साधना से कोई भी प्रेरणा ले सकता है, बशर्ते उसके भीतर के नेत्र खुले हो। अत प्रभु कृपा की इस दृष्टि से सूर्यकिरण के साथ तुलना की जा सकती है, जो सभी के लिये उपयुक्त होती है।[1]

मन साधना के संदर्भ में

आध्यात्म साधना का मुख्य केन्द्र "मन" है। यह नीतिवाक्य अत्यत तथ्य पूरक है कि "मनोविजेता जगतो विजेता"। किन्तु मन की साधना सुगम नही

१–पावस प्रवचन, भाग ४, पृ० ६६–६७

नैतिक पतन का मूलाधार है आर्थिक असमानता एवं आर्थिक अभाव। आज का युग "अर्थ युग" बन गया है। सम्पूर्ण मानव-समाज अर्थ के पीछे वेतहासा भागा जा रहा है। अर्थोपलब्धि के लिए वह कैसे-कैसे घिनौने कृत्य करता जाता है, इसकी ओर यदि दृष्टिपात करे, तो लगता है आम इन्सान के पास नैतिकता नाम की कोई चीज नही रह गई है। आज इन्सान-इन्सान नही; केवल नोट (अर्थ) छापने की मशीन भर रह गया है।

अनैतिक सम्पदा मे आनन्द खोजने वाले तथाकथित पूँजीपतियों की मनोवृत्तियो एव उनके कुत्सित कर्मों का पर्दाफाश करते हुए आचार्यश्री ने समाज के अग्रगण्यो को बड सचोट शब्दो में सीख दी है :—

सब मे रहने वाली आत्माएँ योग्यता की दृष्टि से समान है। परन्तु उन आत्माओ ने क्वचित् अर्थ को ही ग्रहण किया, अत. विचित्रता पैदा हुई। यदि ससार की सभी आत्माएँ साँसारिक पदार्थो मे न उलझकर अध्यात्म-जीवन के पूर्ण लक्ष्य को ग्रहण करे और ऐसा चिन्तन करे कि जितनी भी आत्माएँ है, वे सव मेरी जैसी आत्माएँ है, मेरे तुल्य है, तभी कल्याण हो सकता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाये तो योग्यता की दृष्टि से वे परमात्मा के तुल्य है और जब ऐसी स्थिति है, तो इन आत्माओ के साथ द्वन्द्व क्यो करूँ, धोखेबाजी क्यो करूँ ? यदि मैं आध्याध्मिक जीवन की दृष्टि से चिन्तन नही करता हूँ, तो मैं परमात्मा के साथ धोखा करता हूँ। मैं मनुष्य को नही ठगता हूँ, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा को ठगता हूँ। मैं अपने पडोसियो को धोखा देकर प्रसन्न होता हूँ, तो आध्यात्मिक दृष्टि का चिन्तन मुझे बताता है कि तू आध्यात्मिक नही है, भौतिक है। तू पडोसियो को अपने तुल्य नही समझ रहा है। यदि समाज की विपमता को देखकर खुश होता है, तो समझना चाहिए कि वह भौतिक है, आध्यात्मिक नही है, अज्ञानी है। समाज मेरे भाइयो का समूह है। मै अपनी हवेली मे वैठकर गुलछर्रे उडाता हूँ और यह सोचता हूँ कि मेरे पास तो पक्का मकान है, तीन मजिली हवेली है, मैं तो सव तरह से सुखी रह सकता हूँ। मेरे पास मे रहने वाले गरीवो की झोपड़ियाँ भले ही जले, नष्ट हो, मेरा क्या विग-डता है ? यदि इस प्रकार का चिन्तन है, तो यह वहुत वड अज्ञान का चिन्तन है। वह नही सोच पाता है कि यह हवेली वनाई किसने है ? इसको वनाने वाले कौन है ? क्या स्वय मेहनत करके वनाई है यह हवेली ? इसके निर्माण मे उसने अपने शरीर का श्रम लगाया है या श्रम करने वाले दूसरे है ? जिन्होने श्रम करके हवेली को वनाया है, वे व्यक्ति झोपडियो मे रह रहे है। उनको कितना क्या कष्ट हो रहा है, आवश्यक सामग्री भी उनको मिल रही है या नही ? उनकी दशा कैसी है ? यदि वे इसमे सहयोग नही देते तो तीसरी मजिल पर नही वैठा जा सकता था। तीसरी मजिल पर वैठाने का श्रेय किसी को है तो

आत्म-साधना की ओर जिसने आगे कदम बढाया है, उसके सामने दो ही विकल्प रहते है कि या तो वह अरिहन्त परमात्मा की शरण मे जाकर उनकी प्रार्थना एव निज-नियत्रण के आधार पर मन को एकाग्र बनाने का अभ्यास करे तथा उस एकाग्र चित्तता से प्रभु की भक्ति और सेवा साधे अथवा मन की गोता-खोरी मे उलझ कर अपनी साधना की स्थिति को खो बैठे। प्राय कई साधको के ऐसे भाव बन जाते हैं कि जब तक मन की चचलता समाप्त न हो और उसे वश मे न कर सके, तब तक साधना के क्षेत्र मे आगे कुछ भी नही किया जाना चाहिए। किन्तु निराशा के ऐसे अधकार मे डूबने की जरूरत नही है, क्योकि अरिहन्त परमात्मा के आदर्श स्वरूप को गहराई से हृदयगम करते रहे तो शीघ्र ही मन वश मे होकर रहेगा। उनका आदर्श स्वरूप इतना रोचक एव अनुप्रेरक है कि एक बार ज्ञान-दृष्टि से उसे समझने और परखने का प्रयास कर लिया जाय, तो मन मे उसे निजात्मा के लिये भी पा लेने की अडिग ललक पैदा हो जाती है। यह ललक ही मन को इतनी मजबूती से उस दिशा मे मोड़ देगी कि वह पथ भ्रष्ट होने की कोशिश तक नही करेगा।

यह मानकर चलिये कि ससार मे एक भी ऐसा कार्य नही, जिसे सकल्पवान् और साहसी पुरुष पूरा न कर सके। अरे, साहसी पुरुष ही तो असभव को भी सभव करके दिखाते है। फिर मन की चचलता पर रोक लगाने का काम कोई असभव काम नही है। अरिहन्त परमात्मा के दिव्य स्वरूप मे मन को एकाग्र करने के अभ्यास से चचलता को धीरे-धीरे समाप्त करते जाना कठिन नही होता। दुनिया मे ऐसा कोई तत्त्व नही, जिसकी स्थिति का पता नही लगाया जा सके। यह पता लगाने का काम भौतिकता की दृष्टि से ही नही होता, उसमे आध्यात्मिक जीवन की परिपुष्टि का ज्ञान भी आवश्यक होता है। बल्कि यो कहा जाय कि आध्यात्मिक क्षेत्र किसी भी तत्त्व का पता लगाने मे कभी असफल नही होता, जबकि भौतिक विज्ञान की कही भी सम्पूर्ण रूप से पैठ नही होती है। जो उसने पता लगा लिया है, वह कही भी पूर्ण नही है। मन के सम्बन्ध मे ही देखिये कि विज्ञान न तो इसके स्वरूप का अब तक ठीक पता लगा पाया है, न वह मन की चचल गहराइयो मे ही उतर कर उसकी गति के बारे मे कोई अनुमान लगा सका है, किन्तु आध्यात्मिकता के लिये मन ऐसा कोई दुरूह तत्त्व नही, जिसका वह पता नही लगा सके, बल्कि मन की गति के प्रत्येक रूप का पूर्ण विवेचन आध्यात्मिक क्षेत्र मे खोजा हुआ मिलेगा। इसलिये निराशा का कोई कारण नही कि मन को वश मे किया नही जा सकता।

मन को स्थिर करने की सचोट विधि का उल्लेख आध्यात्मिकता मे है। मन के परिणामो की चचलता कई प्रकार से मनुष्य के सामने आती है। उस

जो कुछ संचय है, उसका स्वल्प-से-स्वल्प भाग मैं अपने लिए ग्रहण करूँ और जो कुछ शेष बचे, वह अन्य अभावग्रस्त व्यक्तियो के लिए समवितरण मे काम आये। मैं सबके साथ सहानुभूति रखते हुए चलूँ। यदि इस प्रकार की भावना मानव के मस्तिष्क मे आ जाती है, तो वह अध्यात्म के धरातल पर अपने-आपको टिकाये रख सकता है और सकटग्रस्त दु:खी व्यक्तियो के आँसू भी पोछ सकता है। वह अध्यात्म-मार्ग, श्रेयमार्ग पर आरूढ हो सकता है। यदि वह इस प्रकार का चिन्तन नही करेगा, तो स्वय आध्यात्मिक मार्ग से गिरेगा साथ ही दूसरो को भी गिराने मे सहायक (निमित्त) बनेगा।

कोई व्यक्ति कितना भी सम्पत्ति-सम्पन्न क्यों न हो, परन्तु उस सम्पत्ति को यदि कायम रखना है, तो जितनी भी जनोपयोगी सामग्रियाँ है, उनके यथा-अवसर समवितरण मे आस्था होनी चाहिये। तभी समता-दर्शन की भूमिका पर आध्यात्मिकता का साकार रूप बन सकता है।

अत: आज के मानव, चाहे वे किसी भी दशा मे हों, किसी के पास पैसे का धन हो, बुद्धि का धन हो, उन सबको अपने-अपने धन का सदुपयोग करना चाहिये। यदि अपने पडौस मे, गाँव मे, राष्ट्र मे रहने वाले भाइयो के साथ सद्व्यवहार किया, समवितरण किया, तो बन्धुओ तभी आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी।[१]

चित्त का अर्थ चैतन्य है और उसका शुद्ध अर्थ है ज्ञान। ज्ञान उस तत्त्व से अलग नही है। ज्ञान उसका गुण है। वह ज्ञानवान सत् है और सत् का ज्ञाता कहलाता है। यदि वह ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, चरम सीमा को पा लेता है, तो वह आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। ये आत्मा की तीन अवस्थाएँ है—सत्, चित्त और आनन्द। जो इन तीनो अवस्थाओ से परिपूर्ण है, वह परमात्मा है। जो इनमे से दो अवस्थाओ—सत् और चित्त से युक्त है, वह आत्मा है। उसमे भी पूर्णता प्राप्त करने का सामर्थ्य समाया हुआ है, परन्तु अभी वह कर्मों से आच्छादित है। उस पर मोह और माया का आवरण लगा हुआ है। वह अपने आनन्द को पाने के लिए छटपटा रही है। वह देखती है कि मेरा प्रिय आनन्द कहाँ है। वह इस आनन्द की खोज मे जहाँ भी राह मिलती है, वही बढती है। उसको पता लगा कि अमुक वस्तु मे आनन्द है, तो अपने समस्त जीवन की शक्ति लगाकर वह उस स्थान पर पहुँचने की कोशिश करती है, क्योंकि वह आनन्द की भूखी है। परन्तु वहाँ पहुँचने पर भी कष्ट मिलता है और आनन्द की उपलब्धि नही हो पाती है, तब वह घबरा कर सोचती है कि यहाँ आनन्द नही है, पहाड की चोटी पर आनन्द है। लेकिन पहाड के इर्द-गिर्द जगली जन्तु है और भयावने दृश्य है। वहाँ पहुँचना शक्य नही है। परन्तु उसे

१—आध्यात्मिक आलोक, पृ० ३०-३२

मन ऐसा चचल तुरग है, जिस पर नियत्रण न कर सको, तो वह न जाने कहाँ-कहाँ और कैसी-कैसी स्थिति में गिराता रहता है, जिसका कोई अनुमान भी नही। परन्तु यदि इसी तुरग को आप एकाग्रता की लगाम लगा सके, तो फिर इस तुरग के समान शक्तिशाली एव गतिशाली भी दूसरा साधन नही मिलेगा। लगाम से पूरी तरह नियत्रित यह तुरग फिर आत्म-विकास-पथ पर इतनी सन्तुलित और स्वस्थ गति से चलेगा कि फिर आपकी चरम यात्रा आसान बन जायगी।

कहा गया है कि "मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो।" मनुष्य के बन्ध या मोक्ष का कारण मन ही होता है। मन का चचल घोडा बेकाबू है, तो वह बन्ध कराता जायगा, जिसके कारण आत्मा कर्मों से बधकर जन्म-मरण के चक्र मे भ्रमित होती रहेगी। मगर अगर यही घोडा काबू मे आ जाता है, तो फिर इसी एकाग्र मन के जरिये मोक्ष तक की महायात्रा सफलतापूर्वक पूरी की जा सकती है।

अन्तर की कडियो को जोडकर ही मन की चचलता को मेटा जा सकता है, ऐसा मेरा मानना है। बाहर के साधन मन पर मार कर सकते हैं, मगर उसकी चचलता को रोक नही पायेंगे। ये अन्तर की कडियाँ जब अरिहन्त परमात्मा के दिव्य स्वरूप-चिन्तन के साथ जुडती है, तब उनका सीधा प्रभाव मन की चचलता पर पडता है। एकाग्रता ही चचलता की विपरीत स्थिति होती है। जब एकाग्रता आ जाय, तो चचलता का अभाव हो जायगा। भगवान् के दिव्य स्वरूप मे मन जब एकाग्र होता है, तो स्वाभाविक रूप से उसकी चचलता समाप्त हो जाती है।

आन्तरिकता के इस जीवन्त प्रयोग को एक दृष्टान्त से समझिये। एक छत का पखा बिजली के करेन्ट से चल रहा है। उसकी कितनी तीव्र गति होती है, चचलता होती है। उसके चलते वक्त यदि गर्मी का तापमान बढ जाय और वह साधारण सीमा से ऊपर चला जाय तो पखे की हवा का अनुभव भी कैसा बन जायगा ?

मैंने तो सुना है, स्वय ने कभी अनुभव नही किया। किन्तु आप ही लोगो मे से कहते हैं कि वैसी स्थिति मे पखे की हवा भी इतनी ज्यादा गरम हो जाती है कि उसे सहन करना मुश्किल हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि तब पखा बन्द कर देने की जरूरत पैदा हो जाती है।

अब कल्पना कीजिये कि उस पखे को बन्द करने का भार ऐसे आदमी पर आ गिरा है जो यह नही जानता कि इस चलते हुए पखे को बन्द कैसे किया

जा सकता है, परन्तु इनसे ही आनन्द मान लेना और इनसे ही चिपक जाना, यह अज्ञान की दशा है। इसी से आत्मा के आनन्द की शक्ति दब रही है और उसका ह्रास हो रहा है। आज के मानव को सोचना चाहिए कि मैं पूरी शक्ति लगा कर इन पदार्थों को बटोर तो रहा हूँ, परन्तु इनके साथ मेरा सम्बन्ध नही है। ये स्थायी नही है। दुनिया चाहे जिधर भी दौड़ रही हो, परन्तु क्या हम भी उधर ही भागते जाये। दुनिया मे जिधर भी जाइए, उधर यही रट लग रही है—हाय पैसा! हाय पैसा! हाय धन! यदि यह धन मिल भी गया, तो वह कितने दिन तक टिकेगा? उससे आनन्द की कितनी अनुभूति होगी? इसका चिन्तन करना चाहिए और यदि चिन्तन किया गया, तो अनैतिकता की ओर जीवन को नही ले जाते हुए सोचेंगे कि यह तो साधन है—साध्य नही है। साधन को सीमित रखना चाहिए। पेट की पूर्ति तो हर कोई कर सकता है। मनुष्य ही करता है, केवल यही बात नही है। मनुष्य करता है, तो इसमे क्या विशेष बात है? पक्षी के पास तो केवल एक चोच होती है, परन्तु वह भी भूखा नही रहता है और परिवार का पोषण भी करता है। पशु भी अपना कार्य करते है। परन्तु मानव के पास तो दो हाथ, दो पैर और विकसित मस्तिष्क है। क्या वह भूखा रह सकेगा?

अरे, भूख पेट की नही, परन्तु पेटी की है। उसके लिए इन्सान अपनी शक्ति को कहाँ लगा रहा है, और कहाँ-कहाँ भागता फिर रहा है? यह पेटी की तृष्णा जल्दी से पूरी नही होती है। मनुष्य इसमे आनन्द का अनुभव करना चाहता है, इसलिए वह नैतिकता और अनैतिकता कुछ नही देखता है। जैसे कोई व्यक्ति सोचता है कि ईमानदारी से व्यापार करूँगा तो थोड़े से पैसे पैदा होगे। अतः इसमे चालाकी की जाए, ताकि पैसे ज्यादा मिल सकें और वह वस्तु में मिलावट करना चालू कर देता है। ग्राहक की आँखो मे धूल डालने के लिए असली घी मे डालडा या अमुक जाति का तेल डालने की कोशिश करता है। इस मिलावट की दृष्टि से व्यापारी अपनी आत्मा को कितनी मैली कर रहा है? वह सोच भी नही पा रहा है कि उसका जीवन मानवीय धरातल पर है, या अमानवीय धरातल पर है? वह जीवन राक्षस का है, या मनुष्य का है? यदि आप इसे गहराई से सोचेंगे तो प्रकट होगा कि जो व्यक्ति मिलावट करता है, वह अत्यन्त क्रूर और निर्दयी बन रहा है। कोई पैसे का गुलाम बनता है, तभी वस्तु मे मिलावट करता है। इससे मानव को कितना नुकसान होता है, इसका चिन्तन वह नही करता है। जिसके साथ जिस पदार्थ का मेल नही है, यदि वह उसमे मिला दिया जाता है, तो इस सयोग से जो पदार्थ बनता है, वह जहरीला बन जाता है। इस अनुचित सयोग से न मालूम मानव के जीवन को कितनी क्षति पहुँच रही है! इसका उसको ध्यान नही है। इस तरह से जो वस्तुओ में मिलावट करता है, वह चाहे किसी प्रलोभन मे आकर ऐसा करता हो, परन्तु मैं अनुमान से चिन्तन करता हूँ कि ऐसा करके वह मनुष्यो के लिए

सदुपयोग करने की स्थिति बन जाय तो समझिये कि अरिहन्त परमात्मा की भक्ति और सेवा का एक बहुत बडा भेद हाथ लग गया है। जब तक आपमे मन को समझ कर उसकी चचलता को रोकने की कला हाथ मे नही आयेगी, तब तक चाहे कितनी ही अन्य विधियो का आप प्रयोग कर ले, वास्तविक सफलता हाथ नही लगेगी।

बुनियादी तौर पर मैं यह बताना चाहता हूँ कि मन के परिणामो की चचलता को समाप्त करने के लिये पहले उन परिणामो को चचल बनाने वाले कारणो को भलीभाति समझ लेना होगा। तब बाद मे उनसे सघर्ष करके उन कारणो को मिटाना पडेगा। ऐसे कौन-से कारण हैं—कौन-से निमित्त बन रहे है, जिनसे परिणाम चचल होते रहते हैं ? ऐसे कौन-से ढग हो सकते है, जिनके द्वारा चचल परिणामो के समय भी विचलित होने से रुका जा सकता है ? इस सारी प्रक्रिया को ध्यान मे रखकर उन मूलभूत कारणो पर पहले अकुश लगाना होगा।[1]

अध्यात्म मे नैतिक स्वर

आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता मे विश्वास करते हुए ससार की समस्त आत्माओ को आत्मवत् समझना जहाँ "आत्मवत सर्वभूतेषु" की भावना का प्रादुर्भाव होता है, वही आत्म विकास के द्वार उद्घाटित होते हैं, और जहाँ आत्मवत् भावनाएँ होगी, वही जीवन मे नैतिकता का अनुशीलन सहज सयोगिक होगा। आज आध्यात्मिक ह्रास का एक कारण नैतिक पतन की पराकाष्ठा भी है। मूल को न सीचकर शाखा-प्रशाखाओ को सीचने के समान ही आज अधिकाश धर्मोपदेशक अध्यात्म की भूमिका विना ही गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ खडी करने का प्रयास करते पाये जाते हैं।

किन्तु यह तथ्यात्मक सत्य है कि जन-जीवन मे नैतिक निष्ठा उत्पन्न किये बिना अध्यात्म का तरु अथवा भवन खडा नही रह सकता है। ऐसी स्थिति मे यह नितान्त आवश्यक है कि अध्यात्म-उपदेशक नैतिक परिष्करण के दायित्व को भी भूमिका-शुद्धि के रूप मे अपने हाथ मे लें।

नैतिक ह्रास के इस युग मे श्रद्धेय आचार्यश्री ने समाज और राष्ट्र को ही नही सम्पूर्ण मानव जाति किवा विश्व को "समता दर्शन" की अप्रतिम देन दी है। इसकी विस्तृत चर्चा तो हम एक स्वतन्त्र प्रकरण मे प्रस्तुत कर चुके हैं, किन्तु प्रकृत मे हम उन मुद्दो का स्पर्श कर रहे हैं, जिनमे आचार्यश्री अपने आम अध्यात्म-प्रवचनो मे नैतिक जागरण की अध्यात्म मूलक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

१–ताप और तप, पृष्ठ १२६-१३७।

विरक्ति के स्वर

उपर्युक्त सभी विषयों के आनुषगिक प्रतिपादन के उपरात अध्यात्म प्रवक्ता का चरम एव परम प्रतिपाद्य होता है आत्मा की अविनश्वरता एव भौतिक पदार्थों की क्षणभगुरता का चित्र-सा प्रस्तुत करना। मिथ्यात्व से मोहित एवं अज्ञान से अधी चेतना अपने अविनाशी स्वरूप को विस्मृत कर देह, धन-धान्य, परिवार, आदि नाशवान पदार्थो को वटोरने एव उनकी साज-सज्जा मे ही अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणो को समाप्त कर देती है। अत: मिथ्यात्व एव अज्ञान के सघन अधकार को समाप्त करके आत्म केन्द्र से भटकी आत्माओं को स्वरूप-बोध की ओर उत्प्रेरित करना आत्मद्रष्टा प्रवक्ता का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। यह तभी सभव है जबकि देहादि नाशवान् पदार्थों के प्रति निर्ममत्व के भाव जागृत किए जाये तथा आत्मा के मौलिक रूप का चिंतन किया जाय।

श्रद्धेय आचार्य श्री अपने श्रोताओ में विरक्ति-बोध जागृत करने मे कितने सक्षम एवं सफल रहे है, यह पाठक स्वयं निर्णय करेंगे, तो अधिक श्रेष्ठ रहेगा—

अन्न और जल का शरीर के साथ एक तादात्म्य संबंध है। वर्तमान शरीर अन्न के बिना नही रह सकता, पानी के बिना जीवन कार्य नही चल सकता और हवा के बिना तो यह शरीर रह ही नही सकता। अन्न, पानी, और हवा ये तीनो तत्त्व जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इनसे ही शरीर मे प्रकाश दीखता है, किन्तु इन तीनो के साथ आध्यात्मिक दृष्टि रहनी चाहिए। आध्यात्मिक श्रद्धा के बिना जीवन का पौधा पनप नही सकता है। वह तो समय से पहिले ही कुम्हला जावेगा। सामग्री सभी कुछ उपलब्ध है। अन्न, जल और हवा तीनों का पूर्ण सहयोग है। ऐसी स्थिति में यदि आतरिक जीवन की आध्यात्मिक ऊर्जा शरीर मे नही है, तो शरीर का कोई मूल्य नही है। उसकी सुन्दरता उस घड़ी हाथ मलती रह जायेगी। शरीर सुन्दर है, उसका पोषण करने के लिए तीनों तत्त्व विद्यमान है, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति के बिना सभी व्यर्थ हैं। जीवन में प्राणो का मूल्य होता है। इसी से सारे जीवन का मूल्य बढता है। शरीर बड़ा सुन्दर है, उसके पोषण के लिए तीनो तत्त्व भी प्राप्त है, किन्तु एक तत्त्व के बिना आपका शरीर एक "शव" से अधिक कुछ नही है, उसी तत्त्व के कारण ये सारे आकर्षण है। ससार मे जितने भी अनात्म तत्त्व है, उनका अपना कोई महत्त्व हो, चाहे न हो, पर आत्मा का सयोग मिलने पर उनमे एक विशेषता प्रगट हो जाती है। बाह्य तत्त्वो को अधिक बढावा देने से, अन्तर की प्रगति रुक जाती है। इससे जीवन का विकास नही हो पाता। जब तक जीवन का विकास नही होगा, तब तक जीवन सुखी नही हो सकता। आज मानव-जीवन मे जो असतोष व्याप्त है, चारो ओर जो विषमताएँ दीख पड़ रही है,

उन श्रम करने वाले व्यक्तियो को ही है। याद रखना चाहिए कि पडौसियो और श्रम करने वालो के साथ आत्मीयता का व्यवहार नही रखा तो आप भी क्या सुरक्षित रह सकेंगे ?

आज हिन्दुस्तान की दशा बडी विचित्र है। जिस देश का अधिकाश भाग गाँवो मे रह रहा है, उन ग्रामीण व्यक्तियो की दशा क्या है ? वे क्या सोच रहे हैं ? वे जैसे-तैसे अपने पेट पर पट्टी बाँध कर जीवन बिता रहे है ? इनके जीवन की दशा दयनीय हो रही है।

परन्तु यह सब देखने-सोचने, की फुर्सत किसको है ? कहावत है—"मरे जो दूजा, हम कराये पूजा।" दूसरे लोगो की कैसी भी दशा हो, हमको इसकी कोई परवाह नही। हमारा उनके साथ कोई सम्बन्ध नही। परन्तु हमारा ऐसा सोचना ज्ञान के साथ है या अज्ञान के साथ है ? क्या इन भाइयो के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नही है ? वे भाई जिस रोज सम्बन्ध नही रखेंगे, उस दिन ज्ञात होगा कि हमारी क्या दशा बन रही है ? हमे जिन्दा रहने का अवसर तभी मिलेगा, जब उन व्यक्तियो के साथ आत्मीय-सम्बन्ध बनाये रखेंगे। भले ही आज वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर है परन्तु सब हमारे साथी है। इनके साथ हर व्यक्ति की आत्मीय भावना होनी चाहिए और चिन्तन करना चाहिए कि ये मेरे भाई है, मैं इनका भाई हूँ।

आज के अधिकाश भाई यही सोचते हैं कि मजदूरी का काम तो मजदूरो का है। हम मेहनत-मजदूरी क्यो करे ? यह व्यर्थ का वडप्पन मध्यम-वर्ग मे विशेष रूप से देखने मे आता है। अरे ! मजदूरी करना कोई छोटा काम नही है ! इस झूठी प्रतिष्ठा के भ्रम मे फसे हुए मध्यम वर्ग की स्थिति क्या है ? यह वर्ग बडी बुरी तरह से पिसा जा रहा है। उसकी आमदनी के जरिए टूट रहे है और दो पाटो के बीच मे जैसे दाने पिस जाते है, वैसे ही मध्यम वर्ग पिसा जा रहा है। ऐसी दयनीय स्थिति मे भी मध्यम वर्ग अपनी झूठी इज्जत को लेकर चल रहा है और अभी तक भी इस वर्ग मे जागृति नही आई है। इसने कुरीतियो का भारी बोझ बढा लिया है और व्यर्थ के कार्यों मे फिजूल खर्च कर रहा है। कष्ट पाते हुए भी वह कुछ नही विचार रहा है। अरे ! लौकिक रीति-रिवाजो की वात तो दूर रही, आत्मशुद्धि के लिए की जाने वाली तपस्याओ के पीछे भी झूठी प्रतिष्ठा और कुरीति का भूत लग गया है। कोई वहिन तपस्या कर रही है। उसने अठाई आदि कर ली, तो उसके पीछे भी कितना क्या किया जाता है, उसका हिसाब आप जानते होगे ! तपस्या तो आत्मशुद्धि के लिए होती है, परन्तु उसके पीछे भी वड-वड आडम्वर होने लगे हैं। यह भी क्या तपस्या है ! ऐसी स्थिति कभी पैदा नही करनी चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मेरे पास सम्पत्ति का या शक्ति का

यह नही सोचता कि शरीर पर यह तेज, यह चमक कहाँ से आ रही है ? अभी तक मूल के महत्त्व को उसने नही समझा है। इसी कारण वह बाहरी टीपटाप मे उलझ रहा है। वह इस बात को भूल गया है कि जिस दिन शरीर से मूल अलग हो जायेगा, इसकी सारी सुन्दरता मुरझा जायेगी। वह मूल तत्त्व "आत्मा" है। इस आत्म-तत्त्व की सुरक्षा करने से ही जीवन की सुरक्षा होती है। इसकी शक्ति से ही शरीर सुन्दर शरीर है। इसके बिना वह केवल "शव मात्र" है।

आज का मानव इन्द्रिय-पोषण की ओर अधिक लगा हुआ है। शरीर के अग-प्रत्यग के बनाव-शृङ्गार मे ही उसका सारा समय बीत रहा है। कभी बालो मे तेल डालता है, कभी आँखो मे सुरमा लगाता है। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता है, परन्तु फिर भी उसका जीवन दिनोदिन मुरझा रहा है। उसमे तेज नही है, ओज नही है। तनिक सी धूप लगते ही उसकी चमक फीकी पड़ जाती है। क्यो ?

इसलिए कि उसकी जीवनी शक्ति प्रत्येक क्षण क्षीण हो रही है। मूल को भोजन नही मिल रहा है। जीवन की जडे सूखती जा रही है। समूचे शरीर का नियामक आत्मा, विकारों से घिर गया है। उसकी वास्तविक खुराक उसे नही मिल पा रही है। इसकी ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। एकान्त रूप से बाहरी तत्त्वो की ओर ध्यान रखने से जीवन का आन्तरिक मूल तत्त्व "असुरक्षित" रह जाता है। जीवन के प्रत्येक भाग मे विकृति आने लग जाती है। अत: बाह्य सुधार के साथ-साथ आन्तरिक शक्ति की ओर भी ध्यान दो। कर्त्तव्य पालन के द्वारा मूल का सिंचन करो। तभी आपको सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूलकर केवल बाहरी रूप-रंग का बनाव-सुधार किसी भी स्थिति मे लाभदायक नही है।

मूल की ओर ध्यान रखने से जीवन का विकास होगा। मानसिक भावना मे निखार आयेगा। धर्मशास्त्र और धर्म-गुरुओ के प्रति सच्ची श्रद्धा जागेगी। ऐसा विचार मन मे कभी नही आयेगा कि धर्म स्थान केवल परलोक सुधारने के लिए ही है। इस लोक से उसका कोई सम्बन्ध नही है। पौष्टिक आहार से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है ठीक उसी प्रकार धर्म-स्थान मे आकर उपदेश-श्रवण करने से आत्मा को पौष्टिक विचार मिलते है। इन विचारो से आध्यात्मिक चेतना पुष्ट होती है। जीवन का संरक्षण होता है। दिन-रात के चौबीस घण्टों में से यदि एक घण्टा भी इस ओर लगा दिया तो जीवन की मूल शक्ति को बडा बल मिलेगा। उसका सुधार होगा। वह दिनोदिन कल्याण के मार्ग पर प्रगति करता चला जायेगा।

यह विश्वास हो जाता है कि पहाड की चोटी पर आनन्द की अनुभूति होने वाली है, तो वह शरीर की भी परवाह नही करती है और पहाड की चोटी पर पहुँचने की कोशिश करती है। वहाँ पहुँचने पर भी आनन्द का अनुभव नही होता है। इसी प्रकार समुद्र की गहराइयो मे गोते लगाकर अथवा आकाश मे उडाने भर कर वह आनन्द प्राप्त करना चाहती है, लेकिन उसे वहाँ पर भी आनन्द नही मिलता है।

यह सब तो मृगतृष्णा के पीछे भटकना है। जैसे ग्रीष्म-ऋतु मे मृग को प्यास सताने लगती है, तब वह पानी की खोज मे इधर-उधर दूर-दूर तक दृष्टि दौडाता है। रेतीले मैदान मे सूर्य की किरणो की चमक से उसे प्रतीत होता है कि वहाँ पानी हिलोरे ले रहा है। अत वह सारी शक्ति लगा कर पानी पीने के लिए वहाँ पहुँचता है। लेकिन वह देखता है कि यहाँ तो पानी नही है। क्या मैं भ्राति मे पड गया ? वह फिर दृष्टि दौडा कर देखता है तो ज्ञात होता है कि पानी तो पीछे रह गया है। वह फिर उसी तरफ दौड जाता है। लेकिन वहाँ पर भी वास्तविक पानी नही होने से उसकी सम्पूर्ण आशाओ पर पानी फिर जाता है। सूर्य की किरणो से रेतीले मैदान मे जो पानी-जैसा दृश्य दिखलाई देता है, उसको मृगतृष्णा की सज्ञा दी गई है।

भ्रांतिवश जैसे मृग पानी की खोज मे दौडता-दौडता अपने आपको समाप्त कर देता है, वैसी ही दशा आज के अधिकाश मानवो की हो रही है। मनुष्य ज्ञान से युक्त है, परन्तु उसका प्रयोग वह पाँचो इन्द्रियो के विषय-सुख की प्राप्ति मे कर रहा है, जिनमे वास्तविक आनन्द नही है, सिर्फ लुभावने दृश्य दिखलाई देते है।

भौतिक पदार्थो के पीछे मनुष्य भटक रहा है और मानता है कि उनको प्राप्त करने के लिए, चाहे जो साधन अपनाना पडे, भले ही खून-पसीना एक हो जाये, परन्तु कोई परवाह नही। उसे तो चाहिए चन्द चादी के टुकडे। वह सोचता है—इनको जितना इकट्ठा कर लूँगा उतना ही आनन्द मिलेगा। वह ऐसा कभी नही सोचता है कि जिन्होने काफी धन इकट्ठा कर लिया है, क्या उनको आनन्द मिल गया ?

आज भारतवासियो की दृष्टि भी पाश्चात्य जगत् की तरफ लगी हुई है। वे सोचते हैं कि अमेरिका वाले आनन्द मे होगे, क्योकि उनके पास बहुत पैसा है। परन्तु पूछिए उनसे कि आप कितने आनन्द मे हैं ? सुख-शाति मे तो हैं ? बडी हवेलियो मे रहने वालो से भी पूछिये कि आपको सुख है या दु ख ? वे अपनी सारी शक्ति लगा करके मृगतृष्णा की तरफ भाग रहे हैं। वे नही सोचते हैं कि यह जीवन क्यो है और क्या है ? यद्यपि इन पदार्थो का सर्वथा निषेध नही किया

दुनिया के लोग समझते है पकज यानी कमल पर लक्ष्मी का निवास है और वह कमल का सहारा लेकर चलती है, परन्तु ज्ञानी जनो का कथन है कि कमल के सहारे लक्ष्मी टिक नही सकती, क्योकि कमल स्वयं चचल है। कमल कीचड़ से पैदा होनेवाला है और जो कीचड से पैदा होनेवाला है, उसके साथ लक्ष्मी कब टिक सकती है ? लक्ष्मी तो निर्मल बुद्धि को देखकर ही स्थायी रह सकती है। परमात्मा के चरणों का सहारा लक्ष्मी ने लिया, कमला ने लिया, तो क्या समझकर लिया ? इसीलिए कि प्रभु के चरण निर्मल हैं। उनमे मल नही है और वे स्थिर है, कभी भी विचलित होने वाले नही है। ऐसे प्रभु के चरणो मे कमला बसने लगी और उसने पकज को छोड़ दिया, क्योकि वह मल-युक्त था।

चचला कमल को छोडकर प्रभु के चरणों मे पहुँची। यह एक अलकार है। इस अलकार के माध्यम से आप वास्तविक सुख की सिद्धि को, लक्ष्मी को समझिए। आत्मा को वास्तविक सुख दिखानेवाली वह कमला आध्यात्मिक लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी को निर्मल चरण ही पसद हैं। वह प्रभु के चरणो को निर्मल समझकर ही उनमे स्थिर है।

हाड, मॉस, रक्त, आदि से बने मनुष्य के चरण तो नाशवान हैं। ये चरण स्थिर रहनेवाले नही है, परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के चरण तो श्रुत और चारित्र रूप है। श्रुत और चारित्र रूप चरण परमात्मा की विराट् शक्ति के अटल स्तम्भ है। जिस व्यक्ति को परमात्मा का स्वरूप पसन्द है, जिसको स्थायी शाति चाहिए और जो सदा के लिए आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना चाहता है, वह प्रभु के श्रुतधर्म और चारित्रधर्म रूप इन दोनो परम पवित्र चरणो को ही ग्रहण करेगा।

श्रुत का तात्पर्य है—आत्मा और परमात्मा का सही विज्ञान। इस ससार में कौन-से पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं, कौनसे छोड़ने योग्य है और कौनसे जानने योग्य है, इस प्रकार के सही आध्यात्मिक विज्ञान के साथ जो निर्मल ज्ञान है, उस निर्मल ज्ञान के साथ वैसा ही विश्वास भी है, तो वह श्रुत रूपी चरण है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संसार के पदार्थों का ज्ञान किया, फिर उनमे से त्यागने योग्य पदार्थ का त्याग करके और ग्रहण करने योग्य पदार्थ का ग्रहण करके समग्र जीवन को उस आध्यात्मिक सुख के लिए लगा लिया, तो वह चारित्र रूपी चरण है।

ये दोनों मूल आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं। इन दोनो शक्तियों के सहारे ही आत्मा चरम सीमा की अवस्था मे परमात्मा बन सकती है। उसकी आराधना के लिए ही यह मनुष्य तन है। इस मनुष्य जन्म में जिसने प्रभु के चरणो की आराधना को समझ लिया, वह स्थायी रूप से लक्ष्मी को पा लेगा। वह स्थायी

जहरीला काम करता है। ऐसा व्यापारी या कोई व्यक्ति क्या वस्तुत देश का ईमानदार और वफादार नागरिक है ? ऐसे आदमी क्या आत्मा की खोज कर पायेंगे ? ऐसे व्यक्तियो के लिए क्या कुछ कहा जाए।

मैं सुनता हूँ कि जितनी ऊँचे दर्जे की दवाइयाँ भारत मे बनती है, उनमे भी बेईमानी चलती है। आज नकली दवाएँ बनने लगी हैं। अरे ! रोगी रोग से त्राण पाने के लिए दवा खरीदता है, किन्तु निर्माता उन औषधियो को भी शुद्ध नही रहने देते हैं। मैंने यह भी सुना है कि क्लोरोमाइसिन की गोलियाँ आदि को खोलकर दुकानदार बदल लेते हैं और उनमे कुछ दूसरे तत्त्व डालकर वे गोलियाँ दे दी जाती हैं, जिससे रोगी का जीवन खतरे मे पड जाता है, और कोई असर नही होता है। एक दृष्टि से देखा जाये, तो रोगी और दवा मे मिलावट करने वाले आपस मे एक दूसरे के भाई है। यह व्यापारी का दोष है, व्यापार का नही। जब व्यापारी इस प्रकार की मिलावट और कालाबाजारी करते हैं तो अन्य नौकरी वाले भी उनसे पीछे नही हैं। वे भी दूसरे व्यापारी वनने की तैयारी कर रहे हैं। इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति इन्सान-इन्सान के बीच चले, तो क्या वे मनुष्य है ? मैं तो कहूँगा कि वे मनुष्य से भी गये-वीते हैं। वे पशु से भी बदतर हैं। पशु कम-से-कम ऐसा तो नही करता है। बन्धुओ, जो मानवता के विरुद्ध कार्य करते हैं वे अपनी आत्मा का पतन करने वाले हैं और इसलिए ही कहना पड रहा है कि आज मनुष्य की दशा कितनी विषम है ! यही समाज की विषमता है।

मैं सुनता हूँ कि विदेशो मे ऐसी प्रवृत्ति कम है। जो अपने देशवासी वहाँ जाकर आते हैं, वे वहाँ की ईमानदारी की तारीफ करते हुए कहते है, "क्या कहना है वहाँ की ईमानदारी का ! वहाँ दुकाने खुली है, लाखो का माल भरा पडा है। दुकान का स्वामी नही है, ग्राहक आता है और बिना रोक-टोक दुकान मे प्रवेश करता है। उसे जो चीज चाहिए, वह ले लेता है और ईमानदारी से वहाँ पैसे डालकर चला जाता है। दुकान का मालिक आता है, माल को देखता है और पूरे पैसे प्राप्त कर लेता है।" कहिये, वह ईमानदारी क्या यहाँ के नागरिको मे है ?

'भगवती सूत्र' मे तु गिया नगरी के श्रावको का वर्णन आया है कि वे कैसे थे। बताया गया है कि उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे, अर्गलायें खुली रहती थी। इसका तात्पर्य यह है कि वे कभी भी अपने मकान का दरवाजा वन्द नही करते थे। इसमे कई रहस्य भरे हुए हैं। परन्तु आज वह वर्णन शास्त्रो मे ही रह गया है। आज के श्रावको की क्या दशा है ? आज के मनुष्यो की क्या अवस्था है ? क्या इसका चिंतन आज का मनुष्य कर पायेगा ?[१]

१–आध्यात्मिक आलोक, पृ० ४८-५३

काम की आँधी ने इस प्रकार धक्का दिया कि वे घर से चल पड़े। उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि किसी प्रकार से भी मैं धर्मपत्नी के पास पहुँचू।

वे विकट मार्ग को पार करके अपने ससुराल पहुँचे। गाँव मे सभी प्राणी रात्रि की सुनसान अवस्था मे निद्रा ले रहे थे। सब घरों के दरवाजे बन्द थे। इस स्थिति मे वे अपनी ससुराल के नजदीक पहुँचे। वहाँ का दरवाजा भी बन्द था। आधी रात के समय आवाज लगाकर दरवाजा खुलवाना उचित नही था। वे कुछ देर इधर-उधर देखते रहे।

अचानक उनकी दृष्टि बिजली की चमक मे दीवार पर पडी। उन्होने देखा कि वहाँ एक रस्सी लटक रही है और उसको पकड कर ऊपर चढा जा सकता है। उन्होने वह रस्सी पकडी, परन्तु वह रस्सी नही थी, सर्प था। खैर! उसके सहारे ऊपर चढ गए। उनको यह भी भान नही रहा कि यह जहरीला जंतु है और काट सकता है। परन्तु उन्होने कोई परवाह नही की और वे येन-केन प्रकारेण अपनी धर्मपत्नी के पास पहुँचे। कथा-भाग मे ऐसा वर्णन है।

पति को अचानक अपने कमरे मे देखकर पत्नी आश्चर्य-चकित हो गई। उसने कहा, "नाथ! इस भयकर रात्रि मे आप यहाँ कैसे?" उन्होने सब बात कही तो स्त्री ने पूछा—"यहाँ कौनसी रस्सी है?"

देखा गया तो प्रकट हुआ कि वह रस्सी नही, एक जहरीला जतु था! फिर पति का स्वागत करते हुए पत्नी ने कहा, "आपने मुझे अनुगृहीत किया। इसके लिए मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ। परन्तु नाथ! आपको इतना भी भान नही रहा कि यह जहरीला जतु काट लेगा, तो प्राणात हो जाएगा। क्या ही अच्छा होता कि आपका जैसा ध्यान मेरी तरफ है, वैसा ही प्रभु के चरणों में होता। यदि ऐसा कर पाते तो आपका बेडा पार हो जाता—

अस्थि चर्ममय देह मम, तासो ऐसी प्रीति।
वैसी जो श्रीराम मे, होत न कहुँ भवभीति॥

इस गंदी वासना के प्रति आपका जितना ध्यान है, उतना ही यदि प्रभु की ओर हो, तो आपको किसी प्रकार भव-बाधा नही रहेगी।" तुलसीदास ने पत्नी के इतने से वाक्य सुने और उनकी आत्मा मे जागृति आ गई।

उसी समय तुलसीदास ने कहा "प्रिये, तुमने वहुत सुन्दर वात कही है। आज से तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। तुमने अच्छा वोध दिया।" और वे उसी समय चल पड़े।

जव तक आध्यात्मिक ज्ञान का सही भान नही हुआ, तव तक ही उनकी यह दशा थी। आगे चलकर वे महात्मा तुलसीदास के नाम से विख्यात हुए।

इन सबकी जड में जीवन के महत्त्वपूर्ण मौलिक तत्त्व के प्रति उपेक्षा-भाव ही मुख्य कारण माना गया है।

माली अपने बगीचे मे फलो से लदे हुए वृक्षो को देखकर बडा प्रसन्न होता है। उसने सभी वृक्षो की जडो का सिंचन किया है, तभी तो उसका परिश्रम आज फल और फलो के रूप मे खिल रहा है। यदि वह मूल को सीचना छोडकर वृक्षो की शाखाओ को सीचने लगता, तो क्या उसे फल प्राप्त हो जाते ? वृक्ष हरे-भरे रह सकते ? इस प्रश्न के उत्तर मे आप यही कहेगे कि नही। जड सीचने से ही वृक्ष हरा-भरा रहता है। शाखाओ को सीचने से आज तक कोई वृक्ष हरा नही रह सका है। वृक्ष की प्रत्येक शाखा अपनी जड से भोजन लेती है। तभी वह हरी-भरी रह सकती है। मूल यदि सुदृढ है तो शाखा को भी बल मिलेगा। मूल की स्थिति सुधरेगी, तो टहनी अपने आप सुधर जायेगी, क्योकि उसका जीवन-मूल से सबध है। जब मूल की बात को व्यक्ति समझ लेता है, तो फिर टहनी को जल पिलाने का व्यर्थ परिश्रम नही करता है। वह सदा मूल की सुरक्षा का ही ध्यान रखता है। उसे ही बार-बार सीचता है। इस प्रयत्न से उसका परिश्रम सफल हो जाता है। उसे फल भी प्राप्त हो जाते हैं, और वृक्ष भी रक्षित रहता है। माली कृषि-विज्ञान जानता है, अत: वह मूल को छोडकर टहनी को कभी नही सीचता है। वह जानता है कि वृक्ष मे जो भी हरियाली है, जड से आ रही है। जड को खुराक धरती से प्राप्त हो रही है। यद्यपि पृथ्वी मे प्रत्यक्ष हरियाली नही दिखती है। फिर भी जडे मिट्टी मे से ही रसग्रहण करके सारे वृक्ष को हराभरा रखती हैं। ऊपर से कितनी ही गरमी पड़ती रहे, फिर भी वृक्ष सूखता नही है। उसकी जडें सुदृढ और गहरी हैं। धरती मे से रस खीचकर टहनियो तक पहुँचाने की उसमे क्षमता विद्यमान है। उसे शाखाओ की चिन्ता नही होती, वह तो सदा मूल को सुधारने मे अपना ध्यान लगाये रखता है।

माली खाद-पानी कहाँ देता है ? मूल मे, जड मे।

तो, यही बात मैं आप लोगो से कह रहा हूँ कि अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उसके मूल को सुरक्षित करिये। मूल को सुधारिये। तभी आपको अपने जीवन का सुखमय फल प्राप्त होगा। आप अपने जीवन की बगिया के माली हैं। इसकी रक्षा करना आपका सर्वप्रथम कर्तव्य है। अपने जीवन के वृक्ष को आप माली की तरह देखिये।

मनुष्य अपने शरीर को ऊपर से देखता है। अपनी सुन्दर काया को देख कर फूला नही समाता है। मन मे सोचता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है, कितना सुदृढ है। घण्टो-घण्टो दर्पण के सामने उसे देखता रहता है। उसे सँवारता रहता है। उसका यह सारा प्रयास टहनियो को सीचने के समान है।

बन्धुओ ! यदि ऐसी भावना आज के युवावर्ग मे जागृत हो जायगी, तो वे शीघ्र ही मूल तत्त्व को पहचान जायेंगे। उनका जीवन पुष्पित-पल्लवित होकर ससार के जीवो के लिए एक "आश्रय-स्थल" बन जायेगा। जिन्हे अपनी मूल शक्ति पर भरोसा होता है, वे ही दूसरो को कल्याण के मार्ग पर लगा सकते हैं।[1]

दुनिया के कई अज्ञानी प्राणी ससार के अन्दर सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। वे यही सोचते रहते हैं कि पाँचो इन्द्रियो के विषयो का सयोग मिल जाये, तो हम अपने जीवन मे ससार के सुख अच्छी तरह से भोग सकेगे। ऐसे प्राणियो की तुच्छ बुद्धि इन क्षणिक सुखो से तृप्त होने की स्थिति मे ही रहती है। जब तक व्यक्ति इन तुच्छ सुखो मे आसक्त बना रहता है, तब तक उसकी विचारधारा सामने दिखने वाले विषयो की तरफ ही लगी रहती है और वह इनको ही सब कुछ समझ लेता है। उसकी दृष्टि आतरिक सुखो की ओर बहुत कम जाती है। यदि कोई जबर्दस्ती उसकी दृष्टि को उधर खींच ले और एक बार भी उसको वास्तविक आनद का अनुभव करा दे, तो फिर वह ससार के विषयों को, इन नाशवान सुखो को तृणवत् समझकर आतरिक दिव्य सुख का आनद लेने लगेगा।

जिन प्राणियो का यह ध्यान है कि इस ससार मे इन्द्रिय-जनित सुख प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी की आवश्यकता है और जितनी सपत्ति एकत्र कर ली जाएगी, उतनी ही सुख की अभिवृद्धि होगी, वे इसी भावना को लेकर लक्ष्मी के पीछे बुरी तरह भागते हैं, परन्तु वे समझ नही पाते है कि लक्ष्मी कहाँ है और वह किसके चरणो मे रहती है ?

लक्ष्मी का एक नाम चचला भी है। जिसका नाम ही चचला है, वह स्थिर व्यक्ति के साथ तो स्थायी रूप से रह सकती है, परतु अस्थिर व्यक्ति के साथ टिक नही सकती। स्तम्भ यदि मजबूत है तो झडा कितना ही चचल हो, वह उसके सहारे टिका रह सकता है, परन्तु यदि स्तम्भ डोलायमान है, तो फिर झडा तो उडनेवाला है ही। उसका कोई ठिकाना ही नही रहेगा। लक्ष्मी रूपी झडा, जिसको कमला भी कहा गया है, यदि स्थिर चरणो के साथ है, तो उसकी चचलता भी समाप्त हो सकती है और वह स्थायी रूप से उन स्थिर चरणो मे सदा के लिए बनी रह सकती है। यदि उसके चरण ही स्थिर नही हैं, तो फिर वह कमला स्थिर कैसे रह सकती है ? कवि ने रूपक दिया है कि—

चरण कमल कमला बसे रे, निर्मल स्थिर पद देख।
समल अस्थिर पद परिहरे रे, पंकज पामर देख॥

१–पावस प्रवचन, भाग २, पृ० ८८–९१

उत्तर

प्रश्न अति मौलिक है। उत्तर की गम्भीरता तक पहुँचने के लिये आवश्यक है कि शब्दश: व्याख्या का आश्रय लिया जाए। चूँकि प्रश्न, निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के सन्दर्भ में पूछा गया है, अत. सस्कृति शब्द पर कुछ दृष्टिपात आवश्यक है।

निर्युक्ति की दृष्टि से सस्कृति का अर्थ होगा सम्यक् कृति। अर्थात् शुद्ध संस्कार-सम्पन्न कृति, सस्कृति कहलाती है। "कृति" शब्द यहाँ किन्ही मौलिक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। "कृति" क्रिया के भावात्मक या प्रत्यक्ष रूप को कहते है और "सम" उपसर्ग है।

लाक्षणिक दृष्टि से अंग्रेजी का कल्चर शब्द हिन्दी के सस्कृति शब्द का प्रति रूप माना जा सकता है। कल्चर का अर्थ है, वह गुण जो उत्पन्न किया गया हो, सस्कृति का भी कुछ-कुछ यही अर्थ है, जिसे हम सामान्य भाषा मे संस्कार कहते है।

इस प्रकार संस्कृति का अर्थ हुआ अच्छी कृति। समाजगत सामूहिक श्रेष्ठ कृतियाँ भी सस्कृति कही जा सकती है। व्यक्ति की कृतियो मे चेतना का सम्पुट रहता है, अतएव समष्टि की कृतियो में चेतना अवश्यम्भावी है। समाज की समष्टि रूप से विकासोन्मुखी चेतनामयी कृतियाँ ही सस्कृति हैं।

सस्कृति को मुख्य दो धाराओं मे विभक्त किया जा सकता है। एक भौतिक और दूसरी आध्यात्मिक। भौतिक सुखो तथा सस्कृति के ऊपरी आवरणो मे भौतिक सस्कृति का दर्शन किया जा सकता है—नाटक, खेल-कूद, अध्ययन, साहित्य, मानवीय व्यवहार, रहन-सहन, पहनाव एवं रीति-रिवाज आदि भौतिक कर्मों मे सस्कृति की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है, जिसे सभ्यता के नाम से पुकारते है। इसके विपरीत आध्यात्मिक सस्कृति से तात्पर्य है, मानवता की अन्तरात्मा और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का प्रयत्न। इसमे ऐसे सभी आचारो, अभ्यासों एवं उपकरणो का समावेश हो जाता है, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आध्यात्मिक उत्थान मे सहायक सिद्ध हो। महान् विचारक श्री मैथ्यू आरनाल्ड के अनुसार "इसके मूल मे पशुता से भिन्न अन्तः-करण की मानवता, सतत विकासशीलता, अखिल-मानव समाज की सामूहिक उत्क्रान्ति एवं मानव की समग्र शक्तियो के व्यापक विस्तार की भावना छिपी हुई है।"

यथार्थ में अध्यात्म संस्कृति समाजवद्ध मानव की वह श्रेष्ठतम उपलब्धि है, जिसमे ज्ञान, विश्वास, कला, विनयशीलता, सात्विकता आदि समाविष्ट हैं।

सुख दिलाने वाली लक्ष्मी के साथ सदा के लिए सबधित हो जाएगा। फिर कभी सुख उससे अलग नही होगा। आध्यात्मिक लक्ष्मी उससे दूर नही होगी। वह सदा के लिए प्रतिक्षण अनन्त सुख का आनन्द लेता रहेगा। इसी भावना के साथ जिन आत्माओ का विज्ञान प्रबुद्ध हो गया, वे आत्माएँ चाहे प्रारम्भ मे सत्सगति का योग न बैठने के कारण अन्य तरीको से संसार के नाशवान सुख को पकड कर चलती रही हो, परन्तु जैसे ही भीतर की जागृति हुई, कि वे उसी समय ससार के इन नाशवान सुखो को नाक के श्लेष्म की तरह त्यागकर अपने दिव्य सुख की खोज मे लग गई।

हम प्राचीन काल की कथाओ मे पढते हैं और ऐतिहासिक पृष्ठो को उलटने का प्रसग आता है, तो उनमे ऐसे दिव्य पुरुषो का स्वरूप चमकता हुआ दृष्टिगत होता है कि प्रारभ मे नाशवान गदी वासना मे निमग्न प्राणी कालान्तर मे निमित्त पाकर किस प्रकार प्रबुद्ध हो गए। इस विषय मे अनेक रूपक हैं। उनमे से महात्मा तुलसीदास का रूपक आपके सामने रखता हूँ।

महात्मा तुलसीदास के प्रारभिक जीवन की घटना को आप सुनेंगे, तो आपको पता लगेगा कि वे किस प्रकार इन पाँचो इद्रियो के विषयो मे लिप्त थे। जैसे कि अन्य साधारण व्यक्ति ससार के सबध को जोडकर चलते हैं और तरुणाई मे मोह के नशे मे रहते हैं, वैसे ही थे तुलसीदास। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होगे जो इस मोह के नशे से ऊपर उठकर इस मदिरा पर अपनी आत्मा का अकुश लगा पायें।

सुबाहुकुमार का प्रसग शास्त्रीय दृष्टि से आप सुनते ही रहे हैं। उन्होने समृद्धिशाली परिवार मे जन्म लिया। अनेक रमणियो के साथ उनका विवाह-सम्बन्ध हुआ। वे पाँचो इन्द्रियो के विषयो मे लिप्त रहे। परन्तु जैसे ही उनको ज्ञान हुआ कि यह मनुष्य-तन इन नाशवान सुखो के पीछे नष्ट करने के लिए नही है, तो तत्क्षण वे जागृत हो गए। वे भरा-पूरा घर और रमणियो को छोडकर आध्यात्मिक लक्ष्मी की साधना मे चल पड़े।

कथा की दृष्टि से महात्मा तुलसीदास का विपय भी कुछ ऐसे ही प्राणियो जैसा था। तरुणाई मे उनका विवाह हो गया। फिर विवाह के प्रसग से वे इतने दीवाने वने कि एक दिन उनकी अतरात्मा वासना से व्याप्त हो गई। वे सोचने लगे कि मेरी धर्मपत्नी तो पीहर मे है और मैं यहाँ घर मे हूँ। कैसे, क्या किया जाए ? उन्हे कुछ नही सूझ रहा था।

आकाश मे घनघोर वादल छाये हुए थे। भयकर अन्धेरी रात थी। साँय-साँय करके चारो ओर से हवा चल रही थी। वड़ा भयावना दृश्य था। कोई व्यक्ति बाहर नही निकल सकता था, परन्तु तरुण तुलसीदास के मस्तिप्क मे

से निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति कालातीत सस्कृति है, किन्तु काल चक्र के प्रवाह मे इसका कभी आविर्भाव तो कभी तिरोभाव होता रहा है।

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है, निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति "श्रम" की सस्कृति है, अत: इसका सम्बन्ध कर्मभूमिक काल से अधिक है। भारतीय दर्शनो के सिहावलोकन से ज्ञात होता है कि "निर्ग्रन्थ" एव "श्रमण" जैन दर्शन के मौलिक शब्द है तथा जैन दर्शन मे ये लाक्षणिक अर्थो मे प्रयुक्त हुए है।

"निर्ग्रन्थ" का शाब्दिक अर्थ होगा ग्रन्थि रहित अर्थात् गाठ रहित और इसका लाक्षणिक अर्थ होगा राग-द्वेप, कपाय-कल्मप की गाठो का छेदन करने वाला साधक। "श्रमण" शब्द उसी साधक की श्रमपूर्ण साधना का अभिव्यजक है। व्युत्पत्ति के अनुसार "श्राम्यति इति श्रमण" अर्थात् जो श्रम जीवी है, वह श्रमण है। तात्पर्य यह है कि जो राग-द्वेपादि आन्तरिक विकारो की ग्रन्थियो के शमन मे निरन्तर श्रमरत है, वह निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का समुपासक है।

उपर्युक्त शब्द-व्याख्या के आधार पर यह निष्कर्ष फलित होता है कि निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति "श्रम" अर्थात् कर्म की सस्कृति है अत: इसका सम्बन्ध अकर्म से नही कर्मभूमिक युग से अधिक है और इस प्रकार इसका वर्त्तमानिक रूप आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव के द्वारा प्रदत्त माना जा सकता है।

चूँकि, प्रभु ऋषभ देव के पूर्व कर्म अर्थात् श्रमपूर्वक जीवनयापन की व्यवस्था नही थी, अत: वह युग युगलिक-अकर्म भूमिकाल से पुकारा जाता है। जैन परम्परा अथवा ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार प्रभु ऋषभदेव से पूर्व का युग ऐसा युग था, जब मनुष्य का अपना जीवन प्रकृति पर ही आधारित था, उस समय वह न कर्म करना जानता था और न उसका कर्म पर विश्वास ही था। उसकी प्रत्येक आवश्यकता प्रकृति से पूरी होती थी। भूख-प्यास से लेकर जीवन की हर समस्या मे वह प्रकृति के सहयोग पर ही जीता था। कल्पवृक्षो के माध्यम से प्राप्त सामग्रियो के आधार पर अपना जीवन निर्वाह करता था। इस प्रकार उस आदि युग का मानव प्रकृति के हाथो खेला था। उत्तरकालीन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि उस युग के मानव की आवश्यकताएँ अति सीमित थी। उस समय भी पति-पत्नी होते थे, किन्तु उनका वह वैवाहिक सूत्र सामाजिक बन्धनो से असम्बद्ध था। जन्म से भाई-बहिन ही समय की परिपक्वता के अनुसार पति-पत्नी का रूप ले लेते, किन्तु उनको एक-दूसरे पर कोई उत्तरदायित्व का बोध एव भार नही होता था। एक-दूसरे से सहारा पाने की भावना उनमे नाम मात्र को भी नही होती थी। एक प्रकार से वह युग उत्तरदायित्वहीन तथा सामाजिक एव पारिवारिक सीमाओ से मुक्त एक स्वतन्त्र जीवन

उपर्युक्त प्रवचन-उद्धरणो मे आचार्य श्री के अतल प्रवचन-सागर से कुछ मणिमुक्ता ही यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। मैं यह सोचता हूँ कि आचार्य श्री के वैचारिक जीवन-दर्शन की थाह पाने के लिए ये पर्याप्त होगे।

"हाथ कगन को का आरसी" अथवा "प्रत्यक्षे किं प्रमाण" के अनुसार जिन पाठको को आचार्य श्री के वैचारिक जगत का साक्षात्कार करना हो, वे उस महामहिमा मडित व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष दर्शन कर आज भी अपनी नेत्रतृषा को परितृप्ति से आप्यायित कर सकते है तथा आपके वैचारिक परिवेश को व्यापक अर्थो मे समझ सकते है।

आचार्य श्री के विशाल पाडित्य, विचक्षण प्रतिभा, गभीर विचारणा, अपूर्व तर्कणा-शक्ति एव तलस्पर्शी अध्ययनशीलता की अनुपम छाप आपके प्रवचनो मे स्थान-स्थान पर पाई जाती है। आज के विद्वत् समाज पर इसका प्रभाव अकित है।

आचार्य श्री का विचार-परिमल इतना व्यापक, विराट् एवम् मनोमुग्धकारी है कि उसकी सौरभ, सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय, नैतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एव परा आध्यात्मिक सभी क्षेत्रो मे समान रूप से परिव्याप्त है। वास्तव मे आचार्य श्री के मुखकमल से निःस्तृत प्रत्येक शब्द एव उसकी हर क्रियान्विति अपने आप मे गुणार्थक उपदेश है, जिसके द्वारा प्रत्येक आगतुक सहजतया आप्लावित हो, भाव-विभार हो जाता है।

• • •

उद्बोधन दिया। तत्कालीन सत्रस्त मानव जाति के लिये उनके करुणापूर्ण स्वर थे कि अब हमे प्रकृति की परावलम्बनता से ऊपर उठना होगा। स्वय के पुरुषार्थ के बिना इस दयनीय स्थिति से उपराम नही पाया जा सकेगा, अतः यह आवश्यक है कि अब अपने पैरो पर खड़ा हुआ जाये। प्रभु ने कहा अव युग बदल गया है। वह अकर्म-युग का मानव कर्म-युग (पुरुषार्थ युग) मे प्रवेश कर रहा है। अभी तक पुरुष अपने हाथो का उपयोग भोग मे, खाने मे ही कर रहा था, अब उसे खाने के साथ कमाने-उपार्जन के पुरुषार्थ पर भी सन्नद्ध होना होगा। उसकी भुजाओ मे ही वह शक्ति है, जिसके सम्यग् उपयोग से इस सक्लेश-मय स्थिति से मुक्ति पाकर आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

मानव-मानव के मन में व्याप्त निराशा, दौर्बल्य एव दैन्य स्थिति के उस काल मे प्रभु ऋषभदेव ने युग को एक नया मोड दिया। सम्पूर्ण मानव जाति को जो धीरे-धीरे अभाव ग्रस्त हो रही थी, प्रकृति की पराधीनता के फंदे मे फस कर अपनी स्वतन्त्र स्थिति को भुला बैठी थी, कर्म-उत्पादन का मत्र दिया, श्रम और स्वतन्त्रता का मार्ग दिखाया और मानवीय चेतना फिर से सुख और समृद्धि के साथ आनन्द की सास लेने लगी। जनजीवन अश्रम की पराधीनता से निकल कर श्रम की स्वतन्त्रता मे जीने लगा।

भगवान् ऋषभदेव की उस अनन्त करुणा का प्रतिफल था कि मनुष्य अकर्मभूमि से कर्मभूमि मे प्रविष्ट हुआ और उसके चारों ओर अपने ही श्रम से निष्पन्न भौतिक आनन्द की स्रोतस्विनी बहने लगी। प्रभु ने तत्कालीन परि-स्थितियों का अपने ज्ञान से अवलोकन किया और एक प्रजापालक नृपति के दायित्व के आधार पर मानव जाति को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के प्रति पूर्णरूपेण अपने आप पर निर्भर करने के लिये पुरुष को ७२ एवं नारी को ६४ कलाओं का अल्पारम्भ के रूप में मधुर संदेश दिया ताकि अपने अभावो की सम्पूर्ति के साथ जन-मानस अपने दायित्वो को भी भलीभांति समझ सके।

इस प्रकार उस नये युग का नया सदेश जन-जीवन मे नई चेतना का आदर्श बन गया, सर्वत्र सुख-समृद्धि का उल्लास छा गया। अभी तक का मानव सामाजिक दायरो से अपरिचित था, अब उसमे सामष्टिक समूहगत व्यवहारो के प्रति सजगता फैलने लगी, इतना सब कुछ हो जाने पर जीवन के अध्यात्म पक्ष के बोध से जनता अभी भी अपरिचित थी। भौतिक उपादानों के उपार्जन एव उपभोग के परिज्ञान तक ही उसका बोध सीमित था। इसके अतिरिक्त जीवन का कोई अविनाशी तत्त्व है और उसके विकास के प्रति सजग होना मानव-जीवन का अनिवार्य अंग है, इस विषय का परिबोध उन्हे सर्वथा नही था।

सपने मेरे:
उड़-आवाजों के

के आविष्कर्ता महाप्रभु को भोजनादि सामान्य पदार्थ क्या समर्पित करें, हाथी-घोड़े एव रथ सम्मुख करते और निवेदन करते कि आप जगलो मे भ्रमण करते हुए थक गये होगे, अतः इन पर आसीन हो, हमे कृतार्थ करे।

प्रभु मौनपूर्वक शांतभाव से आगे बढ़ जाते पर एक सीख दे जाते कि निर्ग्रन्थ श्रमण को इन साधनो की आवश्यकता नही होती। अगर ये इनका उपयोग करते, तो जगलो मे क्यों जाते ?

इसी प्रकार बहुमूल्य आभूषण आदि पदार्थो के परित्याग से अपरिग्रह का तथा अपनी हर क्रियान्विति से किसी भी चेतना को संक्लेश नही पहुँचाने से अहिंसा का मूर्त उपदेश अपने जीवन के आचरणों द्वारा ही प्रस्तुत कर देते। बस यही निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का आधार-स्तंभ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान युगीन निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति का मूल उद्गम आज से असख्य वर्ष पूर्व इतिहास की पहुँच से परे, ऋषभदेव द्वारा हुआ और उत्तरवर्ती तीर्थकरो ने उसे समय-समय पर संबल प्रदान कर अद्यावधि तक अक्षुण्ण बनाए रखा।

चूँकि, यह प्रतिपादन प्रागैतिहासिक है, अतः सहसा आज के वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर ही जीनेवाला जन-मानस इस पर विश्वास नही कर पायेगा। किन्तु ऐतिहासिक युग-पुरुष तीर्थंकर महावीर के युग की जो विरासत हमे मिली है, उससे तथा कुछ वेदकालीन सास्कृतिक सकेतो के माध्यम से, आनुमानिक तौर पर उस युग की सॉस्कृतिक चेतना का साक्षात्कार किया जा सकता है।

प्रश्न के पूर्वार्ध की सामान्य विवेचना में निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के उद्भव के काल-सबधी विवेचन के पश्चात् वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे उसके साँस्कृतिक मूल्यो पर प्रकाश डालने का आग्रह है, जिसे सक्षेप मे समाहित करने का प्रयास है।

प्रश्न के पूर्वार्ध के उत्तर मे बताया जा चुका है कि निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति का उद्भव तत्कालीन अराजकता के परिष्कार, अभावग्रस्त हिंसक वृत्तियो से सत्रस्त मानव समुदाय के परित्राण एव आत्मिक आनन्द की उपलब्धि हेतु हुआ था, जिसके मूल मे अहिसा के स्वर रहे हुए है।

इतने विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि निर्ग्रंथ श्रमण-सस्कृति की साँस्कृतिक विरासत मे अहिंसा सिद्धान्त का मूल्य सर्वाधिक है, अथवा यो कहे, निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति अहिंसा-दर्शन का ही अपर पर्याय है, और अहिंसा का साँस्कृतिक मूल्य प्रत्येक युग मे अपना समान महत्त्व रखता है। हाँ, जब कभी हिंसा की पैशाचिक बर्बरता बढ़ जाती है, मानव-मानव सत्रस्त एव भयाक्रान्त

इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठतम साधनाओ को सस्कृति की सज्ञा दी जा सकती है। भारतवर्ष के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् ने सस्कृति की एक विचित्र-सी व्याख्या की है । उनके अनुसार "स्कूलो-कॉलेजो तथा सभी शिक्षण-सस्थानो मे जो कुछ पढा जाता है, वह भुला देने के पश्चात् जो कुछ शेष रह जाए, वही सस्कृति है ।"

वस्तुत: सस्कृति मात्र रीति-रिवाज, नृत्य-गायन, त्यौहार एव वेश-विन्यास ही नही है, सस्कृति इनकी अन्तरात्मा है । प्रसिद्ध साहित्यकार सम्पूर्णानन्दजी ने "सस्कृति" की व्याख्या करते हुए कहा है कि सस्कृति वह साचा है, जिसमे समाज के विचार ढलते हैं, वह बिन्दु है, जहाँ से जीवन की समस्याएँ देखी जाती है। सस्कृति विभिन्न सस्कारो द्वारा व्यक्ति की प्रतिभा और योग्यता के पूर्ण विकास मे समुचित योग देती है ।

सक्षेप मे कहे तो व्यक्तित्व की पतनोन्मुखी वृत्ति का नाम है विकृति अथवा निकृति तथा विकासोन्मुखी आदर्श व्यक्तित्व की कृति का नाम है सस्कृति । सस्कृति व्यक्ति का आत्म-परिष्कार करती है, तो सभ्यता जिसे हमने भौतिक सस्कृति के नाम से पुकारा है, उसे बाह्य जीवन के व्यवहारो मे अधिक शिष्ट, समृद्ध एव उन्नत बनाती है। सस्कृति आत्मिक विकास की युग-युगान्तर से चली आ रही अवस्थाओ को अनुसूचित करती है, तो सभ्यता दैहिक एव भौतिक क्रम को स्पष्ट करती है ।

"सस्कृति" शब्द की उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्यात्म सस्कृति न किसी क्षेत्र-विशेष की देन होती है और न किसी काल विशेष की। चूँकि निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति एक गगा के निर्मल प्रवाह की तरह धारा प्रवाही सस्कृति है, अत. उसके काल-सम्बन्धित छोर को पाना उतना ही कठिन है, जितना कि सृष्टि के आदिकाल को। इस दृष्टि से निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति प्रवाह की अपेक्षा से अनादिकालीन सस्कृति है। उसके अनुसार अनन्त युग बीत गये है और प्रत्येक युग मे यह अपने अस्तित्व मे कायम रही है। हाँ, सस्कृति के इस प्रवाह मे सरित धारा के प्रवाह की तरह ह्रास-विकास अवश्य हो सकता है। कोई काल अपना सास्कृतिक मूल्य बहुत अधिक बना लेता है, तो किसी काल मे सस्कृति अति मन्थर गति से चल पाती है अर्थात् बौद्धिक युग सस्कृति के विकास का युग माना जा सकता है, जिसमे युग के सास्कृतिक मूल्य प्रस्थापित होते हैं ।

जैन दर्शन के अनुसार काल को दो भागो मे विभक्त किया गया है जिसे आज की भाषा मे प्राक्ऐतिहासिक एव ऐतिहासिक काल कहते हैं। जैन दर्शन उसे अकर्मभूमिक एव कर्मभूमिक काल के नाम से पुकारता है। आपेक्षिक दृष्टि

भूमिकाओं का सर्वोच्च बिन्दु है । व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व-बन्धुत्व का जो विकास हुआ है अथवा यत्किंचित् हो रहा है, उसके मूल मे अहिंसा-सिद्धान्त की पवित्र भावना काम कर रही है । मानव सभ्यता के उच्चतम आदर्शो का सही सही मूल्यांकन अहिंसा के रूप मे ही किया जा सकता है । हिसा, विनाश, अधिकार-लिप्सा, असहिष्णुता, स्वार्थान्धता के विष से उत्पीड़ित ससार मे अहिंसा ही सर्व-श्रेष्ठ अमृतमय विश्राम-भूमि है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य शान्ति को साँस लेता है । स्व-पर को समान धरातल पर देखने के लिये अहिंसा की निर्मल आँख का होना नितान्त आवश्यक है ।

ससार के समस्त धर्मो ने किसी-न-किसी रूप मे अहिंसा-दर्शन को स्वीकार किया है, किन्तु निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति का तो यह प्राण ही है । निर्ग्रन्थ सस्कृति और अहिंसा-दर्शन एक दूसरे के पर्याय माने जा सकते हैं ।

'प्रश्न व्याकरण' सूत्र के अनुसार निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के प्रवचन का उद्देश्य ही अहिसा-दर्शन का प्रतिपादन है ।

"सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठायाए
पावयण भगवया सुकहियं ।"

इस उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि आज हाइड्रोजन, उद्जन एव न्यूट्रान बमों के विनाशकारी युग मे भ्रातृत्व-भाव, विश्व-वात्सल्य, समता-दृष्टि, आत्मोत्कर्ष एवं परम शान्ति का मधुर सदेश देने वाली निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के साँस्कृतिक मूल्य कितने गहरे है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वे अपना दार्शनिक जगत् मे कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति का संदेश न किसी युग-विशेष के लिये है और न किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये, अपितु यह सदेश युग-युगीन संदेश है, जो जन-जीवन, आत्मा-परमात्मा, आदि के प्रति चिरन्तन सार्वकालिक साँस्कृतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करता है ।

यद्यपि कालप्रवाह के कारण इसकी बाह्य पथ-दिशा मे पात्र की योग्यतानुसार साधना मे अभिरुचि की न्यूनाधिकता का वर्गीकरण मुख्य-गौण भाव से दृष्टिगोचर होता है, और सामयिक परिवर्तन अथवा मोड आते रहते है, तथापि इसकी आत्मा, इसकी अन्तरंग जलराशि मे कभी परिवर्तन नही आता । वह तो युगोयुगो से पिपासार्त प्राणियो की पिपासा को शान्त करने वाली चिरन्तन शाश्वत धारा है, जिसके द्वारा मानव-जगत् ही नही, सम्पूर्ण प्राणि वर्ग, पथ का आलोक प्राप्त कर, चिरशान्ति की साँस ले सकता है ।

था। कल्पवृक्षो के द्वारा तत्कालीन आवश्यकताओ की पूर्ति होती थी, अतः किसी को भी उत्पादन-श्रम एव उत्तरदायित्व की भावना से वाधा नही गया था, सभी अपने मे मस्त एव आनन्दित थे।

अकर्म भूमि के उस अकर्मण्यकाल मे मनुष्य अनेक सागरो अर्थात् असख्य वर्षो तक चलता रहा, मानव की पीढियाँ-दर-पीढियाँ बीत गई, किन्तु फिर भी उस जाति का विकास नही हुआ। उनका जीवन क्रम उसी नपीतुली रेखा मे परिवद्ध रहा। विकास का एक चरण भी वह नही बढा सका। यद्यपि उनके जीवन मे लालसाएँ और आकाक्षाएँ कम थी, अत. सघर्ष भी कम थे। कषाय की परिणतियाँ कम थी, पूरा जीवन सरलता एव भद्रता से व्याप्त था। किन्तु ये सव गुण उनमे ज्ञानपूर्वक नही थे, तत्कालीन नैसर्गिक प्रकृति ही वैसी थी। उसकी प्रकृति ही शान्त एव शीतल थी।

भौतिक दृष्टि से सुखी होते हुए भी उनके जीवन मे ज्ञान एव विवेक का अभाव था। वे केवल शरीर-निर्वाह के क्षुद्र घेरे मे वन्द थे। आत्मोत्कर्ष के लिये सयम-विवेक एव साधना का आदर्श उनके जीवन से कोसो दूर था।

सक्षेप मे वह युग अतिवासना का युग नही, तो साधना का युग भी नही था। उस जीवन मे पतन के द्वार नही थे किन्तु उत्थान के द्वार भी अवरुद्ध थे। जीवन की यह निर्माल्य दशा त्रिशकु की तरह महत्त्वहीन ही मानी जाती है। यही कारण है कि उक्त अकर्म युग मे कोई भी आत्मा मोक्षगामी नही वन सकती थी।

काल· पचति भूतानि, कालः सहरति प्रजा।
काल सुप्तानि जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः॥

कालवादियों के इस सिद्धान्त के अनुसार, जिसे जैन दर्शन सापेक्ष सत्य मानता है, कालक्रम के प्रवाह मे पदार्थो मे नूतनता-पुरातनता का सचार होता है। यही स्थिति अकर्म भूमि की समाप्ति और कर्मभूमि के उदय का हेतु वनती है। धीरे-धीरे कल्पवृक्षो का युग समाप्त हुआ, क्योकि कालस्थिति के अनुसार प्रकृति के उत्पादन क्षीण होने लगे और उपभोक्ताओ की सख्या वढने लगी। जव आवश्यक उत्पादन कम होते हैं और उपभोक्ताओ की सख्या अधिक होती है, तो सघर्ष अनिवार्य है। यही स्थिति उस युग मे भी वनी। पारस्परिक प्रेम एव स्नेह टूटकर घृणा, द्वेष, कलह और द्वन्द्व वढने लगे। सघर्ष की ज्वालाएँ झुलसने लगी, चारो ओर हाहाकार मचने लगा, अभावो से पीडित जनता त्राहि-त्राहि करने लगी।

मानव जाति की उस सकटापन्न वेला मे, संक्रमण की उन घडियो मे, सकटहर्ता, जन-त्राता आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव ने मानवीय भावना का

आपेक्षिक अथवा ऊर्ध्वगामी को अशुभ और ऊर्ध्वमुखी विचार-प्रवाह को शुभ ध्यान कहा जाता है और जो विचार-प्रवाह केवल ऊर्ध्वगामी हो, उसे शुभ ध्यान कहा जाता है। विचारो की अशुभता के सामान्य परिणाम भयकर, क्रूरतापूर्ण होते है। अशुभता चेतना को उसके मूल स्वभाव से निकृष्ट स्थिति मे भटकाने का कार्य करती है।

निम्नगामी विचार-प्रवाह की अपेक्षा प्रशस्तता जो शुभी भी कहलाती है भौतिक उपादानो की समुपलब्धि मे कुछ सहयोग कारण है। परलोक सम्बन्धी समृद्धि एवं आत्मिक सपरिपूर्णता मे यह ध्यान भी साधारण निमित्त बनता है। किन्तु सपरिपूर्ण अध्यात्म-साधक के लिये, जो लोक-परलोक की भावना से ऊपर उठ जाता है, यह ध्यान अनावश्यक हो जाता है।

जब जीवन के चरम विकास का लक्ष्य निर्धारित हो जाता है और तदनुरूप स्वरूप-उपलब्धि की दिशा मे स्थायी शान्ति की प्राप्ति हेतु विचार प्रवाह चलता है, तो वह शुभ ध्यान की कोटि में आता है। इस ध्यान-प्रवाह मे भी प्रारभ मे प्रशस्त संकल्पो एव विचारो की बहुलता रहती है, किन्तु जब चरम-विकास की दृढता वृद्धिगत होती जाती है, तब प्रशस्त सकल्पनात्मक भावनाओ की क्रमशः अल्पता एवं अनुभूतिमूलक आत्मिक ज्योति की प्रबलता एव प्रचुरता बढ़ जाती है। जैसे-जैसे आत्मिक अनुभूति का आलोक स्पष्ट होता है, वैसे-वैसे आत्मीय चेतना की अमरता एव दिव्य शक्तिमत्ता का बोध जागृत होता है। समग्र विश्व के प्रति सहज उपेक्षा-भाव के साथ स्वरूप उपलब्धि की सक्रियता बढती है। विनश्वर पदार्थों की उपेक्षा के साथ जीवन को विमुक्त करने से सम्यग् बोध होता है।

ध्यान की इस प्रारम्भिक भूमिका का स्पर्श होने के पश्चात् ध्यान की गहराई मे प्रवेश पाने हेतु विभिन्न विधियों का अवलम्बन लिया जाता है। प्रारम्भ मे अध्यात्मोन्मुख ध्यान-धारा मे अवगाहन के लिये आदर्श जीवन के विघातक अलीक प्रवचन, आसक्ति, मोह, भावनिद्रा, आदि दुर्विचार रूप शत्रुओं को सत्य, सरलता, अनासक्ति, निर्ममत्व एव समतारूप भावों के द्वारा परास्त करना होता है तथा इन्ही प्रशस्त भावो के द्वारा आत्म-जागृति की साधना की जाती है।

जैसे वड़े नगरो की अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण नाली के पानी मे अवगाहन करने वाला व्यक्ति, अपने वहुमूल्य वस्त्रो के साथ ही उत्तम स्वास्थ्य से भी वंचित रहता है, वैसे ही अलीक आदि मलिन विचारो के प्रवाह मे डुवकियाँ लगाता हुआ इन्सान प्रशस्त ध्यान की अमूल्य साधना रूप स्वास्थ्य को सपादित नही कर पाता है। अतः ध्यान-साधना के जिज्ञासुओं के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पहले अपने वर्तमान जीवन मे प्रवहमान अन्ध श्रद्धाओं, मलिन विचारो

ऐसी स्थिति मे प्रभु ऋषभदेव ने अध्यात्म का मधुर सदेश दिया। बस यही से भरत-क्षेत्र की अपेक्षा से निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का उद्भव माना जा सकता है।

प्रभु ने अपने सदेश में गृहस्थावस्था में रहते हुए जीवन जीने की कला अर्थात् भौतिक विज्ञान से जीवन को सुख एव शातिमय बनाने का बोध देने के पश्चात् जीवन के दूसरे चरण में जन-मानस को अध्यात्म की ओर प्रेरित किया कि "जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक समृद्धि ही नही है, अपितु जीवन का प्रथम लक्ष्य है, स्वरूप बोध। हम शारीरिक, पारिवारिक एव सामाजिक सम्बन्धो के सकुचित घेरे तक ही सीमित न रहे, जीवन की विराटता को समझ कर सभी आत्माओ के प्रति आत्मोपम्य की भावना का विस्तार करे। इसके लिये आवश्यक है कि पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्धो के बीच एक-दूसरे की आत्मा को समझने का प्रयास हो। केवल शरीर और उसकी आवश्यकताओ को ही महत्त्व नही देकर आत्मिक पवित्रता के प्रति भी सजग बनें। शरीर-निर्वाह के लिये जितना किया जाना आवश्यक है, वह भी आसक्तिपूर्वक नही, कर्तव्य समझ कर किया जाय। शरीर एव इन्द्रियो के साथ रहते हुए भी उनके दास नही, स्वामी बनकर रहा जाय, भोग के झूले मे मस्त होकर योग की महत्ता को न भुला बैठें। भव्य गगन-चुम्बी अट्टालिकाये, ऊँचे सिंहासन एवं विशाल ऐश्वर्य के मध्य रहते हुए भी इनके गुलाम न बन जाये। जब भौतिक सम्पदा को ही सब कुछ मान लिया जाता है, तो विद्वेष एव भटकाव बढते है। धन एवं सत्ता मूर्तिमान शैतान हैं, जब ये सर पर चढ बैठते हैं तो इन्सान को भी शैतान बना देते है। अत जीवन का लक्ष्य भोग नही, योग है।"

प्रभु ऋषभदेव के उपर्युक्त सदेश मे निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की अध्यात्म-वादी धारा के प्रमुख सूत्र हैं, जिन्हे प्रभु ने स्वय जीवन में आत्मसात् करके दिखाया। वे सदेश केवल उपदेश मात्र नही थे। राजकीय वैभव, भव्य भवन तथा समस्त भौतिक सुखो को छोडकर सर्व प्रथम वे स्वय साधना पथ पर अग्रसर हुए। उनकी वह साधना तितिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त कठोर साधना थी। साधना में प्रवेश का अर्थ है, भौतिक सुख-लिप्सा के प्रति निरीह बन जाना, अत. देहासक्ति को छोडकर उन्होने जगलो में भ्रमण प्रारम्भ किया। अपने छद्मस्थ काल अर्थात् कैवल्य की उपलब्धि के पूर्व तक मौनव्रत स्वीकार किया ताकि सामान्य जन-मानस उनकी हर क्रिया से कुछ सीख ले सके।

तप साधना मे गति करते हुए यदाकदा वे नगरो मे भिक्षार्थ प्रवेश करते, तो श्रमण-मर्यादा से अपरिचित भावुक जनता यह सोचकर कि अन्नादि पदार्थो

ही ध्यान की प्रारम्भिक भूमिका के रूप मे अंकित किया जाता है। यह ध्यान का प्रारम्भिक रूप भी माना जाता है।

आधुनिक युग मे विभिन्न-ध्यान-साधको ने अपने-अपने प्रयोग पर ध्यान-योग को व्याख्यायित किया है। हठयोग, कर्मयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, लययोग, शब्दयोग आदि उसी के रूप माने जा रहे है। इसी प्रकार इसकी षड्चक्र-भेदन, कुण्डलिनी–जागरण, सुषुम्ना-सबोधन, खेचरी मुद्रा, आदि प्रायोगिक विधियाँ काफी प्रचलित हुई है, किन्तु वे अधिकाशत: वैयक्तिक प्रयोग पर ही आधारित हैं। यह आवश्यक नही कि एक व्यक्ति की प्रयोग-विधि किसी अन्य के लिये भी सार्थक हो जाए। अत: प्रचलित-प्रणालियो में बहुत कुछ सशोधन, परिवर्तन एव परिवर्धन अपेक्षित है।

यद्यपि इन प्रयोग-विधियो मे कुछ प्राचीन ग्रन्थों का आधार भी लिया जाता है, किन्तु ग्रन्थो मे जो कुछ विवेचन उपलब्ध होता है, वह वीज अथवा ताले के रूप मे ही है, जिसकी कुंजी (चाबी) अनुभवी साधको के पास ही रह जाती है। अत: जैसे विधिवत् कुंजी के अभाव मे ताला नही खुल सकता है, उसी प्रकार अनुभवी साधक गुरु के अभाव में ध्यान-साधना भी अभीष्ट फल-दायिनी नही सिद्ध हो पाती है।

ध्यान-साधना की इसी दुरूहता के कारण जैन दर्शन मे हठयोग, राजयोग, आदि को अधिक महत्त्व न देकर सहजयोग को महत्त्व दिया गया है। आज ध्यान-साधना की क्लिष्टताओ का मुख्य कारण भी यही है कि अधिकाश साधक सहज योग की साधना से अनभिज्ञ हैं, जबकि सहजयोग ही विशिष्ट योग है और वही ध्यान-साधना की मूलभित्ति है। जैन दर्शन के व्याख्याता एव अनुसर्ता भी अधिकांशत: ध्यान-विवेचना मे हठयोग, आदि के प्रसगोपात वर्णन को ही प्रमुखता देकर मौलिक सहजयोग से प्राय: तटस्थ बनते जा रहे हैं। फलस्वरूप ध्यान, जो जीवन-विकास का परम पवित्र, अमोघ साधन है, पल्लवित-पुष्पित नही हो पा रहा है।

आधुनिक ध्यान-साहित्य के अवलोकन से कभी-कभी लगता है कि कुछ व्यक्ति अपनी क्षुद्र प्रतिष्ठा की प्यास को शान्त करने के लिये ध्यान जैसी पवित्र क्रिया का दुरुपयोग कर रहे है और सामान्य जनता को दिग्भ्रमित कर अपनी स्वार्थपूर्ति कर रहे है।

सहजयोग की ध्यान-साधना साधक को इन सभी छलनापूर्ण वृत्तियो से बचाकर सहज जीवन की ओर गतिशील करती है। वास्तव मे ध्यान की विभिन्न पद्धतियों में सहजयोग का जो महत्त्व है, वह अलौकिक है और उसी के द्वारा व्यक्ति स्वप्रतिष्ठित होकर परम सत्य एवं शाश्वत शांति को उपलब्ध हो सकता

हो उठता है, उस समय अहिंसा-दर्शन की महत्ता उपयोग की दिशा मे कुछ बढ जाती है ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति किंवा अहिंसा-दर्शन की उपयोगिता सर्व विदित है ।

आज का युग लोकतत्र का युग है, कोई भी इन्सान अपने पर किसी के शासन तन्त्र को स्वीकारना नही चाहता । पर ऐसा क्यो है ? इसलिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व चाहता है, उसे गुलामी एव असमानता से सख्त नफरत है । यह समानता ही लोकतत्रात्मक शासन प्रणाली का आधार है । प्रजातन्त्र का अर्थ ही है प्रजा के द्वारा, प्रजा के लिये, प्रजा का शासन, जिसमे सभी व्यक्ति अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का बोध कर पाते है । जहाँ भय, आतक, घृणा और वैर समाप्त हो जाते हैं, सभी मे समानता का बोध जागृत होता है, और चारो ओर प्रेम, करुणा, दया, ममता एव स्नेह की वर्षा होने लगती है ।

बस, यही मधुर अध्यात्म आत्मतत्र का सदेश देती है निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति, जिसे हम अहिंसा, अनेकान्त एव आत्म-परिष्कार के नाम से पुकारते हैं, और आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे जिसकी सर्वाधिक उपयोगिता है ।

वर्तमान युगीन जन-चेतना पर दृष्टिपात करे, तो परिलक्षित होता है कि चारो तरफ अभावो की आग धू-धू करके जल रही है । इन्सान चाहे दिन हो या रात, शरीर कँपा देने वाला शीत हो या देह झुलसा देने वाली गर्मी, हमेशा कही पत्थर फोड रहा है, कही लोहा पीट रहा है, कही खेत खोद रहा है, तो कही कारखाने की चारदीवारी मे पसीना वहा रहा है । और यह सब प्रयास उन सब अभावो की आग को शान्त करने के लिये हो रहे है । पर इन उपायो के जो परिणाम है, वे सब हमारे सामने स्पष्ट है ।

"पारस्परिक मनोमालिन्य, अनैतिक जीवन का ताण्डव नृत्य, हिंसा की वर्बरता, आक्रान्ताओ की पैशाचिकता, एक ओर साधनहीन व्यक्तियो का शोषण और दूसरी ओर साधनो का भयकर अपव्यय एव दुरुपयोग । इन सभी कारणो से असमानता-जनित अशाति एव अराजकता का साम्राज्य अठखेलियाँ कर रहा है ।"

इस भयकर सत्रासपूर्ण वातावरण मे अगर परित्राण का मार्ग कही उपलब्ध हो सकता है, तो वह अहिंसामूलक निर्ग्रंथ श्रमण-सस्कृति की पुनीत छाया मे ही ।

क्या लौकिक और क्या लोकोत्तर, दोनो ही प्रकार के मगल-जीवन की आधार-शिला भगवती अहिंसा ही है । अहिंसा मानवीय चिन्तन की उच्च

कहा जा चुका है कि ध्यान की मुख्य दिशाएँ दो है—शुभ और अशुभ। जिस प्रकार दूषित अन्न, जल एवं वायु व्याधि एव दु:ख के कारण बन जाते है, उसी प्रकार दुर्ध्यान एवं दुश्चिन्तन आत्मिक शाति के क्षेत्र मे व्याधि, शोक, सक्लेश आदि के निमित्त बन जाते हैं। जैसे शुद्ध वायु आदि आवश्यक जीवनोपयोगी तत्त्वो के अभाव मे शारीरिक ऊर्जा को क्षति पहुँचती है अथवा ऊर्जा क्षीण हो जाती है। उसी प्रकार प्रशस्त ध्यान किवा पवित्र विचारो के अभाव मे चेतनागत ऊर्जा अथवा भाव प्राण की शक्ति क्षीण होती चली जाती है। अतः पवित्र विचारयुक्त ध्यान प्रारभिक ध्यान-साधको के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

चिन्तन की पवित्र धारा जीवनगत राग-द्वेषात्मक कूड़े-करकट को ध्वस्त करती है। फलस्वरूप जीवन मे नैतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक जागरण होता है, जो जीवन निर्माण मे पाथेय का कार्य करता है।

चिन्तन की वही पवित्र धारा जिसे हमने ध्यान की सज्ञा दी है आगे विकासोन्मुख होती हुई सागर की अतुल गहराई मे रूपान्तरित हो जाती है, जहाँ ध्याता और ध्येय एकाकार बन जाते है, साधक साध्य मे रूपान्तरित हो जाता है।

इस प्रकार सक्षेप में इतना ही कहा जा सकता हैं कि ध्यान के मौलिक स्वरूप, महत्त्व एव उसकी उपयोगिता को आधुनिक ध्यान-साधक ठीक से हृदयगम कर अनुभूति के प्रकाश का वरण करे तो ध्यान साधना मे आशातीत सफलता मिल सकती है।

प्रश्न—३

धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी है या पूरक ?

उत्तर

चूँकि प्रश्न युगसापेक्ष है, अत: उत्तर में सापेक्षता होनी सहज है। वैसे जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है, अत: वैज्ञानिक विश्लेषण भी अनेकान्त दर्शन के आधार पर धर्म का विरोधी अथवा पूरक हो सकता है।

अगर विज्ञान की शाब्दिक व्याख्या की जाये, तो वह होगी "विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्" अर्थात् विशेष ज्ञान को विज्ञान कहते है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से विज्ञान धर्म का विरोधी नही हो सकता है, क्योकि ज्ञान आत्मा का मौलिक धर्म है और विशेष ज्ञान-आत्म-परिष्कार का ही कारण बनता है, किन्तु विज्ञान शब्द का आज जो भौतिक आविष्कारों के लिए रूढ़ अर्थ मे प्रयोग हो

प्रश्न—२

जैन दर्शन की साधना पद्धति मे ध्यान-योग के स्वरूप, महत्त्व एव उपयोगिता पर कुछ विस्तृत विवेचन करने का अनुग्रह करें।

उत्तर

स्वरूप:—साधना-पद्धति मे, चाहे वह जैन-दर्शन की हो अथवा अन्य किसी दर्शन की, ध्यान अनिवार्य अग है। बिना ध्यान के साधना ही नही, ससार के किसी भी कार्य मे सफलता अर्जित नही की जा सकती है। अत: साधना और ध्यान का अविनाभावी सम्बन्ध है। उसमे जैन-दर्शन की साधना तो ध्यान से ही अनुप्राणित है। या यो कहे. वह ध्यान की साधना है। भगवान् महावीर एव उनके साधक-जीवन पर दृष्टिपात करे, तो ज्ञात होगा कि उन्होने तथा उनके साधको ने महीनो ध्यान-योग की साधना मे विताए थे। चूँकि, ध्यान शब्द अभिव्यन्जना का नही, अनुभूति का विषय है, अत: उसे परिभाषित करना अथवा उसके स्वरूप का कथन कर पाना उतना ही कठिन है, जितना कि एक जन्मान्ध व्यक्ति को किसी रग-रूप अथवा प्रकाश का साक्षात्कार कराना। जन्मान्ध व्यक्ति, जिसने कभी किसी भी वस्तु के रूप का अवलोकन नही किया हो, उसे हम लाख प्रयास करके भी प्रकाश तो क्या अन्धकार का भी वोध नही करा सकते कि "प्रकाश ऐसा होता है।" ठीक उसी प्रकार अनुभूति के अभाव मे "ध्यान" शब्द को स्वरूप की दृष्टि से व्याख्यायित नही किया जा सकता है तथापि अनेकानेक ऋषि-महर्षियो एव पूर्वाचार्यो ने ध्यान को विविध रूपो एव आयामो मे व्याख्यायित किया है। वस, इसी दिशा मे यहाँ पर भी वही सामान्य प्रयास है।

"ध्यान" का सामान्य अर्थ होता है विचारों का केन्द्रीकरण, विविध दिग्गामी विचार-प्रवाह को एक व्यवस्थित दिशा प्रदान करना। विशेष अर्थो में "ध्यान" प्रत्येक जीवन-चेतना की अवश्यम्भावी वृत्ति है। जहाँ जीवन है, वहाँ भला-वुरा चिन्तन अवश्यम्भावी है और जहाँ भले-वुरे का चिन्तन है, वहाँ ध्यान सहज घटित होता है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण मे ध्यान की धारा दिशा-परिवर्तन के साथ निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। कभी उसमे सक्रियता वढ जाती है, तो कभी घट जाती है, किन्तु चिन्तन-धारा को ही "ध्यान" सज्ञा दी जाती है। चिन्तन की उस धारा की प्रमुख दो ही दिशाएँ हैं—एक निम्न, दूसरी ऊर्ध्व। निम्नगामी विचार-प्रवाह की भी दो धाराएँ हैं—एक तो अत्यन्त निकृष्टता की ओर ले जाती है, दुर्गति मे पहुचाती है। उनको अप्रशस्त एव अशुभ कहा जाता है। दूसरी आत्मिक सपरिपूर्णता की अपेक्षा मे तो न्यून कही जा सकती है, किन्तु आत्मिक परिपूर्णता मे सहायक होने से तथा लोक-परलोक-सवधी भौतिक उपलब्धियो का कारण हाने से प्रशस्त। उस सर्व

वैज्ञानिक गवेषणाओ के द्वारा शल्य-चिकित्सा का जो विकास हुआ है, उसमे मरणासन्न व्यक्ति का उपचार हो सकता है और उसकी रक्षात्मक प्रक्रिया के द्वारा अहिसा को पुष्ट किया जा सकता है। यातायात एव समाचार-सचार के साधनो द्वारा दुर्भिक्ष से पीडित क्षेत्रों मे आवश्यक साधन-सामग्री पहुँचाकर हजारो प्राणियो के प्राण बचाये जा सकते है। इसी प्रकार विज्ञान की अन्य अनेक सृजनात्मक उपलब्धियो पर सन्तोष व्यक्त किया जा सकता है और उन्हे धर्म मे पूरक माना जा सकता है।

शक्ति (ऊर्जा) पर जब तक विवेक और नीति का नियन्त्रण रहे, तभी तक उसकी उपयोगिता है। दुष्टता के साथ उसकी दुरभिसधि जुड जाने पर विकास एवं जन-कल्याण के स्थान पर विनाश एव सहार के दुष्परिणाम ही उपस्थित होगे।

आज के वैज्ञानिक विकास को देखकर सामान्य जनमानस एक ओर प्रसन्नता से झूमता दिखाई देता है, तो दूसरी ओर इसके सम्भावित दुष्प्रयोग की विभीषिका से चिन्ताग्रस्त भी दिखता है।

क्षुद्र स्वार्थी मनुष्यों ने विशेषकर सत्ता-लोलुप राजनीतिज्ञो ने वैज्ञानिक आविष्कारों का भयकर अणु-आयुधो के रूप मे, जो दुरुपयोग किया है, वह निश्चित ही जन-साधारण मे विज्ञान के प्रति घृणा का कारण बन गया है। हिरोशिमा और नागासाकी पर बम वर्षा से विनाश का जो ताण्डव नृत्य हुआ है, वह विज्ञान के प्रति सहज भयाक्रान्तता का भाव पैदा कर देता है। निकट भविष्य मे हुए वियतनाम-युद्ध मे वैज्ञानिक अस्त्रो का जो दुरुपयोग हुआ और उसके द्वारा लाखों निरपराध प्राणी स्वाहा हो गये, यह किसी से छिपा नही है।

विज्ञान का सहारा पाकर मानव दैत्य बनता जा रहा है। घातक अस्त्रो के निर्माण ने मानवी सस्कृति को, जिसे विकसित होने मे लाखो वर्ष लगे, विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। अपनी सामान्य-सी सत्ता-लिप्सा के कारण, वैज्ञानिक साधनो का नर-सहार के रूप मे जो उपयोग हो रहा है, वह धर्म का पूरक नही, घातक ही कहा जा सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस विध्वसनात्मक स्थिति में विज्ञान को दोषी मानकर क्या हेय मान लेना चाहिए ? इसका छोटा-सा उत्तर होगा एकान्त रूप से ऐसा नही माना जा सकता है। प्रश्न हो सकता है कि भौतिक विज्ञान जो कि आशिक सत्य की खोज है, वह हेय अथवा सर्वथा बुरा कैसे हो सकता है ? बुरा तो वह इसान है, जो अपने निहित स्वार्थ के लिए विज्ञान का दुरुपयोग करता है। आपरेशन के चाकू से यदि रक्षात्मक भावना से आपरेशन किया जा रहा है,

एव असत् आचारो मे संशोधन-परिवर्तन करें। इसके विना पुनीत आध्यात्मिक मार्ग पर गति असम्भव है।

अशुद्ध श्रद्धा एव मलिन विचारो के परित्याग का अर्थ श्रद्धा एव विचारो की मूल शक्ति के त्याग से नही, अपितु उनके सशोधन से है। सागर का क्षार आदि का जीवन-नाशक तत्त्वो के घोल-युक्त पानी को सशोधित (फिल्टर) कर जीवनी-शक्तिदायी रूप मे परिवर्तित करने के समान विचारो मे सशोधन किया जाता है। यह विचार-शुद्धि का मार्ग है; विचार-शून्यता का नही।

ध्यान-साधना की भूमिका का दूसरा चरण है, जीवन व्यवहार का सम्यक् अवलोकन। अनायास उठनेवाली विचार-तरग का अवलोकन करते हुए उसके गूढ रहस्यो का विश्लेषण करना तथा उनके सम्यक् वर्गीकरण एव फलाफल अथवा हिताहित का निर्णय करना होता है। शुद्ध एव हितप्रद विचारो को, जो शाश्वत परम शान्ति के हेतु हैं, दृढतर वनाना तथा अन्य विचार-तरगो को भी उसी दिशा मे मोडने का प्रयत्न करना साधना के इस विन्दु की आवश्यकता है। विचारो के अनुरूप ही आचरण के सोपानो पर वढते जाना भी ध्यान-साधक के लिये आवश्यक होता है।

वाह्य दृश्य पदार्थों को देखने, सुनने, आदि के द्वारा जो व्यवहार वनता है, उस पर स्वीकृत निर्णय के अनुसार सजग रहने का अभ्यास भी ध्यान-साधक के लिए अपेक्षित होता है।

जीवन के व्यावहारिक क्रिया-कलापो मे समुचित परिवर्तन के साथ ही साधना के अन्तरग रूप के परिष्कार पर वल दिया जाना चाहिये। ध्येय के स्वरूप की गरिमा को समझकर उसके साथ स्वरूप का तुलनात्मक अकन करने के लिये आवश्यक है कि अपनी आन्तरिक वृत्तियो का सूक्ष्म दृष्ट्या अवलोकन किया जाये।

विखरी हुई मानसिक वृत्तियो को सम्यक् निर्णीत ध्येय-विन्दु पर केन्द्रित करने के लिये प्रारभ मे विधिपूर्वक श्वास-प्रश्वास-प्रक्रिया का अवलम्वन भी लिया जा सकता है। श्वासानुसन्धान पर अभ्यास के स्थिर होने पर प्राण-केन्द्रो, उनके क्रिया-कलापो और व्यवहारो को ठीक समझने का प्रयास किया जाय। तदनन्तर विचार-प्रवाह के सशोधित रूप से जाज्वल्यमान्, उज्ज्वल प्रशान्त स्वरूप का साक्षात्कार करते हुए अन्त मे आपेक्षिक निराकार ध्येय की उपलब्धि का प्रयत्न प्रारभ होता है।

इस प्रकार क्रमिक सशुद्धि-प्रक्रिया के द्वारा आत्म स्वरूप के साक्षात्कार के सोपानो पर यथाशक्ति आरोहण को सहजिक प्रक्रियाओ के साथ वरण करना

सभी आत्माएँ स्वरूप की दृष्टि से समान है। भगवान् महावीर का स्पष्ट उद्घोष है कि "अप्पसम मन्निज्ज छप्पिकाए" अर्थात् ससार की समस्त आत्माओ को अपनी आत्मा के तुल्य समझो, अथवा "एगे आया" संसार की सभी आत्माएँ स्वरूप की दृष्टि से एक है। जो अनन्त ज्योति स्वरूप परमात्मा का है, वही ससार की एक छोटी-से-छोटी आत्मा का भी है।

इतना होते हुए भी संसार के समस्त प्राणियों मे कर्म-जनित इन्द्रिय एव देह सम्वन्धित भेद-रेखा भी स्पष्ट दिखाई देती है। एक वनस्पति की क्षुद्रतम योनि मे रहने वाली आत्मा है, तो दूसरी कीडों-मकोडो, पशु-पक्षी की देह मे रहने वाली आत्मा है और इससे विकसित मानव देहधारी और देव वपुधारी आत्माएँ भी है। ये सब भिन्नताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। इतना ही नही, मानव तन-धारी आत्माएँ भी सभी समान कहाँ है ? उनमे भी कर्म-जनित, वर्गजनित अनेकानेक भिन्नताएँ देखी जाती है।

उपर्युक्त भिन्नताओं का कारण जैन दर्शन में प्राणियों के अपने-अपने शुभाशुभ कर्म को माना गया है। अपने पूर्वार्जित कर्म के आधार पर ही विभिन्न प्रकार के शारीरिक रचना-भेद एवं संगठन-भेद उत्पन्न होते है। एक पुरुष की शारीरिक रचना सुगठित एवं सुडोल होती है, उसके देह की मजबूती फौलादी होती है। इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति कुरूप, विकलाग, वीभत्स एव कमजोर शरीर वाला होता है। इसके पीछे जो कारण है, वे अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्म है। प्रारम्भ मे भले ही हम इसे आनुवशिक सस्कार अथवा प्राकृतिक उपादान मान ले, किन्तु वैसा संयोग भी कर्म-जनित ही हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि दैहिक भिन्नता का मुख्य कारण जैन धर्म मे कर्म को माना गया है और यही स्थिति स्त्री-शरीर और पुरुष-शरीर की रचना भेद के सन्दर्भ में है। स्त्री और पुरुष की शारीरिक भिन्नता भी कर्म जनित है।

अव प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार के कर्म के कारण स्त्री-शरीर की उपलब्धि होती है और किस कर्म के कारण पुरुष शरीर की। इस प्रश्न के उत्तर की गहराई में जाने के लिए आगमिक कर्म-सिद्धान्त का आश्रय अपेक्षित होगा।

आगम के अनुसार स्त्रीवेद कर्म का वन्धन मायाचार की प्रधानता से होता है और वह भी प्रथम एव द्वितीय गुणस्थान जैसी विचारों की निम्न स्थिति मे, जवकि पुरुपवेद के वन्धन का कारण सरल प्रकृति होता है और गुणस्थान की दृष्टि से नवे गुणस्थान जैसे उच्च भावो तक होता है।

इस आगमिक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के आधार से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री-शरीर की उपलब्धि निम्न विचारो के कारण होती है, और पुरुष देह

है। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतिभासित हो सकता है, किन्तु अनुभूति का आलोक इन शब्दो की सत्यता को प्रमाणित कर सकता है।

महत्त्व—जैन दर्शन से उपदर्शित ध्यान-योग किंवा सहजयोग का कितना महत्त्व है, यह तो अनुभूति का विषय है। अत सम्यक् ध्यान-साधक ही उसकी अनुभूति का रसास्वादन कर सकता है। किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि आज के भौतिक जगत् मे विज्ञान के क्षेत्र मे अग्नि, विद्युत, भाप, गैस, तेल, अणु-विस्फोटक लैसर, आदि का जितना महत्त्व है, उससे सहस्राधिक महत्त्व (साधना के क्षेत्र मे) ध्यान का है।

हठयोग, कर्मयोग, आदि अन्यान्य साधना-पद्धतियो मे एकान्तिक आग्रह-मूलक दृष्टि का प्राधान्य होने से, विकृति एव विक्षिप्तता की अधिक सभावनाएँ रहती है, जबकि सहजयोग इन सभी विकृतियो से अलग हटकर अपना महत्त्व स्थापित करता है।

जैनागमो में सहजयोग की मौलिक प्रक्रियाओ का आध्यात्मिक अनुसधानपूर्वक वैज्ञानिक विवेचन वटवृक्ष की शाखाओ की भाँति बहुआयामी विस्तार मे उपलब्ध होता है।

सांकेतिक रूप से ध्यान का वर्गीकरण आगम की भाषा मे यो हुआ है—

"चउविहे झाणे पण्णते तजहा—अट्ठ झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे-झाणे, सुक्के झाणे।" (स्थानाग सूत्र–४) आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म ध्यान, और शुक्लध्यान। इन चारो ध्यानो के स्वरूप एव भेद-प्रभेदो का विस्तृत विवेचन उत्तरवर्ती साहित्य मे उपलब्ध होता है, जो जैन-दर्शन कथित ध्यान की महत्ता पर गहरा प्रकाश डालता है।

आवश्यकता है नितनूतन आविष्कर्ता वैज्ञानिको की भाँति अन्तरग खोज के प्रति सपूर्ण समर्पणा की। जैसे भौतिकी अनुसधानो मे अनुरक्त वैज्ञानिक अपनी शारीरिक एव पारिवारिक दृष्टि तक के प्रति अनासक्त बनकर केवल आविष्करणीय तत्त्व के प्रति ही तन्मय हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ध्यान-साधक के लिये भी आवश्यक है कि वह केवल ध्यान की शब्दात्मक एव भेदात्मक विवेचना तक ही अटक कर नही रह जाये, अपितु ध्यान मे ध्येय के प्रति सपूर्ण रूप मे समर्पित हो जाये। सर्वतोभावेन समर्पणा के आधार पर ही ध्यान के अनुभूति-मूलक महत्त्व को हृदयगम किया जा सकता है।

उपयोगिता—शरीर-निर्वाह के लिये शुद्ध अन्न, जल एव वायु (ऑक्सीजन) की जो उपयोगिता है, वही उपयोगिता अध्यात्म के लिये ध्यान की है।

मोहनीय, प्रसगत: वेद मोहनीय की जिसमे जितनी न्यूनता रहती है, भावात्मक दृष्टि से साधना मे वह उतनी ही उच्चता का वरण करता है, और मोह की जितनी उत्कृष्टता रहती है, उतना ही वह गुणात्मक क्षेत्र मे अविकसित माना जाता है ।

दीक्षा-पर्याय सम्वन्धी ज्येष्ठत्व एवं कनिष्ठत्व भी किसी सीमा तक मोह-जनित भावना के तारतम्य पर आधारित होता है । चूँकि पुरुप, स्त्री और नपुंसक वेद के उदय मे वैकारिक भावनाएँ क्रमश: अधिकाधिक होती हैं, अत तीनो की गुणात्मक स्थिति भी उसी अनुपात से न्यूनाधिक होती हैं । आगमो मे पुरुष, स्त्री और नपुसक की वैकारिक भावनाओ को अग्नि से उपमित करते हुए कहा गया है कि पुरुष वेद-जनित वैकारिक भावना तृणाग्नि के तुल्य होती है और स्त्री वेद-जनित वैकारिक भावना करिषाग्नि के समान होती है, जवकि नपुसक वेद-जनित वैकारिक भावना अरण्य-दाह (दावाग्नि) के समान होती है । जैसे घास के तिनके आग से शीघ्र प्रज्वलित होते है और पुन: शान्त भी शीघ्र हो जाते है, वैसे ही पुरुष मे वैकारिक भावनाओ का वेग तीव्रता के साथ आता है, किन्तु वह क्षणिक होता है । इसके विपरीत करिषा (कण्डा) प्रज्वलित भी धीरे-धीरे होता है, और उपशात भी शनै -शनै: होता है । ठीक उसी प्रकार स्त्री वेदोदय-जनित भावना कुछ अधिक वैकारिक एव स्थायी होती है । इसी प्रकार नपुसक वेद अरण्य-दाह अर्थात् भयकर वन के जलने के समान वहुत अधिक स्थायी विकारो वाला होता है ।

इस प्रकार भावात्मक दृष्टि भी मुख्यतया स्त्री को द्वितीय स्थान ही प्रदान करती है । यद्यपि उपर्युक्त मोह-जनित भावनाओ का कथन वहुलता का है, उसमे कुछ आपवादिक उदाहरण मिल सकते हैं, किन्तु आम्र-वन मे सौ आम्र-वृक्षों के साथ पाँच-दस नीम के वृक्ष होते हुए भी उसे आम्रवन ही कहा जाता है ।

इस प्रकार भावो की इस दृष्टि से मोह-कर्म का उदय पुरुष वेद मे सवसे अल्प होता है और मोह की अल्पता की प्रधानता के कारण पुरुष को ज्येष्ठत्व स्वत: प्राप्त हो जाता है, क्योकि पूर्व जन्मोपार्जित वेद मोहनीय कर्म के अनुरूप ही देह की उपलब्धि होती है ।

इतना सव कुछ होते हुए भी कभी-कभी मुनि की अपेक्षा साध्वी, साधना मे विशेष प्रगति कर सकती है, जहाँ उसके पूर्व कर्म एक तरफ छूट जाते है । किन्तु यह उसका वर्तमान पुरुषार्थ के द्वारा भावात्मक विकास होता है, वर्तमान शरीर की निर्मिति के साथ उसका कोई सम्बन्ध नही है और उस स्थिति को पूर्व में भाव-वन्दन के प्रसग में स्वीकार किया जा चुका है । परन्तु व्यक्ति-पिण्ड-शरीर वन्दन का जहाँ तक प्रसंग है, उसमे पुरुष का ज्येष्ठत्व मानना पड़ेगा ।

रहा है, उस विज्ञान शब्द से धर्म का सम्बन्ध उसके प्रयोग की दिशा के आधार पर पूरक अथवा विरोधी दोनो अर्थों मे हो सकता है ।

धर्म की मौलिक परिभाषा है—आत्म-स्वरूप मे लीनता । जैनागमो मे "वत्थुसहावो धम्मो" के अनुसार वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा गया है, किन्तु यहाँ हम जिस धर्म के सम्बन्ध मे विचार कर रहे है, वह है शुद्ध चैतन्य का स्वरूप-रमण रूप स्वभाव अर्थात् परम चेतना का आत्म-भाव । शुद्ध चैतन्य इस दृष्टि से कि ससारगत कर्मयुक्त चेतना को सापेक्ष दृष्टि से रूपी भी माना गया है । रूपी का धर्म आत्मा का शुद्ध स्वभाव नही वन सकता है । अस्तु, धर्म से तात्पर्य है—राग, द्वेष, मोह, ममत्व आदि दुष्प्रवृत्तियो से रहित आत्मा का मूल स्वभाव ।

इसके विपरीत आज के रूढ अर्थ वाला विज्ञान आत्म धर्म को गौण कर भौतिक ऊर्जा के विकास-परिष्कार से अधिक सम्बन्धित है, अत दोनो का कोई मौलिक सम्बन्ध स्थापित करना समन्वय की अति होगी तथापि विज्ञान को उसके उपयोग के आधार पर धर्म की वाह्य परिधि मे अथवा आत्म-कल्याण सम्पादन मे सहयोगी माना जा सकता है, बशर्ते कि उस भौतिक विकास का उपयोग जनकल्याण, जनशाति एव चेतना के परम विकास के लिये हो ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आदि सिद्धान्त धर्म के मूर्त्त रूप हैं । विज्ञान यदि इन सिद्धान्तो की सुरक्षा का कवच वनता है और सम्पूर्ण मानव समाज के सत्रास को समाप्त करने का कार्य करता है तो वह निश्चित धर्म किवा जीवनोत्थान के मार्ग मे पूरक वनकर उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

तात्पर्य यह है कि मात्र विज्ञान अपने आप मे धर्म का न पूरक हो सकता है, न विरोधी । उसका प्रयोगकर्त्ता ही उसमे पूरकता अथवा विरोध का समारोप करता है । कलम सत्य-लेखन मे प्रयुक्त हो सकती है और असत्य-लेखन मे भी । सौ रुपये का उपयोग किसी अपग को सहयोग देकर भी किया जा सकता है और शराव पीकर पागल वनने मे भी । वास्तव मे पदार्थ अथवा साधन अपने आप मे न वुरे होते हैं न अच्छे । उसका प्रयोग करने वाला जिस दिशा मे चाहे, उनका उपयोग कर सकता है ।

ठीक यही स्थिति वैज्ञानिक अनुसधानो की है । वर्तमान विज्ञान ने भौतिक साधनो के विकास मे आशातीत सफलता अर्जित की है, इसलिए वर्तमान युग का अपर नाम ही वैज्ञानिक युग वन गया है । मानव-जीवन को सुखी और समृद्ध वनाने हेतु विज्ञान ने अनेकानेक भौतिक सुविधाएँ उपस्थित की है, इसमे दो मत नही हो सकते ।

हो जाता है कि वहाँ भी पुरुष को ज्येष्ठत्व ही नही नायकत्व भी प्रदान किया गया है । तो वहाँ की मर्यादाओ का निर्धारण किसने किया और क्या उसमे भी पक्षपात किया गया है ?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष प्राकृतिक एव आगमिक दृष्टियो से ज्येष्ठ सिद्ध होता है और जो ज्येष्ठ होगा, उसे वदन आनुषगिक ही होगा। व्यावहारिक जीवन मे भो देखा जाता है कि दस वर्ष की उम्र वाले चाचा एव मामा को २५ वर्ष की उम्र वाले भतीजे-भानजे नमस्कार करते है। सादगी एव सद्गुण सम्पन्न ४० वर्षीय बहू पुन· विवाहित २० वर्षीय सास को प्रणाम करती है । यही नही, मुनि-परम्परा मे भी पर्याय ज्येष्ठ पुत्र को लघु दीक्षा पर्याय वाला पिता सम्मान देता है । एक २० वर्षीय आचार्य के नेतृत्व मे बडे-बडे स्थविर महामुनि चलते है और उनका सत्कार-सम्मान करते है । यह सब पद की महत्ता है । राष्ट्रपति-पद राष्ट्रीय प्रजातन्त्र मे सर्वोच्च माना जाता है । अतएव एक पैंतीस वर्षीय राष्ट्रपति का आदर सत्कार बडे-बडे अनुभवी राष्ट्र नेता करते है ।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर यह निष्कर्ष फलित होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से कैवल्यज्ञान जैसी सर्वोच्च सत्ता की अधिकारिणी मानी जाने के उपरान्त भी व्यावहारिक एव शारीरिक दृष्टि से स्त्री को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है । इस स्थिति को कुछ आधुनिक क्रान्तिकारी जागरूक महिलाओ ने भी स्वीकार किया है । विश्रुत विद्वान् श्री जैनेन्द्रजी ने अपनी कृति "समय और हम" मे एक विदुषी अमेरिकन महिला का प्रसग देते हुए लिखा है कि उनके कथनानुसार हमे पुरुषो से द्वितीय स्थान स्वीकार कर लेना चाहिये । इसी प्रकार भारतीय सस्कृति मे, जो अति प्राचीन सस्कृति है, नारी का पितृ पक्ष सम्बन्धी गोत्रादि परिचय बदल जाता है । उसे पुरुष के माध्यम से ही पहचाना जाता है । सन्तान की परम्परा भी पुरुष वशानुसार मानी जाती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनागमो एव तीर्थंकरो ने नारी को जो द्वितीय स्थान अपनी सघीय व्यवस्था मे प्रदान किया है, वह यौक्तिक एव समीचोन है । इसमे नारी जाति के अनादर की भावना अथवा उसे हीन समझने की कल्पना करना निरी मूर्खता ही होगी । उपर्युक्त व्यवस्था प्रकृति, कर्म सिद्धान्त एव सामाजिक सघीय व्यवस्था के आधार पर बनी है, न कि हीन बुद्धि से

प्रश्न—५

वर्तमान सन्दर्भ मे युवा वर्ग मे धार्मिक असतोष के कारण क्या है ? उनके समाधान क्या हो सकते है ?

तो वह उस चाकू का सदुपयोग होगा और उसी से स्वार्थवश किसी का गला काटा जाय तो वह उसका दुरुपयोग होगा। इसमे चाकू को दोषी कैसे कहा जा सकता है? दोषी तो उसका उपयोगकर्त्ता है।

जिन लेजर किरणो के रचनात्मक उपयोग से कैसर जैसे दु साध्य रोगो पर नियन्त्रण पाया जा सकता है, आँख की पुतली या किसी कोने मे ट्यूमर आदि हो जाने पर एक सैकण्ड मे हजारवे भाग मे आपरेशन द्वारा रोगी को रोग-मुक्त किया जा सकता है, उन्ही लेजर किरणो के विध्वसक उपयोग द्वारा महाविनाश की लीला प्रस्तुत की जा सकती है। वैज्ञानिको के अनुसार लेजर किरणो का युद्ध अणुयुद्धो से सस्ता पडेगा और पलक झपकते ही अभीष्ट क्षेत्र के सैनिक और नागरिक ही नही, वृक्ष, फसल, घास-पात सब भस्म हो जायेंगे। लेजर किरणो का प्रयोग एक ऐसा जादुई चिराग-सा है जो सृजन और विनाश दोनो क्षेत्रो मे विस्मयकारी भूमिका अदा कर सकता है। रूस और अमेरिका दोनो देशो के हजारो वैज्ञानिक सैकडो प्रयोगशालाओ मे इस महाशक्ति की साधना मे अहर्निश जुटे हुए है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-शोध-अनुसधान-सस्था के निदेशक डॉ० फ्रेकवारनेवी ने ससार को चेतावनी दी है कि जिस क्रम और उत्साह से प्रकृति विजय के अन्तर्गत मारक शक्तियाँ विकसित और उपलब्ध कराने की होड चल रही है, उसके परिणाम घातक होगे।

जैन दर्शन की अनेकान्त शैली से कहे तो विज्ञान धर्म का पूरक भी हो सकता है और घातक भी। जो वैज्ञानिक प्रयोग अहिंसा, सत्य, आदि की प्रतिष्ठा मे सहयोग प्रदान करते है. वे धर्म एवं मानव-कल्याण के पूरक है, और जो प्रयोग क्षुद्र स्वार्थो से प्रेरित हो विनाश लीला की रचना कर रहे है, वे धर्म और मानव-कल्याण मे बाधक है। अत. आवश्यक है कि वैज्ञानिक प्रयोग पर आत्म-दर्शन एव विवेकपूर्ण सम्यग् निर्णय का नियन्त्रण रहे, ताकि प्रचण्ड वैज्ञानिक शक्ति का जन-कल्याण एव विश्व-कल्याण के लिए समता के धरातल पर सही उपयोग हो सके।

प्रश्न—४

आत्म-साधना की दृष्टि से जैन धर्म की यह ध्रुव मान्यता है कि प्रत्येक आत्मा समान रूप से शक्ति-सम्पन्न है, फिर लिंग-भेद को मुख्यता देकर साधना मे समान होते हुए भी साध्वी को द्वितीय स्थान क्यो दिया गया?

उत्तर

यह सत्य है कि जैन दर्शन की मौलिक मान्यता के अनुसार ससार की

भौतिक अनुसंधान एवं आविष्कारो ने इसको सूक्ष्मता से समझने का सुन्दर अवकाश प्रदान किया है । परिणामस्वरूप उसकी बुद्धि इतनी पैनी एव सूक्ष्म-दर्शी बन चुकी है कि वह इस छोर से उस छोर तक पहुँचने के लिए मचल उठती है । किसी रूप मे वह बाहर प्रस्फुटित होने का अवसर देखती है और अवसर पाकर कुछ प्रकट भी होती है । किन्तु अधिकाश लोगो मे उसको देखने समझने की क्षमता प्रायः नही होती है । परिणामस्वरूप कई आघातों से आहत होकर या तो कुंठा का रूप धारण करती है, या मुड़कर भौतिकता को ही सब कुछ मान बैठती है अथवा विद्रोह का रूप धारण कर लेती है । वैसी स्थिति मे मस्तिष्क के तनाव को हल्का करने के लिए उपन्यास, सिगरेट, सिनेमा आदि का सहारा लेती है, जिससे उसकी गति विचित्र बन जाती है । किन्तु दूसरी ओर उसके सामने समस्या है कि वह अध्यात्म के साथ अपना सयोजन कैसे करे ? क्योंकि वर्तमान के मतभेदपूर्ण धार्मिक क्षेत्र की ओर उसकी दृष्टि जाती है, तो वह हतप्रभ-सा रह जाता है । जिस धर्म का उद्देश्य विश्ववात्सल्य, पारस्परिक प्रेम, सामाजिक सौहार्द है, उसी धर्म के उपासक सामान्य-सी बातों के लिये एक-दूसरे को समाप्त करने पर तुले हुए है । चीटी तक की रक्षा करने वाले अहिसा के पुजारी सामाजिक कुरीतियो एव तुच्छ भौतिक स्वार्थों के पीछे कितने जघन्य हिंसा कृत्य कर जाते है ।

कदाचित् वह इस समूहगत सैद्धान्तिक अवहेलना की उपेक्षा कर ले, किन्तु जब वह अपने अभिभावको, अध्यात्म-साधना के प्रति उत्प्रेरको की ही द्वेषपूर्ण स्थिति देखता है, तो हैरान-सा रह जाता है । अभिभावक एव अपने बुजुर्ग कहते क्या एव करते क्या है, उनके जीवन मे धार्मिक स्थानों के आचरण एव कथन कुछ और होते है और धर्मस्थान से बाहर के व्यावहारिक जीवन के आचरण कुछ और । वे ही अभिभावक जब युवको को धार्मिक क्रिया हेतु प्रेरित करते हैं, तब युवक सहज प्रश्न करते है—क्या परिवर्तन आया है आप मे इन तथाकथित धार्मिक आचरणो से ? बुजुर्ग जब उचित समाधान नही दे पाते हैं, तो उस तर्क-निष्ठ मानस को नास्तिकता का फतवा प्रदान कर देते हैं । फलस्वरूप युवा-मानस धर्म से कटता चला जाता है ।

होना यह चाहिये कि अभिभावक, युवको के सामयिक एव तर्कनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर मे शान्त मस्तिष्क से काम ले और अपने जीवन की वास्तविक स्थिति को नग्न सत्य के रूप मे स्पष्ट कर दे कि वे धार्मिक सिद्धान्तो की बहुत गहराई मे नही उतरे है, वे जो कुछ धर्माचरण कर रहे हैं वह श्रद्धा के आधार पर कर रहे है । साथ ही यह मेरी कमजोरी है कि मैं प्रवचनो आदि मे जो कुछ सुनता हूँ उसे जीवन मे पूरी तरह नही उतार पा रहा हूँ । इसके पीछे अनेक कारण है, पारिवारिक समस्याये, आय के स्रोत के अभाव के कारण आर्थिक विपन्नता, सामाजिक कुरीतियो का बाहुल्य, व्यापारिक सहयोगियो का अभाव

का निर्माण उच्च विचार-जनित होता है। इस भेद-रेखा को प्राकृतिक शरीर रचना के माध्यम से भी स्पष्ट समझाया जा सकता है। प्राकृतिक दृष्टि से स्त्री शरीर स्वसुरक्षा मे पराश्रित रहता है। स्त्री शरीर की यह प्राकृतिक कमजोरी है कि वह अपने शील की सुरक्षा प्राण देकर ही कर सकती है, अन्यथा बलात्कारी आक्रामक से बचना उसके सामर्थ्य के बाहर है। पुरुष पर कोई उसकी इच्छा के बिना आक्रमण कर उसे चारित्रिक पतन की ओर नही ले जा सकता। यह और ऐसे ही कुछ अन्य प्राकृतिक तथ्य यह मानने को बाध्य कर देते है कि शारीरिक दृष्टि से स्त्री का दूसरा स्थान है।

प्रश्न हो सकता है कि यह सब तो देह-रचना से सम्बन्धित ऊपरी भेद-रेखा है, किन्तु साधना के क्षेत्र मे देह-रचना और वह भी पूर्वजन्मोपार्जित कर्म का क्या सम्बन्ध है ? वन्दन केवल शरीर को तो किया ही नही जाता है, वन्दन मे वन्दनीय के गुणो की मुख्यता होती है।

जिज्ञासा समीचीन है। वन्दन एव सत्कार भाव मे भावात्मक दृष्टि की मुख्यता रहती है। शरीर की दृष्टि से कोई कैसी ही आकृति वाला क्यो न हो, वन्दन का भाव उसमे निहित गुणो के प्रति ही होगा, किन्तु वह वन्दन भावात्मक होगा और उस भावात्मक वन्दन मे मतभेद की गु जाइश भी नही है। भाव-वन्दन, जो गुणो के आधार पर होता है, वह एक पचास वर्ष का दीक्षित मुनि भी दो दिन की दीक्षा पर्याय वाली साध्वी को करता है। प्रतिदिन 'णमो लोए सव्वसाहूण' का उच्चारण जो पच्चीसो बार होता है, एक आचार्य भी करते है, उसमे साधु-साध्वी को कोई भेद-रेखा नही खीची गई है। प्रात और सन्ध्या प्रतिक्रमण मे पचपदो की वन्दना मे साधु-साध्वी सभी को वन्दन किया जाता है। इस प्रकार भाव-वन्दन का जहाँ तक प्रसग है, वह एक सामान्य साध्वी के प्रति भी साधु का होता ही है।

किन्तु द्रव्य वन्दन, जो देहपिण्ड एव वर्तमान साधना स्तर के आधार पर होता है, वह साधु के द्वारा दीर्घ दीक्षा पर्याय वाली साध्वी को भी नही होता है। इसका कारण वर्तमान देहपिंड और तदनुरूप भावना जगत् है। वीतराग सिद्धान्त किसी एकान्तिक आग्रह को नही मानता है। वहाँ प्रत्येक क्रिया को द्रव्य और भाव दो दृष्टियो से आका जाता है। भाव-वन्दन मे समर्पित होते हुए भी द्रव्य-वन्दन नही करना वीतराग-सिद्धान्त की गम्भीर सैद्धान्तिक दृष्टि पर आधारित है। जिन पूर्व कर्मों के परिणाम-स्वरूप वर्तमान पुरुष अथवा स्त्री का शरीर मिला, उन्ही कर्मों के अनुसार देह के अनुरूप भावनाएँ बनती हैं। जैनागमो के अनुसार पुरुष, स्त्री और नपु सक दैहिक व्यक्तियो के बीच मोह-जनित भावनाओ का बहुत अधिक अन्तर होता है, और यह सैद्धान्तिक अव-धारणा है कि गुणो का तारतम्य मोह की न्यूनाधिकता पर अवलम्बित है।

इतना सब कुछ होते हुए भी सम्पूर्ण दोष अभिभावक एवं श्रमण-वर्ग पर ही नही थोपा जा सकता है। कुछ कमजोरियाँ युवा वर्ग की स्वयं की हैं। वे स्वयं अपने जीवन के मौलिक उद्देश्यो के प्रति अनभिज्ञ रहते है और तद् विषयक ज्ञान के प्रति वे सचेष्ट नही बन पाते। अपने बाहरी बनाव-श्रृगार एव फैशन-परस्ती मे ही वे इतने व्यस्त रहते है कि जीवन के मूल उद्देश्य को समझने तक का अवकाश नही मिल पाता।

अपने-आपको अत्यधिक आधुनिक एव बुद्धिजीवी दिखाना आज का एक फशन बन गया है। जो अपने-आपको आधुनिक दिखाने का प्रयास करेगा, उसके लिये यह भी सहज होगा कि वह पुराणपन्थी नही होने का दिखावा करे। हमारे जीवन की अधिकाश सामाजिक रीति-नीतियाँ पुरातन रूढ मान्यताओ के आधार पर ही चलती है। हम उन सभी मान्यताओ को विवाह-त्यौहार आदि के प्रसगो पर भयकर आडम्बरो के माध्यम से पोषित करते है। उन गलत एवं अपव्ययकारी परम्पराओ मे क्रान्तिकारी परिवर्तन की कल्पना तक नही की जाती है। किन्तु धर्म के शाश्वत सिद्धान्त का क्रान्ति के बहाने से बदलने का प्रयास किया जाता है। यह भी एकागी भौतिकी बुद्धि का दुरुपयोग मात्र है।

युवको को सर्वप्रथम अपने जीवन के प्रति सजग होना चाहिये। किन्तु वे उस विषय मे उतने ही प्रमत्त दिखाई देते है। आज युवा वर्ग भौतिक वातावरण मे इतना आप्लावित हो गया है कि उसकी दृष्टि एकदम एकागी बन गई है। आज का उनका लक्ष्य ही भौतिक समृद्धि है। इन्द्रियाकर्षी पदार्थो एव तडक-भड़क के साधनो मे इतनी अधिक रुचि उत्पन्न होती जा रही है कि जीवन का कोई आध्यात्मिक पहलू भी है, इसे वे सोच ही नही पाते है। जहाँ कही अपनी समवयस्क सोसायटियो मे बैठेंगे, प्रसाधन, चलचित्र एव उपन्यास आदि की ही चर्चा करेगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युवको मे धार्मिक असंतोष का कोई एक कारण नही है। वातावरण, अभिभावको की कथनी एवं करनी मे असमानता एव धर्म के नव्य-भव्य वैज्ञानिक शैली मे प्रतिपादन का अभाव आदि कई कारण है।

प्रश्न का दूसरा पक्ष है कि उक्त असतोष का समाधान क्या हो ? वैसे तो उपर्युक्त विवेचन मे असतोष के जिन मूल कारणो को स्पष्ट किया गया है, उन कारणो को समाप्त कर देने से असतोष अपने आप समाप्त हो सकता है, तथापि संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि प्रथम तो ऐसा वायुमण्डल निर्मित किया जाये कि युवक स्वय यह समझने का प्रयास करे कि जिस भौतिक चका-

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भावात्मक साधना मे अथवा गुणस्थानो के आरोहण मे समान स्थिति होते हुए भी द्रव्य देह-पिण्ड की दृष्टि से द्रव्य-वन्दन पुरुष को ही होगा। कोई विरक्त आत्मा भावो की दृष्टि से उत्कट वैराग्य के क्षणो मे सातवे गुणस्थान मे पहुँच जाती है, तो भी वन्दन-व्यवहार साधु पोशाक के आधार पर षष्ट गुणस्थानवर्ती मुनि को ही होगा। षष्ट गुणस्थान वर्ती मुनि भावात्मक दृष्टि से अपने से श्रेष्ठ समझते हुए भी सप्तम गुणस्थानवर्ती वैरागी को नमस्कार नही करता है।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम मे स्थित तीर्थंकर एक सामान्य मुनि से ज्ञान एव श्रद्धा की दृष्टि से अधिक योग्य होते है, तथापि वे साधुओ द्वारा वन्दनीय नही होते हैं। वैसे ही साध्वी, भावो की दृष्टि से कुछ उच्चस्थिति पर पहुँच जाए, तथापि वन्दन ज्येष्ठ पदयुक्त मुनि को ही करेगी।

इन्ही उपर्युक्त दृष्टिकोणो से जैनागमो मे पुरुष को गुणात्मक, देहात्मक एव भावात्मक दृष्टि से प्रधान मानकर ज्येष्ठत्व प्रदान किया गया है। जिन आगमो की पुनीत छाया मे हमारी समस्त साधना गतिशील है, अत इन्ही आगमो मे उपदर्शित सघीय व्यवस्था को झुठलाया नही जा सकता है।

स्थानाग आदि सूत्रो मे दस कल्प (मर्यादाओ) का विवेचन हुआ है। उसमे पुरुष ज्येष्ठत्व कल्प का भी वैधानिक प्रारूप है।

कुछ आधुनिक विचारको का कथन है कि नियम-मर्यादाओ का निर्धारण पुरुष ने किया है, अत उसने अपने को महान् अथवा ज्येष्ठ घोषित कर दिया है, किन्तु ये विचार छिछली बुद्धि के है। मर्यादाओ का निर्धारण किसी सामान्य व्यक्ति के द्वारा नही हुआ है बल्कि परम वीतरागी सर्वज्ञ-सर्व द्रष्टा महाप्रभु के द्वारा मर्यादाओ का निर्धारण हुआ है। वे कभी भी पक्षपात नही कर सकते। जैनागमो के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने नारी-जाति के उत्थान के लिए कितने सशक्त स्वर दिये और नारी को अध्यात्म साधना की कितनी उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है, किन्तु जो नैसर्गिक भिन्नताएँ है, उन्हे झुठलाया भी नही है।

मानव-निर्मित मर्यादाओ के प्रति तो हम उक्त तर्क कर सकते हैं, किन्तु प्रकृति के अन्य उपादानो पर दृष्टिपात करे तो वहाँ भी हमे वही व्यवस्था दिखाई देती है।

वनराज सिंह, जगल का राजा होता है, सिंहनी नही। हाथियो के यूथ का नायक गजराज ही होता है। वन्दर समूह मे पच्चासो वन्दरियो का स्वामी वलवान वन्दर ही होता है। पशु जगत् की प्राकृतिक व्यवस्था से भी यह स्पष्ट

यदि दस पाँच युवकों में भी ऐसी जागृति का सचार हो सके, तो वे अपने अनेक साथियों पर प्रभाव अंकित कर सकते है और व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र एव इस प्रकार विश्व का समस्त युवा जगत् अपनी अमूल्य जीवनी-शक्ति को सही दिशा प्रदान कर सर्जनात्मक अध्यात्म की ओर उन्मुख हो सकता है।

चूँकि राष्ट्र एवं समाज का दायित्व-भार युवकों के सशक्त कंधों पर ही आने वाला होता है, अतः युवा वर्ग अध्यात्मनिष्ठा, नैतिक एवं चरित्र सम्पन्न होगा, तो आने वाली पीढी ही नहीं, समूचा देश एव विश्व, अध्यात्म, नैतिक निष्ठा एव चरित्र उत्थान की ओर करवट ले सकता है।

प्रश्न–६

आपने साधना-मार्ग में निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति का ही अनुसरण क्यों किया ? उसके द्वारा क्या उपलब्धियाँ हुई ?

उत्तर

साधना का मार्ग जीवन के चरम विकास का मार्ग है। इसमे मानवीय तन की सर्वोच्च सत्ता के साक्षात्कार का उद्देश्य होता है। अत: जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि के मार्ग का चयन उतनी गहरी खोज एव तर्क-निष्ठ प्रज्ञा के द्वारा होना चाहिये। लक्ष्य किंवा ध्येय का अर्थ ही है कि उसके प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पण हो जाये। साधना का मार्ग भी सम्पूर्ण समर्पणा का मार्ग है। जिस मार्ग का हम चयन करते हैं, उसमे सर्वतोभावेन समर्पित होना होता है। एक वार यदि मार्ग के निर्धारण में गलती रह जाए, तो हमारी समर्पणा ही विपरीत हो जाएगी और हम गन्तव्य की विपरीत दिशा मे ही बढते चले जाएँगे। अत: जीवन के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य-निर्धारिण में गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता होती है। साथ ही पथ-प्रदर्शक एवं समीचीन साधना के प्रति सत्प्रेरक भी साधना की उच्च कोटि पर प्रतिष्ठित महापुरुष होना चाहिये।

जिस समय मैंने साधना-पथ का निर्धारण किया, यद्यपि उतनी गहरी तर्क-पटु प्रज्ञा मुझ मे नही थी, अपनी सामान्य वुद्धि के आधार पर मैंने तत्कालीन सामान्य जन-चेतना को प्रभावित करने वाले अनेक मत-पथ एव धार्मिक सम्प्रदायो का परिचय प्राप्त किया। मैंने उन्हे निकट से पहचानने का प्रयास किया। उनमे से कुछ मे मैंने पाया कि वहाँ साधना की सम्यग् दिशा का अभाव है, केवल कुछ रूढ एवं विपथगामी अवधारणाओ के आधार पर अपनी साम्प्रदायिक परम्पराओ का पोपण किया जा रहा है। कुछ साधना-पथ, राग-

उत्तर

युवावस्था कुछ कर गुजरने की अवस्था होती है और युवा खून क्रान्ति पथ का अनुगामी होता है। यौवन की इस क्रान्तिकारी वेला मे युवक नित नूतन दिशा की खोज करता है। उसे सदियो से चला आ रहा पुरातन-पथ समीचीन नही लगता है। अत वर्तमान सन्दर्भ मे ही नही युवावस्था सदैव ही अपनी पुरातन मान्यताओ के प्रति असन्तुष्ट रही है। आज से नही, सदियो से यही क्रम चल रहा है। प्रत्येक युग मे पुरानी पीढी के स्वर रहे हैं कि युवक अनास्थावान बनते जा रहे है, उन्हे धर्म पर विश्वास नही है, आदि। और जब वे सीनियर होते हैं, तो अपने जूनियरो के प्रति उनके भी वे ही स्वर होते है। इस असन्तोष मे काल क्रम के अनुसार उतार-चढाव अवश्य हो सकता है, किन्तु वह अपने वर्तमान से सन्तुष्ट कभी नही हो पाता है। और जब वह असन्तुष्ट होता है, तो सास्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक सभी क्षेत्रो मे क्रान्ति चाहता है, परिवर्तन चाहता है।

चूँकि धार्मिक उत्कर्ष के मूल सिद्धान्त अपरिवर्त्य होते हैं, अत अन्यान्य क्षत्रो मे परिष्कारात्मक सामन्जस्य बिठाते हुये भी धार्मिक क्षेत्र मे वह सामन्ज-स्य नही बिठा पाता है और उससे विरोध करता चला जाता है।

वर्तमान सन्दर्भ मे भी कुछ ऐसी ही स्थिति परिलक्षित होती है। चूँकि आज का वातावरण अत्यधिक भौतिकता-प्रधान बन गया है, अत युवा वर्ग पर उसका प्रभाव सहज होता है और एतद्द्वारा अध्यात्म के प्रति उनकी उपेक्षा भी अपने आप बनती है।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि वातावरण का प्रभाव प्रत्येक चेतना पर पडता है। जैसा वातावरण होगा, भावात्मक निर्माण एव पतन भी तदनुरूप होगा। आज के वातावरण की ओर दृष्टिपात करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि उसमे अध्यात्म के प्रति उपेक्षा ही नही, अपितु परोक्ष तिरस्कार की भावना भी बढती जा रही है, और उस वातावरण का प्रभाव युवावर्ग पर सर्वाधिक एव बहुत शीघ्र होता है। उपन्यास आदि साहित्य, सिनेमा आदि मनोरजन के साधन एव कॉलेजो मे सह-शिक्षा से अनुबधित वातावरण सभी कुछ ऐसे अश्लील वायु-मण्डल का निर्माण करते है कि युवावर्ग उनकी ओर खिचता चला जाता है और उसकी सीधी ही प्रक्रिया होती है अध्यात्म पर। किन्तु यह एकान्तिक दृष्टिकोण नही है। कुछ सीमा तक युवक अपने आपको इस वातावरण के प्रभाव से बचा भी लेता है। यह उसमे क्षमता है। यही नही उसकी जिज्ञासु-प्रतिभा जिज्ञासा की भूख को लिए हुए चलती है और उस भूख के शमन के लिए खुराक की खोज भी रहती है और ऐसा होना इस युग की देन है, क्योकि

म० सा० का सान्निध्य एव निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की पुनीत छाया मिली और जीवन कुछ व्यवस्थित रूप से गतिशील बना। साधना-मार्ग मे जितनी गति हुई, मुझे उससे आशिक सन्तोष हुआ है, पूर्ण नही। ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चित्रो पर जब भी चिन्तन चलता है, लगता है, अभी तो सागर मे बूँद जितना भी विकास नही हो पाया है। भावना सदा यही बनी रहती है कि किन्चित् मात्र भी प्रमाद न बने, आत्मा नित नूतन उपलब्धियो के द्वार उद्घाटित करती जाए और एक दिन अपने परम एव चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

इस प्रश्न का उत्तर प्रसंगत: सक्षिप्त ही दिया जा सकता है, क्योकि अपने आप पर कुछ बोल पाना बहुत कठिन है।

• • •

एव कानूनगत व्यवस्था की पेचीदगी। इन परिस्थितियो मे मैं अपने-आपको उच्च आदर्श श्रावकत्व की भूमिका पर प्रतिष्ठत नही कर पा रहा हूँ। इसे मैं अपनी कमजोरी मानता हूँ। किन्तु तुम चाहो तो अभी से अपने जीवन को नियमित एव व्यवस्थित बना सकते हो। मेरी कमजोरी को देखकर तुम्हे उसका अनुसरण नही करना चाहिये। तुम उच्च आदर्श श्रावक का अनुकरण कर सकते हो। इसके अतिरिक्त धार्मिक सिद्धान्तो के विषय मे तुम्हारी जो जिज्ञासाएँ हैं, उन्हे विद्वान् मुनियो के समक्ष जाकर समाहित करो।

इस प्रकार मधुर शब्दो मे यदि युवको को सम्बोधित किया जाये तो कोई कारण नही कि वे अपने अभिभावको की इच्छा के विपरीत कार्य करे। किन्तु होता इससे विपरीत है। अभिभावक अपनी सैद्धान्तिक अनभिज्ञता एव आचरण की कमजोरी को छिपाने का प्रयास करते हैं। युवा वर्ग पर इसका विपरीत प्रभाव पडता है। यह भी युवक को धर्म से दूर करने का एक कारण बन जाता है।

अभिभावको के समान ही कुछ वर्तमान श्रमण वर्ग की स्थिति है। उनके समीप भी अधिक प्रेरित करने पर कदाचित् युवक चला जाए, किन्तु वहाँ भी उन्हे अपनी जिज्ञासाओ का समुचित समाधान नही मिल पाता है। क्योकि अधिकाश श्रमणो की स्थिति यह है कि वे स्वय बहुत कम स्वाध्यायशील हैं और जो कुछ अध्ययन है वह भी केवल तोता-रटन्त-सा। उसके पीछे गहरा चिन्तन नही है तथा इस सैद्धान्तिक ज्ञान को आज के वैज्ञानिक परिवेश मे किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए, यह कला प्राय: नहीवत् है। आज आवश्यकता यह है कि जैन तत्त्व-ज्ञान के सिद्धान्तो को, जो कि वास्तव मे वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं, नूतन शैली मे वैज्ञानिक सिद्धान्तो के साथ समन्वित करके प्रस्तुत किया जाय। यह कहा जा चुका है कि युवक हर चीज मे नूतनता चाहता है। यदि आत्मा-परमात्मा, कर्म एव पुनर्जन्म सम्बन्धी गूढ सिद्धान्तो को आज के परिवेश मे समझाने का प्रयास किया जाय, तो युवक निश्चित उस ओर आकर्षित होगा। आज का युवक बुद्धिजीवी है। रूढ अवधारणाओ का समादर नही करता है तो तर्कसगत वैज्ञानिक प्रतिपादन समझ पूर्वक स्वीकारने मे भी एतराज नही करता है। किन्तु हम देखते हैं कि आज का श्रमण वर्ग प्राय. इस विषय मे निश्चेष्ट है। कुछ सचेष्ट भी हैं जो अत्यन्त आधुनिकता की बाते करते है। उनके आचरण-सिद्धान्त विपरीत है। जब ऐसे विश्रुत विद्वान् मुनियो की भी कथनी-करणी मे अन्तर दिखाई देता है, तो युवक असमजस मे पड जाता है।

तात्पर्य यह है कि धर्म को वैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के रूप मे प्रस्तुत किया जाये और श्रमण वर्ग अपने इस दायित्व को महसूस करे, तो किसी हद तक युवको मे धार्मिक चेतना जागृत की जा सकती है।

चौध मे वे जी रहे है, जीवन का लक्ष्य उतना भर ही नही है। जीवन बहुत मूल्यवान है और किसी महान् शक्ति-सत्ता की उपलब्धि के लिये प्राप्त हुआ है। यह जीवन अनन्त सभावनाओ का छिपा हुआ कोष है। हम जीवन के आध्यात्मिक मूल्यो को भी समझने और तद् द्वारा अदृश्य सत्ता से साक्षात्कार करने का प्रयत्न करें। यदि इतना न भी कर पायें, तो कम-से-कम जीवन को नैतिक धरातल पर तो पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित करे।

मैं सोचता हूँ इतनी सी समझ का उद्भव युवको के मानस मे हो जाये, तो वे निश्चित अपने-आपको उस रूप मे ढालने का प्रयास करेगे जब तक युवा वर्ग के समक्ष कोई रचनात्मक कार्य नही आते हैं, तभी तक वे भटकते है। अत आवश्यकता इस बात की भी है कि युवको के समक्ष कुछ आध्यात्मिक रचनात्मक कार्य रखे जाये और वे यह समझने लगे कि जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये इन कृत्यो की भी आवश्यकता है।

जब जीवन-निर्माणकारी सुन्दर कार्यो का एक मार्ग उन्हे मिल जाता है तो फिर अन्यान्य असत्कार्यों के लिये उनके पास अवकाश ही नही बचेगा। परिणामत उनकी सोसायटी और तत्सम्बन्धी वातावरण भी अपने आप बदल जाएँगे।

समाज एव राष्ट्र के कर्णधार एम० पी० एव एम० एल० ए० (लोक सभा एव विधान सभा सदस्य), आदि अग्रगण्यो का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वे जीवन निर्माणकारी वातावरण बनाने के लिये अश्लील एव अनैतिकतापूर्ण साहित्य एव सिनेमा आदि पर वैधानिक प्रतिबन्ध लगाएँ। कानूनी प्रतिवन्ध के साथ ही अध्यात्म स्तर के मनोरजन के साधन भी प्रस्तुत किये जा सकते है जिससे सुन्दर वातावरण के निर्माण के साथ ही प्रत्येक युवक के मानस में अध्यात्म के प्रति जागरण उत्पन्न हो।

साथ ही अभिभावक भी अपनी कथनी एव करनी को एक नही कर पाएँ, तो कम-से-कम अपनी उस कमजोरी को तो सरलतापूर्वक स्वीकार करें कि मैं धार्मिक नियमो के अनुसार नही चल पा रहा हूँ। तुम मेरा अनुकरण नही करके अपने जीवन को व्यवस्थित बनाओ। मेरा धार्मिक अध्ययन भी विशेष नही है। अत तुम अपनी जिज्ञासाओ का समाधान विद्वान् मुनियो के पास जाकर प्राप्त करो। और इसी प्रकार श्रमण परम्परा भी अपने पुनीत दायित्व को समझ कर अपने अध्ययन क्षेत्र को कुछ विस्तृत बनावे और युवको की जिज्ञासाओ का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे समाधान दे, तो कुछ हद तक युवको का धार्मिक असतोष समाप्त हो सकता है।

अगणित बार ऐसे भावपूर्ण प्रसंग बनते, किन्तु कुछ ही प्रसग ऐसे बनते जव हम शिष्यो मे से यदि किसी ने तत्काल कलम-डायरी समक्ष कर दी, तो वह अमूल्य निधि नवनीत के रूप मे हस्तगत हो जाती ।

उन्ही चिन्तन-कणो मे से कुछ चिन्तन-कण प्रस्तुत हैं, जिनके माध्यम से हम आचार्य प्रवर के चिन्तक मानस से परिचित होने का प्रयास करेगे तथा उनकी उपयोगिता को आत्मसात कर जीवन को चिन्तन की एक स्वस्थ दिशा प्रदान करेगे ।

आत्मवत् दृष्टि

आत्मन् ! जैसा तुम बनना पसन्द करते हो, वैसा ही प्रत्येक व्यक्ति को देखो । तुम ईश्वर बनना चाहो तो हर व्यक्ति को ईश्वर के रूप में देखो । तुम्हारे साथ कोई नीचता का व्यवहार करता है, तो तुम उसकी नीचता को, नीचता रूप को मत देखो, अपितु उसको विकास की शक्ति के रूप मे देखो । कोई अच्छा कहे या बुरा कहे, इसका खयाल मत करो, बल्कि पवित्र हृदय क्या कहता है, उस पर विशेष ध्यान दो ।

प्रभावक शब्द

स्वच्छ मन एवं शात मस्तिष्क से प्रकट किये गये विचार अमूल्य एव कल्याणप्रद होते है । स्वानुभूतिपूर्वक प्रयुक्त सीधे सादे वाक्य जितने असरकारक होते हैं, उतने इधर-उधर के लिए हुए पाडित्यपूर्ण वाक्य नही । वचन एक दर्पण है । चतुर पुरुष वचनो के अन्दर इंसान का आतरिक प्रतिबिम्ब देख सकते है ।

निष्काम कर्म

धैर्य कभी नही छोड़ना चाहिये । कर्त्तव्यनिष्ठा से सत्यकर्म करने वाले को आपत्तियाँ आने पर भी सफलता अवश्य मिलती है । निष्काम भाव से कर्त्तव्य पालन करने वाले को सर्वतोमुखी फल अवश्य मिलता है, जिससे वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है ।

अमुक कार्य करूँ, पर मेरे पास साधन नही है ऐसा चिन्तन उसके मन की अपरिपक्वता का द्योतक है । अगर वह सच्चे दिल से उस कार्य मे लग जाय तो सभी प्रकार के साधन, मिठास पर चीटियो की तरह सहज ही उसके पास आ जायेगे ।

आत्मावलोकन

हे आत्मन् ! सारा संसार भी यदि तुम्हारी निन्दा, भर्त्सना व तिरस्कार

द्वेष की तीव्र ग्रन्थियो से आवेष्टित हैं। कुछ साधना-मार्ग अधूरे, अवैज्ञानिक, असस्कारित एव मानवीय-सभ्यता से भी विपरीत दिखाई देते हैं।

मैंने यथाशक्ति-यथासाध्य उनका सम्यग् विश्लेषण करने का प्रयास किया, तो पाया कि जो साधना-पथ स्वय राग-द्वेष की जटिल ग्रन्थियो से परिवेष्टित है, वह सम्यग् दिग्बोधक नही हो सकता है तथा उसका अनुसरण साधना-मार्ग को समुज्ज्वल नही बना सकता है। जीवन की बहुमूल्य उपलब्धि के लिये आवश्यक है कि जिस पथ का अनुगमन किया जाए, वह जीवन-गत जटिल राग-द्वेषात्मक ग्रन्थियो को तोडने मे सक्षम हो और वह मुझे निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की पुनीत छाया मे दिखाई दिया। जिस सस्कृति का नाम ही निर्ग्रन्थ (ग्रन्थि-रहित) है वह निश्चित ही राग-द्वेष की ग्रन्थियो को तोडने मे सहयोगी बन सकती है। इसी चिन्तन के आधार पर मैंने अपना मार्ग निर्धारित किया। तत्कालीन साम्प्रदायिक मान्यताओ एव साधना-पद्धतियो की भी बहुआयामी विस्तृत जानकारी के पश्चात् अपने लक्ष्य का चयन किया था और आज मुझे अपने उस चयन पर सात्विक गर्व है। मार्ग चयन के पश्चात् विभिन्न दर्शनो एव साधना-प्रणालियो का मैंने सूक्ष्म अध्ययन किया और पाया कि मेरा चयन अपनी उस समय की बुद्धि के अनुसार भी बहुत सुन्दर हुआ था।

निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये सर्वोत्तम सस्कृति है। मेरा ध्रुव विश्वास है कि इस सस्कृति की आराधना एव उपासना-पद्धति से मैं अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकूँगा।

प्रश्न का उत्तरार्ध कुछ अपने मौलिक उत्तर के लिये असमन्जस मे डाल देता है। साधना पथ की उपलब्धियाँ अदृश्य उपलब्धियाँ होती है। उन्हे भौतिक शब्द-शृंखला मे आबद्ध नही किया जा सकता है। अनुभूतिगत तत्त्व का साक्षात्कार अनुभूति के आलोक से ही किया जा सकता है तथापि शब्दो के माध्यम से उन उपलब्धियो के संकेत मात्र दिये जा सकते हैं।

साधना-पथ पर पद-चरण करने से पूर्व की स्थिति पर चिन्तन करे, तो अन्धकार और प्रकाश सा अन्तर परिलक्षित होता है। पूर्व का वह ग्रामीण जीवन अज्ञानता, काषायिक प्रचण्डता एव राग-द्वेप की परिणतियो से सव्याप्त जीवन था। ममत्व की गहरी शृखला जीवन के चारो ओर जकडी हुई थी, सामान्य से तुच्छ स्वार्थ मे सम्पूर्ण जीवन उलझा हुआ था।

सक्षेप मे कहूँ तो अज्ञान-अन्धकार मे एव विषमता के दल-दल मे पूरा जीवन फसा हुआ था। संयोगत. कहे या और कुछ निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की शात क्रान्ति के जन्मदाता अनन्त आराध्य गुरुदेव आचार्य श्री गणेशीलालजी

दुनिया के पीछे चलने वाला प्राणी अपना विकास नही कर सकता है। उसका जीवन अनुकरणीय नही होता है।

पाठ्यक्रम : एक विश्लेषण

पैनी निगाह से देखा जाय तो वर्तमान प्रचलित परीक्षोपयोगी साहित्य साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से ओतप्रोत ही मिलेगा। ऐसे साहित्य से विद्यार्थी विकास की प्रकाशमय किरणो को छोडकर अन्धकार में ही भटकता रहता है, क्योकि वह बचपन में ही अन्ध परम्परा की कोल्हू का बैल बना दिया जाता है। फिर वह आगे कैसे बढ सकता है ?

रूढ़ि तोड़ना - साहस कार्य

रूढ़ि पूर्ण विनाशकारी परम्पराओ को सामान्य मनुष्य नही हटा सकता। उसे हटाने में वास्तविक ज्ञान व साहस की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

अनुवादित पदार्थों का उतना महत्त्व नही जितना आविष्कृत पदार्थो का है।

आतम साक्षी

दुनिया क्या देख रही है, इस पर विचार मत करो। तुम क्या देख रहे हो, इसी का विचार करो। 'इस काम से दुनिया क्या कहेगी' यह न सोचकर मेरी पवित्रात्मा क्या कहेगी, यह सोचो।

सफलता की सीढ़ी

अतीत अवस्था का स्मरण, वर्तमान का अनुभव, भविष्य का चित्रण सामने रखकर प्रवृत्ति करने वाला व्यक्ति जीवन मे हमेशा सफलता का अनुभव करता है।

नेत्र-प्रेम और नेत्र-मोह

नेत्र-प्रेम और नेत्र-मोह, दोनो मे महान् अन्तर है। नेत्र-प्रेम भ्रातृ-भाव और विश्व-वात्सल्य से ओत-प्रोत होता है। जबकि नेत्र-मोह व्यक्ति-भाव, शत्रु-भाव और वैयक्तिक वात्सल्य से। पहला मित्र है—आगे बढाने वाला है और दूसरा है—नीचे गिराने वाला।

व्यक्ति स्वातन्त्र्य

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य जीवन का स्वाभाविक अधिकार है। इस पर प्रतिबन्ध कहीं पर नही होना चाहिये, मगर समाज के सामान्य नियमो से व्यक्ति को

चिन्तन कण

परिवर्तन करने में असमर्थ रहता है, वह सदा पश्चात्ताप करता हुआ ह्रास की ओर अग्रसर होता है, प्रगति की ओर नही।

सन्त जीवन : निष्पक्ष दृष्टि

वह मेरा सत्कार करेगा, मुझे नमस्कार करेगा, मेरी प्रशंसा करेगा, अतः मैं उसे प्रेम की दृष्टि से देखूँ, मधुर शब्दों से बातचीत करूँ—जो ऐसा विचार कर, ऐसा ही आचरण करता है और अपने आपको महात्मा समझता है, तो यह उसका आत्म-पतन है। वह व्यर्थ मे समय और शक्ति बर्बाद करता है। महात्मा का प्रेम निष्काम और निर्मल होता है। वह किसी आकाक्षा से किसी को नही देखता न मधुर शब्दो मे वार्तालाप ही करता है। उसकी दृष्टि सहज स्वाभाविक रूप से किसी पर पड़ जाती है, तो उसको आत्मीय रूप से देख लेता है फिर वह प्राणी कोई भी हो। उसकी दृष्टि में जाति का, ऊँच-नीच का, पापी-धर्मी का भेदभाव व घृणा नही होती है। वह प्राणी-हित की दृष्टि से समय आने पर सभी से बातचीत करेगा। बिना अवसर किसी से बातचीत नही करेगा। उसकी समय-शक्ति व्यर्थ नही जाती। वह मनुष्यो की निगाह से अपने को नही देखता अपितु स्वयं की पवित्र निगाह से अपने आपको देखता है।

प्रेम बनाम मोह

आज का मानव समाज प्रायः गुलाम मनोवृत्ति से चल रहा है। रूढि तथा परम्परा मानव-जीवन की संगिनी बन गई है। बुद्धि काम-सम्राट् के किले मे बन्द-सी मालूम होती है। साहित्यकार, कलाकार, अध्यापक, पत्र-सम्पादक आदि में से अधिकाश लोगो ने अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्रेम के नाम पर मोह का सम्पादन ही मान रखा है। उनको वही साहित्य, वही कला, वही कहानी, वही समालोचना पसन्द आयेगी जिसमे पशु वृत्ति से भी निंदित प्रणय-प्रसगो का रोचक वृत्तात पाया जाता हो। इस वृत्तात का जो व्यक्ति अधिक रोचक ढग से सम्पादन करता है, उसी को सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार माना जाता है। पुरस्कार भी उसी को अधिक मिलता है। वह युग का सृष्टा समझा जाने लगता है। ऐसी अवस्था मे कौन व्यक्ति ऐसे श्रेष्ठ पद को पाने हेतु लालायित नही होगा? प्रत्येक व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण इसी पद को पाने के लिए आकाश मे उडने की कोशिश करता है। वैसा ही साहित्य, वैसी ही गोष्ठी, वैसी ही सोसायटी और वैसे ही वायुमंडल में वह अपने को धन्य समझता है। उसकी बुद्धि उसी दायरे के अन्दर चक्कर काटती है। उस घेरे से बाहर रह जाने पर वह अपने को अभागा, पुण्य-हीन समझता है और यह दावा करता है कि मैं विकास कर रहा हूँ। यही अवस्था अधिकाश व्यष्टि एव समष्टि मे बनी हुई है। इसको आधुनिक मानव-समाज की गुलामी न कहे तो क्या कहें?

चिन्तन-कण

चिन्तन मानवीय जीवन की सर्वतो महत् उपलब्धि है। इसी के आधार पर मानव ससार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। विश्व के समस्त प्राणियो मे मानव मे ही वह चिन्तन की क्षमता है, जिसके माध्यम से वह परम निश्रेयस की ओर गतिशील हो सकता है।

सामान्यत. चिन्तन प्रशस्त एव अप्रशस्त उभयमुखी होता है तथापि चिन्तन शब्द ऊर्ध्वमुखी विचारो के अर्थ मे रूढ-सा हो गया है। अतएव तत्त्व-द्रष्टा मनीषियो के लिए 'चिन्तक' विशेषण का प्रयोग किया जाता है। सही अर्थो मे चिन्तन मनीषा का ही एक कार्य है, जो मनस् की आन्तरिक स्थिति को अभिव्यजित करता है।

साधनागत ऊर्ध्वमुखी चेतनाओ का चिन्तन सामान्य साधको को दिग्वोध तो देता ही है उनके आन्तरिक व्यक्तित्व को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आत्मोन्मुखी साधक की मन.स्थिति साधना की ऊँचाइयो के सस्पर्शन मे किन-किन स्थितियो से गुजरती है, कहाँ-कहाँ व्यवधान उपस्थिति होते है तथा व्यवधानो के प्रतिरोधात्मक उपायो का सर्जन कैसे होता है, आदि विषयो का सम्यगव-वोध प्राप्त होता है युग प्रचेताओ के चिन्तन-कणो से।

यह बताया जा चुका है कि आचार्य प्रवर एक आध्यात्मिक योगी युग पुरुष हैं। उनके विविध आयामी व्यक्तित्व को पूर्व पृष्ठो मे विविध दृष्टि-विन्दुओ से समझने का प्रयास किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य मे उनके मननशील आन्तरिक व्यक्तित्व के परिबोध हेतु इस प्रकरण मे कुछ चिन्तनकणो को प्रस्तुत किया जा रहा है।

ये चिन्तन-कण आचार्यश्री के ऊर्ध्वमुखी चिन्तनशील मानस के परिचायक हैं। आचार्यश्री अपने शैशव से ही चिन्तन के आदी रहे है, किन्तु साधना के असिपथ पर पद-चरण के पश्चात् तो आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही चिन्तन प्रधान हो गया। उन्ही चिन्तन के अमूल्य क्षणो को यदा-कदा अवकाश मिलने पर आप शब्दवद्ध करते रहे है। यह मेरा वैयक्तिक प्रत्यक्षीकृत अनुभव है कि जव-जव भी आचार्य प्रवर को एकान्त मे क्षण मिलते, आपकी मुख-मुद्रा चिन्तन प्रधान वन जाती, आपका मानस अनन्त गहराइयो के अन्वेषण मे खो जाता।

बात मनवाने के पहले वायुमडल को शुद्ध करो, फिर जिन विचारों को तुम श्रेष्ठ समझते हो और यदि ये वास्तविक रूप से जनहितकारी एव कल्याणप्रद हैं, तो निष्काम भाव से दुनिया के सामने रख दो। वे विचार शीघ्रातिशीघ्र कार्य रूप मे परिणत हो जायेगे।

तुम प्रसन्नचित्त रहो, चिन्ता करने की आवश्यकता नही, किन्तु स्वय अपने जीवन मे जिन-जिन बातों की त्रुटियाँ या कमजोरियाँ अनुभव करो उनको शीघ्रातिशीघ्र दृढ सकल्प के साथ दूर कर दो। फिर तुमको कभी किसी विफलता के दर्शन नही होगे।

महात्मा

सच्चे महात्मा कभी अपने आपको प्रकट नही करते, मान-प्रतिष्ठा एव पूजा के लिये कभी अपनी जिह्वा को नही हिलाते और न मन मे ही इस प्रकार का सकल्प आने देते है। उनका ध्यान सदा वास्तविक कर्त्तव्य-कर्म में रहता है। वे मान और अपमान, मित्र और शत्रु, सुख और दु.ख, प्रिय एव अप्रिय को अपने निर्विकार मन-मस्तिष्क के परीक्षण के रूप मे देखते है। उनके प्रति अनुराग या द्वेष कभी नही लाते, वे सदा प्रसन्नचित्त रहते है।

आत्म-प्रवचना

मैं यदि किसी से चालाकी से बात करता हूँ और मन मे यह समझता हूँ कि मैं बडा चतुर हूँ—उसको चकमा दिया कि वह समझ भी नही सका, यह मेरा भ्रम है, आत्म प्रवचना है और मूर्खता का नमूना है। वह ऊपर से किसी कारणवश न समझ पाया हो, किन्तु उसकी अन्तरात्मा पर मेरे कुटिल भावो की छाप अवश्य पड़ेगी, वह समय पाकर प्रतिक्रिया के रूप मे सामने आयेगी और उससे वायुमडल दूषित होगा, जो कि मेरे और विश्व के लिये अहितकर है। अतएव जीवन मे प्रत्येक बात का ध्यान रखना चाहिये और ऐसा ही कार्य करना चाहिये जिससे किसी का अहित न हो।

प्रगति-पथ

बहते पानी की तरह अभ्यस्त विचारधाराओ को रोककर अनभ्यस्त नवीन कार्य की ओर ले जाना प्रगति का चिह्न है। अभ्यस्त मार्ग से तो अधा, बच्चा, मूर्ख और सामान्य बुद्धि के अन्य प्राणी भी यत्रवत चलते ही है, उसमे कोई विशेषता नही। अभ्यस्त मार्ग पर आपत्तियाँ नही के समान आती हैं, मगर अनभ्यस्त मार्ग से चलने पर अनेक आपत्तियाँ आती हैं और वे अस्वाभाविक-सी भी मालूम होती हैं। किन्तु जो विवेकपूर्वक उनका सामना करता हुआ आगे बढता रहता है, वह अवश्य सफल हो सकता है। वही वस्तुतः प्रगति कही जा सकती है।

करे, तो तू लेशमात्र भी उत्तेजना व उदासीनता मत ला, बल्कि इसके विपरीत तू यह चिन्तन कर कि यह सब किस कारण से हो रहा है ? अगर उसमे कोई वास्तविक कारण मालूम हो जाय, तो उसको दूर करने की कोशिश कर और अपनी निन्दा आदि को सहायक रूप मे देख ।

प्रशंसा

प्रशसा जहरीले सर्प के समान है । अगर इसका विष तुझे चढ़ गया तो तू नष्ट हो जायेगा ।

जीवन का मूल

ब्रह्मचर्य जीवन का मूल है । इसी से जीवन की सारी रौनक है । आधुनिकता के भुलावे मे आकर इसकी उपेक्षा नही करनी चाहिये । इसकी उपेक्षा करना सारे जीवन की महत्ता को तिलाजलि देना है ।

आवेश

आवेश दिल की कमजोरी का सूचक है । आवेश मे आकर किया जाने वाला कार्य त्रुटिपूर्ण होता है । अतः सत्यान्वेषक को आवेश से दूर रहना चाहिए ।

सच्चा प्रेम

जिस प्रेम से शक्ति का सचय होता है, वही वस्तुत सच्चा प्रेम है । जिससे शक्ति का नाश होता है, वह प्रेम नही है ।

मृत्यु प्रत्येक देहधारी की वृत्ति है । इस पर विजय पाना मृत्यु को परास्त करना है ।

मानसिक स्नान

मनुष्य प्रात·काल उठकर पानी से स्नान करता है । उससे जीवन मे कुछ स्फूर्ति आती है । मगर उसी समय विचारो से मानसिक स्नान कर लिया जाय तो चिरस्थायी जीवन-विकास की स्फूर्ति प्राप्त हो सकती है ।

कृत्रिमता बनाम स्वाभाविकता

कृत्रिमता देखने मे सुन्दर मालूम होने पर भी अहितकर होती है । स्वाभाविकता देखने मे अच्छी मालूम न होने पर भी हितकर होती है ।

किसी अभिलाषा से किसी की प्रशसा करना इंसानियत से गिरना है ।

पूर्वक खेलने वाला व्यक्ति ही विकास की ओर बढ़ सकता है। हाँ, एकागी संघर्ष से भी कुछ विकास हो सकता है, पर वह स्वेच्छापूर्वक नही कहा जा सकता।

मुहूर्त की प्रतीक्षा

चिन्ता करने से कोई लाभ नही होता, बल्कि हानि ही होती है। अगर कुछ करना है तो प्रसन्नतापूर्वक उसमे लग जाना चाहिये। समय या मुहूर्त की अनावश्यक प्रतीक्षा नही करनी चाहिये। कार्यारम्भ का वही समय या मुहूर्त अति उत्तम है, जिस समय पूर्ण उत्साह हो। बिना उत्साह अच्छे मुहूर्त मे आरम्भ किया हुआ कार्य भी सफल नही हो पाता।

क्षमायाचना बनाम दिखावा

जो पवित्र दिल से सदा सबका हित चाहता है, कभी भी किसी के प्रति दुर्भाव नही आने देता, और अगर कभी किसी के प्रति कोई दुर्भाव आ भी गया तो तुरन्त उनको दूर करने की शक्ति रखता है, उस व्यक्ति के लिये सदा ही क्षमायाचना का दिन समझना चाहिये, किन्तु जो व्यक्ति अधिकांश रूप से अपने दिल और दिमाग को बुरे विचारो में रखता है और यही सोचा करता है कि मै कैसे सबसे श्रेष्ठ कहलाऊँ और कैसे दूसरो को नीचा दिखाऊँ, प्राय: इन्ही विचारो को कार्यान्वित करने के लिये बाह्य दिखावे के तौर पर नम्र बनता है या क्षमायाचना का उच्चारण करता है, वह क्षमायाचना के संवत्सरी पर्व को लजाता है एव कपट-क्रिया की वृद्धि भी करता है। ऐसे व्यक्ति आत्मशुद्धि से दूर रहते है।

विश्व-कुटुम्ब

प्रत्येक इसान को नियमित रूप से एवं व्यवस्थित रूप मे विश्व-हितकारी कुछ-न-कुछ कार्य करना चाहिये। बिना कुछ किये विश्व से सहायता लेना उचित नही कहा जा सकता। इसान को विश्व के पदार्थो से जो भी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शक्ति प्राप्त हुई है, उसका सदुपयोग तभी समझा जा सकता है जवकि इंसान विश्व के लिये कुछ करता है। अगर वह ऐसा कुछ भी नही करता और व्यक्तिगत स्वार्थ मे ही इस शक्ति का व्यय करता है, तो वह विश्व मे दूसरो को कष्ट देने वाला एव कृतघ्न की श्रेणी में आ जाता है।

स्वय को छलना

मनुष्य अपने स्वार्थ को छिपाने की कोशिश करता है। उसकी भावना यह रहती है कि ऊपर से मै परमार्थ की वाते या परमार्थ के कार्य दिखलाऊँ ताकि लोग मुझे परमार्थी कहे और मेरा स्वार्थ भी सिद्ध हो जाय। मगर यह उसका भ्रम है। वह उन्ही लोगो को धोखा दे सकता है, जो विशेषज्ञ नही है। स्वार्थी व्यक्ति मे निर्भयवृत्ति का अभाव-सा रहता है। वह अपनी वृत्ति को छिपाने की

अलग भी नही होना चाहिये। व्यक्ति-समूह ही समाज है। विकास व साधन की दृष्टि से उसकी परम आवश्यकता है, मगर वह प्रामाणिक व्यक्तियो का समाज हो। प्रामाणिकता सद्‌आचरण से आ सकती है, कहने मात्र से नही।

प्रभावक उपदेश

जो व्यापार के तौर पर उपदेश देता है, वह उसे जीवन मे बहुत कम उतारता है, क्योकि उसका लक्ष्य उपदेश द्वारा यश अथवा सम्पत्ति कमाना होता है। जो व्यापार के तौर पर नही, अपितु स्वानुभूति को जिज्ञासुओ के समक्ष रखता है, वह अपने जीवन मे अधिक आचरण करने वाला होता है, क्योकि उसका लक्ष्य जीवन सुधार का होता है, न कि प्रशसा प्राप्ति का।

पशु बनाम मानव

पशु-पक्षियो मे भी समाज-व्यवस्था देखी जाती है। उनमे किसी को अपराध करने पर सामूहिक या व्यक्तिगत दड मिलता है। पशु-पक्षियो मे जैसे भी अनुकूल या प्रतिकूल साधन होते है, उसका वे यथावसर उपयोग करते हैं। जब कभी विजातीय आक्रमण होता है, तो स्वजातीय अपराधो को गौण कर वे सामूहिक एकता से प्रत्याक्रमण करते हैं। उनमे भी साम्राज्यवाद वृत्ति और समाजवाद वृत्ति दोनो ही पाई जाती है। अनुशासन-व्यवस्था इनमे अच्छी होती है। उनमे ईमानदारी अधिक होती है, बेईमानी बहुत कम। उनमे प्रेम और मुग्धता भी अपेक्षाकृत अच्छी होती है। उनकी अपनी साकेतिक भाषा होती है। आज का मानव जरा तुलना करे अपने आपकी उनसे।

मानापमान

सुख और सम्मान के लिए लालायित मत रहो। अपमान और दु.ख से दूर मत भागो। जहाँ अपमान होता हो, चित्त को दु ख और सक्लेश पैदा करने वाले उत्तेजनात्मक वर्ताव हो, वहाँ तुम जाओ और अपने मन-मस्तिष्क की परीक्षा करो कि ऐसी अवस्था मे तुम्हारा मस्तिष्क कितना शात रहता है, तुम्हारे मन मे कितनी पवित्रता बनी रहती है। उस समय यदि तुम्हारा मस्तिष्क शात रहे, मन मे अपवित्रता न आये और कर्त्तव्य कर्म पर मजबूत रह सको तो समझ लो कि तुमने कुछ इसानियत प्राप्त की है।

परिवर्तन प्रगति का प्रतीक

देश, काल, ऋतु के परिवर्तन के साथ वातावरण और वायुमण्डल का भी परिवर्तन होता है। इसके साथ जो इसान अपने जीवन का परिवर्तन करता रहता है, वह सदा विजयी रहता है और जो सभी अवस्थाओ मे समयानुसार

जोर दिया करते है। उनका कोई त्रैकालिक विशेष कार्य निश्चित नही होता। विशेष कार्य का निश्चय समय एव परिस्थिति पर बहुत कुछ आश्रित रहता है। इससे वे विश्व एव स्वयं को बहुत आगे ले जा सकते हैं। मगर साधारण व्यक्ति इसे समझ नही पाते। वे तो प्रगतिशील पुरुषो के द्वारा निर्दिष्ट विशेष कार्य को ही सब कुछ मानकर बैठ जाते है। उनके लिये वही चरम सीमा हो जाती है। ऐसी स्थिति मे वे पीछे रह जाते हैं, आगे नही बढ सकते।

सत्य आचरण-असि धारा

सत्य समझना, उसको आचरण मे लाना तलवार की धार पर चलने के समान है। आवश्यक व्यावहारिक सत्य भी यदि प्रत्येक इन्सान पूर्णरूपेण आचरण मे उतार ले तो आज की बाह्य अशातिमय स्थिति का प्रायः अन्त हो सकता है। मगर जब व्यावहारिक सत्य का अश भी अपनाने मे पूरा ध्यान नही जाता है तो फिर वास्तविक सत्य को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? वह तो जीवन का पूर्ण विकसित स्वरूप है। व्यावहारिक सत्य को जीवन मे उतार कर ही उसकी ओर आगे बढा जा सकता है, क्योकि विकास क्रमशः होता है।

साधना का शत्रु—प्रमाद

साधना मे सबसे ज्यादा खतरनाक है—प्रमाद। वह अनेक रूपो में प्राणी को फसा लेता है। उसके जाल को तोडकर जो हर समय नियमित कार्य में लगा रहता है और शुद्ध अतःकरण की प्रेरणा को महत्त्व देता है, वह प्राय· सफल होता है। उसके सामने खतरा या आपत्ति नाम की कोई शक्ति अधिक समय नही ठहर सकती।

जनतंत्र

आजकल राजनैतिक क्षेत्र मे जो हम देख रहे हैं, वह निष्प्राण कार्य हो रहा है। आज की लड़ाई महत्त्वकाक्षा और कुर्सियो की है, न कि जनतन्त्र की। जनतत्र मे लड़ने और गाली-गलोच की आवश्यकता नही। न राजतन्त्र और न दण्ड की आवश्यकता है, न गुट या पार्टीबाजी की जरूरत है जोर न जोर जवर-दस्ती से किसी पर आज्ञा चलाने की। आज का समय प्राचीन काल से विल्कुल परिवर्तित-सा हो गया है। आज की मुख्य आवश्यकता उस विचार के इन्सानो की है जो वास्तविक कर्त्तव्य के प्रति हृदय परिवर्तन कर सके।

संघर्ष वासनाओं का

अन्तःकरण मे अनन्त वासनाये छिपी हुई है। जिसका जिस समय प्रवल निमित्त आता है, उसी समय वह उभर पड़ती है। हर समय उन्ही वासनाओं का परस्पर संघर्ष एव विप्लव होता रहता है। अतएव अधिकाश मनुष्य जीवन की

आत्म-गर्व

आत्म-गर्व विकास के लिये होना चाहिये न कि दूसरो को नीचा दिखाने के लिये ।

प्रत्येक कार्य मे स्वावलम्बी एव स्वतन्त्र इसान ही कुछ कर सकता है ।

जनहितकारी मौलिक विचार ही सच्चे रूप मे जनता का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं ।

जय-विजय-विचार-विमर्श में

हार-जीत की दृष्टि से किया हुआ विचार-विमर्श कभी भी निर्दोष नही हो सकता, क्योकि उसमे बुद्धि स्वच्छ एव निष्पक्ष नही रह सकती ।

जिस विचार से हिंसक वृत्ति की प्रधानता का उद्गम होने लगता है, वह विचार इसानियत के विपरीत है ।

मन की आकर्षण शक्ति

मन का अन्तर्जगत् के साथ सम्बन्ध है । जिस मन मे जितना अधिक आकर्षण होगा, उतना ही वह अन्तर्जगत को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा । आकर्षण शक्ति किसी-किसी मे नैसर्गिक होती है पर उसको अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता, क्योकि वह रह भी सकती है और चली भी जाती है । अत: ज्ञान-पूर्वक प्राप्त की गई आकर्षण शक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये, क्योकि वह स्वाधीन होती है ।

बीती ताहि विसार दे

जो बात बीत चुकी, उसका स्मरण कर ग्लानि लाने की आवश्यकता नही, किन्तु नवीन उत्साह पैदा करने की जरूरत है । वास्तविक लक्ष्य मे तन्मय होकर कर्त्तव्य कार्य मे लग जाने पर कोई कार्य असाध्य नही । व्यतीत अवस्था से भी अच्छी अवस्था प्राप्त की जा सकती है । प्रकृति के अन्दर सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं । इसका स्वभाव ही बुराई को दूर कर अच्छाई की ओर ले जाना है । यह किसी प्रकार की बुराई को सहन नही करती है, उसे साफ करने की कोशिश करती है ।

वैचारिक प्रभाव

वायुमडल के अन्दर भी संघर्षमय वातावरण विद्यमान रहता है । जिस स्थान मे जिस विचारधारा का प्राबल्य होगा उसकी ही विजय होगी । अपनी

कैसा खात्मा हो एव उसको दु.ख और आपत्ति में गिराऊँ तो वह अपनी विचार-शक्ति का दुरुपयोग करता है । विचार-शक्ति का सदुपयोग करने वाला सोचता है कि मुझे आपत्ति मे डालने वाला कोई नही है । जो मेरी उन्नति मे बाधक दिखता है वह बाधक नही, साधक है । वह चारो ओर से विचारों को केन्द्रित कर सत्य के मार्ग मे गति और कर्त्तव्य को देखता है । अगर मेरी गति एव कर्त्तव्य निरन्तर रूप से जारी है तो विश्व का कोई भी पदार्थ मुझे रोक नही सकता, ऐसा सोचना विचारो का सदुपयोग है ।

प्रभाव-आचरण का

कितना ही सुन्दर सिद्धान्त हो और उसका शाब्दिक प्रचार सारे संसार मे भी क्यो न कर दिया गया हो, उसे वास्तविक प्रचार नही कहा जा सकता । वास्तविक प्रचार जितना आचरण द्वारा हो सकता है, उतना अन्य साधनो से नही । चाहे उनके आचरणकर्ताओ की सख्या कम ही क्यों न हो, मगर वही स्थायी होता है ।

व्यक्तित्व का प्रभाव

दिल एवं दिमाग का असर शरीर पर पडता है और वह शरीर के प्रत्येक अग से बाह्य वायुमण्डल मे फैल जाता है । बिना बोले वह सूक्ष्म रूप से प्रत्येक पदार्थ पर असर करता रहता है । जिस भाव की जितनी प्रबल शक्ति होगी वह जन साधारण पर उतना ही अधिक असर करेगी और समय पाकर अपने ढाचे मे ढाल देगी । विचारक पुरुषो के साथ उसका सघर्ष होगा । उसमे या तो प्रबल शक्ति विजय प्राप्त कर लेगी या तीसरी शक्ति की सृष्टि होगी ।

पद-लिप्सा बनाम देशद्रोह

छोटी-छोटी बातो को लेकर पद-लिप्सा से कोई गुट या पार्टी बनाना जनता के प्रति धोखा करना है । यह देश या समाज की सुव्यवस्था की ओट मे देश व समाज के प्रति द्रोह है । वास्तविक रूप से जन-सेवा करने वाले ऐसा कभी नही सोचते । उनके तन-मन और धन व्यर्थ के कामो मे नष्ट नही होते । वे व्यक्तिगत स्वार्थ के पीछे पार्टी बाजियो मे नही पडते । वे सही रूप से कर्त्तव्य को सामने रखकर चलते है, न कि व्यक्तिगत स्वार्थ को ।

अनुभूतिमूलक शिक्षा

मनुष्य शिक्षा के लिये बहुत कोशिश करता है और कुछ अक्षरी ज्ञान-मौखिक ज्ञान से शिक्षा युक्त बाते याद कर लेता है और उसी के ऊपर श्रद्धा रखकर स्व-पर के जीवन मे उतारने का प्रयत्न करता है, मगर वह सही प्रयोजन सिद्ध नही कर सकता, क्योकि स्वानुभूति के विना वास्तविक शिक्षा नही पाई

प्रगतिशील पुरुष

जो केवल एक ही अवस्था मे रहता है वह वास्तविक अनुभव के विना प्रगति नही कर सकता। जव तक विविध विपरीत परिस्थितियो का सामना होने पर उनमे क्षीर-नीर की तरह सावधानीपूर्वक विश्लेषण कर गुणावगुण का निर्णय नही किया जाता, तब तक वही अवस्था रहती है।

बीज-रक्षण

जिस सद्विचार धारा का बीज-वपन करते हो, उसको सावधानी के साथ विकसित एव प्रफुल्लित करो। उसके अनुकूल वायुमडल से उसका सिंचन करो। उसकी देखरेख पूर्ण शक्ति के साथ तब तक करो जव तक कि वह परिपक्व एव मजबूत न बन जाय, अन्यथा उसकी विपरीत विचारधारायें उसको समाप्त कर देगी।

सफलता बनाम भाग्य

कुछ व्यक्ति यह कहा करते हैं कि हमने अमुक कार्य के लिये वहुत प्रयत्न किये मगर उसमे सफलता नही मिली। क्या करे ? हमारे भाग्य अच्छे नही हैं और जब तक भाग्य अनुकूल नही होता तव तक प्रयत्न करना व्यर्थ है। देखिये ना, पहले लोग मेरी इज्जत किया करते थे और अव मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वही मैं हू, जो पहले था और वही मेरा कार्य है जो पहले था। फिर भी यह अवस्था जो हुई, यह सब भाग्य का चमत्कार है। पर ये सव वाते अतर का सूक्ष्म निरीक्षण नही होने से कही जाती है। वस्तुत. देखा जाय तो विफलता का कारण अपनी वृत्तियो के प्रति सतत जागरूक नही रहना है। इन्सान कुछ भी सत्कार्य प्रारभ करता है उस समय उसकी उस कार्य मे तल्लीनता रहती है और उसी समय प्रारभिक सफलता की रौनक उसके सामने आती है। उस रौनक को देखकर वह अपने आप पर काबू नही रख सकता। वह यह अनुभव करने लगता है कि मैं ही ससार मे सव कुछ हूँ, मेरे सामने कौन व्यक्ति ठहर सकता है। मैं सभी दृष्टियो से परिपूर्ण हो चुका हूँ—आदि। ये ही विचार उसकी विफलता के कारण वनते है और उसी समय वह ह्रास की ओर चल पडता है।

सघर्ष और जीवन

जो मनुष्य सघर्ष से भय खाता है और उससे अलग अलग रहना चाहता है, वह अपनी कायरता को पुष्ट करता है। सघर्ष कोई वुरी वस्तु नही है, वह जीवन विकास का मुख्य साधन है। जिस जीवन मे सघर्ष नही, उसे जीवन नही कहा जा सकता। अनुकूल और प्रतिकूल दोनो सघर्षो के वीच निर्लेप, प्रसन्नता-

विचार तक नही आने देना, इससे ज्ञान-फल की कुछ स्थिति बनती है, अतः उपर्युक्त दशा साधना मे सर्व प्रथम आनी चाहिये।

विवेक-आनन्द-आश्रम

आज विवेकानन्द आश्रम मे बैठने का प्रसंग आ रहा है। इस नाम से भी प्ररणा प्राप्त करनी चाहिये। जीवन की अनेक समस्याएँ उलझी पडी है, उनको सुलझाये बिना मार्ग साफ नही बन पाता। मार्ग साफ हुए बिना जीवन की गति अवरुद्ध रहती है अर्थात् सही तरीके से गति नही बन पाती। सम्यक् गति के बिना कितना ही कुछ चला जाय, कितना ही सोचा जाय, कुछ भी तत्त्व-चिन्तन किया जाय, कितना ही ग्रन्थ का अध्ययन-अध्यापन किया जाय, कराया जाय, कितने ही आश्रम खोले जाये, दुनिया की प्रायः सभी कलायें सिखाई जाय, किसी भी पार्टी का कैसा भी सदस्य बना जाय, समग्र ग्रथों को रटकर कठस्थ कर लिया जाय, अज्ञानावस्था का कितना भी तप तपा जाय, कितना भी कष्ट उठाया जाय, योग-साधना की कितनी भी प्रक्रिया की जाय, पर इस प्रकार के सभी कार्य अरण्य रुदन के तुल्य रहते है। अतः सम्यक् गति प्राप्त करने के लिये विवेक जागृत करने की नितात आवश्यकता है। उसमे नित्यानित्य वस्तु-विवेक, इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी भौतिक योग साधन-सामग्री से ममत्व को दूर कर सत्चित्त आनन्द घन रूप दिव्य शक्ति समूह का जो स्वरूप है, वही एकमात्र प्राप्तव्य है। इस दशा को प्राप्त करने के लिये, उसी के अनुरूप साधन-सामग्री का अवलोकन एवं उसके अनुसार दिनचर्या का भली भाति निर्धारण रूप विवेक सबसे पहले होना चाहिये। इससे सभी समस्याये व उलझने सहज भाव से सुलझाई जा सकती है। उसके पश्चात् आगे की श्रेणी सुनिश्चित रूप से अमल मे लाने का उपाय सोचा जाय, ताकि जीवन की सुगति आनन्दपूर्वक बनाई जा सके। इसके लिए समग्र रूप से सम्यक् श्रम की आवश्यकता है, जिसको कि सही मायने मे आश्रम कहा जा सकता है।

जीवन का अस्तित्व—एक मूल्यांकन

मानव तू विचार तो कर कि तुम्हारा अस्तित्व यहाँ किसलिए है? आपस मे लडने के लिए? प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग करने के लिये? या पशु जीवन की तरह जीवन बिताने के लिए? नही! इन कामो के लिये तुम्हारा अस्तित्व नही है। तुम्हारा अस्तित्व तो विश्व मे एक महत्त्वपूर्ण कड़ी अदा करने के लिए है, यह बोध तुझे होना चाहिये। तुझे अपने जीवन को विश्व के अन्दर रहने वाले गुह्य तत्त्व को व्यक्त कर विश्व-कल्याण का मार्ग प्रशस्त बनाने के लिए लगाना चाहिए। स्व कितना रहस्यमय है, इसकी निरन्तर शोध करते रहना चाहिये। इन कामों मे यदि जीवन का सदुपयोग बना, तो वस्तुतः जीवन के अस्तित्व की सार्थकता है, अन्यथा मिट्टी के ढेले के समान यह पुतला प्राप्त हुआ

कितनी ही कोशिश क्यों न करे, मगर विवेकशील पुरुष के सामने वह छिपी नही रह सकती ।

उत्तेजना

किसी कार्य मे अति शीघ्र उत्तेजना आना अत्यधिक अपूर्णता का द्योतक है । ऐसे व्यक्ति हिताहित के सोचने मे असमर्थ रहते है । वे तात्कालिक फलाफल को देखकर अपनी शक्ति को पतगे की तरह झोक देते हैं । जो ऐसा नही करता है वह उनकी दृष्टि मे कायर या भीरू दिखाई पडता है । मगर जो दूरदर्शिता-पूर्वक कार्य करने मे तत्पर है, वह कायर और भीरू की श्रेणी मे नही आ सकता ।

वोट की ओट

आजकल राजधानी में वोटो की प्रवृत्ति जोरो से चल रही है । वोट प्राप्त करने वाली प्रत्येक पार्टी वोटो के लिये भरसक प्रयत्न कर रही है । यह प्रयत्न सडको, रास्तो, पेम्पलेटो एव भाषणो तक ही सीमित नही रहा है किन्तु प्रत्येक घर मे, प्रत्येक वयस्क मनुष्य को साम-दाम-दड और भेद आदि का प्रयोग दिखा-कर भी चल रहा है । खड़ा होने वाला व्यक्ति चाहे अयोग्य या स्वार्थ की जघन्य भावना की साकार मूर्ति भी क्यो न हो, उसको भी सुयोग एव सत्पुरुष का चोला पहनाया जा रहा है । यह तरीका प्रजातत्र का नही, यह तो पूंजीपति, साम्राज्यवादी एव कुटिलता का है । इससे प्रजातत्र उतना ही दूर है जितना कि घोर अधकार से देदीप्यमान प्रकाश । यह प्रवृत्ति दैविक नही है, राक्षसी है, जनता को अधकार मे ले जाने वाली है ।

इच्छा-निरोध

"इच्छाओ को रोकना जीवन को कुण्ठित करना है, विकास को रोकना है । उन्हे यथेष्ट प्रवृत्ति करने देना जीवन का विकास करना है ।" यह विचार बिना मननपूर्वक गतानुगतिक लोकोक्ति को पुष्ट करता है । वस्तुत इच्छाओ की यथेष्ट प्रवृत्ति को रोके विना अपूर्व जीवन प्राप्त नही किया जा सकता है । नदी का प्रवाह रोके विना उससे बिजली पैदा नही की जा सकती । उसको रोकने मे कष्ट का सामना करना पडता है । इन्द्रियो की यथेष्ट प्रवृत्तियां रुकती हैं, तभी आत्म-साधना मे सफलता प्राप्त की जा सकती है । इच्छाओ को रोकने मे आतरिक सघर्ष अवश्य होता है, पर इस सघर्ष के विना जीवन मे बिजली (ऊर्जा) पैदा नही की जा सकती । हाँ, इसमे सतत जागरुकता की अत्यधिक आवश्यकता होती है ।

प्रगतिशीलता

प्रगतिशील पुरुष समय एव परिस्थिति को देखकर किसी कार्य विशेप पर

को व्यर्थ के कामों में खो देने के पश्चात् अत्यधिक पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ भी बनना कठिन है। अतः पूरी सावधानी के साथ वर्तमान मानव अवस्था को संभालकर इसे सही जीवन-कला प्राप्त करने मे लगा देना ही मानव का मुख्य ध्येय होना चाहिये।

शिक्षा अवयवों से

शरीर के अन्दर रहने वाला प्रत्येक अवयव अपने-अपने स्थान पर रहता हुआ किस खूबी से अपना कार्य सम्पादन करता है। केन्द्रीय स्थान से जिस भी बात की आज्ञा प्राप्त होती है, उसके अनुसार वह अवयव निरन्तर अपनी गति से अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है, उसको कोई देखे या न देखे। कोई उसकी तारीफ करे या निन्दा, वह अवयव इन बातो पर जरा भी ध्यान न देकर प्राप्त आज्ञा को कार्य रूप मे परिणत करता रहेगा। निन्दा या स्तुति का असर यदि केन्द्रीय स्थान पर हुआ तो उस असर की झाई के साथ आज्ञा अवयव के पास पहुँचेगी तथा उतनी ही मात्रा मे उसकी कार्य-प्रणाली पर असर होगा। कार्य परिणति मे भी उसी के अनुरूप परिवर्तन आयेगा, जरा भी विपरीत या न्यूनाधिक नही। अतः शरीर के प्रत्येक अवयव की इस प्रामाणिकता से भी मनुष्य को शिक्षा लेनी चाहिये।

महनीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

किसी भी वास्तविक प्रयास के फलस्वरूप मानव यदि अन्तःस्थल पर पहुँच जाता है और वहाँ की सत्व-सम्पन्न शक्ति को भली भाँति पहचान लेता है तो उसकी सब वृत्तियो मे परिवर्तन आ जाता है। उसकी चाल, उसकी दृष्टि, उसका बोलना, उसका सुनना, मनन करना आदि अन्य प्राणियों से विलक्षण होंगे। आन्तरिक सत्व-सम्पन्न व्यक्ति अमूल्य शक्ति का जन साधारण की तरह अपव्यय नही होने देगा। वह उसका सत्य प्रयोग भी दिव्य एव भव्य, विशाल तथा व्यापक वास्तविक जीवन-निर्माण को सम्मुख रखकर उसके अनुपात से करेगा, जिससे समग्र जीवन उसी सत्व-सम्पन्न शक्ति के रूप मे परिणत कर पायेगा।

अपनों से अपमान

समग्र विश्व तेरा है, तू उसका है। फिर भय और चिन्ता किससे ? घर मे कौन शत्रु ? कोई नही। सभी मित्र, सज्जन और स्नेही, सभी सहायक, सभी हितैषी, सभी मेरा शुभ चाहने वाले। घर मे कदाचित् किसी की फटकार मिलती है, कभी कटु शब्द भी सुनने को मिलते है, मारने और त्रास देने का वायुमडल भी बनता दिखाई देता है। पर क्या वे सब वस्तुतः हानिप्रद है ? नही ! वे सब तेरे हितकर ही है। जीवन-निर्माण के लिये हैं। जो तेरी त्रुटि तुझे नही दिख

वास्तविक झाकी नही देख सकते और उसके बिना जीवन का सही मार्ग नही मिल सकता। प्रशात एव निर्मल मन की स्थिति ही इसके साधन रूप मे सिद्ध हो सकती है।

शिक्षा एक दृष्टि

नई तालीम दी जाय, मगर नई तालीम का नकशा वास्तविक शाति का हो। बुनियादी आवश्यकताओ के साधनो का विकेन्द्रीकरण होकर अन्न-वस्त्र आदि जरूरी चीजो मे स्वावलम्बी एव स्वतंत्र हो जाय फिर भी जब तक प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे का अग है, एक कुटुम्बी है, एक ही प्रकृति माता की सतान-सहोदर भाई है और उसके साथ मेरा वही कर्त्तव्य है जो कि स्वशरीर के साथ है, ऐसी विश्व व्यापी एकात्मीयता की शिक्षा नई तालीम के नक्शे मे नही रखी जायेगी तब तक वर्ग-विहीन, शोषण-विहीन एवं शासन रहित स्थायी शाति नही हो सकती।

शासन एक स्पष्टीकरण

शासन-रहितता से अभिप्राय उस शासन से है जो शासन शोपण या हिंसा से मुक्त हो, जिसमे विचार स्वातन्त्र्य का दमन नही किया जाता हो। शासन इन्सानियत से वचित रखने वाला नही हो, बल्कि प्रेम या अहिंसा का शासन अवश्य हो। इसके बिना प्रगति नही की जा सकती।

वातावरण का प्रभाव

समय और परिस्थिति के अनुसार इन्सान परिवर्तित होता है। उसके सामने जैसा वातावरण होता है वह उसी के अनुकूल अपने विचारो को ढालता है और प्रतिकूल वातावरण को समय-अनुसार बदलने की चेष्टा करता है। वह उसको परिवर्तित कर सकता है, किन्तु सर्वथा नष्ट नही कर पाता। यह सब मध्यम श्रेणी के विचारको की परिस्थिति है। मगर जो वस्तुत सत्य-शोधक एव विवेकशील पुरुष है, वह स्वय पवित्र अन्त करण को सामने रखकर निर्लिप्त, विशाल दृष्टि से नवीन वातावरण तैयार करता है। वह किसी प्रवाह या उत्तेजित वातावरण में नही बहता किन्तु निश्चल धैर्य के साथ आगे बढता है।

उपयोग विचार-शक्ति का

विचार-शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये, उसे व्यर्थ की बातो मे नष्ट नही करना चाहिये। यह एक ऐसा शस्त्र है जिसके सदुपयोग करने से स्वपर की रक्षा और दुरुपयोग से स्वपर का नाश होता है। अगर इन्सान यह सोचता है कि मेरी उन्नति मे अमुक व्यक्ति बाधक है, उसको कैसे हटाऊँ या उसका

अविचल परम लक्ष्य के रूप में स्थापित करने का दृढ संकल्प आने पर कोई भी बाधक तत्त्व बाधकता के रूप मे नही रह सकता। ऐसे पुरुष के सामने जीवन की व्यक्तिगत कितनी भी जटिल समस्याये क्यो न आ जाये, उसके लिये जटिलता रह ही नही सकती। पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा विश्व सम्बन्धी परस्पर अत्यधिक भिन्नता के साथ विरुद्ध दिखाई देने वाली गूढ गुत्थियाँ सरलतम प्रतीत होगी। इतना ही नही, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अन्तरदृष्टि से विलोकित जो विश्व का विभिन्न स्वरूप है, जिसको स्थूल दृष्टि, स्थूल विचार, प्रचलित दार्शनिक दृष्टियाँ आज तक के समस्त वैज्ञानिक औजार के माध्यम से नही देख पाती, उनके अन्तर्गत रहने वाली समस्त गतिविधि किसी भी रूप को लेकर क्यो न सामने आये, उस पुरुष के लिये न कोई आश्चर्य का विषय होगा, न किसी प्रकार का संकोच, न किसी जाति की ग्लानि, न किंचिदपि किसी कोने के अनन्तवे भाग मे भय की छाप की झलक। वह तो पवित्र सलिल धारा की भाँति अपनी परम मस्तानी अबाध शक्ति का आलोक लेकर चलता रहेगा। उसके लिये न कोई विरूप है, न कोई बाधक, न कोई सर्वथा पर न विद्वेष की काली घटा, विराग की परमलता, न कोई बाधक दिवार न आपत्ति की चट्टान। उसके लिये तो सदा सर्वदा राज मार्ग विद्यमान रहता है। किसी प्रकार की रुकावट न हो। अत. गति अवरोध का प्रश्न ही पैदा नही होता।

विचारों का रूपान्तरण

मस्तिष्क का परिवर्तन केवल आर्डर से नही होता, वह होता है हिताहित प्राप्ति परिहार के सही विज्ञान से। वह विज्ञान केवल भौतिक नही, अपितु भौतिकता पर, नियत्रण पर क्षमता रखने वाला अध्यात्मिक विज्ञान है। आध्यात्मिक विज्ञान बाजारू वस्तु की तरह सहज मिलने वाला नही। उसके लिये कठिन तप की आवश्यकता है। कठिन तप इसलिये कि विकारी दशा से मन को दृढता के साथ मोड़ना पड़ता है। वह मोड आर्थिक दृष्टि प्रधान पाठशालाओ व महाविद्यालयो मे नही हो सकता है। क्योकि इसमे मुख्य रूप से दृष्टिकोण का भेद है। वैसे ही पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीयता प्रधान दृष्टिकोणो मे भी परिवर्तन की स्थिति प्राय: नही रहती क्योंकि वहाँ भी मुख्य दृष्टिकोण तत्‌तत् (उस-उस) विषयक रहता है। यदि वैसा नही रखा जाता है तो वे अपने-अपने स्थान के सफल कार्यकर्त्ता साबित नही हो सकते। अत: कदाचित् किसी के नही चाहने पर भी विवशता के साथ वैसा रखना पडता है। इस प्रकार के जितने भी कार्य क्षेत्र हैं, वे प्राय: विकारी दृष्टिकोण मे सफल नही हो सकते। वलिक उनमे भी नैतिक सचालन के लिये अन्य की आवश्यकता रहती है। अतः इसकी पूर्ति के लिये ऐसे वर्ग की आवश्यकता है, जो कि इन दृष्टिकोणो से ऊपर उठा हुआ वास्तविक स्थिर लक्ष्यनिष्ठ आन्तरिक ऊर्जा सम्बन्धी अनुभूतियों से ओत-प्रोत होता हुआ वैसा रूपान्तरण ला सके।

जा सकती। वास्तविक शिक्षा प्राप्त करने के लिये पवित्र अन्त.करण की आवश्यकता होती है। वाह्य साधन तो निमित्त मात्र होते हैं। जव तक व्यक्ति यह सोचता रहेगा कि आपत्ति या कष्ट का सामना न करना पडे तव तक वह सही शिक्षा नही पा सकता। जो शिक्षा दूसरो को देनी है, वह शिक्षा पहले अपने ऊपर ग्राजमाकर अनुभव करें कि यह मुझे हितकर एव प्रियकर मालूम होती है या नही ? फिर जो उसे हितकर एव प्रियकर ज्ञात हो तो वही दूसरे को दे।

परापेक्षी वृत्ति-मानसिक दुर्बलता

"ग्रमुक बडे आदमी ने ग्रमुक मत का समर्थन कर दिया, वह अधिक फैलेगा, हमारे मत का समर्थन नही हुआ, ग्रतएव हमारा मत कमजोर हो जायेगा, उसके पास हमे भी पहुँचना चाहिये।" ऐसी वाते कमजोर दिल के मनुष्य कहा करते हैं। वे यह नही सोचते कि हमने जो मत स्वीकार किया है, यह सोच-विचार कर किया है या बिना सोचे। अगर सही मायने मे सोचा है ग्रौर उसे जीवनोपयोगी अनुभव भी कर रहे हैं, तो हमे किसी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिये। निर्भयता एव दृढतापूर्वक उसका ग्रनुसरण करते हुए आगे वढना चाहिये। दूसरे किसी असयमी की प्रामाणिकता की छाप का गुलाम रहने वाला मनुष्य कभी सुख तथा शाति नही पा सकता। सुख एव शाति का सही मायने मे वही ग्रनुभव कर सकता है, जो पवित्र अन्त करण की प्रामाणिकता तथा दिव्य दृष्टि की छाप चाहता हो।

जीवन की विराटता

जीवन का सम्वन्ध केवल शरीर तक ही सीमित नही है। इसका सम्वन्ध न्यूनाधिक रूप से सारे ससार के साथ है।

जीवन की विशेषता

जीवन विश्व की अनेक विभिन्न इकाइयो में से एक है। इसके अन्दर समग्र तत्त्व न्यूनाधिक रूप से वीज रूप मे विद्यमान हैं। इन सभी तत्त्वो का विकास भी किया जा सकता है और शरीर के ग्रतिरिक्त अन्य भौतिक साधन के विना विश्व की हलचल का ज्ञान हो भी सकता है। अपने अस्तित्व को स्वतत्र रूप में कायम रखते हुए विश्वस्थ सम्वन्धो को स्वच्छ भी रखा जा सकता है।

साधना की भूमिका

शुद्ध कर्त्तव्य दृष्टि को सामने रखकर चलते रहना, निष्ठापूर्वक जीवन कला को मद्देनजर (दृष्टिगत) रखना, विनयशीलता व सुविधि का त्याग न करते हुए निर्भयतापूर्वक मन स्थिति को रखना, मान-ग्रपमान आदि स्थिति का मन मे

हो पाता। शाति की चादर को प्रतिक्षण कतरने वाले पहाडी चूहे के समान सम्पूर्ण आपत्तियो का प्रमुख द्वार वह शत्रु है प्राणी के अन्दर रहने वाला काल्पनिक भय।

अन्तरानुभूति

पिछली रात्रि ५ बज कर ४० मिनिट के लगभग गणित का चिन्तन करते हुए पाट से नीचे उतरते समय अन्तर आभास का दृश्य अपूर्व था। प्रथम तो उज्ज्वलता ऐसी लग रही थी जैसे प्रकाश पुंज मे से धूम्र जड़ मूल से अलग हट रहा है। इससे महसूस होने लगा कि मिथ्यात्व आदि विकार जड़ मूल से उखड गये है, और सर्व विकारी प्रवृत्तियाँ धुएँ के रूप मे लगने लगी। तदनन्तर विचार हुआ कि वस्तुत आत्मा की दशा इस प्रकार से आगे बढ़ती है। सत जो पढाई कर रहे है, वह भी आवश्यक है। पर इन सतो की योग्यता बढ जाय तो आन्तरिक पढाई इससे भी महत्त्वपूर्ण है। अतः इसके लिए एक विधान पद्धति का आन्तरिक कोर्स तैयार कर उसके अनुसार आन्तरिक अध्ययन कराऊँ। इसके पश्चात् ऐसा भासित होने लगा कि धूम्र रहित तीन साढे तीन हाथ के लगभग लम्बे और गोल स्तभ के समान गोल छड़ जैसा प्रकाश पुंज का दृश्य आन्तरिक स्थिति के सामने है।

समता का विस्तार

शरीर की रचना वैज्ञानिक पद्धति से बनी हुई है। इसका पूर्ण विज्ञान परिपूर्ण सम्यग् ज्ञान-शक्ति के बिना शक्य नही। फिर भी यत्किंचित अन्तर आभास की अवस्था से चिन्तन किया जा सकता है, वह भी स्नायु के माध्यम से। क्योकि चैतन्य आत्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर भी अपूर्ण दशा मे शरीर के सूक्ष्मतम तत्त्व तथा सूक्ष्मतम अवयवों के साथ स्नायु, आदि के माध्यम से कार्य करता है। चैतन्य आत्मा का प्रकाश अनन्त सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक है। उस आत्म ज्ञान के प्रकाश को उपमा की दृष्टि से नही आका जा सकता। ऐसे परिपूर्ण ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने का लक्ष्य सदा सन्मुख रख कर शरीर रूप में रहने वाले चैतन्य आत्मा को सम्यग्ज्ञान के साथ अवलोकन करने का सही प्रयास होना आवश्यक है। एतदर्थ सर्व प्रथम इस अवस्था की योग्यता आना नितान्त आवश्यक है। योग्यता के लिये सूक्ष्म एव स्थूल समग्र प्रकार के जीवों को आत्मवत् समझने के साथ उनके प्रति शक्ति भर समता दर्शन की वृत्ति बनाई जावे। इस समता दर्शन का सक्षिप्त व विस्तार से यथा स्थान समझकर पूर्ण आचरण रूप मे परिणित करना।

समता दर्शन केवल मस्तिष्क रूप से न हो कर आन्तरिक अनुभूतियो में प्रस्फुटित होना चाहिये। आन्तरिक अनुभूति मे समता दर्शन के अभिव्यक्त होने पर पॉच इन्द्रिय सम्बन्धी समग्र विषय की तृष्णा के परित्याग की अवस्था स्पष्ट

और पानी की बूंदो से गलने की तरह विकारो मे गलकर नष्ट हुआ। हाथ कुछ नही आया, व्यर्थ ही·········· · ·।

कार्य और भूमिका

प्रत्येक कार्य मे धैर्य, शाति और विवेक की नितान्त आवश्यकता रहती है। इनके बिना कार्य की परिपक्वता नही बन पाती और परिपक्वता के बिना उस कार्य से सही मायने मे तुष्टि नही होती। तुष्टि के अभाव मे विषय-तृष्णा "दिन दूनी रात चौगुनी" की कहावत के अनुसार निरन्तर बढती रहती है, जिससे मन की चचलता अधिक वेगवती बनती है और अशाति सीमा को लाघने लगती है, परिणामतः आसपास का वायुमडल भी दूषित बन जाता है एव परम्परा से इसकी दुर्गंध दूर तक फैल जाती है।

अत: प्रत्येक विचक्षण पुरुष को किसी भी कार्य मे हाथ डालने के पूर्व अपनी भूमिका का भली भाति अवलोकन कर लेना चाहिए। यदि स्वय की भूमिका मे किसी बात की कमी महसूस हो तो कुछ समय उसकी पूर्ति मे लगना चाहिये। फिर जब यह अनुभव हो जाय कि मेरी भूमिका अमुक कार्य करने के योग्य सक्षम बन गई है, तो फिर उस भूमिका पर दृढतापूर्वक स्थिर रहकर सम्यक् ज्ञान के साथ कार्य मे हाथ डालना चाहिए।

खणं जाणहि पडिए

मेरा प्रत्येक अमूल्य क्षण जा रहा है। इन क्षणों को सार्थक करना मेरे हाथ की बात है। मैं व्यर्थ की बातो मे जितनी अपनी शक्तियो को लगाता हू, उतना ही अपने आप मे शक्तिहीन होता हूँ और मेरा प्रत्येक क्षण व्यर्थ जाता है। इससे न केवल मैं अपने आपकी ही शक्ति का अपव्यय करता हूँ, बल्कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा विश्व का भी अहित करता हूँ। इस तरीके से, एक दृष्टि से प्राणी मात्र का कल्याण ही करता हूँ। अत मुझे पूरी सावधानी रखने की आवश्यकता है, ताकि मैं स्व-पर के कल्याण की कडी मे कुछ शक्ति अदा कर सकू ँ।

अमूल्य जीवन

मानव यत्किंचित तुच्छ इद्रिय सुखो के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहा है। इसके विषय मे कुछ भी सही रीति से सोचने का प्रयत्न नही कर पा रहा है। यह अवस्था बीत जाने के पश्चात् असख्य प्रयत्न करने पर भी वर्तमान मानव-जीवन की अवस्था प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन है। कौन जानता है कि यहाँ से कहाँ जाकर गिरेंगे और क्या दशा होगी? उस दशा मे आज-सा मान रहेगा या नही ? प्राप्त की हुई चिन्तामणि को समुद्र मे फेक दें, उसको पाना तो फिर भी शक्य हो सकता है, पर इस मानव अवस्था

बातचीत करने पर अपना बहुत भला हो सकता हो, फिर भी अभिमान उससे बात नही करने देता । कभी-कभी यहाँ तक की स्थिति आ जाती है कि मृत्यु के क्षणों तक भी अभिमान उसे झुकने नही देता । झुकना तो दूर, बात तक नही करने देता । इस प्रकार अनेक तरह की कहानियाँ तो वर्तमान जीवन मे प्रकट दिखने वाली होती है । इसके अतिरिक्त मन की कोमल वृत्ति से विकसित होने वाली अनेक शुभ वृत्तियाॅ कु ठित हो जाती है । उनके कुंठित हो जाने से इस जीवन की आतरिक शक्तियाॅ तो प्राय: नष्ट होती ही है, जो लाख प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नही हो सकती । इसके साथ-साथ अगली स्थिति विगड जाती है। क्योकि अभिमान की दशा मे दूसरे के प्रति सदा हीन भावना वनी रहती है। इस हीन भावना के समय अगले जन्म का आयुष्य वन्ध भी नीच गति का होता है । उस गति के प्राप्त होने पर प्राय: उसी के अनुरूप ही आगे के विचार बनते रहते है । इस क्रम से अनेक जिन्दगियाॅ बर्बाद हो जाती हैं । अतः विचारवान इंसान को चाहिये कि अपने मन के किसी भी कोने मे अभिमान न रहने दे ।

शक्ति का दुरुपयोग

मानव अपनी स्थिति को नही समझने के कारण व्यर्थ की बातों मे अपनी मानसिक शक्ति लगाता रहता है और व्यर्थ की कल्पना से रात-दिन सोचा करता है कि वह व्यक्ति मेरा है, मेरी पार्टी का है, मैं उसको अपना बना लूँ, उसके साथ मित्रता कर लूँ और जो मेरा नही है, उसकी उपेक्षा कर दूँ क्योकि वह मेरे काम नही आता । अमुक काम तो आता है, पर अन्दर मे निन्दा करता है। मेरी जड काटता है । मेरी प्रशसा को बर्दाश्त नही करता । अत. उससे सम्बन्ध प्रगट मे न तोड़कर उदासीन हो जाना ठीक रहेगा, आदि न मालूम किस-किस को लेकर कितना क्या सोचता है, जिसको वह स्वयं भी नही समझ पाता । और इसी प्रकार की कल्पनाओ से वह अपनी शक्ति को बर्बाद करके चल बसता है । कुछ भी रचनात्मक-सृजनात्मक-निर्माणात्मक कार्य नही कर पाता है । यह मानव मन की बड़ी कमजोरियों में से एक है । इसको समाप्त करने के लिये मन मे शुद्ध सकल्प की नितान्त आवश्यकता है । इसके लिये अपने विचारो को साफ करने की पद्धति अपनानी चाहिये । वह यह है कि प्रात.कालीन किसी भी नियत समय मे आलस्य को दूर हटाकर एकान्त स्थान मे सर्वथा प्रकार से परिपूर्ण सिद्धि प्राप्त आत्मा को नमन कर लक्ष्य स्थिर किया जाय और सर्वथा प्रकार से सभी पापकारी तथा क्षुद्र प्रवृत्तियो के परित्याग के दृढ सकल्पपूर्वक आचरण मे परिणित अवस्था बनाई जाय, ताकि उन प्रवृत्तियो से ऊपर उठने की क्षमता प्राप्त की जा सके । तदनन्तर वास्तविक स्थिति की दृष्टि से विचार किया जाय कि मैं जो कुछ भी सोच रहा हूँ, कर रहा हूँ, उसमें कितना व्यर्थ तथा कितना किस समय तक काम मे आने वाला है ? इस विषय का भलीभाति विचार करने पर

रही है, पर तेरे लिए अहितकर है, उसी के सुधार के लिए कह रहे हैं, अतः हितैषी है। वैसा ही दृष्टिकोण सारे ससार के साथ बन जाय तो सब कुछ अच्छा बन जाता है। फिर सहारक, भय और चिन्ता का नामोनिशान ही नही रहे बल्कि हर स्थान पर जीवन की उज्ज्वलता ही परिलक्षित होने लगे। प्रत्येक समय उत्साह सर्वत्र सहायक सज्जन, स्नेही के अतिरिक्त कोई दृष्टिगत ही नही होने पाये। वह स्थिति जिस भी आत्मा मे आ पायेगी, वह आत्मा इस विश्व की वास्तविक स्थिति की आत्मा होगी। उससे फिर गुह्य व अदृश्य कुछ भी नही रह पायेगा।

अंकन व वृत्तियाँ

यद्यपि स्व-पर विज्ञाता शक्ति अकन एव वृत्तियो से विजातीय स्थिति मे रहती है, फिर भी कम विकसित होने या आवृत्त पदार्थों से दब जाने से कमजोर सी बन जाती है। उस अवस्था मे वृत्तियो व अकन तत्त्वो की रगीन छाया मे भी आ जाती है। यानी उनको रंग से रगीन बन जाने के कारण रगीन वृत्तियो व अकनो की अत्यधिक प्रचुरता बढा लेती है और उसी मे घुलमिल जाने से स्वकीय स्व-पर विज्ञातत्व विपरीत दिशा मे मुड़ जाता है। इससे अशुभ वृत्तियो का निर्माण तथा दु खद स्थितियो का अकन उसी जाति का द्वंद्व, जो कि भूमडल पर समय दिशा आदि आपेक्षित सुख-दुःख वृत्तियो के सम्मिश्रण से अनेकानेक विभिन्न विजातीय वृत्तियो के निर्माण की वृत्तियाँ बाह्य पदार्थों का निमित्त पाकर भी बनती हैं और आंतरिक वृत्ति के उथल-पुथल से भी। किसी अपेक्षित सुखात्म वृत्ति मे रागात्म वृत्ति का प्रादुर्भाव और विपरीत मे द्वेषात्मक वृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। दोनो वृत्तियो का विस्तृत परिवार उसी परिणाम मे वह स्व-पर विज्ञाता शक्ति अयगोलक में आग की तरह सब वृत्तियो के रूप को धारण करती हुई अनेक रूपो मे प्रतिभासित होने लगती हैं। वह उन रूपो मे इतनी फस जाती है कि स्व-पर विज्ञाता शक्ति, न तो उन सूक्ष्म वृत्तियो को भली भाति पहचान पाती है और न स्वय के स्वरूप को। अत. घडी के काटे की तरह वृत्तियो मे ही घूमती रहती है। इसलिये अधिकाश मनुष्य अपने जीवन को समझ नही पाते। अधिकाश दार्शनिको के लिये भी जीवन एक रहस्यपूर्ण समस्या बन गया है। इससे वे भी इस वृत्ति पाश को चीर कर स्व-पर विज्ञाता शक्ति के आधार-भूत अविनाशी सर्व शक्ति सम्पन्न तत्त्व का साक्षात्कार न कर पाये और अनेक आन्तरिक शकाओ से ओतप्रोत बन गये। तो फिर अन्य प्राणियो का तो कहना ही क्या ?

प्रबलतम शक्ति-व्यवधान समाप्त

अचल, अविनाशी, अखड, परम शुद्धि, अन्तिम परिपूर्ण ज्ञान-विज्ञान आदि समस्त श्रेष्ठ मत शक्तियो के स्व-पर स्वरूप के चरम विज्ञाता सत्य को

तत्क्षण उसी अवस्था मे केवलज्ञान प्राप्त हो गया और त्रिभुवन-प्रभुता की विराट शक्ति के स्वामी बन गये। अतः अभिमान का सर्वथा परित्याग तो त्रिभुवन-प्रभुता प्राप्ति का एक साधन है।

उद्‌बोधन के स्वर

आम व्यक्ति के दिन रात वैसे ही व्यतीत हो रहे है, कुछ करने योग्य किया नह जा रहा है। वह किसी कल्पना, व्यर्थ के विचार मस्तिष्क के पटल पर आने जाने से शक्ति का अपव्यय बन रहा है। निद्रा, स्वप्न, जागृति, चिन्ता आदि प्रक्रियाओं मे समय बीत रहा है। भव्य चेतना, इन सभी दशाओं मे तुझे सावधानीपूर्वक आगे बढने की आवश्यकता है। इन्ही दशाओं मे अनादिकाल से चलता आ रहा है। उनसे ऊपर उठने का सोचा भी नही। यत्किंचित सोचा भी तो ऊपरी तौर से। अन्तःस्थल से सोचने का जरा भी प्रयास सही ज्ञानपूर्वक नही बन पाया। यही कारण है कि आत्मा का विकास प्रायः अवरुद्ध सा ही रहा। भव्य प्राणी अब भी समय है, अवसर है, अवकाश है। जीवन की योग्य दशा है, साधन सामग्री का अनुकूल योग है वास्तविक ज्ञान का पट खोलने का। क्यों नही खोला जा रहा है, क्यों व्यर्थ में पडा हुआ है? अब तो जग! अब तो चेत! क्या कर रहा है? बड़े दुःख का विषय है कि तुम्हारा सारा समय व्यर्थ मे जा रहा है। कुछ भी सही मायने में कर नही पा रहा है। कब करेगा? कब जगेगा? कब चलेगा गन्तव्य स्थान पर? सही दिशा सामने रखकर सच्चे पुरुषार्थ बल से चल पड़! सफल होगा तुम्हारा दिन-रात!

सूक्ष्म दृष्टि—विलक्षण चिन्तन

सूक्ष्म और सही दृष्टि का चिन्तन बड़ा ही विलक्षण होता है और वस्तुस्थिति के पार तक पहुँचाने वाला होता है। इसके लिये चित्तवृत्ति की समता आनी आवश्यक है। समता का तात्पर्य सर्व तत्त्व को एकान्तिक रूप से एक सदृश्य मान लेना या समझ लेना नही है, वरन् समता का अर्थ है–प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक अवस्था का भलीभाँति सापेक्ष दृष्टि के साथ वस्तु स्वरूप अवलोकन करना तथा उसके अन्तःस्थल तक पहुँचकर वास्तविक अवलोकर कर लेने पर निर्णायक बुद्धि का होना। इस प्रकार की चित्तवृत्ति बनाने पर जो भूमिका बनेगी और उस भूमिका की अवस्था से जो चिन्तन प्रारम्भ होगा, वह भूमिका सूक्ष्म पवित्र दृष्टि की बन पायेगी। वहाँ जीवन की सर्वग्रथियाँ यथा-शीघ्र सुलझ सकेंगी एवं आनन्द की वास्तविक अनुभूति की दशा प्रशस्त बन पायेगी। फिर तो राजमार्ग-सा कार्य बन जायेगा। मार्ग खोजने की दृष्टि से रुकना नही होगा। गति भी तीव्र बन जायेगी। यह कार्य स्थूल दृष्टि से नही बन पाता। हाँ, प्रारम्भ मे स्थूल बुद्धि भी आगे बढ़ाने में सहायक बन सकती है। अतः यथास्थान सूक्ष्म दृष्टि के चिन्तन की आवश्यकता है।

संस्कार और अनवरत अभ्यास

शरीर किसी नियत स्वभाव वाला नही है। जिसमे भी स्वभाव के संस्कार निश्चित समय पर डालने का अभ्यास किया जाय, वैसा बन सकता है। आरम्भ मे कुछ कठिनता महसूस होगी, अटपटा लगेगा। कुछ समय के लिये ऐसा भी अनुभव होगा-मानो अस्वाभाविक स्थिति का काम कर रहा हूँ। मन ऊब-सा जायेगा, उससे उठने की कोशिश होने लगेगी एव पूर्व स्वभाव को ही अपना स्वभाव समझकर उसी का प्रतिपादन करने की उमग भी उठ सकती है। लेकिन इस सबके बावजूद भी जिस अभ्यास को चालू किया है, उससे जरा भी पीछे न हटकर अनवरत गति से निश्चित समय मे प्रवाहित होता रहे तो कालान्तर मे अनुभव होगा कि मैं जिन गुणात्मक सस्कारो का आरोपण सह रहा था, यही मेरा वास्तविक व स्वभाव है। ऐसा होने पर इसके बिना चैन नही पडेगा। उससे विपरीत स्थिति पसन्द नही आयेगी। इस प्रकार जिन भी सस्कारो का स्वभाव बनाने की आवश्यकता हो, उन्ही सस्कारो का पूर्वोक्त रीति से अभ्यास होने पर वैसा स्वाभाविक स्वभाव इस शरीर का बन सकता है। काफी समय के पश्चात् तो बिना ही अभ्यास निश्चित समय पर वैसा ही अनुभव होने लगता है। यह शरीर एक प्रकार की वह भूमि है जिसमे सभी प्रकार की सर्व अर्थ परमार्थ, आदि रूप फसल तैयार हो सकती है। इसको एक दृष्टि से चिन्तामणि की उपमा भी दी जा सकती है। बशर्ते कि इसका अधिष्ठाता आत्मदेव वास्तविक ज्ञान-विज्ञान अनुभूति पूर्वक आचरण सम्पन्न हो।

भयंकर शत्रु

प्राणी मात्र का एक सबसे बडा भयकर शत्रु है, जो हर समय उसका नाश करता है। वह चमडे की दृष्टि मे जल्दी नही आता। कभी आता भी है, तो उसका बडा स्थूल रूप। पर वह तो किसी कोयले को खदान मे अचानक ज्वाला के रूप को धारण करने वाली आग के समान है। जैसे दबी आग शनै - शनै पास के छोटे-बडे सभी तत्त्वो को प्रति क्षण जलाती रहती है। वैसे ही वह शत्रु प्रतिक्षण प्राणी मात्र के अन्दर रहने वाले छोटे-मोटे जीवन तत्त्व को भस्म करता रहता है। जिसका विज्ञान बडे-बडे समाज के कर्णधार, विचारक, चतुर कहलाने वालो को नही हो पाता। वे भी प्राय इसके चगुल मे फँसे रहते हैं। वह क्षय रोग के कीटाणु की तरह सताता रहता है। दूसरी दृष्टि से देखा जाय, तो वह समस्त अध्यात्म रोगो की जड है। बडे-बड योगी लोग भी कभी-कभी उससे आक्रात होते सुने गये हैं, अन्य का तो कहना ही क्या ? उसी का असर स्थूल शरीर पर भी पडता है और अनेक बीमारियाँ आ घेरती हैं, जिनका निवारण करने मे बडे-बडे डॉक्टर भी प्रायः असफल रहते है। इस रोग से मुक्ति पाये बिना ही प्राणी चल बसता है। साधना का क्षेत्र भी पूरा सफल नही

यद्यपि पौद्गलिक कार्य पदार्थ के अन्दर विचित्र स्वभाव बनता है तथापि उस स्वभाव का समय पर परिपाक भी हो जाता है। उस परिपाक के फलस्वरूप विचार आदि अवस्थाओ पर असर भी हो सकता है। लेकिन उस वक्त या उस परिपाक के पूर्व ही विचारो का पुट दिया जाय, तो पदार्थों के पूर्व रस में परिवर्तन आ सकता है। जिस भी अवस्था के विचार परिपक्व होगे उसी अवस्था मे पदार्थो का परिवर्तन किया जा सकता है। अर्थात् इस विराट् विश्व में आत्म-शक्ति सर्वोपरि है। उसका मोड सही दिशा की ओर हो तो समग्र वायु मण्डल मे इच्छानुसार परिवर्तन लाया जा सकता है।

इस शक्ति का सही अनुभवकर्ता स्वयं के शरीर में व्याप्त वीर्य के नाम के धातु को स्खलित नही होने देकर अन्य शक्ति मे परिवर्तित कर देगा। स्खलित होने देना या नही, इसका नियत्रण आत्मीय शक्ति पर निर्भर है।

आत्मीय विशेष शक्ति के जागृत नही होने तक ही अन्य शक्तियाँ अपना-अपना कार्य कर गुजरती हैं और वे विभिन्न प्रकार की हो जाने से विभिन्नता पैदा कर देती हैं। यही अवस्था प्राय: प्राणीवर्ग में चल रही है।

ब्रह्मचर्य—मानसिक प्रभाव

मानसिक वृत्ति की समग्र धाराये यदि अब्रह्मचर्य की ओर जरा भी झुकें और वास्तविक निर्धारित कार्य में निरन्तर संलग्न बन जाये तो यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि द्रव्य वीर्य रूप धातु की परिस्खलना नही हो पाती। क्योकि द्रव्य वीर्य रूप धातु की परिस्खलना भाव वीर्य रूप आन्तरिक आभ्यन्तरीय शक्ति पर निर्भर है।

भाव रूप आभ्यन्तरीय शक्ति अपने समग्र परिवार के साथ जिस भी कार्य मे निमग्न होगी उसी कार्य की साधिका रूप अन्य भौतिक शक्ति मे द्रव्य वीर्य रूप धातु व्याप्त होती रहेगी। यानी भाव रूप आभ्यन्तरीय वीर्य शक्ति से द्रव्य रूप वीर्य नामक धातु को परिवर्तित, परिवर्धित, संक्रमित, रूपान्तरित आदि अनेक अवस्थाओ मे सस्थापित किया जा सकता है। बशर्ते कि इस प्रकार की सही विधि समग्र पहलुओं से ज्ञात कर सही दृढतर अत्यन्त विश्वसनीय सकल्प पूर्वक निरन्तर अभ्यास मे लाई जाय।

यह कार्य मानवीय जीवन की सही दिशा की निर्मल परिस्थिति मे शक्य किया जा सकता है। अशक्य स्थिति की कल्पना निराधार है।

आत्म-शक्ति

मानव जीवन मे सर्व शक्ति सम्पन्न बनने के साधन बीज रूप मे विद्यमान रहते हैं। विल पावर (आत्म शक्ति) के अनुपात से विकसित होने का चास रहता

रूप मे आयेगी और उस अवस्था मे मन की विकृत अवस्थाये सीमित होकर समभाव वृत्ति बन जायेंगी।

ऐसी अवस्थायें आने पर ही चैतन्य आत्मा उपर्युक्त लक्ष्य को मद्देनजर रखता हुआ जिन-जिन अवयवो के माध्यम से शुभाशुभ प्रवृत्ति करता है, उन-उन शारीरिक अवयवो मे वह चैतन्य स्वय की ही ज्ञान शक्ति से अपने आपको अवलोकन करने का अभ्यास करे और यह देखने का प्रयास करे कि इन अवयवो मे चैतन्य का परिस्पदन किस प्रकार हो रहा है।

ऐसे तो शरीर व्यापी चैतन्य शरीर के प्रत्येक सजीव अवयवो मे अपना साकार रूप धारण करके रहा हुआ है। अतः शरीर के बाहरी अवयवो का परिस्पन्दन प्रायः सामान्य रूप से चर्म चक्षु से दृष्टिगोचर होता ही है पर आन्तिरिक अवयवो का आवरण मुक्त तथा सूक्ष्मतर होने से चर्म चक्षु सही रूप मे अवलोकन करने मे प्राय. असमर्थ हैं। अतः सहजिक योग के माध्यम से अन्तर के शारीरिक अवयवो मे होने वाले परिस्पन्दनो के माध्यम से चैतन्य शक्ति के प्रकाश पुज को क्रमिक रूप से विकसित करते हुए लक्ष्य की ओर बढाना चाहिये। लेकिन यह परिस्पन्दन चैतन्ययुक्त शरीर के अवयवो मे ही व्यवस्थित पाये जाते हैं, चैतन्य रहित जड शरीर मे नही। चैतन्य रहित जड मे यदि कोई व्यवस्थित कला देखी जाती है, तो वह व्यवस्थित कला भी उसी स्व-पर प्रकाश ज्ञान स्वरूप चैतन्य आत्मा की ही है। चैतन्य रहित जड मे व्यवस्थित कलाकृति बनाने की वैज्ञानिक शक्ति नही होती। अत. व्यवस्थित कलाकृति उपयोगवान चैतन्य की है। इस विराट् विश्व मे विचारो का विभिन्न वैचित्र्य विभिन्न रूपो, प्रकारो, कार्यकलापो आदि के रूप मे परिलक्षित हो रहा है। पर आश्चर्य इस बात का है कि मूल तत्त्वो को समझा नही जा रहा है।

ऊपरी-ऊपरी परत को ही सब कुछ समझ लिया गया। उसी के ऊपर प्राय· समस्त मानव वर्ग तैर रहा है और मान रहा है कि सब पा लिया गया। पर वस्तुस्थिति यही तक सीमित नही है। यह तो एक छोर है, कुछ अश है। अन्य सभी अश रहस्यमय गुफा की तह मे सन्निहित हैं। उनकी तरफ दृष्टि नही जाने से जीवन की उलझने बढती जा रही हैं। जो भी यह बोलते हैं कि हम सुलझ गये, वे प्रायः अधिक उलझे हुए हैं। जीवन की वास्तविक गुत्थी सुलझे बिना उलझनें समाप्त नही हो सकती। अत. मूल स्रोत के रहस्य की ओर बढना नितान्त आवश्यक है।

अभिमान—एक अभिशाप

अभिमान की मनोवृत्ति जीवन-विकास मे घोरतम शत्रु है। मन मे जब अभिमान का अश रहता है, तब वह किसी छोटे व्यक्ति से बात करना भी पसन्द नही करता। चाहे उस छोटे व्यक्ति से कितना ही महत्त्वपूर्ण कार्य क्यो न हो, उससे

स्तन पान की ओर मुड़ता है। पश्चात् माता-पिता एवं परिवार में समाता है। तदनन्तर खेल, विद्याध्ययन एवं अर्थ में स्वकीय शक्ति को लगा देता है। फिर समाज, राष्ट्र आदि भौतिक कार्यो मे व्यस्त बनकर जीवन की इतिश्री भी कर देता है। आन्तरिक अभिव्यक्ति की तरफ देखने का अवसर भी नही मिल पाता।

विचारों का प्रभाव

पवित्र आत्मीय विचारो का प्रभाव जड़ पदार्थों पर भी पड़ता है। उनकी पर्यायों में परिवर्तन आता हैं। उनकी अवस्था आत्मीय विचारो के अनुरूप ढल जाती हैं। अत: वे जिन भी पदार्थो को जिस रूप में मोडना हो उस रूप मे विचारपूर्वक योग्य संयोगों मे मोड़ सकते है। यह असदिग्ध विषय है।

निर्ग्रन्थ प्रवचन मे उल्लिखित कर्म सिद्धांतानुसार कर्म वर्गणा के जड परमाणु चैतन्य सयुक्त होने पर चैतन्यवत् कहलाते है।

आत्मीय विचार शांत एवं अमृत तुल्य हैं, तो उन विचारों का निरन्तर व्यवस्थित सयोग जिन परमाणु स्कन्धो को मिलेगा वे परमाणु स्कन्ध शान्त, सुधारस एवं अमृत तुल्य अवश्य बन जायेगे।

सत्य-बोध

आज प्रातःकाल सेठिया कोठरी की ऊपरी छत पर ७.३० से ८.३० के बीच घूमते समय वस्तु सत्य की सँच्ची अनुभूति जागृत हुई। भूत, भविष्य के मध्य वर्तमान दिन का वर्तमान चिन्तन क्षण अति महत्त्वपूर्ण है। उसी की सावधानी ध्रौव्य पर्याय के साथ अत्यधिक उज्ज्वल पवित्रतम कार्य मे दत्तावधान होना ही श्रेष्ठ सार्थक समय है। उसी मे सर्वज्ञता के स्वरूप की अभिव्यक्ति का अवसर है।

मानव : एक सुरभित पुष्प

पुष्प सदा–सर्वदा अपने ही स्वभाव मे निमग्न रहता है। स्वकीय पराग-सौरभ को अपने आप मे भरने मे जरा भी विलम्ब नही करता है। जब परिपूर्ण भर जाता है, तब उसमे से अपने आप इधर-उधर सर्वत्र सुगन्धि प्रसृत होने लगती है। उससे मानव को जो लाभ होता है, वह फलो आदि से नही होता।

मानव भी इस विराट विश्व का दिव्य पुष्प है। इसको भी अपने आप में पवित्र गुणो की सुगन्धी निरन्तर भरते रहना चाहिये। किसी भी समय कैसी भी व्यवस्था क्यो न हो, प्रतिकूल से प्रतिकूल प्रसग पर भी सद्विचारो को अपने से एक समय के लिये भी विलग न होने दे। प्रतिकूल विचारो को समभाव के धरातल पर विखेरकर जो जिस रूप मे ज्ञान हो उसको वस्तु स्वरूप की दृष्टि से उसी रूप मे अवलोकन करे। पर राग-द्वेष के रग को अपने विचारो पर न चढ़ने दें ताकि स्वय के पवित्र विचारो की सौरभ को किसी भी प्रकार की क्षति नही पहुँचे। यह मानव रूप दिव्य फूल की सफलता की कुजी है। □

जीवन की महान् विशालता का अनुभव होने लगेगा और जीवन-विज्ञान की कला बढेगी।

मानव जीवन—आनन्द का केन्द्र

मनुष्य आनन्द का केन्द्र बन सकता है और दु ख का महासागर भी। दोनो अवस्थाओ का मूल मनुष्य जीवन है। इस योनि मे रहने वाली आत्मा को भलीभाति सोच लेना चाहिये कि अब कौन सा कार्य करना है। यदि वास्तविक मनुष्यत्व, मनुष्यपन की अवस्था प्राप्त कर जीवन को सही ज्ञान के साथ विकसित किया तो यही मानव जीवन वास्तविक आनन्द का सच्चा केन्द्र बन सकता है। उसके लिये जीवन मे बदबू मारने वाली समस्त विकारो की गन्दी नालियो को परिमार्जित करना होगा। सत्य, शील रूप पवित्र जल से उनको धोना होगा। मानव ही नही प्राणीमात्र के प्रति आत्मीयता स्थापित करनी होगी। जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्थक बनाने के लिए सत्पुरुषार्थ का अक्षुण्ण मार्ग अपनाना होगा। आत्मीय प्रत्येक शक्ति की धारा मे विवेक शक्तिपूर्वक ज्ञान दूरबीन से सही अवलोकन करना होगा और यह देखना होगा कि किस-किस आत्मीय शक्ति के प्रवाह मे कौनसा मलिन कचरा कितनी मात्रा मे साफ हुआ और कितनी मात्रा मे अभी तक विद्यमान है। किस के पीछे कितना विकास रहा और इस विकास को सुखाने का कितना ताप पहुचा, आदि विषयक निरीक्षण यथासमय करना आवश्यक होगा, ताकि सफलता की शक्ति आगे बढती रहे और जीवन का आनन्द-केन्द्र समीप आता रहे।

प्रभुता में बाधक—अभिमान

जीवन मे छिपी शक्ति की अभिव्यक्ति होने पर आत्मा तीनो लोको की प्रभुता प्राप्त कर सकती है। वह प्रभुता शस्त्र बल, धन बल अथवा अन्य किसी बाह्य बल से प्राप्त नही हो सकती। वह तो आन्तरिक शक्ति के सही विकास पर निर्भर है। आन्तरिक शक्ति अभिमान की मात्रा से दब जाती है। बडा से बडा व्यक्ति क्यो न हो, अभिमान उसको भी गिरा देता है। बाहुबली जैसे बलिष्ठ को भी अभिमान ने पछाड़ दिया। जगल मे ध्यान लगाकर खडे रहने से लतायें शरीर पर व्याप्त हो गई। पक्षियो के घोसले तक का कथन प्रसारित हो गया। पर मन की एकाग्रता भग नही हुई। शरीर ने जरा भी लचक नही खाई, नेत्र की पलकें स्फुरित न हो पाई। कितना कठोर कार्य। बाहुबलीजी ने शारीरिक, मानसिक एव वाचिक प्रक्रिया की साधना मे जरा भी कमी नही आने दी। पर आन्तरिक अभिमान वृत्तियो के कारण त्रिभुवन प्रभुता रूप चरम आत्मीय शक्ति प्राप्त करने मे बाधा उपस्थित हो गई। केवलज्ञान उपस्थित नही हो पाया। जिस समय सूक्ष्म रूप से रहने वाले अभिमान को नष्ट किया कि

[२]

आचार्य श्री शिवलालजी म० सा०

जन्म-स्थान	—	धामनिया (म० प्र०)
दीक्षा-स्थान	—	बूंदी (राज०)
दीक्षा-तिथि	—	सं० १८९१
युवाचार्य पद-स्थान	—	बीकानेर
युवाचार्य पद-तिथि	—	सं० १९०७
आचार्य पद-स्थान	—	जावद
आचार्य पद-तिथि—	—	स० १९१७
स्वर्गवास-स्थान	—	जावद (म० प्र०)
स्वर्गवास-तिथि	—	स०१९३३ पौष शुक्ला षष्ठी

[३]

आचार्य श्री उदयसागरजी म० सा०

जन्म-स्थान	—	जोधपुर (राज०)
जन्म-तिथि	—	सं० १८७६
पिता	—	श्री नथमलजी खिवेसरा
माता	—	श्रीमती जीवुदेवी
दीक्षा-स्थान	—	बूंदी
दीक्षा-तिथि	—	सं० १८९८, चैत्र शुक्ला एकादशी
स्वर्गवास-स्थान	—	रतलाम (म० प्र०)
स्वर्गवास-तिथि	—	स० १९५४, माघ शुक्ला दशमी

सफलता का मूल मंत्र—संकल्प शक्ति

जीवन निर्माण का कार्य स्वय के सान्निध्य से सम्पन्न होता है। सान्निध्य का तात्पर्य सिर्फ समीपता नही, बल्कि स्वय की कला का प्रयोग करना है। यानी स्वय की सकल्प शक्ति को इस प्रकार दृढ एवं निरन्तर स्थायी बना देना जिससे अभीष्ट कार्य यथाशीघ्र सम्पन्न हो सके। किसी भी कार्य मे विलम्ब या शैथिल्य उस कार्य की कारण सामग्री के प्रमुख सूत्रधार सकल्प शक्ति पर निर्भर है। वह सकल्प शक्ति वास्तविक ज्ञानपूर्वक निरन्तर जीवन-निर्माण की परिपूर्ण कारण सामग्री के प्रत्येक अग मे प्राणस्वरूप बनकर दृढ, दृढतर, दृढ़तम बन जाय तो अन्य कोई भी शक्ति उसमे बाधक नही बन सकती। बाधकता प्राय सकल्प शक्ति की कमजोर अवस्था पर ही कामयाब हुआ करती हैं। बाधकता की शक्ति वहाँ सफल हो सकती है, जहाँ सकल्प शक्ति के सदस्य इतस्तः अलसित हो। मानव अपनी उस महत्त्वपूर्ण शक्ति को व उसके सदस्यगण की महत्ता को प्रायः समझ नही पाता। फलस्वरूप निर्माण कार्य मे बाधाओ के विचित्र रग-रूप से प्राय. हर क्षण वृक्ष के पत्ते की तरह प्रकम्पित होता रहता है। इससे अशाति के काले बादल सर्वत्र मडरा जाते हैं और कर्त्तव्य विमूढता का बोलबाला तथा उत्साहीनता की जजीर निर्माण कार्य मे बाधक बनती रहती है। अतः सदा सावधानी की आवश्यकता है।

ब्रह्मचर्य—एक अनुचिन्तन

ब्रह्मचर्य के वास्तविक परमार्थ को यदि सन्मुख रखा जावे तो जीवन का नक्शा कुछ और ही बन सकता है।

शरीर से निकलने वाला वीर्य प्रवाह निष्कारण नही होता। उसमे कारण अनेको हो सकते है। पर मुख्य कारण दो होते है। एक विचार और दूसरा वय यानी शरीर की अवस्था विशेष।

इन दोनो मे भी विचारो की ही प्रमुखता मानी जा सकती है। क्योकि विचारो के भी दो रूप संक्षिप्त मे रहते हैं, जिनको ज्ञात और अज्ञात के नाम से भी पुकारा जा सकता है। उनमे से यानी ज्ञात और अज्ञात विचार-धाराओ मे से किसी भी अवस्था मे अब्रह्मचर्य की ओर मुडने पर वीर्य पदार्थ के स्खलित होने का प्रसग प्राय बनता है। यद्यपि विचारो के मोड मे अनेकानेक कारण हैं पर उनमे भी शरीर के अवयवो की एक अवस्था विशेष को प्रबल कारण कहा जा सकता है। जिससे विचारो का मोड प्राय. बन जाया करता है।

ब्रह्मचर्य—शारीरिक प्रभाव

शारीरिक अवस्था को व्यवस्थित रखना भी आत्मशक्ति पर निर्भर है।

[६]

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

जन्म-स्थान	—	थादला (म. प्र.)
जन्म-तिथि	—	सं. १९३२, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	—	श्री जीवराजजी कवाड़
माता	—	श्रीमती नाथी बाई
दीक्षा स्थान	—	लिमड़ी (म. प्र)
दीक्षा-तिथि	—	सं. १९४७, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद-स्थान	—	रतलाम (म. प्र.)
युवाचार्य पद-तिथि	—	सं. १९७६, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद-स्थान	—	जैतारण (राज.)
आचार्य पद-तिथि	—	स. १९७७, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास-स्थान	—	भीनासर (राज.)
स्वर्गवास-तिथि	—	सं. २०००, आषाढ शुक्ला अष्टमी

[७]

आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा.

जन्म-स्थान	—	उदयपुर (राज.)
जन्म-तिथि	—	सं. १९४७, श्रावण कृष्णा तृतीया
पिता	—	श्री साहिबलालजी मारू
माता	—	श्रीमती इन्द्राबाई
दीक्षा-स्थान	—	उदयपुर (राज.)
दीक्षा-तिथि	—	सं. १९६२, मार्गशीर्ष कृष्णा एकम
युवाचार्य पद-स्थान	—	जावद (म प्र.)
युवाचार्य पद-तिथि	—	सं. १९९०, फाल्गुन शुक्ला तृतीया
आचार्य पद-स्थान	—	भीनासर (राज.)
आचार्य पद-तिथि	—	स. २०००, आषाढ शुक्ला अष्टमी
स्वर्गवास-स्थान	—	उदयपुर (राज.)
स्वर्गवास-तिथि	—	सं. २०१९, माघ कृष्णा द्वितीया

है। आत्मशक्ति का मोड दृढतर आन्तरिक लक्ष्य के अनुकुल प्राय वन जाया करता है। आन्तरिक शक्तिया जिस कार्य के लिये अत्यन्त तन्मयता के साथ सयुक्त बन जाती हैं, प्रायः शरीर के महत्त्वपूर्ण अग भी अपने-अपने स्थान पर रहते हुए कार्य के सम्पादन मे सहयोगी बनते हैं। उस वक्त शारीरिक रस-ग्रथिया अपने-अपने स्थान मे उसके अनुरूप रस-सचय मे सलग्न रहती है। उस रस के स्राव से भोजनादि की अवस्था मे रासायनिक प्रक्रिया बनती रहती है, जो कि शरीर के विभिन्न अवस्थाओ मे रसादि आदि रूप मे जो धातुओ की अव्यवस्था परिणित है, उनमे विल पावर के अनुरूप कार्य साधिका की शक्ति उत्पन्न कर लेती है। इस प्रकार व्यवस्था निरन्तर रूप से बढती रहे तो धीरे-धीरे मानव शरीर मे सर्व शक्ति समूह का अवस्थान व्यक्त होते हुए बीज वृक्ष का रूप धारण कर सकता है यानी किसी भी शक्ति के लिये पर मुखापेक्षी न रहकर स्वय वही अन्यो को शक्ति-प्रदान-विधि के रूप मे विधाता साबित हो सकती है, अत. मानव जीवन मे रही शक्तियो को सावधानी के साथ विकसित करने की आवश्यकता है।

शुद्धि : अन्तर-बाह्य

जीवन की आन्तरिक धरा पर चलना सरल नही है। वहा पर चलना जिसने सीख लिया, उसने जीवन की सफलता पा ली, ऐसा कहा जा सकता है। जिसने आन्तरिक धरा पर चलना नही सीखा और अन्य कितनी कुछ भी उपलब्धिया प्राप्त करली हो, उसके लिये ऐसा नही कहा जा सकता कि उसने जीवन की सफलता पाई है, क्योकि आन्तरिक गति के बिना बाह्य गति सिर्फ मकान को बाहर से पोतना और अन्दर गदगी भरे रखने के समान है। यदि बाह्य गति आन्तरिक गतिपूर्वक बने तो दोनो जीवन के वास्तविक पख बन सकते हैं।

जीवन-गंगा

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र या अवयवो मे हर समय उत्साह एव उमग की लहर होनी चाहिये। जीवन एक पवित्र बहती गगा के समान है। उसमे सभी वस्तुयें आकर मिलती हैं। गगा सभी वस्तुओ को स्वच्छ एव शीतल बना देती है। वैसे ही जीवन गगा मे जो भी वस्तुएं प्रविष्ट हो अथवा सयुक्त हो वे सभी यथायोग्य शात एव पवित्र बन जाये अर्थात् उन वस्तुओ के निमित्त राग-द्वेष न हो, यहा उनके पवित्रपन को अवस्था है।

जीवन और उसका उपयोग

जीवन बाह्य व्यवहारो से उलझ गया है। सर्वत्र दृश्य पदार्थो का आकर्षण जीवनी शक्ति को विभक्त कर रहा है। शक्ति की विराटता इन दृश्य पदार्थो मे अवरुद्ध हो रही है। मनुष्य जन्म से शक्ति को फैलाना चालू करता है। सर्वप्रथम

आचार्य श्री के गुरु

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
१	श्री ईश्वरचन्दजी म.सा.	देशनोक	हरकबाई	जोरावरमलजी
२.	,, इन्दरचन्दजी म.सा.	माड़पुरा	ब्रजकु वरवाई	रूपचन्दजी
३.	,, सेवन्तमुनिजी	कन्नौज	सुन्दरवाई	देवीलालजी
४.	,, अमरचन्दजी म.सा	पीपलिया	टाकुबाई	विरदीचन्दजी
५	,, शातिमुनिजी	भदेसर	लहरबाई	डालचन्दजी
६.	,, कवरचन्दजी म.सा.	निकुम्भ	दाखवाई	तोरीलालजी
७.	,, रतनमुनिजी	भाडेगाव	लाडवाई	रामचन्द्रजी
८.	,, सम्पतमुनिजी	रामपुर	पानवाई	नथमलजी
९.	,, प्रेममुनिजी	भोपाल	छोटीवाई	मगलचन्दजी
१०	,, पारसमुनिजी	दलोदा	मोहनवाई	भवरलालजी
११.	,, धर्मेशमुनिजी	मद्रास	पानवाई	अनराजजी
१२.	,, रणजीतमुनिजी	कजाडी	भूरीवाई	मोतीलालजी
१३.	,, महेन्द्रमुनिजी	गोगुन्दा	सोहनवाई	देवीलालजी
१४	,, गजानन्दजी म.सा.	देवगढ़	गट्टुवाई	शिवरामजी
१५.	,, सौभागमलजी म.सा.	बडावदा	हुलासवाई	केशरीमलजी
१६	,, रमेशमुनिजी	उदयपुर	प्रतापवाई	रगलालजी
१७.	,, रवीन्द्रमुनिजी	कानवन	प्यारीवाई	कवरलालजी
१८.	,, भूपेन्द्रमुनिजी	निकुम्भ	कंचनवाई	ऊकारलालजी
१९.	,, वीरेन्द्रमुनिजी	आष्टा	सीतावाई	वक्तावरमलजी
२०.	,, हुलासमलजी म सा	गगाशहर	वालीवाई	जीवनराजजी
२१.	,, जितेन्द्रमुनिजी	वीकानेर	धायवाई	रूपचन्दजी
२२	,, विजयमुनिजी	वीकानेर	भवरीवाई	जतनमलजी
२३.	,, नरेन्द्रमुनिजी	वम्बोरा	गमेरवाई	अर्जुनलालजी
२४.	,, ज्ञानेन्द्रमुनिजी	व्यावर	सौरमवाई	मागीलालजी
२५	,, वलभद्रमुनिजी	पीपलिया	टाकुवाई	विरदीचन्दजी
२६.	,, पुष्पमुनिजी	मडी डब्वा वाली	जानकीदेवी	मगतरामजी
२७	,, मोतीलालजी म सा.	गगाशहर	नवलावाई	तनसुखदासजी
२८.	,, रामलालजी म सा	देशनोक	गोरादेवी	नेमीचन्दजी

परिशिष्ट—१

अष्टाचार्यों की जीवन-झाँकी

निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के उन्नायक भगवान् महावीर से चली आरही अविच्छिन्न निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा मे अनेक क्रातिकारी युगपुरुष हुए, जिन्होने अपनी साधना एव प्रतिभा के द्वारा समय-समय पर श्रमण सस्कृति की लौ को प्रदीप्त करने का प्रयास किया।

उसी समुज्ज्वल गौरवशाली परम्परा मे पञ्चम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी के चहोत्तरवें (७४) पाट पर महान् तपोधनी क्रियोद्धारक क्रान्तद्रष्टा आचार्य श्रेष्ठ श्री हुक्मीचन्दजी म सा हुए, जिन्होने समुज्ज्वल साधना एव कठोर तपश्चर्या के द्वारा एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। सयम साधनागत प्रवृत्तियो मे शैथिल्य के कारण आपश्री अपने गुरुदेव से अनुज्ञापूर्वक अलग होकर साधनागत कठोर चर्या का अनुपालन करने लगे। परिणामत. आपके पश्चात् साधनागत कठोर श्रमण चर्याओ का अनुपालन करने वाली एक परम्परा आप ही के नाम से चल पडी। हमारे श्रद्धेय चरित नायक उसी परम्परा के अष्टम पट्टधर हैं।

ऐतिहासिक परम्परा के सम्यग्बोध हेतु यहाँ परिशिष्ट मे आठो आचार्यों की सक्षिप्त जीवन-झाँकी प्रस्तुत की जा रही है—

[१]

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा०

जन्म स्थान	—	टोडारायसिंह (राज)
पिता	—	श्री रतनचन्दजी चपलोत
माता	—	श्रीमती मोतिया देवी
दीक्षा-स्थान	—	बूदी (राज.)
दीक्षा-तिथि	—	स १८७९, मार्गशीर्ष अष्टमी
स्वर्गवास-स्थान	—	जावद (म० प्र०)
स्वर्गवास-तिथि	—	सं. १९१७, वैशाख शुक्ला पंचमी

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
२९. श्री	प्रकाशचन्दजी म सा	देशनोक	भूरीबाई	सम्पतलालजी
३०. ,,	गौतममुनिजी	बीकानेर	शाताबाई	बसन्तराजजी
३१ ,,	प्रमोदमुनिजी	हासी		महावीरसिंहजी
३२ ,,	प्रशममुनिजी	गगाशहर	उदीबाई	गोपीचन्दजी
३३ ,,	अशोककुमारजी म सा	जावरा	सोहनबाई	सौभागमलजी
३४. ,,	मूलचन्दजी म सा	नोखामडी	जेठीबाई	बीजराजजी
३५ ,,	ऋषभमुनिजी	बम्बौरा	मोडीबाई	गोकुलचन्दजी
३६ ,,	अजितमुनिजी	रतलाम	रोशनबाई	डाडमचन्दजी
३७. ,,	जितेशमुनिजी	पूना	कुसुमबाई	नेमीचन्दजी
३८ ,,	पद्मकुमारजी म सा.	नीमगाव खेडी	मिश्रीबाई	नगराजजी
३९. ,,	विनयमुनिजी	ब्यावर	छोटियाबाई	मोहनलालजी
४०. ,,	गोबिन्दमुनिजी	ब्यावर	हजाबाई	पूनमचन्दजी
४१. ,,	सुमतिमुनिजी	नोखामडी	राजीबाई	चादमलजी
४२. ,,	चद्रेशमुनिजी	फलौदी	मनोरीबाई	भीखमचन्दजी
४३ ,,	पकजमुनिजी	राजनादगाव	कुसुम्बीबाई	राणुलालजी
४४ ,,	धर्मेन्द्रकुमारजी म.सा.	साकरा	बादामीबाई	हेमराजजी

• ◆ •

[४]

आचार्य श्री चौथमलजी म. सा.

जन्म-स्थान	—	पाली (राज०)
दीक्षा-स्थान	—	बूंदी (राज०)
दीक्षा-तिथि	—	स० १९०९ चैत्र शुक्ला द्वादशी
युवाचार्य पद-तिथि	—	स १९५४, मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी
आचार्य पद-स्थान	—	रतलाम (म० प्र०)
आचार्य पद-तिथि	—	स० १९५४, फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी
स्वर्गवास-स्थान	—	रतलाम
स्वर्गवास-तिथि	—	स १९५७, कार्तिक शुक्ला अष्टमी

[५]

आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा.

जन्म-स्थान	—	टोंक (राज०)
जन्म-तिथि	—	स १९२६ आषाढ कृष्णा द्वादशी
पिता	—	श्री चुन्नीलालजी बम्ब
माता	—	श्रीमती चाँदकुँवर बाई
दीक्षा-स्थान	—	बनेडा (राज०)
दीक्षा-तिथि	—	स १९४५, माघ कृष्ण सप्तमी
युवाचार्य पद-स्थान	—	रतलाम (म. प्र.)
युवाचार्य पद-तिथि	—	स १९५७, कार्तिक शुक्ला द्वितीया
आचार्य पद-स्थान	—	रतलाम (म. प्र.)
आचार्य पद-तिथि	—	स० १९५७, कार्तिक शुक्ला नवमी
स्वर्गवास-स्थान	—	जैतारण (राज०)
स्वर्गवास-तिथि	—	सं १९७७, आषाढ शुक्ला द्वितीया

परिशिष्ट–

आचार्य श्री की

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
१.	श्री सूरजकवरजी (प्रथम)	गगाशहर	गवराबाई	आज्ञारामजी सचेती
२	,, मोहनकवरजी	देशनोक	धापूबाई	देवचदजी गोलछा
३.	,, सिरेकवरजी	सोजत	सीताबाई	पूनमचदजी श्रीश्रीमाल
४.	,, वल्लभकवरजी (प्रथम)	जावरा	जडावबाई	रूपचदजी खिमेसरा
५	,, रसालकवरजी	किशनगढ	भूरीबाई	मूलचन्दजी लोढा
६.	,, पानकवरजी (प्रथम)	उदयपुर	सलेकवरजी	गेगराजजी हीगड
७	,, मनोहरकवरजी	उदयपुर	सलेकवरजी	गेगराजजी हीगड
८.	,, सम्पतकवरजी (प्रथम)	रतलाम	गुलाबबाई	रखबचदजी सिसोदिया
९	,, गुलाबकवरजी (प्रथम)	खाचरौद	कस्तूराबाई	प्यारचदजी मेहता
१०.	,, प्यारकवरजी	गोगोलाव	मूलीबाई	किशनलालजी सकलेचा
११.	,, केसरकवरजी	बीकानेर	तुलसीबाई	शिवदासजी डागा
१२	,, राजकवरजी	बीकानेर	सिरियाबाई	मुन्नीलालजी दस्सानी
१३.	,, गुलाबकवरजी (द्वितीय)	जावरा	केशरबाई	रिखवचदजी मेहता
१४.	,, धापूकवरजी (प्रथम)	भीनासर	गगाबाई	कीजराजजी पटवा
१५	,, ककुकवरजी	देवगढ	कोयलबाई	रगलालजी पोखरना
१६	,, पेपकवरजी	बीकानेर	जतनबाई	सोहनलालजी कोठारी
१७	,, नानूकवरजी	देशनोक	पार्वतीबाई	किशनलालजी बोथरा
१८.	,, लाडकवरजी	बीकानेर	लक्ष्मीबाई	लाभचदजी रामपुरिया
१९.	,, धापूकवरजी (द्वितीय)	चकारडा	शृगारबाई	मोडीलालजी पोखरना
२०.	,, कचनकवरजी	सवाईमाधोपुर	केशरबाई	मोतीलालजी पोरवाल
२१	,, सूरजकवरजी (द्वितीय)	विरमावल	धापूबाई	लाभचदजी पगारिया
२२	,, फूलकवरजी	कुस्तला	भूरीबाई	वजरगलालजी पोरवाल
२३	,, भवरकवरजी (प्रथम)	बीकानेर	पानबाई	मगलचदजी सोनावत
२४.	,, सम्पतकवरजी	जावरा	सज्जनबाई	मिश्रीमलजी बोहरा
२५.	,, सायरकवरजी (प्रथम)	केशरसिंहजी का गुढा	मगनबाई	शेषमलजी गावी

[८]

आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

जन्म-स्थान	—	दाता (राज)
जन्म-तिथि	—	स १९७७, ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया
पिता	—	श्री मोडीलालजी पोखरना
माता	—	श्रीमती शृ गार बाई
दीक्षा-तिथि	—	स १९९६, पौष शुक्ला अष्टमी
युवाचार्य पद-स्थान	—	उदयपुर (राज)
युवाचार्य पद-तिथि	—	स २०१९, आश्विन शुक्ला द्वितीया
आचार्य पद-स्थान	—	उदयपुर
आचार्य पद-तिथि	—	स २०१९, माघ कृष्णा द्वितीया

आचार्य श्री के चातुर्मास

स २०२० — रतलाम
स. २०२१ — इन्दौर
स २०२२ — रायपुर
स २०२३ — राजनादगाव
स. २०२४ — दुर्ग
स २०२५ — अमरावती
स २०२६ — मन्दसौर
स २०२७ — बडीसादडी
स २०२८ — ब्यावर
स २०२९ — जयपुर
स २०३० — बीकानेर
स. २०३१ — सरदारशहर
स २०३२ — देशनोक
स २०३३ — नोखामण्डी
स २०३४ — गगाशहर-भीनासर
स २०३५ — जोधपुर
स २०३६ — अजमेर
स २०३७ — राणावास
स २०३८ — उदयपुर
स २०३९ — अहमदावाद

□

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
२६	श्री नगीनाकवरजी	राणावास	दगडीबाई	दौलतरामजी गुलगुलिया
२७	,, आनन्दकवरजी	देशनोक	सुगनीबाई	लक्ष्मीचदजी दुगड
२८.	,, गुलाबकवरजी (तृतीय)	उदयपुर	नानीबाई	पन्नालालजी धर्मावत
२६	,, कस्तूरकवरजी (प्रथम)	नारायणगढ	मोतीबाई	हजारीलालजी वोहरा
३०	,, सायरकवरजी (द्वितीय)	ब्यावर	मिश्रीबाई	मिश्रीमलजी गोलछा
३१	,, चादकवरजी	बीकानेर	मक्खुबाई	डूगरमलजी
३२.	,, पानकवरजी (द्वितीय)	बीकानेर	इन्द्राबाई	राजमलजी बोथरा
३३	,, सूरजकवरजी (तृतीय)	रायपुर	पानबाई	नथमलजी घाडीवाल
३४	,, इन्द्रकु वरजी	बीकानेर	गगाबाई	हनुमानमलजी बच्छावत
३५	,, बदामकवरजी	मेडता	सुगनबाई	सूरजमलजी कोठारी
३६	,, उगमकवरजी	मसूदा	धापूबाई	रगलालजी डोसी
३७	,, सुमतिकवरजी (प्रथम)	झज्जु	वल्लभजी	गुणचदजी सेठिया
३८	,, इचरजकवरजी	बीकानेर	भवरबाई	फूसराजजी वाठिया
३६	,, वल्लभकवरजी (द्वितीय)	गुढा	सुरतीबाई	बुधमलजी छल्लाणी
४०	,, चन्द्राकवरजी (प्रथम)	कुकडेश्वर	रूपाबाई	रतनलालजी धाकड
४१	,, सरदारकवरजी	अजमेर	चुकीबाई	कस्तूरचदजी सेठिया
४२.	,, शाताकवरजी (प्रथम)	उदयपुर	मोहनबाई	ख्यालीलालजी बाफना
४३	,, रोशनकवरजी (प्रथम)	उदयपुर	मोहनबाई	मनोहरसिंहजी हिरण
४४.	,, अनोखाकवरजी	उदयपुर	राधाबाई	वक्तावरमलजी तलेसरा
४५	,, धीरजकवरजी	भदेसर	सज्जनबाई	कजोडीमलजी हीगड
४६	,, कमलाकवरजी (प्रथम)	कानोड	शकुबाई	भैरूलालजी नदावत
४७	,, झमकूकवरजी	भदेसर	धापूबाई	फौजमलजी कोठारी
४८.	,, नन्दकवरजी	बडी सादड़ी	भागवतीबाई	भूरालालजी नीमावत
४६	,, रोशनकवरजी (द्वितीय)	बडी सादडी	मोहनबाई	गोटीलालजी कोठारी
५०.	,, सूर्यकान्ताजी	उदयपुर	बदनबाई	चादमलजी धर्मावत
५१	,, सुशीलाकवरजी (प्रथम)	उदयपुर	बदामबाई	मोतीलालजी कोठारी
५२	,, शाताकवरजी (द्वितीय)	गगाशहर	अमानीबाई	रावतमलजी सुराना
५३	,, लीलावतीजी	निकुम्भ	झमकबाई	मोतीलालजी मोगरा
५४	,, कस्तूरकवरजी (द्वितीय)	पीपल्यामडी	राजीबाई	पन्नालालजी मेहता
५५.	,, हुलासकवरजी	चिकारडा	गट्टूबाई	फूलचदजी चडालिया
५६	,, ज्ञानकवरजी (द्वितीय)	मालदामाडी	घीसीबाई	चम्पालालजी मुणोत
५७	,, विरदीकवरजी	बीकानेर	चुन्नीबाई	रावतमलजी सेठिया
५८	,, ज्ञानकवरजी (तृतीय)	राणावास	धापूबाई	वीरभानजी मुणोत
५६	,, प्रेमलताजी (प्रथम)	सुरेन्द्रनगर	जवेरी बहिन	चमनभाईशाह कोठारी

भ्राता एवं शिष्य

गोत्र	जन्म-तिथि	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
सुराणा	स. १६७२ चैत्र शुक्ला ३	स १६६६ मि कृष्णा ४	भीनासर
चोरडिया	स. १६७६ जेठ शुक्ला ११	स २००२ वै शुक्ला ६	गोगोलाव
ढावरिया	स २००० का शुक्ला १५	स २०१६ का शुक्ला ३	उदयपुर
पामेचा	स १६८६	स २०२० वै शुक्ला ३	पीपलिया
सरूपरिया	स २००३ जे कृष्णा १२	स २०१६ फा शुक्ला १	भदेसर
सहलोत	स १६६० पौ शुक्ला १४	स २०१६ फा शुक्ला ५	वडी सादडी
चैंद मूथा	स १६६० का शुक्ला ५	स २०१४ भा शुक्ला १३	सोनार
धाडीवाल	स १६७८ का शुक्ला ८	स २०२३ श्रा शुक्ला ४	राजनाद गाव
कक्कड	स २००१	स २०२३ श्रा शुक्ला ४	राजनाद गाव
भण्डारी	स २००६ पौष शुक्ला १०	स. २०२३ श्रा शुक्ला ४	राजनाद गाव
घोका	स १६६८ भा शुक्ला ६	स २०२३ फा कृष्णा ६	रायपुर
भण्डारी	स १६८५ फा शुक्ला १३	स २०२६ फा कृष्णा ८	वडी सादडी
चोरडिया	स २००३ मा शुक्ला ६	स २०२६ फा कृष्णा ८	वडी सादडी
देसरडा	स १६६७ फा कृष्णा ८	स २०२८ भा शुक्ला १४	व्यावर
साड	स १६७८ फा शुक्ला २	स २०२८ फा शुक्ला १२	व्यावर
वाफना	स २०१० मा कृष्णा ६	स २०२८ फा शुक्ला १२	व्यावर
गोखरू	स १६६५ फा शुक्ला ३	स २०२६ भा कृष्णा १२	जयपुर
सहलोत	स २००८ पौ शुक्ला १४	स २०२६ श्रा शुक्ला ३	जयपुर
सचेती	सन् २-६-५२	स २०२६ मा शुक्ला ५	देशनोक
सेठिया	स १६६८ मि. कृष्णा ५	स २०२६ मा. शुक्ला १३	भीनासर
सोनावत	स १८८२ चै शुक्ला ७	स २०२६ मा शुक्ला १३	भीनासर
सोनावत	स २०१३ श्रा शुक्ला २	स २०२६ मा शुक्ला १३	भीनासर
पीतल्या	स २००७	स २०३० मा शुक्ला ५	सरदार शहर
मेहता	स २०१७ श्रा शुक्ला १२	स २०३१ जेठ शुक्ला ५	गोगोलाव
पामेचा	स १६८३	स २०३१ श्रा शुक्ला ३	सरदार शहर
अग्रवाल (गोयल)	स १६७३ भा कृष्णा ८	स २०३१ श्रा शुक्ला ३	सरदार शहर
सुराना	स १६७२ पौ कृष्णा ६	स २०३१ मा शुक्ला १२	देशनोक
भूरा	स २००६ चैत्र शुक्ला १४	स. २०३१ मा शुक्ला १२	देशनोक

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
६०	श्री इन्दुबालाजी	राजनादगाव	कमलाबाई	भवरलालजी श्रीश्रीमाल
६१	,, गगावतीजी	डोगर गाव	गट्टूबाई	हमीरमलजी लोढा
६२	,, पारसकवरजी (प्रमथ)	कलगपुर	मोडीबाई	हीरालालजी पारख
६३	,, चन्दनबालाजी (प्रथम)	पीपल्या	कस्तूराबाई	अमरचदजी पामेचा
६४	,, जयश्रीजी	मद्रास	पानीबाई	हमीरमलजी सेठिया
६५.	,, सुशीलाकवरजी (द्वितीय)	मालदामाडी	घीसीबाई	चम्पालालजी मुणोत
६६	,, मगलाकवरजी	वडावदा	सूरजबाई	सौभागमलजी साड
६७	,, शकुन्तलाजी	बीजा	प्यारीबाई	सम्पतलालमी साखला
६८.	,, चमेलीकवरजी	बीकानेर	राजकवरबाई	किशनलालजी गोलेछा
६९	,, सुशीलाकवरजी (तृतीय)	बीकानेर	फत्ताबाई	सतोपचदजी बैद
७०	,, चन्द्राकवरमी (द्वितीय)	रतलाम	सज्जनबाई	सुगनचदजी फिरोदिया
७१.	,, कुसुमलताजी	मन्दसौर	मोहनबाई	चादमलजी कुदाल
७२.	,, प्रेमलताजी (द्वितीय)	मन्दसौर	मोहनबाई	चादमलजी कुदाल
७३	,, विमलाकवरजी (प्रथम)	पीपल्या	कचनबाई	चादमलजी छीगावत
७४.	,, कमलाकवरजी (द्वितीय)	जेठाना	गवराबाई	नौरतमलजी लोढा
७५.	,, पुष्पलताजी (प्रथम)	बडीसादडी	सज्जनबाई	अम्बालालजी जारोली
७६	,, सुमतिकवरजी (द्वितीय)	बडीसादड़ी	चोसरबाई	ख्यालीलालजी मुणोत
७७.	,, विमलाकवरजी (द्वितीय)	मोडी	सौभागबाई	सूरजमलजी नपावलिया
७८	,, सूरजकवरजी (पाचवे)	बड़ावदा	घूलीबाई	चादमलजी ओस्तवाल
७९.	,, ताराकवरजी (पाचवे)	रतलाम	सज्जनबाई	सुगनचन्दजी फिरोदिया
८०	,, कल्याणकवरजी	बीकानेर	सम्पतबाई	सम्पतलालजी बाठिया
८१.	,, काताकवरजी	बडावदा	सूरजबाई	सौभागमलमी साड
८२.	,, कुसुमलताजी (द्वितीय)	रावटी	लीलाबाई	नानलालजी कटारिया
८३	,, चन्दनाजी (द्वितीय!	बडावदा	सूरजबाई	सौभागमलजी साड
८४.	,, ताराजी (द्वितीय)	रतलाम	दाखबाई	हीरालालजी राका
८५	,, चेतनश्रीजी	कानोड	पताशीबाई	हनुमानमलजी गाधी
८६.	,, तेजप्रभाजी	गोगोलाव	गवरीबाई	रतनचन्द्रजी कोठारी
८७.	,, भवरकवरजी (द्वितीय)	बीकानेर	आशाबाई	हीरालालजी बोथरा
८८	,, कुसुमकाताजी	जावरा	कमलाबाई	शान्तिलालजी पगारिया
८९	,, वसुमतिजी	बीकानेर	राजीबाई	इन्दरचदजी पुगलिया
९०.	,, पुष्पाजी (द्वितीय)	देशनोक	गट्टीबाई	घेवरचदजी बोथरा
९१	,, राजीमतिजी	दलोदा	मोहनबाई	भवरलालजी भडारी
९२	,, मजुबालाजी	बीकानेर	जवरीबाई	रतनलालजी सेठिया
९३	,, प्रभावतीजी	बीकानेर	भवरीबाई	जतनलालजी सोनावत

गोत्र	जन्म-तिथि	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
भूगा	स २०१३ माघ शुक्ला ११	स २०३२ आ शुक्ला ५	देशनोक
सेठिया	स २०१३ मि शुक्ला ६	स २०३२ मि शुक्ला १३	बीकानेर
गर्ग		स २०३३ मा कृष्णा १	भीनासर
छल्लाणी	स २०१६ चै शुक्ला १	स २०३४ वै. कृष्णा ७	भीनासर
नवलखा	स १९१४	स २०३४ आ शुक्ला २	भीनासर
काकरिया	स १९७७ फा शुक्ला १५	स २०३४ मि शुक्ला ५	नोखामडी
वया	स १९६४ का कृष्णा ८	स २०३४ मा शुक्ला १०	जोधपुर
चतर	स २०१२ अ कृष्णा ६	स २०३५ आ शुक्ला ५	जोधपुर
पटवा	सन् २३-४-५८	स २०३६ चै शुक्ला १५	ब्यावर
चौरडिया	स २०१६ चै शुक्ला १५	स २०३६ चै शुक्ला १५	ब्यावर
वाठिया	स २०१७ पौ कृष्णा १	स २०३६ चै शुक्ला १५	ब्यावर
वोरा	स १९७१ मा शुक्ला २	स २०३७ जे शुक्ला १३	जगदलपुर
लूणिया	स २०२०	स २०३७ पौष शुक्ला ३	भीम
चौरडिया	स २०२२ पौ शुक्ला १२	स २०३८ वै शुक्ला ३	गगापुर
टाटिया	स १९८४ चैत कृष्णा २	स २०३८ चैत कृष्णा ३	अहमदाबाद
देशलहरा		स. २०३८ चैत कृष्णा ३	अहमदाबाद

• • •

क्रम	नाम	ग्राम	माता	पिता
९४	श्री ललिताजी (प्रथम)	बीकानेर	लक्ष्मीबाई	घेवरचन्दजी गोलछा
९५	,, सुशीलाजी (द्वितीय)	मोडी	शोभनाबाई	सूरजमलजी नपावलिया
९६	,, समताकवरजी	अजमेर	शान्ताबाई	पूरणमलजी कोठारी
९७.	,, निरजनाश्रीजी	बडीसादडी	उगमबाई	लक्ष्मीलालजी पामेचा
९८.	,, पारसकवरजी (द्वितीय)	बागरेडा	दाखबाई	गेरीलालजी सहलोत
९९	,, सुमनलताजी	बागरेडा	पारसबाई	बालचन्दजी जारोली
१००	,, विजयलक्ष्मीजी	उदयपुर	राधाबाई	बक्तावरमलजी तलेसरा
१०१	,, स्नेहलताजी	सरदारशहर		रामलालजी पारख
१०२	,, रजनाश्रीजी	उदयपुर (मगलवाड)	सूरजबाई	गुलाबचदजी चपलोत
१०३.	,, अजनाश्रीजी	उदयपुर (मगलवाड)	,,	,,
१०४	,, ललिताजी (द्वितीय) (लाडजी)	ब्यावर	सौरमबाई	मागीलालजी मेहता
१०५.	,, विचक्षणाजी	पिपलिया	राजकवरबाई	जमनालालजी पामेचा
१०६	,, सुलक्षणाजी	,,	सुन्दरबाई	रामगोपालजी कच्छारा
१०७	,, प्रियलक्षणाजी	,,	मोहनबाई	बापूलालजी पामेचा
१०८.	,, प्रीतिसुधाजी	निकुम्भ	धापूबाई	दुलीचन्दजी खिदावत
१०९.	,, सुमनप्रभाजी	देवगढ		सोहनलालजी दसरडा
११०.	,, सोमलताजी	रावटी	लीलाबाई	नानालालजी कटारिया
१११	,, किरणप्रभाजी	बीकानेर	लछमीबाई	करणीदानजी पटवा
११२	,, मजुलाश्रीजी	देशनोक	,,	कुन्दनमलजी दुगड
११३	,, सुलोचनाजी	कानौड	सौरमबाई	बाबूलालजी सहलोत
११४	,, प्रतिभाजी	बीकानेर	बसन्तीबाई	पानमलजी सेठिया
११५	,, वनिताश्रीजी	,,	मगलबाई	गुलाबचन्दजी गुगलिया
११६	,, सुप्रभाजी	गोगोलाव	भवरीबाई	चम्पालालजी काकरिया
११७	,, जयन्तश्रीजी	बीकानेर	मूलीबाई	फकीरचदजी पारख
११८.	,, हर्षकवरजी	अमरावती	पाचीबाई	हिम्मतमलजी छाजेड
११९	,, सुदर्शनाजी	नोखामडी	उदीबाई	मूलचन्दजी पारख
१२०	,, निरूपमाजी	रायपुर	महताबबाई	छोगमलजी कोठारी
१२१	,, चन्द्रप्रभाजी	मेडता	तुलसीबाई	पदमचन्दजी वैद
१२२	,, आदर्शप्रभाजी	उदासर	किसनादेवी	तिलोकचन्दजी सेठिया
१२३	,, कीर्तिश्रीजी	भीनासर	रतनीबाई	मेघराजजी लूणावत
१२४	,, हर्षिलाश्रीजी	गगाशहर	आशादेवी	किशनचदजी सोनावत
१२५	,, साधनाश्रीजी	,,	छगनीबाई	सतोपचन्द्रजी भूरा
१२६	,, अर्चनाश्रीजी	,,	सोहनीदेवी	लूणकरणजी मुराणा
१२७.	,, सरोजकवरजी	धमतरी	गुलाबबाई	सूरजमलजी चोरडिया

आज्ञानुवर्तिनी महासतियाँ

पति	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
लालचन्दजी चौरडिया	स० १९८४ मि कृष्णा ७	बीकानेर
सूरजमलजी भूरा	,, १९८४ मा कृष्णा ७	देशनोक
गुलाबचन्दजी सियाल	,, १९८४	सोजत
रतनलालजी मेहता	,, १९८७ पौ शुक्ला २	निमलपुर
अमरचन्दजी लुणावत	,, १९८९ चै कृष्णा ३	किशनगढ
बाल ब्रह्मचारिणी	,, १९९१ चै शुक्ला १३	भीण्डर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, १९९१ चै शुक्ला १३	भीण्डर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, १९९२ चै शुक्ला ९	रतलाम
चम्पालालजी माडोत	,, १९९२ चै कृष्णा ६	खाचरौद
जेठमलजी काकरिया	,, १९९५ वै शुक्ला ३	गोगोलाव
मानमलजी गोलछा	,, १९९५ जे शुक्ला ४	बीकानेर
चौथमलजी कोठारी	,, १९९६ आ शुक्ला ३	बीकानेर
सागरमलजी बाफना	,, १९९७ फा शुक्ला ९	खाचरौद
बाल ब्रह्मचारिणी	,, १९९८ भा कृष्णा ११	भीनासर
तोलारामजी गाधी	,, १९९८ मि शुक्ला ६	देवगढ
भवरलालजी नाहटा	,, १९९९ जे कृष्णा ७	बीकानेर
सूरजमलजी छाजेड	,, १९९९ अ शुक्ला ३	देशनोक
जेठमलजी मुकीम	,, २००० चै कृष्णा १०	बीकानेर
प्यारचन्दजी कोठारी	,, २००१ चै शुक्ला १३	भीलवाडा
गोपीलालजी पोरवाल	,, २००१ वै कृष्णा २	ब्यावर
घेवरचन्दजी सोनी	,, २००२ मा शुक्ला १३	रतलाम
नरसिंहलालजी	,, २००३ चै शुक्ला ९	माधोपुर
नथमलजी बाठिया	,, २००३ वै कृष्णा १०	बीकानेर
झमकलालजी श्रीश्रीमाल	,, २००३ अ कृष्णा १०	ब्यावर पुरानी
नेमीचन्दजी गुगलिया	,, २००४ चै. शुक्ला २	राणावास

पति	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
गुलाबचन्दजी डुंगरवाल	सं० २००४ मि शुक्ला ५	राणावास
अमरचन्दजी घाडीवाल	,, २००६ चै शुक्ला १३	देशनोक
नखमलजी पोखाड़	,, २००६ मा शुक्ला १	उदयपुर
झमलालजी खिदावत	,, २००७ पौ शुक्ला ४	खाचरौद
शांतिलालजी कोठारी	,, २००७ जे शुक्ला ५	ब्यावर
भवरलालजी तातेड	,, २००८ फा कृष्णा ८	बीकानेर
फतेचन्दजी कोठारी	,, २००९ जे कृष्णा ६	बीकानेर
कन्हैयालालजी वैद	,, २००९ आ शुक्ला ४	उदयपुर
दीपचन्दजी वेगानी	,, २००९ चै कृष्णा ५	बीकानेर
दुलीचन्दजी पीपड़ा	,, २०१० जे शुक्ला ३	बीकानेर
सोहनलालजी खिमेसरा	,, २०१० मि कृष्णा १३	ब्यावर
छगनमलजी सुराणा	,, २०११ वै शुक्ला ७	भीनासर
भवरलालजी डागा	,, २०१३ आ शुक्ला १०	गोगोलाव
गुणचन्दजी सेठिया	,, २०१३ मि कृष्णा ११	भीनासर
कन्हैयालालजी जोधावत	,, २०१४ फा शुक्ला ३	कुकडेश्वर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०१५ चै शुक्ला १३	उदयपुर
मेहता	,, २०१६ जे शुक्ला ११	उदयपुर
नरपतसिंहजी मुरड	,, २०१६ आ शुक्ला १५	बडी सादडी
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०१६ का कृष्णा ८	उदयपुर
हरकचन्दजी गेलडा	,, २०१६ का कृष्णा ८	उदयपुर
सवाईलालजी नागौरी	,, २०१६ का शुक्ला १३	प्रतापगढ
मोहनलालजी सुरपुरिया	,, २०१७ मि. कृष्णा ५	उदयपुर
भवरलालजी वैष्णव	,, २०१७ फा कृष्णा १०	छोटी सादडी
रगलालजी दक	,, २०१८ वै शुक्ला ८	बडी सादडी
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०१९ वै शुक्ला ७	उदयपुर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०१९ मा कृष्णा १२	उदयपुर
तालारामजी फलोदिया	,, २०१९ फा कृष्णा १२	गगाशहर
शोभालालजी सोनी	,, २०२० फा शुक्ला १२	निकुम्भ
अमरचन्दजी पामेचा	,, २०२० वै शुक्ला ३	पीपल्यामण्डी
दीपचन्दजी धींग	,, २०२१ वै शुक्ला १०	चिकारडा
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२१ आ शुक्ला ६	पीपलियाकला
भासकरणजी सिरोहिया	,, २०२३ वै शुक्ला ८	बीकानेर
हजारीमलजी गाधी	,, २०२३ आ शुक्ला ४	राजनांद गांव
बाल ब्रह्मचारिणी	,, ,,	,,

पति	दीक्षा-तिथि	दीक्षा-स्थान
बाल ब्रह्मचारिणी	सं० २०२३ आ शुक्ला ४	राजनाद गाव
भीखमचन्दजी श्रीश्रीमाल	,, २०२३ मि शुक्ला ३	डोगर गाव
जीवनलालजी ओस्तवाल	,, ,,	,,
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२३ मा. शुक्ला १०	पीपल्या मडी
धर्मचन्दजी धोका	,, २०२३ फा कृष्णा ६	रायपुर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२४ आ शुक्ला २	जावरा
,, ,,	,, २०२४ आ शुक्ला १	दुर्ग
,, ,,	,, २०२४ मि कृष्णा ६	दुर्ग
आसकरणजी बाठिया	,, २०२५ फा शुक्ला ५	बीकानेर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, ,,	,,
कान्तिलालजी मेहता	,, २०२६ वैं शुक्ला ६	ब्यावर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२६ आ. शुक्ला ४	मन्दसौर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२६ आ शुक्ला ४	मन्दसौर
रणजीतमलजी भडारी	,, २०२७ का कृष्णा ८	बड़ी सादड़ी
मूलचन्दजी डू गरवाल	,, ,,	,,
बाल ब्रह्मचारिणी	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, २०२७ फा शुक्ला १२	जावद
सौभागमलजी साड	,, २०२८ का शुक्ला १२	ब्यावर
बाल ब्रह्मचारिणी	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, २०२८ चै कृष्णा २	जयपुर
,, ,,	,, २०२९ चै शुक्ला १३	टोक
सरदारमलजी वैद	,, २०२९ मा शुक्ला १३	भीनासर
जतनमलजी सोनावत	,, ,,	,,
बाल ब्रह्मचारिणी	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,
बाल ब्रह्मचारिणी	,, २०२९ मा शुक्ला १३	भीनासर
,, ,,	,, ,,	,,
,, ,,	,, ,,	,,